ॐ

श्रीपरमात्मने नमः

श्रीमहाभारतम्

तस्य खिलभागो हरिवंशः

(तत्र विष्णुपर्व)

प्रथमोऽध्यायः

मङ्गलाचरण, नारदजीका मथुरामें आकर कंसको आनेवाले भयकी सूचना देना और कंसका अपने सेवकोंके सामने बढ़-बढ़कर बातें बनाना

नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम्।
देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत्॥

वैशम्पायन उवाच

ज्ञात्वा विष्णुं क्षितिगतं भागांश्च त्रिदिवौकसाम्।
विनाशशंसी कंसस्य नारदो मथुरां ययौ॥ १
त्रिविष्टपादापतितो मथुरोपवने स्थितः।
प्रेषयामास कंसस्य दूतं स मुनिपुङ्गवः॥ २
स दूतः कथयामास मुनेरागमनं वने।
स नारदस्यागमनं श्रुत्वा त्वरितविक्रमः॥ ३

बदरिकाश्रमनिवासी प्रसिद्ध ऋषि श्रीनारायण (अथवा अन्तर्यामी नारायण), नर (नारायणसखा अर्जुन अथवा आदि जीव हिरण्यगर्भ) तथा नरोत्तम (इन हिरण्यगर्भ एवं अन्तर्यामीसे भी श्रेष्ठ शुद्ध सच्चिदानन्दघन पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण)-को और (इन नर-नारायण तथा नरोत्तमके तत्त्वको प्रकट करनेवाली) देवी सरस्वतीको एवं (देवी सरस्वतीने संसारपर अनुग्रह करनेके लिये जिनके शरीरमें प्रवेश किया है, उन) व्यासजीको प्रणाम करके अविद्यारूपी अज्ञानान्धकारको जीतनेवाले इतिहास-पुराण आदि ग्रन्थोंका पाठ आरम्भ करे।

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! भगवान् विष्णु और देवताओंके अंश भूतलपर अवतीर्ण हो चुके हैं, यह जानकर देवर्षि नारद कंसको उसके निकटवर्ती विनाशकी सूचना देनेके लिये मथुराको गये॥ १॥ स्वर्गसे उतरकर वे मथुराके उपवनमें खड़े हो गये और वहींसे उन मुनिश्रेष्ठने कंसके पास एक दूत भेजा॥ २॥ उस दूतने कंसके पास जाकर बताया कि नगरके उपवनमें देवर्षि नारद पधारे हैं। नारदजीके आगमनका समाचार सुनकर

निर्जगामासुरः कंसः स्वपुर्याः पद्मलोचनः।
स ददर्शातिथिं श्लाघ्यं देवर्षिं वीतकल्मषम्॥ ४

तेजसा ज्वलनाकारं वपुषा सूर्यवर्चसम्।
सोऽभिवाद्यर्षये तस्मै पूजां चक्रे यथाविधि॥ ५

आसनं चाग्निवर्णाभं विसृज्योपजहार सः।
निषसादासने तस्मिन् स वै शक्रसखो मुनिः॥ ६

उवाच चोग्रसेनस्य सुतं परमकोपनम्।
पूजितोऽहं त्वया वीर विधिदृष्टेन कर्मणा॥ ७

गते त्वेवं मम वचः श्रूयतां गृह्यतां त्वया।
अनुसृत्य दिवोलोकानहं ब्रह्मपुरोगमान्॥ ८

गतः सूर्यसखं तात विपुलं मेरुपर्वतम्।
सनन्दनवनं चैव दृष्ट्वा चैत्ररथं वनम्॥ ९

आप्लुतं सर्वतीर्थेषु सरित्सु सह दैवतैः।
दिव्या त्रिधारा दृष्टा मे पुण्या त्रिपथगा नदी॥ १०

स्मरणादेव सर्वेषामंहसां या विभेदिनी।
उपस्पृष्टं च तीर्थेषु दिव्येषु च यथाक्रमम्॥ ११

दृष्टं मे ब्रह्मसदनं ब्रह्मर्षिगणसेवितम्।
देवगन्धर्वनिर्घोषैरप्सरोभिश्च नादितम्॥ १२

सोऽहं कदाचिद् देवानां समाजे मेरुमूर्धनि।
संगृह्य वीणां संसक्तामगच्छं ब्रह्मणः सभाम्॥ १३

सोऽहं तत्र सितोष्णीषान् नानारत्नविभूषितान्।
दिव्यासनगतान् देवानपश्यं सपितामहान्॥ १४

तत्र मन्त्रयतामेवं देवतानां मया श्रुतः।
भवतः सानुगस्यैव वधोपायः सुदारुणः॥ १५

तत्रैषा देवकी या ते मथुरायां लघुस्वसा।
योऽस्यां गर्भोऽष्टमः कंस स ते मृत्युर्भविष्यति॥ १६

देवानां स तु सर्वस्वं त्रिदिवस्य गतिश्च सः।
परं रहस्यं देवानां स ते मृत्युर्भविष्यति॥ १७

कमललोचन असुर कंस जल्दी-जल्दी पैर बढ़ाता हुआ अपनी पुरीसे बाहर निकला। उपवनमें पहुँचकर उसने वहाँ अपने स्पृहणीय अतिथि देवर्षि नारदका दर्शन किया, जो पाप-तापसे रहित थे। उनका तेज प्रज्वलित अग्निके समान जान पड़ता था, वे शरीरसे सूर्यके समान दीप्तिमान् दिखायी देते थे। कंसने देवर्षिको प्रणाम करके उनका विधिपूर्वक पूजन किया॥ ३—५॥ उसने उनके लिये अग्निके समान कान्तिमान् सुवर्णमय आसन देकर क्रमशः अर्घ्य, पाद्य आदि उपहार प्रस्तुत किये। तत्पश्चात् इन्द्रके सखा नारद मुनि उस आसनपर बैठे॥ ६॥ बैठनेके बाद वे परम क्रोधी उग्रसेनपुत्र कंससे बोले—'वीर! तुमने मेरा शास्त्रीय विधिसे पूजन किया है, इसलिये मैं तुम्हें एक आवश्यक बात बताता हूँ, तुम मेरे उस वचनको सुनो और ग्रहण करो। तात! मैं ब्रह्मलोक आदि सभी स्वर्गीय लोकोंमें घूमता हुआ उस विशाल मेरुपर्वतपर जा पहुँचा, जो सूर्यदेवका सखा है। फिर नन्दनवन और चैत्ररथवनका दर्शन करके मैंने देवताओंके साथ सम्पूर्ण तीर्थों और सरिताओंमें स्नान किया। उसके बाद तीन धाराओंमें बँटी हुई दिव्य त्रिपथगा नदी पुण्यसलिला गङ्गाका दर्शन किया, जो स्मरणमात्रसे ही समस्त पापोंका विनाश कर देनेवाली हैं। तत्पश्चात् क्रमशः दिव्य तीर्थोंमें स्नान एवं आचमन करके मैंने ब्रह्मर्षियोंसे सेवित ब्रह्माजीके भवनका दर्शन किया, जो देव-गन्धर्वोंके वाद्यघोषसे गूँजता और अप्सराओंके मधुर गीतोंसे निनादित होता रहता है॥ ७—१२॥ वहाँसे होकर मैं किसी समय हाथमें वीणा लिये मेरुके शिखरपर विराजमान ब्रह्माजीकी सभामें गया, जहाँ देवताओंका समाज जुटा हुआ था॥ १३॥ वहाँ मैंने देखा कि श्वेत पगड़ी धारण किये नाना रत्नोंसे विभूषित ब्रह्मा आदि सभी देवता दिव्य सिंहासनपर बैठे हुए हैं॥ १४॥ उस सभामें देवताओंकी जो गुप्त मन्त्रणा हो रही थी, उसमें मैंने सुना कि सेवकोंसहित तुम्हारे वधके अत्यन्त दारुण उपायका ही विचार हो रहा है॥ १५॥ कंस! वहाँ जो कुछ मैंने सुना है, उसके अनुसार मथुरामें जो तुम्हारी यह छोटी बहिन देवकी है, इसका आठवाँ गर्भ तुम्हारे लिये मृत्युरूप होगा॥ १६॥ वह गर्भ देवताओंका सर्वस्व तथा स्वर्ग-लोकका आश्रय होगा। वह देवताओंका परम गोपनीय रहस्य है। वही तुम्हारी मृत्युका कारण होगा'॥ १७॥

परश्चैवापरस्तेषां स्वयम्भूश्च दिवौकसाम्।
ततस्ते तन्महद्भूतं दिव्यं च कथयाम्यहम्॥ १८

श्लाघ्यश्च स हि ते मृत्युर्भूतपूर्वश्च तं स्मर।
यत्नश्च क्रियतां कंस देवक्या गर्भकृन्तने॥ १९

एषा मे त्वद्गता प्रीतिर्यदर्थं चाहमागतः।
भुज्यन्तां सर्वकामार्थाः स्वस्ति तेऽस्तु व्रजाम्यहम्॥ २०

इत्युक्त्वा नारदे याते तस्य वाक्यं विचिन्तयन्।
जहासोच्चैस्ततः कंसः प्रकाशदशनश्चिरम्॥ २१

प्रोवाच सस्मितं चैव भृत्यानामग्रतः स्थितः।
हास्यः खलु स सर्वेषु नारदो न विशारदः॥ २२

नाहं भीषयितुं शक्यो देवैरपि सवासवैः।
आसनस्थः शयानो वा प्रमत्तो मत्त एव च॥ २३

योऽहं दोर्भ्यामुदाराभ्यां क्षोभयेयं धरामिमाम्।
कोऽस्ति मां मानुषे लोके यः क्षोभयितुमुत्सहेत्॥ २४

अद्यप्रभृति देवानामेष देवानुवर्तिनाम्।
नृपक्षिपशुसंघानां करोमि कदनं महत्॥ २५

आज्ञाप्यतां हयः केशी प्रलम्बो धेनुकस्तथा।
अरिष्टो वृषभश्चैव पूतना कालियस्तथा॥ २६

अटध्वं पृथिवीं कृत्स्नां यथेष्टं कामरूपिणः।
प्रहरध्वं च सर्वेषु येऽस्माकं पक्षदूषकाः॥ २७

गर्भस्थानामपि गतिर्विज्ञेया चैव देहिनाम्।
नारदेन हि गर्भेभ्यो भयं नः समुदाहृतम्॥ २८

भवन्तो हि यथाकामं मोदन्तां विगतज्वराः।
मां च वो नाथमाश्रित्य नास्ति देवकृतं भयम्॥ २९

स तु केलिकिलो विप्रो भेदशीलश्च नारदः।
सुश्लिष्टानपि लोकेऽस्मिन् भेदयँल्लभते रतिम्॥ ३०

'वही देवताओंका पर और अपर (मोक्ष और स्वर्ग) है। वही उन स्वर्गवासियोंका स्वयम्भू ब्रह्मा है। इसीलिये मैं तुमसे कहता हूँ कि वह महान् दिव्य भूत है॥ १८॥ कंस! वही पहले भी तुम्हारी मृत्यु रहा है और इस समय भी तुम्हारे लिये प्रशंसनीय मृत्युरूप होगा, अतः तुम देवकीके गर्भका उच्छेद करनेके लिये प्रयत्न करो॥ १९॥ यह मेरा तुम्हारे ऊपर प्रेम है, जिसके लिये मैं यहाँतक आया हूँ। अच्छा, अब तुम सम्पूर्ण मनोवाञ्छित भोगोंका उपभोग करो, तुम्हारा कल्याण हो, मैं जाता हूँ'॥ २०॥ ऐसा कहकर जब नारदजी चले गये, तब कंस बहुत देरतक उनकी बातोंपर विचार करता रहा; फिर वह दाँत दिखाकर जोर-जोरसे अट्टहास करने लगा॥ २१॥ और अपने सेवकोंके सामने खड़ा हो मुसकराकर बोला—'यह नारदमुनि सर्वसाधारणमें उपहासके ही पात्र हैं, विशेष चतुर नहीं हैं॥ २२॥ मैं बैठा अथवा सोया रहूँ, असावधान या मतवाला होऊँ, किसी भी दशामें इन्द्रसहित सम्पूर्ण देवता भी मुझे डरा नहीं सकते॥ २३॥ मैं अपनी दोनों विशाल भुजाओंसे इस धरातलको क्षुब्ध कर सकता हूँ। मनुष्यलोकमें कौन ऐसा पुरुष है, जो मुझे क्षोभमें डालनेका साहस कर सके॥ २४॥ यह लो, आजसे मैं देवताओं तथा उनका अनुसरण करनेवाले मनुष्यों, पक्षियों और पशुसमूहोंका महान् संहार करूँगा॥ २५॥ अश्वरूपधारी केशी, प्रलम्ब, धेनुक, वृषभरूपधारी अरिष्ट, पूतना और कालियनागको आज्ञा दे दो कि तुम सब लोग इच्छानुसार रूप धारण करके सारी पृथ्वीपर अपनी मौजसे घूमो और जो हमारे पक्षकी निन्दा करनेवाले हों, उन सबपर प्रहार करो॥ २६-२७॥ जो प्राणी गर्भमें निवास करते हों, उनका भी पता लगा लेना चाहिये; क्योंकि नारदजीने मेरे लिये गर्भोंसे ही भय बताया है॥ २८॥ तुमलोग निश्चिन्त होकर इच्छानुसार आनन्द भोगो। मैं तुम्हारा स्वामी और संरक्षक हूँ। मेरा आश्रय लेकर तुम्हें देवताओंकी ओरसे कोई भय नहीं है॥ २९॥ नारद बाबा तो युद्ध करानेका ही खेल खेलते हैं। लोगोंमें फूट डाल देना उनका स्वभाव है। इस संसारमें जो लोग बड़े स्नेहसे भलीभाँति मिल-जुलकर रहते हैं, उनमें भी फूट डालनेमें इन्हें आनन्द आता है'॥ ३०॥

कण्डूयमानः सततं लोकानटति चञ्चलः।
घटमानो नरेन्द्राणां तन्त्रैर्वैराणि चैव हि॥ ३१

'ये बड़े चञ्चल हैं और लोगोंमें सदा संघर्ष पैदा करते हुए घूमते रहते हैं। विभिन्न उपायोंद्वारा राजाओंमें वैर बढ़ा देनेके लिये ये सर्वदा सचेष्ट रहते हैं'॥ ३१॥

एवं स विलपन्नेव वाङ्मात्रेणैव केवलम्।
विवेश कंसो भवनं दह्यमानेन चेतसा॥ ३२

इस प्रकार केवल वाणीमात्रसे प्रलाप करता हुआ कंस अपने भवनमें चला गया। उस समय उसका चित्त चिन्ताकी आगमें जल रहा था॥ ३२॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे विष्णुपर्वणि नारदागमने कंसवाक्ये प्रथमोऽध्यायः॥ १॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत विष्णुपर्वमें नारदजीका आगमन तथा कंसका वाक्यविषयक पहला अध्याय पूरा हुआ॥ १॥

द्वितीयोऽध्यायः

कंसद्वारा देवकीके गर्भके विनाशका प्रयत्न, भगवान् विष्णुका पाताललोकमें स्थित 'षड्गर्भ' नामक दैत्योंके जीवोंका आकर्षण करके उन्हें निद्रा देवीके हाथमें देना और देवकीके गर्भमें क्रमशः स्थापित करनेका आदेश देकर अन्य कर्तव्य बताना तथा कार्यसाधनके अनन्तर बढ़नेवाली उस देवीकी महिमाका उल्लेख

वैशम्पायन उवाच

सोऽज्ञापयत संरब्धः सचिवानात्मनो हि तान्।
यत्ता भवत सर्वे वै देवक्या गर्भकृन्तने॥ १

प्रथमादेव हन्तव्या गर्भास्ते सप्त एव हि।
मूलादेव तु हन्तव्यः सोऽनर्थो यत्र संशयः॥ २

देवकी च गृहे गुप्ता प्रच्छन्नैरभिरक्षिता।
स्वैरं चरतु विश्रब्धा गर्भकाले तु रक्ष्यताम्॥ ३

मासान् वै पुष्पमासादीन् गणयन्तु मम स्त्रियः।
परिणामे तु गर्भस्य शेषं ज्ञास्यामहे वयम्॥ ४

वसुदेवस्तु संरक्ष्यः स्त्रीसनाथासु भूमिषु।
अप्रमत्तैर्मम हितै रात्रावहनि चैव हि।
स्त्रीभिर्वर्षवरैश्चैव वक्तव्यं न तु कारणम्॥ ५

एष मानुष्यको यत्नो मानुषैरेव साध्यते।
श्रूयतां येन दैवं हि मद्विधैः प्रतिहन्यते॥ ६

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! क्रोधमें भरे हुए कंसने अपने हितैषी मन्त्रियोंको आज्ञा दी कि तुम सब लोग देवकीके गर्भका उच्छेद करनेके लिये उद्यत हो जाओ॥ १॥ पहले गर्भसे ही आरम्भ करके वे सातों गर्भ नष्ट कर देने चाहिये। जहाँ संशय हो, उस अनर्थका मूलसे ही उच्छेद कर देना आवश्यक है॥ २॥ देवकी अपने भवनमें गुप्त रक्षकोंद्वारा सुरक्षित रहकर अपनी इच्छाके अनुसार निर्भय विचरे; परंतु जब वह गर्भवती हो जाय, उस समय उसे विशेष नियन्त्रणमें रखना चाहिये॥ ३॥ मेरी स्त्रियाँ रजस्वलावस्थासे ही आरम्भ करके उसके गर्भधारणके मासोंकी गणना करती रहें। जब गर्भके परिपक्व होकर प्रकट होनेका समय आ जाय, तबसे जो शेष कृत्य है, उसे हमलोग स्वयं ही समझ लेंगे॥ ४॥ मेरे हितैषी सेवक रात-दिन सावधान रहकर स्त्रियोंसे सनाथ अन्तःपुरमें वसुदेवजीकी भलीभाँति रक्षा (देखभाल) करें। स्त्रियाँ और हिंजड़े भी उनपर कड़ी दृष्टि रखें, परंतु इसका कारण उन्हें नहीं बताना चाहिये॥ ५॥ मनुष्योंद्वारा किया जानेवाला यह उपाय उन्हींसे साध्य हो सकता है, परंतु मेरे-जैसे शक्तिशाली पुरुष जिस उपायसे दैवको भी प्रतिहत (निष्फल) कर देते हैं, उसे सुनो॥ ६॥

मन्त्रग्रामैः सुविहितैरौषधैश्च सुयोजितैः।
यत्नेन चानुकूलेन दैवमप्यनुलोम्यते॥ ७

वैशम्पायन उवाच

एवं स यत्नवान् कंसो देवकीगर्भकृन्तने।
भयेन मन्त्रयामास श्रुतार्थो नारदात् स वै॥ ८

एवं श्रुत्वा प्रयत्नं वै कंसस्यारिष्टसंज्ञितम्।
अन्तर्धानं गतो विष्णुश्चिन्तयामास वीर्यवान्॥ ९

सप्तेमान् देवकीगर्भान् भोजपुत्रो वधिष्यति।
अष्टमे च मया गर्भे कार्यमाधानमात्मनः॥ १०

तस्य चिन्तयतस्त्वेवं पातालमगमन्मनः।
यत्र ते गर्भशयनाः षड्गर्भा नाम दानवाः॥ ११

विक्रान्तवपुषो दीप्तास्तेऽमृतप्राशनोपमाः।
अमरप्रतिमा युद्धे पुत्रा वै कालनेमिनः॥ १२

ते ताततातं संत्यज्य हिरण्यकशिपुं पुरा।
उपासाञ्चक्रिरे दैत्याः पुरा लोकपितामहम्॥ १३

तप्यमानास्तपस्तीव्रं जटामण्डलधारिणः।
तेषां प्रीतोऽभवद् ब्रह्मा षड्गर्भाणां वरं ददौ॥ १४

ब्रह्मोवाच

भो भो दानवशार्दूलास्तपसाहं सुतोषितः।
ब्रूत वो यस्य यः कामस्तस्य तं तं करोम्यहम्॥ १५

ते तु सर्वे समानार्था दैत्या ब्रह्माणमब्रुवन्।
यदि नो भगवान् प्रीतो दीयतां नो वरो वरः॥ १६

अवध्याः स्याम भगवन् दैवतैः समहोरगैः।
शापप्रहरणैश्चैव स्वस्ति नोऽस्तु महर्षिभिः॥ १७

यक्षगन्धर्वपतिभिः सिद्धचारणमानवैः।
मा भूद् वधो नो भगवन् ददासि यदि नो वरम्॥ १८

तानुवाच ततो ब्रह्मा सुप्रीतेनान्तरात्मना।
भवद्भिर्यदिदं प्रोक्तं सर्वमेतद् भविष्यति॥ १९

भलीभाँति किये हुए मन्त्रसमूहोंके जप, अच्छी तरह उपयोगमें लाये हुए औषधोंके सेवन तथा अनुकूल प्रयत्नसे दैवको भी अपने अनुकूल बना लिया जाता है॥ ७॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन्! इस प्रकार कंस देवकीके गर्भका विनाश करनेके यत्नमें लग गया। नारदजीसे सारी बातें वह सुन चुका था, इसलिये भयसे प्रेरित होकर अपनी रक्षाके लिये मन्त्रियोंके साथ मन्त्रणा करने लगा॥ ८॥ कंसका सारा प्रयत्न जगत्के लिये उत्पातरूप ही था, उसे सुनकर अदृश्यभावसे वहाँ स्थित हुए परम पराक्रमी भगवान् विष्णुने इस प्रकार विचार किया— ॥ ९॥ 'भोजकुमार कंस देवकीके इन सात गर्भोंको मार डालेगा। अथवा आठवें गर्भमें मुझे अपने स्वरूपका आधान करना चाहिये'॥ १०॥ इस प्रकार सोचते हुए भगवान्का मन सहसा पातालकी ओर गया, जहाँ वे गर्भमें शयन करनेवाले षड्गर्भ नामक दानव विद्यमान थे॥ ११॥ उनके शरीर बल-विक्रमसे सम्पन्न थे। वे अमृतभोजी देवताओंके समान तेजस्वी थे और युद्धमें देवताओंके तुल्य पराक्रम प्रकट करते थे। वे सब-के-सब कालनेमि नामक दैत्यके पुत्र थे॥ १२॥ पहलेकी बात है, वे दैत्य अपने पिताके भी पिता हिरण्यकशिपुको छोड़कर लोकपितामह ब्रह्माजीकी उपासना करने लगे॥ १३॥ सिरपर जटाका भार धारण किये वे तीव्र तपस्यामें लग गये। तब ब्रह्माजी उन 'षड्गर्भ' नामक दैत्योंपर प्रसन्न हो गये और उन्हें वर देने लगे॥ १४॥

ब्रह्माजीने कहा—दानवकुलमें सिंहके समान पराक्रमी वीरो! मैं तुम्हारी तपस्यासे बहुत संतुष्ट हूँ। तुममेंसे जिसे जिस वस्तुकी इच्छा हो, उसे बताओ; मैं वह सब पूर्ण करूँगा॥ १५॥ उन सब दैत्योंका प्रयोजन या मनोरथ एक-सा ही था। वे ब्रह्माजीसे बोले—'भगवन्! यदि आप हमपर प्रसन्न हों तो हमें यह श्रेष्ठ वर दीजिये॥ १६॥ भगवन्! हम देवताओं तथा बड़े-बड़े नागोंसे भी अवध्य हों। जो शापद्वारा प्रहार करनेवाले हैं, उन महर्षियोंसे भी हमारा सदा कल्याण ही हो॥ १७॥ भगवन्! यदि आप हमें वर दे रहे हैं तो यक्ष, गन्धर्वपति, सिद्ध, चारण तथा मनुष्योंद्वारा हमारा वध न हो'॥ १८॥ तब ब्रह्माजीने उनके प्रति अत्यन्त प्रसन्नचित्तसे कहा—'तुमलोगोंने यह जो कुछ कहा है, वह सब पूरा होगा'॥ १९॥

षड्गर्भाणां वरं दत्त्वा स्वयम्भूस्त्रिदिवं गतः।
ततो हिरण्यकशिपुः सरोषो वाक्यमब्रवीत्॥ २०

मामुत्सृज्य वरो यस्माद् धृतो वः पद्मसम्भवात्।
तस्माद् वस्त्याजितः स्नेहः शत्रुभूतांस्त्यजाम्यहम्॥ २१

षड्गर्भा इति योऽयं वः शब्दः पित्राभिवर्धितः।
स एव वो गर्भगतान् पिता सर्वान् वधिष्यति॥ २२

षडेव देवकीगर्भे षड्गर्भा वै महासुराः।
भविष्यथ ततः कंसो गर्भस्थान् वो वधिष्यति॥ २३

वैशम्पायन उवाच

जगामाथ ततो विष्णुः पातालं यत्र तेऽसुराः।
षड्गर्भाः संयताः सन्ति जले गर्भगृहेशयाः॥ २४

संददर्श जले सुप्तान् षड्गर्भान् गर्भसंस्थितान्।
निद्रया कालरूपिण्या सर्वानन्तर्हितान् स वै॥ २५

स्वप्नरूपेण तेषां वै विष्णुर्देहानथाविशत्।
प्राणेश्वरांश्च निष्कृष्य निद्रायै प्रददौ तदा॥ २६

तां चोवाच ततो निद्रां विष्णुः सत्यपराक्रमः।
गच्छ निद्रे मयोत्सृष्टा देवकीभवनान्तिकम्॥ २७

इमान् प्राणेश्वरान् गृह्य षड्गर्भान् दानवोत्तमान्।
षड्गर्भान् देवकीगर्भे योजयस्व यथाक्रमम्॥ २८

जातेष्वेतेषु गर्भेषु नीतेषु च यमक्षयम्।
कंसस्य विफले यत्ने देवक्याः सफले श्रमे॥ २९

प्रसादं ते करिष्यामि मत्प्रभावसमं भुवि।
येन सर्वस्य लोकस्य देवि देवी भविष्यसि॥ ३०

सप्तमो देवकीगर्भो योंऽशः सौम्यो ममाग्रजः।
स संक्रामयितव्यस्ते सप्तमे मासि रोहिणीम्॥ ३१

संकर्षणात्तु गर्भस्य स तु संकर्षणो युवा।
भविष्यत्यग्रजो भ्राता मम शीतांशुदर्शनः॥ ३२

'उन 'षड्गर्भ' नामवाले दैत्योंको इस प्रकार वर देकर स्वयम्भू ब्रह्माजी ब्रह्मलोकको चले गये। उधर हिरण्यकशिपुने रोषमें भरकर उनसे कहा—॥ २०॥ 'अरे! तुमने मुझे छोड़कर कमलयोनि ब्रह्माजीसे वर ग्रहण किया है; अतः अपने प्रति मेरे स्नेहका त्याग करा दिया। अब तुमलोग मेरे शत्रुभूत हो, इसलिये तुम्हें त्याग देता हूँ॥ २१॥ जिस पिताने तुम्हें 'षड्गर्भ' नाम दिया और पाल-पोसकर बड़ा किया है, वही गर्भमें स्थित होनेपर तुम सब लोगोंका वध कर डालेगा॥ २२॥ तुम छहों 'षड्गर्भ' नामक महान् असुर देवकीके गर्भमें स्थित होओगे। तब कंस (जो तुम्हारे पिता कालनेमिका ही स्वरूप होगा) तुम गर्भस्थ बालकोंका वध कर डालेगा'॥ २३॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन्! उनकी याद आते ही भगवान् विष्णु पाताललोकमें गये, जहाँ वे 'षड्गर्भ' नामक असुर संयमनिष्ठ होकर जलके भीतर गर्भगृहमें शयन करते थे॥ २४॥ उन्होंने देखा, सब 'षड्गर्भ' नामक दैत्य कालरूपिणी निद्रासे तिरोहित होकर जलके भीतर गर्भगृहमें सो रहे हैं॥ २५॥ तब भगवान् विष्णु स्वप्नरूपसे उनके शरीरोंमें प्रविष्ट हुए और उनके जीवोंको खींचकर उन्होंने निद्राकी अधिष्ठात्री देवीके हाथमें दे दिया॥ २६॥ तत्पश्चात् सत्यपराक्रमी भगवान् विष्णु उस निद्रासे बोले—'निद्रे! तुम मेरी प्रेरणासे इन जीवोंको लेकर देवकीके घरके निकट जाओ। ये सब-के-सब 'षड्गर्भ' नामवाले श्रेष्ठ दानव हैं। इन सब षड्गर्भोंको क्रमशः देवकीके गर्भमें स्थापित करती रहो॥ २७-२८॥ जब ये गर्भ जन्म लेकर कंसद्वारा यमलोक पहुँचा दिये जायँगे, जब कंसका प्रयत्न निष्फल और देवकीका परिश्रम सफल हो जायगा, तब मैं तुमपर विशेष कृपा करूँगा। देवि! उस समयसे भूतलपर तुम्हारा प्रभाव मेरे प्रभावके समान ही हो जायगा, जिससे तुम सम्पूर्ण जगत्की आराध्या देवी बन जाओगी॥ २९-३०॥ देवकीका जो सातवाँ गर्भ होगा, वह मेरा ही सौम्य अंश होगा और मुझसे पहले अवतीर्ण होनेके कारण मेरा बड़ा भाई होगा। वह गर्भ जब सात महीनेका हो जाय, तब उस सातवें मासमें ही तुम उसे खींचकर रोहिणीदेवीके गर्भमें स्थापित कर देना॥ ३१॥ गर्भका संकर्षण होनेसे वह तरुण वीर 'संकर्षण' नामसे प्रसिद्ध होगा, चन्द्रमाके समान गौरवर्णसे सुशोभित दिखायी देगा तथा वह मेरा बड़ा भाई होगा॥ ३२॥

पतितो देवकीगर्भः सप्तमोऽयं भयादिति।
अष्टमे मयि गर्भस्थे कंसो यत्नं करिष्यति॥ ३३

या तु सा नन्दगोपस्य दयिता भुवि विश्रुता।
यशोदा नाम भद्रं ते भार्या गोपकुलोद्वहा॥ ३४

तस्यास्त्वं नवमो गर्भः कुलेऽस्माकं भविष्यसि।
नवम्यामेव संजाता कृष्णपक्षस्य वै तिथौ॥ ३५

अहं त्वभिजितो योगे निशायां यौवने स्थिते।
अर्धरात्रे करिष्यामि गर्भमोक्षं यथासुखम्॥ ३६

अष्टमस्य तु मासस्य जातावावां ततः समम्।
प्राप्स्यावो गर्भव्यत्यासं प्राप्ते कंसस्य नाशने॥ ३७

अहं यशोदां यास्यामि त्वं देवि भज देवकीम्।
आवयोर्गर्भसंयोगे कंसो गच्छतु मूढताम्॥ ३८

ततस्त्वां गृह्य चरणे शिलायां पातयिष्यति।
निरस्यमाना गगने स्थानं प्राप्स्यसि शाश्वतम्॥ ३९

मच्छवीसदृशी कृष्णा संकर्षणसमानना।
बिभ्रती विपुलौ बाहू मम बाहूपमौ दिवि॥ ४०

त्रिशिखं शूलमुद्यम्य खड्गं च कनकत्सरुम्।
पात्रीं च पूर्णां मधुना पङ्कजं च सुनिर्मलम्॥ ४१

नीलकौशेयसंवीता पीतेनोत्तरवाससा।
शशिरश्मिप्रकाशेन हारेणोरसि राजता॥ ४२

दिव्यकुण्डलपूर्णाभ्यां श्रवणाभ्यां विभूषिता।
चन्द्रसापत्नभूतेन मुखेन त्वं विराजिता॥ ४३

'उस समय लोग यही कहेंगे कि 'देवकीका सातवाँ गर्भ कंसके भयसे गिर गया।' आठवें शिशुके रूपमें जब मैं गर्भमें आऊँगा, तब कंस मुझे भी मारनेका प्रयास करेगा॥ ३३॥ देवि! तुम्हारा भला हो, इस समय भूतलपर 'यशोदा' नामसे विख्यात जो नन्दगोपकी प्यारी पत्नी हैं, वे गोपकुलकी स्वामिनी हैं॥ ३४॥ तुम उन्हींके नवम[1] गर्भके रूपमें हमारे कुलमें उत्पन्न होओगी। भाद्रपद कृष्णपक्षकी नवमी[2] तिथिको ही तुम्हारा जन्म होगा॥ ३५॥ जब रात्रि युवावस्थामें स्थित होगी, उस आधी रातके समय अभिजित् मुहूर्तके योगमें मैं सुखपूर्वक गर्भवासका त्याग करूँगा (अर्थात् माताके उदरसे बाहर निकल आऊँगा)॥ ३६॥ हम दोनों भाई-बहिन गर्भके आठवें महीनेमें जन्म लेंगे। फिर कंसके भावी विनाशका कारण प्राप्त होनेपर हम दोनों साथ ही गर्भव्यत्यासको प्राप्त होंगे (बदल दिये जायँगे)॥ ३७॥ देवि! मैं तो यशोदा माताके पास पहुँच जाऊँगा और तुम देवकीका आश्रय लेना। हम दोनोंके परिवर्तित गर्भसंयोगके विषयमें कंस मूढभावको ही प्राप्त हो (वह इस अदला-बदलीके रहस्यसे अनभिज्ञ ही रहे)॥ ३८॥ तदनन्तर कंस तुम्हारे पैर पकड़कर तुम्हें शिलापर पटक देगा, परंतु तुम उसके हाथसे निकलकर आकाशमें शाश्वत स्थान प्राप्त कर लोगी॥ ३९॥ तुम्हारी अङ्ग-कान्ति मेरी ही छविके समान श्याम होगी, परंतु मुख भैया संकर्षणके समान गौर होगा। तुम आकाशमें मेरी ही भुजाओंके समान दोनों ओर दो-दो हृष्ट-पुष्ट विशाल बाहें धारण करोगी॥ ४०॥ चार भुजाओंमें तीन शिखाओंसे युक्त शूल (त्रिशूल), सोनेकी मूठ लगी हुई तलवार, मधुसे भरा हुआ पात्र तथा अत्यन्त निर्मल कमल धारण करके सुशोभित होओगी॥ ४१॥ तुम्हारे श्रीअङ्गमें नीले रंगकी रेशमी साड़ी शोभा पायेगी और तुम रेशमी पीताम्बरकी चादर ओढ़े रहोगी। तुम्हारे वक्षःस्थलमें चन्द्रमाकी किरणोंके समान प्रकाशमान श्वेत हार शोभा दे रहा होगा॥ ४२॥ दिव्य कुण्डलोंसे मण्डित कर्णयुगल तुम्हें विभूषित करेंगे और चन्द्रमाकी भी शोभाको छीन लेनेवाले अपने मनोरम मुखसे तुम अत्यन्त शोभायमान होओगी'॥ ४३॥

१. यह नवम संख्या देवकीके आठ पुत्रोंकी अपेक्षासे कही गयी है। जान पड़ता है, श्रीकृष्णके बाद कुछ कालके लिये योगनिद्राका भी देवकीके उदरमें प्रवेश हुआ था।

२. एक ही रातमें अष्टमीके बाद नवमी लग जानेपर देवीका यशोदाके गर्भसे प्राकट्य हुआ था—ऐसा समझना चाहिये।

मुकुटेन विचित्रेण केशबन्धेन शोभिना।
भुजङ्गाभैर्भुजैर्भीमैर्भूषयन्ती दिशो दश॥ ४४

ध्वजेन शिखिबर्हेण उच्छ्रितेन विराजता।
अङ्गजेन मयूराणामङ्गदेन च भास्वता॥ ४५

कीर्णा भूतगणैर्घोरैर्मन्नियोगानुवर्तिनी।
कौमारं व्रतमास्थाय त्रिदिवं त्वं गमिष्यसि॥ ४६

तत्र त्वां शतदृक्छक्रो मत्प्रदिष्टेन कर्मणा।
अभिषेकेण दिव्येन दैवतैः सह योक्ष्यसे॥ ४७

तत्रैव त्वां भगिन्यर्थे ग्रहीष्यति स वासवः।
कुशिकस्य तु गोत्रेण कौशिकी त्वं भविष्यसि॥ ४८

स ते विन्ध्ये नगश्रेष्ठे स्थानं दास्यति शाश्वतम्।
ततः स्थानसहस्त्रैस्त्वं पृथिवीं शोभयिष्यसि॥ ४९

त्रैलोक्यचारिणी सा त्वं भुवि सत्योपयाचना।
चरिष्यसि महाभागे वरदा कामरूपिणी॥ ५०

तत्र शुम्भनिशुम्भौ द्वौ दानवौ नगचारिणौ।
तौ च कृत्वा मनसि मां सानुगौ नाशयिष्यसि॥ ५१

कृत्वानुयात्रां भूतैस्त्वं सुरामांसबलिप्रिया।
तिथौ नवम्यां पूजां त्वं प्राप्स्यसे सपशुक्रियाम्॥ ५२

ये च त्वां मत्प्रभावज्ञाः प्रणमिष्यन्ति मानवाः।
तेषां न दुर्लभं किञ्चित् पुत्रतो धनतोऽपि वा॥ ५३

कान्तारेष्ववसन्नानां मग्नानां च महार्णवे।
दस्युभिर्वा निरुद्धानां त्वं गतिः परमा नृणाम्॥ ५४

त्वां तु स्तोष्यन्ति ये भक्त्या स्तवेनानेन वै शुभे।
तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति॥ ५५

'तुम्हारे मस्तकपर विचित्र मुकुट और शोभाशाली केशबन्ध फबते होंगे। भुजङ्गोंकी-सी आभावाली अपनी भयानक भुजाओंसे तुम दसों दिशाओंकी शोभा बढ़ाओगी॥ ४४॥ मोरपंखसे विभूषित ऊँचे ध्वज तथा मयूरपिच्छके ही बने हुए प्रकाशमान अङ्गद (भुजबंद)-से तुम प्रकाशित होओगी॥ ४५॥ भयंकर भूतगणोंसे घिरकर मेरी आज्ञाके अधीन रहती हुई तुम सदा कुमारी रहनेका व्रत लेकर स्वर्गलोकको चली जाओगी॥ ४६॥ वहाँ देवताओंसहित सहस्त्र नेत्रधारी इन्द्र मेरी आज्ञाके अनुसार सब कार्योंका सम्पादन करनेके कारण (अथवा मेरी बतायी हुई पद्धतिके अनुसार) तुम्हारा दिव्य विधिसे अभिषेक करेंगे॥ ४७॥ वहीं इन्द्र अपनी बहिन बनानेके लिये तुम्हें सादर ग्रहण करेंगे। कुशिकके गोत्रसे सम्बन्ध होनेके कारण तुम 'कौशिकी' नामसे प्रसिद्ध होओगी॥ ४८॥ वे देवराज इन्द्र पर्वतोंमें श्रेष्ठ विन्ध्यगिरिपर तुम्हें शाश्वत स्थान प्रदान करेंगे। तत्पश्चात् तुम अपने सहस्त्रों स्थानोंद्वारा सारी पृथ्वीको सुशोभित करोगी॥ ४९॥ महाभागे! तुम इच्छानुसार रूप धारण करनेवाली और वरदायिनी होकर तीनों लोकोंमें विचरोगी तथा तुमसे की हुई उपयाचना (मनौती) अवश्य सफल होगी॥ ५०॥ वहाँ मुझे मनमें स्थान देकर तुम विन्ध्यपर्वतपर विचरनेवाले शुम्भ और निशुम्भ नामक दानवोंको उनके अनुयायियोंसहित नष्ट कर डालोगी॥ ५१॥ वहाँ तुम्हें मधुयुक्त एवं मांसरहित बलि (उपहार-सामग्री) प्रिय होगी और सब लोग बारम्बार तुम्हारे तीर्थकी यात्रा करके नवमी तिथिको पशुपूजन कर्मके साथ तुम्हें पूजा देंगे, जिसे तुम प्रसन्नतापूर्वक ग्रहण करोगी॥ ५२॥ मेरे प्रभावको जाननेवाले जो मनुष्य तुम्हें प्रणाम करेंगे, उनके लिये पुत्र अथवा धन आदि कोई भी वस्तु दुर्लभ नहीं होगी॥ ५३॥ कोई दुर्गम स्थानमें फँस जायँ, महासागरमें डूबने लगें अथवा लुटेरों या डाकुओंके द्वारा कैद कर लिये जायँ, उन सभी संकटग्रस्त मनुष्योंके लिये तुम सबसे बड़ा सहारा होओगी॥ ५४॥ शुभे! जो लोग भक्तिपूर्वक इस (आगे बताये जानेवाले) स्तोत्रसे तुम्हारी स्तुति करेंगे, उनके लिये न तो मैं अदृश्य रहूँगा और न वे ही मेरी दृष्टिसे ओझल रहेंगे'॥ ५५॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे विष्णुपर्वणि भारावतरणे निद्रासंविज्ञाने द्वितीयोऽध्यायः॥ २॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत विष्णुपर्वमें पृथ्वीके भारको उतारनेके प्रसंगमें भगवान्‌द्वारा निद्राको कर्तव्यका ज्ञापनविषयक दूसरा अध्याय पूरा हुआ॥ २॥

तृतीयोऽध्यायः

आर्याकी स्तुति

वैशम्पायन उवाच

आर्यास्तवं प्रवक्ष्यामि यथोक्तमृषिभिः पुरा।
नारायणीं नमस्यामि देवीं त्रिभुवनेश्वरीम्॥ १

त्वं हि सिद्धिर्धृतिः कीर्तिः श्रीर्विद्या संनतिर्मतिः।
संध्या रात्रिः प्रभा निद्रा कालरात्रिस्तथैव च॥ २

आर्या कात्यायनी देवी कौशिकी ब्रह्मचारिणी।
जननी सिद्धसेनस्य उग्रचारी महाबला॥ ३

जया च विजया चैव पुष्टिस्तुष्टिः क्षमा दया।
ज्येष्ठा यमस्य भगिनी नीलकौशेयवासिनी॥ ४

बहुरूपा विरूपा च अनेकविधिचारिणी।
विरूपाक्षी विशालाक्षी भक्तानां परिरक्षिणी॥ ५

पर्वताग्रेषु घोरेषु नदीषु च गुहासु च।
वासस्ते च महादेवि वनेषूपवनेषु च॥ ६

शबरैर्बर्बरैश्चैव पुलिन्दैश्च सुपूजिता।
मयूरपिच्छध्वजिनी लोकान् क्रमसि सर्वशः॥ ७

कुक्कुटैश्छागलैर्मेषैः सिंहैर्व्याघ्रैः समाकुला।
घण्टानिनादबहुला विन्ध्यवासिन्यभिश्रुता॥ ८

त्रिशूलपट्टिशधरा सूर्यचन्द्रपताकिनी।
नवमी कृष्णपक्षस्य शुक्लस्यैकादशी तथा॥ ९

भगिनी बलदेवस्य रजनी कलहप्रिया।
आवासः सर्वभूतानां निष्ठा च परमा गतिः॥ १०

नन्दगोपसुता चैव देवानां विजयावहा।
चीरवासाः सुवासाश्च रौद्री संध्याचरी निशा॥ ११

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! पूर्वकालमें जैसा ऋषियोंने बताया है, उसके अनुसार मैं आर्या-देवीकी स्तुतिका वर्णन करता हूँ। मैं तीनों लोकोंकी अधीश्वरी नारायणीदेवीको नमस्कार करता हूँ॥ १॥ देवि! तुम्हीं सिद्धि, धृति, कीर्ति, श्री, विद्या, संनति, मति, संध्या, रात्रि, प्रभा, निद्रा और कालरात्रि हो॥ २॥ आर्या, कात्यायनी, देवी, कौशिकी, ब्रह्मचारिणी, सिद्धसेन (कुमार कार्तिकेय)-की जननी, उग्रचारिणी तथा महान् बलसे सम्पन्न हो॥ ३॥ जया, विजया, पुष्टि, तुष्टि, क्षमा, दया, यमकी ज्येष्ठ बहिन तथा नीले रंगकी रेशमी साड़ी पहननेवाली हो॥ ४॥ तुम्हारे बहुत-से रूप हैं, इसलिये तुम बहुरूपा हो। विकराल रूप धारण करनेके कारण तुम विरूपा हो। अनेक प्रकारकी विधियोंको आचरणमें लानेवाली हो। तीन होनेके कारण तुम्हारे नेत्र विरूप प्रतीत होते हैं, इसलिये तुम विरूपाक्षी हो। तुम्हारे नेत्र बड़े-बड़े हैं, इस कारण विशालाक्षी हो। तुम सदा अपने भक्तोंकी रक्षा करनेवाली हो॥ ५॥ महादेवि! पर्वतोंके घोर शिखरोंपर, नदियोंमें, गुफाओंमें तथा वनों और उपवनोंमें भी तुम्हारा निवास है॥ ६॥ शबरों, बर्बरों और पुलिन्दोंने भी तुम्हारा अच्छी तरहसे पूजन किया है। तुम मोरपङ्खकी ध्वजासे सुशोभित हो और क्रमशः सभी लोकोंमें विचरती रहती हो॥ ७॥ मुर्गे, बकरे, भेंड़, सिंह तथा व्याघ्र आदि पशु-पक्षी तुम्हें सदा घेरे रहते हैं। तुम्हारे पास घण्टाकी ध्वनि अधिक होती है। तुम 'विन्ध्यवासिनी' नामसे विख्यात हो॥ ८॥ देवि! तुम त्रिशूल और पट्टिश धारण करनेवाली हो। तुम्हारी पताकापर सूर्य और चन्द्रके चिह्न हैं। तुम प्रत्येक मासके कृष्णपक्षकी नवमी और शुक्लपक्षकी एकादशी हो॥ ९॥ बलदेवजीकी बहिन हो। रात्रि तुम्हारा स्वरूप है। कलह तुम्हें प्रिय लगता है। तुम सम्पूर्ण भूतोंका आवासस्थान, मृत्यु तथा परम गति हो॥ १०॥ तुम नन्दगोपकी पुत्री, देवताओंको विजय दिलानेवाली, चीर वस्त्रधारिणी, सुवासिनी, रौद्री, संध्याकालमें विचरनेवाली और रात्रि हो॥ ११॥

प्रकीर्णकेशी मृत्युश्च सुरामांसबलिप्रिया।
लक्ष्मीरलक्ष्मीरूपेण दानवानां वधाय च॥ १२

सावित्री चापि देवानां माता भूतगणस्य च।
कन्यानां ब्रह्मचर्यं त्वं सौभाग्यं प्रमदासु च॥ १३

अन्तर्वेदी च यज्ञानामृत्विजां चैव दक्षिणा।
कर्षकाणां च सीतेति भूतानां धरणीति च॥ १४

सिद्धिः सांयात्रिकाणां तु वेला त्वं सागरस्य च।
यक्षाणां प्रथमा यक्षी नागानां सुरसेति च॥ १५

ब्रह्मवादिन्यथो दीक्षा शोभा च परमा तथा।
ज्योतिषां त्वं प्रभा देवि नक्षत्राणां च रोहिणी॥ १६

राजद्वारेषु तीर्थेषु नदीनां सङ्गमेषु च।
पूर्णा च पूर्णिमा चन्द्रे कृत्तिवासा इति स्मृता॥ १७

सरस्वती च वाल्मीके स्मृतिर्द्वैपायने तथा।
ऋषीणां धर्मबुद्धिस्तु देवानां मानसी तथा॥ १८

सुरा देवी तु भूतेषु स्तूयसे त्वं स्वकर्मभिः।
इन्द्रस्य चारुदृष्टिस्त्वं सहस्रनयनेति च॥ १९

तापसानां च देवी त्वमरणी चाग्निहोत्रिणाम्।
क्षुधा च सर्वभूतानां तृप्तिस्त्वं दैवतेषु च॥ २०

स्वाहा तृप्तिर्धृतिर्मेधा वसूनां त्वं वसूमती।
आशा त्वं मानुषाणां च पुष्टिश्च कृतकर्मणाम्॥ २१

दिशश्च विदिशश्चैव तथा ह्यग्निशिखा प्रभा।
शकुनी पूतना त्वं च रेवती च सुदारुणा॥ २२

निद्रापि सर्वभूतानां मोहिनी क्षत्रिया तथा।
विद्यानां ब्रह्मविद्या त्वमोङ्कारोऽथ वषट् तथा॥ २३

नारीणां पार्वतीं च त्वां पौराणीमृषयो विदुः।
अरुन्धती च साध्वीनां प्रजापतिवचो यथा॥ २४

पर्यायनामभिर्दिव्यैरिन्द्राणी चेति विश्रुता।
त्वया व्याप्तमिदं सर्वं जगत् स्थावरजङ्गमम्॥ २५

तुम्हारे केश बिखरे हुए हैं। तुम्हीं प्राणियोंकी मृत्यु हो। मधुसे युक्त तथा मांससे रहित बलि तुम्हें प्रिय है। तुम्हीं लक्ष्मी हो तथा तुम्हीं दानवोंका वध करनेके लिये अलक्ष्मी बन जाती हो॥ १२॥ तुम्हीं सावित्री, देवमाता अदिति तथा समस्त भूतोंकी जननी हो। कन्याओंका ब्रह्मचर्य तुम्हीं हो और विवाहिता युवतियोंका सौभाग्य भी तुम्हीं हो॥ १३॥ तुम्हीं यज्ञोंकी अन्तर्वेदी तथा ऋत्विजोंकी दक्षिणा हो। किसानोंकी सीता (हल जोतनेसे उभरी हुई रेखा) तथा समस्त प्राणियोंको धारण करनेवाली धरणी भी तुम्हीं हो॥ १४॥ नौका या जहाजसे यात्रा करनेवाले व्यापारियोंको प्राप्त होनेवाली सिद्धि भी तुम्हीं हो। तुम्हीं समुद्रकी तट-भूमि, यक्षोंकी प्रथम यक्षी (कुबेरकी माता) तथा नागोंकी जननी सुरसा हो॥ १५॥ देवि! तुम ब्रह्मवादिनी दीक्षा तथा परम शोभा हो। ज्योतिर्मय ग्रहों एवं तारिकाओंकी प्रभा हो तथा नक्षत्रोंमें रोहिणी हो॥ १६॥ राजद्वारों, तीर्थों तथा नदियोंके संगमोंमें तुम पूर्ण लक्ष्मीरूपसे स्थित हो। तुम्हीं चन्द्रमामें पूर्णिमारूपसे विराजमान होती हो तथा तुम्हीं कृत्तिवासा हो॥ १७॥ तुम महर्षि वाल्मीकिमें सरस्वतीरूपसे, श्रीकृष्णद्वैपायन व्यासमें स्मृतिरूपसे तथा ऋषि-मुनियोंमें धर्म-बुद्धिरूपसे स्थित हो। देवताओंमें सत्यसंकल्पात्मक चित्तवृत्ति भी तुम्हीं हो॥ १८॥ तुम समस्त भूतोंमें सुरा देवी हो और अपने कर्मोंद्वारा सदा प्रशंसित होती हो। इन्द्रकी मनोहर दृष्टि भी तुम्हीं हो; सहस्रों नेत्रोंसे युक्त होनेके कारण 'सहस्रनयना' नामसे तुम्हारी ख्याति है॥ १९॥ तुम तपस्वी मुनियोंकी देवी हो। अग्निहोत्र करनेवाले ब्राह्मणोंकी अरणी हो। समस्त प्राणियोंकी क्षुधा तथा देवताओंमें सदा बनी रहनेवाली तृप्ति हो॥ २०॥ तुम्हीं स्वाहा, तृप्ति, धृति और मेधा हो। वसुओंकी वसुमती भी तुम्हीं हो। तुम्हीं मनुष्योंकी आशा तथा कृतकृत्य पुरुषोंकी पुष्टि हो॥ २१॥ तुम्हीं दिशा, विदिशा, अग्निशिखा, प्रभा, शकुनी, पूतना तथा अत्यन्त दारुण रेवती हो॥ २२॥ समस्त प्राणियोंको मोहमें डालनेवाली निद्रा भी तुम्हीं हो। तुम क्षत्रिया हो, विद्याओंमें ब्रह्मविद्या हो तथा तुम्हीं ॐकार एवं वषट्कार हो॥ २३॥ ऋषि तुम्हें नारियोंमें पुराण-प्रसिद्ध पार्वतीदेवीके रूपमें जानते हैं। तुम साध्वी स्त्रियोंमें अरुन्धती हो, जैसा कि प्रजापतिका कथन है॥ २४॥ तुम अपने पर्यायवाची दिव्य नामोंद्वारा इन्द्राणीके रूपमें विख्यात हो। तुमने इस समस्त चराचर जगत्को व्याप्त कर रखा है॥ २५॥

संग्रामेषु च सर्वेषु अग्निप्रज्वलितेषु च।
नदीतीरेषु चौरेषु कान्तारेषु भयेषु च॥ २६

प्रवासे राजबन्धे च शत्रूणां च प्रमर्दने।
प्राणात्ययेषु सर्वेषु त्वं हि रक्षा न संशयः॥ २७

त्वयि मे हृदयं देवि त्वयि चित्तं मनस्त्वयि।
रक्ष मां सर्वपापेभ्यः प्रसादं कर्तुमर्हसि॥ २८

इमं यः सुस्तवं दिव्यमिति व्यासप्रकल्पितम्।
यः पठेत् प्रातरुत्थाय शुचिः प्रयतमानसः॥ २९

त्रिभिर्मासैः काङ्क्षितं च फलं वै सम्प्रयच्छसि।
षड्भिर्मासैर्वरिष्ठं तु वरमेकं प्रयच्छसि॥ ३०

अर्चिता तु त्रिभिर्मासैर्दिव्यं चक्षुः प्रयच्छसि।
संवत्सरेण सिद्धिं तु यथाकामं प्रयच्छसि॥ ३१

सत्यं ब्रह्म च दिव्यं च द्वैपायनवचो यथा।
नृणां बन्धं वधं घोरं पुत्रनाशं धनक्षयम्॥ ३२

व्याधिमृत्युभयं चैव पूजिता शमयिष्यसि।
भविष्यसि महाभागे वरदा कामरूपिणी॥ ३३

मोहयित्वा च तं कंसमेका त्वं भोक्ष्यसे जगत्।
अहमप्यात्मनो वृत्तिं विधास्ये गोषु गोपवत्॥ ३४

स्ववृद्ध्यर्थमहं चैव करिष्ये कंसगोपताम्।
एवं तां स समादिश्य गतोऽन्तर्धानमीश्वरः॥ ३५

सा चापि तं नमस्कृत्य तथास्त्विति च निश्चिता॥ ३६

यश्चैतत् पठते स्तोत्रं शृणुयाद् वाप्यभीक्ष्णशः।
सर्वार्थसिद्धिं लभते नरो नास्त्यत्र संशयः॥ ३७

समस्त संग्रामोंमें, आगसे जलते हुए घरोंमें, नदीके तटोंपर, चोरों और लुटेरोंके दलोंमें, दुर्गम स्थानोंमें, भयके सभी अवसरोंमें, परदेशमें, राजाके द्वारा बन्धन प्राप्त होनेपर, शत्रुओंका मर्दन करते समय एवं सभी प्राणसंकटकी घड़ियोंमें तुम्हीं सबकी रक्षा करनेवाली हो, इसमें संशय नहीं है॥ २६-२७॥ देवि! मेरा हृदय तुममें लगा हुआ है। मेरा चित्त और मन भी तुम्हारे ही चिन्तन एवं मननमें तत्पर है। तुम समस्त पापोंसे मेरी रक्षा करो। तुम्हें मुझपर कृपा करनी चाहिये॥ २८॥ जो मनुष्य मेरे (विष्णु)-द्वारा किये गये तथा व्यासजीके द्वारा पद्यमें आबद्ध किये हुए इस सुन्दर दिव्य स्तोत्रका प्रात:काल उठकर शुद्धभावसे संयतचित्त होकर पाठ करता है, उसे तुम तीन ही महीनोंमें मनोवाञ्छित फल प्रदान कर देती हो तथा जो छः महीनोंतक लगातार पाठ करता रहे, उसे कोई एक विशिष्ट वर देती हो॥ २९-३०॥ तीन महीनोंतक पूजित होनेपर तुम उपासकको दिव्य दृष्टि प्रदान करती हो और एक वर्षतक आराधना करनेपर उसे उसकी इच्छाके अनुसार सिद्धि देती हो॥ ३१॥ श्रीकृष्णद्वैपायन व्यासजीने जैसा बताया है, उसके अनुसार तुम्हीं सत्य एवं दिव्य ब्रह्म हो। महाभागे! तुम पूजित होनेपर मनुष्योंके बन्धन, भयानक वध, पुत्र और धनके नाश तथा रोग और मृत्युका भय दूर कर दोगी और इच्छानुसार रूप धारण करके उपासकोंके लिये वरदायिनी होओगी॥ ३२-३३॥ इतना ही नहीं, तुम उस कंसको मोहमें डालकर अकेली ही सम्पूर्ण जगत्का उपभोग करोगी। मैं भी व्रजमें गौओंके बीचमें रहकर गोपके समान ही अपना व्यवहार बनाऊँगा॥ ३४॥ मैं अपनी पुष्टिके लिये कंसके गौओंकी चरवाही करूँगा। योगनिद्राको ऐसा आदेश देकर भगवान् विष्णु अन्तर्धान हो गये॥ ३५॥ उस समय उस देवीने भी उन्हें नमस्कार करके 'बहुत अच्छा' कहकर उनकी आज्ञाके पालन करनेका निश्चित विचार कर लिया॥ ३६॥ जो मनुष्य बारम्बार इस स्तोत्रका पाठ अथवा श्रवण करता है, वह अपने सम्पूर्ण मनोरथोंकी सिद्धि प्राप्त कर लेता है, इसमें कोई संशय नहीं है॥ ३७॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे विष्णुपर्वणि स्वप्नगर्भविधाने आर्यास्तुतौ तृतीयोऽध्यायः॥ ३॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत विष्णुपर्वमें स्वप्नगर्भ-विधान तथा आर्यादेवीकी स्तुतिविषयक तीसरा अध्याय पूरा हुआ॥ ३॥

चतुर्थोऽध्यायः

कंसद्वारा देवकीके नवजात शिशुओंकी हत्या, योगमायाद्वारा सातवें गर्भका संकर्षण, श्रीकृष्णका प्राकट्य और नन्दभवनमें प्रवेश, कंसद्वारा नन्दकन्याको मारनेका प्रयत्न और उसका दिव्य रूपमें दर्शन देना, कंसद्वारा क्षमा-प्रार्थना और देवकीद्वारा उसे क्षमा-दान

वैशम्पायन उवाच

कृते गर्भविधाने तु देवकी देवतोपमा।
जग्राह सप्त तान् गर्भान् यथावत् समुदाहृतान्॥ १

षड्गर्भान् निस्सृतान् कंसस्ताञ्जघान शिलातले।
आपन्नं सप्तमं गर्भं सा निनायाथ रोहिणीम्॥ २

अर्धरात्रे स्थितं गर्भं पातयन्ती रजस्वला।
निद्रया सहसाऽऽविष्टा पपात धरणीतले॥ ३

सा स्वप्नमिव तं दृष्ट्वा गर्भं निःसृतमात्मनः।
अपश्यन्ती च तं गर्भं मुहूर्तं व्यथिताभवत्॥ ४

तामाह निद्रा संविग्नां नैशे तमसि रोहिणीम्।
रोहिणीमिव सोमस्य वसुदेवस्य धीमतः॥ ५

कर्षणेनास्य गर्भस्य स्वगर्भे चाहितस्य वै।
संकर्षणो नाम सुतः शुभे तव भविष्यति॥ ६

सा तं पुत्रमवाप्यैवं हृष्टा किञ्चिदवाङ्मुखी।
विवेश रोहिणी वेश्म सुप्रभा रोहिणी यथा॥ ७

तस्य गर्भस्य मार्गेण गर्भमाधत्त देवकी।
यदर्थं सप्त ते गर्भाः कंसेन विनिपातिताः॥ ८

तं तु गर्भं प्रयत्नेन ररक्षुस्तस्य मन्त्रिणः।
सोऽप्यत्र गर्भवसतौ वसत्यात्मेच्छया हरिः॥ ९

यशोदापि समाधत्त गर्भं तदहरेव तु।
विष्णोः शरीरजां निद्रां विष्णुनिर्देशकारिणीम्॥ १०

गर्भकाले त्वसम्पूर्णे अष्टमे मासि ते स्त्रियौ।
देवकी च यशोदा च सुषुवाते समं तदा॥ ११

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! तदनन्तर पतिद्वारा गर्भाधान किये जानेपर देवताके समान तेजस्विनी देवकीने पहले बताये हुए सात गर्भोंको क्रमशः यथोचितरूपसे ग्रहण किया॥ १॥ पहले जो छः गर्भ प्रकट हुए, उन सबको कंसने पत्थरपर पटककर मार डाला। जब सातवाँ गर्भ प्राप्त हुआ, तब योगमायाने उसे रोहिणीके उदरमें स्थापित कर दिया॥ २॥ रजस्वला रोहिणी आधी रातके समय अपने भीतर स्थापित हुए उस गर्भको गिरानेकी चेष्टा करने लगी; परंतु सहसा निद्रासे आविष्ट होकर वह स्वयं पृथ्वीपर गिर पड़ी॥ ३॥ उसने अपने पेटसे निकले हुए उस गर्भको स्वप्नकी भाँति देखकर फिर नहीं देखा (क्योंकि योगमायाने उसे अदृश्य कर दिया था); इससे दो घड़ीतक उसके मनमें बड़ी व्यथा हुई॥ ४॥ रात्रिके अन्धकारमें बुद्धिमान् वसुदेवकी पत्नी रोहिणी चन्द्रमाकी प्यारी भार्या रोहिणीके समान दिखायी देती थी। वह उस गर्भके लिये उद्विग्न हो रही थी। उस समय निद्राने उससे कहा— ॥ ५॥ 'शुभे! तुम्हारे उदरमें स्थापित हुआ जो यह गर्भ है, इसका आकर्षण हुआ है, इस कारण यह पुत्र संकर्षण नामसे प्रसिद्ध होगा'॥ ६॥ इस प्रकार उस पुत्रको पाकर रोहिणी मन-ही-मन प्रसन्न हुई; किंतु लज्जासे उसका मुख कुछ नीचेको झुक गया। फिर तो वह उत्तम प्रभासे युक्त रोहिणीके समान अपने भवनके भीतर चली गयी॥ ७॥ उधर देवकीके उस सातवें गर्भकी खोज होने लगी; इतनेहीमें उसने आठवाँ गर्भ धारण किया, जिसके लिये कंसने उसके पहलेके सात गर्भ मार गिराये थे॥ ८॥ कंसके मन्त्री उस आठवें गर्भकी रक्षामें यत्नपूर्वक लग गये। इधर भगवान् विष्णु भी स्वेच्छासे ही उस गर्भमें निवास करने लगे॥ ९॥ उसी दिन (गोकुलमें) यशोदाने भी भगवान् विष्णुकी आज्ञाका पालन करनेवाली तथा उन्हींके शरीरसे प्रकट हुई योगनिद्राको अपने गर्भमें धारण किया॥ १०॥ गर्भका समय पूर्ण होनेसे पहले ही आठवें मासमें उन दोनों स्त्रियों—देवकी और यशोदाने प्रायः एक ही साथ प्रसव किया॥ ११॥

यामेव रजनीं कृष्णो जज्ञे वृष्णिकुलोद्वहः।
तामेव रजनीं कन्यां यशोदापि व्यजायत॥ १२

नन्दगोपस्य भार्यैका वसुदेवस्य चापरा।
तुल्यकालं च गर्भिण्यौ यशोदा देवकी तथा॥ १३

देवक्यजनयद् विष्णुं यशोदा तां तु दारिकाम्।
मुहूर्तेऽभिजिति प्राप्ते सार्धरात्रे विभूषिते॥ १४

सागराः समकम्पन्त चेलुश्च धरणीधराः।
जज्वलुश्चाग्नयः शान्ता जायमाने जनार्दने॥ १५

शिवाश्च प्रववुर्वाताः प्रशान्तमभवद् रजः।
ज्योतींष्यतिव्यकाशन्त जायमाने जनार्दने॥ १६

अभिजिन्नाम नक्षत्रं जयन्ती नाम शर्वरी।
मुहूर्तो विजयो नाम यत्र जातो जनार्दनः॥ १७

अव्यक्तः शाश्वतः सूक्ष्मो हरिर्नारायणः प्रभुः।
जायमानो हि भगवान्नयनैर्मोहयन् प्रभुः॥ १८

अनाहता दुन्दुभयो देवानां प्राणदन् दिवि।
आकाशात् पुष्पवृष्टिं च ववर्ष त्रिदशेश्वरः॥ १९

गीर्भिर्मङ्गलयुक्ताभिः स्तुवन्तो मधुसूदनम्।
महर्षयः सगन्धर्वा उपतस्थुः सहाप्सराः॥ २०

जायमाने हृषीकेशे प्रहृष्टमभवज्जगत्।
इन्द्रश्च त्रिदशैः सार्धं तुष्टाव मधुसूदनम्॥ २१

वसुदेवश्च तं रात्रौ जातं पुत्रमधोक्षजम्।
श्रीवत्सलक्षणं दृष्ट्वा युतं दिव्यैश्च लक्षणैः।
उवाच वसुदेवस्तु रूपं संहर वै प्रभो॥ २२

भीतोऽहं देव कंसस्य तस्मादेवं ब्रवीम्यहम्।
मम पुत्रा हतास्तेन तव ज्येष्ठाम्बुजेक्षण॥ २३

वैशम्पायन उवाच

वसुदेववचः श्रुत्वा रूपं चाहरदच्युतः।
अनुज्ञाप्य पितृत्वेन नन्दगोपगृहं नय॥ २४

वृष्णिकुलका भार वहन करनेवाले भगवान् श्रीकृष्ण जिस रातमें प्रकट हुए, उसी रातमें यशोदाने भी एक कन्याको जन्म दिया॥ १२॥ एक यशोदा नन्दगोपकी भार्या थी और दूसरी देवकी वसुदेवकी। वे दोनों प्रायः एक ही समयमें गर्भवती हुईं॥ १३॥ (आठवें मासमें) आधी रातके समय सुन्दर अभिजित् मुहूर्तका योग प्राप्त होनेपर देवकीने भगवान् विष्णुको पुत्ररूपसे जन्म दिया और यशोदाने उस कन्याको॥ १४॥ भगवान् श्रीकृष्णके जन्म (अवतार) ग्रहण करते समय समुद्रोंमें ज्वार-सा उठने लगा। पृथ्वीको धारण करनेवाले शेष आदि विचलित हो उठे और बुझी हुई अग्नियाँ अपने-आप प्रज्वलित हो गयीं॥ १५॥ श्रीकृष्णके अवतार लेते समय शीतल मन्द सुखदायिनी हवा चलने लगी। उड़ती हुई धूल शान्त हो गयी तथा ग्रह और नक्षत्र अत्यन्त प्रकाशित होने लगे॥ १६॥ जब भगवान् श्रीकृष्ण प्रकट हुए, उस समय अभिजित् नामक मुहूर्त था, रोहिणी नक्षत्रका योग होनेसे अष्टमीकी वह रात जयन्ती कहलाती थी और विजय नामक विशिष्ट मुहूर्त व्यतीत हो रहा था॥ १७॥ अव्यक्त सनातन सूक्ष्मस्वरूप पापहारी तथा सर्वसमर्थ भगवान् नारायणने प्रकट होते ही अपने नेत्रोंसे सबका मन मोह लिया॥ १८॥ स्वर्गलोकमें बिना बजाये ही देवताओंकी दुन्दुभियाँ बज उठीं। देवेश्वर इन्द्र आकाशसे फूलोंकी वर्षा करने लगे॥ १९॥ गन्धर्व और अप्सराओंसहित महर्षिगण अपने मङ्गलमय वचनोंद्वारा भगवान् मधुसूदनकी स्तुति करते हुए उनकी सेवामें उपस्थित हुए॥ २०॥ भगवान् श्रीकृष्णका प्राकट्य होते ही सम्पूर्ण जगत्में हर्षोल्लास छा गया। देवताओंके साथ इन्द्रने उन भगवान् मधुसूदनकी स्तुति की॥ २१॥ वसुदेवने भी रात्रिमें प्रकट हुए अपने पुत्ररूप भगवान् अधोक्षजका स्तवन किया। उन्हें श्रीवत्सके चिह्न और दिव्य लक्षणोंसे सम्पन्न देखकर वसुदेवने कहा—'प्रभो! आप अपने स्वरूपको समेट लीजिये॥ २२॥ देव! मैं कंसके भयसे डरा हुआ हूँ, इसीलिये ऐसी बात कहता हूँ। कमलनयन! उसने मेरे बहुत-से पुत्र मार डाले हैं, जो तुमसे जेठे थे'॥ २३॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! वसुदेवका यह वचन सुनकर भगवान् अच्युतने पिता होनेके कारण उनकी आज्ञा स्वीकार कर ली और उनसे कहा, 'आप मुझे नन्दगोपके घर पहुँचा दीजिये (तथा उनकी नवजात कन्याको यहाँ उठा लाइये)।' ऐसा कहकर उन्होंने अपने चतुर्भुजरूपका उपसंहार कर लिया॥ २४॥

वसुदेवस्तु संगृह्य दारकं क्षिप्रमेव च।
यशोदाया गृहं रात्रौ विवेश सुतवत्सलः॥ २५

यशोदायास्त्वविज्ञातस्तत्र निक्षिप्य दारकम्।
प्रगृह्य दारिकां चैव देवकीशयने न्यसत्॥ २६

परिवर्ते कृते ताभ्यां गर्भाभ्यां भयविक्लवः।
वसुदेवः कृतार्थो वै निर्जगाम निवेशनात्॥ २७

उग्रसेनसुतायाथ कंसायानकदुन्दुभिः।
निवेदयामास तदा तां कन्यां वरवर्णिनीम्॥ २८

तच्छ्रुत्वा त्वरितः कंसो रक्षिभिः सह वेगिभिः।
आजगाम गृहद्वारं वसुदेवस्य वीर्यवान्॥ २९

स तत्र त्वरितं द्वारि किं जातमिति चाब्रवीत्।
दीयतां शीघ्रमित्येवं वाग्भिः समभितर्जयत्॥ ३०

ततो हाहाकृताः सर्वा देवकीभवने स्त्रियः।
उवाच देवकी दीना बाष्पगद्गदया गिरा॥ ३१

दारिका तु प्रजातेति कंसं समभियाचती।
श्रीमन्तो मे हताः सप्त पुत्रगर्भास्त्वया विभो॥ ३२

दारिकेयं हतैवैषा पश्यस्व यदि मन्यसे।
दृष्ट्वा कंसस्तु तां कन्यामाकृष्यत मुदा युतः॥ ३३

हतैवैषा यदा कन्या जातेत्युक्त्वा वृथा मतिः।
सा गर्भशयने क्लिष्टा गर्भाम्बुक्लिन्नमूर्धजा॥ ३४

कंसस्य पुरतो न्यस्ता पृथिव्यां पृथिवीसमा।
स चैनां गृह्य पुरुषः समाविध्यावधूय च॥ ३५

उद्यच्छन्नेव सहसा शिलायां समपोथयत्।
सावधूता शिलापृष्ठेऽनिष्पिष्टा दिवमुत्पतत्॥ ३६

हित्वा गर्भतनुं सा तु सहसा मुक्तमूर्धजा।
जगाम कंसमादिश्य दिव्यस्त्रगनुलेपना॥ ३७

तब पुत्रवत्सल वसुदेव शीघ्र ही उस बालकको गोदमें लेकर रातके समय यशोदाके घरमें घुस गये॥ २५॥ यशोदाको उनके आनेका कुछ पता न चला। वहाँ उन्होंने अपने बालकको रख दिया और उस कन्याको लेकर अपने निवासस्थानमें आनेके बाद उसे देवकीकी शय्यापर सुला दिया॥ २६॥ इस प्रकार उन दोनों नवजात बालकोंकी अदला-बदली करके कृतार्थ हुए वसुदेवजी भयसे व्याकुल हो उस घरसे बाहर निकल गये॥ २७॥ आनकदुन्दुभि नामसे प्रसिद्ध वसुदेवने उग्रसेनपुत्र कंसके पास जाकर उसे अपनी सुन्दरी कन्याके जन्मका समाचार निवेदन किया॥ २८॥ यह सुनकर पराक्रमी कंस बड़ी उतावलीके साथ पैर बढ़ाता हुआ वेगशाली रक्षकोंको साथ लिये वसुदेवके गृहके द्वारपर आया॥ २९॥ वहाँ द्वारपर पहुँचते ही उसने तुरंत पूछा—'कौन-सा बच्चा पैदा हुआ है? उसे शीघ्र मेरे हवाले कर दो' ऐसी बातें कहकर वह वहाँ जोर-जोरसे गर्जन-तर्जन करने लगा॥ ३०॥ तब देवकीके घरमें एकत्रित हुई सारी स्त्रियाँ हाहाकार करने लगीं। देवकीने अत्यन्त दीन होकर अश्रुगद्गद वाणीमें कहा— ॥ ३१॥ 'प्रभो! यह तो कन्या पैदा हुई है', ऐसा कहकर वह कंससे उसके लिये याचना करती हुई बोली—'भैया! तुमने मेरे सात तेजस्वी पुत्र जो अभी गर्भावस्थामें ही थे, मार डाले हैं॥ ३२॥ यह तो कन्या है। यह बेचारी आप ही मरी हुई है, देखो! यदि समझमें आये तो मेरी बात मान लो (यह कन्या मुझे दे दो)।' कंस उस कन्याको देखकर उसकी ओर आकृष्ट हुआ और मन-ही-मन प्रसन्नताका अनुभव करने लगा॥ ३३॥

उसने कहा—'जब यह कन्या मरी ही हुई है, तब इसे पैदा हुई कहकर इसकी ओर मन चलाना व्यर्थ है।' वह कन्या अभी गर्भशय्यापर क्लेशपूर्वक लेटी हुई थी। अभी उसके केश गर्भस्थ जलसे भीगे हुए थे। उसी अवस्थामें वह कंसके आगे पृथ्वीपर रख दी गयी। उस समय वह पृथ्वीके समान ही जान पड़ती थी। उस दुरात्मा पुरुष कंसने उसे पकड़कर घुमाया और तुच्छ मानकर ऊपरसे ही सहसा शिलापर दे मारा। वह शिलापृष्ठपर फेंकी गयी, परंतु उसपर चूर-चूर होनेसे पहले ही आकाशमें उड़ गयी। उस गर्भदेहको त्यागकर कंसको ललकारती हुई वह सहसा आकाशमें जा पहुँची। उस समय उसके लम्बे-लम्बे केश खुले हुए थे। दिव्य फूलोंके हार और अनुलेपन उसकी शोभा बढ़ाते थे॥ ३४—३७॥

हारशोभितसर्वाङ्गी मुकुटोज्ज्वलभूषिता।
कन्यैव साभवन्नित्यं दिव्या देवैरभिष्टुता॥ ३८

नीलपीताम्बरधरा गजकुम्भोपमस्तनी।
रथविस्तीर्णजघना चन्द्रवक्त्रा चतुर्भुजा॥ ३९

विद्युद्विस्पष्टवर्णाभा बालार्कसदृशेक्षणा।
पयोधरस्तनवती संध्येव सपयोधरा॥ ४०

सा वै निशि तमोग्रस्ते बभौ भूतगणाकुले।
नृत्यती हसती चैव विपरीतेन भास्वती॥ ४१

विहायसि गता रौद्रा पपौ पानमनुत्तमम्।
जहास च महाहासं कंसं च रुषिताब्रवीत्॥ ४२

कंस कंसात्मनाशाय यदहं घातिता त्वया।
सहसा च समुत्क्षिप्य शिलायामभिपोथिता॥ ४३

तस्मात् तवान्तकालेऽहं कृष्यमाणस्य शत्रुणा।
पाटयित्वा करैर्देहमुष्णं पास्यामि शोणितम्॥ ४४

एवमुक्त्वा वचो घोरं सा यथेष्टेन वर्त्मना।
खं सा देवालयं देवी सगणा विचचार ह॥ ४५

सा कन्या ववृधे तत्र वृष्णिसंघसुपूजिता।
पुत्रवत् पाल्यमाना सा वसुदेवाज्ञया तदा॥ ४६

विद्धि चैनामथोत्पन्नामंशाद् देवीं प्रजापतेः।
एकानंशां योगकन्यां रक्षार्थं केशवस्य तु॥ ४७

हारोंसे उसके समस्त अङ्गोंकी शोभा बढ़ गयी थी। मस्तकपर उज्ज्वल मुकुटसे विभूषित हो वह देवी सदाके लिये कन्या (कुमारी) ही रह गयी। उसकी आकृति दिव्य थी और सब देवता उसकी स्तुति करते थे॥ ३८॥ वह अपने अङ्गोंपर नील और पीत वस्त्र धारण किये हुए थी। उसके उन्नत उरोज हाथीके कुम्भस्थलके समान जान पड़ते थे। उसका जघनप्रदेश रथके समान विस्तृत था। मुख चन्द्रमाके सदृश मनोरम था। वह चार भुजाओंसे सुशोभित थी॥ ३९॥ उसकी अङ्गकान्ति विद्युत्के समान प्रकाशित हो रही थी। दोनों नेत्र प्रभातकालके सूर्यकी भाँति लाल थे। मेघोंके समान उन्नत उरोजोंवाली वह देवी बादलोंसे युक्त संध्याके समान सुशोभित हो रही थी॥ ४०॥ अन्धकारसे आच्छन्न हुई रात्रिके समय जब कि भूतोंके समुदाय सब ओर भरे हुए थे, वह दीप्तिमती देवी नाचती, हँसती और चारों ओर उछलती-कूदती हुई अद्भुत शोभा पा रही थी॥ ४१॥ उसका स्वरूप बड़ा ही भयंकर था। वह आकाशमें पहुँचकर परम उत्तम मधुका पान तथा बड़े जोरसे अट्टहास करने लगी। फिर रोषमें भरकर कंससे बोली—॥ ४२॥ 'कंस! ओ कंस!! तूने अपने ही विनाशके लिये जो मुझे मार डालनेका प्रयत्न किया है और सहसा उठाकर शिलापर दे मारा है, उसके कारण मैं भी तेरे अन्तकालमें जिस समय तू शत्रुके द्वारा घसीटा जा रहा होगा, अपने हाथोंसे तेरी इस देहको फाड़कर तेरा गरम-गरम रक्त पीऊँगी'॥ ४३-४४॥ ऐसा घोर वचन कहकर वह देवी यथेष्ट मार्गसे अपने गणोंसहित आकाश और देवलोकमें विचरने लगी॥ ४५॥ वहाँ वृष्णिवंशियोंके समुदायसे भलीभाँति पूजित हो वह कन्या बढ़ने लगी। वसुदेवकी आज्ञासे उस समय उसका पुत्रवत् पालन होने लगा*॥ ४६॥ जनमेजय! तुम इस देवीको प्रजापालक भगवान् विष्णुके अंशसे उत्पन्न हुई समझो। वह एक होती हुई अनंशा—अंशरहित अर्थात् अविभक्त थी, इसलिये एकानंशा कहलाती थी। योगबलसे कन्यारूपमें प्रकट हुई वह देवी भगवान् श्रीकृष्णकी रक्षाके लिये आविर्भूत हुई थी॥ ४७॥

* जैसे वात्सल्यभाव रखनेवाले उपासक भगवान्के बाल-विग्रहकी उपासना या पूजा करते समय प्यार करते, लाड़ लड़ाते और उनके पालन-पोषण एवं संवर्धनका ध्यान रखते हैं, उसी प्रकार वसुदेवकी आज्ञासे उस चिदानन्दमयी देवीका कन्यारूपसे यादवोंके यहाँ पूजन होने लगा। यद्यपि वह आकाशमें चली गयी तो भी उनके आवाहन करनेपर उनके यहाँ पधारकर उनके वात्सल्य और लाड़-प्यारको वह ग्रहण करती रही। ऐसा समझना चाहिये।

तां वै सर्वे सुमनसः पूजयन्ति स्म यादवाः।
देववद् दिव्यवपुषा कृष्णः संरक्षितो यया॥ ४८

यदुकुलमें उत्पन्न हुए समस्त देवता उस देवीका आराध्यदेवके समान पूजन करते थे; क्योंकि उसने अपने दिव्य देहसे श्रीकृष्णकी रक्षा की थी॥ ४८॥

तस्यां गतायां कंसस्तु तां मेने मृत्युमात्मनः।
विविक्ते देवकीं चैव व्रीडितः समभाषत॥ ४९

उसके चले जानेपर कंसने उसे ही अपनी मृत्यु समझा और एकान्तमें देवकीके पास जाकर लज्जित हो वह इस प्रकार बोला॥ ४९॥

कंस उवाच

मृत्योः स्वसः कृतो यत्नस्तव गर्भा मया हताः।
अन्य एवान्यतो देवि मम मृत्युरुपस्थितः॥ ५०

नैराश्येन कृतो यत्नः स्वजने प्रहृतं मया।
दैवं पुरुषकारेण न चातिक्रान्तवानहम्॥ ५१

त्यज गर्भकृतां चिन्तां संतापं पुत्रजं त्यज।
हेतुभूतस्त्वहं तेषां सति कालविपर्यये॥ ५२

काल एव नृणां शत्रुः कालश्च परिणामकः।
कालो नयति सर्वं वै हेतुभूतस्तु मद्विधः॥ ५३

आगमिष्यन्ति वै देवि यथाभागमुपद्रवाः।
इदं तु कष्टं यज्जन्तुः कर्ताहमिति मन्यते॥ ५४

मा कार्षीः पुत्रजां चिन्तां विलापं शोकजं त्यज।
एवं प्रायो नृणां योनिर्नास्ति कालस्य संस्थितिः॥ ५५

एष ते पादयोर्मूर्ध्ना पुत्रवत् तव देवकि।
मद्गतस्त्यज्यतां रोषो जानाम्यपकृतं त्वयि॥ ५६

कंसने कहा—बहिन! मैंने मृत्युको टालनेका प्रयत्न किया और इसी धोखेमें मैंने तुम्हारे बच्चोंको मार डाला, परंतु देवि! कोई दूसरा ही दूसरी जगहसे मेरी मृत्यु बनकर उपस्थित हो गया है॥ ५०॥ मैंने क्रूरतापूर्वक अपने उद्देश्यकी सिद्धिके लिये प्रयास किया; किंतु जो मेरे अपने जन थे, उनपर ही मैं प्रहार कर बैठा। मैं दैवके विधानको अपने पुरुषार्थसे लाँघ न सका॥ ५१॥ बहिन! अपने गर्भोंके लिये चिन्ता न करो। पुत्रोंकी मृत्युके कारण होनेवाले शोक-संतापको त्याग दो। काल ही उनके विपरीत हो गया था। मैं तो उनके वधमें केवल निमित्तमात्र बन गया हूँ॥ ५२॥ काल ही मनुष्योंका शत्रु है, काल ही एक अवस्थासे दूसरी अवस्थामें ला देता है और काल ही सबको संसारसे उठा ले जाता है। मेरे-जैसा व्यक्ति तो इसमें निमित्तमात्र ही होता है॥ ५३॥ देवि! अपने भाग्य या कर्मके अनुसार उपद्रव तो आयेंगे ही, किंतु कष्टकी बात यही है कि जीव इसमें अपनेको ही कर्ता मानने लगता है॥ ५४॥ पुत्रोंके वियोगसे होनेवाली चिन्ता न करो। शोकजनित विलापको त्याग दो। मनुष्य-योनिकी प्रायः ऐसी ही दशा है। कालको टालना या मिटा देना असम्भव है॥ ५५॥ देवकी! यह लो, मैं पुत्रकी भाँति तुम्हारे चरणोंपर मस्तक रखकर पड़ा हूँ। जानता हूँ, मैंने तुम्हारा अपराध किया है तो भी मेरे प्रति अपना रोष त्याग दो (यह मेरी प्रार्थना है)॥ ५६॥

इत्युक्तवन्तं कंसं सा देवकी वाक्यमब्रवीत्।
साश्रुपूर्णमुखा दीना भर्तारमुपवीक्षती।
उत्तिष्ठोत्तिष्ठ वत्सेति कंसं मातेव जल्पती॥ ५७

जब कंसने ऐसी बात कही, तब देवकीके मुखपर आँसुओंकी धारा बह चली। वह पतिकी ओर देखती हुई अत्यन्त दीन होकर कंससे माताके समान कहने लगी—'बेटा! उठो! उठो!'॥ ५७॥

देवक्युवाच

ममाग्रतो हता गर्भा ये त्वया कामरूपिणा।
कारणं त्वं न वै पुत्र कृतान्तोऽप्यत्र कारणम्॥ ५८

देवकीने फिर कहा—वत्स! तुम तो इच्छानुसार रूप धारण करनेवाले हो। तुमने मेरे सामने ही जिन-जिन गर्भस्थ शिशुओंकी हत्या की है, उसमें केवल तुम्हीं कारण हो—ऐसी बात नहीं है, काल भी इसमें कारण है॥ ५८॥

गर्भकर्तनमेतन्मे सहनीयं त्वया कृतम्।
पादयोः पतता मूर्ध्ना स्वं च कर्म जुगुप्सता॥ ५९

परंतु आज तुम अपने कर्मकी निन्दा करते हुए जो मेरे पैरोंपर सिर रखकर पड़ गये, इससे तुम्हारे द्वारा किये गये इस गर्भोच्छेदरूप असह्य कष्टको भी मैं किसी तरह सह लूँगी॥ ५९॥

गर्भे च नियतो मृत्युर्बाल्येऽपि न निवर्तते।
युवापि मृत्योर्वशगः स्थविरो मृत एव तु॥ ६०

गर्भमें भी मृत्यु निश्चितरूपसे होती है। बाल्यावस्थामें भी वह टलती नहीं है। जवान मनुष्य भी मृत्युके अधीन होता है और वृद्ध पुरुष तो मरा हुआ है ही॥ ६०॥

कालपक्वमिदं सर्वं हेतुभूतस्तु त्वद्विधः।
अजाते दर्शनं नास्ति यथा वायुस्तथैव च॥ ६१

इस सम्पूर्ण जगत्को काल ही पका देता है (मार डालता है)। तुम्हारे-जैसे लोग तो केवल निमित्तमात्र होते हैं। जिसका जन्म नहीं हुआ है, उसका दर्शन नहीं होता। जैसे वायुकी सत्ता होनेपर भी वह दिखायी नहीं देती, उसी प्रकार जीवकी सत्ता होनेपर भी जन्मसे पहले वह दृष्टिगोचर नहीं होता है॥ ६१॥

जातोऽप्यजाततां याति विधात्रा यत्र नीयते।
तद् गच्छ पुत्र मा ते भून्मद्गतं मृत्युकारणम्॥ ६२

जो जन्म ले चुका है, वह भी मृत्युके बाद अजातभावको ही प्राप्त हो जाता है (अर्थात् उसका भी दर्शन नहीं होता)। विधाता उसे जहाँ ले जाते हैं, वहाँ वह चला जाता है; अतः पुत्र! तुम जाओ। मुझे जो पुत्रोंकी मृत्युके कारण दुःख हो रहा है, उसके लिये तुम्हारे हृदयमें विचार न हो॥ ६२॥

मृत्युना प्रहृते पूर्वं शेषो हेतुः प्रवर्तते।
विधिना पूर्वदृष्टेन प्रजासर्गेण तत्त्वतः॥ ६३
मातापित्रोस्तु कार्येण जन्मतस्तूपपद्यते।

पहले मौत प्रहार करती है, इसके बाद मृत्युके शेष हेतुओंकी प्रवृत्ति होती है। विधि (संस्कार), पूर्वदृष्ट कर्म (जन्मान्तरीय कर्म या प्रारब्ध), प्रजाकी सृष्टि करनेवाले काल, वास्तवमें घटित हुए तात्कालिक कारण, माता-पिताके दूषित अन्न-भक्षण आदि कार्य तथा जातिगत स्वभावसे भी मृत्यु सम्भव होती है (इन्हीं सब कारणोंसे मेरे बच्चे मारे गये और तुम इसमें निमित्त बने, अतः इसमें तुम्हारा कोई दोष नहीं है)॥ ६३ ½॥

वैशम्पायन उवाच

निशम्य देवकीवाक्यं स कंसः स्वं निवेशनम्॥ ६४
प्रविवेश ससंरब्धो दह्यमानेन चेतसा।
कृत्ये प्रतिहते दीनो जगाम विमना भृशम्॥ ६५

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! देवकीका यह वचन सुनकर कंस अपनी असफलतापर क्षुब्ध हो मन-ही-मन जलता हुआ अपने भवनमें चला गया। अपने किये प्रयत्नके प्रतिहत (विफल) हो जानेपर वह मनमें बहुत ही खिन्न और दीन हो गया था, अतः वहाँसे चुपचाप चला गया॥ ६४-६५॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे विष्णुपर्वणि श्रीकृष्णजन्मनि चतुर्थोऽध्यायः॥ ४॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत विष्णुपर्वमें श्रीकृष्णजन्मविषयक चौथा अध्याय पूरा हुआ॥ ४॥

पञ्चमोऽध्यायः

वसुदेवजीका नन्दको व्रजमें लौटनेकी सम्मति देना और नन्दजीका गोव्रजकी शोभा निहारते हुए वहाँ पधारना

वैशम्पायन उवाच

प्रागेव वसुदेवस्तु व्रजे शुश्राव रोहिणीम्।
प्रजातां पुत्रमेवाग्रे चन्द्रात् कान्ततराननम्॥ १

स नन्दगोपं त्वरितः प्रोवाच शुभया गिरा।
गच्छानया सहैव त्वं व्रजमेव यशोदया॥ २

तत्र तौ दारकौ गत्वा जातकर्मादिभिर्गुणैः।
योजयित्वा व्रजे तात संवर्धय यथासुखम्॥ ३

रौहिणेयं च पुत्रं मे परिरक्ष शिशुं व्रजे।
अहं वाच्यो भविष्यामि पितृपक्षेषु पुत्रिणाम्॥ ४

योऽहमेकस्य पुत्रस्य न पश्यामि शिशोर्मुखम्।
ह्रियते हि बलात् प्रज्ञा प्राज्ञस्यापि सतो मम॥ ५

अस्माद्धि मे भयं कंसान्निर्घृणाद् वै शिशोर्वधे।
तद्यथा रौहिणेयं त्वं नन्दगोप ममात्मजम्॥ ६

गोपायसि यथा तात तत्त्वान्वेषी तथा कुरु।
विघ्ना हि बहवो लोके बालानुत्रासयन्ति हि॥ ७

स च पुत्रो मम ज्यायान् कनीयांश्च तवाप्ययम्।
उभावपि समं नाम्ना निरीक्षस्व यथासुखम्॥ ८

वर्धमानावुभावेतौ समानवयसौ यथा।
शोभेतां गोव्रजे तस्मिन् नन्दगोप तथा कुरु॥ ९

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! वसुदेवजीने प्रसवसे पहले ही रोहिणीको व्रजमें भेज दिया था। जब उन्होंने सुना कि रोहिणीने पहले ही एक ऐसे पुत्रको जन्म दिया है, जिसका मुख चन्द्रमासे भी अधिक कान्तिमान् है, तब वे तुरंत ही (कंसका कर चुकानेके लिये पत्नीसहित मथुरामें आये हुए) नन्दगोपके पास जाकर मङ्गलमयी वाणीमें बोले—'मित्र! तुम इन यशोदाजीके साथ ही शीघ्र व्रजको लौट जाओ॥ १-२॥ तात! वहाँ जाकर उन दोनों बालकोंको जातकर्म आदि संस्कारोंसे सम्पन्न करके व्रजमें ही सुखपूर्वक उनका पालन-पोषण और संवर्धन करो'॥ ३॥ व्रजमें रोहिणीके गर्भसे उत्पन्न हुआ जो मेरा शिशु पुत्र है, उसकी भी रक्षा करना। भाई! मैं तो पितृपक्षोंमें पुत्रवानोंके द्वारा निन्दनीय ही होऊँगा; क्योंकि मैं ऐसा भाग्यहीन हूँ कि अपने एकमात्र शिशुपुत्रका मुख नहीं देख पाता हूँ। यद्यपि मुझे इस बातका ज्ञान है कि सुख-दुःख और संयोग-वियोग आदि प्रारब्धके ही अधीन हैं; तथापि निरन्तर बना रहनेवाला भय मुझ बुद्धिमान्की भी बुद्धिको बलपूर्वक हर लेता है। इस निर्दय कंससे मुझे सदा यह डर लगा रहता है कि कहीं यह मेरे इस शिशुका भी वध न कर डाले। अतः तात! नन्दगोप! तुम मेरे पुत्र रोहिणीकुमारकी जिस उपायसे भी रक्षा कर सको, करो। बाल-द्रोहियोंके स्वरूपका यथावद्रूपसे विचार करके जैसे बने, उसके जीवनकी रक्षा करो; क्योंकि जगत्‌में बहुत-से ऐसे विघ्न खड़े हुए हैं, जो बालकोंको त्रास दे रहे हैं॥ ४—७॥ मेरा वह पुत्र बड़ा है और तुम्हारा यह बालक छोटा। तुम इन दोनोंको ही सुखपूर्वक समान दृष्टिसे देखो। जैसे इनके नाम एक-से (एक अर्थवाले) हैं*, उसी तरह इनपर तुम्हारा वात्सल्य भी एक-सा ही होना चाहिये॥ ८॥ नन्दगोप! इन दोनोंकी अवस्था प्रायः समान है। ये दोनों जिस तरह साथ-साथ तुम्हारे उस व्रजमें बढ़ते हुए शोभा पा सकें, वैसा यत्न करो'॥ ९॥

* जैसे कृष्णका अर्थ है अपनी ओर खींचनेवाला, उसी तरह संकर्षणका भी है।

बाल्ये केलिकिलः सर्वो बाल्ये मुह्यति मानवः।
बाल्ये चण्डतमः सर्वस्तत्र यत्नपरो भव॥ १०

न च वृन्दावने कार्यो गवां घोषः कथंचन।
भेतव्यं तत्र वसतः केशिनः पापदर्शिनः॥ ११

सरीसृपेभ्यः कीटेभ्यः शकुनिभ्यस्तथैव च।
गोष्ठेषु गोभ्यो वत्सेभ्यो रक्ष्यौ ते द्वाविमौ शिशू॥ १२

नन्दगोप गता रात्रिः शीघ्रयानो व्रजाशुगः।
इमे त्वां व्याहरन्तीव पक्षिणः सव्यदक्षिणाः॥ १३

रहस्यं वसुदेवेन सोऽनुज्ञातो महात्मना।
यानं यशोदया सार्धमारुरोह मुदान्वितः॥ १४

कुमारस्कन्धवाह्यायां शिबिकायां समाहितः।
संवेशयामास शिशुं शयनीयं महामतिः॥ १५

जगाम च विविक्तेन शीतलानिलसर्पिणा।
बहूदकेन मार्गेण यमुनातीरगामिना॥ १६

स ददर्श शुभे देशे गोवर्धनसमीपगे।
यमुनातीरसम्बद्धं शीतमारुतसेवितम्॥ १७

विरुतश्वापदै रम्यं लतावल्लीमहाद्रुमम्।
गोभिस्तृणविलग्नाभिः स्यन्दन्तीभिरलंकृतम्॥ १८

समप्रचारं च गवां समतीर्थजलाशयम्।
वृषाणां स्कन्धघातैश्च विषाणोद्घृष्टपादपम्॥ १९

भासामिषादानुसृतैः श्येनैश्चामिषगृध्नुभिः।
सृगालमृगसिंहैश्च वसामेदाशिभिर्वृतम्॥ २०

'बाल्यावस्थामें सब लोग खेल-कूदसे मन बहलाते हैं। बालकपनमें प्रायः सभी मनुष्य मोहग्रस्त रहते हैं। उन्हें कर्तव्याकर्तव्यका बोध नहीं रहता तथा बचपनमें सभी बात-बातपर बहुत चिढ़ते और रूठते हैं; अतः बच्चोंको इन सभी दशाओंमें सँभालते हुए उनके लालन-पालनके लिये प्रयत्नशील रहो॥ १०॥ देखो, वृन्दावनमें किसी तरह भी गौओंके ठहरनेका स्थान न बनाना। वहाँ निवास करनेवाले पापदर्शी केशीसे तुम्हें सदा डरते रहना चाहिये॥ ११॥ वनमें साँप-बिच्छू, कीड़े-मकोड़े तथा पक्षियोंसे और गोव्रजमें गौओं तथा बछड़ोंसे इन दोनों शिशुओंकी तुम्हें सदा रक्षा करनी चाहिये॥ १२॥ नन्दगोप! रात बीत गयी। तुम तेज चलनेवाली सवारीपर बैठकर शीघ्रतापूर्वक यहाँसे पधारो। ये दायें-बायें उड़नेवाले पक्षी मानो तुम्हें जानेके लिये कह रहे हैं—विदा दे रहे हैं'॥ १३॥ महात्मा वसुदेवके द्वारा किसी गुप्त रहस्यका ज्ञान करा दिये जानेपर नन्दबाबा यशोदाजीके साथ प्रसन्नतापूर्वक सवारीपर बैठे॥ १४॥ तदनन्तर सदा सावधान रहनेवाले परम बुद्धिमान् नन्दजीने छोटे-छोटे बालक जिसे कंधेपर ढो सकें, ऐसी शिबिका (डोली)-में अपने शयन करनेयोग्य शिशुको सुला दिया॥ १५॥ फिर यमुनाजीके किनारे-किनारे जानेवाले ऐसे एकान्त मार्गसे वे चले, जहाँ जलकी बहुतायत थी और ठंडी-ठंडी हवा चल रही थी॥ १६॥ गोवर्धनके निकटवर्ती शुभ प्रदेशमें पहुँचकर उन्होंने गौओंका व्रज देखा, जो यमुनाजीके तटसे जुड़ा हुआ था और शीतल वायु उसकी सेवा करती थी॥ १७॥ विशेष प्रकारकी बोली बोलनेवाले शिकारी जीवोंके रहनेसे उस प्रदेशकी रमणीयता बढ़ गयी थी। वहाँ लता और वल्लरियोंसे लिपटे हुए बड़े-बड़े वृक्ष शोभा पा रहे थे। घास चरती और थनोंसे दूध झरती हुई गौओंसे वह स्थान अलंकृत था॥ १८॥ वहाँ गौओंके चरने-फिरनेके लिये सम भूमि थी, विषम नहीं; जलाशयोंमें उतरनेके लिये जो मार्ग थे, वे भी सम ही थे। बैलों या साँड़ोंके कंधोंकी टक्करसे तथा उनके सींगोंकी रगड़से वहाँके कई वृक्ष घिसे हुए दिखायी देते थे॥ १९॥ वहाँ गीध और मांसभक्षी वनबिलाव आदिके पीछे मांसकी इच्छा रखनेवाले बाज तथा वसा और मेदा खानेवाले गीदड़, चीते एवं बाघ-सिंह आदि लगे हुए थे। इन सबके द्वारा वह प्रदेश घिरा हुआ था॥ २०॥

शार्दूलशब्दाभिरुतं नानापक्षिसमाकुलम्।
स्वादुवृक्षफलं रम्यं पर्याप्ततृणवीरुधम्॥ २१

गोव्रजं गोरुतं रम्यं गोपनारीभिरावृतम्।
हम्भारवैश्च वत्सानां सर्वतः कृतनिःस्वनम्॥ २२

शकटावर्तविपुलं कण्टकीवाटसंकुलम्।
पर्यन्तेष्वावृतं वन्यैर्बृहद्भिः पतितैर्द्रुमैः॥ २३

वत्सानां रोपितैः कीलैर्दामभिश्च विभूषितम्।
करीषाकीर्णवसुधं कटच्छन्नकुटीमठम्॥ २४

क्षेम्यप्रचारबहुलं हृष्टपुष्टजनावृतम्।
दामनीपाशबहुलं गर्गरोद्गारनिःस्वनम्॥ २५

तक्रनिःस्रावबहुलं दधिमण्डार्द्रमृत्तिकम्।
मन्थानवलयोद्गारैर्गोपीनां जनितस्वनम्॥ २६

काकपक्षधरैर्बालैर्गोपालक्रीडनाकुलम्।
सार्गलद्वारगोवाटं मध्ये गोस्थानसंकुलम्॥ २७

सर्पिषा पच्यमानेन सुरभीकृतमारुतम्।
नीलपीताम्बराभिश्च तरुणीभिरलङ्कृतम्॥ २८

सिंहोंके दहाड़नेसे वहाँका वन-प्रान्त गूँजता रहता था। नाना प्रकारके पक्षी वहाँ सब ओर व्याप्त थे। उस व्रजमें जो वृक्षोंमें फल लगे थे, वे बड़े स्वादिष्ठ थे। वहाँ घास-पात और लता-बेलोंकी बहुलता थी॥ २१॥ इस प्रकार वह गोव्रज गौओंके रँभानेके शब्दसे मुखरित था। गोपाङ्गनाओंसे घिरा हुआ वह भूभाग बड़ा रमणीय दिखायी देता था। बछड़ोंके बोलनेसे वहाँका स्थान सब ओरसे गूँजता रहता था॥ २२॥ छकड़ोंकी गोलाकार श्रेणियोंसे वहाँका भूभाग बहुत विशाल जान पड़ता था। वहाँ चारों ओर काँटोंके बाड़ लगे थे। सीमाओंपर जंगलके गिरे हुए बड़े-बड़े वृक्ष रखे गये थे॥ २३॥ बछड़ोंके लिये गाड़े गये खूँटों और बाँधनेकी रस्सियोंसे उस व्रजकी बड़ी शोभा हो रही थी। वहाँ धरतीपर सब ओर सूखे कंडे (या करसी)-के ढेर पड़े थे। कुटी और मठ चटाइयों अथवा तृण-समूहसे छाये गये थे॥ २४॥ कुशलपूर्वक घूमने-फिरनेके लिये वहाँ बहुत-से स्थान थे (अथवा उत्तम लक्षणोंसे युक्त भटोंके प्रचारसे वह व्रज समृद्धिशाली प्रतीत होता था*)। वह भूभाग हृष्ट-पुष्ट मनुष्योंसे भरा था। वहाँ मोटी और पतली रस्सियोंकी बहुतायत थी। दूध-दही मथनेके लिये जो बड़े-बड़े माट या घड़े होते हैं, उनमेंसे मन्थनके समय जो शब्द प्रकट होता था, वह वहाँ सब ओर फैला हुआ था॥ २५॥ वहाँ तक्र (मट्ठा) बहानेके लिये बहुत-सी नालियाँ बनी थीं। दहीके ऊपरका जो सारभाग (मण्ड) होता है, उससे वहाँकी मिट्टी गीली हो रही थी। मथानी चलानेके समय गोपियोंके हाथोंके कंगन खन-खनाते रहते थे। उनकी मधुर झनकार वहाँ सब ओर गूँजती रहती थी॥ २६॥ उस व्रजमें काकपक्ष (पीछेकी ओर सिरपर बड़े-बड़े बाल) धारण करनेवाले बालक खेल रहे थे। ग्वालोंके अखाड़ोंसे वहाँका भूभाग भरा था। गौओंके बाड़ों (रहनेके स्थानों)-के दरवाजोंपर काठके कुंडे लगे हुए थे। बीचमें गौओंके ठहरने, विश्राम करने आदिके लिये पर्याप्त स्थान था। ऐसी गोशालाओंसे वह व्रज भरा हुआ था॥ २७॥ आगपर खौलाये जाते हुए घृतकी मनोरम गंधसे वहाँकी वायु सुवासित हो रही थी। नीली-पीली साड़ियोंसे सुशोभित तरुणी स्त्रियाँ उस व्रजको अलंकृत किये हुए थीं॥ २८॥

* ऐसा अर्थ नीलकण्ठजीने किया है।

वन्यपुष्पावतंसाभिर्गोपकन्याभिरावृतम् ।
शिरोभिर्धृतकुम्भाभिर्बद्धैरग्रस्तनाम्बरैः ॥ २९

यमुनातीरमार्गेण जलहारीभिरावृतम्।
स तत्र प्रविशन् हृष्टो गोव्रजं गोपनादितम्॥ ३०

प्रत्युद्गतो गोपवृद्धैः स्त्रीभिर्वृद्धाभिरेव च।
निवेशं रोचयामास परिवर्ते सुखाश्रये॥ ३१

सा यत्र रोहिणी देवी वसुदेवसुखावहा।
तत्र तं बालसूर्याभं कृष्णं गूढं न्यवेशयत्॥ ३२

वनके फूलोंका कर्णभूषण धारण किये बहुत-सी गोपकन्याएँ वहाँ सिरपर घड़े लिये आती-जाती थीं। उनके स्तनोंके अग्रभाग चोलीसे बँधे थे और उनपर आँचल पड़ा हुआ था। यमुनाजीके तटपर गये हुए मार्गसे जल लानेवाली उन गोपकुमारियोंसे वह व्रज घिरा हुआ-सा जान पड़ता था। ग्वालोंके शब्दसे गूँजते हुए उस गोव्रजमें प्रवेश करते समय नन्दरायजीको बड़ा हर्ष हुआ। वृद्ध गोपों तथा बड़ी-बूढ़ी स्त्रियोंने आगे बढ़कर उनका स्वागत किया। तत्पश्चात् उन्होंने चारों ओरसे घिरे हुए उस सुखदायक आवासस्थानमें रहनेके लिये रुचि प्रकट की॥ २९—३१॥ वसुदेवजीको सुख देनेवाली रोहिणी-देवी जहाँ रहती थीं, वहीं उन्होंने व्रजमें गुप्तरूपसे रहनेवाले बालसूर्यके समान तेजस्वी श्रीकृष्णको सुला दिया॥ ३२॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे विष्णुपर्वणि गोव्रजगमनं नाम पञ्चमोऽध्यायः॥ ५॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत विष्णुपर्वमें नन्दजीका गोव्रजमें गमनविषयक पाँचवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ५॥

षष्ठोऽध्यायः

शकट-भञ्जन और पूतना-वध

वैशम्पायन उवाच

तत्र तस्यासतः कालः सुमहानत्यवर्तत।
गोव्रजे नन्दगोपस्य बल्लवत्वं प्रकुर्वतः॥ १

दारकौ कृतनामानौ ववृधाते सुखं च तौ।
ज्येष्ठः संकर्षणो नाम कनीयान् कृष्ण एव तु॥ २

मेघकृष्णस्तु कृष्णोऽभूद् देहान्तरगतो हरिः।
व्यवर्धत गवां मध्ये सागरस्य इवाम्बुदः॥ ३

शकटस्य त्वधः सुप्तं कदाचित् पुत्रगृद्धिनी।
यशोदा तं समुत्सृज्य जगाम यमुनां नदीम्॥ ४

शिशुलीलां ततः कुर्वन् स हस्तचरणौ क्षिपन्।
रुरोद मधुरं कृष्णः पादावूर्ध्वं प्रसारयन्॥ ५

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! उस गोव्रजमें रहकर गोपकर्म करते हुए नन्दगोपके बहुत दिन बीत गये॥ १॥ वहाँ उन दोनों बालकोंका उन्होंने नामकरण-संस्कार कर दिया। तदनन्तर वे दोनों भाई वहाँ बड़े सुखसे रहने और दिनोंदिन बढ़ने लगे। उनमें बड़ेका नाम 'संकर्षण' था और छोटेका 'कृष्ण'॥ २॥ दूसरे शरीरमें आये हुए भगवान् श्रीहरि ही 'कृष्ण' नामसे विख्यात हुए। उनकी अङ्गकान्ति श्याम मेघकी भाँति साँवली थी। जैसे समुद्रमें मेघकी वृद्धि होती है, उसी प्रकार वे गौओंके बीचमें रहकर बढ़ने लगे॥ ३॥ यशोदा अपने पुत्रको हृदयसे चाहनेवाली थी। एक दिनकी बात है, लाला कन्हैया छकड़ेके नीचे सोया था, उसे उसी अवस्थामें छोड़कर यशोदा मैया यमुनाजीमें नहानेके लिये चली गयीं॥ ४॥ फिर तो लाला कन्हैया बाललीला करता हुआ अपने दोनों हाथ-पैर फेंकने लगा। पैरोंको ऊँचेतक फैलाकर मधुर स्वरमें रोने लगा॥ ५॥

स तत्रैकेन पादेन शकटं पर्यवर्तयत्।
न्युब्जं पयोधराकाङ्क्षी चकार च रुरोद च॥ ६

एतस्मिन्नन्तरे प्राप्ता यशोदा भयविक्लवा।
स्नाता प्रस्रवदिग्धाङ्गी बद्धवत्सेव सौरभी॥ ७

सा ददर्श विपर्यस्तं शकटं वायुना विना।
हाहेति कृत्वा त्वरिता दारकं जगृहे तदा॥ ८

न सा बुबोध तत्त्वेन शकटं परिवर्तितम्।
स्वस्ति मे दारकायेति प्रीता भीता च साभवत्॥ ९

किं तु वक्ष्यति ते पुत्र पिता परमकोपनः।
त्वय्यधःशकटे सुप्ते अकस्माच्च विलोडिते॥ १०

किं मे स्नानेन दुःस्नानं किं च मे गमने नदीम्।
पर्यस्ते शकटे पुत्र या त्वां पश्याम्यपावृतम्॥ ११

एतस्मिन्नन्तरे गोभिराजगाम वनेचरः।
काषायवाससी बिभ्रन् नन्दगोपो व्रजान्तिकम्॥ १२

स ददर्श विपर्यस्तं भिन्नभाण्डघटीघटम्।
अपास्तधूर्विभिन्नाक्षं शकटं चक्रमौलिनम्॥ १३

भीतस्त्वरितमागत्य सहसा साश्रुलोचनः।
अपि मे स्वस्ति पुत्रायेत्यसकृद् वचनं वदन्॥ १४

पिबन्तं स्तनमालक्ष्य पुत्रं स्वस्थोऽब्रवीत् पुनः।
वृषयुद्धं विना केन पर्यस्तं शकटं मम॥ १५

(अब उसके मनमें मैयाके दूध पीनेकी इच्छा जाग उठी, फिर तो) उसने वहाँ एक ही पैरके धक्केसे छकड़ेको औंधा उलट दिया। यह सब उसने स्तन-पानकी इच्छासे ही किया था। यह अद्भुत लीला करके वह रोने लगा॥ ६॥ इसी बीचमें भयसे व्याकुल हुई यशोदा मैया नहाकर लौट आयी। उसके स्तनोंसे दूध झर रहा था, जो उसके अन्य अङ्गोंमें भी फैलता जा रहा था। जिसका बछड़ा बँधा हुआ हो, उस गायकी भाँति वह अपने बच्चेको स्तन पिलानेके लिये उत्सुक थी॥ ७॥ उसने देखा, बिना आँधी-पानीके ही यह छकड़ा उलटा पड़ा है। फिर तो 'हाय! हाय!' करके तुरंत ही लालाको गोदमें उठा लिया॥ ८॥ वह इस बातको न जान सकी कि छकड़ेके उलट जानेका वास्तवमें क्या कारण है? 'भगवान् मेरे लालाको सकुशल रखें'—ऐसा कहकर मैया पुत्र-प्रेममें मग्न हो गयी और 'बच्चेको कहीं चोट तो नहीं लगी'—इस आशङ्कासे उसको भय भी हुआ॥ ९॥ (वह बच्चेकी ओर देखकर बोली—) 'बेटा! तुम्हारे पिता बड़े क्रोधी हैं। तुम छकड़ेके नीचे सोये थे और वह अकस्मात् उलट गया। यह सुनकर वे न जाने मुझे क्या-क्या कहेंगे?॥ १०॥ लाला! मुझे नहानेसे क्या मिलता? यदि तुम्हें कुछ हो जाता तो मेरा वह स्नान तो दुःस्नान ही था। मुझे नदीतटपर जानेकी भी क्या आवश्यकता थी? वहाँसे लौटकर देखती हूँ तो छकड़ा उलटा पड़ा है और तुम खुले आकाशके नीचे सोये हो! (हाय! हाय! यह सब कैसे हुआ?)'॥ ११॥ इसी समय गौओंके साथ वनमें विचरकर नन्दजी व्रजके निकट आये। उन्होंने गेरुए रंगके दो वस्त्र धारण कर रखे थे॥ १२॥ उन्होंने देखा, छकड़ा औंधा पड़ा है। उसपर लदे हुए सारे बर्तन, घड़े, माँट और मटके चकनाचूर हो गये हैं। जुआ निकलकर दूर जा पड़ा है। धुरा टूट गया है और पहिया मुकुटके समान ऊपरको उठ गया है॥ १३॥ यह देखकर वे डर गये और जल्दी-जल्दी पैर बढ़ाते हुए सहसा घर आ पहुँचे। उस समय उनके नेत्रोंमें आँसू भरे हुए थे। वे बार-बार पूछने लगे, 'महर! मेरा लाला कुशलसे तो है न?'॥ १४॥ फिर बेटेको स्तनपान करते देख उनके जी-में-जी आया। उन्होंने पुनः पूछा, 'महर! बैलोंमें लड़ाई तो हुई नहीं, फिर यह छकड़ा कैसे उलट गया?'॥ १५॥

प्रत्युवाच यशोदा तं भीता गद्गदभाषिणी।
न विजानाम्यहं केन शकटं परिवर्तितम्॥ १६

अहं नदीं गता सौम्य चैलप्रक्षालनार्थिनी।
आगता च विपर्यस्तमपश्यं शकटं भुवि॥ १७

तयोः कथयतोरेवमब्रुवंस्तत्र दारकाः।
अनेन शिशुना यानमेतत् पादेन लोडितम्॥ १८

अस्माभिः सम्पतद्भिश्च दृष्टमेतद् यदृच्छया।
नन्दगोपस्तु तच्छ्रुत्वा विस्मयं परमं ययौ॥ १९

प्रहृष्टश्चैव भीतश्च किमेतदिति चिन्तयन्।
न च ते श्रद्दधुर्गोपाः सर्वे मानुषबुद्धयः॥ २०

आश्चर्यमिति ते सर्वे विस्मयोत्फुल्ललोचनाः।
स्वे स्थाने शकटं स्थाप्य चक्रबन्धमकारयन्॥ २१

वैशम्पायन उवाच

कस्यचित्त्वथ कालस्य शकुनी वेषधारिणी।
धात्री कंसस्य भोजस्य पूतनेति परिश्रुता॥ २२

पूतना नाम शकुनी घोरा प्राणिभयंकरी।
आजगामार्धरात्रे वै पक्षौ क्रोधाद् विधुन्वती॥ २३

ततोऽर्धरात्रसमये पूतना प्रत्यदृश्यत।
व्याघ्रगम्भीरनिर्घोषं व्याहरन्ती पुनः पुनः॥ २४

निलिल्ये शकटस्याक्षे प्रस्रवोत्पीडवर्षिणी।
ददौ स्तनं च कृष्णाय तस्मिन् सुप्ते जने निशि॥ २५

तस्याः स्तनं पपौ कृष्णः प्राणैः सह विनद्य च।
छिन्नस्तनी तु सहसा पपात शकुनी भुवि॥ २६

तेन शब्देन वित्रस्तास्ततो बुबुधिरे भयात्।
स नन्दगोपो गोपा वै यशोदा च सुविक्लवा॥ २७

ते तामपश्यन् पतितां विसंज्ञां विपयोधराम्।
पूतनां पतितां भूमौ वज्रेणेव विदारिताम्॥ २८

यशोदाने भयभीत होकर गद्गद वाणीमें कहा—'नाथ! मैं नहीं जानती कि किसने छकड़ा उलट दिया। सौम्य! मैं तो कपड़े धोनेके लिये यमुनाजीके तटपर गयी थी। लौटकर देखती हूँ तो छकड़ा धरतीपर औंधा पड़ा है'॥ १६-१७॥ वे दोनों जब इस प्रकार वार्तालाप कर रहे थे, उस समय वहाँ आये हुए व्रजके बालकोंने कहा—'बाबा! तुम्हारे इस लालाने ही अपने पैरसे मारकर यह गाड़ी लुढ़का दी है। हमलोग अकस्मात् यहाँ दौड़े हुए आये थे। हमने अपनी आँखों यह घटना देखी है।' बालकोंकी वह बात सुनकर नन्दगोपको बड़ा विस्मय हुआ। वे पहले तो प्रसन्न हुए, परंतु ऐसा सोचते हुए कि यह क्या है, वे फिर डर गये। वहाँ जो बड़े-बड़े गोप थे, उन सबको इस बातपर विश्वास नहीं हुआ; क्योंकि वह उस बच्चेको साधारण मनुष्यका ही बालक समझते थे। फिर भी वे सब-के-सब इस घटनासे आश्चर्य करने लगे थे। उनके नेत्र विस्मयसे खिल उठे थे। वे छकड़ेको अपनी जगहपर खड़ा करके उसमें पहिये जोड़ने लगे॥ १८—२१॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! कुछ कालके बाद व्रजमें आधी रातके समय क्रोधपूर्वक अपने दोनों पंख हिलाती हुई पक्षिणीका वेष धारण किये एक राक्षसी आयी। वह भोजराज कंसकी धाय थी, उसका नाम पूतना था। पूतना नामवाली वह घोर पक्षिणी समस्त प्राणियोंके लिये भयंकर थी॥ २२-२३॥ आधी रातके समय जब पूतना दिखायी दी, उस समय वह व्याघ्रके दहाड़नेके-से गम्भीर घोषमें बारम्बार गर्जना कर रही थी॥ २४॥ वह मानवी स्त्रीका वेष धारण करके छकड़ेके धुरेके नीचे छिप गयी। उस समय उसके स्तनोंमें इतना दूध बढ़ आया था कि उनमें पीड़ा होने लगी थी, इसीलिये वह दूधकी वर्षा-सी करने लगी। उस निशीथ-कालमें जब सब लोग सो गये थे, उसने कृष्णके मुखमें अपना स्तन दे दिया॥ २५॥ लाला कन्हैया उस स्तनको उसके प्राणोंके साथ ही पी गया, उसका स्तन कट गया और वह पक्षिणी घोर चीत्कार करके सहसा पृथ्वीपर गिर पड़ी॥ २६॥ उसके उस शब्दसे संत्रस्त होकर नन्दगोप, दूसरे-दूसरे गोप तथा अत्यन्त व्याकुल हुई यशोदा—ये सब-के-सब भयके मारे जाग उठे॥ २७॥ उन्होंने देखा, पूतना पृथ्वीपर अचेत होकर पड़ी है। उसका स्तन कट गया है और वह ऐसी प्रतीत होती है, मानो वज्रसे विदीर्ण कर दी गयी हो॥ २८॥

इदं किं त्विति संत्रस्ताः कस्येदं कर्म चेत्यपि।
नन्दगोपं पुरस्कृत्य गोपास्ते पर्यवारयन्॥ २९

यह क्या है? किसका यह कर्म है? ऐसी बातें करते हुए वे गोप भयभीत हो गये और नन्दजीको आगे करके पूतनाको घेरकर खड़े हो गये॥ २९॥

नाध्यगच्छन्त च तदा हेतुं तत्र कदाचन।
आश्चर्यमाश्चर्यमिति ब्रुवन्तोऽनुययुर्गृहान्॥ ३०

वे उस समय उस घटनाके कारणका पता कदापि न लगा सके और 'आश्चर्य है! आश्चर्य है!!' ऐसा कहते हुए अपने-अपने घरोंको चले गये॥ ३०॥

गतेषु तेषु गोपेषु विस्मितेषु यथागृहम्।
यशोदां नन्दगोपस्तु पप्रच्छ गतसम्भ्रमः॥ ३१

उन विस्मित हुए गोपोंके अपने-अपने घर चले जानेपर सम्भ्रमरहित हुए नन्दगोपने यशोदासे पूछा— ॥ ३१॥

कोऽयं विधिर्न जानामि विस्मयो मे महानयम्।
पुत्रस्य मे भयं तीव्रं भीरुत्वं समुपागतम्॥ ३२

'विधाताका यह कैसा विधान है, यह मेरी समझमें नहीं आता। इस घटनासे मुझे महान् विस्मय हो रहा है। यहाँ मेरे पुत्रके लिये तीव्र भय उपस्थित हुआ है, जिससे हमलोगोंमें भीरुता आ गयी है'॥ ३२॥

यशोदा त्वब्रवीद् भीता नार्य जानामि किं त्विदम्।
दारकेण सहानेन सुप्ता शब्देन बोधिता॥ ३३

यह सुनकर यशोदाने भयभीत होकर कहा—'आर्य! मैं भी नहीं जानती कि यह क्या है? मैं तो इस बच्चेके साथ सोयी थी। इस राक्षसीके चीत्कारसे ही जग गयी हूँ'॥ ३३॥

यशोदायामजानन्त्यां नन्दगोपः सबान्धवः।
कंसाद् भयं चकारोग्रं विस्मयं च जगाम ह॥ ३४

जब यशोदाने भी अपनी अनभिज्ञता प्रकट की, तब बन्धु-बान्धवोंसहित नन्दगोप कंससे अत्यन्त भय मानने लगे और मन-ही-मन विस्मयको प्राप्त हुए॥ ३४॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे विष्णुपर्वणि शिशुचर्यायां शकटभङ्गपूतनावधे षष्ठोऽध्यायः॥ ६॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत विष्णुपर्वमें श्रीकृष्णकी बाललीलाके प्रसङ्गमें शकट-भङ्ग और पूतनाका वधविषयक छठा अध्याय पूरा हुआ॥ ६॥

सप्तमोऽध्यायः

श्रीकृष्ण और बलरामका व्रजमें घुटनोंके बल चलना तथा श्रीकृष्णका उलूखलमें बँधकर यमलार्जुन-भङ्गकी लीला करना

वैशम्पायन उवाच

काले गच्छति तौ सौम्यौ दारकौ कृतनामकौ।
कृष्णसंकर्षणौ चोभौ रिङ्गिणौ समपद्यताम्॥ १

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! कुछ काल बीतनेपर वे दोनों सौम्य बालक, जिनके नामकरण-संस्कार हो चुके थे और जो कृष्ण और संकर्षण नामसे प्रसिद्ध थे, घुटनोंके बल चलने-फिरने लगे॥ १॥

तावन्योन्यगतौ बालौ बाल्यादेवैकतां गतौ।
एकमूर्तिधरौ कान्तौ बालचन्द्रार्कवर्चसौ॥ २

बचपनसे ही वे दोनों बच्चे एक-दूसरेमें अन्तर्भूत-से होकर एकताको प्राप्त हो गये थे। ऐसा जान पड़ता था कि ये दोनों एक ही शरीर धारण करते हैं। वे दोनों भाई बालचन्द्र और बालसूर्यके समान कान्तिमान् थे॥ २॥

एकनिर्माणनिर्मुक्तावेकशय्यासनाशनौ।
एकवेषधरावेकं पुष्यमाणौ शिशुव्रतम्॥ ३

वे दोनों मानो एक ही साँचेके ढले थे (अथवा अभिन्न और जन्मरहित थे)। एक-सी शय्या, आसन और भोजनका उपभोग करते थे। एक समान वेष धारण करते थे और एक ही शिशुव्रतका पालन करनेवाले थे॥ ३॥

एककार्यान्तरगतावेकदेहौ द्विधाकृतौ।
एकचर्यौ महावीर्यावेकस्य शिशुतां गतौ॥ ४

एकप्रमाणौ लोकानां देववृत्तान्तमानुषौ।
कृत्स्नस्य जगतो गोपौ संवृत्तौ गोपदारकौ॥ ५

अन्योन्यव्यतिषक्ताभिः क्रीडाभिरभिशोभितौ।
अन्योन्यकिरणग्रस्तौ चन्द्रसूर्याविवाम्बरे॥ ६

विसर्पन्तौ तु सर्वत्र सर्पभोगभुजावुभौ।
रेजतुः पांसुदिग्धाङ्गौ दृप्तौ कलभकाविव॥ ७

क्वचिद् भस्मप्रदीप्ताङ्गौ करीषप्रोक्षितौ क्वचित्।
तौ तत्र पर्यधावेतां कुमाराविव पावकी॥ ८

क्वचिज्जानुभिरुद्घृष्टैः सर्पमाणौ विरेजतुः।
क्रीडन्तौ वत्सशालासु शकृद्दिग्धाङ्गमूर्धजौ॥ ९

शुशुभाते श्रिया जुष्टावानन्दजननौ पितुः।
जनं च विप्रकुर्वाणौ विहसन्तौ क्वचित् क्वचित्॥ १०

तौ तत्र कौतूहलिनौ मूर्धजव्याकुलेक्षणौ।
रेजतुश्चन्द्रवदनौ दारकौ सुकुमारकौ॥ ११

अतिप्रसक्तौ तौ दृष्ट्वा सर्वव्रजविचारिणौ।
नाशकत् तौ वारयितुं नन्दगोपः सुदुर्मदौ॥ १२

ततो यशोदा संक्रुद्धा कृष्णं कमललोचनम्।
आनाय्य शकटीमूले भर्त्सयन्ती पुनः पुनः॥ १३

दाम्ना चैवोदरे बद्ध्वा प्रत्यबन्धदुलूखले।
यदि शक्तोऽसि गच्छेति तमुक्त्वा कर्म साकरोत्॥ १४

वे एक ही कार्यमें संलग्न थे और एक ही शरीरके दो भाग-से प्रतीत होते थे। उनकी दिनचर्या एक-सी थी। वे महापराक्रमी बालक एक ही पिताके शिशु थे॥ ४॥ लोगोंकी दृष्टिमें वे एक-जैसे कदके थे। उन्होंने देवताओंके 'दुष्टदमन और धर्मस्थापन' रूप सिद्धान्तके पालनके लिये मानव-शरीर ग्रहण किया था। वे सम्पूर्ण जगत्‌के संरक्षक होकर भी गोपबालक बन गये थे॥ ५॥ वे दोनों भाई एक-दूसरेसे मिली हुई क्रीड़ाओंद्वारा सुशोभित होते थे, जैसे आकाशमें चन्द्रमा और सूर्य एक-दूसरेकी किरणोंसे बँधकर एक साथ हो गये हों॥ ६॥ उन दोनोंकी भुजाएँ सर्पोंके शरीरके समान जान पड़ती थीं। वे उनके द्वारा सब ओर चलते-फिरते और सरकते थे। उस समय धूलसे भरे हुए शरीरवाले वे दोनों भाई दर्पभरे दो हस्ति-शावकोंके समान शोभा पाते थे॥ ७॥ कहीं तो उनके दीप्तिमान् अङ्गोंमें राख लिपट जाती और कहीं वे करसी (कंडोंके चूर्ण)-से नहा उठते थे। वे वहाँ अग्निके दो कुमार शाख और विशाखके समान सुशोभित होते हुए सब ओर दौड़ लगाते थे॥ ८॥ कभी घिसे हुए घुटनोंके बल सरकते हुए श्रीकृष्ण-बलराम बड़ी शोभा पाते थे। कभी वे बछड़ोंके स्थानोंमें जाकर खेलने लगते और सारे अङ्गों तथा सिरके बालोंमें गोबर लपेट लेते थे॥ ९॥ कान्तिरूपिणी श्रीसे सेवित होकर वे दोनों भाई अनुपम शोभा पाते और पिताको आनन्द प्रदान करते थे। कभी-कभी बालस्वभाववश किसी-किसीके विपरीत कार्य कर बैठते और जोर-जोरसे हँसने लगते थे॥ १०॥ वे सदा क्रीड़ा-कौतूहलमें ही लगे रहते थे। उनके सिरके घुँघराले बाल नेत्रोंपर लटककर उन्हें व्याकुल एवं चञ्चल कर देते थे। उन दोनोंके मुख चन्द्रमाके समान सुन्दर थे, अतः वे सुकुमार बालक बड़े सुहावने लगते थे॥ ११॥ वे क्रीड़ामें ही आसक्त हो सारे व्रजमें विचरते रहते थे। उन दोनों अत्यन्त मतवाले बालकोंको सर्वत्र जाते देखकर भी नन्दगोप रोक नहीं पाते थे॥ १२॥ तब एक दिन यशोदा मैया अत्यन्त कुपित हो कमलनयन श्रीकृष्णको एक गाड़ीके पास ले जाकर बारम्बार डाँटने-फटकारने लगी। इतना ही नहीं, उसने उनके पेट और कमरमें रस्सी बाँधकर उस रस्सीको ओखलीमें कस दिया और कहा—'अब जा सको तो जाओ।' इतना कहकर वह घरके काम-धंधोंमें लग गयी॥ १३-१४॥

व्यग्रायां तु यशोदायां निर्जगाम ततोऽङ्गणात्।
शिशुलीलां ततः कुर्वन् कृष्णो विस्मापयन् व्रजम्।
सोऽङ्गणान्निःसृतः कृष्णः कर्षमाण उलूखलम्॥ १५

यमलाभ्यां प्रवृद्धाभ्यामर्जुनाभ्यां चरन् वने।
मध्यान्निश्चक्राम तयोः कर्षमाण उलूखलम्॥ १६

तत् तस्य कर्षतो बद्धं तिर्यग्गतमुलूखलम्।
लग्नं ताभ्यां समूलाभ्यामर्जुनाभ्यां चकर्ष च॥ १७

तावर्जुनौ कृष्यमाणौ तेन बालेन रंहसा।
समूलविटपौ भग्नौ स तु मध्ये जहास वै॥ १८

निदर्शनार्थं गोपानां दिव्यं स्वबलमास्थितः।
तद्दाम तस्य बालस्य प्रभावादभवद् दृढम्॥ १९

यमुनातीरमार्गस्था गोप्यस्तं ददृशुः शिशुम्।
क्रन्दन्त्यो विस्मयन्त्यश्च यशोदां ययुरङ्गनाः॥ २०

तास्तु सम्भ्रान्तवदना यशोदामूचुरङ्गनाः।
एह्यागच्छ यशोदे त्वं सम्भ्रमात् किं विलम्बसे॥ २१

यौ तावर्जुनवृक्षौ तु व्रजे सत्योपयाचनौ।
पुत्रस्योपरि तावेतौ पतितौ ते महीरुहौ॥ २२

दृढेन दाम्ना तत्रैव बद्धो वत्स इवोदरे।
जहास वृक्षयोर्मध्ये तव पुत्रः स बालकः॥ २३

उत्तिष्ठ गच्छ दुर्मेधे मूढे पण्डितमानिनि।
पुत्रमानय जीवन्तं मुक्तं मृत्युमुखादिव॥ २४

सा भीता सहसोत्थाय हाहाकारं प्रकुर्वती।
तं देशमगमद् यत्र पातितौ तावुभौ द्रुमौ॥ २५

सा ददर्श तयोर्मध्ये द्रुमयोरात्मजं शिशुम्।
दाम्ना निबद्धमुदरे कर्षमाणमुलूखलम्॥ २६

सगोपीगोपवृद्धश्च समुवाच व्रजस्तदा।
पर्यागच्छन्त ते द्रष्टुं गोपेषु महदद्भुतम्॥ २७

यशोदाके कार्यमें तत्पर होते ही लाला कन्हैया बाल-लीला करता और व्रजके लोगोंको विस्मयमें डालता हुआ आँगनसे निकला। वह ओखलीको घसीटता हुआ वनकी ओर चला। मार्गमें एक साथ उत्पन्न हुए दो अर्जुनके वृक्ष थे, जो बहुत बड़े हो गये थे। कन्हैया अपनी ओखलीको खींचता हुआ उन्हीं दोनों वृक्षोंके बीचसे होकर निकला॥ १५-१६॥ खींचते हुए कन्हैयाके उदरसे बँधी हुई वह ओखली टेढ़ी होकर उन दोनों अर्जुन-वृक्षोंकी जड़में जा लगी और वहीं अटक गयी। फिर तो उसने उन वृक्षोंसहित ओखलीको जोरसे खींचा॥ १७॥ बालक कन्हैयाद्वारा वेगसे खींचे गये वे दोनों अर्जुन-वृक्ष जड़ और शाखाओंसहित टूटकर गिर पड़े और वह अपने दिव्य बलका आश्रय ले गोपोंको दिखानेके लिये उन दोनों वृक्षोंके बीचमें खड़ा-खड़ा हँसने लगा। उस बालकके प्रभावसे वह रस्सी और भी दृढ़ हो गयी। यमुनातीरके मार्गपर खड़ी हुई गोपियोंने जब बाल कृष्णको उस अवस्थामें देखा, तब वे आश्चर्य-चकित हो करुण-क्रन्दन करती हुई यशोदाजीके पास गयीं॥ १८—२०॥ उन सबके मुखपर घबराहट छायी हुई थी। उन गोपाङ्गनाओंने यशोदासे कहा—'यशोदाजी! वेगसे आओ! आओ!! सम्भ्रमके कारण तुम विलम्ब क्यों करती हो? व्रजमें वे जो दोनों अर्जुन-वृक्ष थे, जहाँ हमारी प्रत्येक याचना और मनौती सफल होती थी, वे दोनों वृक्ष तुम्हारे पुत्रके ऊपर गिर पड़े॥ २१-२२॥ जैसे बँधा हुआ बछड़ा हो, उसी प्रकार उदरमें मजबूत रस्सीसे बँधा हुआ तुम्हारा वह बालक उन वृक्षोंके बीचमें खड़ा-खड़ा हँस रहा था॥ २३॥ अपनेको पण्डित माननेवाली मूढ़ दुर्बुद्धि यशोदे! उठो। चलो हमारे साथ और अपने जीवित पुत्रको, जो मानो मौतके मुखसे बचकर निकला है, घर ले आओ'॥ २४॥ यशोदा भयभीत हो सहसा उठी और हाहाकार करती हुई उस स्थानपर गयी, जहाँ उसके लालाने उन दोनों वृक्षोंको धराशायी कर दिया था॥ २५॥ उसने अपने पुत्रको उन दोनों वृक्षोंके बीचमें खड़ा देखा, जो रस्सीसे पेटमें बँधी हुई ओखलीको अपनी ओर खींच रहा था॥ २६॥ गोपियों और बड़े-बूढ़े गोपोंसहित सारे व्रजमें उस समय इसी घटनाकी चर्चा होने लगी। गोपोंके यहाँ जो यह महान् और अद्भुत घटना घटित हुई थी, इसे देखनेके लिये चारों ओरसे लोग आने लगे॥ २७॥

जजल्पुस्ते यथाकामं गोपा वनविचारिणः।
केनेमौ पातितौ वृक्षौ घोषस्यायतनोपमौ॥ २८

विना वातं विना वर्षं विद्युत्प्रपतनं विना।
विना हस्तिकृतं दोषं केनेमौ पातितौ द्रुमौ॥ २९

अहो बत न शोभेतां विमूलावर्जुनाविमौ।
भूमौ निपतितौ वृक्षौ वितोयौ जलदाविव॥ ३०

यदीमौ घोषरचितौ घोषकल्याणकारिणौ।
नन्दगोप प्रसन्नौ ते द्रुमावेवं गतावपि।
यच्च ते दारको मुक्तो विपुलाभ्यामपि क्षितौ॥ ३१

औत्पातिकमिदं घोषे तृतीयं वर्तते त्विह।
पूतनाया विनाशश्च द्रुमयोः शकटस्य च॥ ३२

अस्मिन् स्थाने च वासोऽयं घोषस्यास्य न युज्यते।
उत्पाता ह्यत्र दृश्यन्ते कथयन्तो न शोभनम्॥ ३३

नन्दगोपस्तु सहसा मुक्त्वा कृष्णमुलूखलात्।
निवेश्य चाङ्के सुचिरं मृतं पुनरिवागतम्॥ ३४

नातृप्यत् प्रेक्षमाणो वै कृष्णं कमललोचनम्।
ततो यशोदां गर्हन् वै नन्दगोपो विवेश ह॥ ३५

स च गोपजनः सर्वो व्रजमेव जगाम ह।
स च तेनैव नाम्ना तु कृष्णो वै दामबन्धनात्।
गोष्ठे दामोदर इति गोपीभिः परिगीयते॥ ३६

एतदाश्चर्यभूतं हि बालस्यासीद् विचेष्टितम्।
कृष्णस्य भरतश्रेष्ठ घोषे निवसतस्तदा॥ ३७

वनमें विचरनेवाले वे गोप अपनी इच्छाके अनुसार वहाँ आकर कहने लगे—'अहो! व्रजके ये दोनों वृक्ष देवमन्दिरके समान थे, इनको किसने गिरा दिया ?॥ २८॥ न आँधी चली, न वर्षा हुई, न बिजली गिरी और न किसी हाथीने ही आकर टक्कर मारा, इन सब दोषोंके बिना ही ये दोनों वृक्ष किसके द्वारा गिराये गये ?॥ २९॥ अहो! जड़से अलग हो जानेके कारण पृथ्वीपर गिरे हुए ये दोनों अर्जुन-वृक्ष जलहीन बादलोंके समान शोभारहित हो गये हैं॥ ३०॥ नन्दगोप! यदि ये दोनों वृक्ष इस गोष्ठमें लगाये गये थे और समस्त घोषवासियोंका कल्याण करते थे तो आज इस अवस्थामें पहुँचकर भी ये दोनों आपपर प्रसन्न ही हैं, जिससे विशाल होनेपर भी इन वृक्षोंने पृथ्वीपर गिरते समय तुम्हारे बालकको जीवित छोड़ दिया है॥ ३१॥ इस व्रजमें यह तीसरी बार औत्पातिक घटना हुई है। पूतनाका विनाश, छकड़ेका उलटना और वृक्षोंका धराशायी होना—ये तीन उपद्रव यहाँ हो चुके॥ ३२॥ इस स्थानपर हमारे इस व्रजका रहना अब उचित नहीं जान पड़ता; क्योंकि यहाँ अशुभ परिणामकी सूचना देनेवाले उत्पात दिखायी देने लगे हैं'॥ ३३॥ इतनेहीमें नन्दगोपने सहसा बन्धन खोलकर श्रीकृष्णको ओखलीसे मुक्त कर दिया और मानो वह बालक मरकर पुनः जी उठा हो, ऐसा मानते हुए वे देरतक उसे अपनी गोदमें चिपकाये रहे। उस समय वे कमलनयन श्रीकृष्णकी ओर देखते-देखते तृप्त नहीं होते थे। तदनन्तर नन्दगोप यशोदाकी निन्दा करते हुए घरमें गये, साथ ही अन्य सब गोप भी व्रजमें ही पधारे। उस दाम अर्थात् रस्सीसे उदरमें बाँधे जानेके कारण श्रीकृष्णका नाम दामोदर हो गया। व्रजमें गोपियाँ उसी नामसे उनकी लीलाओंका गान करने लगीं॥ ३४—३६॥ भरतश्रेष्ठ! व्रजमें निवास करते समय बालक श्रीकृष्णकी ऐसी ही आश्चर्यमयी लीलाएँ होती रहती थीं॥ ३७॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे विष्णुपर्वणि शिशुचर्यायां यमलार्जुनभङ्गो नाम सप्तमोऽध्यायः॥ ७॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत विष्णुपर्वमें बाललीलाके प्रसङ्गमें यमलार्जुनभङ्गविषयक सातवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ७॥

अष्टमोऽध्यायः

श्रीकृष्ण-बलरामकी बालचर्या, श्रीकृष्णके द्वारा व्रजको अन्यत्र ले जानेकी चेष्टा और अपने शरीरसे भेड़ियोंको उत्पन्न करके उनका समूचे व्रजको डराना

वैशम्पायन उवाच

एवं तौ बाल्यमुत्तीर्णौ कृष्णसंकर्षणावुभौ।
तस्मिन्नेव व्रजस्थाने सप्तवर्षौ बभूवतुः॥ १

नीलपीताम्बरधरौ पीतश्वेतानुलेपनौ।
बभूवतुर्वत्सपालौ काकपक्षधरावुभौ॥ २

पर्णवाद्यं श्रुतिसुखं वादयन्तौ वराननौ।
शुशुभाते वनगतौ त्रिशीर्षाविव पन्नगौ॥ ३

मायूराङ्गदकर्णौ तु पल्लवापीडधारिणौ।
वनमालाकुलोरस्कौ द्रुमपोताविवोद्गतौ॥ ४

अरविन्दकृतापीडौ रज्जुयज्ञोपवीतिनौ।
सशिक्यतुम्बकरकौ गोपवेणुप्रवादकौ॥ ५

क्वचिद्धसन्तावन्योन्यं क्रीडमानौ क्वचित् क्वचित्।
पर्णशय्यासु संसुप्तौ क्वचिन्निद्रान्तरेक्षणौ॥ ६

एवं वत्सान् पालयन्तौ शोभयन्तौ महावनम्।
चञ्चूर्यन्तौ रमन्तौ स्म किशोराविव चञ्चलौ॥ ७

अथ दामोदरः श्रीमान् संकर्षणमुवाच ह।
आर्य नास्मिन् वने शक्यं गोपालैः सह क्रीडितुम्॥ ८

अवगीतमिदं सर्वमावाभ्यां भुक्तकाननम्।
प्रक्षीणतृणकाष्ठं च गोपैर्मथितपादपम्॥ ९

घनीभूतानि यान्यासन् काननानि वनानि च।
तान्याकाशनिकाशानि दृश्यन्तेऽद्य यथाऽसुखम्॥ १०

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! इस प्रकार श्रीकृष्ण और संकर्षण दोनों भाई उसी व्रजमें बाल्यावस्थाको पार करके सात वर्षके हो गये॥ १॥ इनमेंसे एक (बलराम) तो नील वस्त्र धारण करते थे और दूसरे (श्रीकृष्ण) पीत वस्त्र। दोनोंके चन्दन और अङ्गराग भी क्रमशः पीले और श्वेत थे। दोनों ही काकपक्ष धारण करते थे। अब वे दोनों भाई बछड़े चराने लगे॥ २॥ उन दोनोंके मुख बड़े सुन्दर थे। वे वनमें जाकर कानोंको सुख देनेवाले पत्तोंके बाजे (पिपीहरी या सीटी) बजाते हुए तीन सिरवाले सर्पोंके समान शोभा पाते थे*॥ ३॥ मोरपङ्खके ही बाजूबंद और कर्णभूषण पहने तथा पत्तोंके ही मुकुट धारण किये वे दोनों भाई वृक्षके निकले हुए नये पौधोंके समान दिखायी देते थे। उनका वक्षःस्थल वनमालासे व्याप्त था॥ ४॥ कमलपुष्पोंके शिरोभूषण और रस्सीके यज्ञोपवीत धारण करके वे दोनों ग्वालबालोंके समान मुरली बजाया करते थे। उनके साथ छींका, तुम्बी और करक (करुआ या पुरवा) भी थे॥ ५॥ कहीं एक-दूसरेकी ओर देखकर हँसते-हँसाते, कहीं भाँति-भाँतिके खेल खेलते और कहीं पत्तोंके बिछौनोंपर सोकर आँखोंमें नींद भर लेते थे॥ ६॥ इस प्रकार बछड़े चराते, महावनकी शोभा बढ़ाते, बारम्बार सब ओर चक्कर लगाते और चञ्चल गतिवाले अश्वशावकोंके समान वनमें विहार करते थे॥ ७॥ तदनन्तर एक दिन शोभासम्पन्न दामोदर श्रीकृष्णने अपने भाई संकर्षणसे कहा—'आर्य! अब इस वनमें ग्वालबालोंके साथ खेलना सम्भव नहीं है। हमलोगोंने इस सारे वनको अपने उपभोगमें लाकर इसकी शोभा-सम्पत्ति नष्ट कर दी है। यहाँकी घास चर ली गयी और काठ भी तोड़ लिये गये हैं। गोपोंने यहाँके एक-एक वृक्षको मथ डाला है॥ ८-९॥ जो वन और कानन सघन थे, वे अब आकाशके समान सूने दिखायी देते हैं। इन्हें देखकर अब सुख नहीं मिलता॥ १०॥

* ताड़ आदिके पत्तेको मोड़कर उसके सिरेपर छोटा-सा छेद रखकर उसे दोनों हाथसे पकड़े हुए बच्चे मुँहमें डालकर फूँकते हैं, उसमेंसे सीटी, बिगुल या बाँसुरी-जैसी आवाज निकलती है। उसे बजाते समय दोनों हाथ और सिर ऊँचाईपर रहते हैं। इन्हींकी सर्पके तीन सिरोंसे उपमा दी गयी है।

गोवाटेष्वपि ये वृक्षाः परिवृत्तार्गलेषु च।
सर्वे गोष्ठाग्निषु गताः क्षयमक्षयवर्चसः॥ ११

संनिकृष्टानि यान्यासन् काष्ठानि च तृणानि च।
तानि दूरावकृष्टासु मार्गितव्यानि भूमिषु॥ १२

अरण्यमिदमल्पोदमल्पकक्षं निराश्रयम्।
अन्वेषितव्यविश्रामं दारुणं विरलद्रुमम्॥ १३

अकर्मण्येषु वृक्षेषु स्थितविप्रस्थितद्विजम्।
संवासस्यास्य महतो जनेनोत्सादितद्रुमम्॥ १४

निरानन्दं निरास्वादं निष्प्रयोजनमारुतम्।
निर्विहङ्गमिदं शून्यं निर्व्यञ्जनमिवाशनम्॥ १५

विक्रीयमाणैः काष्ठैश्च शाकैश्च वनसम्भवैः।
उच्छिन्नसंचयतृणैर्घोषोऽयं नगरायते॥ १६

शैलानां भूषणं घोषो घोषाणां भूषणं वनम्।
वनानां भूषणं गावस्ताश्चास्माकं परा गतिः॥ १७

तस्मादन्यद् वनं यामः प्रत्यग्रयवसेन्धनम्।
इच्छन्त्यनुपभुक्तानि गावो भोक्तुं तृणानि च॥ १८

तस्माद् वनं नवतृणं गच्छन्तु धनिनो व्रजाः।
न द्वारबन्धावरणा न गृहक्षेत्रिणस्तथा।
प्रशस्ता वै व्रजा लोके यथा वै चक्रचारिणः॥ १९

शकृन्मूत्रेषु तेष्वेव जातक्षाररसायनम्।
न तृणं भुञ्जते गावो नापि तत् पयसे हितम्॥ २०

'जिनके फाटकोंमें गोलाकार कुंडे लगे हैं, उन गोशालाओंमें भी अमिट शोभावाले जो वृक्ष थे, वे सब गोष्ठकी आगमें जलकर नष्ट हो गये॥ ११॥ जो तृण और काष्ठ बहुत निकट थे, वे दूरतकको जोती हुई भूमियोंमें अब ढूँढ़नेके योग्य रह गये हैं॥ १२॥ इस वनमें जल बहुत थोड़ा है, सूखे काठ और तृण भी बहुत कम हैं, यहाँ आश्रय लेनेयोग्य कोई स्थान नहीं है, यहाँ विश्रामके लिये भूमि खोजनी पड़ती है, विरले ही वृक्ष बच गये हैं, अतः इसकी बड़ी दारुण अवस्था हो गयी है॥ १३॥ यहाँके वृक्ष अब कामके नहीं रहे (इनमें फल-फूलका अभाव हो गया है)। इनपर जो पक्षी रहते थे, वे अब अन्यत्र प्रस्थान कर चुके हैं। इस विशाल बस्तीके लोगोंने यहाँके वृक्षोंको उजाड़ कर दिया है॥ १४॥ यहाँ कोई आनन्द नहीं रहा, फलोंका आस्वाद दुर्लभ हो गया। यहाँ वायुका चलना भी निष्फल है (क्योंकि न तो वह सुगन्ध देती है और न फल ही गिराती है—इन दोनों वस्तुओंका यहाँ सर्वथा अभाव है)। पक्षियोंसे रहित यह सूना वन बिना व्यञ्जनके भोजनकी भाँति अच्छा नहीं लगता॥ १५॥ यहाँके सूखे काठ और इस वनमें होनेवाले शाक प्रतिदिन बेचे जा रहे हैं। यहाँ जो ढेर-के-ढेर तृण थे, उनका उच्छेद हो गया; इससे यह घोष (व्रज) नगरके समान जान पड़ता है॥ १६॥ पर्वतोंका भूषण है घोष (गोष्ठ), घोषोंका भूषण है वन और वनोंका आभूषण हैं गौएँ। वे गौएँ ही हमलोगोंकी परम गति (सबसे बड़ा सहारा) हैं॥ १७॥ अतः अब हम दूसरे वनमें चलें, जहाँ नयी-नयी घास और ईंधनकी अधिकता हो। हमारी गौएँ उन नयी-नयी घासोंको चरना चाहती हैं, जो अबतक चरी नहीं गयी हैं॥ १८॥ अतः जो व्रज धनसे सम्पन्न हों, वे उस वनमें चलें जहाँ नयी-नयी घास उपलब्ध हो। जिनमें दरवाजे बँध गये हैं और चारों ओरसे बाड़ लग गये हैं, जहाँ स्थायी घर बन गये और खेत कर लिये गये; ऐसे व्रज लोकमें अच्छे नहीं माने जाते। उन्मुक्त विचरनेवाले हंसोंके समान बन्धनरहित होकर विभिन्न स्थानोंमें घूमते रहनेवाले व्रज ही श्रेष्ठ हैं॥ १९॥ उन्हीं गोबर-मूत्रोंके ढेरपर जो तृण पैदा होते हैं अथवा अन्यत्र पैदा हुए तृणोंपर जब गोबर-गोमूत्र पड़ जाते हैं, तब उनमें क्षार एवं रसायनके गुण आ जाते हैं; अतः गौएँ उन घासोंको चाहसे नहीं खाती हैं तथा वे तृण दूधके लिये भी हितकारी नहीं होते हैं'॥ २०॥

स्थलीप्रायासु रथ्यासु नवासु वनराजिषु।
चरावः सहितौ गोभिः क्षिप्रं संवाह्यतां व्रजः॥ २१

श्रूयते हि वनं रम्यं पर्याप्ततृणसंस्तरम्।
नाम्ना वृन्दावनं नाम स्वादुवृक्षफलोदकम्॥ २२

अझिल्लिकण्टकवनं सर्वैर्वनगुणैर्युतम्।
कदम्बपादपप्रायं यमुनातीरसंश्रितम्॥ २३

स्निग्धशीतानिलवनं सर्वर्तुनिलयं शुभम्।
गोपीनां सुखसंचारं चारुचित्रवनान्तरम्॥ २४

तत्र गोवर्धनो नाम नातिदूरे गिरिर्महान्।
भ्राजते दीर्घशिखरो नन्दनस्येव मन्दरः॥ २५

मध्ये चास्य महाशाखो न्यग्रोधो योजनोच्छ्रितः।
भाण्डीरो नाम शुशुभे नीलमेघ इवाम्बरे॥ २६

मध्येन चास्य कालिन्दी सीमन्तमिव कुर्वती।
प्रयाता नन्दनस्येव नलिनी सरितां वरा॥ २७

तत्र गोवर्धनं चैव भाण्डीरं च वनस्पतिम्।
कालिन्दीं च नदीं रम्यां द्रक्ष्यावश्चरतः सुखम्॥ २८

तत्रायं कल्प्यतां घोषस्त्यज्यतां निर्गुणं वनम्।
संत्रासयावो भद्रं ते किञ्चिदुत्पाद्य कारणम्॥ २९

एवं कथयतस्तस्य वासुदेवस्य धीमतः।
प्रादुर्बभूवुः शतशो रक्तमांसवसाशनाः॥ ३०

घोराश्चिन्तयतस्तस्य स्वतनूरुहजास्तदा।
विनिष्पेतुर्भयकराः सर्वशः शतशो वृकाः॥ ३१

निष्पतन्ति स्म बहवो व्रजस्योत्सादनाय वै।
वृकान् निष्पतितान् दृष्ट्वा गोषु वत्सेष्वथो नृषु॥ ३२

'आजकल इस वनकी सारी गलियाँ स्थल-सी हो गयी हैं। उनमें घास-फूँसका नाम भी नहीं रह गया है; अतः चलिये, हम दोनों गौओंके साथ नूतन वन-श्रेणियोंमें विचरें। अब शीघ्र ही यहाँसे व्रजको अन्यत्र ले जाना चाहिये॥ २१॥ सुना जाता है कि वृन्दावन नामक वन बड़ा ही रमणीय है। वहाँ पर्याप्त घास फैली हुई है। वहाँके वृक्षोंमें स्वादिष्ठ फल लगे हैं और वहाँका जल भी सुस्वादु है॥ २२॥ उस वनमें न झिल्लियाँ (झींगुर) हैं, न काँटे। उसमें सभी वन-सम्बन्धी गुणोंका संयोग है। वहाँ अधिकतर कदम्बके वृक्ष हैं तथा वह वन यमुनाके तटपर ही स्थित है॥ २३॥ उसमें सदा स्निग्ध एवं शीतल वायु चलती रहती है। वहाँ सभी ऋतुओंका निवास है। वह वन बड़ा सुन्दर एवं सुखद है। वहाँ गोपियाँ बड़े सुखसे सब ओर विचर सकती हैं। वृन्दावनके भीतरी भागमें और भी बहुत-से विचित्र एवं मनोहर वन हैं॥ २४॥ वहाँ गोवर्धन नामक महान् पर्वत है, जो उस वनसे अधिक दूर नहीं है। उसके बड़े-बड़े शिखर हैं। जैसे नन्दनवनके पास मन्दराचलकी शोभा होती है, उसी प्रकार वृन्दा-वनके निकट गोवर्धन सुशोभित होता है॥ २५॥ उस वनके मध्यभागमें विशाल शाखाओंसे सुशोभित एक बरगदका वृक्ष है, जो एक योजन ऊँचा है। उसका नाम है भाण्डीर वट। वह आकाशमें श्याम मेघके समान शोभा पाता है॥ २६॥ जैसे नन्दनवनके बीचमें सरिताओंसे श्रेष्ठ नलिनी प्रवाहित होती है, उसी प्रकार वृन्दावनके मध्यभागमें सीमन्त-सा बनाती हुई कालिन्दी बहती है॥ २७॥ हमलोग वहाँ चलनेपर गोवर्धन पर्वत, भाण्डीर वट तथा रमणीय कालिन्दी नदीका सुखपूर्वक दर्शन करेंगे॥ २८॥ 'वहीं चलकर इस व्रजको बसाया जाय और इस गुणहीन वनको छोड़ दिया जाय। भैया! आपका भला हो, कोई नवीन कारण उत्पन्न करके हम इन व्रजवासियोंको डरावें'॥ २९॥ बुद्धिमान् वसुदेव-नन्दन श्रीकृष्ण ऐसा कह ही रहे थे कि उनके रोम-रोमसे सैकड़ों भयानक भेड़िये उत्पन्न होने लगे, जो रक्त, मांस और वसाका आहार करनेवाले थे। उनके चिन्तन करते ही सब ओर सैकड़ों भयंकर बृक निकल पड़े थे॥ ३०-३१॥ व्रजको वहाँसे उजाड़नेके लिये जब श्रीकृष्णकी इच्छाके अनुसार बहुत-से भेड़िये प्रकट होने लगे, तब उन्हें देखकर गौओं, बछड़ों, मनुष्यों तथा

गोपीषु च यथाकामं व्रजे त्रासोऽभवन्महान्।
ते वृकाः पञ्चबद्धाश्च दशबद्धास्तथा परे॥ ३३
त्रिंशद्विंशतिबद्धाश्च शतबद्धास्तथा परे।
निश्चेरुस्तस्य गात्रेभ्यः श्रीवत्सकृतलक्षणाः॥ ३४
कृष्णस्य कृष्णवदना गोपानां भयवर्धनाः।
भक्षयद्भिश्च तैर्वत्सांस्त्रासयद्भिश्च गोव्रजान्॥ ३५
निशि बालान् हरद्भिश्च वृकैरुत्साद्यते व्रजः।
न वने शक्यते गन्तुं न गाश्च परिरक्षितुम्॥ ३६
न वनात् किंचिदाहर्तुं न च वा तरितुं नदीम्।
त्रस्ता ह्युद्विग्नमनसोऽगतास्तस्मिन् वनेऽवसन्॥ ३७
एवं वृकैरुदीर्णैस्तु व्याघ्रतुल्यपराक्रमैः।
व्रजो निष्पन्दचेष्टः स एकस्थानचरः कृतः॥ ३८

गोपाङ्गनाओंमें अथवा यों कहिये सम्पूर्ण व्रजमें महान् त्रास छा गया। वे भेड़िये पाँच, दस, बीस, तीस तथा सौ-सौके झुंड बनाकर श्रीकृष्णके अङ्गोंसे निकल रहे थे। वे सभी श्रीवत्सके चिह्नसे सुशोभित थे॥ ३२—३४॥ श्रीकृष्णके अङ्गोंसे प्रकट हुए वे काले मुखवाले बृक गोपोंका भय बढ़ा रहे थे। वे बछड़ोंको खा जाते, गौओंके झुंडोंको त्रास देते तथा रातमें बालकोंका अपहरण कर लेते थे। इस प्रकार भेड़ियोंद्वारा वह व्रज उजाड़ा जाने लगा। उस समय वनमें जाना, गौओंकी रक्षा करना, वनसे कोई वस्तु ले आना अथवा नदीको पार करना असम्भव हो गया। वे सब-के-सब भयभीत थे, उनका चित्त उद्विग्न हो गया था। वे कहीं भी आ-जा न सके। डरके मारे केवल उस वनमें ही बैठे रहे। इस प्रकार बढ़े हुए व्याघ्रतुल्य पराक्रमी भेड़ियोंने सारे व्रजको निश्चेष्ट तथा एक स्थानमें ही सीमित रहनेवाला बना दिया॥ ३५—३८॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे विष्णुपर्वणि शिशुचर्यायां वृकदर्शनेऽष्टमोऽध्यायः॥ ८॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत विष्णुपर्वमें बाललीलाके प्रसङ्गमें बृकदर्शनविषयक आठवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ८॥

नवमोऽध्यायः

भेड़ियोंके उत्पातसे व्रजवासियोंका उस स्थानको छोड़कर श्रीवृन्दावनमें जाना

वैशम्पायन उवाच

एवं वृकांश्च तान् दृष्ट्वा वर्धमानान् दुरासदान्।
सस्त्रीपुमान् स घोषो वै समस्तोऽमन्त्रयत् तदा॥ १

स्थानेनेह न नः कार्यं व्रजामोऽन्यन्महद्वनम्।
यच्छिवं च सुखोष्यं च गवां चैव सुखावहम्॥ २

अद्यैव किं चिरेण स्म व्रजामः सह गोधनैः।
यावद् वृकैर्वधं घोरं न नः सर्वो व्रजो व्रजेत्॥ ३

एषां धूम्रारुणाङ्गानां दंष्ट्रिणां नखकर्षिणाम्।
वृकाणां कृष्णवक्त्राणां बिभीमो निशि गर्जताम्॥ ४

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! इस प्रकार उन दुर्जय भेड़ियोंको बढ़ते देख समस्त व्रजके स्त्री-पुरुष एकत्र हो उस समय इस प्रकार मन्त्रणा करने लगे—॥ १॥ 'अब हमें इस स्थानपर रहनेकी कोई आवश्यकता नहीं है। हमलोग दूसरे किसी विशाल वनमें चले चलें, जो हमारे लिये कल्याणकारी, सुखपूर्वक रहनेयोग्य तथा गौओंके लिये भी सुखदायक हो॥ २॥ विलम्ब करनेसे क्या लाभ? हम आज ही अपने गोधनोंके साथ यहाँसे चल दें। भेड़ियोंसे हमारे सारे व्रजका भयंकर वध न हो जाय—इसके पहले ही हमें यहाँसे प्रस्थान कर देना चाहिये॥ ३॥ इन भेड़ियोंके सारे अङ्ग धूमिल और लाल रंगके हैं, इनकी बड़ी-बड़ी दाढ़ें हैं। ये नखोंसे बकोट लेते हैं। इनके मुख काले हैं और रातके समय ये भीषण गर्जना करते हैं। हमें इनसे बड़ा भय लगता है'॥ ४॥

मम पुत्रो मम भ्राता मम वत्सोऽथ गौर्मम।
वृकैर्व्यापादिता ह्येवं क्रन्दन्ति स्म गृहे गृहे॥ ५

तासां रुदितशब्देन गवां हंभारवेण च।
व्रजस्योत्थापनं चक्रुर्घोषवृद्धाः समागताः॥ ६

तेषां मतमथाज्ञाय गन्तुं वृन्दावनं प्रति।
व्रजस्य विनिवेशाय गवां चैव हिताय च॥ ७

वृन्दावननिवासाय ताञ्ज्ञात्वा कृतनिश्चयान्।
नन्दगोपो बृहद्वाक्यं बृहस्पतिरिवाददे॥ ८

अद्यैव निश्चयप्राप्तिर्यदि गन्तव्यमेव नः।
शीघ्रमाज्ञाप्यतां घोषः सज्जीभवत मा चिरम्॥ ९

ततोऽवघुष्यत तदा घोषे तत् प्राकृतैर्जनैः।
शीघ्रं गावः प्रकल्प्यन्तां भाण्डं समभिरोप्यताम्॥ १०

वत्सयूथानि काल्यन्तां युज्यन्तां शकटानि च।
वृन्दावनमितः स्थानान्निवेशाय च गम्यताम्॥ ११

तच्छ्रुत्वा नन्दगोपस्य वचनं साधु भाषितम्।
उदतिष्ठद् व्रजः सर्वः शीघ्रं गमनलालसः॥ १२

प्रयाह्युत्तिष्ठ गच्छामः किं शेषे याहि योजय।
उत्तिष्ठति व्रजे तस्मिन् गोपकोलाहलो ह्यभूत्॥ १३

उत्तिष्ठमानः शुशुभे शकटीशकटस्तु सः।
व्याघ्रघोषमहाघोषो घोषः सागरघोषवान्॥ १४

गोपीनां गर्गरीभिश्च मूर्ध्नि चोत्तम्भितैर्घटैः।
निष्पपात व्रजात् पंक्तिस्तारापंक्तिरिवाम्बरात्॥ १५

नीलपीतारुणैस्तासां वस्त्रैरग्रस्तनोच्छ्रितैः।
शक्रचापायते पंक्तिर्गोपीनां मार्गगामिनी॥ १६

दामनीदामभारैश्च केचित् कायावलम्बिभिः।
गोपा मार्गगता भान्ति सावरोहा इव द्रुमाः॥ १७

'घर-घरकी स्त्रियाँ करुणक्रन्दन करती हुई यों कहती हैं कि हाय! इन भेड़ियोंने मेरे पुत्रको, मेरे भाईको, मेरे बछड़ेको और मेरी गायको मार डाला है'॥ ५॥ उनके रोनेके शब्दसे और गायोंके रँभानेसे चिन्तित हो एकत्र हुए व्रजके वृद्ध पुरुषोंने व्रजको वहाँसे उठा देनेका ही निश्चय किया॥ ६॥ जब नन्दजीने वृन्दावनमें जानेके लिये उनके मतको जान लिया तथा व्रजको नयी जगह बसाने एवं गौओंके हितके लिये वृन्दावनमें निवास करनेके निमित्त उन सबके दृढ़ निश्चयको समझ लिया, तब वे बृहस्पतिके समान यह महत्त्वपूर्ण वचन बोले— ॥ ७-८॥ 'यदि यह बात निश्चित हो गयी और हमें जाना ही होगा तो आज ही यात्रा कर देनी चाहिये। शीघ्र ही सारे व्रजमें यह आदेश दे दिया जाय कि तुम सब लोग शीघ्र ही यहाँसे प्रस्थानके लिये तैयार हो जाओ, देर न करो'॥ ९॥ फिर तो प्राकृत जनोंद्वारा व्रजमें यह घोषणा करा दी गयी कि 'व्रजवासियो! शीघ्र ही गौओंको तैयार कर लो। अपने बर्तन-भाँड़ोंको छकड़ोंपर लाद लो। बछड़ोंके समूहोंको अभी हाँक दो। गाड़ियाँ जोतो और यहाँसे वृन्दावनमें रहनेके लिये प्रस्थान करो'॥ १०-११॥ नन्दगोपका कहा हुआ यह उत्तम वचन सुनकर सारे व्रजके लोग जानेके लिये उत्सुक हो शीघ्र ही उठ खड़े हुए॥ १२॥ इस प्रकार जब वह व्रज वहाँसे उठने लगा, तब गोपोंका कोलाहल इस तरह सुनायी देने लगा—'अरे! चलो, उठो, हम सब लोग चल रहे हैं, क्या सो रहे हो, जाओ, छकड़ा जोतो'॥ १३॥ गाड़ियों और छकड़ोंसे युक्त वह व्रज जब वहाँसे उठकर चला, उस समय ऐसा भयंकर कोलाहल हुआ, मानो वहाँ व्याघ्रोंके दहाड़नेकी भारी आवाज हो रही हो अथवा समुद्रकी गर्जना सुनायी देती हो॥ १४॥ सिरपर माट और घड़े उठाये गोपियोंकी पंक्ति जब व्रजसे निकली, उस समय ऐसा जान पड़ा, मानो आकाशसे ताराओंकी पाँत उतर आयी हो॥ १५॥ उनके नीले, पीले और लाल वस्त्र स्तनोंके अग्रभागपर ऊँचे दिखायी देते थे। उन वस्त्रोंसे सुशोभित हो मार्गपर चलती हुई गोपियोंकी पंक्ति इन्द्रधनुषके समान शोभा पाती थी॥ १६॥ कुछ गोप मोटी और पतली रस्सियोंके बोझ लिये मार्गमें चल रहे थे। वे रस्सियाँ उनके अङ्गोंपर लटक रही थीं। उनसे उपलक्षित होनेवाले वे गोप, बरोहोंसे युक्त वटवृक्षके समान प्रतीत होते थे॥ १७॥

स व्रजो व्रजता भाति शकटौघेन भास्वता।
पोतैः पवनविक्षिप्तैर्निष्पतद्भिरिवार्णवः॥ १८

क्षणेन तद् व्रजस्थानमीरिणं समपद्यत।
द्रव्यावयवनिर्धूतं कीर्णं वायसमण्डलैः॥ १९

ततः क्रमेण घोषः स प्राप्तो वृन्दावनं वनम्।
निवेशं विपुलं चक्रे गवां चैव हिताय च॥ २०

शकटावर्तपर्यन्तं चन्द्रार्द्धाकारसंस्थितम्।
मध्ये योजनविस्तीर्णं तावद्द्विगुणमायतम्॥ २१

कण्टकीभिः प्रवृद्धाभिस्तथा कण्टकितद्रुमैः।
निखातोच्छ्रितशाखाग्रैरभिगुप्तं समन्ततः॥ २२

मन्थैरारोप्यमाणैश्च मन्थबन्धानुकर्षणैः।
अद्भिः प्रक्षाल्यमानाभिर्गर्गरीभिरितस्ततः॥ २३

कीलैरारोप्यमाणैश्च दामनीपाशपाशितैः।
स्तम्भनीभिर्धृताभिश्च शकटैः परिवर्तितैः॥ २४

नियोगपाशैरासक्तैर्गर्गरीस्तम्भमूर्धसु।
छादनार्थं प्रकीर्णैश्च कटकैस्तृणसंकटैः॥ २५

शाखाविटङ्कैर्वृक्षाणां क्रियमाणैरितस्ततः।
शोध्यमानैर्गवां स्थानैः स्थाप्यमानैरुलूखलैः॥ २६

प्राङ्मुखैः सिच्यमानैश्च संदीप्यद्भिश्च पावकैः।
सवत्सचर्मास्तरणैः पर्यङ्कैश्चावरोपितैः॥ २७

तोयमुत्तारयन्तीभिः प्रेक्षन्तीभिश्च तद् वनम्।
शाखाश्चाकर्षमाणाभिर्गोपीभिश्च समन्ततः॥ २८

युवभिः स्थविरैश्चैव गोपैर्व्यग्रकरैर्भृशम्।
विशसद्भिः कुठारैश्च काष्ठान्यपि तरूनपि॥ २९

तद् व्रजस्थानमधिकं शुशुभे काननावृतम्।
रम्यं वननिवेशं वै स्वादुमूलफलोदकम्॥ ३०

आगे बढ़ते हुए शोभाशाली शकटोंके समूहसे उस व्रजकी ऐसी शोभा हो रही थी, मानो पवनकी प्रेरणासे वेगपूर्वक चलते हुए असंख्य जलपोतों (जहाजों)-से युक्त महासागर सुशोभित हो रहा हो॥ १८॥ एक ही क्षणमें व्रजका वह स्थान ऊसरभूमिके समान सूना हो गया। वहाँ जो अन्न आदि द्रव्योंके कण बिखरे हुए थे, उनके कारण उस स्थानपर कौओंकी मण्डली छा गयी थी॥ १९॥ तदनन्तर क्रमशः आगे बढ़ता हुआ वह व्रज वृन्दावनमें जा पहुँचा और गौओंके हितके लिये बहुत दूरतक फैलकर बस गया॥ २०॥ सीमापर छकड़ोंके बाड़ लगा दिये गये। सारा व्रज अर्धचन्द्रकी आकृतिमें स्थित हो गया। बीचके भूभागकी चौड़ाई एक योजन और लम्बाई दो योजनकी थी॥ २१॥ बढ़ी हुई कण्टकी (नीलकाँटे आदि) तथा शाखाग्रभागको ऊँचे रखकर गाड़े गये काँटेदार वृक्षोंके द्वारा वह व्रज चारों ओरसे सुरक्षित था॥ २२॥ कहीं दही-दूधके माटोंमें मथानी डाली जा रही थी, कहीं मथानीमें बँधी हुई रस्सी खींची जाती थी, कहीं इधर-उधर गगरियों या माटोंको जलसे धोया जाता था, कहीं कील या खूँटे गाड़े जाते थे, जिनमें मोटी-पतली रस्सियाँ बँधी होती थीं; कहीं बहुत-से खम्भे खड़े किये जा रहे थे, कहीं छकड़े घुमाये जाते थे, कहीं मन्थनपात्र या माटमें डाले गये थम्भके सिरेपर रस्सियाँ बाँधी जाती थीं, कहीं घर छानेके लिये संचित चटाइयों तथा तिनकोंके समूह बिखरे पड़े थे, कहीं यत्र-तत्र वृक्षोंकी शाखाओंपर पक्षियोंके रहनेयोग्य स्थान बनाये जाते थे, कहीं गौओंके रहनेयोग्य स्थानोंकी शोध हो रही थी, कहीं ओखलियाँ रखी जाती थीं, उन्हें पूर्वाभिमुख करके धोया जा रहा था, कहीं आग जलायी जाती थी, कहीं छकड़ोंपरसे (अपनी मौतसे मरे हुए) बछड़ोंके चर्मसे निर्मित बिछौनोंसहित पलंग उतारे जा रहे थे, कहीं गोपियाँ अपने सिरसे जलका घड़ा उतारती हुई उस वनकी शोभा देखती थीं, कुछ गोपाङ्गनाएँ सब ओर घूम-घूमकर वृक्षोंकी डालियाँ खींच रही थीं, क्या बूढ़े, क्या जवान, सभी गोपोंके हाथ कार्यमें अत्यन्त व्यस्त थे, वे कुठारोंसे काठ और वृक्षोंको भी काट रहे थे। इन सबके कारण वनसे घिरा हुआ वह व्रजका स्थान अधिक शोभा पा रहा था। वृन्दावनका वह रमणीय प्रदेश स्वादिष्ठ फल, मूल और जलसे सम्पन्न था॥ २३—३०॥

तास्तु कामदुघा गावः सर्वपक्षिरुतं वनम्।
वृन्दावनमनुप्राप्ता नन्दनोपमकाननम्॥ ३१

पूर्वमेव तु कृष्णेन गवां वै हितकारिणा।
शिवेन मनसा दृष्टं तद् वनं वनचारिणा॥ ३२

पश्चिमे तु ततो रूक्षे घर्मे मासे निरामये।
वर्षतीवामृतं देवे तृणं तत्र व्यवर्धत॥ ३३

न तत्र वत्साः सीदन्ति न गावो नेतरे जनाः।
यत्र तिष्ठति लोकानां भवाय मधुसूदनः॥ ३४

ताश्च गावः स घोषस्तु स च संकर्षणो युवा।
कृष्णेन विहितं वासं तमध्यासत निर्वृताः॥ ३५

व्रजकी वे सभी कामधेनु गौएँ समस्त पक्षियोंके कलरवोंसे मुखरित और नन्दन-सदृश काननोंसे युक्त वृन्दावनमें पहुँच गयीं॥ ३१॥ वनमें विचरनेवाले, गौओंके हितकारी श्रीकृष्णने पहले ही अपने मनसे कल्याण-चिन्तनपूर्वक उस वनको देखा था॥ ३२॥ अतः यद्यपि उस समय बहुत ही रूखे गर्मीके महीनेका अन्तिम भाग (आषाढ़) बीत रहा था, तो भी वहाँ घास-पात बहुत बढ़ने लगा, मानो इन्द्रदेव वहाँ अमृतकी वर्षा कर रहे हों॥ ३३॥ जहाँ भगवान् मधुसूदन सम्पूर्ण विश्वके हितके लिये विराजमान थे, उस वृन्दावनमें न तो बछड़े कभी शिथिल होते थे, न गौएँ कष्ट पाती थीं और न दूसरे ही लोगोंको कभी दुःखका अनुभव होता था॥ ३४॥ वे गौएँ, वह व्रज तथा वे तरुण वीर बलरामजी सब-के-सब श्रीकृष्णद्वारा विहित उस निवासस्थानमें बड़े आनन्दसे रहने लगे॥ ३५॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे विष्णुपर्वणि वृन्दावनप्रवेशे नवमोऽध्यायः॥ ९॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत विष्णुपर्वमें श्रीवृन्दावन-प्रवेशविषयक नवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ९॥

दशमोऽध्यायः

वर्षा-ऋतुका वर्णन

वैशम्पायन उवाच

तौ तु वृन्दावनं प्राप्तौ वसुदेवसुतावुभौ।
चेरतुर्वत्सयूथानि चारयन्तौ सुरूपिणौ॥ १

पूर्णस्तु घर्मसमयस्तयोस्तत्र वने सुखम्।
क्रीडतोः सह गोपालैर्यमुनां चावगाहतोः॥ २

ततः प्रावृडनुप्राप्ता मनसः कामदीपिनी।
प्रववर्षुर्महामेघाः शक्रचापाङ्कितोदराः॥ ३

बभूवादर्शनः सूर्यो भूमिश्चादर्शना तृणैः।
पतता मेघवातेन नवतोयानुकर्षिणा॥ ४
सम्मार्जिततला भूमिर्यौवनस्थेव लक्ष्यते॥ ५

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! वृन्दावनमें पहुँचकर वसुदेवजीके वे दोनों पुत्र, जो बहुत ही सुन्दर थे, बछड़ोंके झुंडोंको चराते हुए वहाँ सब ओर विचरने लगे॥ १॥ वृन्दावनमें रहकर ग्वाल-बालोंके साथ क्रीडा और यमुना-स्नान करते हुए उन दोनों भाइयोंका ग्रीष्म-मास सुखपूर्वक बीत गया॥ २॥ तदनन्तर मनकी कामनाको उद्दीपित करनेवाली वर्षा-ऋतु आ पहुँची। मेघोंकी भारी घटा घिर आयी और वर्षा करने लगी। उन मेघोंके मध्यभाग इन्द्रधनुषसे अङ्कित दिखायी देते थे॥ ३॥ (मेघोंकी आड़में छिपे हुए) सूर्यका दर्शन नहीं हो पाता था। घास इतनी बढ़ गयी कि धरती भी अदृश्य हो गयी। नूतन जलराशिको खींच लानेवाले मेघरूपी वायुने भूतलको झाड़-बुहार और धोकर साफ कर दिया। उस समय भूमि ऐसी दिखायी देती थी, मानो उसकी युवावस्था आ गयी हो॥ ४-५॥

नववर्षावसिक्तानि शक्रगोपकुलानि च।
नष्टदावाग्निधूमानि वनानि प्रचकाशिरे॥ ६

नृत्यव्यापारकालश्च मयूराणां कलापिनाम्।
मदरक्ताः प्रवृत्ताश्च केकाः पटुरवास्तथा॥ ७

नवप्रावृषि कान्तानां षट्पदाहारदायिनाम्।
यौवनस्थकदम्बानां नवाभ्रैर्भ्राजते वपुः॥ ८

हासितं कुटजैर्वृक्षैः कदम्बैर्वासितं वनम्।
नाशितं जलदैरुष्णं तोषिता वसुधा जलैः॥ ९

संतप्ता भास्करकैरभितप्ता दवाग्निभिः।
जलैर्बलाहकोत्सृष्टैरुच्छ्वसन्तीव पर्वताः॥ १०

महावातसमुद्भूतं महामेघगणार्पितम्।
महीमहाराजपुरैस्तुल्यमापद्यते नभः॥ ११

क्वचित् कदम्बहासाढ्यं शिलीन्ध्राभरणं क्वचित्।
सम्प्रदीप्तमिवाभाति फुल्लनीपद्रुमं वनम्॥ १२

ऐन्द्रेण पयसा सिक्तं मारुतेन च विस्तृतम्।
पार्थिवं गन्धमाघ्राय लोकः क्षुभितमानसः॥ १३

दृप्तसारङ्गनादेन दर्दुरव्याहृतेन च।
नवैश्च शिखिविक्रुष्टैरवकीर्णा वसुन्धरा॥ १४

भ्रमत्तूर्णमहावर्ता वर्षप्राप्तमहारयाः।
हरन्त्यस्तीरजान् वृक्षान् विस्तारं यान्ति निम्नगाः॥ १५

संततासारनिर्यत्नाः क्लिन्नयत्नोत्तरच्छदाः।
न त्यजन्ति नगाग्राणि श्रान्ता इव पतत्त्रिणः॥ १६

तोयगम्भीरलम्बेषु स्रवत्सु च नदत्सु च।
उदरेषु नवाभ्राणां मज्जतीव दिवाकरः॥ १७

इन्द्रगोप नामक कीट नूतन वर्षाके जलसे भीग रहे थे। वनप्रान्तके दावानल और धूम नष्ट हो गये थे, इससे उन वनोंकी बड़ी शोभा हो रही थी॥ ६॥ बड़े-बड़े पंखों (कलापों)-से विभूषित मयूरोंके नृत्य-व्यापारका समय आ पहुँचा था; अतः उनकी मदमत्त दशाकी मधुर वाणी बड़ी पटुताके साथ श्रवणगोचर होती थी॥ ७॥ नूतन वर्षामें जिनकी कमनीयता बढ़ गयी है, जो भ्रमरोंको आहार प्रदान करते तथा युवावस्थामें आ पहुँचे हैं, उन कदम्ब-वृक्षोंका आकार नये बादलोंके आनेसे अधिक शोभा पाने लगा॥ ८॥ कुटजके वृक्षोंने अपने फूलोंसे वहाँ सब ओर हास्यकी छटा छिटका दी। कदम्बोंने उस वनमें सुगन्ध भर दी। बादलोंने गरमी मिटा दी और जलकी धाराओंने वसुधाको पूर्णतः तृप्त कर दिया॥ ९॥ जो सूर्यकी किरणोंसे संतप्त तथा दावानलसे दग्ध हो गये थे, वे पर्वत मेघोंके बरसाये हुए जलसे अभिषिक्त हो पुनः साँस-सी लेने लगे॥ १०॥ उठी हुई प्रचण्ड वायु पताकाके समान फहरा रही थी। बड़े-बड़े मेघोंके समुदाय प्रासादों (महलों)-के समान प्रतीत होते थे। इस प्रकार आकाश भूतलके महाराजोंके नगरके समान स्वरूप धारण किये था॥ ११॥ कहीं कदम्बका विकास हासकी-सी छटा बिखेर रहा था। कहीं भुँइफोड़ या गोबर-छत्ता आभूषणके समान शोभा देता था। जगह-जगह नीपके वृक्ष खिले हुए थे। इन सबके कारण वृन्दावन अत्यन्त दीप्तिमान्-सा प्रतीत होता था॥ १२॥ इन्द्रदेवके बरसाये हुए जलसे अभिषिक्त तथा वायुसे विस्तारको प्राप्त हुई पृथ्वीकी सोंधी सुगन्ध सूँघकर लोगोंका मन क्षुब्ध (कामविकारसे युक्त) हो उठता था॥ १३॥ मतवाले भ्रमरोंके गुंजारव, मेढकोंकी ध्वनि तथा मोरोंकी नूतन केकावाणीसे वहाँकी भूमि गूँज रही थी॥ १४॥ नदियोंमें तीव्र गतिसे बड़ी-बड़ी भँवरें उठ रही थीं। वर्षाके कारण उनका वेग महान् हो गया था। वे तटवर्ती वृक्षोंको बहा ले जाती थीं और क्रमशः विस्तारको प्राप्त हो रही थीं॥ १५॥ निरन्तर जलकी धारा बरसनेके कारण जो उड़नेके प्रयत्नमें असफल हो गये थे, जिनके ऊपरी पंख शिथिलप्रयास होकर काम नहीं दे पाते थे, वे पक्षी थके-माँदेके समान वृक्षोंकी शाखाओंको छोड़ नहीं रहे थे॥ १६॥ सूर्यदेव नूतन जलधरोंके उदरोंमें, जो जलके कारण सघन और फैले हुए थे तथा वर्षाके साथ गर्जना भी करते थे, डूबते-से जा रहे थे॥ १७॥

महीरुहैरुत्पतितैः सलिलोत्पीडसंकुला।
अन्विष्यमार्गा वसुधा भाति शाद्वलमालिनी॥ १८

वज्रेणेवावरुग्णानां नगानां नगशालिनाम्।
स्रोतोभिः परिकृत्तानि पतन्ति शिखराण्यधः॥ १९

पतता मेघवर्षेण यथा निम्नानुसारिणः।
पल्वलोत्कीर्णमुक्तेन पूर्यन्ते वनराजयः॥ २०

हस्तोच्छ्रितमुखा वन्या मेघनादानुसारिणः।
भ्रान्तातिवृष्ट्या मातङ्गा गां गता इव तोयदाः॥ २१

प्रावृट्प्रवृत्तिं संदृश्य दृष्ट्वा चाम्बुधरान् घनान्।
रौहिणेयो मिथः काले कृष्णं वचनमब्रवीत्॥ २२

पश्य कृष्ण घनान् कृष्णान् बलाकोज्ज्वलभूषणान्।
गगने तव गात्रस्य वर्णचोरान् समुच्छ्रितान्॥ २३

तव निद्राकरः कालस्तव गात्रोपमं नभः।
त्वमिवाज्ञातवसतिं चन्द्रो वसति वार्षिकीम्॥ २४

एतन्नीलाम्बुदश्यामं नीलोत्पलदलप्रभम्।
सम्प्राप्ते दुर्दिने काले दुर्दिनं भाति वै नभः॥ २५

पश्य कृष्ण जलोदग्रैः कृष्णैरुद्ग्रथितैर्घनैः।
गोवर्धनो यथा रम्यो भाति गोवर्धनो गिरिः॥ २६

पतितेनाम्भसा ह्येते समन्तान्मददर्पिताः।
भ्राजन्ते कृष्णसारङ्गाः काननेषु मुदान्विताः॥ २७

एतान्यम्बुप्रहृष्टानि हरितानि मृदूनि च।
तृणानि शतपत्राक्ष पत्रैर्गूहन्ति मेदिनीम्॥ २८

भूमि एक तो घाससे ढकी हुई थी, दूसरे जलके प्रवाहमें डूब गयी थी, रास्तोंका पता चलना कठिन हो गया था, मार्गोंके किनारे उगे हुए वृक्षोंसे ही उन मार्गोंको ढूँढ़ा या पाया जा सकता था॥ १८॥ वृक्षोंसे सुशोभित होनेवाले पर्वतोंके शिखर जलके स्रोतोंसे कटकर नीचे गिर रहे थे; ऐसा जान पड़ता था, मानो वे पर्वत वज्रके प्रहारसे विदीर्ण हो गये हों॥ १९॥ मेघोंकी वर्षाका जल नीचे गिरकर नीची भूमिका अनुसरण करता हुआ गड्ढेमें जाता था। उसके भर जानेपर उससे निकलकर बाहर फैलता था और सारी वन-श्रेणियोंको आप्लावित कर देता था॥ २०॥ अत्यन्त वर्षासे भ्रान्त हुए जंगली हाथी सूँड और मुँहको ऊपर उठाये मेघकी गर्जनाका अनुकरण करते (गर्जते) थे। उस समय वे पृथ्वीपर उतरे हुए मूर्तिमान् मेघके समान जान पड़ते थे॥ २१॥ वर्षा-ऋतु आ गयी और आकाशमें बादल घिर आये; यह देखकर रोहिणीनन्दन बलरामजीने श्रीकृष्णसे यह सामयिक बात कही— ॥ २२॥ 'श्रीकृष्ण! आकाशमें उन ऊँचे उठे हुए काले बादलोंको तो देखो, जो वकपंक्तिरूपी उज्ज्वल हारोंसे विभूषित हैं। वे तुम्हारी अङ्गकान्ति चुराये लेते हैं॥ २३॥ यह तुम्हारे नींद लेनेका समय है*। काले मेघोंके कारण आकाश तुम्हारे अङ्गोंके समान श्यामवर्णका दिखायी देता है तथा वर्षा-ऋतुमें चन्द्रमा भी तुम्हारी तरह अज्ञातवास कर रहे हैं॥ २४॥ जो काले मेघोंके छा जानेसे श्याम दिखायी देता है तथा जिसकी आभा नील कमलदलके समान हो गयी है, वह आकाश दुर्दिन (वर्षाका समय) आनेपर स्वयं भी दुर्दिन (मेघाच्छन्न दिवस)-सा प्रतीत होता है॥ २५॥ श्रीकृष्ण! देखो, जलसे भरकर परस्पर गुँथे हुए इन काले बादलोंसे गौओंकी वृद्धि करनेवाला गोवर्धन पर्वत कैसा रमणीय प्रतीत होता है!॥ २६॥ ये कृष्णमृग चारों ओर जल गिरनेसे मदमत्त हो उठे हैं और आनन्दमग्न होकर काननोंमें विचरते हुए शोभा पा रहे हैं॥ २७॥ कमलनयन! जलसे अभिषिक्त होकर हर्षोल्लासमें भरे हुए ये कोमल हरित तृण अपने पत्तोंसे पृथ्वीको ढकते जा रहे हैं॥ २८॥

* वर्षाके चार महीनोंमें भगवान् विष्णु शयन करते हैं—यह पुराणप्रसिद्ध बात है तथा इस हरिवंशमें भी इसकी चर्चा आ चुकी है।

क्षरज्जलानां शैलानां वनानां जलदागमे।
ससस्यानां च सीमानां न लक्ष्मीर्व्यतिरिच्यते॥ २९

शीघ्रवातसमुद्धूताः प्रोषितौत्सुक्यकारिणः।
दामोदरोद्दामरवाः प्रागल्भ्यं यान्ति तोयदाः॥ ३०

हरे हर्यश्वचापेन त्रिवर्णेन त्रिविक्रम।
विबाणज्येन रचितं तवेदं मध्यमं पदम्॥ ३१

नभस्येष नभश्चक्षुर्न भात्येव चरन्नभः।
मेघैः शीतातपकरो विरश्मिरिव रश्मिवान्॥ ३२

द्यावापृथिव्योः संसर्गः सततं विततैः कृतः।
अव्यवच्छिन्नधारौघैः समुद्रौघसमैर्घनैः॥ ३३

नीपार्जुनकदम्बानां पृथिव्यां चातिवृष्टिभिः।
गन्धैः कोलाहला वान्ति वाता मदनदीपनाः॥ ३४

सम्प्रवृत्तमहावर्षं लम्बमानमहाम्बुदम्।
भात्यगाधमपर्यन्तं ससागरमिवाम्बरम्॥ ३५

धारानिर्मलनाराचं विद्युत्कवचवर्मिणम्।
शक्रचापायुधधरं युद्धसज्जमिवाम्बरम्॥ ३६

शैलानां च वनानां च द्रुमाणां च वरानन।
प्रतिच्छन्नानि भासन्ते शिखराणि घनैर्घनैः॥ ३७

गजानीकैरिवाकीर्णं सलिलोद्गारिभिर्घनैः।
वर्णसारूप्यतां याति गगनं सागरस्य च॥ ३८

समुद्रोद्धूतजनिता लोलशाद्वलकम्पिनः।
शीताः सपृषतोद्दामाः कर्कशा वान्ति मारुताः॥ ३९

निशासु सुप्तचन्द्रासु मुक्ततोयासु तोयदैः।
मग्नसूर्यस्य नभसो न विभान्ति दिशो दश॥ ४०

'मेघोंके आनेपर जलके झरने बहानेवाले पर्वतोंकी, वनोंकी तथा सस्य (हरी-भरी खेती)-से सम्पन्न खेतोंकी लक्ष्मी (शोभा) एक-सी हो रही है। कहीं न्यून या अधिक नहीं है (अथवा इन तीनोंकी शोभा इनसे पृथक् नहीं होती है)॥ २९॥ दामोदर! शीघ्रगामी वायुसे प्रेरित हो ऊपर उठे हुए तथा परदेशमें रहनेवाले पुरुषोंको घर आनेके लिये उत्सुक बनानेवाले ये बादल प्रचण्ड गर्जना करते हुए अपनी प्रगल्भताका परिचय देते हैं॥ ३०॥ त्रिविक्रमरूप धारण करनेवाले हरे! बाण और प्रत्यञ्चासे रहित तिरंगे इन्द्रधनुषसे तुम्हारे मध्यम पद (अन्तरिक्ष)-का शृङ्गार-सा किया गया है॥ ३१॥ श्रावणमासमें आकाशके नेत्रस्वरूप ये अंशुमाली सूर्य प्रभाहीन-से होकर आकाशमें विचरते हुए अधिक शोभा नहीं पा रहे हैं तथा बादलोंसे आच्छन्न होनेके कारण इनकी तापदायिनी किरणें शीतल हो गयी हैं॥ ३२॥ आकाशमें फैलकर समुद्रके जलप्रवाह-से प्रतीत होनेवाले इन बादलोंने अविच्छिन्नरूपसे जलकी धाराएँ गिराकर आकाश और पृथ्वीको मानो सदाके लिये एक-दूसरेके साथ जोड़ दिया है॥ ३३॥ पृथ्वीपर अत्यन्त वर्षा होनेके कारण नीप, अर्जुन और कदम्बोंकी गन्धसे वासित हुई कोलाहल-युक्त वायु कामियोंका कामोद्दीपन करती हुई बह रही है॥ ३४॥ बड़े जोरसे वर्षा आरम्भ हो गयी है। बड़े-बड़े मेघ बरसनेके लिये नीचेको झुक आये हैं, जिनसे यह आकाश अथाह अनन्त महासागरसे संयुक्त-सा प्रतीत होता है॥ ३५॥ जलकी धाराओंका निर्मल नाराच, विद्युद्रूपी कवच तथा इन्द्रधनुषरूपी आयुधको धारण किये हुए यह आकाश युद्धके लिये सुसज्जित हुआ-सा जान पड़ता है॥ ३६॥ सुमुख श्रीकृष्ण! पर्वतोंके शिखर तथा वनों और वहाँके वृक्षोंकी शिखाएँ घने बादलोंसे आच्छादित होकर कैसी शोभा पा रही हैं॥ ३७॥ अपनी सूँडोंसे जल छोड़नेवाले गजसमूहोंकी भाँति इन काले घने बादलोंसे आच्छादित हुआ आकाश रंग-रूपमें समुद्रके समान हो गया है॥ ३८॥ समुद्रके हिलोरें लेनेसे उत्पन्न हो चञ्चल घासोंको कम्पित करती हुई जलबिन्दुओंसहित उद्दाम गतिसे चलनेवाली शीतल एवं कर्कश वायु बह रही है॥ ३९॥ जिनमें चन्द्रमा भी सोये हुएके समान अदृश्य हो गये हैं, बादलोंने पानी बरसाना आरम्भ कर दिया है और आकाशके सूर्य भी डूब चुके हैं, ऐसी बरसाती रातोंमें दसों दिशाओंका कुछ पता नहीं चलता है॥ ४०॥

चेतनं पुष्करं कोशैः क्षुधाध्मातैः समन्ततः।
न घृणीनां न रम्याणां विवेकं यान्ति कृष्टयः॥ ४१
घर्मदोषपरित्यक्तं मेघतोयविभूषितम्।
पश्य वृन्दावनं कृष्ण वनं चैत्ररथं यथा॥ ४२
एवं प्रावृड्गुणान् सर्वाञ्छ्रीमान् कृष्णस्य पूर्वजः।
कथयन्नेव बलवान् व्रजमेव जगाम ह॥ ४३
अन्योन्यं रममाणौ तु कृष्णसंकर्षणावुभौ।
तत्कालज्ञातिभिः सार्द्धं चेरतुस्तद् वनं महत्॥ ४४

'सब ओर वायुसे मेघोंद्वारा उपलक्षित आकाश चेतन-सा प्रतीत होता है, किसानोंको न दिनका पता चलता है न रातका॥ ४१॥ श्रीकृष्ण! देखो, घामरूपी दोषसे रहित और मेघोंके बरसाये हुए जलसे विभूषित हुआ वृन्दावन चैत्ररथ वनके समान शोभा पा रहा है'॥ ४२॥ इस प्रकार श्रीकृष्णके बड़े भ्राता महाबली श्रीमान् बलराम वर्षाकालके गुणोंका वर्णन करते हुए ही उनके साथ व्रजमें चले गये॥ ४३॥ एक-दूसरेके साथ खेलते और घूमते हुए दोनों भाई श्रीकृष्ण और संकर्षण उस समयके भाई-बन्धुओंके साथ उस विशाल वनमें विचरने लगे॥ ४४॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे विष्णुपर्वणि प्रावृड्वर्णने दशमोऽध्यायः॥ १०॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत विष्णुपर्वमें वर्षाका वर्णनविषयक दसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १०॥

एकादशोऽध्यायः

श्रीकृष्णकी अङ्गच्छटा, भाण्डीर वट, यमुना और कालियदहका वर्णन तथा श्रीकृष्णद्वारा कालियनागके निग्रहका विचार

वैशम्पायन उवाच

कदाचित् तु तदा कृष्णो विना संकर्षणेन वै।
चचार तद् वनं रम्यं कामरूपी वराननः॥ १

काकपक्षधरः श्रीमाञ्छ्यामः पद्मदलेक्षणः।
श्रीवत्सेनोरसा युक्तः शशाङ्क इव लक्ष्मणा॥ २

साङ्गदेनाग्रहस्तेन पङ्कजोद्भिन्नवर्चसा।
सुकुमाराभिताम्रेण क्रान्तविक्रान्तगामिना॥ ३

पीते प्रीतिकरे नृणां पद्मकिञ्जल्कसप्रभे।
सूक्ष्मे वसानो वसने ससंध्य इव तोयदः॥ ४

वत्सव्यापारयुक्ताभ्यां व्यग्राभ्यां गण्डरज्जुभिः।
भुजाभ्यां साधुवृत्ताभ्यां पूजिताभ्यां दिवौकसैः॥ ५

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! एक दिन इच्छानुसार रूप धारण करनेवाले सुमुख श्रीकृष्ण अपने भाई संकर्षणके बिना ही उस रमणीय वृन्दावनमें विचरने लगे॥ १॥ उन्होंने मस्तकके पिछले भागमें काकपक्ष (बड़े-बड़े केश) धारण कर रखे थे। उनके नेत्र कमलदलके समान सुन्दर एवं विशाल थे। वे श्यामसुन्दर छविसे युक्त एवं श्रीसम्पन्न थे तथा वक्षःस्थलमें श्रीवत्सचिह्न धारण करके शशचिह्नसे संयुक्त चन्द्रमाके समान शोभा पाते थे॥ २॥ बाजूबन्दसे विभूषित हुए उनके हाथोंका अग्रभाग विकसित कमलके समान कान्तिमान् था; उनके पैर सुकुमार, लाल और क्रान्त-विक्रान्त गतिसे चलनेवाले थे, जिनसे उनकी अनुपम शोभा होती थी॥ ३॥ वे कमल-केसरके समान पीले रंगके दो महीन वस्त्र पहने हुए थे, जो मनुष्योंके आनन्दको बढ़ानेवाले थे। उन वस्त्रोंको धारण करनेवाले श्यामसुन्दर श्रीकृष्ण संध्याकालकी स्वर्णिम आभासे युक्त मेघके समान सुशोभित होते थे॥ ४॥ उनकी दोनों भुजाएँ सुन्दर, गोल तथा देवताओंद्वारा पूजित थीं। वे बछड़ोंके व्यापारमें संलग्न थीं और उनके गलेमें घुँघरू बाँधनेकी रस्सियोंसे उलझी हुई थीं, ऐसी भुजाओंसे श्रीकृष्णकी बड़ी शोभा हो रही थी॥ ५॥

सदृशं पुण्डरीकस्य गन्धेन कमलस्य च।
रराज चास्य तद् बाल्ये रुचिरौष्ठपुटं मुखम्॥ ६

शिखाभिस्तस्य मुक्ताभी रराज मुखपङ्कजम्।
वृतं षट्पदपंक्तीभिर्यथा स्यात् पद्ममण्डलम्॥ ७

तस्यार्जुनकदम्बाढ्या नीपकन्दलमालिनी।
रराज माला शिरसि नक्षत्राणां यथा दिवि॥ ८

स तया मालया वीरः शुशुभे कण्ठसक्तया।
मेघमालाम्बुदश्यामो नभस्य इव मूर्तिमान्॥ ९

एकेनामलपत्रेण कण्ठसूत्रावलम्बिना।
रराज बर्हिपत्रेण मन्दमारुतकम्पिना॥ १०

क्वचिद् गायन् क्वचित् क्रीडंश्चञ्चूर्यंश्च क्वचित् क्वचित्।
पर्णवाद्यं श्रुतिसुखं वादयंश्च क्वचिद् वने॥ ११

गोपवेणुं सुमधुरं कामात् तमपि वादयन्।
प्रह्लादनार्थं च गवां क्वचिद् वनगतो युवा॥ १२

गोकुलेऽम्बुधरश्यामश्चचार द्युतिमान् प्रभुः।
रेमे च तत्र रम्यासु चित्रासु वनराजिषु॥ १३

मयूररवघुष्टासु मदनोद्दीपनीषु च।
मेघनादप्रतिव्यूहैर्नादितासु समन्ततः॥ १४

शाद्वलच्छन्नमार्गासु शिलीन्ध्राभरणासु च।
कन्दलामलपत्रासु स्रवन्तीषु नवं जलम्॥ १५

केसराणां नवैर्गन्धैर्मदनिःश्वसितोपमैः।
अभीक्ष्णं निःश्वसन्तीषु कामिनीष्विव नित्यशः॥ १६

सेव्यमानो नवैर्वातैर्द्रुमसंघातनिःसृतैः।
तासु कृष्णो मुदं लेभे सौम्यासु वनराजिषु॥ १७

स कदाचिद् वने तस्मिन् गोभिः सह परिभ्रमन्।
ददर्श विपुलोदग्रं शाखिनं शाखिनां वरम्॥ १८

बाल्य (पौगण्ड)-अवस्थामें सुन्दर ओठोंसे सुशोभित उनका मुख कमलके सदृश सुन्दर और उसीके समान गन्धसे सुवासित होकर अपनी अद्भुत शोभा फैला रहा था॥ ६॥ उनका मुखारविन्द खुले अलकोंसे आवृत होकर ऐसी शोभा पा रहा था, मानो भ्रमरावलियोंसे युक्त कमलमण्डल सुशोभित हो रहा हो॥ ७॥ उनके मस्तकपर अर्जुन और कदम्बके फूलोंसे युक्त एक माला शोभा पा रही थी, जो नीपके पुष्पों तथा नूतन अंकुरोंसे सुशोभित थी। वह आकाशमें तारिकाओंकी भाँति अपनी छटा छिटका रही थी॥ ८॥ वैसी ही माला उनके कण्ठमें भी पड़ी हुई थी, जिससे वीरवर घनश्याम श्रीकृष्ण मेघमालाओंकी श्यामकान्तिसे सम्पन्न मूर्तिमान् भाद्रपद-मासकी भाँति शोभा पा रहे थे॥ ९॥ उनके कण्ठगत सूत्रमें एक निर्मल मोरपङ्ख लटक रहा था, जो मन्दगतिसे बहनेवाली वायुके हलके आघातसे हिल रहा था। उस मोरपङ्खसे भी उनके श्रीअङ्गोंकी शोभावृद्धि हो रही थी॥ १०॥ वे वनमें कहीं गाते, कहीं खेलते, कहीं भ्रमण करते और कहीं कानोंको सुख देनेवाला पत्तोंका बाजा बजाते थे॥ ११॥ किसी समय वनमें जाकर तरुणरूप धारण करके गौओंको आनन्दित करनेके लिये इच्छानुसार अत्यन्त मधुर स्वरमें मुरली बजाया करते थे, जो उस समयके गोपोंका प्रमुख वाद्य थी॥ १२॥ नूतन जलधरके समान श्याम एवं कान्तिमान् भगवान् श्रीकृष्ण गोकुलके आसपास विचरने तथा रमणीय एवं विचित्र वनश्रेणियोंमें विहार करने लगे॥ १३॥ वहाँ मयूरोंकी केकाध्वनि गूँजती रहती थी। वे वन-पंक्तियाँ कामी पुरुषोंके मनमें कामभावका उद्दीपन करनेवाली थीं। मेघोंकी गर्जनाकी प्रतिध्वनियोंसे वहाँ सब ओर कोलाहल मचा रहता था॥ १४॥ उनके मार्ग घासोंसे ढक गये थे। जगह-जगह उगे हुए छत्राक उनके आभूषण-से प्रतीत होते थे। उनमें नये-नये पल्लव अंकुरित हो रहे थे तथा वे नूतन जल टपका रही थीं॥ १५॥ मदजनित निःश्वासके समान केसरोंकी नूतन गन्धसे वे वनश्रेणियाँ कामिनियोंकी भाँति प्रतिदिन बारम्बार उच्छ्वास ले रही थीं॥ १६॥ वृक्षोंके समूहसे निकली हुई नूतन वायुसे सेवित हुए श्रीकृष्ण उन सौम्य वनराजियोंमें बड़े आनन्दका अनुभव करने लगे॥ १७॥ एक दिन उस वनमें गौओंके साथ भ्रमण करते हुए श्रीकृष्णने वहाँ एक वृक्षको देखा, जो बहुत ही ऊँचा तथा सभी वृक्षोंमें बड़ा था॥ १८॥

स्थितं धरण्यां मेघाभं निबिडं पत्रसञ्चयैः।
गगनार्धोच्छ्रिताकारं पर्वताभोगधारिणम्॥ १९

नीलचित्राङ्गवर्णैश्च सेवितं बहुभिः खगैः।
फलैः प्रवालैश्च घनैः सेन्द्रचापघनोपमम्॥ २०

भवनाकारविटपं लतापुष्पसुमण्डितम्।
विशालमूलावनतं पवनाम्भोदधारिणम्॥ २१

आधिपत्यमिवान्येषां तस्य देशस्य शाखिनाम्।
कुर्वाणं शुभकर्माणं निरावर्षमनातपम्॥ २२

न्यग्रोधं पर्वताग्राभं भाण्डीरं नाम नामतः।
दृष्ट्वा तत्र मतिं चक्रे निवासाय ततः प्रभुः॥ २३

स तत्र वयसा तुल्यैर्वत्सपालैः सहानघ।
रेमे वै वासरं कृष्णः पुरा स्वर्गगतो यथा॥ २४

तं क्रीडमानं गोपालाः कृष्णं भाण्डीरवासिनम्।
रमयन्ति स्म बहवो वन्यैः क्रीडनकैस्तदा॥ २५

अन्ये स्म परिगायन्ति गोपा मुदितमानसाः।
गोपालाः कृष्णमेवान्ये गायन्ति स्म रतिप्रियाः॥ २६

तेषां स गायतामेव वादयामास वीर्यवान्।
पर्णवाद्यान्तरे वेणुं तुम्बीं वीणां च तत्र ह॥ २७

कदाचिच्चारयन्नेव गाः स गोवृषभेक्षणः।
जगाम यमुनातीरं लतालङ्कृतपादपम्॥ २८

तरङ्गापाङ्गकुटिलां वारिस्पर्शसुखानिलाम्।
तां च पद्मोत्पलवतीं ददर्श यमुनां नदीम्॥ २९

अपने पत्तोंके संचयसे अत्यन्त घना प्रतीत होनेवाला वह वृक्ष पृथ्वीपर मूर्तिमान् मेघके समान खड़ा था। अपनी ऊँचाईसे उसने आकाशके आधे भागको रोक लिया था और वह पर्वतके समान विस्तृत आकार धारण करता था॥ १९॥ नीले एवं चितकबरे रंगवाले बहुत-से मोर उस वृक्षका सेवन करते थे। वह मूँगोंके समान लाल-लाल घने फलोंके द्वारा इन्द्रधनुषसहित मेघके समान जान पड़ता था॥ २०॥ उसकी एक-एक शाखा विशाल गृहके समान प्रतीत होती थी। लताओं और फूलोंसे वह अच्छी तरह अलंकृत था। उसकी विशाल जड़ें बहुत दूरतक फैली हुई थीं। वह अपने ऊपर वायु और मेघको भी धारण करता था॥ २१॥ ऐसा जान पड़ता था कि वह वृक्ष उस प्रदेशके दूसरे सभी वृक्षोंका आधिपत्य-सा कर रहा है। उसके कर्म बड़े शुभ थे। वह वर्षा और धूपका निवारण करता था॥ २२॥ वह बरगदका वृक्ष था और पर्वत-शिखरके समान प्रतीत होता था। उसका नाम था भाण्डीर वट। उसे देखकर भगवान्ने वहीं निवास करनेका विचार किया॥ २३॥ निष्पाप जनमेजय! उस वटके नीचे समान अवस्थावाले वत्सपालक मित्रोंके साथ श्रीकृष्ण दिनभर बड़े सुखसे रहे। पहले अपने धाममें रहते समय उन्हें जैसे सुखका अनुभव होता था, वैसा ही वहाँ भी हुआ॥ २४॥ वहाँ खेलते हुए भाण्डीरवासी श्रीकृष्णको उस समय बहुत-से ग्वालबाल जंगली खिलौने देकर प्रसन्न करनेकी चेष्टा करते थे॥ २५॥ दूसरे ग्वालबाल मन-ही-मन प्रसन्न हो अनेक प्रकारके गीत गाते थे। अन्य गोपबालक जिन्हें श्रीकृष्णकी वह मधुर क्रीडा बहुत ही प्रिय थी अथवा जो श्रीकृष्णविषयक अनुरागको ही अपनी प्रिय वस्तु मानते थे, वे श्रीकृष्णका ही यशोगान करने लगे॥ २६॥ उन ग्वालबालोंके गाते समय बलवान् श्रीकृष्ण पत्तोंके बनाये हुए वाद्योंके बीच-बीचमें मुरली, तुम्बी (तँबूरा) तथा बीन बजाते थे॥ २७॥ गाय-बैलोंके समान विशाल नेत्रोंवाले श्रीकृष्ण किसी समय अपनी गौओंको चराते हुए ही यमुनाजीके तटपर जा पहुँचे। जहाँका प्रत्येक वृक्ष लताओंसे अलंकृत था॥ २८॥ जो अपनी चञ्चल तरङ्गरूपी कुटिल कटाक्षोंसे कुछ वक्र दिखायी देती थी, जिसके जलका स्पर्श करके सुखदायिनी हवा चल रही थी तथा जिसमें कमल और उत्पल खिले हुए थे, उस यमुना नदीको श्रीकृष्णने देखा॥ २९॥

सुतीर्थां स्वादुसलिलां ह्रदिनीं वेगगामिनीम्।
तोयवातोद्यतैर्वेगैरवनामितपादपाम् ॥ ३०

हंसकारण्डवोद्घुष्टां सारसैश्च निनादिताम्।
अन्योन्यमिथुनैश्चैव सेवितां मिथुनेचरैः॥ ३१

जलजैः प्राणिभिः कीर्णां जलजैर्भूषितां गुणैः।
जलजैः कुसुमैश्चित्रां जलजैर्हरितोदकाम्॥ ३२

प्रसृतस्त्रोतचरणां पुलिनश्रोणिमण्डलाम्।
आवर्तनाभिगम्भीरां पद्मरोमानुरञ्जिताम्॥ ३३

तटच्छेदोदरां कान्तां त्रितरङ्गवलीधराम्।
फेनप्रहृष्टवदनां प्रसन्नां हंसहासिनीम्॥ ३४

रुचिरोत्पलरक्तोष्ठीं नतभ्रूं जलजेक्षणाम्।
ह्रददीर्घललाटान्तां कान्तां शैवलमूर्द्धजाम्॥ ३५

चक्रवाकस्तनतटीं तीरपार्श्वायताननाम्।
दीर्घस्त्रोतायतभुजामाभोगश्रवणायताम्॥ ३६

कारण्डवाकुण्डलिनीं श्रीमत्पङ्कजलोचनाम्।
तटजाभरणोपेतां मीननिर्मलमेखलाम्॥ ३७

वारिप्लवप्लवक्षौमां सारसारावनूपुराम्।
काशचामीकरं वासो वसानां हंसलक्षणम्॥ ३८

उसमें उतरनेके लिये उत्तम मार्ग थे। उसका जल स्वादिष्ठ था। उसके भीतर कई कुण्ड थे तथा वह बड़े वेगसे प्रवाहित हो रही थी। जल और वायुके द्वारा प्रकट हुए वेगसे उसने किनारेके वृक्षोंको झुका दिया था॥ ३०॥ हंसों और कारण्डवोंके उद्घोष तथा सारसोंके कलनादसे वहाँ सदा कोलाहल होता रहता था। अपने जोड़ेके साथ विचरनेवाले चक्रवाक आदि पक्षी परस्पर मैथुनमें प्रवृत्त हो यमुनातटका सेवन करते थे॥ ३१॥ जलमें उत्पन्न होनेवाले प्राणी (मत्स्य आदि) यमुनाजीमें भरे हुए थे। वे जलजनित शीतलता आदि गुणोंसे विभूषित थीं। जलमें होनेवाले कमल आदि पुष्प उनमें विचित्र शोभाका आधान करते थे तथा जलजनित सेवार आदिके कारण उनका जल हरा दिखायी देता था॥ ३२॥ फैले हुए स्रोत ही उनके चरण थे। दोनों तट नितम्बमण्डलकी शोभा धारण करते थे। उठती हुई भँवरें उनकी गम्भीर नाभि थी। वे कमलरूपी रोमावलिसे अनुरञ्जित थीं॥ ३३॥ तटके निकट जो प्रवाहकी कृशता थी, वही उनका सूक्ष्म उदर अथवा कृश कटिभाग थी। वे अपनी मनोहर कान्तिसे कमनीय प्रतीत होती थीं। वे तरङ्गमयी त्रिवली धारण करती थीं। फेन ही उनका हर्षोत्फुल्ल मुख था। वे सदा प्रसन्न (स्वच्छ) रहती थीं और हंस ही उनके हास थे॥ ३४॥ सुन्दर लाल कमल उनके लाल-लाल ओष्ठोंकी झाँकी कराते थे। जलका नीचेकी ओर जाता हुआ प्रवाह ही उनकी झुकी हुई भौंहें थीं। नील कमल ही उनके नेत्र थे। जलका कुण्ड ही उनका विस्तृत ललाट-प्रान्त था तथा सेवार ही उनके सुन्दर केश थे। उनकी कान्ति बड़ी ही कमनीय थी॥ ३५॥ चकवा-चकईके जोड़े उनके मानो युगल उरोज थे। उनका विस्तृत मुख दोनों तटोंपर फैला हुआ था। लम्बे स्रोत ही उनकी विशाल भुजाओंके समान थे। दोनों तटोंकी पूर्णता ही उनके विस्तृत कान थे॥ ३६॥ वे कारण्डवोंके कुण्डल पहिने हुए थीं। उनके नील कमलरूपी लोचन अनुपम शोभासे सम्पन्न थे। तटपर उत्पन्न हुए वृक्ष आदि ही उनके आभरण थे। मछलियोंकी पंक्ति उनकी उज्ज्वल मेखला (करधनी)-सी प्रतीत होती थी। उनके जलका फैला हुआ पाट ही पाटम्बरका काम देता था। सारसोंकी मीठी बोली ही उनके नूपुरोंकी मधुर ध्वनि थी। वे काशपुष्प, हंस एवं सुवर्णके समान सुन्दर स्वच्छ जलमय वस्त्र धारण करती थीं॥ ३७-३८॥

भीमनक्रानुलिप्ताङ्गीं कूर्मलक्षणभूषिताम्।
निपानश्वापदापीडां नृभिः पीतपयोधराम्॥ ३९

श्वापदोच्छिष्टसलिलामाश्रमस्थानसंकुलाम्।
तां समुद्रस्य महिषीमीक्षमाणः समन्ततः॥ ४०

चचार रुचिरं कृष्णो यमुनामुपशोभयन्।
तां चरन् स नदीं श्रेष्ठां ददर्श ह्रदमुत्तमम्॥ ४१

दीर्घं योजनविस्तारं दुस्तरं त्रिदशैरपि।
गम्भीरमक्षोभ्यजलं निष्कम्पमिव सागरम्॥ ४२

तोयजैः श्वापदैस्त्यक्तं शून्यं तोयचरैः खगैः।
अगाधेनाम्भसा पूर्णं मेघपूर्णमिवाम्बरम्॥ ४३

दुःखोपसर्प्यं तीरेषु ससर्पैर्विपुलैर्बिलैः।
विषारणिभवस्याग्रेर्धूमेन परिवेष्टितम्॥ ४४

अभोग्यं तत् पशूनां हि अपेयं च जलार्थिनाम्।
उपभोगैः परित्यक्तं सुरैस्त्रिषवणार्थिभिः॥ ४५

आकाशादप्यसंचार्यं खगैराकाशगोचरैः।
तृणेष्वपि पतत्स्वप्सु ज्वलन्तमिव तेजसा॥ ४६

समन्ताद् योजनं साग्रं देवैरपि दुरासदम्।
विषानलेन घोरेण ज्वालाप्रज्वलितद्रुमम्॥ ४७

भयंकर नाके उनके अङ्गोंमें लगे हुए चन्दन-से प्रतीत होते थे। वे कच्छपरूपी लक्षणों (हाथ-पैरोंकी रेखाओं)-से विभूषित थीं। पशुओंके पानी पीनेके घाटपर आये हुए श्वापद (हिंसक जन्तु) उनके शीशफूल थे। मनुष्य आदि प्राणी उनके पयोधर (जलपूर्ण स्तन)-का पान करते थे॥ ३९॥ यमुनाके जलको हिंसक जन्तुओंने पीकर जूठा कर दिया था और उनके दोनों तट विभिन्न आश्रमोंसे भरे हुए थे। ऐसी समुद्रकी पटरानी यमुनाकी शोभा निहारते और बढ़ाते हुए श्रीकृष्ण अपनी मनोहर गतिसे वहाँ चारों ओर विचर रहे थे। नदियोंमें श्रेष्ठ यमुनाके तटपर विचरते हुए श्रीकृष्णने एक उत्तम ह्रद (जलकुण्ड) देखा, जो बहुत बड़ा था। उसका विस्तार एक योजनका था। देवताओंके लिये भी उसे पार करना कठिन था। वह बहुत ही गहरा, क्षोभरहित जलसे परिपूर्ण तथा प्रशान्त समुद्रके समान हलचलसे शून्य था॥ ४०—४२॥ जलमें पैदा होनेवाले मगर आदि हिंसक जन्तुओंने भी उस ह्रदको त्याग दिया था। जलचर पक्षियोंसे भी वह सूना ही था तथा मेघोंसे आच्छादित हुए आकाशकी भाँति वह अगाध जलसे पूर्ण दिखायी देता था॥ ४३॥ उसके तटोंपर बड़े-बड़े बिल थे, जिनमें सर्प रहते थे। उनके कारण उस कुण्डतक पहुँचना बहुत ही कष्टदायक था। सर्पोंकी विषरूपी अरणिसे उत्पन्न हुई आगके धूमसे वह सारा कुण्ड व्याप्त रहता था॥ ४४॥ वह पशुओंके उपभोगमें आनेके योग्य नहीं रह गया था। जलार्थी प्राणियोंके लिये उसका जल अपेय हो गया था। तीनों समय स्नानकी इच्छा रखनेवाले देवताओंने भी उसे त्याग दिया था। वह ह्रद उनके उपभोगमें भी नहीं आता था॥ ४५॥ उस कुण्डके ऊपर-ऊपर आकाशचारी पक्षियोंके लिये आकाशमार्गसे भी जाना असम्भव था। उसके जलमें तिनके भी पड़ जायँ तो वह कुण्ड अपनी विषाग्निके तेजसे प्रज्वलित हो उठता था॥ ४६॥ उसके चारों ओर एक-एक योजनसे अधिक भूभाग ऐसा था, जिसपर चलना देवताओंके लिये भी बहुत कठिन था। वहाँ फैली हुई भयानक विषाग्निसे जो लपट उठती थी, उसने आस-पासके वृक्षोंको भी जलाकर भस्म कर दिया था॥ ४७॥

व्रजस्योत्तरतस्तस्य क्रोशमात्रे निरामये।
तं दृष्ट्वा चिन्तयामास कृष्णो वै विपुलं ह्रदम्॥ ४८

अगाधं द्योतमानं च कस्यायं महतो ह्रदः।
अस्मिन् स कालियो नाम कालाञ्जनचयोपमः॥ ४९

उरगाधिपतिः साक्षाद्ध्रदे वसति दारुणः।
उत्सृज्य सागरावासं यो मया विदितः पुरा॥ ५०

भयात् पतगराजस्य सुपर्णस्योरगाशिनः।
तेनेयं दूषिता सर्वा यमुना सागरङ्गमा॥ ५१

भयात् तस्योरगपतेर्नायं देशो निषेव्यते।
तदिदं दारुणाकारमरण्यं रूढशाद्वलम्॥ ५२

सावरोहद्रुमं घोरं कीर्णं नानालताद्रुमैः।
रक्षितं सर्पराजस्य सचिवैराप्तकारिभिः॥ ५३

वनं निर्विषयाकारं विषान्नमिव दुःस्पृशम्।
तैराप्तकारिभिर्नित्यं सर्वतः परिरक्षितम्॥ ५४

शैवालनलिनैश्चापि वृक्षैः क्षुद्रलताकुलैः।
कर्तव्यमार्गौ भ्राजेते ह्रदस्यास्य तटावुभौ॥ ५५

तदस्य सर्पराजस्य कर्तव्यो निग्रहो मया।
यथेयं सरिदम्भोदा भवेच्छिवजलाशया॥ ५६

व्रजोपभोग्या च यथा नागे च दमिते मया।
सर्वत्र सुखसंचारा सर्वतीर्थसुखाश्रया॥ ५७

एतदर्थं च वासोऽयं व्रजेऽस्मिन् गोपजन्म च।
अमीषामुत्पथस्थानां निग्रहार्थं दुरात्मनाम्॥ ५८

एनं कदम्बमारुह्य तदेव शिशुलीलया।
विनिपत्य ह्रदे घोरे दमयिष्यामि कालियम्॥ ५९

एवं कृते बाहुवीर्यं लोके ख्यातिं गमिष्यति॥ ६०

व्रजके उत्तर भागमें केवल एक कोसकी भूमि ऐसी रह गयी थी, जो उसकी विषाग्निके प्रभावसे बची रहनेके कारण रोग-शोकसे रहित थी। उस विशाल एवं अगाध कुण्डको, जो अपने तेजसे दीप्तिमान् था, देखकर श्रीकृष्णने मन-ही-मन सोचा—किस महान् प्राणीका यह कुण्ड है। इस ह्रदमें काली अञ्जनराशिके समान काला तथा अत्यन्त दारुण वह साक्षात् नागराज कालिय निवास करता है, जो पूर्वकालमें मेरी जानकारीमें ही सर्पभोजी पक्षिराज गरुडके भयसे समुद्रका निवास छोड़कर यहाँ आ गया था। उसीने इस सारी समुद्रगामिनी यमुनाको विषसे दूषित किया है। उस नागराजके भयसे ही कोई प्राणी इस देशका सेवन नहीं करता। इसीलिये बड़ी-बड़ी घासोंसे भरा हुआ यह वन भयानक हो गया है। वरोह और वृक्षोंसहित यह घोर वन नाना प्रकारकी लताओं तथा पादपोंसे परिपूर्ण है तथा सर्पराज कालियके विश्वासी मन्त्री इस भूभागकी रक्षा करते हैं॥ ४८—५३॥ यह वन आकाशकी भाँति अवलम्बशून्य हो गया है। विषमिश्रित अन्नके समान इसका स्पर्श भी दुःखदायक है। कालियके उन विश्वसनीय सचिवोंद्वारा यह सदा सब ओरसे सुरक्षित है॥ ५४॥ इस ह्रदके दोनों तट सिवार, कमल तथा छोटी-छोटी लताओंसे भरे हुए वृक्षोंसे सुशोभित होते हैं। मुझे यहाँतक पहुँचनेके लिये मार्ग बनाना होगा॥ ५५॥ इसी दृष्टिसे मुझे इस नागराजका दमन करना है, जिससे जल देनेवाली यह नदी कल्याणकारी जलका आश्रय हो सके॥ ५६॥ इस नागका मेरे द्वारा दमन हो जानेपर यहाँकी नदी समूचे व्रजके उपभोगमें आनेयोग्य हो जायगी। यहाँ सब ओर सुखपूर्वक विचरण करना सम्भव हो जायगा तथा यह नदी समस्त तीर्थों और सुखोंका आश्रय हो जायगी॥ ५७॥ इसीलिये व्रजमें मेरा यह निवास हुआ है और इसीलिये मैंने गोपोंमें अवतार ग्रहण किया है। कुमार्गपर स्थित हुए इन दुरात्माओंका दमन करनेके लिये ही यहाँ मेरा अवतार हुआ है॥ ५८॥ मैं बालकोंके खेल-खेलमें ही इस कदम्बपर चढ़कर उस घोर ह्रदमें कूद पड़ूँगा और कालियनागका दमन करूँगा॥ ५९॥ ऐसा करनेपर संसारमें मेरे बाहुबलकी ख्याति होगी॥ ६०॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे विष्णुपर्वणि बालचरिते यमुनावर्णनं नामैकादशोऽध्यायः॥ ११॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत विष्णुपर्वमें बाललीलाके प्रसंगमें यमुनावर्णननामक ग्यारहवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ११॥

द्वादशोऽध्यायः

श्रीकृष्णद्वारा कालियनागका दमन, उसका समुद्रको प्रस्थान तथा गोपोंको श्रीकृष्णकी महत्ताका अनुभव

वैशम्पायन उवाच

सोपसृत्य नदीतीरं बद्ध्वा परिकरं दृढम्।
आरोहच्चपलः कृष्णः कदम्बशिखरं मुदा॥ १

कृष्णः कदम्बशिखराल्लम्बमानो घनाकृतिः।
ह्रदमध्येऽकरोच्छब्दं निपतन्नम्बुजेक्षणः॥ २

कृष्णेन तत्र पतता क्षुभितो यमुनाह्रदः।
सम्प्रासिच्यत वेगेन भिद्यमान इवाम्बुदः॥ ३

तेन शब्देन संक्षुब्धं सर्पस्य भवनं महत्।
उदतिष्ठज्जलात् सर्पो रोषपर्याकुलेक्षणः॥ ४

स चोरगपतिः क्रुद्धो मेघराशिसमप्रभः।
ततो रक्तान्तनयनः कालियः समदृश्यत॥ ५

पञ्चास्यः पावकोच्छ्वासश्चलजिह्वो ज्वलाननः।
पृथुभिः पञ्चभिर्घोरैः शिरोभिः परिवारितः॥ ६

पूरयित्वा ह्रदं सर्वं भोगेनानलवर्चसा।
स्फुरन्निव च रोषेण ज्वलन्निव च तेजसा॥ ७

क्रोधेन ज्वलतस्तस्य जलं शृतमिवाभवत्।
प्रतिस्रोताश्च भीतेव जगाम यमुना नदी॥ ८

तस्य क्रोधाग्निपूर्णेभ्यो वक्त्रेभ्योऽभूच्च मारुतः।
दृष्ट्वा कृष्णं ह्रदगतं क्रीडन्तं शिशुलीलया॥ ९

सधूमाः पन्नगेन्द्रस्य मुखान्निश्चेरुरर्चिषः।
सृजता तेन रोषाग्निं समीपे तीरजा द्रुमाः॥ १०

क्षणेन भस्मसान्नीता युगान्तप्रतिमेन वै।
तस्य पुत्राश्च दाराश्च भृत्याश्चान्ये महोरगाः॥ ११

वमन्तः पावकं घोरं वक्त्रेभ्यो विषसम्भवम्।
सधूमं पन्नगेन्द्रास्ते निपेतुरमितौजसः॥ १२

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! चञ्चल श्रीकृष्णने नदीके तटपर पहुँचकर दृढ़तापूर्वक अपनी कमर कस ली। फिर प्रसन्नतापूर्वक वे कदम्बकी शाखापर चढ़ गये॥ १॥ मेघके समान श्याम शरीरवाले कमलनयन श्रीकृष्णने कदम्बकी शाखासे लटककर कालियदहके बीचमें कूदते समय बड़े जोरका शब्द किया॥ २॥ श्रीकृष्णके वहाँ कूदनेसे यमुनाके उस कुण्डमें हलचल पैदा हो गयी। बड़े वेगसे जल उछलकर तट भूमिसहित सिंच उठा। ऐसा जान पड़ा, मानो वहाँ जलसे भरा हुआ मेघ फट पड़ा हो॥ ३॥ उस शब्दसे नागराजका विशाल भवन क्षुब्ध हो उठा और वह सर्प जलसे ऊपरको उठा। उस समय उसके नेत्र क्रोधसे भरे हुए थे॥ ४॥ मेघोंकी घटाके समान काले रंगवाला वह नागराज कालिय जब कुपित होकर उठा, उस समय उसके नेत्रप्रान्त रक्तवर्णके दिखायी दे रहे थे॥ ५॥ उसके पाँच मुख थे और उनके उच्छ्वासके साथ आगकी लपट उठती थी। उसकी जीभ चञ्चल गतिसे लपलपा रही थी और मुखमें आग भरी थी। वह पाँच भयंकर एवं स्थूल सिरसे घिरा रहता था॥ ६॥ अपने अग्निके समान तेजस्वी विशाल शरीरके द्वारा सारे ह्रदको पूर्ण करके वह क्रोधसे काँपता तथा तेजसे जलता हुआ-सा प्रतीत होता था॥ ७॥ क्रोधसे जलते हुए उस सर्पकी विषाग्निसे कालियकुण्डका जल खौलने-सा लगा तथा यमुनाका प्रवाह पीछेकी ओर लौट पड़ा। मानो वह नदी भयभीत-सी होकर पीछे भाग रही हो॥ ८॥ श्रीकृष्णको अपने ह्रदमें आकर बालकोंके समान खेलते देख कालिय नागके क्रोधाग्निपूर्ण मुखोंसे उच्छ्वास वायु प्रकट हुई। उस नागराजके मुखसे धूमसहित आगकी लपटें निकलने लगीं। अपनी क्रोधाग्नि प्रकट करते हुए उस प्रलयंकर-जैसे सर्पने उस कुण्डके आस-पास उगे हुए तीरवर्ती वृक्षोंको क्षणभरमें जलाकर भस्म कर दिया। उसके स्त्री, पुत्र, सेवक तथा अन्य बड़े-बड़े नाग एवं नागराज, जो अनन्त बलशाली थे, अपने मुखोंसे विषजनित, धूममिश्रित भयंकर आग उगलते हुए उनपर टूट पड़े॥ ९—१२॥

प्रवेशितश्च तैः सर्पैः स कृष्णो भोगबन्धनम्।
निर्यत्नचरणाकारस्तस्थौ गिरिरिवाचलः॥ १३

अदशन् दशनैस्तीक्ष्णैर्विषोत्पीडजलाविलैः।
ते कृष्णं सर्पपतयो न ममार च वीर्यवान्॥ १४

एतस्मिन्नन्तरे भीता गोपालाः सर्व एव ते।
क्रन्दमाना व्रजं जग्मुर्बाष्पगद्गदया गिरा॥ १५

गोपा ऊचुः

एष मोहं गतः कृष्णो मग्नो वै कालिये ह्रदे।
भक्ष्यते सर्पराजेन तदागच्छत मा चिरम्॥ १६

नन्दगोपाय वै क्षिप्रं सबलाय निवेद्यताम्।
एष ते कृष्यते कृष्णः सर्पेणेति महाह्रदे॥ १७

नन्दगोपस्तु तच्छ्रुत्वा वज्रपातोपमं वचः।
आर्तः स्खलितविक्रान्तस्तं जगाम ह्रदोत्तमम्॥ १८

सबालयुवतीवृद्धः स च संकर्षणो युवा।
आक्रीडं पन्नगेन्द्रस्य जलस्थं समुपागमत्॥ १९

नन्दगोपमुखा गोपास्ते सर्वे साश्रुलोचनाः।
हाहाकारं प्रकुर्वन्तस्तस्थुस्तीरे ह्रदस्य वै॥ २०

व्रीडिता विस्मिताश्चैव शोकार्ताश्च पुनः पुनः।
केचित् तु पुत्र हा हेति हा धिगित्यपरे पुनः॥ २१

अपरे हा हताः स्मेति रुरुदुर्भृशदुःखिताः।
स्त्रियश्चैव यशोदां तां हा हतासीति चुक्रुशुः॥ २२

या पश्यसि प्रियं पुत्रं सर्पराजवशं गतम्।
स्पन्दितं सर्पभोगेन कृष्यमाणं यथा मृतम्॥ २३

अश्मसारमयं नूनं हृदयं ते विलक्ष्यते।
पुत्रं कथमिमं दृष्ट्वा यशोदे नावदीर्यसे॥ २४

दुःखितं बत पश्यामो नन्दगोपं ह्रदान्तिके।
न्यस्य पुत्रमुखे दृष्टिं निश्चेतनमवस्थितम्॥ २५

उन सभी सर्पोंने श्रीकृष्णको अपने शरीरोंके बन्धनमें बाँध लिया। उनके हाथ-पैर एवं सारे अङ्ग निश्चेष्ट हो गये। वे पर्वतकी भाँति अविचल भावसे खड़े रह गये॥ १३॥ उन समस्त नागराजोंने विषके प्रवाहसे मिश्रित जलके द्वारा मलिन हुए अपने तीखे दाँतोंसे श्रीकृष्णको डँसना आरम्भ किया; परंतु शक्तिशाली श्रीकृष्ण मर न सके॥ १४॥ इसी बीचमें समस्त ग्वालबाल भयभीत हो रोते हुए व्रजमें गये और अश्रुगद्गद वाणीमें इस प्रकार बोले॥ १५॥

गोपोंने कहा—ये श्रीकृष्ण कालियदहमें डूबकर मूर्च्छित हो गये हैं और नागराज इन्हें खाये जाता है; अतः जल्दी आओ, देर न करो॥ १६॥ दल-बलसहित नन्दगोपसे कोई शीघ्र जाकर कह दो कि 'तुम्हारे कृष्णको सर्प महान् कुण्डमें खींचे लिये जाता है'॥ १७॥ वह वज्रपातके समान दारुण वचन सुनकर नन्दगोप शोकसे व्याकुल हो लड़खड़ाते हुए उस विशाल ह्रदके पास जा पहुँचे॥ १८॥ उनके साथ व्रजके बहुत-से बालक, वृद्ध और युवतियाँ भी थीं। रोहिणीके युवक पुत्र संकर्षण भी आ पहुँचे थे। ये सब-के-सब नागराजकी जलस्थ क्रीडाभूमिके पास आये॥ १९॥ नन्द आदि वे सभी गोप नेत्रोंसे आँसू बहाते और हाहाकार करते हुए कालियदहके तटपर खड़े हो गये॥ २०॥ वे अपनी विवशतापर लज्जित थे। श्रीकृष्णका साहस देख-सुनकर आश्चर्यमें पड़े थे और उनके जीवनकी आशङ्कासे बारम्बार शोकार्त हो जाते थे। कोई 'हाय बेटा! हाय!' कहकर रो देते और दूसरे 'हाय! धिक्कार है हम सबके जीवनको' ऐसा कहते हुए चिन्तामग्न हो जाते थे॥ २१॥ दूसरे लोग अत्यन्त दुःखी हो 'हाय! हम मारे गये।' ऐसा कहते हुए जोर-जोरसे रोते थे। व्रजकी स्त्रियाँ यशोदाकी ओर देख चिल्ला-चिल्लाकर कहती थीं—'हाय यशोदे! तू बेमौत मारी गयी, क्योंकि अपने प्यारे लालाको आज इस नागराजके वशमें पड़ा हुआ देख रही हो। हाय! वह सर्पके शरीरसे आबद्ध हो मृतककी भाँति घसीटा जा रहा है॥ २२-२३॥ यशोदे! निश्चय ही तुम्हारा हृदय लोहेका बना हुआ दिखायी देता है। अरी! पुत्रको इस दशामें देखकर तुम्हारी छाती फट क्यों नहीं जाती है?॥ २४॥ हाय! हम देखते हैं, नन्दबाबा अत्यन्त दुःखी हो कालियदहके निकट लाला कन्हैयाके मुखपर अपनी दृष्टि जमाये अचेत-से खड़े हैं'॥ २५॥

यशोदामनुगच्छन्त्यः सर्पावासमिमं ह्रदम्।
प्रविशामो न यास्यामो विना दामोदरं व्रजम्॥ २६

दिवसः को विना सूर्यं विना चन्द्रेण का निशा।
विना वृषेण का गावो विना कृष्णेन को व्रजः।
विना कृष्णं न यास्यामो विवत्सा इव धेनवः॥ २७

तासां विलपितं श्रुत्वा तेषां च व्रजवासिनाम्।
विलापं नन्दगोपस्य यशोदारुदितं तथा॥ २८

एकभावशरीरज्ञ एकदेहो द्विधा कृतः।
संकर्षणस्तु संक्रुद्धो बभाषे कृष्णमव्ययम्॥ २९

कृष्ण कृष्ण महाबाहो गोपानां नन्दवर्द्धन।
दम्यतामेष वै क्षिप्रं सर्पराजो विषायुधः॥ ३०

इमे नो बान्धवास्तात त्वां मत्वा मानुषं विभो।
परिदेवन्ति करुणं सर्वे मानुषबुद्धयः॥ ३१

तच्छ्रुत्वा रौहिणेयस्य वाक्यं संज्ञासमीरितम्।
विक्रम्यास्फोटयद् बाहू भित्त्वा तन्नागबन्धनम्॥ ३२

तस्य पद्भ्यामथाक्रम्य भोगराशिं जलोत्थितम्।
शिरस्तु कृष्णो जग्राह स्वहस्तेनावनाम्य च॥ ३३

तस्यारुरोह सहसा मध्यमं तन्महच्छिरः।
सोऽस्य मूर्ध्नि स्थितः कृष्णो ननर्त रुचिराङ्गदः॥ ३४

मृद्यमानः स कृष्णेन शान्तमूर्धा भुजङ्गमः।
आस्यैः सरुधिरोद्गारैः कातरो वाक्यमब्रवीत्॥ ३५

अविज्ञानान्मया कृष्ण रोषोऽयं सम्प्रदर्शितः।
दमितोऽहं हतविषो वशगस्ते वरानन॥ ३६

तदाज्ञापय किं कुर्यां सदा सापत्यबान्धवः।
कस्य वा वशतां यामि जीवितं मे प्रदीयताम्॥ ३७

पञ्चमूर्द्धानतं दृष्ट्वा सर्पं सर्पारिकेतनः।
अक्रुद्ध एव भगवान् प्रत्युवाचोरगेश्वरम्॥ ३८

तवास्मिन् यमुनातोये नैव स्थानं ददाम्यहम्।
गच्छार्णवजलं सर्प सभार्यः सहबान्धवः॥ ३९

'हम सब-की-सब यशोदाजीके पीछे-पीछे सर्पोंके निवासस्थान इस ह्रदमें प्रवेश कर जायँगी, किंतु दामोदर (श्रीकृष्ण)-को साथ लिये बिना व्रजको नहीं लौटेंगी॥ २६॥ सूर्यके बिना दिन कैसा? चन्द्रमाके बिना रात्रि कैसी? साँड़के बिना गौएँ क्या? तथा श्रीकृष्णके बिना व्रज कैसा? बिना बछड़ेकी धेनुओंके समान हम श्रीकृष्णके बिना व्रजको नहीं लौटेंगी'॥ २७॥ उन गोपियोंका, व्रजवासियोंका तथा नन्दबाबाका विलाप और यशोदाजीका करुणापूर्ण रोदन सुनकर श्रीकृष्णके साथ अपने एक भाव और एक शरीरके सम्बन्धको जाननेवाले संकर्षण, जो वास्तवमें एक ही देहके दो भागोंमेंसे एक थे, कुपित हो अविनाशी श्रीकृष्णसे इस प्रकार बोले—॥ २८-२९॥ 'गोपोंका आनन्द बढ़ानेवाले महाबाहु श्रीकृष्ण! कृष्ण! विष ही जिसका अस्त्र-शस्त्र है, उस सर्पराजका अब शीघ्र दमन करो॥ ३०॥ तात! प्रभो! ये हमारे समस्त बन्धु-बान्धव तुममें मानव-बुद्धि ही रखते हैं और तुम्हें मनुष्य मानकर ही करुणाजनक विलाप करते हैं'॥ ३१॥ रोहिणीनन्दन संकर्षणका यह सांकेतिक वचन सुनकर श्रीकृष्णने सर्पोंके उस बन्धनको तोड़ डाला और पराक्रम दिखाते हुए अपनी बाँहोंपर ताल ठोंका॥ ३२॥ तत्पश्चात् जलके ऊपर उठे हुए उस सर्पके भारी शरीरको अपने दोनों पैरोंसे दबाकर श्रीकृष्णने अपने हाथसे ही उसके मस्तकको झुकाकर पकड़ लिया॥ ३३॥ फिर श्रीकृष्ण सहसा उसके बिचले विशाल सिरपर चढ़ गये और उसीपर खड़े हो नृत्य करने लगे। उस समय उनकी भुजाओंमें सुन्दर बाजूबंद शोभा पा रहे थे॥ ३४॥ श्रीकृष्णके द्वारा मस्तकके कुचल दिये जानेपर उस सर्पका दिमाग ठंडा हो गया—उसके मस्तिष्ककी गरमी शान्त हो गयी। वह अपने मुखोंसे खून उगलता हुआ कातरभावसे बोला—॥ ३५॥ 'सुमुख श्रीकृष्ण! मैंने अज्ञानवश आपके सामने इस क्रोधका प्रदर्शन किया है। आपने मेरा दमन कर दिया। मेरा सारा विष नष्ट हो गया। अब मैं आपके अधीन हूँ॥ ३६॥ अतः आज्ञा दीजिये, मैं सदा ही अपने पुत्र और बन्धु-बान्धवोंसहित आपकी क्या सेवा करूँ? अथवा किसके अधीन हो जाऊँ? मुझे जीवन-दान दीजिये'॥ ३७॥ उस सर्पको अपने पाँचों मस्तकोंसे प्रणत हुआ देख भगवान् गरुडध्वजने क्रोध न करके नागराज कालियसे इस प्रकार कहा—॥ ३८॥ 'ओ सर्प! मैं तुम्हें इस यमुनाजीके जलमें नहीं रहने दूँगा। तुम अपनी पत्नी तथा भाई-बन्धुओंके साथ समुद्रके जलमें चले जाओ'॥ ३९॥

यश्चेह भूयो दृश्येत स्थाने वा यदि वा जले।
तव भृत्यस्तनूजो वा क्षिप्रं वध्यः स मे भवेत्॥ ४०

शिवं चास्य जलस्यास्तु त्वं च गच्छ महार्णवम्।
स्थाने त्विह भवेद् दोषस्तवान्तकरणो महान्॥ ४१

मत्पदानि च ते सर्प दृष्ट्वा मूर्धसु सागरे।
गरुडः पन्नगरिपुस्त्वयि न प्रहरिष्यति॥ ४२

गृह्य मूर्ध्ना तु चरणौ कृष्णस्योरगपुङ्गवः।
पश्यतामेव गोपानां जगामादर्शनं ह्रदात्॥ ४३

निर्जिते तु गते सर्पे कृष्णमुत्तीर्य धिष्ठितम्।
विस्मितास्तुष्टुवुर्गोपाश्चक्रुश्चैव प्रदक्षिणम्॥ ४४

ऊचुः सर्वे च सम्प्रीता नन्दगोपं वनेचराः।
धन्योऽस्यनुगृहीतोऽसि यस्य ते पुत्र ईदृशः॥ ४५

अद्यप्रभृति गोपानां गवां गोष्ठस्य चानघ।
आपत्सु शरणं कृष्णः प्रभुश्चायतलोचनः॥ ४६

जाता शिवजला सर्वा यमुना मुनिसेविता।
तीरे चास्याः सुखं गावो विचरिष्यन्ति नः सदा॥ ४७

व्यक्तमेव वयं गोपा वने यत् कृष्णमीदृशम्।
महद्भूतं न जानीमश्छन्नमग्निमिव व्रजे॥ ४८

एवं ते विस्मिताः सर्वे स्तुवन्तः कृष्णमव्ययम्।
जग्मुर्गोपगणा घोषं देवाश्चैत्ररथं यथा॥ ४९

'अब फिर यहाँ इस स्थानपर या जलमें यदि कोई भी सर्प दिखायी देगा तो वह तुम्हारा भृत्य हो या पुत्र, मेरे हाथसे शीघ्र मार डाला जायगा॥ ४०॥ इस जलकी शुद्धि हो जाय—यह लोगोंके लिये मङ्गलकारी हो, इसलिये तुम महासागरमें चले जाओ। यहाँ रहनेपर तुम्हारे जीवनका अन्त कर देनेवाला महान् दोष प्राप्त होगा॥ ४१॥ सर्प! समुद्रमें रहते समय भी तुम्हारे पाँचों मस्तकोंपर मेरे चरण-चिह्न देखकर सर्पोंके शत्रु गरुड़ तुमपर प्रहार नहीं करेंगे'॥ ४२॥ तब नागप्रवर कालिय भगवान् श्रीकृष्णके दोनों चरणोंमें मस्तक झुकाकर गोपोंके देखते-देखते उस कुण्डसे अदृश्य हो गया॥ ४३॥ जब वह सर्प हार मानकर चला गया और श्रीकृष्ण जलसे निकलकर किनारे खड़े हो गये, तब सब गोप आश्चर्यसे चकित हो उनकी स्तुति और परिक्रमा करने लगे॥ ४४॥ समस्त वनचारी गोपोंने अत्यन्त प्रसन्न होकर नन्दगोपसे कहा—'गोपराज! आप धन्य हैं, आपपर भगवान्की बड़ी भारी कृपा है, जिससे आपको ऐसा पुत्र मिला॥ ४५॥ निष्पाप नन्द! आजसे सभी आपदाओंके समय गोपों, गौओं और गोष्ठ (व्रज)-के लिये ये विशाललोचन भगवान् श्रीकृष्ण ही शरणदाता और स्वामी हैं॥ ४६॥ 'मुनियोंसे सेवित समस्त यमुनाका जल अब सबके लिये सुखद एवं मङ्गलमय हो गया। अब हमारी गौएँ सदा इसके तटपर चरती-फिरती रहेंगी॥ ४७॥ 'हम वनमें रहनेवाले गँवार-ग्वारियाँ हैं'—यह बात स्पष्ट ही सत्य दिखायी देती है; क्योंकि ऐसे महान् आत्मा श्रीकृष्ण राखमें छिपी हुई आगकी तरह व्रजमें विद्यमान हैं, परंतु हम इनके महत्त्वको समझते ही नहीं हैं'॥ ४८॥ इस प्रकार वे विस्मित हुए समस्त गोपगण अविनाशी भगवान् श्रीकृष्णकी स्तुति करते हुए गोष्ठमें चले गये, मानो देवता चैत्ररथ वनमें गये हों॥ ४९॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे विष्णुपर्वणि शिशुचर्यायां कालियदमने द्वादशोऽध्यायः॥ १२॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत विष्णुपर्वमें बाललीलाके प्रसंगमें कालियदमनविषयक बारहवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १२॥

त्रयोदशोऽध्यायः

बलरामद्वारा धेनुकासुरका वध और भयरहित तालवनमें गौओं तथा गोपोंका विचरण

वैशम्पायन उवाच

दमिते सर्पराजे तु कृष्णेन यमुनाह्रदे।
तमेव चेरतुर्देशं सहितौ रामकेशवौ॥ १

आजग्मतुस्तौ सहितौ गोधनैः सह गामिनौ।
गिरिं गोवर्द्धनं रम्यं वसुदेवसुतावुभौ॥ २

गोवर्द्धनस्योत्तरतो यमुनातीरमाश्रितम्।
ददृशाते च तौ वीरौ रम्यं तालवनं महत्॥ ३

तौ तालपर्णप्रतते रम्ये तालवने रतौ।
चेरतुः परमप्रीतौ वृषपोताविवोद्धतौ॥ ४

स तु देशः सदा स्निग्धो लोष्टपाषाणवर्जितः।
दर्भप्रायस्थलीभूतः सुमहान् कृष्णमृत्तिकः॥ ५

तालैस्तैर्विपुलस्कन्धैरुच्छ्रितैः श्यामपर्वभिः।
फलाग्रशाखिभिर्भाति नागहस्तैरिवोच्छ्रितैः॥ ६

तत्र दामोदरो वाक्यमुवाच वदतां वरः।
अहो तालफलैः पक्वैर्वासितेयं वनस्थली॥ ७

स्वादून्यार्य सुगन्धीनि श्यामानि रसवन्ति च।
पक्वतालानि सहितौ पातयावो लघुक्रमौ॥ ८

यद्येषामीदृशो गन्धो माधुर्यघ्राणतर्पणः।
रसेनामृतकल्पेन भवितव्यं च मे मतिः॥ ९

दामोदरवचः श्रुत्वा रौहिणेयो हसन्निव।
पातयन् पक्वतालानि चालयामास तांस्तरून्॥ १०

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! जब श्रीकृष्णने यमुनाजीके कुण्डमें रहनेवाले नागराज कालियका दमन कर दिया, उसके बादसे वे दोनों भाई बलराम और श्रीकृष्ण प्रायः उसी प्रदेशमें साथ-साथ विचरा करते थे॥ १॥ एक दिन वसुदेवके वे दोनों पुत्र गोधनके साथ विचरते हुए परम रमणीय गोवर्धन पर्वतके निकट आये॥ २॥ वहाँ उन दोनों वीरोंने देखा—गोवर्धनसे उत्तर दिशामें यमुनाके तटका आश्रय लेकर एक विशाल एवं रमणीय तालवन शोभा पा रहा है॥ ३॥ ताड़के पत्तोंसे विस्तारको प्राप्त हुए उस रमणीय तालवनमें क्रीडापरायण हो वे दोनों भाई दो उद्दण्ड बछड़ोंके समान बड़ी प्रसन्नताके साथ विचरने लगे॥ ४॥ वह विशाल प्रदेश सदा ही स्निग्ध (चिकना) रहता था, वहाँ ढेले और पत्थरोंके रोड़े नहीं थे। वहाँके स्थलोंपर प्रायः दर्भ (कुश, दूर्वा आदि) फैले हुए थे। उस स्थानकी मिट्टी काले रंगकी थी॥ ५॥ वहाँ जो ताड़के वृक्ष थे, उनके तने मोटे थे। वे सभी वृक्ष बहुत ऊँचे थे। उनके पर्वस्थान (गाँठ) काले रंगके थे और उनकी शाखाएँ फलोंसे भरी-पूरी थीं। उन तालवृक्षोंसे उस स्थानकी ऐसी शोभा हो रही थी, मानो वहाँ अपनी सूँड़ ऊपरको उठाये बहुत-से हाथी खड़े हों॥ ६॥ वहाँ वक्ताओंमें श्रेष्ठ दामोदर (श्रीकृष्ण)-ने संकर्षणसे कहा—'आर्य! यहाँकी वनस्थली तो इन पके हुए तालफलोंकी सुगन्धसे महक उठी है। ये काले और सुगन्धित तालफल अवश्य ही स्वादिष्ठ और सरस होंगे। हम दोनों भाई साथ-साथ रहकर शीघ्रतापूर्वक कदम उठाते हुए इन फलोंको यहाँ गिरावें॥ ७-८॥ यदि इनकी गन्ध ऐसी है, जो अपनी मधुरतासे हमारी घ्राणेन्द्रियोंको तृप्त किये देती है तो मेरा विश्वास है कि इन फलोंको अमृततुल्य रससे युक्त होना चाहिये'॥ ९॥ दामोदरकी यह बात सुनकर रोहिणीनन्दन बलराम हँसते हुए-से पके हुए तालफलोंको गिरानेके उद्देश्यसे उन वृक्षोंको हिलाने लगे॥ १०॥

तत्तु तालवनं नृणामसेव्यं दुरतिक्रमम्।
निर्माणभूतमिरिणं पुरुषादालयोपमम्॥ ११

दारुणो धेनुको नाम दैत्यो गर्दभरूपधृक्।
खरयूथेन महता वृतः समनुसेवते॥ १२

स तु तालवनं घोरं गर्दभः परिरक्षति।
नृपक्षिश्वापदगणांस्त्रासयानः सुदुर्मतिः॥ १३

तालशब्दं स तं श्रुत्वा संघुष्टं फलपातनात्।
नामर्षयत् स संक्रुद्धस्तालस्वनमिव द्विपः॥ १४

शब्दानुसारी संक्रुद्धो दर्पाविद्धसटाननः।
स्तब्धाक्षो ह्रेषितपटुः खुरैर्निर्दारयन्महीम्॥ १५

आविद्धपुच्छो हृषितो व्यात्तानन इवान्तकः।
आपतन्नेव ददृशे रौहिणेयमुपस्थितम्॥ १६

तालानां तमधो दृष्ट्वा स ध्वजाकारमव्ययम्।
रौहिणेयं खरो दुष्टः सोऽदशद् दशनायुधः॥ १७

पद्भ्यामुभाभ्यां च पुनः पश्चिमाभ्यां पराङ्मुखः।
जघानोरसि दैत्येन्द्रो रौहिणेयं निरायुधम्॥ १८

ताभ्यामेव स जग्राह पद्भ्यां तं दैत्यगर्दभम्।
आवर्जितमुखस्कन्धं प्रेरयंस्तालमूर्धनि॥ १९

सम्भग्नोरुकटिग्रीवो भग्नपृष्ठो दुराकृतिः।
खरस्तालफलैः सार्धं पपात धरणीतले॥ २०

तं गतासुं गतश्रीकं पतितं वीक्ष्य गर्दभम्।
ज्ञातींस्तथापरांस्तस्य तृणराजनि सोऽक्षिपत्॥ २१

सा भूर्गर्दभदेहैश्च तालैः पक्वैश्च पातितैः।
बभासे छन्नजलदा द्यौरिवाव्यक्तशारदी॥ २२

उस तालवनका सेवन मनुष्योंके लिये असम्भव हो गया था। उस वनको इस पारसे उस पारतक सकुशल लाँघ जाना अत्यन्त कठिन था। यद्यपि वह सारभूत स्थान था, तथापि राक्षसके घरकी भाँति मनुष्योंसे शून्य दिखायी देता था॥ ११॥ गर्दभरूपधारी धेनुक नामक दारुण दैत्य विशाल गदहोंकी टोलीसे घिरा हुआ उस वनमें रहता था॥ १२॥ वह गदहा असुर उस तालवनकी सब ओरसे रक्षा करता था। उसकी बुद्धि बहुत ही खोटी थी। वह मनुष्यों, पक्षियों तथा हिंसक जन्तुओंको भी आतङ्कित किये रहता था॥ १३॥ उन तालफलोंके गिरानेसे जो धमाकेकी आवाज होती थी, उसे सुनकर धेनुकासुर सहन न कर सका। जैसे ताल ठोंकनेकी आवाज सुनकर हाथी कुपित हो उठता है, उसी प्रकार वह भी अत्यन्त क्रोधमें भर गया॥ १४॥ वह उस धमाकेके शब्दका अनुसरण करता हुआ बड़े रोषके साथ चला। घमंडमें भरकर अपने अयाल और सिरको घुमाता आ रहा था। उसकी आँखें स्तब्ध हो गयी थीं। वह बड़ी पटुताके साथ रेंक रहा था और अपनी टापोंसे पृथ्वीको विदीर्ण-सा किये देता था। उसकी पूँछ घूम रही थी, रोंगटे खड़े हो गये थे, वह मुँह बाये हुए कालके समान जान पड़ता था। उसने आते ही रोहिणीनन्दन बलरामको वहाँ उपस्थित देखा॥ १५-१६॥ ध्वजाकी-सी आकृतिवाले अविनाशी रोहिणीकुमारको ताड़ोंके नीचे खड़ा देख दाँतोंसे ही शस्त्रका काम लेनेवाले उस दुष्ट गदहेने उन्हें दाँतसे काट लिया॥ १७॥ फिर दूसरी ओर मुँह करके उस दैत्यराज धेनुकने बिना हथियार लिये खड़े हुए रोहिणीकुमारकी छातीमें अपने पिछले दो पैरोंद्वारा चोट पहुँचायी॥ १८॥ तब बलरामजीने उस गर्दभरूपधारी दैत्यके उन्हीं दोनों पैरोंको पकड़ लिया तथा उसके मुँह और कंधोंको घुमाते हुए उसे ताड़वृक्षके ऊपर दे मारा॥ १९॥ उसकी दोनों जाँघें, कमर और गर्दन टूट गयीं। पीठकी हड्डी भी चूर-चूर हो गयी। उसकी आकृति बहुत बिगड़ गयी और वह गर्दभासुर तालफलोंके साथ ही पृथ्वीपर गिर पड़ा॥ २०॥ धेनुकासुरको प्राणशून्य और श्रीहीन होकर पृथ्वीपर पड़ा देख बलरामजीने उसके दूसरे भाई-बन्धुओंको भी उसी प्रकार ताड़वृक्षपर दे मारा॥ २१॥ वहाँकी भूमि गधोंकी लाशों तथा गिराये गये परिपक्व तालफलोंसे आच्छादित हो, जिसमें शरद्-ऋतुके लक्षण प्रकट न हुए हों और बादल छा रहे हों, ऐसे आकाशके समान सुशोभित होने लगी॥ २२॥

तस्मिन् गर्दभदैत्ये तु सानुगे विनिपातिते।
रम्यं तालवनं तद्धि भूयो रम्यतरं बभौ॥ २३

विप्रमुक्तभयं शुभ्रं विविक्ताकारदर्शनम्।
चरन्ति स्म सुखं गावस्तत् तालवनमुत्तमम्॥ २४

ततः प्रविष्टास्ते सर्वे गोपा वनविचारिणः।
वीतशोकभयायासाश्चेरुर्यन्ते समन्ततः॥ २५

ततः सुखं प्रकीर्णासु गोषु नागेन्द्रविक्रमौ।
द्रुमपर्णासनं कृत्वा तौ यथार्हं निषीदतुः॥ २६

सेवकोंसहित उस गर्दभरूपधारी दैत्यके मारे जानेपर वह सुरम्य तालवन और अधिक रमणीय प्रतीत होने लगा॥ २३॥ उस शुभ्र तालवनका सारा भय दूर हो गया। उसके एकान्त प्रदेशका भी सबको दर्शन होने लगा तथा उस उत्तम वनमें गौएँ सुखपूर्वक चरने लगीं॥ २४॥ तदनन्तर वनमें विचरनेवाले सभी गोप उस तालवनमें जा घुसे। उनका शोक, भय और आयास दूर हो गया था, अतः वे वहाँ सब ओर बारम्बार विचरण करने लगे॥ २५॥ तदनन्तर जब गौएँ सुखपूर्वक सब ओर फैलकर चरने लगीं, तब गजराजके समान पराक्रमी श्रीकृष्ण और बलराम वृक्षोंके पत्तोंका आसन लगाकर यथोचित रीतिसे बैठ गये॥ २६॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे विष्णुपर्वणि शिशुचर्यायां धेनुकवधे त्रयोदशोऽध्यायः॥ १३॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत विष्णुपर्वमें बाललीलाके प्रसंगमें धेनुकासुरका वधविषयक तेरहवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १३॥

चतुर्दशोऽध्यायः

बलरामद्वारा प्रलम्बासुरका वध

वैशम्पायन उवाच

अथ तौ जातहर्षौ तु वसुदेवसुतावुभौ।
तत् तालवनमुत्सृज्य भूयो भाण्डीरमागतौ॥ १

चारयन्तौ विवृद्धानि गोधनानि शुभानि च।
स्फीतसस्यप्ररूढानि वीक्षमाणौ वनानि च॥ २

क्ष्वेडयन्तौ प्रगायन्तौ प्रचिन्वन्तौ च पादपान्।
नामभिर्व्याहरन्तौ च सवत्सा गाः परंतपौ॥ ३

निर्योगपाशैरासक्तैः स्कन्धाभ्यां शुभलक्षणौ।
वनमालाकुलोरस्कौ बालशृङ्गाविवर्षभौ॥ ४

सुवर्णाञ्जनचूर्णाभावन्योन्यसदृशाम्बरौ।
महेन्द्रायुधसंसक्तौ शुक्लकृष्णाविवाम्बुदौ॥ ५

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! तदनन्तर हर्षमें भरे हुए वे दोनों वसुदेवकुमार उस तालवनको छोड़कर पुनः भाण्डीरवटके पास आ गये॥ १॥ वहाँ वे हृष्ट-पुष्ट और सुन्दर गोधनोंको चराते तथा बढ़ी हुई खेतीसे सम्पन्न वनस्थलियोंकी शोभा निहारते हुए विचरने लगे॥ २॥ शत्रुओंको संताप देनेवाले वे दोनों भाई कभी ताल ठोंकते, कभी गीत गाते, कभी वृक्षोंके फल-फूल और पत्ते तोड़ते और कभी बछड़ेवाली गौओंको उनके नाम ले-लेकर पुकारते थे॥ ३॥ कंधेपर गौ बाँधनेकी रस्सी डाले, सुन्दर लक्षणोंसे सम्पन्न तथा वनमालासे विभूषित वक्षःस्थलवाले वे दोनों वीर नये सींगोंवाले बछड़ोंके समान शोभा पाते थे॥ ४॥ उन दोनोंमेंसे एकके शरीरकी कान्ति सुवर्ण-चूर्णके समान गौर थी, तो दूसरेकी अञ्जन-चूर्णके समान श्याम। वे दोनों एक-दूसरेके अङ्गोंके समान रंगवाले वस्त्र धारण करते थे (अर्थात् गोरे बलभद्रका वस्त्र श्रीकृष्णकी अङ्गकान्तिके समान नीला था और श्यामसुन्दर श्रीकृष्णका वस्त्र बलभद्रकी अङ्गप्रभाके समान सुनहरा एवं पीला था)। वे दोनों इन्द्रधनुषसे सटे हुए श्वेत और काले रंगके दो बादलोंके समान जान पड़ते थे॥ ५॥

कुशाग्रकुसुमानां च कर्णपूरौ मनोरमौ।
वनमार्गेषु कुर्वाणौ वन्यवेषधरावुभौ॥ ६

गोवर्धनस्यानु चरौ वने सानुचरौ तु तौ।
चेरतुर्लोकसिद्धाभिः क्रीडाभिरपराजितौ॥ ७

तावेवं मानुषीं दीक्षां वहन्तौ सुरपूजितौ।
तज्जातिगुणयुक्ताभिः क्रीडाभिश्चेरतुर्वनम्॥ ८

तौ तु भाण्डीरमाश्रित्य बालक्रीडानुवर्तिनौ।
प्राप्तौ परमशाखाढ्यं न्यग्रोधं शाखिनां वरम्॥ ९

तत्र त्वान्दोलिकाभिश्च युद्धमार्गविशारदौ।
अश्मभिः क्षेपणीयैश्च तौ व्यायाममकुर्वताम्॥ १०

युद्धमार्गैश्च विविधैर्गोपालैः सहितावुभौ।
मुदितौ सिंहविक्रान्तौ यथाकामं विचेरतुः॥ ११

तयो रमयतोरेव तल्लिप्सुरसुरोत्तमः।
प्रलम्बोऽभ्यागमत् तत्र च्छिद्रान्वेषी तयोस्तदा॥ १२

गोपालवेषमास्थाय वन्यपुष्पविभूषितः।
लोभयानः स तौ वीरौ हास्यैः क्रीडनकैस्तथा॥ १३

सोऽवगाहत निश्शङ्कस्तेषां मध्यममानुषः।
मानुषं वपुरास्थाय प्रलम्बो दानवोत्तमः॥ १४

प्रक्रीडिताश्च ते सर्वे सह तेनामरारिणा।
गोपालवपुषं गोपा मन्यमानाः स्वबान्धवम्॥ १५

स तु च्छिद्रान्तरप्रेप्सुः प्रलम्बो गोपतां गतः।
दृष्टिं प्रणिदधे कृष्णे रौहिणेये च दारुणाम्॥ १६

अविषह्यं ततो मत्वा कृष्णमद्भुतविक्रमम्।
रौहिणेयवधे यत्नमकरोद् दानवोत्तमः॥ १७

वे दोनों वनके मार्गोंपर कुशोंके अग्रभाग तथा फूलोंके मनोरम कर्णपूर बनाकर धारण करते और वन्य वेष ग्रहण करके शोभा पाते थे॥ ६॥ वनमें उन दोनोंके पीछे चलनेवाले बहुत-से गोप-बालक थे। उन्हें साथ लेकर वे दोनों भाई गोवर्धनके आस-पास विचरा करते थे। वे कभी किसीसे पराजित होनेवाले नहीं थे। भाण्डीरवटके पास लोक-प्रचलित बालक्रीडाओंद्वारा मन बहलाते हुए श्रीकृष्ण और बलराम विचरण करने लगे॥ ७॥ इस प्रकार देवताओंद्वारा पूजित होनेपर भी वे दोनों मानवी दीक्षा ग्रहण करके मनुष्य-जातिके गुणोंसे युक्त क्रीडाएँ करते हुए वनमें घूमने लगे॥ ८॥ भाण्डीरके निकट आकर बालोचित क्रीडामें लगे हुए वे दोनों भाई उस उत्तम शाखाओंसे सम्पन्न एवं वृक्षोंमें श्रेष्ठ वटके नीचे आ गये॥ ९॥ युद्धकी प्रणालीमें परम चतुर वे दोनों भाई वहाँ कभी झूला झूलकर और कभी फेंकनेयोग्य पत्थर फेंककर व्यायाम करने लगे॥ १०॥ नाना प्रकारके युद्धके पैंतरे दिखाते हुए वे दोनों सिंहके समान पराक्रमी वीर ग्वालबालोंके साथ रहकर अपनी इच्छाके अनुसार सानन्द विचरने लगे॥ ११॥ वे दोनों जब इस प्रकार खेलका आनन्द ले रहे थे, उसी समय उन्हें उठा ले जानेकी इच्छासे असुरोंमें श्रेष्ठ प्रलम्ब एक गोपबालकका वेष धारण करके वहाँ आया। उसने वन्य-पुष्पोंसे अपने-आपको विभूषित कर रखा था। वह उस समय उनका छिद्र (उन्हें उठा ले जानेका अवसर) ढूँढ़ रहा था और उन दोनों वीरोंको अपने हँसी-खेलसे लुभा रहा था॥ १२-१३॥ दानवप्रवर प्रलम्ब मनुष्य न होनेपर भी मनुष्यका शरीर धारण करके निःशङ्कभावसे उन बालकोंके बीच घुस गया॥ १४॥ वे सब बालक उस देवद्रोहीके साथ खेलने लगे। वह ग्वालबालका वेष धारण करके आया था, इसलिये समस्त गोप उसे अपना भाई-बन्धु ही मानते थे॥ १५॥ परंतु गोपवेषमें आया हुआ प्रलम्ब उन दोनों वीरोंकी दुर्बलताका अवसर ढूँढ़ रहा था, इसलिये उसने श्रीकृष्ण और बलरामपर क्रूरतापूर्ण दृष्टि डाली॥ १६॥ श्रीकृष्णका पराक्रम अद्भुत था, इसलिये उन्हें अजेय मानकर उस दानवराजने रोहिणीकुमार बलरामजीको मारनेका प्रयत्न किया॥ १७॥

हरिणाक्रीडनं नाम बालक्रीडनकं ततः।
प्रक्रीडितास्तु ते सर्वे द्वौ द्वौ युगपदुत्पतन्॥ १८

कृष्णः श्रीदामसहितः पुप्लुवे गोपसूनुना।
संकर्षणस्तु प्लुतवान् प्रलम्बेन सहानघ॥ १९

गोपालास्त्वपरे द्वन्द्वं गोपालैरपरैः सह।
प्रद्रुता लङ्घयन्तो वै तेऽन्योन्यं लघुविक्रमाः॥ २०

श्रीदाममजयत् कृष्णः प्रलम्बं रोहिणीसुतः।
गोपालैः कृष्णपक्षीयैर्गोपालास्त्वपरे जिताः॥ २१

ते वाहयन्तस्त्वन्योन्यं संहर्षात् सहसा द्रुताः।
भाण्डीरस्कन्धमुद्दिश्य मर्यादां पुनरागमन्॥ २२

संकर्षणं तु स्कन्धेन शीघ्रमुत्क्षिप्य दानवः।
द्रुतं जगाम विमुखः सचन्द्र इव तोयदः॥ २३

स भारमसहंस्तस्य रौहिणेयस्य धीमतः।
ववृधे सुमहाकायः शक्राक्रान्त इवाम्बुदः॥ २४

स भाण्डीरवटप्रख्यं दग्धाञ्जनगिरिप्रभम्।
स्वं वपुर्दर्शयामास प्रलम्बो दानवोत्तमः॥ २५

पञ्चस्तबकयुक्तेन मुकुटेनार्कवर्चसा।
दीप्यमानाननो दैत्यः सूर्याक्रान्त इवाम्बुदः॥ २६

महाननो महाग्रीवः सुमहानन्तकोपमः।
रौद्रः शकटचक्राक्षो नमयंश्चरणैर्महीम्॥ २७

स्रग्दामलम्बाभरणः प्रलम्बाम्बरभूषणः।
वीरः प्रलम्बः प्रययौ लम्बतोय इवाम्बुदः॥ २८

तदनन्तर वे सब ग्वाल-बाल हरिणाक्रीडन* नामक बालोचित खेल खेलने लगे। उसमें दो-दो बालक एक साथ उछलते हुए कुछ दूर जाते थे॥ १८॥ निष्पाप जनमेजय! श्रीदामाके साथ श्रीकृष्ण और ग्वालबालके वेषमें आये हुए प्रलम्बके साथ संकर्षण कूद-कूदकर चलने लगे। इसी तरह दूसरे ग्वालबाल अन्य ग्वाल-बालोंके साथ दो-दोकी जोड़ी बनाकर एक-दूसरेको लाँघ जानेका प्रयत्न करते हुए शीघ्र गतिसे उछलते हुए चलने लगे॥ १९-२०॥ उस खेलमें श्रीकृष्णने श्रीदामाको, रोहिणीनन्दन बलरामने प्रलम्बको तथा अन्यान्य कृष्णपक्षीय गोपोंने दूसरे पक्षके गोपोंको पराजित कर दिया॥ २१॥ जो-जो बालक हारे थे, वे अपने साथके विजयी बालकोंको पीठपर ढोते हुए हर्षके साथ सहसा दौड़े और भाण्डीरवृक्षके तनेतक पहुँचनेकी नियत सीमापर पहुँचकर फिर लौट आये॥ २२॥ परंतु दानव प्रलम्ब बलरामजीको शीघ्र ही अपने कंधेपर चढ़ाकर वहाँसे विमुख हो तीव्र गतिसे आकाशकी ओर चल दिया। उस समय वह ऊपरी भागमें चन्द्रमाको धारण किये काले मेघके समान जान पड़ता था॥ २३॥ बुद्धिमान् रोहिणीनन्दन बलरामके भारको सहन न कर सकनेके कारण वह दानव बढ़ने लगा। बढ़ते-बढ़ते वह विशालकाय हो इन्द्रका वाहन बने हुए मेघके समान प्रतीत होने लगा॥ २४॥ दानवराज प्रलम्बने वहाँ अपने शरीरको भाण्डीरवट तथा जले हुए कज्जलगिरिके समान दिखाया॥ २५॥ उस दैत्यका मुख पाँच पुष्पगुच्छोंसे युक्त सूर्यतुल्य तेजस्वी मुकुटसे देदीप्यमान था। उस मुकुटको धारण करके वह सूर्यसे आक्रान्त हुए काले मेघके समान जान पड़ता था॥ २६॥ उसका मुख बहुत बड़ा था, गरदन भी वैसी ही थी। वह महाकाय दैत्य यमराजके समान भयंकर दिखायी देता था। उसकी आँखें गाड़ीके पहिये-सी घूम रही थीं। वह अपने पैरोंसे पृथ्वीको झुका देता था॥ २७॥ उसके गलेमें फूलोंकी लम्बी माला शोभा दे रही थी। उसके वस्त्र और आभूषण भी बहुत बड़े-बड़े थे। वह वीर प्रलम्ब नीचेको गिरते हुए जलवाले मेघके समान तीव्र गतिसे चला जा रहा था॥ २८॥

* एक निश्चित लक्ष्यके पास एक साथ दो-दो बालक हिरनकी भाँति उछलते हुए जाते हैं। जो दोनोंमें पहले पहुँच जाता है, वह विजयी होता है। हारा हुआ बालक जीते हुएको अपनी पीठपर चढ़ाकर मुख्य स्थानतक ले आता है, यही हरिणाक्रीडन है।

स जहाराथ वेगेन रौहिणेयं महासुरः।
सागरोपप्लवगतं कृत्स्नं लोकमिवान्तकः॥ २९

ह्रियमाणः प्रलम्बेन स तु संकर्षणो बभौ।
उह्यमान इवाकाशे कालमेघेन चन्द्रमाः॥ ३०

स संदिग्धमिवात्मानं मेने संकर्षणस्तदा।
दैत्यस्कन्धगतः श्रीमान् कृष्णं चेदमुवाच ह॥ ३१

ह्रियेऽहं कृष्ण दैत्येन पर्वतोदग्रवर्ष्मणा।
प्रदर्शयित्वा महतीं मायां मानुषरूपिणीम्॥ ३२

कथमस्य मया कार्यं शासनं दुष्टचेतसः।
प्रलम्बस्य प्रवृद्धस्य दर्पाद् द्विगुणवर्चसः॥ ३३

तमाह सस्मितं कृष्णः साम्ना हर्षाकुलेन वै।
अभिज्ञो रौहिणेयस्य वृत्तस्य च बलस्य च॥ ३४

अहोऽयं मानुषो भावो व्यक्तमेवानुपाल्यते।
यस्त्वं जगन्मयं देवं गुह्याद् गुह्यतरं गतः॥ ३५

स्मर नारायणात्मानं लोकानां त्वं विपर्यये।
अवगच्छात्मनाऽऽत्मानं समुद्राणां समागमे॥ ३६

पुरातनानां देवानां ब्रह्मणः सलिलस्य च।
आत्मवृत्तप्रभावाणां संस्मराद्यं च वै वपुः॥ ३७

शिरः खं ते जलं मूर्तिः पादौ भूर्दहनो मुखम्।
वायुर्लोकायुरुच्छ्वासो मनः सोमो ह्यभूत् तव॥ ३८

सहस्रास्यः सहस्राङ्गः सहस्रचरणेक्षणः।
सहस्रपद्मनाभस्त्वं सहस्रांशुधरोऽरिहा॥ ३९

यत्त्वया दर्शितं लोके तत् पश्यन्ति दिवौकसः।
यत् त्वया नोक्तपूर्वं हि कस्तदन्वेष्टुमर्हति॥ ४०

उस महान् असुरने रोहिणीनन्दन बलरामको बड़े वेगसे हर लिया, ठीक उसी तरह जैसे प्रलयंकर काल एकार्णवमें डूबे हुए समस्त लोकका अपहरण कर लेता है॥ २९॥ प्रलम्बासुरके द्वारा हरकर ले जाये जाते हुए संकर्षण आकाशमें ऐसे जान पड़ते थे, मानो कोई काला मेघ चन्द्रमाको अपने ऊपर बिठाकर लिये जा रहा हो॥ ३०॥ उस समय बलरामने अपने-आपको प्राण-संशयकी स्थितिमें पड़ा हुआ समझा। तब दैत्यके कंधेपर बैठे हुए उन श्रीमान् संकर्षणने श्रीकृष्णसे इस प्रकार कहा— ॥ ३१॥ 'श्रीकृष्ण! यह देखो! मुझे कोई पर्वतके समान विशालकाय दैत्य हरकर लिये जाता है। इसने मनुष्यरूपधारिणी महती मायाका प्रदर्शन करके मुझे भ्रममें डाल दिया था॥ ३२॥ यह दुष्टात्मा दैत्य बढ़कर बहुत लम्बा हो गया है। बलके मदसे इसकी कान्ति दुगुनी हो गयी है। मुझे किस तरह इसका दमन करना चाहिये'॥ ३३॥ तब रोहिणीनन्दन बलरामके चरित्र और बलको भलीभाँति जाननेवाले श्रीकृष्णने मुसकराकर हर्षभरी सान्त्वनायुक्त वाणीमें उनसे कहा— ॥ ३४॥ 'अहो! आप तो स्पष्ट ही मानव-भावका अवलम्बन एवं पालन करते जा रहे हैं। आपका स्वरूप तो अखिल विश्वमय है। आप दिव्यस्वरूप तथा गुह्यसे भी गुह्यतर हैं। आप ही समस्त लोकोंका संहार होनेपर नारायणरूपसे स्थित होते हैं। आप अपने उस स्वरूपका स्मरण तो कीजिये। प्रलयकालमें जब सारे समुद्र मिलकर एक हो जाते हैं, उस समय आप जिस शेषशायी नारायणरूपसे विराजमान होते हैं, उसका स्वयं ही अनुभव कीजिये॥ ३५-३६॥ 'पुरातन देवता, ब्रह्मा, जल तथा अपने चरित्र और प्रभाव—इन सबका आदि कारण तथा जो आपका शाश्वत स्वरूप है, उसका स्मरण कीजिये॥ ३७॥ 'आकाश आपका सिर है, जल मूर्ति है, पृथ्वी पैर है, अग्नि मुख है, लोकोंको जीवन देनेवाली वायु आपका उच्छ्वास है और चन्द्रमा आपका मन है॥ ३८॥ आपके सहस्रों मुख, सहस्रों शरीर, सहस्रों हाथ-पैर और सहस्रों नेत्र हैं। आपकी नाभिसे सहस्रों कमल प्रकट हो चुके हैं। आप सहस्र किरणोंवाले सूर्यको चक्ररूपसे धारण करके शत्रुओंका संहार करते हैं॥ ३९॥ आपने पूर्वकालमें जो कुछ दिखाया है, संसारमें उसीको देवता लोग देखते हैं। आपने पहले जिसकी चर्चा नहीं की है, उसका अनुसंधान कौन कर सकता है?॥ ४०॥

यद् वेदितव्यं लोकेऽस्मिंस्तत्त्वया समुदाहृतम्।
विदितं यत् तवैकस्य देवा अपि न तद् विदुः ॥ ४१

आत्मजं ते वपुर्व्योम्नि न पश्यन्त्यात्मसम्भवम्।
यत् तु ते कृत्रिमं रूपं तदर्चन्ति दिवौकसः ॥ ४२

देवैर्न दृष्टश्चान्तस्ते तेनानन्त इति स्मृतः।
त्वं हि सूक्ष्मो महानेकः सूक्ष्मैरपि दुरासदः ॥ ४३

त्वय्येव जगतः स्तम्भे शाश्वती जगती स्थिता।
अचला प्राणिनां योनिर्धारयत्यखिलं जगत् ॥ ४४

चतुःसागरभोगस्त्वं चातुर्वर्ण्यविभागवित्।
चतुर्युगेषु लोकानां चातुर्होत्रफलाशनः ॥ ४५

यथाहमपि लोकानां तथा त्वं तच्च मे मतम्।
उभावेकशरीरौ स्वो जगदर्थे द्विधाकृतौ ॥ ४६

अहं वा शाश्वतः कृष्णस्त्वं वा शेषः पुरातनः।
लोकानां शाश्वतो देवस्त्वं हि शेषः सनातनः।
आवयोर्देहमात्रेण द्विधेदं धार्यते जगत् ॥ ४७

अहं यः स भवानेव यस्त्वं सोऽहं सनातनः।
द्वावेव विहितौ ह्यावामेकदेहौ महाबलौ ॥ ४८

तदास्से मूढवत् त्वं किं प्राणेन जहि दानवम्।
मूर्ध्नि देवरिपुं देव वज्रकल्पेन मुष्टिना ॥ ४९

वैशम्पायन उवाच

संस्मारितस्तु कृष्णेन रौहिणेयः पुरातनम्।
बलेनापूर्यत तदा त्रैलोक्यान्तरचारिणा ॥ ५०

'जगत्‌में जो कुछ जाननेयोग्य है, उसका आपने प्रतिपादन कर दिया है। एकमात्र आपको जो तत्त्व ज्ञात है, उसे देवता भी नहीं जानते ॥ ४१ ॥ आपका जो सहज, आकाशमें भी व्यापक एवं स्वयम्भू रूप है, उस (विशुद्ध सनातन एवं निर्गुण-निराकाररूप)-को देवता भी देख या समझ नहीं पाते हैं। भक्तोंपर अनुग्रह करनेके लिये आप जो सगुण-साकाररूपसे अवतार ग्रहण करते हैं, उसीकी देवता लोग पूजा एवं आराधना करते हैं ॥ ४२ ॥ 'देवताओंने भी आपका अन्त नहीं देखा है, इसलिये आप अनन्त माने गये हैं। आप ही सूक्ष्म, महान् और एक हैं। सूक्ष्म बुद्धि-इन्द्रियादिके द्वारा भी आपको जानना या पाना अत्यन्त कठिन है ॥ ४३ ॥ आप ही इस जगत्‌के आधारस्तम्भ हैं। आपपर प्रतिष्ठित होकर ही यह सनातन पृथ्वी अविचल भावसे सम्पूर्ण जगत्‌को धारण करती है और समस्त प्राणियोंकी उत्पत्तिका स्थान बनती है ॥ ४४ ॥ चारों समुद्र आपके स्वरूप हैं। आप चारों वर्णोंके विभागको जाननेवाले हैं। चारों युगोंमें लोकोंके चातुर्होत्र यज्ञका जो फल है, उसका उपभोग करनेवाले भी आप ही हैं ॥ ४५ ॥ जैसे मैं समस्त लोकोंका अन्तर्यामी आत्मा हूँ, वैसे ही आप भी हैं, यही मेरा मत है। हम दोनों ही एक शरीरवाले हैं, केवल जगत्‌के हितके लिये दो रूपोंमें प्रकट हुए हैं ॥ ४६ ॥ मैं सनातन विष्णु हूँ और आप पुरातन शेष हैं; तीनों लोकोंके सनातन देवता तथा सनातन शेष आप ही हैं; हमारा चिन्मय शरीरमात्र ही (विष्णु या अनन्तरूपसे) इस जड-चेतनमय द्विविध जगत्‌को धारण करता है ॥ ४७ ॥ जो मैं हूँ, वह आप ही हैं। जो आप हैं, वह सनातन पुरुष मैं ही हूँ। हम दोनों ही एक आत्मा हैं, किंतु इस समय दो महाबली स्वरूपोंमें प्रकट हुए हैं ॥ ४८ ॥ देव! आप किंकर्तव्यविमूढ़की भाँति क्यों चुपचाप बैठे हैं? बलपूर्वक इस दानवको मार डालिये। अपने वज्रतुल्य मुक्केसे इस देवद्रोहीके मस्तकपर प्रहार कीजिये' ॥ ४९ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! भगवान् श्रीकृष्णने जब इस प्रकार पुरातन रहस्यका स्मरण दिलाया, तब रोहिणीनन्दन बलराम त्रिलोकीके भीतर व्याप्त हुए अनन्त बलसे परिपूर्ण हो गये ॥ ५० ॥

ततः प्रलम्बं दुर्वृत्तं स बद्धेन महाभुजः।
मुष्टिना वज्रकल्पेन मूर्ध्नि चैनं समाहनत्॥ ५१

तस्योत्तमाङ्गं स्वे काये विकपालं विवेश ह।
जानुभ्यां चाहतः शेते गतासुर्दानवोत्तमः॥ ५२

जगत्यां विप्रकीर्णस्य तस्य रूपमभूत् तदा।
प्रलम्बस्याम्बरस्थस्य मेघस्येव विदीर्यतः॥ ५३

तस्य भग्नोत्तमाङ्गस्य देहात् सुस्राव शोणितम्।
बहुगैरिकसंयुक्तं शैलशृङ्गादिवोदकम्॥ ५४

तं निहत्य प्रलम्बं तु संहृत्य बलमात्मनः।
पर्यष्वजत वै कृष्णं रौहिणेयः प्रतापवान्॥ ५५

तं तु कृष्णश्च गोपाश्च दिविस्थाश्च दिवौकसः।
तुष्टुवुर्निहते दैत्ये जयाशीर्भिर्महाबलम्॥ ५६

बलेनायं हतो दैत्यो बालेनाक्लिष्टकर्मणा।
विवदन्त्यशरीरिण्यो वाचः सुरसमीरिताः॥ ५७

बलदेवेति नामास्य देवैरुक्तं दिवि स्थितैः।
बलं तु बलदेवस्य तदा भुवि जना विदुः॥ ५८

कर्मजं निहते दैत्ये देवैरपि दुरासदे॥ ५९

तब उन महाबाहु वीरने दुराचारी प्रलम्बासुरके मस्तकपर अपनी बँधी हुई वज्रतुल्य मुष्टिकासे प्रहार किया॥ ५१॥ इससे उसकी खोपड़ी उड़ गयी और शेष मस्तक उसके धड़में ही धँस गया। फिर वह घायल हुआ दानवराज पृथ्वीपर घुटने टेककर गिर पड़ा और प्राणहीन होकर सदाके लिये सो गया॥ ५२॥ जैसे आकाशमें स्थित हुए मेघकी घटा जब छिन्न-भिन्न होकर बिखर जाती है, उस समय उसका जैसा रूप दिखायी देता है, पृथ्वीपर टूक-टूक होकर बिखरे हुए प्रलम्बासुरका रूप भी वैसा ही दृष्टिगोचर हुआ॥ ५३॥ कटे-फटे मस्तकवाले उस असुरके शरीरसे खूनकी धारा बह चली, मानो पर्वतके शिखरसे अधिक गेरू मिला हुआ जल प्रवाहित हो रहा हो॥ ५४॥ इस प्रकार प्रलम्बासुरको मारकर अपने बलको पुनः समेट लेनेके बाद प्रतापी रोहिणीकुमार बलरामने श्रीकृष्णको हृदयसे लगा लिया॥ ५५॥ उस समय उस दैत्यके मारे जानेपर श्रीकृष्ण, गोपगण तथा आकाशमें खड़े हुए देवता विजयसूचक आशीर्वाद देते हुए महाबली बलरामजीकी स्तुति करने लगे॥ ५६॥ 'अनायास ही महान् कर्म करनेवाले इस बालकने ऐसे महान् दैत्यको बलपूर्वक मार गिराया' इस प्रकार देवताओंकी कही हुई आकाशवाणी बारम्बार प्रकट होने लगी॥ ५७॥ उस समय आकाशमें खड़े हुए देवताओंने उनका नाम बलदेव रख दिया। तभीसे भूतलके मनुष्य बलदेवजीके बलको जानने लगे॥ ५८॥ जो देवताओंके लिये भी दुर्जय था, उस प्रलम्ब नामक दैत्यके मारे जानेपर बलरामजीको उनके पराक्रमके अनुसार वह (बलदेव) नाम प्राप्त हुआ था॥ ५९॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे विष्णुपर्वणि शिशुचर्यायां प्रलम्बवधे चतुर्दशोऽध्यायः॥ १४॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत विष्णुपर्वमें बाललीलाके प्रसंगमें प्रलम्बासुरका वधविषयक चौदहवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १४॥

पञ्चदशोऽध्यायः

इन्द्रोत्सवके विषयमें श्रीकृष्णकी जिज्ञासा तथा एक वृद्ध गोपके द्वारा उसकी आवश्यकताका प्रतिपादन

वैशम्पायन उवाच

तयोः प्रवृत्तयोरेवं कृष्णस्य च बलस्य च।
वने विचरतोर्मासौ व्यतियातौ स्म वार्षिकौ॥ १

व्रजमाजग्मतुस्तौ तु व्रजे शुश्रुवतुस्तदा।
प्राप्तं शक्रमहं वीरौ गोपांश्चोत्सवलालसान्॥ २

कौतूहलादिदं वाक्यं कृष्णः प्रोवाच तत्र तान्।
कोऽयं शक्रमहो नाम येन वो हर्ष आगतः॥ ३

तत्र वृद्धतमस्त्वेको गोपो वाक्यमुवाच ह।
श्रूयतां तात शक्रस्य यदर्थं ध्वज इज्यते॥ ४

देवानामीश्वरः शक्रो मेघानां चारिसूदन।
तस्य चायं महः कृष्ण लोकनाथस्य शाश्वतः॥ ५

तेन संचोदिता मेघास्तस्य चायुधभूषिताः।
तस्यैवाज्ञाकराः सस्यं जनयन्ति नवाम्बुभिः॥ ६

मेघस्य पयसो दाता पुरुहूतः पुरंदरः।
सम्प्रहृष्टः स भगवान् प्रीणयत्यखिलं जगत्॥ ७

तेन सम्पादितं सस्यं वयमन्ये च मानवाः।
वर्तयामोपयुञ्जानास्तर्पयामश्च देवताः॥ ८

देवे वर्षति लोकेऽस्मिंस्ततः सस्यं प्रवर्धते।
पृथिव्यां तर्पितायां तु सामृतं लक्ष्यते जगत्॥ ९

क्षीरवत्यस्त्विमा गावो वत्सवत्यश्च निर्वृताः।
तेन संवर्धितैस्तात तृणैः पुष्टाः सपुङ्गवाः॥ १०

नासस्या नातृणा भूमिर्न बुभुक्षार्दितो जनः।
दृश्यते यत्र दृश्यन्ते वृष्टिमन्तो बलाहकाः॥ ११

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! श्रीकृष्ण और बलराम दोनोंके इस प्रकार बाललीलामें प्रवृत्त होकर वनमें विचरते हुए वर्षाके दो मास व्यतीत हो गये॥ १॥ एक दिन जब वे दोनों वीर व्रजमें आये, तब उन्होंने सुना कि इन्द्रयागके उत्सवका समय आ गया है और समस्त गोप उस उत्सवको देखनेके लिये लालायित हैं॥ २॥ तब श्रीकृष्णने कौतूहलवश उनसे यह बात पूछी—'यह इन्द्रयागका उत्सव क्या है? जिससे तुमलोगोंको इतना हर्ष हो रहा है'॥ ३॥ उनके इस प्रकार पूछनेपर उन गोपोंमें सबसे बड़े-बूढ़े एक गोपने इस प्रकार कहा—'तात! सुनो, हमारे यहाँ इन्द्रके ध्वजकी पूजा किसलिये की जाती है, यह बताता हूँ॥ ४॥ शत्रुसूदन कृष्ण! देवताओं और मेघोंके स्वामी देवराज इन्द्र हैं। वे ही सम्पूर्ण जगत्के सनातन रक्षक हैं। उन्हींका यह उत्सव मनाया जाता है॥ ५॥ उन्हींसे प्रेरित हो उन्हींके आयुध (इन्द्रधनुष)-से विभूषित हुए मेघ उनकी ही आज्ञाका पालन करते हुए नूतन जलकी वर्षा करके खेतीको उपजाते हैं॥ ६॥ अनेक नामोंसे विभूषित भगवान् पुरन्दर (इन्द्र) मेघ और जलके दाता हैं। वे प्रसन्न होनेपर सम्पूर्ण जगत्को तृप्त करते हैं॥ ७॥ उनके द्वारा सम्पन्न की हुई खेतीसे जो अन्न पैदा होता है, उसीको हम तथा दूसरे मनुष्य खाते हैं, उसीका धर्मके कार्यमें भी उपयोग करते हुए देवताओंको यज्ञ आदिके द्वारा तृप्त करते हैं॥ ८॥ इस संसारमें जब इन्द्रदेव वर्षा करते हैं, तब उसीसे खेतीकी उपज बढ़ती है। वर्षासे ही पृथ्वीके तृप्त होनेपर सम्पूर्ण जगत् सजल दिखायी देता है॥ ९॥ तात! उस वर्षासे बढ़ी हुई घासोंद्वारा ही साँड़ोंसहित ये गौएँ हृष्ट-पुष्ट होकर बछड़े देतीं और दूध देनेवाली होती हैं॥ १०॥ जहाँ वर्षा करनेवाले मेघ दिखायी देते हैं, उस भूमिपर कभी अनाज और तृणका अभाव नहीं होता तथा वहाँके लोग कभी भूखसे पीड़ित नहीं देखे जाते हैं'॥ ११॥

दुदोह सवितुर्गा वै शक्रो दिव्याः पयस्विनीः।
ताः क्षरन्ति नवं क्षीरं मेध्यं मेघौघधारितम्॥ १२

वाय्वीरितं तु मेघेषु करोति निनदं महत्।
जवेनावर्तितं चैव गर्जतीति जना विदुः॥ १३

तस्य चैवोह्यमानस्य वायुयुक्तैर्बलाहकैः।
वज्राशनिसमाः शब्दाः श्रूयन्ते नगभेदिनः॥ १४

तज्जलं वज्रनिष्पेषैर्विमुञ्चति नभोगतैः।
बहुभिः कामगैर्मेघैः शक्रो भृत्यैरिवेश्वरः॥ १५

क्वचिद् दुर्दिनसंकाशैः क्वचिच्छिन्नाभ्रसंनिभैः।
क्वचिद् भिन्नाञ्जनाकारैः क्वचिच्छीकरवर्षिभिः॥ १६

मण्डयन्तीव देवेन्द्रो विश्वमेवं नभो घनैः।
क्वचिच्छीकरमुक्ताभं कुरुते गगनं घनः॥ १७

एवमेतत् पयो दुग्धं गोभिः सूर्यस्य वारिदैः।
पर्जन्यः सर्वभूतानां भवाय भुवि वर्षति॥ १८

यस्मात् प्रावृडियं कृष्ण शक्रस्य भुवि भाविनी।
तस्मात् प्रावृषि राजानः सर्वे शक्रं मुदा युताः।
महैः सुरेशमर्चन्ति वयमन्ये च मानवाः॥ १९

'सूर्यदेवकी दिव्य किरणें पृथ्वीका जल सोखकर पयस्विनी (गौ अथवा जलवती) हो जाती हैं, तब इन्द्रदेव उनका दोहन करते हैं। उनके दोहन करनेपर वे किरणमयी गौएँ नूतन एवं पवित्र जलरूपी दूध प्रकट करती हैं, जिसे मेघोंके घटारूप दुग्धपात्रमें संचित किया जाता है॥ १२॥ वही वायुसे प्रेरित होकर वेगसे आवर्तित होनेपर मेघोंके भीतर अत्यन्त गम्भीर शब्द उत्पन्न करता है, जिसे लोग समझते हैं कि मेघ गर्जना कर रहा है॥ १३॥ वायुयुक्त मेघोंद्वारा ढोयी जाती हुई उस जलराशिका पर्वतभेदी शब्द ही वज्र एवं बिजलीकी गड़गड़ाहटके समान सुनायी देता है॥ १४॥ जैसे राजा अपने सेवकोंसे काम लेता है, उसी प्रकार देवराज इन्द्र आकाशमें फैले हुए तथा इच्छानुसार सर्वत्र जा सकनेवाले बहुसंख्यक मेघोंद्वारा वज्रकी गड़गड़ाहटकी आवाजके साथ उस जलको इस भूतलपर बरसाते हैं॥ १५॥ कहीं वे मेघ दुर्दिन-से होकर सारे आकाशमें छा जाते हैं। कहीं फटे हुए बादलोंके रूपमें दिखायी देते हैं। कहीं खानसे काटकर निकाले गये कोयलेके समान काले होते हैं और कहीं जलकी छोटी-छोटी बूँदें बरसाते रहते हैं। इस तरह विभिन्न प्रकारके बादलोंद्वारा देवराज इन्द्र आकाश एवं विश्वको अलंकृत-सा करते रहते हैं। कहीं-कहीं तो बादल पानी बरसाकर आकाशको जलबिन्दुरूपी मोतियोंसे प्रकाशित कर देता है॥ १६-१७॥ इस प्रकार पर्जन्यदेव (इन्द्र) इस पृथ्वीके जलको सूर्यकी किरणोंद्वारा खींचकर सम्पूर्ण प्राणियोंकी वृद्धिके लिये उसे मेघोंद्वारा भूतलपर बरसा देते हैं॥ १८॥ श्रीकृष्ण! इसीलिये यह वर्षा-ऋतु भूतलपर इन्द्रदेवकी पूजाका समय है; अतएव समस्त राजा वर्षा-ऋतुमें बड़ी प्रसन्नताके साथ नाना प्रकारके उत्सवोंद्वारा देवराजकी पूजा करते हैं। हम तथा दूसरे मनुष्य भी ऐसा ही करते हैं'॥ १९॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे विष्णुपर्वणि शिशुचर्यायां गोपवाक्ये पञ्चदशोऽध्यायः॥ १५॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत विष्णुपर्वमें श्रीकृष्णकी बाललीलाके प्रसंगमें गोपका वाक्यविषयक पंद्रहवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १५॥

षोडशोऽध्यायः

श्रीकृष्णके द्वारा गिरियज्ञ एवं गोपूजनका प्रस्ताव करते हुए शरद्-ऋतुका वर्णन

वैशम्पायन उवाच

गोपवृद्धस्य वचनं श्रुत्वा शक्रपरिग्रहे।
प्रभावज्ञोऽपि शक्रस्य वाक्यं दामोदरोऽब्रवीत्॥ १

वयं वनचरा गोपाः सदा गोधनजीविनः।
गावोऽस्मद्दैवतं विद्धि गिरयश्च वनानि च॥ २

कर्षुकाणां कृषिर्वृत्तिः पण्यं विपणिजीविनाम्।
गावोऽस्माकं परा वृत्तिरेतत् त्रैविद्यमुच्यते॥ ३

विद्यया यो यया युक्तस्तस्य सा दैवतं परम्।
सैव पूज्यार्चनीया च सैव तस्योपकारिणी॥ ४

योऽन्यस्य फलमश्नानः करोत्यन्यस्य सत्क्रियाम्।
द्वावनर्थौ स लभते प्रेत्य चेह च मानवः॥ ५

कृष्यन्ता प्रथिता सीमा सीमान्तं श्रूयते वनम्।
वनान्ता गिरयः सर्वे ते चास्माकं गतिर्ध्रुवा॥ ६

श्रूयन्ते गिरयश्चापि वनेऽस्मिन् कामरूपिणः।
प्रविश्य तास्तास्तनवो रमन्ते स्वेषु सानुषु॥ ७

भूत्वा केसरिणः सिंहा व्याघ्राश्च नखिनां वराः।
वनानि स्वानि रक्षन्ति त्रासयन्तो वनच्छिदः॥ ८

यदा चैषां विकुर्वन्ति ते वनालयजीविनः।
घ्नन्ति तानेव दुर्वृत्तान् पौरुषादेन कर्मणा॥ ९

मन्त्रयज्ञपरा विप्राः सीतायज्ञाश्च कर्षुकाः।
गिरियज्ञास्तथा गोपा इज्योऽस्माभिर्गिरिर्वने॥ १०

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! इन्द्र-महोत्सवको स्वीकार करनेके सम्बन्धमें उस बड़े-बूढ़े गोपका वचन सुनकर इन्द्रके प्रभावको जानते हुए भी श्रीकृष्णने यह बात कही—॥ १॥ 'आर्य! हमलोग वनमें रहनेवाले गोप हैं और सदा गोधनसे अपनी जीविका चलाते हैं; अतः आपको मालूम होना चाहिये कि गौएँ, पर्वत और वन—ये ही हमारे देवता हैं॥ २॥ किसानोंकी जीविका है खेती, व्यापारसे जीवननिर्वाह करनेवाले वैश्योंकी जीविका-वृत्ति है खरीद-विक्री और हमलोगोंकी सर्वोत्तम वृत्ति है गौओंका पालन। ये वार्तारूप विद्याके तीन भेद कहलाते हैं॥ ३॥ जो जिस विद्यासे युक्त है, उसके लिये वही सर्वोत्तम देवता है, वही पूजा-अर्चाके योग्य है और वही उसके लिये उपकारिणी है॥ ४॥ जो मनुष्य एक व्यक्तिसे फल पाकर उसे भोगता है और दूसरेकी पूजा (आदर-सत्कार) करता है, वह इस लोक और परलोकमें दो अनर्थोंका भागी होता है॥ ५॥ जहाँ-तक खेती होती है, वहाँतक व्रजकी सीमा विख्यात है। सीमाके अन्तमें वन सुना जाता है और वनके अन्तमें समस्त पर्वत हैं। वे पर्वत ही हमारे अविचल आश्रय हैं॥ ६॥ सुना जाता है कि इस वनमें रहनेवाले पर्वत भी इच्छानुसार रूप धारण करनेवाले हैं। वे भिन्न-भिन्न शरीरोंमें प्रवेश करके अपने शिखरोंपर मौजसे घूमते-फिरते हैं॥ ७॥ वे ही अयालोंसे विभूषित सिंह और नखधारी जन्तुओंमें श्रेष्ठ व्याघ्र बनकर वनको काटने या हानि पहुँचानेवाले लोगोंको त्रास देते हुए अपने-अपने वनोंकी रक्षा करते हैं॥ ८॥ जब वनके आश्रयमें रहकर जीवननिर्वाह करनेवाले लोग इन वनों या वनदेवताओंको हानि पहुँचाते हैं, तब वे कामरूपी देवता राक्षसोचित हिंसा-कर्मके द्वारा उन दुराचारी मनुष्योंको निश्चय ही मार डालते हैं॥ ९॥ ब्राह्मणलोग मन्त्रयज्ञमें तत्पर रहते हैं, किसान सीतायज्ञ करते हैं अर्थात् खेतोंको अच्छी तरह जोतते और हल जोतनेसे जो रेखा बन जाती है, उसकी तथा हलकी पूजा करते हैं तथा गोपगण गिरियज्ञ करते हैं; अतः हमलोगोंको इस वनमें गिरियज्ञ करना चाहिये'॥ १०॥

तन्मह्यं रोचते गोपा गिरियज्ञः प्रवर्तताम्।
कर्म कृत्वा सुखस्थाने पादपेष्वथवा गिरौ॥ ११

तत्र हत्वा पशून् मेध्यान् वितत्यायतने शुभे।
सर्वघोषस्य संदोहः क्रियतां किं विचार्यते॥ १२

तं शरत्कुसुमापीडाः परिवार्य प्रदक्षिणम्।
गावो गिरिवरं सर्वास्ततो यान्तु पुनर्व्रजम्॥ १३

प्राप्ता किलेयं हि गवां स्वादुतोयतृणा गुणैः।
शरत् प्रमुदिता रम्या गतमेघजलाशया:॥ १४

प्रियकैः पुष्पितैर्गौरं श्यामं बाणासनैः क्वचित्।
कठोरतृणमाभाति निर्मयूररुतं वनम्॥ १५

विजला विमला व्योम्नि विबलाका विविद्युतः।
विवर्धन्ते जलधरा विदन्ता इव कुञ्जराः॥ १६

पटुना मेघवातेन नवतोयानुकर्षिणा।
पर्णोत्करघनाः सर्वे प्रसादं यान्ति पादपाः॥ १७

सितवर्णाम्बुदोष्णीषं हंसचामरवीजितम्।
पूर्णचन्द्रामलच्छत्रं साभिषेकमिवाम्बरम्॥ १८

हंसैः प्रहसितानीव समुत्कृष्टानि सारसैः।
सर्वाणि तनुतां यान्ति जलानि जलदक्षये॥ १९

चक्रवाकस्तनतटाः पुलिनश्रोणिमण्डलाः।
हंसलक्षणहासिन्यः पतिं यान्ति समुद्रगाः॥ २०

'गोपगण! मुझे तो यही अच्छा लगता है कि गिरियज्ञका आरम्भ हो। स्वस्तिवाचन आदि कर्म करके वृक्षोंके नीचे अथवा पर्वतके समीप किसी सुखद स्थानपर पवित्र पशुओंको एकत्र करके उनके पास जाकर उनका विस्तारपूर्वक पूजन किया जाय और एक शुभ मन्दिरमें सारे व्रजके दूधका संग्रह कर लिया जाय। इस विषयमें आपलोग क्या विचार कर रहे हैं॥ ११-१२॥ फिर शरद्-ऋतुके फूलोंसे जिनके मस्तकका शृङ्गार किया गया हो, ऐसी समस्त गौएँ गिरिवर गोवर्धनकी दक्षिणावर्त परिक्रमा करके पुनः व्रजमें जायँ॥ १३॥ इस समय प्रमोदपूर्ण रमणीय शरद्-ऋतु आ गयी है, जबकि जल और घास गौओंके लिये स्वादुताके गुणोंसे सम्पन्न हो जाते हैं। अब जलाशयोंमें पानी बरसानेवाले बादल छँट गये॥ १४॥ खिले हुए कदम्ब-पुष्पोंके कारण वन गौर-वर्णका प्रतीत होता है। कहीं-कहीं बाणासनों—झाड़-झंखाड़ोंके कारण वह श्याम रंगका दिखायी देता है। अब घासें कोमल नहीं रहीं—कुछ कठोर हो गयी हैं। वनमें मोरोंकी मधुर वाणी नहीं सुनायी देती है॥ १५॥ आकाशमें जल, मल, बलाका और विद्युत्से रहित बादल दन्तहीन हाथियोंके समान बढ़ रहे हैं॥ १६॥ (वर्षा-ऋतुमें) नूतन जलको खींच लानेवाले शक्तिशाली मेघयुक्त वायुसे अभिषिक्त होनेके कारण जो पत्तोंके बाहुल्यसे घने दिखायी देते थे, वे सभी वृक्ष अब पत्तोंके बिरल हो जानेसे प्रसादको प्राप्त हो रहे हैं (पहले वहाँ अन्धकार छाया रहता था अब प्रकाश हो गया है)॥ १७॥ इस समय आकाश मूर्धाभिषिक्त राजाके समान जान पड़ता है। सफेद बादल ही उसकी श्वेत पगड़ी या उज्ज्वल मुकुट हैं, हंसरूपी श्वेत चँवरके द्वारा मानो उसके लिये हवा की जाती है तथा पूर्ण चन्द्रमा ही उसका निर्मल छत्र बनकर शोभा पाता है॥ १८॥ 'वर्षाकाल बीत जानेपर सारे जलाशयोंके जल क्रमशः क्षीण होते जा रहे हैं, मानो हंसोंने उनकी हँसी उड़ायी हो और सारसोंने उनकी निन्दा की हो (इसी खेदसे उनमें कृशता आ गयी है)॥ १९॥ समुद्रगामिनी नदियाँ हंसरूपी हाससे सुशोभित हो अपने पति (समुद्र)-के पास जा रही हैं। चक्रवाकके जोड़े उनके युगल उरोज-से जान पड़ते हैं और दोनों तट नितम्ब-मण्डलकी शोभा धारण करते हैं'॥ २०॥

कुमुदोत्फुल्लमुदकं ताराभिश्चित्रमम्बरम्।
सममभ्युत्स्मयन्तीव शर्वरीष्वितरेतरम्॥ २१

मत्तक्रौञ्चावघुष्टेषु कलमापक्वपाण्डुषु।
निर्विष्टरमणीयेषु वनेषु रमते मनः॥ २२

पुष्करिण्यस्तडागानि वाप्यश्च विकचोत्पलाः।
केदाराः सरितश्चैव सरांसि च श्रियाज्वलन्॥ २३

पङ्कजानि च ताम्राणि तथान्यानि सितान्यपि।
उत्पलानि च नीलानि भेजिरे वारिजां श्रियम्॥ २४

मदं जहुः सितापाङ्गा मन्दं ववृधिरेऽनिलाः।
अभवद् व्यभ्रमाकाशमभूच्च निभृतोऽर्णवः॥ २५

ऋतुपर्यायशिथिलैर्वृत्तनृत्यसमुज्झितैः।
मयूराङ्गरुहैर्भूमिर्बहुनेत्रेव लक्ष्यते॥ २६

स्वपङ्कमलिनैस्तीरैः काशपुष्पलताकुलैः।
हंससारसविन्यासैर्यमुना भाति शोभना॥ २७

कलमापाकरम्येषु केदारेषु जलेषु च।
सस्यादा जलजादाश्च मत्ता विरुरुवुः खगाः॥ २८

सिषिचुर्यानि जलदा जलेन जलदागमे।
तानि सस्यानि बालानि कठिनत्वं गतानि वै॥ २९

त्यक्त्वा मेघमयं वासः शरद्गुणविदीपितः।
एष वै विमले व्योम्नि हृष्टो वसति चन्द्रमाः॥ ३०

क्षीरिण्यो द्विगुणं गावः प्रमत्ता द्विगुणं वृषाः।
वनानां द्विगुणा लक्ष्मीः सस्यैर्गुणवती मही॥ ३१

'रातके समय (जलाशयोंके) जलमें अगणित कुमुद खिल उठते हैं और आकाश असंख्य तारिकाओंसे चित्रित हो जाता है। वे दोनों मानो एक-दूसरेके प्रति गर्व-सा प्रकट करते हुए कहते हैं कि 'मेरी शोभा तुमसे कम नहीं है'॥ २१॥ जिनमें मदमत्त पुरुषोंकी भाँति क्रौञ्च पक्षियोंकी मधुर बोली गूँज रही है, जहाँ पके हुए धानकी बालें पीली साड़ीमें सजी हुई सुन्दरी बालाओंकी भाँति अपनी श्वेत-पीत प्रभा बिखेर रही हैं और इस प्रकार जो विवाहित स्त्री-पुरुषोंके कौतुकागारोंके सदृश रमणीयता धारण करते हैं, उन वनोंमें मनको अधिक आनन्दका अनुभव होता है॥ २२॥ पोखरियाँ, पोखरे, खिले हुए कमलोंसे सुशोभित बावड़ियाँ, खेतोंकी क्यारियाँ, नदियाँ और सरोवर—ये सब-के-सब अनुपम शोभा-सम्पत्तिसे प्रकाशित हो उठे हैं॥ २३॥ लाल कमल, अन्यान्य श्वेत-पीत आदि कमल तथा नील उत्पल भी जलजनित शोभाके भागी हुए हैं॥ २४॥ मोरोंका मद उतर गया है। वायु मन्दगतिसे आगे बढ़ रही है। आकाश बादलोंसे शून्य हो गया है और समुद्र भरा-पूरा दिखायी देता है॥ २५॥ वर्षा-ऋतु बीत जानेसे जो यत्र-तत्र शिथिल होकर बिखरे पड़े हैं, नृत्यका कार्य और उत्साह समाप्त हो जानेके कारण जो त्याग दिये गये हैं, उन मोर-पंखोंके कारण यह भूमि मानो बहुत-से नेत्रोंवाली दिखायी देती है॥ २६॥ जो अपने ही पङ्कसे मलिन हो रहे हैं, जहाँ काश खिले हुए हैं और लता-बेलें फैली हुई हैं तथा जिनपर यत्र-तत्र हंसों और सारसोंके बैठनेके स्थान हैं, ऐसे तटोंसे यमुनाकी बड़ी शोभा हो रही है॥ २७॥ धानकी बालोंके पक जानेसे रमणीय दिखायी देनेवाली खेतोंकी क्यारियोंमें अनाजके दाने बीनकर खानेवाले सारस आदि पक्षी तथा जलाशयोंके जलोंमें मत्स्य आदि जलजन्तुओंका भक्षण करनेवाले बक आदि पक्षी कलरव कर रहे हैं॥ २८॥ वर्षाकालमें बादलोंने अपने जलसे जिन्हें सींचा था, वे अनाजके कोमल पौधे बाल्यावस्थासे प्रौढावस्थामें आकर कठोर हो गये हैं॥ २९॥ ये चन्द्रदेव बादलरूपी वस्त्र उतारकर शरद्-ऋतुके गुणोंसे और भी प्रकाशित हो इस निर्मल आकाशमें हर्षोल्लासके साथ निवास करते हैं॥ ३०॥ शरद्-ऋतुमें गौएँ पहलेसे दूना दूध देने लगी हैं। साँड़ दुगुने मतवाले हो उठे हैं। वनोंकी शोभा-सम्पत्ति दुगुनी बढ़ गयी है और पकी हुई खेतीके कारण यह पृथ्वी अनन्त गुणोंसे सम्पन्न हो गयी है'॥ ३१॥

ज्योतींषि घनमुक्तानि पद्मवन्ति जलानि च।
मनांसि च मनुष्याणां प्रसादमुपयान्ति वै॥ ३२

असृजत् सविता व्योम्नि निर्मुक्तो जलदैर्भृशम्।
शरत्प्रज्वलितं तेजस्तीक्ष्णरश्मिर्विशोषयन्॥ ३३

नीराजयित्वा सैन्यानि प्रयान्ति विजिगीषवः।
अन्योन्यराष्ट्राभिमुखाः पार्थिवाः पृथिवीक्षितः॥ ३४

बन्धुजीवाभिताम्रासु बद्धपङ्कवतीषु च।
मनस्तिष्ठति कान्तासु चित्रासु वनराजिषु॥ ३५

वनेषु च विराजन्ते पादपा वनशोभिनः।
असनाः सप्तपर्णाश्च कोविदाराश्च पुष्पिताः॥ ३६

इषुसाह्वा निकुम्भाश्च प्रियकाः स्वर्णकास्तथा।
सृमराः पेचकाश्चैव केतक्यश्च समन्ततः॥ ३७

व्रजेषु च विशेषेण गर्गरोद्गारहासिषु।
शरत्प्रकाशयोषेव गोष्ठेष्वटति रूपिणी॥ ३८

नूनं त्रिदशभूयिष्ठं मेघकालसुखोषितम्।
पतत्त्रिकेतनं देवं बोधयन्ति दिवौकसः॥ ३९

शरद्येवं सुसस्यायां प्राप्तायां प्रावृषः क्षये।
नीलचन्द्रार्कवर्णैश्च रचितं बहुभिर्द्विजैः॥ ४०

फलैः प्रवालैश्च घनमिन्द्रचापघनोपमम्।
भवनाकारविटपं लतापरममण्डितम्॥ ४१

विशालमूलावनतं पवनाभोगमण्डितम्।
अर्चयामो गिरिं देवं गाश्चैव च विशेषतः॥ ४२

'बादलोंके आवरणसे मुक्त हुए ग्रह-नक्षत्र, कमल-मण्डित जल तथा मनुष्योंके मन प्रसाद (स्वच्छता एवं प्रसन्नता)-को प्राप्त हो रहे हैं॥ ३२॥ आकाशमें मेघयुक्त हुआ सूर्य शरद्-ऋतुके प्रभावसे अधिक प्रज्वलित तेज (धूप)-की सृष्टि करता है तथा अपनी किरणोंको और भी तीखी करके वसुधाके रसका शोषण कर रहा है॥ ३३॥ भूतलके नरेश अपने सैनिकोंसे उनके अस्त्रोंका मार्जन करवाकर (उन्हें साथ ले) विजयकी इच्छासे एक-दूसरेके राष्ट्रकी ओर जा रहे हैं॥ ३४॥ बन्धुजीव (बन्धूक)-के लाल फूलोंसे सुशोभित हो जो सब ओरसे लाल-लाल दिखायी देती हैं तथा जिनकी कीचड़ सूख गयी है, ऐसी विचित्र एवं कमनीय वनश्रेणियोंमें (उनकी शोभा निहारनेके लिये) मन आसक्त हो रहा है'॥ ३५॥ वनकी शोभा बढ़ानेवाले असन, छितवन, कोविदार, वाणासन, निकुम्भ, प्रियक और स्वर्णक नामवाले वृक्ष वनोंमें फूलोंसे लदकर अधिक शोभा पा रहे हैं। केतकी (केवड़े)-के वृक्ष भी सब ओर खिले हुए हैं। सृमर (एक प्रकारके मृग) और उल्लू भी सर्वत्र सानन्द विचरते हैं॥ ३६-३७॥ दूध-दहीके माटों या घड़ोंसे जो माखन आदि ढाले जाते हैं, वे ही जिनकी हँसी हैं, उन व्रजों एवं गोष्ठोंमें तो यह शरद्-ऋतु मूर्तिमती सुन्दरी युवतीकी भाँति घूम रही है॥ ३८॥ निश्चय ही देवतालोग इस समय देवश्रेष्ठ भगवान् गरुडध्वजको, जो वर्षाकालमें सुखपूर्वक शयन कर चुके हैं, जगा रहे हैं॥ ३९॥ वर्षा बीत जानेपर ऐसी सुन्दर खेतीसे सुशोभित शरद्-ऋतुका शुभागमन हुआ है। इस समय (मेघके समान) नीले, चन्द्रमाके समान श्वेत तथा सूर्यके सदृश सुनहरे रंगवाले बहुत-से पक्षियोंने जिसे बहुरंगा बना दिया है, जो विविध प्रकारके फलों और नूतन पल्लवोंसे घना हो रहा है और इसलिये जो इन्द्रधनुषसे युक्त श्याम मेघकी-सी शोभा धारण करता है, जिसके वृक्षोंकी एक-एक शाखा घरके समान जान पड़ती है, जो लता और वल्लरियोंसे भलीभाँति अलंकृत है, जिसका विशाल मूलभाग बहुत दूरतक फैला हुआ है तथा जो वायुके विस्तारसे सुशोभित होता है, वह गोवर्धन पर्वत ही हमारा देवता है। हम उसकी तथा इन गौओंकी विशेषरूपसे पूजा करें'॥ ४०—४२॥

सावतंसैर्विषाणैश्च बर्हापीडैश्च दंशितैः।
घण्टाभिश्च प्रलम्बाभिः पुष्पैः शारदिकैस्तथा॥ ४३

शिवाय गावः पूज्यन्तां गिरियज्ञः प्रवर्त्यताम्।
पूज्यतां त्रिदशैः शक्रो गिरिरस्माभिरिज्यताम्॥ ४४

कारयिष्यामि गोयज्ञं बलादपि न संशयः।
यद्यस्ति मयि वः प्रीतिर्यदि वा सुहृदो वयम्।
गावो हि पूज्याः सततं सर्वेषां नात्र संशयः॥ ४५

यदि साम्ना भवेत् प्रीतिर्भवतां वैभवाय च।
एतन्मम वचस्तथ्यं क्रियतामविचारितम्॥ ४६

'गायोंके सींगोंमें मुकुट और मोरपंखके समान बने हुए आभूषण बाँधे जायँ। उनके गलेमें बड़ी घंटियाँ लटका दी जायँ और व्रजके कल्याणके लिये शरद्में सुलभ होनेवाले पुष्पोंद्वारा गौओंकी पूजा की जाय। साथ ही 'गिरियज्ञ' आरम्भ कर दिया जाय। देवतालोग इन्द्रकी पूजा करें और हमलोग गिरिराज गोवर्धनकी॥ ४३-४४॥ यदि आपलोगोंका मुझपर प्रेम है और यदि हमलोग एक-दूसरेके हितैषी सुहृद् हैं तो मैं आपके द्वारा हठ एवं बलपूर्वक गोयज्ञ कराऊँगा। गौएँ सदा ही सबके लिये पूजनीय हैं—इसमें संशय नहीं है॥ ४५॥ यदि मेरे समझानेसे आपको प्रसन्नता होती हो तो आपलोग अपने ही वैभव (अभ्युदय)-के लिये मेरी इस सच्ची बातको बिना विचारे मान लें और इसके अनुसार कार्य करें'॥ ४६॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे विष्णुपर्वणि शरद्वर्णने षोडशोऽध्यायः॥ १६॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत विष्णुपर्वमें शरद्वर्णनविषयक सोलहवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १६॥

सप्तदशोऽध्यायः

गोपोंद्वारा श्रीकृष्णकी बातको स्वीकार करके गिरियज्ञका अनुष्ठान तथा भगवान्‌का दिव्य रूप धारण करके उनकी पूजा ग्रहण करनेके पश्चात् उन्हें वर देना

वैशम्पायन उवाच

दामोदरवचः श्रुत्वा हृष्टास्ते गोषु जीविनः।
तद्वागमृतमासाद्य प्रत्यूचुरविशङ्कया॥ १

तवैषा बाल महती गोपानां हितवर्द्धिनी।
प्रीणयत्येव नः सर्वान् बुद्धिर्वृद्धिकरी गवाम्॥ २

त्वं गतिस्त्वं रतिश्चैव त्वं वेत्ता त्वं परायणम्।
भयेष्वभयदस्त्वं नस्त्वमेव सुहृदां सुहृत्॥ ३

त्वत्कृते कृष्ण घोषोऽयं क्षेमी मुदितगोकुलः।
कृत्स्नो वसति शान्तारिर्यथा स्वर्गं गतस्तथा॥ ४

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! दामोदर (श्रीकृष्ण)-की बात सुनकर गौओंपर ही अपनी जीविका निर्भर करनेवाले वे गोपगण प्रसन्नतापूर्वक उनके वचनामृत-का आस्वादन करके निःशङ्क होकर बोले—॥ १॥ 'हमारे बाल-गोपाल! तुम्हारी यह बुद्धि—यह विचारधारा महत्त्वपूर्ण होनेके साथ ही गोपोंके लिये हितकर तथा गौओंकी वृद्धि करनेवाली है। यह हम सब लोगोंको तृप्ति ही प्रदान करती है॥ २॥ तुम्हीं हमारी गति हो, तुम्हीं रति (आनन्द) हो, तुम्हीं सर्वज्ञ और तुम्हीं हमारे सबसे बड़े आश्रय हो! भयके अवसरोंपर तुम्हीं हमें अभय देनेवाले हो तथा तुम्हीं हमारे लिये सुहृदोंके भी सुहृद् हो॥ ३॥ श्रीकृष्ण! तुम्हारे कारण ही यह गोष्ठ सकुशल है। यहाँकी गौओंका समुदाय प्रसन्न है। सारे शत्रु शान्त हो गये हैं तथा समस्त व्रज, जैसे स्वर्गमें रह रहा हो, इस तरह यहाँ सुखपूर्वक निवास करता है'॥ ४॥

जन्मप्रभृति कर्मैतद् देवैरसुकरं भुवि।
बोद्धव्याच्चाभिमानाच्च विस्मितानि मनांसि नः॥ ५

बलेन च परार्ध्येन यशसा विक्रमेण च।
उत्तमस्त्वं मनुष्येषु देवेष्विव पुरंदरः॥ ६

प्रतापेन च तीक्ष्णेन दीप्त्या पूर्णतयापि च।
उत्तमस्त्वं च मर्त्येषु देवेष्विव दिवाकरः॥ ७

कान्त्या लक्ष्म्या प्रसादेन वदनेन स्मितेन च।
उत्तमस्त्वं च मर्त्येषु देवेष्विव निशाकरः॥ ८

बलेन वपुषा चैव बाल्येन चरितेन च।
स्यात् ते शक्तिधरस्तुल्यो न तु कश्चन मानुषः॥ ९

यत् त्वयाभिहितं वाक्यं गिरियज्ञं प्रति प्रभो।
कस्तल्लङ्घयितुं शक्तो वेलामिव महोदधिः॥ १०

स्थितः शक्रमहस्तात श्रीमान् गिरिमहस्त्वयम्।
त्वत्प्रणीतोऽद्य गोपानां गवां हेतोः प्रवर्त्यताम्॥ ११

भाजनान्युपकल्प्यन्तां पयसः पेशलानि च।
कुम्भाश्च विनिवेश्यन्तामुदपानेषु शोभनाः॥ १२

पूर्यन्तां पयसा नद्यो द्रोण्यश्च विपुलायताः।
भक्ष्यं भोज्यं च पेयं च तत् सर्वमुपनीयताम्॥ १३

भाजनानि च मांसस्य न्यस्यन्तामोदनस्य च।
त्रिरात्रं चैव संदोहः सर्वघोषस्य गृह्यताम्॥ १४

विशस्यन्तां च पशवो भोज्या ये महिषादयः।
प्रवर्त्यतां च यज्ञोऽयं सर्वगोपसुसंकुलः॥ १५

आनन्दजननो घोषो महान् मुदितगोकुलः।
तूर्यप्रणादघोषैश्च वृषभाणां च गर्जितैः॥ १६

'जन्मकालसे ही तुमने जो यह शकट-भंग और पूतनावध आदि कार्य किया है, यह इस भूतलपर देवताओंके लिये भी सुकर नहीं है। यह सब देखकर तथा समझमें आनेयोग्य तुम्हारा जो अभिमानपूर्ण वचन है (कि मैं बलपूर्वक गो-यज्ञ आदि कराऊँगा), उसपर ध्यान देकर हमारे चित्त चकित हो उठे हैं॥ ५॥ तुम अपने परम उत्कृष्ट बल, सुयश और पराक्रमद्वारा मनुष्योंमें सबसे उत्तम हो। ठीक उसी तरह जैसे देवताओंमें इन्द्र सबसे श्रेष्ठ हैं॥ ६॥ तुम अपने तीक्ष्ण प्रताप, अनुपम दीप्ति तथा पूर्णताकी दृष्टिसे भी मनुष्योंमें उसी प्रकार सर्वश्रेष्ठ हो, जैसे देवताओंमें दिवाकर (सूर्य)॥ ७॥ मनोरम कान्ति, शोभा-सम्पत्ति, प्रसाद, सुन्दर मुख और मुसकराहटके कारण भी तुम देवताओंमें चन्द्रमाकी भाँति मनुष्योंमें सबसे उत्तम हो॥ ८॥ बल, शरीर, बचपन और मनोहर चरित्रकी दृष्टिसे भी तुम्हारे समान शक्तिशाली मनुष्य दूसरा कोई नहीं है। प्रभो! तुमने गिरियज्ञके विषयमें जो बात कही है, उसका उल्लङ्घन कौन कर सकता है? क्या महासागर कभी तटभूमिको लाँघ सका है॥ ९-१०॥ तात! आजसे इन्द्र-यागका उत्सव स्थगित हो गया। अब यह शोभासम्पन्न गिरियज्ञ, जिसे तुमने चालू किया है, गौओं और गोपोंके हितके लिये सम्पादित हो॥ ११॥ 'दूधसे भरे हुए सुन्दर-सुन्दर पात्र एकत्र किये जायँ। कुओंपर सुन्दर-सुन्दर घड़े स्थापित किये जायँ। नयी बनायी हुई नहरों तथा बड़े-बड़े कुण्डोंको दूधसे भर दिया जाय। भक्ष्य-भोज्य और पेय सब कुछ तैयार कर लिया जाय। फलके गूदों तथा भातसे भरे हुए पात्र रखे जायँ। सारे व्रजका तीन दिनोंका सारा दूध संगृहीत कर लिया जाय। भोजन करानेयोग्य जो भैंस-गाय आदि व्रजके पशु हैं, उन्हें बड़े आदरके साथ उत्तमोत्तम पदार्थ खिलाये जायँ और इस प्रकार समस्त गोपोंके सहयोगसे सम्पन्न होनेवाले इस यज्ञका आरम्भ हो'॥ १२—१५॥ फिर तो व्रजमें आनन्दजनक महान् कोलाहल होने लगा। सारा गोकुल हर्षोल्लासमें मग्न हो गया। वाद्योंके गम्भीर घोष, साँड़ोंकी गर्जना और बछड़ोंके

हम्भारवैश्च वत्सानां गोपानां हर्षवर्धनः।
दध्नो ह्रदो घृतावर्तः पयःकुल्यासमाकुलः॥ १७

मांसराशिः प्रभूताढ्यः प्रकाशौदनपर्वतः।
सम्प्रावर्तत यज्ञोऽस्य गिरेर्गोभिः समाकुलः।
तुष्टगोपजनाकीर्णो गोपनारीमनोहरः॥ १८

भक्ष्याणां राशयस्तत्र शतशश्चोपकल्पिताः।
गन्धमाल्यैश्च विविधैर्धूपैरुच्चावचैस्तथा॥ १९

अथाधिश्रृतपर्यन्ते सम्प्राप्ते यज्ञसंविधौ।
यज्ञं गिरेस्तिथौ सौम्ये चक्रुर्गोपा द्विजैः सह॥ २०

यजनान्ते तदन्नं तु तत् पयो दधि चोत्तमम्।
मांसं च मायया कृष्णो गिरिर्भूत्वा समश्नुते॥ २१

तर्पिताश्चापि विप्राग्र्यास्तुष्टाः सम्पूर्णमानसाः।
उत्तस्थुः प्रीतमनसः स्वस्ति वाच्यं यथासुखम्॥ २२

भुक्त्वा चावभृथे कृष्णः पयः पीत्वा च कामतः।
संतृप्तोऽस्मीति दिव्येन रूपेण प्रजहास वै॥ २३

तं गोपाः पर्वताकारं दिव्यस्त्रगनुलेपनम्।
गिरिमूर्ध्नि स्थितं दृष्ट्वा कृष्णं जग्मुः प्रधानतः॥ २४

भगवानपि तेनैव रूपेणाच्छादितः प्रभुः।
सहितैः प्रणतो गोपैर्ववन्दात्मानमात्मना॥ २५

तमूचुर्विस्मिता गोपा देवं गिरिवरे स्थितम्।
भगवंस्त्वद्वशे युक्ता दासाः किं कुर्म किङ्कराः॥ २६

स उवाच ततो गोपान् गिरिप्रभवया गिरा।
अद्यप्रभृति चेज्योऽहं गोषु यद्यस्तु वो दया॥ २७

रँभानेसे जो सम्मिलित शब्द प्रकट हुआ, वह गोपोंका हर्ष बढ़ाने लगा। दहीके कुण्डमें ऊपर-ऊपर घी छा रहा था। दूधकी अनेक नहरें बहने लगीं। फलोंके गूदोंकी बड़ी भारी राशि जमा हो गयी। बहुत-से संस्कारक द्रव्य संचित हो गये और उज्ज्वल भातोंका पर्वताकार पुञ्ज प्रकाशित होने लगा। इस प्रकार गौओंसे भरा हुआ श्रीकृष्णका गिरियज्ञ चालू हो गया। संतुष्ट हुए समस्त गोपगण उसमें सम्मिलित होकर आवश्यक कार्य करते थे। गोपाङ्गनाओंने अपनी उपस्थितिसे उस महोत्सवको मनोहर बना दिया था॥ १६—१८॥ वहाँ भक्ष्य पदार्थोंके सैकड़ों ढेर लगाये गये थे। नाना प्रकारके गन्ध, माल्य तथा भाँति-भाँतिके धूपोंसे वह यज्ञ सुशोभित होता था॥ १९॥ अग्निके समीप जो आज्यस्थाली और चरुस्थाली आदि रखी गयी थीं, वे उस यज्ञका विधान आरम्भ होते ही आगपर चढ़ा दी गयीं। ब्राह्मणोंसहित गोपोंने किसी शुभ तिथिको उस यज्ञका अनुष्ठान आरम्भ किया था॥ २०॥ यज्ञके अन्तमें श्रीकृष्ण स्वयं ही मायासे पर्वतके अधिष्ठाता देवता बनकर उस अन्न, दूध, दही और फलोंके गूदोंको भोग लगाने लगे॥ २१॥ उस यज्ञमें श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको अन्न-पानसे तृप्त और दक्षिणासे संतुष्ट किया गया था। उन सबके मनोरथ पूर्ण हो गये थे। वे सुखपूर्वक स्वस्तिवाचन करके प्रसन्नचित्त होकर उठे थे॥ २२॥ यज्ञान्तस्नानके समय गिरिदेवके रूपमें प्रकट हुए श्रीकृष्ण अपनेको अर्पित किये गये भोज्य पदार्थोंको खाकर और इच्छानुसार दूध पीकर बोले—'मैं पूर्णतः तृप्त हो गया।' ऐसा कहकर वे उस दिव्य रूपके द्वारा जोर-जोरसे हँसने लगे॥ २३॥ दिव्य माला और अनुलेप धारण किये उन पर्वताकार देवताको पर्वतके शिखरपर खड़ा देख सब लोगोंने उन्हें प्रधानतः श्रीकृष्ण ही समझकर उनकी शरण ली॥ २४॥ प्रभावशाली भगवान् श्रीकृष्णने भी उसी रूपसे अपनेको छिपाये रखकर वहाँ एकत्र हुए गोपोंके साथ नतमस्तक हो स्वयं ही अपने-आपको प्रणाम किया॥ २५॥ गिरिराजके शिखरपर खड़े हुए उन पर्वतदेवतासे समस्त गोपोंने विस्मित होकर कहा—'भगवन्! हम आपके वशमें हैं; आपके दास एवं सेवक हैं, बताइये! हम आपकी क्या सेवा करें'॥ २६॥ तब उन्होंने पर्वतसे प्रकट हुई वाणीद्वारा उन गोपोंसे कहा—'यदि तुमलोगोंमें दयाभाव विद्यमान हो तो आजसे तुम्हें गौओंके भीतर मेरी पूजा करनी चाहिये'॥ २७॥

अहं वः प्रथमो देवः सर्वकामकरः शुभः।
मम प्रभावाच्च गवामयुतान्येव भोक्ष्यथ॥ २८

शिवश्च वो भविष्यामि मद्भक्तानां वने वने।
रंस्ये च सह युष्माभिर्यथा दिविगतस्तथा॥ २९

ये चेमे प्रथिता गोपा नन्दगोपपुरोगमाः।
एषां प्रीतः प्रयच्छामि गोपानां विपुलं धनम्॥ ३०

पर्याप्नुवन्तु क्षिप्रं मां गावो वत्ससमाकुलाः।
एवं मम परा प्रीतिर्भविष्यति न संशयः॥ ३१

ततो नीराजनार्थं हि वृन्दशो गोकुलानि तम्।
परिवव्रुर्गिरिवरं सवृषाणि समन्ततः॥ ३२

ता गावः प्रद्रुता हृष्टाः सापीडस्तबकाङ्गदाः।
सस्रजापीडशृङ्गाग्राः शतशोऽथ सहस्रशः॥ ३३

अनुजग्मुश्च गोपालाः कालयन्तो धनानि च।
भक्तिच्छेदानुलिप्ताङ्गा रक्तपीतसिताम्बराः॥ ३४

मयूरचित्राङ्गदिनो भुजैः प्रहरणावृतैः।
मयूरपत्रवृन्तानां केशबन्धैः सुयोजितैः॥ ३५

बभ्राजुरधिकं गोपाः समवाये तदाद्भुते।
अन्ये वृषानारुरुहुर्नृत्यन्ति स्म परे मुदा॥ ३६

गोपालास्त्वपरे गाश्च जगृहुर्वेगगामिनः।
तस्मिन् पर्यायनिर्वृत्ते गवां नीराजनोत्सवे॥ ३७

अन्तर्धानं जगामाशु तेन देहेन सोऽचलः।
कृष्णोऽपि गोपसहितो विवेश व्रजमेव ह॥ ३८

गिरियज्ञप्रवृत्तेन तेनाश्चर्येण विस्मिताः।
गोपाः सबालवृद्धा वै तुष्टुवुर्मधुसूदनम्॥ ३९

'मैं तुमलोगोंका प्रथम देवता हूँ, तुम्हारी सम्पूर्ण कामनाओंको पूर्ण करनेवाला और शुभचिन्तक हूँ। तुम मेरे प्रभावसे दस हजार गौओंके स्वामी एवं (उनके दूध-दही आदिके) उपभोक्ता बने रहोगे॥ २८॥ मुझमें भक्ति रखनेवाले तुम गोपोंके लिये मैं प्रत्येक वनमें कल्याणकारी होऊँगा और तुमलोगोंके साथ मैं उसी प्रकार आनन्दपूर्वक रहूँगा, जैसे दिव्य धाममें रहा करता हूँ॥ २९॥ ये जो नन्द आदि विख्यात गोप हैं, मैं प्रसन्न होकर इन सबको प्रचुर धन-सम्पत्ति प्रदान करूँगा॥ ३०॥ अब बछड़ोंसहित गौएँ शीघ्र मेरी परिक्रमा करें। इससे मुझे बड़ी प्रसन्नता होगी, इसमें संशय नहीं है'॥ ३१॥ फिर तो झुंड-की-झुंड गौएँ साँड़ोंके साथ आकर परिक्रमाके लिये गिरिराजको सब ओरसे घेरकर खड़ी हो गयीं॥ ३२॥ उनके मस्तकपर फूलोंके आभूषण बँधे हुए थे, चारों पैरोंमें पुष्पगुच्छोंके ही बने हुए बाजूबंद पहनाये गये थे, सींगोंके अग्रभागमें फूलोंके गजरे और शिरोभूषण शोभा पा रहे थे, ऐसी सैकड़ों और हजारों गौएँ हर्षमें भरकर एक साथ परिक्रमाके पथपर दौड़ीं॥ ३३॥ गोपगण अपने उन गोधनोंको हाँकते हुए उनके पीछे-पीछे चले। उन गोपोंके विभिन्न अङ्गोंमें विभागपूर्वक नाना रंगोंके अनुलेप लगे थे। वे लाल, पीले और सफेद कपड़ोंसे सुशोभित थे॥ ३४॥ उनकी भुजाओंमें मोरपत्रके विचित्र बाजूबंद बँधे हुए थे और उन्हीं हाथोंमें डंडे भी शोभा पा रहे थे। उनके सुन्दर ढंगसे बँधे हुए केशोंमें मोरपंखके वृन्त खोंसे गये थे। इन सबके कारण उस अद्भुत समुदाय या मेलेमें उन गोपोंकी अधिक शोभा हो रही थी। कुछ अन्य गोप बैलोंपर चढ़े थे। दूसरे ग्वाले हर्षमें भरकर नाच रहे थे तथा अन्य बहुत-से गोपाल वेगपूर्वक भागी जाती हुई गौओंको पकड़ते थे। गौओंद्वारा नीराजना (परिक्रमा)-का वह उत्सव बारी-बारीसे सम्पन्न हो जानेपर वे पर्वतदेवता अपने उस दिव्य शरीरसे शीघ्र ही अन्तर्धान हो गये। इधर श्रीकृष्ण भी गोपोंके साथ व्रजमें ही चले गये। गिरियज्ञके अनुष्ठानसे प्राप्त हुए उस महान् आश्चर्यसे चकित हो बालकों और वृद्धोंसहित सम्पूर्ण गोप मधुसूदन श्रीकृष्णकी स्तुति करने लगे॥ ३५—३९॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे विष्णुपर्वणि गिरियज्ञप्रवर्तने सप्तदशोऽध्यायः॥ १७॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत विष्णुपर्वमें गिरियज्ञका अनुष्ठानविषयक सत्रहवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १७॥

अष्टादशोऽध्यायः

इन्द्रका संवर्तक मेघोंद्वारा वर्षा कराकर गौओं और गोपोंको कष्टमें डालना, श्रीकृष्णद्वारा गोवर्धनधारण तथा उसके नीचे गौओं और गोपोंसहित व्रजवासियोंका जाना

वैशम्पायन उवाच

महे प्रतिहते शक्रः सक्रोधस्त्रिदशेश्वरः।
संवर्तकं नाम गणं तोयदानामथाब्रवीत्॥ १

भो बलाहकमातङ्गाः श्रूयतां मम भाषितम्।
यदि वो मत्प्रियं कार्यं राजभक्तिपुरस्कृतम्॥ २

एते वृन्दावनगता दामोदरपरायणाः।
नन्दगोपादयो गोपा विद्विषन्ति ममोत्सवम्॥ ३

आजीवो यः परस्तेषां गोपत्वं च यतः स्मृतम्।
ता गावः सप्तरात्रेण पीड्यन्तां वर्षमारुतैः॥ ४

ऐरावतगतश्चाहं स्वयमेवाम्बु दारुणम्।
स्त्रक्ष्यामि वृष्टिं वातं च वज्राशनिसमप्रभम्॥ ५

भवद्भिश्चण्डवर्षेण चरता मारुतेन च।
हतास्ताः सव्रजा गावस्त्यक्ष्यन्ति भुवि जीवितम्॥ ६

एवमाज्ञापयामास सर्वाञ्जलधरान् प्रभुः।
प्रत्याहते वै कृष्णेन शासने पाकशासनः॥ ७

ततस्ते जलदाः कृष्णा घोरनादा भयावहाः।
आकाशं छादयामासुः सर्वतः पर्वतोपमाः॥ ८

विद्युत्सम्पातजननाः शक्रचापविभूषिताः।
तिमिरावृतमाकाशं चक्रुस्ते जलदास्तदा॥ ९

गजा इवान्यसंयुक्ताः केचिन्मकरवर्चसः।
नागा इवान्ये गगने चेरुर्जलदपुङ्गवाः॥ १०

तेऽन्योन्यं वपुषा बद्धा नागयूथायुतोपमाः।
दुर्दिनं विपुलं चक्रुश्छादयन्तो नभस्तलम्॥ ११

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! अपना उत्सव रोक दिये जानेके कारण देवराज इन्द्रको बड़ा क्रोध हुआ। उन्होंने मेघोंके संवर्तक नामक गणको बुलाकर इस प्रकार कहा—॥ १॥ 'मतवाले हाथियोंके समान श्रेष्ठ मेघगण! यदि तुम्हें राजभक्तिको सामने रखते हुए मेरा प्रिय कार्य करना उचित जान पड़े, तो मेरी यह बात सुनो॥ २॥ ये वृन्दावनमें गये हुए जो नन्द आदि गोप हैं, वे दामोदर श्रीकृष्णको ही सबसे बड़ा सहारा मानकर मेरे उत्सवसे द्वेष रखने लगे हैं॥ ३॥ अतः मेरी आज्ञा है कि उन गोपोंकी जो सबसे बड़ी आजीविका है तथा जिसका पालन करनेके कारण उनका गोपत्व सार्थक माना गया है, नन्द आदिकी उन गौओंको तुम लगातार सात रातोंतक भारी वर्षा और वायुके द्वारा पीड़ित करो॥ ४॥ मैं भी ऐरावतपर आरूढ़ होकर चलता हूँ और स्वयं ही वज्र एवं बिजलीके साथ-साथ प्रकाशित होनेवाले भयानक जलकी वर्षा एवं वायुकी सृष्टि करूँगा॥ ५॥ तुमलोग प्रचण्ड वायुके साथ विचरते हुए जब घोर वर्षा करोगे, तब उससे आहत एवं पीड़ित हुई गौएँ भूतलपर व्रजवासियोंसहित अपने प्राण त्याग देंगी'॥ ६॥ श्रीकृष्णद्वारा अपने उत्सव एवं शासनका विघात हो जानेपर प्रभावशाली पाकशासन इन्द्रने समस्त जलधरोंको इस प्रकार अपनी आज्ञा सुना दी॥ ७॥ तब वे घोर गर्जना करनेवाले पर्वताकार भयंकर काले मेघ आकाशमें सब ओर छा गये॥ ८॥ उस समय इन्द्रधनुषसे विभूषित हो बिजली गिराते हुए उन मेघोंने आकाशको अन्धकारपूर्ण कर दिया॥ ९॥ कुछ मेघ दूसरे हाथियोंसे सटकर चलते हुए हाथियोंके समान प्रतीत होते थे। दूसरे मगरोंके समान प्रकाशित होते थे तथा अन्य बड़े-बड़े बादल आकाशमें नागोंके समान विचरने लगे॥ १०॥ जैसे हजारों हाथियोंके झुंड एक-दूसरेसे अपने शरीरको आबद्ध करके चल रहे हों, वैसे ही प्रतीत होनेवाले उन जलधरोंने आकाशको आच्छादित करके वहाँ बड़ा भारी दुर्दिन उपस्थित कर दिया॥ ११॥

नृहस्तनागहस्ताभ्यां वेणूनां चैव सर्वतः।
धाराभिस्तुल्यरूपाभिर्ववृषुस्ते बलाहकाः॥ १२

समुद्रं मेनिरे तं हि खमारूढं नृचक्षुषः।
दुर्विगाह्यमपर्यन्तमगाधं दुर्दिनं महत्॥ १३

नैवापतन् वै खगमा दुद्रुवुर्मृगजातयः।
पर्वताभेषु मेघेषु खे नदत्सु समन्ततः॥ १४

नष्टसूर्येन्दुसदृशैर्मेघैर्नभसि दारुणैः।
अतिवृष्टेन लोकस्य विरूपमभवद् वपुः॥ १५

मेघौघैर्निष्प्रभाकारमदृश्यग्रहतारकम्।
चन्द्रसूर्यांशुरहितं खं बभूवातिनिष्प्रभम्॥ १६

वारिणा मेघमुक्तेन मुच्यमानेन चासकृत्।
आबभौ सर्वतस्तत्र भूमिस्तोयमयी यथा॥ १७

विनेदुर्बर्हिणस्तत्र तोककल्परुताः खगाः।
विवृद्धिं निम्नगा याताः प्लवगाः सम्प्लवं गताः॥ १८

गर्जितेन च मेघानां पर्जन्यनिनदेन च।
तर्जितानीव कम्पन्ते तृणानि तरुभिः सह॥ १९

प्राप्तोऽन्तकालो लोकानां व्यक्तमेकार्णवा मही।
इति गोपगणा वाक्यं व्याहरन्ति भयार्दिताः॥ २०

तेनोत्पाताम्बुवर्षेण गावो विप्रहता भृशम्।
हम्भारवैः क्रन्दमाना न चेलुः स्तम्भितोपमाः॥ २१

निष्कम्पसक्थिचरणा निष्प्रयत्नखुराननाः।
हृष्टरोमार्द्रतनवः क्षामकुक्षिपयोधराः॥ २२

काश्चित् प्राणाञ्जहुः श्रान्ता निपेतुः काश्चिदातुराः।
काश्चित्सवत्साः पतिता गावः शीकरवेजिताः॥ २३

काश्चिदाक्रम्य क्रोडेन वत्सांस्तिष्ठन्ति मातरः।
विमुखाः श्रान्तसक्थ्यश्च निराहाराः कृशोदराः।
पेतुरार्ता वेपमाना गावो वर्षपराजिताः॥ २४

मनुष्योंके हाथ, हाथियोंके शुण्डदण्ड तथा बाँसके तुल्य मोटी धाराएँ प्रकट करके वे मेघ वहाँ सब ओर वर्षा करने लगे॥ १२॥ मनुष्योंकी आँखोंने आकाशमें छाये हुए उस दुरवगाह अनन्त अगाध एवं महान् दुर्दिनको समुद्रके समान ही माना॥ १३॥ आकाशमें चारों ओर पर्वताकार मेघ गर्जना कर रहे थे। उस समय पक्षियोंने उड़ना बंद कर दिया तथा विभिन्न जातिके पशु इधर-उधर भागने लगे॥ १४॥ चन्द्रमा और सूर्यको भी नष्ट कर देनेवाले प्रलयकालके समान आकाशमें छाये हुए उन भयंकर मेघोंने अपनी अतिवृष्टिके कारण समस्त पार्थिव जगत्के रूपको विकृत कर दिया॥ १५॥ मेघोंकी घटाएँ घिर आनेसे व्योममण्डल प्रभाशून्य हो गया। ग्रह और तारे दृष्टिपथसे ओझल हो गये। चन्द्रमा और सूर्यकी किरणोंका पता नहीं चलता था। अतः सारा आकाश अन्धकारसे आच्छन्न हो गया॥ १६॥ मेघोंके बरसाये हुए तथा बारम्बार बरसाये जाते हुए जलसे आवृत हो वहाँ सब ओरकी भूमि जलमयी-सी प्रतीत होने लगी॥ १७॥ उस समय वहाँ मोर जोर-जोरसे बोलने लगे। पक्षियोंकी आवाज बहुत कम हो गयी। नदियोंमें बाढ़ आ गयी और किनारेके वृक्ष प्रवाहमें बह गये॥ १८॥ मेघोंकी गर्जना तथा पर्जन्यदेवके गम्भीर नादसे डाँटे गयेकी भाँति वृक्षोंसहित तृण काँपने लगे॥ १९॥ उस समय भयसे पीड़ित हुए गोप आपसमें कहने लगे कि 'निश्चय ही समस्त लोकोंका अन्तकाल आ पहुँचा है और पृथ्वी एकार्णवमें मग्न हो रही है'॥ २०॥ उस उत्पातस्वरूप जलकी भारी वर्षासे अत्यन्त ताड़ित एवं पीड़ित हुई गौएँ रँभानेकी ध्वनिमें करुण-क्रन्दन करती हुई हिल-डुल भी न सकीं। ऐसा जान पड़ता था, उनके सारे अङ्ग अकड़ गये हैं॥ २१॥ उनकी जाँघें और पैर हिल नहीं पाते थे, खुर और मुख निश्चेष्ट थे, भीगे हुए शरीरमें रोंगटे खड़े हो गये थे और पेट तथा थन अत्यन्त दुबले होकर सिकुड़ गये थे॥ २२॥ कुछ गौओंने पीड़ासे श्रान्त होकर अपने प्राण त्याग दिये। कुछ आतुर होकर गिर पड़ीं और कितनी ही गौएँ जलके छींटेंसे उद्विग्न होकर बछड़ोंसहित धराशायिनी हो गयीं॥ २३॥ कुछ गौमाताएँ बछड़ोंको अपने अङ्कमें छिपाकर खड़ी थीं, कितनी ही बछड़ोंकी ओरसे विमुख हो गयी थीं, उनकी जाँघें शिथिल हो रही थीं, कुछ दाना-घास न मिलनेके कारण उनके पेट भीतरको धँस गये थे। वर्षासे परास्त होकर पीड़ित हुई गौएँ थर-थर काँपती हुई पृथ्वीपर गिर पड़ती थीं॥ २४॥

वत्साश्चोन्मुखका बाला दामोदरमुखाः स्थिताः।
त्राहीति वदनैर्दीनैः कृष्णमूचुरिवार्दिताः॥ २५

गवां तत् कदनं दृष्ट्वा दुर्दिनागमजं महत्।
गोपांश्चासन्ननिधनान् कृष्णः कोपं समादधे॥ २६

स चिन्तयित्वा संरब्धो दृष्टो योगो मयेति च।
आत्मानमात्मना वाक्यमिदमूचे प्रियंवदः॥ २७

अद्याहमिममुत्पाट्य सकाननवनं गिरिम्।
कल्पयेयं गवां स्थानं वर्षत्राणाय दुर्धरम्॥ २८

अयं धृतो मया शैलः पृथ्वीगृहनिभोपमः।
त्रास्यते सव्रजा गा वै मद्वश्यश्च भविष्यति॥ २९

एवं स चिन्तयित्वा तु कृष्णः सत्यपराक्रमः।
बाह्वोर्बलं दर्शयिष्यन् समीपं तं महीधरम्।
दोर्भ्यामुत्पाटयामास कृष्णो गिरिरिवापरः॥ ३०

स धृतः संगतो मेघैर्गिरिः सव्येन पाणिना।
गृहभावं गतस्तत्र गृहाकारेण वर्चसा॥ ३१

भूमेरुत्पाट्यमानस्य तस्य शैलस्य सानुषु।
शिलाः प्रशिथिलाश्चेलुर्विनिष्पेतुश्च पादपाः॥ ३२

शिखरैर्घूर्णमानैश्च सीदमानैश्च पादपैः।
विधूतैश्चोच्छ्रितैः शृङ्गैरगमः खगमोऽभवत्॥ ३३

चलत्प्रस्रवणैः पार्श्वैर्मेघौघैरेकतां गतैः।
भिद्यमानाश्मनिचयश्चचाल धरणीधरः॥ ३४

न मेघानां प्रवृष्टानां न शैलस्याश्मवर्षिणः।
विविदुस्ते जना रूपं वायोस्तस्य च गर्जतः॥ ३५

मेघैः सशैलसंस्थानैर्नीलैः प्रस्रवणार्पितैः।
मिश्रीकृत इवाभाति गिरिरुद्दामबर्हवान्॥ ३६

आप्लुतोऽयं गिरिः पक्षैरिति विद्याधरोरगाः।
गन्धर्वाप्सरसश्चैव वाचो मुञ्चन्ति सर्वशः॥ ३७

छोटे-छोटे बछड़े मुँह ऊपर उठाकर दामोदरकी ओर देखते हुए खड़े थे, मानो वे पीड़ित बछड़े अपने दीन मुखोंसे श्रीकृष्णको सम्बोधित करके कह रहे थे कि 'प्रभो! हमारी रक्षा कीजिये'॥ २५॥ इस दुर्दिनके आनेसे गौओंका वह महासंहार होता देख और गोपोंको भी मौतके निकट पहुँचा हुआ जान श्रीकृष्णने इन्द्रके प्रति महान् कोप धारण किया॥ २६॥ प्रिय वचन बोलनेवाले श्रीकृष्णने कुछ देर सोच-विचारकर रोषावेशसे युक्त हो स्वयं ही अपने-आपसे इस प्रकार कहा—'इस वर्षासे बचनेका उपाय मैंने देख लिया॥ २७॥ आज मैं वन और काननोंसहित इस दुर्धर गोवर्धन पर्वतको उखाड़कर गौओंको वर्षासे बचानेके लिये सुरक्षित स्थानका निर्माण करूँगा॥ २८॥ मेरे द्वारा धारण किया हुआ यह पर्वत पृथ्वीपर बने हुए घरके समान होकर व्रजसहित समूची गौओंका परित्राण करेगा और मेरे अधीन हो जायगा'॥ २९॥ इस प्रकार सोच-विचारकर सत्यपराक्रमी श्रीकृष्णने अपनी दोनों भुजाओंका बल दिखाते हुए उस निकटवर्ती पर्वतको दोनों हाथोंसे पकड़कर उखाड़ लिया। उस समय श्रीकृष्ण दूसरे पर्वतके समान ही जान पड़ते थे॥ ३०॥ भगवान्के बायें हाथसे धारण किया गया और मेघोंसे सटा हुआ वह पर्वत उनके गृहाकारक तेज या संकल्पसे वहाँ गृहभावको प्राप्त हो गया॥ ३१॥ जिस समय वह पर्वत पृथ्वीसे उखाड़ा जाने लगा, उस समय उसके शिखरोंपर जो टूटी-फूटी शिलाएँ थीं, वे खिसककर गिरने लगीं और बहुत-से वृक्ष भी धराशायी हो गये॥ ३२॥ उस समय चक्कर काटते हुए शिखरों, खण्डित होते हुए वृक्षों तथा काँपती हुई ऊँची चोटियोंके कारण वह अविचल पर्वत आकाशचारी पक्षीके समान प्रतीत होने लगा॥ ३३॥ पार्श्ववर्ती चञ्चल झरने मेघोंके समूहोंसे मिलकर एकताको प्राप्त हो गये। वह पर्वत हिलने लगा और उसकी प्रस्तरराशि विदीर्ण होकर बिखरने लगी॥ ३४॥ उस पर्वतके नीचे गर्भगृहमें बैठे हुए वे सब लोग न तो बरसते हुए मेघोंका, न पत्थर बरसानेवाले पर्वतका और न गरजती हुई वायुका ही स्वरूप जान सके॥ ३५॥ झरनोंसे मिले हुए पर्वताकार नील मेघोंसे मिश्रित हुआ वह पर्वत पंख उठाये हुए मोरके समान प्रतीत होता था॥ ३६॥ विद्याधर, नाग, गन्धर्व और अप्सराएँ सब ओर ऐसी चर्चा करते थे कि यह पर्वत अपने मेघरूपी पंखोंसे ऊपरको उड़नेके लिये उद्यत-सा प्रतीत होता है॥ ३७॥

सहस्ततलविन्यस्तो मुक्तमूलः क्षितेस्तलात्।
रीतीर्निर्वर्तयामास काञ्चनाञ्जनराजतीः॥ ३८

कानिचिच्छिथिलानीव संच्छिन्नार्द्धानि कानिचित्।
गिरेर्मेघप्रविष्टानि तस्य शृङ्गाणि चाभवन्॥ ३९

गिरिणा कम्पमानेन कम्पितानां तु शाखिनाम्।
पुष्पमुच्चावचं भूमौ व्यशीर्यत समन्ततः॥ ४०

निःसृताः पृथुमूर्धानः स्वस्तिकार्धविभूषिताः।
द्विजिह्वपतयः क्रुद्धाः खेचराः खे समन्ततः॥ ४१

आर्तिं जग्मुः खगगणा वर्षेण च भयेन च।
उत्पत्त्योत्पत्त्य गगनात् पुनः पेतुरवाङ्मुखाः॥ ४२

रेसुरारोषिताः सिंहाः सजला इव तोयदाः।
गर्गरा इव मथ्यन्तो नेदुः शार्दूलपुङ्गवाः॥ ४३

विषमैश्च समीभूतैः समैश्चात्यन्तदुर्गमैः।
व्यावृत्तदेहः स गिरिरन्य एवोपलक्ष्यते॥ ४४

अतिवृष्टस्य तैर्मेघैस्तस्य रूपं बभूव ह।
स्तम्भितस्येव रुद्रेण त्रिपुरस्य विहायसि॥ ४५

बाहुदण्डेन कृष्णस्य विधृतं सुमहत् तदा।
नीलाभ्रपटलच्छन्नं तद्गिरिच्छत्रमाबभौ॥ ४६

स्वप्नायमानो जलदैर्निमीलितगुहामुखः।
बाहूपधाने कृष्णस्य प्रसुप्त इव खे गिरिः॥ ४७

निर्विहङ्गरुतैर्वृक्षैर्निर्मयूररुतैर्वनैः।
निरालम्ब इवाभाति गिरिः स्वशिखरैर्वृतः॥ ४८

पर्यस्तैर्घूर्णमानैश्च प्रचलद्भिश्च सानुभिः।
सज्वराणीव शैलस्य वनानि शिखराणि च॥ ४९

वह पर्वत श्रीकृष्णकी हथेलीपर टिका हुआ था। भूतलसे उसके मूलभागका सम्बन्ध टूट चुका था। उस दशामें वह सोने, कोयले, चाँदी तथा गेरू आदि धातुओंको प्रकट करने लगा॥ ३८॥ उस पर्वतके कुछ शिखर शिथिल-से हो गये थे, कुछ आधे भागसे टूट गये थे और कितने ही शिखर बादलोंके भीतर घुस गये थे॥ ३९॥ पर्वतके हिलनेके साथ ही उसके ऊपरके वृक्ष कम्पित हो उठे और उनके नाना प्रकारके फूल पृथ्वीपर सब ओर बिखर गये॥ ४०॥ उस समय मोटे-मोटे मस्तकवाले सर्पराज, जो आकाशमें उड़नेकी शक्ति रखते थे, कुपित होकर आकाशमें सब ओर निकल पड़े। उनके शरीर आधे स्वस्तिकसे विभूषित थे॥ ४१॥ पक्षियोंके समुदाय वर्षा और भयसे बड़े कष्टमें पड़ गये। वे उड़-उड़कर आकाशमें जाते और वहाँसे पुनः नीचे मुख किये गिर पड़ते थे॥ ४२॥ बहुत-से सिंह रोषमें भरकर सजल जलधरोंके समान दहाड़ रहे थे। बड़े-बड़े बाघ मथे जानेवाले माँटोंके समान गम्भीर घोष करते थे॥ ४३॥ उस पर्वतकी विषम भूमि सम हो गयी और समभूमि विषम होकर अत्यन्त दुर्गम हो गयी, इससे उसके स्वरूपमें इतना उलट-फेर हो गया कि वह किसी और ही पर्वत-सा दिखायी देता था॥ ४४॥ उन मेघोंके द्वारा अतिवृष्टि होनेसे उस पर्वतका रूप वैसा ही हो गया, जैसा कि आकाशमें भगवान् रुद्रके द्वारा स्तम्भित किये गये त्रिपुरका रूप दिखायी देता था॥ ४५॥ भगवान् श्रीकृष्णके बाहुदण्डसे धारण किया गया तथा काले मेघ समूहोंसे आच्छादित हुआ वह पर्वतरूपी छत्र बड़ी शोभा पा रहा था॥ ४६॥ सोनेकी इच्छा-सी रखनेवाला वह पर्वत आकाशमें श्रीकृष्णकी बाँहका तकिया लगाकर सोया हुआ-सा जान पड़ता था। उस समय उसका गुफारूपी मुख बादलोंकी चादरसे ढका हुआ था॥ ४७॥ उस पर्वतपर जो वृक्ष थे, उनपर पक्षियोंकी बोली नहीं सुनायी देती थी। वहाँके वन मयूरोंकी केका-ध्वनिसे शून्य हो गये थे। ऐसे वृक्षों और वनोंसे घिरा हुआ वह पर्वत अपने शिखरोंके साथ निरालम्ब-सा प्रतीत होता था॥ ४८॥ उसके शृंग अस्त-व्यस्त होकर चक्कर काटते और जोर-जोरसे हिलते थे। उनके कारण उस पर्वतके वन और शिखर ज्वरसे पीड़ित हुए-से प्रतीत होते थे॥ ४९॥

उत्तमाङ्गगतास्तस्य मेघाः पवनवाहनाः।
त्वर्यमाणा महेन्द्रेण तोयं मुमुचुरक्षयम्॥ ५०

स लम्बमानः कृष्णस्य भुजाग्रे सघनो गिरिः।
चक्रारूढ इवाभाति देशो नृपतिपीडितः॥ ५१

स मेघनिचयस्तस्थौ गिरिं तं परिवार्य ह।
पुरं पुरस्कृत्य यथा स्फीतो जनपदो महान्॥ ५२

निवेश्य तं करे शैलं तोलयित्वा च सस्मितम्।
प्रोवाच गोप्ता गोपानां प्रजापतिरिव स्थितः॥ ५३

एतद् देवैरसम्भाव्यं दिव्येन विधिना मया।
कृतं गिरिगृहं गोपा निर्वातं शरणं गवाम्॥ ५४

क्षिप्रं विशन्तु यूथानि गवामिह हि शान्तये।
निर्वातेषु च देशेषु निवसन्तु यथासुखम्॥ ५५

यथाश्रेष्ठं यथायूथं यथासारं यथासुखम्।
विभज्यतामयं देशः कृतं वर्षनिवारणम्॥ ५६

शैलोत्पाटनभूरेषा महती निर्मिता मया।
पञ्चक्रोशप्रमाणेन क्रोशैकविस्तरो महान्।
त्रैलोक्यमप्युत्सहते रक्षितुं किं पुनर्व्रजम्॥ ५७

ततः किलकिलाशब्दो गवां हम्भारवैः सह।
गोपानां तुमुलो जज्ञे मेघनादश्च बाह्यतः॥ ५८

प्राविशन्त ततो गावो गोपैर्यूथप्रकल्पिताः।
तस्य शैलस्य विपुलं प्रदरं गह्वरोदरम्॥ ५९

कृष्णोऽपि मूले शैलस्य शैलस्तम्भ इवोच्छ्रितः।
दधारैकेन हस्तेन शैलं प्रियमिवातिथिम्॥ ६०

उस पर्वतके मस्तक (शिखर)-पर पहुँचे हुए वायुरूपी वाहनवाले मेघ देवराज इन्द्रके द्वारा शीघ्रता करनेके लिये प्रेरित होनेपर अक्षय जलकी वर्षा करने लगे॥ ५०॥ भगवान् श्रीकृष्णकी भुजाके अग्रभागमें लटकता हुआ मेघोंसहित वह पर्वत किसी शत्रु राजाके द्वारा पीड़ित हुए देशकी भाँति चक्रपर चढ़ा हुआ-सा प्रतीत होता था*॥ ५१॥ वह मेघोंका समुदाय उस पर्वतको चारों ओरसे घेरकर उसी तरह खड़ा था, जैसे समृद्धिशाली महान् जनपद नगर या राजधानीको अपने सामने रखकर चारों ओर निवास करता है॥ ५२॥ उस पर्वतको अपने हाथपर रखकर उसे संतुलित रखते हुए प्रजापतिके समान खड़े हुए गोपरक्षक भगवान् श्रीकृष्णने मुसकराते हुए कहा— ॥ ५३॥ 'गोपगण! मैंने दिव्य विधिसे यह पर्वतका घर बना दिया है, जिसे बनाना देवताओंके लिये भी असम्भव था। इसमें वर्षा और वायुका प्रवेश नहीं है। यह गौओंके लिये उत्तम आश्रय है॥ ५४॥ यहाँ शान्ति पानेके लिये गौओंके यूथ शीघ्र प्रवेश करें और इन वायुरहित स्थानोंमें सुखपूर्वक निवास करें॥ ५५॥ जो जैसे बड़े-छोटे हों, जिनके जैसे यूथ हों, जिनके पास जैसी साधन-सामग्री हो, उसके अनुसार तुम सब लोग सुखपूर्वक इस स्थानका बँटवारा कर लो। मैंने वर्षाका भलीभाँति निवारण कर दिया है॥ ५६॥ मैंने पर्वतको उखाड़कर यहाँ रहनेयोग्य विशाल भूमिका निर्माण कर दिया है। इसकी लम्बाई पाँच कोस और चौड़ाई एक कोसकी है। यह महान् भूभाग तीनों लोकोंकी आँधी-पानीसे रक्षा कर सकता है, फिर व्रजकी तो बात ही क्या है?'॥ ५७॥ यह सुनकर भीतरकी ओर गौओंके रँभानेके साथ ही गोपोंकी किलकारियोंका तुमुल नाद गूँज उठा और बाहरकी ओर मेघोंकी गम्भीर गर्जना होने लगी॥ ५८॥ तदनन्तर गोपोंद्वारा एक-एक यूथके रूपमें विभक्त की हुई गौएँ उस पर्वतकी विशाल गुफामें, जिसका भीतरी भाग बहुत बड़ा था, प्रवेश करने लगीं॥ ५९॥ भगवान् श्रीकृष्ण भी उस पर्वतके मूलभागमें प्रस्तरनिर्मित ऊँचे खम्भेके समान खड़े हो गये। उन्होंने उस पहाड़को अपने प्रिय अतिथिकी भाँति एक हाथसे पकड़ रखा था॥ ६०॥

* शत्रु राजाद्वारा आक्रान्त देशके लोग रथ, शकट आदि वाहनोंपर आरूढ़ होकर जब पलायन करने लगते हैं, उस समय उन्हें चक्रारूढ़ कहा जाता है; उसी प्रकार इन्द्रसे पीड़ित पर्वत भगवान् श्रीकृष्णके हाथरूपी चक्रपर आरूढ़ हुआ दिखायी देता था।

ततो व्रजस्य भाण्डानि युक्तानि शकटानि च।
विविशुर्वर्षभीतास्ते तद् गृहं गिरिनिर्मितम्॥ ६१

अतिदैवं तु कृष्णस्य दृष्ट्वा तत् कर्म वज्रभृत्।
मिथ्याप्रतिज्ञो जलदान् वारयामास वै विभुः॥ ६२

सप्तरात्रे तु निर्वृत्ते धरण्यां विगतोत्सवः।
जगाम संवृतो मेघैर्वृत्रहा स्वर्गमुत्तमम्॥ ६३

निवृत्ते सप्तरात्रे तु निष्प्रयत्ने शतक्रतौ।
गताभ्रे विमले व्योम्नि दिवसे दीप्तभास्करे॥ ६४

गावस्तेनैव मार्गेण परिजग्मुर्यथागतम्।
स्वं च स्थानं ततो घोषः प्रत्ययात् पुनरेव सः॥ ६५

कृष्णोऽपि तं गिरिश्रेष्ठं स्वस्थाने स्थावरात्मवान्।
प्रीतो निवेशयामास शिवाय वरदो विभुः॥ ६६

तत्पश्चात् वर्षासे डरे हुए व्रजके गोप अपने बर्तन-भाँड़े और जुते हुए छकड़े लेकर उस पर्वतनिर्मित गृहमें प्रविष्ट हो गये॥ ६१॥ श्रीकृष्णके उस कर्मको, जो देवताओंके लिये भी असम्भव है, देखकर वज्रधारी इन्द्रने उन मेघोंको रोक दिया। व्रजको नष्ट कर देनेकी उनकी प्रतिज्ञा झूठी हो गयी॥ ६२॥ सात राततक पृथ्वीपर वर्षा करनेके पश्चात् मेघोंसे घिरे हुए वृत्रनाशक इन्द्र उत्सवहीन (आनन्दशून्य) हो (अथवा व्रजमें मनाये जानेवाले अपने उत्सवसे वञ्चित हो) उत्तम स्वर्गलोकको लौट गये॥ ६३॥ सात रात बीत जानेपर जब इन्द्रका सारा प्रयत्न निष्फल हो गया, बादल नष्ट हो गये, आकाश निर्मल हो गया और दिनमें सूर्यदेव देदीप्यमान हो उठे, उस समय सारी गौएँ फिर उसी मार्गसे जैसे आयी थीं, उसी तरह लौट गयीं। सारा व्रज पुनः अपने निवासस्थानको चला गया॥ ६४-६५॥ स्थिरभावसे खड़े हुए वरदायक भगवान् श्रीकृष्णने भी प्रसन्न होकर फिर जगत्‌के कल्याणके लिये उस श्रेष्ठ पर्वतको अपने स्थानपर स्थापित कर दिया॥ ६६॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे विष्णुपर्वणि गोवर्धनधारणेऽष्टादशोऽध्यायः॥ १८॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत विष्णुपर्वमें श्रीकृष्णका गोवर्धनधारणविषयक अठारहवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १८॥

एकोनविंशोऽध्यायः

देवराज इन्द्रका आगमन, श्रीकृष्णका गोविन्दपदपर अभिषेक तथा इन्द्रका श्रीकृष्णको भावी कार्य बताकर अर्जुनकी देखभालके लिये कहना और श्रीकृष्णका उसे स्वीकार करना

वैशम्पायन उवाच

धृतं गोवर्द्धनं दृष्ट्वा परित्रातं च गोकुलम्।
कृष्णस्य दर्शनं शक्रो रोचयामास विस्मितः॥ १

स निर्जलाम्बुदाकारं मत्तं मदजलोक्षितम्।
आरुह्यैरावतं नागमाजगाम महीतलम्॥ २

स ददर्शोपविष्टं वै गोवर्द्धनशिलातले।
कृष्णमक्लिष्टकर्माणं पुरुहूतः पुरंदरः॥ ३

तं वीक्ष्य बालं महता तेजसा दीप्तमव्ययम्।
गोपवेषधरं विष्णुं प्रीतिं लेभे पुरंदरः॥ ४

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! जब इन्द्रने देखा कि श्रीकृष्णने गोवर्धन धारण करके गोकुलकी रक्षा कर ली, तब वे बड़े विस्मयमें पड़े। अब उन्हें श्रीकृष्णका दर्शन करनेकी इच्छा हुई॥ १॥ वे जलहीन बादलके समान श्वेतवर्णवाले और मदके जलसे भीगे हुए ऐरावत नामक मदमत्त हाथीपर चढ़कर भूतलपर आये॥ २॥ अनेक नामोंसे पुकारे जानेवाले पुरंदर इन्द्रने वहाँ आकर देखा, अनायास ही महान् कर्म करनेवाले श्रीकृष्ण गोवर्धन पर्वतकी एक शिलापर बैठे हुए हैं॥ ३॥ महान् तेजसे उद्भासित होनेवाले गोपवेषधारी विष्णुस्वरूप उन अविनाशी बालकृष्णको देखकर देवराज इन्द्रको बड़ी प्रसन्नता हुई॥ ४॥

तं सोऽम्बुजदलश्यामं कृष्णं श्रीवत्सलक्षणम्।
पर्याप्तनयनः शक्रः सर्वैर्नेत्रैरुदैक्षत॥ ५

दृष्ट्वा चैनं श्रिया जुष्टं मर्त्यलोकेऽमरोपमम्।
सूपविष्टं शिलापृष्ठे शक्रः स व्रीडितोऽभवत्॥ ६

तस्योपविष्टस्य मुखं पक्षाभ्यां पक्षिपुङ्गवः।
अन्तर्द्धानं गतश्छायां चकारोरगभोजनः॥ ७

तं विविक्ते वनगतं लोकवृत्तान्ततत्परम्।
उपतस्थे गजं हित्वा कृष्णं बलनिषूदनः॥ ८

स समीपगतस्तस्य दिव्यस्त्रगनुलेपनः।
रराज देवराजो वै वज्रपूर्णकरः प्रभुः॥ ९

किरीटेनार्कतुल्येन विद्युदुद्योतकारिणा।
कुण्डलाभ्यां स दिव्याभ्यां सततं शोभिताननः॥ १०

पञ्चस्तबकलम्बेन हारेणोरसि भूषितः।
सहस्रपत्रकान्तेन देहभूषणकारिणा।
ईक्षमाणः सहस्रेण नेत्राणां कामरूपिणाम्॥ ११

त्रिदशाज्ञापनार्थेन मेघनिर्घोषकारिणा।
अथ दिव्येन मधुरं व्याजहार स्वरेण तम्॥ १२

इन्द्र उवाच

कृष्ण कृष्ण महाबाहो ज्ञातीनां नन्दिवर्द्धन।
अतिदिव्यं कृतं कर्म त्वया प्रीतिमता गवाम्॥ १३
मयोत्सृष्टेषु मेघेषु युगान्तावर्तकारिषु।
यत्त्वया रक्षिता गावस्तेनास्मि परितोषितः॥ १४
स्वायम्भुवेन योगेन यश्चायं पर्वतोत्तमः।
धृतो वेश्मवदाकाशे को ह्येतेन न विस्मयेत्॥ १५
प्रतिषिद्धे मम महे मयेयं रुषितेन वै।
अतिवृष्टिः कृता कृष्ण गवां वै सप्तरात्रिकी॥ १६

नीलकमलदलके समान श्यामसुन्दर एवं श्रीवत्स-चिह्नविभूषित उन श्रीकृष्णको देखकर इन्द्रको अपने नेत्रोंका फल प्राप्त हो गया। उन्होंने अपने सम्पूर्ण नेत्रोंसे जी-भरकर उन्हें देखा॥ ५॥ मर्त्यलोकमें रहकर भी देवोपम शोभासे सम्पन्न श्रीकृष्णको शिलापृष्ठपर सुखपूर्वक बैठा देख इन्द्रको बड़ी लज्जा हुई॥ ६॥ वहाँ बैठे हुए श्रीहरिके मुखपर सर्पभोजी पक्षिराज गरुड़ अदृश्य रहकर अपने दोनों पंखोंसे छाया किये हुए थे॥ ७॥ बलसूदन इन्द्र हाथी छोड़कर उतर पड़े और एकान्तमें वनके भीतर रहकर लोक-व्यवहारमें तत्पर हुए श्रीकृष्णकी सेवामें उपस्थित हुए॥ ८॥ श्रीकृष्णके समीप जाकर दिव्य पुष्पोंके हार और अनुलेपन धारण करनेवाले प्रभावशाली देवराज इन्द्र बड़ी शोभा पा रहे थे। उनका हाथ वज्रसे परिपूर्ण था॥ ९॥ विद्युत्के समान प्रकाश फैलानेवाले सूर्यतुल्य तेजस्वी किरीट तथा दो दिव्य कुण्डलोंसे उनके श्रीमुखकी सदा ही बड़ी शोभा होती थी॥ १०॥ वे अपने वक्षःस्थलपर एक ऐसे हारसे विभूषित थे, जिसमें फूलोंके पाँच गुच्छे लटक रहे थे। खिले हुए सहस्र कमलदलके समान कान्तिमान्, सम्पूर्ण शरीरको विभूषित करनेवाले तथा इच्छानुसार रूप धारण करनेवाले एक सहस्र नेत्रोंसे वे भगवान् श्रीकृष्णकी ओर देख रहे थे॥ ११॥ उन्होंने देवताओंको आज्ञा देनेके लिये अभ्यस्त और मेघ-गर्जनाके समान गम्भीर घोष करनेवाले दिव्य स्वरसे मधुर वाणीमें भगवान्से इस प्रकार कहा॥ १२॥

इन्द्र बोले—कृष्ण! कृष्ण!! महाबाहो!!! आप सजातीय बन्धुओंके आनन्दकी वृद्धि करनेवाले हैं। गौओंके प्रति प्रीति रखकर आपने जो कर्म किया है, वह अति दिव्य है॥ १३॥ मेरे द्वारा छोड़े गये प्रलयकी पुनरावृत्ति करनेवाले मेघोंके वर्षा करनेपर भी आपने जो गौओंकी रक्षा की है, उससे मैं बहुत संतुष्ट हूँ॥ १४॥ यह जो उत्तम पर्वत है, इसे आपने स्वायम्भुव[1] योगसे आकाशमें घरकी भाँति धारण कर लिया था। आपके इस अलौकिक कर्मसे किसको आश्चर्य नहीं होगा॥ १५॥ श्रीकृष्ण! जब मेरा प्रचलित उत्सव रोक दिया गया, तब मैंने रोषमें भरकर गौओंपर अपना क्रोध उतारनेके लिये सात राततक अतिवृष्टि की॥ १६॥

१. स्वायम्भुव योग कहते हैं हैरण्यगर्भी (ब्रह्मसम्बन्धिनी) धारणाको, उसके करनेसे भारी-से-भारी वस्तु भी हलकी हो जाती है। जैसे श्रीकृष्णके उठाते समय गोवर्धन पर्वत हलका हो गया था, इसी तरह उस योग या धारणाका आश्रय लेनेसे बड़ी-से-बड़ी वस्तु भी बहुत छोटी या अल्प हो जाती है। जैसे अगस्त्यके समुद्रपान करते समय उनके लिये सारा समुद्र तीन ही आचमनमें सीमित होकर आ गया था।

सा त्वया प्रतिषिद्धेयं मेघवृष्टिर्दुरासदा।
देवैः सदानवगणैर्दुर्निवार्या मयि स्थिते॥ १७

अहो मे सुप्रियं कृष्ण यत् त्वं मानुषदेहवान्।
समग्रं वैष्णवं तेजो विनिगूहसि रोषितः॥ १८

साधितं देवतानां हि मन्येऽहं कार्यमव्ययम्।
त्वयि मानुष्यमापन्ने युक्ते चैव स्वतेजसा॥ १९

सेत्स्यते सर्वकार्यार्थो न किंचित् परिहास्यते।
देवानां यद् भवान् नेता सर्वकार्यपुरोगमः॥ २०

एकस्त्वमसि देवानां लोकानां च सनातनः।
द्वितीयं नात्र पश्यामि यस्तेषां च धुरं वहेत्॥ २१

यथा हि पुङ्गवः श्रेष्ठो ह्यग्रे धुरि नियोज्यते।
एवं त्वमसि देवानां मग्नानां द्विजवाहनः॥ २२

त्वच्छरीरगतं कृष्ण जगत्प्रकरणं त्विदम्।
ब्रह्मणा साधु निर्दिष्टं धातुभ्य इव काञ्चनम्॥ २३

स्वयं स्वयम्भूर्भगवान् बुद्ध्याथ वयसापि वा।
न त्वानुगन्तुं शक्नोति पङ्गुर्द्रुतगतिं यथा॥ २४

स्थाणुभ्यो हिमवाञ्छ्रेष्ठो ह्रदानां वरुणालयः।
गरुत्मान् पक्षिणां श्रेष्ठो देवानां च भवान् वरः॥ २५

अपामधस्ताल्लोको वै तस्योपरि महीधराः।
नागानामुपरिष्टाद् भूः पृथिव्युपरि मानुषाः॥ २६

मनुष्यलोकादूर्ध्वं तु खगानां गतिरुच्यते।
आकाशस्योपरि रविर्द्वारं स्वर्गस्य भानुमान्॥ २७

देवलोकः परस्तस्माद् विमानगमनो महान्।
यत्राहं कृष्ण देवानामैन्द्रे विनिहितः पदे॥ २८

उस दुर्जय मेघवृष्टिका आपने निवारण कर दिया। मेरे रहते दानवोंसहित सम्पूर्ण देवताओंके लिये भी उस वर्षाको रोकना बहुत ही कठिन था॥ १७॥ श्रीकृष्ण! यह एक आश्चर्यमयी घटना हुई है। मेरे लिये यह बहुत ही प्रिय है कि आप मनुष्य-शरीर धारण करके भी अपने भीतर सम्पूर्ण वैष्णव तेजको छिपाये रखते हैं और रोष दिलाये जानेपर उसे प्रकट कर सकते हैं॥ १८॥ आप मानव-शरीरको प्राप्त होकर भी अपने वैष्णव तेजसे सम्पन्न हैं, इसलिये मैं देवताओंके कार्यको सिद्ध हुआ ही मानता हूँ। अब हमारा कोई कार्य बिगड़ नहीं सकता॥ १९॥ जब आप देवताओंके नेता हैं और सभी कार्योंमें अग्रगामी रहते हैं, तब हमारा सब कार्य, समस्त प्रयोजन सिद्ध हो जायगा, कुछ भी बिगड़ने नहीं पायेगा॥ २०॥ प्रभो! एकमात्र आप ही सम्पूर्ण देवता तथा लोकोंके सनातन रक्षक हैं। मैं आपके सिवा दूसरे किसीको यहाँ ऐसा नहीं देखता, जो उन लोकों और देवताओंकी रक्षाका भार वहन कर सके॥ २१॥ जैसे श्रेष्ठ बैल भार ढोनेके लिये सबसे आगे जोता जाता है, उसी प्रकार आप संकटमें डूबे हुए देवताओंका उद्धार करनेके लिये सबसे आगे रहते हैं। पक्षिराज गरुड़ आपके वाहन हैं॥ २२॥ श्रीकृष्ण! यह जो संसारकी सृष्टि है, वह सब आपके शरीरके भीतर ही है। ब्रह्माजीने तो उसका भलीभाँति निर्देशमात्र किया है। जैसे सब धातुओंमें सुवर्ण श्रेष्ठ है, उसी प्रकार समस्त देवताओंमें आप हैं॥ २३॥ साक्षात् स्वयम्भू भगवान् ब्रह्मा भी अपनी बुद्धि अथवा अवस्थाके द्वारा आपका अनुसरण नहीं कर सकते—आपके साथ-साथ नहीं चल सकते। ठीक उसी तरह, जैसे पङ्गु मनुष्य शीघ्रगामी पुरुषका पीछा नहीं कर सकता—उसके साथ नहीं जा सकता॥ २४॥ समस्त पर्वतोंमें हिमवान् श्रेष्ठ है। सरोवरोंमें समुद्र उत्तम है। पक्षियोंमें गरुड़ तथा देवताओंमें आप श्रेष्ठ हैं॥ २५॥ सबसे नीचे जललोक है, उसके ऊपर पर्वत हैं। यह पृथ्वी नागोंके ऊपर स्थित है और पृथ्वीपर मनुष्य निवास करते हैं॥ २६॥ मनुष्यलोकसे ऊपर आकाशमें पक्षियोंकी गति बतायी जाती है। आकाशसे ऊपर अंशुमाली सूर्य हैं, जो स्वर्गलोकके द्वार कहे गये हैं॥ २७॥ सूर्यलोकसे ऊपर देवताओंका महान् लोक है, जहाँ विमानसे यात्रा की जाती है। श्रीकृष्ण! वहीं मुझे देवेन्द्रपदपर स्थापित किया गया है॥ २८॥

स्वर्गादूर्ध्वं ब्रह्मलोको ब्रह्मर्षिगणसेवितः।
तत्र सोमगतिश्चैव ज्योतिषां च महात्मनाम्॥ २९

तस्योपरि गवां लोकः साध्यास्तं पालयन्ति हि।
स हि सर्वगतः कृष्ण महाकाशगतो महान्॥ ३०

उपर्युपरि तत्रापि गतिस्तव तपोमयी।
यां न विद्मो वयं सर्वे पृच्छन्तोऽपि पितामहम्॥ ३१

लोकस्त्वधो दुष्कृतिनां नागलोकस्तु दारुणः।
पृथिवी कर्मशीलानां क्षेत्रं सर्वस्य कर्मणः॥ ३२

खमस्थिराणां विषयो वायुना तुल्यवृत्तिनाम्।
गतिः शमदमाढ्यानां स्वर्गः सुकृतकर्मणाम्॥ ३३

ब्राह्मे तपसि युक्तानां ब्रह्मलोकः परा गतिः।
गवामेव तु गोलोको दुरारोहा हि सा गतिः॥ ३४

स तु लोकस्त्वया कृष्ण सीदमानः कृतात्मना।
धृतो धृतिमता वीर निघ्नतोपद्रवान् गवाम्॥ ३५

तदहं समनुप्राप्तो गवां वाक्येन चोदितः।
ब्रह्मणश्च महाभाग गौरवात् तव चागतः॥ ३६

अहं भूतपतिः कृष्ण देवराजः पुरंदरः।
अदितेर्गर्भपर्याये पूर्वजस्ते पुराकृतः॥ ३७

स्वतेजस्तेजसा चैव यत् ते दर्शितवानहम्।
देवरूपेण तत् सर्वं क्षन्तुमर्हसि मे विभो॥ ३८

एवं क्षान्तमनाः कृष्ण स्वेन सौम्येन तेजसा।
ब्रह्मणः शृणु मे वाक्यं गवां च गजविक्रम॥ ३९

आह त्वां भगवान् ब्रह्मा गावश्चाकाशगा दिवि।
कर्मभिस्तोषिता दिव्यैस्तव संरक्षणादिभिः॥ ४०

भवता रक्षिता गावो गोलोकश्च महानयम्।
यद् वयं पुङ्गवैः सार्द्धं वर्द्धामः प्रसवैस्तथा॥ ४१

स्वर्गसे ऊपर ब्रह्मलोक है, जो ब्रह्मर्षिगणोंसे सेवित है। वहाँतक चन्द्रमाकी तथा महात्मा ग्रह-नक्षत्रोंकी गति है॥ २९॥ ब्रह्मलोकसे ऊपर गोलोक है, जिसका साध्यगण पालन करते हैं। श्रीकृष्ण! वह महान् लोक सर्वव्यापी है। महाकाशमें व्यापकरूपसे स्थित है॥ ३०॥ उसमें भी आपकी तपोमयी गति सर्वोपरि है। हम पितामहसे पूछते रहनेपर भी अबतक आपकी उस गतिको नहीं जान सके हैं॥ ३१॥ भयंकर नागलोक सबसे नीचे है। वह पापाचारियोंको प्राप्त होनेवाला लोक या स्थान है। जो स्वभावसे ही कर्मठ हैं, उनके लिये यह भूलोक है। यह समस्त कर्मका क्षेत्र है॥ ३२॥ जो अस्थिर हैं, जिनकी वृत्ति वायुके समान है, उनका आश्रय आकाश या अन्तरिक्षलोक है। जो शम-दमसे सम्पन्न हो पुण्य-कर्ममें लगे रहते हैं, उन मनुष्योंकी गति स्वर्गलोक है॥ ३३॥ जो ब्राह्म-तपमें संलग्न रहनेवाले लोग हैं, उनकी परम गति ब्रह्मलोक है। गोलोक तो गौओंको ही सुलभ होनेवाला लोक है। वह गति दूसरोंके लिये दुरारोह (दुर्लभ) है॥ ३४॥ वीर श्रीकृष्ण! इस समय (मेरे द्वारा वर्षाके कारण) वही गौओंका लोक संकटमें पड़ गया था, जिसे आप-जैसे धैर्यशाली पुण्यात्मा पुरुषने उन गौओंपर आये हुए उपद्रवोंका नाश करके बचाया है॥ ३५॥ अतः महाभाग! मैं (दिव्य कामधेनु आदि) गौओंके तथा ब्रह्माजीके वचनोंसे प्रेरित होकर यहाँ आया हूँ। आपके प्रति मेरे मनमें जो गौरव है; उससे भी मुझे यहाँ आनेमें प्रेरणा मिली है॥ ३६॥ श्रीकृष्ण! मैं वही समस्त भूतोंका अधिपति देवराज इन्द्र हूँ, जिसे आपने पूर्वकालमें माता अदितिके गर्भमें आकर अपना बड़ा भाई बनाया था॥ ३७॥ प्रभो! मैंने जो देवरूपसे उपस्थित होकर तेजसे अपना तेज प्रकट करके आपको दिखाया है, मेरे उस सारे अपराधको आप क्षमा कर दें॥ ३८॥ हाथीके समान पराक्रमी श्रीकृष्ण! इस प्रकार आप अपने सौम्य तेजसे मनमें क्षमाभाव लाकर ब्रह्माजी तथा गौओंके कहे हुए इस वचनको मेरे मुखसे सुनिये—॥ ३९॥ भगवान् ब्रह्मा तथा द्युलोकमें स्थित हुई आकाशगामिनी गौओंने आपको यह संदेश दिया है कि 'हम आपके गोसंरक्षण आदि दिव्य कर्मोंसे बहुत संतुष्ट हैं॥ ४०॥ आपने जो गौओंकी रक्षा की है, उससे इस महान् गोलोकका संरक्षण हुआ है; क्योंकि अब हम अपने साँड़ों और संतानोंके साथ दिनोंदिन बढ़ रही हैं'॥ ४१॥

कर्षकान् पुङ्गवैर्वाह्यैर्मेध्येन हविषा सुरान्।
श्रियं शकृत्प्रवृत्तेन तर्पयिष्याम कामदाः॥ ४२

तदस्माकं गुरुस्त्वं हि प्राणदश्च महाबलः।
अद्यप्रभृति नो राजा त्वमिन्द्रो वै भव प्रभो॥ ४३

तस्मात् त्वं काञ्चनैः पूर्णैर्दिव्यस्य पयसो घटैः।
एभिरद्याभिषिञ्चस्व मया हस्तावनामितैः॥ ४४

अहं किलेन्द्रो देवानां त्वं गवामिन्द्रतां गतः।
गोविन्द इति लोकास्त्वां स्तोष्यन्ति भुवि शाश्वतम्॥ ४५

ममोपरि यथेन्द्रस्त्वं स्थापितो गोभिरीश्वरः।
उपेन्द्र इति कृष्ण त्वां गास्यन्ति दिवि देवताः॥ ४६

ये चेमे वार्षिका मासाश्चत्वारो विहिता मम।
एषामर्द्धं प्रयच्छामि शरत्कालं तु पश्चिमम्॥ ४७

अद्यप्रभृति मासौ द्वौ ज्ञास्यन्ति मम मानवाः।
वर्षार्द्धे च ध्वजो मह्यं ततः पूजामवाप्स्यसि।
ममाम्बुप्रभवं दर्पं तदा त्यक्ष्यन्ति बर्हिणः॥ ४८

अल्पवाचो गतमदा ये चान्ये मेघनादिनः।
शान्तिं सर्वे गमिष्यन्ति मम कालविचारिणः॥ ४९

त्रिशङ्क्वगस्त्यचरितामाशां च प्रचरिष्यति।
सहस्त्ररश्मिरादित्यस्तापयन् स्वेन तेजसा॥ ५०

ततः शरदि युक्तायां मौनकामेषु बर्हिषु।
याचमाने खगे तोयं विप्लुतेषु प्लवेषु च॥ ५१

हंससारसपूर्णेषु नदीनां पुलिनेषु च।
मत्तक्रौञ्चप्रणादेषु प्रमत्तवृषभेषु च॥ ५२

गोषु चैव प्रहृष्टासु क्षरन्तीषु पयो बहु।
निवृत्तेषु च मेघेषु निर्यात्य जगतो जलम्॥ ५३

'हम गौएँ सम्पूर्ण कामनाओंको देनेवाली हैं। अब हल या गाड़ीमें जोतने योग्य बलिष्ठ बैल देकर हम किसानोंको संतुष्ट करेंगी। दूध-घीके द्वारा पवित्र हविष्य प्रस्तुत करके देवताओंकी तृप्ति करेंगी और गोबर देकर साक्षात् श्रीदेवीको संतुष्ट करती रहेंगी॥ ४२॥ प्रभो! आप महान् बलशाली प्रभु हमारा परित्राण करनेके कारण हमारे गुरुरूप हैं, अतः आजसे आप हम गौओंके राजा इन्द्र हो जायँ'॥ ४३॥ अतः (गौओंके इस अनुरोधके अनुसार) मेरे द्वारा हाथपर रखकर प्रस्तुत किये गये इन दिव्य जलसे भरे हुए सोनेके कलशोंद्वारा आप अपना अभिषेक करें॥ ४४॥ मैं देवताओंका इन्द्र हूँ और आप गौओंके इन्द्र हो गये! आजसे इस भूतलपर सब लोग आप सनातन प्रभुको 'गोविन्द' कहकर आपका स्तवन करेंगे॥ ४५॥ श्रीकृष्ण! गौओंने आप परमेश्वरको जो मेरे ऊपर इन्द्र बनाकर प्रतिष्ठित किया है, उसके अनुसार देवतालोग आपको 'उपेन्द्र' नाम देकर द्युलोकमें आपकी कीर्तिका गान करेंगे॥ ४६॥ मेरी आराधनाके लिये जो ये वर्षाके चार महीने विहित हुए हैं, इनका पिछला आधा भाग, जिसे शरत्काल कहते हैं, मैं आपको दे रहा हूँ॥ ४७॥ सब मनुष्य आजसे 'श्रावण और भाद्रपद' इन दो ही महीनोंको मेरे लिये नियत मानेंगे। इनके साथ वर्षाका आधा भाग व्यतीत हो जानेपर इन्द्रव्रतकी समाप्तिके चिह्नभूत मेरे ध्वजकी स्थापना होगी। उसके बाद आपकी पूजा होने लगेगी। उस समय मोर मेरे द्वारा बरसाये गये जलसे उत्पन्न हुए मदको त्याग देंगे॥ ४८॥ उनकी बोली कम हो जायगी और उनका सारा मद उतर जायगा। मेघोंको देखकर गर्जना करनेवाले जो दूसरे प्राणी हैं, वे सब भी मेरे समयका विचार करके शान्ति (मौन) धारण कर लेंगे॥ ४९॥ वर्षामें ही सहस्त्र किरणोंवाले सूर्यदेव अपने तेजसे जगत्को ताप देते हुए 'त्रिशङ्कु' और 'अगस्त्य-मुनि' के द्वारा उपभोगमें लायी हुई दक्षिण दिशामें संचार करेंगे॥ ५०॥ तदनन्तर जब शरद्-ऋतुका योग प्राप्त होगा, मोर मौन रहनेकी इच्छा करेंगे, पपीहे जलकी याचना करने लगेंगे, नदियोंमें नाव चलना बंद हो जायगा (अर्थात् नदियोंमें जलकी बाढ़ नहीं रह जायगी), सरिताओंके तट हंसों और सारसोंसे भरे रहेंगे, मदमत्त क्रौञ्च पक्षी वहाँ कलरव करते होंगे, साँड़ मतवाले होकर घूमेंगे, गौएँ हर्षमें भरकर बहुत दूध देंगी, संसारके लिये जलकी वर्षा करके बादल विलीन हो जायँगे॥ ५१—५३॥

आकाशे शस्त्रसंकाशे हंसेषु च चरत्सु च।
जातपद्मेषु तोयेषु वापीषु च सरस्सु च॥ ५४

तडागेषु च कान्तेषु तोयेषु विमलेषु च।
कलमावनताग्रासु कृष्णकेदारपङ्क्तिषु॥ ५५

मध्यस्थं सलिलारम्भं कुर्वन्तीषु नदीषु च।
सुसस्यायां च सीमायां मनोहर्यां मुनेरपि॥ ५६

पृथिव्यां पृथुराष्ट्रायां रम्यायां वर्षसंक्षये।
श्रीमत्सु पंक्तिमार्गेषु फलवत्सु तृणेषु च।
इक्षुमत्सु च देशेषु प्रवृत्तेषु मखेषु च॥ ५७

ततः प्रवर्त्स्यते पुण्या शरत् सुप्तोत्थिते त्वयि।
लोकेऽस्मिन् कृष्ण निखिले यथैव त्रिदिवे तथा॥ ५८

नरास्त्वां चैव मां चैव ध्वजाकारासु यष्टिषु।
महेन्द्रं चाप्युपेन्द्रं च महयन्ति महीतले॥ ५९

ये चावयोः स्थिरे वृत्ते महेन्द्रोपेन्द्रसंज्ञिते।
मानवाः प्रणमिष्यन्ति तेषां नास्त्यनयागमः॥ ६०

ततः शक्रस्तु तान् गृह्य घटान् दिव्यपयोधरान्।
अभिषेकेण गोविन्दं योजयामास योगवित्॥ ६१

दृष्ट्वा तमभिषिक्तं तु गावस्ताः सह यूथपैः।
स्तनैः प्रस्रवयुक्तैश्च सिषिचुः कृष्णमव्ययम्॥ ६२

मेघाश्च दिवि युक्ताभिः सामृताभिः समन्ततः।
सिषिचुस्तोयधाराभिरभिषिच्य तमव्ययम्॥ ६३

वनस्पतीनां सर्वेषां सुस्रावेन्दुनिभं पयः।
ववर्षुः पुष्पवर्षं च नेदुस्तूर्याणि चाम्बरे॥ ६४

आकाश शस्त्रोंकी भाँति चमक उठेगा—निर्मल हो जायगा, हंस सब ओर विचरने लगेंगे, बावड़ी और सरोवरोंके जलोंमें कमल उत्पन्न हो जायँगे, (उनके खिलनेसे) तड़ागोंकी शोभा बढ़ जायगी—वे कमनीय हो उठेंगे, सभी जलाशयोंके जल निर्मल हो जायँगे, खेतोंकी श्रेणीबद्ध काली-काली क्यारियोंमें धानोंकी पकी बालें अग्रभागकी ओरसे लटकती होंगी, नदियाँ अपने जलका बहाव बीचमें कर लेंगी, व्रजों अथवा गाँवोंकी सीमाएँ (खेतोंकी भूमि) सुन्दर सस्यों (अनाजों)-से सम्पन्न हो मुनियोंके भी मनको मोह लेनेवाली हो जायँगी, वर्षा बीत जानेपर जब बहुसंख्यक राष्ट्रोंसे युक्त पृथ्वी रमणीय दिखायी देने लगेगी, पंक्तिबद्ध मार्ग शोभायमान हो जायँगे, तृण-बेलों तथा ओषधियोंमें फल लग जायँगे, स्थान-स्थानपर ईंखकी खेती लहराती दिखायी देगी, (आग्रायण और वाजपेय आदि) यज्ञ आरम्भ होने लगेंगे तथा आप (भगवान् विष्णु) जब सोकर जाग उठेंगे, उस समय पुण्यमयी शरद्-ऋतुकी प्रवृत्ति होगी। श्रीकृष्ण! वह शरत्काल प्राप्त होनेपर स्वर्गलोककी ही भाँति इस समस्त जगत्में रहनेवाले मनुष्य भी भूतलपर ध्वजाकार डंडोंमें मुझ महेन्द्रकी तथा आप उपेन्द्रकी पूजा करेंगे॥ ५४—५९॥ जो मानव हम दोनोंसे सम्बन्ध रखनेवाले इस सनातन आचार (महेन्द्रोपेन्द्रमख नामक उत्सव)-में हमें प्रणाम करेंगे, उन्हें कभी अनीतिका सामना नहीं करना पड़ेगा॥ ६०॥ तदनन्तर योगवेत्ता इन्द्रने दिव्य (मन्दाकिनीका) जल धारण करनेवाले उन कलशोंको हाथमें लेकर भगवान् श्रीकृष्णका 'गोविन्द (गौओंके इन्द्र)'-पदपर अभिषेक किया॥ ६१॥ (इन्द्रद्वारा) उनका अभिषेक हुआ देख यूथपतियों (साँड़ों)-सहित उन दिव्य गौओंने भी दूधकी धारा बहाते हुए अपने थनोंद्वारा अविनाशी श्रीकृष्णका अभिषेचन किया॥ ६२॥ इसके बाद मेघोंने भी आकाशमें छोड़ी हुई अमृतयुक्त जलधाराओंद्वारा श्रीकृष्णको सब ओरसे नहलाकर उन अविनाशी ईश्वरका अभिषेक-कर्म सम्पन्न किया॥ ६३॥ तदनन्तर सभी वनस्पतियोंकी डालियोंसे चन्द्रमाके समान श्वेत दुग्ध टपकने लगा (इस तरह उन वनस्पतियोंने भी भगवान्का अभिषेक किया)। देवताओंने फूलोंकी वर्षा की तथा आकाशमें दिव्य बाजे अपने-आप बज उठे॥ ६४॥

अस्तुवन् मुनयः सर्वे वाग्भिर्मन्त्रपरायणाः।
एकार्णवे विविक्तं च दधार वसुधा वपुः॥ ६५

प्रसादं सागरा जग्मुर्ववुर्वाता जगद्धिताः।
मार्गस्थोऽपि बभौ भानुश्चन्द्रो नक्षत्रसंयुतः॥ ६६

ईतयः प्रशमं जग्मुर्निर्वैररचना नृपाः।
प्रवालपत्रशबलाः पुष्पवन्तश्च पादपाः॥ ६७

मदं प्रसुस्त्रुवुर्नागा यातास्तोषं वने मृगाः।
अलंकृता गात्ररुहैर्धातुभिर्भान्ति पर्वताः॥ ६८

देवलोकोपमो लोकस्तृप्तोऽमृतरसैरिव।
आसीत् कृष्णाभिषेको हि दिव्यस्वर्गरसोक्षितः॥ ६९

अभिषिक्तं तु तं गोभिः शक्रो गोविन्दमव्ययम्।
दिव्यमाल्याम्बरधरं देवदेवोऽब्रवीदिदम्॥ ७०

एष ते प्रथमः कृष्ण नियोगो गोषु यः कृतः।
श्रूयतामपरं कृष्ण ममागमनकारणम्॥ ७१

क्षिप्रं प्रसाध्यतां कंसः केशी च तुरगाधमः।
अरिष्टश्च मदाविष्टो राजराज्यं ततः कुरु॥ ७२

पितृष्वसरि जातस्ते ममांशोऽहमिव स्थितः।
स ते रक्ष्यश्च मान्यश्च सख्ये च विनियुज्यताम्॥ ७३

त्वया ह्यनुगृहीतः स तव वृत्तानुवर्तकः।
त्वद्वशे वर्तमानश्च प्राप्स्यते विपुलं यशः॥ ७४

भारतस्य च वंशस्य स वरिष्ठो धनुर्धरः।
भविष्यत्यनुरूपश्च त्वदृते न च रंस्यते॥ ७५

भारतं त्वयि चायत्तं तस्मिंश्च पुरुषोत्तमे।
उभाभ्यामपि संयोगे यास्यन्ति निधनं नृपाः॥ ७६

तत्पश्चात् सभी मन्त्रपरायण मुनियोंने भगवान् श्रीकृष्णका स्तवन किया। पृथ्वीने अपने उस स्वरूपको धारण किया, जो एकार्णवसे पृथक् होनेपर उसे प्राप्त हुआ था॥ ६५॥ समस्त समुद्रोंके जल प्रसन्न (स्वच्छ—निर्मल) हो गये। वायु जगत्के लिये हितकारक होकर बहने लगी। सूर्यदेव अपने समुचित मार्गपर स्थित रहकर प्रकाशित होने लगे। चन्द्रमा नक्षत्रोंसे संयुक्त होकर सुशोभित होने लगे॥ ६६॥ अतिवृष्टि आदि ईतियाँ शान्त हो गयीं। राजाओंके सभी कार्य वैरभावसे रहित होने लगे। वृक्ष फूलोंसे भर गये और नूतन पल्लवों तथा हरे-हरे पत्तोंसे विचित्र शोभा धारण करने लगे॥ ६७॥ हाथी मद बहाने लगे। वनमें मृग आदि पशु संतोष प्राप्त करने लगे। पर्वत अपने ऊपर उगे हुए वृक्षों तथा विभिन्न धातुओंसे शोभा पाने लगे॥ ६८॥ सम्पूर्ण जगत् देवलोकके समान सुखी हो गया, मानो उसे अमृत-रससे तृप्त कर दिया गया हो। इस प्रकार दिव्य स्वर्गीय रस (जल)-से सिक्त होकर श्रीकृष्णका वह अभिषेक-कर्म सम्पन्न हुआ॥ ६९॥ गौओंद्वारा अभिषिक्त होकर दिव्य माला और दिव्य वस्त्र धारण करनेवाले अविनाशी गोविन्दसे देवदेव इन्द्रने इस प्रकार कहा—॥ ७०॥ 'श्रीकृष्ण! यह मैंने आपको अपने आगमनका प्रथम हेतु बताया है, जिसके अनुसार गौओंकी आज्ञाका पालन किया गया है। अब मेरे आनेका जो दूसरा कारण है, उसे भी सुन लीजिये॥ ७१॥ मुझे यह कहना है कि आप शीघ्र ही कंस तथा अश्वोंमें अधम केशीका भी वध कर डालिये। मदमत्त अरिष्टासुरको यमलोक भेज दीजिये। तदनन्तर राजाओंपर शासन कीजिये॥ ७२॥ आपकी बुआ कुन्तीके गर्भसे मेरा अंश उत्पन्न हुआ है, जो मेरे ही समान है। आप उसकी रक्षा करें और उसे आदर दें तथा अपना सखा बना लें॥ ७३॥ आपसे अनुगृहीत होकर वह आपके बताये हुए आचारका पालन करेगा और सदा आपकी आज्ञाके अधीन रहकर भूमण्डलमें महान् यश प्राप्त कर लेगा॥ ७४॥ वह भरतवंशका सर्वश्रेष्ठ धनुर्धर होगा। आपकी इच्छाके अनुरूप बनकर रहेगा और आपके बिना कभी कहीं भी उसका मन नहीं लगेगा॥ ७५॥ आप और उस पुरुषप्रवर कुन्तीकुमारपर ही महाभारत-युद्ध अवलम्बित होगा। आप दोनोंका संयोग प्राप्त होनेपर राजालोग युद्धमें मारे जायँगे'॥ ७६॥

प्रतिज्ञातं मया कृष्ण ऋषिमध्ये सुरेषु च।
मया पुत्रोऽर्जुनो नाम सृष्टः कुन्त्यां कुलोद्वहः॥ ७७

सोऽस्त्राणां पारतत्त्वज्ञः श्रेष्ठश्चापविकर्षणे।
तं प्रवेक्ष्यन्ति वै सर्वे राजानः शस्त्रयोधिनः॥ ७८

अक्षौहिणीस्तु शूराणां राज्ञां संग्रामशालिनाम्।
स एकः क्षत्रधर्मेण योजयिष्यति मृत्युना॥ ७९

तस्यास्त्रचरितं मार्गं धनुषो लाघवेन च।
नानुयास्यन्ति राजानो देवा वा त्वां विना प्रभो॥ ८०

स ते बन्धुः सहायश्च संग्रामेषु भविष्यति।
यस्य योगो विधातव्यस्त्वया गोविन्द मत्कृते॥ ८१

द्रष्टव्यश्च यथाहं वै त्वया मान्यश्च नित्यशः।
ज्ञाता त्वमेव लोकानामर्जुनस्य च नित्यशः॥ ८२

त्वया च नित्यं संरक्ष्य आहवेषु महत्सु सः।
रक्षितस्य त्वया तस्य न मृत्युः प्रभविष्यति॥ ८३

अर्जुनं विद्धि मां कृष्ण मां चैवात्मानमात्मना।
आत्मा तेऽहं यथा शश्वत् तथैव तव सोऽर्जुनः॥ ८४

त्वया लोकानिमाञ्जित्वा बलेर्हस्तात् त्रिभिः क्रमैः।
देवतानां कृतो राजा पुरा ज्येष्ठक्रमादहम्॥ ८५

त्वां च सत्यमयं ज्ञात्वा सत्येष्टं सत्यविक्रमम्।
सत्येनोपेत्य देवा वै योजयन्ति रिपुक्षये॥ ८६

सोऽर्जुनो नाम मे पुत्रः पितुस्ते भगिनीसुतः।
इह सौहार्दमायातु भूत्वा सहचरस्तव॥ ८७

तस्य ते युध्यतः कृष्ण स्वस्थानेऽपि गृहेऽपि वा।
वोढव्या पुङ्गवेनेव धूः सदा रणमूर्धनि॥ ८८

'श्रीकृष्ण! मैंने ऋषियों तथा देवताओंके बीचमें इस बातका विज्ञापन कर दिया है कि कुन्तीके गर्भसे मेरे द्वारा जिस कुलदीपक पुत्रकी उत्पत्ति हुई है, उसका नाम अर्जुन है॥ ७७॥ वह अस्त्रोंकी विद्यामें पारंगत है। धनुषको खींचनेमें सबसे श्रेष्ठ है। शस्त्रोंद्वारा युद्ध करनेवाले सब नरेश उसीमें विलीन हो जायँगे॥ ७८॥ संग्राममें शोभा पानेवाले शूरवीर राजाओंकी कई अक्षौहिणी सेनाओंको वह अकेला ही क्षत्रियधर्मके अनुसार युद्ध करके मौतके घाट उतार देगा॥ ७९॥ प्रभो! आपको छोड़कर दूसरे कोई देवता अथवा भूतलके नरेश अर्जुनके अस्त्र-मार्गका अनुसरण नहीं कर सकेंगे। उसमें जो धनुष चलानेकी फुर्ती है, उसके द्वारा भी कोई उसकी समानता नहीं कर सकता॥ ८०॥ गोविन्द! युद्धके अवसरोंपर अर्जुन आपका सच्चा बन्धु एवं सहायक होगा। मेरे लिये अथवा मेरे कहनेसे आपको उसे अध्यात्मविद्याका उपदेश अवश्य करना चाहिये॥ ८१॥ आप अर्जुनको उसी तरह अपनापनकी दृष्टिसे देखें, जैसा मुझे देखा करते हैं। प्रतिदिन उसका आदर करते रहें। आप ही सम्पूर्ण लोकोंके ज्ञाता हैं, अतः अर्जुनका भी सदा ध्यान रखें॥ ८२॥ बड़े-बड़े युद्धके अवसरोंपर भी आपको नित्यप्रति उसकी रक्षा करनी चाहिये। आपसे सुरक्षित हुए अर्जुनपर मृत्युका वश नहीं चल सकेगा॥ ८३॥ श्रीकृष्ण! आप अर्जुनको मेरा ही स्वरूप समझें और मुझे भी हृदयसे अपना आत्मा स्वीकार करें। जैसे मैं सदा ही आपका आत्मा हूँ, उसी प्रकार वह अर्जुन भी आपका आत्मा ही है॥ ८४॥ पूर्वकालमें आपने तीन पगोंद्वारा इन तीनों लोकोंको नापकर बलिके हाथसे अपने अधिकारमें ले लिया और मुझे ही अपना बड़ा भाई मानकर देवताओंका राजा बना दिया॥ ८५॥ आप सत्यमय हैं, सत्यरूपी यज्ञद्वारा आपका यजन हुआ है तथा आप सत्यपराक्रमी हैं, ऐसा जानकर देवतालोग सत्यभावसे ही आपकी शरणमें आते और आपको शत्रु-संहारके कार्यमें लगाते हैं॥ ८६॥ अर्जुन नामसे प्रसिद्ध मेरा पुत्र आपके पिताकी बहिन (बुआ)-का बेटा है। वह इस जगत्‌में आपका सहचर होकर आपके साथ पूर्ण सौहार्द स्थापित करे॥ ८७॥ श्रीकृष्ण! वह युद्ध कर रहा हो, अपने स्थानपर हो अथवा घरमें बैठा हो, आपको बलिष्ठ वृषभकी भाँति सदा उसका भार सँभालना चाहिये। युद्धके मुहानेपर तो सदा ही आपको उसकी रक्षाका बोझ उठाना है'॥ ८८॥

कंसे विनिहते कृष्ण त्वया भाव्यर्थदर्शिना।
अभितस्तन्महद् युद्धं भविष्यति महीक्षिताम्॥ ८९

तत्र तेषां नृवीराणामतिमानुषकर्मणाम्।
विजयस्यार्जुनो भोक्ता यशसा त्वं च योक्ष्यसे॥ ९०

एतन्मे कृष्ण कार्त्स्न्येन कर्तुमर्हसि भाषितम्।
यद्यहं ते सुराश्चैव सत्यं च प्रियमच्युत॥ ९१

शक्रस्य वचनं श्रुत्वा कृष्णो गोविन्दतां गतः।
प्रीतेन मनसा युक्तः प्रतिवाक्यं जगाद ह॥ ९२

प्रीतोऽस्मि दर्शनाद् देव तव शक्र शचीपते।
यत् त्वयाभिहितं चेदं न किंचित् परिहास्यते॥ ९३

जानामि भवतो भावं जानाम्यर्जुनसम्भवम्।
जाने पितृष्वसारं च पाण्डोर्दत्तां महात्मनः॥ ९४

युधिष्ठिरं च जानामि कुमारं धर्मनिर्मितम्।
भीमसेनं च जानामि वायोः संतानजं सुतम्॥ ९५

अश्विभ्यां साधु जानामि सृष्टं पुत्रद्वयं शुभम्।
नकुलं सहदेवं च माद्रीकुक्षिगतावुभौ॥ ९६

कानीनं चापि जानामि सवितुः प्रथमं सुतम्।
पितृष्वसरि कर्णं वै प्रसूतं सूततां गतम्॥ ९७

धार्तराष्ट्राश्च मे सर्वे विदिता युद्धकाङ्क्षिणः।
पाण्डोरुपरमं चैव शापाशनिनिपातजम्॥ ९८

तद् गच्छ त्रिदिवं शक्र सुखाय त्रिदिवौकसाम्।
नार्जुनस्य रिपुः कश्चिन्ममाग्रे प्रभविष्यति॥ ९९

अर्जुनार्थे च तान् सर्वान् पाण्डवानक्षतान् युधि।
कुन्त्या निर्यातयिष्यामि निवृत्ते भारते मृधे॥ १००

'श्रीकृष्ण! आप तो भविष्यमें होनेवाली घटनाओंको भी प्रत्यक्षकी भाँति देखनेवाले हैं (अतः आपसे कुछ भी अज्ञात नहीं है)। जब कंस आपके द्वारा मार डाला जायगा, तब सब ओरसे आये हुए राजाओंका वह महान् युद्ध (महाभारत) होगा॥ ८९॥ उस युद्धमें अतिमानव (अलौकिक) कर्म करनेवाले उन नरवीर राजाओंको जीतकर अर्जुन विजय-सुखका उपभोग करेगा और आप महान् सुयशके भागी होंगे॥ ९०॥ अपनी महिमासे कभी च्युत न होनेवाले श्रीकृष्ण! यदि मैं, सम्पूर्ण देवता तथा सत्य आपको प्रिय हैं तो मैंने जो कुछ यहाँ कहा है, वह सब कार्य आपको पूर्ण करना चाहिये'॥ ९१॥ इन्द्रका यह वचन सुनकर 'गोविन्द'-भावको प्राप्त हुए श्रीकृष्णने प्रसन्नमनसे युक्त होकर इस प्रकार उत्तर दिया—॥ ९२॥ 'देव! शचीवल्लभ शक्र! मैं तो आपके दर्शनसे ही प्रसन्न हो गया हूँ। आपने यह जो कुछ कहा है, वह सब पूरा किया जायगा; कुछ भी छोड़ा नहीं जायगा॥ ९३॥ आपका मेरे प्रति जो भाव है, उसे मैं जानता हूँ। मुझे अर्जुनके जन्मका भी पता है। महात्मा पाण्डुके साथ जिनका विवाह हुआ, उन अपनी बुआ कुन्तीको भी मैं अच्छी तरह जानता हूँ॥ ९४॥ धर्मके द्वारा उत्पन्न हुए कुन्तीकुमार युधिष्ठिरसे भी मैं परिचित हूँ। वायुकी संतान होकर उत्पन्न हुए अपनी बुआके बेटे भीमसेनको भी मैं जानता हूँ॥ ९५॥ दोनों अश्विनीकुमारोंने जिन दो शुभलक्षण पुत्रोंकी सृष्टि की है तथा जो माद्रीके गर्भमें रह चुके हैं, उन दोनों भाई नकुल और सहदेवके विषयमें भी मैं भलीभाँति जानकारी रखता हूँ॥ ९६॥ बुआ कुन्तीके गर्भसे सूर्यदेवका संयोग पाकर कन्यावस्थामें जो प्रथम पुत्र उत्पन्न हुआ था तथा जन्म लेनेके बाद जो सूत-भावको प्राप्त हो गया है, उस कर्णसे भी मैं अपरिचित नहीं हूँ॥ ९७॥ युद्धकी इच्छा रखनेवाले समस्त धृतराष्ट्र-पुत्रोंको भी मैं जानता हूँ। शापरूपी वज्रपातके कारण राजा पाण्डुका जो निधन हुआ है, वह भी मुझसे छिपा नहीं है॥ ९८॥ अतः देवराज इन्द्र! आप देवताओंको सुख देनेके लिये स्वर्गलोकको पधारिये। मेरे सामने अर्जुनका कोई भी शत्रु उसे परास्त नहीं कर सकेगा॥ ९९॥ अर्जुनके लिये ही मैं महाभारत-युद्ध समाप्त होनेपर उन समस्त पाण्डवोंको कुन्तीकी सेवामें सकुशल लौटा दूँगा'॥ १००॥

यच्च वक्ष्यति मां शक्र तनूजस्तव सोऽर्जुनः।
भृत्यवत् तत् करिष्यामि तव स्नेहेन यन्त्रितः॥ १०१
सत्यसंधस्य तच्छ्रुत्वा प्रियं प्रीतस्य भाषितम्।
कृष्णस्य साक्षात् त्रिदिवं जगाम त्रिदशेश्वरः॥ १०२

'देवेन्द्र! आपका पुत्र अर्जुन मुझसे जो कुछ कहेगा, उसे मैं आपके स्नेह-पाशसे बँधकर आज्ञाकारी सेवककी भाँति पूर्ण करूँगा'॥ १०१॥ सत्यप्रतिज्ञ श्रीकृष्णके प्रसन्नतापूर्वक कहे गये इस प्रिय वचनको सुनकर देवेश्वर इन्द्र साक्षात् स्वर्गलोकको चले गये॥ १०२॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे विष्णुपर्वणि गोविन्दाभिषेके एकोनविंशोऽध्यायः॥ १९॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत विष्णुपर्वमें गोविन्दका अभिषेकविषयक उन्नीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १९॥

विंशोऽध्यायः

श्रीकृष्णका अलौकिक चरित्र देखकर आशङ्कित हुए गोपोंका उनसे प्रश्न और श्रीकृष्णद्वारा उत्तर तथा उनकी रासलीलाका संक्षेपसे वर्णन

वैशम्पायन उवाच

गते शक्रे ततः कृष्णः पूज्यमानो व्रजालयैः।
गोवर्धनधरः श्रीमान् विवेश व्रजमेव ह॥ १

तस्य वृद्धाभिनन्दन्ति ज्ञातयश्च सहोषिताः।
धन्याः स्मोऽनुगृहीताः स्मस्त्वद्वृत्तेन नयेन च॥ २

गावो वर्षभयात् तीर्णा वयं तीर्णा महाभयात्।
तव प्रसादाद् गोविन्द देवतुल्यपराक्रम॥ ३

अमानुषाणि कर्माणि तव पश्याम गोपते।
धारणेनास्य शैलस्य विद्मस्त्वां कृष्ण दैवतम्॥ ४

कस्त्वं भवसि रुद्राणां मरुतां च महाबलः।
वसूनां वा किमर्थं च वसुदेवः पिता तव॥ ५

बलं च बाल्ये क्रीडा च जन्म चास्मासु गर्हितम्।
कृष्ण दिव्या च ते चेष्टा शङ्कितानि मनांसि नः॥ ६

किमर्थं गोपवेषेण रमसेऽस्मासु गर्हितम्।
लोकपालोपमश्चैव गास्त्वं किं परिरक्षसि॥ ७

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! देवराज इन्द्रके चले जानेपर व्रजवासियोंद्वारा पूजित एवं प्रशंसित होते हुए गोवर्धनधारी श्रीमान् कृष्णने व्रजमें ही प्रवेश किया॥ १॥ वहाँ बड़े-बूढ़े गोप और साथ रहनेवाले जाति-भाई उनका अभिनन्दन करते हुए बोले—'देवतुल्य पराक्रमी गोविन्द! हम धन्य हैं। तुमने अपने व्यवहार और नीतिसे हमलोगोंपर महान् अनुग्रह किया है। तुम्हारे प्रसादसे गौओंका वर्षाके भयसे उद्धार हुआ और हमलोग भी महान् भयसे पार हो गये॥ २-३॥ गोपते! हम तुम्हारे सभी कर्म अलौकिक देख रहे हैं। श्रीकृष्ण! इस गोवर्धन पर्वतको हाथपर धारण करनेसे हम यह अच्छी तरह समझ गये हैं कि तुम मनुष्य नहीं देवता हो॥ ४॥ तुम्हारा बल महान् है। बताओ, तुम रुद्रों, मरुद्गणों अथवा वसुओंमेंसे कौन हो? ये नन्दजी[१] तुम्हारे पिता कैसे हो गये?॥ ५॥ श्रीकृष्ण! बचपनमें ही तुममें ऐसा अलौकिक बल है, तुम्हारे खेल भी अलौकिक हैं तथा तुम्हारी सारी चेष्टा दिव्य है। परंतु हमलोगोंमें जो तुम्हारा जन्म हुआ, यही निन्दित है। (तुम्हें ऐसा निन्दित जन्म कैसे प्राप्त हुआ?) इन बातोंको सोचकर हमारे हृदय शंकित हो उठे हैं॥ ६॥ तुम किसलिये गोपवेष धारण करके हमलोगोंमें रम रहे हो। यह कार्य तो तुम्हारे लिये गर्हित है। तुम लोकपालोंके समान शक्तिशाली होकर भी यहाँ क्यों गौओंकी चरवाही और रखवाली करते हो'॥ ७॥

१. हरिवंशपर्वके ५५ वें अध्यायमें वसुदेव और नन्दको अभिन्न बताया गया है। एक ही कश्यपके दो रूप हैं वसुदेव और नन्द। अतः कहीं-कहीं नन्दके लिये भी वसुदेव नामका प्रयोग हुआ है; इसीलिये यहाँ 'वसुदेव' पदका नन्द अर्थ किया गया है।

देवो वा दानवो वा त्वं यक्षो गन्धर्व एव वा।
अस्माकं बान्धवो जातो योऽसि सोऽसि नमोऽस्तु ते॥ ८

केनचिद् यदि कार्येण वससीह यदृच्छया।
वयं तवानुगाः सर्वे भवन्तं शरणं गताः॥ ९

'तुम देवता हो या दानव? यक्ष हो अथवा गन्धर्व? जो हमारे बन्धु-बान्धवके रूपमें उत्पन्न हो? कृष्ण! तुम जो हो सो हो, तुम्हें हमारा नमस्कार है॥ ८॥ यदि किसी कार्य-विशेषसे तुम स्वेच्छापूर्वक यहाँ रह रहे हो तो रहो। हम सब लोग तुम्हारे अनुगामी सेवक हैं और तुम्हारी शरणमें आये हैं'॥ ९॥

वैशम्पायन उवाच

गोपानां वचनं श्रुत्वा कृष्णः पद्मदलेक्षणः।
प्रत्युवाच स्मितं कृत्वा ज्ञातीन् सर्वान् समागतान्॥ १०

मन्यन्ते मां यथा सर्वे भवन्तो भीमविक्रमम्।
तथाहं नावमन्तव्यः स्वजातीयोऽस्मि बान्धवः॥ ११

यदि त्ववश्यं श्रोतव्यं कालः सम्प्रतिपाल्यताम्।
ततो भवन्तः श्रोष्यन्ति मां च द्रक्ष्यन्ति तत्त्वतः॥ १२

यद्ययं भवतां श्लाघ्यो बान्धवो देवसप्रभः।
परिज्ञानेन किं कार्यं यद्येषोऽनुग्रहो मम॥ १३

एवमुक्तास्तु ते गोपा वसुदेवसुतेन वै।
बद्धमौना दिशः सर्वे भेजिरे पिहिताननाः॥ १४

कृष्णस्तु यौवनं दृष्ट्वा निशि चन्द्रमसो वनम्।
शारदीं च निशां रम्यां मनश्चक्रे रतिं प्रति॥ १५

स करीषाङ्गरागासु व्रजरथ्यासु वीर्यवान्।
वृषाणां जातदर्पाणां युद्धानि समयोजयत्॥ १६

गोपालांश्च बलोदग्रान् योधयामास वीर्यवान्।
वने स वीरो गाश्चैव जग्राह ग्राहवद् विभुः॥ १७

युवतीर्गोपकन्याश्च रात्रौ संकाल्य कालवित्।
कैशोरकं मानयन् वै सह ताभिर्मुमोद ह॥ १८

तास्तस्य वदनं कान्तं कान्ता गोपस्त्रियो निशि।
पिबन्ति नयनाक्षेपैर्गां गतं शशिनं यथा॥ १९

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! गोपोंकी यह बात सुनकर विकसित कमलदलके समान नेत्रवाले श्रीकृष्णने मुसकराकर उन समस्त समागत बन्धुओंको इस प्रकार उत्तर दिया—॥ १०॥ 'आप सब लोग मुझे जैसा भयानक पराक्रमी समझ रहे हैं, वैसा मानकर मेरा अनादर न करें। मैं तो आपलोगोंका सजातीय भाई-बन्धु ही हूँ॥ ११॥ यदि मेरे विषयमें आपलोगोंको यथार्थ बात अवश्य ही सुननी है तो इसके लिये उपयुक्त समयकी प्रतीक्षा करें, फिर आप मेरे विषयमें सुनेंगे और मैं वास्तवमें कैसा हूँ, यह देख और समझ सकेंगे॥ १२॥ यदि देवोपम कान्तिसे युक्त यह बालक आपलोगोंका स्पृहणीय भाई-बन्धु है तो इसके विषयमें विशेष छानबीन करनेकी क्या आवश्यकता है। यदि आप मौन ही रहें तो यह मेरे ऊपर आपका महान् अनुग्रह होगा'॥ १३॥ वसुदेवनन्दन श्रीकृष्णके ऐसा कहनेपर उन गोपोंने अपना मुँह बंद कर लिया और मौन होकर वे सब-के-सब विभिन्न दिशाओंमें चले गये॥ १४॥ इधर श्रीकृष्णने पूर्णिमाकी रातमें चन्द्रमाका यौवन (अधिक कान्तिमान् रूप), रमणीय वन तथा शरत्-कालकी सुरम्य रजनीको देखकर मनमें रमण करनेकी इच्छा की॥ १५॥ पराक्रमी श्रीकृष्णने सूखे गोबरके चूर्णका अङ्गराग-सा धारण करनेवाली व्रजकी गलियोंमें बलोन्मत्त साँड़ोंके युद्धका आयोजन किया॥ १६॥ उन बलशाली वीर भगवान् गोविन्दने बलमें बढ़े-चढ़े गोपोंमें परस्पर मल्लयुद्ध भी करवाया और वनमें घूमती हुई गौओंको ग्राहकी भाँति पकड़नेकी भी लीला की॥ १७॥ समयको पहचाननेवाले वे श्रीहरि अपनी किशोरावस्थाका आदर करते हुए युवती गोपकन्याओंको रातके समय वनमें ले गये और उन सबके साथ आमोद-प्रमोद करने लगे॥ १८॥ निशाकालमें वे कान्तिमती गोपाङ्गनाएँ प्रियतम श्रीकृष्णके कमनीय मुखका, जो भूतलपर उतरे हुए द्वितीय चन्द्रमाके समान प्रतीत होता था, अपने नेत्रोंद्वारा कटाक्षपातपूर्वक पान करने लगीं॥ १९॥

हरितालार्द्रपीतेन स कौशेयेन वाससा।
वसानो भद्रवसनं कृष्णः कान्ततरोऽभवत्॥ २०

स बद्धाङ्गदनिर्व्यूहश्चित्रया वनमालया।
शोभमानो हि गोविन्दः शोभयामास तद् व्रजम्॥ २१

नाम दामोदरेत्येवं गोपकन्यास्तदाब्रुवन्।
विचित्रं चरितं घोषे दृष्ट्वा तत् तस्य भास्वतः॥ २२

तास्तं पयोधरोत्तुङ्गैरुरोभिः समपीडयन्।
भ्रामिताक्षैश्च वदनैर्निरीक्षन्ते वराङ्गनाः॥ २३

ता वार्यमाणाः पतिभिर्मातृभिर्भ्रातृभिस्तथा।
कृष्णं गोपाङ्गना रात्रौ मृगयन्ते रतिप्रियाः॥ २४

तास्तु पङ्क्तीकृताः सर्वा रमयन्ति मनोरमम्।
गायन्त्यः कृष्णचरितं द्वन्द्वशो गोपकन्यकाः॥ २५

कृष्णलीलानुकारिण्यः कृष्णप्रणिहितेक्षणाः।
कृष्णस्य गतिगामिन्यस्तरुण्यस्ता वराङ्गनाः॥ २६

वनेषु तालहस्ताग्रैः कूजयन्त्यस्तथापराः।
चेरुर्वै चरितं तस्य कृष्णस्य व्रजयोषितः॥ २७

तास्तस्य नृत्यं गीतं च विलासस्मितवीक्षितम्।
मुदिताश्चानुकुर्वन्त्यः क्रीडन्ति व्रजयोषितः॥ २८

भावनिस्पन्दमधुरं गायन्त्यस्ता वराङ्गनाः।
व्रजं गताः सुखं चेरुर्दामोदरपरायणाः॥ २९

करीषपांसुदिग्धाङ्ग्यस्ताः कृष्णमनुवव्रिरे।
रमयन्त्यो यथा नागं सम्प्रमत्तं करेणवः॥ ३०

तमन्या भावविकचैर्नेत्रैः प्रहसिताननाः।
पिबन्त्यतृप्तवनिताः कृष्णं कृष्णमृगेक्षणाः॥ ३१

उस समय हरितालके पङ्ककी भाँति पीले रेशमी पीताम्बरसे अपने अङ्गोंको आच्छादित करनेवाले माङ्गलिक वस्त्रधारी श्रीकृष्ण और भी अधिक मनोहर प्रतीत हो रहे थे॥ २०॥ बाँहोंमें भुजबंद बाँधे और मस्तकपर मुकुट धारण किये, विचित्र वनमालासे सुशोभित गोविन्द उस व्रजकी शोभा बढ़ा रहे थे॥ २१॥ गोष्ठमें उन तेजस्वी श्रीकृष्णके विचित्र चरित्रोंको देखकर गोपकिशोरियाँ उस समय उन्हें 'दामोदर' कहकर पुकारती थीं॥ २२॥ वे सुन्दरी गोपियाँ उन्हें पीन पयोधरोंसे युक्त ऊँचे वक्ष:स्थलसे लगाकर गाढ़ आलिङ्गन करतीं और बारम्बार आँखें घुमाकर उन्हींकी ओर मुँह करके उनका रूप निहारती रहती थीं॥ २३॥ पति, पिता-माता तथा भाइयोंके मना करनेपर भी वे गोपाङ्गनाएँ रात्रिके समय श्रीकृष्णको ढूँढ़ती फिरती थीं; क्योंकि श्रीकृष्णविषयक रति उन्हें बहुत प्रिय थी॥ २४॥ वे सारी गोप-किशोरियाँ मण्डलाकार पंक्ति बनाकर खड़ी हो जातीं और उनमेंसे प्रत्येक गोपीके दोनों ओर श्रीकृष्ण विराजमान होते थे। इस प्रकार गोपी-कृष्णकी युगल-जोड़ी बनाकर वे सुन्दरियाँ श्रीकृष्णके चरित्रका गान करती हुई उन्हें आनन्द प्रदान करती थीं॥ २५॥ उनकी आँखें श्रीकृष्णकी ओर लगी रहती थीं। वे तरुण-अवस्थावाली सुन्दरियाँ श्रीकृष्णकी लीलाका अनुकरण करतीं तथा उन्हींके समान चलती थीं॥ २६॥ व्रजकी दूसरी गोपियाँ हाथोंके अग्रभागसे ताल दे-देकर श्रीकृष्णकी लीलाओंका गान करती हुई वनोंमें विचरती थीं॥ २७॥ वे व्रजाङ्गनाएँ बड़ी प्रसन्नताके साथ श्रीकृष्णके नृत्य, गीत, विलास, मुसकराहट तथा चञ्चल चितवनकी नकल करती हुई भाँति-भाँतिकी क्रीडाएँ करती रहती थीं॥ २८॥ वे गोपसुन्दरियाँ व्रजमण्डल (वन आदि)-में जाकर ऐसे गीत गाती थीं, जिनसे उनका श्रीकृष्णविषयक प्रगाढ़ अनुराग स्पष्टतः प्रकट होने लगता था और इसीसे उन गीतोंका माधुर्य बढ़ जाता था। इस प्रकार दामोदरके ही चिन्तनमें तत्पर रहकर वे वहाँ सुखपूर्वक विचरती थीं॥ २९॥ उनके अङ्गोंमें अङ्गरागकी जगह गोबरके चूर्ण लगे होते थे। वे श्रीकृष्णको आनन्द प्रदान करती हुई उन्हें उसी तरह घेरे रहती थीं, जैसे हथिनियाँ मदमत्त गजराजको॥ ३०॥ कृष्णसार मृगके सदृश नेत्रोंवाली कितनी ही अन्य गोप-वनिताएँ अनुरागसे उत्फुल्ल नेत्रोंद्वारा प्यारे श्यामसुन्दरकी रूपसुधाका पान किया करती थीं, किंतु उससे तृप्त नहीं होती थीं। उनके मुखपर सदा ही हँसी खेलती रहती थी॥ ३१॥

मुखमस्याब्जसंकाशं तृषिता गोपकन्यकाः।
रत्यन्तरगता रात्रौ पिबन्ति रसलालसाः॥ ३२

हा हेति कुर्वतस्तस्य प्रहृष्टास्ता वराङ्गनाः।
जगृहुर्निस्सृतां वाणीं नाम्ना दामोदरेरिताम्॥ ३३

तासां ग्रथितसीमन्ता रतिं नीत्वाऽऽकुलीकृताः।
चारु विस्रंसिरे केशाः कुचाग्रे गोपयोषिताम्॥ ३४

एवं स कृष्णो गोपीनां चक्रवालैरलंकृतः।
शारदीषु सचन्द्रासु निशासु मुमुदे सुखी॥ ३५

वे गोपकन्याएँ श्रीकृष्ण-रसके लिये प्यासी रहती थीं। उनके मनमें उस रसके आस्वादनके लिये निरन्तर लालसा बनी रहती थी; अतः वे रात्रिके समय रासलीलामें सम्मिलित हो उनके मुखारविन्दकी मकरन्द-सुधाका पान करती थीं॥ ३२॥ जब वे 'हा राधे! हा व्रजगोपियो!' इत्यादि कहकर उन्हें पुकारते, उस समय उनका आह्वान सुनकर वे गोप-सुन्दरियाँ हर्षसे खिल उठती थीं। दामोदरके मुखसे निकली हुई उस मधुर वाणीको वे सादर ग्रहण करती थीं॥ ३३॥ उनके गुँथे हुए सीमन्तवाले केश रासलीलामें पहुँचकर आकुलताकी अवस्थामें खुल जाते और गोपियोंके कुचाग्रभागपर बिखर जाते थे। उस समय भी वे मनोहर ही लगते थे॥ ३४॥ इस प्रकार शरत्कालकी चाँदनी रातोंमें गोपीमण्डलसे अलंकृत हुए श्रीकृष्ण सुखपूर्वक रासक्रीडा करके आनन्दमग्न हो जाते थे॥ ३५॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे विष्णुपर्वणि रासक्रीडायां विंशोऽध्यायः॥ २०॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत विष्णुपर्वमें रासक्रीडाविषयक बीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ २०॥

एकविंशोऽध्यायः

अरिष्टासुरका वध

वैशम्पायन उवाच

प्रदोषार्द्धे कदाचित् तु कृष्णे रतिपरायणे।
त्रासयन् समदो गोष्ठमरिष्टः प्रत्यदृश्यत॥ १

निर्वाणाङ्गारमेघाभस्तीक्ष्णशृङ्गोऽर्कलोचनः।
क्षुरतीक्ष्णाग्रचरणः कालः काल इवापरः॥ २

लेलिहानः सनिष्पेषं जिह्वयोष्ठौ पुनः पुनः।
गर्विताविद्धलाङ्गूलः कठिनस्कन्धबन्धनः॥ ३

ककुदोदग्रनिर्माणः प्रमाणाद् दुरतिक्रमः।
शकृन्मूत्रोपलिप्ताङ्गो गवामुद्वेजनो भृशम्॥ ४

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! एक दिन आधा प्रदोष (अर्थात् डेढ़ घंटा रात) बीतनेपर जब भगवान् श्रीकृष्ण रासक्रीडामें संलग्न थे, उसी समय सारे व्रजको त्रास देता हुआ मतवाला अरिष्टासुर वहाँ दिखायी दिया॥ १॥ वह बुझे हुए अङ्गार (कोयले) तथा मेघोंके समान काला था, उसके सींग तीखे थे और आँखें सूर्यके समान तेजस्विनी दिखायी देती थीं। उसके चरणोंके अग्रभाग अथवा खुर छुरेके समान तेज थे। वह काला दैत्य दूसरे कालके समान जान पड़ता था॥ २॥ वह दाँतसे ओठोंको चबाता और जिह्वासे उन्हें बारम्बार चाटता था। उसने बलके घमंडमें आकर पूँछ उठा रखी थी तथा उसके कंधेका कुब्बड़ बहुत ही कठोर था॥ ३॥ वह अपने कंधेके कुब्बड़से चोट करके बने-बनाये महल आदिको धराशायी कर देता था। उसकी ऊँचाई इतनी थी कि उसे लाँघकर जाना किसीके लिये भी बहुत कठिन था। उसके पिछले अङ्ग गोबर और मूतसे लिप्त हो रहे थे तथा वह गौओंको अत्यन्त उद्वेगमें डाल देता था॥ ४॥

महाकटिः स्थूलमुखो दृढजानुर्महोदरः।
विषाणावल्गितगतिर्लम्बता कण्ठचर्मणा॥ ५

गवारोहेषु चपलस्तरुघाताङ्किताननः।
युद्धसज्जविषाणाग्रो द्विषद्वृषभसूदनः॥ ६

अरिष्टो नाम हि गवामरिष्टो दारुणाकृतिः।
दैत्यो वृषभरूपेण गोष्ठान् विपरिधावति॥ ७

पातयानो गवां गर्भान् दृप्तो गच्छत्यनार्तवम्।
भजमानश्च चपलो गृष्टीः सम्प्रचचार ह॥ ८

शृङ्गप्रहरणो रौद्रः प्रहरन् गोषु दुर्मदः।
गोष्ठेषु न रतिं लेभे विना युद्धेन गोवृषः॥ ९

कस्यचित् त्वथ कालस्य स वृषः केशवाग्रतः।
आजगाम बलोदग्रो वैवस्वतवशे स्थितः॥ १०

स तत्र गास्तु प्रसभं बाधमानो मदोत्कटः।
चकार निर्वृषं गोष्ठं निर्वत्सशिशुपुङ्गवम्॥ ११

एतस्मिन्नेव काले तु गावः कृष्णसमीपगाः।
त्रासयामास दुष्टात्मा वैवस्वतवशे स्थितः॥ १२

सेन्द्राशनिरिवाम्भोदो नर्दमानो महासुरः।
तालशब्देन तं कृष्णः सिंहनादैश्च मोहयन्॥ १३

अभ्यधावत गोविन्दो दैत्यं वृषभरूपिणम्।
स कृष्णं गोवृषो दृष्ट्वा हृष्टलाङ्गूललोचनः॥ १४

रोषितस्तालशब्देन युद्धाकाङ्क्षी ननर्द ह।
तमापतन्तं दुर्वृत्तं दृष्ट्वा वृषभरूपिणम्।
तस्मात् स्थानान्न व्यचलत् कृष्णो गिरिरिवाचलः॥ १५

स कुक्षौ वृषभो दृष्टिं प्रणिधाय धृताननः।
कृष्णस्य निधनाकाङ्क्षी तूर्णमभ्युत्पपात ह॥ १६

उसका कटिभाग विशाल था और मुख स्थूल था, दोनों घुटने सुदृढ़ थे और पेट बहुत बड़ा था। उसके गलेका कंबल लटक रहा था और वह सींग नीचे किये उछलता-कूदता आगे बढ़ रहा था॥ ५॥ वह गौओंके पिछले भागपर चढ़नेके लिये चञ्चल हो रहा था। वृक्षोंसे टक्कर लेनेके कारण उसके मस्तकमें कई जगह घट्ठे पड़ गये थे। वह अपने सींगोंके अग्रभागको सदा जूझनेके लिये उद्यत रखता था तथा विपक्षी बैलोंको मार डालता था॥ ६॥ भयानक आकारवाला वह अरिष्टासुर गौओंके लिये अरिष्टकारक ग्रह बन गया था। वह दैत्य बैलके रूपमें आकर सभी गोठोंमें दौड़ लगाया करता था॥ ७॥ वह गौओंके गर्भ गिरा देता था। मदमत्त होकर बिना ऋतुके ही उनसे समागम करता तथा वह चञ्चल दैत्य तुरंतकी ब्यायी हुई गौओंका भी उपभोग करनेके लिये उनके पीछे पड़ा रहता था॥ ८॥ सींग ही उसके आयुध थे। वह बड़ा भयंकर एवं दुर्मद प्रतीत होता था। गौओंपर प्रहार करना उसका नित्यका काम था। वह वृषभरूपधारी दैत्य गोठोंमें पहुँचकर युद्ध किये बिना संतुष्ट नहीं होता था॥ ९॥ किसी समय यमराजके वशमें पड़ा हुआ वह उत्कट बलशाली वृषभरूपधारी असुर भगवान् श्रीकृष्णके सामने आया॥ १०॥ मदमत्त अरिष्टासुर वहाँ आते ही बलपूर्वक गौओंको सताने लगा। उसने उस गोष्ठको बैल, बछड़ों तथा बालकोंसे सूना कर दिया॥ ११॥ इसी समय कालके वशमें पड़ा हुआ वह दुष्टात्मा दैत्य श्रीकृष्णके पास खड़ी हुई गौओंको त्रास देने लगा॥ १२॥ उस समय गर्जना करता हुआ वह महान् असुर इन्द्रके वज्रकी गड़गड़ाहटके साथ आकाशमें छाये हुए मेघके समान जान पड़ता था। उसे मोहमें डालनेके लिये श्रीकृष्णने ताल ठोंका और सिंहनाद किया॥ १३॥ फिर वे भगवान् गोविन्द उस वृषभरूपधारी दैत्यकी ओर दौड़े। श्रीकृष्णको देखते ही उस बैलने हर्षमें भरकर अपनी पूँछ उठायी और उसके नेत्र भी खिल उठे॥ १४॥ उनके ताल ठोंकनेके शब्दसे वह रोषमें भरा हुआ था, अतः युद्धकी इच्छासे गर्जना करने लगा। बैलका रूप धारण करके अपनी ओर आते हुए उस दुराचारी दैत्यको देखकर भी श्रीकृष्ण उस स्थानसे तनिक भी इधर-उधर नहीं हुए, पर्वतके समान अविचलभावसे खड़े रह गये॥ १५॥ उस वृषभने श्रीकृष्णके पेटमें दृष्टि जमाकर उधर ही मस्तक भिड़ाया और उनके वधकी इच्छा रखकर तुरंत ही उछला॥ १६॥

तमापतन्तं वेगेन प्रतिजग्राह दुर्द्धरम्।
कृष्णः कृष्णाञ्जननिभो वृषं प्रति वृषोपमः॥ १७

स संसक्तस्तु कृष्णो वै वृषेणेव महावृषः।
मुमोच वक्त्रजं फेनं नस्तश्चाथ सशब्दवत्॥ १८

तावन्योन्यावरुद्धाङ्गौ युद्धे कृष्णवृषावुभौ।
रेजतुर्मेघसमये संसक्ताविव तोयदौ॥ १९

तस्य दर्पबलं हत्वा कृत्वा शृङ्गान्तरे पदम्।
आपीडयदरिष्टस्य कण्ठं क्लिन्नमिवाम्बरम्॥ २०

शृङ्गं चास्य पुनः सव्यमुत्पाट्य यमदण्डवत्।
तेनैव प्राहरद् वक्त्रे स ममार भृशं हतः॥ २१

स भिन्नशृङ्गो भग्नास्यो भग्नस्कन्धश्च दानवः।
पपात रुधिरोद्गारी साम्बुधार इवाम्बुदः॥ २२

गोविन्देन हतं दृष्ट्वा दृप्तं वृषभदानवम्।
साधु साध्विति भूतानि तत्कर्मास्याभितुष्टुवुः॥ २३

स चोपेन्द्रो वृषं हत्वा कान्तचन्द्रे निशामुखे।
अरविन्दाभनयनः पुनरेव ररास ह॥ २४

तेऽपि गोवृत्तयः सर्वे कृष्णं कमललोचनम्।
उपासाञ्चक्रिरे हृष्टाः सर्वे शक्रमिवामराः॥ २५

काले अञ्जनके समान श्याम शरीरवाले श्रीकृष्ण उस बैलका सामना करनेके लिये विपक्षी साँड़के समान प्रतीत होते थे। उन्होंने वेगसे अपनी ओर आते हुए उस दुर्धर दैत्यको पकड़ लिया॥ १७॥ फिर तो श्रीकृष्ण उसके साथ इस तरह उलझ गये, जैसे एक साँड़के साथ दूसरा महासाँड़ भिड़ गया हो। अरिष्टासुर हाँफता हुआ अपनी नाक और मुखसे फेन छोड़ने लगा॥ १८॥ श्रीकृष्ण और अरिष्टासुर दोनोंने उस युद्धमें एक-दूसरेके शरीरको अवरुद्ध कर लिया था। उस समय वे दोनों वर्षाकालमें परस्पर सटे हुए दो मेघोंके समान शोभा पा रहे थे॥ १९॥ इस प्रकार उसके बलको क्षीण करके घमंड चूर कर देनेके बाद श्रीकृष्णने उसके दोनों सींगोंके बीचमें एक पैर रखा और जैसे भीगे हुए कपड़ेको निचोड़ा जाता है, उसी प्रकार अरिष्टासुरके गलेको दबाकर मरोड़ दिया॥ २०॥ तत्पश्चात् उसके बायें सींगको जो यमदण्डके समान जान पड़ता था, उखाड़ लिया और उसीके द्वारा उसके मुखपर प्रहार किया। उसकी गहरी चोट खाकर अरिष्टासुर मर गया॥ २१॥ उसका सींग उखड़ गया, मुख कुचल दिया गया और गर्दन टूट गयी, उस दशामें वह दानव जलकी धारा बरसानेवाले मेघके समान अपने मुखसे रक्त वमन करता हुआ गिर पड़ा॥ २२॥ मदसे उन्मत्त रहनेवाले उस वृषभरूपी दानवको भगवान् गोविन्दके हाथसे मारा गया देख सब प्राणी साधु-साधु कहकर उनके उस कर्मकी भूरि-भूरि प्रशंसा करने लगे॥ २३॥ उस प्रदोषकालमें जब कि चन्द्रमाकी कमनीय कान्ति बढ़ी हुई थी, कमलनयन भगवान् उपेन्द्र वृषभासुरको मारकर पुनः रासक्रीड़ामें संलग्न हो गये॥ २४॥ गौएँ ही जिनकी आजीविका हैं, वे समस्त गोप भी हर्षमें भरकर कमलनयन श्रीकृष्णकी उसी तरह उपासना करने लगे, जैसे सम्पूर्ण देवता इन्द्रकी आराधना करते हैं॥ २५॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे विष्णुपर्वणि वृषभासुरवधे एकविंशोऽध्यायः॥ २१॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत विष्णुपर्वमें वृषभासुरका वधविषयक इक्कीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ २१॥

द्वाविंशोऽध्यायः

कंसकी आशङ्का, उसका रात्रिके समय यदुवंशियोंको बुलाकर भरी सभामें श्रीकृष्ण और विष्णुके प्रभावको बताना, वसुदेवपर कठोर आक्षेप करना तथा अक्रूरको श्रीकृष्ण आदिको बुला लानेके लिये व्रजमें जानेकी आज्ञा देना

वैशम्पायन उवाच

कृष्णं व्रजगतं श्रुत्वा वर्धमानमिवानलम्।
उद्वेगमगमत् कंसः शङ्कमानस्ततो भयम्॥ १

पूतनायां हतायां च कालिये च पराजिते।
धेनुके प्रलयं नीते प्रलम्बे च निपातिते॥ २

धृते गोवर्धने शैले विफले शक्रशासने।
गोषु त्रातासु च तथा स्पृहणीयेन कर्मणा॥ ३

ककुद्मिनि हतेऽरिष्टे गोपेषु मुदितेषु च।
दृश्यमाने विनाशे च संनिकृष्टे महाभये॥ ४

कर्षणे वृक्षयोश्चैव शकटस्य तथैव च।
अचिन्त्यं कर्म तच्छ्रुत्वा वर्धमानेषु शत्रुषु॥ ५

प्राप्तारिष्टमिवात्मानं मेने स मथुरेश्वरः।
विसंज्ञेन्द्रियभूतात्मा गतासुप्रतिमो बभौ॥ ६

ततो ज्ञातीन् समानाय्य पितरं चोग्रशासनः।
निशि स्तिमितमूकायां मथुरायां जनाधिपः॥ ७

वसुदेवं च देवाभं कङ्कं चाहूय यादवम्।
सत्यकं दारुकं चैव कङ्कावरजमेव च॥ ८

भोजं वैतरणं चैव विकद्रुं च महाबलम्।
भयशङ्खं च धर्मज्ञं विपृथुं च पृथुश्रियम्॥ ९

बभ्रुं दानपतिं चैव कृतवर्माणमेव च।
भूरितेजसमक्षोभ्यं भूरिश्रवसमेव च॥ १०

एतान् स यादवान् सर्वानाभाष्य शृणुतेति च।
उग्रसेनसुतो राजा प्रोवाच मथुरेश्वरः॥ ११

भवन्तः सर्वकार्यज्ञा वेदेषु परिनिष्ठिताः।
न्यायवृत्तान्तकुशलास्त्रिवर्गस्य प्रवर्तकाः॥ १२

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! भगवान् श्रीकृष्ण व्रजमें जाकर अग्निकी भाँति बढ़ते, उत्तरोत्तर प्रज्वलित होते जा रहे हैं, यह सुनकर कंसको बड़ा उद्वेग हुआ। उसके मनमें श्रीकृष्णसे भय प्राप्त होनेकी शङ्का दृढ़ होने लगी॥ १॥ पूतना मारी गयी, कालिय नाग परास्त हुआ, धेनुकासुर कालके गालमें भेज दिया गया, प्रलम्बासुरको मार गिराया गया, गोवर्धन पहाड़को श्रीकृष्णने हाथपर उठा लिया, इन्द्रका शासन निष्फल हो गया, वैसे स्पृहणीय कर्मके द्वारा सम्पूर्ण गौओंकी रक्षा कर ली गयी, ऊँचे ककुदवाले अरिष्टासुरको मार डाला गया, गोपगण आनन्दमें मग्न रहते हैं और अपना (कंसका) महाभयंकर विनाशकाल संनिकट दिखायी देने लगा है, यमलार्जुन-वृक्षोंका ओखली खींचते समय टूट जाना, शकटका भङ्ग हो जाना आदि असम्भव कार्य सम्भव हो गये, शत्रु निरन्तर बढ़ रहे हैं और उनके द्वारा अचिन्त्य कर्म सम्पादित होने लगा है, यह सब सुनकर मथुरापति कंसने यह मान लिया कि अब मेरे ऊपर अरिष्ट आया ही चाहता है। इससे उसकी इन्द्रियाँ, शरीर और मन-बुद्धि सब-के-सब अचेत हो गये तथा वह प्राणहीन-सा प्रतीत होने लगा॥ २—६॥ तदनन्तर भयंकर शासनवाले राजा कंसने रात्रिके नीरव एवं निस्तब्धकालमें मथुरापुरीके भीतर रहनेवाले समस्त बन्धु-बान्धवों तथा अपने पिता उग्रसेनको भी बुलाया॥ ७॥ देवताके समान तेजस्वी वसुदेव, यदुकुलनन्दन कङ्क, सत्यक, दारुक, कङ्कके छोटे भाई, भोज, वैतरण, महाबली विकद्रु, धर्मज्ञ भयशङ्ख, पृथुल राजलक्ष्मीसे सम्पन्न विपृथु, दानपति बभ्रु (अक्रूर), कृतवर्मा, अक्षोभ्य भूरितेजा और भूरिश्रवा—इन सब यादवोंको बुलाकर सबको सम्बोधित करके मथुराके स्वामी उग्रसेनकुमार राजा कंसने कहा—'बन्धुओ! आपलोग सुनें॥ ८—११॥ आप समस्त कर्तव्य-कर्मोंके ज्ञाता, वेदोंके परिनिष्ठित विद्वान्, न्यायोचित बर्तावमें कुशल, धर्म, अर्थ

कर्तव्यानां च कर्तारो लोकस्य विबुधोपमाः।
तस्थिवांसो महावृत्ते निष्कम्पा इव पर्वताः॥ १३

अदम्भवृत्तयः सर्वे सर्वे गुरुकुलोषिताः।
राजमन्त्रधराः सर्वे सर्वे धनुषि पारगाः॥ १४

यशःप्रदीपा लोकानां वेदार्थानां विवक्षवः।
आश्रमाणां निसर्गज्ञा वर्णानां क्रमपारगाः॥ १५

प्रवक्तारः सुनियतां नेतारो नयदर्शिनाम्।
भेत्तारः परराष्ट्राणां त्रातारः शरणार्थिनाम्॥ १६

एवमक्षतचारित्रैः श्रीमद्भिरुदितोदितैः।
द्यौरप्यनुगृहीता स्याद् भवद्भिः किं पुनर्मही॥ १७

ऋषीणामिव वो वृत्तं प्रभावो मरुतामिव।
रुद्राणामिव वः क्रोधो दीप्तिरङ्गिरसामिव॥ १८

व्यावर्तमानं सुमहद् भवद्भिः ख्यातकीर्तिभिः।
धृतं यदुकुलं वीरैर्भूतलं पर्वतैरिव॥ १९

एवं भवत्सु युक्तेषु मम चित्तानुवर्तिषु।
वर्धमानो ममानर्थो भवद्भिः किमुपेक्षितः॥ २०

एष कृष्ण इति ख्यातो नन्दगोपसुतो व्रजे।
वर्धमान इवाम्भोधिर्मूलं नः परिकृन्तति॥ २१

अनमात्यस्य शून्यस्य चारान्धस्य ममैव तु।
कारणान्नन्दगोपस्य स सुतो गोपितो गृहे॥ २२

उपेक्षित इव व्याधिः पूर्यमाण इवाम्बुदः।
नदन्मेघ इवोष्णान्ते स दुरात्मा विवर्धते॥ २३

और कामके प्रवर्तक, कर्तव्य-पालक, जगत्‌के लिये देवताओंके समान माननीय, महान् आचार-विचारमें दृढ़तापूर्वक स्थिर रहनेवाले और पर्वतके समान अविचल हैं'॥ १२-१३॥

आप सब लोग पाखण्डपूर्ण वृत्तिसे दूर रहते हैं। सबने गुरुकुलमें रहकर शिक्षा पायी है। आप सब लोग राजाकी गुप्त मन्त्रणाको सुरक्षित रखनेवाले तथा धनुर्वेदमें पारङ्गत हैं॥ १४॥ आपके यशरूपी प्रदीप सम्पूर्ण जगत्‌में अपना प्रकाश फैला रहे हैं। आपलोग वेदोंके तात्पर्यका प्रतिपादन करनेमें समर्थ हैं। आश्रमोंके जो स्वाभाविक कर्म हैं, उन्हें आप जानते हैं। चारों वर्णोंके जो क्रमिक धर्म हैं, उनके आपलोग पारङ्गत विद्वान् हैं॥ १५॥ आपलोग उत्तम विधियोंके वक्ता, नीतिदर्शी पुरुषोंके भी नेता, शत्रुराष्ट्रोंके गुप्त रहस्योंका भेदन करनेवाले तथा शरणार्थियोंके संरक्षक हैं॥ १६॥ आपके सदाचारमें कभी आँच नहीं आने पायी है। आपलोग श्रीसम्पन्न हैं तथा श्रेष्ठ पुरुषोंकी चर्चा होते समय आपलोगोंके नाम बारम्बार लिये जाते हैं। आपलोग चाहें तो स्वर्गलोकपर भी अनुग्रह कर सकते हैं, फिर इस भूतलकी तो बात ही क्या है?॥ १७॥ आपका आचार ऋषियोंके, प्रभाव मरुद्गणोंके, क्रोध रुद्रोंके और तेज या दीप्ति अग्नियोंके समान है॥ १८॥ यह महान् यदुकुल जब अपनी मर्यादासे भ्रष्ट हो रहा था, उस समय विख्यात कीर्तिवाले आप-जैसे वीरोंने ही इसे मर्यादामें स्थापित किया, ठीक उसी तरह जैसे पर्वतोंने इस भूतलको दृढ़तापूर्वक धारण कर रखा है॥ १९॥ आपलोग ऐसे सुयोग्य हैं और सदा मेरे अनुकूल चलते हैं, परंतु इस समय आपलोगोंके होते हुए भी मेरे अनर्थ (संकट)-की वृद्धि हो रही है, पता नहीं आपने उसकी उपेक्षा कैसे कर दी है॥ २०॥ व्रजमें कृष्ण नामसे विख्यात जो यह नन्द-गोपका बेटा है, वह (मर्यादाको लाँघकर) बढ़नेवाले समुद्रकी भाँति बढ़कर हमारी जड़ काट रहा है॥ २१॥ मेरे पास कोई सुयोग्य मन्त्री नहीं है, मैं हृदय एवं विचारसे शून्य हूँ तथा गुप्तचररूपी नेत्रसे हीन होनेके कारण अंधा हो गया हूँ। मेरे इसी दोषके कारण नन्द-गोपका वह पुत्र अपने घरमें सुरक्षित रह सका है॥ २२॥ वह दुरात्मा उपेक्षित रोग तथा वर्षा-ऋतुमें निरन्तर जलसे भरनेवाले गरजते हुए मेघकी भाँति बढ़ता जा रहा है'॥ २३॥

तस्य नाहं गतिं जाने न योगं न पराक्रमम्।
नन्दगोपस्य भवने जातस्याद्भुतकर्मणः॥ २४

किं तद्भूतं समुद्भूतं देवापत्यं न विद्महे।
अतिदेवैरमानुष्यैः कर्मभिः सोऽनुमीयते॥ २५

पूतना शकुनी बाल्ये शिशुनोत्तानशायिना।
स्तनपानेप्सुना पीता प्राणैः सह दुरासदा॥ २६

यमुनाया ह्रदे नागः कालियो दमितस्तथा।
रसातलचरो नीतः क्षणेनादर्शनं ह्रदात्॥ २७

नन्दगोपसुतो योगं कृत्वा स पुनरुत्थितः।
धेनुकस्तालशिखरात् पातितो जीवितं विना॥ २८

प्रलम्बं यं मृधे देवा न शेकुरतिवर्तितुम्।
बालेन मुष्टिनैकेन स हतः प्राकृतो यथा॥ २९

वासवस्योत्सवं भङ्क्त्वा वर्षं वासवरोषजम्।
निर्जित्य गोगृहार्थाय धृतो गोवर्धनो गिरिः॥ ३०

हतस्त्वरिष्टो बलवान् निःशृङ्गश्च कृतो व्रजे।
अबालो बाल्यमास्थाय रमते शिशुलीलया॥ ३१

प्रबन्धः कर्मणामेवं तस्य गोव्रजवासिनः।
संनिकृष्टं भयं चैव केशिनो मम च ध्रुवम्॥ ३२

भूतपूर्वश्च मे मृत्युः सततं पूर्वदैहिकः।
युद्धाकाङ्क्षी च स यथा तिष्ठतीह ममाग्रतः॥ ३३

क्व च गोपत्वमशुभं मानुष्यं मृत्युदुर्बलम्।
क्व च देवप्रभावेण क्रीडितव्यं व्रजे मम॥ ३४

'नन्दके घरमें उत्पन्न हुए उस अद्भुतकर्मा बालकका आश्रय क्या है? यह मैं नहीं जानता। उसे वशमें करनेका उपाय क्या है, इसका भी मुझे पता नहीं तथा उसमें कितना पराक्रम है, यह भी अच्छी तरह ज्ञात नहीं हो सका॥ २४॥ पता नहीं कौन-सा भूत उसके रूपमें उत्पन्न हुआ है। वह किसी देवताकी संतान है, यह बात भी मेरी समझमें नहीं आती। उसके जो कर्म हैं, वे देवताओं और मनुष्योंके लिये असाध्य हैं। उन कर्मोंसे ही यह अनुमान होता है कि वह देवताओंसे भी अधिक शक्तिशाली है॥ २५॥ पूतना नामवाली पक्षिणी एक दुर्जय राक्षसी थी। वह जब इसे बाल्यावस्थामें दूध पिलाने गयी, उस समय यह खाटपर उत्तान सोनेवाला शिशुमात्र था, परंतु उसका स्तनपान करनेकी इच्छासे जब इसने मुँह लगाया, तब उसके प्राणोंके साथ यह उसे ही पी गया॥ २६॥ यमुनाके कुण्डमें जो कालिय नाग रहता था, उसका भी इसने दमन कर दिया और क्षणभरमें उस कुण्डसे उसको अदृश्य करके रसातलचारी बना दिया॥ २७॥ उस नागके हट जानेका उचित उपाय करके नन्दगोपका यह पुत्र पुनः जलसे बाहर निकल आया। धेनुकासुरको ताड़के शिखरसे गिराकर प्राणशून्य कर दिया॥ २८॥ युद्धमें देवता भी जिस प्रलम्बासुरका सामना करने या उसे हरा देनेकी शक्ति नहीं रखते थे, उसे इस बालकने केवल एक मुक्केसे मारकर साधारण मनुष्यकी भाँति कालके गालमें भेज दिया॥ २९॥ इन्द्रके उत्सवको भङ्ग करके उनके रोषसे होनेवाली वर्षापर भी काबू पा लिया और गौओंके लिये सुरक्षित घर प्रस्तुत करनेके लिये गोवर्धन पर्वतको हाथपर उठा लिया॥ ३०॥ व्रजमें बलवान् अरिष्टासुरको मार डाला और उसका सींग उखाड़ लिया। यह वास्तवमें बालक नहीं है, केवल बाल्यावस्थाका आश्रय लेकर बालकों-जैसा खेल कर रहा है॥ ३१॥ गौओंके व्रजमें निवास करनेवाले इस बालकके कर्मोंकी जो इस प्रकार परम्परा चल रही है, उसे देखते हुए मुझे ऐसा जान पड़ता है कि मुझपर और केशीपर भी निश्चय ही भय आनेवाला है और वह भय दूर नहीं अत्यन्त निकट है॥ ३२॥ पूर्वजन्ममें इस शरीरके लिये जो भूतपूर्व मृत्यु था, वही इस समय भी युद्धकी अभिलाषा रखकर सदा मेरे सामने खड़ा रहता है॥ ३३॥ कहाँ तो अशुभ गोपत्व और मौतकी दुर्बलता धारण करनेवाला मानव-शरीर तथा कहाँ उसका मेरे व्रजमें रहकर देवतुल्य प्रभावसे अद्भुत क्रीड़ा करना'॥ ३४॥

अहो नीचेन वपुषाच्छादयित्वाऽऽत्मनो वपुः।
कोऽप्येष रमते देवः श्मशानस्थ इवानलः॥ ३५

श्रूयते हि पुरा विष्णुः सुराणां कारणान्तरे।
वामनेन तु रूपेण जहार पृथिवीमिमाम्॥ ३६

कृत्वा केसरिणो रूपं विष्णुना प्रभविष्णुना।
हतो हिरण्यकशिपुर्दानवानां पितामहः॥ ३७

अचिन्त्यरूपमास्थाय श्वेतशैलस्य मूर्धनि।
भवेन च्याविता दैत्याः पुरा तत्त्रिपुरं घ्नता॥ ३८

चालितो गुरुपुत्रेण भार्गवोऽङ्गिरसेन वै।
प्रविश्य दार्दुरीं मायामनावृष्टिं चकार ह॥ ३९

अनन्तः शाश्वतो देवः सहस्रशिरसोऽव्ययः।
वाराहं रूपमास्थाय प्रोज्जहारार्णवान्महीम्॥ ४०

अमृते निर्मिते पूर्वं विष्णुः स्त्रीरूपमास्थितः।
सुराणामसुराणां च युद्धं चक्रे सुदारुणम्॥ ४१

अमृतार्थे पुरा चापि देवदैत्यसमागमे।
दधार मन्दरं विष्णुरकूपार इति श्रुतिः॥ ४२

वपुर्वामनमास्थाय नन्दनीयं पुरा बलेः।
त्रिभिः क्रमैस्तु त्रींल्लोकाञ्जहार त्रिदिवालयम्॥ ४३

चतुर्धा तेजसो भागं कृत्वा दाशरथे गृहे।
स एव रामसंज्ञो वै रावणं व्यनशत् तदा॥ ४४

एवमेष निकृत्या वै तत्तद्रूपमुपागतः।
साधयत्यात्मनः कार्यं सुराणामर्थसिद्धये॥ ४५

'अहो! कितने आश्चर्यकी बात है कि यह कोई देवता अपने स्वरूपको नीच गोपवेषमें छिपाकर श्मशानमें स्थित हुई अग्निके समान यहाँ रम रहा है॥ ३५॥ सुना जाता है कि पूर्वकालमें विष्णुने देवताओंका कार्य सिद्ध करनेके लिये वामनरूप धारण करके राजा बलिके हाथसे इस पृथ्वीको छीन लिया था॥ ३६॥ उन्हीं प्रभावशाली विष्णुने सिंहका-सा रूप बनाकर दानवोंके पितामह हिरण्यकशिपुका वध कर डाला था॥ ३७॥ इसी तरह पूर्वकालमें रुद्र (-रूपधारी विष्णु)-ने अचिन्त्य रूपका आश्रय लेकर श्वेताचलके शिखरपर स्थित हो त्रिपुरका नाश करके दैत्योंको वहाँसे नीचे गिरा दिया था॥ ३८॥ बृहस्पतिके पुत्र कचने दार्दुरी मायामें प्रविष्ट होकर शुक्राचार्यको अपनी प्रतिज्ञासे विचलित कर दिया था। उन्होंने ही दैत्योंके जगत्में 'अनावृष्टि' उत्पन्न कर दी थी। (जिससे दैत्योंकी बड़ी भारी हानि हुई*। ये कच भी विष्णुकी ही विभूति थे)॥ ३९॥ 'वे विष्णु अनन्त, सनातन देव, सहस्रों मस्तकोंसे विभूषित और अविनाशी हैं। उन्होंने वाराहरूप धारण करके समुद्रसे इस पृथ्वीका उद्धार किया॥ ४०॥ पूर्वकालमें जब अमृत प्रकट हुआ था, तब विष्णुने ही मोहिनी स्त्रीका रूप धारण करके देवताओं और असुरोंमें अत्यन्त भयंकर युद्ध करवाया था॥ ४१॥ अमृत निकालनेके लिये सम्मिलितरूपसे प्रयत्न करनेके उद्देश्यसे जब देवता और दैत्य परस्पर मिले थे, उस समय श्रीविष्णुने ही कच्छपरूप धारण करके समुद्रके भीतर मन्दराचलको अपनी पीठपर धारण किया था—ऐसा सुना जाता है॥ ४२॥ उन्होंने ही पहले अभिनन्दनीय वामन-रूप धारण करके तीन पगोंद्वारा त्रिलोकीको नापकर बलिके हाथसे स्वर्गलोकका राज्य ले लिया था॥ ४३॥ वे ही राजा दशरथके घरमें अपने तेजको चार भागोंमें विभक्त करके अवतीर्ण हुए और 'राम' नामसे प्रसिद्ध हुए, जिन्होंने उस समय रावणका वध किया था॥ ४४॥ इस प्रकार ये विष्णु छलसे भिन्न-भिन्न रूप धारण करके देवताओंका मनोरथ सिद्ध करनेके लिये अपना काम बना लेते हैं'॥ ४५॥

* जैसे मेढक बारम्बार मरकर उत्पन्न होते हैं, उसी प्रकार कच भी दैत्योंद्वारा बारम्बार मारे जानेपर जीवित हुए। यही उनका दार्दुरी मायामे प्रवेश है। एक बार दानवोंने कचको मारकर युक्तिसे शुक्राचार्यके पेटमें पहुँचा दिया। उनकी जीवन-रक्षाके लिये विवश होकर शुक्राचार्यको 'संजीवनी विद्या किसीको भी नहीं सिखाऊँगा' अपनी यह प्रतिज्ञा छोड़नी पड़ी और उन्होंने कचको विद्या सिखा दी। उसके प्रभावसे कच गुरुजीका पेट फाड़कर निकल आये। फिर उन्होंने गुरुजीको भी जीवित कर दिया। दैत्योंने जो ब्रह्महत्या की, उसी पापसे उनके राज्यमें वर्षा बंद हो गयी।

तदेष नूनं विष्णुर्वा शक्रो वा मरुतां पतिः।
मत्साधनेच्छया प्राप्तो नारदो मां यदुक्तवान्॥ ४६

अत्र मे शङ्कते बुद्धिर्वसुदेवं प्रति ध्रुवा।
अस्य बुद्धिविशेषेण वयं कातरतां गताः॥ ४७

अहं हि खट्वाङ्गवने नारदेन समागतः।
द्वितीयं स हि मां विप्रः पुनरेवाब्रवीद् वचः॥ ४८

यस्त्वया हि कृतो यत्नः कंस गर्भकृते महान्।
वसुदेवेन ते रात्रौ तत्कर्म विफलीकृतम्॥ ४९

दारिका या त्वया रात्रौ शिलायां कंस पातिता।
तां यशोदासुतां विद्धि कृष्णं च वसुदेवजम्॥ ५०

रात्रौ व्यावर्तितावेतौ गर्भौ तव वधाय वै।
वसुदेवेन संधाय मित्ररूपेण शत्रुणा॥ ५१

सा तु कन्या यशोदाया विन्ध्ये पर्वतसत्तमे।
हत्वा शुम्भनिशुम्भौ द्वौ दानवौ नगचारिणौ॥ ५२

कृताभिषेका वरदा भूतसंघनिषेविता।
अर्च्यते दस्युभिर्घोरैर्महाबलिपशुप्रिया॥ ५३

सुरापिशितपूर्णाभ्यां कुम्भाभ्यामुपशोभिता।
मयूराङ्गदचित्रैश्च बर्हभारैर्विभूषिता॥ ५४

हृष्टकुक्कुटसंनादं वनं वायसनादितम्।
मृगसंघैश्च सम्पूर्णमविरुद्धैश्च पक्षिभिः॥ ५५

सिंहव्याघ्रवराहाणां नादेन प्रतिनादितम्।
वृक्षगम्भीरनिबिडं कान्तारैः सर्वतो वृतम्॥ ५६

दिव्यभृङ्गारुचमरैरादर्शैरुपशोभितम्।
देवतूर्यनिनादैश्च शतशः प्रतिनादितम्॥ ५७

स्थानं तस्या नगे विन्ध्ये निर्मितं स्वेन तेजसा।
रिपूणां त्रासजननी नित्यं तत्र मनोरमे॥ ५८

'अतः यह श्रीकृष्ण निश्चय ही विष्णु है अथवा देवराज इन्द्र। यह मेरा वध करनेकी इच्छासे ही व्रजभूमिमें आया है; जैसा कि देवर्षि नारदने मुझे बताया था॥ ४६॥ इस विषयमें मेरी बुद्धि निश्चय ही वसुदेवके प्रति संदेह करने लगी है। इस वसुदेवकी विशिष्ट बुद्धिसे हम अवश्य कातर हो उठे हैं॥ ४७॥ मैं खट्वाङ्गवनमें जब दूसरी बार नारदसे मिला था, तब उस ब्राह्मणने मुझसे पुनः इस प्रकार कहा—॥ ४८॥ कंस! तुमने जो देवकीका गर्भ नष्ट कर देनेके लिये महान् प्रयत्न आरम्भ किया था, तुम्हारे उस कर्मको रातके समय वसुदेवने निष्फल कर दिया॥ ४९॥ कंस! तुमने रातके समय जिस कन्याको शिलापर दे मारा था, उसे यशोदाकी पुत्री समझो और वहाँ जो श्रीकृष्ण है, वही वसुदेव (तथा देवकी)-का पुत्र है॥ ५०॥ तुम्हारे मित्ररूपधारी शत्रु वसुदेवने रातके समय छलपूर्वक तुम्हारे वधके लिये इन दोनों बच्चोंकी अदला-बदली कर ली थी॥ ५१॥ यशोदाकी वह कन्या पर्वतोंमें श्रेष्ठ विन्ध्य-गिरिपर जाकर रहती है। वहाँ उस पर्वतपर विचरनेवाले जो शुम्भ और निशुम्भ नामक दो दानव थे, उनका वध करके प्रतिष्ठित हुई है॥ ५२॥ प्राणियोंके समुदायद्वारा सेवित वह देवी उपासकोंको अभीष्ट वर देनेवाली है। उसे महती पूजन-सामग्री और वहाँ विचरनेवाले पशु प्रिय हैं। वहाँ भयानक दस्यु उस देवीका अभिषेक करके पूजन करते हैं॥ ५३॥ वह मधु तथा फलके गूदोंसे भरे हुए दो कलशोंसे सुशोभित होती है। मोरपंखके बने हुए विचित्र भुजदण्ड तथा मोरोंकी पाँखसे ही बनाये गये दूसरे-दूसरे आभूषण उस देवीके अलंकार हैं॥ ५४॥ उस विन्ध्यपर्वतपर उसके अपने ही तेजसे निर्मित हुआ स्थान एक सुन्दर वन है, जहाँ हर्षमें भरे हुए मुर्गोंका कलनाद सुनायी देता है। कौओंके काँव-काँवकी आवाज भी गूँजती रहती है। मृग आदि पशुओंके समुदाय भी वहाँ भरे रहते हैं तथा मनके अनुकूल पक्षियोंसे भी वह स्थान सुशोभित रहता है। वहाँ सिंहों, व्याघ्रों और वराहोंकी गर्जनाका गम्भीर शब्द प्रतिध्वनित होता रहता है। वृक्षोंके बाहुल्यसे वह गम्भीर एवं गहन प्रतीत होता है। सब ओरसे दुर्गम स्थानोंद्वारा वह घिरा हुआ है। दिव्य गड़ुआ, चँवर और दर्पण देवीके उस स्थानकी शोभा बढ़ाते हैं। सैकड़ों देववाद्योंकी ध्वनियोंसे वह वन गूँजता रहता है। शत्रुओंको त्रास देनेवाली वह देवी सदा उसी मनोरम वनमें

वसते परमप्रीता देवतैरपि पूजिता।
यस्त्वयं नन्दगोपस्य कृष्ण इत्युच्यते सुतः॥ ५९

अत्र मे नारदः प्राह सुमहत्कर्मकारणम्।
द्वितीयो वसुदेवाद् वै वासुदेवो भविष्यति॥ ६०

स हि ते सहजो मृत्युर्बान्धवश्च भविष्यति।
स एव वासुदेवो वै वसुदेवसुतो बली।
बान्धवो धर्मतो मह्यं हृदयेनान्तको रिपुः॥ ६१

यथा हि वायसो मूर्ध्नि पद्भ्यां यस्यावतिष्ठति।
नेत्रे तुदति तस्यैव वक्त्रेणामिषगृद्धिना॥ ६२

वसुदेवस्तथैवायं सपुत्रज्ञातिबान्धवः।
छिनत्ति मम मूलानि भुङ्क्ते च मम पार्श्वतः॥ ६३

भ्रूणहत्यापि संतार्या गोवधः स्त्रीवधोऽपि वा।
न कृतघ्नस्य लोकोऽस्ति बान्धवस्य विशेषतः॥ ६४

पतितानुगतं मार्गं निषेवत्यचिरेण सः।
यः कृतघ्नोऽनुबन्धेन प्रीतिं वहति दारुणाम्॥ ६५

नरकाध्युषितः पन्था गन्तव्यस्तेन दारुणः।
अपापे पापहृदयो यः पापमनुतिष्ठति॥ ६६

अहं वा स्वजनः श्लाघ्यः स वा श्लाघ्यतरः सुतः।
नियमैर्गुणवृत्तेन त्वया बान्धवकाम्यया॥ ६७

हस्तिनां कलहे घोरे वधमृच्छन्ति वीरुधः।
युद्धव्युपरमे ते तु सहाश्नन्ति महावने॥ ६८

बान्धवानामपि तथा भेदकाले समुत्थिते।
वध्यते योऽन्तरप्रेप्सुः स्वजनो यदि वेतरः॥ ६९

कालस्त्वं हि विनाशाय मया पुष्टो विजानता।
वसुदेव कुलस्यास्य यद् विरोधयसे भृशम्॥ ७०

अमर्षी वैरशीलश्च सदा पापमतिः शठः।
स्थाने यदुकुलं मूढ शोचनीयं त्वया कृतम्॥ ७१

प्रसन्नतापूर्वक निवास करती है। वहाँ देवता भी उसकी पूजा करते हैं। 'यह कृष्ण नामसे प्रसिद्ध जो नन्दगोपका पुत्र बताया जाता है, उसके विषयमें नारदजीने मुझसे कहा है कि 'व्रजमें जो पूतना-वध आदि बड़े-बड़े कर्म हो रहे हैं, उनका प्रधान कारण वही है। वह वसुदेवसे उत्पन्न होनेवाला दूसरा पुत्र है, इसलिये वासुदेव नामसे विख्यात होगा। वह तुम्हारी सहज मृत्यु तथा बान्धव भी होगा। वसुदेवका वह बलवान् पुत्र वासुदेव ही धर्मतः मेरा बान्धव है; किंतु हृदयसे विनाशकारी शत्रु बना है॥ ५५—६१॥ जैसे कौवा जिसके सिरपर दोनों पंजे रखकर बैठता है, अपनी मांसलोलुप चोंचसे उसीके दोनों नेत्रोंपर प्रहार करता है; उसी प्रकार ये वसुदेव भी अपने पुत्र और भाई-बन्धुओंसहित मेरे ही पास खाते हैं और मेरी ही जड़ काटते हैं॥ ६२-६३॥ भ्रूणहत्याके पापसे मनुष्य तर सकता है, गोवध अथवा स्त्रीवधके पापको भी प्रायश्चित्त आदिके द्वारा लाँघा जा सकता है; परंतु जो कृतघ्न है, विशेषतः अपने भाई-बन्धुपर कृतघ्नता करता है, उसके लिये कोई लोक नहीं है—उसका कहीं भी ठिकाना नहीं लगता॥ ६४॥ जो भीतरसे कृतघ्न रहकर अपना काम बनानेके लिये ऊपरसे भयानक प्रीतिका बोझ ढोता है, वह शीघ्र ही पतितोंके पथका आश्रय लेता है॥ ६५॥ जो पापहीनके प्रति अपने हृदयमें पापपूर्ण भाव लेकर पापका ही बर्ताव करता है, उसे नरकके भयंकर मार्गपर जाना पड़ता है॥ ६६॥ नियम, गुण और आचार—इनको सामने रखकर तुम्हें किसीको मित्र बनानेकी इच्छा करनी चाहिये। बतलाओ, तुम मुझ स्वजनको स्पृहणीय मानते हो अथवा अपने उस पुत्रको मुझसे भी अधिक श्लाघ्य समझते हो?॥ ६७॥ हाथियोंमें भयंकर युद्ध छिड़ जानेपर घास-पात और लता-बेलें नष्ट होती हैं; फिर युद्धका विराम होनेपर वे हाथी उस महान् वनमें साथ-साथ खाते-पीते हैं; उसी प्रकार भाई-बन्धुओंमें भेद उपस्थित होनेपर जो छिद्र ढूँढ़नेवाला होता है, वही मारा जाता है; भले ही वह स्वजन हो या और कोई॥ ६८-६९॥ वसुदेव! तुम इस कुलके काल हो। मैंने अपने विनाशके लिये ही तुम्हें जान-बूझकर पाला-पोसा है। तभी तो तुम मुझसे अत्यन्त विरोध बढ़ा रहे हो॥ ७०॥ ओ मूढ़! तुम अमर्षशील (असहिष्णु) और स्वभावतः वैर रखनेवाले हो। तुम्हारी बुद्धि सदा पापमें ही लगी रहती है। तुम शठ हो। तुमने जो इस यदुकुलकी शोचनीय अवस्था कर दी है, वह उचित ही है'॥ ७१॥

वसुदेव वृथा वृद्ध यन्मया त्वं पुरस्कृतः।
श्वेतेन शिरसा वृद्धो नैव वर्षशतैर्भवेत्॥ ७२
यस्य बुद्धिः परिणता स वै वृद्धतरो नृणाम्॥ ७३

त्वं च कर्कशशीलश्च बुद्ध्या च न बहुश्रुतः।
केवलं वयसा वृद्धो यथा शरदि तोयदः॥ ७४

किं च त्वं साधु जानीषे वसुदेव वृथामते।
मृते कंसे मम सुतो मथुरां पालयिष्यति॥ ७५

छिन्नाशस्त्वं वृथा वृद्धो मिथ्या त्वेवं विचारितम्।
जिजीविषुर्न सोऽप्यस्ति योऽवतिष्ठेन्ममाग्रतः॥ ७६

प्रहर्तुकामो विश्वस्ते यस्त्वं दुष्टेन चेतसा।
तत् ते प्रतिकरिष्येऽहं पुत्रयोस्तव पश्यतः॥ ७७

न मे वृद्धवधः कश्चिद् द्विजस्त्रीवध एव च।
कृतपूर्वः करिष्ये वा विशेषेण तु बान्धवे॥ ७८

इह त्वं जातसंवृद्धो मम पित्रा विवर्धितः।
पितृष्वसुश्च मे भर्ता यदूनां प्रथमो गुरुः॥ ७९

कुले महति विख्यातः प्रथिते चक्रवर्तिनाम्।
गुर्वर्थं पूजितः सद्भिर्महद्भिर्धर्मबुद्धिभिः॥ ८०

किं करिष्यामहे सर्वे सत्सु वक्तव्यतां गताः।
यदूनां यूथमुख्यस्य यस्य ते वृत्तमीदृशम्॥ ८१

'बूढ़े वसुदेव! मैंने जो तुम्हें पुरस्कृत किया—सदा अगुआ बनाकर रखा, वह सब व्यर्थ हो गया। सिरके बाल सफेद हो जायँ और सौ वर्षोंकी आयु हो जाय—इतनेसे ही कोई वृद्ध (श्रेष्ठ) नहीं हो सकता, जिसकी बुद्धि परिपक्व हो, वही मनुष्योंमें वृद्धतर (श्रेष्ठतम या बड़ा-बूढ़ा) माना गया है॥ ७२-७३॥ तुम्हारा स्वभाव तो कर्कश (क्रूर) है। तुम बुद्धिसे भी बहुश्रुत (अधिक बातोंके जानकार) नहीं हो। शरद्-ऋतुके बादलकी भाँति केवल अवस्थामें ही बूढ़े हो (अनुभवमें नहीं)॥ ७४॥ इतना ही नहीं, व्यर्थ बुद्धि रखनेवाले वसुदेव! तुम यह अच्छी तरह समझने लगे हो कि कंसके मर जानेपर मेरा बेटा मथुराका पालन करेगा—वही यहाँका राजा होगा॥ ७५॥ परंतु तुम्हारी यह आशा छिन्न-भिन्न हो जायगी। तुम व्यर्थ ही बूढ़े हुए। तुमने झूठे ही ऐसा विचार किया है। अरे! जो मेरे सामने प्रतिद्वन्द्वी बनकर खड़ा हो, उसके विषयमें यह समझना चाहिये कि वह जीवित रहना नहीं चाहता॥ ७६॥ मैंने सदा तुम्हारा विश्वास किया और तुमने दुष्टतापूर्ण चित्तसे मुझपर प्रहार करनेकी अभिलाषा की। इसका बदला मैं तुम्हारे दोनों पुत्रोंसे लूँगा और तुम उसे अपनी आँखों देखोगे॥ ७७॥ मैंने पहले कभी भी किसी बूढ़ेका, ब्राह्मणका अथवा स्त्रीका वध नहीं किया है तथा न आगे ही ऐसा करूँगा; विशेषतः अपने बन्धु-बान्धवपर तो मैं हाथ उठाऊँगा ही नहीं॥ ७८॥ वसुदेव! तुम यहीं पैदा हुए, यहीं बढ़े और मेरे पिताने ही तुम्हें पाल-पोसकर बड़ा किया। तुम मेरी चचेरी बहिनके पति हो और यदुवंशियोंमें सर्वश्रेष्ठ गुरुरूप माने जाते हो॥ ७९॥ चक्रवर्तियोंके[१] सुविख्यात एवं महान् कुलमें तुम्हारा जन्म हुआ, तुम स्वयं भी प्रसिद्ध हो तथा धर्मविषयक बुद्धि रखनेवाले श्रेष्ठ महापुरुषोंने उसी गौरवके कारण तुम्हारा पूजन, आदर-सत्कार किया है॥ ८०॥ तुम यदुवंशियोंके समुदायमें मुख्य हो। जब तुम्हारा आचार-व्यवहार ऐसा है (तो औरोंका क्या कहा जाय?)। क्या करें, हम सब लोग केवल तुम्हारे कारण सत्पुरुषोंके समाजमें निन्दाके पात्र बन गये'॥ ८१॥

१. यद्यपि ययातिके शापसे यदुकुलका कोई भी पुरुष चक्रवर्ती राजा नहीं हुआ तथापि यहाँ चक्रवर्तीके लक्षण-विशेषसे सम्पन्न पुरुषोंको ही चक्रवर्ती कहा गया है। वह लक्षण इस प्रकार है—यस्य मूर्धनि दृश्येत विना छत्रेण भूपतेः। पद्मानुकारिणी छाया तमाहुश्चक्रवर्तिनम्॥ अर्थात् जिस राजाके मस्तकपर बिना छत्र लगाये ही कमल-जैसी छाया दिखायी दे, उसे चक्रवर्ती कहते हैं।

मद्वधो वा जयो वाथ वसुदेवस्य दुर्नयैः।
सत्सु यास्यन्ति पुरुषा यदूनामवगुण्ठिताः॥ ८२

त्वया हि मद्वधोपायं तर्कमाणेन वै मृधे।
अविश्वास्यं कृतं कर्म वाच्याश्च यदवः कृताः॥ ८३

अशाम्यं वैरमुत्पन्नं मम कृष्णस्य चोभयोः।
शान्तिमेकतरे शान्तिं गते यास्यन्ति यादवाः॥ ८४

गच्छ दानपते क्षिप्रं ताविहानयितुं व्रजात्।
नन्दगोपं च गोपांश्च करदान् मम शासनात्॥ ८५

वाच्यश्च नन्दगोपो वै करमादाय वार्षिकम्।
शीघ्रमागच्छ नगरं गोपैः सह समन्वितः॥ ८६

कृष्णसंकर्षणौ चैव वसुदेवसुतावुभौ।
द्रष्टुमिच्छति वै कंसः सभृत्यः सपुरोहितः॥ ८७

एतौ युद्धविदौ रङ्गे कालनिर्माणयोधिनौ।
दृढौ च कृतिनौ चैव शृणोमि व्यायतोद्यमौ॥ ८८

अस्माकमपि मल्लौ द्वौ सज्जौ युद्धकृतोत्सवौ।
ताभ्यां सह नियोत्स्येते तौ युद्धकुशलावुभौ॥ ८९

द्रष्टव्यौ च मयावश्यं बालौ तावमरोपमौ।
पितृष्वसुः सुतौ मुख्यौ व्रजवासौ वनेचरौ॥ ९०

वक्तव्यं च व्रजे तस्मिन् समीपे व्रजवासिनाम्।
राजा धनुर्मखं नाम कारयिष्यति वै सुखी॥ ९१

संनिकृष्टे वने ते तु निवसन्तु यथासुखम्।
जनस्यामन्त्रितस्यार्थे यथा स्यात् सर्वमव्ययम्॥ ९२

पयसः सर्पिषश्चैव दध्नो दध्युत्तरस्य च।
यथाकामप्रदानाय भोज्याधिश्रयणाय च॥ ९३

'वसुदेवकी दुर्नीतिसे मेरा वध हो अथवा विजय, आजसे यदुकुलके पुरुष सज्जनोंके समाजमें अपना मुँह ढँककर जायँगे॥ ८२॥ वसुदेव! तुमने युद्धमें मेरे वधका उपाय सोचते-सोचते ऐसा कर्म कर डाला, जिसके कारण यादवोंके ऊपरसे सबका विश्वास उठ गया। तुमने यदुवंशियोंको कलङ्कित करके निन्दाके योग्य बना दिया॥ ८३॥ अब तो हम दोनोंमें—मुझ कंस और कृष्णमें कभी शान्त न होनेवाला वैर उत्पन्न हो गया है। हममेंसे किसी एक व्यक्तिके शान्त होने—मर जानेपर ही यादवोंको शान्ति मिलेगी॥ ८४॥ दानपते अक्रूर! तुम मेरे आदेशसे वसुदेवके उन दोनों पुत्रोंको, नन्दगोपको तथा मुझे कर देनेवाले अन्य गोपोंको भी व्रजसे यहाँ बुला लानेके लिये शीघ्र जाओ॥ ८५॥ नन्दगोपसे कह देना कि तुम हमारा वार्षिक कर लेकर गोपोंके साथ शीघ्र ही मथुरापुरीको चलो॥ ८६॥ वसुदेवके दोनों पुत्र जो श्रीकृष्ण और संकर्षण हैं, इन्हें सेवकों और पुरोहितोंसहित महाराज कंस देखना चाहते हैं॥ ८७॥ सुनता हूँ कि ये दोनों अखाड़ेमें लड़ना जानते हैं और सामयिक युद्धकी कलामें कुशल हैं। इन्होंने दीर्घकालसे इसके लिये विशेष यत्न और परिश्रम किया है तथा ये दोनों भाई सुदृढ़ और चतुर हैं॥ ८८॥ हमारे यहाँ भी दो पहलवान लड़ाईके लिये तैयार हैं। इन्हें लड़ने-भिड़नेमें बड़ा आनन्द आता है। वे दोनों ही युद्धमें कुशल हैं, जो उन दोनों श्रीकृष्ण और संकर्षणके साथ युद्ध करेंगे॥ ८९॥ वे दोनों देवोपम बालक मेरी चचेरी बहिनके प्रधान पुत्र हैं, जो इस समय व्रजमें रहते और वनमें विचरते हैं। मुझे अवश्य उन दोनोंको देखना चाहिये॥ ९०॥ उस व्रजमें जाकर व्रजवासियोंके समीप तुम्हें यह कहना चाहिये कि सुखी राजा कंस धनुर्यज्ञका उत्सव करायेंगे॥ ९१॥ इस उत्सवमें आमन्त्रित हुए लोगोंको जिस प्रकार हर तरहसे आराम मिले, उसके लिये तुम सब व्रजवासी मथुराके समीपवर्ती वनमें आकर सुखपूर्वक रहो॥ ९२॥ दूध, घी, दही और तक्र आदिको अतिथियोंकी इच्छाके अनुसार जुटाकर देना और खीर आदि बनानेके लिये जब जितने दूधको आगपर रखना आवश्यक हो, तब-तब उस आवश्यकताकी पूर्तिके लिये पर्याप्त दूध प्रस्तुत करना—इसी उद्देश्यसे तुम्हें नगरके निकट निवास करना है'॥ ९३॥

अक्रूर गच्छ शीघ्रं त्वं तावानय ममाज्ञया।
संकर्षणं च कृष्णं च द्रष्टुं कौतूहलं हि मे॥ ९४

तयोरागमने प्रीतिः परमा मत्कृता भवेत्।
दृष्ट्वा तु तौ महावीर्यौ तद् विधास्यामि यद्धितम्॥ ९५

शासनं यदि वा श्रुत्वा मम तौ परिभाषितम्।
नागच्छेतां यथाकालं निग्राह्यावपि तौ मम॥ ९६

सान्त्वमेव तु बालेषु प्रधानं प्रथमो नयः।
मधुरेणैव तौ मन्दौ स्वयमेवानयाशु वै॥ ९७

अक्रूर कुरु मे प्रीतिमेतां परमदुर्लभाम्।
यदि वा नोपजप्तोऽसि वसुदेवेन सुव्रत।
तथा कर्तव्यमेतद्धि यथा तावागमिष्यतः॥ ९८

एवमाक्षिप्यमाणोऽपि वसुदेवो वसूपमः।
सागराकारमात्मानं निष्प्रकम्पमधारयत्॥ ९९

वाक्छल्यैस्ताड्यमानस्तु कंसेनादीर्घदर्शिना।
क्षमां मनसि संधाय नोत्तरं प्रत्यभाषत॥ १००

ये तु तं ददृशुस्तत्र क्षिप्यमाणमनेकधा।
धिग्धिगित्यसकृत् ते वै शनैरूचुरवाङ्मुखाः॥ १०१

अक्रूरस्तु महातेजा जानन् दिव्येन चक्षुषा।
जलं दृष्ट्वेव तृषितः प्रेषितः प्रीतिमानभूत्॥ १०२

तस्मिन्नेव मुहूर्ते तु मथुरायाः स निर्ययौ।
प्रीतिमान् पुण्डरीकाक्षं द्रष्टुं दानपतिः स्वयम्॥ १०३

'अक्रूर! शीघ्र जाओ। मेरी आज्ञासे उन दोनों संकर्षण और कृष्णको यहाँ ले आओ। मुझे उन्हें देखनेके लिये बड़ी उत्कण्ठा है॥ ९४॥ उनके आ जानेसे मुझे बड़ी प्रसन्नता होगी (जिसका श्रेय तुम्हें मिलेगा)। उन दोनों महापराक्रमी बालकोंको देखकर मैं वही करूँगा, जिसमें मेरा हित होगा॥ ९५॥ मेरी यह आज्ञा तथा बातें सुनकर यदि वे दोनों यहाँ ठीक समयपर आनेको तैयार न हों तो मेरी रायमें वे बंदी बना लेनेके भी योग्य हैं (अर्थात् तुम उन्हें कैद करके भी ला सकते हो)॥ ९६॥ समझा-बुझाकर काम लेना ही बालकोंके प्रति प्रधान एवं प्रमुख नीति है; इसलिये तुम उन दोनों मूर्खोंको मीठी बातोंसे स्वयं ही राजी करके यहाँ शीघ्र ले आओ॥ ९७॥ उत्तम व्रतका पालन करनेवाले अक्रूर! यदि वसुदेवने तुम्हारे भी कान न भर दिये हों तो तुम मेरी इस परम दुर्लभ प्रीतिका सम्पादन करो। तुम्हें वैसा ही प्रयत्न करना चाहिये, जिससे वे दोनों स्वतः यहाँ आ जायँ'॥ ९८॥ कंसके इस प्रकार आक्षेप करनेपर भी वसुओंके समान शक्तिशाली वसुदेवने अपने समुद्र-जैसे हृदयको क्षुब्ध या कम्पित नहीं होने दिया। उसे धैर्यपूर्वक काबूमें रखा॥ ९९॥ अदूरदर्शी कंसने उन्हें वाग्बाणोंसे बार-बार घायल किया। फिर भी उन्होंने मनमें क्षमाभाव रखकर उसे उसकी बातोंका कोई उत्तर नहीं दिया॥ १००॥ जिन लोगोंने वहाँ वसुदेवजीपर बारम्बार आक्षेप होता देखा, वे अपना मुँह नीचे किये धीरे-धीरे अनेक बार बोल उठे कि धिक्कार है, धिक्कार है॥ १०१॥ महातेजस्वी अक्रूर अपनी दिव्य दृष्टिसे सब कुछ जानते थे (कि भगवान् श्रीकृष्ण कौन हैं और किसलिये अवतीर्ण हुए हैं); अतः जैसे प्यासा मनुष्य पानीको देखते ही प्रसन्न हो उठता है, उसी प्रकार उन्हें कंसके भेजनेपर बड़ी प्रसन्नताका अनुभव हुआ॥ १०२॥ दानपति अक्रूर मन-ही-मन प्रसन्न हो स्वयं जाकर कमलनयन श्रीकृष्णका दर्शन करनेके लिये उसी मुहूर्तमें मथुरासे निकल पड़े॥ १०३॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे विष्णुपर्वणि अक्रूरप्रस्थाने द्वाविंशोऽध्यायः॥ २२॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत विष्णुपर्वमें अक्रूरका प्रस्थानविषयक बाईसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ २२॥

त्रयोविंशोऽध्यायः

अन्धकका कंसको मुँहतोड़ उत्तर

वैशम्पायन उवाच

क्षिप्तं यदुवृषं दृष्ट्वा सर्वे ते यदुपुङ्गवाः।
निपीड्य श्रवणान् हस्तैर्मेनिरे तं गतायुषम्॥ १

अन्धकोऽनुद्विग्नमना धैर्यादविकृतं वचः।
प्रोवाच वदतां श्रेष्ठः समाजे कंसमोजसा॥ २

अश्लाघ्यो मे मतः पुत्र तवायं वाक्परिश्रमः।
अयुक्तो गर्हितः सद्भिर्बान्धवेषु विशेषतः॥ ३

अयादवो यदि भवाञ्छृणु तावद् यदुच्यते।
न हि त्वां यादवं वीर बलात् कुर्वन्ति यादवाः॥ ४

अश्लाघ्या वृष्णयः पुत्र येषां त्वमनुशासिता।
इक्ष्वाकुवंशजो राजा विनिवृत्तः स्वयं सकृत्॥ ५

भोजो वा यादवो वासि कंसो वासि यथा तथा।
सहजं ते शिरस्तात जटी मुण्डोऽपि वा भव॥ ६

उग्रसेनस्त्वयं शोच्यो योऽस्माकं कुलपांसनः।
दुर्जातीयेन येन त्वमीदृशो जनितः सुतः॥ ७

न चात्मनो गुणांस्तात प्रवदन्ति मनीषिणः।
परेणोक्ता गुणा गौण्यं यान्ति वेदार्थसम्मिताः॥ ८

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! यदुकुलके उन सभी श्रेष्ठ पुरुषोंने यदुकुलतिलक वसुदेवपर आक्षेप होता देख शीघ्र ही हाथोंसे अपने-अपने कान बंद कर लिये। उन सबको यह निश्चय हो गया कि कंसकी आयु समाप्त हो चली है॥ १॥ उसी समाजमें वक्ताओंमें श्रेष्ठ अन्धक भी थे, जिनके मनमें कंससे तनिक भी भय नहीं था। उन्होंने धैर्यसे अपनी वाणीको विकाररहित रखते हुए कंससे ओजस्वी स्वरमें कहा— ॥ २॥ 'बेटा! तुमने जो इतनी देरतक भाषण देनेका कष्ट उठाया है, तुम्हारा यह परिश्रम मेरे मतमें आदर या प्रशंसाके योग्य नहीं है। यह सर्वथा अनुचित है। श्रेष्ठ पुरुषोंने इसकी सदा निन्दा की है। विशेषतः अपने बन्धु-बान्धवोंके प्रति ऐसा आक्षेप सर्वथा निन्दित है॥ ३॥ वीर! अब इस समय मैं जो कुछ कहता हूँ, उसे ध्यान देकर सुनो। यदि तुम यादव नहीं हो या अपनेको यादव नहीं मानते हो तो ये यदुवंशी तुम्हें जबरदस्ती यादव नहीं बना रहे हैं (और न बनाना चाहते हैं)॥ ४॥ वत्स! जिनके शासक तुम हो, वे वृष्णिवंशी आदर और प्रशंसाके योग्य हो ही नहीं सकते हैं। इक्ष्वाकुवंशमें एक प्रजापीड़क राजा उत्पन्न हुआ था, जो स्वयं ही किसी समय राज्य छोड़कर भाग गया अथवा मिट गया (इस यदुकुलमें तुम भी वैसे ही जान पड़ते हो, अतः तुम्हारी भी वैसी ही दशा होनेवाली है)॥ ५॥ तात! तुम भोज हो, यादव हो अथवा कंस हो या जैसा-तैसा कोई भी हो, तुम्हारा मस्तक तुम्हारे साथ ही उत्पन्न हुआ है (और वह अभीतक मौजूद है)। तुम उसपर बड़ी-बड़ी जटाएँ रखा लो अथवा मूँड़ मुड़ा लो (यदि तुम यादव रहना नहीं चाहते तो जो चाहो, वही बन जाओ)॥ ६॥ मेरी दृष्टिमें तो यह उग्रसेन शोचनीय है, जो हमलोगोंमें कुलाङ्गार पैदा हो गया और जिस दुर्जातिने तुम्हारे-जैसे बेटेको जन्म दिया॥ ७॥ तात! मनीषी पुरुष अपने मुखसे अपने गुणोंका बखान नहीं करते हैं। दूसरेके द्वारा वर्णित या प्रशंसित हुए गुण ही सफल होते और वेदार्थके तुल्य प्रामाणिक माने जाते हैं'॥ ८॥

पृथिव्यां यदुवंशोऽयं निन्दनीयो महीक्षिताम्।
बालः कुलान्तकृन्मूढो येषां त्वमनुशासिता॥ ९

असाधुमद्भिर्वाक्यैश्च त्वया साध्विति भाषितैः।
न चाप्यासादितं कार्यमात्मा च विवृतः कृतः॥ १०

गुरोरनवलिप्तस्य मान्यस्य महतामपि।
क्षेपणं कः शुभं मन्ये द्विजस्येव वधे कृते॥ ११

मान्याश्चैवाभिगम्याश्च वृद्धास्तात यथाग्नयः।
क्रोधो हि तेषां प्रदहेल्लोकानन्तर्गतानपि॥ १२

बुधेन तात दान्तेन नित्यमभ्युच्छ्रितात्मना।
धर्मस्य गतिरन्वेष्या मत्स्यस्य गतिरप्स्विव॥ १३

केवलं त्वं तु दर्पेण वृद्धानग्निसमानिह।
वाचा तुदसि मर्मघ्न्या अमन्त्रोक्ता यथाऽऽहुतिः॥ १४

वसुदेवं च पुत्रार्थे यदिमं परिगर्हसि।
तत्र मिथ्या प्रलापं ते निन्दामि कृपणं वचः॥ १५

दारुणे च पिता पुत्रे नैव दारुणतां व्रजेत्।
पुत्रार्थे ह्यापदः कष्टाः पितरः प्राप्नुवन्ति हि॥ १६

छादितो वसुदेवेन यदि पुत्रः शिशुस्तदा।
मन्यसे यद्यकर्तव्यं तत् पृच्छ पितरं स्वकम्॥ १७

गर्हता वसुदेवं च यदुवंशं च निन्दता।
त्वया यादवपुत्राणां वैरजं विषमर्जितम्॥ १८

अकर्तव्यं यदि कृतं वसुदेवेन पुत्रजम्।
किमर्थमुग्रसेनेन शिशुस्त्वं न विनाशितः॥ १९

'भूमण्डलमें यह यदुवंश समस्त भूपालोंके लिये निन्दनीय बन गया; क्योंकि तुम्हारे समान कुलनाशक, मूर्ख और अविवेकी बालक इन यादवोंका शासक है॥ ९॥ तुमने निन्दायुक्त वचनोंको उत्तम मानकर जो यहाँ कहा है, उनसे कोई कार्य तो सिद्ध हुआ नहीं; केवल तुम्हारे स्वरूपका स्पष्टीकरण हो गया है (इन बातोंसे सब लोग यह जान गये कि तुम कितने ओछे हो!)॥ १०॥ जो अहंकाररहित तथा महापुरुषोंके लिये भी माननीय गुरुजन हैं, उनपर आक्षेप करना ब्रह्महत्याके समान है। उसे करके कौन अपने लिये कल्याणकी आशा कर सकता है॥ ११॥ तात! वृद्ध पुरुष अग्नियोंके समान आदरणीय तथा सेव्य होते हैं, उनका क्रोध आन्तरिक साधनाओंसे प्राप्त हुए लोकोंको भी जलाकर भस्म कर सकता है॥ १२॥ तात! जिसका आत्मा उन्नतिके पथपर अग्रसर है तथा जो जितेन्द्रिय एवं विवेकशील विद्वान् है, उस पुरुषको धर्मकी गतिका सदा ही अन्वेषण करना चाहिये, जैसे जलमें मछलीकी गति अत्यन्त सूक्ष्म या अव्यक्त होती है, उसी प्रकार धर्मकी गति भी सूक्ष्म है॥ १३॥ तुम तो केवल अहंकारवश यहाँ बैठे हुए अग्निके समान तेजस्वी वृद्ध पुरुषोंको अपनी मर्मभेदिनी वाणीद्वारा पीड़ा दे रहे हो। जैसे मन्त्रका उच्चारण किये बिना दी हुई आहुति व्यर्थ होती है, उसी प्रकार तुम्हारी ये आक्षेपपूर्ण बातें निष्फल हैं॥ १४॥ वसुदेवने अपने पुत्रकी रक्षाके लिये जो कुछ किया है, उसके लिये जो तुम इनपर आक्षेप करते हो, वह सब तुम्हारा मिथ्या प्रलाप है। उस विषयमें कही गयी तुम्हारी इन कायरतापूर्ण बातोंकी मैं निन्दा करता हूँ॥ १५॥ पुत्र क्रूर स्वभावका हो जाय तो भी पिता उसके प्रति निष्ठुर नहीं हो सकता; क्योंकि पुत्रोंके लिये पिताओंको कितनी ही कष्टदायिनी विपत्तियाँ झेलनी पड़ती हैं॥ १६॥ यदि वसुदेवने उस समय अपने पुत्रको उसकी रक्षाके लिये छिपा दिया था तो यह कोई अनुचित कर्म नहीं किया। यदि तुम इसे न करनेयोग्य बुरा कर्म मानते हो तो इस विषयमें अपने पितासे ही पूछो॥ १७॥ वसुदेवपर आक्षेप और यादवकुलकी निन्दा करके तुमने यहाँ यादवकुमारोंके वैरजनित विषका ही उपार्जन किया है॥ १८॥ यदि वसुदेवने अपने पुत्रके प्राण बचाकर अनुचित कर्म किया है तो उग्रसेनने शैशवावस्थामें तुम्हें क्यों नहीं मार डाला था'॥ १९॥

पुन्नाम्नो नरकात् पुत्रो यस्मात् त्राता पितॄंस्तदा।
तस्माद् ब्रुवन्ति पुत्रेति पुत्रं धर्मविदो जनाः ॥ २०

जात्यां हि यादवः कृष्णः स च संकर्षणो युवा।
त्वं चापि विधृतस्ताभ्यां जातवैरेण चेतसा ॥ २१

उद्धूतानीह सर्वेषां यदूनां हृदयानि वै।
वसुदेवे त्वयाऽऽक्षिप्ते वासुदेवे च कोपिते ॥ २२

कृष्णे च भवतो द्वेष्ये वसुदेवविगर्हणात्।
शंसन्ति चेमानि भयं निमित्तान्यशुभानि ते ॥ २३

सर्पाणां दर्शनं तीव्रं दुःस्वप्नानां निशाक्षये।
पुर्या वैधव्यशंसीनि कारणैरनुमीमहे ॥ २४

एष घोरो ग्रहः स्वातीमुल्लिखन् खे गभस्तिभिः।
वक्रमङ्गारकश्चक्रे चित्रायां घोरदर्शनः ॥ २५

बुधेन पश्चिमा संध्या व्याप्ता घोरेण तेजसा।
वैश्वानरपथे शुक्रो ह्यतिचारं चचार ह ॥ २६

केतुना धूमकेतोस्तु नक्षत्राणि त्रयोदश।
भरण्यादीनि भिन्नानि नानुयान्ति निशाकरम् ॥ २७

प्राक्संध्या परिघग्रस्ता भाभिर्बाधति भास्करम्।
प्रतिलोमं च यान्त्येव व्याहरन्तो मृगद्विजाः ॥ २८

शिवा श्मशानान्निष्क्रम्य निःश्वासाङ्गारवर्षिणी।
उभे संध्ये पुरीं घोरा पर्येति बहु वाशती ॥ २९

'पुत्र पुत् नामक नरकसे पितरोंकी रक्षा करता है, इसलिये धर्मज्ञ पुरुष पुत्रको पुत्र कहते हैं ॥ २० ॥ श्रीकृष्ण और नवयुवक संकर्षण भी यादव ही हैं, किंतु तुमने उनके उत्पन्न होते ही उनसे वैर बाँध लिया; फिर उन दोनोंने मनमें वैरभावको स्थान देकर तुमसे शत्रुता बाँध ली है (अतः इस वैरभावमें प्रथम अपराध तुम्हारा ही है) ॥ २१ ॥ तुमने वसुदेवपर आक्षेप किया और वसुदेव-पुत्र श्रीकृष्णके मनमें अपने प्रति क्रोध उत्पन्न कर दिया, इससे समस्त यादवोंके हृदय यहाँ कम्पित हो उठे हैं ॥ २२ ॥ एक तो श्रीकृष्णके प्रति तुम्हारा द्वेष था ही, दूसरे तुमने वसुदेवकी भरपूर निन्दा भी कर डाली, इससे ये अशुभ-सूचक अपशकुन प्रकट होकर तुम्हारे लिये भयकी प्राप्ति बता रहे हैं ॥ २३ ॥ जब रात समाप्त हो रही हो, उस समय सर्पों और बुरे स्वप्नोंका दर्शन अत्यन्त कष्टदायक होता है। ये जो शकुन दिखायी देते हैं, वे इस नगरीके भावी वैधव्यकी सूचना देनेवाले हैं। अबतक जो कारण प्राप्त हुए हैं, उनसे हमें ऐसा ही अनुमान होता है ॥ २४ ॥ यह भयंकर ग्रह राहु आकाशमें अपनी किरणोंद्वारा स्वातिका वेध कर रहा है तथा भयानक दिखायी देनेवाला मंगल सर्वतोभद्रचक्रमें वक्रीभूत होकर चित्रा नक्षत्रपर स्थित है* ॥ २५ ॥ बुधने भयानक तेजसे पश्चिम संध्याको व्याप्त कर रखा है (अर्थात् वे पश्चिम दिशामें उदित हो रहे हैं, ऐसा होना राज्यभंगका सूचक है) तथा शुक्रने वैश्वानरपथ (सूर्यमार्ग)-पर अतिचार गतिसे चलना आरम्भ किया है (सूर्यको लाँघकर जाना ही अतिचार है) ॥ २६ ॥ धूमकेतु नामक उत्पात-ग्रहके पुच्छभागसे भरणी आदि तेरह नक्षत्र विद्ध हो गये हैं, इसलिये वे चन्द्रमाका अनुसरण नहीं करते हैं ॥ २७ ॥ पूर्वकालकी संध्या परिघसे† ग्रस्त है। वह अपनी प्रभाओंद्वारा सूर्यदेवको बाधा पहुँचाती है तथा पशु और पक्षी अपनी बोली बोलते हुए प्रतिकूल दिशासे होकर जाते हैं ॥ २८ ॥ दोनों संध्याओंके समय एक भयानक गीदड़ी श्मशानभूमिसे निकलकर अपने निःश्वाससे अङ्गारकी वर्षा करती और बहुत बोलती हुई मथुरापुरीके चारों ओर चक्कर लगाती है' ॥ २९ ॥

* ज्योतिषके अनुसार सर्वतोभद्र नामक चक्रमें मृगशिरा कंसका जन्म-नक्षत्र है, उससे दशम नक्षत्र चित्रा है, जो उसीका कर्म-नक्षत्र है। वहीं भयंकर ग्रह राहु, जो क्रूर ग्रह माना गया है, स्थित है। मंगल भी वक्रगतिसे वहीं आ गया है। इन दोनोंने कर्म-नक्षत्रको व्याप्त करके जन्म-नक्षत्रको विद्ध कर दिया है। इसका फल बताते हुए अन्धक कहते हैं—'कंस! तुम्हारा जीवित रहनेके लिये जो प्रयत्न है, वह निष्फल होगा और तुम्हारे देहका भी नाश हो जायगा।' (नीलकण्ठी)

† सूर्यमण्डलमें उगा हुआ तिरछा डंडा परिघ कहलाता है।

उल्का निर्घातनादेन पपात धरणीतले।
चलत्यपर्वणि मही गिरीणां शिखराणि च॥ ३०

ग्रस्तः स्वर्भानुना सूर्यो दिवा नक्तमजायत।
धूमोत्पातैर्दिशो व्याप्ताः शुष्काशनिसमाहताः॥ ३१

प्रस्रवन्ति घना रक्तं साशनिस्तनयित्नवः।
चलिता देवताः स्थानात् त्यजन्ति विहगा नगान्॥ ३२

यानि राजविनाशाय दैवज्ञाः कथयन्ति ह।
तानि सर्वाणि पश्यामो निमित्तान्यशुभानि वै॥ ३३

त्वं चापि स्वजनद्वेषी राजधर्मपराङ्मुखः।
अनिमित्तागतक्रोधः संनिकृष्टभयो ह्यसि॥ ३४

यस्त्वं देवोपमं वृद्धं वसुदेवं वसूपमम्।
मोहात् क्षिपसि दुर्बुद्धे कुतस्ते शान्तिरात्मनः॥ ३५

त्वद्गतो यो हि नः स्नेहस्तं त्यजामोऽद्य वै वयम्।
अहितं स्वस्य वंशस्य न त्वां क्षणमुपास्महे॥ ३६

स हि दानपतिर्धन्यो यो द्रक्ष्यति वने गतम्।
पुण्डरीकविशालाक्षं कृष्णमक्लिष्टकारिणम्॥ ३७

छिन्नमूलो ह्ययं वंशो यदूनां त्वत्कृते कृतः।
कृष्णो ज्ञातीन् समानाय्य स संधानं करिष्यति॥ ३८

क्षान्तमेव तवानेन वसुदेवेन धीमता।
कालसम्यक्परिज्ञानो ब्रूहि त्वं यद्यदिच्छसि॥ ३९

मह्यं तु रोचते कंस वसुदेवसहायवान्।
गच्छ कृष्णस्य निलयं संधिस्तेन च रोचताम्॥ ४०

'कुछ ही समय पहले वज्रपातकी-सी ध्वनिके साथ पृथ्वीपर उल्कापात हुआ है। यह पृथ्वी तथा पर्वतोंके शिखर अकस्मात् काँपने लगते हैं॥ ३०॥ अभी पिछले दिनों राहुने सूर्यपर ग्रहण लगा दिया था, जिससे दिनमें ही रात हो गयी थी। धूम और उत्पातोंसे सम्पूर्ण दिशाएँ व्याप्त हैं। सूखेमें ही बिजलियाँ गिरती हैं॥ ३१॥ मेघ बिजली और गड़गड़ाहटके साथ रक्तकी वर्षा करते हैं। देवताओंकी प्रतिमाएँ अपने स्थानसे हट जाती हैं और पक्षी वृक्षोंको त्याग देते हैं॥ ३२॥ ज्योतिषी लोग राजाके विनाशकी सूचना देनेवाले जो-जो अशुभ निमित्त (अपशकुन) बताते हैं, उन सबको हमलोग देख रहे हैं॥ ३३॥ तुम भी स्वजनोंसे द्वेष रखते हो, राजधर्मसे विमुख हो चुके हो और अकारण ही तुम्हें क्रोध आ जाता है, इससे जान पड़ता है, निकट भविष्यमें ही तुम्हारे ऊपर भय आनेवाला है॥ ३४॥ दुर्बुद्धे! तुम जो देवताओं तथा वसुओंके समान तेजस्वी बूढ़े वसुदेवपर मोहवश आक्षेप कर रहे हो, इससे तुम्हारी आत्माको शान्ति कैसे मिल सकती है॥ ३५॥ तुम्हारे प्रति जो हमारा स्नेह रहा है, उसे हमलोग आज त्याग देते हैं। तुम अपने वंशका अहित करनेवाले हो, अतः अब हम एक क्षण भी तुम्हारे पास नहीं बैठेंगे॥ ३६॥ वे दानपति अक्रूर धन्य हैं, जो आज वनमें गये हुए अनायास ही महान् कर्म करनेवाले कमलनयन श्रीकृष्णको अपनी आँखोंसे देखेंगे॥ ३७॥ तुम्हारे कारण इस यदुवंशकी जड़ कट गयी है। अब श्रीकृष्ण ही आकर समस्त भाई-बन्धुओंको जुटायेंगे और उनमें मेल करायेंगे॥ ३८॥ इन बुद्धिमान् वसुदेवने तो तुम्हारे अपराधको क्षमा ही कर दिया है। कालने तुम्हारी विवेकशक्ति नष्ट कर दी, अतः तुम जो-जो चाहो, बकते रहो॥ ३९॥ कंस! मुझे तो यही अच्छा लगता है कि तुम वसुदेवको साथ लेकर श्रीकृष्णके स्थानपर जाओ और उनके साथ संधि करना स्वीकार करो'॥ ४०॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे विष्णुपर्वणि अन्धकवचने त्रयोविंशोऽध्यायः॥ २३॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत विष्णुपर्वमें अन्धकका वचनविषयक तेईसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ २३॥

चतुर्विंशोऽध्यायः

केशीके अत्याचार और श्रीकृष्णद्वारा उसका वध

वैशम्पायन उवाच

अन्धकस्य वचः श्रुत्वा कंसः संरक्तलोचनः।
न किंचिदब्रवीत् क्रोधाद् विवेश स्वं निकेतनम्॥ १

ते च सर्वे यथावेश्म यादवाः श्रुतविस्तराः।
जग्मुर्विगतसंकल्पाः कंसवैकृतशंसिनः॥ २

अक्रूरोऽपि यथाऽऽज्ञप्तः कृष्णदर्शनलालसः।
जगाम रथमुख्येन मनसा तुल्यगामिना॥ ३

कृष्णस्यापि निमित्तानि शुभान्यङ्गगतानि वै।
पितृतुल्येन शंसन्ति बान्धवेन समागमम्॥ ४

प्रागेव च नरेन्द्रेण माथुरेणौग्रसेनिना।
केशिनः प्रेषितो दूतो वधायोपेन्द्रकारणात्॥ ५

स च दूतवचः श्रुत्वा केशी क्लेशकरो नृणाम्।
वृन्दावनगतो गोपान् बाधते स्म दुरासदः॥ ६

मानुषं मांसमश्नानः क्रुद्धो दुष्टपराक्रमः।
दुर्दान्तो वाजिदैत्योऽसावकरोत् कदनं महत्॥ ७

निघ्नन् गा वै सगोपालान् गवां पिशितभोजनः।
दुर्मदः कामचारी च स केशी निरवग्रहः॥ ८

तदरण्यं श्मशानाभं नृणां मांसास्थिभिर्वृतम्।
यत्रास्ते स हि दुष्टात्मा केशी तुरगदानवः॥ ९

खुरैर्दारयते भूमिं वेगेनारुजते द्रुमान्।
हेषितैः स्पर्द्धते वायुं प्लुतैर्लङ्घयते नभः॥ १०

अतिप्रवृद्धो मत्तश्च दुष्टोऽश्वो वनगोचरः।
आकम्पितसटो रौद्रः कंसस्य चरितानुगः॥ ११

ईरिणं तद् वनं सर्वं तेनासीत् पापकर्मणा।
कृतं तुरगदैत्येन सर्वान् गोपाञ्जिघांसता॥ १२

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! अन्धककी बातें सुनकर कंसकी आँखें क्रोधसे लाल हो गयीं। वह उनसे कुछ नहीं बोला और रोषपूर्वक उठकर अपने महलमें चला गया॥ १॥ फिर वे सब यादव, जो वहाँकी सारी बातें विस्तारपूर्वक सुन चुके थे, निराश होकर अपने-अपने घरको लौट गये। वे मार्गमें यह चर्चा कर रहे थे कि कंसका मस्तिष्क खराब हो गया है॥ २॥ अक्रूरके मनमें भगवान् श्रीकृष्णके दर्शनकी लालसा जाग उठी थी, अतः वे भी कंसकी आज्ञाके अनुसार उठे और मनके समान शीघ्रगामी श्रेष्ठ रथपर आरूढ़ हो वहाँसे चल दिये॥ ३॥ उधर श्रीकृष्णको भी अपने अङ्गोंमें ही कुछ ऐसे शुभ लक्षण दिखायी देते थे, जो पिता-जैसे बान्धवसे भेंट होनेकी सूचना दे रहे थे॥ ४॥ (अक्रूरको भेजनेसे) पहले ही मथुराके राजा उग्रसेनकुमार कंसने केशीके पास दूत भेजा और कहलाया कि तुम श्रीकृष्णका वध कर डालो॥ ५॥ दूतकी बात सुनकर मनुष्योंको क्लेश प्रदान करनेवाला दुर्जय दैत्य केशी वृन्दावनमें जाकर गोपोंको सताने लगा॥ ६॥ केशी घोड़ेके रूपमें रहनेवाला दुर्दान्त दैत्य था और मनुष्यका मांस खाता था। उस दुष्ट पराक्रमी असुरने कुपित होकर वहाँ महान् संहार आरम्भ कर दिया॥ ७॥ वह ग्वालोंसहित गौओंको मार डालता और गौओंका मांस खाया करता था। मदमत्त केशी स्वच्छन्द विचरनेवाला और उच्छृङ्खल था॥ ८॥ अश्वरूपधारी दुष्टात्मा दानव केशी जहाँ रहता था, वह वन मनुष्योंके मांस और हड्डियोंसे व्याप्त होकर श्मशान-भूमिके समान प्रतीत होता था॥ ९॥ वह टापोंसे पृथ्वीको विदीर्ण कर देता और वेगसे वृक्षोंको भी तोड़ डालता था, हींसते या हिनहिनाते समय प्रचण्ड वायुके कोलाहलसे होड़ लगाता था और उछलकर आकाशको भी लाँघ जाता था॥ १०॥ वह वनमें विचरनेवाला दुष्ट अश्व बहुत बड़ा और मतवाला था। उसके अयाल कुछ हिलते रहते थे। वह भयंकर दैत्य कंसके चरित्रका अनुसरण करनेवाला था॥ ११॥ समस्त गोपोंको मार डालनेकी इच्छावाले उस पापाचारी अश्वरूपधारी दैत्यने वह सारा वन मनुष्योंसे सूना कर दिया था॥ १२॥

तेन दुष्टप्रचारेण दूषितं तद् वनं महत्।
न नृभिर्गोधनैर्वापि सेव्यते वनवृत्तिभिः॥ १३

निःसम्पातः कृतः पन्थास्तेन तद्विषयाश्रयः।
मदाच्चलितवृत्तेन नृमांसान्यश्नता भृशम्॥ १४

नृशब्दानुसरः क्रुद्धः स कदाचिद् वनागमे।
जगाम घोषसंवासं चोदितः कालधर्मणा॥ १५

तं दृष्ट्वा दुद्रुवुर्गोपाः स्त्रियश्च शिशुभिः सह।
क्रन्दमाना जगन्नाथं कृष्णं नाथमुपाश्रिताः॥ १६

तासां रुदितशब्देन गोपानां क्रन्दितेन च।
दत्त्वाभयं तु कृष्णो वै केशिनं सोऽभिदुद्रुवे॥ १७

केशी चाप्युन्नतग्रीवः प्रकाशदशनेक्षणः।
हेषमाणो जवोदग्रो गोविन्दाभिमुखो ययौ॥ १८

तमापतन्तं सम्प्रेक्ष्य केशिनं हयदानवम्।
प्रत्युज्जगाम गोविन्दस्तोयदः शशिनं यथा॥ १९

केशिनस्तु तमभ्याशे दृष्ट्वा कृष्णमवस्थितम्।
मनुष्यबुद्धयो गोपाः कृष्णमूचुर्हितैषिणः॥ २०

कृष्ण तात न खल्वेष सहसा ते हयाधमः।
उपसर्प्यो भवान् बालः पापश्चैष दुरासदः॥ २१

एष कंसस्य सहजः प्राणस्तात बहिश्चरः।
उत्तमश्च हयेन्द्राणां दानवोऽप्रतिमो युधि॥ २२

त्रासनः सर्वभूतानां तुरगाणां महाबलः।
अवध्यः सर्वभूतानां प्रथमः पापकर्मणाम्॥ २३

गोपानां तद् वचः श्रुत्वा वदतां मधुसूदनः।
केशिना सह युद्धाय मतिं चक्रेऽरिसूदनः॥ २४

ततः सव्यं दक्षिणं च मण्डलं स परिभ्रमन्।
पद्भ्यामुभाभ्यां स हयः क्रोधेनारुजते द्रुमान्॥ २५

मुखे लम्बसटे चास्य स्कन्धे केशघनावृते।
वलयोऽभ्रतरङ्गाभाः सुस्रुवुः क्रोधजं जलम्॥ २६

उस दुराचारीने वह विशाल वन दूषित कर डाला था। वनसे ही जीवन-निर्वाह करनेवाले मनुष्य और गोधन भी कभी उस वनका सेवन नहीं करते थे॥ १३॥ मदके कारण वह सदाचारसे भ्रष्ट हो चुका था और अधिकतर मनुष्योंके ही मांस खाता था। उसके निवास-स्थानमें होकर जो रास्ता जाता था, उसे उसने अगम्य बना दिया था॥ १४॥ एक समय मनुष्योंके शब्दका अनुसरण करता हुआ केशी क्रोधमें भरकर वृन्दावनके भीतर गोपोंकी बस्तीमें गया, उस समय उसपर काल सवार था॥ १५॥ उसे देखते ही गोप और गोपाङ्गनाएँ शिशुओंको साथ लेकर भागीं तथा करुण क्रन्दन करती हुई जगत्के रक्षक, अपने स्वामी श्रीकृष्णकी शरणमें आ पहुँचीं॥ १६॥ गोपाङ्गनाओंके रोदन और गोपोंके क्रन्दनसे द्रवित होकर श्रीकृष्णने उन्हें अभय कर दिया। फिर वे केशीपर टूट पड़े॥ १७॥ केशी भी अपनी गर्दन ऊपर उठाये हींसता हुआ बड़े वेगसे श्रीकृष्णकी ओर चला। उस समय वह दाँत दिखाता हुआ आँखें फाड़-फाड़कर उनकी ओर देख रहा था॥ १८॥ उस अश्वरूपधारी दानव केशीको अपनी ओर आते देख भगवान् श्रीकृष्ण उसका सामना करनेके लिये आगे बढ़े, मानो श्याम मेघ चन्द्रमाकी ओर जा रहा हो॥ १९॥ श्रीकृष्णको केशीके निकट खड़ा हुआ देख उनके प्रति मनुष्य-बुद्धि रखनेवाले हितैषी गोप उनसे इस प्रकार बोले—॥ २०॥ 'तात श्रीकृष्ण! तुम सहसा इस नीच अश्वके पास न चले जाना; क्योंकि तुम अभी बालक हो और यह पापात्मा एक दुर्धर्ष दैत्य है॥ २१॥ तात! यह कंसका बाहर विचरनेवाला सहज प्राण है, बड़े-बड़े अश्वराजोंमें उत्तम है। युद्धमें इस दानवकी समानता करनेवाला कोई नहीं है॥ २२॥ समस्त प्राणियोंको त्रास देनेवाला यह दैत्य घोड़ोंमें सबसे अधिक बलवान् है। सम्पूर्ण भूतोंमेंसे किसीके लिये भी यह वध्य नहीं है। पापाचारियोंमें यह सबसे अग्रगण्य है'॥ २३॥ उपर्युक्त बातें कहनेवाले गोपोंका वह कथन सुनकर शत्रुसूदन भगवान् मधुसूदनने केशीके साथ युद्धके लिये विचार किया॥ २४॥ तदनन्तर वह अश्व दायें-बायें चक्कर काटता हुआ अपने दोनों पैरोंसे क्रोधपूर्वक वृक्षोंको तोड़ने लगा॥ २५॥ उसके लम्बे अयालवाले मुख और घने केशोंसे ढके हुए कंधेपर जो मेघोंकी लहरोंके समान वलियाँ (चमड़ोंके सिकुड़नेसे बनी हुई रेखाएँ) थीं, वे क्रोधजनित जल (पसीना) टपकाने लगीं॥ २६॥

स फेनं वक्त्रजं चैव ववर्ष रजसावृतम्।
हिमकाले यथा व्योम्नि नीहारमिव चन्द्रमाः॥ २७

गोविन्दमरविन्दाक्षं हेषितोद्गारशीकरैः।
स फेनैर्वक्त्रनिर्गीर्णैः प्रोक्षयामास भारत॥ २८

खुरोद्धूतावसिक्तेन मधुकक्षोदपाण्डुना।
रजसा स हयः कृष्णं चकारारुणमूर्धजम्॥ २९

प्लुतवल्गितपादस्तु तक्षमाणो धरां खुरैः।
दन्तान्निर्दशमानस्तु केशी कृष्णमुपाद्रवत्॥ ३०

स संसक्तस्तु कृष्णेन केशी तुरगसत्तमः।
पूर्वाभ्यां चरणाभ्यां वै कृष्णं वक्षस्यताडयत्॥ ३१

पुनः पुनः स च बली प्राहिणोत् पार्श्वतः खुरान्।
कृष्णस्य दानवो घोरं प्रहारममितौजसः॥ ३२

वक्त्रेण चास्य घोरेण तीक्ष्णदंष्ट्रायुधेन वै।
अदशद् बाहुशिखरं कृष्णस्य रुषितो हयः॥ ३३

स लम्बकेसरसटः कृष्णेन सह सङ्गतः।
रराज केशी मेघेन संसक्तः ख इवांशुमान्॥ ३४

उरस्तस्योरसा हन्तुमियेष बलवान् हयः।
वेगेन वासुदेवस्य क्रोधाद् द्विगुणविक्रमः॥ ३५

तस्योत्सिक्तस्य बलवान् कृष्णोऽप्यमितविक्रमः।
बाहुमाभोगिनं कृत्वा मुखे क्रुद्धः समादधत्॥ ३६

स तं बाहुमशक्तो वै खादितुं भेत्तुमेव च।
दशनैर्मूलनिर्मुक्तैः सफेनं रुधिरं वमन्॥ ३७

विपाटिताभ्यामोष्ठाभ्यां कटाभ्यां विदलीकृतः।
अक्षिणी विवृते चक्रे विसृते मुक्तबन्धने॥ ३८

निरस्तहनुराविष्टः शोणिताक्तविलोचनः।
उत्कर्णो नष्टचेतास्तु स केशी बह्वचेष्टत॥ ३९

उत्पतन्नसकृत्पादैः शकृन्मूत्रं समुत्सृजन्।
खिन्नाङ्गरोमा श्रान्तस्तु निर्यत्नचरणोऽभवत्॥ ४०

वह अपने मुखसे पैदा हुए धूलमिश्रित फेनकी वर्षा करने लगा। मानो हेमन्त-ऋतुमें चन्द्रमा आकाशमें कुहासा गिरा रहा हो॥ २७॥ भरतनन्दन! उसने अपने हींसनेके साथ निकले हुए जलकणों तथा मुखसे गिरते हुए फेनोंद्वारा कमलनयन श्रीकृष्णको नहला दिया॥ २८॥ अपनी टापोंसे उठकर फैली हुई धूलसे, जो मुलेठीके चूर्णकी भाँति कुछ-कुछ पीले रंगकी थी, उस घोड़ेने श्रीकृष्णके मस्तकके बालोंको कुछ लाल-सा कर दिया॥ २९॥ केशीके पैर वहाँ उछल-कूद मचा रहे थे। वह अपनी टापोंसे पृथ्वीको खोदता और दाँतोंको पीसता हुआ श्रीकृष्णकी ओर दौड़ा॥ ३०॥ अश्वोंमें श्रेष्ठ केशी श्रीकृष्णके साथ उलझ गया। उसने अपने दोनों आगेवाले पैरोंसे उनकी छातीमें प्रहार किया॥ ३१॥ उस बलवान् दानवने अगल-बगलसे भी बारम्बार अपनी टाप चलायी और अमित तेजस्वी श्रीकृष्णपर घोर प्रहार किया॥ ३२॥ तीखी दाढ़ ही जिसका आयुध थी, उस भयानक मुखके द्वारा रोषमें भरे हुए उस घोड़ेने श्रीकृष्णकी भुजाके अग्रभागको दाँत गड़ाकर घायल कर दिया॥ ३३॥ लम्बे-लम्बे अयालसे सुशोभित केशी श्रीकृष्णके साथ जूझता हुआ उसी तरह शोभा पाने लगा, जैसे आकाशमें अंशुमाली सूर्य मेघके साथ उलझ गये हों॥ ३४॥ उस बलवान् घोड़ेका पराक्रम उसके क्रोधके कारण दूना बढ़ गया था। उसने श्रीकृष्णकी छातीपर अपनी छातीसे वेग-पूर्वक चोट पहुँचानेका विचार किया॥ ३५॥ तब अमित पराक्रमी बलवान् श्रीकृष्णने भी कुपित होकर उस घमंडी दैत्यके मुखमें अपनी एक बाँहको बहुत बड़ी करके डाल दिया॥ ३६॥ वह उनकी उस बाँहको अपने दाँतोंसे चबाने या विदीर्ण करनेमें समर्थ न हो सका, उलटे उसके दाँत ही जड़से उखड़ गये; साथ ही वह मुखसे फेनसहित रक्त वमन करने लगा॥ ३७॥ उसके ओठ और गलफर फटकर दो दलोंमें विभक्त हो गये। स्नायु-बन्धनके ढीले हो जानेसे केशीकी आँखें फटकर बाहर निकल आयीं॥ ३८॥ उसके होठोंका निचला भाग फटकर निकल गया। उस बाँहसे आविष्ट होनेके कारण उसके फटे हुए दोनों नेत्रोंसे रक्त बहने लगा। उसके कान भी उखड़कर गिर पड़े तथा चेतना नष्ट हो गयी। उस अवस्थामें केशी बारम्बार छटपटाने लगा॥ ३९॥ वह बार-बार पैरोंको उछालने और मल-मूत्र छोड़ने लगा। उसका एक-एक अङ्ग और रोम-रोम खिन्न हो उठा था। अन्तमें वह थक गया और उसके पैर निश्चेष्ट हो गये॥ ४०॥

केशिवक्त्रविलग्नस्तु कृष्णबाहुरशोभत।
व्याभुग्न इव घर्मान्ते चन्द्रार्धकिरणैर्घनः॥ ४१

केशी च कृष्णसंसक्तः शान्तगात्रो व्यरोचत।
प्रभातावनतश्चन्द्रः श्रान्तो मेरुमिवाश्रितः॥ ४२

तस्य कृष्णभुजोद्धूताः केशिनो दशना मुखात्।
पेतुः शरदि निस्तोयाः सिताभ्रावयवा इव॥ ४३

स तु केशी भृशं शान्तः कृष्णेनाक्लिष्टकर्मणा।
स्वभुजं स्वायतं कृत्वा पाटितो बलवत् तदा॥ ४४

स पाटितो भुजेनाजौ कृष्णेन विकृताननः।
केशी नदन्महानादं दानवो व्यथितस्तदा॥ ४५

विघूर्णमानस्त्रस्ताङ्गो मुखाद् रुधिरमुद्वमन्।
भृशं व्यङ्गीकृतवपुर्निकृत्तार्द्ध इवाचलः॥ ४६

व्यादितास्यो महारौद्रः सोऽसुरः कृष्णबाहुना।
निपपात यथा कृत्तो नागो हि द्विदलीकृतः॥ ४७

बाहुना कृत्तदेहस्य केशिनो रूपमाबभौ।
पशोरिव महाघोरं निहतस्य पिनाकिना॥ ४८

द्विपादपृष्ठपुच्छार्द्धे श्रवणैकाक्षिनासिके।
केशिनस्तद्द्विधाभूते द्वे चार्धे रेजतुः क्षितौ॥ ४९

केशिदन्तक्षतस्यापि कृष्णस्य शुशुभे भुजः।
वृद्धः साल इवारण्ये गजेन्द्रदशनाङ्कितः॥ ५०

तं हत्वा केशिनं युद्धे कल्पयित्वा च भागशः।
कृष्णः पद्मपलाशाक्षो हसंस्तत्रैव तस्थिवान्॥ ५१

तं हतं केशिनं दृष्ट्वा गोपा गोपस्त्रियस्तथा।
बभूवुर्मुदिताः सर्वे हतविघ्ना गतक्लमाः॥ ५२

दामोदरं तु श्रीमन्तं यथास्थानं यथावयः।
अभ्यनन्दन्प्रियैर्वाक्यैः पूजयन्तः पुनः पुनः॥ ५३

केशीके मुखमें लगी हुई श्रीकृष्णकी वह बाँह उसके मुखमण्डलसे आधी आवेष्टित-सी होकर वर्षा-कालमें आधे चन्द्रमाकी किरणोंसे घिरे हुए बादलके समान शोभा पाती थी॥ ४१॥ श्रीकृष्णसे सटे हुए केशीका शरीर शान्त हो गया था। उस समय वह उसी तरह शोभा पा रहा था, जैसे प्रभातकालमें अस्ताचलके शिखरपर पहुँचा हुआ चन्द्रमा थककर मेरुका आश्रय लेनेपर सुशोभित होता है॥ ४२॥ श्रीकृष्णकी भुजासे टकराकर केशीके सारे दाँत मुखसे बाहर गिर पड़े। वे ऐसे प्रतीत होते थे, मानो शरद्-ऋतुके जलशून्य श्वेत बादलोंके टुकड़े बिखरे हुए हों॥ ४३॥ जब केशी भलीभाँति शान्त हो गया, तब अनायास ही महान् कर्म करनेवाले श्रीकृष्णने अपनी बाँहको बहुत बड़ी करके उस दैत्यके शरीरको बलपूर्वक बीचसे चीर डाला॥ ४४॥ उस युद्धस्थलमें श्रीकृष्णकी भुजाद्वारा फाड़े गये केशीका मुख विकराल हो उठा। वह दानव व्यथित होकर बड़े जोर-जोरसे आर्तनाद करने लगा॥ ४५॥ उसके सारे अङ्ग शिथिल हो गये थे। वह चक्कर काटता हुआ मुँहसे खून उगल रहा था। उसका शरीर कई अङ्गोंसे हीन हो चुका था। वह ऐसा दिखायी देता था, मानो किसी पर्वतको बीचसे चीर डाला गया हो॥ ४६॥ श्रीकृष्णकी भुजासे जिसका मुँह फट गया था, वह दो भागोंमें बँटा हुआ महाभयङ्कर असुर दो टुकड़ोंमें कटे हुए हाथीके समान पृथ्वीपर गिर पड़ा॥ ४७॥ श्रीकृष्णकी भुजासे कटे हुए शरीरवाले केशीका रूप पिनाकपाणि भगवान् रुद्रद्वारा मारे गये पशु (महिषासुर)-के समान अत्यन्त भयंकर प्रतीत होता था॥ ४८॥ केशीके शरीरके वे दोनों खण्ड दो पाँव, आधी पीठ, आधी पूँछ तथा एक-एक कान, आँख और नासिकारन्ध्रसे युक्त हो पृथ्वीपर पड़े-पड़े (अनुपम) शोभा पा रहे थे॥ ४९॥ केशीके दाँतोंसे घायल हुई श्रीकृष्णकी वह बाँह ऐसी सुशोभित हो रही थी, मानो वनमें गजराजके दाँतोंके आघातचिह्नसे अङ्कित कोई बहुत बड़ा शालका वृक्ष हो॥ ५०॥ इस प्रकार युद्धमें केशीको मारकर उसके शरीरके टुकड़े-टुकड़े करके कमलनयन श्रीकृष्ण वहीं हँसते हुए खड़े रहे॥ ५१॥ उस केशीको मारा गया देख गोप और गोपाङ्गनाएँ बहुत प्रसन्न हुईं। सबके विघ्न नष्ट हो गये, कष्ट दूर हो गये॥ ५२॥ स्थान और अवस्थाके अनुसार सभी गोप बारम्बार श्रीमान् दामोदरका पूजन करते हुए प्रिय वचनोंद्वारा उनका अभिनन्दन करने लगे॥ ५३॥

गोपा ऊचुः

अहो तात कृतं कर्म हतोऽयं लोककण्टकः।
दैत्यः क्षितिचरः कृष्ण हयरूपं समास्थितः॥ ५४

कृतं वृन्दावनं क्षेमं सेव्यं नृमृगपक्षिणाम्।
घ्नता पापमिमं तात केशिनं हयदानवम्॥ ५५

हता नो बहवो गोपा गावो वत्सेषु वत्सलाः।
नैके चान्ये जनपदा हतानेन दुरात्मना॥ ५६

एष संवर्तकं कर्तुमुद्यतः खलु पापकृत्।
नृलोकं निर्नरं कृत्वा चर्तुकामो यथासुखम्॥ ५७

नैतस्य प्रमुखे स्थातुं कश्चिच्छक्तो जिजीविषुः।
अपि देवसमूहेषु किं पुनः पृथिवीतले॥ ५८

वैशम्पायन उवाच

अथाहान्तर्हितो विप्रो नारदः खगमो मुनिः।
प्रीतोऽस्मि विष्णो देवेश कृष्ण कृष्णेति चाब्रवीत्॥ ५९

नारद उवाच

यदिदं दुष्करं कर्म कृतं केशिजिघांसया।
त्वय्येव केवलं युक्तं त्रिदिवे त्र्यम्बकस्य वा॥ ६०

अहं युद्धोत्सुकस्तात त्वद्गतेनान्तरात्मना।
इदं नरहयं युद्धं द्रष्टुं स्वर्गादिहागतः॥ ६१

पूतनानिधनादीनि कर्माणि तव दृष्टवान्।
अहं त्वनेन गोविन्द कर्मणा परितोषितः॥ ६२

हयादस्मान्महेन्द्रोऽपि बिभेति बलसूदनः।
कुर्वाणाच्च वपुर्घोरं केशिनो दुष्टचेतसः॥ ६३

यत्त्वया पातितो देहो भुजेनायतपर्वणा।
एषोऽस्य मृत्युरन्ताय विहितो विश्वयोनिना॥ ६४

यस्मात् त्वया हतः केशी तस्मान्मच्छासनं शृणु।
केशवो नाम नाम्ना त्वं ख्यातो लोके भविष्यसि॥ ६५

गोप बोले—तात! तुमने अद्भुत कर्म किया है। यह समस्त जगत्के लिये कंटकरूप दैत्य आज तुम्हारे हाथसे मारा गया। श्रीकृष्ण! यह इस भूतलपर घोड़ेका रूप धारण करके विचरता था॥ ५४॥ तात! इस अश्वरूपधारी पापी दानव केशीका वध करके तुमने वृन्दावनको मनुष्यों तथा पशु-पक्षियोंके लिये सेव्य और क्षेमकारक बना दिया॥ ५५॥ इस दुरात्माने हमारे बहुत-से गोप मार डाले थे। बछड़ोंपर वात्सल्य रखनेवाली बहुत-सी गौओंका भी वध कर डाला था; इसके सिवा और भी कितने ही जनपद इसके हाथों नष्ट हो चुके थे॥ ५६॥ यह पापाचारी दानव निश्चय ही संसारका प्रलय करनेके लिये उद्यत हुआ था। मनुष्य-लोकको मनुष्योंसे सूना करके यहाँ सुखपूर्वक विचरनेकी इच्छा रखता था॥ ५७॥ जीवित रहनेकी इच्छावाला कोई भी पुरुष इसके सामने खड़ा नहीं हो सकता था। देवताओंके समूहमेंसे भी कोई इसका सामना नहीं कर सकता था, फिर भूतल-निवासियोंकी तो बात ही क्या है?॥ ५८॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! तदनन्तर आकाशचारी मुनि विप्रवर नारदजी आकाशमें अदृश्य भावसे खड़े हो बोले—'देवेश्वर विष्णो! कृष्ण! कृष्ण!! मैं आपपर बहुत प्रसन्न हूँ'॥ ५९॥

नारदजी फिर बोले—प्रभो! आपने केशीको मार डालनेकी इच्छासे जो यह दुष्कर कर्म किया है, यह केवल आपके ही योग्य था अथवा देवलोकमें केवल त्रिनेत्रधारी रुद्र ही ऐसा पराक्रम कर सकते थे॥ ६०॥ तात! मैं युद्ध देखनेको सदा ही उत्सुक रहता हूँ। अतः अपनी अन्तरात्मासे आपका ही चिन्तन करता हुआ यह मनुष्य और अश्वका संग्राम देखनेके लिये स्वर्गलोकसे यहाँ आया था॥ ६१॥ गोविन्द! आपके 'पूतनावध' आदि कर्मोंको भी मैं देख चुका हूँ। किंतु इस केशीके वधरूप कर्मसे मुझे विशेष संतोष हुआ है॥ ६२॥ भयानक रूप धारण करनेवाले इस दुरात्मा अश्व केशीसे बलसूदन देवराज इन्द्र भी डरते थे॥ ६३॥ आपने अपनी बाँहके एक भागको बड़ा करके उसके द्वारा जो इसके शरीरको फाड़ डाला है, विश्वयोनि ब्रह्माजीने इसकी मृत्युके लिये ऐसा ही विधान बनाया था॥ ६४॥ अब आप मेरा यह अनुशासन सुनें—आपने केशीका वध किया है, इसलिये संसारमें 'केशव' नामसे विख्यात होंगे॥ ६५॥

स्वस्त्यस्तु भवतो लोके साधु याम्यहमाशुगः।
कृत्यशेषं च ते कार्यं शक्तस्त्वमसि मा चिरम्॥ ६६

त्वयि कार्यान्तरगते नरा इव दिवौकसः।
विडम्बयन्तः क्रीडन्ति लीलां त्वद्बलमाश्रिताः॥ ६७

अभ्याशे वर्तते कालो भारतस्याहवोदधेः।
हस्तप्राप्तानि युद्धानि राज्ञां त्रिदिवगामिनाम्॥ ६८

पन्थानः शोधिता व्योम्नि विमानारोहणोर्ध्वगाः।
अवकाशा विभज्यन्ते शक्रलोके महीक्षिताम्॥ ६९

उग्रसेनसुते शान्ते पदस्थे त्वयि केशव।
अभितस्तन्महद् युद्धं भविष्यति महीक्षिताम्॥ ७०

त्वां चाप्रतिमकर्माणं संश्रयिष्यन्ति पाण्डवाः।
भेदकाले नरेन्द्राणां पक्षग्राहो भविष्यसि॥ ७१

त्वयि राजासनस्थे हि राजश्रियमनुत्तमाम्।
शुभां त्यक्ष्यन्ति राजानस्त्वत्प्रभावान्न संशयः॥ ७२

एष मे कृष्ण संदेशः श्रुतिभिः ख्यातिमेष्यति।
देवतानां दिविस्थानां जगतश्च जगत्पते॥ ७३

दृष्टं मे भवतः कर्म दृष्टश्चासि मया प्रभो।
कंसे भूयः समेष्यामि साधिते साधु याम्यहम्॥ ७४

जगत्‌में आपका (या आपसे जगत्‌का) कल्याण हो। आपको साधुवाद देकर मैं शीघ्र चला जाता हूँ। अब तो (कंसवध आदि) कृत्य शेष रह गये हैं, उन्हें आपको पूर्ण करना है। आप इसमें समर्थ हैं, अतः शीघ्र कर डालें; विलम्ब न होने दें॥ ६६॥ जब आप भूभार-हरण आदि अन्य कार्योंके लिये यहाँ (अवतार लेनेके लिये) चले आते हैं, तब आपके ही बलका आश्रय लेनेवाले देवता भी मनुष्योंकी भाँति आपकी लीलाका अनुकरण (अभिनय) करते हुए (नाटक आदि) खेलते हैं॥ ६७॥ समुद्रतुल्य महाभारतयुद्धका समय अब बहुत निकट है। मरकर स्वर्गमें जानेवाले राजाओंके लिये युद्धके अवसर हाथमें आ गये हैं॥ ६८॥ विमानोंके आरोहणके लिये आकाशमें जो ऊर्ध्वगामी मार्ग हैं, उनका शोधन कर दिया गया है (रुकावटें दूर कर दी गयी हैं)। इन्द्रलोकमें आनेवाले राजाओंके लिये पृथक्-पृथक् अवकाश (निवास-स्थान) बनाये जाते हैं॥ ६९॥ केशव! उग्रसेनकुमार कंसके मारे जानेपर जब आप यादवोंके संरक्षणके रूपमें मुख्य पदपर प्रतिष्ठित होंगे; तब सब ओर राजाओंका वह महान् युद्ध आरम्भ हो जायगा॥ ७०॥ आपके कर्म (या पराक्रम)-की कहीं तुलना नहीं है, अतः पाण्डवलोग आपकी ही शरण लेंगे। राजाओंमें भेदके अवसरपर जब युद्ध उपस्थित होगा, उस समय आप पाण्डवोंका ही पक्ष लेंगे॥ ७१॥ जब आप राजासनपर बैठेंगे, तब आपके प्रभावसे राजालोग अपनी उत्तम एवं शुभ राज्यलक्ष्मीको त्याग देंगे, इसमें संशय नहीं है॥ ७२॥ जगदीश्वर श्रीकृष्ण! यह मेरा तथा स्वर्गवासी देवताओंका संदेश है, जो श्रुतियोंद्वारा गूढ़ रूपसे प्रतिपादित है। * अब यह जगत्‌में भी विख्यात हो जायगा॥ ७३॥ प्रभो! मैंने आपका पराक्रम देखा, आपका भी दर्शन किया। साधुवाद! अब मैं जाता हूँ, कंसके मारे जानेपर मैं फिर आपसे मिलूँगा॥ ७४॥

* उन संदेशप्रतिपादक श्रुतियोंमेंसे एक श्रुति, जो महाभारतयुद्धपर प्रकाश डालती है, इस प्रकार है—"अहश्च कृष्णमहरर्जुनं च विवर्तेते रजसी वेद्याभिः। वैश्वानरो जायमानो न राजावातिरज्योतिषाग्निस्तमांसि" अर्थात् एक युद्धयज्ञका सम्बन्ध श्रीकृष्णसे है और दूसरे युद्धयज्ञका अर्जुनसे। उन दोनोंने एक साथ होकर जब कार्य किया, तब उनके द्वारा दो युद्धयज्ञ सम्पादित हुए। वे दोनों युद्धयज्ञ रजोगुणी थे; क्योंकि प्राप्य पैतृक सम्पत्तिको निमित्त बनाकर किये गये थे। वैश्वानर अर्थात् धर्म संसारमें जन्म ग्रहण करके (श्रीकृष्ण और अर्जुनकी सहायतासे) निश्चय ही राजा हुआ। उसने प्रकाशमान अग्निकी सहायतासे असुरोंका अन्धकार तिरोहित कर दिया था अर्थात् धर्मराजने खाण्डव-दाहके समय अग्निके दिये हुए चक्र और गाण्डीवकी सहायतासे श्रीकृष्ण और अर्जुनके पराक्रमद्वारा असुरोंका विध्वंस कराया। (नीलकण्ठीसे)

एवमुक्त्वा तु स तदा नारदः खं जगाम ह।
नारदस्य वचः श्रुत्वा देवसंगीतयोनिनः॥ ७५
तथेति स समाभाष्य पुनर्गोपान् समासदत्।
गोपाः कृष्णं समासाद्य विविशुर्व्रजमेव ह॥ ७६

ऐसा कहकर नारदजी तत्काल आकाशमें चले गये। देवसङ्गीतके उत्पत्तिस्थान नारदजीका पूर्वोक्त वचन सुनकर श्रीकृष्णने 'तथास्तु' कहकर उनकी बात मान ली, फिर वे गोपोंसे मिले। गोपगण श्रीकृष्णसे मिलकर उनके साथ ही पुनः व्रजमें प्रविष्ट हुए॥ ७५-७६॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे विष्णुपर्वणि केशिवधे चतुर्विंशोऽध्यायः॥ २४॥

इस प्रकार महाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत विष्णुपर्वमें केशीका वधविषयक चौबीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ २४॥

पञ्चविंशोऽध्यायः

अक्रूरका व्रजमें आकर भगवान् श्रीकृष्णको देखना और उनके विषयमें अनेक प्रकारकी बातें सोचना

वैशम्पायन उवाच

अथास्तं गच्छति तदा मन्दरश्मौ दिवाकरे।
संध्यारक्ततले व्योम्नि शशाङ्के पाण्डुमण्डले॥ १
नीडस्थेषु विहङ्गेषु सत्सु प्रादुष्कृताग्निषु।
ईषत्तमःसंवृतासु दिक्षु सर्वासु सर्वशः॥ २
घोषवासिषु सुप्तेषु वाशन्तीषु शिवासु च।
नक्तंचरेषु हृष्टेषु पिशिताशनकाङ्क्षिषु॥ ३
शक्रगोपाह्वयामोदे प्रदोषेऽभ्यासतस्करे।
संध्यामयीमिव गुहां सम्प्रतिष्ठे दिवाकरे॥ ४
अधिश्रयणवेलायां प्राप्तायां गृहमेधिनाम्।
वन्यैर्वैखानसैर्मन्त्रैर्हूयमाने हुताशने॥ ५
उपावृत्तासु वै गोषु दुह्यमानासु च व्रजे।
असकृद्व्याहरन्तीषु बद्धवत्सासु धेनुषु॥ ६
प्रकीर्णदामनीकेषु गास्तथैवाह्वयत्सु च।
सनिनादेषु गोपेषु काल्यमाने च गोधने॥ ७
करीषेषु प्रक्लृप्तेषु दीप्यमानेषु सर्वशः।
काष्ठभारानतस्कन्धैर्गोपैरभ्यागतैस्तथा॥ ८
किंचिदभ्युद्यते सोमे मन्दरश्मौ विराजति।
ईषद्विगाहमानायां रजन्यां दिवसे गते॥ ९

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! उस दिन जब सूर्यदेव अस्ताचलको जाने लगे, उनकी किरणें मन्द हो गयीं, पश्चिमके आकाशमें संध्याकी लाली छा गयी, चन्द्रमाका श्वेत-पीत मण्डल उदित होने लगा, पक्षी अपने नीड़ों (घोसलों)-में विश्राम करने लगे, श्रेष्ठ याज्ञिकोंने जब अग्नि प्रज्वलित कर दी, सम्पूर्ण दिशाएँ सब ओरसे जब कुछ-कुछ अन्धकारसे आवृत्त हो गयीं, व्रजवासी सोनेकी तैयारी करने लगे, गीदड़ियाँ बोलने लगीं, मांसाहारकी अभिलाषा रखनेवाले निशाचर हर्षमें भर गये, धूपसे तपे हुए इन्द्रगोप नामक कीड़ोंको आनन्द देनेवाला और वेदोंके स्वाध्यायको बंद करनेवाला प्रदोषकाल जब आ पहुँचा, जब सूर्यदेव संध्यारूपिणी गुफामें प्रविष्ट हो गये, जब गृहस्थोंके लिये हवनीय घृत या दुग्धको आगपर रखनेकी वेला आ पहुँची, वनवासी वैखानस (वानप्रस्थ) जब मन्त्रोंद्वारा अग्निमें आहुति देने लगे, जब गौएँ वनसे लौटकर व्रजमें आ गयीं और उनका दूध दुह लिया गया, जिनके बछड़े बँधे थे और जो स्वयं भी लम्बी रस्सियोंमें आबद्ध थीं, वे धेनुएँ जब बार-बार रँभाने लगीं, गौओंको बुलाते हुए गोपगण जब सब ओर कोलाहल करने लगे, जब बाँधनेके लिये गौओंको हाँककर ले जाया जाने लगा; काष्ठके भारसे झुके हुए कंधोंवाले गोप जब घर आकर सब ओर फैले हुए सूखे गोबरके चूरोंको सुलगाने या प्रज्वलित करने लगे, किंचित् उदित हुए चन्द्रदेव जब अपनी मन्द किरणोंसे ही प्रकाशित हो रहे थे, दिन चले जानेपर थोड़ी-सी ही रातका आगमन हुआ था,

प्राप्ते दिनव्युपरमे प्रवृत्ते क्षणदामुखे।
भास्करे तेजसि गते सौम्ये तेजस्युपस्थिते॥ १०

अग्निहोत्राकुले काले सौम्येन्दौ समुपस्थिते।
अग्नीषोमात्मके संधौ वर्तमाने जगन्मये॥ ११

पश्चिमेनाग्निदीप्तेन पूर्वेणोत्पलवर्चसा।
दग्धाद्रिसदृशे व्योम्नि किंचित्तारागणाकुले॥ १२

वयोभिर्वासमुशतां बन्धुभिश्च समागमम्।
शंसद्भिः स्यन्दनेनाशु प्राप्तो दानपतिर्व्रजम्॥ १३

प्रविशन्नेव पप्रच्छ सांनिध्यं केशवस्य सः।
रौहिणेयस्य चाक्रूरो नन्दगोपस्य चासकृत्॥ १४

स नन्दगोपस्य गृहं वासाय विबुधोपमः।
अवतीर्य ततो यानात् प्रविवेश महाबलः॥ १५

हर्षपूर्णेन वक्त्रेण साश्रुनेत्रेण चैव हि।
प्रविशन्नेव च द्वारि ददर्शादोहने गवाम्॥ १६

वत्समध्ये स्थितं कृष्णं सवत्समिव गोवृषम्।
स तं हर्षपरीतेन वचसा गद्गदेन वै॥ १७

एहि केशव तातेति प्रव्याहरत धर्मवित्।
उत्तानशायिनं दृष्ट्वा पुनर्दृष्ट्वा श्रिया वृतम्॥ १८

अव्यक्तयौवनं कृष्णमक्रूरः प्रशशंस ह।
अयं स पुण्डरीकाक्षः सिंहशार्दूलविक्रमः।
सम्पूर्णजलमेघाभः पर्वतप्रवराकृतिः॥ १९

मृधेष्वधर्षणीयेन सश्रीवत्सेन वक्षसा।
द्विषन्निधनदक्षाभ्यां भुजाभ्यां साधु भूषितः॥ २०

दिनकी पूर्ण समाप्ति होकर रात्रिके प्रथम प्रहरका अभी आरम्भ ही हुआ था, सूर्यका उष्ण प्रकाश अस्त होकर चन्द्रमाका शीतल प्रकाश उपस्थित हुआ था, जिस समय अग्निहोत्रकी सुगन्धि सब ओर व्याप्त हो रही थी, स्वभावतः सौम्य चन्द्रदेव उदित हुए, जब सम्पूर्ण जगत्में अग्नीषोमात्मक संधिका समय वर्तमान था, जब पश्चिममें अग्निके समान संध्याकालका अरुण प्रकाश फैला था तथा पूर्वमें भी लाल कमलके समान कान्तिवाले चन्द्रमाकी कुङ्कुम-जैसी प्रभा फैली हुई थी और उन दोनों दिशाओंके अरुण प्रकाशसे जब आकाश उभयपार्श्वसे दग्ध हुए पर्वतके समान प्रतीत हो रहा था और उसमें कुछ-कुछ तारे प्रकट हो गये थे, ऐसे समयमें घर लौटनेकी इच्छावाले पथिकोंको बन्धुओंसे समागम होनेकी सूचना-सी देनेवाले पक्षियोंके साथ-साथ दानपति अक्रूर अपने रथके द्वारा शीघ्र ही व्रजमें आ पहुँचे॥ १—१३॥ व्रजमें प्रवेश करते ही अक्रूर वहाँके लोगोंसे बारम्बार श्रीकृष्ण, रोहिणीनन्दन बलराम तथा नन्दगोपका निवास-स्थान पूछने लगे॥ १४॥ तत्पश्चात् देवोपम कान्तिसे युक्त महाबली अक्रूर उस रथसे उतरकर निवासके लिये नन्दगोपके घरमें प्रविष्ट हुए॥ १५॥ उस समय उनके मुखपर पूर्ण हर्ष छा रहा था, नेत्रोंसे प्रेमके आँसू बह रहे थे, नन्दके द्वारपर पदार्पण करते ही उन्होंने देखा, गौओंके दुहनेके स्थानमें श्रीकृष्ण बहुत-से बछड़ोंके बीचमें खड़े हैं। वे ऐसे जान पड़ते थे, मानो बछड़ोंसहित साँड़ खड़ा हो। उन्हें देखते ही धर्मज्ञ अक्रूर हर्षभरी गद्गद वाणीद्वारा बोले—'तात केशव! यहाँ आओ।' (कुछ ही वर्ष पहले) जिन्हें शैशवावस्थामें उत्तान सोते देखा-सुना था, उन्हीं श्रीकृष्णको पुनः अनुपम शोभासे सम्पन्न अव्यक्त यौवन-अवस्थामें देखकर अक्रूर उनकी भूरि-भूरि प्रशंसा करने लगे। ये ही वे सिंह और व्याघ्रके समान पराक्रमी कमलनयन श्रीकृष्ण दिखायी देते हैं, जिनकी अङ्गकान्ति जलसे भरे हुए जलधरकी भाँति श्याम है और शरीरकी ऊँचाई श्रेष्ठ पर्वतके समान प्रतीत होती है। उनका श्रीवत्सविभूषित वक्षःस्थल युद्धमें अजेय है और भुजाएँ शत्रुओंका संहार करनेमें कुशल हैं। इन भुजाओं तथा वक्षःस्थलसे इनके श्रीविग्रहकी बड़ी शोभा हो रही है॥ १६—२०॥

मूर्तिमान् स रहस्यात्मा जगतोऽग्र्यस्य भाजनम्।
गोपवेषधरो विष्णुरुदग्राग्र्यतनूरुहः॥ २१

किरीटलाञ्छनेनापि शिरसा छत्रवर्चसा।
कुण्डलोत्तमयोग्याभ्यां श्रवणाभ्यां विभूषितः॥ २२

हारार्हेण च पीनेन सुविस्तीर्णेन वक्षसा।
द्वाभ्यां भुजाभ्यां वृत्ताभ्यां दीर्घाभ्यामुपशोभितः॥ २३

स्त्रीसहस्त्रोपचर्येण वपुषा मन्मथाधिना।
पीते वसानो वसने सोऽयं विष्णुः सनातनः॥ २४

धरण्याश्रयभूताभ्यां चरणाभ्यामरिंदमः।
त्रैलोक्याक्रान्तिभूताभ्यां भुवि पद्भ्यां व्यवस्थितः॥ २५

रुचिराग्रकरश्चास्य चक्राङ्कित इवेक्षते।
द्वितीय उद्यतश्चापि गदासंयोगमिच्छति॥ २६

अवतीर्णो भवायेह प्रथमं पदमात्मनः।
शोभतेऽद्य भुवि श्रेष्ठस्त्रिदशानां धुरंधरः॥ २७

अयं भविष्ये कथितो भविष्यकुशलैर्नरैः।
गोपालो यादवं वंशं क्षीणं विस्तारयिष्यति॥ २८

तेजसा यादवाश्चास्य शतशोऽथ सहस्रशः।
वंशमापूरयिष्यन्ति ह्योघा इव महार्णवम्॥ २९

अस्येदं शासने सर्वं जगत् स्थास्यति शाश्वतम्।
निहतामित्रसामन्तं स्फीतं कृतयुगे तथा॥ ३०

ये ही वे मूर्तिमान् रहस्यात्मा (उपनिषदोंमें प्रतिपादित पुरुषोत्तम) हैं, जो इस संसारकी अग्रपूजा पानेके प्रथम अधिकारी हैं। वे भगवान् विष्णु ही यहाँ गोपवेश धारण करके प्रकट हुए हैं। इनकी रोमावलि ऊपरकी ओर उठी हुई और परम पवित्र है (अर्थात् यह प्रेमी भक्तोंको देखते ही रोमाञ्चित हो उठते हैं)॥ २१॥ जिसपर किरीट धारण करनेका चिह्न है तथा जहाँ छत्राकार कान्ति प्रकाशित हो रही है, उस मस्तकसे और उत्तम कुण्डल पहननेयोग्य दोनों कानोंसे ये विभूषित हो रहे हैं॥ २२॥ हार पहननेयोग्य ऊँची और चौड़ी छातीसे तथा गोलाकार दो विशाल भुजाओंसे इनकी बड़ी शोभा हो रही है॥ २३॥ इनका श्रीविग्रह उस यौवन और पौगण्ड अवस्थाकी संधिमें पहुँचा हुआ है, जहाँ कामदेवको आश्रय मिलता है। यह विग्रह सहस्त्रों स्त्रियोंद्वारा परिचर्या प्राप्त करनेयोग्य है, ऐसे दिव्य शरीरपर दो पीत वस्त्र धारण किये ये वे ही सनातन विष्णु यहाँ विराजमान हैं॥ २४॥ जो पृथ्वीके आश्रयभूत हैं तथा तीनों लोकोंको आक्रान्त करनेमें समर्थ हैं, ऐसे संचरणशील युगल चरणोंसे ये शत्रुदमन श्रीकृष्ण इस भूमिपर खड़े हैं॥ २५॥ इनका एक हाथ, जिसका अग्रभाग बहुत ही सुन्दर है, चक्रसे चिह्नित-सा दिखायी देता है। दूसरा उठा हुआ हाथ गदासे संयुक्त होना चाहता है॥ २६॥ ये ही परब्रह्म परमात्माके प्रथम पद[1] (तुरीय ब्रह्म) हैं, जो यहाँ जगत्के कल्याणके लिये अवतीर्ण हुए हैं। देवताओंकी रक्षाका भार वहन करनेवाले वे सर्वश्रेष्ठ परमेश्वर आज भूतलपर अवतीर्ण होकर शोभा पाते हैं॥ २७॥ इन्हींके विषयमें भविष्यकी बात बतानेमें कुशल मनुष्योंने कहा है कि गोपाल श्रीकृष्ण भविष्यमें क्षीण हुए यादववंशका विस्तार करेंगे॥ २८॥ जैसे नदियोंके बहुत-से जलप्रवाह महासागरको पूर्ण करते रहते हैं, उसी प्रकार सैकड़ों और हजारों यदुवंशी इनके प्रभावसे अपने वंशकी वृद्धि करेंगे॥ २९॥ यह सारा जगत्, जो सनातनकालसे चला आ रहा है, इनके शासनमें स्थित होगा। उस समय इसको कष्ट देनेवाले शत्रु और सामन्त नष्ट हो जायँगे और यह विश्व सत्ययुगकी भाँति सुख-शान्ति एवं समृद्धिसे सम्पन्न हो जायगा॥ ३०॥

१. माण्डूक्य-उपनिषद्में प्रणवकी मात्राओंपर विचार करते हुए ब्रह्मके चार पाद बताये गये हैं—विश्व, तैजस, प्राज्ञ और तुरीय। इनमें तुरीय साक्षात् पूर्ण परब्रह्मका बोधक है। उत्पत्ति-क्रमसे गणना करनेपर यह तुरीय ही प्रथम पाद हो सकता है। इसीलिये यहाँ प्रथम पदका अर्थ तुरीय ब्रह्म किया गया है।

अयमास्थाय वसुधां स्थापयित्वा जगद् वशे।
राज्ञां भविष्यत्युपरि न च राजा भविष्यति॥ ३१

नूनं त्रिभिः क्रमैर्जित्वा यथानेन प्रभुः कृतः।
पुरा पुरंदरो राजा देवतानां त्रिविष्टपे॥ ३२

तथैव वसुधां जित्वा जितपूर्वां त्रिभिः क्रमैः।
स्थापयिष्यति राजानमुग्रसेनं न संशयः॥ ३३

प्रसृष्टवैरगाधोऽयं प्रश्नैश्च बहुभिः श्रुतः।
ब्राह्मणैर्ब्रह्मवादैश्च पुराणोऽयं हि गीयते॥ ३४

स्पृहणीयो हि लोकस्य भविष्यति च केशवः।
तथा ह्यस्योत्थिता बुद्धिर्मानुष्यमुपजीवितुम्॥ ३५

अहं त्वस्याद्य वसतिं पूजयिष्ये यथाविधि।
विष्णुत्वं मनसा चैव पूजयिष्यामि मन्त्रवत्॥ ३६

यच्च ज्ञातिपरिज्ञानं प्रादुर्भावश्च वै नृषु।
अमानुषं वेद्मि चैनं ये चान्ये दिव्यचक्षुषः॥ ३७

सोऽहं कृष्णेन वै रात्रौ सम्मन्त्र्य विदितात्मना।
सहानेन गमिष्यामि सव्रजो यदि मंस्यते॥ ३८

एवं बहुविधं कृष्णं दृष्ट्वा हेत्वर्थकारणैः।
विवेश नन्दगोपस्य कृष्णेन सह संसदम्॥ ३९

ये इस वसुधापर रहकर जगत्‌को अपने वशमें स्थापित करके समस्त राजाओंके ऊपर प्रतिष्ठित हो जायँगे, परंतु स्वयं राजा नहीं बनेंगे॥ ३१॥ निश्चय ही पूर्वकालमें जिस प्रकार इन्होंने अपने तीन पगोंद्वारा त्रिलोकीको जीतकर स्वर्गमें पुरन्दर इन्द्रको देवताओंका राजा बनाया था, उसी प्रकार पहलेकी तीन पगोंद्वारा जीती हुई इस वसुधाको फिर जीतकर यह उग्रसेनको राजाके आसनपर बैठायेंगे, इसमें संशय नहीं है॥ ३२-३३॥ यह फैले हुए वैरका अन्त करनेवाले हैं, प्रश्नोपनिषद्‌में बहुत-से (छः) प्रश्नोंद्वारा इन्हींके तत्त्वका प्रतिपादन सुना गया है। ब्रह्मवादी ब्राह्मणोंद्वारा ये पुराणपुरुष कहे जाते हैं॥ ३४॥ यह भगवान् केशव समस्त जगत्‌के लिये स्पृहणीय होंगे, क्योंकि इनकी बुद्धिमें मानवताको नया जीवन देनेका विचार उठ खड़ा हुआ है॥ ३५॥ आज मैं इनके निवासस्थानका विधिपूर्वक पूजन करूँगा, फिर मन-ही-मन इनके विष्णुरूपकी भावना करके मन्त्रोच्चारणपूर्वक उसकी अर्चना करूँगा॥ ३६॥ इनमें जो अपने बन्धु-बान्धवोंको पहचाननेकी शक्ति है और जो इनका मनुष्योंमें अवतार हुआ है, वह सब मेरे लिये आदरणीय है। मैं तो इन्हें अमानव (अलौकिक परमात्मा) समझता ही हूँ, दूसरे दिव्य नेत्रधारी महापुरुष भी इन्हें ऐसा ही मानते हैं॥ ३७॥ अतः मैं इन आत्मवेत्ता श्रीकृष्णके साथ रातमें भलीभाँति सलाह करके यदि व्रजवासियोंसहित ये मेरी बात मान लेंगे तो इनके साथ ही कल मथुराकी यात्रा करूँगा॥ ३८॥ इस प्रकार युक्तियुक्त कार्य-कारणका विचार करते हुए अक्रूरने श्रीकृष्णको बारम्बार देखा और उनके साथ नन्दगोपकी बैठकमें प्रवेश किया॥ ३९॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे विष्णुपर्वणि अक्रूरागमने पञ्चविंशोऽध्यायः॥ २५॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत विष्णुपर्वमें अक्रूरका आगमनविषयक पच्चीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ २५॥

षड्विंशोऽध्यायः

अक्रूरका गोपोंके लिये कंसका आदेश सुनाना और वसुदेव-देवकीकी दयनीय दशा बताकर श्रीकृष्ण-बलरामको मथुरा चलनेके लिये प्रेरित करना, मार्गमें अक्रूरको यमुनाजीके जलमें आश्चर्यमय नागलोक एवं भगवान् अनन्त तथा उनकी गोदमें श्रीकृष्णका दर्शन

वैशम्पायन उवाच

स नन्दगोपस्य गृहं प्रविष्टः सहकेशवः।
गोपवृद्धान् समानीय प्रोवाचामितदक्षिणः॥ १

कृष्णं चैवाब्रवीत् प्रीत्या रौहिणेयेन सङ्गतम्।
श्वः पुरीं मथुरां तात गमिष्यामः सुखाय वै॥ २

यास्यन्ति च व्रजाः सर्वे गोपालाः सपरिग्रहाः।
कंसाज्ञया समुचितं करमादाय वार्षिकम्॥ ३

समृद्धस्तत्र कंसस्य भविष्यति धनुर्महः।
तं द्रक्ष्यथ समृद्धं च स्वजनैश्च समेष्यथ॥ ४

पितरं वसुदेवं च सततं दुःखभाजनम्।
दीनं पुत्रवधश्रान्तं युवामद्य समेष्यथः॥ ५

सततं पीड्यमानं च कंसेनाशुभबुद्धिना।
दशान्ते शोषितं वृद्धं दुःखैः शिथिलतां गतम्॥ ६

कंसस्य भयसंत्रस्तं भवद्भ्यां च विना कृतम्।
दह्यमानं दिवा रात्रौ सोत्कण्ठेनान्तरात्मना॥ ७

तां च द्रक्ष्यसि गोविन्द पुत्रैरमृदितस्तनीम्।
देवकीं देवसंकाशां सीदन्तीं विहतप्रभाम्॥ ८

पुत्रशोकेन शुष्यन्तीं त्वद्दर्शनपरायणाम्।
वियोगशोकसंतप्तां विवत्सामिव सौरभीम्॥ ९

उपप्लुतेक्षणां दीनां नित्यं मलिनवाससम्।
स्वर्भानुवदनग्रस्तां शशाङ्कस्य प्रभामिव॥ १०

त्वद्दर्शनपरां नित्यं तवागमनकाङ्क्षिणीम्।
त्वत्प्रवृत्तेन शोकेन सीदन्तीं वै तपस्विनीम्॥ ११

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! श्रीकृष्णके साथ नन्दके गृहमें प्रवेश करके अनन्त दान-दक्षिणा देनेवाले अक्रूरने बड़े-बूढ़े गोपोंको बुलवाया और उनसे तथा बलरामसहित श्रीकृष्णसे प्रसन्नतापूर्वक यों कहा—'तात! कल सबेरे हमलोग मथुरापुरीको चलेंगे। वहाँ चलकर तुम सुखी होओगे॥ १-२॥ समस्त व्रजवासी गोप कंसकी आज्ञासे समुचित वार्षिक कर लेकर सपरिवार वहाँ चलेंगे॥ ३॥ वहाँ कंसका धनुर्यज्ञ बड़ी धूम-धामसे सम्पन्न होगा। उस समृद्धिशाली यज्ञको तुमलोग देखोगे और स्वजनोंसे भी मिलोगे॥ ४॥ तुम दोनों भाई पुत्रोंके वधसे अत्यन्त दीन-दुर्बल होकर सदा दुःख ही भोगनेवाले अपने पिता वसुदेवजीसे वहाँ मिलोगे॥ ५॥ अशुभ बुद्धिवाले कंसने उन्हें सदा ही पीड़ा दी है। इस बुढ़ापेमें उनके शरीरका रक्त-मांस सूख गया है। बूढ़े वसुदेव अनेक प्रकारके दुःखोंसे भी बहुत शिथिल हो गये हैं॥ ६॥ एक तो कंसका भय उन्हें आतङ्कित किये रहता है, दूसरे तुम दोनोंसे वे बिछुड़ गये हैं; अतः तुम्हारे लिये उत्कण्ठितचित्त होकर दिन-रात चिन्ताकी आगमें जलते रहते हैं॥ ७॥ गोविन्द! तुम वहाँ चलकर अपनी माता देवकीका भी दर्शन करोगे, जिसके स्तनोंसे उसके पुत्रोंने कभी मुँह नहीं लगाया है। वह देवियों-जैसी नारी इस समय प्रभाहीन होकर दुःख भोग रही है। तुम्हारे दर्शनकी आशा लिये पुत्रशोकसे सूखती जा रही है। बिना बछड़ेकी गायके समान वह पुत्र-वियोगके शोकसे संतप्त रहती है॥ ८-९॥ उस दुखियाके नेत्रोंमें निरन्तर आँसू भरे रहते हैं। उसके वस्त्र मैले हो गये हैं। वह राहुके मुखमें पड़ी हुई चन्द्रमाकी प्रभाके समान जान पड़ती है॥ १०॥ उसे सदा यही चिन्ता रहती है कि कब तुम्हारा दर्शन होगा। वह प्रतिदिन तुम्हारे शुभागमनकी अभिलाषा रखती है। वह तपस्विनी नारी तुम्हारे शोकसे शिथिल हो गयी है'॥ ११॥

त्वत्प्रलापेष्वकुशलां त्वया बाल्ये वियोजिताम्।
अरूपज्ञां तव विभो वक्त्रस्यास्येन्दुवर्चसः॥ १२

यदि त्वां जनयित्वा सा देवकी तात तप्यते।
अपत्यार्थो नु कस्तस्या वरं ह्येवानपत्यता॥ १३

अपुत्राणां हि नारीणामेकः शोको विधीयते।
सपुत्रा त्वफले पुत्रे धिक्प्रजातेन तप्यते॥ १४

त्वं तु शक्रसमः पुत्रो यस्यास्त्वत्सदृशो गुणैः।
परेषामप्यभयदो न सा शोचितुमर्हति॥ १५

वृद्धौ तवाम्बापितरौ परभृत्यत्वमागतौ।
भर्त्सितौ त्वत्कृते नित्यं कंसेनाशुभबुद्धिना॥ १६

यदि ते देवकी मान्या पृथिवीवात्मधारिणी।
तां शोकसलिले मग्नामुत्तारयितुमर्हसि॥ १७

तं च वृद्धं प्रियसुतं वसुदेवं सुखोचितम्।
पुत्रयोगेन संयोज्य कृष्ण धर्ममवाप्स्यसि॥ १८

यथा नागः सुदुर्वृत्तो दमितो यमुनाह्रदे।
विमूलः स कृतः शैलो यथा वै भूधरस्त्वया॥ १९

दर्पोत्सिक्तश्च बलवानरिष्टो विनिपातितः।
परप्राणहरः केशी दुष्टात्मा च हयो हतः॥ २०

एतेनैव प्रयत्नेन वृद्धावुद्धृत्य दुःखितौ।
यथा धर्ममवाप्नोषि तत् कृष्ण परिचिन्त्यताम्॥ २१

निर्भर्त्स्यमानो यैर्दृष्टः पिता ते कंससंसदि।
ते सर्वे चक्रुरश्रूणि नेत्रैर्दुःखान्विता भृशम्॥ २२

गर्भावकर्तनादीनि दुःखानि सुबहून्यपि।
माता ते देवकी कृष्ण कंसस्य सहतेऽवशा॥ २३

मातापितृभ्यां सर्वेण जातेन तनयेन वै।
ऋणं वै प्रतिकर्तव्यं यथायोगमुदाहृतम्॥ २४

'प्रभो! बाल्यावस्थामें ही वह तुमसे बिछुड़ गयी, अतः तुम्हारी मीठी-मीठी बातोंमें क्या रस है, इसको समझनेकी चतुरता उसमें नहीं आ सकी है। वह तुम्हारे रूपको नहीं जानती, चन्द्रमाके समान कान्तिमान् इस मुखके दर्शनसे भी वञ्चित रह गयी है॥ १२॥ तात! यदि तुम्हें जन्म देकर देवकी इतना संताप सह रही है तो उसे संतानका क्या फल मिला? इससे तो उसका संतानहीन होना ही अच्छा था॥ १३॥ जिन नारियोंके पुत्र नहीं हुआ है, उन्हें एक ही शोक रहता है; परंतु जो पुत्रवती होकर भी पुत्रका फल न पा सके, वह उस धिक्कार पानेके योग्य संतानसे सदा ही संतप्त होती रहती है॥ १४॥ जिसके तुम्हारे समान गुणवान्, इन्द्रतुल्य तेजस्वी तथा दूसरोंको भी अभयदान देनेवाला पुत्र हो, उस माताको शोककी भागिनी नहीं होना चाहिये॥ १५॥ भैया! तुम्हारे बूढ़े माता-पिता दूसरेके दासभावको प्राप्त हो गये हैं। पापपूर्ण विचार रखनेवाला कंस उन्हें प्रतिदिन तुम्हारे कारण डाँटता-फटकारता रहता है॥ १६॥ तुम्हारे शरीरको अपने गर्भमें धारण करनेवाली माता देवकी यदि लोकधारिणी पृथ्वीके समान माननीय है तो तुमने जैसे पृथ्वीका जलसे उद्धार किया था, उसी प्रकार शोक-सागरके जलमें डूबी हुई उस देवकीका भी तुम्हें उद्धार करना चाहिये॥ १७॥ श्रीकृष्ण! जिन्हें अपने पुत्र बहुत ही प्रिय हैं तथा जो सुख भोगनेके योग्य हैं, उन बूढ़े वसुदेवको पुत्र-संयोगका सुख देकर तुम धर्मके भागी होओगे॥ १८॥ श्रीकृष्ण! जैसे तुमने यमुनाके कुण्डमें रहनेवाले उस दुराचारी नागका दमन किया, जैसे गोवर्धन पर्वतको जड़से उखाड़ दिया, जिस प्रकार बलवान् एवं मदमत्त अरिष्टासुरको मार गिराया तथा जिस तरह दूसरोंके प्राण लेनेवाले अश्वरूपधारी दुष्टात्मा केशीका वध किया, वैसे ही प्रयत्नके द्वारा उन दुःखी एवं वृद्ध माता-पिताका उद्धार करके तुम जैसे भी धर्मके भागी हो सको, उस उपायको सोचो॥ १९—२१॥ जिन लोगोंने कंसकी सभामें तुम्हारे पितापर डाँट पड़ती देखी थी, वे सब-के-सब अत्यन्त दुःखी होकर नेत्रोंसे आँसू बहाने लगे थे॥ २२॥ कृष्ण! तुम्हारी माता देवकी विवश होकर कंसके द्वारा दिये गये गर्भोच्छेद आदि बहुत-से दुःख सहती चली आ रही है॥ २३॥ माता-पितासे उत्पन्न हुए सभी पुत्रोंको यथायोग्य सेवा करके उनके ऋणोंको उतार देना चाहिये, यह शास्त्रकी आज्ञा है'॥ २४॥

एवं ते कुर्वतः कृष्ण मातापित्रोरनुग्रहम्।
परित्यजेतां तौ शोकं स्याच्च धर्मस्तवानघ॥ २५

वैशम्पायन उवाच

कृष्णः सुविदितार्थो वै तमाहामितविक्रमम्।
बाढमित्येव तेजस्वी न च क्रोधवशं गतः॥ २६
ते च गोपाः समागम्य नन्दगोपपुरःसराः।
अक्रूरवचनं श्रुत्वा चेलुः कंसस्य शासनात्॥ २७
गमनाय च ते सज्जा बभूवुर्व्रजवासिनः।
सज्जं चोपायनं कृत्वा गोपवृद्धाः प्रतस्थिरे॥ २८
करं चानडुहः सर्पिर्महिषांश्चौपनायिकान्।
यथासारं यथायूथमुपानीय पयो दधि॥ २९
तं सज्जयित्वा कंसस्य करं चोपायनानि च।
ते सर्वे गोपपतयो गमनायोपतस्थिरे॥ ३०
अक्रूरस्य कथाभिश्च सह कृष्णेन जाग्रतः।
रौहिणेयतृतीयस्य सा निशा व्यत्यवर्तत॥ ३१
ततः प्रभाते विमले पक्षिव्याहारसंकुले।
नैशाकरे रश्मिजाले क्षणदाक्षयसंहृते॥ ३२
नभस्यरुणसंस्तीर्णे पर्यस्ते ज्योतिषां गणे।
प्रत्यूषपवनासारैः क्लेदिते धरणीतले॥ ३३
क्षीणाकारासु तारासु सुप्तनिष्प्रतिभासु च।
नैशमन्तर्दधे रूपमुद्गच्छति दिवाकरे॥ ३४
शीतांशुः शान्तकिरणो निष्प्रभः समपद्यत।
एको नाशयते रूपमेको वर्धयते वपुः॥ ३५
गोभिश्च समकीर्णासु व्रजनिर्याणभूमिषु।
मन्थनावर्तपूर्णेषु गर्गरेषु नदत्सु च॥ ३६
दामभिर्दम्यमानेषु वत्सेषु तरुणेषु च।
गोपैरापूर्यमाणासु घोषरथ्यासु सर्वशः॥ ३७
तत्रैव गुरुकं भाण्डं शकटारोपितं बहु।
त्वरिताः पृष्ठतः कृत्वा जग्मुः स्यन्दनवाहनाः॥ ३८
कृष्णोऽथ रौहिणेयश्च स चैवामितदक्षिणः।
त्रयो रथगता जग्मुस्त्रिलोकपतयो यथा॥ ३९

'निष्पाप श्रीकृष्ण! यदि इस प्रकार तुमने माता-पितापर अनुग्रह किया तो वे दोनों अपने बीते हुए शोकको त्याग देंगे और तुम्हें धर्मकी प्राप्ति होगी'॥ २५॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! इन सब बातोंको अच्छी तरह जान लेनेपर तेजस्वी श्रीकृष्णने अमितपराक्रमी अक्रूरसे कहा—'बहुत अच्छा! हमलोग आपके साथ चलेंगे।' वे क्रोधके वशीभूत नहीं हुए॥ २६॥ नन्द आदि सभी गोप वहाँ एकत्र हो अक्रूरजीकी बात सुनकर कंसकी आज्ञासे मथुरा चलनेको उद्यत हो गये॥ २७॥ वे व्रजवासी गोप यात्राके लिये सुसज्जित हो गये। भेंटकी सामग्रीको सजाकर बड़े-बूढ़े गोप वहाँसे प्रस्थित हुए॥ २८॥ वार्षिक कर, गाड़ीका बोझ ढोनेवाले बैल, भैंसें, घी, दूध और दही आदि उपहार-सामग्रियोंको अपनी-अपनी शक्ति और यूथके अनुसार लेकर एकत्र किया, फिर कंसकी उस उपायन-सामग्री और वार्षिक करको छकड़ेमें सजाकर वे सभी गोप-सरदार यात्रा करनेके लिये नन्दके द्वारपर उपस्थित हुए॥ २९-३०॥ श्रीकृष्णके साथ बातचीत करनेमें अक्रूरकी वह सारी रात जागते ही बीती। उनके साथ तीसरे व्यक्ति रोहिणीनन्दन बलरामजी थे॥ ३१॥ तदनन्तर पक्षियोंके कलरवोंसे व्याप्त निर्मल प्रभातकाल उपस्थित हुआ। रात्रिकी समाप्तिके साथ ही चन्द्रदेवने अपने किरण-जालको समेट लिया। आकाशमें अरुणोदयकी लाली छा गयी। नक्षत्रोंका समुदाय अस्त हो गया। प्रातःकालकी वायुके साथ मिले हुए ओस-कणोंसे पृथ्वी गीली-सी हो गयी। तारिकाएँ क्षीण हो गयीं। वे सोयी हुईकी भाँति अपनी प्रभा खो बैठीं। सूर्योदय होनेके साथ ही निशाका रूप अदृश्य हो गया॥ ३२—३४॥ शीतरश्मि चन्द्रमाकी किरणें शान्त हो जानेके कारण वे प्रभाहीन हो गये। एक (चन्द्रमा) अपने रूपको अदृश्य करने लगा और दूसरा (सूर्य) अपने तेजको बढ़ाने लगा॥ ३५॥ व्रजसे बाहर जानेके मार्गोंकी भूमिपर गौएँ सब ओर फैल गयीं। मथानी घुमानेसे दहीके भरे मटकोंमें घर-घर ध्वनि होने लगी। नौजवान बछड़े रस्सियोंसे बाँधकर सधाये जाने लगे। व्रजकी गलियाँ सब ओरसे गोपोंद्वारा भर गयी थीं। ऐसे समयमें छकड़ेपर रखे गये दही-दूधके भारी-भारी भाण्डोंको पीछे करके गाड़ी हाँकनेवाले गोप तीव्र गतिसे चल दिये॥ ३६—३८॥ श्रीकृष्ण, बलराम और अमित दक्षिणा देनेवाले दानपति अक्रूर—ये तीनों त्रिलोकपतियोंके समान रथपर बैठकर चल रहे थे॥ ३९॥

अथाह कृष्णमक्रूरो यमुनातीरमाश्रितः।
स्यन्दनं चात्र रक्षस्व यत्नं च कुरु वाजिषु॥ ४०

हयेभ्यो यवसं दत्त्वा हयभाण्डे रथे तथा।
प्रगाढं यत्नमास्थाय क्षणं तात प्रतीक्ष्यताम्॥ ४१

यमुनाया ह्रदे ह्यस्मिन् स्तोष्यामि भुजगेश्वरम्।
दिव्यैर्भागवतैर्मन्त्रैः सर्वलोकप्रभुं यतः॥ ४२

गुह्यं भागवतं देवं सर्वलोकस्य भावनम्।
श्रीमत्स्वस्तिकमूर्द्धानं प्रणमिष्यामि भोगिनम्।
सहस्रशिरसं देवमनन्तं नीलवाससम्॥ ४३

धर्मदेवस्य तस्याथ यद् विषं प्रभविष्यति।
सर्वं तदमृतप्रख्यमशिष्याम्यमरो यथा॥ ४४

स्वस्तिकायतनं दृष्ट्वा द्विजिह्वं श्रीविभूषितम्।
समाजस्तत्र सर्पाणां शान्त्यर्थं वै भविष्यति॥ ४५

आस्तां मां समुदीक्षन्तौ भवन्तौ सङ्गतावुभौ।
निवृत्तो भुजगेन्द्रस्य यावदस्मि ह्रदोत्तमात्॥ ४६

तमाह कृष्णः संहृष्टो गच्छ धर्मिष्ठ मा चिरम्।
आवां खलु न शक्तौ स्वस्त्वया हीनावुपासितम्॥ ४७

स ह्रदे यमुनायास्तु ममज्जामितदक्षिणः।
रसातले स ददृशे नागलोकमिमं यथा॥ ४८

तस्य मध्ये सहस्रास्यं हेमतालोच्छ्रितध्वजम्।
लाङ्गलासक्तहस्ताग्रं मुसलोपाश्रितोदरम्॥ ४९

असिताम्बरसंवीतं पाण्डुरं पाण्डुरासनम्।
कुण्डलैकधरं मत्तं सुप्तमम्बुरुहेक्षणम्॥ ५०

भोगोत्करासने शुभ्रे स्वेन देहेन कल्पिते।
स्वासीनं स्वस्तिकाभ्यां च वराहाभ्यां महीधरम्॥ ५१

यमुनाजीके तटपर पहुँचकर अक्रूरने श्रीकृष्णसे कहा—'भैया! रथको यहीं खड़ा रखो और घोड़ोंको काबूमें रखनेका प्रयत्न करो॥ ४०॥ तात! घोड़ोंको दाना-घास देकर, इनके पात्र और रथकी विशेष यत्नपूर्वक देख-भाल करते हुए एक क्षणतक मेरी प्रतीक्षा करो॥ ४१॥ तबतक मैं यमुनाजीके इस कुण्डमें प्रवेश करके दिव्य भागवतमन्त्रोंद्वारा सम्पूर्ण जगत्के स्वामी नागराज अनन्तकी स्तुति कर लूँ॥ ४२॥ वे गुह्यस्वरूप भागवत देवता हैं, सम्पूर्ण लोकोंके उत्पादक एवं उन्नायक हैं। उनका मस्तक कान्तिमान् स्वस्तिक चिह्नसे अलंकृत है। वे सर्प-विग्रहधारी भगवान् अनन्त देव सहस्र सिरोंसे सुशोभित तथा नील वस्त्र धारण करनेवाले हैं। मैं उन्हें प्रणाम करूँगा॥ ४३॥ स्वस्तिकके आश्रयभूत श्रीविभूषित नागराज शेषका दर्शन करके मैं उन धर्मदेवका जो विष होगा, उसे अमृतके समान मानकर पी जाऊँगा। ठीक उसी तरह, जैसे देवतालोग अमृत पीते हैं। वहाँ भगवान् शेषके समीप सर्पोंका समुदाय शान्तिके लिये उपस्थित होगा॥ ४४-४५॥ मैं नागराजके इस उत्तम ह्रदसे लौटकर जबतक आ न जाऊँ, तबतक तुम दोनों भाई एक साथ मेरी राह देखते रहो'॥ ४६॥ तब श्रीकृष्णने हर्षमें भरकर उनसे कहा—'धर्मिष्ठ महापुरुष! जल्दी जाओ और लौटो। हम दोनों तुम्हारे बिना यहाँ (देरतक) नहीं बैठे रह सकेंगे'॥ ४७॥ तब अमित दक्षिणा देनेवाले अक्रूरने यमुनाजीके जलमें जाकर गोता लगाया। वहाँ उन्हें इसी लोककी भाँति रसातलवर्ती नागलोकका स्पष्ट दर्शन होने लगा॥ ४८॥ उस लोकके मध्यभागमें सहस्र सिरोंसे सुशोभित शेषका दर्शन हुआ। उनके पास सुवर्णमय तालचिह्नसे युक्त ऊँची ध्वजा फहराती थी। उनके एक हाथका अग्रभाग हलसे सटा हुआ था और उदर मुसलसे टिका हुआ था॥ ४९॥ उनका शरीर गौर और आसन श्वेतवर्णका था। उनके श्रीअङ्ग नील वस्त्रसे आवृत थे। उन्होंने एक ही कानमें एक कुण्डल धारण कर रखा था। वे मतवाले-से होकर सोये थे। उनके नेत्र विकसित कमलदलके समान मनोहर थे॥ ५०॥ वे अपनी ही देहसे कल्पित सर्प-शरीरमय विस्तृत एवं शुभ्र आसन-पर सुन्दर ढंगसे विराजमान थे। पृथ्वीको धारण करने-वाले भगवान् अनन्त दो स्वस्तिक एवं वराह-चिह्नसे विभूषित थे॥ ५१॥

किंचित् सव्यापवृत्तेन मौलिना हेमचूलिना।
जातरूपमयैः पद्मैर्मालयाच्छन्नवक्षसम्॥ ५२

रक्तचन्दनदिग्धाङ्गं दीर्घबाहुमरिंदमम्।
पद्मनाभसिताभ्राभं भाभिर्ज्वलिततेजसम्॥ ५३

ददर्श भोगिनां नाथं स्थितमेकार्णवेश्वरम्।
पूज्यमानं द्विजिह्वेन्द्रैर्वासुकिप्रमुखैः प्रभुम्॥ ५४

कम्बलाश्वतरौ नागौ तौ चामरकरावुभौ।
अवीजयेतां तं देवं धर्मासनगतं प्रभुम्॥ ५५

तस्याभ्याशगतो भाति वासुकिः पन्नगेश्वरः।
वृतोऽन्यैः सचिवैः सर्पैः कर्कोटकपुरःसरैः॥ ५६

तं घटैः काञ्चनैर्दिव्यैः पङ्कजाच्छन्नमस्तकैः।
राजानं स्नापयामासुः स्नातमेकार्णवाम्बुभिः॥ ५७

तस्योत्सङ्गे घनश्यामं श्रीवत्साच्छादितोरसम्।
पीताम्बरधरं विष्णुं सूपविष्टं ददर्श ह॥ ५८

अपरं चैव सोमेन तुल्यसंहननं प्रभुम्।
संकर्षणमिवासीनं तं दिव्यं विष्टरं विना॥ ५९

स कृष्णं तत्र सहसा व्याहर्तुमुपचक्रमे।
तस्य संस्तम्भयामास वाक्यं कृष्णः स्वतेजसा॥ ६०

सोऽनुभूय भुजङ्गानां तं भागवतमव्ययम्।
उदतिष्ठत् पुनस्तोयाद् विस्मितोऽमितदक्षिणः॥ ६१

स तौ रथस्थावासीनौ तत्रैव बलकेशवौ।
निरीक्ष्यमाणावन्योन्यं ददर्शाद्भुतरूपिणौ॥ ६२

अथामज्जत् पुनस्तत्र तदाक्रूरः कुतूहलात्।
इज्यते यत्र देवोऽसौ नीलवासाः सितानन:॥ ६३

तथैवासीनमुत्सङ्गे सहस्रास्यधरस्य वै।
ददर्श कृष्णमक्रूरः पूज्यमानं तदा प्रभुम्॥ ६४

उनके मस्तकपर सोनेकी कलँगीसे विभूषित मुकुट बायीं ओर कुछ झुका हुआ शोभा दे रहा था। वक्षःस्थल सुवर्णमय कमलोंकी मालासे आच्छादित था॥ ५२॥ सारे अङ्गोंमें रक्त चन्दनका लेप लगा हुआ था। उनकी भुजाएँ बड़ी-बड़ी थीं। वे शत्रुओंका दमन करनेमें समर्थ थे। उनकी अङ्गकान्ति श्वेतवर्णवाले विष्णुकी शुक्ल प्रभा तथा श्वेत बादलोंकी आभाके समान थी। अपने ही प्रकाशसे उनका तेज प्रज्वलित हो रहा था॥ ५३॥ अक्रूरने देखा, एकार्णवके स्वामी तथा सर्पोंके रक्षक भगवान् शेष विराज रहे हैं और वासुकि आदि नागराज उन प्रभुकी पूजा कर रहे हैं॥ ५४॥ कम्बल और अश्वतर नाग हाथोंमें चँवर लेकर धर्मासनपर विराजमान भगवान् अनन्तदेवको हवा कर रहे थे॥ ५५॥ उनके निकट कर्कोटक आदि अन्य सर्पजातीय मन्त्रियोंसे घिरे हुए नागराज वासुकि सुशोभित हो रहे हैं॥ ५६॥ उन्हें क्रमशः यह दिखायी दिया कि सेवकोंने कमलसे ढके हुए मुखवाले दिव्य सुवर्णमय घटोंद्वारा एकार्णवके जलसे नहाये हुए नागराज शेषको पुनः नहलाया है॥ ५७॥ उन शेषजीकी गोदमें उन्होंने पीताम्बरधारी भगवान् विष्णु (श्रीकृष्ण)-को सुखपूर्वक विराजमान देखा। उनके श्रीअङ्गोंकी कान्ति मेघके समान श्याम थी तथा उनका वक्षःस्थल श्रीवत्सचिह्नसे आच्छादित था॥ ५८॥ वहीं चन्द्रमाके समान गौर विग्रहवाले दूसरे प्रभावशाली देवता दिखायी दिये, जो संकर्षणसे मिलते-जुलते थे। वे उस दिव्य विस्तरके बिना ही वहाँ बैठे थे॥ ५९॥ अक्रूरने सहसा वहाँ श्रीकृष्णसे बातचीत करनेकी चेष्टा की, परंतु श्रीकृष्णने अपने तेजसे उनकी वाणीको स्तम्भित कर दिया॥ ६०॥ सर्पोंके स्वामी उन अविनाशी भागवत-देवकी महिमाका अनुभव करके अमित दक्षिणा देनेवाले दानपति अक्रूर आश्चर्यचकित होकर पुनः जलसे ऊपर उठे॥ ६१॥ उठकर उन्होंने देखा कि बलराम और श्रीकृष्ण दोनों वहीं रथपर बैठे हैं और एक-दूसरेकी ओर देख रहे हैं; उन दोनोंके रूप अद्भुत हैं॥ ६२॥ तब अक्रूरने पुनः कौतूहलवश वहाँ जलमें गोता लगाया और पुनः वे वहीं जा पहुँचे, जहाँ उज्ज्वल (गौर) मुखवाले नीलाम्बरधारी भगवान् अनन्तदेव पूजित हो रहे थे॥ ६३॥ फिर उसी प्रकार उन सहस्रमुखधारी शेषनागकी गोदमें बैठे हुए भगवान् श्रीकृष्णको भी अक्रूरने देखा, जो उस समय पूजित हो रहे थे॥ ६४॥

भूयश्च सहसोत्थाय तं मन्त्रं मनसा जपन्।
रथं तेनैव मार्गेण जगामामितदक्षिणः॥ ६५

तमाह केशवो हृष्टः स्थितमक्रूरमागमत्।
कीदृशं नागलोकस्य वृत्तं भागवते ह्रदे॥ ६६

चिरं च भवता कालो व्याक्षेपेण विलम्बितः।
मन्ये दृष्टं त्वयाश्चर्यं हृदयं ते यथाचलम्॥ ६७

प्रत्युवाच स तं कृष्णमाश्चर्यं भवता विना।
किं भविष्यति लोकेषु स्थावरेषु चरेषु च॥ ६८

तत्राश्चर्यं मया दृष्टं कृष्ण यद् भुवि दुर्लभम्।
तदिहापि यथा तत्र पश्यामि च रमामि च॥ ६९

संगतश्चापि लोकानामाश्चर्येणेह रूपिणा।
अतः परतरं कृष्ण नाश्चर्यं द्रष्टुमुत्सहे॥ ७०

तदागच्छ गमिष्यामः कंसराजपुरीं प्रभो।
यावन्नास्तं व्रजत्येष दिवसान्ते दिवाकरः॥ ७१

तब मन-ही-मन उसी मन्त्रका जप करते हुए पुनः सहसा उठकर अमित दक्षिणा देनेवाले अक्रूर उसी मार्गसे रथके समीप चले गये॥ ६५॥ तब हर्षमें भरे हुए श्रीकृष्ण वहाँ खड़े हुए अक्रूरके पास आये और पूछने लगे—'कहिये, उस भागवतह्रदमें नागलोकका वृत्तान्त कैसा रहा?॥ ६६॥ 'आपने तो ध्यानके ही व्यासंगसे बहुत देर लगा दी। मैं समझता हूँ, आपको वहाँ कोई आश्चर्यकी बात दिखायी दी है, तभी आपका हृदय स्थिरभावसे ध्यानमें लगा रहा है'॥ ६७॥ तब अक्रूरने श्रीकृष्णसे उनकी बातका उत्तर देते हुए कहा—'इस चराचर जगत्में तुम्हारे सिवा दूसरा कौन-सा आश्चर्यका विषय होगा?॥ ६८॥ श्रीकृष्ण! मैंने वहाँ वह आश्चर्य देखा है, जो भूतलपर दुर्लभ है। जैसा वहाँ देखा था, वैसा ही आश्चर्य यहाँ भी देखता हूँ और उसीमें रम रहा हूँ॥ ६९॥ श्रीकृष्ण! यहाँ तीनों लोकोंके मूर्तिमान् आश्चर्यसे मेरी भेंट हो गयी है। अब इससे बढ़कर कोई आश्चर्य मैं नहीं देख सकता॥ ७०॥ अतः प्रभो! अब आओ, कंसराजकी मथुरानगरीमें चलें। ये सूर्यदेव दिनके अन्तमें जबतक अस्त न हों, तभीतक हमें वहाँ पहुँच जाना चाहिये'॥ ७१॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे विष्णुपर्वणि अक्रूरकृतनागलोककथने षड्विंशोऽध्यायः॥ २६॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत विष्णुपर्वमें अक्रूरद्वारा नागलोकके वृत्तान्तका कथनविषयक छब्बीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ २६॥

सप्तविंशोऽध्यायः

श्रीकृष्ण और बलरामका मथुरामें प्रवेश, उनके द्वारा रजकका वध, मालीको वरदान, कुब्जापर कृपा और कंसके धनुषका भञ्जन

वैशम्पायन उवाच

ते तु युङ्क्त्वा रथवरं सर्व एवामितौजसः।
कृष्णेन सहिताः प्रायंस्तथा संकर्षणेन च॥ १

आसेदुस्ते पुरीं रम्यां मथुरां कंसपालिताम्।
विविशुस्ते पुरीं रम्यां काले रक्तदिवाकरे॥ २

तौ तु स्वभवनं वीरौ कृष्णसंकर्षणावुभौ।
प्रवेशितौ बुद्धिमता ह्यक्रूरेणार्कवर्चसौ॥ ३

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! वे सभी अमित तेजस्वी यात्री अपने श्रेष्ठ रथको जोतकर श्रीकृष्ण और संकर्षणके साथ राजा कंसके द्वारा सुरक्षित रमणीय मथुरापुरीमें जा पहुँचे। संध्याकालमें जब कि सूर्यदेव लाल हो गये थे, उन सबने उस रमणीय मथुरा-नगरीमें प्रवेश किया। बुद्धिमान् अक्रूर सूर्यतुल्य तेजस्वी श्रीकृष्ण और संकर्षण दोनों वीरोंको पहले अपने घरमें ले गये॥ १—३॥

तावाह वरवर्णाभौ भीतो दानपतिस्तदा।
त्यक्तव्या तात गमने वसुदेवगृहे स्पृहा॥ ४

युवयोर्हि कृते वृद्धः कंसेन स निरस्यते।
भर्त्स्यते च दिवा रात्रौ नेह स्थातव्यमित्यपि॥ ५

तद् युवाभ्यां हि कर्तव्यं पित्रर्थं सुखमुत्तमम्।
यथा सुखमवाप्नोति तद् वै कार्यं हितान्वितम्॥ ६

तमुवाच ततः कृष्णो यास्यावावामतर्कितौ।
प्रेक्षन्तौ मथुरां वीर राजमार्गं च धार्मिक।
तस्यैव तु गृहं साधो गच्छावो यदि मन्यसे॥ ७

वैशम्पायन उवाच

अक्रूरोऽपि नमस्कृत्य मनसा कृष्णमव्ययम्।
जगाम कंसपार्श्वं तु प्रहृष्टेनान्तरात्मना॥ ८

अनुशिष्टौ च तौ वीरौ प्रस्थितौ प्रेक्षकावुभौ।
आलानाभ्यामिवोन्मुक्तौ कुञ्जरौ युद्धकाङ्क्षिणौ॥ ९

तौ तु मार्गगतं दृष्ट्वा रजकं रङ्गकारकम्।
अयाचेतां ततस्तौ तु वासांसि रुचिराणि वै॥ १०

रजकः स तु तौ प्राह युवां कस्य वनेचरौ।
राजवासांसि यौ मौढ्याद् याचेथां निर्भयावुभौ॥ ११

अहं कंसस्य वासांसि नानादेशोद्भवानि वै।
कामरागाणि शतशो रञ्जयामि विशेषतः॥ १२

युवां कस्य वने जातौ मृगैः सह विवर्द्धितौ।
जातरागाविदं दृष्ट्वा रक्तमाच्छादनं बहु॥ १३

अहो वां जीवितं त्यक्तं यौ भवन्ताविहागतौ।
मूर्खौ प्राकृतविज्ञानौ वासो याचितुमिच्छतः॥ १४

तस्मै चुकोप वै कृष्णो रजकायाल्पमेधसे।
प्राप्तारिष्टाय मूर्खाय सृजते वाङ्मयं विषम्॥ १५

वे दोनों भाई उत्तम कान्तिसे प्रकाशित हो रहे थे। उस समय दानपति अक्रूरने कंससे भयभीत होकर उनसे कहा—'तात! तुम दोनोंको अभी वसुदेवके घरमें जानेकी इच्छा त्याग देनी चाहिये॥ ४॥ क्योंकि तुम्हारे कारण ही कंस बूढ़े वसुदेवको घरसे निकालता है और 'तुम्हें यहाँ नहीं रहना चाहिये' ऐसा कहकर उन्हें दिन-रात डाँटता रहता है॥ ५॥ अतः तुम दोनोंको पिताके लिये उत्तम सुखकी व्यवस्था करनी चाहिये। जिस तरह उन्हें सुख मिले, जैसे उनका हित हो, वही कार्य करना चाहिये॥ ६॥ तब श्रीकृष्णने उनसे कहा—'धर्मनिष्ठ वीर! साधुपुरुष! यदि आप स्वीकार करें तो हम दोनों भाई मथुरानगर और इसके राजमार्गको देखते हुए यहाँसे जायँ और अतर्कित रूपसे कंसके ही घर पहुँच जायँ'॥ ७॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! अक्रूर भी मनसे ही अविनाशी भगवान् श्रीकृष्णको नमस्कार करके प्रसन्न चित्तसे कंसके पास गये॥ ८॥ अक्रूरकी आज्ञा लेकर वे दोनों वीर श्रीकृष्ण और बलराम नगर देखनेके लिये वहाँसे इस तरह प्रस्थित हुए, मानो युद्धकी इच्छा रखनेवाले दो गजराज आलानसे* छूट निकले हों॥ ९॥ उन दोनोंने रास्तेमें एक रजक (धोबी)-को देखा, जो कपड़ोंमें रंग कर रहा था। उसे देखकर वे दोनों भाई उससे सुन्दर वस्त्र माँगने लगे॥ १०॥ रजकने उन दोनोंसे कहा—'अरे तुम दोनों किसके (और कहाँके) वनेचर हो? जो मूर्खतावश निर्भय होकर राजाके कपड़े माँग रहे हो!॥ ११॥ मैं तो विभिन्न देशोंके बने हुए राजा कंसके सैकड़ों वस्त्रोंको रँगता हूँ और उन वस्त्रोंपर विशेषतः उनकी इच्छाके अनुसार रंग देता हूँ॥ १२॥ तुम दोनों किसके बेटे हो? तुम तो वनमें पैदा हुए और वन्य पशुओंके साथ ही बढ़े हो। आज इन बहुत-से रंगीन कपड़ोंको देखकर तुम्हारे मनमें इनके प्रति लोभ उत्पन्न हो गया है?॥ १३॥ अहो! यह बड़े आश्चर्यकी बात है। जान पड़ता है, तुमने अपने जीवनका मोह त्याग दिया है, तभी तो यहाँ आ गये। तुम दोनों मूर्ख हो। तुम्हारी बुद्धि गँवारों-जैसी है, इसीलिये तो राजाके कपड़े माँगनेकी इच्छा करते हो'॥ १४॥ यह सुनकर श्रीकृष्ण उस मन्दबुद्धि, अरिष्टग्रस्त, मूर्ख तथा जहरीली बात बोलनेवाले रजकपर कुपित हो उठे॥ १५॥

* जिसमें हाथी बाँधा जाता है, उस खम्भेको आलान कहते हैं।

तलेनाशनिकल्पेन स तं मूर्द्धन्यताडयत्।
स गतासुः पपातोर्व्यां रजको व्यस्तमस्तकः॥ १६

तं हतं परिदेवन्त्यो भार्यास्तस्य विचुक्रुशुः।
त्वरितं मुक्तकेश्यश्च जग्मुः कंसनिवेशनम्॥ १७

तावप्युभौ सुवसनौ जग्मतुर्माल्यकारणात्।
वीथीमाल्यापणानां वै गन्धाघ्रातौ द्विपाविव॥ १८

गुणको नाम तत्रासीन्माल्यवृत्तिः प्रियंवदः।
प्रभूतमाल्यापणवाँल्लक्ष्मीवान् प्रियदर्शनः॥ १९

तं कृष्णः श्लक्ष्णया वाचा माल्यार्थमभिसृष्टया।
देहीत्युवाच तत्काले मालाकारमकातरम्॥ २०

ताभ्यां प्रीतो ददौ माल्यं प्रभूतं माल्यजीवनः।
भवतोः स्वमिदं चेति प्रोवाच प्रियदर्शनौ॥ २१

प्रीतः सुमनसा कृष्णो गुणकाय वरं ददौ।
श्रीस्त्वां मत्सम्भवा सौम्य धनौघैरभिपत्स्यते॥ २२

स लब्ध्वा वरमव्यग्रो माल्यवृत्तिरधोमुखः।
कृष्णस्य पतितो मूर्ध्ना प्रतिजग्राह तं वरम्॥ २३

यक्षाविमाविति तदा स मेने माल्यजीवकः।
स भृशं भयसंविग्नो नोत्तरं प्रत्यपद्यत॥ २४

वसुदेवसुतौ तौ च राजमार्गगतावुभौ।
कुब्जां ददृशतुर्भूयः सानुलेपनभाजनाम्॥ २५

तामाह कृष्णः कुब्जेति कस्येदमनुलेपनम्।
नयस्यम्बुजपत्राक्षि क्षिप्रमाख्यातुमर्हसि॥ २६

सस्मिता सम्मुखी भूत्वा प्रत्युवाचाम्बुजेक्षणम्।
कृष्णं जलदगम्भीरं विद्युत्कुटिलगामिनी॥ २७

उन्होंने उसके माथेपर एक तमाचा जड़ दिया। वह तमाचा क्या था, वज्र था। उसके लगते ही रजकका मस्तक फट गया और वह प्राणहीन होकर पृथ्वीपर गिर पड़ा॥ १६॥ उसे मारा गया देख उसकी स्त्रियाँ चीखने-चिल्लाने लगीं। वे बाल खोले विलाप करती हुई तुरंत राजा कंसके दरबारमें गयीं॥ १७॥ इधर वे दोनों भाई सुन्दर वस्त्र धारण करके फूलोंकी माला लेनेके लिये उस गलीमें गये, जहाँ मालाएँ बिकती थीं। वे ऐसे लगते थे, मानो दो गजराज उन फूलोंकी सुगन्ध पाकर वहाँ जा पहुँचे हों॥ १८॥ उस गलीमें गुणक नामसे प्रसिद्ध एक माली था, जो माला बेचकर ही जीविका चलाता था। उसकी बातें बड़ी प्रिय लगती थीं। उसकी दूकानमें बहुत-सी मालाएँ सजाकर रखी गयी थीं। वह धनवान् होनेके साथ ही देखनेमें सुन्दर भी था॥ १९॥ उस समय श्रीकृष्णने मालाके लिये ही मुखसे निकली हुई अपनी मधुर वाणीद्वारा उस निर्भय मालाकारसे कहा—'हम दोनोंके लिये मालाएँ दे दो'॥ २०॥ मालासे ही जीवन-निर्वाह करनेवाले उस मालीने प्रसन्न होकर उन दोनों भाइयोंको बहुत-सी मालाएँ अर्पित कीं। वे दोनों देखनेमें बड़े प्रिय लगते थे। मालीने उनसे कहा—'यह सब आपकी ही सम्पत्ति है'॥ २१॥ उसकी बात सुनकर श्रीकृष्ण बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने संतुष्ट-चित्तसे गुणकको यह वर दिया—'सौम्य! मेरी प्रसन्नतासे प्रकट होनेवाली लक्ष्मी तुम्हें धन-राशिसे सम्पन्न कर देगी'॥ २२॥ माली उस वरको पाकर शान्तभावसे नतमस्तक हो गया। उसने श्रीकृष्णके चरणोंमें मस्तक रख दिया और उस वरको सादर शिरोधार्य किया॥ २३॥ उस समय मालीने यही समझा कि ये दोनों यक्ष हैं; उसने कंससे अत्यन्त भयभीत होकर उन्हें कुछ उत्तर नहीं दिया॥ २४॥ तदनन्तर सड़कपर जाते हुए उन दोनों वसुदेवपुत्रोंने कुब्जाको देखा, जो हाथोंमें अनुलेपन (अङ्गराग)-का पात्र लिये हुए थी॥ २५॥ उसे देखकर श्रीकृष्णने कहा—'कमलनयने कुब्जे! तुम यह किसके लिये अनुलेपन लिये जा रही हो, शीघ्र बताओ!' यह सुनकर कुब्जा मुसकराती हुई उनके सामने हो गयी। वह बिजलीके समान कुटिल गतिसे चलनेवाली थी। उसने कमलनयन श्रीकृष्णसे मेघके समान गम्भीर वाणीमें कहा— ॥ २६-२७॥

राज्ञः स्नानगृहं यामि तद् गृहाणानुलेपनम्।
दृष्ट्वैव त्वारविन्दाक्ष विस्मितास्मि वरानन॥ २८

यत्त्वमिच्छसि मे वीर त्वं गृहाणानुलेपनम्।
स्थितास्म्यागच्छ भद्रं ते हृदयस्यासि मे प्रियः॥ २९

कुतश्चागम्यते सौम्य यन्मां त्वं नावबुध्यसे।
महाराजस्य दयितां नियुक्तामनुलेपने॥ ३०

तामुवाच हसन्तीं तु कृष्णः कुब्जामवस्थिताम्।
आवयोर्गात्रसदृशं दीयतामनुलेपनम्॥ ३१

वयं हि देशातिथयो मल्लाः प्राप्ता वरानने।
द्रष्टुं धनुर्महद् दिव्यं राष्ट्रे चैव महर्द्धिमत्॥ ३२

प्रत्युवाचाथ सा कृष्णं प्रियोऽसि मम दर्शने।
राजार्हमिदमव्यग्रं तद् गृहाणानुलेपनम्॥ ३३

तावुभावनुलिप्ताङ्गौ चारुगात्रौ विरेजतुः।
तीर्थगौ पङ्कदिग्धाङ्गौ यमुनायां यथा वृषौ॥ ३४

तां च कुब्जां स्थगोर्मध्ये द्व्यङ्गुलेनाग्रपाणिना।
शनैः सम्पीडयामास कृष्णो लीलाविधानवित्॥ ३५

सा च मग्नं स्थगुं मत्वा स्वायताङ्गी शुचिस्मिता।
जहासोच्चैः स्तनतटी ऋजुयष्टिर्लता यथा॥ ३६

प्रणयाच्चापि कृष्णं सा बभाषे मत्तकाशिनी।
क्व यास्यसि मया रुद्धः कान्त तिष्ठ गृहाण माम्॥ ३७

तौ जातहासावन्योन्यं सतलाक्षेपमव्ययौ।
वीक्षमाणौ प्रहसितौ कुब्जायाः श्रुतविस्तरौ॥ ३८

कृष्णस्तु कुब्जां कामार्तां सस्मितं विससर्ज ह।
ततस्तौ कुब्जया मुक्तौ प्रविष्टौ राजसंसदम्॥ ३९

तावुभौ व्रजसंवृद्धौ गोपवेषविभूषितौ।
गूढचेष्टाननौ भूत्वा प्रविष्टौ नृपवेश्म तत्॥ ४०

'कमलनयन! मनोहर मुखवाले वीर! मैं तो राजाके स्नान-गृहको जा रही हूँ। तुम्हें अङ्गराग चाहिये तो ले लो। तुम्हें देखते ही मैं विस्मयसे विमुग्ध हो उठी हूँ। तुम्हें जैसा अङ्गराग चाहिये, वही ग्रहण करो। मैं तुम्हारे लिये ठहर गयी हूँ। तुम्हारा कल्याण हो, आओ मेरे घर। तुम मेरे हृदयवल्लभ हो॥ २८-२९॥ सौम्य! तुम कहाँसे आते हो कि मुझे नहीं जानते। मैं तो महाराज कंसकी प्यारी दासी हूँ। उन्होंने मुझे अङ्गरागके ही कार्यमें लगा रखा है'॥ ३०॥ वहाँ खड़ी होकर हँसती हुई कुब्जासे श्रीकृष्णने कहा—'सुमुखि! तुम हम दोनों भाइयोंके शरीरके अनुरूप अङ्गराग दे दो। हम पहलवान हैं और इस देशमें अतिथिके रूपमें आये हैं। इस राज्यमें जो अत्यन्त समृद्धिशाली, विशाल दिव्य धनुष है, उसे ही देखनेके लिये हमलोगोंका यहाँ आना हुआ है'॥ ३१-३२॥ तब कुब्जाने श्रीकृष्णसे कहा—'मेरी दृष्टिमें तुम परम प्रिय हो, अतः शान्तभावसे यह राजोचित अङ्गराग ग्रहण करो'॥ ३३॥ अङ्गोंमें अङ्गराग लग जानेपर मनोहर शरीरवाले वे दोनों भाई बड़ी शोभा पाने लगे। उस समय वे ऐसे प्रतीत होते थे, जैसे दो साँड़ यमुनाजीके जलमें गोता लगाकर सारे अङ्गोंमें कीचड़ लपेटे आ रहे हों॥ ३४॥ तदनन्तर लीलाविधिको जाननेवाले श्रीकृष्णने अपने हाथकी दो अँगुलियोंसे कुब्जाके कूबड़के मध्यभागमें धीरेसे दबाया (इससे कूबड़ सीधा हो गया)॥ ३५॥ मेरा कूबड़ बैठ गया, ऐसा जानकर सुन्दर एवं उन्नत अङ्गवाली कुब्जा पवित्र मुसकानसे सुशोभित हो हँसने लगी। उसके स्तन प्रान्त उभरकर ऊँचे हो गये और वह सीधी लकड़ीपर चढ़ी हुई लताके समान शोभा पाने लगी॥ ३६॥ फिर तो मतवाली-सी होकर वह श्रीकृष्णसे प्रेमपूर्वक बोली—'प्रियतम! अब तुम कहाँ जाओगे? मैंने तुम्हें रोक लिया, यहीं रहो और मुझे अंगीकार करो'॥ ३७॥ यह सुनकर उन्हें हँसी आ गयी। फिर तो वे अविनाशी बन्धु एक-दूसरेकी ओर देखते हुए ताली पीट-पीटकर जोर-जोरसे हँसने लगे। कुब्जाके कानोंने उन दोनों भाइयोंके गुण विस्तारपूर्वक सुने थे॥ ३८॥ श्रीकृष्णने मुसकराते हुए कामपीड़ित कुब्जाको वहीं छोड़ दिया और उससे छूटकर वे दोनों बन्धु राजभवनमें प्रविष्ट हुए॥ ३९॥ व्रजमें बड़े होकर गोपवेशसे विभूषित हुए उन दोनों वीरोंने जब उस राजभवनमें प्रवेश किया, उस समय उनकी प्रत्येक चेष्टा गुप्तरूपसे होती थी। उनके मुखका भाव ही ऐसा गूढ़ था कि उससे आन्तरिक चेष्टाका पता नहीं लगता था॥ ४०॥

धनुःशालां गतौ तत्र बालावपरितर्कितौ।
हिमवद्वनसम्भूतौ सिंहाविव मदोत्कटौ॥ ४१

दिदृक्षन्तौ महत्तत्र धनुरायोगभूषितम्।
पप्रच्छतुश्च तौ वीरावायुधागारिकं तदा॥ ४२

भोः कंसधनुषां पाल श्रूयतामावयोर्वचः।
कतरत् तद् धनुः सौम्य महोऽयं यस्य वर्तते॥ ४३

आयोगभूतं कंसस्य दर्शयस्व यदीच्छसि।
स तयोर्दर्शयामास तद् धनुः स्तम्भसंनिभम्॥ ४४

अनारोप्यमसम्भेद्यं देवैरपि सवासवैः।
तद् गृहीत्वा तदा कृष्णस्तोलयामास वीर्यवान्॥ ४५

दोर्भ्यां कमलपत्राक्षः प्रहृष्टेनान्तरात्मना।
तोलयित्वा यथाकामं तद् धनुर्दैत्यपूजितम्॥ ४६

आरोपयामास बली नामयामास चासकृत्।
आनाम्यमानं कृष्णेन प्रकर्षादुरगोपमम्॥ ४७

द्विधाभूतमभून्मध्ये धनुरायोगभूषितम्।
भङ्क्त्वा तु तद् धनुः श्रेष्ठं कृष्णस्त्वरितविक्रमः।
निश्चक्राम महावेगः स च संकर्षणो युवा॥ ४८

धनुषो भङ्गनादेन वायुनिर्घोषकारिणा।
चचालान्तःपुरं सर्वं दिशश्चैव पुपूरिरे॥ ४९

निर्गम्य त्वायुधागाराज्जग्मतुर्गोपसंनिधौ।
वेगेनायुधपालस्तु गच्छन् सम्भ्रान्तमानसः॥ ५०

समीपं नृपतेर्गत्वा काकोच्छ्वासोऽभ्यभाषत।
श्रूयतां मम विज्ञाप्यमाश्चर्यं धनुषो गृहे॥ ५१

निर्वृत्तमस्मिन् काले यज्जगतः सम्भ्रमोपमम्।
नरौ कस्याप्यसदृशौ शिखाविततमूर्द्धजौ॥ ५२

नीलपीताम्बरधरौ पीतश्वेतानुलेपनौ।
तावन्तःपुरमज्ञातौ प्रविष्टौ कामवेषिणौ॥ ५३

हिमालयके वनमें उत्पन्न हुए दो मदमत्त सिंहोंके समान वे दोनों बालक वहाँ धनुषशालामें जा पहुँचे। उस समय वहाँ उनके पहुँचनेकी सम्भावना किसीको नहीं थी॥ ४१॥ वे वहाँ रखे हुए विशाल धनुषको, जो पुष्पमालासे विभूषित था, देखना चाहते थे; अतः उन दोनों वीरोंने उस समय शस्त्रागारके संरक्षकसे पूछा— ॥ ४२॥ 'राजा कंसके धनुषोंकी रक्षा करनेवाले अस्त्र-संरक्षक! तुम हम दोनोंकी बातें सुनो। सौम्य! जिसका यह उत्सव होने जा रहा है, वह धनुष कौन-सा है? यदि तुम्हारी इच्छा हो तो कंसके इस उत्सवका जो प्रधान निमित्त है, उस धनुषका हमें दर्शन कराओ'। उसने उन दोनों भाइयोंको वह खम्भ-जैसा मोटा धनुष दिखा दिया। उस धनुषपर प्रत्यञ्चा चढ़ाना या उसे तोड़ना इन्द्रसहित सम्पूर्ण देवताओंके लिये भी असम्भव था। पराक्रमी कमलनयन श्रीकृष्णने प्रसन्नचित्तसे दोनों हाथोंद्वारा उस धनुषको उठाकर तौला। दैत्योंद्वारा पूजित हुए उस धनुषको इच्छानुसार तौलकर बलवान् श्रीकृष्णने कई बार उसको झुकाया और उसके ऊपर प्रत्यञ्चा चढ़ायी। श्रीकृष्णके द्वारा बहुत अधिक झुका दिये जानेके कारण वह पुष्पहारोंसे विभूषित सर्पाकार धनुष बीचसे टूटकर दो भागोंमें विभक्त हो गया। उस श्रेष्ठ धनुषको तोड़कर श्रीकृष्ण तथा वे नवयुवक संकर्षण शीघ्रतापूर्वक कदम बढ़ाते हुए बड़े वेगसे उस भवनसे बाहर निकल गये॥ ४३—४८॥ उस धनुषके टूटनेसे जो धड़ाका हुआ, वह सहसा उठी हुई प्रचण्ड आँधीके समान गम्भीर घोष करनेवाला था। उससे सारा अन्तःपुर काँप उठा और सम्पूर्ण दिशाओंमें वह आवाज गूँज उठी॥ ४९॥ शस्त्रागारसे निकलकर दोनों भाई व्रजसे आये हुए गोपोंके निकट चले गये। इधर आयुधोंकी रक्षा करनेवाला वह सिपाही मन-ही-मन घबरा उठा और बड़े वेगसे राजदरबारकी ओर चल दिया। राजाके निकट जाकर कौएकी तरह चकित हो लम्बी साँस खींचता हुआ वह इस प्रकार बोला—महाराज! मैं जो बात बताना चाहता हूँ, उसे ध्यान देकर सुनिये। इस समय धनुषशालामें एक आश्चर्यजनक घटना घटित हुई है, जो सम्पूर्ण जगत्के प्रलयकी भाँति प्रतीत होती है। वहाँ दो मनुष्य आये थे, जिनकी तुलना किसीसे भी नहीं हो सकती। उनके मस्तकके सभी बाल शिखा (चोटी)-के समान बड़े-बड़े थे। एकने नीला वस्त्र पहन रखा था और दूसरेने पीला। एकके अङ्गोंमें पीला अङ्गराग था तो दूसरेके अङ्गोंमें श्वेत। वे दोनों इच्छानुसार वेष धारण करनेमें कुशल थे, सहसा अन्तः-पुरमें घुस आये और किसीको पता न चला॥ ५०—५३॥

देवपुत्रोपमौ वीरौ बालाविव हुताशनौ।
स्थितौ धनुर्गृहे सौम्यौ सहसा खादिवागतौ।
मया दृष्टौ परिव्यक्तं रुचिराच्छादनस्त्रजौ॥ ५४

तयोरेकस्तु पद्माक्षः श्यामः पीताम्बरस्त्रजः।
जग्राह तद् धनूरत्नं दुर्ग्राह्यं दैवतैरपि॥ ५५

तत् स बालो महच्चापं बलाद् यन्त्रमिवायसम्।
आरोपयित्वा वेगेन नामयामास लीलया॥ ५६

आकृष्यमाणं तत् तेन विबाणं बाहुशालिना।
मुष्टिदेशे विकूजित्वा द्विधाभूतमभज्यत॥ ५७

ततः प्रचलिता भूमिर्नैव भाति च भास्करः।
धनुषो भङ्गनादेन भ्रमतीव नभस्तलम्॥ ५८

तदद्भुतं महद् दृष्ट्वा विस्मयं परमं गतः।
भयाद् भयदशत्रुभ्यस्तदिहाख्यातुमागतः॥ ५९

न जानामि महाराज कौ तावमितविक्रमौ।
एकः कैलाससंकाश एकोऽञ्जनगिरिप्रभः॥ ६०

स तु तच्चापरत्नं वै भङ्क्त्वा स्तम्भमिव द्विपः।
निष्पपातानिलगतिः सानुगोऽमितविक्रमः।
अगमत्तं द्विधा कृत्वा न जाने कोऽप्यसौ नृप॥ ६१

श्रुत्वैव धनुषो भङ्गं कंसो विदितविस्तरः।
विसृज्यायुधपालं वै प्रविवेश गृहोत्तमम्॥ ६२

'वे दोनों वीर देवकुमारोंके समान प्रतीत होते थे। उनकी आकृति बड़ी सौम्य थी। उन्हें देखकर ऐसा जान पड़ता था, मानो बालरूपधारी अग्नि सहसा आकाशसे आकर धनुषशालामें खड़े हो गये हों। उन दोनोंके वस्त्र और पुष्पहार बड़े सुन्दर थे। मैंने उनको स्पष्टरूपसे देखा है॥ ५४॥ उनमेंसे एककी आँखें कमलके समान सुन्दर थीं, शरीरका वर्ण श्याम था। उसके वस्त्र और हार पीले रंगके थे। जिसे हाथमें लेना देवताओंके लिये भी कठिन है, उसी धनुषरत्नको उस श्यामसुन्दर वीरने अनायास ही उठा लिया॥ ५५॥ उस बालकने उस विशाल धनुषको लोहयन्त्रकी भाँति बलात् हाथमें लेकर वेगपूर्वक उसपर प्रत्यञ्चा चढ़ायी और खेल-खेलमें ही उसे झुकाना आरम्भ किया॥ ५६॥ उस बाहुशाली वीरके खींचनेपर वह बाणरहित धनुष मुट्ठी पकड़नेकी जगहसे धड़ाकेके साथ टूटकर दो टूक हो गया॥ ५७॥ धनुष टूटनेकी आवाजसे धरती हिलने लगी, सूर्यकी प्रभा फीकी पड़ गयी और आकाश घूमता-सा प्रतीत होने लगा॥ ५८॥ वह महान् अद्भुत दृश्य देखकर मैं अत्यन्त विस्मयमें पड़ गया और भयदायक शत्रुओंकी ओरसे भय प्राप्त होनेकी आशङ्कासे आपको यह समाचार बतानेके लिये यहाँ आ गया॥ ५९॥ महाराज! मैं नहीं जानता, वे दोनों अमित पराक्रमी वीर कौन थे? उनमेंसे एक तो कैलासपर्वतके समान श्वेतवर्णका था और दूसरा अञ्जनगिरिके समान श्याम॥ ६०॥ हाथी बाँधनेके खम्भेकी भाँति अत्यन्त सुदृढ़ उस धनुषरत्नको तोड़कर वह अमित पराक्रमी वीर अपने सहायकके साथ ही वायुके समान तीव्रगतिका आश्रय ले वहाँसे निकल गया। नरेश्वर! न जाने वह कौन था, जो धनुषके दो टुकड़े करके चला गया'॥ ६१॥ कंसको सब बातें विस्तारपूर्वक विदित थीं। उसने धनुषभङ्गका समाचार सुनते ही शस्त्ररक्षकको विदा कर दिया और स्वयं अपने उत्तम भवनमें प्रवेश किया॥ ६२॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे विष्णुपर्वणि कंसधनुर्भङ्गे सप्तविंशोऽध्यायः॥ २७॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत विष्णुपर्वमें कंसके धनुषका भङ्गविषयक सत्ताईसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ २७॥

अष्टाविंशोऽध्यायः

कंसकी चिन्ता, उसका रंगशालाको देखना और उसे सुसज्जित करनेका आदेश देना, चाणूर एवं मुष्टिकको तथा कुवलयापीडके महावतको श्रीकृष्ण-बलरामके वधके लिये आज्ञा देना, महावतसे द्रुमिलके द्वारा अपनी उत्पत्तिकी कथा कहना—उसकी माताका सुयामुन पर्वतपर द्रुमिलके साथ समागम तथा उन दोनोंका परस्पर वरदान एवं शाप

वैशम्पायन उवाच

स चिन्तयित्वा धनुषो भङ्गं भोजविवर्धनः।
बभूव विमना राजा चिन्तयन् भृशदुःखितः ॥ १

कथं बालो विगतभीरवमत्य महाबलम्।
प्रेक्ष्यमाणस्तु पुरुषैर्धनुर्भङ्क्त्वा विनिर्गतः ॥ २

यस्यार्थे दारुणं कर्म कृतं लोकविगर्हितम्।
पितृष्वस्त्रात्मजान् वीरान् षडेवाहं न्यपोथयम् ॥ ३

दैवं पुरुषकारेण न शक्यमतिवर्तितुम्।
नारदोक्तं च वचनं नूनं मह्यमुपस्थितम् ॥ ४

एवं राजा विचिन्त्याथ निष्क्रम्य स्वगृहोत्तमात्।
प्रेक्षागारं जगामाशु मञ्चानामवलोककः ॥ ५

स दृष्ट्वा सर्वनिर्युक्तं प्रेक्षागारं नृपोत्तमः।
श्रेणीनां दृढनिर्युक्तैर्मञ्चवाटैर्निरन्तरम् ॥ ६

सोत्तमागारयुक्ताभिर्वलभीभिर्विभूषितम्।
छदीभिः सम्प्रवृद्धाभिरेकस्तम्भैर्विभूषितम् ॥ ७

सर्वतः सारनिर्व्यूहं स्वायतं सुप्रतिष्ठितम्।
उदग्राक्लिष्टसुक्लिष्टमञ्चारोहणमुत्तमम् ॥ ८

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! भोजवंशकी वृद्धि करनेवाला राजा कंस धनुषके टूटनेकी घटनापर विचार करके मन-ही-मन खिन्न हो उठा। वह ज्यों-ही-ज्यों उसका चिन्तन करता, त्यों-ही-त्यों अत्यन्त दुःखमें निमग्न होता जाता था ॥ १ ॥ वह सोचने लगा, 'अहो! वह बालक कैसे निर्भय हो महाबली रक्षककी अवहेलना करके दूसरे लोगोंके देखते-देखते धनुष तोड़कर निकल गया ॥ २ ॥ यह वही बालक है, जिसे मारनेके लिये मैंने लोकनिन्दित क्रूरतापूर्ण कर्म किया। अपनी चचेरी बहिनके छः वीर पुत्रोंको शिलापर दे मारा ॥ ३ ॥ सचमुच ही पुरुषार्थसे दैवके विधानका उल्लङ्घन नहीं किया जा सकता।' नारदजीने मेरे लिये जो बात कही थी, वह अवश्य आकर उपस्थित हो गयी ॥ ४ ॥ इस प्रकार चिन्ता करके राजा कंस अपने उत्तम भवनसे निकला और शीघ्र ही प्रेक्षागृह* (रङ्गशाला)-में वहाँ लगे हुए मञ्चोंका निरीक्षण करनेके लिये गया ॥ ५ ॥ उस श्रेष्ठ नरेशने प्रेक्षागृहको सब प्रकारसे सम्पन्न हुआ देखा। वहाँ एकमात्र शिल्पसे जीवन-निर्वाह करनेवाले शिल्पियोंने लगातार बहुत-से मञ्चोंके बाड़ बना रखे थे। वे सब-के-सब दृढ़तापूर्वक बाँधे गये थे। उत्तमोत्तम ग्रहोंसे लगे हुए छज्जे भी बनाये गये थे। उन छज्जोंमें कहीं तो छः-छः खम्भे एक साथ लगे थे, जिनसे उनकी विशालता बढ़ गयी थी और कहीं-कहीं एक-एक संख्यावाले ही खम्भे लगाये गये थे। इन खम्भों, छज्जों और मञ्चवाटोंने उस प्रेक्षागृहको विभूषित कर रखा था ॥ ६-७ ॥ वहाँ सब ओर दीवारोंमें मजबूत खूटियाँ लगी थीं। वह भवन बहुत विशाल बना था। उसकी अच्छी प्रकार प्रतिष्ठा की गयी थी। उसके भीतर मञ्चोंपर चढ़नेके लिये ऊँची असंकीर्ण (चौड़ी) तथा परस्पर सटी हुई सीढ़ियाँ बनी थीं। इससे वह रंगभवन बहुत ही उत्तम दिखायी देता था ॥ ८ ॥

*धनुर्यज्ञका उत्सव देखनेके लिये बना हुआ विशाल स्थान।

नृपासनपरिक्षिप्तं संचारपथसंकुलम्।
छन्नं तद् वेदिकाभिश्च मानुषौघभरक्षमम्॥ ९

स दृष्ट्वा भूषितं रङ्गमाज्ञापयत बुद्धिमान्।
श्वः सचित्राः समाल्याश्च सपताकास्तथैव च॥ १०

सुवासिता वपुष्मन्त उपनीतोत्तरच्छदाः।
क्रियन्तां मञ्चवाटाश्च वलभ्यो वीथयस्तथा॥ ११

रङ्गवाटे करीषस्य कल्प्यन्तां राशयोऽव्ययाः।
पटास्तरणशोभाश्च वलयश्चानुरूपतः॥ १२

स्थाप्यन्तां सुनिखाताश्च पानकुम्भा यथाक्रमम्।
उदभारसहाः सर्वे सकाञ्चनघटोत्तमाः॥ १३

बलयश्चोपकल्प्यन्तां कषायाश्चैव कुम्भशः।
प्राश्निकाश्च निमन्त्र्यन्तां श्रेण्यश्च सपुरोगमाः॥ १४

आज्ञा च देया मल्लानां प्रेक्षकाणां तथैव च।
समाजे मञ्चशोभाश्च कल्प्यन्तां सूपकल्पिताः॥ १५

एवमाज्ञाप्य राजा स समाजविधिमुत्तमम्।
समाजवाटान्निष्क्रम्य विवेश स्वं निवेशनम्॥ १६

आह्वानं तत्र संचक्रे तस्य मल्लद्वयस्य वै।
चाणूरस्याप्रमेयस्य मुष्टिकस्य तथैव च॥ १७

तौ तु मल्लौ महावीर्यौ बलिनौ बाहुशालिनौ।
कंसस्याज्ञां पुरस्कृत्य हृष्टौ विविशतुस्तदा॥ १८

तौ समीपगतौ दृष्ट्वा मल्लौ जगति विश्रुतौ।
उवाच कंसो नृपतिः सोपन्यासमिदं वचः॥ १९

वहाँ राजाओंके बैठनेके लिये चारों ओर सिंहासन रखे गये थे। उस रङ्गशालामें सब ओर आने-जानेके लिये बहुत-से मार्ग थे। सारा भवन बहुसंख्यक वेदियोंसे व्याप्त था। उसमें मनुष्योंकी बहुत बड़ी भीड़को अपने भीतर सुगमतापूर्वक भर लेनेकी क्षमता थी॥ ९॥ बुद्धिमान् कंसने उस रङ्गभवनको सब प्रकारसे सजा हुआ देख कार्यकर्ताओंको इस प्रकार आज्ञा दी—'कल सबेरे यहाँके मञ्चवाटों, छज्जों तथा गलियोंको चित्रों, मालाओं और पताकाओंसे सजा दिया जाय, सुगन्धित जल छिड़ककर इन सबको सुवासित किया जाय, मनोहर रूप दिया जाय, मञ्चोंपर सुन्दर चाँदनी बिछा दी जाय॥ १०-११॥ अखाड़ेमें गोमयचूर्णके अधिक-से-अधिक ढेर बिछा दिये जायँ। जिससे उनकी कमी न पड़े। जगह-जगह शोभाके लिये सुन्दर परदे लगा दिये जायँ। उनके अनुरूप खम्भे खड़े किये जायँ, जो भूमिमें खूब गहराईतक गड़े हों। क्रमशः पानकुम्भ* स्थापित किये जायँ, वे सब-के-सब जलका भार सह लेनेमें समर्थ हों। उनपर जलपूर्ण सोनेके उत्तम घड़े रख दिये जायँ॥ १२-१३॥ उपहारकी वस्तुएँ भी एकत्र की जायँ, घड़ोंमें रस भरकर रखे जायँ, मल्लयुद्धके नियमोंको जाननेवाले लोग निमन्त्रित किये जायँ, व्यवसायियों तथा कारीगरोंको उनके अगुओंसहित बुलाया जाय॥ १४॥ मल्लों तथा प्रेक्षकों (युद्धमें हार-जीतके निर्णायकों)-को ठीक समयसे आनेकी आज्ञा दे दी जाय। रङ्गशालामें स्थापित किये गये मञ्चोंकी शोभा बढ़ानेके लिये उन्हें अच्छी तरह सजाया जाय'॥ १५॥ इस प्रकार रंगशालाको अच्छी तरहसे सजानेकी उत्तम व्यवस्थाके लिये आज्ञा देकर राजा कंस वहाँसे निकला और अपने महलमें चला गया॥ १६॥ वहाँ उसने अपने दो मल्लोंको बुलाया—एक तो अप्रतिम बलशाली चाणूर था और दूसरा मुष्टिक॥ १७॥ अपनी भुजाओंसे सुशोभित होनेवाले वे दोनों महापराक्रमी बलशाली मल्ल कंसकी आज्ञा शिरोधार्य करके बड़े हर्षके साथ उसके भवनमें प्रविष्ट हुए॥ १८॥ उन दोनों विश्वविख्यात पहलवानोंको अपने समीप आया देख राजा कंसने यह युक्तियुक्त वचन कहा—॥ १९॥

*पानीसे भरे घड़ों या माँटोंको रखनेके लिये काठकी बनी हुई चार या छः पायेकी टेबुल-जैसी एक चीज, जिसे कुछ स्थानोंपर पल्हैंडी कहते हैं। इसीका नाम पानकुम्भ है। नीलकण्ठने इसका पर्यायवाची शब्द घटोच्छ्रायिका बताया है।

भवन्तौ मम विख्यातौ मल्लौ वीरध्वजोच्छ्रितौ।
पूजितौ च यथान्यायं सत्कारार्हौ विशेषतः॥ २०

तन्मत्तो यदि सत्कारः स्मर्यते सुकृतानि च।
कर्तव्यं मे महत् कर्म भवद्भ्यां स्वेन तेजसा॥ २१

यावेतौ मम संवृद्धौ व्रजे गोपालकावुभौ।
संकर्षणश्च कृष्णश्च बालावपि जितश्रमौ॥ २२

एतौ रङ्गगतौ युद्धे युद्ध्यमानौ वनेचरौ।
निपातानन्तरं शीघ्रं हन्तव्यौ नात्र संशयः॥ २३

बालाविमौ सुचपलावक्रियाविति सर्वथा।
नावज्ञा तत्र कर्तव्या कर्तव्यो यत्न एव हि॥ २४

ताभ्यां युधि निरस्ताभ्यां गोपाभ्यां रङ्गसंनिधौ।
आयत्यां च तदात्वे च श्रेयो मम भविष्यति॥ २५

नृपतेः स्नेहसंयुक्तैर्वचोभिर्हृष्टमानसौ।
ऊचतुर्युद्धसम्मत्तौ मल्लौ चाणूरमुष्टिकौ॥ २६

यद्यावयोस्तौ प्रमुखे स्थास्येते गोपकिल्बिषौ।
हतावित्येव मन्तव्यौ प्रेतरूपौ तपस्विनौ॥ २७

यद्यावां प्रतियोत्स्येते तावरिष्टपरिप्लुतौ।
आवाभ्यां रोषयुक्ताभ्यां प्रमुखे तौ वनेचरौ॥ २८

एवं वाग्विषमुत्सृज्य तावुभौ मल्लपुङ्गवौ।
अनुज्ञातौ नरेन्द्रेण स्वे गृहे तौ प्रजग्मतुः॥ २९

महामात्रं ततः कंसो बभाषे हस्तिजीविनम्।
हस्ती कुवलयापीडः समाजद्वारि तिष्ठतु॥ ३०

बलवान् मदलोलाक्षश्चपलः क्रोधनो नृषु।
दानोत्कटकटश्चण्डः प्रतिवारणरोषणः॥ ३१

स संनोदयितव्यस्ते तावुद्दिश्य वनौकसौ।
वसुदेवसुतौ वीरौ यथा स्यातां गतायुषौ॥ ३२

'तुम दोनों मेरे दरबारके विख्यात मल्ल हो और वीरध्वज (शौर्यसूचक सम्मान-चिह्न) प्राप्त करके मल्लोंमें उच्चतम स्थानपर प्रतिष्ठित हुए हो। तुम दोनों मेरे द्वारा विशेष सत्कार पानेके योग्य रहे हो, इसलिये मैंने सदा ही तुम्हारा यथोचित सम्मान किया है॥ २०॥ अतः यदि तुम्हें मुझसे प्राप्त हुए सत्कारोंका स्मरण है, मेरे द्वारा किये गये उपकार और सद्व्यवहार भूले नहीं हैं तो आज तुम दोनोंको अपने तेज (बल-पराक्रम)-से मेरा एक महान् कार्य सिद्ध करना होगा॥ २१॥ ये जो मेरे व्रजमें पले हुए संकर्षण और कृष्ण नामक दो ग्वाले हैं, बालक होनेपर भी परिश्रमको जीत चुके हैं (कभी थकते नहीं हैं)॥ २२॥ ये दोनों वनेचर जब अखाड़ेमें उतरकर युद्धके समय तुमसे लड़ने लगें, तब तुम दोनों उन्हें नीचे गिराते ही शीघ्र मार डालना। इसमें कोई संशय नहीं मानना चाहिये॥ २३॥ ये चञ्चल बालक हैं, इन्हें युद्धकी शिक्षा नहीं मिली है— सर्वथा ऐसा समझकर तुम उन दोनोंकी अवहेलना न करना। तुम्हें उन्हें मार डालनेके लिये पूरा-पूरा यत्न करना ही चाहिये॥ २४॥ यदि रंगस्थलके समीप युद्धमें वे दोनों गोप-बालक मार डाले जायँ तो वर्तमान और भविष्यमें भी मेरा कल्याण होगा'॥ २५॥ राजा कंसके इन स्नेहयुक्त वचनोंसे उन दोनों मल्लोंके हृदयमें बड़ी प्रसन्नता हुई। युद्धके लिये सदा मतवाले रहनेवाले वे दोनों पहलवान चाणूर और मुष्टिक राजासे इस प्रकार बोले—॥ २६॥ यदि वे दोनों गोपकुल-कलंक युद्धमें हमारे सामने खड़े हो जायँगे तो आप उन्हें मरा हुआ ही समझिये। वे कष्ट उठानेवाले प्रेतरूप ही हैं—ऐसा मानिये॥ २७॥ यदि किसी अरिष्ट-ग्रहसे ग्रस्त होकर वे दोनों हमलोगोंसे लड़ेंगे तो हम रोषमें भरकर सबके सामने उन दोनों वनेचरोंको अवश्य मार डालेंगे'॥ २८॥ इस तरह वाणीरूप विषका वमन करके वे दोनों मल्लपुङ्गव राजा कंसकी आज्ञा ले अपने घर चले गये॥ २९॥ तत्पश्चात् कंसने हाथीकी परिचर्यासे ही जीविका चलानेवाले अपने महावतको बुलाकर कहा—'कुवलयापीड नामक हाथी रंगशालाके द्वारपर खड़ा रहे। वह बलवान्, मदसे चञ्चल नेत्रवाला, चपल तथा मनुष्योंके प्रति कुपित रहने-वाला है। उसके गण्डस्थल मदकी धारासे उत्कट दिखायी देते हैं। वह किसी विपक्षी हाथीको देखते ही रोषसे भर जाता है तथा स्वभावसे ही अत्यन्त क्रोधी है। वसुदेवके जो वनमें रहनेवाले वीर पुत्र हैं, वे यदि द्वारपर आ जायँ

त्वया चैव गजेन्द्रेण यदि तौ गोष्ठजीविनौ।
भवेतां पतितौ रङ्गे पश्येयमहमुत्कटौ॥ ३३

ततस्तौ पतितौ दृष्ट्वा वसुदेवः सबान्धवः।
छिन्नमूलो निरालम्बः सभार्यो विनशिष्यति॥ ३४

ये चेमे यादवा मूर्खाः सर्वे कृष्णपरायणाः।
विनशिष्यन्ति च्छिन्नाशा दृष्ट्वा कृष्णं निपातितम्॥ ३५

एतौ हत्वा गजेन्द्रेण मल्लैर्वा स्वयमेव वा।
पुरीं निर्यादवीं कृत्वा विचरिष्याम्यहं सुखी॥ ३६

पिता हि मे परित्यक्तो यादवानां कुलोद्वहः।
शेषाश्च मे परित्यक्ता यादवाः कृष्णपक्षिणः॥ ३७

न चाहमुग्रसेनेन जातः किल सुतार्थिना।
मानुषेणाल्पवीर्येण यथा मामाह नारदः॥ ३८

महामात्र उवाच

कथमुक्तं नारदेन राजन् देवर्षिणा पुरा।
आश्चर्यमेतत् कथितं त्वत्तः श्रुतमरिंदम॥ ३९

कथमन्येन जातस्त्वमुग्रसेनात् पितुर्विना।
तव मात्रा कथं राजन् कृतं कर्मेदमीदृशम्॥ ४०

अन्यापि प्राकृता नारी न कुर्याच्च जुगुप्सितम्।
विस्तरं श्रोतुमिच्छामि ह्येतत् कौतूहलं हि मे॥ ४१

कंस उवाच

यथा कथितवान् विप्रो महर्षिर्नारदः प्रभुः।
तथाहं सम्प्रवक्ष्यामि यदि ते श्रवणे मतिः॥ ४२

आगतः शक्रसदनात् स वै शक्रसखो मुनिः।
चन्द्रांशुशुक्लवसनो जटामण्डलमुद्वहन्॥ ४३

कृष्णाजिनोत्तरीयेण रुक्मयज्ञोपवीतवान्।
दण्डी कमण्डलुधरः प्रजापतिरिवापरः॥ ४४

तो तुम उनके ऊपर उस हाथीको हाँक देना, जिससे वहीं उनकी जीवनलीला समाप्त हो जाय। मैं चाहता हूँ कि गोष्ठमें जीनेवाले उन दोनों मदमत्त बालकोंको तुम्हारे और गजराज कुवलयापीडके द्वारा रंगशालाके द्वारपर धराशायी किया हुआ देखूँ'॥ ३०—३३॥ उन दोनोंको पृथ्वीपर पड़ा देख वसुदेवकी तो जड़ ही कट जायगी। वे पत्नी और बन्धु-बान्धवोंसहित निरवलम्ब होकर स्वयं नष्ट हो जायँगे॥ ३४॥ साथ ही ये जो-जो मूर्ख यादव श्रीकृष्णका भरोसा रखते हैं, वे सब श्रीकृष्णको मारा गया देख हताश होकर विनाशके गर्तमें गिर जायँगे॥ ३५॥ इन दोनोंको गजराज कुवलयापीड अथवा मल्लोंके द्वारा मरवाकर या स्वयं ही मारकर मथुरापुरीको यादवोंसे सूनी करके मैं सुखपूर्वक विचरूँगा॥ ३६॥ मैंने यादव-कुलका भार वहन करनेवाले अपने पिताको ही त्याग दिया। कृष्णका पक्ष लेनेवाले जो शेष यादव हैं, वे भी मेरे द्वारा परित्यक्त हो चुके हैं॥ ३७॥ 'यथार्थ बात यह है कि पुत्रकी इच्छा रखनेवाले इस अल्पपराक्रमी मानव उग्रसेनके द्वारा मेरा जन्म नहीं हुआ है जैसा कि नारदजीने मुझे बताया है'॥ ३८॥

महावतने पूछा—राजन्! पूर्वकालमें देवर्षि नारदने कैसी बात बतायी थी? शत्रुदमन! यह तो मैंने आपके मुखसे बड़े आश्चर्यकी बात सुनी है॥ ३९॥ यदि आपके पिता उग्रसेन नहीं हैं तो उनके बिना दूसरेसे आपका जन्म कैसे हुआ है? महाराज! आपकी माताने यह ऐसा कुत्सित कर्म कैसे किया?॥ ४०॥ दूसरी साधारण स्त्री भी ऐसा घृणित कार्य नहीं कर सकती है; फिर उन्होंने कैसे किया? मैं विस्तारपूर्वक इस प्रसंगको सुनना चाहता हूँ। इसे जाननेके लिये मेरे मनमें बड़ा कौतूहल है॥ ४१॥

कंसने कहा—महावत! यदि तुम्हारा विचार इस रहस्यको सुननेका ही है तो प्रभावशाली महर्षि नारद बाबाने मुझसे जैसा कहा था, उसी तरह मैं इस प्रसंगका वर्णन करूँगा॥ ४२॥ वे मुनि नारद देवराज इन्द्रके सखा हैं। एक दिन चन्द्रमाकी किरणोंके समान श्वेत वस्त्र पहने और सिरपर जटामण्डलका भार धारण किये वे इन्द्रभवनसे मेरे यहाँ आये॥ ४३॥ उनके कंधेपर काले मृगचर्मकी चादर पड़ी थी। वे सुवर्णमय यज्ञोपवीतसे विभूषित थे और दण्ड-कमण्डलु धारण किये दूसरे प्रजापतिके समान जान पड़ते थे॥ ४४॥

गाता चतुर्णां वेदानां विद्वान् गान्धर्ववेदवित्।
स नारदोऽथ देवर्षिर्ब्रह्मलोकचरोऽव्ययः॥ ४५

तमागतमृषिं दृष्ट्वा पूजयित्वा यथाविधि।
पाद्यार्घ्यमासनं दत्त्वा सम्प्रवेश्योपविश्य ह॥ ४६

सुखोपविष्टोऽथ मुनिः पृष्ट्वा च कुशलं मम।
उवाच च प्रीतमना देवर्षिर्भावितात्मवान्॥ ४७

नारद उवाच

पूजितोऽहं त्वया वीर विधिदृष्टेन कर्मणा।
इदमेकं मम वचः श्रूयतां प्रतिगृह्यताम्॥ ४८
गतोऽहं देवसदनं सौवर्णं मेरुपर्वतम्।
सोऽहं कदाचिद् देवानां समाजे मेरुमूर्धनि॥ ४९
तत्र मन्त्रयतामेवं देवतानां मया श्रुतः।
भवतः सानुगस्यैव वधोपायः सुदारुणः॥ ५०
तत्र यो देवकीगर्भो विष्णुर्लोकनमस्कृतः।
योऽस्या गर्भोऽष्टमः कंस स ते मृत्युर्भविष्यति॥ ५१
देवानां स तु सर्वस्वं त्रिदिवस्य गतिश्च सः।
परं रहस्यं देवानां स ते मृत्युर्भविष्यति॥ ५२
यत्नश्च क्रियतां कंस गर्भाणां पातनं प्रति।
नावज्ञा रिपवे कार्या दुर्बले स्वजनेऽपि वा॥ ५३
न चायमुग्रसेनः स पिता तव महाबलः।
द्रुमिलो नाम तेजस्वी सौभस्य पतिरूर्जितः॥ ५४
श्रुत्वाहं तद् वचस्तस्य किंचिद् रोषसमन्वितः।
भूयोऽपृच्छं कथं ब्रह्मन् द्रुमिलो नाम दानवः॥ ५५
मम मात्रा कथं तस्य ब्रूहि विप्र समागमः।
एतदिच्छाम्यहं श्रोतुं विस्तरेण तपोधन॥ ५६

नारद उवाच

हन्त ते कथयिष्यामि शृणु राजन् यथार्थतः।
द्रुमिलस्य च मात्रा ते संवादं च समागमम्॥ ५७

नारदजी वेदोंके विद्वान् तो हैं ही, गान्धर्ववेद (संगीत-विद्या)-के भी पूर्ण पण्डित हैं, अतः चारों वेदोंका गान किया करते हैं। ब्रह्मलोकमें विचरनेवाले वे अविनाशी देवर्षि नारद ही मेरे यहाँ पधारे थे॥ ४५॥ अपने यहाँ आये हुए उन महर्षिको देखकर मैंने पाद्य-अर्घ्य और आसन समर्पित करके उनकी विधिपूर्वक पूजा की और महलके भीतर ले जाकर उन्हें बिठाया॥ ४६॥ जब सुखपूर्वक बैठ गये, तब मुझसे कुशल-प्रश्न करनेके अनन्तर प्रसन्नचित्त हुए उन शुद्ध अन्तःकरणवाले देवर्षिने इस प्रकार कहा॥ ४७॥

नारदजी बोले—वीर! तुमने शास्त्रीय विधिके अनुसार मेरा पूजन किया है; अतः मेरी यह एक बात सुनो और इसे ग्रहण करो॥ ४८॥ सुवर्णमय मेरुपर्वत देवताओंका निवास-स्थान है। उस पर्वतके शिखरपर एक दिन देवताओंका समाज जुटा हुआ था। उसीमें मैं भी गया था॥ ४९॥ वहाँ देवतालोग अनुचरोंसहित तुम्हारे वधके अत्यन्त दारुण उपायपर विचार कर रहे थे। वहीं उनके मुखसे यह बात मैंने सुनी थी॥ ५०॥ कंस! इस देवकीका जो आठवाँ गर्भ है, उसमें विश्ववन्दित भगवान् विष्णु निवास करेंगे; अतः यह गर्भ तुम्हारी मृत्युका कारण होगा॥ ५१॥ वे विष्णु ही देवताओंके सर्वस्व हैं। स्वर्गलोकके आश्रय हैं तथा देवगणोंके परम रहस्य हैं। वे ही तुम्हारी मृत्युमें कारण होंगे॥ ५२॥ कंस! तुम देवकीके गर्भोंको मार गिरानेके लिये यत्न करो। शत्रु दुर्बल अथवा स्वजन हो तो भी उसके प्रति उपेक्षा नहीं करनी चाहिये॥ ५३॥ ये उग्रसेन तुम्हारे पिता नहीं हैं। सौभ विमानका स्वामी ओज और तेजसे सम्पन्न महाबली द्रुमिल तुम्हारा पिता है॥ ५४॥ नारदजीकी यह बात सुनकर मुझे कुछ रोष आ गया। मैंने पुनः पूछा—'ब्रह्मन्! द्रुमिल नामक दानव किस तरह मेरा पिता हुआ? तपोधन विप्र! बताइये, मेरी माताके साथ उसका समागम कैसे हुआ? मैं यह सब विस्तारके साथ सुनना चाहता हूँ'॥ ५५-५६॥

नारदजीने कहा—राजन्! बहुत अच्छा, द्रुमिलका तुम्हारी माताके साथ जो संवाद और समागम हुआ था, वह सब मैं तुम्हें यथार्थ रूपसे बता रहा हूँ, सुनो॥ ५७॥

सुयामुनं नाम नगं तव माता रजस्वला।
प्रेक्षितुं सहिता स्त्रीभिर्गता वै सा कुतूहलात्॥ ५८

सा तत्र रमणीयेषु रुचिरद्रुमसानुषु।
चचार नगशृङ्गेषु कन्दरेषु नदीषु च॥ ५९

किन्नरोद्गीतमधुराः प्रतिश्रुत्यभिनादिताः।
शृण्वन्ती कामजननीर्वाचः श्रोत्रसुखावहाः॥ ६०

बर्हिणां चैव विरुतं खगानां च विकूजितम्।
अभीक्ष्णमभिशृण्वन्ती स्त्रीधर्ममभिरोचयत्॥ ६१

एतस्मिन्नन्तरे वायुर्वनराजिविनिःसृतः।
हृद्यः कुसुमगन्धाढ्यो ववौ मन्मथबोधनः॥ ६२

द्विरेफाभरणाश्चैव कदम्बा वायुघट्टिताः।
मुमुचुर्गन्धमधिकं संततासारमूर्च्छिताः॥ ६३

केसराः पुष्पवर्षैश्च ववृषुर्मदबोधनाः।
नीपा दीपा इवाभान्ति पुष्पकण्टकधारिणः॥ ६४

मही नवतृणच्छन्ना शक्रगोपविभूषिता।
यौवनस्थेव वनिता स्वं दधारार्तवं वपुः॥ ६५

अथ सौभपतिः श्रीमान् द्रुमिलो नाम दानवः।
भविष्यद्दैवयोगेन विधात्रा तत्र नीयते॥ ६६

कामगेन रथेनाशु तरुणादित्यवर्चसा।
यदृच्छया गतस्तत्र सुयामुनदिदृक्षया॥ ६७

विहायसा कामगमो मनसोऽप्याशुगामिना।
स तं प्राप्य पर्वतेन्द्रमवतीर्य रथोत्तमात्॥ ६८

पर्वतोपवने न्यस्य रथं पररथारुजम्।
अथासौ सूतसहितश्चचार नगमूर्धनि॥ ६९

ततो बहून्यपश्येतां काननानि वनानि च।
सर्वर्तुगुणसम्पन्नं नन्दनस्येव काननम्॥ ७०

एक समयकी बात है, तुम्हारी माता जब रजस्वला (होनेके पश्चात् स्नान कर चुकी) थी, कौतूहलवश दूसरी स्त्रियोंके साथ सुयामुन नामक पर्वतका दर्शन करनेके लिये गयी॥ ५८॥ वह वहाँ पर्वतके रमणीय शिखरोंपर, जो मनोहर वृक्षोंसे सुशोभित थे, विचरने लगी। उसने वहाँकी कन्दराओंमें तथा नदियोंके तटोंपर भी भ्रमण किया॥ ५९॥ वहाँ उसे कानोंको सुख देनेवाली कुछ ऐसी बातें सुननेको मिलीं, जो कामोद्दीपन करनेवाली थीं। वे बातें किन्नरोंके गाये हुए गीतोंके रूपमें उपलब्ध होनेके कारण बड़ी मधुर प्रतीत होती थीं और प्रतिध्वनिसे सब ओर गूँजती रहती थीं॥ ६०॥ मयूरोंकी मधुर केकाध्वनि तथा विहंगमोंके कलरवोंको निरन्तर सुनती हुई तुम्हारी माताके मनमें स्त्रीधर्म (पुरुषसहवास)-की रुचि जाग्रत् हो उठी॥ ६१॥ इसी बीचमें वनश्रेणियोंसे निकलकर फूलोंकी सुगन्धसे भरी हुई मनोरम वायु चलने लगी, जो कामभावको जगानेवाली थी॥ ६२॥ खिले हुए कदम्बोंपर भ्रमर छाये हुए थे, जो उनके आभूषण-से जान पड़ते थे। वायुके झोंके खाकर और निरन्तर गिरती हुई जलधाराओंसे मूर्च्छित-से होकर वे कदम्ब अधिकाधिक गन्ध छोड़ने लगे॥ ६३॥ मदनोन्मादको जगानेवाले नागकेसर अपने फूलोंकी वर्षा कर रहे थे। पुष्पमय कण्टक धारण करनेवाले नीप दीपके समान प्रकाशित हो रहे थे॥ ६४॥ नयी-नयी घासोंसे ढकी और बीरबहूटीसे विभूषित हुई वसुधा नवयुवती नारीके समान मानो रजस्वलारूप धारण किये हुए थी॥ ६५॥ ऐसे समयमें सौभविमानका अधिपति द्रुमिल नामक दीप्तिमान् दानव भावी दैवयोगसे विधाताद्वारा प्रेरित होकर वहाँ आ पहुँचा॥ ६६॥ इच्छानुसार चलनेवाला उसका विमान प्रभातकालके सूर्यकी भाँति तेजःपुञ्जसे प्रकाशित हो रहा था। उसके द्वारा वह वहाँ सुयामुन पर्वतकी शोभा देखनेकी इच्छासे शीघ्रतापूर्वक सहसा आ गया॥ ६७॥ मनसे भी तीव्र गतिवाले उस विमानद्वारा आकाशमार्गसे इच्छानुसार चलनेवाला वह दानव पर्वतराज सुयामुनपर आकर उस श्रेष्ठ रथसे नीचे उतरा॥ ६८॥ शत्रुओंके रथको तोड़ डालनेवाले उस रथ (विमान)-को उस पर्वतके उपवनमें खड़ा करके वह विमानचालकके साथ पर्वत-शिखरपर विचरण करने लगा॥ ६९॥ उन दोनोंने वहाँ बहुत-से वन और कानन देखे। वहाँकी वनस्थली नन्दनवनके समान सभी ऋतुओंके गुणोंसे सम्पन्न थी॥ ७०॥

चेरतुर्नगशृङ्गेषु कन्दरेषु नदीषु च।
नानाधातुपिनद्धैश्च शृङ्गैर्बहुभिरुच्छ्रितैः॥ ७१

नानारत्नविचित्रैश्च काञ्चनाञ्जनराजतान्।
नानाकुसुमगन्धाढ्यान् नानासत्त्वगणैर्युतान्॥ ७२

नानाद्विजगणैर्घुष्टान् नानापुष्पफलद्रुमान्।
नानौषधिसमायुक्तानृषिसिद्धानुसेवितान्॥ ७३

विद्याधरान् किम्पुरुषानृक्षवानरराक्षसान्।
सिंहान् व्याघ्रान् वराहांश्च महिषाञ्छरभाञ्छशान्॥ ७४

सृमरांश्चमरान् न्यङ्कून् मातङ्गान् यक्षराक्षसान्।
एवं बहुविधान् पश्यंश्चरमाणो नगोत्तमम्॥ ७५

दूराद् ददर्श नृपतिर्देवीं देवसुतोपमाम्।
क्रीडमानां सखीभिश्च पुष्पं चैव विचिन्वतीम्॥ ७६

ततश्चरन्तीं सुश्रोणीं सखीभिः सह संवृताम्।
दृष्ट्वा सौभपतिर्दूराद् विस्मयन् सूतमब्रवीत्॥ ७७

कस्येयं मृगशावाक्षी वनान्तरविचारिणी।
रूपौदार्यगुणोपेता मन्मथस्य रतिर्यथा॥ ७८

शचीव पुरुहूतस्य उताहो वा तिलोत्तमा।
नारायणोरुं निर्भिद्य सम्भूता वरवर्णिनी।
ऐलस्य दयिता देवी योषिद्रत्नं किमुर्वशी॥ ७९

क्षीरार्णवे मथ्यमाने सुरासुरगणैः सह।
मन्थानं मन्दरं कृत्वामृतार्थमिति नः श्रुतम्॥ ८०

ततोऽमृतात् समुत्तस्थौ देवी श्रीर्लोकभाविनी।
नारायणाङ्कलुलिता किं श्रीरेषा वराङ्गना॥ ८१

वे दोनों उस पर्वतके शिखरोंपर, कन्दराओंमें और नदियोंके किनारे-किनारे घूमने लगे। उस पर्वतके बहुत-से ऊँचे-ऊँचे शिखर नाना प्रकारकी धातुओंसे आवृत थे। भाँति-भाँतिके रत्नोंसे उनकी विचित्र शोभा हो रही थी। उन दोनोंने देखा, पर्वतके विभिन्न शिखर सुवर्णमय, रजतमय तथा अञ्जनमय दिखायी दे रहे हैं। नाना प्रकारके फूलोंकी सुगन्ध वहाँ व्याप्त हो रही है। भाँति-भाँतिके जीव-जन्तुओंके समुदाय वहाँ निवास करते हैं। अनेक प्रकारके पक्षी अपने कलरवोंसे उन शिखरोंको कोलाहलपूर्ण कर रहे हैं। भाँति-भाँतिके पुष्प और फलोंसे सम्पन्न वृक्ष वहाँ लहलहा रहे हैं। नाना प्रकारकी ओषधियोंसे संयुक्त उन शिखरोंपर ऋषि और सिद्ध पुरुष निवास करते हैं॥ ७१—७३॥ विद्याधर, किन्नर, रीछ, वानर, राक्षस, सिंह, व्याघ्र, वराह, भैंसे, शरभ, खरगोश, सृमर (मृगविशेष), चमर (चवँरी गाय), न्यङ्कु (बारहसिंगा), हाथी, यक्ष, निशाचर तथा ऐसे ही नाना प्रकारकी जातिके प्राणियोंको देखता हुआ वह दानव उस उत्तम पर्वतपर भ्रमण कर रहा था॥ ७४-७५॥ इसी समय उस दानवराजने दूरसे ही उग्रसेनकी रानीको देखा, जो सखियोंके साथ क्रीडा करती तथा फूल चुनती हुई देवकन्याके समान सुशोभित हो रही थी॥ ७६॥ सखियोंसे घिरी हुई उस सुन्दर कटिप्रदेशवाली रमणीको दूरसे ही वहाँ विचरती देख सौभ विमानका स्वामी द्रुमिल चकित हो उठा और अपने विमानचालकसे इस प्रकार बोला— ॥ ७७॥ 'सूत! इस वनके भीतर विचरनेवाली यह मृगनयनी बाला किसकी स्त्री है, जो रूप और उदारता आदि गुणोंसे सम्पन्न होकर कामपत्नी रतिके समान शोभा पा रही है॥ ७८॥ अहो! क्या यह देवराज इन्द्रकी पत्नी शची है या तिलोत्तमा है अथवा जो भगवान् नारायणके ऊरुका भेदन करके प्रकट हुई और पुरूरवाकी प्यारी महारानी बनी थी, वह सुन्दर कान्तिवाली रमणीरत्न उर्वशी है?॥ ७९॥ हमने सुना है—देवताओंने असुरोंके साथ मिलकर अमृतकी प्राप्तिके लिये मन्दराचलको मथानी बनाकर जब क्षीरसागरका मन्थन किया था, उस समय उसके अमृतमय दुग्धसे लोकभाविनी लक्ष्मी देवीका प्रादुर्भाव हुआ था, जो भगवान् नारायणके अङ्कमें सुशोभित होती हैं, यह सुन्दरी अङ्गना वही लक्ष्मी देवी तो नहीं है'॥ ८०-८१॥

नीलमेघान्तरगता द्योतयन्त्यचिरप्रभा।
तथा योषिद्गणान् मध्ये रूपं प्रद्योतयद् वनम्॥ ८२

अतीव सुकुमाराङ्गी सुप्रभेन्दुनिभानना।
दृष्ट्वा रूपमनिन्द्याङ्ग्या विभ्रान्तो व्याकुलेन्द्रियः॥ ८३

कामस्य वशमापन्नो मनो विह्वलतीव मे।
भृशं कृन्तति मेऽङ्गानि सायकैः कुसुमायुधः।
भित्त्वा हृदि शरान् पञ्च निर्दयं हन्ति मे मनः॥ ८४

हृदयाग्निर्वर्धयति आज्यसिक्त इवानलः।
कथमद्य भवेत् कार्यं शमार्थं मन्मथाग्निना॥ ८५

केनोपायेन किं कुर्मो भजेन्मां मत्तगामिनी।
एवं बहु चिन्तयानो नोपलभ्य च दानवः॥ ८६

सूतमाह मुहूर्तं तु तिष्ठस्व त्वमिहानघ।
अहं यास्यामि तां द्रष्टुं कस्येयमिति योषितम्॥ ८७

प्रतीक्षमाणस्तिष्ठस्व यावदागमनं मम।
श्रुत्वा तु वचनं तस्य तथास्त्विति वचोऽब्रवीत्॥ ८८

एवमुक्त्वा दानवेन्द्रो गमनाय मनो दधे।
वार्युपस्पृश्य बलवान् ध्यानमेवान्वचिन्तयत्॥ ८९

मुहूर्तं ध्यानमात्रेण दृष्टं ज्ञानबलात् ततः।
उग्रसेनस्य पत्नीति ज्ञात्वा हर्षमुपागतः॥ ९०

उग्रसेनस्य रूपं वै कृत्वा स्वं परिवर्त्य सः।
उपासर्पन्महाबाहुः प्रहसन् दानवेश्वरः॥ ९१

स्मयमानश्च शनकैर्जग्राहामितवीर्यवान्।
उग्रसेनस्य रूपेण मातरं ते व्यधर्षयत्॥ ९२

सा पतिस्निग्धहृदया तं भावेनोपसर्पती।
शङ्किता चाभवत् पश्चात् तस्य गौरवदर्शनात्॥ ९३

'जैसे थोड़ी-थोड़ी देरमें चमकनेवाली बिजली नील मेघके भीतर रहकर अपना प्रकाश फैलाती है, उसी प्रकार यह स्त्रियोंके बीचमें रहकर अपने रूप और वनको प्रकाशित करती हुई यहाँ विचर रही है॥ ८२॥ इसके अङ्ग बड़े ही सुकुमार हैं, मुख चन्द्रमाके समान सुन्दर कान्तिसे उद्भासित हो रहा है। इस निर्दोष अङ्गोंवाली रमणीका रूप देखकर मैं पागल हो गया हूँ। मेरी सारी इन्द्रियाँ व्याकुल हो उठी हैं॥ ८३॥ मैं कामके अधीन हो गया हूँ। मेरा मन विह्वल-सा हो रहा है। पुष्पधन्वा कामदेव अपने सायकोंसे मेरे अङ्गोंको बड़े वेगसे छिन्न-भिन्न कर रहा है। मेरे हृदयमें अपने पाँचों बाणोंका प्रहार करके वह बड़ी निर्दयताके साथ उसे विदीर्ण कर रहा है॥ ८४॥ मेरे हृदयके भीतर कामाग्नि बढ़ रही है। वह घीकी आहुति पाकर बढ़ी हुई आगके समान प्रज्वलित हो उठी है। इस कामाग्निसे शान्ति पानेके लिये इस समय कैसे कौन-सा यत्न किया जाय? अहो! किस उपायसे हम क्या करें, जिससे यह मतवाली चालसे चलनेवाली रमणी मुझे अङ्गीकार कर ले'। इस प्रकार बहुत सोचनेपर भी जब कोई उपाय नहीं सूझा, तब उस दानवने अपने सारथिसे कहा—'अनघ! तुम दो घड़ी यहीं ठहरो, मैं स्वयं ही उसे देखने तथा यह किसकी स्त्री है, इस बातका पता लगानेके लिये जाता हूँ॥ ८५—८७॥ जबतक मैं लौटकर न आऊँ, तबतक तुम यहीं मेरी प्रतीक्षा करते हुए खड़े रहो।' द्रुमिलकी यह बात सुनकर उसके सारथिने कहा, 'बहुत अच्छा! ऐसा ही होगा'॥ ८८॥ सारथिसे उपर्युक्त बात कहकर बलवान् दानवराज द्रुमिलने उसके पास जानेका विचार किया। फिर उसने जलसे आचमन किया और ध्यान लगाकर उसके विषयमें चिन्तन करने लगा॥ ८९॥ दो घड़ीतक ध्यान करनेमात्रसे उसने ज्ञानबलसे देख लिया कि यह राजा उग्रसेनकी पत्नी है। यह जानकर उसे बड़ा हर्ष हुआ॥ ९०॥ फिर तो उसने अपना रूप बदलकर उग्रसेनका रूप धारण कर लिया। तत्पश्चात् वह अमितपराक्रमी महाबाहु दानवराज हँसता हुआ उसके पास गया, फिर धीरे-धीरे मुसकराते हुए ही उसने उसे अपनी भुजाओंमें कस लिया। इस प्रकार उग्रसेनके ही रूपसे उसने तुम्हारी माताका सतीत्व भङ्ग किया॥ ९१-९२॥ पतिके प्रति हृदयमें अत्यन्त स्नेह रखनेके कारण वह देवी बड़े प्रेमसे उसकी सेवामें उपस्थित हुई। पीछे उसके शरीरके भारीपनका अनुभव करके वह शङ्कित हो उठी॥ ९३॥

सा तमाहोत्थिता भीता न त्वं मम पतिर्ध्रुवम्।
कस्य त्वं विकृताचारो येनास्मि मलिनीकृता॥ ९४

एकभर्तृव्रतमिदं मम संदूषितं त्वया।
पत्युर्मे रूपमास्थाय नीच नीचेन कर्मणा॥ ९५

किं मां वक्ष्यन्ति रुषिता बान्धवा: कुलपांसनीम्।
जुगुप्सिता च वत्स्यामि पतिपक्षैर्निराकृता॥ ९६

धिक्त्वामीदृशमक्षान्तं दुष्कुलं व्युत्थितेन्द्रियम्।
अविश्वास्यमनार्यं च परदाराभिमर्शनम्॥ ९७

स तामाह प्रसज्जन्तीं क्षिप्त: क्रोधेन दानव:।
अहं वै द्रुमिलो नाम सौभस्य पतिरूर्जित:॥ ९८

किं मां क्षिपसि रोषेण मूढे पण्डितमानिनि।
मानुषं पतिमाश्रित्य नीचं मृत्युवशे स्थितम्॥ ९९

व्यभिचारान्न दुष्यन्ति स्त्रिय: स्त्रीमानगर्विते।
न ह्यासां नियता बुद्धिर्मानुषीणां विशेषत:॥ १००

श्रूयन्ते हि स्त्रियो बह्व्यो व्यभिचारव्यतिक्रमै:।
प्रसूता देवसंकाशान् पुत्रान् निश्चलविक्रमान्॥ १०१

अतीव हि त्वं स्त्रीलोके पतिधर्मवती सती।
शुद्धा केशान् विधुन्वन्ती भाषसे यद्यदिच्छसि॥ १०२

कस्य त्वमिति यच्चाहं त्वयोक्तो मत्तकाशिनि।
कंसस्तस्माद् रिपुध्वंसी तव पुत्रो भविष्यति॥ १०३

सा सरोषा पुनर्भूत्वा निन्दन्ती तस्य तं वरम्।
उवाच व्यथिता देवी दानवं धृष्टवादिनम्॥ १०४

धिक् ते वृत्तं सुदुर्वृत्त य: सर्वा निन्दसि स्त्रिय:।
सन्ति स्त्रियो नीचवृत्ता: सन्ति चैव पतिव्रता:॥ १०५

यास्त्वेकपत्न्य: श्रूयन्तेऽरुन्धतीप्रमुखा: स्त्रिय:।
धृता याभि: प्रजा: सर्वा लोकाश्चैव कुलाधम॥ १०६

उठकर भयभीत हो उसने उससे कहा—'निश्चय ही तू मेरा पति नहीं है; अत: बता, तू किसका दुराचारी पुत्र है, जिसने मुझे कलङ्कित कर दिया?॥ ९४॥ नीच! तूने मेरे पतिका रूप धारण करके अपने नीच कर्मसे मेरे पातिव्रत्यको दूषित कर दिया॥ ९५॥ अब रोषमें भरे हुए मेरे बन्धु-बान्धव मुझ कुल-कलङ्किनीको क्या कहेंगे? मुझे पतिपक्षके लोगोंसे निन्दित और तिरस्कृत होकर रहना पड़ेगा॥ ९६॥ तू ऐसा असहनशील, दूषित कुलमें उत्पन्न, अजितेन्द्रिय, अविश्वसनीय, अनार्य तथा परस्त्रीको कलङ्कित करनेवाला है, तुझे धिक्कार है'॥ ९७॥ जब इस प्रकार धिक्कार देती हुई वह उससे उलझ पड़ी, तब उसके आक्षेप सुनकर उस दानवने क्रोधपूर्वक कहा—'मूढ नारी! तू अपनेको बड़ी विदुषी मानती है? अरी! मैं सौभ विमानका अधिपति ओजस्वी दानव द्रुमिल हूँ, तू मृत्युके वशमें रहनेवाले तुच्छ मानव-पतिका आश्रय लेकर रोषपूर्वक मेरे ऊपर आक्षेप क्यों करती है?॥ ९८-९९॥ स्त्रीके सम्मानपर गर्व करनेवाली नारी! (देवताओं और दानवोंके साथ) विवशतापूर्वक व्यभिचार घटित होनेसे स्त्रियाँ दूषित नहीं होती हैं। इन स्त्रियोंकी विशेषत: मानवी स्त्रियोंकी बुद्धि निश्चल नहीं होती॥ १००॥ सुननेमें आता है कि बहुतेरी स्त्रियाँ व्यभिचाररूप दोष बन जानेपर भी अविचल पराक्रमी देवोपम पुत्रोंकी जननी हुई हैं॥ १०१॥ स्त्री-जगत्में एक तू ही तो बड़ी पतिधर्मपरायणा और दूधकी धोयी हुई शुद्ध सती है, जो अपने केश-कलापोंको कम्पित करती हुई जो-जो चाहती है, बकती चली जा रही है॥ १०२॥ मतवाली स्त्री! तुमने जो मुझसे यह पूछा है कि—'**कस्य त्वम्**—तू किसका पुत्र है' इससे तुम्हें कंस नामक शत्रुनाशक पुत्र प्राप्त होगा'॥ १०३॥ यह सुनकर वह देवी पुन: रोषमें भरकर उसके उस वरकी निन्दा करने लगी और ढिठाईके साथ बात करनेवाले उस दानवसे व्यथित होकर बोली—॥ १०४॥ 'दुराचारी दानव! तेरे इस घृणित आचारको धिक्कार है, जो तू संसारकी सारी स्त्रियोंकी निन्दा कर रहा है। माना कि जगत्में नीच आचार-विचारवाली स्त्रियाँ भी हैं, परंतु पतिव्रताएँ भी कम नहीं हैं॥ १०५॥ कुलाधम! अरुन्धती आदि जो पतिव्रता स्त्रियाँ सुनी जाती हैं, उनका स्मरण कर! जिन्होंने समस्त प्रजाओं तथा सम्पूर्ण लोकोंको अपने सतीत्वके बलसे ही धारण किया है'॥ १०६॥

यस्त्वया मम पुत्रो वै दत्तो वृत्तविनाशनः।
न मे बहुमतस्त्वेष शृणु चापि यदुच्यते॥ १०७

उत्पत्स्यति पुमान् नीच पतिवंशे ममाद्य यः।
भविष्यति स ते मृत्युर्यश्च दत्तस्त्वया सुतः॥ १०८

द्रुमिलस्त्वेवमुक्तस्तु जगामाकाशमेव तु।
तेनैव रथमुख्येन दिव्येनाप्रतिगामिना॥ १०९

जगाम च पुरीं दीना माता तदहरेव ते।
मामेवमुक्त्वा भगवान् नारदो मुनिसत्तमः॥ ११०

दीप्यमानस्तपोवीर्यात् साक्षादग्निरिव ज्वलन्।
वल्लकीं वाद्यमानो हि सप्तस्वरविमूर्च्छिताम्॥ १११

गायनो लक्ष्यवीथीं स जगाम ब्रह्मणोऽन्तिकम्।
शृणुष्वेदं महामात्र निबोध वचनं मम॥ ११२

तथ्यं चोक्तं नारदेन त्रैलोक्यज्ञेन धीमता।
अलं बलेन वीर्येण नयेन विनयेन च॥ ११३

प्रमाणैर्वापि वीर्येण तेजसा विक्रमेण च।
सत्येन चैव दानेन नान्योऽस्ति सदृशः पुमान्॥ ११४

विदित्वा सर्वमात्मानं वचनं श्रद्दधाम्यहम्।
क्षेत्रजोऽहं सुतस्तस्य उग्रसेनस्य हस्तिप॥ ११५

मातापितृभ्यां संत्यक्तः स्थापितः स्वेन तेजसा।
उभाभ्यामपि विद्विष्टो बान्धवैश्च विशेषतः॥ ११६

एतानपि हनिष्यामि यादवान् कृष्णपक्षिणः।
तदिमौ घातयित्वा तु हस्तिना गोपकिल्बिषौ॥ ११७

तद् गच्छ गजमारुह्य सांकुशप्रासतोमरः।
स्थिरो भव महामात्र समाजद्वारि मा चिरम्॥ ११८

'तूने जो मुझे सदाचारनाशक पुत्र प्रदान किया है, इसके प्रति मेरे मनमें अधिक आदर नहीं है। इस विषयमें मैं जो कुछ कहती हूँ, उसे सुन ले॥ १०७॥ नीच! अब मेरे पतिके कुलमें परमपुरुष परमेश्वर अवतार लेंगे जो तेरी तथा तूने जो पुत्र दिया है, उसकी भी मृत्युके कारण होंगे॥ १०८॥ उसके ऐसा कहनेपर द्रुमिल उसी अनुपम गतिवाले दिव्य विमानद्वारा पुनः आकाशको ही चला गया॥ १०९॥ तुम्हारी माता अत्यन्त दीन होकर उसी दिन मथुरापुरीको चली गयी। महावत! मुझसे इस प्रकार कहकर मुनिश्रेष्ठ भगवान् नारद अपने तपोबलसे प्रकाशित तथा साक्षात् अग्निके समान देदीप्यमान हो, सात स्वरोंकी मूर्च्छनाका विस्तार करनेवाली वीणा बजाते और गाते हुए लक्ष्यवीथी (अथवा अलक्ष्यवीथी) देवयान मार्गसे ब्रह्माजीके पास चले गये। महावत! मेरी यह बात सुनो और समझो। तीनों लोकोंकी बातें जाननेवाले बुद्धिमान् नारदने सब कुछ ठीक ही कहा था। अधिक कहनेकी क्या आवश्यकता—बल, वीर्य, नय, विनय, प्रमाण, शक्ति, तेज, पराक्रम, सत्य और दानके द्वारा मेरी समानता करनेवाला दूसरा कोई पुरुष नहीं है॥ ११०—११४॥ महावत! अपनेको सर्वथा इन गुणोंसे युक्त समझकर मैं नारदजीकी बातपर श्रद्धा करता हूँ, इसमें संदेह नहीं कि मैं उग्रसेनका क्षेत्रज पुत्र ही हूँ॥ ११५॥ माता-पिताने तो मुझे त्याग ही दिया है। मैं अपने तेजसे ही इस सिंहासनपर बैठा हूँ। मेरे माता-पिता तथा विशेषतः सभी बन्धु-बान्धव मुझसे द्वेष रखते हैं॥ ११६॥ ये सभी यादव श्रीकृष्णके पक्षमें मिल गये हैं, अतः मैं इन दोनों गोपकुलकलंकोंको हाथीके द्वारा मरवाकर इन यादवोंका भी वध कर डालूँगा॥ ११७॥ अतः महावत! तुम जाओ! कुवलयापीड़ हाथीपर आरूढ़ हो अंकुश, भाला और तोमर लिये रङ्गशालाके द्वारपर दृढ़तापूर्वक डट जाओ, विलम्ब न करो॥ ११८॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे विष्णुपर्वणि कंसवाक्येऽष्टाविंशोऽध्यायः॥ २८॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत विष्णुपर्वमें कंसका वाक्यविषयक अट्ठाईसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ २८॥

एकोनत्रिंशोऽध्यायः

नागरिकोंसे भरी रङ्गशालामें मञ्चों तथा प्रेक्षागृहोंकी शोभा, कंस तथा मल्लोंका आगमन, श्रीकृष्ण और बलरामका रङ्गद्वारपर पदार्पण, कुवलयापीड, महावत तथा हाथीके पादरक्षकोंका वध और दोनों बन्धुओंका रङ्गस्थलमें प्रवेश

वैशम्पायन उवाच

तस्मिन्नहनि निर्वृत्ते द्वितीये समुपस्थिते।
आपूर्यत महारङ्गः पौरैर्युद्धदिदृक्षुभिः॥ १

सचित्राष्टास्त्रिचरणाः सार्गलद्वारवेदिकाः।
सगवाक्षार्धचन्द्राश्च सुतल्पोत्तमभूषिताः॥ २

प्राङ्मुखैश्चारुनिर्मुक्तैर्माल्यदामावतंसितैः।
अलङ्कृतैर्विराजद्भिः शारदैरिव तोयदैः॥ ३

मञ्चागारैः सुनिर्युक्तैर्युद्धाय सुविभूषितैः।
समाजवाटः शुशुभे समेघौघ इवार्णवः॥ ४

स्वकर्मद्रव्ययुक्ताभिः पताकाभिर्निरन्तरम्।
श्रेणीनां च गणानां च मञ्चा भान्त्यचलोपमाः॥ ५

अन्तःपुरचराणां च प्रेक्षागाराण्यनेकशः।
रेजुः काञ्चनचित्राणि रत्नज्वालाकुलानि च॥ ६

तानि रत्नौघक्लृप्तानि ससानुप्रग्रहाणि च।
रेजुर्जवनिकाक्षेपैः सपक्षा इव खे नगाः॥ ७

तत्र चामरहारैश्च भूषणानां च सिञ्जितैः।
मणीनां च विचित्राणां विचित्राश्चेरुरर्चिषः॥ ८

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! वह दिन समाप्त होकर जब दूसरा उपस्थित हुआ, तब युद्ध देखनेकी इच्छावाले पुरवासियोंसे वह महान् रङ्गस्थल भर गया॥ १॥ वहाँ जो मञ्च रखे गये थे, वे चित्रोंसे सुशोभित तथा आठ कोणवाले पायोंसे अलंकृत थे। जिन घरोंमें वे मञ्च थे, उनके द्वारोंपर बेदियाँ बनी थीं और कुण्डीके साथ किवाड़ें भी थीं। उनमें झरोखोंके रूपमें अर्द्धचन्द्राकार छिद्र रखे गये थे। वे मञ्च और मञ्चागार उत्तमोत्तम बिछौनोंसे विभूषित थे॥ २॥ उन मञ्चागारोंके द्वार पूर्वाभिमुख थे। वे सब-के-सब सुन्दर और खुले हुए थे (अथवा उनमें झीने सूतके मनोहर परदे लगे थे)। फूलोंकी मालाओं तथा मोती आदिकी लड़ियोंसे उन सबको सजाया गया था। वे शोभासम्पन्न एवं अलंकृत मञ्चागार शरद्-ऋतुके बादलोंके समान शोभा पाते थे। उनमें सुन्दर मल्ल आदि यथास्थान बैठे थे, जिन्हें युद्धके लिये भलीभाँति विभूषित किया गया था। उन सबके द्वारा वह समाजवाट या रङ्गस्थल मेघोंकी घटासे युक्त महासागरके समान शोभा पा रहा था॥ ३-४॥ वहाँ एक ही शिल्पसे जीवन-निर्वाह करनेवाले श्रेणी नामक कारीगरों तथा एक जातिके समुदायोंके लिये पृथक्-पृथक् मञ्च थे। उन मञ्चोंपर जो पताकाएँ निरन्तर फहराती रहती थीं, उनमें उन कारीगरोंके उपकरण-द्रव्यके चिह्न अङ्कित थे। उन पताकाओंसे वे मञ्च पर्वतोंके समान शोभा पाते थे॥ ५॥ अन्तःपुरकी स्त्रियोंके लिये अनेक प्रेक्षागार सुशोभित हो रहे थे, जो सुवर्णसे चित्रित तथा रत्नोंकी प्रभासे व्याप्त थे॥ ६॥ रत्नराशिसे निर्मित उन प्रेक्षागारोंके ऊपरी भागमें पताकाएँ फहरा रही थीं और उनके निचले भागमें परदे पड़े हुए थे। इससे वे आकाशमें पंखयुक्त पर्वतके समान शोभा पाते थे॥ ७॥ उन प्रेक्षागारोंमें चामरों, हारों, झनकारते हुए भूषणों तथा विचित्र मणियोंकी चित्र-विचित्र प्रभाएँ सब ओर फैल रही थीं॥ ८॥

गणिकानां पृथङ्मञ्चाः शुभैरास्तरणाम्बरैः।
शोभिता वारमुख्याभिर्विमानप्रतिमौजसः॥ ९

तत्रासनानि ख्यातानि पर्यङ्काश्च हिरण्मयाः।
प्रकीर्णाश्च कुथाश्चित्राः सपुष्पस्तबकैर्वृताः॥ १०

सौवर्णाः पानकुम्भाश्च पानभूम्यश्च शोभिताः।
फलावदंशपूर्णाश्च चाङ्गेर्यः पानयोजिताः॥ ११

अन्ये च मञ्चा बहवः काष्ठसंचयबन्धनाः।
रेजुः प्रस्तरणास्तत्र शतशोऽथ सहस्रशः॥ १२

उत्तमागारिकाश्चैव सूक्ष्मजालावलोकिनः।
स्त्रीणां प्रेक्षागृहा भान्ति राजहंसा इवाम्बरे॥ १३

प्राङ्मुखश्चारुनिर्मुक्तो मेरुशृङ्गसमप्रभः।
रुक्मपत्रनिभस्तम्भश्चित्रनिर्योगशोभितः॥ १४

प्रेक्षागारः स कंसस्य प्रचकाशेऽधिकं श्रिया।
शोभितो माल्यदामैश्च निवासकृतलक्षणः॥ १५

तस्मिन् नानाजनाकीर्णे जनौघप्रतिनादिते।
समाजवाटे संस्तब्धे कम्पमानार्णवप्रभे॥ १६

राजा कुवलयापीडः समाजद्वारि कुञ्जरः।
तिष्ठत्विति समाज्ञाप्य प्रेक्षागारमुपाययौ॥ १७

स शुक्ले वाससी बिभ्रच्छ्वेतव्यजनचामरः।
शुशुभे श्वेतमुकुटः श्वेताभ्र इव चन्द्रमाः॥ १८

गणिकाओंके लिये पृथक् मञ्च बने थे, जो सुन्दर बिछौनों और वस्त्रोंसे ढँके हुए थे। वे सब-के-सब विमानके समान कान्तिमान् दिखायी देते थे और मुख्य-मुख्य वाराङ्गनाएँ उनकी शोभा बढ़ाती थीं॥ ९॥ वहाँ विख्यात आसन, सोनेके पलंग तथा बिछे हुए विचित्र एवं पुष्पगुच्छोंसे युक्त कालीन सुशोभित थे॥ १०॥ वहाँ सोनेके घड़ोंमें पीनेके लिये जल रखे गये थे। जलपानके जो स्थान थे, उन्हें भी शोभासे सम्पन्न किया गया था। वहाँ फलके टुकड़ोंसे भरी हुई चँगेरियाँ (टोकरियाँ) रखी गयी थीं, जिन्हें जलपान या कलेवेके उपयोगके लिये वहाँ स्थापित किया गया था॥ ११॥ और भी बहुत-से मञ्च थे, जो लकड़ियोंके ढेरसे आबद्ध थे। उनपर भी अच्छे बिछावन डाले गये थे। इस तरहके सैकड़ों-हजारों मञ्च वहाँ शोभा पा रहे थे॥ १२॥ घरोंके ऊपर जो घर थे, उनमें स्त्रियोंके लिये प्रेक्षागृह बने थे। उनके दरवाजोंपर महीन जालीदार परदा पड़ा था, जिससे वहाँ बैठे हुए लोग बाहरकी सारी वस्तुएँ देख सकते थे। वे प्रेक्षाभवन आकाशमें राजहंसोंके समान सुशोभित हो रहे थे॥ १३॥ कंसके लिये जो प्रेक्षागार (दृश्य देखनेका स्थान) बना था, वह अधिक शोभासे प्रकाशित हो रहा था। उसका दरवाजा पूर्वकी ओर था। उसपर मनोहर जालीदार पर्दा पड़ा था। वह भवन मेरुपर्वतके शिखरके समान सुनहरी प्रभासे उद्भासित होता था। उसके खम्भे स्वर्णपत्रसे जटित होनेके कारण विशेष शोभासे सम्पन्न थे तथा वह भवन चारु चित्रोंके संनिवेशसे सुशोभित था। मालाओंकी लड़ियोंसे भी उसे सजाया गया था। राजाकी बैठक या निवास-स्थानके लिये जो आवश्यक लक्षण होने चाहिये, उन सबसे वह सम्पन्न था॥ १४-१५॥ नाना प्रकारके मनुष्योंसे भरा-पूरा और जनसमुदायके शब्दोंसे प्रतिध्वनित होता हुआ वह समाजवाट या रङ्गस्थल चञ्चल लहरोंवाले विक्षुब्ध महासागरके समान प्रतीत होता था। थोड़ी ही देरमें वहाँ सन्नाटा छा गया और 'कुवलयापीड नामक हाथी रङ्गशालाके द्वारपर खड़ा रहे'—यह आज्ञा देता हुआ राजा कंस अपने प्रेक्षागारमें आ पहुँचा॥ १६-१७॥ उसने दो श्वेत वस्त्र धारण कर रखे थे। उसपर श्वेत चँवर और व्यजन डुलाये जा रहे थे तथा उसके मस्तकपर श्वेत मुकुट प्रकाशित होता था, अतः वह श्वेत बादलोंसे युक्त चन्द्रमाके समान शोभा पा रहा था॥ १८॥

तस्य सिंहासनस्थस्य सुखासीनस्य धीमतः।
रूपमप्रतिमं दृष्ट्वा पौराः प्रोचुर्जयाशिषः॥ १९

ततः प्रविविशुर्मल्ला रङ्गमावलिताम्बराः।
तिस्रश्च भागशः कक्षाः प्राविशन् बलशालिनः॥ २०

ततस्तूर्यनिनादेन क्ष्वेडितास्फोटितेन च।
वसुदेवसुतौ हृष्टौ रङ्गद्वारमुपस्थितौ॥ २१

बल्लवौ वस्त्रसंवीतौ सुरचन्दनभूषितौ।
ऊर्ध्वपीडौ स्रगापीडौ बाहुशस्त्रकृतौ यमौ॥ २२

आस्फोटयन्तावन्योन्यं बाहू चैवार्गलोपमौ।
तावापतन्तौ त्वरितौ प्रतिषिद्धौ वराननौ।
तेन मत्तेन नागेन चोद्यमानेन वै भृशम्॥ २३

स मत्तहस्ती दुष्टात्मा कृत्वा कुण्डलिनं करम्।
चकार चोदितो यत्नं निहन्तुं बलकेशवौ॥ २४

ततः प्रहसितः कृष्णस्त्रास्यमानो गजेन वै।
कंसस्य तन्मतं चैव जगर्हे स दुरात्मनः॥ २५

त्वरते खलु कंसोऽयं गन्तुं वैवस्वतक्षयम्।
यो मामनेन नागेन प्रधर्षयितुमिच्छति॥ २६

संनिकृष्टे ततो नागे गर्जमाने यथा घने।
सहसोत्पत्य गोविन्दश्चक्रे तालस्वनं प्रभुः॥ २७

क्ष्वेडितास्फोटितरवं कृत्वा नागस्य चाग्रतः।
करं ससीकरं तस्य प्रतिजग्राह वक्षसा॥ २८

विषाणान्तरगो भूत्वा पुनश्चरणमध्यगः।
बबाधे तं गजं कृष्णः पवनस्तोयदं यथा॥ २९

जब वह सिंहासनपर सुखपूर्वक विराजमान हुआ, उस समय उस बुद्धिमान् नरेशके अनुपम रूपको देखकर समस्त पुरवासी उसकी 'जय' बोलते हुए उसे आशीर्वाद देने लगे॥ १९॥ तदनन्तर मल्लोंने रङ्गभूमिमें प्रवेश किया। उनके कपड़े फहरा रहे थे। वे बलशाली मल्ल अलग-अलग तीन कक्षाओंमें प्रविष्ट हुए॥ २०॥ तत्पश्चात् वाद्योंकी तुमुल ध्वनिके साथ मल्लोंके गर्जने और ताल ठोंकनेके शब्द सुनायी देने लगे। इसी समय हर्षमें भरे हुए दोनों वसुदेव-पुत्र रङ्गशालाके द्वारपर उपस्थित हुए॥ २१॥ वे दोनों बन्धु ग्वालबालोंके ही वेषमें थे। उनके अङ्ग सुन्दर वस्त्रोंसे आच्छादित एवं सुशोभित थे। वे दिव्य चन्दन (अङ्गराग)-से विभूषित थे। सिरके ऊपर पुष्पमाला और गलेमें गजरे शोभा दे रहे थे। उन्होंने अपनी भुजाओंको ही आयुध बना रखा था। वे दोनों जुड़वे-से जान पड़ते थे और एक-दूसरेकी अर्गलाके समान मोटी बाँहोंपर ताल ठोंक रहे थे। वे दोनों सुन्दर मुखवाले वीर बड़ी उतावलीके साथ रङ्गशालाकी ओर आ रहे थे, किंतु महावतके द्वारा अत्यन्त प्रेरित किये गये उस मतवाले गजराजने उन्हें सहसा रोक दिया॥ २२-२३॥ वह मदमत्त हाथी बड़ा ही दुष्ट था। महावतके हाँकनेपर उसने अपनी सूँड़को सिकोड़कर श्रीकृष्ण और बलरामको मार डालनेका प्रयत्न किया॥ २४॥ उस हाथीके त्रास देनेपर श्रीकृष्ण हँस पड़े और दुरात्मा कंसके उस मनसूबेकी निन्दा करने लगे॥ २५॥ वे बोले—'निश्चय ही जान पड़ता है कि यह कंस यमलोकमें जानेके लिये उतावला हो उठा है, इसीलिये इस हाथीके द्वारा वह मुझे कुचल देना चाहता है'॥ २६॥ तदनन्तर मेघके समान गम्भीर गर्जना करता हुआ वह हाथी जब बहुत निकट आ गया, तब भगवान् गोविन्द सहसा उछलकर ताली पीटने लगे॥ २७॥ हाथीके सामने ही गर्जने और ताल ठोंकनेकी आवाज करके उन्होंने जलके फुहारे छोड़नेवाली उसकी सूँड़को अपनी छातीपर दबा लिया॥ २८॥ फिर श्रीकृष्ण उसके दोनों दाँतोंके बीचसे होकर पैरोंके मध्यभागमें आ गये और जैसे हवा बादलको इधर-उधर उड़ाती रहती है, उसी प्रकार वे उस हाथीको सताने और व्याकुल करने लगे॥ २९॥

स हस्ताग्राद् विनिष्क्रान्तो विषाणाग्राच्च दन्तिनः।
विमुक्तः पदमध्याच्च कृष्णो द्विपमपोथयत्॥ ३०

सोऽतिकायस्तु सम्मूढो हन्तुं कृष्णमशक्नुवन्।
गजः स्वेष्वेव गात्रेषु मथ्यमानो ररास ह॥ ३१

पपात भूमौ जानुभ्यां दशनाभ्यां तुतोद च।
मदं सुस्राव रोषाच्च घर्मापाये यथा घनः॥ ३२

कृष्णस्तु तेन नागेन क्रीडित्वा शिशुलीलया।
निधनाय मतिं चक्रे कंसद्विष्टेन चेतसा॥ ३३

स तस्य प्रमुखे पादं कृत्वा कुम्भादनन्तरम्।
दोर्भ्यां विषाणमुत्पाट्य तेनैव प्राहरत् तदा॥ ३४

स तेन वज्रकल्पेन स्वेन दन्तेन कुञ्जरः।
हन्यमानः शकृन्मूत्रं मुमोचार्तो ररास ह॥ ३५

कृष्णजर्जरिताङ्गस्य कुञ्जरस्यार्तचेतसः।
कटाभ्यामति सुस्राव वेगवद् भूरि शोणितम्॥ ३६

लाङ्गूलं चास्य वेगेन निश्चकर्ष हलायुधः।
शैलपृष्ठार्धसंलीनं वैनतेय इवोरगम्॥ ३७

तेनैव गजदन्तेन कृष्णो हत्वा तु दन्तिनम्।
जघानैकप्रहारेण गजारोहणमुल्बणम्॥ ३८

सोऽऽर्तनादं महत् कृत्वा विदन्तो दन्तिनां वरः।
पपात समहामात्रो वज्रभिन्न इवाचलः॥ ३९

ततस्तौ तोरणाङ्गानि प्रगृह्य रणकर्कशौ।
गजस्य पादरक्षांश्च जघ्नतुः पुरुषर्षभौ॥ ४०

तांश्च हत्वा विविशतुर्मध्यं रङ्गस्य तावुभौ।
नासत्यावश्विनौ स्वर्गादवतीर्णाविवेच्छया॥ ४१

वृष्ण्यन्धकाश्च भोजाश्च ददृशुर्वनमालिनौ।
क्ष्वेडितोत्क्रुष्टनादेन बाह्वोरास्फोटितेन च।
सिंहनादैश्च तालैश्च हर्षयामासतुर्जनम्॥ ४२

वे उस हाथीकी सूँड़के अग्रभागसे निकलकर, दाँतोंके भी अग्रभागसे बचकर तथा पैरोंके भी बीचसे छूटकर बाहर आ गये। फिर श्रीकृष्णने उस हाथीको पीछेसे ऊँचाईकी ओर खींचकर घसीटना आरम्भ किया॥ ३०॥ वह विशालकाय हाथी व्याकुल हो उठा और श्रीकृष्णको मारनेमें असफल हो अपने ही अङ्गोंमें मथित होता हुआ जोर-जोरसे चिग्घाड़ने लगा॥ ३१॥ फिर तो वह दोनों घुटनोंके बल गिर पड़ा, दोनों दाँत भूमिसे टकरा जड़से हिल गये, जिससे उसको बड़ी व्यथा हुई। वह रोषसे मदकी धारा बहाने लगा, मानो पावसमें मेघ पानी बरसा रहा हो॥ ३२॥ श्रीकृष्णने उस हाथीके साथ बालकोंके समान खिलवाड़ करके कंसके प्रति मनमें द्वेष लेकर कुवलयापीडको मार डालनेका विचार किया॥ ३३॥ उन्होंने उसके ललाटमें कुम्भस्थलसे नीचे पैर लगाकर दोनों हाथोंसे एक दाँत उखाड़ लिया और उस समय उसीसे उसको पीटना आरम्भ किया॥ ३४॥ उस वज्रतुल्य दाँतसे पीटा जाता हुआ वह हाथी मल-मूत्र त्यागने और आर्तभावसे चीत्कार करने लगा॥ ३५॥ श्रीकृष्णने जिसके अङ्गोंको पीट-पीटकर जर्जर बना दिया था, उस आर्तचित्त हाथीके दोनों गालोंसे वेगपूर्वक भूरि-भूरि रक्तकी धारा बहने लगी॥ ३६॥ इधर बलरामजी उसकी पूँछ पकड़कर बड़े वेगसे खींचने लगे, मानो शिलापृष्ठमें आधे शरीरसे छिपे हुए किसी सर्पको गरुड़ खींच रहे हों॥ ३७॥ हाथीको मारकर श्रीकृष्णने उसके उसी दाँतसे एक प्रहार करके मतवाले महावतको भी मौतके मुखमें डाल दिया॥ ३८॥ तदनन्तर दाँतवाले हाथियोंमें श्रेष्ठ वह कुवलयापीड दन्तहीन हो महान् आर्तनाद करके वज्रसे विदीर्ण हुए पर्वतके समान महावतसहित गिर पड़ा॥ ३९॥ फिर उन दोनों पुरुषप्रवर रणकर्कश वीरोंने फाटकके खम्भे आदि लेकर हाथीके पादरक्षकोंको भी मार डाला॥ ४०॥ उन सबका संहार करके वे दोनों भाई रङ्गस्थलमें प्रविष्ट हुए, मानो दोनों अश्विनीकुमार इच्छानुसार स्वर्गसे भूतलपर उतर आये हों॥ ४१॥ उस समय वृष्णि, अन्धक तथा भोजकुलके यादवोंने वनमालाधारी श्रीकृष्ण-बलरामको देखा। उन दोनों वीरोंने गर्जने, किलकारने, भुजाओंपर ताल ठोकने, सिंहोंके समान दहाड़ने और ताली पीटने आदिके द्वारा वहाँके जनसमुदायको हर्षसे उत्फुल्ल कर दिया॥ ४२॥

तौ दृष्ट्वा भोजराजस्तु विषसाद वृथामतिः।
पौराणामनुरागं च हर्षं चालक्ष्य भारत॥ ४३

तं हत्वा पुण्डरीकाक्षो नदन्तं दन्तिनां वरम्।
अवतीर्णोऽर्णवाकारं समाजं सहपूर्वजः॥ ४४

भारत! व्यर्थ बुद्धिवाला भोजराज कंस उन दोनों भाइयोंको उपस्थित देख, उनके प्रति पुरवासियोंके अनुराग और हर्षको लक्ष्य करके विषादमें डूब गया॥ ४३॥ इस प्रकार कमलनयन श्रीकृष्णने गरजते हुए गजश्रेष्ठ कुवलयापीडको मारकर अपने पूर्वज बलरामजीके साथ उस समुद्रके समान विशाल जनसमुदायमें प्रवेश किया॥ ४४॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे विष्णुपर्वणि कुवलयापीडवधे एकोनत्रिंशोऽध्यायः॥ २९॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत विष्णुपर्वमें कुवलयापीड हाथीका वधविषयक उनतीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ २९॥

त्रिंशोऽध्यायः

रङ्गशालामें मल्लयुद्धके विषयमें श्रीकृष्णके विचार, श्रीकृष्ण और बलदेवके द्वारा चाणूर और मुष्टिक आदिका वध, कंसका संहार तथा पिता-माताके चरणोंमें प्रणाम करके दोनों भाइयोंका उनके घरमें जाना

वैशम्पायन उवाच

प्रविशन्तं तु वेगेन मारुतावल्गिताम्बरम्।
पूर्वजं पुरतः कृत्वा कृष्णं कमललोचनम्॥ १

गजदन्तकृतोल्लेखं सुभुजं देवकीसुतम्।
लीलाकृताङ्गदं वीरं मदेन रुधिरेण च॥ २

वल्गमानं यथा सिंहं व्यूहमानं यथा घनम्।
बाहुशब्दप्रहारेण चालयन्तं वसुंधराम्॥ ३

औग्रसेनिः समालोक्य दन्तिदन्तोद्यतायुधम्।
कृष्णं भृशायस्तमुखः सरोषं समुदैक्षत॥ ४

भुजासक्तेन शुशुभे गजदन्तेन केशवः।
चन्द्रार्धबिम्बसंसक्तो यथैकशिखरो गिरिः॥ ५

वल्गमाने तु गोविन्दे स कृत्स्नो रङ्गसागरः।
जनौघप्रतिनादेन पूर्यमाण इवाबभौ॥ ६

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! कमलनयन श्रीकृष्ण अपने बड़े भाई बलरामको आगे करके बड़े वेगसे रंगशालामें घुसे थे। उस समय उनके वस्त्र हवाके झोंकेसे फहरा उठे थे। हाथीका दाँत उनकी पहचान करानेवाला चिह्न या उपलक्षण बन गया था। उनकी भुजाएँ बड़ी सुन्दर थीं। देवकीनन्दन वीर श्रीकृष्णकी बाहोंमें हाथीके मद और रुधिर इस तरह लिपटे थे कि उनमें लीलापूर्वक अङ्गद (बाजूबंद)-की रचना हो गयी थी। वे सिंहकी तरह उछलते तथा कंसवधकी युक्ति सोचते हुए आकाशमें बादलकी भाँति रंगशालामें विचर रहे थे। भुजाओंपर ताल ठोंककर जब वे उसकी ध्वनि फैलाते थे, तब पृथ्वीको भी हिला देते थे। उन्हें हाथीके दाँतको ही आयुधरूपसे हाथमें लिये देख उग्रसेनकुमार कंस अत्यन्त मलिन हो गया और वह बड़े रोषमें भरकर उनकी ओर देखने लगा॥ १—४॥ अपने हाथमें सटे हुए उस गजदन्तसे सुशोभित होनेवाले श्रीकृष्ण अर्धचन्द्रके बिम्बसे संयुक्त हुए एक शिखरवाले पर्वतके समान जान पड़ते थे॥ ५॥ श्रीकृष्णके उछलते-कूदते आते ही वह समुद्र-जैसा सम्पूर्ण रंगस्थल जनसमुदायके हर्षनादसे परिपूर्ण हुआ-सा प्रतीत होने लगा॥ ६॥

ततः क्रोधाभिताम्राक्षः कंसः परमकोपनः।
चाणूरमादिशद्युद्धे कृष्णस्य सुमहाबलम्॥ ७

अन्ध्रं मल्लं च निकृतिं मुष्टिकं च महाबलम्।
बलदेवाय सक्रोधो दिदेशाद्रिचयोपमम्॥ ८

कंसेनापि समाज्ञप्तश्चाणूरः पूर्वमेव तु।
योद्धव्यं सह कृष्णेन त्वया यत्नवतेति वै॥ ९

स रोषेण तु चाणूरः कषायीकृतलोचनः।
अभ्यावर्तत युद्धार्थमपां पूर्णो यथा घनः॥ १०

अवघुष्टे समाजे तु निश्शब्दस्तिमिते जने।
यादवाः सहितास्तत्र इदं वचनमब्रुवन्॥ ११

बाहुयुद्धमिदं रंगे सप्राश्निकमकातरम्।
क्रियाबलसमाज्ञातमशस्त्रं निर्मितं पुरा॥ १२

अद्भिश्चातिश्रमो नित्यं विनेयः कालदर्शिभिः।
करीषेण च मल्लस्य सततं सत्क्रिया स्मृता॥ १३

स्थितो भूमिगतेनैव यो यथा मार्गतः स्थितः।
संयुज्यतश्च पर्यायः प्राश्निकैः समुदाहृतः॥ १४

बालो वा यदि वा वृद्धो मध्यो वापि कृशोऽपि वा।
बलस्थो वा स्थितो रंगे ज्ञेयः कक्षान्तरेण वै॥ १५

बलतश्च क्रियातश्च बाहुयुद्धविधिर्युधि।
निपातानन्तरं किंचिन्न कर्तव्यं विजानता॥ १६

तदनन्तर क्रोधसे लाल आँखें किये परम क्रोधी कंसने महाबली अन्ध्र मल्ल चाणूरको जो कपटयुद्ध करनेवाला था, श्रीकृष्णके साथ लड़नेका आदेश दिया और जिसका शरीर प्रस्तरसमूहके समान सुदृढ़ था, उस कपटी महाबली मुष्टिकको रोषमें भरे हुए कंसने बलदेवके साथ जूझनेकी आज्ञा दी॥ ७-८॥ कंसने चाणूरको तो पहलेसे ही यह आज्ञा दे रखी थी कि तुम्हें श्रीकृष्णके साथ यत्नपूर्वक युद्ध करना चाहिये॥ ९॥ अतः रोषसे लाल आँखें किये चाणूर युद्ध करनेके लिये श्रीकृष्णके निकट आया। उस समय वह जलसे भरे-पूरे मेघके समान जान पड़ता था॥ १०॥ राजाकी ओरसे शान्त रहनेकी घोषणा होते ही वहाँका सारा जनसमुदाय नीरव तथा निश्चल हो गया, तब वहाँ एक साथ बैठे हुए यादव इस प्रकार कहने लगे— ॥ ११॥ 'पूर्वकालमें विधाताने मल्लयुद्धके विषयमें यह नियम बनाया था कि यह युद्ध रङ्गस्थलके अखाड़ेमें केवल भुजाओंद्वारा हो। इसमें किसी प्रकारके अस्त्र-शस्त्रका प्रयोग न किया जाय। इसमें (दो व्यक्तियोंका जोड़ निश्चित करनेके लिये) कोई-न-कोई परीक्षक रहना चाहिये। इसमें कायर या डरपोकको सम्मिलित नहीं करना चाहिये। इसमें क्रिया (दाँव-पेंच आदि) और बल (शारीरिक शक्ति)-के द्वारा ही विपक्षीको परास्त करनेकी आज्ञा दी गयी है॥ १२॥ समयोचित कर्तव्यको देखने और समझनेवाले पुरुषोंको उचित है कि वे सदा योद्धाओंके लिये जल प्रस्तुत करके उनकी भारी थकावट दूर करें और गोबरका चूर्ण सुलभ करके पहलवानका सदा सत्कार करना चाहिये॥ १३॥ युद्धपरीक्षकोंने यह बताया है कि जो जिस मार्ग (दाँव-पेंच)-से लड़े, उसके साथ उसीके अनुरूप दाँव लगकर भूमिपर खड़े हुएके साथ खड़ा होकर ही लड़ना चाहिये और एक-एक योद्धाको क्रमशः एक-एकके साथ लड़ाना चाहिये॥ १४॥ कोई बालक हो, वृद्ध हो, मध्य अवस्थाका हो, दुर्बल हो, अथवा बलवान् हो, वह यदि अखाड़ेमें उतरे तो उसके जोड़का विचार उसीकी कक्षाके लोगोंमेंसे ही करना चाहिये॥ १५॥ शारीरिक बल और क्रिया (दाँव-पेंच)-से ही बाहुयुद्ध करनेका विधान है। विज्ञ पुरुषको चाहिये कि प्रतिद्वन्द्वीको गिरा देनेके बाद उसके साथ और कुछ न करे॥ १६॥

तदिदं प्रस्तुतं रंगे युद्धं कृष्णान्ध्रमल्लयोः।
बालः कृष्णो महानन्ध्रः कथं न स्याद् विचारणा॥ १७

ततः किलकिलाशब्दः समाजे समवर्तत।
प्रावल्गत च गोविन्दो वाक्यं चेदमुवाच ह॥ १८

अहं बालो महानन्ध्रो वपुषा पर्वतोपमः।
युद्धं ममानेन सह रोचते बाहुशालिना॥ १९

युद्धव्यतिक्रमः कश्चिन्न भविष्यति मत्कृतः।
न ह्यहं बाहुयोधानां दूषयिष्यामि यन्मतम्॥ २०

योऽयं करीषधर्मश्च तोयधर्मश्च रंगजः।
कषायस्य च संसर्गः समयो ह्येष कल्पितः॥ २१

संयमः स्थिरता शौर्यं व्यायामः सत्क्रिया बलम्।
रंगे च नियता सिद्धिरेतद् युद्धविदां मतम्॥ २२

अवैरमेवं यदयं सवैरं कर्तुमुद्यतः।
अत्र वै निग्रहः कार्यस्तोषयिष्याम्यहं जगत्॥ २३

करूषेषु प्रसूतोऽयं चाणूरो नाम नामतः।
बाहुयोधी शरीरेण कर्मभिश्चात्र चिन्त्यताम्॥ २४

एतेन बहवो मल्ला निपातानन्तरं हताः।
रङ्गप्रतापकामेन मल्लमार्गश्च दूषितः॥ २५

शस्त्रसिद्धिस्तु योधानां संग्रामे शस्त्रयोधिनाम्।
रङ्गसिद्धिस्तु मल्लानां प्रतिमल्लनिपातजा॥ २६

रणे विजयमानस्य कीर्तिर्भवति शाश्वती।
हतस्यापि रणे शस्त्रैर्नाकपृष्ठं विधीयते॥ २७

रणे ह्युभयतः सिद्धिर्हतस्येह घ्नतोऽपि वा।
सा हि प्राणान्तिकी यात्रा महद्भिः साधुपूजिता॥ २८

'इस समय रंगस्थलमें श्रीकृष्ण और अन्ध्रमल्ल-चाणूरका युद्ध प्रस्तुत है, परन्तु इनमें श्रीकृष्ण तो अभी बालक हैं और चाणूर विशालकाय पहलवान है, इस विषमतापर विचार क्यों नहीं किया जाता?'॥ १७॥ यह सुनकर उस जनसमाजमें कोलाहल मच गया। तब भगवान् श्रीकृष्ण उछल पड़े और इस प्रकार बोले—॥ १८॥ 'मैं बालक हूँ और यह महामल्ल अन्ध्र शरीरसे पर्वत-जैसा दिखायी देता है, तथापि इस बाहुशाली वीरके साथ मेरा युद्ध हो, यह मुझे पसंद है॥ १९॥ मेरी ओरसे युद्ध-सम्बन्धी नियमका कोई उल्लङ्घन नहीं होगा। बाहुयुद्ध करनेवाले योद्धाओंका जो मत है, उसे मैं कलंकित नहीं करूँगा॥ २०॥ गोबरके चूर्णको उबटनके समान शरीरमें मलना, जलसे धोना और गेरूके रंगका लेपन करना रंगस्थल (अखाड़ेमें उतरनेवालों)-का धर्म है, यह मल्लोंका बनाया हुआ आचार है॥ २१॥ संयम (एक-दूसरेको पीछे हटाना), स्थिरता (अपने स्थानसे न हटना), शौर्य, व्यायाम (स्थिर रहते हुए भी हाथ-पैर चलाना), सत्क्रिया (सद्वर्ताव—मर्मस्थानोंमें चोट न पहुँचाना), असद् व्यवहारसे बचते हुए भी अधिक-से-अधिक बल प्रकट करना, इन छः साधनोंके द्वारा रङ्गभूमिमें विजयरूप सिद्धिका प्राप्त होना निश्चित है; यह मल्लयुद्धके विद्वानोंका मत है॥ २२॥ यह (चाणूर अथवा कंस) इस वैररहित युद्धको भी वैरयुक्त कर देनेपर तुला हुआ है, अतः यहाँ इसका निग्रह करना आवश्यक है, ऐसा करके मैं सम्पूर्ण जगत्‌को संतुष्ट करूँगा॥ २३॥ यह चाणूर नामक बाहुयोधी मल्ल करूष देशमें उत्पन्न हुआ है। इसके शरीर और कर्मसे जो घटनाएँ घटित हुई हैं, उनपर भी आपलोग विचार कर लें॥ २४॥ इसने रंगभूमिमें अपना प्रताप प्रकट करने या दबदबा जमानेकी इच्छासे बहुतेरे पहलवानोंको भूमिपर गिरानेके बाद मार डाला और इस प्रकार मल्ल-मार्गको कलंकित किया है॥ २५॥ शस्त्रद्वारा युद्ध करनेवाले योद्धाओंके लिये संग्राममें शत्रुको विदीर्ण कर देना ही सिद्धि है, परंतु मल्लोंको प्रतिद्वन्द्वी मल्लको गिरा देनेमात्रसे रंगस्थलमें विजयरूप सिद्धि प्राप्त हो जाती है॥ २६॥ शस्त्रयुद्धमें विजय पानेवालेको अक्षय कीर्ति प्राप्त होती है। यदि वह रणक्षेत्रमें शस्त्रोंद्वारा मारा गया तो भी उसे स्वर्गलोककी प्राप्ति होती है॥ २७॥ शस्त्रयुद्धमें मारे जानेवालेको तथा मारनेवाले दोनोंको ही सिद्धि प्राप्त होती है, क्योंकि वह प्राणान्तक यात्रा है, जिसकी महान् पुरुषोंने भलीभाँति पूजा (प्रशंसा) की है'॥ २८॥

अयं तु मार्गो बलतः क्रियातश्च विनिःसृतः।
मृतस्य रङ्गे क्व स्वर्गो जयतो वा कुतो रतिः॥ २९

'परंतु यह मल्ल-युद्धका मार्ग शारीरिक बल और दाँव-पेंचके कौशलसे प्रकट हुआ है। अखाड़ेमें मरनेवालेको कहाँ स्वर्ग मिलता है? अथवा जीतनेवालेको कहाँका सुख प्राप्त होता है?॥ २९॥

ये तु केचित् स्वदोषेण राज्ञः पण्डितमानिनः।
प्रतापार्थे हता मल्ला मल्लहन्तुर्वधो हि सः॥ ३०

किसी पण्डितमानी राजाका प्रताप बढ़ानेके लिये जो कोई भी मल्ल किसी पहलवानके द्वारा अपने अपराधसे मारे गये हैं, वहाँ उस मल्ल-हत्यारेको हत्याजनित पाप ही लगता है'॥ ३०॥

एवं संजल्पतस्तस्य ताभ्यां युद्धं सुदारुणम्।
उभाभ्यामभवद् घोरं वारणाभ्यां यथा वने॥ ३१

जब श्रीकृष्ण ऐसा कह रहे थे, उसी समय उनमें और चाणूरमें—दोनोंमें ही अत्यन्त दारुण एवं भयानक युद्ध होने लगा, जैसे वनमें दो हाथी लड़ पड़ें॥ ३१॥

कृतप्रतिकृतैश्चित्रैर्बाहुभिश्च सकण्टकैः।
सन्निपातावधूतैश्च प्रमाथोन्मथनैस्तथा[1]॥ ३२

उनमेंसे जब एक-दूसरेका कोई अङ्ग जोरसे दबाता, तब दूसरा तुरंत उसका प्रतीकार करता—उस अङ्गको उसकी पकड़से छुड़ा लेता था। दोनों एक-दूसरेके हाथोंको मुट्ठीसे पकड़कर विवश कर देते और विचित्र ढंगसे परस्पर प्रहार करते थे। दोनों ही एक-दूसरेको अपनी भुजाओंमें बाँधकर रोक लेते, कभी दोनों आपसमें गुँथ जाते और फिर धक्के देकर दूर हटा देते थे। कभी एक-दूसरेको जमीनपर पटककर रगड़ता तो दूसरा नीचेसे ही कुलाँचकर ऊपरवालेको दूर फेंक देता या लिये-दिये खड़ा हो अपने शरीरसे दबाकर उसके अङ्गोंको भी मथ डालता था॥ ३२॥

तावुभावपि संश्लिष्टौ यथा शैलमयौ तथा।
क्षेपणै[2]र्मुष्टिभि[3]श्चैव वराहोद्धूतनिःस्वनैः[4]॥ ३३

वे दोनों ही एक-दूसरेसे सटकर ऐसे जान पड़ते थे, मानो दो पर्वत परस्पर भिड़ गये हों। कभी दोनों दोनोंको बलपूर्वक पीछे हटाते और मुक्कोंसे एक-दूसरेकी छातीपर चोट करते थे, कभी एकको दूसरा अपने कंधेपर उठा लेता और उसका मुँह नीचे कर घुमाकर पटक देता था, जिससे ऐसा शब्द होता, मानो किसी शूकरने चोट की हो॥ ३३॥

कीलैर्वज्रनिपातैश्च प्रसृष्टाभि[5]स्तथैव च।
शलाकानखपातैश्च पादोद्धूतैश्च दारुणैः॥ ३४

कभी वे दोनों योधा एक-दूसरेके शरीरपर कोहनियों और घुटनोंसे चोट करते थे, कभी हाथकी अँगुलियोंको फैलाकर एक-दूसरेको पीटते थे, कभी आपसमें पंजे लड़ाते थे, कभी रोषपूर्वक अँगुलियोंके नखोंसे बकोट लेते थे, कभी पैरोंमें उलझाकर दोनों दोनोंको गिरा देते। इस प्रकार भयंकर दाँव-पेंचका प्रयोग करते थे॥ ३४॥

---

१. प्रमाथ तथा उन्मथन आदि मल्ल-युद्धके दाँव-पेंचोंके नाम हैं। मल्ल-शास्त्रके अनुसार इनके लक्षण नीचे दिये जाते हैं। इनका भाव मूल श्लोकके अनुवादमें आ गया है—
निपात्य पेषणं भूमौ प्रमाथ इति कथ्यते। यत् तूत्थायाङ्गमथनं तदुन्मथनमुच्यते॥

२. क्षेपणं कथ्यते यत् तु स्थानात् प्रच्यावनं हठात्॥

३. उभयोर्भुजयोर्मुष्टिरूरोमध्ये निपात्यते। मुष्टिरित्युच्यते तज्ज्ञैर्मल्लविद्याविशारदैः॥

४. अवाङ्मुखं स्कन्धगतं भ्रामयित्वा तदैव यः। क्षिप्तस्य शब्दः स भवेद् वराहोद्धूतनिःस्वनः॥

५. अङ्गुल्यः प्रसृतायास्तु ताः प्रसृष्टा उदीरिताः॥

जानुभिश्चाश्मनिर्घोषैः शिरोभ्यां चावघट्टितैः।
तद् युद्धमभवद् घोरमशस्त्रं बाहुतेजसा॥ ३५

बलप्राणेन शूराणां समाजोत्सवसंनिधौ।
अरज्यत जनः सर्वः सोत्कृष्टनिनदोत्थितः॥ ३६

साधुवादांश्च मञ्चेषु घोषयन्त्यपरे जनाः।
ततः प्रस्विन्नवदनः कृष्णप्रणिहितेक्षणः।
न्यवारयत तूर्याणि कंसः सव्येन पाणिना॥ ३७

प्रतिषिद्धेषु तूर्येषु मृदङ्गादिषु तेषु वै।
खे संगतान्यवाद्यन्त देवतूर्याण्यनेकशः॥ ३८

युद्ध्यमाने हृषीकेशे पुण्डरीकनिभेक्षणे।
स्वयमेव प्रवाद्यन्त तूर्यघोषास्तु सर्वशः॥ ३९

अन्तर्धानगता देवा विमानैः कामरूपिभिः।
चेरुर्विद्याधरैः सार्द्धं कृष्णस्य जयकाङ्क्षिणः॥ ४०

जयस्व कृष्ण चाणूरं दानवं मल्लरूपिणम्।
इति सप्तर्षयः सर्वे ऊचुश्चैव नभोगताः॥ ४१

चाणूरेण चिरं कालं क्रीडित्वा देवकीसुतः।
बलमाहारयामास कंसस्याभावदर्शिवान्॥ ४२

ततश्चचाल वसुधा मञ्चाश्चैव जुघूर्णिरे।
मुकुटाच्चापि कंसस्य पपात मणिरुत्तमः॥ ४३

दोर्भ्यामानम्य कृष्णस्तु चाणूरं शीर्णजीवितम्।
प्राहरन्मुष्टिना मूर्ध्नि वक्षस्याहत्य जानुना॥ ४४

निःसृते साश्रुरुधिरे तस्य नेत्रे सबन्धने।
तापनीये यथा घण्टे कक्षोपरि विलम्बिते॥ ४५

पपात स तु रङ्गस्य मध्ये निःसृतलोचनः।
चाणूरो विगतप्राणो जीवितान्ते महीतले॥ ४६

देहेन तस्य मल्लस्य चाणूरस्य गतायुषः।
संनिरुद्धो महारङ्गः स शैलेनेव लक्ष्यते॥ ४७

कभी घुटनों और सिरसे टक्कर मारते थे, जिससे पत्थरोंके टकरानेके समान शब्द होता था। जनसमुदायके समक्ष किये जानेवाले उस उत्सवमें शूरवीरोंके निकट उन दोनोंमें केवल बाहुबल, शारीरिक बल तथा प्राणबलसे किसी अस्त्र-शस्त्रके बिना ही बड़ा भयंकर युद्ध हुआ। उस युद्धके रंगमें सब लोग रँग गये। सभी दर्शक विजेताका उत्साह बढ़ानेके लिये जोर-जोरसे हर्षनाद कर उठते थे॥ ३५-३६॥ दूसरे लोग मञ्चोंपर बैठे-बैठे ही 'साधु-साधु' (बहुत अच्छा, बहुत अच्छा)-की घोषणा करते थे। यह सब देख-सुनकर कंसके वदनसे पसीना छूटने लगा। उसकी आँखें श्रीकृष्णकी ओर ही लगी थीं। उसने बायें हाथसे संकेत करके बाजे बंद करा दिये॥ ३७॥ कंसने जब मृदङ्ग आदि वाद्योंका बजाना रोक दिया, तब आकाशमें देवताओंके अनेक प्रकारके वाद्य स्वतः एक साथ बज उठे॥ ३८॥ कमलनयन श्रीकृष्णके युद्ध करते समय सब प्रकारके वाद्य स्वयं ही बजने लगे और उनकी ध्वनि सब ओर छा गयी॥ ३९॥ देवता अदृश्य होकर श्रीकृष्णकी विजय चाहते हुए अपने कामरूपी विमानोंद्वारा विद्याधरगणोंके साथ वहाँ आकाशमें विचर रहे थे॥ ४०॥ समस्त सप्तर्षि वहाँके आकाशमें स्थित हो कहने लगे—'श्रीकृष्ण! तुम्हें इस मल्लरूपधारी दानव चाणूरपर विजय प्राप्त हो'॥ ४१॥ कंसकी मृत्युको समीप देखनेवाले देवकीनन्दन भगवान् श्रीकृष्णने चाणूरके साथ चिरकालतक युद्धकी लीला करके अपनेमें अनन्त बलका समावेश किया॥ ४२॥ फिर तो धरती डोलने लगी। वहाँ बिछे हुए मञ्च झूमने लगे और कंसके मुकुटसे भी उत्तम मणि गिर पड़ी॥ ४३॥ चाणूरकी जीवनी शक्ति अथवा आयु क्षीण हो चुकी थी। श्रीकृष्णने अपनी दोनों भुजाओंसे चाणूरको झुकाकर उसकी छातीमें घुटनेसे चोट करके उसके मस्तकपर मुक्केसे प्रहार किया॥ ४४॥ इससे स्नायु-बन्धन तथा आँसू और रक्तके साथ उसकी दोनों आँखें बाहर निकल आयीं और ऐसी दिखायी देने लगीं मानो हाथीको कसनेवाली रस्सी या जंजीरमें दो सोनेकी घंटियाँ लटक रही हों॥ ४५॥ आँखें निकल जानेपर जीवनके अन्तमें प्राणशून्य हुआ चाणूर अखाड़ेके बीचमें गिर पड़ा॥ ४६॥ जिसकी आयु समाप्त हो गयी थी, उस चाणूर-मल्लके शरीरसे वह विशाल रंगस्थल इस प्रकार अवरुद्ध दिखायी देता था, मानो किसी पर्वतसे रुँध गया हो॥ ४७॥

रौहिणेयो हते तस्मिंश्चाणूरे बलदर्पिते।
जग्राह मुष्टिकं रंगे कृष्णस्तोशलकं पुनः॥ ४८

सन्निपाते तु तौ मल्लौ प्रथमे क्रोधमूर्च्छितौ।
समेयातां रामकृष्णौ कालस्य वशवर्तिनौ।
निर्घातावनतौ भूत्वा रङ्गमध्ये ववल्गतुः॥ ४९

कृष्णस्तोशलमुद्यम्य गिरिशृङ्गोपमं बली।
भ्रामयित्वा शतगुणं निष्पिपेष महीतले॥ ५०

तस्य कृष्णाभिपन्नस्य पीडितस्य बलीयसः।
मुखाद् रुधिरमत्यर्थमुज्जगाम मुमूर्षतः॥ ५१

संकर्षणस्तु सुचिरं योधयित्वा महाबलः।
अन्ध्रमल्लं महामल्लो मण्डलानि व्यदर्शयत्॥ ५२

मुष्टिनैकेन तेजस्वी साशनिस्तनयित्नुना।
शिरस्यभ्यहनद् वीरो वज्रेणेव महागिरिम्॥ ५३

स निष्पतितमस्तिष्को विस्रस्तनयनो भुवि।
पपात निहतस्तेन ततो नादो महानभूत्॥ ५४

अन्ध्रतोशलकौ हत्वा कृष्णसंकर्षणावुभौ।
क्रोधसंरक्तनयनौ रंगमध्ये ववल्गतुः॥ ५५

समाजवाटो निर्मल्लः सोऽभवद् भीमदर्शनः।
अन्ध्रे तदा महामल्ले मुष्टिके च निपातिते॥ ५६

ये च सम्प्रेक्षका गोपा नन्दगोपपुरोगमाः।
भयक्षोभितसर्वाङ्गाः सर्वे तत्रावतस्थिरे॥ ५७

हर्षजं वारि नेत्राभ्यां वर्षमाणा प्रवेपती।
प्रस्रवोत्पीडिता कृष्णं देवकी समुदैक्षत॥ ५८

कृष्णदर्शनजातेन बाष्पेणाकुलितेक्षणः।
वसुदेवो जरां त्यक्त्वा स्नेहेन तरुणायते॥ ५९

वारमुख्याश्च ताः सर्वाः कृष्णस्य मुखपङ्कजम्।
पपुर्हि नेत्रभ्रमरैर्निमेषान्तरगामिभिः॥ ६०

कंसस्याथ मुखे स्वेदो भ्रूभेदान्तरगोचरः।
अभवद् रोषनिर्यासः कृष्णसंदर्शनेरितः॥ ६१

बलाभिमानी चाणूरके मारे जानेपर रोहिणीनन्दन बलरामने उस रंगभूमिमें मुष्टिकको पकड़ लिया तथा श्रीकृष्णने पुनः तोशलको धर दबाया॥ ४८॥

युद्ध आरम्भ होनेपर पहले तो कालके अधीन हुए वे दोनों असुर मल्ल क्रोधसे मूर्च्छित हो बलराम और श्रीकृष्णसे भिड़ गये; परंतु जब उन दोनों वीरोंकी मार पड़ी, तब वे सिर झुकाकर अखाड़ेमें इधर-उधर उछल-कूद मचाने लगे॥ ४९॥ बलवान् श्रीकृष्णने पर्वतशिखरके समान विशालकाय तोशलको दोनों हाथोंसे उठा लिया और सौ बार घुमानेके बाद पृथ्वीपर पटककर उसे पीस डाला॥ ५०॥ श्रीकृष्णके द्वारा आक्रान्त एवं पीड़ित होकर मरणासन्न हुए उस महाबली मल्लके मुखसे बहुत अधिक रक्त निकलने लगा॥ ५१॥ इधर महाबली महामल्ल संकर्षण आन्ध्रदेशीय मल्ल मुष्टिकके साथ देरतक युद्ध करके उसे कुश्तीके अनेक पैंतरे दिखाने लगे॥ ५२॥ फिर उन तेजस्वी वीरने उसके मस्तकपर एक मुक्का मारा। उससे वज्रपातके समान शब्द हुआ। मानो किसी महान् पर्वतपर वज्रसे आघात किया गया हो॥ ५३॥ इससे उसका मस्तक फटकर गिर पड़ा, आँखें निकल आयीं और बलरामजीके द्वारा मारा गया वह मल्ल पृथ्वीपर गिर पड़ा। उस समय बड़े जोरसे धमाकेका शब्द हुआ॥ ५४॥ आन्ध्रदेशीय मुष्टिक और तोशल इन दोनोंको मारकर श्रीकृष्ण और बलराम दोनों भाई क्रोधसे लाल आँखें किये अखाड़ेमें उछलने-कूदने लगे॥ ५५॥ उस समय महामल्ल चाणूर और मुष्टिकके मारे जानेपर वह समाजवाट (रंगभवन) मल्लोंसे सूना हो गया और अत्यन्त भयंकर दिखायी देने लगा॥ ५६॥ नन्द आदि जो-जो गोप यह सब देख रहे थे, उनके सारे अङ्ग भयसे क्षुब्ध हो उठे थे। वे सब लोग वहाँ चुपचाप बैठे रहे॥ ५७॥ उधर देवकी थर-थर काँपती और दोनों नेत्रोंसे हर्षजनित आँसुओंकी वर्षा करती हुई स्तनोंमें दूधकी बाढ़ आ जानेसे पीड़ित हो श्रीकृष्णकी ओर देख रही थीं॥ ५८॥ श्रीकृष्ण-दर्शनजनित आँसुओंसे भरे हुए नेत्रोंवाले वसुदेवजी मानो वृद्धावस्था त्यागकर वात्सल्य-स्नेहसे परिपुष्ट हो तरुण हो रहे थे॥ ५९॥ वहाँ जो मुख्य-मुख्य वाराङ्गनाएँ उपस्थित थीं, वे सब-की-सब निमेषके भीतर चलनेवाले नेत्ररूपी भ्रमरोंद्वारा श्रीकृष्णके मुखारविन्दका रस-पान करने लगीं॥ ६०॥ तदनन्तर श्रीकृष्णको देखनेसे कंसके मुखमें दोनों भौंहोंके बीच रोषवश पसीना निकल आया॥ ६१॥

केशवाय सधूमेन रोषनिश्वासवायुना।
दीप्तमन्तर्गतं तस्य हृदयं मानसाग्निना॥ ६२

तस्य प्रस्फुरितौष्ठस्य स्विन्नालिकतलस्य वै।
कंसवक्त्रस्य रोषेण रक्तसूर्यायते वपुः॥ ६३

क्रोधरक्तान्मुखात्तस्य निःसृताः स्वेदबिन्दवः।
यथा रविकरस्पृष्टा वृक्षावश्यायबिन्दवः॥ ६४

सोऽज्ञापयत संक्रुद्धः पुरुषान् व्यायतान् बहून्।
गोपावेतौ समाजौघान्निष्क्राम्येतां वनेचरौ॥ ६५

न चैतौ द्रष्टुमिच्छामि विकृतौ पापदर्शनौ।
गोपानामपि मे राज्ये न कश्चित्स्थातुमर्हति॥ ६६

नन्दगोपश्च दुर्मेधाः पापेष्वभिरतो मम।
आयसैर्निगडाकारैर्लोहपाशैर्निगृह्यताम्॥ ६७

वसुदेवश्च दुर्वृत्तो नित्यं द्वेषकरो मम।
अवृद्धार्हेण दण्डेन क्षिप्रमद्यैव शास्यताम्॥ ६८

ये चेमे प्राकृता गोपा दामोदरपरायणाः।
ह्रियन्तां गाव एतेषां यच्चास्ति वसु किंचन॥ ६९

एवमाज्ञापयानं तं कंसं परुषभाषिणम्।
ददर्शायस्तनयनः कृष्णः सत्यपराक्रमः॥ ७०

क्षिप्ते पितरि चुक्रोध नन्दगोपे च केशवः।
ज्ञातीनां च व्यथां दृष्ट्वा विसंज्ञां चैव देवकीम्॥ ७१

स सिंह इव वेगेन केशवो जातविक्रमः।
आरुरुक्षुर्महाबाहुः कंसनाशार्थमच्युतः॥ ७२

रङ्गमध्यादुत्पपात कृष्णः कंसासनान्तिकम्।
असज्जद् वायुनाऽऽक्षिप्तो यथा खस्थो घनाघनः॥ ७३

ददृशुर्न हि तं सर्वे रङ्गमध्यादवप्लुतम्।
केवलं कंसपार्श्वस्थं ददृशुः पुरवासिनः॥ ७४

श्रीकृष्णके प्रति कंस जो कठोरता प्रकट करता था, वही जिसका धुआँ था तथा रोषरूपी उच्छ्वास-वायु जिसे प्रज्वलित कर रही थी, उस मानसिक चिन्तारूपी आगने कंसके आन्तरिक हृदयको जलाना आरम्भ किया॥ ६२॥ जिसके ओठ फड़क रहे थे और ललाटमें पसीना निकल आया था, कंसके उस मुखमण्डलका स्वरूप रोषके कारण लाल सूर्यके समान प्रतीत होता था॥ ६३॥ क्रोधसे लाल हुए कंसके मुखसे जो पसीनेकी बूँदें निकली थीं, वे वृक्षोंके पत्तोंपर पड़े हुए उन ओसकणोंके समान सुशोभित होती थीं, जिन्हें सूर्यकी किरणोंका स्पर्श प्राप्त हुआ हो॥ ६४॥ उसने अत्यन्त कुपित होकर बहुत-से व्यायामशाली पुरुषोंको आज्ञा दी कि 'इन दोनों वनेचर गोपोंको इस जनसमुदायसे बाहर निकाल दो॥ ६५॥ ये दोनों विकृत हो गये हैं। इन्हें देखना भी पाप है। मैं इनकी ओर दृष्टिपात करना नहीं चाहता। गोपोंमेंसे भी कोई मेरे इस राज्यमें नहीं रह सकता॥ ६६॥ खोटी बुद्धिवाला नन्दगोप सदा मेरे प्रति कपटपूर्ण बर्तावोंमें ही तत्पर रहा है, अतः इसे लोहेकी बेड़ियों और हथकड़ियोंमें बाँधकर कैद कर लो॥ ६७॥ दुराचारी वसुदेव सदा मुझसे द्वेष रखता है। इसे आज ही शीघ्र-से-शीघ्र ऐसा कठोर दण्ड दो, जो अवृद्ध (नौजवान) पुरुषोंके योग्य हो॥ ६८॥ ये जो दामोदरका आश्रय लेकर रहनेवाले गँवार गोप हैं, इन सबकी गौओंको तथा इनके पास जो कुछ धन हो, उसको भी छीन लो'॥ ६९॥ इस तरह आज्ञा देते और कठोर बातें कहते हुए उस कंसकी ओर सत्यपराक्रमी श्रीकृष्णने आँखें फाड़कर देखा॥ ७०॥ पिता वसुदेव तथा नन्दगोपपर आक्षेप होते ही केशव कुपित हो उठे। उन्होंने बन्धु-बान्धवोंकी व्यथा और माता देवकीकी अचेत-अवस्था देखकर कंसका विनाश करनेके लिये उसके मञ्चपर चढ़नेका विचार किया। उस समय केशवका पराक्रम जाग उठा और अपनी महिमासे कभी च्युत न होनेवाले महाबाहु श्रीकृष्ण उस रंगस्थलसे सिंहके समान वेगपूर्वक उछले और कंसके सिंहासनके पास जा पहुँचे, ठीक उसी तरह जैसे आकाशवर्ती महामेघ वायुसे फेंका जाकर दूर पहुँच जाता है॥ ७१—७३॥ वे कब अखाड़ेसे कूदे हैं, इसको सब लोगोंने नहीं देखा। पुरवासियोंको वे केवल कंसके पास खड़े दिखायी दिये॥ ७४॥

सोऽपि कंसस्तथाऽऽयस्तः परीतः कालधर्मणा।
आकाशादिव गोविन्दं मेने तत्रागतं प्रभुम्॥ ७५

स कृष्णेनायतं कृत्वा बाहुं परिघसंनिभम्।
मूर्धजेषु परामृष्टः कंसो वै रङ्गसंसदि॥ ७६

मुकुटश्चापतत् तस्य काञ्चनो वज्रभूषितः।
शिरसस्तस्य कृष्णेन परामृष्टस्य पाणिना॥ ७७

स ग्रहग्रस्तकेशश्च कंसो निर्यत्नतां गतः।
तथैव च विसम्मूढो वैकल्यं समपद्यत॥ ७८

निगृहीतश्च केशेषु गतासुरिव निःश्वसन्।
न शशाक मुखं द्रष्टुं कंसः कृष्णस्य वै तदा॥ ७९

विकुण्डलाभ्यां कर्णाभ्यां छिन्नहारेण वक्षसा।
प्रलम्बाभ्यां च बाहुभ्यां गात्रैर्विसृतभूषणैः॥ ८०

भ्रंशितेनोत्तरीयेण सहसावलिताननः।
चेष्टमानः समाक्षिप्तः कंसः कार्ष्णेन तेजसा॥ ८१

चकर्ष च महारङ्गे मञ्चान्निष्क्रम्य केशवः।
केशेषु तं बलाद् गृह्य कंसं क्लेशार्हतां गतम्॥ ८२

कृष्यमाणः स कृष्णेन भोजराजो महाद्युतिः।
समाजवाटे परिखां देहकृष्टां चकार ह॥ ८३

समाजवाटे क्रीडित्वा विकृष्य च गतायुषम्।
कृष्णो विसर्जयामास कंसदेहमदूरतः॥ ८४

धरण्यां मृदितः शिश्ये तस्य देहः सुखोचितः।
क्रमेण विपरीतेन पांसुभिः परुषीकृतः॥ ८५

तस्य तद् वदनं श्यामं सुप्ताक्षं मुकुटं विना।
न विभाति विपर्यस्तं विपलाशं यथाम्बुजम्॥ ८६

असंग्रामहतः कंसः स बाणैरपरिक्षतः।
केशग्राहान्निरस्तासुर्वीरमार्गान्निराकृतः॥ ८७

तस्य देहे प्रकाशन्ते सहसा केशवार्पिताः।
मांसच्छेदघनाः सर्वे नखाग्रा जीवितच्छिदः॥ ८८

कालधर्म (मौत)-से घिरा हुआ कंस भी व्याकुल हो उठा और उसने यही समझा कि भगवान् गोविन्द आकाशसे ही मेरे पास उतर आये हैं॥ ७५॥ श्रीकृष्णने अपनी परिघ-जैसी मोटी एक बाँह बढ़ाकर रंगशालामें कंसकी चोटी पकड़ ली॥ ७६॥ उस समय श्रीकृष्णके हाथसे पकड़े गये कंसके सिरसे उसका वज्रमणिसे विभूषित सुवर्णमय मुकुट खिसककर गिर पड़ा॥ ७७॥ जैसे किसी ग्रहने केश पकड़ लिये हों, उस अवस्थामें पड़ा हुआ कंस निश्चेष्ट हो गया तथा किंकर्तव्यविमूढ़ हो व्याकुलतामें पड़ गया॥ ७८॥ केश पकड़ लिये जानेपर कंस मुर्दा-सा हो गया। वह लम्बी साँस लेता हुआ उस समय कृष्णके मुखकी ओर दृष्टि न डाल सका॥ ७९॥ उसके कानोंसे कुण्डल खिसक गये। वक्ष:स्थलका हार छिन्न-भिन्न हो गया। दोनों भुजाएँ लटक गयीं। सारे अङ्गोंके आभूषण गिर गये। चादर खिसक गयी और उसने सहसा उसके कण्ठको आवेष्टित कर लिया। श्रीकृष्णके अनुपम तेजसे झटकेके साथ नीचे डाला गया कंस पृथ्वीपर गिरकर छटपटाने लगा॥ ८०-८१॥ उस समय श्रीकृष्ण मञ्चसे निकलकर बाहर आ गये। कंस क्लेशयुक्त शोचनीय अवस्थामें पड़ गया था। श्रीकृष्ण पुनः बलपूर्वक उसके सिरके बाल पकड़कर उस महान् रंगस्थलमें उसे घसीटने लगे॥ ८२॥ श्रीकृष्णके द्वारा घसीटे जाते हुए महातेजस्वी भोजराज कंसने उस रंगशालामें अपनी देहकी रगड़से खाईं-सी बना दी॥ ८३॥ रंगशालामें खिलवाड़ करते हुए घसीटकर निर्जीव हुए कंसके शरीरको श्रीकृष्णने पास ही छोड़ दिया॥ ८४॥ उसका जो शरीर सुख भोगनेके योग्य था, वह मर्दित होकर पृथ्वीपर सो गया। शूरवीरोंके लिये अयोग्य विपरीत विधिसे धूलमें सनकर वह कोमल अङ्ग कठोर हो गया॥ ८५॥ गर्दन टूट जानेसे उसका शरीर अस्त-व्यस्त हो गया था। उसके नेत्र बंद हो गये थे तथा उसका श्याम मुख मुकुटके बिना दलरहित कमलके समान सुशोभित नहीं हो रहा था॥ ८६॥ कंस बिना युद्धके मारा गया था। उसके शरीरपर बाणोंसे घाव नहीं होने पाया था। उसको केश पकड़कर घसीटा गया था, इस अवस्थामें उसके प्राण निकले और वह वीरोचित मार्गसे भ्रष्ट हो गया॥ ८७॥ उसके शरीरमें श्रीकृष्णद्वारा सहसा गड़ाये गये उनके सभी नखाग्र कंसके जीवनका उच्छेद करके प्रकाशित हो रहे थे। वे उसके मांसको छेद-छेदकर सघनरूपसे वहाँ अङ्कित हो गये थे॥ ८८॥

तं हत्वा पुण्डरीकाक्षः प्रहर्षाद् द्विगुणप्रभः।
ववन्दे वसुदेवस्य पादौ निहतकण्टकः॥ ८९

मातुश्च शिरसा पादौ निपीड्य यदुनन्दनः।
सासिञ्चत् प्रस्रवोत्पीडैः कृष्णमानन्दनिःसृतैः॥ ९०

यादवांश्चैव तान् सर्वान् यथास्थानं यथावयः।
पप्रच्छ कुशलं कृष्णो दीप्यमानः स्वतेजसा॥ ९१

बलदेवोऽपि धर्मात्मा कंसभ्रातरमूर्जितम्।
बाहुभ्यामेव तरसा सुनामानमपोथयत्॥ ९२

तौ जितारी जितक्रोधौ चिरविप्रोषितौ व्रजे।
स्वपितुर्भवनं वीरौ जग्मतुर्हृष्टमानसौ॥ ९३

उसका वध करके कमलनयन श्रीकृष्णको इतना अपार हर्ष हुआ कि उनके अङ्गोंकी प्रभा द्विगुण दीप्तिसे प्रकाशित हो उठी। उन्होंने जगत्के लिये कण्टकरूप कंसका विनाश करके पिता वसुदेवके दोनों चरणोंमें प्रणाम किया॥ ८९॥ तत्पश्चात् यदुनन्दन श्रीकृष्णने माताके दोनों चरणोंमें अपना मस्तक रखकर उनकी वन्दना की। उस समय देवकी आनन्दातिरेकसे निकले हुए अपने स्तनोंके दूधसे उन्हें सींचने लगी॥ ९०॥ तदनन्तर अपने तेजसे उद्दीप्त हुए श्रीकृष्णने वय और स्थितिके अनुसार उन समस्त यादवोंकी कुशल पूछी॥ ९१॥ इधर धर्मात्मा बलदेवने भी कंसके ओजस्वी भ्राता सुनामाको अपनी दोनों भुजाओंद्वारा ही वेगपूर्वक मार गिराया॥ ९२॥ शत्रु और क्रोध दोनोंको जीतकर व्रजमें चिरकालतक रहते हुए वे दोनों वीर मन-ही-मन हर्ष और उल्लाससे भरकर अपने पिताके भवनमें गये॥ ९३॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे विष्णुपर्वणि कंसवधे त्रिंशोऽध्यायः॥ ३०॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत विष्णुपर्वमें कंसवधविषयक तीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ३०॥

एकत्रिंशोऽध्यायः

कंसकी स्त्रियों और माताका विलाप

वैशम्पायन उवाच

भर्तारं पतितं दृष्ट्वा क्षीणपुण्यमिव ग्रहम्।
कंसपत्न्यो हतं कंसं समन्तात् पर्यवारयन्॥ १

तं महीशयने सुप्तं क्षितिनाथं गतायुषम्।
भार्याः स्म दृष्ट्वा शोचन्ति मृग्यो मृगपतिं यथा॥ २

हा हताः स्म महाबाहो हताशा हतबान्धवाः।
वीरपत्न्यो हते वीरे त्वयि वीरव्रतप्रिये॥ ३

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! जिसका पुण्य क्षीण हो गया हो, उस ग्रहके समान भूमिपर गिरे हुए पतिको देखकर राजा कंसकी पत्नियाँ उसके मृतक शरीरको सब ओरसे घेरकर बैठ गयीं॥ १॥ जो कभी पृथ्वीके स्वामी और संरक्षक थे, वे ही पतिदेव आयु समाप्त होनेपर भूमिमयी शय्यापर सो रहे हैं, यह देख राजा कंसकी रानियाँ उसके लिये उसी तरह शोक करने लगीं, जैसे हरिणियाँ यूथपति हरिणके लिये शोकमग्न हो जाती हैं॥ २॥ (वे विलाप करती हुई कहने लगीं—) 'हाय! महाबाहु वीर! आपको वीरव्रत प्रिय था। आपके मारे जानेपर हम सब वीर-पत्नियाँ मारी गयीं। हमारी आशाओंकी हत्या हो गयी। हमारे बन्धु-बान्धव भी (अनाथ होनेके कारण) मारे ही गये!॥ ३॥

इमामवस्थां पश्यन्त्यः पश्चिमां तव नैष्ठिकीम्।
कृपणं राजशार्दूल विलपामः सबान्धवाः॥ ४

छिन्नमूलाः स्म संवृत्ताः परित्यक्तास्त्वया विभो।
त्वयि पञ्चत्वमापन्ने नाथेऽस्माकं महाबले॥ ५

को नः कोपपरीताङ्गी रतिसंसर्गलालसाः।
लता इव विचेष्टन्तीः शयनीयानि नेष्यति॥ ६

इदं तेऽसदृशं सौम्य हृद्यनिःश्वासमारुतम्।
दहत्यर्को मुखं कान्तं निस्तोयमिव पङ्कजम्॥ ७

इमे ते श्रवणे शून्ये न शोभेते विकुण्डले।
शिरोधरायां संलीने सततं कुण्डलप्रिये॥ ८

क्व ते स मुकुटो वीर सर्वरत्नविभूषितः।
अत्यर्थं शिरसो लक्ष्मीं यो दधारार्कसप्रभाम्॥ ९

अनेन हि कलत्रेण तवान्तःपुरशोभिना।
कथं दीनेन कर्तव्यं त्वयि लोकान्तरं गते॥ १०

ननु नाम स्त्रियः साध्व्यः प्रियभोगेष्ववञ्चिताः।
पतीनामपरित्याज्याः स त्वं नस्त्यज्य गच्छसि॥ ११

अहो कालो महावीर्यो येन पर्ययकर्मणा।
कालतुल्यः सपत्नानां त्वं क्षिप्रमपनीयसे॥ १२

वयं दुःखेष्वनुचिताः सुखेष्वेव त्वयैधिताः।
कथं वत्स्याम विधवा नाथ कार्पण्यमाश्रिताः॥ १३

स्त्रीणां चारित्रलुब्धानां पतिरेकः परा गतिः।
त्वं हि नः सा गतिश्छिन्ना कृतान्तेन बलीयसा॥ १४

राजशिरोमणे! आपकी मृत्युसम्बन्धिनी इस अन्तिम अवस्थाको देखती हुई हम सब (आपकी पत्नियाँ) अपने बान्धवोंसहित दीनतापूर्ण विलाप कर रही हैं॥ ४॥ प्रभो! आप हमारे महाबली प्राणनाथ थे, आपके मारे जानेसे हमारी तो जड़ कट गयी। हाय! आपने हमें त्याग दिया!॥ ५॥ हा प्राणाधार! हम मनमें रतिसंसर्गकी लालसा रखकर भी (मानावस्थामें) प्रणयकोपसे युक्त हो जब पृथ्वीपर लताओंकी भाँति लोटकर विपरीत चेष्टा करने लगतीं, उस समय आप हमें प्रेमपूर्वक मनाकर शय्याओंपर सुलाते थे। अब हमें कौन इस तरह उठाकर सेजोंतक ले जायगा?॥ ६॥ सौम्य! जिससे मनोरम निःश्वास वायु निकला करती थी, आपके उस कान्तिमान् मुखको सूर्य जलरहित (तालाबमें उगे हुए) कमलकी भाँति अपनी दुःसह किरणोंसे दग्ध कर रहे हैं। यह दुरवस्था आपके योग्य नहीं है॥ ७॥ ये आपके कुण्डलरहित सूने कान, जिन्हें सदा ही कुण्डल धारण करना प्रिय रहा है, इस समय कण्ठमें विलीन होकर शोभा नहीं पा रहे हैं॥ ८॥ वीर! सम्पूर्ण रत्नोंसे विभूषित आपका वह मुकुट कहाँ है, जो आपके मस्तकपर सूर्यकी प्रभाके समान अतिशय शोभाका आधान करता था!॥ ९॥ प्राणनाथ! आपकी ये रानियाँ जो अन्तःपुरकी शोभा बढ़ाती थीं, आपके लोकान्तरमें चले जानेसे अब दीन और अनाथ होकर कैसे निर्वाह करेंगी॥ १०॥ नाथ! सुना था, साध्वी स्त्रियाँ न तो प्रिय भोगोंसे कभी वञ्चित होती हैं और न उनके पति उनका परित्याग ही करते हैं; परंतु आप तो हमें छोड़कर चले जा रहे हैं (हाय! अब हम कैसे रहेंगी)॥ ११॥ अहो! काल महान् बलसे सम्पन्न है, जो अपनी उलट-फेर क्रियाद्वारा शत्रुओंके लिये कालके समान आपको भी शीघ्रतापूर्वक यहाँसे लिये जा रहा है॥ १२॥ नाथ! आपने हमें सदा सुखोंमें ही रखकर पाला-पोसा और बड़ी किया है। हम दुःख भोगनेके योग्य नहीं हैं; किंतु आज आपसे बिछुड़कर विधवा होकर दयनीय दशाको पहुँच गयी हैं। अब हम कैसे यहाँ रह सकेंगी?॥ १३॥ जिनके मनमें सदाचारके पालनका लोभ हो, उन साध्वी स्त्रियोंके लिये एकमात्र पति ही परम गति है—सबसे बड़ा सहारा है, किंतु महाबली कालने हमारे उस सहारेको काट डाला'॥ १४॥

वैधव्येनाभिभूताः स्मः शोकसंतप्तमानसाः।
रोदितव्यह्रदे मग्नाः क्व गच्छामस्त्वया विना॥ १५

सह त्वया गतः कालस्त्वदङ्के क्रीडितं कृतम्।
क्षणेन तद्विहीनाः स्म अनित्या हि नृणां गतिः॥ १६

अहो बलविहीनाः स्म विपन्ने त्वयि मानद।
एकदुष्कृतकारिण्यः सर्वा वैधव्यलक्षणाः॥ १७

त्वया स्वर्गप्रतिच्छन्दैर्लालिताः स्म रतिप्रियाः।
त्वयि कामवशाः सर्वाः स नस्त्यज्य क्व गच्छसि॥ १८

अस्माकं त्वमनाथानां नाथो ह्यसि सुरोपम।
आसां विलपमानानां कुररीणामिव प्रभो।
प्रतिवाक्यं जगन्नाथ दातुमर्हसि मानद॥ १९

एवमार्तकलत्रस्य शाम्यमानेषु बन्धुषु।
गमनं ते महाभाग दारुणं प्रतिभाति नः॥ २०

नूनं कान्ततराः कान्त परलोके वरस्त्रियः।
यतस्त्वं प्रस्थितो वीर विहायेमं गृहे जनम्॥ २१

किं नु ते कारणं वीर भार्यास्वेतासु भूरिद।
आर्तनादं रुदन्तीषु यन्मोहान्नावबुध्यसे॥ २२

अहो निष्करुणा यात्रा नराणामौर्ध्वदेहिकी।
यत् परित्यज्य दारान् स्वान् निरपेक्षा व्रजन्ति हि॥ २३

अपतित्वं स्त्रियाः श्रेयो न तु शूरः पतिः स्त्रियाः।
स्वर्गस्त्रीणां प्रियाः शूरास्तेषामपि च ताः प्रियाः॥ २४

अहो क्षिप्रमदृश्येन नयता त्वां रणप्रियम्।
प्रहृतं नः कृतान्तेन सर्वासामन्तरात्मसु॥ २५

'हम वैधव्यसे अभिभूत हो गयी हैं। हमारा मन शोकसे संतप्त हो उठा है। हम विपत्तिके उस गहरे कुण्डमें डूब गयी हैं, जहाँ केवल रोना-ही-रोना रह जाता है। अब हम आपके बिना कहाँ जायँगी? ॥ १५॥ हमारा समय आपके साथ ही बीता है। हमने आपके अङ्कमें ही क्रीड़ाएँ की हैं; किंतु एक ही क्षणमें हम उस सौभाग्यसे वञ्चित हो गयीं। सचमुच ही मनुष्योंकी गति अनित्य है—क्षणभङ्गुर है॥ १६॥ दूसरोंको मान देनेवाले महाराज! आपके निधनसे हम सब-की-सब निर्बल हो गयीं। जान पड़ता है, हम सबने एक समान ही पाप किया था, जिससे सबको वैधव्यका चिह्न धारण करना पड़ा॥ १७॥ आपने हम रतिप्रिया रमणियोंको स्वर्गके समान सुख-भोग देकर सदा हमारा लालन-पालन किया था। हम सभी आपके प्रति कामासक्त रही हैं, फिर आप हमें छोड़कर कहाँ चले जा रहे हैं॥ १८॥ देवोपम प्रभो! आप ही हम अनाथाओंके नाथ हैं। जगन्नाथ! मानद! कुररीके समान विलाप करनेवाली अपनी इन पत्नियोंको कुछ उत्तर देनेकी कृपा करें॥ १९॥ महाभाग! जब कि आपके सभी बन्धु मारे जा रहे हैं और स्त्रियाँ शोकसे पीड़ित हैं, ऐसे अवसरपर आपका परलोकगमन हमें बड़ा दारुण प्रतीत होता है॥ २०॥ प्रियतम! वीर! निश्चय ही परलोककी सुन्दरियाँ बड़ी ही कमनीय हैं, जिससे आप अपने घरकी इन रानियोंको छोड़कर उनके पास जानेके लिये प्रस्थित हो गये॥ २१॥ अधिक-से-अधिक (सुख-सुविधा) प्रदान करनेवाले महाराज! क्या कारण है, जो अपनी इन पत्नियोंके रोने और आर्तनाद करनेपर भी आप मोहवश इनके दुःखको समझ नहीं पाते अथवा इस मोहनिद्रासे जाग नहीं उठते हैं॥ २२॥ अहो! पुरुषोंकी यह पारलौकिक यात्रा बड़ी ही निर्दय होती है; क्योंकि वे अपनी पत्नियोंको छोड़कर उनकी कोई अपेक्षा न रखते हुए चल देते हैं॥ २३॥ स्त्रियोंका बिना पतिके ही रह जाना अच्छा, किंतु उनके लिये शूरवीर पतिका होना अच्छा नहीं है; क्योंकि वे शूरवीर स्वर्गलोककी सुन्दरियोंको प्रिय होते हैं और वे सुन्दरियाँ भी उन शूरवीरोंको प्रिय होती हैं॥ २४॥ अहो! जिन्हें युद्ध ही प्रिय था, उन आपको अदृश्यभावसे शीघ्रतापूर्वक ले जानेवाले कालने हम सबकी अन्तरात्माओंपर एक साथ ही प्रहार किया है'॥ २५॥

हत्वा जरासंधबलं जित्वा यक्षांश्च संयुगे।
कथं मानुषमात्रेण हतस्त्वं जगतीतले॥ २६

इन्द्रेण सह संग्रामं कृत्वा सायकविग्रहम्।
अमर्त्यैरजितो युद्धे मर्त्येनासि कथं हतः॥ २७

त्वया सागरमक्षोभ्यं विक्षोभ्य शरवृष्टिभिः।
रत्नसर्वस्वहरणं जित्वा पाशधरं कृतम्॥ २८

त्वया पौरजनस्यार्थे मन्दं वर्षति वासवे।
सायकैर्जलदाञ्जित्वा बलाद् वर्षं प्रवर्तितम्॥ २९

प्रतापावनताः सर्वे तव तिष्ठन्ति पार्थिवाः।
प्रेषयन्तो वरार्हाणि रत्नान्याच्छादनानि च॥ ३०

तवैवं देवकल्पस्य दृष्टवीर्यस्य शत्रुभिः।
कथं प्राणान्तकं घोरमीदृशं भयमागतम्॥ ३१

प्राप्ताः स्मो विधवाशब्दं त्वयि नाथे निपातिते।
अप्रमत्ताः प्रमत्तेन कृतान्तेन निराकृताः॥ ३२

यद्येवं नाथ गन्तव्यं यदि वा विस्मृता वयम्।
वाङ्मात्रेणापि यामीति वक्तव्ये कः परिश्रमः॥ ३३

प्रसीद नाथ भीताः स्म पादौ ते याम मूर्द्धभिः।
अलं दूरप्रवासेन निवर्तस्व नराधिप॥ ३४

अहो वीर कथं शेषे निषण्णस्तृणपांसुषु।
शयानस्य हि ते भूमौ कस्मान्नोद्विजते वपुः॥ ३५

केन सुप्तप्रहारोऽयं दत्तोऽस्माकमतर्कितः।
प्रहृतं केन सर्वासु नारीष्वेवं सुदारुणम्॥ ३६

रुदितानुशयो नार्या जीवन्त्याः परिदेवनम्।
किं वयं सति गन्तव्ये सह भर्त्रा रुदामहे॥ ३७

एतस्मिन्नन्तरे दीना कंसमाता प्रवेपती।
क्व मे वत्सः क्व मे पुत्र इति रोरूयती भृशम्॥ ३८

'वीरवर! आप युद्धमें जरासंधकी सेनाका विनाश करके यक्षोंको भी हराकर इस भूतलपर एक मनुष्यमात्रके हाथसे किस तरह मार डाले गये? ॥ २६ ॥ इन्द्रके साथ बाणोंद्वारा युद्ध करके जो समराङ्गणमें अमरोंसे भी पराजित न हो सके, वे ही आप एक मरणधर्मा मनुष्यके हाथसे कैसे मारे गये?॥ २७॥ आपने अपने बाणोंकी वर्षासे पाशधारी वरुणको परास्त करके अक्षोभ्य महासागरको भी विक्षुब्ध करते हुए उसके रत्नरूपी सर्वस्वका अपहरण कर लिया था॥ २८॥ एक बार इन्द्रने जब वर्षामें कमी कर दी थी, तब आपने अपने सायकोंसे बादलोंको जीतकर पुरवासियोंके हितके लिये बलपूर्वक वर्षा करवायी थी॥ २९॥ भूमण्डलके समस्त भूपाल आपके प्रतापसे नतमस्तक रहा करते थे और उपहारके रूपमें आपके पास बहुमूल्य रत्न एवं वस्त्र भेजते रहते थे॥ ३०॥ इस प्रकार आप देवताओंके समान तेजस्वी थे। शत्रुओंने आपके बल-पराक्रमको प्रत्यक्ष देखा था तो भी आपके ऊपर ऐसा प्राणान्तकारी घोर भय कैसे आया॥ ३१॥ हा नाथ! आपके मारे जानेसे आज हमें विधवाकी पदवी प्राप्त हुई है। हम सदा प्रमादसे दूर रहती थीं; परंतु मतवाले कृतान्तने हमको भी मिट्टीमें मिला दिया॥ ३२॥ नाथ! यदि इस प्रकार आपको जाना ही था अथवा यदि हमें भुला ही देना था तो वाणीमात्रसे भी 'मैं जा रहा हूँ'—ऐसा कहकर विदा ले लेनेमें आपके लिये क्या परिश्रम था॥ ३३॥ प्राणनाथ! प्रसन्न होइये। हम भयभीत हैं। आपके चरणोंमें मस्तक रखकर प्रार्थना करती हैं। नरेश्वर! दूर देशमें जाने और रहनेसे कोई लाभ नहीं। आप घरको ही लौट चलिये॥ ३४॥ वीर! हमें आश्चर्य है, आप तिनकों और धूलोंमें लोटकर कैसे सो रहे हैं? इस तरह पृथ्वीपर सोये हुए आपके शरीरको उद्वेग क्यों नहीं प्राप्त होता है?॥ ३५॥ जैसे किसीपर सोते समय आघात किया जाय, उस प्रकार किसने हमलोगोंको यह अप्रत्याशित (जिसकी हमें कोई आशा नहीं थी, ऐसा) घोर दण्ड दिया है? किस निष्ठुरने हम सब नारियोंपर इस तरह अत्यन्त दारुण प्रहार किया है? ॥ ३६॥ अहो! विधवा नारी जबतक जीवित रहती है, उसे विलाप ही करना पड़ता है। उसका अन्तःकरण रोता रहता है। हमें तो पतिके साथ ही चलना है, ऐसे अवसरपर हम रो क्यों रही हैं?'॥ ३७॥ इसी बीचमें कंसकी दुखिया माता काँपती हुई वहाँ आयी और 'कहाँ है मेरा बच्चा? कहाँ है मेरा बेटा?' ऐसा कहकर जोर-जोरसे रोने लगी॥ ३८॥

सापश्यन्निहतं पुत्रं निष्प्रभं शशिनं यथा।
हृदयेन विदीर्णेन भ्राम्यमाणा पुनः पुनः॥ ३९

पुत्रं समभिवीक्षन्ती हा हतास्मीति वाशती।
स्नुषाणामार्तनादेन विललाप रुरोद च॥ ४०

सा तस्य वदनं दीनमुत्संगे पुत्रगृद्धिनी।
कृत्वा पुत्रेति कारुण्यं विललापार्तया गिरा॥ ४१

पुत्र शूरव्रते युक्त ज्ञातीनां नन्दिवर्द्धन।
किमिदं त्वरितं वत्स प्रस्थानं कृतवानसि॥ ४२

प्रसुप्तश्चातिविवृते किं पुत्र नियमं विना।
वत्स नैवंविधा भूमौ शेरते कृतलक्षणाः॥ ४३

रावणेन पुरा गीतः श्लोकोऽयं साधुसम्मतः।
बलज्येष्ठेन लोकेषु राक्षसानां समागमे॥ ४४

एवमूर्जितवीर्यस्य मम देवनिघातिनः।
बान्धवेभ्यो भयं घोरं दुर्निवार्यं भविष्यति॥ ४५

तथैव ज्ञातिलुब्धस्य मम पुत्रस्य धीमतः।
ज्ञातिभ्यो भयमुत्पन्नं शरीरान्तकरं महत्॥ ४६

सा पतिं भूपतिं वृद्धमुग्रसेनं विचेतसम्।
उवाच रुदती वाक्यं विवत्सा हरिणी यथा॥ ४७

एह्येहि राजञ्छुद्धात्मन् पश्य पुत्रं जनेश्वरम्।
शयानं वीरशयने वज्राहतमिवाचलम्॥ ४८

अस्य कुर्मो महाराज निर्याणसदृशीं क्रियाम्।
प्रेतत्वमुपपन्नस्य गतस्य यमसादनम्॥ ४९

वीरभोग्यानि राज्यानि वयं चापि पराजिताः।
गच्छ विज्ञाप्यतां कृष्णः कंससत्कारकारणात्॥ ५०

मरणान्तानि वैराणि शान्ते शान्तिर्भविष्यति।
प्रेतकार्याणि कार्याणि मृतः किमपराध्यते॥ ५१

एवमुक्त्वा पतिं भोजं केशानारुज्य दुःखिता।
पुत्रस्य मुखमीक्षन्ती विललापैव सा भृशम्॥ ५२

उसने अपने मरे हुए पुत्रको देखा। वह कान्तिहीन चन्द्रमाके समान प्रतीत होता था। उसकी ऐसी दशा देखकर माताका हृदय विदीर्ण हो गया। उसे बार-बार चक्कर आने लगा॥ ३९॥ वह पुत्रके मुखकी ओर देखती हुई चीखने लगी—'हाय! मैं मारी गयी!' पुत्रवधुओंके आर्तनादके साथ रोने-बिलखने लगी॥ ४०॥ पुत्रके जीवनकी इच्छा रखनेवाली राजमाता उसके दीन मुखको अपनी गोदमें रखकर आर्त वाणीमें 'हा पुत्र!' कहकर करुणाजनक विलाप करने लगी— ॥ ४१॥ 'बेटा! तुम तो वीर-व्रतमें तत्पर रहते थे और अपने बन्धु-बान्धवोंका आनन्द बढ़ाते थे। वत्स! तुमने क्यों इतनी जल्दी यहाँसे प्रस्थान किया है?॥ ४२॥ पुत्र! तुम बिना किसी नियम (नियन्त्रण)-के इस अत्यन्त खुले हुए स्थानमें क्यों सो रहे हो? वत्स! तुम्हारे-जैसे शुभ लक्षणसम्पन्न नरेश इस तरह भूमिपर नहीं सोते हैं॥ ४३॥ तीनों लोकोंमें जो बलमें सबसे बढ़ा-चढ़ा था, उस रावणने प्राचीनकालमें राक्षसोंके समुदायमें इस सत्पुरुषोंद्वारा सम्मानित श्लोकका गान किया था॥ ४४॥ मैं इस प्रकार बल और पराक्रममें बढ़ा हुआ हूँ तथा देवताओंका वध करनेमें समर्थ हूँ तो भी मुझे अपने ही भाई-बन्धुओंसे घोर एवं अनिवार्य भय प्राप्त होता होगा॥ ४५॥ उसी प्रकार मेरा बुद्धिमान् पुत्र अपने सजातीय बन्धुओंपर लुभाया रहता था तो भी इसे भाई-बन्धुओंसे ही यह देह विनाशक महान् भय प्राप्त हुआ है'॥ ४६॥ वह अपने पति बूढ़े राजा उग्रसेनसे, जो उस समय अचेत-से हो रहे थे; बछड़ेसे बिछुड़ी हुई हरिणीके समान रोती हुई बोली—'शुद्ध अन्तःकरणवाले महाराज! आइये, आइये! अपने पुत्र राजा कंसको देखिये, जो वज्रके मारे हुए पर्वतकी भाँति वीरशय्यापर सो रहा है॥ ४७-४८॥ महाराज! अब हमलोग इसके लिये मृत्युकालोचित कर्म करें; क्योंकि यह यमलोकमें जाकर प्रेतत्वको प्राप्त हुआ है॥ ४९॥ राज्यका उपभोग तो वीर पुरुष ही करते हैं। हमलोग तो अब पराजित हो गये; अतः जाइये, कृष्णको यह सूचित कीजिये कि कंसके अन्त्येष्टि-संस्कारकी व्यवस्था होनी चाहिये॥ ५०॥ 'शत्रुके मरनेतक ही वैर रहता है। उसके शान्त हो जानेपर अब वैरकी भी शान्ति हो ही जायगी। इसके प्रेतकार्य तो करने चाहिये। मरा हुआ क्या अपराध करता है'॥ ५१॥ अपने पति भोजराजसे ऐसा कहकर दुःखिनी राजमाता पुत्रका मुख निहारती हुई अपने केश खींच-खींचकर अत्यन्त विलाप करने लगी॥ ५२॥

इमास्ते किं करिष्यन्ति भार्या राजन् सुखोषिताः।
त्वां पतिं सुपतिं प्राप्य या विपन्नमनोरथाः॥ ५३

इमं ते पितरं वृद्धं कृष्णस्य वशवर्तिनम्।
कथं द्रक्ष्यामि शुष्यन्तं कासारसलिलं यथा॥ ५४

अहं ते जननी पुत्र किमर्थं नाभिभाषसे।
प्रस्थितो दीर्घमध्वानं परित्यज्य प्रियं जनम्॥ ५५

अहो वीराल्पभाग्यायाः कृतान्तेनाभिवर्तिना।
आच्छिद्य मम संदायो नीयसे नयकोविदः॥ ५६

दानमानगृहीतानि तृप्तान्येतानि तैर्गुणैः।
रुदन्ति तव भृत्यानां कुलानि कुलयूथप॥ ५७

उत्तिष्ठ नरशार्दूल दीर्घबाहो महाबल।
त्राहि दीनं जनं सर्वं पुरमन्तःपुरं यथा॥ ५८

रुदतीनां भृशार्तानां कंसस्त्रीणां सुविस्तरम्।
जगामास्तं दिनकरः संध्यारागेण रञ्जितः॥ ५९

'राजन्! ये सुखमें पली हुई तुम्हारी रानियाँ अब क्या करेंगी। तुम्हारे-जैसे श्रेष्ठ पतिको पाकर भी इन बेचारी बहुओंका सारा मनोरथ नष्ट हो गया॥ ५३॥ ये तुम्हारे बूढ़े पिता अब श्रीकृष्णके अधीन हो गये। सूखते हुए पोखरेके जलकी भाँति अब मैं इन्हें परतन्त्र-दशामें कैसे देख सकूँगी॥ ५४॥ बेटा! मैं तुम्हारी जननी हूँ। मुझसे क्यों नहीं बोलते हो? क्यों आज अपने प्रिय जनोंका परित्याग करके तुमने परलोकके विशाल पथको प्रस्थान किया है?॥ ५५॥ अहो वीर! तुम नीतिकुशल नरेश थे, मेरी सम्पत्ति थे; किंतु सदा समीप रहनेवाला काल आज तुम्हें मुझ अभागिनीकी गोदसे छीनकर लिये जा रहा है॥ ५६॥ कितने ही कुलों (परिवारों)-के समुदायका पालन करनेवाले मेरे वीर पुत्र! तुमने जिन्हें दान और मानसे अनुगृहीत कर रखा था, जो तुम्हारे उन गुणोंसे अत्यन्त संतुष्ट थे, वे ही ये तुम्हारे भृत्योंके कुलोंके लोग आज तुम्हारे लिये रो रहे हैं॥ ५७॥ नरश्रेष्ठ! उठो। महाबाहो! महाबली वीर! इन दीन-दुःखी लोगोंकी और समस्त नगरकी अन्तःपुरके समान ही रक्षा करो'॥ ५८॥ अत्यन्त आर्त होकर उसके विस्तृत गुणोंको याद करके कंसकी स्त्रियों और माताके रोते-रोते संध्या हो गयी और संध्याकालीन अरुण-रागसे रञ्जित हुए दिवाकर (सूर्य) अस्ताचलको चले गये॥ ५९॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे विष्णुपर्वणि कंसस्त्रीविलापे एकत्रिंशोऽध्यायः॥ ३१॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत विष्णुपर्वमें कंसकी स्त्रियोंका विलापविषयक इकतीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ३१॥

द्वात्रिंशोऽध्यायः

श्रीकृष्णका कंसवधके लिये पश्चात्तापपूर्वक उसके औचित्यका समर्थन, उग्रसेनका श्रीकृष्णको सर्वस्व-समर्पणके पश्चात् कंसका अन्त्येष्टि-संस्कार करनेके लिये अनुरोध, श्रीकृष्णका उन्हें समझा-बुझाकर राज्यपर अभिषिक्त करना और समस्त यादवोंके साथ जाकर कंस आदिका अन्त्येष्टि-संस्कार कराना

वैशम्पायन उवाच

उग्रसेनस्तु कृष्णस्य समीपं दुःखितो ययौ।
पुत्रशोकाभिसंतप्तो विषपीत इव श्वसन्॥ १

स ददर्श गृहे कृष्णं यादवैः परिवारितम्।
पश्चानुतापाद् ध्यायन्तं कंसस्य निधनाविलम्॥ २

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! राजा उग्रसेन पुत्रशोकसे संतप्त एवं दुःखी होकर श्रीकृष्णके समीप गये। उस समय वे इस प्रकार लम्बी साँस खींच रहे थे, मानो उन्होंने विष पी लिया हो॥ १॥ उन्होंने देखा, पिताके घरमें श्रीकृष्ण यादवोंसे घिरे हुए बैठे हैं और कंसके निधनसे मलिन-मुख हो पश्चात्ताप करते हुए चिन्तामग्न हो रहे हैं॥ २॥

कंसनारीविलापांश्च श्रुत्वा स करुणान् बहून्।
गर्हमाणस्तथाऽऽत्मानं तस्मिन् यादवसंसदि॥ ३

अहो मयातिबाल्येन रोषाद् दोषानुवर्तिना।
वैधव्यं स्त्रीसहस्राणां कंसस्यास्य वधे कृतम्॥ ४

कारुण्यं खलु नारीषु प्राकृतस्यापि जायते।
एवमार्तं रुदन्तीषु मया भर्तरि पातिते॥ ५

परिदेवितमात्रेण शोकः खलु विधीयते।
कृतान्तस्यानभिज्ञानां स्त्रीणां कारुण्यसम्भवः॥ ६

कंसस्य हि वधः श्रेयान् प्रागेवाभिमतो मम।
सतामुद्वेजनीयस्य पापेष्वभिरतस्य च॥ ७

लोके पतितवृत्तस्य पुरुषस्याल्पमेधसः।
अक्लिष्टं मरणं श्रेयो न विद्विष्टस्य जीवितम्॥ ८

कंसः पापपरश्चैव साधूनामप्यसम्मतः।
धिक्छब्दपतितश्चैव जीविते चास्य का दया॥ ९

स्वर्गे तपोभृतां वासः फलं पुण्यस्य कर्मणः।
इहापि यशसा युक्तः स्वर्गस्थैरवधार्यते॥ १०

यदि स्युर्निर्वृता लोकाः स्युश्च धर्मपराः प्रजाः।
नरा धर्मप्रवृत्ताश्च न राज्ञामनयः स्पृशेत्॥ ११

निग्रहे दुष्टवृत्तीनां कृतान्तः कुरुते फलम्।
इष्टधर्मेषु लोकेषु कर्तव्यं पारलौकिकम्॥ १२

अतीव देवा रक्षन्ति नरं धर्मपरायणम्।
कर्तारः सुलभा लोके दुष्कृतस्य हि कर्मणः॥ १३

हतः सोऽयं मया कंसः साध्वेतदवगम्यताम्।
मूलच्छेदः कृतस्तस्य विपरीतस्य कर्मणः॥ १४

वे कंसकी पत्नियोंके बहुतेरे करुण विलाप सुनकर उस यादव-समाजमें अपनी निन्दा करते हुए बोले—॥ ३॥ 'अहो! मैंने अत्यन्त अविवेकके कारण रोषवश दोषका ही अनुसरण किया और इस कंसका वध करके हजारों स्त्रियोंको विधवा बना दिया है॥ ४॥ 'साधारण मनुष्योंको भी स्त्रियोंपर दया हो जाती है, परंतु मेरे द्वारा अपने पतिके मारे जानेपर जो इस प्रकार आर्त होकर रो रही हैं, उन रानियोंके प्रति केवल पश्चात्ताप प्रकट करके मैं अपना शोक प्रकाशित कर रहा हूँ। इन भोली-भाली स्त्रियोंके विलापको सुनकर तो यमराजके हृदयमें भी करुणाका संचार हो सकता है॥ ५-६॥ मैंने तो पहलेसे ही यह निश्चय कर लिया था कि कंसका वध ही श्रेष्ठ है। जो सदा पापोंमें तत्पर रहनेके कारण साधु पुरुषोंकी दृष्टिमें भी उद्वेजनीय (उद्वेगमें डालने योग्य) हो गया हो, संसारमें सदाचारसे गिर गया हो तथा सब लोग जिससे विद्वेष रखने लगे हों, ऐसे मन्दबुद्धि पुरुषका मर जाना ही श्रेयस्कर है। वही उसे क्लेशसे छुटकारा दिलानेवाला है, जीवित रहना नहीं॥ ७-८॥ कंस सदा पापोंमें ही लगा रहता था, साधु पुरुष भी (उसे दुष्ट समझकर) उसका आदर नहीं करते थे तथा वह सबका धिक्कार पाकर पतित हो गया था, अतः उसके जीवनपर क्या दया हो सकती है?॥ ९॥ तपस्वी पुरुषोंको जो स्वर्गलोकमें निवास प्राप्त होता है, वह उनके पुण्यकर्मका ही फल है। पुण्यात्मा पुरुष इस जगत्‌में भी यशस्वी होता है और स्वर्गवासी देवता भी उसे सादर ग्रहण करते हैं॥ १०॥ यदि सब लोग संतुष्ट हों, सारी प्रजा धर्ममें तत्पर रहे और मनुष्योंकी केवल धर्ममें ही प्रवृत्ति हो तो राजाओंको अन्याय छू भी नहीं सकता॥ ११॥ यदि राजा इस लोकमें दुष्ट वृत्तिवाले पुरुषोंका दमन करे तो परलोकमें धर्मराज उसे उसका फल देते हैं। सम्पूर्ण लोकोंको धर्म (उसके फलस्वरूप सुखकी प्राप्ति) ही अभीष्ट है, इसलिये उनमें रहनेवाले पुरुषोंको परलोकमें सुख देनेवाले पुण्यकर्मोंका ही अनुष्ठान करना चाहिये॥ १२॥ देवता धर्मपरायण मनुष्यकी विशेषरूपसे रक्षा करते हैं, क्योंकि लोकमें अधिकतर पाप कर्म करनेवाले ही सुलभ होते हैं॥ १३॥ 'अतः मैंने जो इस कंसका वध किया है, इसे आपलोग ठीक समझें, क्योंकि ऐसा करके मैंने उसके पाप-कर्मका मूलोच्छेद कर डाला है'॥ १४॥

तदेष सान्त्व्यतां सर्वः शोकार्तः प्रमदाजनः।
पौराश्च पुर्यां श्रेण्यश्च सान्त्व्यन्तां सर्व एव हि॥ १५

एवं ब्रुवति गोविन्दे विवेशावनताननः।
उग्रसेनो यदून् गृह्य पुत्रकिल्बिषशङ्कितः॥ १६

स कृष्णं पुण्डरीकाक्षमुवाच यदुसंसदि।
बाष्पसंदिग्धया वाचा दीनया सज्जमानया॥ १७

पुत्रो निर्यातितः क्रोधान्नीतो याम्यां दिशं रिपुः।
स्वधर्माधिगता कीर्तिर्नाम विश्रावितं भुवि॥ १८

स्थापितं सत्सु माहात्म्यं शङ्किता रिपवः कृताः।
स्थापितो यादवो वंशो गर्विताः सुहृदः कृताः॥ १९

सामन्तेषु नरेन्द्रेषु प्रतापस्ते प्रकाशितः।
मित्राणि त्वां भजिष्यन्ति संश्रयिष्यन्ति पार्थिवाः॥ २०

प्रकृतयोऽनुयास्यन्ति स्तोष्यन्ति त्वां द्विजातयः।
संधिविग्रहमुख्यास्त्वां प्रणमिष्यन्ति मन्त्रिणः॥ २१

हस्त्यश्वरथसम्पूर्णं पदातिगणसंकुलम्।
प्रतिगृहाण कृष्णेदं कंसस्य बलमव्ययम्॥ २२

धनं धान्यं च यत् किंचिद् रत्नान्याच्छादनानि च।
प्रतीच्छन्तु नियुक्ता वै त्वदीयाः कृष्ण पूरुषाः॥ २३

स्त्रियो हिरण्यं यानानि यदन्यद् वसु किंचन।
एवं हि विहिते योगे पर्याप्ते कृष्ण विग्रहे॥ २४

प्रतिष्ठितायां मेदिन्यां यदूनां शत्रुसूदन।
त्वं गतिश्चागतिश्चैव यदूनां यदुनन्दन॥ २५

शृणुष्व वदतां वीर कृपणानामिदं वचः।
अस्य त्वत्कोपदग्धस्य कंसस्याशुभकर्मणः॥ २६

'इसलिये इन समस्त शोकाकुल नारियोंको आपलोग सान्त्वना प्रदान करें और मथुरापुरीके नागरिकों एवं शिल्पियों तथा व्यवसायियोंको भी समझा-बुझाकर धीरज बँधावें'॥ १५॥ जब श्रीकृष्ण इस प्रकार कह रहे थे, उसी समय राजा उग्रसेन अपना मुँह नीचे किये कुछ यादवोंको साथ ले उस घरमें प्रविष्ट हुए। वे मन-ही-मन अपने पुत्र कंसके अपराधसे डरे हुए थे॥ १६॥ उन्होंने उस यादव-सभामें कमलनयन भगवान् श्रीकृष्णसे आँसूभरी दीन, गद्गद तथा लड़खड़ाती हुई वाणीमें इस प्रकार कहा— ॥ १७॥ 'श्रीकृष्ण! तुमने मेरे पुत्रसे उसके अपराधका बदला ले लिया, अपने उस शत्रुको क्रोधपूर्वक यमलोक पहुँचा दिया, धर्मके अनुसार कीर्ति प्राप्त कर ली और भूमण्डलमें अपने नामका डंका पीट दिया॥ १८॥ सत्पुरुषोंके हृदयमें अपनी महत्ता स्थापित कर दी और शत्रुओंको भयभीत कर दिया, यदुवंशकी जड़ जमा दी और सुहृदोंको अपने ऊपर गर्व करनेका अवसर दिया॥ १९॥ सामन्त राजाओंमें तुम्हारा प्रताप प्रकाशित हो गया, मित्रगण तुम्हें अपनायेंगे और भूमण्डलके राजा तुम्हारा आश्रय लेंगे॥ २०॥ प्रकृतियाँ (प्रजा, मन्त्री आदि) तुम्हारा अनुसरण करेंगी, ब्राह्मणलोग तुम्हारी स्तुति करेंगे—तुम्हारे गुण गायेंगे और संधि-विग्रहके कार्योंमें प्रमुखरूपसे भाग लेनेवाले मन्त्री तुम्हें प्रणाम करेंगे॥ २१॥ श्रीकृष्ण! हाथी, घोड़े, रथ और पैदल सैनिकोंसे भरी हुई कंसकी यह अक्षय सेना ग्रहण करो॥ २२॥ श्रीकृष्ण! जो कुछ भी धन, धान्य, रत्न और वस्त्र आदि कंसके अधिकारमें थे, उन सबको तुम्हारे आदमी सँभाल लें। स्त्रियाँ, सुवर्ण, वाहन तथा अन्य जो कुछ भी धन, रत्न आदि हैं, उनपर भी वे अधिकार कर लें। यदुवंशियोंके शत्रुओंका संहार करनेवाले यदुनन्दन श्रीकृष्ण! जब इस प्रकार अप्राप्त वस्तुकी प्राप्तिरूप योग सम्पन्न हो गया, विग्रहकी समाप्ति हो गयी और इस पृथ्वीपर तुम्हारा पूर्णरूपसे अधिकार हो गया, तब हम सभी यादवोंकी गति और अगति एकमात्र तुम्ही हो॥ २३—२५॥ वीर! हम दीनजन तुम्हारे सामने जो कुछ कह रहे हैं—हमारी यह प्रार्थना स्वीकार करो। गोविन्द! यह पापकर्मा कंस तुम्हारे कोपसे दग्ध हो गया॥ २६॥

तव प्रसादाद् गोविन्द प्रेतकार्यं क्रियेत ह।
तस्य कृत्वा नरेन्द्रस्य विपन्नस्यौर्ध्वदेहिकम्॥ २७

सस्नुषोऽहं सभार्यश्च चरिष्यामि मृगैः सह।
प्रेतसत्कारमात्रेण कृते बान्धवकर्मणि।
आनृण्यं लौकिकं कृष्ण गताः किल भवन्ति हि॥ २८

तस्याग्निं पश्चिमं कृत्वा चितिस्थाने विधानतः।
तोयप्रदानमात्रेण कंसस्यानृण्यमाप्नुयाम्॥ २९

एतत्ते कृष्ण विज्ञाप्यं स्नेहोऽत्र मयि युज्यताम्।
प्राप्नोति सुगतिं तत्र कृपणः पश्चिमां क्रियाम्॥ ३०

एतच्छ्रुत्वा वचस्तस्य कृष्णः परमविस्मितः।
प्रत्युवाचोग्रसेनं वै सान्त्वपूर्वमिदं वचः॥ ३१

कालयुक्तमिदं तात तवैतद् यत् प्रभाषितम्।
सदृशं राजशार्दूल वृत्तस्य च कुलस्य च॥ ३२

यत् त्वमेवंविधं ब्रूषे गतेऽर्थे दुरतिक्रमे।
प्राप्स्यते नृपसत्कारं कंसः प्रेतगतोऽपि सन्॥ ३३

कुले महति ते जन्म वेदान् विदितवानसि।
कथं न ज्ञायते तात नियतिर्दुरतिक्रमा॥ ३४

स्थावराणां च भूतानां जङ्गमानां च पार्थिव।
पूर्वजन्मकृतं कर्म कालेन परिपच्यते॥ ३५

श्रुतवन्तोऽर्थवन्तश्च दातारः प्रियदर्शनाः।
ब्रह्मण्या नयसम्पन्ना दीनानुग्रहकारिणः॥ ३६

लोकपालसमास्तात महेन्द्रसमविक्रमाः।
क्षितिपालाः कृतान्तेन नीयन्ते नृपसत्तम॥ ३७

धार्मिकाः सर्वभावज्ञाः प्रजापालनतत्पराः।
क्षत्रधर्मपरा दान्ताः कालेन निधनं गताः॥ ३८

स्वयमात्मकृतं कर्म शुभं वा यदि वाशुभम्।
प्राप्ते काले तु तत्कर्म दृश्यते सर्वदेहिनाम्॥ ३९

हम चाहते हैं कि तुम्हारी ही कृपासे अब इसका प्रेतकार्य सम्पन्न कर दिया जाय। उस मरे हुए नरेशका और्ध्वदेहिक संस्कार पूर्ण करके मैं अपनी पत्नी और पुत्रवधुओंको साथ ले वनमें मृगोंके साथ विचरूँगा। श्रीकृष्ण! कहते हैं कि मरे हुए मनुष्यका प्रेत-संस्कार मात्र कर देनेसे उसके बान्धवोंका कर्तव्य पूरा हो जाता है और फिर वे उसके लौकिक ऋणसे उऋण हो जाते हैं॥ २७-२८॥ अतः मैं चिता-स्थानपर विधिपूर्वक कंसका अन्तिम अग्नि-संस्कार करके उसको जलाञ्जलिमात्र देकर उसके ऋणसे उऋण हो जाऊँ, यही मेरी इच्छा है॥ २९॥ श्रीकृष्ण! यही तुमसे मेरा निवेदन है, इस विषयमें मुझपर अपना स्नेहभाव प्रकट करो। सुना है, चितापर अन्तिम संस्कार कर देनेसे बेचारा मृतक प्राणी उत्तम गति प्राप्त कर लेता है'॥ ३०॥ उग्रसेनका यह वचन सुनकर श्रीकृष्णको बड़ा आश्चर्य हुआ। उन्होंने सान्त्वनापूर्वक उग्रसेनको समझाते हुए उनकी बातका इस प्रकार उत्तर दिया—॥ ३१॥ 'तात! आपने यह जो कुछ कहा है, वह सब इस समयके अनुरूप है। राजसिंह! आपकी बात आपके उत्तम आचार-विचार और श्रेष्ठ कुलके अनुरूप है॥ ३२॥ जो बात बीत गयी, वह वैसी ही होनेवाली थी। दैवके उस विधानको लाँघना किसीके लिये भी दुष्कर था; फिर भी उससे प्रभावित होकर जो आप ऐसी बातें कह रहे हैं (इससे मुझे दुःख हुआ), कंस मर जानेपर भी मेरे द्वारा राजोचित सत्कार प्राप्त करेगा (इस बातके लिये मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ)॥ ३३॥ तात! आपका महान् कुलमें जन्म हुआ है। आपने वेदोंका ज्ञान प्राप्त किया है, फिर आप कैसे नहीं समझ पा रहे हैं कि नियति (दैवके विधान)-का उल्लङ्घन करना बहुत ही कठिन है॥ ३४॥ पृथ्वीनाथ! स्थावर और जङ्गम सभी प्राणियोंके पूर्वजन्मोंमें किये हुए कर्म समयसे परिपक्व होते (और उन्हें शुभाशुभ फलकी प्राप्ति कराते) हैं॥ ३५॥ तात! नृपश्रेष्ठ! जो वेद-शास्त्रोंके विद्वान्, धनवान्, दाता, प्रियदर्शन (सुन्दर), ब्राह्मणभक्त, नीतिसम्पन्न, दीनोंपर अनुग्रह करनेवाले, लोकपालोंके समान यशस्वी और महेन्द्रतुल्य पराक्रमी राजा हैं, उन्हें भी काल उठा ले जाता है॥ ३६-३७॥ जो धर्मात्मा, सम्पूर्ण भावोंके ज्ञाता, प्रजापालनमें तत्पर, क्षत्रियधर्मपरायण तथा जितेन्द्रिय थे, वे भी कालके गालमें चले गये॥ ३८॥ स्वयं अपना किया हुआ जो शुभ या अशुभ कर्म है, वही समय आनेपर समस्त देहधारियोंके समक्ष सुख-दुःखके रूपमें दिखायी देता है॥ ३९॥

एषा ह्यन्तर्हिता माया दुर्विज्ञेया सुरैरपि।
यथायं मुह्यते लोको ह्यत्र कर्मैव कारणम्॥ ४०

कालेनाभिहतः कंसः पूर्वकर्मप्रचोदितः।
न ह्यहं कारणं तत्र कालः कर्म च कारणम्॥ ४१

सूर्यसोममयं तात कृत्स्नं स्थावरजङ्गमम्।
कालेन निधनं गत्वा कालेनैव च जायते॥ ४२

स कालः सर्वभूतानां निग्रहानुग्रहे रतः।
तस्मात् सर्वाणि भूतानि कालस्य वशगानि वै॥ ४३

स्वदोषेणैव दग्धस्य सूनोस्तव नराधिप।
नाहं वै कारणं तत्र कालस्तत्र च कारणम्॥ ४४

अथवाहं भविष्यामि कारणं नात्र संशयः।
परायणपरः कालः किं करिष्यत्यकारणः॥ ४५

कालस्तु बलवान् राजन् दुर्विज्ञेया हि सा गतिः।
परावरविशेषज्ञा यां यान्ति समदर्शिनः॥ ४६

गतिः कालस्य सा येन सर्वं कालस्य गोचरम्।
ब्रवीमि यदहं तात तदनुष्ठीयतां वचः॥ ४७

न हि राज्येन मे कार्यं नाप्यहं नृप काङ्क्षितः।
न चापि राज्यलुब्धेन मया कंसो निपातितः॥ ४८

किं तु लोकहितार्थाय कीर्त्यर्थं च सुतस्तव।
व्यङ्गभूतः कुलस्यास्य सानुजो विनिपातितः॥ ४९

अहं स एव गोमध्ये गोपैः सह वनेचरः।
प्रीतिमान् विचरिष्यामि कामचारी यथा गजः॥ ५०

एतावच्छतशोऽप्येवं सत्येनैतद् ब्रवीमि ते।
न मे कार्यं नृपत्वेन विज्ञाप्यं क्रियतामिदम्॥ ५१

भवान् राजास्तु मान्यो मे यदूनामग्रणीः प्रभुः।
विजयायाभिषिच्यस्व स्वराज्ये नृपसत्तम॥ ५२

यदि ते मत्प्रियं कार्यं यदि वा नास्ति ते व्यथा।
मया निसृष्टं राज्यं स्वं चिराय प्रतिगृह्यताम्॥ ५३

यह भगवान्‌की अदृश्यरूपसे रहनेवाली माया ही है, जिससे यह जगत् मोहित हो जाता है, उसके स्वरूपको जानना देवताओंके लिये भी अत्यन्त कठिन है। वास्तवमें सुख और दु:खकी प्राप्तिमें कर्म कारण है (मनुष्य जो चिन्तित एवं व्यथित होता है, यह मायाजनित मोह ही है)॥ ४०॥ कंस अपने पूर्व कर्मोंसे प्रेरित होकर ही कालके द्वारा मारा गया है। मैं उसमें कारण नहीं हूँ, काल और कर्म ही कारण हैं॥ ४१॥ तात! सारा चराचर जगत् सूर्य और सोममय (अग्नीषोमात्मक) है। वह कालसे मृत्युको प्राप्त होकर फिर कालसे ही जन्म ग्रहण करता है॥ ४२॥ काल ही समस्त प्राणियोंके निग्रह और अनुग्रहमें तत्पर है, इसलिये सम्पूर्ण भूत कालके ही अधीन हैं॥ ४३॥ नरेश्वर! आपका पुत्र अपने ही दोषोंसे दग्ध हुआ है। उसकी मृत्युका कारण मैं नहीं, काल है॥ ४४॥ अथवा मैं इसमें निमित्तकारण हो सकता हूँ, इसमें संशय नहीं है; क्योंकि दूसरे निमित्तोंका सहारा लेनेवाला काल अकेला ही क्या करेगा॥ ४५॥ राजन्! काल सबसे अधिक बलवान् है। कालसे परे जो मोक्षरूपा गति है, वह दुर्विज्ञेय है। उसे पर और अपर (पुरुष और प्रकृति)-के अन्तरको जाननेवाले समदर्शी पुरुष ही प्राप्त होते हैं। वही कालकी परम गति है, जिससे सब कुछ कालके अधीन प्रतीत होता है। तात! अब मैं जो कुछ कहता हूँ, मेरे बताये हुए उस कार्यको आप करें। नरेश्वर! मुझे राज्यसे कोई प्रयोजन नहीं है। न तो मैं राज्यका अभिलाषी हूँ और न राज्यके लोभसे मैंने कंसको मारा ही है॥ ४६—४८॥ मैंने तो केवल लोकहितके लिये और कीर्तिके लिये भाईसहित तुम्हारे पुत्रको मार गिराया है, जो इस कुलका विकृत (सड़ा हुआ) अङ्ग था॥ ४९॥ मैं वही वनेचर होकर गोपोंके साथ गौओंके बीच प्रसन्नतापूर्वक विचरूँगा, जैसे इच्छानुसार विचरनेवाला हाथी वनमें स्वच्छन्द घूमता है॥ ५०॥ मैं सत्यकी शपथ खाकर इन बातोंको सौ-सौ बार दुहराकर आपसे कहता हूँ, मुझे राज्यसे कोई काम नहीं है, आप इसका विज्ञापन कर दीजिये॥ ५१॥ आप यदुवंशियोंके अग्रगण्य स्वामी तथा मेरे लिये भी माननीय हैं, अत: आप ही राजा हों। नृपश्रेष्ठ! आप अपने राज्यपर अपना अभिषेक कराइये, आपकी विजय हो॥ ५२॥ यदि आपको मेरा प्रिय कार्य करना हो अथवा यदि आपके मनमें मेरी ओरसे कोई व्यथा न हो तो मेरे द्वारा लौटाये गये इस राज्यको दीर्घकालके लिये ग्रहण करें॥ ५३॥

वैशम्पायन उवाच

एतच्छ्रुत्वा तु वचनं नोत्तरं प्रत्यभाषत।
व्रीडिताधोमुखं तं तु राजानं यदुसंसदि।
अभिषेकेन गोविन्दो योजयामास धर्मवित्॥ ५४

स बद्धमुकुटः श्रीमानुग्रसेनो महाद्युतिः।
चकार सह कृष्णेन कंसस्य निधनक्रियाम्॥ ५५

तं सर्वे यादवा मुख्या राजानं कृष्णशासनात्।
अनुजग्मुः पुरीमार्गे देवा इव शतक्रतुम्॥ ५६

रजन्यां तु निवृत्तायां ततः सूर्ये विराजिते।
पश्चिमं कंससंस्कारं चक्रुस्ते यदुपुङ्गवाः॥ ५७

शिबिकायामथारोप्य कंसदेहं यथाक्रमम्।
नैष्ठिकेन विधानेन चक्रुस्ते कंससत्क्रियाम्॥ ५८

स नीतो यमुनातीरमुत्तमं नृपतेः सुतः।
सत्कृतश्च यथान्यायं नैधनेन चिताग्निना॥ ५९

तथैव भ्रातरं चास्य सुनामानं महाभुजम्।
संस्कारं लम्भयामासुः सह कृष्णेन यादवाः॥ ६०

ताभ्यां ते सलिलं चक्रुर्वृष्ण्यन्धकपुरोगमाः।
अक्षयं चास्तु प्रेतेभ्यो भाषमाणाः पुनः पुनः॥ ६१

हिरण्यस्य सुवर्णस्य दश कोटीस्तथा हरिः।
गावो रत्नानि वासांसि ग्रामान् नगरसम्मतान्॥ ६२

ददौ कंसं समुद्दिश्य ब्राह्मणेभ्यो नृपोत्तमः।
अक्षयं चापि विप्रेभ्यो भाषमाणाः पुनः पुनः॥ ६३

तयोस्ते सलिलं दत्त्वा यादवा दीनमानसाः।
पुरस्कृत्योग्रसेनं वै विविशुर्मथुरां पुरीम्॥ ६४

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! श्रीकृष्णकी यह बात सुनकर उग्रसेनने कोई उत्तर नहीं दिया। वे लज्जित होकर सिर झुकाये चुपचाप खड़े रह गये। उस समय धर्मके ज्ञाता गोविन्दने राजा उग्रसेनको यादवोंके राज्यपर अभिषिक्त कर दिया॥ ५४॥ सिरपर मुकुट बाँधे महातेजस्वी श्रीमान् राजा उग्रसेनने श्रीकृष्णके साथ रहकर कंसका अन्त्येष्टि-संस्कार किया॥ ५५॥ श्रीकृष्णके आदेशसे समस्त मुख्य-मुख्य यादवोंने मथुरापुरीके राजमार्गपर राजा उग्रसेनका उसी प्रकार अनुसरण किया था, जैसे देवता देवराज इन्द्रका अनुगमन करते हैं॥ ५६॥ जब रात बीती और सूर्योदय हुआ, उस समय श्रेष्ठ यादवोंने मिलकर कंसके अन्त्येष्टि-संस्कारकी तैयारी की॥ ५७॥ उन सबने कंसके शरीरको शिबिकामें रखकर क्रमशः अन्त्येष्टि-कर्मके विधानसे उसका दाह-संस्कार किया॥ ५८॥ राजकुमार कंसका शव पहले यमुनाजीके उत्तम तटपर लाया गया, फिर यथोचित रीतिसे मृत्युकालिक चिताग्निके द्वारा उसका सादर अन्त्येष्टि-संस्कार किया गया॥ ५९॥ उसी प्रकार श्रीकृष्णसहित यादवोंने उसके भाई महाबाहु सुनामाका भी दाह-संस्कार किया॥ ६०॥ वृष्णि और अन्धक आदि कुलोंके लोगोंने उन दोनोंके लिये जल-दान किया और बारम्बार यह कहा कि 'यह जल प्रेतोंके लिये अक्षय हो'॥ ६१॥ श्रीहरि तथा नृपश्रेष्ठ उग्रसेनने श्राद्धमें कंसके उद्देश्यसे ब्राह्मणोंको दस करोड़ स्वर्णमुद्राएँ, बहुत-सी गौएँ, रत्न, वस्त्र तथा नगरों-जैसे सम्मानित ग्राम दिये और बारम्बार विप्रोंसे यह कहा—हमारा दिया हुआ यह दान उस दिवंगत आत्माके लिये अक्षय हो॥ ६२-६३॥ इस प्रकार कंस और सुनामाके लिये जल-दान करके दीनचित्त यादव राजा उग्रसेनको आगे किये मथुरापुरीमें प्रविष्ट हुए॥ ६४॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे विष्णुपर्वणि उग्रसेनाभिषेककंससंस्कारकथने द्वात्रिंशोऽध्यायः॥ ३२॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत विष्णुपर्वमें उग्रसेनका अभिषेक तथा कंसके अन्त्येष्टि-संस्कारकथनविषयक बत्तीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ३२॥

त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः

बलराम और श्रीकृष्णका गुरु सान्दीपनिके यहाँ जाकर विद्या पढ़ना और गुरुदक्षिणामें उनके मरे हुए पुत्रको उन्हें देकर मथुरापुरीको लौट आना

वैशम्पायन उवाच

स कृष्णस्तत्र बलवान् रौहिणेयेन संगतः।
मथुरां यादवाकीर्णां पुरीं तां सुखमावसत्॥ १

प्राप्तयौवनदेहस्तु युक्तो राजश्रिया ज्वलन्।
चचार मथुरां वीरः स रत्नाकरभूषणाम्॥ २

कस्यचित् त्वथ कालस्य सहितौ रामकेशवौ।
गुरुं सान्दीपनिं काश्यमवन्तिपुरवासिनम्॥ ३

धनुर्वेदचिकीर्षार्थमुभौ तावभिजग्मतुः।
निवेद्य गोत्रं स्वाध्यायमाचारेणाभ्यलंकृतौ॥ ४

शुश्रूषू निरहंकारावुभौ रामजनार्दनौ।
प्रतिजग्राह तौ काश्यो विद्याः प्रादाच्च केवलाः॥ ५

तौ च श्रुतिधरौ वीरौ यथावत् प्रतिपद्यताम्।
अहोरात्रैश्चतुष्षष्ट्या साङ्गवेदमधीयताम्॥ ६

चतुष्पादं धनुर्वेदं शस्त्रग्रामं ससंग्रहम्।
अचिरेणैव कालेन गुरुस्तावभ्यशिक्षयत्॥ ७

अतीवामानुषीं मेधां चिन्तयित्वा तयोर्गुरुः।
मेने तावागतौ वीरौ देवौ चन्द्रदिवाकरौ॥ ८

ददर्श च महात्मानावुभौ तावपि पर्वसु।
पूजयन्तौ महादेवं साक्षाद् विष्णुं व्यवस्थितम्॥ ९

गुरुं सान्दीपनिं कृष्णः कृतकृत्योऽभ्यभाषत।
गुर्वर्थं किं ददानीति रामेण सह भारत॥ १०

तयोः प्रभावं स ज्ञात्वा गुरुः प्रोवाच हृष्टवान्।
पुत्रमिच्छाम्यहं दत्तं यो मृतो लवणाम्भसि॥ ११

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! बलवान् श्रीकृष्ण वहाँ रोहिणीकुमार बलरामजीके साथ यादवोंसे भरी हुई उस मथुरापुरीमें सुखपूर्वक रहने लगे॥ १॥ उनके शरीरको युवावस्था प्राप्त हुई। वे वीर श्रीकृष्ण राजश्रीसे प्रकाशित होते हुए रत्नराशिमय आभूषणोंसे विभूषित मथुरापुरीमें विचरण करने लगे॥ २॥ कुछ कालके अनन्तर बलराम और श्रीकृष्ण एक साथ अवन्तिपुर (उज्जयिनी)-के निवासी गुरु सान्दीपनिके यहाँ गये, जो काशिदेशमें उत्पन्न हुए थे॥ ३॥ वे दोनों भाई वहाँ धनुर्वेदकी शिक्षा ग्रहण करनेके लिये गये थे। अपना गोत्र बताकर गुरुकुलके आचारसे अपनेको अलंकृत करके दोनों ही स्वाध्याय करने लगे॥ ४॥ बलराम और श्रीकृष्ण दोनों गुरुकी सेवामें तत्पर रहते थे। अहंकार तो उन्हें छू भी नहीं सका था। काशिदेशीय गुरुने उन दोनोंको शिष्यरूपसे ग्रहण किया और उन्हें विशुद्ध विद्याएँ प्रदान कीं॥ ५॥ वे दोनों वीर श्रुतिधर थे—किसी भी बातको एक बार सुन लेनेमात्रसे ही ग्रहण कर लेते थे, अतः उन्होंने यथावत् रूपसे विद्याओंको प्राप्त किया। चौंसठ दिन-रातमें ही छहों अङ्गोंसहित सम्पूर्ण वेदका अध्ययन कर लिया॥ ६॥ गुरुजीने उन्हें थोड़े ही समयमें दीक्षा, संग्रह, सिद्धि और प्रयोग—इन चार पादोंसे युक्त धनुर्वेदकी तथा रहस्यसहित शस्त्रसमूहोंकी शिक्षा दे दी॥ ७॥ उनकी अत्यन्त अलौकिक बुद्धिका विचार करके गुरुने यही माना कि इन दोनों वीरोंके रूपमें मेरे यहाँ साक्षात् चन्द्रदेव और सूर्यदेव पधारे हैं॥ ८॥ उन्होंने पर्वके अवसरोंपर उन दोनों महात्माओंको अर्चाविग्रहमें प्रतिष्ठित महान् देवता साक्षात् भगवान् विष्णुकी अराधना करते हुए भी देखा था॥ ९॥ भारत! विद्या पढ़कर कृतकृत्य हो बलराम-सहित श्रीकृष्णने अपने गुरु सान्दीपनिसे पूछा—'भगवन्! आपको गुरुदक्षिणाके रूपमें मैं क्या दूँ?'॥ १०॥ उन दोनोंका प्रभाव जानकर हर्षमें भरे हुए गुरुने कहा—'मेरा जो पुत्र खारे पानीके समुद्रमें डूबकर मर गया था, उसे ही तुम ले आकर दे दो, यही मेरी इच्छा है॥ ११॥

पुत्र एकोऽपि मे जातः स चापि तिमिना हतः।
प्रभासे तीर्थयात्रायां तं मे त्वं पुनरानय॥ १२

तथेत्येवाब्रवीत् कृष्णो रामस्यानुमते स्थितः।
गत्वा समुद्रं तेजस्वी विवेशान्तर्जलं हरिः॥ १३

समुद्रः प्राञ्जलिर्भूत्वा दर्शयामास स्वं तदा।
तमाह कृष्णः क्वासौ भोः पुत्रः सान्दीपनेरिति॥ १४

समुद्रः प्रत्युवाचेदं दैत्यः पञ्चजनो महान्।
तिमिरूपेण तं बालं ग्रस्तवानिति माधव॥ १५

स पञ्चजनमासाद्य जघान पुरुषोत्तमः।
न चाससाद तं बालं गुरुपुत्रं तदाच्युतः॥ १६

स तु पञ्चजनं हत्वा शङ्खं लेभे जनार्दनः।
यस्तु देवमनुष्येषु पाञ्चजन्य इति श्रुतः॥ १७

ततो वैवस्वतपुरं जगाम पुरुषोत्तमः।
ततो यमोऽभ्युपागम्य ववन्दे तं गदाधरम्॥ १८

तमुवाचाथ वै कृष्णो गुरुपुत्रः प्रदीयताम्।
तयोस्तत्र तदा युद्धमासीद् घोरतरं महत्॥ १९

ततो वैवस्वतं घोरं निर्जित्य पुरुषोत्तमः।
आससाद च तं बालं गुरुपुत्रं तदाच्युतः॥ २०

आनिनाय गुरोः पुत्रं चिरं नष्टं यमक्षयात्।
ततः सान्दीपनेः पुत्रः प्रभावादमितौजसः॥ २१

दीर्घकालगतः प्रेतः पुनरासीच्छरीरवान्।
तदशक्यमचिन्त्यं च दृष्ट्वा सुमहदद्भुतम्॥ २२

सर्वेषामेव भूतानां विस्मयः समजायत।
स गुरोः पुत्रमादाय पाञ्चजन्यं च माधवः।
रत्नानि च महार्हाणि पुनरायाज्जगत्प्रभुः॥ २३

राक्षसैस्तस्य रत्नानि महार्हाणि बहूनि च।
आनाय्यावेदयामास गुरवे वासवानुजः॥ २४

गदापरिघयुद्धेषु सर्वास्त्रेषु च तावुभौ।
अचिरान्मुख्यतां प्राप्तौ सर्वलोके धनुर्भृताम्॥ २५

'मेरे एक ही पुत्र हुआ था। वह भी तीर्थयात्राके अवसरपर प्रभासक्षेत्रमें तिमि नामक मत्स्यद्वारा मार डाला गया, उसीको तुम फिर ले आओ'॥ १२॥ तब बलरामजीकी अनुमति लेकर श्रीकृष्णने उनसे कहा—'बहुत अच्छा'; फिर वे तेजस्वी श्रीहरि समुद्रतटपर जाकर उसके जलके भीतर घुस गये॥ १३॥ उस समय समुद्रने हाथ जोड़कर उन्हें दर्शन दिया। श्रीकृष्णने उससे पूछा—'अजी! सान्दीपनि मुनिका पुत्र कहाँ है?'॥ १४॥ समुद्रने उत्तर दिया—'माधव! पञ्चजन नामक महान् दैत्यने तिमिरूपसे उस बालकको अपना ग्रास बना लिया था'॥ १५॥ तब अपनी महिमासे कभी च्युत न होनेवाले भगवान् पुरुषोत्तमने पञ्चजनके पास जाकर उसे मार डाला, परंतु उन्हें वहाँ उनके गुरुका पुत्र नहीं प्राप्त हुआ॥ १६॥ पञ्चजनको मारकर भगवान् जनार्दनने एक शङ्ख हस्तगत किया, जो देवताओं और मनुष्योंमें पाञ्चजन्य नामसे विख्यात है॥ १७॥ तदनन्तर भगवान् पुरुषोत्तम वैवस्वत यमकी पुरीमें गये। यमने आकर उन भगवान् गदाधरको प्रणाम किया॥ १८॥ तब श्रीकृष्णने उनसे कहा—'मुझे मेरे गुरुका पुत्र दे दो (परंतु यमने उसे देनेसे इनकार किया)। तब उन दोनोंमें वहाँ महान् घोरतर युद्ध हुआ॥ १९॥ भयानक यमराजको जीतकर पुरुषोत्तम अच्युतने अपने बालक गुरुपुत्रको प्राप्त कर लिया॥ २०॥ जो दीर्घकालसे नष्ट हो चुका था, उस गुरुपुत्रको भगवान् यमलोकसे यहाँ उठा ले आये। उन अमिततेजस्वी भगवान् श्रीकृष्णके प्रभावसे दीर्घकालका मरा हुआ सान्दीपनिका पुत्र पुनः पूर्ववत् शरीर धारण करके जी उठा। वह अशक्य, अचिन्त्य और अत्यन्त अद्भुत कार्य देखकर सभी प्राणियोंको बड़ा आश्चर्य हुआ॥ २१-२२॥ जगत्के स्वामी लक्ष्मीपति भगवान् श्रीकृष्ण गुरुपुत्रको साथ ले पाञ्चजन्य शङ्ख तथा बहुत-से बहुमूल्य रत्न लेकर पुनः लौट आये॥ २३॥ इन्द्रके छोटे भाई श्रीकृष्णने उन बहुसंख्यक एवं बहुमूल्य रत्नोंको राक्षसोंद्वारा (जो यमके किंकर थे) मँगवाकर गुरुको निवेदन किया॥ २४॥ दोनों भाई बलराम और श्रीकृष्णने गदा और परिघके युद्धोंमें तथा सम्पूर्ण अस्त्रोंमें शीघ्र ही प्रमुखता प्राप्त कर ली। वे समस्त संसारके धनुर्धरोंमें श्रेष्ठ माने जाने लगे॥ २५॥

ततः सान्दीपनेः पुत्रं तद्रूपवयसं तदा।
प्रादात् कृष्णः प्रतीतात्मा सह रत्नैरुदारधीः ॥ २६

चिरनष्टेन पुत्रेण काश्यः सान्दीपनिस्तदा।
समेत्य मुमुदे राजन् पूजयन् रामकेशवौ॥ २७

कृतास्त्रौ तावुभौ वीरौ गुरुमामन्त्र्य सुव्रतौ।
आयातौ मथुरां भूयो वसुदेवसुतावुभौ॥ २८

ततः प्रत्युद्ययुः सर्वे यादवा यदुनन्दनौ।
सबला हृष्टमनस उग्रसेनपुरोगमाः ॥ २९

श्रेण्यः प्रकृतयश्चैव मन्त्रिणः सपुरोहिताः।
सबालवृद्धा सा चैव पुरी समभिवर्तत॥ ३०

नन्दितूर्याण्यवाद्यन्त तुष्टुवुश्च जनार्दनम्।
रथ्याः पताकामालिन्यो भ्राजन्ते स्म समन्ततः ॥ ३१

प्रहृष्टमुदितं सर्वमन्तःपुरमशोभत।
गोविन्दागमनेऽत्यर्थं यथैवेन्द्रमहे तथा॥ ३२

मुदिताश्चाथ गायन्ति राजमार्गेषु गायकाः।
तत्रासीत् प्रथिता गाथा यादवानां प्रियङ्करा॥ ३३

गोविन्दरामौ सम्प्राप्तौ भ्रातरौ लोकविश्रुतौ।
स्वे पुरे निर्भयाः सर्वे क्रीडध्वं सह बान्धवैः ॥ ३४

न तत्र कश्चिद् दीनो वा मलिनो वा विचेतनः।
मथुरायामभूद् राजन् गोविन्दे समुपस्थिते॥ ३५

वयांसि साधुवाक्यानि प्रहृष्टा गोहयद्विपाः।
नरनारीगणाः सर्वे भेजिरे मनसः सुखम्॥ ३६

शिवाश्च वाताः प्रववुर्विरजस्का दिशो दश।
दैवतानि च हृष्टानि सर्वेष्वायतनेषु च॥ ३७

यानि लिङ्गानि लोकस्य चासन् कृतयुगे पुरा।
तानि सर्वाण्यदृश्यन्त पुरीं प्राप्ते जनार्दने॥ ३८

ततः काले शिवे पुण्ये स्यन्दनेनारिमर्दनः।
हरियुक्तेन गोविन्दो विवेश मथुरां पुरीम्॥ ३९

उदार बुद्धिवाले श्रीकृष्णने प्रसन्नचित्त होकर सान्दीपनिके पुत्रको उसी रूप और अवस्थामें रत्नोंके साथ उन्हें लौटा दिया॥ २६॥ राजन्! काशिदेशमें उत्पन्न हुए सान्दीपनिने चिरकालसे नष्ट हुए अपने पुत्रसे मिलकर बलराम और श्रीकृष्णकी भूरि-भूरि प्रशंसा करते हुए बड़े प्रसन्न हुए॥ २७॥ उत्तम व्रतका पालन करनेवाले वे दोनों वीर वसुदेवपुत्र अस्त्र-विद्याकी शिक्षा पाकर गुरुकी आज्ञा ले पुनः मथुरापुरीको लौट आये॥ २८॥ उस समय उग्रसेन आदि समस्त यादवोंने प्रसन्नचित्त होकर सेनासहित आगे जा उन दोनों यदुनन्दन वीरोंकी अगवानी की॥ २९॥ व्यवसायीवर्ग, प्रजावर्ग अथवा प्रकृतिमण्डल, मन्त्री, पुरोहित तथा बालकों और बूढ़ोंसहित वह सारी पुरी (श्रीकृष्ण-बलरामके दर्शनके लिये) उमड़ पड़ी॥ ३०॥ आनन्दसूचक बाजे बजने लगे। सब लोग श्रीकृष्णकी स्तुति करने लगे। मथुरापुरीकी गलियाँ और सड़कें ध्वजा-पताकाओंसे अलंकृत हो सब ओरसे सुशोभित होने लगीं॥ ३१॥ गोविन्दके आगमनसे इन्द्रोत्सवके समान सारे नगर और अन्तःपुरमें अत्यन्त हर्ष एवं आनन्द छा गया। उसकी शोभा बढ़ गयी॥ ३२॥ राजमार्गोंपर बहुतेरे गायक आनन्दित होकर गीत गाने लगे। उस समय यादवोंको प्रिय लगनेवाली यह गाथा वहाँ सब ओर कही-सुनी जाने लगी—'नागरिको! विश्वविख्यात वीर श्रीकृष्ण और बलराम दोनों भाई मथुरामें आ पहुँचे हैं। अब तुम सब लोग निर्भय हो अपने नगरमें बन्धु-बान्धवोंके साथ क्रीडा करो'॥ ३३-३४॥ राजन्! गोविन्दके मथुरामें उपस्थित होनेपर वहाँ न तो कोई दीन था, न मलिन था और न चेतनासे शून्य ही था॥ ३५॥ पक्षी मीठी-मीठी बोली बोलते थे। गाय, बैल, घोड़े, हाथी हृष्ट-पुष्ट रहते थे और पुरुषों तथा स्त्रियोंके सभी समुदाय मनमें सुखका अनुभव करते थे॥ ३६॥ शीतल सुखद हवा चलती थी। दसों दिशाओंमें धूल नहीं उड़ती थी और सभी मन्दिरोंमें हर्षपूर्वक देवता निवास करते थे॥ ३७॥ भगवान् श्रीकृष्णके मथुरापुरीको लौट आनेपर वहाँ सारे चिह्न वैसे ही दिखायी देने लगे, जो सत्ययुगके समय पहले जगत्‌में प्रकट होते थे॥ ३८॥ तदनन्तर मङ्गलमयी पुण्यवेलामें शत्रुमर्दन भगवान् गोविन्दने घोड़े जुते हुए रथपर बैठकर मथुरापुरीमें प्रवेश किया॥ ३९॥

विशन्तं मथुरां रम्यां तमुपेन्द्रमरिंदमम्।
अनुजग्मुर्यदुगणाः शक्रं देवगणा इव॥ ४०

वसुदेवस्य भवनं ततस्तौ यदुनन्दनौ।
प्रविष्टौ हृष्टवदनौ चन्द्रादित्याविवाचलम्॥ ४१

परेण तेजसोपेतौ सुरेन्द्राविव रूपिणौ।
तावायुधानि विन्यस्य गृहे स्वे स्वैरचारिणौ॥ ४२

मुमुदाते यदुवरौ वसुदेवसुतावुभौ।
उद्यानेषु विचित्रेषु फलपुष्पावनामिषु॥ ४३

चेरतुः सुमहात्मानौ यादवैः परिवारितौ।
रैवतस्य समीपेषु सरित्सु विमलासु च॥ ४४

पद्मपत्रविवृद्धासु कारण्डवयुतासु च।
एवं तावेकनिर्माणौ मथुरायां शुभाननौ।
उग्रसेनानुगौ भूत्वा कंचित् कालं मुमोदतुः॥ ४५

रमणीय मथुरापुरीमें प्रवेश करते समय समस्त यादव, उन शत्रुदमन उपेन्द्र श्रीकृष्णके पीछे-पीछे उसी प्रकार चले, जैसे देवता देवेन्द्रका अनुसरण करते हैं॥ ४०॥ तदनन्तर यदुकुलको आनन्दित करनेवाले वे दोनों बन्धु वसुदेवके भवनमें प्रविष्ट हुए। उस समय उनके मुखपर हर्षोल्लास छा रहा था और वे मेरु पर्वतपर जानेवाले चन्द्रमा और सूर्यके समान प्रतीत होते थे। वे महान् तेजसे सम्पन्न तथा देवेश्वरोंके समान मनोहर रूपधारी श्रीकृष्ण-बलराम आयुधोंको अपने घरमें रखकर उस पुरीमें स्वेच्छानुसार विचरने लगे॥ ४१-४२॥ वसुदेवके वे दोनों पुत्र यदुकुलतिलक श्रीकृष्ण-बलराम फल और फूलोंके भारसे झुके हुए वृक्षोंवाले विचित्र उद्यानोंमें सानन्द विचरते थे॥ ४३॥ यादवोंसे घिरे हुए वे दोनों महात्मा रैवतक पर्वतके समीपवर्ती प्रदेशोंमें तथा बढ़े हुए पद्म-पत्रोंसे युक्त एवं कारण्डव पक्षियोंके कलरवोंसे मुखरित निर्मल सरिताओंके तटोंपर भ्रमण करते थे। वे दोनों भाई एक तत्त्वके बने हुए थे (एक ही सच्चिदानन्दघन परमात्मा इन दोनोंके रूपोंमें प्रकट हुए थे)। उन दोनोंके मुख बड़े ही सुन्दर एवं मङ्गलकारी थे। वे कुछ कालतक उग्रसेनका अनुसरण करते हुए मथुरामें बड़े सुखसे रहे॥ ४४-४५॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे विष्णुपर्वणि रामकृष्णप्रत्यागमने त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः॥ ३३॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत विष्णुपर्वमें श्रीबलराम और कृष्णका मथुरामें प्रत्यागमनविषयक तैंतीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ३३॥

चतुस्त्रिंशोऽध्यायः

जरासंधका अपनी विशाल सेनाके द्वारा आकर मथुरापुरीपर घेरा डालना

वैशम्पायन उवाच

स कृष्णस्तत्र सहितो रौहिणेयेन संगतः।
मथुरां यादवाकीर्णां पुरीं तां सुखमावसत्॥ १

प्राप्तयौवनदेहस्तु युक्तो राजश्रिया विभुः।
चचार मथुरां प्रीतः स वनाकरभूषणाम्॥ २

कस्यचित्त्वथ कालस्य राजा राजगृहेश्वरः।
शुश्राव निहतं कंसं दुहितृभ्यां महीपतिः॥ ३

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! बलराम-सहित श्रीकृष्ण यादवोंसे भरी हुई मथुरापुरीमें सुख-पूर्वक रहने लगे। उनके श्रीअङ्गोंको युवावस्था प्राप्त हुई थी। वे भगवान् राजोचित शोभासे सुशोभित हो वन-प्रान्तोंसे विभूषित मथुरापुरीमें प्रसन्नतापूर्वक विचरते थे॥ १-२॥ कुछ कालके अनन्तर राजगृहके स्वामी पृथ्वीपति राजा जरासंधने अपनी दोनों पुत्रियोंसे सुना कि 'कंस मारा गया'॥ ३॥

ततो नातिचिरात् कालाज्जरासंधः प्रतापवान्।
आजगाम षडङ्गेन बलेन महता वृतः॥ ४

जिघांसुर्हि यदून् क्रुद्धः कंसस्यापचितिं स्मरन्।
अस्तिः प्राप्तिश्च नाम्ना ते मागधस्य सुते नृप॥ ५
जरासंधस्य कल्याण्यौ पीनश्रोणिपयोधरे।
उभे कंसस्य ते भार्ये प्रादाद् बार्हद्रथो नृपः॥ ६

स ताभ्यां मुमुदे राजा बद्ध्वा पितरमाहुकम्।
समाश्रित्य जरासंधमनादृत्य च यादवान्।
शूरसेनेश्वरो राजा यथा ते बहुशः श्रुतः॥ ७

ज्ञातिकार्यार्थसिद्ध्यर्थमुग्रसेनहिते रतः।
वसुदेवोऽभवन्नित्यं कंसो न ममृषे च तम्॥ ८

रामकृष्णौ समाश्रित्य हते कंसे दुरात्मनि।
उग्रसेनोऽभवद् राजा भोजवृष्ण्यन्धकैर्वृतः॥ ९

दुहितृभ्यां जरासंधः प्रियाभ्यां बलवान् नृपः।
नोदितो वीरपत्नीभ्यामुपायान्मथुरां ततः॥ १०

कृत्वा सर्वं समुद्योगं क्रोधादग्निसमो ज्वलन्।
प्रतापावनता ये च जरासंधस्य पार्थिवाः॥ ११

मित्राणि ज्ञातयश्चैव संयुक्ताः सुहृदस्तथा।
तमेवानुययुः सर्वे सैन्यैः समुदितैर्वृताः॥ १२

महेष्वासा महावीर्या जरासंधप्रियैषिणः।
कारूषो दन्तवक्त्रश्च चेदिराजश्च वीर्यवान्॥ १३

कलिङ्गाधिपतिश्चैव पौण्ड्रश्च बलिनां वरः।
सांकृतिः केशिकश्चैव भीष्मकश्च नराधिपः॥ १४

पुत्रश्च भीमकस्यापि रुक्मी मुख्यो धनुर्भृताम्।
वासुदेवार्जुनाभ्यां यः स्पर्धते स महाहवे॥ १५

यह दुःखद समाचार सुनकर प्रतापी जरासंध थोड़े ही दिनोंमें छः[1] अङ्गोंसे युक्त अपनी विशाल सेनासे घिरा हुआ मथुरापुरीपर चढ़ आया। वह कंससे उऋण होनेकी बातका ध्यान रखकर कुपित हो समस्त यादवोंका विनाश कर डालना चाहता था। नरेश्वर! मगधराज जरासंधके दो कल्याणमयी कन्याएँ थीं, जिनके नाम थे अस्ति और प्राप्ति। इन दोनोंके कटिप्रदेशके पिछले भाग स्थूल तथा उरोज पीन थे। बृहद्रथपुत्र जरासंधने अपनी वे दोनों कन्याएँ कंसको दे दी थीं। वे दोनों कंसकी पत्नियाँ थी॥ ४—६॥ शूरसेनदेशका स्वामी कंस जरासंधका आश्रय ले यादवोंका अनादर करके अपने पिता उग्रसेनको कैद कर स्वयं ही राजा बन बैठा था और अपनी उन दोनों पत्नियोंके साथ आनन्द भोगने लगा था; जैसा कि तुमने बहुत बार सुना होगा॥ ७॥ भाई-बन्धुओंके कार्य और प्रयोजनकी सिद्धिके लिये वसुदेवजी सदा उग्रसेनके हितमें तत्पर रहते थे; किंतु कंस उनके इस बर्तावको सहन नहीं कर पाता था॥ ८॥ बलराम और श्रीकृष्णसे भिड़कर जब दुरात्मा कंस मारा गया, तब भोज, वृष्णि और अन्धकवंशी यादवोंसे घिरे हुए उग्रसेन स्वयं राजा हुए॥ ९॥ तदनन्तर अपनी दोनों प्रिय पुत्रियोंसे, जो वीर कंसकी पत्नियाँ थीं, प्रेरित होकर बलवान् राजा जरासंधने मथुरापर आक्रमण किया॥ १०॥ वह क्रोधसे अग्निके समान जल रहा था। उसने सब प्रकारसे पूरा उद्योग करके चढ़ाई की थी। जरासंधके प्रतापसे नतमस्तक हुए जो-जो राजा थे तथा जो उसके मित्र, भाई-बन्धु, मिलने-जुलनेवाले और सुहृद् थे, उन सबने अपनी सारी सेनाओंके साथ जरासंधका ही अनुसरण किया॥ ११-१२॥ वे महाधनुर्धर तथा महा-पराक्रमी नरेशगण जरासंधका ही प्रिय चाहनेवाले थे। उनके नाम इस प्रकार हैं—करूष देशका राजा दन्तवक्त्र, पराक्रमी चेदिराज शिशुपाल, कलिङ्गदेशका राजा श्रुतायु, बलवानोंमें श्रेष्ठ पौण्ड्रक (वासुदेव), सांकृति, केशिक, राजा भीष्मक तथा धनुर्धारियोंमें श्रेष्ठ भीष्मकपुत्र रुक्मी, जो महासमरमें श्रीकृष्ण और अर्जुनके साथ लड़नेका हौसला रखता था॥ १३—१५॥

१. रथ, हाथी, घोड़े, पैदल, पण्य धान्य (बिकाऊ अन्न) तथा आपणिक (विक्रेता व्यापारी)—ये सेनाके छः अङ्ग हैं।

वेणुदारिः श्रुतर्वा च क्रथश्चैवांशुमानपि।
अङ्गराजश्च बलवान् वङ्गानामधिपस्तथा॥ १६
कौसल्यः काशिराजश्च दशार्णाधिपतिस्तथा।
सुखेश्वरश्च विक्रान्तो विदेहाधिपतिस्तथा॥ १७
मद्रराजश्च बलवांस्त्रिगर्तानामथेश्वरः।
शाल्वराजश्च विक्रान्तो दरदश्च महाबलः॥ १८
यवनाधिपतिश्चैव भगदत्तश्च वीर्यवान्।
सौवीरराजः शैव्यश्च पाण्ड्यश्च बलिनां वरः॥ १९
गान्धारराजः सुबलो नग्नजिच्च महाबलः।
काश्मीरराजो गोनर्दो दरदाधिपतिर्नृपः।
दुर्योधनादयश्चैव धार्तराष्ट्रा महाबलाः॥ २०
एते चान्ये च राजानो बलवन्तो महारथाः।
तमन्वयुर्जरासंधं विद्विषन्तो जनार्दनम्॥ २१
ते शूरसेनानाविश्य प्रभूतयवसेन्धनान्।
ऊषुः संरुध्य मथुरां पुरस्कृत्य बलं तदा॥ २२

वेणुदारि, श्रुतर्वा, क्रथ, अंशुमान्, बलवान् अङ्गराज, वङ्गनरेश, कोसलनरेश, काशिराज, दशार्णदेशके अधिपति, पराक्रमी सुखेश्वर, विदेहराज, बलवान् मद्रराज (शल्य), त्रिगर्तदेशका शासक सुशर्मा, पराक्रमी शाल्वराज, महाबली दरद, यवनोंका राजा पराक्रमी भगदत्त, सौवीरदेशका राजा, शैब्य, बलवानोंमें श्रेष्ठ पाण्ड्य, गान्धारराज सुबल, महाबली नग्नजित्, काश्मीरराज गोनर्द, दरददेशके अधिपति, धृतराष्ट्रके महाबली पुत्र दुर्योधन आदि— ये तथा और भी बलवान् महारथी राजा श्रीकृष्णसे द्वेष रखते हुए जरासंधके साथ आये थे॥ १६—२१॥ वे शूरसेनदेशमें, जहाँ दाना-घास और लकड़ीकी बहुतायत थी, आकर अपनी-अपनी सेनाओंको आगे करके मथुरापर घेरा डालकर रहने लगे॥ २२॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे विष्णुपर्वणि मथुरोपरोधे चतुस्त्रिंशोऽध्यायः॥ ३४॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत विष्णुपर्वमें जरासंधकी सेनाद्वारा मथुरापर घेराविषयक चौंतीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ३४॥

पञ्चत्रिंशोऽध्यायः

जरासंधकी सेनाका वर्णन, उसकी चारों दिशाओंसे मथुरापुरीपर आक्रमणकी योजना, यादवोंके साथ जरासंधकी सेनाका युद्ध, श्रीकृष्ण और बलरामके पराक्रमसे उसकी सेनाका पलायन, जरासंधद्वारा अपने सैनिकोंको प्रोत्साहन तथा उभय-पक्षके वीरोंमें घमासान युद्ध

वैशम्पायन उवाच

मथुरोपवने गत्वा निविष्टांस्तान् नराधिपान्।
अपश्यन् वृष्णयः सर्वे पुरस्कृत्य जनार्दनम्॥ १
ततो हृष्टमनाः कृष्णो रामं वचनमब्रवीत्।
त्वरते खलु कार्यार्थो देवतानां न संशयः॥ २
यथायं संनिकृष्टो हि जरासंधो नराधिपः।
लक्ष्यन्ते हि ध्वजाग्राणि रथानां वातरंहसाम्॥ ३

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! वे सब नरेश मथुराके उपवनमें पहुँचकर छावनी डाले हुए थे। वहाँ समस्त वृष्णिवंशियोंने श्रीकृष्णको आगे करके उन्हें देखा॥ १॥ तब श्रीकृष्णने मन-ही-मन प्रसन्न होकर बलरामजीसे कहा—'आर्य! देवताओंका कार्य एवं प्रयोजन शीघ्र ही सिद्ध होना चाहता है—इसमें संशय नहीं है॥ २॥ तभी तो यह राजा जरासंध स्वयं ही हमारे निकट आ पहुँचा। यह वायुके समान वेगशाली रथोंकी ध्वजाओंके अग्रभाग दिखायी दे रहे हैं॥ ३॥

एतानि शशिकल्पानि नृपाणां विजिगीषताम्।
छत्राण्यार्य विराजन्ते प्रोच्छ्रितानि सितानि च॥ ४
अहो नृपरथोदग्रा विमलाश्छत्रपङ्क्तयः।
अभिवर्तन्ति नः शुभ्रा यथा खे हंसपङ्क्तयः॥ ५
काले खलु नृपः प्राप्तो जरासंधो महीपतिः।
आवयोर्युद्धनिकषः प्रथमः समरातिथिः॥ ६
आर्य तिष्ठाव सहितावनुप्राप्ते महीपतौ।
युद्धारम्भः प्रयोक्तव्यो बलं तावद्विमृश्यताम्॥ ७
एवमुक्त्वा ततः कृष्णः स्वस्थः संग्रामलालसः।
जरासंधबलं प्रेप्सुश्चकार बलदर्शनम्॥ ८
वीक्षमाणश्च तान् सर्वान् नृपान् यदुवरोऽव्ययः।
आत्मनैवात्मनो वाक्यमुवाच हृदि मन्त्रवित्॥ ९
इमे ते पृथिवीपालाः पार्थिवे वर्त्मनि स्थिताः।
ये विनाशं गमिष्यन्ति शास्त्रदृष्टेन कर्मणा॥ १०
प्रोक्षितान् खल्विमान् मन्ये मृत्युना नृपपुङ्गवान्।
स्वर्गगामीनि चाप्येषां वपूंषि प्रचकाशिरे॥ ११
स्थाने भारपरिश्रान्ता वसुधेयं दिवं गता।
एषां नृपाणां मुख्यानां बलौघैरभिपीडिता॥ १२
मही निरन्तरा चेयं बलराष्ट्राभिसंवृता।
स्वल्पेन खलु कालेन विविक्तं पृथिवीतलम्॥ १३
भविष्यति नरेन्द्रौघैः शतशो विनिपातितैः।

वैशम्पायन उवाच

जरासंधस्ततः क्रुद्धः प्रभुः सर्वमहीक्षिताम्॥ १४
नराधिपसहस्रौघैरनुयातो महाद्युतिः।
व्यायतोदग्रतुरगैः सुयानैः सुसमाहितैः॥ १५
रथैः सांग्रामिकैर्युक्तैरसङ्गगतिभिः क्वचित्।
हेमकक्षैर्महाघण्टैर्वारणैर्वारिदोपमैः ॥ १६

भैया! विजयकी इच्छासे आये हुए राजाओंके ये चन्द्रमा-जैसे श्वेत एवं ऊँचे-ऊँचे छत्र शोभा पा रहे हैं॥ ४॥ अहो! राजाओंके रथोंपर ऊँची-ऊँची निर्मल एवं शुभ्र छत्र-पंक्तियाँ आकाशमें हंसकी पाँतोंके समान शोभा पाती हुई हमारे निकट आ रही हैं॥ ५॥ पृथ्वीपति जरासंध ठीक समयपर आ पहुँचा है। यह हम दोनोंके युद्धकी कसौटी तथा समराङ्गणका पहला अतिथि है॥ ६॥ आर्य! उस राजाके आ जानेपर हम दोनों साथ ही रहें। युद्धका आरम्भ पीछे होगा। पहले उसकी सेना कितनी है, इसका विचार कर लें'॥ ७॥ ऐसा कहकर श्रीकृष्ण स्वस्थ-चित्तसे संग्रामकी लालसा रखकर जरासंधकी शक्तिका पता लगानेके लिये उसकी सेनाका निरीक्षण करने लगे॥ ८॥ अविनाशी यदुकुलतिलक मन्त्रवेत्ता श्रीकृष्ण उन सब राजाओंको देखकर अपने-आप ही मनमें इस प्रकार कहने लगे— ॥ ९॥ 'ये हैं वे भूपाल, जो राजोचित मार्गपर स्थित हैं और शास्त्रोक्त विधिसे विनाशको प्राप्त होनेवाले हैं॥ १०॥ मैं समझता हूँ कि मृत्युने रण-यज्ञकी आहुति बनानेके लिये इन श्रेष्ठ नरेशोंका प्रोक्षण किया है। इनके स्वर्गगामी शरीर भी प्रकाशित हो उठे हैं॥ ११॥ यह पृथ्वी इन मुख्य-मुख्य नरेशोंके सैन्य-समुदायसे पीड़ित हो महान् भारसे थककर जो देवलोकमें गयी थी, वह इसका जाना उचित ही था॥ १२॥ इन राजाओंके सैन्य-समुदायसे आवृत होकर यहाँकी भूमि ठसाठस भर गयी है। कहीं थोड़ा-सा भी अवकाश नहीं रह गया है; परंतु थोड़े ही समयमें जब ये सैकड़ों नरेश सैन्य-सहित मार गिराये जायँगे, तब यह भूतल निर्जन-सा हो जायगा'॥ १३ १/२॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! तदनन्तर समस्त राजाओंका स्वामी महातेजस्वी जरासंध कुपित हो सहस्रों नरेश-समुदायोंके साथ आगे बढ़ा। कहीं सुन्दर ढंगसे सुसज्जित सुन्दर वाहन, रथ युद्धोपयोगी सामग्रियोंसे सम्पन्न थे। उनमें विशाल एवं प्रचण्ड वेगवाले अश्व जुते हुए थे। उन रथोंकी गति कहीं भी अवरुद्ध नहीं होती थी (ऐसे रथोंद्वारा रथी योद्धा युद्धके लिये आगे बढ़ रहे थे)। कहीं बहुसंख्यक हाथी चल रहे थे, जिन्हें सोनेकी जंजीरोंसे कसा गया था। उनके दोनों ओर बड़े-बड़े घण्टे लटक रहे थे। वे हाथी काले मेघोंके समान प्रतीत होते थे।

महामात्रोत्तमारूढैः कल्पितै रणकोविदैः।
स्वारूढैः सादिभिर्युक्तैः प्रेङ्खमाणैः प्रवल्गितैः॥ १७

वाजिभिर्वायुसंकाशैः प्लवद्भिरिव पत्रिभिः।
खड्गचर्मधरोदग्रैः पत्तिभिर्बलिनां वरैः॥ १८

सहस्रसंख्यासंयुक्तैरुत्पतद्भिरिवोरगैः।
एवं चतुर्विधैः सैन्यैः कम्पमानैरिवाम्बुदैः॥ १९

नृपः प्रयातो बलवाञ्जरासंधो धृतव्रतः।
स रथैर्मेघनिर्घोषैर्गजैश्च मदसंयुतैः॥ २०

हेषमाणैश्च तुरगैः क्ष्वेडमानैश्च पत्तिभिः।
नादयानो दिशः सर्वास्तस्याः पुर्या वनानि च॥ २१

स राजा सागराकारः ससैन्यः प्रत्यदृश्यत।
तद्बलं पृथिवीशानां हृष्टयोधजनाकुलम्॥ २२

क्ष्वेडितास्फोटितरवं मेघसैन्यमिवाबभौ।
रथैः पवनसम्पातैर्गजैश्च जलदोपमैः।
तुरगैश्च जवोपेतैः पत्तिभिः खगमोपमैः॥ २३

विमिश्रं सर्वतो भाति मत्तद्विपसमाकुलम्।
घर्मान्ते सागरगतं यथाभ्रपटलं तथा॥ २४

सबलास्ते महीपाला जरासंधपुरोगमाः।
परिवार्य पुरीं सर्वे निवेशायोपचक्रिरे॥ २५

बभौ तस्य निविष्टस्य बलश्रीः शिबिरस्य वै।
शुक्लपर्यन्तपूर्णस्य यथा रूपं महोदधेः॥ २६

वीतरात्रे ततः काले समुत्तस्थुर्महीक्षितः।
आरोहणार्थं पुर्यास्ते समीयुर्युद्धलालसाः॥ २७

समवायीकृताः सर्वे यमुनामनु ते नृपाः।
निविष्टा मन्त्रयामासुर्युद्धकालकुतूहलाः॥ २८

तेषां सुतुमुलः शब्दः शुश्रुवे पृथिवीक्षिताम्।
युगान्ते भिद्यमानानां सागराणामिव स्वनः॥ २९

उनके ऊपर अच्छे महावत बैठे थे तथा रणकुशल योद्धाओं-द्वारा उन्हें सुसज्जित किया गया था (उन हाथियोंद्वारा गजारोही योद्धा आगे बढ़ रहे थे)। कुछ घुड़सवार योद्धा घोड़ोंपर अच्छी तरहसे सवार थे। उनके वे घोड़े वायुके समान वेगशाली थे और उछलते-कूदते हुए आगे बढ़ते समय आकाशमें उड़ते हुए पक्षियोंके समान प्रतीत होते थे। बलवानोंमें श्रेष्ठ सैनिक भी ढाल और तलवार लिये प्रचण्ड रूप धारण करके आगे बढ़ते थे। वे हजार-हजारकी टोलियोंमें एक साथ चलते थे और उछलते हुए सर्पोंके समान दिखायी देते थे। इस प्रकार मँडराते हुए बादलोंके समान चतुरङ्गिणी सेनाएँ साथ लेकर वीर-व्रतको धारण करनेवाला बलवान् राजा जरासंध युद्धके लिये आगे बढ़ रहा था। वह मेघके समान गम्भीर घर्घर घोष करनेवाले रथों, चिग्घाड़ते हुए मतवाले हाथियों, हिनहिनाते हुए घोड़ों तथा गर्जते हुए पैदल सैनिकोंद्वारा उस पुरीकी सम्पूर्ण दिशाओं तथा वनोंको कोलाहलपूर्ण बनाता हुआ आ रहा था॥ १४—२१॥ सेनाके साथ आता हुआ राजा जरासंध विशाल समुद्रके समान दिखायी देता था। भूमिपालोंकी वह सेना हृष्ट-पुष्ट योद्धाओंसे परिपूर्ण थी॥ २२॥ गर्जने और ताल ठोंकनेकी गम्भीर ध्वनिसे वह मेघोंकी गर्जती हुई घटाके समान प्रतीत होती थी। वायुके समान शीघ्रगामी रथों, मेघोंके सदृश दिखायी देनेवाले हाथियों, वेगशाली घोड़ों तथा आकाशचारी पक्षियोंके समान जान पड़नेवाले पैदल सैनिकोंसे मिश्रित हुई उस सेनाकी सब ओरसे बड़ी शोभा हो रही थी। मतवाले हाथियोंसे व्याप्त हुई वह विशाल वाहिनी वर्षा-ऋतुमें समुद्रके भीतर लक्षित होनेवाले मेघोंके समूहकी शोभा धारण करती थी॥ २३-२४॥ वे जरासंध आदि समस्त भूपाल अपनी सेनाके साथ मथुरापुरीको चारों ओरसे घेरकर छावनी डालनेकी तैयारी करने लगे॥ २५॥ वहाँ डेरा डाले हुए जरासंधके सैनिक-शिविरोंकी शोभा वैसी ही प्रतीत होती थी, जैसा कि शुक्लपक्षकी पूर्णिमाको अपनी उत्ताल तरङ्गोंसे परिपूर्ण हुए महासागरका रूप देखनेमें आता है॥ २६॥ तदनन्तर रात बीतनेपर प्रातःकाल सब राजा उठे और युद्धकी लालसासे मथुरापुरीपर चढ़ाई करनेके लिये एकत्र होने लगे॥ २७॥ यमुनाके किनारे एकत्र होकर वे सभी नरेश बैठे और युद्धके शुभ अवसरके लिये उत्सुक हो आपसमें मन्त्रणा करने लगे॥ २८॥ सेनासहित उन नरेशोंकी तुमुल ध्वनि प्रलय-कालमें मर्यादाको तोड़कर बहनेवाले समुद्रोंकी भयंकर गर्जनाके समान सुनायी देती थी॥ २९॥

तेषां सकञ्चुकोष्णीषाः स्थविरा वेत्रपाणयः।
चेरुर्मा शब्द इत्येवं वदन्तो राजशासनात्॥ ३०
तस्य रूपं बलस्यासीन्निःशब्दस्तिमितस्य वै।
लीनमीनग्रहस्येव निःशब्दस्य यथोदधेः॥ ३१
निःशब्दस्तिमिते तस्मिन् योगादिव महार्णवे।
जरासंधो बृहद् वाक्यं बृहस्पतिरिवाददे॥ ३२
शीघ्रं समभिवर्तन्तां बलानि पृथिवीक्षिताम्।
सर्वतो नगरी चेयं जनौघैः परिवार्यताम्॥ ३३
अश्मयन्त्राणि युज्यन्तां क्षेपणीयाश्च मुद्गराः।
कार्या भूमिः समा सर्वा जलौघैश्च परिप्लुता।
ऊर्ध्वं चापा निवाह्यन्तां प्रासा वै तोमरास्तथा॥ ३४
दार्यतां चैव टङ्काद्यैः खनित्रैश्च पुरी द्रुतम्।
नृपाश्च युद्धमार्गज्ञा विन्यस्यन्तामदूरतः॥ ३५
अद्यप्रभृति सैन्यैर्मे पुरीरोधः प्रवर्त्यताम्।
यावदेतौ रणे गोपौ वसुदेवसुतावुभौ॥ ३६
संकर्षणं च कृष्णं च घातयामि शितैः शरैः।
आकाशमपि बाणौघैर्निःसम्पातं यथा भवेत्॥ ३७
मयानुशिष्टास्तिष्ठन्तु पुरीभूमिषु भूमिपाः।
तेषु तेष्ववकाशेषु शीघ्रमारुह्यतां पुरी॥ ३८
मद्रः कलिङ्गाधिपतिश्चेकितानः सबाह्लिकः।
काश्मीरराजो गोनर्दः करूषाधिपतिस्तथा॥ ३९
द्रुमः किम्पुरुषश्चैव पर्वतीयो ह्यनामयः।
नगर्याः पश्चिमं द्वारं शीघ्रमारोधयन्त्विति॥ ४०
पौरवो वेणुदारिश्च वैदर्भः सोमकस्तथा।
रुक्मी च भोजाधिपतिः सूर्याक्षश्चैव मालवः॥ ४१
विन्दानुविन्दावावन्त्यौ दन्तवक्त्रश्च वीर्यवान्।
छागलिः पुरमित्रश्च विराटश्च महीपतिः॥ ४२
कौरव्यो मालवश्चैव शतधन्वा विदूरथः।
भूरिश्रवास्त्रिगर्तश्च बाणः पञ्चनदस्तथा॥ ४३
उत्तरं नगरद्वारमेते दुर्गसहा नृपाः।
आरुह्य चाभिमर्दन्तां वज्रप्रतिमगौरवाः॥ ४४

उन राजाओंके छड़ीदार बूढ़े सिपाही चोगा और पगड़ी धारण किये तथा हाथमें बेंत लिये राजाज्ञासे यह कहते हुए विचरने लगे कि 'सब लोग मौन रहें। कोई एक शब्द भी न बोले'॥ ३०॥ उस समय नीरव और निश्चल हुए उस सैन्यसमूहका रूप जिसके मत्स्य और ग्राह विलीन हो गये हों उस शब्दहीन शान्त महासागरके समान प्रतीत होता था॥ ३१॥ उस सैन्य-समुद्रके मानो योगबलसे सहसा नीरव तथा निश्चल हो जानेपर बृहस्पतिके समान नीतिमान् जरासंधने यह महत्त्वपूर्ण बात कही—॥ ३२॥ 'राजाओंकी सेनाएँ शीघ्र आक्रमण करें और इस मथुरा-नगरीको सब ओरसे सैनिक-समूहोंद्वारा घेर लें॥ ३३॥ पत्थरोंके गोले बरसानेवाले यन्त्र लगा दिये जायँ। क्षेपणीय (गोफना या ढेलवाँस) तथा मुद्गर सँभाल लिये जायँ। सारी भूमि समतल कर दी जाय और उसे जलराशियोंसे आप्लावित किया जाय। धनुषोंको ऊपर उठा लेना चाहिये, प्रासों और तोमरोंको भी हाथमें ले लिया जाय॥ ३४॥ टंक आदिके द्वारा तथा खनित्रोंसे इस पुरीको तुरंत ही विदीर्ण कर दिया जाय। युद्धकी प्रणालीको जाननेवाले नरेशोंको उसके समीप ही यथास्थान खड़ा किया जाय॥ ३५॥ आजसे मेरे सैनिकोंद्वारा मथुरापुरीपर घेरा डाल दिया जाय और उसे तबतक चालू रखा जाय, जबतक कि मैं युद्धमें इन दोनों ग्वालों वसुदेवपुत्र संकर्षण और कृष्णको अपने तीखे बाणोंद्वारा मार न डालूँ। उस समयतक आकाशको भी बाणसमूहोंसे इस तरह रूँध दिया जाय, जिससे पक्षी भी उड़कर बाहर न जा सके॥ ३६-३७॥ मेरा अनुशासन मानकर समस्त भूपाल मथुरापुरीके निकटवर्ती भूभागोंमें खड़े रहें और जब जहाँ अवकाश मिल जाय, तब तहाँ शीघ्र ही पुरीपर चढ़ाई कर दें॥ ३८॥ मद्रराज (शल्य), कलिङ्गराज श्रुतायु, चेकितान, बाह्लिक, काश्मीरराज गोनर्द, करूषराज दन्तवक्त्र तथा पर्वतीय प्रदेशके रोगरहित किन्नरराज द्रुम—ये शीघ्र ही मथुरापुरीके पश्चिम द्वारको रोक लें॥ ३९-४०॥ पूरुवंशी वेणुदारि, विदर्भदेशीय सोमक, भोजोंके अधिपति रुक्मी, मालवाके राजा सूर्याक्ष, अवन्तीके राजकुमार विन्द और अनुविन्द, पराक्रमी दन्तवक्त्र, छागलि, पुरमित्र, राजा विराट, कुरुवंशी मालव, शतधन्वा, विदूरथ, भूरिश्रवा, त्रिगर्त, बाण और पञ्चनद—ये दुर्गका आक्रमण सह सकनेवाले नरेश मथुरा नगरके उत्तर द्वारपर चढ़ाई करके शत्रुओंको कुचल डालें। इनका गौरव वज्रके तुल्य है॥ ४१—४४॥

उलूकः कैतवश्चैव वीरश्चांशुमतः सुतः।
एकलव्यो बृहत्क्षत्रः क्षत्रधर्मा जयद्रथः॥ ४५

उत्तमौजाश्च शल्यश्च कौरवाः कैकयास्तथा।
वैदिशो वामदेवश्च सांकृतिश्च सिनीपतिः॥ ४६

पूर्वं नगरनिर्व्यूहमेतेष्वायत्तमस्तु नः।
दारयन्तो विधावन्तु वाता इव बलाहकान्॥ ४७

अहं च दरदश्चैव चेदिराजश्च वीर्यवान्।
दक्षिणं नगरद्वारं पालयामः सुदंशिताः॥ ४८

एवमेषा पुरी क्षिप्रं समन्ताद् वेष्टिता बलैः।
वज्रावपातविषमं प्राप्नोतु तुमुलं भयम्॥ ४९

गदिनो ये गदाभिस्ते परिघैः परिघायुधाः।
अपरे विविधैः शस्त्रैर्दारयन्तु पुरीमिमाम्॥ ५०

अद्यैव नगरी ह्येषा विषमोच्चयसंकटा।
कार्या भूमिसमा सर्वा भवद्भिर्वसुधाधिपैः॥ ५१

चतुरङ्गबलैर्व्यूह्य जरासंधो व्यवस्थितः।
अथाभ्ययाद् यदून् क्रुद्धैः सह सर्वैर्नराधिपैः॥ ५२

प्रतिजग्मुर्दशार्हास्तं व्यूढानीकाः प्रहारिणः।
तद् युद्धमभवद् घोरं तेषां देवासुरोपमम्।
अल्पानां बहुभिः सार्धं व्यतिषक्तरथद्विपम्॥ ५३

नगरान्निस्सृतौ दृष्ट्वा वसुदेवसुतावुभौ।
क्षुभितं नृवरानीकं त्रस्तसम्मूढवाहनम्॥ ५४

रथस्थौ दंशितौ चैव चेरतुस्तत्र यादवौ।
मकराविव संरब्धौ समुद्रक्षोभणावुभौ॥ ५५

तयोः प्रयुध्यतोः संख्ये मतिरासीन्महात्मनोः।
आयुधानां पुराणानामादानकृतलक्षणा॥ ५६

ततः खान्निपतन्ति स्म दिव्यान्याहवसम्प्लवे।
लेलिहानानि दीप्तानि महान्ति सुदृढानि च॥ ५७

'शकुनिपुत्र उलूक, अंशुमान्‌के पुत्र वीर एकलव्य, बृहत्क्षत्र, क्षत्रधर्मा, जयद्रथ, उत्तमौजा, शल्य, कुरुवंशी, केकयराजकुमार, विदिशाके राजा वामदेव तथा सिनीपति सांकृति—इन सबके अधीन मथुरापुरीका पूर्व द्वार कर दिया जाय। ये लोग जैसे वायु बादलोंको छिन्न-भिन्न कर देती है, उसी प्रकार शत्रुओंको विदीर्ण करनेके लिये उनपर धावा बोल दें॥ ४५—४७॥ मैं, दरद तथा पराक्रमी चेदिराज कवच धारण करके नगरके दक्षिण द्वारका मोरचा सँभालेंगे॥ ४८॥ 'इस प्रकार हमारी सेनाओंद्वारा चारों ओरसे घिरी हुई यह नगरी मानो इसपर वज्रपात हो गया हो' इस प्रकार विषम एवं घोर भय प्राप्त करे॥ ४९॥ गदाधारी वीर गदाओंसे, परिघ चलानेवाले परिघोंसे तथा अन्य वीर नाना प्रकारके दूसरे शस्त्रोंसे इस पुरीको विदीर्ण कर डालें॥ ५०॥ आज ही आप सब भूपाल मिलकर ऊँचे-नीचे महलोंके समूहोंसे भरी हुई इस सारी नगरीको गर्दमें मिलाकर समतल भूमिके समान कर दें'॥ ५१॥ इस प्रकार आदेश दे चतुरङ्गिणी सेनाओंका व्यूह बनाकर जरासंध युद्धके लिये डट गया और क्रोधमें भरे हुए समस्त नरेशोंके साथ यादवोंपर चढ़ आया॥ ५२॥ उस समय अपनी सेनाका व्यूह बनाकर प्रहारकुशल यादवोंने जरासंधका सामना किया। उनका वह युद्ध देवासुरसंग्रामके समान भयंकर प्रतीत होता था। यह थोड़ेसे योद्धाओंका बहुसंख्यक शत्रुओंके साथ युद्ध हुआ, जिसमें उभय पक्षके रथ और हाथी एक-दूसरेसे सटकर जूझ रहे थे॥ ५३॥ इसी समय वसुदेवके दोनों पुत्र श्रीकृष्ण और बलराम नगरसे बाहर निकले। उन्हें देखते ही उन श्रेष्ठ राजाओंकी विशाल वाहिनी क्षुब्ध हो उठी। उसके वाहन भयभीत और मोहाच्छन्न-से हो गये॥ ५४॥ कवच धारण करके रथपर बैठे हुए वे दोनों यादव-वीर वहाँ विचरने लगे, मानो क्रोधमें भरे हुए दो मगर समुद्रमें हलचल मचा रहे हों॥ ५५॥ उस संग्राममें जूझते हुए उन दोनों महात्मा वीरोंके मनमें यह संकल्प उठा, यदि हमारे पुरातन अस्त्र आ जाते तो हम उन्हें ही लेकर युद्ध करते॥ ५६॥ उनके इतना सोचते ही उस युद्धमें आकाशसे वे दिव्य आयुध नीचे आने लगे। वे सब-के-सब सुदृढ़, महान् और देदीप्यमान थे तथा शत्रुओंको चाट जानेके लिये उद्यत दिखायी देते थे॥ ५७॥

क्रव्यादैरनुयातानि मूर्तिमन्ति बृहन्ति च।
तृषितान्याहवे भोक्तुं नृपमांसानि वै भृशम्॥ ५८

दिव्यस्त्रग्दामधारीणि त्रासयन्ति च खेचरान्।
प्रभया भासमानानि पतमानानि चाम्बरात्॥ ५९

हलं संवर्तकं नाम सौनन्दं मुसलं तथा।
धनुषां प्रवरं शार्ङ्गं गदा कौमोदकी तथा॥ ६०

चत्वार्येतानि तेजांसि विष्णुप्रहरणानि च।
ताभ्यां समवतीर्णानि यादवाभ्यां महामृधे॥ ६१

जग्राह प्रथमं रामो ललामप्रतिमं हलम्।
सर्पन्तमिव सर्पेन्द्रं दिव्यमालाकुलं मृधे॥ ६२

सौनन्दं च ततः श्रीमान् निरानन्दकरं द्विषाम्।
सव्येन सात्वतां श्रेष्ठो जग्राह मुसलोत्तमम्॥ ६३

दर्शनीयं च लोकेषु धनुर्जलदनिःस्वनम्।
नाम्ना शार्ङ्गमिति ख्यातं कृष्णो जग्राह वीर्यवान्॥ ६४

देवैर्निगदितार्थस्य गदा तस्यापरे करे।
निक्षिप्ता कुमुदाक्षस्य नाम्ना कौमोदकीति सा॥ ६५

तौ सप्रहरणौ वीरौ साक्षाद् विष्णुतनूपमौ।
समरे रामगोविन्दौ रिपूंस्तान् प्रत्ययुद्ध्यताम्॥ ६६

सायुधप्रग्रहौ वीरौ तावन्योन्याश्रयावुभौ।
पूर्वजानुजसंज्ञौ तौ रामगोविन्दलक्षणौ॥ ६७

द्विषत्सु प्रतिकुर्वाणौ पराक्रान्तौ यथेश्वरौ।
विचेरतुर्यथा देवौ वसुदेवसुतावुभौ॥ ६८

हलमुद्यम्य रामस्तु सर्पेन्द्रमिव कोपितः।
चचार समरे वीरो विद्विषामन्तको यथा॥ ६९

विकर्षन् रथवृन्दानि क्षत्रियाणां महात्मनाम्।
चकार रोषं सफलं नागेषु च हयेषु च॥ ७०

कुञ्जराल्लाँङ्गलक्षिप्तान् मुसलाक्षेपताडितान्।
रामो विराजन् समरे निर्ममन्थ यथाचलान्॥ ७१

उनके पीछे मांसभक्षी भूत-प्रेत आदि भी आ रहे थे। वे दिव्य अस्त्र मूर्तिमान् एवं विशाल थे तथा युद्धमें आये हुए राजाओंके रक्त-मांसका उपभोग करनेके लिये मानो अत्यन्त भूखे-प्यासे थे॥ ५८॥ उन्होंने दिव्य फूलोंके हार धारण किये थे। अपनी प्रभासे प्रकाशित हो आकाशसे गिरते हुए वे दिव्यास्त्र आकाशचारी प्राणियोंके मनमें भय उत्पन्न करते थे॥ ५९॥ संवर्तक नामक हल, सौनन्द नामक मूसल, धनुषोंमें श्रेष्ठ शार्ङ्ग तथा कौमोदकी गदा—भगवान् विष्णुके ये चार तेजस्वी आयुध उन दोनों भाइयोंके लिये यादवोंके उस महासमरमें उतर आये॥ ६०-६१॥ बलरामजीने उस युद्धस्थलमें पहले सर्पराजके समान सर्पणशील (गतिमान्) तथा दिव्य मालाओंसे अलंकृत सुन्दर आकृतिवाले हलको (दाहिने हाथमें) ग्रहण किया॥ ६२॥ तदनन्तर यादवोंमें श्रेष्ठ श्रीमान् संकर्षणने शत्रुओंके आनन्दको हर लेनेवाले सौनन्द नामक श्रेष्ठ मूसलको बायें हाथसे ग्रहण किया॥ ६३॥ इसके बाद पराक्रमी श्रीकृष्णने मेघोंके समान गम्भीर घोष करनेवाले शार्ङ्ग नामक धनुषको ग्रहण किया, जो समस्त लोकोंमें दर्शनीय है॥ ६४॥ देवताओंने जिन्हें अपना प्रयोजन बताया था और जिनके नेत्र खिले हुए कुमुदके समान शोभा पाते हैं, उन भगवान् श्रीकृष्णके दूसरे हाथमें वह सुप्रसिद्ध कौमोदकी गदा स्वतः आ गयी॥ ६५॥ उन आयुधोंसे युक्त हो साक्षात् विष्णु-विग्रहके समान शरीरवाले दोनों वीर बलराम और श्रीकृष्ण समराङ्गणमें उन शत्रुओंके साथ युद्ध करने लगे॥ ६६॥ उन दिव्य आयुधोंको ग्रहण करके एक-दूसरेको सहारा देनेवाले वे अग्रज और अनुजरूप दोनों वीर बन्धु श्रीबलराम और श्रीकृष्ण शत्रुओंका सामना करते हुए ईश्वरकोटिके महापुरुषोंके समान पराक्रम दिखाने लगे। वसुदेवके वे दोनों पुत्र रणभूमिमें देवताओंके समान विचरते थे॥ ६७-६८॥ वीर बलराम क्रोधमें भरकर सर्पराजके समान हल उठाये शत्रुओंके लिये कालरूप होकर समरभूमिमें विचर रहे थे॥ ६९॥ वे महामनस्वी क्षत्रियोंके रथसमूहोंको पीछे ढकेलते हुए हाथियों और घोड़ोंपर अपना रोष सफल करने लगे॥ ७०॥ बलरामजी गजराजोंको हलसे खींचकर उन्हें मूसलकी मारसे घायल करते हुए समराङ्गणमें अद्भुत शोभा पा रहे थे। उन्होंने पर्वतोंके समान हाथियोंको मथ डाला॥ ७१॥

ते वध्यमाना रामेण रणे क्षत्रियपुङ्गवाः।
जरासंधान्तिकः भीताः समरात्प्रतिजग्मिरे॥ ७२

तानुवाच जरासंधः क्षत्रधर्मे व्यवस्थितः।
धिगेतां क्षत्रवृत्तिं वः समरे कातरात्मनाम्॥ ७३

परावृत्तस्य समरे विरथस्य पलायतः।
भ्रूणहत्यामिवासह्यां प्रवदन्ति मनीषिणः॥ ७४

भीताः कस्मान्निवर्तध्वं धिगेतां क्षत्रवृत्तिताम्।
क्षिप्रं सर्वे निवर्तध्वं मम वाक्येन चोदिताः॥ ७५

अथवा तिष्ठत रथैः प्रेक्षकाः समवस्थिताः।
यावदेतौ रणे गोपौ प्रेषयामि यमक्षयम्॥ ७६

ततस्ते क्षत्रियाः सर्वे जरासंधेन नोदिताः।
सृजन्तः शरजालानि हृष्टा योद्धुं व्यवस्थिताः॥ ७७

ते हयैः काञ्चनापीडै रथैश्चाम्बुदनादिभिः।
नागैश्चाम्बुदसंकाशैर्महामात्रप्रचोदितैः॥ ७८

सतनुत्राः सनिस्त्रिंशाः सपताकायुधध्वजाः।
स्वारोपितधनुष्मन्तः सतूणीराः सतोमराः॥ ७९

सच्छत्राः सादिनश्चैव चारुचामरवीजिताः।
रणे तेऽधिगता रेजुः स्यन्दनस्था महीक्षितः॥ ८०

ते युद्धरागा रथिनो व्यगाहन्त युधां वराः।
गदाभिश्चैव गुर्वीभिः क्षेपणीयैश्च मुद्गरैः॥ ८१

एतस्मिन्नन्तरे तत्र देवानां नन्दिवर्धनः।
सुपर्णध्वजमास्थाय कृष्णस्तु रथमुत्तमम्॥ ८२

समभ्ययाज्जरासंधं शरैर्विव्याध चाष्टभिः।
सारथिं चास्य विव्याध पञ्चभिर्निशितैः शरैः॥ ८३

जघान तुरगांश्चाजौ यतमानस्य वीर्यवान्।
तं कृच्छ्रगतमाज्ञाय चित्रसेनो महारथः॥ ८४

रणभूमिमें बलरामजीके द्वारा मारे जाते हुए वे क्षत्रियशिरोमणि भयभीत हो समरसे पीछे हटकर जरासंधके पास भाग गये॥ ७२॥ उस समय क्षत्रिय-धर्ममें स्थिर रहनेवाले जरासंधने उन क्षत्रियोंसे कहा—'अरे समराङ्गणमें कातरहृदय होकर पीछे भागनेवाले तुम सब लोगोंकी इस क्षत्रिय-वृत्तिको धिक्कार है! जो क्षत्रिय संग्रामभूमिमें रथहीन होनेपर पीठ दिखाकर भागने लगता है, उसकी इस भीरुताको मनीषी पुरुष भ्रूणहत्याके समान असह्य बताते हैं॥ ७३-७४॥ योद्धाओ! तुम भयभीत होकर युद्धसे पीछे क्यों हटते हो? तुम्हारी ऐसी क्षत्रिय-वृत्तिको धिक्कार है! मेरी वाणीसे प्रेरित हो तुम सब लोग शीघ्र ही युद्धभूमिको लौट जाओ॥ ७५॥ अथवा रथोंके द्वारा दर्शक बनकर तबतक खड़े रहो, जबतक कि मैं रणभूमिमें इन ग्वालोंको मारकर यमलोक नहीं भेज देता हूँ'॥ ७६॥ तब जरासंधसे प्रेरित हो वे समस्त क्षत्रिय बाण-समूहोंकी वृष्टि करते हुए बड़े हर्षके साथ युद्धके लिये डट गये॥ ७७॥ वे सोनेके आभूषणोंसे विभूषित हुए घोड़ों, मेघकी गर्जनाके समान घर्घर ध्वनि फैलानेवाले रथों और महावतोंद्वारा हाँके गये मेघोंके समान काले गजराजोंद्वारा आगे बढ़कर युद्ध करने लगे॥ ७८॥ उन सबके शरीरमें कवच बँधे थे, सबने तलवारें ले रखी थीं, सभी ध्वजा-पताका और आयुधोंसे सम्पन्न थे, सभीके धनुष चढ़े हुए थे तथा सबने तरकस और तोमर ले रखे थे॥ ७९॥ रथपर बैठे हुए उन राजाओंके ऊपर छत्र तने हुए थे, मनोहर चँवर डुलाये जाते थे। उनके साथ घुड़सवार भी थे। युद्धभूमिमें स्थित हुए वे सभी नरेश बड़ी शोभा पा रहे थे॥ ८०॥ योद्धाओंमें श्रेष्ठ उन रथी वीरोंका युद्धमें अनुराग था, इसलिये वे भारी गदाओं, क्षेपणीयों (गोफनों) तथा मुद्गरोंसे विपक्षियोंको घायल करते हुए उनकी सेनाओंमें घुस गये॥ ८१॥ इसी बीचमें देवताओंका आनन्द बढ़ानेवाले भगवान् श्रीकृष्ण उत्तम गरुडध्वज रथपर आरूढ़ हो जरासंधपर चढ़ आये। उन्होंने आठ बाणोंसे उसको घायल कर दिया और पाँच पैने बाणोंद्वारा उसके सारथिको भी बींध डाला॥ ८२-८३॥ जरासंध बचनेका प्रयत्न करता ही रह गया, किंतु पराक्रमी श्रीकृष्णने रणभूमिमें उसके घोड़ोंको भी मार डाला। उसे संकटमें पड़ा जान महारथी चित्रसेन

सेनानीः कैशिकश्चैव कृष्णं विविधतुः शरैः।
त्रिभिर्विव्याध संसक्तं बलदेवं च कैशिकः॥ ८५
बलदेवो धनुश्चास्य भल्लेनाजौ द्विधाकरोत्।
जवेनाभ्यर्दयच्चापि तानरीञ्छरवृष्टिभिः॥ ८६
बहुभिर्बहुधा वीरान् समन्तात् स्वर्णभूषणैः।
तं चित्रसेनः संरब्धो विव्याध नवभिः शरैः॥ ८७
कैशिकः पञ्चभिश्चापि जरासंधश्च सप्तभिः।
त्रिभिस्त्रिभिश्च नाराचैस्तान् बिभेद जनार्दनः॥ ८८
पञ्चभिः पञ्चभिश्चैव बलदेवः शितैः शरैः।
रथं चैवास्य चिच्छेद चित्रसेनस्य वीर्यवान्॥ ८९
बलदेवो धनुश्चास्य भल्लेनाजौ द्विधाकरोत्।
स च्छिन्नधन्वा विरथो गदामादाय वीर्यवान्॥ ९०
अभ्यधावत् सुसंरब्धो जिघांसुर्मुसलायुधम्।
सिसृक्षतस्तु नाराचांश्चित्रसेनवधैषिणः।
धनुश्चिच्छेद रामस्य जरासंधो महाबलः॥ ९१
गदया च जघानाश्वान् क्रोधात् स मगधेश्वरः।
रामं चाभ्यद्रवद् वीरो जरासंधो महाबलः॥ ९२
आदाय मुसलं रामो जरासंधमुपाद्रवत्।
तयोस्तद् युद्धमभवत् परस्परवधैषिणोः॥ ९३
चित्रसेनस्तु संसक्तं दृष्ट्वा रामेण मागधम्।
रथमन्यं समारुह्य जरासंधमवारयत्॥ ९४
ततो बलेन महता गजानीकेन चाप्यथ।
उभयोरन्तरे ताभ्यां संकुलं समपद्यत॥ ९५
ततः सैन्येन महता जरासंधोऽभिसंवृतः।
रामकृष्णाग्रगान् भोजानाससाद महाबलः॥ ९६
तत्र प्रक्षुभितस्येव सागरस्य महास्वनः।
प्रादुर्बभूव तुमुलः सेनयोरुभयोरपि॥ ९७
वेणुभेरीमृदङ्गानां शङ्खानां च सहस्रशः।
उभयोः सेनयो राजन् प्रादुरासीन्महास्वनः॥ ९८
क्ष्वेडितास्फोटितोत्क्रुष्टैस्तुमुलः सर्वतोऽभवत्।
उत्पपात रजश्चापि खुरनेमिसमुद्धतम्॥ ९९

तथा सेनापति कैशिक दोनों आ पहुँचे और श्रीकृष्णको अपने बाणोंद्वारा घायल करने लगे। कैशिकने लगातार तीन बाणोंसे बलरामजीको बींध दिया। तब बलरामने भी एक भल्ल मारकर युद्धमें उसके धनुषके दो टुकड़े कर डाले। साथ ही वेगपूर्वक बाणोंकी वर्षा करके उन तीनों शत्रुओंको पीड़ित कर दिया॥ ८४—८६॥ उन्होंने बहुत-से स्वर्णभूषित बाणोंद्वारा उन वीरोंको सब ओरसे बारम्बार घायल किया। तब क्रोधमें भरे हुए चित्रसेनने नौ, कैशिकने पाँच तथा जरासंधने सात बाणोंसे उनको क्षत-विक्षत कर दिया। यह देख श्रीकृष्णने तीन-तीन नाराचोंसे उन तीनोंको वेध डाला। फिर बलदेवने भी पाँच-पाँच पैने बाणोंसे उन सबको घायल कर दिया। इसके बाद पराक्रमी बलरामने चित्रसेनके रथके टुकड़े-टुकड़े कर दिये तथा एक भल्ल मारकर युद्धस्थलमें उसके धनुषके भी दो खण्ड कर डाले। धनुष और रथके नष्ट हो जानेपर रोषमें भरा हुआ पराक्रमी चित्रसेन मूसलधारी बलरामको मार डालनेकी इच्छासे हाथमें गदा लेकर उनकी ओर दौड़ा। यह देख बलराम चित्रसेनके वधकी इच्छासे उसपर नाराचोंकी वृष्टि करने लगे। इतनेहीमें महाबली जरासंधने बलरामजीके धनुषको काट दिया॥ ८७—९१॥ साथ ही क्रोधपूर्वक गदाका प्रहार करके महाबली वीर मगधराज जरासंधने उनके घोड़ोंको कालके गालमें भेज दिया, फिर बलरामजीपर भी धावा किया॥ ९२॥ बलरामजी भी मूसल लेकर जरासंधपर टूट पड़े। एक-दूसरेके वधकी इच्छावाले उन दोनों वीरोंमें घोर युद्ध होने लगा॥ ९३॥ उधर चित्रसेन मगधराजको बलरामजीके साथ उलझा हुआ देख दूसरे रथपर चढ़कर आ गया और जरासंधको लड़नेसे रोकने लगा॥ ९४॥ तदनन्तर वह विशाल गजसेनाके साथ जरासंध और बलरामके बीचमें आ गया और उन दोनों भाइयोंके साथ घोर युद्ध करने लगा॥ ९५॥ तब विशाल सेनासे घिरा हुआ महाबली जरासंध बलराम और श्रीकृष्णके अग्रगामी भोजोंपर जा चढ़ा॥ ९६॥ फिर तो वहाँ उभय पक्षकी सेनाओंमें विक्षुब्ध महासागरके समान बड़ी भयंकर एवं भारी गर्जना सुनायी देने लगी॥ ९७॥ राजन्! दोनों सेनाओंमें वेणु, भेरी, मृदङ्ग और शङ्ख आदि सहस्रों वाद्योंका महान् घोष होने लगा॥ ९८॥ योद्धाओंके गर्जने, ताल ठोंकने और उच्च स्वरसे पुकारने आदिके कारण वहाँ सब ओर तुमुल ध्वनि छा गयी। घोड़ोंकी टापों और रथके पहियोंके प्रान्तभागसे उठी हुई धूल सब ओर उड़ने लगी॥ ९९॥

समुद्यतमहाशस्त्राः प्रगृहीतशरासनाः।
अन्योन्यमभिगर्जन्तः शूरास्तत्रावतस्थिरे॥ १००

रथिनः सादिनश्चैव पत्तयश्च सहस्रशः।
गजाश्चातिबलास्तत्र समुत्पेतुः समन्ततः॥ १०१

स संनिपातस्तुमुलस्त्यक्त्वा प्राणानवर्तत।
वृष्णिभिः सह योधानां जरासंधस्य दारुणः॥ १०२

ततः शिनिरनाधृष्टिर्बभ्रुर्विपृथुराहुकः।
बलदेवं पुरस्कृत्य सैन्यस्यार्द्धेन दंशिताः॥ १०३

दक्षिणं पक्षमासेदुः शत्रुसैन्यस्य भारत।
पालितं चेदिराजेन जरासंधेन वा विभो॥ १०४

उदीच्यैश्च महावीर्यैः शल्यशाल्वादिभिर्नृपैः।
सृजन्तः शरवर्षाणि समभित्यक्तजीविताः॥ १०५

अवगाहः पृथुः कङ्कः शतद्युम्नो विदूरथः।
हृषीकेशं पुरस्कृत्य सैन्यस्यार्द्धेन दंशिताः॥ १०६

भीष्मकेणाभिगुप्तश्च रुक्मिणा च महात्मना।
देवकेनापि राजेन्द्र तथा मद्रेश्वरेण च॥ १०७

प्राच्यैश्च दाक्षिणात्यैश्च गुप्तवीर्यबलान्वितैः।
तेषां च युद्धमभवत् समभित्यक्तजीवितम्॥ १०८

शक्त्यृष्टिप्रासबाणौघान् सृजतामशनिस्वनान्।
सात्यकिश्चित्रकः श्यामो युयुधानश्च वीर्यवान्।
राजाधिदेवो मृदुरः श्वफल्कश्च महारथः॥ १०९

सत्राजिच्च प्रसेनश्च बलेन महता वृताः।
व्यूहस्य पुच्छं ते सर्वे प्रतीयुर्द्विषतां मृधे॥ ११०

व्यूहस्यार्द्धं समासेदुर्मृदुरेणाभिरक्षिताः।
राजभिश्चापि बहुभिर्वेणुदारिमुखैः सह॥ १११

उभय पक्षके शूर-वीर सैनिक बड़े-बड़े शस्त्र उठाये, धनुष लिये एक-दूसरेके सम्मुख गर्जना करते हुए युद्धस्थलमें डटे हुए थे॥ १००॥ उस युद्धमें सब ओर रथी, घुड़सवार, सहस्रों पैदल तथा अत्यन्त बलशाली गजराज एक-दूसरेपर टूट पड़ते थे॥ १०१॥ वृष्णियोंके साथ जरासंधके योद्धाओंका वह घमासान युद्ध प्राणोंका मोह छोड़कर हो रहा था और भयानक रूप धारण करता जा रहा था॥ १०२॥ भरतनन्दन! तदनन्तर शिनि, अनाधृष्टि, बभ्रु (अक्रूर), विपृथु और आहुक (उग्रसेन)—इन सबने बलदेवजीको आगे रखकर अपनी आधी सेनासे घिरे रहकर शत्रुओंकी सेनाके दक्षिण भागपर आक्रमण किया। प्रभो! उस भागकी रक्षा चेदिराज शिशुपाल, जरासंध तथा उत्तर दिशाके महापराक्रमी योद्धा शल्य और शाल्व आदि नरेश कर रहे थे। यादवोंने जीवनका मोह छोड़कर शत्रुओंपर बाणवर्षा आरम्भ कर दी॥ १०३—१०५॥ शेष सेनाके आधे भागसे घिरे हुए अवगाह, पृथु, कङ्क, शतद्युम्न और विदूरथ आदि वीरोंने भगवान् श्रीकृष्णको आगे रखकर शत्रुसेनाके वामभागपर आक्रमण किया॥ १०६॥ राजेन्द्र! वह भाग भीष्मक, महामना रुक्मी, देवक, मद्रराज शल्य तथा गुप्त बल-पराक्रमसे सम्पन्न पूर्व और दक्षिण दिशाके वीरोंसे सुरक्षित था। इन्हीं सब लोगोंमें जीवनका मोह छोड़कर युद्ध होने लगा। ये लोग बिजलीके समान गड़गड़ाहट पैदा करनेवाले शक्ति, ऋष्टि, प्रास तथा बाणसमूहोंकी वर्षा करते थे। सात्यकि, चित्रक, श्याम, पराक्रमी युयुधान, राजाधिदेव, मृदुर, महारथी श्वफल्क, सत्राजित् और प्रसेन—इन सबने विशाल सेनासे घिरकर युद्धस्थलमें शत्रुओंके व्यूहके पुच्छ-भागपर आक्रमण किया। मृदुरसे सुरक्षित रहकर इन्होंने व्यूहके आधे भागपर धावा बोल दिया था, उस समय इनका वेणुदारि आदि बहुत-से राजाओंके साथ युद्ध हुआ॥ १०७—१११॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे विष्णुपर्वणि मथुरोपरोधे युद्धवर्णने पञ्चत्रिंशोऽध्यायः॥ ३५॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत विष्णुपर्वमें जरासंधका मथुरापर घेरा और दोनों पक्षके योद्धाओंके युद्धका वर्णनविषयक पैंतीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ३५॥

षट्त्रिंशोऽध्यायः

वृष्णिवंशियों तथा जरासंधके सैनिकोंका युद्ध, बलराम और जरासंधका गदायुद्ध तथा जरासंधका पराजित होकर पलायन करना

वैशम्पायन उवाच

ततो युद्धानि वृष्णीनां बभूवुः सुमहान्त्यथ।
मागधस्य महामात्रैर्नृपैश्चैवानुयायिभिः॥ १

रुक्मिणा वासुदेवस्य भीष्मकेणाहुकस्य च।
क्रथेन वसुदेवस्य कैशिकस्य तु बभ्रुणा॥ २

गदेन चेदिराजस्य दन्तवक्त्रस्य शङ्कुना।
तथान्यैर्वृष्णिवीराणां नृपाणां च महात्मनाम्॥ ३

युद्धमासीद्धि सैन्यानां सैनिकैर्भरतर्षभ।
अहानि पञ्च चैकं च षट् सप्ताष्टौ च दारुणम्॥ ४

गजैर्गजा हयैरश्वाः पदाताश्च पदातिभिः।
रथै रथा विमिश्राश्च योधा युयुधिरे नृप॥ ५

जरासंधस्य नृपते रामेणासीत् समागमः।
महेन्द्रस्येव वृत्रेण दारुणो रोमहर्षणः॥ ६

अवेक्ष्य रुक्मिणीं कृष्णो रुक्मिणं न व्यपोथयत्।
ज्वलनार्कांशुसंकाशानाशीविषविषोपमान्॥ ७

वारयामास कृष्णो वै शरांस्तस्य तु शिक्षया।
इत्येषां सुमहानासीद् बलौघानां परिक्षयः॥ ८

उभयोः सेनयो राजन् मांसशोणितकर्दमः।
कबन्धानि समुत्तस्थुः सुबहूनि समन्ततः॥ ९

तस्मिन् विमर्दे योधानां संख्यावृत्तिकराणि च।
रथी रामो जरासंधं शरैराशीविषोपमैः॥ १०

आवृण्वन्नभ्ययाद् वीरस्तं च राजा स मागधः।
अभ्यवर्तत वेगेन स्यन्दनेनाशुगामिना॥ ११

अन्योन्यं विविधैरस्त्रैर्विद्ध्वा विद्ध्वा विनेदतुः।
तौ क्षीणशस्त्रौ विरथौ हताश्वौ हतसारथी॥ १२

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! तदनन्तर जरासंधके महावतों और अनुगामी नरेशोंके साथ वृष्णिवंशियोंके कई बड़े-बड़े युद्ध हुए॥ १॥ भरतश्रेष्ठ! रुक्मीके साथ वासुदेव श्रीकृष्णका, भीष्मकके साथ आहुक (उग्रसेन)-का, क्रथके साथ वसुदेवका, बभ्रु (अक्रूर)-के साथ कैशिकका, गदके साथ चेदिराज शिशुपालका, शंकुके साथ दन्तवक्त्रका तथा अन्य सैनिकोंके साथ वृष्णिकुलके महामना वीर नरेशोंका, सारांश यह कि उभय पक्षके सैनिकोंका प्रतिद्वन्द्वी सैनिकोंके साथ दारुण द्वन्द्व युद्ध होने लगा, जो सत्ताईस दिनोंतक चलता रहा॥ २—४॥ नरेश्वर! हाथियोंसे हाथी, घोड़ोंसे घोड़े, पैदलोंसे पैदल और रथोंसे रथ मिश्रित हो गये और इस प्रकार घोल-मेल कर सभी योद्धा विपक्षियोंके साथ युद्ध करने लगे॥ ५॥ राजा जरासंधका बलरामजीके साथ उसी प्रकार दारुण एवं रोमाञ्चकारी संघर्ष हुआ, जैसा वृत्रासुरके साथ देवराज इन्द्रका हुआ था॥ ६॥ रुक्मिणीके साथ भविष्यमें होनेवाले सम्बन्धको दृष्टिमें रखकर श्रीकृष्णने रुक्मीको नहीं मारा, उसकी ओरसे आनेवाले अग्नि और सूर्यकी किरणोंके समान तेजस्वी तथा विषधर सर्पोंके समान विषैले बाणोंका उन्होंने अपनी शिक्षाके बलसे निवारण कर दिया। राजन्! इस प्रकार दोनों सेनाओंके सैनिकसमूहोंका महान् विनाश हुआ। वहाँ रक्त और माँसकी कीच जम गयी। योद्धाओंके उस महान् संहारमें चारों ओरसे बहुत-से कबन्ध उठने लगे, जिनकी गणना नहीं की जा सकती थी। रथारूढ़ वीर बलरामने विषधर सर्पोंके समान भयंकर बाणोंद्वारा जरासंधको आच्छादित करते हुए उसपर आक्रमण किया तथा मगधराज भी अपने शीघ्रगामी रथद्वारा बड़े वेगसे उनका सामना करनेके लिये पहुँचा॥ ७—११॥ वे दोनों नाना प्रकारके अस्त्रोंद्वारा एक-दूसरेको घायल करके जोर-जोरसे गरजते थे। दोनोंके अस्त्र-शस्त्र क्षीण हो गये, दोनों ही रथहीन हो गये तथा दोनोंके ही घोड़े और सारथि मारे गये।

गदे गृहीत्वा विक्रान्तावन्योन्यमभिधावताम्।
कम्पयन्तौ भुवं वीरौ तावुद्यतगदावुभौ॥ १३

ददृशाते महात्मानौ गिरी सशिखराविव।
व्युपारमन्त युद्धानि पश्यता तौ महाभुजौ।
संरब्धावभिधावन्तौ गदायुद्धेषु विश्रुतौ॥ १४

उभौ तौ परमाचार्यौ लोके ख्यातौ महाबलौ।
मत्ताविव गजौ युद्धे तावन्योन्यमयुध्यताम्॥ १५

ततो देवाः सगन्धर्वाः सिद्धाश्च समहर्षयः।
समन्ततश्चाप्सरसः समाजग्मुः सहस्रशः॥ १६

तद् देवयक्षगन्धर्वमहर्षिभिरलंकृतम्।
शशुभेऽभ्यधिकं राजन् दिवं ज्योतिर्गणैरिव॥ १७

अभिदुद्राव रामं तु जरासंधो महाबलः।
सव्यं मण्डलमाश्रित्य बलदेवस्तु दक्षिणम्॥ १८

प्रहरन्तौ ततोऽन्योन्यं गदायुद्धविशारदौ।
दन्ताभ्यामिव मातङ्गौ नादयन्तौ दिशो दश॥ १९

गदानिपातो रामस्य शुश्रुवेऽशनिनिःस्वनः।
जरासंधस्य च रणे पर्वतस्येव दीर्यतः॥ २०

न स्म कम्पयते रामं जरासंधकरच्युता।
गदा गदाभृतां श्रेष्ठं विन्ध्यं गिरिमिवानिलः॥ २१

रामस्य तु गदावेगं वीर्यात् स मगधेश्वरः।
सेहे धैर्येण महता शिक्षया च व्यपोहयत्॥ २२

एवं तौ तत्र संग्रामे विचरन्तौ महाबलौ।
मण्डलानि विचित्राणि विचेरतुररिंदमौ॥ २३

व्यायच्छन्तौ चिरं कालं परिश्रान्तौ च तस्थतुः।
समाश्वस्य मुहूर्तं तु पुनरन्योन्यमाहताम्॥ २४

एवं तौ योधमुख्यौ तु समं युयुधतुश्चिरम्।
न च तौ युद्धवैमुख्यमुभावेव प्रजग्मतुः॥ २५

अथापश्यद् गदायुद्धे विशेषं तस्य वीर्यवान्।
रामः क्रुद्धो गदां त्यक्त्वा जग्राह मुसलोत्तमम्॥ २६

उस दशामें वे दोनों पराक्रमी योद्धा गदा हाथमें लेकर एक-दूसरेपर टूट पड़े। हाथमें गदा उठाये वे दोनों महामनस्वी वीर पृथ्वीको कम्पित करते हुए वहाँ एक-एक शिखरवाले दो पर्वतोंके समान दिखायी देते थे। उन दोनों महाबाहु वीरोंको युद्धके लिये उद्यत देख दूसरे योद्धाओंके युद्ध बंद हो गये। उन दोनोंकी गदायुद्धमें ख्याति थी। वे दोनों बड़े रोषमें भरकर एक-दूसरेपर धावा करते थे॥ १२—१४॥ वे दोनों महाबली वीर संसारमें गदायुद्धके उत्तम आचार्यके रूपमें विख्यात थे तथा जैसे दो मतवाले हाथी लड़ते हैं, उसी प्रकार रणभूमिमें वे एक-दूसरेके साथ जूझ रहे थे॥ १५॥ उस समय गन्धर्वोंसहित देवता, सिद्ध, महर्षि तथा सहस्रों अप्सराएँ सब ओरसे उस युद्धको देखनेके लिये आ पहुँचीं॥ १६॥ राजन्! देवताओं, यक्षों, गन्धर्वों और महर्षियोंसे अलंकृत हुआ आकाशका वह भाग नक्षत्रसमूहोंसे विभूषित हुआ-सा अधिक शोभा पाने लगा। महाबली जरासंध बायेंसे पैंतरा देकर बलरामजीकी ओर दौड़ा और बलरामजीने दाहिनेसे उसपर आक्रमण किया॥ १७-१८॥ गदायुद्धमें कुशल वे दोनों वीर दसों दिशाओंको निनादित करते हुए एक-दूसरेपर उसी प्रकार प्रहार करने लगे, जैसे दो मतवाले हाथी परस्पर दाँतोंसे आघात करते हों। बलरामजी जब गदाका आघात करते, तब वज्रपातके समान भयानक शब्द सुनायी पड़ता था तथा रणभूमिमें जरासंधके गदाघातसे ऐसी आवाज होती थी, मानो कोई पर्वत फट पड़ा हो॥ १९-२०॥ जैसे प्रचण्ड वायु विन्ध्यपर्वतको नहीं हिला सकती, उसी प्रकार जरासंधके हाथसे छूटी हुई गदा गदाधारियोंमें श्रेष्ठ बलरामजीको कम्पित नहीं कर पाती थी। बलरामजीकी गदाके वेगको मगधराज जरासंध अपने बलकी अधिकताके कारण महान् धैर्यके साथ सह लेता था तथा अपनी शिक्षाके द्वारा उनके प्रहारको व्यर्थ कर देता था॥ २१-२२॥ इस प्रकार शत्रुओंका दमन करनेवाले वे दोनों महाबली योद्धा उस संग्राममें विचित्र पैंतरे दिखाते हुए विचर रहे थे॥ २३॥ देरतक परिश्रम करके थक जानेपर दोनों खड़े हो जाते थे; फिर दो घड़ीतक सुस्ताकर एक-दूसरेपर प्रहार करने लगते थे॥ २४॥ इस प्रकार वे दोनों प्रमुख योद्धा समानभावसे देरतक लड़ते रहे। वे दोनों ही युद्धसे विमुख नहीं हुए॥ २५॥ तदनन्तर पराक्रमी बलरामजीने जब गदा-युद्धमें जरासंधकी विशेषता देखी, तब उन्होंने कुपित हो गदा त्यागकर उत्तम मूसल हाथमें लिया॥ २६॥

तमुद्यन्तं तदा दृष्ट्वा मुसलं घोरदर्शनम्।
अमोघं बलदेवेन क्रुद्धेन तु महारणे॥ २७
ततोऽन्तरिक्षे वागासीत् सुस्वरा लोकसाक्षिणी।
उवाच बलदेवं तं समुद्यतहलायुधम्॥ २८
न त्वया राम वध्योऽयमलं खेदेन मानद।
विदितोऽस्य मया मृत्युस्तस्मात् साधु व्युपारम।
अचिरेणैव कालेन प्राणांस्त्यक्ष्यति मागधः॥ २९
जरासंधस्तु तच्छ्रुत्वा विमनाः समपद्यत।
न प्रजह्रे ततस्तस्मै पुनरेव हलायुधः॥ ३०
तौ व्युपारमतां युद्धे वृष्णयस्ते च पार्थिवाः।
असक्तमभवद् युद्धं तेषामेवं सुदारुणम्॥ ३१
दीर्घकालं महाराज निघ्नतामितरेतरम्।
पराजिते त्वपक्रान्ते जरासंधे महीपतौ॥ ३२
अस्तं याते दिनकरे नानुसस्त्रुस्तदा निशि।
समानीय स्वकं सैन्यं लब्धलक्ष्या महाबलाः॥ ३३
पुरीं प्रविविशुर्हृष्टाः केशवेनाभिपालिताः।
खाच्च्युतान्यायुधान्येवं तान्येवान्तर्दधुस्तदा॥ ३४
जरासंधोऽपि नृपतिर्विमनाः स्वपुरीं ययौ।
राजानश्चानुगा येऽस्य स्वराष्ट्राण्येव ते ययुः॥ ३५
जरासंधं तु ते जित्वा मेनिरे नैव निर्जितम्।
वृष्णयः कुरुशार्दूल राजा ह्यतिबलः स वै॥ ३६
दश चाष्टौ च संग्रामाञ्जरासंधस्य यादवाः।
ददुर्न चैनं समरे हन्तुं शेकुर्महाबलाः॥ ३७
अक्षौहिण्यश्च तस्यासन् विंशतिश्च महामते।
जरासंधस्य नृपतेस्तदर्थं याः समागताः॥ ३८
अल्पत्वादभिभूतास्तु वृष्णयो भरतर्षभ।
बार्हद्रथेन राजेन्द्र राजभिः सहितेन वै॥ ३९
जित्वा तु मागधं संख्ये जरासंधं महीपतिम्।
विहरन्ति स्म सुखिनो वृष्णिसिंहा महारथाः॥ ४०

उस महासमरमें कुपित हुए बलदेवजीके द्वारा उस भयानक तथा अमोघ मूसलको उठाया जाता देख आकाशमें सब लोगोंके सामने स्पष्ट शब्दोंमें देववाणी सुनायी दी। उसने हल-मूसल उठाये हुए बलदेवजीसे कहा— ॥ २७-२८ ॥ 'दूसरोंको मान देनेवाले बलरामजी! जरासंधका वध आपके हाथसे होनेवाला नहीं है; अतः खेद करनेकी आवश्यकता नहीं है। इसकी मृत्युका हेतु मुझे विदित हो गया है; अतः आप इसे मारनेकी चेष्टासे निवृत्त हो जाइये। मगधराज जरासंध थोड़े ही समयमें अपने प्राणोंका परित्याग करेगा'॥ २९॥ यह सुनकर जरासंधका मन उदास हो गया और बलरामजीने फिर उसपर प्रहार नहीं किया॥ ३०॥ अब वे दोनों युद्धसे विरत हो गये; फिर तो वृष्णिवंशी योद्धा तथा दूसरे राजाओंने भी युद्ध बंद कर दिया। महाराज! इस प्रकार दीर्घकालतक एक-दूसरेपर प्रहार करते हुए उन योद्धाओंका जो अत्यन्त भयंकर युद्ध अविराम गतिसे चलता आ रहा था, वह शान्त हो गया। राजा जरासंध जब परास्त होकर युद्धसे हट गया और सूर्यदेव अस्त हो गये, तब रातके समय यादवोंने फिर उसका पीछा नहीं किया। भगवान् श्रीकृष्णद्वारा सुरक्षित महाबली यादव अपने लक्ष्यमें सफल हो चुके थे, अतः वे अपनी सेना साथ लेकर बड़ी प्रसन्नताके साथ मथुरापुरीमें लौट आये। इसी तरह आकाश या दिव्य लोकसे जो आयुध आये थे, वे भी तत्काल अन्तर्धान हो गये। इधर राजा जरासंध भी उदास होकर अपनी पुरीको लौट गया। उसके साथ जो राजा लोग आये थे, वे भी अपने-अपने राष्ट्रोंको ही लौट गये॥ ३१—३५॥ कुरुश्रेष्ठ! वृष्णिवंशी वीर जरासंधको जीतकर भी उसे हारा हुआ नहीं मानते थे; क्योंकि उस राजाके पास बहुत बड़ी सेना थी तथा वह स्वयं भी अत्यन्त बलशाली था॥ ३६॥ महाबली यादवोंने जरासंधको अठारह बार युद्धका अवसर प्रदान किया; किंतु वे किसी भी समरमें उसे मार न सके॥ ३७॥ महामते! राजा जरासंधके पास बीस अक्षौहिणी सेनाएँ थीं, जो उसके लिये लड़नेको आयी थीं॥ ३८॥ भरतश्रेष्ठ! राजेन्द्र! वृष्णिवंशी वीर संख्यामें बहुत कम थे, इसलिये वे राजाओंसहित जरासंधसे अभिभूत हो जाते थे॥ ३९॥ मगधके राजा पृथ्वीपति जरासंधको इस प्रकार युद्धमें जीतकर वृष्णिवंशके सिंह-जैसे पराक्रमी महारथी सुखपूर्वक वहाँ विहार करने लगे॥ ४०॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे विष्णुपर्वणि जरासंधापयानं नाम षट्त्रिंशोऽध्यायः॥ ३६॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत विष्णुपर्वमें जरासंधका पलायनविषयक छत्तीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ३६॥

सप्तत्रिंशोऽध्यायः

जरासंधके पुनः आक्रमणसे शङ्कित यादवोंकी सभामें विकद्रुका भाषण—राजा हर्यश्वका चरित्र तथा उनसे यदु एवं यादवोंकी उत्पत्तिका वर्णन

वैशम्पायन उवाच

स कृष्णस्तत्र बलवान् रौहिणेयेन संगतः।
मथुरां यादवाकीर्णां पुरीं तां सुखमावसत्॥ १

प्राप्तयौवनदेहस्तु युक्तो राजश्रिया विभुः।
चचार मथुरां प्रीतः सवनाकरभूषणाम्॥ २

कस्यचित् त्वथ कालस्य राजा राजगृहेश्वरः।
सस्मार निहतं कंसं जरासंधः प्रतापवान्॥ ३

युद्धाय योजितो भूयो दुहितृभ्यां महीपतिः।
दश सप्त च संग्रामाञ्जरासंधस्य यादवाः।
ददुर्न चैनं समरे हन्तुं शेकुर्महारथाः॥ ४

ततो मागधराट् श्रीमांश्चतुरङ्गबलान्वितः।
भूयोऽप्यष्टादशं कर्तुं संग्रामं स समारभत्॥ ५

वैलक्ष्यात् पुनरेवासौ राजा राजगृहेश्वरः।
जरासंधो बली श्रीमान् पाकशासनविक्रमः॥ ६

स साधनेन महता बृहद्रथसुतो बली।
कृष्णस्य वधमन्विच्छन् भूयो वै संन्यवर्तत॥ ७

तं श्रुत्वा सहिताः सर्वे निवृत्तं मगधेश्वरम्।
यादवा मन्त्रयामासुर्जरासंधभयार्दिताः॥ ८

ततः प्राह महातेजा विकद्रुर्नयकोविदः।
कृष्णं कमलपत्राक्षमुग्रसेनस्य शृण्वतः॥ ९

श्रूयतां तात गोविन्द कुलस्यास्य समुद्भवः।
श्रूयतामभिधास्यामि प्राप्तकालमहं ततः।
युक्तं चेन्मन्यसे साधो करिष्यसि वचो मम॥ १०

यादवस्यास्य वंशस्य समुद्भवमशेषतः।
यथा मे कथितः पूर्वं व्यासेन विदितात्मना॥ ११

आसीद् राजा मनोर्वंशे श्रीमानिक्ष्वाकुसम्भवः।
हर्यश्व इति विख्यातो महेन्द्रसमविक्रमः॥ १२

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! महाबली भगवान् श्रीकृष्ण रोहिणीकुमार बलदेवजीके साथ मिलकर यादवोंसे भरी हुई उस मथुरापुरीमें सुखपूर्वक रहने लगे॥ १॥ उनके श्रीअङ्गोंमें यौवनावस्थाका प्रवेश हुआ था। वे भगवान् राजोचित शोभासे सम्पन्न हो वनप्रान्तसे विभूषित मथुरामें प्रसन्नतापूर्वक विचरते थे॥ २॥ कुछ कालके अनन्तर राजगृहके स्वामी प्रतापी राजा जरासंधने कंसके मारे जानेकी घटनाको फिरसे स्मरण किया॥ ३॥ उसकी दोनों कन्याओंने पुनः उसे युद्धके लिये उत्साहित किया। यादवोंने जरासंधको क्रमशः सत्रह बार युद्धका अवसर दिया; परंतु वे महारथी यादव समरभूमिमें उसे मार न सके॥ ४॥ तदनन्तर श्रीमान् मगधराजने चतुरङ्गिणी सेनाको साथ लेकर फिर अठारहवीं बार यादवोंके साथ युद्ध करनेका आयोजन किया॥ ५॥ राजगृहका स्वामी बलवान् राजा श्रीमान् जरासंध इन्द्रके समान पराक्रमी था। उसने पहलेकी पराजयसे लज्जाका अनुभव करनेके कारण पुनः युद्धकी तैयारी की॥ ६॥ बृहद्रथका वह बलवान् पुत्र महान् साधनसे सम्पन्न हो श्रीकृष्णका वध चाहता हुआ फिर मथुरापुरीकी ओर लौटा॥ ७॥ मगधराजको पुनः लौटा हुआ सुनकर जरासंधके भयसे पीड़ित हुए सब यादव एक साथ बैठकर मन्त्रणा करने लगे॥ ८॥ उस समय नीतिकुशल महातेजस्वी विकद्रुने उग्रसेनके सुनते हुए कमलनयन श्रीकृष्णसे कहा—॥ ९॥ 'तात! गोविन्द! इस कुलकी उत्पत्तिका प्रसंग सुनो। इसके लिये उपयुक्त अवसर आया है, इसलिये बता रहा हूँ; ध्यान देकर श्रवण करो। साधो! इसे सुनकर यदि उचित समझो तो मेरे कथनानुसार कार्य करना॥ १०॥ यादववंशकी इस उत्पत्तिका सारा प्रसंग आत्मज्ञानी व्यासजीने पूर्वकालमें मुझे जैसा बताया था, वैसा ही सुना रहा हूँ॥ ११॥ वैवस्वत मनुके वंशमें इक्ष्वाकुके पुत्र हर्यश्व नामसे विख्यात एक श्रीसम्पन्न राजा हो गये हैं, जो महेन्द्रके तुल्य पराक्रमी थे॥ १२॥

तस्यासीद् दयिता भार्या मधोर्दैत्यस्य वै सुता।
देवी मधुमती नाम यथेन्द्रस्य शची तथा॥ १३

सा यौवनगुणोपेता रूपेणाप्रतिमा भुवि।
मनोरथकरी राज्ञः प्राणेभ्योऽपि गरीयसी॥ १४

दानवेन्द्रकुले जाता सुश्रोणी कामरूपिणी।
एकपत्नीव्रतधरा खेचरा रोहिणी यथा॥ १५

सा तमिक्ष्वाकुशार्दूलं कामयामास कामिनी।
स कदाचिन्नरश्रेष्ठो भ्रात्रा ज्येष्ठेन माधव॥ १६

राज्यान्निरस्तो विश्वस्तः सोऽयोध्यां सम्परित्यजत्।
स तदाल्पपरीवारः प्रियया सहितो वने॥ १७

रेमे समेत्य कालज्ञः प्रियया कमलेक्षणः।
भ्रात्रा विनिष्कृतं राज्यात् प्रोवाच कमलेक्षणा॥ १८

एह्यागच्छ नरश्रेष्ठ त्यज राज्यकृतां स्पृहाम्।
गच्छावः सहितौ वीर मधोर्मम पितुर्गृहम्॥ १९

रम्यं मधुवनं नाम कामपुष्पफलद्रुमम्।
सहितौ तत्र रंस्यावो यथा दिवि गतौ तथा॥ २०

पितुर्मे दयितस्त्वं हि मातुर्मम च पार्थिव।
मत्प्रियार्थं प्रियतरो भ्रातुश्च लवणस्य वै॥ २१

रंस्यावस्तत्र सहितौ राज्यस्थाविव कामगौ।
तत्र गत्वा नरश्रेष्ठ ह्यमराविव नन्दने।
भद्रं ते विहरिष्यावो यथा देवपुरे तथा॥ २२

तं त्यजाव महाराज भ्रातरं तेऽभिमानिनम्।
आवयोर्द्वेषिणं नित्यं मत्तं राज्यमदेन वै॥ २३

धिगिमं गर्हितं वासं भृत्यवच्च पराश्रयम्।
गच्छावः सहितौ वीर पितुर्मे भवनान्तिकम्॥ २४

मधु नामक दैत्यकी पुत्री मधुमती देवी उनकी प्राणप्यारी भार्या थी। जैसे इन्द्रको शची प्रिय हैं, उसी प्रकार हर्यश्वको मधुमती प्रिय थी॥ १३॥ वह यौवनके गुणोंसे सम्पन्न थी। इस पृथ्वीपर उसके रूप-सौन्दर्यकी कहीं तुलना नहीं थी। वह राजा हर्यश्वके मनोरथको सिद्ध करनेवाली होनेके कारण उन्हें प्राणोंसे भी अधिक माननीया थी॥ १४॥ दानवराज मधुके कुलमें उत्पन्न हुई वह सुन्दर कटिप्रदेशवाली कामरूपिणी देवी रोहिणीके समान एकपत्नीव्रतका पालन करनेवाली तथा आकाशमें विचरनेवाली थी॥ १५॥ वह कामिनी होकर इक्ष्वाकुवंशके श्रेष्ठ वीर हर्यश्वको सम्पूर्ण हृदयसे चाहती थी। माधव! एक दिन बड़े भाईने उनके विश्वासपर रहनेवाले नरश्रेष्ठ हर्यश्वको राज्यसे निकाल दिया, तब उन्होंने अयोध्या छोड़ दी और थोड़े-से परिवारके साथ अपनी प्रिया मधुमतीसहित वे वनमें रहने लगे॥ १६-१७॥ कालकी महिमाको जाननेवाले कमलनयन हर्यश्व अपनी प्यारी पत्नीके साथ मिलकर वहाँ बड़े आनन्दसे समय बिताने लगे।' एक दिन कमलनयनी मधुमतीने भाईद्वारा राज्यसे निकाले गये पतिसे कहा— ॥ १८॥ 'नरश्रेष्ठ वीर! अयोध्याके राज्यकी अभिलाषा छोड़ दो और आओ मेरे साथ चलो। हम दोनों मेरे पिता मधुके घरपर चलें॥ १९॥ सुरम्य मधुवन नामक वन ही मेरे पिताका निवासस्थान है। वहाँके वृक्ष इच्छानुसार फूल और फल देनेवाले हैं। वहाँ हम दोनों साथ रहकर स्वर्गवासियोंके समान मौज करेंगे॥ २०॥ पृथ्वीनाथ! मेरे पिता और माता दोनोंको ही तुम बहुत प्रिय हो तथा मेरा प्रिय करनेके लिये मेरा भाई लवणासुर भी तुम्हें अत्यन्त प्रिय मानेगा॥ २१॥ नरश्रेष्ठ! वहाँ जाकर हम दोनों साथ-साथ रहकर राज्यपर बैठे हुए दम्पतियोंकी भाँति इच्छानुरूप वस्तुओंका उपभोग करते हुए रमण करेंगे। जैसे देवपुरीके नन्दनवनमें देवाङ्गना और देवता विहार करते हैं, उसी प्रकार वहाँ हम दोनों विहार करेंगे। आपका भला हो॥ २२॥ महाराज! आपका भाई राज्यके मदसे सदा उन्मत्त रहकर अभिमानमें भरा रहता है और हम दोनोंसे द्वेष रखता है; अतः हम दोनों उसे त्याग दें॥ २३॥ दासकी भाँति दूसरेके आश्रित होकर रहना अच्छा नहीं है; अतः इस निन्दित निवासको धिक्कार है। वीर! चलो, हम दोनों मेरे पिताके घरके पास चलें'॥ २४॥

तस्य सम्यक्प्रवृत्तस्य पूर्वजं भ्रातरं प्रति।
कामार्तस्य नरेन्द्रस्य पत्न्यास्तद् रुरुचे वचः॥ २५
ततो मधुपुरं राजा हर्यश्वः स जगाम च।
भार्यया सह कामिन्या कामी पुरुषपुङ्गवः॥ २६
मधुना दानवेन्द्रेण स साम्ना समुदाहृतः।
स्वागतं वत्स हर्यश्व प्रीतोऽस्मि तव दर्शनात्॥ २७
यदेतन्मम राज्यं वै सर्वं मधुवनं विना।
ददामि तव राजेन्द्र वासश्च प्रतिगृह्यताम्॥ २८
वनेऽस्मिंल्लँवणश्चायं सहायस्ते भविष्यति।
अमित्रनिग्रहे चैव कर्णधारत्वमेष्यति॥ २९
पालयैनं शुभं राष्ट्रं समुद्रानूपभूषितम्।
गोसमृद्धं श्रिया जुष्टमाभीरप्रायमानुषम्॥ ३०
अत्र ते वसतस्तात दुर्गं गिरिपुरं महत्।
भविता पार्थिवावासः सुराष्ट्रविषयो महान्॥ ३१
अनूपविषयश्चैव समुद्रान्ते निरामयः।
आनर्तं नाम ते राष्ट्रं भविष्यत्यायतं महत्॥ ३२
तद् भविष्यमहं मन्ये कालयोगेन पार्थिव।
अध्यास्यतां यथाकालं पार्थिवं वृत्तमुत्तमम्॥ ३३
यायातमपि वंशस्ते समेष्यति च यादवम्।
अनु वंशं च वंशस्ते सोमस्य भविता किल॥ ३४
एष मे विभवस्तात तवेमं विषयोत्तमम्।
दत्त्वा यास्यामि तपसे सागरं लवणालयम्॥ ३५
लवणेन समायुक्तस्त्वमिमं विषयोत्तमम्।
पालयस्वाखिलं तात स्वस्य वंशस्य वृद्धये॥ ३६
बाढमित्येव हर्यश्वः प्रतिजग्राह तत् पुरम्।
स च दैत्यस्तपोवासं जगाम वरुणालयम्॥ ३७
हर्यश्वश्च महातेजा दिव्ये गिरिवरोत्तमे।
निवेशयामास पुरं वासार्थममरोपमः॥ ३८
आनर्तं नाम तद् राष्ट्रं सुराष्ट्रं गोधनायुतम्।
अचिरेणैव कालेन समृद्धं प्रत्यपद्यत॥ ३९

'श्रीकृष्ण! यद्यपि हर्यश्वका अपने बड़े भाईके प्रति अच्छा बर्ताव था (वह उनसे कोई प्रतिशोध नहीं लेना चाहता था) तो भी कामसे पीड़ित होनेके कारण उस नरेशको पत्नीकी बात पसंद आ गयी॥ २५॥ तब कामी पुरुषप्रवर राजा हर्यश्व अपनी कामवती पत्नीके साथ मधुपुरको चला गया'॥ २६॥ वहाँ दानवराज मधुने उससे सान्त्वनापूर्वक कहा—'बेटा हर्यश्व! तुम्हारा स्वागत है। मैं तुम्हारे दर्शनसे (अथवा तुमसे मिलकर) बहुत प्रसन्न हूँ॥ २७॥ राजेन्द्र! यह जो मेरा सारा राज्य है, उसे मैं केवल मधुवनको छोड़कर तुम्हें सौंप रहा हूँ। तुम यहाँ निवास करो॥ २८॥ इस वनमें यह मेरा पुत्र लवण भी तुम्हारा सहायक होगा तथा शत्रुओंका निग्रह करनेमें यह तुम्हारे लिये कर्णधारका काम देगा॥ २९॥ तुम समुद्रके जलप्राय प्रदेशसे विभूषित इस शुभ राष्ट्रका पालन करो। यह गौओंसे समृद्ध और लक्ष्मीसे सेवित है तथा इसमें अधिकतर आभीर जातिके लोगोंका निवास है॥ ३०॥ तात! यहाँ रहनेपर महान् एवं दुर्गम गिरिपुर (गिरिनार या रैवतक पर्वतसे मिला हुआ नगर) तुम्हारी राजधानीके रूपमें प्रतिष्ठित होगा। यह महान् सुराष्ट्र राज्य समुद्रके निकट और जलप्राय प्रदेशसे युक्त है। यहाँ किसी प्रकारका रोग नहीं होता। तुम्हारा विशाल एवं विस्तृत राज्य आनर्त नामसे विख्यात होगा। पृथ्वीनाथ! मेरा विश्वास है कि कालयोगसे वह अवश्यम्भावी है। तुम समयानुसार उत्तम राजोचित बर्तावका आश्रय लेकर यहाँ रहो॥ ३१—३३॥ तुम्हारा यह वंश ययाति एवं यदुके वंशमें मिल जायगा। चन्द्रवंशके भीतर तुम्हारा वंश चलेगा (सूर्यवंशसे उसका कोई सम्बन्ध नहीं रह जायगा)॥ ३४॥ तात! यही मेरा विभव है। मैं तुम्हें यह उत्तम राज्य देकर तपस्याके लिये लवणसमुद्रको चला जाऊँगा॥ ३५॥ 'तात! तुम लवणके साथ रहकर अपने वंशकी वृद्धिके लिये इस समस्त उत्तम राज्यका पालन करो'॥ ३६॥ तब 'बहुत अच्छा' कहकर हर्यश्वने उस पुरको ग्रहण किया; फिर वह दैत्य तपस्याके लिये समुद्रको चला गया॥ ३७॥ 'अमरोंके समान महातेजस्वी हर्यश्वने दिव्य एवं श्रेष्ठ गिरिवर (रैवतक)-के समीप अपने रहनेके लिये एक नगर बसाया॥ ३८॥ आनर्त नामसे प्रसिद्ध वह गोधनसम्पन्न राष्ट्र सुराष्ट्र कहलाया और थोड़े ही समयमें समृद्धिशाली हो गया'॥ ३९॥

अनूपविषये चैव वेलावनविभूषितम्।
विचित्रं क्षेत्रसस्याढ्यं प्राकारग्रामसंकुलम्॥ ४०

शशास नृपतिः स्फीतं तद् राष्ट्रं राष्ट्रवर्द्धनः।
राजधर्मेण यशसा प्रजानां नन्दिवर्द्धनः॥ ४१

तस्य सम्यक् प्रचारेण हर्यश्वस्य महात्मनः।
व्यवर्धत तदक्षोभ्यं राष्ट्रं राष्ट्रगुणैर्युतम्॥ ४२

स हि राजा स्थितो राज्ये राजवृत्तेन शोभितः।
प्राप्तः कुलोचितां लक्ष्मीं वृत्तेन च नयेन च॥ ४३

तस्यैव च सुवृत्तस्य पुत्रकामस्य धीमतः।
मधुमत्यां सुतो जज्ञे यदुर्नाम महायशाः॥ ४४

सोऽवर्धत महातेजा यदुर्दुन्दुभिनिःस्वनः।
राजलक्षणसम्पन्नः सपत्नैर्दुरतिक्रमः॥ ४५

यदुर्नामाभवत् पुत्रो राजलक्षणपूजितः।
यथास्य पूर्वजो राजा पूरुः स सुमहायशाः॥ ४६

स एक एव तस्यासीत् पुत्रः परमशोभनः।
ऊर्जितः पृथिवीभर्ता हर्यश्वस्य महात्मनः॥ ४७

दश वर्षसहस्राणि स कृत्वा राज्यमव्ययम्।
जगाम त्रिदिवं राजा धर्मेणाप्रतिमो भुवि॥ ४८

ततो यदुरदीनात्मा प्रजाभिस्त्वभ्यषिच्यत।
पितर्युपरते श्रीमान् क्रमेणार्क इवोदितः॥ ४९

शशास चेमां वसुधां प्रशान्तभयतस्कराम्।
यदुरिन्द्रप्रतीकाशो नृपो येनास्म यादवाः॥ ५०

स कदाचिन्नृपश्चक्रे जलक्रीडां महोदधौ।
दारैः सह गुणोदारैः सतार इव चन्द्रमाः॥ ५१

स तत्र सहसा क्षिप्तस्तितीर्षुः सागराम्भसि।
धूम्रवर्णेन नृपतिः सर्पराजेन वीर्यवान्॥ ५२

'जलप्राय देशमें समुद्रतटवर्ती वनोंसे विभूषित, विचित्र खेतों और हरी-भरी खेतीसे सुशोभित, परकोटों और गाँवोंसे युक्त तथा धनधान्यसे सम्पन्न उस राष्ट्रपर राष्ट्रकी वृद्धि करनेवाले राजा हर्यश्व शासन करने लगे और राजधर्म एवं यशसे प्रजाका आनन्द बढ़ाने लगे॥ ४०-४१॥ महामना हर्यश्वके उत्तम आचार-व्यवहारके कारण वह अक्षोभ्य राष्ट्र उत्तम राष्ट्रके गुणोंसे सम्पन्न हो निरन्तर उन्नति करने लगा॥ ४२॥ राज्यपर स्थित होकर राजोचित बर्तावसे सुशोभित होनेवाले उन राजा हर्यश्वने सदाचार और उत्तम नीतिसे अपने कुलके लिये उचित लक्ष्मी प्राप्त कर ली॥ ४३॥ पुत्रकी इच्छा रखनेवाले उन्हीं सदाचारी एवं बुद्धिमान् हर्यश्वके मधुमतीके गर्भसे महायशस्वी यदुका जन्म हुआ*॥ ४४॥ महातेजस्वी यदुका स्वर दुन्दुभिनिनादके समान गम्भीर था। वे राजोचित लक्षणोंसे सम्पन्न होकर दिनोंदिन बढ़ने लगे। शत्रुओंके लिये वे सर्वथा दुर्जय थे॥ ४५॥ हर्यश्वका वह पुत्र यदु नामसे ही विख्यात हुआ। यदु राजोचित लक्षणोंसे सम्मानित थे, ठीक उसी तरह जैसे उनके पूर्वज राजा महायशस्वी पूरु सम्मानित होते थे॥ ४६॥ महामना हर्यश्वके एक ही पुत्र यदु हुए। वे परम सुन्दर, बलवान् और पृथ्वीका भरण-पोषण करनेमें समर्थ थे॥ ४७॥ राजा हर्यश्व दस हजार वर्षोंतक अक्षय राज्यका उपभोग करके स्वर्गलोकमें चले गये। वे भूमण्डलके अनुपम धर्मात्मा थे॥ ४८॥ पिताके मर जानेपर प्रजाओंने उदारचेता श्रीमान् यदुको उनके राज्यपर अभिषिक्त कर दिया। वे क्रमशः एक सूर्यके बाद दूसरे सूर्यके समान उदित हो प्रकाशित होने लगे॥ ४९॥ वे इन्द्रतुल्य तेजस्वी यदु, जिनके कारण हमलोग यादव कहलाते हैं, जब इस पृथ्वीका शासन करने लगे, तब यहाँका सारा भय शान्त हो गया। चोर-लुटेरे आदि लुप्त हो गये'॥ ५०॥ एक समयकी बात है, राजा यदु अपनी उदार गुणवाली पत्नियोंके साथ ताराओंसहित चन्द्रमाके समान महासागरमें जलक्रीडा कर रहे थे॥ ५१॥ वे पराक्रमी राजा यदु जलको पार करके निकलना ही चाहते थे कि सहसा किसीने उन्हें समुद्रके गहरे जलमें डाल दिया। बात यह हुई कि सर्पोंके राजा धूम्रवर्णने

* कहते हैं, जैसे ब्रह्माजीके मानसपुत्र वसिष्ठ किसी कारणवश मित्रावरुणके अंशसे नूतन शरीर धारण करके प्रकट हुए; फिर भी वसिष्ठ ही बने रहे, उसी प्रकार ययातिपुत्र महाराज यदु ही योगबलसे हर्यश्वके पुत्ररूपमें प्रकट हुए थे और उसी पूर्व नामसे प्रख्यात हुए।

सोऽपाकृष्यत वेगेन जले सर्पपुरं महत्।
मणिस्तम्भगृहद्वारं मुक्तादामविभूषितम्॥ ५३
कीर्णं शङ्खकुलैः शुभ्रै रत्नराशिविभूषितम्।
प्रवालाङ्कुरपत्राढ्यैः पादपैरुपशोभितम्॥ ५४
कीर्णं पन्नगनार्योघैः समुद्रोदरवासिभिः।
स्वर्णवर्णेन भास्वन्तं स्वस्तिकेनेन्दुवर्चसा॥ ५५
स तं ददर्श राजेन्द्रो विमले सागराम्भसि।
पन्नगेन्द्रपुरं तोये जगत्यामिव निर्मितम्॥ ५६
स्वच्छं चैव पुरं तत्र प्रविवेश नृपो यदुः।
अगाधं तोयदाकारं पूर्णं सर्पवधूगणैः॥ ५७
तस्य दत्तं मणिमयं जलजं परमासनम्।
स्वास्तीर्णं पद्मपत्रैश्च पद्मसूत्रोत्तरच्छदम्॥ ५८
तमासीनं नृपं तत्र परमे पन्नगासने।
द्विजिह्वपतिरव्यग्रो धूम्रवर्णोऽभ्यभाषत॥ ५९
पिता ते स्वर्गतिं प्राप्तः कृत्वा वंशमिमं महत्।
भवन्तं तेजसा युक्तमुत्पाद्य वसुधाधिपम्॥ ६०
यादवानामयं वंशस्त्वन्नाम्ना यदुपुङ्गव।
पित्रा ते मङ्गलार्थाय स्थापितः पार्थिवाकरः॥ ६१
वंशे चास्मिंस्तव विभो देवानां तनयाव्ययाः।
ऋषीणामुरगाणां च उत्पत्स्यन्ते नृयोनिजाः॥ ६२
तन्ममेमाः सुताः पञ्च कुमार्यो वृत्तसम्मताः।
उत्पन्ना यौवनाश्वस्य भगिन्यां नृपसत्तम॥ ६३
प्रतीच्छेमाः स्वधर्मेण प्राजापत्येन कर्मणा।
वरं च ते प्रदास्यामि वरार्हस्त्वं मतो मम॥ ६४
भैमाश्च कुकुराश्चैव भोजाश्चान्धकयादवाः।
दाशार्हा वृष्णयश्चेति ख्यातिं यास्यन्ति सप्त ते॥ ६५
स तस्मै धूम्रवर्णो वै कन्याः कन्याव्रते स्थिताः।
जलपूर्णेन योगेन ददाविन्द्रसमाय वै॥ ६६
वरं चास्मै ददौ प्रीतः स वै पन्नगपुङ्गवः।
श्रावयन् कन्यकाः सर्वा यथाक्रममदीनवत्॥ ६७

बड़े वेगसे उनको खींचा और जलके भीतर बसे हुए सर्पोंके एक महान् नगरमें पहुँचा दिया। वहाँके खम्भे, घर और द्वार सभी मणियोंके बने हुए थे। उन सबको मोतीकी लड़ियों एवं झालरोंसे सजाया गया था। वहाँ ढेर-के-ढेर श्वेत शङ्खोंके समूह पड़े हुए थे। रत्न-राशियोंसे उस नगरके घर-द्वारको विभूषित किया गया था। नूतन पल्लव, अंकुर और पत्तोंसे युक्त वृक्ष उस नगरकी शोभा बढ़ाते थे॥ ५२—५४॥ 'वहाँ समुद्रके उदरमें निवास करनेवाली नागललनाएँ भरी हुई थीं। वह ग्राम कहीं सुवर्णमय और कहीं चन्द्रमाके समान श्वेत कान्तिमान् स्वस्तिकसे प्रकाशित होता था'॥ ५५॥ 'राजाधिराज यदुने उसे देखा—समुद्रके निर्मल जलमें बना हुआ यह नागराजका नगर भूतलपर ही निर्मित हुआ-सा जान पड़ता है॥ ५६॥ राजा यदुने सर्पवधुओंसे भरे हुए उस अगाध जलदाकार स्वच्छ नगरमें प्रवेश किया॥ ५७॥ वहाँ उन्हें मणिमय कमलका आसन दिया गया, जिसपर पद्मोंके दल बिछे हुए थे और पद्मसूत्रोंकी ही बनी हुई चादर डाली गयी थी'॥ ५८॥ सर्पोंके दिये हुए उस उत्तम आसनपर जब राजा यदु वहाँ विराजमान हुए, तब सर्पराज धूम्रवर्णने उनसे शान्तभावसे कहा— ॥ ५९॥ 'राजन्! तुम्हारे पिता इस विशाल वंशकी नींव डालकर और तुम-जैसे तेजस्वी भूपालको जन्म देकर स्वर्गलोकको चले गये॥ ६०॥ यदुपुङ्गव! तुम्हारे नामसे ही यह वंश यादववंश कहलायेगा। तुम्हारे पिताने तुम्हारे मङ्गलके लिये ही इस कुलकी स्थापना की है, जो राजाओंकी खान है॥ ६१॥ प्रभो! तुम्हारे इस वंशमें देवताओं और ऋषियों तथा नागोंकी अक्षय संतानें मनुष्य-योनिमें उत्पन्न होंगी॥ ६२॥ नृपश्रेष्ठ! मेरी जो ये पाँच कुमारी कन्याएँ हैं, ये उत्तम आचार-व्यवहारसे सम्मानित हैं। इनका जन्म यौवनाश्वकी बहिनके गर्भसे हुआ है॥ ६३॥ तुम अपने धर्मके अनुसार वैवाहिक विधिसे इन कन्याओंको ग्रहण करो। मेरी धारणाके अनुसार तुम वर पानेके योग्य हो, अतः मैं तुम्हें मनोवाञ्छित वर भी दूँगा॥ ६४॥ तुमसे सात कुल विख्यात होंगे, जो भैम, कुक्कुर, भोज, अन्धक, यादव, दाशार्ह तथा वृष्णिके नामसे प्रसिद्ध होंगे'॥ ६५॥ ऐसा कहकर धूम्रवर्णने इन्द्रतुल्य तेजस्वी यदुको कन्याव्रतमें स्थित हुई वे कन्याएँ हाथमें जल लेकर संकल्पपूर्वक दे दीं॥ ६६॥ फिर उन नागशिरोमणि धूम्रवर्णने प्रसन्न होकर समस्त कन्याओंको सुनाते हुए एक उदार पुरुषकी भाँति राजाको क्रमशः वर प्रदान किये॥ ६७॥

एतासु ते सुताः पञ्च सुतासु मम मानद।
उत्पत्स्यन्ते पितुस्तेजो मातुश्चैव समाश्रिताः॥ ६८

अस्मत्समयबद्धाश्च सलिलाभ्यन्तरेचराः।
तव वंशे भविष्यन्ति पार्थिवाः कामरूपिणः॥ ६९

स वरं कन्यकाश्चैव लब्ध्वा यदुवरस्तदा।
उदतिष्ठत वेगेन सलिलाच्चन्द्रमा इव॥ ७०

स पञ्चकन्यामध्यस्थो ददृशे तत्र पार्थिवः।
पञ्चतारेण संयुक्तो नक्षत्रेणेव चन्द्रमाः॥ ७१

स तदन्तःपुरं सर्वं ददर्श नृपसत्तमः।
वैवाहिकेन वेषेण दिव्यस्त्रगनुलेपनः॥ ७२

समाश्वास्य च ताः सर्वाः स पत्नीः पावकोपमाः।
जगाम स्वपुरं राजा प्रीत्या परमया युतः॥ ७३

मानद! मेरी इन पाँच कन्याओंसे तुम्हारे पाँच पुत्र उत्पन्न होंगे, जो पिता और माता दोनोंके तेजसे सम्पन्न होंगे॥ ६८॥ हमारे वरदानसे अनुगृहीत होकर तुम्हारे वंशके वे सभी राजा जलके भीतर विचरनेवाले तथा इच्छानुसार रूप धारण करनेमें समर्थ होंगे'॥ ६९॥ 'वे श्रेष्ठ यदु उस समय वर और उन कन्याओंको पाकर चन्द्रमाके समान वेगपूर्वक जलसे ऊपर उठे॥ ७०॥ पाँच कन्याओंके बीचमें स्थित हुए राजा यदु वहाँ पाँच ताराओंवाले नक्षत्रसे संयुक्त चन्द्रमाके समान दिखायी देते थे॥ ७१॥ वैवाहिक वेशसे युक्त तथा दिव्य हार एवं चन्दन धारण करनेवाले नृपश्रेष्ठ यदुने जलसे बाहर आकर अपने समस्त अन्तःपुरको वहाँ उपस्थित देखा॥ ७२॥ तदनन्तर अग्निके समान तेजस्विनी उन सारी पत्नियोंको आश्वासन देकर राजा यदु अत्यन्त प्रसन्नतापूर्वक उन सबके साथ अपने नगरको चले गये'॥ ७३॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे विष्णुपर्वणि विकद्रुवाक्यं नाम सप्तत्रिंशोऽध्यायः॥ ३७॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत विष्णुपर्वमें विकद्रुका वाक्यविषयक सैंतीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ३७॥

अष्टात्रिंशोऽध्यायः

विकद्रुद्वारा यदुकी संततिका वर्णन तथा मथुरापुरीको जरासंधका आक्रमण सहनेके अयोग्य बताना

वैशम्पायन उवाच

स तासु नागकन्यासु कालेन महता नृपः।
जनयामास विक्रान्तान् पञ्चपुत्रान् कुलोद्वहान्॥ १

मुचुकुन्दं महाबाहुं पद्मवर्णं तथैव च।
माधवं सारसं चैव हरितं चैव पार्थिवम्॥ २

एतान् पञ्च सुतान् राजा पञ्चभूतोपमान् भुवि।
ईक्षमाणो नृपः प्रीतिं जगामातुलविक्रमः॥ ३

ते प्राप्तवयसः सर्वे स्थिताः पञ्च यथाद्रयः।
तेजिता बलदर्पाभ्यामूचुः पितरमग्रतः॥ ४

तात युक्ताः स्म वयसा बले महति संस्थिताः।
क्षिप्रमाज्ञप्तुमिच्छामः किं कुर्मस्तव शासनात्॥ ५

स तान् नृपतिशार्दूलः शार्दूलानिव वेगितान्।
प्रीत्या परमया प्राह सुतान् वीर्यकुतूहलात्॥ ६

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! यदुने दीर्घकालके पश्चात् उन पाँचों नागकन्याओंके गर्भसे पाँच पराक्रमी एवं कुलका भार वहन करनेमें समर्थ पुत्र उत्पन्न किये॥ १॥ उनके नाम इस प्रकार हैं—महाबाहु मुचुकुन्द, पद्मवर्ण, माधव, सारस तथा राजा हरित॥ २॥ ये पाँचों पुत्र भूतलपर पाँच भूतोंके समान थे। अतुल पराक्रमी राजा यदु इन्हें देखकर बहुत प्रसन्न होते थे॥ ३॥ जब वे वयस्क हुए, तब पाँच पर्वतोंके समान प्रतीत होने लगे। एक दिन अपने बल और दर्पसे प्रोत्साहित होकर वे अपने पिताके सामने खड़े हो इस प्रकार बोले—॥ ४॥ 'तात! अब हम बड़ी अवस्थाके हो गये, महान् बलमें हमारी स्थिति है (हम महान् बलवान् हैं); अतः शीघ्र आपकी आज्ञा चाहते हैं, बताइये, आपके आदेशसे हम कौन-सा कार्य करें?'॥ ५॥ नरेशोंमें सिंहके समान पराक्रमी यदुने सिंहोंके ही सदृश वेगशाली अपने उन पुत्रोंसे उनके बल-पराक्रमको जाननेकी उत्सुकतासे अत्यन्त प्रसन्नतापूर्वक कहा—॥ ६॥

विन्ध्यर्क्षवन्तावभितो द्वे पुर्यौ पर्वताश्रये।
निवेशयतु यत्नेन मुचुकुन्दः सुतो मम॥ ७
सह्यस्य चोपरिष्टात्तु दक्षिणां दिशमाश्रितः।
पद्मवर्णोऽपि मे पुत्रो निवेशयतु मा चिरम्॥ ८
तत्रैव परतः कान्ते देशे चम्पकभूषिते।
सारसो मे पुरं रम्यं निवेशयतु पुत्रकः॥ ९
हरितोऽयं महाबाहुः सागरे हरितोदके।
द्वीपं पन्नगराजस्य सुतो मे पालयिष्यति॥ १०
माधवो मे महाबाहुर्ज्येष्ठपुत्रश्च धर्मवित्।
यौवराज्येन संयुक्तः स्वपुरं पालयिष्यति॥ ११
सर्वे नृपश्रियं प्राप्ता अभिषिक्ताः सचामराः।
पित्रानुशिष्टाश्चत्वारो लोकपालोपमा नृपाः॥ १२
स्वं स्वं निवेशनं सर्वे भेजिरे नृपसत्तमाः।
पुरस्थानानि रम्याणि मृगयन्तो यथाक्रमम्॥ १३
मुचुकुन्दश्च राजर्षिर्विन्ध्यमध्यमरोचयत्।
स्वस्थानं नर्मदातीरे दारुणोपलसंकटे॥ १४
स च तं शोधयामास विविक्तं च चकार ह।
सेतुं चैव समं चक्रे परिखाश्चामितोदकाः॥ १५
स्थापयामास भागेषु देवतायतनान्यपि।
रथ्या वीथीर्नृणां मार्गांश्चत्वराणि वनानि च॥ १६
स तां पुरीं धनवतीं पुरुहूतपुरीप्रभाम्।
नातिदीर्घेण कालेन चकार नृपसत्तमः॥ १७
नाम चास्याः शुभं चक्रे निर्मितं स्वेन तेजसा।
तस्याः पुर्या नृपश्रेष्ठो देवश्रेष्ठपराक्रमः॥ १८
महाश्मसंघातवती यथेयं विन्ध्यसानुगा।
माहिष्मती नाम पुरी प्रकाशमुपयास्यति॥ १९
उभयोर्विन्ध्ययोः पादे नगयोस्तां महापुरीम्।
मध्ये निवेशयामास श्रिया परमया वृताम्॥ २०
पुरिकां नाम धर्मात्मा पुरीं देवपुरीप्रभाम्।
उद्यानशतसम्बाधां समृद्धापणचत्वराम्॥ २१

'मेरा पुत्र मुचुकुन्द विन्ध्य और ऋक्षवान् पर्वतोंके निकट पर्वतीय भूमिका ही आश्रय ले यत्नपूर्वक दो पुरियाँ बसाये॥ ७॥ मेरा बेटा पद्मवर्ण भी दक्षिण दिशाका आश्रय ले सह्यपर्वतके शिखरपर शीघ्र एक नगर बसाये॥ ८॥ वहीं पश्चिम दिशाकी ओर चम्पाके वृक्षोंसे सुशोभित मनोरम प्रदेशमें बेटा सारस एक रमणीय राजधानीकी स्थापना करे॥ ९॥ मेरा पुत्र यह महाबाहु हरित हरे जलसे भरे हुए समुद्रमें नागराज धूम्रवर्णके द्वीपका पालन करेगा॥ १०॥ मेरा पाँचवाँ पुत्र महाबाहु माधव ज्येष्ठ तथा धर्मज्ञ है, यह युवराज होकर अपने इसी नगरका (जो रैवतके समीप है) पालन करेगा'॥ ११॥ उन सबको राज्यलक्ष्मी प्राप्त हुई। सबका विभिन्न राज्योंपर अभिषेक हुआ तथा सभी छत्र-चामर आदि राजोचित चिह्नोंसे अलंकृत हुए। तत्पश्चात् पिताकी आज्ञा पाकर लोकपालोंके समान वे चारों नृपश्रेष्ठ राजकुमार अपने-अपने घरमें गये। फिर उन्होंने क्रमशः सुरम्य राजधानी बनानेके लिये स्थानकी खोज प्रारम्भ की॥ १२-१३॥ राजर्षि मुचुकुन्दने विन्ध्यपर्वतके मध्यवर्ती स्थानको पसंद किया। उन्होंने विषम प्रस्तरखण्डोंसे भरे हुए दुर्गम नर्मदातटपर अपना स्थान बनाया॥ १४॥ उन्होंने उस स्थानका शोधन किया और उसे एकान्त एवं पवित्र बनाया। सम सेतुका निर्माण किया और अथाह जलसे भरी हुई खाइयाँ खुदवायीं॥ १५॥ नगरके विभिन्न भागोंमें बहुत-से देवमन्दिर भी स्थापित किये। सड़कें, गलियाँ, जनसाधारणके मार्ग तथा चौराहे बनवाये और वन भी लगवाये॥ १६॥ उन नृपश्रेष्ठ मुचुकुन्दने उस पुरीको थोड़े ही दिनोंमें धन-धान्यसे सम्पन्न करके इन्द्रपुरीके समान प्रकाशित एवं सुशोभित कर दिया॥ १७॥ देवताओंके समान श्रेष्ठ पराक्रमी नृपवर मुचुकुन्दने उस पुरीका अपने ही तेजसे निर्मित शुभ सुन्दर नाम रखा— ॥ १८॥ विन्ध्य-गिरिके शिखरपर बसी हुई यह नगरी महान् अश्मसंघात (प्रस्तरसमूह)-से युक्त है, इसलिये संसारमें 'माहिष्मतीपुरी' के नामसे विख्यात होगी॥ १९॥ राजा मुचुकुन्दने उत्तम शोभा-सम्पत्तिसे सम्पन्न उस महापुरीको दोनों विन्ध्य-पर्वतोंके बीचमें बसाया था॥ २०॥ तत्पश्चात् उन धर्मात्मा नरेशने एक 'पुरिका' नामवाली पुरी बसायी, जो देवपुरीके समान प्रकाशित होती थी। उसके भीतर सैकड़ों उद्यान बने थे तथा वैभवपूर्ण हाट-बाजार और चौराहे भी उसकी शोभा बढ़ाते थे॥ २१॥

ऋक्षवन्तं समभितस्तीरे तत्र निरामये।
निर्मिता सा पुरी राज्ञा पुरिका नाम नामतः॥ २२

स ते द्वे विपुले पुर्यौ देवभोग्योपमे शुभे।
पालयामास धर्मात्मा राजा धर्मे व्यवस्थितः॥ २३

पद्मवर्णोऽपि राजर्षिः सह्यपृष्ठे पुरोत्तमम्।
चकार नद्या वेणायास्तीरे तरुलताकुले॥ २४

विषयस्याल्पतां ज्ञात्वा सम्पूर्णं राष्ट्रमेव च।
निवेशयामास नृपः स वप्रप्रायमुत्तमम्॥ २५

पद्मावतं जनपदं करवीरं च तत्पुरम्।
निर्मितं पद्मवर्णेन प्राजापत्येन कर्मणा॥ २६

सारसेनापि विहितं रम्यं क्रौञ्चपुरं महत्।
चम्पकाशोकबहुलं विपुलं ताम्रमृत्तिकम्॥ २७

वनवासीति विख्यातः स्फीतो जनपदो महान्।
पुरस्य तस्य तु श्रीमान् द्रुमैः सार्वर्तुकैर्वृतः॥ २८

हरितोऽपि समुद्रस्य द्वीपं समभिपालयत्।
रत्नसंचयसम्पूर्णं नारीजनमनोहरम्॥ २९

तस्य दाशा जले मग्ना मद्गुरा नाम विश्रुताः।
ये हरन्ति सदा शङ्खान् समुद्रोदरचारिणः॥ ३०

तस्यापरे दाशजनाः प्रवालाञ्जलसम्भवान्।
संचिन्वन्ति सदा युक्ता जातरूपं च मौक्तिकम्॥ ३१

जलजानि च रत्नानि निषादास्तस्य मानवाः।
प्रचिन्वन्तोऽर्णवे युक्ता नौभिः संयानगामिनः॥ ३२

मत्स्यमांसेन ते सर्वे वर्तन्ते स्म सदा नराः।
गृह्णन्तः सर्वरत्नानि रत्नद्वीपनिवासिनः॥ ३३

ऋक्षवान् पर्वतके समीप, रोग-शोकसे रहित नर्मदा-तटपर राजाने पुरिका नामक पुरीका निर्माण कराया था॥ २२॥ धर्ममें स्थित हुए वे धर्मात्मा नरेश देवताओंके उपभोगमें आनेवाली स्वर्गीय पुरियोंके समान उन दो सुन्दर नगरोंका निर्माण करके उनका पालन करने लगे॥ २३॥ राजर्षि पद्मवर्णने भी सह्यपर्वतके पृष्ठभागमें वृक्षों और लताओंसे व्याप्त वेणा नदीके तटपर एक उत्तम नगरका निर्माण कराया॥ २४॥ अपनी राज्यभूमिका विस्तार दूसरोंकी अपेक्षा छोटा जानकर उन्होंने अपने सम्पूर्ण राष्ट्रको ही एक नगरके रूपमें बसाया और उसे सब ओरसे एक विशाल चहारदिवारीके द्वारा घेर दिया। उस उत्तम राष्ट्रमें परकोटेकी ही प्रधानता थी॥ २५॥ उनका राज्य पद्मावत जनपदके नामसे प्रसिद्ध हुआ। उनकी राजधानीका नाम करवीरपुर हुआ। पद्मवर्णने शिल्पशास्त्रके नियमोंके अनुसार उस नगरका निर्माण कराया था॥ २६॥ राजा सारसने भी क्रौञ्चपुर[1] नामक महान् एवं रमणीय नगरका निर्माण कराया, जिसमें चम्पा और अशोक-वृक्षोंकी बहुलता थी। उसका विस्तार बड़ा था और वहाँ ताँबेका कारोबार होता था, जिससे लोगोंकी जीविका चलती थी॥ २७॥ उस नगरका महान् समृद्धिशाली एवं शोभायमान जनपद 'वनवासी' नामसे विख्यात हुआ। वहाँ सभी ऋतुओंमें फूलने-फलनेवाले वृक्ष सब ओर हरे-भरे दिखायी देते थे॥ २८॥ हरित भी रत्नराशिसे पूर्ण उस समुद्र-सम्बन्धी द्वीपका पालन करने लगे, जो नारीजनोंके लिये मनोहर था (अथवा नारियोंके कारण मनोहर प्रतीत होता था)॥ २९॥ राजा हरितके द्वारा नियुक्त हुए धीवर, जो वहाँ 'मद्गुर' नामसे प्रसिद्ध थे, जलमें डूबकर समुद्रके भीतर विचरनेवाले शङ्खोंको पकड़ लाते थे॥ ३०॥ उनके दूसरे-दूसरे मल्लाह सदा सावधान रहकर जलके भीतर होनेवाले मूँगों तथा चमकीले मोतियोंका संग्रह करते थे॥ ३१॥ हरितके कार्यकर्ता निषाद बड़ी-बड़ी नौकाओंको साथ लिये छोटी नौकाओंद्वारा समुद्रमें जाते और जलमें उत्पन्न होनेवाले रत्नोंकी खोज करते थे (छोटी नावोंसे दूर-दूरतक जाकर वे रत्नोंका संचय करते और एक जगह खड़ी हुई बड़ी नौकामें लाकर रखते थे)॥ ३२॥ उस रत्नद्वीपमें निवास करनेवाले वे मल्लाह जातिके लोग सब प्रकारके रत्नोंका संग्रह करते और मछलीके मांससे जीवन-निर्वाह करते थे॥ ३३॥

१. आचार्य नीलकण्ठने 'क्रौञ्चपुर' नगरकी स्थिति वेणाके दक्षिण तटपर बतायी है।

तैः संयानगतैर्द्रव्यैर्वणिजो दूरगामिनः।
हरितं तर्पयन्त्येकं यथैव धनदं तथा॥ ३४

एवमिक्ष्वाकुवंशात् तु यदुवंशो विनिःसृतः।
चतुर्धा यदुपुत्रैस्तु चतुर्भिर्भिद्यते पुनः॥ ३५

स यदुर्माधवे राज्यं विसृज्य यदुपुङ्गवे।
त्रिविष्टपं गतो राजा देहं त्यक्त्वा महीतले॥ ३६

बभूव माधवसुतः सत्त्वतो नाम वीर्यवान्।
सत्त्ववृत्तिर्गुणोपेतो राजा राजगुणे स्थितः॥ ३७

सत्त्वतस्य सुतो राजा भीमो नाम महानभूत्।
येन भैमाः सुसंवृत्ताः सत्त्वतात् सात्त्वताः स्मृताः॥ ३८

राज्ये स्थिते नृपे तस्मिन् रामे राज्यं प्रशासति।
शत्रुघ्नो लवणं हत्वा चिच्छेद स मधोर्वनम्॥ ३९

तस्मिन् मधुवने स्थाने पुरीं च मथुरामिमाम्।
निवेशयामास विभुः सुमित्रानन्दवर्धनः॥ ४०

पर्यये चैव रामस्य भरतस्य तथैव च।
सुमित्रासुतयोश्चैव स्थानं प्राप्तं च वैष्णवम्॥ ४१

भीमेनेयं पुरी तेन राज्यसम्बन्धकारणात्।
स्ववशे स्थापिता पूर्वं स्वयमध्यासिता तथा॥ ४२

ततः कुशे स्थिते राज्ये लवे तु युवराजनि।
अन्धको नाम भीमस्य सुतो राज्यमकारयत्॥ ४३

अन्धकस्य सुतो जज्ञे रेवतो नाम पार्थिवः।
ऋक्षोऽपि रेवताज्जज्ञे रम्ये पर्वतमूर्धनि॥ ४४

ततो रैवत उत्पन्नः पर्वतः सागरान्तिके।
नाम्ना रैवतको नाम भूमौ भूमिधरः स्मृतः॥ ४५

नौकाओंमें समुद्रसे निकाले गये जो द्रव्य संचित होते, उनके द्वारा दूर देशोंकी यात्रा करनेवाले व्यवसायी वैश्य व्यापार करते और प्राप्त हुए धनसे एकमात्र राजा हरितको ही तृप्त करते थे, जैसे यक्ष केवल कुबेरको ही अपने उपार्जित धनसे संतुष्ट किया करते हैं॥ ३४॥ इस प्रकार यह यदुवंश इक्ष्वाकुवंशसे निकला है। फिर यदुके चार छोटे पुत्रोंद्वारा यह चार अन्य शाखाओंमें विभक्त हुआ है॥ ३५॥ वे राजा यदु अपने बड़े पुत्र यदुकुलपुङ्गव माधवको अपना राज्य दे इस भूतलपर शरीरका परित्याग करके स्वर्गको चले गये॥ ३६॥ माधवका पराक्रमी पुत्र सत्त्वत नामसे विख्यात हुआ। वे गुणवान् राजा सत्त्वत राजोचित गुणोंमें प्रतिष्ठित थे और सदा सात्त्विक वृत्तिसे रहते थे॥ ३७॥ सत्त्वतके पुत्र महान् राजा भीम हुए, जिनसे भावी पीढ़ीके लोग 'भैम' कहलाये। सत्त्वतसे उत्पन्न होनेके कारण उन सबको 'सात्त्वत' भी माना गया है॥ ३८॥ जब राजा भीम आनर्त देशके राज्यपर प्रतिष्ठित थे, उन्हीं दिनों अयोध्यामें भगवान् श्रीराम भूमण्डलके राज्यका शासन करते थे। उनके राज्यकालमें शत्रुघ्नने मधुपुत्र लवणको मारकर मधुवनका उच्छेद कर डाला॥ ३९॥ उसी मधुवनके स्थानमें सुमित्राका आनन्द बढ़ानेवाले प्रभावशाली शत्रुघ्नने इस मथुरापुरीको बसाया था॥ ४०॥ जब श्रीरामके अवतारका उपसंहार हुआ और श्रीराम, भरत, लक्ष्मण तथा शत्रुघ्न सभी परमधामको पधारे, तब भीमने इस वैष्णव स्थान (मथुरा)-को प्राप्त किया; क्योंकि (लवणके) मारे जानेपर अब उस राज्यसे उन्हींका लगाव रह गया था। (वे ही उत्तराधिकारी होने योग्य थे।)* भीमने इस पुरीको अपने वशमें किया और वे स्वयं भी यहीं आकर रहने लगे॥ ४१-४२॥ तदनन्तर जब अयोध्याके राज्यपर कुश प्रतिष्ठित हुए और लव युवराज बन गये, तब मथुरामें भीमके पुत्र अन्धक राज्य करने लगे॥ ४३॥ अन्धकके पुत्र राजा रेवत हुए। रेवतसे पर्वतके रमणीय शिखरपर ऋक्षका जन्म हुआ। इस प्रकार उनसे रैवत (ऋक्ष)-की उत्पत्ति हुई। उस समय समुद्रके तटकी भूमिपर जो विशाल भूधर था, वह उसी रैवतके नामपर रैवतक पर्वतके नामसे प्रसिद्ध हुआ॥ ४४-४५॥

* हर्यश्वके पुत्र यदु मधुकी पुत्री मधुमतीके गर्भसे उत्पन्न हुए थे; अतः वे मधुके दौहित्र थे। नानाके कोई पुत्र न हो तो उसकी सम्पत्ति दौहित्रको ही प्राप्त होनी चाहिये—यह शास्त्रका नियम है, अतः लवणासुरके मारे जानेपर यदुपौत्र भीम ही उस समय उस राज्यके अधिकारी हुए।

रैवतस्यात्मजो राजा विश्वगर्भो महायशाः।
बभूव पृथिवीपालः पृथिव्यां प्रथितः प्रभुः॥ ४६

तस्य तिसृषु भार्यासु दिव्यरूपासु केशव।
चत्वारो जज्ञिरे पुत्रा लोकपालोपमाः शुभाः॥ ४७

वसुर्बभ्रुः सुषेणश्च सभाक्षश्चैव वीर्यवान्।
यदुप्रवीराः प्रख्याता लोकपाला इवापरे॥ ४८

तैरयं यादवो वंशः पार्थिवैर्बहुलीकृतः।
यैः साकं कृष्ण लोकेऽस्मिन् प्रजावन्तः प्रजेश्वराः॥ ४९

वसोस्तु कुन्तिविषये वसुदेवः सुतो विभुः।
ततः स जनयामास सुप्रभे द्वे च दारिके॥ ५०

कुन्तीं च पाण्डोर्महिषीं देवतामिव भूचरीम्।
भार्यां च दमघोषस्य चेदिराजस्य सुप्रभाम्॥ ५१

एष ते स्वस्य वंशस्य प्रभवः सम्प्रकीर्तितः।
श्रुतो मया पुरा कृष्ण कृष्णद्वैपायनान्तिकात्॥ ५२

त्वं त्विदानीं प्रणष्टेऽस्मिन् वंशे वंशभृतां वर।
स्वयम्भूरिव सम्प्राप्तो भवायास्मज्जयाय च॥ ५३

न तु त्वां पौरमात्रेण शक्ता गूहयितुं वयम्।
देवगुह्येष्वपि भवान् सर्वज्ञः सर्वभावनः॥ ५४

शक्तश्चापि जरासंधं नृपं योधयितुं विभो।
त्वद्बुद्धिवशगाः सर्वे वयं योधव्रते स्थिताः॥ ५५

जरासंधस्तु बलवान् नृपाणां मूर्ध्नि तिष्ठति।
अप्रमेयबलश्चैव वयं च कृशसाधनाः॥ ५६

न चेयमेकाहमपि पुरी रोधं सहिष्यति।
कृशभक्तेन्धनक्षामा दुर्गैरपरिवेष्टिता॥ ५७

रैवत (ऋक्ष)-के पुत्र महायशस्वी राजा विश्वगर्भ हुए, जो इस पृथ्वीपर प्रसिद्ध एवं प्रभावशाली भूमिपाल थे॥ ४६॥ केशव! उनके तीन भार्याएँ थीं। तीनों ही दिव्य रूप-सौन्दर्यसे सुशोभित होती थीं। उनके गर्भसे राजाके चार सुन्दर पुत्र हुए, जो लोकपालोंके समान पराक्रमी थे॥ ४७॥ उनके नाम इस प्रकार हैं—वसु, बभ्रु, सुषेण और बलवान् सभाक्ष। ये यदुकुलके प्रख्यात श्रेष्ठ वीर दूसरे लोकपालोंके समान शक्तिशाली थे॥ ४८॥ श्रीकृष्ण! उन राजाओंने इस यादववंशको बढ़ाकर बड़ी भारी संख्यासे सम्पन्न कर दिया। जिनके साथ इस संसारमें बहुत-से संतानवान् नरेश हैं। वसुसे (जिनका दूसरा नाम शूर था) वसुदेव उत्पन्न हुए। ये वसुपुत्र वसुदेव बड़े प्रभावशाली हैं। वसुदेवकी उत्पत्तिके अनन्तर वसुने दो कान्तिमती कन्याओंको जन्म दिया (जो पृथा (कुन्ती) और श्रुतश्रवा नामसे विख्यात हुईं)। इनमेंसे पृथा कुन्तिदेशमें (राजा कुन्तिभोजकी दत्तक पुत्रीके रूपमें) रहती थी। कुन्ती जो पृथ्वीपर विचरनेवाली देवाङ्गनाके समान थी, महाराज पाण्डुकी महारानी हुई तथा सुन्दर कान्तिसे प्रकाशित होनेवाली श्रुतश्रवा चेदिराज दमघोषकी पत्नी हुई॥ ४९—५१॥ श्रीकृष्ण! यह मैंने तुमसे अपने यादववंशकी उत्पत्ति बतायी है। इसे मैंने पहले श्रीकृष्णद्वैपायन व्यासजीसे सुना था॥ ५२॥ वंशधारियोंमें श्रेष्ठ गोविन्द! इस समय यह वंश नष्ट-सा हो चला था। परंतु तुम स्वयम्भू ब्रह्माजीके समान इस वंशके उद्भव तथा हमारी विजयके लिये इसमें अवतीर्ण हुए हो॥ ५३॥ हमलोग तुम्हें साधारण पुरवासी बताकर छिपानेमें असमर्थ हैं; क्योंकि तुम देवताओंके गुप्त रहस्योंसे भी परिचित, सर्वज्ञ तथा सबको उत्पन्न करनेवाले हो॥ ५४॥ प्रभो! तुम राजा जरासंधसे युद्ध करनेमें समर्थ हो। हम सब लोग योधाओंके व्रतमें स्थिर रहकर सदा तुम्हारी बुद्धिके वशीभूत रहेंगे॥ ५५॥ परंतु राजा जरासंध बड़ा बलवान् है। वह राजाओंके सिरपर खड़ा है। उसके पास असंख्य सेना है और इधर हमलोगोंके पास युद्धकी साधन-सामग्री बहुत थोड़ी है॥ ५६॥ यह मथुरापुरी शत्रुओंद्वारा किये गये एक दिनके उपरोध (घेरे)-को भी नहीं सह सकेगी; क्योंकि यहाँ खाने-पीनेकी सामग्री बहुत कम है। लकड़ियोंका संचय भी स्वल्प ही है तथा यह पुरी विभिन्न प्रकारके दुर्गोंसे घिरी हुई नहीं है॥ ५७॥

असंस्कृताम्बुपरिखा द्वारयन्त्रविवर्जिता।
वप्रप्राकारनिचया कर्तव्या बहुविस्तरा॥ ५८

संस्कर्तव्यायुधागारा योक्तव्या चेष्टिकाचयैः।
कंसस्य बलभोग्यत्वान्नातिगुप्ता पुरा जनैः॥ ५९

सद्यो निपतिते कंसे राज्येऽस्माकं नवोदये।
पुरी प्रत्यग्ररोधेव न रोधं विसहिष्यति॥ ६०

बलं सम्मर्दभग्नं च कृष्यमाणं परेण ह।
असंशयमिदं राष्ट्रं जनैः सह विनङ्क्ष्यति॥ ६१

यादवानां विरोधेन ये जिता राज्यकामुकैः।
ते सर्वे द्वैधमिच्छन्ति यत् क्षमं तद् विधीयताम्॥ ६२

वञ्चनीया भविष्यामो नृपाणां नृपकारणात्।
जरासंधभयार्तानां द्रवतां राज्यसम्भ्रमे॥ ६३

आर्ता वक्ष्यन्ति नः सर्वे रुध्यमानाः पुरे जनाः।
यादवानां विरोधेन विनष्टाः स्मेति केशव॥ ६४

एतन्मम मतं कृष्ण विस्रम्भात् समुदाहृतम्।
त्वं तु विज्ञापितः पूर्वं न पुनः सम्प्रबोधितः॥ ६५

यदत्र वः क्षमं कृष्ण तच्च वै संविधीयताम्।
त्वमस्य नेता सैन्यस्य वयं त्वच्छासने स्थिताः।
त्वन्मूलश्च विरोधोऽयं रक्षास्मानात्मना सह॥ ६६

इसके चारों ओर जो जल भरनेके लिये खाइयाँ बनी हुई हैं, उनकी बहुत दिनोंसे मरम्मत और सफाई नहीं हुई है तथा नगरके द्वारपर रक्षाके लिये यन्त्र (तोप आदि) भी नहीं लगे हुए हैं। पुरीकी रक्षाके लिये चारों ओरसे मिट्टीकी मोटी दीवारें तथा कई पक्के परकोटे बनवानेकी आवश्यकता है, जिनका विस्तार बहुत बड़ा हो॥ ५८॥ नगरके जितने आयुधागार हैं, उन सबका संस्कार (मरम्मत और सफाई) होना चाहिये। जगह-जगह ईंटोंके ढेर जुटा लेनेकी आवश्यकता है। कंसकी सेनाके उपयोगमें आनेके कारण इस नगरकी रक्षाके लिये लोगोंने पहलेसे कोई व्यवस्था नहीं रखी है॥ ५९॥ अभी हालमें कंस मारा गया है, अतः हमारे राज्यका अभी नवोदय (प्रभात) काल है। जैसे राजाके सिपाही कर वसूल करनेके लिये गाँवको घेर लेते हैं, उसी तरह यदि इस पुरीका भी अवरोध हुआ तो यह उसे सहन न कर सकेगी॥ ६०॥ हमारी सेना अनेक युद्धोंका सामना करनेके कारण हताश हो गयी है। शत्रु इसे बार-बार पीड़ा देकर क्षीण कर रहा है, अतः यह राष्ट्र यहाँके निवासियोंके साथ ही नष्ट हो जायगा। इसमें संदेह नहीं है॥ ६१॥ हमलोगोंने राज्य-प्राप्तिकी इच्छा रखकर यादवोंका विरोध करनेके कारण जिन-जिन लोगोंको पराजित किया है, वे सब लोग हममें फूट डालना चाहते हैं। ऐसी परिस्थितिमें जो उचित हो सो करो॥ ६२॥ राजा जरासंधके कारण दूसरे-दूसरे राजा भी हमें धोखा देंगे; क्योंकि वे जरासंधके भयसे पीड़ित हैं और अपने राज्यमें कोई विप्लव न मच जाय, इसके डरसे सब-के-सब उसके पीछे दौड़ते हैं॥ ६३॥ केशव! यदि इस नगरके सब लोग शत्रुओंके घेरा डालनेसे अवरुद्ध हो जायँगे तो ये पीड़ित होकर हमारे लिये यही कहेंगे कि हम यादवोंके विरोधसे नष्ट हो गये॥ ६४॥ श्रीकृष्ण! यह मेरा मत है, जिसे तुमपर विश्वास होनेके कारण मैंने प्रकट किया है। तुम्हें इस बातकी पहले-पहल सूचना दी गयी है। तुम्हें समझानेका प्रयत्न नहीं किया गया है॥ ६५॥ श्रीकृष्ण! इस परिस्थितिमें जो उचित हो, वह करो। तुम इस यादव-सेनाके नेता हो और हम तुम्हारे शासनमें स्थित हैं। इस विरोधके मूल कारण तुम्हीं हो, इसलिये तुम अपने साथ ही हमलोगोंकी रक्षा करो॥ ६६॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे विष्णुपर्वणि विकद्रुवाक्यं नामाष्टात्रिंशोऽध्यायः॥ ३८॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत विष्णुपर्वमें विकद्रुका वाक्यविषयक अड़तीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ३८॥

एकोनचत्वारिंशोऽध्यायः

बलराम और श्रीकृष्णका पुरी और पुरवासियोंकी रक्षाके लिये मथुरासे दक्षिण भारतकी ओर प्रस्थान, परशुरामजीसे उनकी भेंट तथा उन दोनोंको गोमन्तपर्वतपर चलनेके लिये उनकी सलाह

वैशम्पायन उवाच

विकद्रोस्तु वचः श्रुत्वा वसुदेवो महायशाः।
परितुष्टेन मनसा वचनं चेदमब्रवीत्॥ १

राजा षाड्गुण्यवक्ता वै राजा मन्त्रार्थतत्त्ववित्।
सतत्त्वं च हितं चैव कृष्णोक्तं किल धीमता॥ २

भाषिता राजधर्माश्च सत्याश्च जगतो हिताः।
विकद्रुणा यदुश्रेष्ठ यद्धितं तद् विधीयताम्॥ ३

एतच्छ्रुत्वा पितुर्वाक्यं विकद्रोश्च महात्मनः।
वाक्यमुत्तममेकाग्रो बभाषे पुरुषोत्तमः॥ ४

ब्रुवतां वः श्रुतं वाक्यं हेतुतः क्रमतस्तथा।
न्यायतः शास्त्रतश्चैव दैवं चैवानुपश्यताम्॥ ५

श्रूयतामुत्तरं वाक्यं श्रुत्वा च परिगृह्यताम्।
नयेन व्यवहर्तव्यं पार्थिवेन यथाक्रमम्॥ ६

संधिं च विग्रहं चैव यानमासनमेव च।
द्वैधीभावं संश्रयं च षाड्गुण्यं चिन्तयेत् सदा॥ ७

बलिनः संनिकृष्टे तु न स्थेयं पण्डितेन वै।
अपक्रमेद्धि कालज्ञः समर्थो युद्धमुद्वहेत्॥ ८

अहं तावत् सहार्येण मुहूर्तेऽस्मिन् प्रकाशिते।
जीवितार्थं गमिष्यामि शक्तिमानप्यशक्तवत्॥ ९

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! विकद्रुकी बात सुनकर महायशस्वी वसुदेव संतुष्टचित्तसे इस प्रकार बोले—॥ १॥ 'श्रीकृष्ण! जो राजनीतिके छः गुणोंसे युक्त बात बोले अथवा उन छहों गुणोंके उपयोगका अवसर बताये, वह राजा है। जो मन्त्रार्थतत्त्व (गुप्त मन्त्रणाका प्रयोजन एवं महत्त्व) समझता हो, वह राजा है। बुद्धिमान् विकद्रुने तत्त्व और हितकी बात बतायी है॥ २॥ यदुश्रेष्ठ! विकद्रुने उन राजधर्मोंका प्रतिपादन किया है, जो सत्य होनेके साथ ही जगत्‌के लिये हितकर हैं। अब तुम्हें जो हितकर जान पड़े, वह करो'॥ ३॥ अपने पिता वसुदेव तथा महात्मा विकद्रुका यह कथन सुनकर पुरुषोत्तम श्रीकृष्णने एकाग्रचित्त होकर यह उत्तम बात कही—॥ ४॥ 'आपलोगोंने वैरके मूल-कारण शत्रुके पराक्रम, न्यायोचित बर्ताव, शास्त्रकी आज्ञा तथा दैववश भविष्यमें होनेवाले कार्यपर दृष्टि रखते हुए जो कुछ कहा है, वह सब मैंने सुन लिया॥ ५॥ अब उसका उत्तर सुनिये और सुनकर यदि ठीक जँचे तो उसे ग्रहण कीजिये। इसमें संदेह नहीं कि राजाको राजनीतिके अनुसार व्यवहार करना चाहिये। उसके लिये यह उचित है कि संधि, विग्रह, यान, आसन, द्वैधीभाव और समाश्रय—इन छः गुणोंका क्रमशः सदा चिन्तन करता रहे* ॥ ६-७॥ 'विद्वान् पुरुषको चाहिये कि वह बलवान् शत्रुके समीप न ठहरे। समयका ज्ञान रखनेवाला पुरुष बलवान् शत्रुसे अपनी रक्षा करनेके लिये स्थान छोड़कर हट जाय। यदि वह शत्रुसेनाका सामना करनेके लिये समर्थ हो तो युद्धका बोझ उठाये॥ ८॥ 'मैं शक्तिशाली होकर भी असमर्थकी भाँति इस वर्तमान मुहूर्तमें भैया बलरामजीके साथ जीवनकी रक्षाके लिये यहाँसे पलायन करूँगा॥ ९॥

* संधि, विग्रह आदि छः गुणोंका संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है—शत्रुसे मेल रखना संधि, उससे लड़ाई छेड़ना विग्रह, आक्रमण करना यान, अवसरकी प्रतीक्षामें बैठे रहना आसन, दुरंगी नीति बर्तना द्वैधीभाव और अपनेसे बलवान् राजाकी शरण लेना समाश्रय कहलाता है।

ततः सह्याचलयुतं सहार्येणाहमक्षयम्।
आत्मद्वितीयः श्रीमन्तं प्रवेक्ष्ये दक्षिणापथम्॥ १०

करवीरपुरं चैव रम्यं क्रौञ्चपुरं तथा।
द्रक्ष्यावस्तत्र सहितौ गोमन्तं च नगोत्तमम्॥ ११

आवयोर्गमनं श्रुत्वा जितकाशी स पार्थिवः।
अप्रविश्य पुरीं दर्पादनुसारं करिष्यति॥ १२

ततः सह्यवनेष्वेव राजा याति स सानुगः।
आवयोर्ग्रहणे चैव नृपतिः प्रयतिष्यति॥ १३

एषा नः श्रेयसी यात्रा भविष्यति कुलस्य वै।
पौराणामथ पुर्याश्च देशस्य च सुखावहा॥ १४

न च शत्रोः परिभ्रष्टा राजानो विजिगीषवः।
परराष्ट्रेषु मृष्यन्ति मृधे शत्रोः क्षयं विना॥ १५

एवमुक्त्वा तु तौ वीरौ कृष्णसंकर्षणावुभौ।
प्रपेदतुरसम्भ्रान्तौ दक्षिणौ दक्षिणापथम्॥ १६

तौ तु राष्ट्राणि शतशश्चरन्तौ कामरूपिणौ।
दक्षिणां दिशमास्थाय चेरतुर्मार्गगौ सुखम्॥ १७

सह्यपृष्ठेषु रम्येषु मोदमानावुभौ तथा।
दक्षिणापथगौ वीरावध्वानं सम्प्रपेदतुः॥ १८

तौ च स्वल्पेन कालेन सह्याचलविभूषितम्।
करवीरपुरं प्राप्तौ स्ववंशेन विभूषितम्॥ १९

तौ तत्र गत्वा वेणाया नद्यास्तीरान्तमाश्रितम्।
आसेदतुः प्ररोहाढ्यं न्यग्रोधं तरुपुङ्गवम्॥ २०

अधस्तात् तस्य वृक्षस्य मुनिं दीप्ततपोधनम्।
अंसावसक्तपरशुं जटावल्कलधारिणम्॥ २१

गौरमग्निशिखाकारं तेजसा भास्करोपमम्।
क्षत्रान्तकरमक्षोभ्यं वपुष्मन्तमिवार्णवम्॥ २२

यहाँसे प्रस्थान करनेके बाद मैं आर्य बलरामके साथ अपने-आपको ही उनका दूसरा साथी बनाकर उस अक्षय शोभासम्पन्न दक्षिणापथमें प्रवेश करूँगा, जो सह्यपर्वतसे मिला-जुला है॥ १०॥ वहाँ हम दोनों भाई एक साथ रहकर करवीरपुर, रमणीय क्रौञ्चपुर तथा पर्वतश्रेष्ठ गोमन्तका दर्शन करेंगे॥ ११॥ हमलोगोंका दक्षिण-गमन सुनकर विजयसे सुशोभित होनेवाला राजा जरासंध बलके घमण्डमें आकर मथुरापुरीमें प्रवेश न करके हमारा पीछा ही करेगा॥ १२॥ तत्पश्चात् हमारा अनुसरण करता हुआ वह राजा सेवकोंसहित सह्याचलके वनोंमें ही जा पहुँचेगा और हम दोनोंको पकड़ लेनेके लिये पूरा प्रयत्न करेगा॥ १३॥ हमारी यह यात्रा इस यादवकुलके लिये कल्याणकारिणी होगी तथा पुर-वासियोंके, मथुरापुरीके एवं इस शूरसेन-देशके लिये भी सुखदायिनी होगी॥ १४॥ विजयकी इच्छा रखनेवाले राजालोग जब शत्रु हाथमें आकर निकल जाता है, तब वे उस शत्रुके राज्योंमें पहुँचकर युद्धमें उसका वध किये बिना शान्त नहीं होते हैं॥ १५॥ ऐसा कहकर वे दोनों नीतिनिपुण वीर श्रीकृष्ण और संकर्षण बिना किसी घबराहटके दक्षिणापथकी ओर चल दिये॥ १६॥ इच्छानुसार रूप धारण करनेवाले वे दोनों वीर सैकड़ों रास्तोंपर विचरते हुए दक्षिण दिशामें पहुँचकर उत्तम मार्गका आश्रय ले सुखपूर्वक आगे बढ़ने लगे॥ १७॥ सह्यपर्वतके रमणीय शिखरोंपर सानन्द विचरते हुए वे दोनों दक्षिणापथके वीर यात्री अपने मार्गपर बढ़ते ही चले गये॥ १८॥ थोड़े ही समयमें वे दोनों भाई सह्यकी पर्वत-मालाओंसे अलंकृत करवीरपुरमें जा पहुँचे, जो उन्हींके वंशके लोगोंसे विभूषित था॥ १९॥ वहाँ पहुँचकर वे दोनों वीर वेणा नदीके तटपर ही बढ़े हुए वरोहोंसे युक्त एक श्रेष्ठ वृक्ष बरगदके समीप गये॥ २०॥ उस वृक्षके नीचे उद्दीप्त तपस्वी भृगुनन्दन परशुरामजी विराज-मान थे, जिनके एक कंधेपर फरसा सटा हुआ था और जो जटा और वल्कल धारण किये हुए थे। उनके शरीरका वर्ण गौर तथा अग्निशिखाके समान प्रकाशमान था। वे सूर्यके समान तेजस्वी दिखायी देते थे। क्षत्रियोंका अन्त करनेवाले परशुराम किसीसे क्षुब्ध होनेवाले नहीं थे। वे मूर्तिमान् समुद्रके समान गम्भीर प्रतीत होते थे।

न्यस्तसंकुचिताधानं काले हुतहुताशनम्।
क्लिन्नं त्रिषवणाम्भोभिराद्यं देवगुरुं यथा॥ २३

सवत्सां धेनुकां श्वेतां होमधुक् कामदोहनाम्।
क्षीरारणिं कर्षमाणं महेन्द्रगिरिगोचरम्॥ २४

ददृशतुस्तौ सहितावपरिश्रान्तमव्ययम्।
भार्गवं राममासीनं मन्दरस्थं यथा रविम्॥ २५

न्यायतस्तौ तु तं दृष्ट्वा पादमूले कृताञ्जली।
वसुदेवसुतौ वीरौ सधिष्ण्याविव पावकौ॥ २६

कृष्णस्तमृषिशार्दूलमुवाच वदतां वरः।
श्लक्ष्णं मधुरया वाचा लोकवृत्तान्तकोविदः॥ २७

भगवन् जामदग्न्यं त्वामवगच्छामि भार्गवम्।
रामं मुनीनामृषभं क्षत्रियाणां कुलान्तकम्॥ २८

त्वया सायकवेगेन क्षिप्तो भार्गव सागरः।
इषुपातेन नगरं कृतं शूर्पारकं त्वया॥ २९

धनुःपञ्चशतायाममिषुपञ्चशतोच्छ्रयम्।
सह्यस्य च निकुञ्जेषु स्फीतो जनपदो महान्॥ ३०

अतिक्रम्योदधेर्वेलामपरान्ते निवेशितः।
त्वया तत् कार्तवीर्यस्य सहस्रभुजकाननम्॥ ३१

छिन्नं परशुनैकेन स्मरता निधनं पितुः।
इयमद्यापि रुधिरैः क्षत्रियाणां हतद्विषाम्॥ ३२

स्निग्धैस्त्वत्परशूत्सृष्टै रक्तपङ्का वसुंधरा।
रैणुकेयं विजाने त्वां क्षितौ क्षितिपरोषणम्॥ ३३

उनका अग्न्याधान-सम्बन्धी कार्य समाप्त एवं संकुचित हो चुका था, फिर भी वे समय-समयपर प्रज्वलित अग्निमें आहुति दिया करते थे। तीनों समय स्नान करनेके कारण उनका शरीर एवं वस्त्र जलसे भीगे हुए थे। वे देवताओंके आदिगुरु बृहस्पतिके समान जान पड़ते थे। उनके पास जो श्वेत रंगकी सवत्सा (बछड़ेवाली) धेनु थी, वह केवल होमके लिये दुही जाती थी, इसलिये होमधेनु कहलाती थी। इसके सिवा वह मुनिकी इच्छाके अनुसार समस्त वस्तुओंको देनेमें समर्थ थी, इसलिये कामदोहना या कामधेनु कहलाती थी। दूधरूपी अग्निको प्रकट करनेके लिये अरणीके समान शोभित होनेवाली उस होमधेनुको परशुरामजी कहीं खींचकर ले जा रहे थे। वे कभी परिश्रमसे थकते नहीं हैं और अविनाशी हैं। श्रीकृष्ण और बलरामने महेन्द्र गिरिपर विचरनेवाले परशुरामजीको वहाँ मन्दराचलके शिखरपर प्रकाशित होनेवाले सूर्यके समान देखा॥ २१—२५॥ उनका दर्शन करके वसुदेवके उन दोनों वीर पुत्रोंने न्यायानुसार उनके चरणोंमें हाथ जोड़कर प्रणाम किया। वे उस समय वेदीपर प्रज्वलित अग्नियोंके समान जान पड़ते थे॥ २६॥ इसके बाद वक्ताओंमें श्रेष्ठ एवं लोकवृत्तान्तके ज्ञानमें कुशल श्रीकृष्णने मुनिश्रेष्ठ परशुरामजीसे स्नेहयुक्त मधुर वाणीमें कहा—॥ २७॥ 'भगवन्! मैं समझता हूँ कि आप भृगुकुलभूषण क्षत्रियकुलविनाशक मुनिश्रेष्ठ जमदग्निनन्दन परशुरामजी हैं॥ २८॥ भृगुनन्दन! आपने अपने बाणके वेगसे समुद्रको पीछे ढकेल दिया और जितनी दूरीमें बाण गिरा समुद्रसे उतनी ही भूमि लेकर वहाँ शूर्पारक नगरका निर्माण किया॥ २९॥ उस नगरकी लम्बाई पाँच सौ धनुष और चौड़ाई पाँच सौ बाण है*। सह्यपर्वतके निकुञ्जोंमें वह समृद्धिशाली महान् जनपद बसा हुआ है॥ ३०॥ आपने समुद्रवेलाका उल्लङ्घन करके अपरान्तदेशमें (जो पश्चिम समुद्रके तटपर है) उस महान् जनपदको बसाया है। आपने ही अपने पिताकी मृत्युको याद करके एक ही फरसेसे कार्तवीर्यकी सहस्र भुजाओंका वह जंगल काट डाला था। आपके द्वारा मारे गये जो शत्रुभूत क्षत्रिय थे, आपके फरसेसे प्रवाहित हुए उनके स्निग्ध रुधिरसे आज भी यह वसुन्धरा भीगकर रक्तकी कीचसे युक्त दिखायी देती है। मैं जानता हूँ कि आप भूमण्डलके क्षत्रियोंपर रोष प्रकट करनेवाले रेणुकानन्दन परशुराम हैं॥ ३१—३३॥

* धनुष चार हाथ लम्बा और बाण दो हाथ लम्बा माना गया है।

परशुप्रग्रहे युक्तं यथैवेह रणे तथा।
तदिच्छावस्त्वया विप्र कंचिदर्थमुपश्रुतम्॥ ३४

उत्तरं च श्रुतार्थेन प्रत्युक्तमविशङ्कया।
आवयोर्मथुरा राम यमुनातीरशोभिनी॥ ३५

यादवौ स्वो मुनिश्रेष्ठ यदि ते श्रुतिमागतौ।
वसुदेवो यदुश्रेष्ठः पिता नौ हि धृतव्रतः॥ ३६

जन्मप्रभृति चैवावां व्रजेष्वेव नियोजितौ।
तौ स्वः कंसभयात् तत्र शङ्कितौ परिवर्द्धितौ॥ ३७

वयश्च प्रथमं प्राप्तौ मथुरायां प्रवेशितौ।
तावावां व्युत्थितं हत्वा समाजे कंसमोजसा॥ ३८

पितरं तस्य तत्रैव स्थापयित्वा जनेश्वरम्।
स्वमेव कर्म चारब्धौ गवां व्यापारकारकौ॥ ३९

अथावयोः पुरं रोद्धुं जरासंधो व्यवस्थितः।
संग्रामान् सुबहून् कृत्वा लब्धलक्षावपि स्वयम्॥ ४०

ततः स्वपुररक्षार्थं प्रजानां च धृतव्रत।
अकृतार्थावनुद्योगौ कर्तव्यबलसाधनौ॥ ४१

अरथौ पत्तिनौ युद्धे निस्तनुत्रौ निरायुधौ।
जरासंधोद्यमभयात् पुराद् द्वावेव निःसृतौ॥ ४२

एवमावामनुप्राप्तौ मुनिश्रेष्ठ तवान्तिकम्।
आवयोर्मन्त्रमात्रेण कर्तुमर्हसि सत्क्रियाम्॥ ४३

श्रुत्वैतद् भार्गवो रामस्तयोर्वाक्यमनिन्दितम्।
रैणुकेयः प्रतिवचो धर्मसंहितमब्रवीत्॥ ४४

अपरान्तादहं कृष्ण सम्प्रतीहागतः प्रभो।
एक एव विना शिष्यैर्युवयोर्मन्त्रकारणात्॥ ४५

विदितो मे व्रजे वासस्तव पद्मनिभेक्षण।
दानवानां वधश्चापि कंसस्यापि दुरात्मनः॥ ४६

क्योंकि आप रणभूमिकी ही भाँति यहाँ भी फरसा लिये हुए हैं, अतः विप्रवर! हम दोनों आपसे एक बात पूछना चाहते हैं तथा आप हमारी बात सुनकर निर्भीक हो हमें जो उत्तर देंगे, उसे सुननेकी भी हमारी इच्छा है। मुनिश्रेष्ठ परशुराम! हमारी निवासभूमि मथुरापुरी है, जो यमुनातटपर शोभा पाती है। हम दोनों यादव हैं। यदि हमारे नाम भी कभी आपके कानोंमें पड़े हों तो आप हमें जानते भी होंगे। यदुकुलके श्रेष्ठ पुरुष तथा उत्तम व्रत धारण करनेवाले वसुदेवजी हम दोनोंके पिता हैं॥ ३४—३६॥ हम दोनों भाई जन्मसे ही कंसके भयसे व्रजमें ही रखे गये और वहीं उससे शङ्कित रहकर बड़े हुए हैं॥ ३७॥ प्रथम किशोरावस्थाको प्राप्त होनेपर हम दोनों भाइयोंका मथुरामें प्रवेश हुआ। वहाँ हमने धर्म-मर्यादासे विचलित हुए कंसको रंगशालामें बलपूर्वक मार डाला और उसके राज्यपर उसीके पिताको राजा बनाकर बिठा दिया। तत्पश्चात् सदासे गोपालन-सम्बन्धी कार्य करनेवाले हम दोनों भाइयोंने फिर वही अपना काम-धंधा आरम्भ कर दिया॥ ३८-३९॥ तदनन्तर राजा जरासंधने हम दोनोंके नगरपर घेरा डालनेके लिये निश्चित विचार कर लिया। यद्यपि हम दोनों उसके साथ बहुत युद्ध कर चुके हैं और उनमें अपना लक्ष्य सिद्ध करनेमें सफल भी हुए हैं तथापि अपने नगर और प्रजाजनोंकी रक्षाके लिये हमने जरासंधसे लड़नेके लिये कोई उद्योग नहीं किया। व्रतधारी मुने! अभी हमलोगोंको शक्ति और साधनका संचय करना है, अतः अकृतार्थ होकर ही हमलोग वहाँसे चल पड़े॥ ४०-४१॥ हमारे पास युद्धके लिये रथ नहीं है। हम पैदल ही हैं। हमारे शरीरपर कवच और हाथोंमें अस्त्र-शस्त्र भी नहीं हैं। हम जरासंधके आक्रमणके भयसे नगरको छोड़कर केवल दो ही जने वहाँसे निकल आये हैं॥ ४२॥ मुनिश्रेष्ठ! इस प्रकार हम दोनों आपके निकट आये हैं। आप हमें सलाहमात्र देकर हमारा सत्कार करें'॥ ४३॥ उन दोनोंका यह निर्दोष वचन सुनकर रेणुकानन्दन भृगुवंशी परशुरामने उन्हें यह धर्मयुक्त उत्तर दिया—॥ ४४॥ 'प्रभावशाली श्रीकृष्ण! मैं तुम दोनोंको सलाह देनेके लिये ही इस समय यहाँ अपरान्तसे अकेला ही चला आया हूँ। शिष्योंको भी मैंने साथ नहीं लिया है॥ ४५॥ कमलनयन! तुम्हारा जो व्रजमें निवास हुआ है तथा तुम्हारे हाथसे जो दानवों और दुरात्मा कंसका वध हुआ है, वह सब मुझे विदित है'॥ ४६॥

विग्रहं च जरासंधे विदित्वा पुरुषोत्तम।
तव सभ्रातृकस्येह सम्प्राप्तोऽस्मि वरानन॥ ४७

जाने त्वां कृष्ण गोप्तारं जगतः प्रभुमव्ययम्।
देवकार्यार्थसिद्ध्यर्थमबालं बालतां गतम्॥ ४८

न त्वयाविदितं किंचित् त्रिषु लोकेषु विद्यते।
तथापि भक्तिमात्रेण शृणु वक्ष्यामि ते वचः॥ ४९

पूर्वजैस्तव गोविन्द पूर्वं पुरमिदं कृतम्।
करवीरपुरं नाम राष्ट्रं चैव निवेशितम्॥ ५०

पुरेऽस्मिन् नृपतिः कृष्ण वासुदेवो महायशाः।
शृगाल इति विख्यातो नित्यं परमकोपनः॥ ५१

नृपेण तेन गोविन्द तव वंशभवा नृपाः।
दायादा निहताः सर्वे वीर द्वेषानुशायिना॥ ५२

अहंकारपरो नित्यमजितात्मातिमत्सरी।
राज्यैश्वर्यमदाविष्टः पुत्रेष्वपि च दारुणः॥ ५३

तन्नेह भवतः स्थानं रोचते मे नरोत्तम।
करवीरपुरे घोरे नित्यं पार्थिवदूषिते॥ ५४

श्रूयतां कथयिष्यामि यत्रोभौ शत्रुबाधनौ।
जरासंधं बलोदग्रं भवन्तौ योधयिष्यतः॥ ५५

तीर्त्वा वेणामिमां पुण्यां नदीमद्यैव बाहुभिः।
विषयान्ते निवासाय गिरिं गच्छाम दुर्गमम्॥ ५६

रम्यं यज्ञगिरिं नाम सह्यस्य प्ररुहं गिरिम्।
निवासं मांसभक्षाणां चौराणां घोरकर्मणाम्॥ ५७

नानाद्रुमलतायुक्तं चित्रं पुष्पितपादपम्।
प्रोष्ये तत्र निशामेकां खट्वाङ्गां नाम निम्नगाम्॥ ५८

भद्रं ते संतरिष्यामो निकषोपलभूषणाम्।
गङ्गाप्रपातप्रतिमां भ्रष्टां च महतो गिरेः॥ ५९

'सुन्दर मुखवाले पुरुषोत्तम! जरासंधके साथ होनेवाले विग्रहको जानकर ही मैं भाईसहित तुमसे मिलनेके लिये यहाँ आ गया हूँ॥ ४७॥ श्रीकृष्ण! मैं तुम्हें अच्छी तरह जानता हूँ। तुम जगत्‌के रक्षक अविनाशी भगवान् हो और देवताओंका कार्य सिद्ध करनेके लिये बालक न होनेपर भी बालक बनकर प्रकट हुए हो॥ ४८॥ तीनों लोकोंमें जो कुछ भी है, वह तुमसे अविदित नहीं है' (अतः तुम्हें सलाह देनेकी कोई आवश्यकता नहीं है) तथापि मैं अपनी भक्तिमात्रसे प्रेरित हो तुमसे जो बात कहता हूँ, उसे सुनो॥ ४९॥ गोविन्द! पहले तुम्हारे पूर्वजोंने यहाँ इस करवीरपुर नामक नगरका निर्माण किया और इस राष्ट्रको बसाया है॥ ५०॥ श्रीकृष्ण! इस करवीरपुरमें इस समय महायशस्वी वासुदेव रहता है, जो शृगाल नामसे विख्यात है। वह सदा ही अत्यन्त क्रोधमें भरा रहता है॥ ५१॥ वीर गोविन्द! सदा द्वेषका ही अनुसरण करनेवाले उस राजा शृगालने तुम्हारे कुलमें उत्पन्न हुए समस्त उत्तराधिकारी क्षत्रिय नरेशोंको मार डाला है॥ ५२॥ वह नित्य घमंडमें भरा रहता है। उसका मन वशमें नहीं है। वह दूसरोंसे अत्यन्त डाह रखता है। राज्य और ऐश्वर्यके मदसे उन्मत्त होकर अपने पुत्रोंके प्रति भी निर्दयतापूर्ण बर्ताव करता है॥ ५३॥ नरश्रेष्ठ! इसीलिये यहाँ सर्वदा इस राजाद्वारा कलङ्कित घोर करवीरपुरमें तुम्हारा ठहरना मुझे ठीक नहीं जँचता है॥ ५४॥ जहाँ रहकर तुम दोनों बन्धु शत्रुको बाधा पहुँचाते हुए बलमें बढ़े-चढ़े जरासंधके साथ युद्ध करोगे, उस स्थानका परिचय देता हूँ; सुनो॥ ५५॥ हमलोग आज ही इस पुण्य नदी वेणाको भुजाओंसे ही पार करके इस देशकी सीमापर स्थित एक दुर्गम पर्वतपर चले चलें, वहीं निवास करेंगे॥ ५६॥ 'उस पर्वतका नाम है यज्ञगिरि, जो सह्यपर्वतकी ही उपशाखा है। वह बड़ा ही रमणीय स्थान है। वहाँ इन दिनों भयानक कर्म करनेवाले मांसाहारी चोर-डाकुओंने अड्डा जमा रखा है॥ ५७॥ उस पर्वतपर भाँति-भाँतिके वृक्ष और लताएँ लहलहा रही हैं। वृक्षोंमें फूल लगे हुए हैं। इससे उस पर्वतकी विचित्र शोभा होती है। वहाँ हमलोग एक रात निवास करेंगे। तदनन्तर खट्वाङ्गा नामवाली नदीको पार करेंगे, जो कसौटीके पत्थरोंसे विभूषित है। तुम्हारा भला हो। वह नदी उस महान् पर्वतसे गिरी हुई है, जो गङ्गाके प्रपात-सी दिखायी देती है॥ ५८-५९॥

तस्याः प्रपातं द्रक्ष्यामस्तापसारण्यभूषणम्।
उपभुज्य त्विमान् कामान् गत्वा तान् धरणीधरान्॥ ६०

द्रक्ष्यामस्तत्र तान् विप्राञ्छाम्यतो वै तपोधनान्।
रम्यं क्रौञ्चपुरं नाम गमिष्यामः पुरोत्तमम्॥ ६१

वंशजस्तत्र ते राजा कृष्ण धर्मरतः सदा।
महाकपिरिति ख्यातो वनवास्यजनाधिपः॥ ६२

तमदृष्ट्वैव राजानं निवासाय गतेऽहनि।
तीर्थमानडुहं नाम तत्रस्थाः स्याम संगताः॥ ६३

ततश्च्युता गमिष्यामः सह्यस्य विवरे गिरिम्।
गोमन्तमिति विख्यातं नैकशृङ्गविभूषितम्॥ ६४

स्वर्गतैकमहाशृङ्गं दुरारोहं खगैरपि।
विश्रामभूतं देवानां ज्योतिर्भिरभिसंवृतम्॥ ६५

सोपानभूतं स्वर्गस्य गगनाद्रिमिवोच्छ्रितम्।
तं विमानावतरणं गिरिं मेरुमिवापरम्॥ ६६

तस्योत्तमे महाशृङ्गे भास्वन्तौ देवरूपिणौ।
उदयास्तमये सूर्यं सोमं च ज्योतिषां पतिम्॥ ६७

ऊर्मिमन्तं समुद्रं च अपारद्वीपभूषणम्।
प्रेक्षमाणौ सुखं तत्र नगाग्रे विचरिष्यथः॥ ६८

शृङ्गस्थौ तस्य शैलस्य गोमन्तस्य वनेचरौ।
दुर्गयुद्धेन धावन्तौ जरासंधं विजेष्यथः॥ ६९

तत्र शैलगतौ दृष्ट्वा भवन्तौ युद्धदुर्मदौ।
आसक्तः शैलयुद्धे वै जरासंधो भविष्यति॥ ७०

भवतोरपि युद्धे तु प्रवृत्ते तत्र दारुणे।
आयुधैः सह संयोगं पश्यामि नचिरादिव॥ ७१

संग्रामश्च महान् कृष्ण निर्दिष्टस्तत्र दैवतैः।
यदूनां पार्थिवानां च मांसशोणितकर्दमः॥ ७२

'खट्वाङ्गाका प्रपात (झरना) तापसारण्यसे विभूषित है, हमलोग उसे देखेंगे और वहीं कुछ खा-पीकर इन कमनीय एवं प्रसिद्ध पर्वतोंपर विचरते हुए वहाँ उन तपस्वी ब्राह्मणोंका दर्शन करेंगे, जो तपमें संलग्न होकर कष्ट उठा रहे हैं। तत्पश्चात् हम रमणीय एवं श्रेष्ठ नगर क्रौञ्चपुरमें चलेंगे॥ ६०-६१॥ श्रीकृष्ण! वहाँ तुम्हारे ही कुलमें उत्पन्न एक राजा राज्य करते हैं, जो सदा धर्ममें तत्पर रहनेवाले हैं, उनका नाम है महाकपि; वे वनवासी जनपद तथा वहाँके निवासी प्रजाओंके अधिपति हैं॥ ६२॥ उस राजासे मिले बिना ही हमलोग निवासके लिये संध्या होते-होते आनडुह नामक तीर्थमें जा पहुँचेंगे और वहाँ एक साथ मिलकर रहेंगे॥ ६३॥ वहाँसे उतरकर हमलोग सह्यपर्वतकी गुफामें होते हुए उस गोमन्त नामसे विख्यात शैलपर जा पहुँचेंगे, जो अनेकानेक शिखरोंसे विभूषित है॥ ६४॥ उसका एक विशाल शिखर इतना ऊँचा है कि वह स्वर्गलोकतक पहुँचा हुआ जान पड़ता है। आकाशचारी पक्षियोंके लिये भी उसपर चढ़ना कठिन है। वह देवताओंका विश्राम-स्थल है और ज्योतियोंसे घिरा हुआ है॥ ६५॥ उसे स्वर्गका सोपान समझा जाता है। वह उच्चतम पर्वत (भूतलका नहीं) आकाशका-सा पर्वत जान पड़ता है। उसपर देवताओंके विमान उतरते हैं तथा वह दूसरे मेरुगिरिके समान प्रतीत होता है॥ ६६॥ तुम दोनों भाई देवताओंके समान दिव्य रूपधारी तथा तेजस्वी हो। उस गोमन्त गिरिके महान् शिखरपर आरूढ़ होकर उदय और अस्तके समय सूर्य एवं नक्षत्रोंके स्वामी चन्द्रमाका तथा अपार द्वीपोंसे विभूषित और तरङ्गमालाओंसे अलंकृत समुद्रका दर्शन करते हुए तुम दोनों बन्धु वहाँ पर्वतीय शिखरके अग्रभागमें सुखपूर्वक विचरोगे॥ ६७-६८॥ उस गोमन्त नामक शैलके शिखरपर रहकर वहाँके वनमें विचरते हुए तुम दोनों वीर दुर्ग-युद्धद्वारा धावा करके जरासंधको जीत लोगे॥ ६९॥ तुम दोनों रण-दुर्मद वीरोंको उस पर्वतपर आरूढ़ हुआ देख जरासंध पर्वत-युद्धमें ही आसक्त हो जायगा॥ ७०॥ वहाँ भयंकर युद्ध आरम्भ हो जानेपर तुम दोनोंके हाथमें भी शीघ्र ही दिव्य आयुधोंका संयोग हुआ देखूँगा॥ ७१॥ श्रीकृष्ण! वहाँ देवताओंने यादवों तथा अन्य राजाओंके महान् युद्धका निर्देश किया है, जिसमें रक्त और मांसकी कीच जम जानेवाली है॥ ७२॥

तत्र चक्रं हलं चैव गदां कौमोदकीं तथा।
सौनन्दं मुसलं चैव वैष्णवान्यायुधानि च॥ ७३

दर्शयिष्यन्ति संग्रामे पास्यन्ति च महीक्षिताम्।
रुधिरं कालयुक्तानां वपुर्भिः कालसंनिभैः॥ ७४

स चक्रमुसलो नाम संग्रामः कृष्ण विश्रुतः।
दैवतैरिह निर्दिष्टः कालस्यादेशसंज्ञितः॥ ७५

तत्र ते कृष्ण संग्रामे सुव्यक्तं वैष्णवं वपुः।
द्रक्ष्यन्ति रिपवः सर्वे सुराश्च सुरभावन॥ ७६

तां भजस्व गदां कृष्ण चक्रं च चिरविस्मृतम्।
भजस्व स्वेन रूपेण सुराणां विजयाय वै॥ ७७

बलश्चायं हलं घोरं मुसलं चारिभेदनम्।
वधाय सुरशत्रूणां भजताल्लोकभावनः॥ ७८

एष ते प्रथमः कृष्ण संग्रामो भुवि पार्थिवैः।
पृथिव्यर्थे समाख्यातो भारावतरणे सुरैः॥ ७९

आयुधावाप्तिरत्रैव वपुषो वैष्णवस्य च।
लक्ष्म्याश्च तेजसश्चैव व्यूहानां च विदारणम्॥ ८०

अतःप्रभृति संग्रामो धरण्यां शस्त्रमूर्च्छितः।
भविष्यति महान् कृष्ण भारतं नाम वैशसम्॥ ८१

तद् गच्छ कृष्ण शैलेन्द्रं गोमन्तं च नगोत्तमम्।
जरासंधमृधे चापि विजयस्त्वामुपस्थितः॥ ८२

इदं चैवामृतप्रख्यं होमधेनोः पयोऽमृतम्।
पीत्वा गच्छत भद्रं वो मयाऽऽदिष्टेन वर्त्मना॥ ८३

वहाँ सुदर्शन चक्र, संवर्तक हल, कौमोदकी गदा तथा सौनन्द नामक मुसल—ये विष्णुसम्बन्धी आयुध संग्राममें तुम्हें दर्शन देंगे और अपने कालके समान स्वरूपोंसे कालके अधीन हुए राजाओंका रक्त पीयेंगे॥ ७३-७४॥ श्रीकृष्ण! वह संग्राम चक्र-मुसलके नामसे विख्यात होगा। देवताओंने इसी स्थानपर उसके होनेका संकेत किया है। वह युद्ध साक्षात् कालका आज्ञापत्र है॥ ७५॥ देवताओंकी उत्पत्ति और वृद्धि करनेवाले श्रीकृष्ण! उस संग्राममें समस्त शत्रु और देवता भी तुम्हारे भलीभाँति व्यक्त हुए वैष्णव रूपका दर्शन करेंगे॥ ७६॥ श्रीकृष्ण! तुम अपने उसी वैष्णव रूपसे स्थित हो देवताओंकी विजयके लिये चिरकालसे भूले हुए अपने उस चक्र और गदाको ग्रहण करना॥ ७७॥ तथा ये लोकभावन बलराम भी देवद्रोहियोंका वध करनेके लिये अपने शत्रुविदारण घोर हल और मूसलको हाथमें ले लें॥ ७८॥ श्रीकृष्ण! पृथ्वीका भार उतारनेके लिये भूमण्डलके राजाओंके साथ तुम्हारा यह पहला संग्राम देवताओंद्वारा बताया गया है॥ ७९॥ यहीं तुम्हें अपने दिव्य आयुधोंकी, वैष्णव स्वरूपकी, लक्ष्मीकी तथा शत्रुव्यूहोंका विदारण करनेवाले तेजकी प्राप्ति होगी॥ ८०॥ श्रीकृष्ण! इसके बाद पृथ्वीपर अस्त्र-शस्त्रोंसे व्याप्त एक महान् संग्राम होगा, जो लोगोंमें महाभारतके नामसे प्रसिद्ध होगा॥ ८१॥ अतः श्रीकृष्ण! तुम पर्वतोंमें श्रेष्ठ गिरिराज गोमन्तपर चलो। जरासंधके युद्धमें भी विजयश्री तुम्हारा ही वरण करनेके लिये प्रस्तुत है॥ ८२॥ तुम्हारा कल्याण हो। मेरी इस होमधेनुका यह अमृतोपम सुमधुर दुग्ध पीकर मेरे बताये हुए मार्गसे चलो'॥ ८३॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे विष्णुपर्वणि रामवाक्ये एकोनचत्वारिंशोऽध्यायः॥ ३९॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत परशुरामवाक्यविषयक उन्तालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ३९॥

चत्वारिंशोऽध्यायः

श्रीकृष्ण, बलराम और परशुरामजीका गोमन्तपर्वतपर आरोहण, गोमन्तकी शोभाका वर्णन तथा परशुरामजीका श्रीकृष्णको युद्धके लिये प्रोत्साहन देकर वहाँसे प्रस्थान

वैशम्पायन उवाच

तत्तु धेन्वाः पयः पीत्वा बलदर्पसमन्वितौ।
ततस्तौ रामसहितौ प्रस्थितौ यदुपुङ्गवौ॥ १

गोमन्तं पर्वतं द्रष्टुं मत्तनागेन्द्रगामिनौ।
जामदग्न्यप्रदिष्टेन मार्गेण वदतां वरौ॥ २

जामदग्न्यतृतीयास्ते त्रयस्त्रय इवाग्नयः।
शोभयन्ति स्म पन्थानं त्रिदिवं त्रिदशा इव॥ ३

ते चाध्वविधिना सर्वे ततो वै दिवसक्रमात्।
गोमन्तमचलं प्राप्ता मन्दरं त्रिदशा इव॥ ४

लताचारुविचित्रं च नानाद्रुमविभूषितम्।
नानागुरुपिनद्धाङ्गं चित्रं चित्रैर्मनोहरैः॥ ५

द्विरेफगणसंकीर्णं शिलासंकटपादपम्।
मत्तबर्हिणनिर्घोषैर्नादितं मेघनादिभिः॥ ६

गगनालग्नशिखरं जलदासक्तपादपम्।
मत्तद्विपविषाणाग्रैः परिघृष्टोपलाङ्कितम्॥ ७

कूजद्भिश्चाण्डजगणैः समन्तात् प्रतिनादितम्।
दरीप्रपाताम्बुरवैश्छन्नं शार्दूलतल्लजैः॥ ८

नीलाश्मचयसंघातैर्बहुवर्णं यथा घनम्।
धातुविस्त्रावदिग्धाङ्गं सानुप्रस्त्रवभूषितम्॥ ९

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! उस होमधेनुका दूध पीकर बल और दर्पसे भरे हुए वे दोनों यदुपुङ्गव वीर परशुरामजीके साथ वहाँसे प्रस्थित हुए॥ १॥ मतवाले गजराजकी भाँति मस्तीके साथ चलनेवाले वे वक्ताओंमें श्रेष्ठ श्रीकृष्ण और बलराम परशुरामजीके बताये हुए मार्गसे गोमन्तपर्वतका दर्शन करनेके लिये चले॥ २॥ उन दोनोंके साथ तीसरे परशुरामजी थे। वे तीनों तीन अग्नियोंके समान उसी तरह उस मार्गकी शोभा बढ़ाते थे, जैसे देवता स्वर्गकी॥ ३॥ मनुष्य जिस तरह किसी मार्गपर चलते हैं, उसी विधिसे वे सब लोग यात्रा करते हुए क्रमशः कई दिनोंके बाद गोमन्तगिरिपर जा पहुँचे, मानो देवता मन्दराचलके शिखरपर गये हों॥ ४॥ नाना प्रकारकी लताओंके विस्तारसे उस पर्वतकी सुन्दर एवं विचित्र शोभा हो रही थी। भाँति-भाँतिके वृक्ष उसके लिये भूषणका काम दे रहे थे। उस पर्वतका सारा अङ्ग अनेक प्रकारके अगुरु आदि सुगन्धित धूपोंसे व्याप्त था। मनोहर मयूर उसे और भी विचित्र शोभासे सम्पन्न किये देते थे॥ ५॥ भ्रमरोंसे व्याप्त और शिला तथा वृक्षोंसे भरा हुआ वह पर्वत मेघोंके समान गम्भीर स्वरोंमें बोलनेवाले मतवाले मयूरोंकी मधुर ध्वनिसे निनादित हो रहा था॥ ६॥ उसके शिखर आकाशके ऊर्ध्वभागसे लगे हुए थे। बादल उसके वृक्षोंका आलिङ्गन करते थे तथा उसके प्रस्तरखण्ड मतवाले हाथियोंके दाँतोंके अग्रभागकी रगड़से घिरे हुए दिखायी देते थे। उन प्रस्तरोंसे अङ्कित हुआ वह पर्वत बड़ी शोभा पाता था॥ ७॥ वहाँ चारों ओर पक्षी कलरव करते थे, जिनकी प्रतिध्वनि सब ओर छायी रहती थी। गुफाओंमें झरनेका जल गिरनेसे जो शब्द होता था तथा बड़े-बड़े व्याघ्रोंके दहाड़नेसे जो ध्वनि होती थी, उससे भी वह पर्वत व्याप्त हो रहा था॥ ८॥ वहाँ नीले पत्थरोंके ढेर-के-ढेर पड़े थे, जिनसे वह अनेक वर्णके मेघकी भाँति सुशोभित होता था। पानीके साथ गेरू आदि धातुओंके बहानेसे उसका अङ्ग चन्दनसे चर्चित-सा जान पड़ता था। शिखरोंसे जो झरने गिर रहे थे, वे आभूषणके समान उसकी शोभा बढ़ाते थे॥ ९॥

कीर्णं सुरगणैः कान्तैर्मैनाकमिव कामगम्।
उच्छ्रितं सुविशालाग्रं समूलाम्बुपरिस्त्रवम्॥ १०

सकाननदरीप्रस्थं श्वेताभ्रगणभूषितम्।
पनसाम्रातकाम्रौघैर्वेत्रस्यन्दनचन्दनैः ॥ ११

तमालैलावनयुतं मरीचक्षुपसंकुलम्।
पिप्पलीवल्लिकलिलं चित्रमिङ्गुदिपादपैः॥ १२

द्रुमैः सर्जरसानां च सर्वतः परिशोभितम्।
प्रांशुशालवनैर्युक्तं बहुचित्रवनैर्युतम्॥ १३

सर्जनिम्बार्जुनवनं पाटलीकुलसंकुलम्।
हिन्तालैश्च तमालैश्च पुन्नागैश्चोपशोभितम्॥ १४

जलेषु जलजैश्छन्नं स्थलेषु स्थलजैरपि।
पङ्कजैर्द्रुमखण्डैश्च सर्वतः प्रतिभूषितम्॥ १५

जम्बूजम्बूलवृक्षाढ्यं कद्रुकन्दलभूषितम्।
चम्पकाशोकबकुलं बिल्वतिन्दुकशोभितम्॥ १६

कुञ्जैश्च नागपुष्पैश्च समन्तादुपशोभितम्।
नागयूथसमाकीर्णं मृगसंघातशोभितम्॥ १७

सिद्धचारणरक्षोभिः सेवितप्रस्तरान्तरम्।
गन्धर्वैश्च समायुक्तं गुह्यकैः पक्षिभिस्तथा॥ १८

विद्याधरगणैर्नित्यमनुकीर्णशिलातलम्।
सिंहशार्दूलसंनादैः सततं प्रतिनादितम्।
सेवितं वारिधाराभिश्चन्द्रपादैश्च शोभितम्॥ १९

स्तुतं त्रिदशगन्धर्वैरप्सरोभिरलंकृतम्।
वनस्पतीनां दिव्यानां पुष्पैरुच्चावचैः श्रितम्॥ २०

शक्रवज्रप्रहाराणामनभिज्ञं कदाचन।
दावाग्निभयनिर्मुक्तं महावातभयोज्झितम्॥ २१

प्रपातप्रभवाभिश्च सरिद्भिरुपशोभितम्।
काननैराननाकारैर्विशेषद्भिरिव श्रियम्॥ २२

कान्तिमान् देवता वहाँ सब ओर फैले हुए थे। वह इच्छानुसार विचरनेवाले मैनाक-सा प्रतीत होता था। अत्यन्त विशाल शिखरसे सुशोभित वह उच्चतम पर्वत अपने मूलभागसे निर्झरोंके जलकी धारा बहा रहा था॥ १०॥ वन, गुफा और शिखरोंसे सम्पन्न वह शैलराज श्वेत बादलोंसे विभूषित था। वहाँ कटहल, आम्रातक (आमड़ा), आमोंके समूह, बेंत, स्यन्दन (तिनिश), चन्दन, तमाल, इलायचीके वन तथा मिर्चकी झाड़ियाँ शोभा पाती थीं। वहाँ सब ओर पिप्पलीकी बेलें फैली थीं। इङ्गुदीके वृक्ष विचित्र शोभा दे रहे थे तथा सर्जरस (राल)-के वृक्ष सब ओरसे उस पर्वतको सुशोभित किये हुए थे। ऊँचे-ऊँचे शाल वृक्षोंके वन तथा अन्य बहुत-से विचित्र वन उस पर्वतकी शोभा बढ़ा रहे थे॥ ११—१३॥ राल, नीम और अर्जुन-वृक्षोंका वन शोभा दे रहा था। पाड़र-वृक्षोंके समूह वहाँ सब ओर छा रहे थे। हिंताल, तमाल और पुन्नाग (जायफल) उस शैलशिखरकी शोभा बढ़ाते थे॥ १४॥ वहाँ जलोंमें जलज कमल, स्थलोंमें स्थलज कमल तथा अन्यान्य वृक्षसमूह सब ओरसे उस पर्वतके आभूषण बने हुए थे॥ १५॥ जामुन, केवड़े, कद्रु, केले, चम्पा, अशोक, बकुल, बिल्व और तिन्दुक आदि वृक्षोंसे वह शैल सुशोभित था॥ १६॥ बहुत-से कुञ्ज और नागकेसरके फूल सब ओरसे उसकी शोभा बढ़ाते थे। झुंड-के-झुंड हाथी वहाँ सब ओर फैले हुए थे। मृगोंके समुदायसे वह शोभायमान था॥ १७॥ उसके प्रस्तरखण्डोंके मध्य-भागोंमें सिद्ध, चारण तथा राक्षस बैठे हुए थे। गन्धर्व, गुह्यक तथा पक्षी भी उस पर्वतका सेवन करते थे॥ १८॥ उसकी शिलाएँ सदा ही विद्याधरगणोंसे सेवित होती थीं। सिंहों और व्याघ्रोंके दहाड़नेकी ध्वनिसे वह पर्वत निरन्तर गूँजता रहता था। जलकी धाराएँ और चन्द्रमाकी किरणें उसका सेवन एवं शोभा-संवर्धन करती थीं॥ १९॥ देवता और गन्धर्व उसकी प्रशंसा करते थे। वह पर्वत अप्सराओंसे अलंकृत था। दिव्य वनस्पतियोंके नाना प्रकारके फूल वहाँ सब ओर बिखरे पड़े थे॥ २०॥ उस पर्वतको कभी भी इन्द्रके वज्रप्रहारकी व्यथाका अनुभव नहीं हुआ था। वहाँ न तो दावानलका भय था और न प्रचण्ड आँधीका॥ २१॥ निर्झरोंसे प्रकट हुई सरिताएँ उस पर्वतको सुशोभित करती थीं। वह अपनी शोभा बढ़ाते हुए-से मुखाकार काननोंसे उपलक्षित होता था॥ २२॥

जलशैवलशृङ्गाग्रैरुन्मिषन्तमिव श्रिया।
स्थलीभिर्मृगजुष्टाभिः कान्ताभिरुपशोभितम्॥ २३

पार्श्वैरुपलकल्माषैर्मेघैरिव विभूषितम्।
पादपच्छन्नभूमीभिः सपुष्पाभिः समन्ततः॥ २४

मण्डितं वनराजीभिः प्रमदाभिः पतिर्यथा।
सुन्दरीभिर्दरीभिश्च कन्दराभिस्तथैव च॥ २५

तेषु तेष्ववकाशेषु सदारमिव शोभितम्।
औषधीदीप्तशिखरं वानप्रस्थनिषेवितम्।
जातरूपैर्वनोद्देशैः कृत्रिमैरिव भूषितम्॥ २६

मूलेन सुविशालेन शिरसाप्युच्छ्रितेन च।
पृथिवीमन्तरिक्षं च ग्राहयन्तमिव स्थितम्॥ २७

ते समासाद्य गोमन्तं रम्यं भूमिधरोत्तमम्।
रुचिरं रुरुचुः सर्वे वासायामरसंनिभाः॥ २८

रुरुहुस्ते गिरिवरं खमूर्ध्वमिव पक्षिणः।
असज्जमाना वेगेन वैनतेयपराक्रमाः॥ २९

ते तु तस्योत्तरं शृङ्गमारूढास्त्रिदशा इव।
अगारं सहसा चक्रुर्मनसा निर्मितोपमम्॥ ३०

निविष्टौ यादवौ दृष्ट्वा जामदग्न्यो महामतिः।
रामोऽभिमतमक्लिष्टमाप्रष्टुमुपचक्रमे ॥ ३१

कृष्ण यास्याम्यहं तात पुरं शूर्पारकं विभो।
युवयोर्नास्ति वैमुख्यं संग्रामे दैवतैरपि॥ ३२

प्राप्तवानस्मि यां प्रीतिं मार्गानुगमनादपि।
सा मे कृष्णानुगृह्णाति शरीरमिदमव्ययम्॥ ३३

जल और सिवारसे युक्त शिखरोंके अग्रभागद्वारा मानो वह लक्ष्मीसे आँख मिला रहा था। पशुओंसे सेवित कमनीय वनस्थलियाँ उसकी शोभा बढ़ाती थीं॥ २३॥ पार्श्वभागमें स्थित चितकबरे प्रस्तरखण्डोंसे वह ऐसी शोभा पा रहा था, मानो बहुरंगे बादलोंसे विभूषित हो रहा हो। अपने वृक्षसमूहोंसे भूमिको ढक देनेवाली पुष्पशोभित वनश्रेणियाँ उस पर्वतको सब ओरसे घेरकर उसी प्रकार शोभा-सम्पन्न किए हुए थीं, जैसे पुष्पवती (रजस्वला होनेके पश्चात् स्नान एवं पुष्पहारसे अलंकृत) युवती स्त्रियाँ पतिको घेरकर खड़ी हों। जगह-जगह सुन्दर गुफाओं और मनोहर कन्दराओंसे अलंकृत हुआ गोमन्तगिरि विभिन्न स्थानोंमें सपत्नीक पुरुषकी भाँति शोभा पाता था। विभिन्न प्रकारकी ओषधियाँ उसके शिखरको उद्भासित किये हुए थीं। वानप्रस्थ मुनि उसका सेवन करते थे तथा उसके सहज सुन्दर वनोद्देश कृत्रिम उद्यानोंकी भाँति उसे विभूषित किये हुए थे॥ २४—२६॥ वह पर्वत अपने अत्यन्त विशाल मूलभाग और उच्चतम शिखरसे पृथ्वी और आकाशमें प्रविष्ट होकर उनकी थाह लगाता हुआ-सा खड़ा था॥ २७॥ पर्वतोंमें श्रेष्ठ सुन्दर एवं मनोहर गोमन्तपर्वतपर पहुँचकर उन सभी देवोपम पुरुषोंने वहाँ निवास करनेकी इच्छा की॥ २८॥ गरुड़के समान पराक्रमी वे तीनों महापुरुष उस श्रेष्ठ पर्वतपर उसी तरह वेगसे चढ़ने लगे, जैसे पक्षी ऊपर आकाशमें उड़ते हैं। उस समय उनमेंसे किसीकी भी गति अवरुद्ध नहीं होती थी॥ २९॥ वे देवताओंकी भाँति उसके सर्वोच्च शिखरपर आरूढ़ हो गये। वहाँ उन्होंने सहसा अपने रहनेके लिये घर बना लिया, मानो मानसिक संकल्पसे ही उसका निर्माण कर लिया हो॥ ३०॥ उन दोनों यदुकुमारोंको वहाँ विराजमान हुआ देख परम बुद्धिमान् परशुरामजीने प्रसन्नतापूर्वक अपने अभीष्ट स्थानपर जानेके लिये उनसे पूछना आरम्भ किया—॥ ३१॥ 'तात! प्रभावशाली श्रीकृष्ण! अब मैं शूर्पारक नगरको जाऊँगा। आप दोनोंको तो युद्धमें देवता भी नहीं हरा सकते (फिर मनुष्यकी तो बात ही क्या है?)॥ ३२॥ श्रीकृष्ण! तुम दोनोंके साथ मार्गका अनुसरण करनेसे मुझे जो प्रसन्नता प्राप्त हुई है, वह मेरे इस अविनाशी शरीरको अनुगृहीत कर रही है'॥ ३३॥

इदं तत् स्थानमुद्दिष्टं यत्रायुधसमागमः।
युवयोर्विहितो देवैः समयः साम्परायिकः॥ ३४

देवानां मुख्य वैकुण्ठ विष्णो देवैरभिष्टुत।
कृष्ण सर्वस्य लोकस्य शृणु मे नैष्ठिकं वचः॥ ३५

यदिदं प्रस्तुतं कर्म त्वया गोविन्द लौकिकम्।
मानुषाणां हितार्थाय लोके मानुषदेहिना॥ ३६

तस्यायं प्रथमः कल्पः कालेन तु नियोजितः।
जरासंधेन वै सार्धं संग्रामे समुपस्थिते॥ ३७

तत्रायुधबलं चैव रूपं च रणकर्कशम्।
स्वयमेवात्मना कृष्ण त्वमात्मानं विधत्स्व ह॥ ३८

चक्रोद्यतकरं दृष्ट्वा त्वां गदापाणिमाहवे।
चतुर्द्विगुणपीनांसं बिभ्येदपि शतक्रतुः॥ ३९

अद्यप्रभृति ते यात्रा स्वर्गोक्ता समुपस्थिता।
पृथिव्यां पार्थिवेन्द्राणां कृतास्त्रे त्वयि मानद॥ ४०

वैनतेयस्य चाह्वानं वाहनं ध्वजकर्मणि।
कुरु शीघ्रं महाबाहो गोविन्द वदतां वर॥ ४१

युद्धकामा नृपतयस्त्रिदिवाभिमुखोद्यताः।
धार्तराष्ट्रस्य वशगास्तिष्ठन्ति रणवृत्तयः॥ ४२

राज्ञां निधनदृष्टार्था वैधव्येनाधिवासिता।
एकवेणीधरा चेयं वसुधा त्वां प्रतीक्षते॥ ४३

सग्रहं कृष्ण नक्षत्रं संक्षिप्यारिविमर्दन।
त्वयि मानुष्यमापन्ने युद्धे च समुपस्थिते॥ ४४

त्वरस्व कृष्ण युद्धाय दानवानां वधाय च।
स्वर्गाय च नरेन्द्राणां देवतानां सुखाय च॥ ४५

मैंने जिसे बताया था और जहाँ तुम्हें अपने दिव्य आयुध प्राप्त होनेवाले हैं, वह स्थान यही है। देवताओंने तुम्हारे लिये उनकी प्राप्तिका यही समय निर्धारित किया है, जो परलोकके लिये हितकर है॥ ३४॥ देवताओंमें श्रेष्ठ वैकुण्ठ! तुम सर्वव्यापी विष्णु हो। देवताओंने सदा तुम्हारी स्तुति की है। श्रीकृष्ण! तुम मेरी यह तात्त्विक बात सुनो, जो सम्पूर्ण जगत्‌के लिये हितकर है॥ ३५॥ गोविन्द! तुमने मनुष्योंके हितके लिये संसारमें मानव-शरीर धारण करके जो यह लौकिक कर्म प्रारम्भ किया है, उसका यह पहला प्रयोग यहीं होने जा रहा है। कालने उसका आयोजन यहीं किया है॥ ३६$\frac{1}{2}$॥ श्रीकृष्ण! जरासंधके साथ संग्राम उपस्थित होनेपर तुम स्वयं ही अपने-आपके द्वारा अपनेको आयुध-बलसे सम्पन्न कर लेना और अपना रण-कर्कश रूप बना लेना॥ ३६—३८॥ जिस समय तुम आठ मांसल कंधोंसे युक्त हो हाथोंमें चक्र और गदा उठाये युद्धके लिये उपस्थित होओगे, उस समय तुम्हें देखकर देवराज इन्द्र भी भयभीत हो उठेंगे॥ ३९॥ मानद! जब तुम हाथमें हथियार लेकर युद्धके लिये उद्यत हो गये हो, तब आजसे ही भूमण्डलके राजाओंकी स्वर्गीय यात्रा आरम्भ हो जायगी॥ ४०॥ वक्ताओंमें श्रेष्ठ महाबाहु गोविन्द! तुम अपने ध्वजारोपणरूप कार्यकी सिद्धिके लिये शीघ्र ही वाहनरूप विनतानन्दन गरुड़का आवाहन करो॥ ४१॥ युद्धकी इच्छा करनेवाले नरेशगण स्वर्गके लिये अभिमुख एवं उद्यत होकर युद्धवृत्तिका आश्रय ले धृतराष्ट्रपुत्र दुर्योधनके अधीन होकर खड़े हैं॥ ४२॥ राजाओंका निधन होनेवाला है, यह बात प्रत्यक्ष देखकर वैधव्यसूचक वेष-भूषा धारण किये एक वेणीधारिणी (केशसंस्कारसे रहित) यह वसुन्धरा तुम्हारी राह देखती है॥ ४३॥ शत्रुमर्दन श्रीकृष्ण! आप मानवरूप धारण करके इस धरातलपर आ गये हैं और युद्धका अवसर भी उपस्थित है, इसलिये क्षत्रियसमाज मृत्युसे संकुचित न होकर रणभूमिमें आनेके लिये उतावला हो उठा है। किसी समयविशेषकी प्रतीक्षा नहीं कर रहा है, क्योंकि उसका जन्मनक्षत्र क्रूरग्रहसे आक्रान्त हो गया है॥ ४४॥ श्रीकृष्ण! तुम दानवोंका वध करने, नरेशोंको स्वर्गलोकमें भेजने और देवताओंको सुख पहुँचानेके उद्देश्यसे युद्धके लिये जल्दी करो॥ ४५॥

सत्कृतोऽहं त्वया कृष्ण लोकैश्च सचराचरैः।
त्वया सत्कृतरूपेण येन सत्कृतवानहम्॥ ४६

साधयामि महाबाहो भवतः कार्यसिद्धये।
स्मर्तव्यश्चास्मि युद्धेषु कान्तारेषु महीक्षिताम्॥ ४७

इत्युक्त्वा जामदग्न्यस्तु कृष्णमक्लिष्टकारिणम्।
जयाशिषा वर्द्धयित्वा जगामाभीप्सितां दिशम्॥ ४८

'सच्चिदानन्दघन श्रीकृष्ण! तुम स्वरूपतः सबके द्वारा सत्कृत हो। तुम सर्वात्माने जो मेरा सत्कार किया है, उससे मैं चराचर प्राणियोंसहित सम्पूर्ण लोकोंद्वारा सत्कृत हो गया और सदाके लिये सत्कारवान् बन गया॥ ४६॥ महाबाहो! मैं तुम्हारे कार्यकी सिद्धिके लिये स्वयं भी साधना करूँगा। सभी भूमिपालोंको चाहिये कि वे दुर्गम संकट और युद्धके अवसरोंपर मेरा स्मरण करें'॥ ४७॥ ऐसा कहकर परशुरामजी अनायास ही महान् कर्म करनेवाले श्रीकृष्णको विजयसूचक आशीर्वादसे बढ़ावा देकर स्वयं अभीष्ट दिशाको चले गये॥ ४८॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे विष्णुपर्वणि गोमन्तारोहणं नाम चत्वारिंशोऽध्यायः॥ ४०॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत विष्णुपर्वमें श्रीकृष्णका गोमन्तपर्वतपर आरोहणविषयक चालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ४०॥

एकचत्वारिंशोऽध्यायः

बलरामके पास वारुणी, कान्ति एवं श्री (शोभा)--इन देवाङ्गनाओंका आगमन, गरुड़के द्वारा श्रीकृष्णको वैष्णव मुकुटकी प्राप्ति, श्रीकृष्णका बलरामसे वार्तालाप तथा जरासंधकी सेनाका निरीक्षण करके अपने-आपसे ही मानसिक उद्गार प्रकट करना

वैशम्पायन उवाच

जामदग्न्ये गते रामे तौ यादवकुलोद्वहौ।
गोमन्तशिखरे रम्ये चेरतुः कामरूपिणौ॥ १

वनमालाकुलोरस्कौ नीलपीताम्बरावुभौ।
नीलश्वेतवपुष्मन्तौ गगनस्थाविवाम्बुदौ॥ २

तौ शैलधातुदिग्धाङ्गौ युवानौ शिखरे स्थितौ।
चेरतुस्तत्र कान्तेषु वनेषु रतिलालसौ॥ ३

उदयन्तं निरीक्षन्तौ शशिनं ज्योतिषां वरम्।
उदयास्तमने चैव ग्रहाणां धरणीधरे॥ ४

अथ संकर्षणः श्रीमान् विना कृष्णेन वीर्यवान्।
चचार तस्य शिखरे नगस्य नगसंनिभः॥ ५

प्रफुल्लस्य कदम्बस्य सुच्छाये निषसाद ह।
वायुना मन्दगन्धेन वीज्यमानः सुखेन वै॥ ६

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! परशुरामजीके चले जानेपर यादवकुलका भार वहन करनेवाले वे श्रीकृष्ण और बलराम इच्छानुसार रूप धारण करके गोमन्तपर्वतके रमणीय शिखरपर विचरने लगे॥ १॥ उन दोनोंके वक्षःस्थलोंमें वनमाला शोभा पा रही थी। दोनों क्रमशः नीले-पीले वस्त्र धारण करके अपने गौर-श्याम शरीरसे आकाशमें स्थित हुए दो मेघोंके समान शोभा पा रहे थे॥ २॥ पर्वतीय धातुओंसे अपने अङ्गोंका शृङ्गार करके उस पर्वतके शिखरपर खड़े हुए दोनों नवयुवक वीर क्रीड़ाकी लालसा लिये कमनीय वनोंमें विचरण करने लगे॥ ३॥ वे उस पर्वतपर ज्योतिर्मय नक्षत्रोंमें श्रेष्ठ चन्द्रमाके उदयकी शोभा देखते और ग्रहोंके उदय-अस्त देखा करते थे॥ ४॥ एक दिन परम पराक्रमी श्रीमान् संकर्षण श्रीकृष्णके बिना ही उस पर्वतके शिखरपर विचर रहे थे। वे स्वयं भी पर्वतके समान प्रतीत होते थे॥ ५॥ घूमते-घूमते एक खिले हुए कदम्बकी मनोहर छायामें बैठ गये। उस समय कदम्बकी मधुर मन्द गन्धसे वासित वायु उन्हें सुखपूर्वक व्यजन डुलाने लगी॥ ६॥

तस्य तेनानिलौघेन सेव्यमानस्य तत्र वै।
मद्यसंस्पर्शजो गन्धः संस्पृशन् घ्राणमागतः॥ ७

तृष्णा चैनं विवेशाशु वारुणीप्रभवा तदा।
शुशोष च मुखं तस्य मत्तस्येवापरेऽहनि॥ ८

स्मारितः स पुरावृत्तममृतप्राशनं विभुः।
तृषितो मदिरान्वेषी ततस्तं तरुमैक्षत॥ ९

तस्य प्रावृषि फुल्लस्य यदम्भो जलजोज्झितम्।
तत्कोटरस्थं मदिरा संजायत मनोहरा॥ १०

तां तु तृष्णाभिभूतात्मा पिबन्नार्त इवासकृत्।
मोहाच्च चलिताकारः समजायत स प्रभुः॥ ११

तस्य मत्तस्य वदनं किंचिच्चलितलोचनम्।
घूर्णिताकारमभवच्छरत्कालेन्दुसप्रभम्॥ १२

कदम्बकोटरे जाता नाम्ना कादम्बरीति सा।
रूपिणी वारुणी तत्र देवानाममृतारणी॥ १३

कादम्बरीमदकलं विदित्वा कृष्णपूर्वजम्।
तिस्रस्त्रिदशनार्यस्तमुपतस्थुः प्रियंवदाः॥ १४

मदिरा रूपिणी भूत्वा कान्तिश्च शशिनः प्रिया।
श्रीश्च देवी वरिष्ठा स्त्री स्वयमेवाम्बुजध्वजा॥ १५

साञ्जलिप्रग्रहा देवी रौहिणेयमुपस्थिता।
वारुण्या सहितं वाक्यमुवाच मदविक्लवम्॥ १६

बलं जयस्व दैत्यानां बलदेव दिवीश्वर।
अहं ते दयिता कान्ता वारुणी समुपस्थिता॥ १७

त्वामेवान्तर्हितं श्रुत्वा शाश्वतं वडवामुखे।
क्षीणपुण्येव वसुधां पर्येमि विमलानन॥ १८

वह मन्द-मन्द वायु बहकर जब बलरामजीकी सेवा कर रही थी, उस समय उनकी घ्राणेन्द्रियमें मधुका स्पर्श करके आये हुए सुगन्धित समीरने प्रवेश किया॥ ७॥ उस समय उनके भीतर वारुणी (मधु या अमृत)-की तृष्णाका आवेश हुआ। फिर तो दूसरे दिन मतवाले पुरुषकी भाँति उनका मुँह सूखने लगा॥ ८॥ उन्हें पूर्वकालमें किये गये अमृतपानका स्मरण हो आया। वे तृषित होकर उस अमृतकी खोज करने लगे। तब उन्होंने उस वृक्षकी ओर देखा॥ ९॥ वर्षाकालमें उस खिले हुए कदम्बपर जो मेघोंका बरसाया हुआ जल गिरा था, वह उसके कोटरमें मनोहर सुधाके रूपमें प्रकट हो गया॥ १०॥ बलरामजीका हृदय प्याससे घबरा उठा था। वे पिपासापीडित पुरुषकी भाँति उस अमृतको बार-बार पीने लगे। उसको अधिक पी लेनेके कारण उनपर मोह (नशा-) सा छा गया, जिससे उन प्रभावशालीका शरीर कुछ लड़खड़ाने-सा लगा॥ ११॥ मधुसे मत्त हुए बलरामका मुख कुछ झूमता-सा प्रतीत हुआ, नेत्र किंचित् चञ्चल हो उठे। उस मुखकी प्रभा शरत्कालके चन्द्रमाकी भाँति सुशोभित होने लगी॥ १२॥ वह मधुमयी सुधा कदम्बके कोटरमें उत्पन्न हुई थी, इसलिये कादम्बरी नामसे विख्यात हुई। वहाँ मूर्तिमती वारुणी प्रकट हुई थी, जो देवताओंके लिये अमृत पैदा करनेवाली है॥ १३॥ श्रीकृष्णके बड़े भाईको कादम्बरी (मधु या अमृत)-के नशेसे स्पष्ट बात बोलनेमें असमर्थ जान तीन प्रियवादिनी देवाङ्गनाएँ उनकी सेवामें उपस्थित हुईं॥ १४॥ एक तो मादक मधु या अमृतकी अधिष्ठात्री देवी (जिन्हें वारुणी कहते हैं) मूर्तिमती होकर प्रकट हुईं। दूसरी चन्द्रमाकी प्रिय कान्ति (की अधिष्ठात्री देवी) थीं और तीसरी श्री देवी थीं, जो सर्वश्रेष्ठ स्त्री मानी जाती हैं, उनके ध्वजमें कमलका चिह्न है, वे देवी स्वयं ही हाथ जोड़े हुए रोहिणीनन्दन बलरामकी सेवामें उपस्थित हुई थीं। वारुणीके साथ उन्होंने मदविह्वल बलरामजीसे इस प्रकार कहा—॥ १५-१६॥ 'पहले वारुणी बोली 'देवलोकेश्वर बलदेव! आप दैत्योंकी सेनापर विजय प्राप्त करें। मैं आपकी प्राणवल्लभा वारुणी सेवामें उपस्थित हुई हूँ॥ १७॥ निर्मल मुखवाले देव! मैं आपको बड़वानलके समीप पातालमें शेषरूपसे नित्य विराजमान जानती थी, किंतु इस समय भूतलमें अवतार लेनेके कारण वहाँसे अदृश्य हो गये हैं, ऐसा सुनकर मैं पुण्यहीना नारी-सी आपकी खोजमें सारी पृथ्वीपर भटक रही थी॥ १८॥

पुष्पचक्रानुलिप्तेषु केसरेषूषितं मया।
अतिमुक्तेषु चाक्षोभ्य पुष्पस्तबकवत्सु च॥ १९

अहं कदम्बमालीना मेघकाले मुखप्रिया।
तृषितं मार्गमाणा त्वां स्वेन रूपेण छादिता॥ २०

सास्मि पूर्णेन योगेन यथैवामृतमन्थने।
समीपं प्रेषिता पित्रा वरुणेन तवानघ॥ २१

सा यथैवार्णवगता तथैव वडवामुखे।
त्वयोपभोक्तुमिच्छामि सम्मतस्त्वं हि मे गुरुः॥ २२

न त्वानन्तं परित्यक्ष्ये भर्त्सितापि त्वयानघ।
नाहं त्वया विना लोकानुत्सहे देव सेवितुम्॥ २३

आदिपद्मं च पद्माङ्कं दिव्यं श्रवणभूषणम्।
कौशेयानि च नीलानि समुद्रार्हाणि बिभ्रती॥ २४

मदिरानन्तरं कान्तिः संकर्षणमुपस्थिता।
मदेनागलितश्रोणी किंचिदाघूर्णितेक्षणा॥ २५

प्रोवाच प्रणयात् कान्तिर्बद्धाञ्जलिपुटा सती।
जयपूर्वेण योगेन सस्मितं वाक्यमर्थवत्॥ २६

अहं चन्द्रादपि गुरुं सहस्रशिरसं प्रभुम्।
स्वैर्गुणैरनुरक्ता त्वां यथैव मदिरा तथा॥ २७

श्रीश्च पद्मालया देवी निधेया वैष्णवोरसि।
रौहिणेयोरसि शुभा मालेवामलतां गता॥ २८

सा मालाममलां गृह्य बलस्योरसि दंशिता।
पद्मास्या पद्महस्ता वै संकर्षणमथाब्रवीत्॥ २९

राम रामाभिरामस्त्वं वारुण्या समलंकृतः।
कान्त्या मया च देवेश संगतश्चन्द्रमा यथा॥ ३०

अजेय वीर! मैंने पुष्पसमूहोंसे अनुलिप्त हुए केसरोंमें निवास किया है, फूलोंके गुच्छोंसे सुशोभित वासन्ती लताओंमें वास किया है॥ १९॥ मेरे लिये प्यासे हुए आपकी खोज करती हुई मैं अपने रूपको छिपाकर वर्षाकालमें कदम्ब वृक्षके भीतर लुक-छिपकर रहती आयी हूँ। मुझे आपके मुखका निवास ही विशेष प्रिय है॥ २०॥ निष्पाप बलराम! जैसे पूर्वकालमें अमृत-मन्थनके समय पूर्णयोगसे युक्त होनेपर मेरे पिता वरुणने मुझे आपके समीप भेजा था, जैसे समुद्रमें और पातालमें मैं आपके पास रही हूँ, उसी प्रकार इस समय भी आपकी सेवामें उपस्थित हुई हूँ और चाहती हूँ कि आपके द्वारा मेरा उपभोग हो; क्योंकि मेरे हृदयने आपहीको अपना स्वामी माना है॥ २१-२२॥ अनघ! आप मुझे डाँट बतायें तो भी मैं आप अनन्तका परित्याग नहीं करूँगी। देव! मैं समुद्रमें रहनेवालीके योग्य नीले रंगकी रेशमी साड़ी पहनकर आदिपद्म तथा पद्मचिह्नित दिव्य कर्णभूषण धारण कर आपकी सेवामें आयी हूँ। आपके बिना मैं दूसरे किन्हीं लोकोंका सेवन करना नहीं चाहती॥ २३-२४॥ वारुणीके बाद कान्तिदेवी संकर्षणकी सेवामें उपस्थित हुई। उसका कटिप्रदेश मदसे कुछ कम्पित हो रहा था। आँखें भी कुछ घूम रही थीं। उसने दोनों हाथ जोड़कर कहा—'जय हो बलरामजीकी।' फिर प्रेमसे मुसकराती हुई वह प्रयोजनयुक्त वचन बोली—॥ २५-२६॥ प्रभो! आपके सहस्रों मस्तक हैं। आप जगत्के स्वामी हैं। मेरी दृष्टिमें आपका गौरव चन्द्रमासे भी अधिक है। मैं भी वारुणीकी भाँति आपके निजी गुणोंसे आकृष्ट हो आपमें अनुरक्त हो गयी हूँ (इसीलिये आपकी सेवामें उपस्थित हूँ। आप मुझे अङ्गीकार करें)'॥ २७॥ जो भगवान् विष्णुके वक्षःस्थलमें नित्य निवास करनेयोग्य हैं, वे कमलवनमें वास करनेवाली देवी श्री[1] (शोभा) रोहिणीनन्दन बलरामके वक्षःस्थलमें सुन्दर मालाकी भाँति प्रतिष्ठित हो निर्मल भावको प्राप्त हुईं। उनका मुख कमलके समान सुशोभित था, उनके हाथमें भी कमल-पुष्प शोभा दे रहा था; वस्त्राभूषणोंसे सुसज्जित हुई वे मूर्तिमती शोभा देवी बलरामके वक्षमें स्थित हो एक निर्मल माला हाथमें लेकर संकर्षणसे बोलीं—॥ २८-२९॥ 'देवेश्वर राम! बलराम! आप बड़े ही अभिराम (सुन्दर) हैं। वारुणी (सुधा)-से, चन्द्रमाकी-सी कान्तिसे तथा मुझसे (कमलालयाकी-सी शोभासे) सम्पन्न होकर चन्द्रमाके समान प्रकाशित हो रहे हैं'॥ ३०॥

१. यहाँ श्रीका अर्थ शोभाकी अधिष्ठात्री देवी है। साक्षात् भगवती लक्ष्मी तो भगवान् विष्णुकी अनन्यानुरागिणी पतिव्रता पत्नी हैं। यहाँ मधु, कान्ति और शोभा—इन तीन लोकसामान्य वस्तुओंकी अधिष्ठात्री देवियोंका ही उल्लेख किया है—ऐसा समझना चाहिये।

इयं च सा मया मौलिः प्रोद्धृता वरुणालयात्।
मूर्ध्नि शीर्षसहस्रस्य या ते भानुरिवाबभौ॥ ३१

जातरूपमयं चैकं कुण्डलं वज्रभूषितम्।
आदिपद्मं च पद्माक्षं दिव्यश्रवणभूषणम्॥ ३२

कौशेयानि च नीलानि समुद्राहाणि भावतः।
हारं च पीनतरलं समुद्राभ्यन्तरोषितम्॥ ३३

देवेमां प्रतिगृह्णीष्व पौराणीं भूषणक्रियाम्।
समयस्ते महाबाहो भूषणानामलंक्रिया॥ ३४

संगृह्य तमलंकारं ताश्च तिस्रः सुरस्त्रियः।
शुशुभे बलदेवो हि शारदेन्दुसमप्रभः॥ ३५

स समागम्य कृष्णेन जलजाम्भोदवर्चसा।
मुदं परमिकां लेभे ग्रहयुक्तः शशी यथा॥ ३६

ताभ्यामुभाभ्यां संलापे वर्तमाने गृहे यथा।
वैनतेयस्ततोऽध्वानमतिचक्राम वेगतः॥ ३७

संग्राममुक्तस्तेजस्वी दैत्यप्रहरणाङ्कितः।
देवतानां जयश्लाघी दिव्यस्रगनुलेपनः॥ ३८

सुप्तस्य शयने दिव्ये क्षीरोदे वरुणालये।
विष्णोः किरीटं दैत्येन हृतं वैरोचनेन वै॥ ३९

तदर्थस्तेन संग्रामः कृतो गुर्वर्थमोजसा।
किरीटार्थे समुद्रस्य मध्ये दैत्यगणैः सह॥ ४०

मोक्षयित्वा किरीटं तु वैष्णवं पततां वरः।
व्यत्यक्रमत वेगेन गगनं देवतालयम्॥ ४१

स ददर्श गुरुं शैले विष्णुं कार्यान्तरागतम्।
तेन क्रीडावलम्बेन किरीटेन विराजता॥ ४२

'आप सहस्र सिरवाले अनन्तदेवके मस्तकपर जो सूर्यके समान उद्भासित होता था, वह मुकुट समुद्रसे निकालकर मैं यहाँ ले आयी हूँ। यही है वह मुकुट॥ ३१॥ इसके सिवा वज्रमणि (हीरे)-से विभूषित एक सुवर्णमय कुण्डल भी लेती आयी हूँ, जो आपके एक कानका दिव्य भूषण है। यह आदिपद्म और पद्माक्ष कहलाता है॥ ३२॥ जो समुद्रमें ही मिल सकते हैं, ऐसे कितने ही नीले रंगके रेशमी वस्त्र (अथवा आपकी इच्छाके अनुरूप नील कौशेय वस्त्र) तथा यह पीन तरल हार, जो समुद्रमें ही विद्यमान था, मैं आपके लिये लायी हूँ। आप इसे सादर ग्रहण करें॥ ३३॥ देव! यह सब आपकी पुरातन भूषण-सामग्री है। इसे ग्रहण कीजिये। महाबाहो! यह आपके भूषण ग्रहण करनेका समय है। आपसे ही इन भूषणोंकी शोभा है, इनसे आपकी नहीं'॥ ३४॥ वह अलङ्कार तथा उन तीनों देवाङ्गनाओंको ग्रहण करके बलदेवजी शरत्कालके चन्द्रमाकी भाँति शोभा पाने लगे॥ ३५॥ तदनन्तर वे नील कमल और मेघके समान श्याम कान्तिवाले श्रीकृष्णके साथ मिलकर ग्रहयुक्त चन्द्रमाके समान सुशोभित होने लगे। उस समय उनको बड़ी प्रसन्नता प्राप्त हुई॥ ३६॥ वे दोनों भाई जैसे घरमें बैठे हों, उस प्रकार बातचीत करने लगे। इसी समय विनतानन्दन गरुड़ बड़े वेगसे विशाल मार्ग तै करके वहाँ आये॥ ३७॥ तेजस्वी गरुड़ उस समय एक संग्रामसे छूटकर आये थे। दैत्योंके प्रहारोंके चिह्न उस समय भी उनके अङ्गोंमें अङ्कित थे। वे देवताओंकी विजय चाहनेवाले तथा दिव्य पुष्पोंकी माला और दिव्य चन्दन धारण करनेवाले थे॥ ३८॥ वरुणके निवासभूत क्षीरसमुद्रमें जब भगवान् विष्णु दिव्य शय्यापर सो रहे थे, उस समय विरोचनके पुत्र एक दैत्यने उनका किरीट चुरा लिया॥ ३९॥ अपने गुरुरूप भगवान्के लिये उस किरीटको वापस लानेके उद्देश्यसे गरुड़ने बीच समुद्रमें दैत्योंके साथ बलपूर्वक संग्राम किया॥ ४०॥ भगवान् विष्णुके उस किरीटको दैत्योंके हाथसे छुड़ाकर पक्षियोंमें श्रेष्ठ गरुड़ बड़े वेगसे देवताओंके निवासभूत आकाशमें उड़ चले॥ ४१॥ उन्होंने देखा, मेरे स्वामी विष्णु दूसरे कार्यसे इस पर्वतपर पधारे हैं। वे उस समय उस प्रकाशमान किरीटको क्रीडापूर्वक अपनी चोंचमें लटकाये चल रहे थे॥ ४२॥

स दृष्ट्वा मानुषं विष्णुं शैलराजशिरोगतम्।
प्रकाशचेष्टानिर्मुक्तं विमौलिमिव मानुषम्॥ ४३

अभिज्ञस्तस्य भावानां गरुत्मान् पततां वरः।
चिक्षेप खं गतो मौलिं विष्णोः शिरसि हृष्टवत्॥ ४४

उपेन्द्रमूर्ध्नि सा मौलिरपिनद्धा इवापतत्।
शिरसः स्थाननिर्युक्ता कृष्णं चैवान्वशोभयत्।
यथैव मेरुशिखरे भानुर्मध्यंदिने यथा॥ ४५

वैनतेयप्रयोगेण विदित्वा मौलिमागताम्।
कृष्णः प्रहृष्टवदनो रामं वचनमब्रवीत्॥ ४६

त्वरते खलु कार्यार्थो देवतानां न संशयः।
यथेयमावयोः शैले संग्रामरचना कृता॥ ४७

वैरोचनेन सुप्तस्य मम मौलिर्महोदधौ।
शक्रस्य सदृशं रूपं दिव्यमास्थाय सागरात्॥ ४८

ग्राहरूपेण यो नीत आनीतोऽसौ गरुत्मता।
ममाहिशयनान्मौलिर्हृत्वा क्षिप्तो गरुत्मता॥ ४९

सुव्यक्तं संनिकृष्टः स जरासंधो नराधिपः।
लक्ष्यन्ते हि ध्वजाग्राणि रथानां वातरंहसाम्॥ ५०

एतानि विजिगीषूणां शशिकल्पानि भूभृताम्।
छत्राण्यार्य विराजन्ते दंशितानि मितानि च॥ ५१

अहो नृपरथोदग्रा विमलाश्छत्रपङ्क्तयः।
अभिवर्तन्ति नः शुभ्रा यथा खे हंसपङ्क्तयः॥ ५२

अहो द्यौर्विमलाभानां शस्त्राणां विमलानना।
प्रभा भास्करभामिश्रा चरन्तीव दिशो दश॥ ५३

एतानि नूनं समरे पार्थिवैरायुधानि च।
क्षिप्तानि विनशिष्यन्ति मयि सर्वाणि संयुगे॥ ५४

काले खलु नृपः प्राप्तो जरासंधो महीपतिः।
आवयोर्युद्धनिकषः प्रथमः समरातिथिः॥ ५५

गिरिराज गोमन्तके शिखरपर विराजमान मानवरूपधारी विष्णुको प्रकाश और चेष्टाओंसे रहित तथा मुकुटहीन देख उनके मानसिक भावोंको समझनेवाले पक्षियोंमें श्रेष्ठ गरुड़ने आकाशमें स्थित होकर बड़े हर्षके साथ उन श्रीविष्णुके सिरपर वह मुकुट डाल दिया॥ ४३-४४॥ वह मुकुट श्रीकृष्णके मस्तकपर गिरा और इस प्रकार बैठ गया मानो किसीने पहना दिया हो। मस्तकके स्थानपर निश्चितरूपसे आबद्ध होकर उस मुकुटने भगवान् श्रीकृष्णकी शोभा बढ़ा दी। जैसे दोपहरके समय मेरुके शिखरपर सूर्यदेव प्रकाशित होते हैं, उसी प्रकार वह मुकुट भी देदीप्यमान हो रहा था॥ ४५॥ गरुड़के प्रयोगसे मुकुटको मस्तकपर आया हुआ जान श्रीकृष्णका मुख प्रसन्नतासे खिल उठा और वे बलरामजीसे इस प्रकार बोले—॥ ४६॥ 'भैया! इस पर्वतपर हम दोनोंके लिये जिस प्रकार युद्धोपयोगी वेष-भूषाकी रचना कर दी गयी है, इससे यही अनुमान होता है कि देवताओंका कार्य एवं प्रयोजन शीघ्र ही सिद्ध होना चाहता है, इसमें संशय नहीं है॥ ४७॥ जब मैं महासागरमें सो रहा था, उस समय विरोचनका पुत्र इन्द्रका-सा रूप धारण करके वहाँ चला गया और जब मैं शेष-शय्यासे उठकर यहाँ आ गया, तब वह ग्राहरूप धारण करके वहाँसे मेरा मुकुट उठा लाया। वही मुकुट गरुड़ उससे छीन लाये हैं और उन्होंने इसे मेरे मस्तकपर रख दिया है॥ ४८-४९॥ निश्चय ही राजा जरासंध अब बहुत निकट आ गया है; क्योंकि वायुके समान वेगवाले रथोंकी ध्वजाओंके अग्रभाग दिखायी दे रहे हैं॥ ५०॥ आर्य! विजयकी अभिलाषा रखनेवाले राजाओंके ये चन्द्रमा-जैसे श्वेत कान्तिवाले सुसज्जित छत्र प्रकाशित हो रहे हैं; इनकी संख्या परिमित ही है॥ ५१॥ अहो! राजाओंके रथोंपर विराजमान जो ये श्वेत वर्णवाली ऊँची छत्र-पङ्क्तियाँ हमलोगोंकी ओर बढ़ी आ रही हैं, ये आकाशमें उज्ज्वल हंसपङ्क्तियोंके समान सुशोभित होती हैं॥ ५२॥ अहो! इन निर्मल प्रभावाले शस्त्रोंकी चमकसे आकाशका मुख भी उज्ज्वल एवं प्रकाशित हो उठा है। शस्त्रोंकी ये दीप्तियाँ सूर्यदेवकी किरणोंसे मिलकर दसों दिशाओंमें विचरती-सी प्रतीत होती हैं॥ ५३॥ निश्चय ही समराङ्गणमें भूमिपालोंद्वारा मुझपर चलाये गये ये समस्त अस्त्र-शस्त्र नष्ट हो जायँगे॥ ५४॥ राजा जरासंध ठीक समयपर आया है। यह हमलोगोंके युद्ध-कौशलकी कसौटी है तथा समराङ्गणका पहला अतिथि है॥ ५५॥

आर्य तिष्ठाव सहितौ न खल्वनागते नृपे।
युद्धारम्भः प्रयोक्तव्यो बलं तावद् विमृश्यताम्॥ ५६

एवमुक्त्वा ततः कृष्णः स्वस्थः संग्रामलालसः।
जरासंधवधं प्रेप्सुश्चकार बलदर्शनम्॥ ५७

वीक्षमाणश्च तान् सर्वान् नृपान् यदुवरोऽव्ययः।
आत्मानमात्मनोवाच यत्पूर्वं दिवि मन्त्रितम्॥ ५८

इमे ते पृथिवीपालाः पार्थिवे वर्त्मनि स्थिताः।
ये विनाशं गमिष्यन्ति शास्त्रदृष्टेन कर्मणा॥ ५९

प्रोक्षितान् खल्विमान् मन्ये मृत्युना नृपसत्तमान्।
स्वर्गगामीनि चाप्येषां वपूंषि प्रचकाशिरे॥ ६०

स्थाने भारपरिश्रान्ता वसुधेयं दिवं गता।
एषां नृपतिसिंहानां बलौघैरभिपीडिता॥ ६१

अल्पेन खलु कालेन विविक्तं पृथिवीतलम्।
भविष्यति नरेन्द्रौघैराकीर्णं च नभस्तलम्॥ ६२

आर्य! हम दोनों साथ रहें। राजा जरासंधके आनेसे पहले अभी हमें युद्ध आरम्भ नहीं करना चाहिये। जबतक वह नहीं आता है, तबतक हम उसके बलका विचार कर लें॥ ५६॥ ऐसा कहकर श्रीकृष्ण स्वस्थभावसे संग्रामकी इच्छा रखकर जरासंधका वध चाहते हुए उसके सैनिक-बलका निरीक्षण करने लगे॥ ५७॥ उन सब राजाओंका निरीक्षण करते हुए अविनाशी यदुकुलतिलक भगवान् श्रीकृष्ण स्वयं ही अपने-आपसे कहने लगे—'अहो! दिव्यलोकमें देवताओंके साथ बैठकर जो गुप्त मन्त्रणा की गयी थी, उसके अनुसार ये भूमिपाल राजोचित्त मार्गपर स्थित हैं। ये शास्त्रोक्त विधिसे संग्राममें विनाशको प्राप्त होंगे॥ ५८-५९॥ मैं तो समझता हूँ कि मृत्युने रणयज्ञमें आहुति देनेके लिये इन श्रेष्ठ राजाओंका प्रोक्षण कर लिया है। इनके स्वर्गगामी शरीर अभीसे प्रकाशित हो रहे हैं॥ ६०॥ यह पृथ्वी इन राजसिंहोंके सैन्यसमूहोंसे पीड़ित हो इनके भारसे थककर जो देवलोकमें गयी थी, वह इसका जाना उचित ही था॥ ६१॥ अब थोड़े ही समयमें यह भूमण्डल इन राजसमूहोंसे खाली हो जायगा और आकाश भर जायगा'॥ ६२॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे विष्णुपर्वणि जरासंधाभिगमनं नामैकचत्वारिंशोऽध्यायः॥ ४१॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत विष्णुपर्वमें जरासंधका अभियानविषयक इकतालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ४१॥

द्विचत्वारिंशोऽध्यायः

जरासंधकी सेनाका वर्णन, उसका सेनाको पर्वतपर आक्रमण करनेकी आज्ञा देना, दमघोषकी सम्मतिसे गोमन्तपर्वतमें आग लगाया जाना, पर्वतका जलना तथा बलराम और श्रीकृष्णका पर्वतसे कूदकर राजाओंकी सेनामें आ पहुँचना

वैशम्पायन उवाच

जरासंधस्ततः प्राप्तो नृपः सर्वमहीक्षिताम्।
नराधिपैर्बलयुतैरनुयातो महाद्युतिः॥ १

व्यायतोदग्रतुरगैर्विस्पष्टार्थसमाहितैः।
रथैः साङ्ग्रामिकैर्युक्तैरसङ्गगतिभिः क्वचित्॥ २

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! तदनन्तर समस्त राजाओंका राजा महातेजस्वी जरासंध वहाँ आ पहुँचा। उसके पीछे अपनी-अपनी सेनाओंके साथ दूसरे भी बहुत-से नरेश थे॥ १॥ कहीं अस्त्र-शस्त्रके ज्ञाता पुरुषोंद्वारा भलीभाँति सिखाये गये विशाल एवं प्रचण्ड बलशाली अश्वोंसे युक्त रथ युद्धोपयोगी सामग्रियोंसे सम्पन्न होकर आगे बढ़ रहे थे। उन रथोंकी गति कहीं भी अवरुद्ध नहीं होती थी॥ २॥

हेमकक्षैर्महाघण्टैर्वारणैर्वारिदोपमैः ।
महामात्रोत्तमारूढैः कल्पितै रणगर्वितैः ॥ ३

स्वारूढैः सादिभिर्युक्तैः प्रेङ्खमाणैः प्रवल्गितैः ।
वाजिभिर्वायुसंकाशैः प्लवद्भिरिव पत्रिभिः ॥ ४

खड्गचर्मबलोदग्रैः पत्तिभिर्बलिनां वरैः ।
सहस्रसंख्यैर्निर्मुक्तैरुत्पतद्भिरिवोरगैः ॥ ५

एवं चतुर्विधैः सैन्यैः प्रचलद्भिरिवाम्बुदैः ।
नृपोऽभियातो बलवाञ्जरासंधो धृतव्रतः ॥ ६

स रथैर्नेमिघोषैश्च गजैश्च मदसंयुतैः ।
हेषद्भिश्चापि तुरगैः क्ष्वेडितोग्रैश्च पत्तिभिः ॥ ७

संनादयन् दिशः सर्वाः सर्वांश्चापि गुहाशयान् ।
स राजा सागराकारः ससैन्यः प्रत्यदृश्यत ॥ ८

तद्बलं पृथिवीशानां हृष्टयोधजनाकुलम् ।
क्ष्वेडितास्फोटितरवं मेघसैन्यमिवाबभौ ॥ ९

रथैः पवनसंपातैर्गजैश्च जलदोपमैः ।
तुरगैश्च सिताभ्राभैः पत्तिभिश्चापि दंशितैः ॥ १०

व्यामिश्रं तद्बलं भाति मत्तद्विपसमाकुलम् ।
घर्मान्ते सागरगतं यथाभ्रपटलं तथा ॥ ११

सबलास्ते महीपाला जरासंधपुरोगमाः ।
परिवार्य गिरिं सर्वे निवेशायोपचक्रमुः ॥ १२

बभौ तस्य निविष्टस्य बलश्रीः शिबिरस्य वै ।
शुक्ले पर्वणि पूर्णस्य यथा रूपं महोदधेः ॥ १३

वीतरात्रे ततः काले नृपास्ते कृतकौतुकाः ।
आरोहणार्थं शैलस्य समेता युद्धलालसाः ॥ १४

कहीं बहुसंख्यक हाथी चल रहे थे, जिन्हें सोनेकी जंजीरोंसे कसा गया था। उनके दोनों पार्श्वमें बड़े-बड़े घंटे लटक रहे थे। वे सभी हाथी मेघोंकी घटाके समान जान पड़ते थे। उनके ऊपर अच्छे महावत बैठे थे तथा रणगर्वित कुशल योद्धाओंद्वारा उन्हें सुसज्जित किया गया था॥ ३ ॥ कहीं घुड़सवार योद्धा घोड़ोंपर अच्छी तरहसे सवार थे। उनके वे घोड़े वायुके समान वेगशाली थे और उछलते-कूदते हुए आगे बढ़ते समय आकाशमें उड़ते हुए पक्षियोंके समान प्रतीत होते थे॥ ४ ॥ बलवानोंमें श्रेष्ठ पैदल सैनिक भी ढाल और तलवार लिये प्रचण्डरूप धारण करके आगे बढ़ते थे। वे हजार-हजारकी टोलियोंमें एक साथ चलते और केंचुलसे छूटे हुए सर्पोंके समान उछलते थे॥ ५ ॥ इस प्रकार मँडराते हुए बादलोंके समान चतुरङ्गिणी सेनाएँ साथ लेकर वीर-व्रतको धारण करनेवाला बलवान् राजा जरासंध युद्धके लिये आगे बढ़ रहा था॥ ६ ॥ वह राजा पहियोंके घर्घर घोषसे युक्त रथों, (चिग्घाड़ते हुए) मतवाले हाथियों, हिनहिनाते हुए घोड़ों तथा गर्जते हुए पैदल सैनिकोंद्वारा सम्पूर्ण दिशाओं एवं समस्त पर्वतीय कन्दराओंको प्रतिध्वनित करता हुआ सेनाके साथ समुद्रके समान दिखायी देता था॥ ७-८ ॥ भूमिपालोंकी वह सेना हृष्ट-पुष्ट योद्धाओंसे परिपूर्ण थी। गर्जने और ताल ठोंकनेकी गम्भीर ध्वनिसे गर्जती हुई मेघोंकी घटाके समान प्रतीत होती थी॥ ९ ॥ वायुके समान तीव्र गतिसे चलनेवाले रथों, काले मेघोंके समान प्रतीत होनेवाले हाथियों, श्वेत बादलोंके समान घोड़ों तथा कवच आदिसे सुसज्जित पैदल योद्धाओंसे मिश्रित हुई वह सेना सब ओरसे सुशोभित हो रही थी। मतवाले हाथियोंसे व्याप्त हुई वह विशाल वाहिनी वर्षा-ऋतुमें समुद्रके भीतर लक्षित होनेवाले मेघोंके समूहकी शोभा धारण करती थी॥ १०-११ ॥ जरासंध आदि समस्त भूपाल अपनी सेनाके साथ उस पर्वतको चारों ओरसे घेरकर छावनी डालनेकी तैयारी करने लगे॥ १२ ॥ वहाँ डेरा डाले हुए जरासंधके सैनिकशिविरकी शोभा वैसी ही प्रतीत होती थी, जैसा कि शुक्लपक्षकी पूर्णिमाको अपनी उत्ताल तरंगोंसे परिपूर्ण हुए महासागरका रूप देखनेमें आता है॥ १३ ॥ तदनन्तर रात बीतनेपर सब राजा उठे और मङ्गलाचारसे सम्पन्न हो युद्धकी लालसासे गोमन्तपर्वतपर चढ़नेके लिये एकत्र होने लगे॥ १४ ॥

समवायीकृताः सर्वे गिरिप्रस्थेषु ते नृपाः।
निविष्टाः मन्त्रयामासुर्युद्धकालकुतूहलाः॥ १५

एषां तु तुमुलः शब्दः शुश्रुवे पृथिवीक्षिताम्।
युगान्ते भिद्यमानानां सागराणां यथा स्वनः॥ १६

तेषां सकञ्चुकोष्णीषाः स्थविरा वेत्रपाणयः।
चेरुर्मा शब्द इत्येवं ब्रुवन्तो राजशासनात्॥ १७

तस्य रूपं बलस्यासीन्निःशब्दस्तिमितस्य वै।
लीनमीनभुजङ्गस्य निःशब्दस्य पयोदधेः॥ १८

तस्मिन् स्तिमितनिश्शब्दे योगादिव महार्णवे।
जरासन्धो बृहद्वाक्यं बृहस्पतिरिवाददे॥ १९

शीघ्रं समभिवर्तन्तां बलानीह महीक्षिताम्।
सर्वतः पर्वतश्चायं बलौघैः परिवार्यताम्॥ २०

अश्मयन्त्राणि युज्यन्तां क्षेपणीयाश्च मुद्गराः।
ऊर्ध्वं चापि प्रवाह्यन्तां प्रासा वै तोमराणि च॥ २१

ऊर्ध्वं प्रक्षेपणार्थाय दृढानि च लघूनि च।
शस्त्रपातविघातानि क्रियन्तामाशु शिल्पिभिः॥ २२

शूराणां युद्ध्यमानानां प्रमत्तानां परस्परम्।
यथा नरपतिः प्राह तथा शीघ्रं विधीयताम्॥ २३

दार्यतामेष टङ्कौघैः खनित्रैश्च नगोत्तमः।
नृपाश्च युद्धमार्गज्ञा विन्यस्यन्तामदूरतः॥ २४

अद्यप्रभृति सैन्यैर्मे गिरिरोधः प्रवर्त्यताम्।
यावदेतौ पातयामो वसुदेवसुतावुभौ॥ २५

अचलोऽयं शिलायोनिः क्रियतां निश्चलाण्डजः।
आकाशमपि बाणोघैर्निःसम्पातं विधीयताम्॥ २६

मयानुशिष्टास्तिष्ठन्तु गिरिभूमिषु भूमिपाः।
तेषु तेष्ववकाशेषु शीघ्रमारुह्यतां गिरिः॥ २७

पर्वतके शिखरोंपर एकत्र हो वे सभी राजा बैठे और युद्धके शुभ अवसरके लिये उत्सुक हो आपसमें मन्त्रणा करने लगे॥ १५॥ सेनासहित इन नरेशोंकी तुमुल ध्वनि प्रलयकालमें मर्यादाको तोड़कर बहनेवाले समुद्रोंकी भयंकर गर्जनाके समान सुनायी देती थी॥ १६॥ उन राजाओंके छड़ीदार बूढ़े सिपाही चोगा और पगड़ी धारण किये तथा हाथमें बेंत लिये राजाज्ञासे यह कहते हुए विचरने लगे कि सब लोग मौन रहें। कोई एक शब्द भी न बोले॥ १७॥ उस समय नीरव और निश्चल हुए उस सैन्यसमूहका रूप उस शब्दहीन प्रशान्त महासागरके समान प्रतीत होता था, जिसके मत्स्य और भुजङ्ग जलके भीतर विलीन हो गये हों॥ १८॥ वह सैन्यसागर मानो योगबलसे जब सहसा नीरव तथा निश्चल हो गया, तब बृहस्पतिके समान नीतिज्ञ जरासंधने यह महत्त्वपूर्ण बात कही—॥ १९॥ 'राजाओंकी सेनाएँ शीघ्र ही आक्रमण करें और सब ओरसे सैनिकसमूह इस पर्वतको घेर लें॥ २०॥ पत्थरोंके गोले बरसानेवाले यन्त्र लगा दिये जायँ। क्षेपणीय (गोफना या ढेलवाँस) तथा मुद्गर सँभाल लिये जायँ। प्राश और तोमर भी ऊपर कर लिये जायँ॥ २१॥ शत्रुओंके शस्त्रप्रहारको नष्ट करनेमें समर्थ सुदृढ़ और हलके गोलोंको ऊपर फेंकनेके लिये हमारे शिल्पी शीघ्र तैयार करें॥ २२॥ परस्पर प्रमत्त होकर युद्ध करनेवाले शूरवीरोंके लिये जैसा राजा दमघोष कहें, शीघ्र वैसा ही प्रबन्ध किया जाय॥ २३॥ उस उत्तम पर्वतको टंकसमूहों और खनित्रोंसे खोदकर विदीर्ण कर डाला जाय। युद्धकी प्रणालीके जानकार नरेशोंको इसके समीप ही यथास्थान खड़ा किया जाय॥ २४॥ आजसे मेरे सैनिक इस पर्वतपर घेरा डाल दें और इसे तबतक चालू रखें, जबतक कि हम इन दोनों वसुदेवपुत्रोंको मार न डालें॥ २५॥ शिलाओंसे ही उत्पन्न हुआ (अथवा शिलाओंका उत्पादक) यह पर्वत स्वयं तो अचल है ही, इसपर रहनेवाले पक्षियोंको भी सायकोंद्वारा अचल (हिलने-डुलने या उड़नेमें असमर्थ) कर दिया जाय। आकाशको भी बाणसमूहोंसे इस तरह रूँध दिया जाय कि उसमें पक्षी भी उड़ न सकें॥ २६॥ मेरी आज्ञा मानकर समस्त भूपाल पर्वतीय स्थानोंमें खड़े रहें और जहाँ-जहाँ अवकाश मिल जाय, वहाँ-वहाँसे शीघ्र ही पर्वतपर चढ़ जायँ'॥ २७॥

मद्रः कलिङ्गाधिपतिश्चेकितानश्च बाह्लिकः।
काश्मीरराजो गोनर्दः करूषाधिपतिस्तथा॥ २८
द्रुमः किंपुरुषश्चैव पर्वतीयाश्च मानवाः।
पर्वतस्यापरं पार्श्वं क्षिप्रमारोहयन्त्वमी॥ २९
पौरवो वेणुदारिश्च वैदर्भः सोमकस्तथा।
रुक्मी च भोजाधिपतिः सूर्याक्षश्चैव मालवः॥ ३०
पाञ्चालाधिपतिश्चैव द्रुपदश्च नराधिपः।
विन्दानुविन्दावावन्त्यौ दन्तवक्त्रश्च वीर्यवान्॥ ३१
छागलिः पुरमित्रश्च विराटश्च महीपतिः।
कौशाम्ब्यो मालवश्चैव शतधन्वा विदूरथः॥ ३२
भूरिश्रवास्त्रिगर्तश्च बाणः पञ्चनदस्तथा।
उत्तरं पर्वतोद्देशमेते दुर्गसहा नृपाः।
आरोहन्तु विमर्दन्तो वज्रप्रतिमगौरवाः॥ ३३
उलूकः कैतवेयश्च वीरश्चांशुमतः सुतः।
एकलव्यो दृढाश्वश्च क्षत्रधर्मा जयद्रथः॥ ३४
उत्तमौजास्तथा शाल्वः कैरलेयश्च कैशिकः।
वैदिशो वामदेवश्च सुकेतुश्चापि वीर्यवान्॥ ३५
पूर्वपर्वतनिर्व्यूहमेतेष्वायतमस्तु नः।
विदारयन्तो धावन्तो वाता इव बलाहकान्॥ ३६
अहं च दरदश्चैव चेदिराजश्च वीर्यवान्।
दक्षिणं शैलनिचयं दारयिष्याम दंशिताः॥ ३७
एवमेष गिरिः क्षिप्रं समन्ताद् वेष्टितो बलैः।
वज्रप्रपातप्रतिमं प्राप्नोतु तुमुलं भयम्॥ ३८
गदिनो वै गदाभिश्च परिघैः परिघायुधाः।
अपरे विविधैः शस्त्रैर्दारयन्तु नगोत्तमम्॥ ३९
एष भूमिधरोऽद्यैव विषमोच्चशिलान्वितः।
कार्यो भूमिसमः सर्वो भवद्भिर्वसुधाधिपैः॥ ४०
जरासंधवचः श्रुत्वा पार्थिवा राजशासनात्।
गोमन्तं वेष्टयामासुः सागराः पृथिवीमिव॥ ४१
उवाच राजा चेदीनां देवानां मघवानिव।
किं ते युद्धेन दुर्गेऽस्मिन् गोमन्ते च नगोत्तमे॥ ४२

'मद्रराज शल्य, कलिङ्गराज श्रुतायु, चेकितान, बाह्लिक, काश्मीरराज गोनर्द, करूषराज दन्तवक्त्र, किन्नरराज द्रुम तथा पर्वतीय प्रदेशके योद्धा—ये सब लोग इस पर्वतके पश्चिम भागपर शीघ्र ही चढ़ाई कर दें॥ २८-२९॥ पूरुवंशीय वेणुदारि, विदर्भदेशीय सोमक, भोजोंके अधिपति रुक्मी, मालवाके राजा सूर्याक्ष, पाञ्चालदेशके अधिपति राजा द्रुपद, अवन्तिके दोनों राजकुमार विन्द और अनुविन्द, पराक्रमी दन्तवक्त्र, छागलि, पुरुमित्र, राजा विराट, कौशाम्बीनरेश मालव, शतधन्वा, विदूरथ, भूरिश्रवा, त्रिगर्त, बाण और पञ्चनद—ये दुर्गयुद्धका वेग सह सकनेवाले नरेश शत्रुओंको कुचलते हुए इस पर्वतके उत्तरभागपर चढ़ाई करें, इनका गौरव वज्रके तुल्य है॥ ३०—३३॥ शकुनिपुत्र उलूक, अंशुमान्के पुत्र वीर, एकलव्य, दृढ़ाश्व, क्षत्रधर्मा, जयद्रथ, उत्तमौजा, शाल्व, केरलराज कैशिक, विदिशाके राजा वामदेव और पराक्रमी सुकेतु—इन सबके अधीन इस पर्वतका पूर्वभाग सौंप दिया जाय। ये लोग जैसे वायु बादलोंको छिन्न-भिन्न कर देती है, उसी प्रकार शत्रुओंको विदीर्ण करते हुए उनपर धावा बोल दें॥ ३४—३६॥ मैं, दरद तथा पराक्रमी चेदिराज दमघोष कवच आदिसे सुसज्जित होकर इस पर्वतके दक्षिणभागको विदीर्ण कर डालेंगे॥ ३७॥ इस प्रकार हमारी सेनाओंद्वारा चारों ओरसे घिरा हुआ यह पर्वत शीघ्र ही, मानो इसपर वज्रका आघात हो रहा हो, इस तरह घोर भय प्राप्त करे॥ ३८॥ गदाधारी वीर गदाओंसे, परिघ चलानेवाले परिघोंसे तथा अन्य वीर नाना प्रकारके दूसरे अस्त्र-शस्त्रोंसे इस श्रेष्ठ पर्वतके टुकड़े-टुकड़े कर डालें॥ ३९॥ विषम एवं ऊँची शिलाओंसे युक्त इस भूधरको आप सभी भूपाल मिलकर आज ही भूमिके समान समतल कर डालें॥ ४०॥ जरासंधकी बात सुनकर समस्त राजाओंने मगधराजकी आज्ञासे गोमन्तपर्वतको चारों ओरसे घेर लिया, ठीक उसी तरह जैसे समुद्र पृथ्वीको घेरे हुए है॥ ४१॥ उस समय देवताओंके राजा इन्द्रके समान चेदिवासियोंके अधिपति राजा दमघोषने जरासंधसे कहा—राजन्! यह पर्वतोंमें श्रेष्ठ गोमन्त दुर्गम पर्वत है। इसपर युद्ध करनेसे आपको क्या लाभ होगा॥ ४२॥

दुरारोहश्च शिखरे प्रांशुपादपकण्टके।
काष्ठैस्तृणैश्च बहुभिः परिवार्य समन्ततः॥ ४३

अद्यैव दीप्यतां क्षिप्रमलमन्येन कर्मणा।
क्षत्रियाः सुकुमारा हि रणे सायकयोधिनः॥ ४४

नियुक्ताः पर्वते दुर्गे नियोक्तुं पादयोधिनः।
ननाम प्रतिबन्धेन न चावस्कन्दकर्मणा॥ ४५

शक्य एष गिरिस्तात देवैरप्यवमर्दितुम्।
दुर्गयुद्धे क्रमः श्रेयान् रोधयुद्धेन पार्थिवाः॥ ४६

भक्तोदकेन्धनैः क्षीणाः पात्यन्ते गिरिसंश्रिताः।
वयं बहव इत्येवं नाप्येष निपुणो नयः॥ ४७

यादवौ नावमन्तव्यौ द्वावप्येतौ रणे स्थितौ।
अविज्ञातबलावेतौ श्रूयेते देवसम्मितौ॥ ४८

कर्मभिस्त्वमरौ विद्मो बालावतिबलान्वितौ।
दुष्कराणीह कर्माणि कृतवन्तौ यूदत्तमौ॥ ४९

शुष्ककाष्ठैस्तृणैर्वेष्ट्य सर्वतः पर्वतोत्तमम्।
अग्निना दीपयिष्यामो दह्येतां गतचेतनौ॥ ५०

यदि चेन्निष्क्रमिष्येते दह्यमानावितोऽन्तिके।
समेत्य पातयिष्यामस्त्यक्ष्यतो जीवितं ततः॥ ५१

वाक्यमेतत्तु रुरुचे सबलानां महीक्षिताम्।
यदुक्तं चेदिराजेन नृपाणां हितशंसिना॥ ५२

'इसके शिखरपर ऊँचे-ऊँचे वृक्ष और काँटेरे हैं; अतः इसपर चढ़ना बहुत कठिन काम है। मेरी तो राय है, बहुत-से काठ और घास-फूस जुटाकर इस पर्वतको चारों ओरसे घेर दिया जाय और अभी इसमें आग लगा दी जाय। इसी कार्यमें शीघ्रता करनी चाहिये। दूसरे किसी प्रयत्नसे कुछ होने-जानेवाला नहीं है। क्योंकि क्षत्रिय लोग सुकुमार होते हैं। ये रणभूमिमें बाणोंद्वारा ही युद्ध कर सकते हैं। (पर्वतपर चढ़ना इनके लिये अत्यन्त कठिन है।) इस समय इन्हें दुर्गम पर्वतपर चढ़कर वहाँके पैदल योद्धाओंके साथ युद्ध करनेके कामपर नियुक्त किया गया है (जो इनके लिये दुष्कर है)। तात! केवल घेरा डालनेसे या ऊपर चढ़ जानेसे देवता भी इस पर्वतका मर्दन नहीं कर सकते। राजाओ! दुर्गयुद्धमें रोधयुद्ध (घेरा डालने)-के द्वारा जो लड़ाईका क्रम चालू किया जाता है, वह श्रेयस्कर होता है (क्योंकि दुर्गकी खाद्यसामग्री समाप्त होनेपर वहाँके निवासियोंका पतन अवश्यम्भावी है; परन्तु यहाँ पर्वतनिवासियोंके लिये खाने-पीनेकी सामग्री सदा सुलभ है)। अन्न, जल और लकड़ीकी कमी हो जाय तभी पर्वतवासी योद्धाओंको धराशायी किया जा सकता है। हमारी संख्या बहुत है और विपक्षियोंकी कम—ऐसा सोचना भी निपुण नीतिका परिचायक नहीं है॥ ४३—४७॥ ये दोनों यदुवंशी भी युद्धके लिये तैयार खड़े हैं; अतः इनकी अवहेलना नहीं करनी चाहिये। इनके पूरे-पूरे बलका ज्ञान किसीको नहीं है। ये दोनों देवताओंके समान तेजस्वी सुने जाते हैं॥ ४८॥ अपने कर्मोंसे तो ये अमर जान पड़ते हैं; क्योंकि बाल्यावस्थामें ही ये अत्यन्त बलशाली हैं। यदुकुलके इन श्रेष्ठ पुरुषोंने इस जगत्‌में बड़े-बड़े दुष्कर कर्म किये हैं॥ ४९॥ अतः सूखे काठों और तिनकोंसे आवेष्टित करके इस उत्तम पर्वतमें हम सब ओरसे आग लगा देंगे। इससे अचेत होकर वे दोनों भस्म हो जायँगे॥ ५०॥ यदि आगसे जलते हुए वे दोनों हमारे पाससे निकलेंगे तो हम सब लोग मिलकर उन्हें मार गिरायँगे। इस तरह उन दोनोंको अपने जीवनसे हाथ धोना पड़ेगा'॥ ५१॥ राजाओंके हितकी बात बतानेवाले चेदिराजने जो बात वहाँ कही, वह सेना-सहित समस्त राजाओंको अच्छी लगी॥ ५२॥

ततः काष्ठैस्तृणैर्वंशैः शुष्कशाखैश्च पादपैः।
उपादीप्यत शैलेन्द्रः सूर्यपादैरिवाम्बुदः॥ ५३

ददुस्ते सर्वतस्तूर्णं पावकं तत्र पार्थिवाः।
यथोद्देशं यथावातं शैलस्य लघुविक्रमाः॥ ५४

स वायुदीपितो वह्निरुत्पपात समन्ततः।
सधूमज्वालमालाभिर्भाभिः खमिव शोभयन्॥ ५५

सोऽनलः पवनायस्तः काष्ठसंचयमूलवान्।
ददाह शैलं श्रीमन्तं गोमन्तं कान्तपादपम्॥ ५६

स दह्यमानः शैलेन्द्रो मुमोच विपुलाः शिलाः।
शतशः शतधा भूत्वा महोल्काकारदर्शनाः॥ ५७

स चित्रभानुः शैलेन्द्रं भाभिर्भानुरिवाम्बुदम्।
आलिम्पतीव विधिवत् समन्तादर्चिरुद्धतः॥ ५८

धातुभिः पच्यमानैश्च ज्वलद्भिश्चैव पादपैः।
उद्भ्रान्तश्वापदो रौति तुद्यमान इवाद्रिराट्॥ ५९

प्रतप्तो दह्यमानस्तु स शैलः कृष्णवर्त्मना।
रीतीर्निर्वर्तयामास काञ्चनाञ्जनराजतीः॥ ६०

वह्निना चापि दीप्ताङ्गो गिरिर्नातिविराजते।
धूमान्धकारोर्ध्वतनुर्मज्जमान इवाम्बुदः॥ ६१

विश्लिष्टोपलसंघातः कर्कशाङ्गारवर्षणः।
गिरिर्भात्यनलोद्गारैरुल्कावृष्टिरिवाम्बुदः॥ ६२

प्रपातप्रस्त्रयोत्क्षिप्तो धूमसंवर्द्धितोदरः।
स गिरिर्भस्मतां यातो युगान्ताग्निहतोपमः॥ ६३

विह्वलास्तस्य पार्श्वेभ्यः सर्पा दग्धार्धदेहिनः।
श्वसन्तः पृथुमूर्धानो निश्चेरुरशिवेक्षणाः॥ ६४

तदनन्तर उन्होंने काठ-कबाड़, घास-फूस और सूखी डालवाले वृक्ष लाकर उनके द्वारा उस गिरिराज गोमन्तमें आग लगा दी। उस समय आगकी ज्वालाओंसे घिरा हुआ वह पर्वत सूर्यकी किरणोंसे आवृत मेघके समान प्रतीत होता था॥ ५३॥ इसके बाद शीघ्रतापूर्वक पैर बढ़ाते हुए राजाओंने जहाँ जैसा हवाका रुख था, उसके अनुसार तुरंत ही पर्वतके चारों ओर वह आग फैला दी॥ ५४॥ वायुसे प्रज्वलित हुई आग वहाँ सब ओरसे ऊपरको उठने लगी और धूमयुक्त ज्वालामालाओंकी प्रभासे आकाशकी शोभा-सी बढ़ाने लगी॥ ५५॥ सूखे काठोंके ढेर ही जिसकी जड़ थे, वह आग वायुके सहारेसे बढ़कर कमनीय वृक्षोंवाले शोभा-सम्पन्न गोमन्तपर्वतको चारों ओरसे दग्ध करने लगी॥ ५६॥ उस आगसे दग्ध होता हुआ गिरिराज गोमन्त बड़ी-बड़ी शिलाएँ छोड़ने लगा (अग्निके तापसे चटककर प्रस्तरखण्ड टूट-टूटकर गिरने लगे), वे सैकड़ों शिलाएँ सौ-सौ टूक होकर गिरते समय बड़ी-बड़ी उल्काओंके समान दिखायी देती थीं॥ ५७॥ लपटोंसे ऊपरको उठती हुई वह आग उस पर्वतराजको सब ओरसे प्रभाओंद्वारा विधिपूर्वक लीपती-सी प्रतीत होती थी, ठीक उसी तरह जैसे सूर्यदेव अपनी किरणोंद्वारा मेघोंको अनुलिप्त कर देते हैं॥ ५८॥ पकती हुई धातुओं, जलते हुए वृक्षों तथा घबड़ाये हुए हिंसक जन्तुओंसे युक्त वह पर्वतराज ऐसा जान पड़ता था, मानो व्यथासे पीड़ित होकर रो रहा हो॥ ५९॥ आगसे दग्ध होकर तपा हुआ वह पर्वत सोने, चाँदी तथा काले रंगकी धातुओंके पिघले हुए रसोंकी धारा बहाने लगा॥ ६०॥ यद्यपि अग्निसे उसका सारा अङ्ग उद्भासित हो उठा था तो भी उसके ऊपरी भागमें धुएँका अन्धकार छा रहा था, इसलिये उस पर्वतकी अधिक शोभा नहीं हो रही थी। वह समुद्रमें डूबते हुए मेघके समान जान पड़ता था॥ ६१॥ उसके प्रस्तरसमूह अलग हो-होकर गिर रहे थे। उससे कड़े अङ्गारोंकी वर्षा हो रही थी। उस समय आग उगलनेके कारण वह पर्वत उल्काओंकी वर्षा करनेवाले मेघके समान प्रतीत होता था॥ ६२॥ उसके झरनोंके स्रोत सूख गये, मध्यभागमें धुआँ फैल गया। उस अवस्थामें वह पर्वत प्रलयाग्निसे दग्ध होकर भस्म हुआ-सा जान पड़ता था॥ ६३॥ उसके पार्श्वभागोंसे घबराये हुए सर्प निकलने लगे। उनके आधे शरीर जल गये थे। उनकी आँखोंसे क्रूरता टपक रही थी तथा वे अपने फैले हुए मस्तकों (फनों)-से फुङ्कार मार रहे थे॥ ६४॥

उत्पत्योत्पत्य गगनात् पुनः पुनरवाङ्मुखाः।
रेसुश्चोद्वेजिताः सिंहाः शार्दूलाश्चानलाविलाः॥ ६५

मुमुचुः पादपाश्चैव दाहनिर्यासजं जलम्॥ ६६

वहत्यूर्ध्वगतिर्वातो भस्माङ्गारातिपिङ्गलः।
धूमच्छाया च गगने दर्पिताम्भोददर्शना॥ ६७

व्यज्यमानो महासानुर्विहगैः श्वापदैरपि।
गिरिर्वैकल्यमायाति प्रागल्भ्यात्कृष्णवर्त्मनः॥ ६८

स मुमोच शिलाः शैलश्चलोदग्रशिलोच्चयः।
वज्रेण पुरुहूतस्य यथा स्याद् दारितस्तथा॥ ६९

आदीप्य तं तु शैलेन्द्रं क्षत्रिया व्यूहदंशिताः।
अर्धक्रोशमपक्रान्ताः पावकेनाभितापिताः॥ ७०

दह्यमाने नगश्रेष्ठे सीदमानैर्महाद्रुमैः।
धूमभारैरनालक्ष्ये मूले शिथिलतां गते॥ ७१

सरोषं हि तदा रामो वचनं केशिसूदनम्।
बभाषे पद्मपत्राक्षं स साक्षान्मधुसूदनम्॥ ७२

दह्यतेऽयं गिरिस्तात ससानुशिखरद्रुमः।
आवयोः कृष्ण वैरेण बलिभिर्वसुधाधिपैः॥ ७३

पश्य कृष्णानलौष्णानां सधूमानां समन्ततः।
वनानां विरसन्तीव नगाभ्याशे द्विपोत्तमाः॥ ७४

अयं यद्यावयोरर्थे गोमन्तस्तात दह्यते।
अयशस्यमिदं लोके कौलीनं च भविष्यति॥ ७५

तदस्यानृण्यहेतोर्हि नगस्य नगसंनिभ।
क्षत्रियान्निहनिष्यामो दोर्भ्यामेव युधां वर॥ ७६

एते ते क्षत्रियाः सर्वे गिरिमादीप्य दंशिताः।
रथिनस्तात दृश्यन्ते यथादेशं युयुत्सवः॥ ७७

एवमुक्त्वा गिरेः शृङ्गान्मेरुशृङ्गादिवोडुराट्।
निपपात बलः श्रीमान् वनमालाधरो युवा॥ ७८

आगसे झुलसे हुए सिंह और व्याघ्र भयसे उद्विग्न हो बार-बार उछलकर आकाशसे नीचे मुँह किये गिरते और आर्तनाद करते थे॥ ६५॥ वहाँके वृक्ष दग्ध होनेके कारण अपने भीतरके रसको पानीके रूपमें बहाने लगे॥ ६६॥ ऊपरको उठनेवाली वायु भस्म और अङ्गारोंसे अत्यन्त पिंगलवर्णकी होकर बहने लगी और आकाशमें धूमकी छाया घुमड़कर घिरी हुई मेघोंकी घटाके समान दिखायी देने लगी॥ ६७॥ पक्षी और हिंसक जन्तु भी उसे छोड़कर भाग रहे थे। वह महान् शिखरवाला पर्वत अधिक आग बढ़ जानेके कारण व्याकुल-सा हो उठा था॥ ६८॥ बड़ी-बड़ी चञ्चल शिलाओंके ढेरसे युक्त वह पर्वत आगसे तपकर अपनी शिलाओंको इस प्रकार छोड़ रहा था, मानो इन्द्रके वज्रसे विदीर्ण होकर बिखरा जा रहा हो॥ ६९॥ उस पर्वतराजमें आग लगाकर व्यूहके आकारमें सुसज्जित होकर खड़े हुए क्षत्रिय उस प्रचण्ड पावकसे सन्तप्त हो आधा कोस पीछे हट गये॥ ७०॥ वह पर्वतोंमें श्रेष्ठ गोमन्त नष्ट होते हुए महान् वृक्षोंके साथ जब इस प्रकार दग्ध होने लगा, धूमभारसे उसकी ओर देखना असम्भव हो गया और उसका मूलभाग शिथिल होने लगा, तब बलरामजीने केशी और मधुनामक दैत्योंका संहार करनेवाले साक्षात् विष्णुस्वरूप कमलनयन श्रीकृष्णसे रोषपूर्वक कहा— ॥ ७१-७२॥ 'तात! श्रीकृष्ण! हमलोगोंसे वैर हो जानेके कारण इन बलवान् भूपतियोंद्वारा छोटे-बड़े शिखरों और वृक्षोंसहित यह पर्वत जलाया जा रहा है॥ ७३॥ श्रीकृष्ण! देखो, चारों ओर आगसे तपे और धुएँसे भरे इन जंगलोंके वृक्षोंके निकट ये उत्तम हाथी करुण-क्रन्दन-सा कर रहे हैं॥ ७४॥ तात! यदि हम दोनोंके लिये गोमन्त जला दिया जायगा तो यह संसारमें हमारे लिये महान् अपयश और कलङ्ककी बात होगी॥ ७५॥ अतः योद्धाओंमें श्रेष्ठ तथा युद्धमें पर्वतके समान अविचल रहनेवाले श्रीकृष्ण! इस गोमन्त-पर्वतसे उऋण होनेके लिये हमलोग अपनी भुजाओंसे ही इन क्षत्रियोंको मार डालेंगे॥ ७६॥ तात! ये सारे क्षत्रिय इस पर्वतको जलाकर कवच आदिसे सुसज्जित हो रथपर बैठकर यथास्थान युद्ध करनेके लिये उत्सुक दिखायी देते हैं॥ ७७॥ ऐसा कहकर मेरुपर्वतके शिखरसे नीचे उतरनेवाले चन्द्रमाके समान कान्तिमान् वनमालाधारी नवयुवक बलराम गोमन्तपर्वतकी चोटीसे कूद पड़े॥ ७८॥

कादम्बरीमदक्षीबो नीलवासाः सिताननः।
स शारदेन्दुसंकाशो वनमालाञ्चितोदरः॥ ७९

कान्तैककुण्डलधरश्चारुमौलिरवाङ्मुखः।
निपपात नरेन्द्राणां मध्ये केशवपूर्वजः॥ ८०

अवप्लुते ततो रामे कृष्णः कृष्णाम्बुदोपमः।
गोमन्तशिखराच्छ्रीमानाप्लुतोऽमितविक्रमः॥ ८१

ततस्तं पीडयामास पद्भ्यां गिरिवरं हरिः।
स पीडितो गिरिस्तेन निर्ममज्ज समन्ततः॥ ८२

जलाकुलोपलस्तत्र प्रस्रुतो द्विरदो यथा।
स तेन वारिणा वह्निस्तत्क्षणात् प्रशमं ययौ॥ ८३

कल्पान्ते वारिधाराभिर्मेघजालैरिवांशुमान्।
सिंहारसितनिर्घोषः पीतवासा घनाकृतिः॥ ८४

किरीटमूर्द्धा सौम्यास्यः पुण्डरीकनिभेक्षणः।
श्रीवत्सवक्षाः सुमुखः सहस्राक्षसमद्युतिः॥ ८५

रामादनन्तरं कृष्णः प्लुतो वै वीर्यवांस्ततः।
ताभ्यामेव प्लुताभ्यां च चरणैः पीडितो गिरिः॥ ८६

मुमोच सलिलोत्पीडांस्तीव्रपावकशान्तये।
सलिलोत्पीडनं दृष्ट्वा पार्थिवा भयमाविशन्॥ ८७

उस समय वे कादम्बरी (सुधा या मधु)-के मदसे कुछ मत्त-से हो रहे थे। उनके शरीरपर नील वस्त्र शोभा पाता था। उनका मुख गौरवर्णका था। वे शरत्कालके चन्द्रमाकी भाँति उज्ज्वल प्रभासे उद्भासित हो रहे थे। उनका उदरभाग वनमालासे अलंकृत था॥ ७९॥ उन्होंने एक कानमें कमनीय कुण्डल धारण कर रखा था तथा उनके मस्तकपर मनोहर मुकुट शोभा दे रहा था। श्रीकृष्णके बड़े भाई बलराम नीचे मुँह किये राजाओंके बीचमें ही कूद पड़े॥ ८०॥ बलरामजीके कूदनेके पश्चात् काले मेघके समान श्याम कान्तिमान् और अमित पराक्रमी श्रीमान् कृष्ण भी गोमन्तशिखरसे कूद पड़े॥ ८१॥ कूदते समय श्रीहरिने उस श्रेष्ठ पर्वतको अपने दोनों पैरोंसे दबाया। उनके द्वारा दबाव पड़नेपर वह पर्वत चारों ओरसे जलमग्न-सा हो गया। उसका एक-एक पत्थर जलसे नहा उठा और मदकी बूँदें टपकानेवाले हाथीके समान जलका स्रोत बहाने लगा। उस जलसे वहाँकी सारी आग तत्काल बुझ गयी। मानो प्रलयकालमें मेघसमूहोंद्वारा बरसायी हुई वारिधाराओंसे अंशुमाली सूर्य शान्त हो गये हों। उस समय पीताम्बरधारी घनश्याम-विग्रह कमलनयन श्रीकृष्ण सिंहके समान दहाड़ रहे थे। उनके मस्तकपर दिव्य किरीट शोभा पा रहा था और मुख बड़ा ही सौम्य दिखायी देता था। उनके वक्षःस्थलपर श्रीवत्सका चिह्न सुशोभित था। मुख बहुत ही सुन्दर था और अङ्गोंकी कान्ति देवराज इन्द्रके समान प्रकाशित हो रही थी। बलरामजीके बाद पराक्रमी श्रीकृष्ण भी वहीं (राजाओंके बीचमें ही) कूद पड़े थे। उन दोनों भाइयोंके कूदनेसे उनके चरणोंका दबाव पाकर वह पर्वत जलके स्रोत बहाने लगा था, जो उस भयानक अग्निको बुझानेमें सहायक हुआ। पर्वतसे जलके स्रोत निकलते देखकर राजाओंके मनमें भय समा गया॥ ८२—८७॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे विष्णुपर्वणि गोमन्तदाहे द्विचत्वारिंशोऽध्यायः॥ ४२॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत विष्णुपर्वमें गोमन्त-पर्वतका दाहविषयक बयालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ४२॥

त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः

श्रीकृष्ण और बलरामका जरासंध और उसकी सेनाओंके साथ युद्ध, राजा दरदकी मृत्यु, जरासंधका पराजित होकर पलायन तथा चेदिराज दमघोषके साथ श्रीकृष्ण और बलरामका करवीरपुरमें जाना

वैशम्पायन उवाच

तौ नगादाप्लुतौ दृष्ट्वा वसुदेवसुतावुभौ।
क्षुब्धं नरवरानीकं सर्वं सम्मूढवाहनम्॥ १

बाहुप्रहरणौ तौ तु चेरतुस्तत्र यादवौ।
मकराविव संरब्धौ समुद्रक्षोभणावुभौ॥ २

ताभ्यां मृधे प्रविष्टाभ्यां यादवाभ्यां मतिस्त्वभूत्।
आयुधानां पुराणानामादानकृतलक्षणा॥ ३

ततोऽम्बरतलाद् भूयः पतन्ति स्म महात्मनोः।
मध्ये राजसहस्रस्य समरं प्रतिकाङ्क्षिणोः॥ ४

यानि वै माथुरे युद्धे प्राप्तान्याहवशोभिनोः।
तान्यम्बरात् पतन्ति स्म दिव्यान्याहवसम्प्लवे॥ ५

लेलिहानानि दीप्तानि दीप्ताग्निसदृशानि वै।
निक्षिप्य यानि तत्रैव तानि प्राप्तौ स्म यादवौ॥ ६

क्रव्यादैरनुयातानि मूर्तिमन्ति बृहन्ति च।
तृषितान्याहवे भोक्तुं नृपमांसानि सर्वशः॥ ७

दिव्यस्त्रग्दामधारीणि त्रासयन्ति च खेचरान्।
प्रभया भासमानानि दंशितानि दिशो दश॥ ८

हलं सांवर्तकं नाम सौनन्दं मुसलं तथा।
चक्रं सुदर्शनं नाम गदां कौमोदकीं तथा॥ ९

चत्वार्येतानि तेजांसि विष्णुप्रहरणानि वै।
ताभ्यां समवतीर्णानि यादवाभ्यां महामृधे॥ १०

जग्राह प्रथमं रामो ललामप्रतिमं रणे।
सर्पन्तमिव सर्पेन्द्रं दिव्यमालाकुलं हलम्॥ ११

सव्येन सात्वतां श्रेष्ठो जग्राह मुसलोत्तमम्।
सौनन्दं नाम बलवान् निरानन्दकरं द्विषाम्॥ १२

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! वसुदेवके उन दोनों पुत्रोंको पर्वतसे कूदकर आया देख उन नरेशोंकी सारी सेनामें हलचल मच गयी। उसके वाहनोंपर मोह छा गया॥ १॥ रोषमें भरे हुए वे दोनों यदुवंशी वीर अपनी भुजाओंसे ही आयुधका काम लेते हुए उस विशाल सेनामें विचरने लगे, जैसे दो महान् मगर समुद्रको विक्षुब्ध करते हुए उसके भीतर घूम रहे हों॥ २॥ समराङ्गणमें प्रविष्ट होनेपर उन दोनों यादवोंके मनमें अपने पुराने आयुधोंको ग्रहण करनेका विचार हुआ॥ ३॥ फिर तो सहस्रों राजाओंके बीचमें युद्धकी आकाङ्क्षा रखने तथा समरमें शोभा पानेवाले उन दोनों महात्माओंके हाथमें आकाशसे वे ही अस्त्र-शस्त्र आ गये, जो मथुराके युद्धमें उन दोनोंको प्राप्त हुए थे। उस युद्धसम्बन्धी विप्लवके समय वे ही प्रज्वलित अग्निके तुल्य तेजस्वी, दीप्तिमान् तथा शत्रुओंको चाट जानेवाले दिव्यास्त्र आकाशसे आ पड़े। जिन्हें वे यादव-वीर मथुरामें ही (आकाशमें) फेंककर चले गये थे, उन यदुवंशी वीरोंको पुनः उन दिव्यास्त्रोंकी प्राप्ति हो गयी॥ ४—६॥ उन अस्त्रोंके पीछे मांसभक्षी भूत-प्रेत आदि भी आ रहे थे। वे विशाल अस्त्र मूर्तिमान् होकर उस युद्धमें समस्त राजाओंके रक्त-मांसका उपभोग करनेके लिये मानो भूखे-प्यासे थे॥ ७॥ उन सबने दिव्य पुष्पोंकी मालाएँ धारण की थीं। वे अपनी प्रभासे प्रकाशित होकर दसों दिशाओंको सुशोभित करते थे और आकाशचारी प्राणियोंको भी भयभीत कर देते थे॥ ८॥ सांवर्तक हल, सौनन्द मूसल, सुदर्शन चक्र और कौमोदकी गदा—भगवान् विष्णुके ये चार तेजस्वी अस्त्र-शस्त्र उस महासमरमें उन दोनों यादव-वीरोंके लिये उतरे थे॥ ९-१०॥ पहले बलरामजीने रणभूमिमें सुन्दर आकृतिवाले सर्पराजके समान सर्पणशील तथा दिव्यमालाओंसे अलंकृत हलको अपने दायें हाथमें ग्रहण किया॥ ११॥ फिर उन यदुकुलतिलक बलवान् वीरने बायें हाथसे सौनन्द नामक उत्तम मूसलको ग्रहण किया, जो शत्रुओंको आनन्दशून्य कर देनेवाला था॥ १२॥

दर्शनीयं च लोकेषु चक्रमादित्यवर्चसम्।
नाम्ना सुदर्शनं नाम प्रीतो जग्राह केशवः॥ १३

दर्शनीयं च लोकेषु धनुर्जलदनिःस्वनम्।
नाम्ना शार्ङ्गमिति ख्यातं प्रीतो जग्राह वीर्यवान्॥ १४

देवैर्निगदितार्थस्य गदा तस्यापरे करे।
निषक्ता कुमुदाक्षस्य नाम्ना कौमोदकीति सा॥ १५

तौ सप्रहरणौ वीरौ साक्षाद्विष्णुतनूपमौ।
समरे रामगोविन्दौ रिपूंस्तान् प्रत्ययुद्ध्यताम्॥ १६

आयुधप्रग्रहौ वीरौ तावन्योन्यमयावुभौ।
पूर्वजानुजसंज्ञौ तु रामगोविन्दलक्षणौ॥ १७

समरेऽप्रतिरूपौ तौ विष्णुरेको द्विधा कृतः।
द्विषत्सु प्रतिकुर्वाणौ पराक्रान्तौ यथेश्वरौ॥ १८

हलमुद्यम्य रामस्तु सर्पेन्द्रमिव कोपनम्।
चचार समरे वीरो द्विषतामन्तकोपमः॥ १९

विकर्षन् रथवृन्दानि क्षत्रियाणां महात्मनाम्।
चकार रोषं सफलं नागेषु च हयेषु च॥ २०

कुञ्जराँल्लाङ्गलोत्क्षिप्तान् मुसलाक्षेपताडितान्।
रामोऽभिरामः समरे निर्ममन्थ यथाचलान्॥ २१

ते वध्यमाना रामेण समरे क्षत्रियर्षभाः।
जरासंधान्तिकं भीता विरथाः प्रतिजग्मिरे॥ २२

तानुवाच जरासंधः क्षत्रधर्मे व्यवस्थितः।
धिगेतां क्षत्रवृत्तिं वः समरे कातरात्मनाम्॥ २३

पराक्रान्तस्य समरे विरथस्य पलायतः।
भ्रूणहत्यामिवासह्यां प्रवदन्ति मनीषिणः॥ २४

पत्तिनो भुवि चैकस्य गोपस्याल्पबलीयसः।
भीताः किं विनिवर्तध्वं धिगेतां क्षत्रवृत्तिताम्॥ २५

तत्पश्चात् भगवान् श्रीकृष्णने सम्पूर्ण लोकोंमें दर्शनीय तथा सूर्यके समान तेजस्वी सुदर्शन नामक चक्रको बड़ी प्रसन्नताके साथ ग्रहण किया॥ १३॥ फिर समस्त लोकोंमें दर्शनीय तथा मेघोंकी गर्जनाके समान टंकारध्वनि करनेवाले शार्ङ्ग नामसे विख्यात धनुषको भी उन बलवान् श्रीकृष्णने प्रसन्नतापूर्वक अपने हाथमें ले लिया॥ १४॥ तदनन्तर देवताओंने जिनसे अपना प्रयोजन निवेदन किया था तथा जिनके नेत्र विकसित कुमुद-कुसुमके समान शोभायमान हैं, उन भगवान् श्रीकृष्णके दूसरे हाथमें कौमोदकी नामक गदा आ गयी॥ १५॥ साक्षात् विष्णुके-से विग्रहवाले वे दोनों वीर बलराम और श्रीकृष्ण जब अस्त्र-शस्त्रोंसे सम्पन्न हो गये, तब समरभूमिमें उन शत्रुओंके साथ युद्ध करने लगे॥ १६॥ अस्त्र ग्रहण करके समराङ्गणमें खड़े हुए वे दोनों अग्रज और अनुज वीर बलराम तथा श्रीकृष्ण अन्योन्यमय (एक-दूसरेपर आश्रित अथवा एक-दूसरेके स्वरूप) थे॥ १७॥ रणभूमिमें उनकी तुलना करनेवाला दूसरा कोई नहीं था। वे दोनों एक ही विष्णुके दो स्वरूप थे तथा शत्रुओंका प्रतीकार करते हुए सर्वसमर्थ ईश्वरकी भाँति पराक्रम प्रकट कर रहे थे॥ १८॥ वीर बलराम क्रोधमें भरे हुए सर्पराजके तुल्य सांवर्तक हलको हाथमें उठाकर समरमें शत्रुओंके लिये कालरूप होकर विचरने लगे॥ १९॥ वे महामनस्वी क्षत्रियोंके रथसमूहोंको पीछे ढकेलते हुए हाथियों और घोड़ोंपर अपना रोष सफल करने लगे। समरमें परम सुन्दर प्रतीत होनेवाले बलराम हलसे हाथियोंको ऊपर उछाल देते और मूसल फेंककर उन्हें मार डालते थे। इस प्रकार उन पर्वतोपम हाथियोंको उन्होंने मार डाला॥ २०-२१॥ समराङ्गणमें बलरामजीके द्वारा मारे जाते हुए वे क्षत्रियशिरोमणि योद्धा रथहीन हो भयके मारे जरासंधके पास भाग गये॥ २२॥ तब क्षत्रियधर्ममें स्थित रहनेवाले जरासंधने उनसे कहा—'समरभूमिमें आकर मनमें कायरता लानेवाले तुमलोगोंकी इस क्षत्रियवृत्तिको धिक्कार है॥ २३॥ मनीषी पुरुष समरमें पराक्रम प्रकट करके रथहीन होकर भागनेवाले योद्धाकी इस कायरताको भ्रूणहत्याके समान असह्य बताते हैं॥ २४॥ यह ग्वाला अत्यन्त बलहीन है, पैदल है और पृथ्वीपर अकेला खड़ा है। भला, इससे भयभीत होकर तुमलोग क्यों भाग रहे हो? तुम्हारी इस क्षत्रियवृत्तिको धिक्कार है॥ २५॥

क्षिप्रं समभिवर्तन्तां मम वाक्येन नोदिताः।
यावदेतौ रणे गोपौ प्रेषयामि यमक्षयम्॥ २६

ततस्ते क्षत्रियाः सर्वे जरासंधेन नोदिताः।
क्षिपन्तः शरजालानि हृष्टा योद्धुमुपस्थिताः॥ २७

ते हयैः काञ्चनापीडै रथैश्चेन्दुसमप्रभैः।
नागैश्चाम्भोदसंकाशैर्महामात्रप्रणोदितैः॥ २८

सतनुत्राणनिस्त्रिंशाः सायुधाभरणाम्बराः।
स्वारोपितधनुष्मन्तः सतूणीराः ससायकाः॥ २९

सच्छत्रोत्सेधिनः सर्वे चारुचामरवीजिताः।
रणावनिगता रेजुः स्यन्दनस्था महीक्षितः॥ ३०

तौ युद्धरङ्गापतितौ विधावन्तौ महाभुजौ।
वसुदेवसुतौ वीरौ युयुत्सू प्रत्यदृश्यताम्॥ ३१

तद् युद्धमभवत् तत्र तयोस्तेषां तु संयुगे।
सायकोत्सर्गबहुलं गदानिर्घातदारुणम्॥ ३२

ततः शरसहस्राणि प्रतीच्छन्तौ रणेषिणौ।
तस्थतुर्योधमुख्यौ तावभिवृष्टौ यथाचलौ॥ ३३

गदाभिश्चैव गुर्वीभिः क्षेपणीयैश्च मुद्गरैः।
अर्द्यमानौ महेष्वासौ यादवौ न चकम्पतुः॥ ३४

ततः कृष्णोऽम्बुदाकारः शङ्खचक्रगदाधरः।
व्यवर्धत महातेजा वातयुक्त इवानलः॥ ३५

स चक्रेणार्कतुल्येन दीप्यमानेन तेजसा।
चिच्छेद समरे वीरो नृगजाश्वमहारथान्॥ ३६

गदानिपातविहता लाङ्गलेन च कर्षिताः।
न शेकुस्ते रणे स्थातुं पार्थिवा नष्टचेतसः॥ ३७

चक्रक्षुरनिकृत्तानि विचित्राणि महीक्षिताम्।
रथयूथानि भग्नानि न शेकुश्चलितुं रणे॥ ३८

मुसलाक्षेपभग्नाश्च कुञ्जराः षष्टिहायनाः।
घना इव घनापाये भग्नदन्ता विचुक्रुशुः॥ ३९

मेरी आज्ञासे प्रेरित होकर तुम सब लोग शीघ्र ही शत्रुओंपर आक्रमण करो। तबतक मैं रणभूमिमें इन दोनों ग्वालोंको मारकर यमलोक भेज देता हूँ॥ २६॥ तब जरासंधसे प्रेरित होकर वे समस्त क्षत्रिय बाण समूहोंकी वर्षा करते हुए बड़े हर्षके साथ युद्धके लिये डट गये। वे सोनेके आभूषणोंसे विभूषित अश्वों, चन्द्रमाके समान कान्तिमान् रथों और महावतोंद्वारा हाँके गये एवं मेघोंके समान काले रंगवाले हाथियोंद्वारा रणभूमिमें आगे बढ़ने लगे॥ २७-२८॥ उनके शरीरोंमें कवच और हाथोंमें खड्ग थे। वे आयुध, आभूषण तथा वस्त्रोंसे सुसज्जित थे। उन्होंने धनुषोंको भलीभाँति चढ़ा रखा था। वे बाणों और तरकसोंसे सम्पन्न थे॥ २९॥ जो राजा रणभूमिमें रथोंपर बैठे हुए थे, उनके सिरपर ऊँचे छत्र तने थे तथा मनोहर चामरोंद्वारा उनके लिये हवा की जा रही थी। इस तरह वे सभी बड़ी शोभा पाते थे॥ ३०॥ युद्धकी रंगभूमिमें उतर कर सब ओर धावा करनेवाले वे महाबाहु वीर वसुदेवपुत्र युद्धके लिये उत्सुक दिखायी देते थे॥ ३१॥ वहाँ रणभूमिमें उन दोनों भाइयों तथा उन राजाओंमें भारी युद्ध होने लगा। उसमें बहुत-से बाणोंकी वर्षा की जा रही थी। गदाओंके आघातसे उस युद्धकी भयङ्करता और बढ़ गयी थी॥ ३२॥ तदनन्तर सहस्रों बाणोंकी बौछार ग्रहण करते हुए वे दोनों युद्धाभिलाषी महायोद्धा वर्षाका आघात सहन करनेवाले दो पर्वतोंके समान वहाँ अविचलभावसे खड़े रहे॥ ३३॥ शत्रुओंकी भारी गदाओं, गोफनों या ढेलवाँसों तथा मुद्गरोंकी मारसे पीड़ित होते हुए भी वे दोनों महाधनुर्धर यादव वीर कम्पित नहीं हुए॥ ३४॥ तत्पश्चात् शङ्ख, चक्र और गदा धारण करनेवाले घनश्याम-विग्रह महातेजस्वी श्रीकृष्ण वायुसे प्रेरित होकर प्रज्वलित हुई अग्निके समान बढ़ने लगे॥ ३५॥ समराङ्गणमें उन वीर मधुसूदनने तेजसे उद्दीप्त होनेवाले सूर्यतुल्य तेजस्वी चक्रके द्वारा मनुष्यों, हाथियों, घोड़ों तथा बड़े-बड़े रथोंके भी टुकड़े-टुकड़े कर डाले॥ ३६॥ गदाके आघातसे मारे गये तथा हलसे खींचकर नष्ट किये गये राजा लोग अपनी चेतना खोकर रणभूमिमें खड़े न रह सके॥ ३७॥ चक्रके छुरोंसे टुकड़े-टुकड़े किये गये राजाओंके विचित्र रथसमूह भग्न होकर युद्धभूमिमें आगे न बढ़ सके॥ ३८॥ मुसलोंकी मारसे घायल हुए साठ वर्षोंकी अवस्थावाले हाथी दाँत टूट जानेके कारण शरद्-ऋतुके जलहीन बादलोंके समान असमर्थ हो आर्तभावसे चीत्कार कर रहे थे॥ ३९॥

चक्रानलज्वालहताः सादिनः सपदातयः।
पेतुः परासवस्तत्र यथा वज्रहतास्तथा॥ ४०

चक्रलाङ्गलनिर्दग्धं तत्सैन्यं विदलीकृतम्।
युगान्तोपहतप्रख्यं सर्वं पतितमाबभौ॥ ४१

आक्रीडभूमिं दिव्यानामायुधानां वपुष्मताम्।
वैष्णवानां नृपास्ते तु द्रष्टुमप्यबलीयसः॥ ४२

केचिद् रथाः सम्मृदिताः केचिन्निहतपार्थिवाः।
भग्नैकचक्रास्त्वपरे विकीर्णा धरणीतले॥ ४३

तस्मिन् विशसने घोरे चक्रलाङ्गलसम्प्लवे।
दारुणानि प्रवृत्तानि रक्षांस्यौत्पातिकानि च॥ ४४

आर्तानां कूजमानानां पाटितानां च वेणुवत्।
अन्तो न शक्यतेऽन्वेष्टुं नृनागरथवाजिनाम्॥ ४५

सा पातितनरेन्द्राणां रुधिराऽऽर्द्रा रणक्षितिः।
योषेव चन्दनार्द्राङ्गी भैरवा प्रतिभाति वै॥ ४६

नरकेशास्थिमज्जान्त्रैः शातितानां च दन्तिनाम्।
रुधिरौघप्लवस्तत्र छादयामास मेदिनीम्॥ ४७

तस्मिन् महाभीषणके नरवाहनसंक्षये।
शिवानामशिवैः शब्दैर्नादिते घोरदर्शने॥ ४८

आर्तस्तनितसंनादे रुधिराम्बुह्रदाकुले।
अन्तकाक्रीडसदृशे नागदेहैः समावृते॥ ४९

अपास्तैर्बाहुभिर्योधैस्तुरगैश्च विदारितैः।
कङ्कैश्च बलगृध्रैश्च नादितैः प्रतिनादिते॥ ५०

निपाते पृथिवीशानां मृत्युसाधारणे रणे।
कृष्णः शत्रुवधं कर्तुं चचारान्तकदर्शनः॥ ५१

युगान्तार्कप्रभं चक्रं कालीं चैवायसीं गदाम्।
गृह्य सैन्यावनिगतो बभाषे केशवो नृपान्॥ ५२

सुदर्शन चक्रसे प्रकट हुई आगकी ज्वालासे झुलसकर कितने ही घुड़सवार और पैदल योद्धा धरतीपर पड़े थे। उनके प्राण-पखेरू उड़ गये थे तथा वे वज्रके आघातसे मरे हुएके तुल्य प्रतीत होते थे॥ ४०॥ चक्र और हलसे दग्ध होकर विदीर्ण की गयी वह सारी सेना इस तरह धरतीपर पड़ी थी मानो प्रलयकालमें सबका एक साथ संहार हो गया हो॥ ४१॥ वहाँ मूर्तिमान् होकर प्रकट हुए उन वैष्णव दिव्यास्त्रोंकी क्रीडा-भूमिरूप युद्धस्थलकी ओर देखनेमें भी वे राजालोग असमर्थ हो गये थे॥ ४२॥ कितने ही रथ रौंद डाले गये। कितनोंके राजा मार डाले गये और कितने ही एक-एक पहिया नष्ट हो जानेके कारण भूतलपर बिखरे पड़े थे॥ ४३॥ चक्र और हलद्वारा जहाँ विप्लव मच गया था, उस घोर संग्राममें राक्षसोंद्वारा उपस्थित की गयी भयंकर उत्पातसूचक घटनाएँ घटित होने लगीं॥ ४४॥ जो आर्तभावसे चीख रहे थे तथा जो बाँसकी तरह चीर डाले गये थे, ऐसे मनुष्यों, हाथियों, रथारोहियों और घोड़ोंकी अन्तिम संख्या कितनी है, इसका पता लगाना असम्भव हो गया था॥ ४५॥ धरतीपर पड़े हुए राजाओंके रुधिरसे भीगी हुई वह रणभूमि लाल चन्दनसे आर्द्र अङ्गवाली नारीके समान भयंकर प्रतीत होती थी॥ ४६॥ मनुष्योंके केशों, हड्डियों, मज्जाओं तथा आँतोंसे मिला हुआ कटे हाथियोंके रक्तका प्रवाह वहाँकी भूमिको आच्छादित करता जा रहा था॥ ४७॥ वह रणभूमि बड़ी भयानक प्रतीत होती थी। वहाँ मनुष्यों और उनके वाहनोंका संहार हो रहा था। गीदड़ियोंके अमङ्गलसूचक शब्द वहाँ सदा गूँजते रहते थे। वह देखनेमें भी बड़ी भयंकर थी॥ ४८॥ आर्त प्राणियोंकी चीख—पुकारका शब्द सब ओर फैला हुआ था। रक्तके कितने ही कुण्ड बन गये थे। हाथियोंकी लाशोंसे ढकी हुई वह युद्धस्थली कालकी क्रीडाभूमिके समान प्रतीत होती थी॥ ४९॥ कहीं योद्धाओंकी बाँहें कटकर गिरी थीं। कहीं बहुत-से योद्धा ही मरे पड़े थे और कहीं विदीर्ण हुए घोड़ोंकी लाशें बिछी हुई थीं। बड़े-बड़े बगुलों, कौओं और गीधोंकी बोलियोंसे वह समराङ्गण गूँज रहा था॥ ५०॥ जहाँ बड़े-बड़े भूमिपाल धराशायी हो रहे थे और मृत्यु एक साधारण-सी बात हो गयी थी, उस रणभूमिमें कालके समान दिखायी देनेवाले श्रीकृष्ण शत्रुओंका वध करनेके लिये विचर रहे थे॥ ५१॥ प्रलयकालके सूर्यकी भाँति प्रकाशित होनेवाले चक्र और लोहेकी बनी हुई काली गदाको हाथमें लेकर भगवान् श्रीकृष्ण सेनाके मध्यकी भूमिमें खड़े हो राजाओंसे इस प्रकार बोले— ॥ ५२॥

किन्न युद्ध्यत वै शूरा हस्त्यश्वरथसंयुताः।
किमिदं गम्यते शूराः कृतास्त्रा दृढनिश्चयाः।
अहं सपूर्वजः संख्ये पदातिः प्रमुखे स्थितः॥ ५३

अदृष्टदोषेण रणे भवन्तो येन पालिताः।
स इदानीं जरासंधः किमर्थं नाभिवर्तते॥ ५४

एवमुक्ते तु नृपतिर्दरदो नाम वीर्यवान्।
रामं हलाग्रोग्रभुजं प्रत्ययात् सैन्यमध्यगम्॥ ५५

बभाषे स तु ताम्राक्षमुक्षाणमिव सेवनी।
एह्येहि राम युध्यस्व मया सार्द्धमरिंदम॥ ५६

तद् युद्धमभवत् ताभ्यां रामस्य दरदस्य च।
मृधे लोकवरिष्ठाभ्यां कुञ्जराभ्यामिवौजसा॥ ५७

योजयित्वा ततः स्कन्धे रामो दरदमाहवे।
हलेन बलिनां श्रेष्ठो मुसलेनावपोथयत्॥ ५८

स्वकायगतमूर्धा वै मुसलेनावपोथितः।
पपात दरदो भूमौ दारितार्द्ध इवाचलः॥ ५९

रामेण निहते तस्मिन् दरदे राजसत्तमे।
जरासंधस्य राज्ञस्तु रामेणासीत् समागमः॥ ६०
महेन्द्रस्येव वृत्रेण दारुणो लोमहर्षणः।

गदे गृहीत्वा विक्रान्तावन्योन्यमभिधावतः॥ ६१
कम्पयन्तौ भुवं वीरौ तावुद्यतमहागदौ।
ददृशाते महात्मानौ गिरी सशिखराविव॥ ६२

व्युपारमन्त युद्धानि प्रेक्ष्य तौ पुरुषर्षभौ।
संरब्धाविव धावन्तौ गदायुद्धेषु विश्रुतौ॥ ६३

तावुभौ परमाचार्यौ लोके ख्यातौ महाबलौ।
मत्ताविव महानागावन्योन्यं समधावताम्॥ ६४

ततो देवाः सगन्धर्वाः सिद्धाश्च परमर्षयः।
यक्षाश्चाप्सरसश्चैव समाजग्मुः सहस्रशः॥ ६५

तद्देवयक्षगन्धर्वमहर्षिभिरलंकृतम्।
शुशुभेऽभ्यधिकं राजन् नभो ज्योतिर्गणैरिव॥ ६६

अभिदुद्राव रामं तु जरासंधो नराधिपः।
सव्यं मण्डलमाश्रित्य बलदेवस्तु दक्षिणम्॥ ६७

'हाथी, घोड़े और रथोंसे युक्त शूरवीरो! अब युद्ध क्यों नहीं करते हो? अस्त्रोंके विद्वान् तथा युद्धका दृढ़ निश्चय रखनेवाले वीरो! क्यों इस प्रकार पलायन करते हो? मैं तो युद्धमें अपने बड़े भाईके साथ तुम्हारे सामने पैदल ही खड़ा हूँ॥ ५३॥ 'युद्धमें जिसने दोष नहीं देखा है तथा जिसके द्वारा तुम लोग पालित हुए हो, वह जरासंध अब हमारे सामने क्यों नहीं आ रहा है?'॥ ५४॥ श्रीकृष्णके ऐसा कहनेपर पराक्रमी राजा दरद सेनाके मध्यमें खड़े हुए तथा हलके अग्रभागसे उग्र भुजावाले बलरामके सामने आया॥ ५५॥ जैसे किसान बैलसे बात करता है, उसी प्रकार उसने लाल नेत्रोंवाले बलरामजीसे इस प्रकार कहा—'शत्रुदमन राम! आओ, आओ। मेरे साथ युद्ध करो'॥ ५६॥ बलराम और दरद—दोनों जगत्के श्रेष्ठ वीर थे। युद्धस्थलमें उन दोनोंका बलपूर्वक संग्राम होने लगा, मानो दो हाथी आपसमें लड़ रहे हों॥ ५७॥ तब बलवानोंमें श्रेष्ठ बलरामने युद्धस्थलमें दरदके कंधेसे हल फँसाकर उसे मुसलसे मार डाला॥ ५८॥ मुसलसे मारे गये दरदका मस्तक उसके शरीरमें ही घुस गया और विदीर्ण हुए पर्वतकी भाँति पृथ्वीपर गिर पड़ा॥ ५९॥ राजाओंमें श्रेष्ठ दरदके बलरामद्वारा मारे जानेपर राजा जरासंधका उनके साथ अत्यन्त भयंकर एवं रोमाञ्चकारी युद्ध होने लगा। मानो देवराज इन्द्रका वृत्रासुरके साथ संग्राम हो रहा हो। वे दोनों पराक्रमी वीर गदाएँ हाथमें लेकर पृथ्वीको कम्पित करते हुए एक-दूसरेकी ओर दौड़े। दो विशाल गदाएँ उठाये हुए वे दोनों महामनस्वी योद्धा शिखरोंसे युक्त दो पर्वतोंके समान दिखायी देते थे॥ ६०—६२॥ उन दोनों पुरुषप्रवर वीरोंको युद्ध करते देख दूसरोंके युद्ध बंद हो गये। गदायुद्धोंमें विख्यात जरासंध और बलराम रोषावेशमें भरे हुए-से एक-दूसरेपर धावा करते थे॥ ६३॥ वे दोनों महाबली वीर संसारमें गदायुद्धके उत्तम आचार्य कहे जाते थे। वे दो मदमत्त विशालकाय हाथियोंके समान परस्पर आक्रमण करते थे॥ ६४॥ उस समय देवता, गन्धर्व, सिद्ध, महर्षि, यक्ष तथा सहस्रों अप्सराएँ वह युद्ध देखनेके लिये आ गयीं॥ ६५॥ राजन्! देवताओं, यक्षों, गन्धर्वों और महर्षियोंसे अलंकृत हुआ वहाँका आकाश नक्षत्रोंसे आवृत हुआ-सा अधिक शोभा पाने लगा॥ ६६॥ राजा जरासंध बायीं ओरसे पैंतरा देकर बलरामजीपर टूट पड़ा और बलदेवजीने दाहिनी ओरसे उसपर धावा किया॥ ६७॥

तावन्योन्यं प्रजह्राते गदायुद्धविशारदौ।
दन्ताभ्यामिव मातङ्गौ नादयन्तौ दिशो दश॥ ६८

गदानिपातो रामस्य शुश्रुवेऽशनिनिःस्वनः।
जरासंधस्य च रणे पर्वतस्येव दीर्यतः॥ ६९

न स्म कम्पयते रामं जरासंधकरच्युता।
गदा गदाभृतां श्रेष्ठं विन्ध्यं गिरिमिवानिलः॥ ७०

रामस्य तु गदावेगं राजा स मगधेश्वरः।
सेहे धैर्येण महता शिक्षया च व्यपोथयत्॥ ७१

ततोऽन्तरिक्षे वागासीत् सुस्वरा लोकसाक्षिणी।
"न त्वया राम वध्योऽयमलं खेदेन मानद॥ ७२

विहितोऽस्य मया मृत्युस्तस्मात् साधु व्युपारम।
अचिरेणैव कालेन प्राणांस्त्यक्ष्यति मागधः॥" ७३

जरासंधस्तु तच्छ्रुत्वा विमनाः समपद्यत।
न प्राहरत् ततस्तस्मै पुनरेव हलायुधः।
तौ व्युपारमतां युद्धाद् वृष्णयस्ते च पार्थिवाः॥ ७४

दीर्घकालं महाराज निजघ्नुरितरेतरम्।
पराजिते त्वपक्रान्ते जरासंधे महीपतौ।
विविक्तमभवत् सैन्यं परावृत्तमहारथम्॥ ७५

ते नृपाश्चोदितैर्नागैः स्यन्दनैस्तुरगैस्तथा।
दुद्रुवुर्भीतमनसो व्याघ्राघ्राता मृगा इव॥ ७६

तन्नरेन्द्रैः परित्यक्तं भग्नदर्पैर्महारथैः।
घोरं क्रव्यादबहुलं रौद्रमायोधनं बभौ॥ ७७

द्रवत्सु रथमुख्येषु चेदिराजो महाद्युतिः।
स्मृत्वा यादवसम्बन्धं कृष्णमेवान्ववर्तत॥ ७८

वृतः कारूषसैन्येन चेदिसैन्येन चानघ।
सम्बन्धकामो गोविन्दमिदमाह च चेदिराट्॥ ७९

अहं पितृष्वसुर्भर्ता तव यादवनन्दन।
सबलस्त्वामुपावृत्तस्त्वं हि मे दयितः प्रभो॥ ८०

गदायुद्धमें निपुण वे दोनों वीर एक-दूसरेपर प्रहार करने लगे। जैसे दो मतवाले हाथी अपने दाँतोंसे परस्पर चोट करते हों, उसी प्रकार गदाओंसे आघात करते हुए वे दसों दिशाओंको निनादित करने लगे॥ ६८॥ रणभूमिमें बलरामजीकी गदाके आघातका शब्द वज्रपातके समान सुनायी पड़ता था तथा जरासंधके गदाघातकी ध्वनि फटते हुए पहाड़के समान प्रतीत होती थी॥ ६९॥ जरासंधके हाथसे छूटी हुई गदा गदाधारियोंमें श्रेष्ठ बलरामजीको उसी प्रकार कम्पित नहीं कर पाती थी, जैसे वायु विन्ध्यगिरिको नहीं हिला सकती है॥ ७०॥ बलरामजीकी गदाका वेग मगधराज जरासंध बड़े धैर्यसे सहन करता और शिक्षा-कौशलसे उसको विफल भी कर देता था॥ ७१॥ उस समय आकाशमें सब लोगोंके समक्ष सुस्पष्ट स्वरमें दैवी वाणी सुनायी दी—'दूसरोंको मान देनेवाले बलराम! जरासंधका वध तुम्हारे हाथोंसे होनेवाला नहीं है, अतः खेद न करो। इसकी मृत्युका विधान मेरे द्वारा बना दिया गया है, अतः तुम इस युद्धसे विरत हो जाओ। थोड़े ही समयमें मगधराजको अपने प्राणोंसे हाथ धोना पड़ेगा'॥ ७२-७३॥ वह आकाशवाणी सुनकर जरासंधका मन उदास हो गया। तदनन्तर बलरामने उसपर पुनः प्रहार नहीं किया। वे दोनों वीर युद्धसे विरत हो गये। महाराज! इसके पहले ये वृष्णिवंशी योद्धा और वे राजा लोग दीर्घकालतक एक-दूसरेपर प्रहार करते रहे। जब राजा जरासंध पराजित होकर पलायन करने लगा, तब उसकी सारी सेना खाली हो गयी। उसके विशाल रथ पीछेकी ओर लौट गये॥ ७४-७५॥ वे राजा व्याघ्रके सूँघे हुए मृगोंके समान मन-ही-मन बहुत डरे हुए थे, अतः अपने हाथी, घोड़े और रथोंको हाँकते हुए रणभूमिसे भाग चले॥ ७६॥ जिनका घमंड चूर-चूर हो गया था, उन महारथी नरेशोंद्वारा परित्यक्त हुए उस घोर युद्धस्थलमें अधिकतर मांसभक्षी जीव-जन्तु ही रह गये थे। इससे वह बड़ा भयंकर प्रतीत होता था॥ ७७॥ जब मुख्य-मुख्य रथी भाग चले, तब महातेजस्वी चेदिराज दमघोषने यादवोंके साथ अपने सम्बन्धको स्मरण करके श्रीकृष्णका ही अनुसरण किया॥ ७८॥ निष्पाप जनमेजय! करूष और चेदिदेशकी सेनासे घिरे हुए चेदिराज श्रीकृष्णके साथ सम्बन्ध बढ़ानेकी इच्छासे उनसे इस प्रकार बोले— ॥ ७९॥ 'यादवनन्दन! मैं तुम्हारी बूआका पति हूँ और सेनासहित तुम्हारे पास आया हूँ। प्रभो! तुम मेरे परम प्रिय हो॥ ८०॥

उक्तश्चैष मया राजा जरासंधोऽल्पचेतनः।
कृष्णाद् विरम दुर्बुद्धे विग्रहाद् रणकर्मणि॥ ८१

तदेषोऽद्य मया त्यक्तो मम वाक्यस्य दूषकः।
भग्नो युद्धे जरासंधस्त्वया द्रवति सानुगः॥ ८२

निर्वैरो नैष संयाति स्वपुरं पृथिवीपतिः।
त्वय्येव भूयोऽप्यपरं दर्शयिष्यति किल्बिषम्॥ ८३

तदिमां संत्यजाशु त्वं महीं हतनराकुलाम्।
क्रव्यादगणसंकीर्णां सेवितव्याममानुषैः॥ ८४

करवीरपुरं कृष्ण गच्छामः सबलानुगाः।
शृगालं वासुदेवं वै द्रक्ष्यामस्तत्र पार्थिवम्॥ ८५

इमौ रथवरोदग्रौ युवयोः कारितौ मया।
योजितौ शीघ्रतुरगैः स्वङ्गचक्राक्षकूबरौ॥ ८६

शीघ्रमारुह भद्रं ते बलदेवसहायवान्।
त्वरामः करवीरस्थं द्रष्टुं तं वसुधाधिपम्॥ ८७

वैशम्पायन उवाच

पितृष्वसृपतेर्वाक्यं श्रुत्वा चेदिपतेस्तदा।
वाक्यं हृष्टमनाः कृष्णो जगाद जगतो गुरुः॥ ८८

अहो युद्धाभिसंतप्तौ देशकालोचितं त्वया।
बान्धवप्रतिरूपेण संसिक्तौ वचनाम्बुना॥ ८९

देशकालविशिष्टस्य हितस्य मधुरस्य च।
वाक्यस्य दुर्लभा लोके वक्तारश्चेदिसत्तम॥ ९०

चेदिनाथ सनाथौ स्वः संवृत्तौ तव दर्शनात्।
नावयोः किंचिदप्राप्यं ययोस्त्वं बन्धुरीदृशः॥ ९१

जरासंधस्य निधनं ये चान्ये तत्समा नृपाः।
पर्याप्तौ त्वत्सनाथौ स्वः कर्तुं चेदिकुलोद्वह॥ ९२

यदूनां प्रथमो बन्धुस्त्वं हि सर्वमहीक्षिताम्।
अतः प्रभृति संग्रामान् द्रक्ष्यसे चेदिसत्तम॥ ९३

चाक्रं मौसलमित्येवं संग्रामं रणवृत्तयः।
कथयिष्यन्ति लोकेऽस्मिन् ये धरिष्यन्ति पार्थिवाः॥ ९४

मैंने इस मन्दबुद्धि राजा जरासंधसे कहा था कि अरे दुर्बुद्धे! तू इस विग्रहसे श्रीकृष्णके साथ युद्ध करनेसे विरत हो जा, किंतु इसने नहीं माना॥ ८१॥ इसने मेरे इस कथनकी निन्दा की थी, अतः अब मैंने इसे त्याग दिया है। युद्धमें तुम्हारे द्वारा पराजित होकर यह जरासंध अपने साथियोंसहित भागा जा रहा है॥ ८२॥ परंतु यह राजा वैरभाव छोड़कर अपने नगरको नहीं लौट रहा है; अतः यह फिर तुम्हारे प्रति ही दूसरे पापपूर्ण कृत्यका प्रदर्शन करेगा॥ ८३॥ इसलिये अब तुम शीघ्र ही इस भूमिको त्याग दो। यह मुर्दे मनुष्योंसे भरी हुई है और यहाँ सब ओर हिंसक प्राणी छा गये हैं। अब यह स्थान मानवेतर (राक्षस आदि) प्राणियोंके ही सेवन करने योग्य है॥ ८४॥ श्रीकृष्ण! अब हमलोग सैनिकों और सेवकोंसहित करवीरपुरमें चलें। वहाँ शृगालनामसे विख्यात राजा वासुदेव रहते हैं। उनसे हम मिलेंगे॥ ८५॥ ये दो श्रेष्ठ रथ मैंने तुम दोनों भाइयोंके लिये तैयार कराये हैं। इनमें शीघ्रगामी घोड़े जुते हुए हैं। इनके सभी अङ्ग, पहिये, धुरे और कूबर आदि सुदृढ़ हैं॥ ८६॥ तुम्हारा भला हो। तुम बलदेवके साथ शीघ्र रथपर आरूढ़ हो जाओ। हमें करवीरपुरमें निवास करनेवाले राजा शृगालसे मिलनेके लिये जल्दी लगी हुई है'॥ ८७॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! उस समय अपने फूफा चेदिराज दमघोषका यह वचन सुनकर जगद्गुरु श्रीकृष्णके मनमें बड़ी प्रसन्नता हुई। वे बोले—॥ ८८॥ 'अहो! हमलोग युद्धसे संतप्त हो गये थे। आपने एक आत्मीय बन्धुकी भाँति आकर अपने देशकालोचित वचनरूपी जलसे हमें नहला दिया है॥ ८९॥ चेदिराज! इस जगत्‌में देशकालके अनुरूप हितकर और मधुर वचन बोलनेवाले लोग दुर्लभ हैं॥ ९०॥ चेदिनाथ! आपके दर्शनसे हम दोनों सनाथ हो गये। जब हमारे आप-जैसे बन्धु यहाँ मौजूद हैं, तब यहाँ हमारे लिये कुछ भी अप्राप्य नहीं है॥ ९१॥ चेदिकुलभूषण! हम दोनों आपसे सनाथ होकर जरासंध तथा उसके समान जो दूसरे राजा हैं, उन सबको मौतके घाट उतार देनेमें समर्थ हैं॥ ९२॥ चेदिप्रवर! समस्त राजाओंमें आप ही यदुवंशियोंके प्रथम बन्धु हैं। अबसे आपको बहुत-से संग्राम देखनेको मिलेंगे॥ ९३॥ युद्धसे जीवन-निर्वाह करनेवाले जो राजा इस लोकमें जीवित रहेंगे, वे आजके इस चाक्र, मौसल युद्धकी सदा चर्चा करेंगे॥ ९४॥

राज्ञां पराजयं युद्धे गोमन्तेऽचलसत्तमे।
श्रवणाद् धारणाद् वापि स्वर्गलोकं व्रजन्ति हि॥ ९५

तद्गच्छाम महाराज करवीरं पुरोत्तमम्।
त्वयोद्दिष्टेन मार्गेण चेदिराज शिवाय वै॥ ९६

ते स्यन्दनगताः सर्वे पवनोत्पातिभिर्हयैः।
भेजिरे दीर्घमध्वानं मूर्तिमन्त इवाग्नयः॥ ९७

ते त्रिरात्रोषिताः प्राप्ताः करवीरं पुरोत्तमम्।
शिवाय च शिवे देशे निविष्टास्त्रिदशोपमाः॥ ९८

पर्वतोंमें श्रेष्ठ गोमन्तके समीप युद्धमें हमारे द्वारा जो यह राजाओंकी पराजय हुई है, इसके सुनने अथवा स्मरण करनेसे भी मनुष्य स्वर्गलोकमें जायँगे॥ ९५॥ अतः महाराज चेदिराज! अब हमलोग आपके बताये हुए मार्गसे अपने कल्याणके लिये उत्तम नगर करवीरपुरको चलें'॥ ९६॥ तदनन्तर वे सब-के-सब तीन मूर्तिमान् अग्नियोंके समान रथपर आरूढ़ हो हवाकी भाँति उड़नेवाले घोड़ोंद्वारा विशाल मार्गपर चल दिये॥ ९७॥ वे देवोपम वीर मार्गमें तीन रात निवास करके उत्तम करवीरपुरमें जा पहुँचे। वहाँ उन्होंने अपने भलेके लिये एक सुखद स्थानमें डेरा डाला॥ ९८॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे विष्णुपर्वणि करवीरपुराभिगमने त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः॥ ४३॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत विष्णुपर्वमें श्रीकृष्ण आदिका करवीरपुरमें गमनविषयक तैंतालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ४३॥

चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः

श्रीकृष्णद्वारा शृगालका वध तथा उसके पुत्रका करवीरपुरके राज्यपर अभिषेक

वैशम्पायन उवाच

तानागतान् विदित्वाथ शृगालो युद्धदुर्मदः।
पुरस्य धर्षणं मत्वा निर्जगामेन्द्रविक्रमः॥ १

रथेनादित्यवर्णेन भास्वता रणगामिना।
आयुधप्रतिपूर्णेन नेमिनिर्घोषहासिना॥ २

मन्दराचलकल्पेन चित्राभरणभूषिणा।
अक्षय्यसायकैस्तूणैः पूर्णेनार्णवघोषिणा॥ ३

हर्यश्वेनाशुगतिनासक्तेन शिखरेष्वपि।
हेमकूबरगर्भेण दृढाक्षेणातिशोभिना॥ ४

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! उन सबके आनेका समाचार पाकर इन्द्रके समान पराक्रमी रणदुर्मद राजा शृगाल अपनी पुरीपर आक्रमण हुआ समझकर नगरसे बाहर निकला॥ १॥ वह एक श्रेष्ठ रथपर चढ़कर चला। उसका वह रथ सूर्यके समान तेजःपुञ्जसे प्रकाशित हो रहा था। वह रणभूमिमें (अप्रतिहतगति)-से जानेवाला था। उसमें सभी तरहके अस्त्र-शस्त्र भरे हुए थे। उसके पहियोंकी जो घरघराहट होती थी, वही मानो उसका अट्टहास था (अथवा वह पहियोंकी घर्घर ध्वनिसे मेघकी गम्भीर गर्जनाका उपहास कर रहा था)। उसका आकार मन्दराचलके समान था। उस रथको विचित्र आभरणोंसे विभूषित किया गया था। वह अक्षय सायकोंसे भरे हुए तूणीरोंसे परिपूर्ण था तथा समुद्रकी गम्भीर गर्जनाके समान घरघराहट पैदा करता था। उसमें हरे रङ्गके शीघ्रगामी घोड़े जुते हुए थे। वह पर्वतके शिखरोंपर भी कहीं अटकता नहीं था। उसके कूबरके* भीतरी भागमें सोना जड़ा हुआ था, उसका धुरा भी सुदृढ़ था, उस रथकी बड़ी शोभा हो रही थी।

* कूबर रथका वह भाग है, जिसपर जूआ बाँधा जाता है।

सुबन्धुरेण दीप्तेन पतत्त्रिवरगामिना।
खगतेनेव शक्रस्य हर्यश्वेन रथाद्रिणा॥ ५

सावित्रे नियमे पूर्णे यं ददौ सविता स्वयम्।
आदित्यरश्मिभिरिव रश्मिभिर्यो निगृह्यते॥ ६

तेन स्यन्दनमुख्येन द्विषत्स्यन्दनघातिना।
स शृगालोऽभ्ययात्कृष्णं शलभः पावकं यथा॥ ७

चापपाणिः सुतीक्ष्णेषुः कवची हेममालिकः।
सितप्रावरणोष्णीषः पावकाकारलोचनः॥ ८

मुहुर्मुहुर्ज्याचपलं विक्षिपन् दुःसहं धनुः।
निर्वमन् रोषजं वायुं सानलज्वालमण्डलम्॥ ९

भाभिर्भूषणपंक्तीनां दीप्तो मेरुरिवाचलः।
रथस्थ इव शैलेन्द्रः शृगालः प्रत्यदृश्यत॥ १०

तस्यारसितशब्देन रथनेमिस्वनेन च।
गुरुत्वेन च नाम्यन्ती चचालोर्वी भयातुरा॥ ११

तमापतन्तं श्रीमन्तं मूर्तिमन्तमिवाचलम्।
शृगालं लोकपालाभं दृष्ट्वा कृष्णो न विव्यथे॥ १२

शृगालश्चापि संरब्धः स्यन्दनेनाशुगामिना।
समीपे वासुदेवस्य युयुत्सुः प्रत्यदृश्यत॥ १३

वासुदेवं स्थितं दृष्ट्वा शृगालो युद्धलालसः।
अभिदुद्राव वेगेन मेघराशिरिवाचलम्॥ १४

वासुदेवः स्मितं कृत्वा प्रतियुद्धाय तस्थिवान्।
तद् युद्धमभवत् ताभ्यां समरे घोरदर्शनम्।
उभाभ्यामिव मत्ताभ्यां कुञ्जराभ्यां यथा वने॥ १५

शृगालस्त्वब्रवीत् कृष्णं समरे समुपस्थितम्।
युद्धरागेण तेजस्वी मोहाच्चलितगौरवः॥ १६

वह सुन्दर रस्सियोंसे भलीभाँति बँधा हुआ था, उसकी दीप्ति सब ओर छिटक रही थी; वह पक्षिराज गरुड़के समान तीव्र गतिसे चलनेवाला था और इन्द्रके हरित अश्वसे जुते हुए आकाशगामी पर्वताकार रथकी समानता करता था। शृगालने नियमपूर्वक गायत्री-जप करके सूर्यदेवकी अराधना की थी। उसका वह नियम पूर्ण होनेपर साक्षात् भगवान् सूर्यने उसे वह रथ दिया था, जो सूर्यकी किरणोंके समान सुनहरी बागडोरोंसे उस रथके घोड़ोंको काबूमें लाया जाता था। शत्रुओंके रथोंको नष्ट कर देनेवाले उस श्रेष्ठ रथके द्वारा राजा शृगाल उसी तरह श्रीकृष्णपर चढ़ आया जैसे पतिंगा आगपर टूट पड़ता है॥ २—७॥ उसके हाथमें धनुष और तीखे बाण शोभा पाते थे। वह कवच धारण करके सोनेकी मालासे विभूषित था। उसकी चादर और पगड़ी श्वेतवर्णकी थी और नेत्र अग्निके समान जलते-से प्रतीत होते थे॥ ८॥ वह बारम्बार अपने दुःसह धनुषको हिलाता हुआ उसकी प्रत्यञ्चा खींचता था और आगकी ज्वालाओंसे युक्त रोषजनित उच्छ्वास छोड़ रहा था॥ ९॥ अपने आभूषण-समूहोंकी प्रभाओंसे प्रकाशित होकर वह राजा शृगाल मेरुपर्वतके समान शोभा पाता था और रथपर बैठे हुए गिरिराज-सा दृष्टिगोचर होता था॥ १०॥ उसके गर्जनेकी ध्वनि, रथके पहियोंकी घर्घराहट और भारीपनेसे दबी जाती हुई पृथ्वी भयसे आतुर हो डगमगाने लगी॥ ११॥ लोकपालोंके समान तेजस्वी और मूर्तिमान् पर्वतके समान विशालकाय श्रीमान् राजा शृगालको आक्रमण करते देख श्रीकृष्णके मनमें तनिक भी व्यथा नहीं हुई॥ १२॥ इधर शृगाल भी रोषमें भरकर उस शीघ्रगामी रथके द्वारा श्रीकृष्णके पास आकर युद्धके लिये उत्सुक दिखायी देने लगा॥ १३॥ श्रीकृष्णको अपने सामने खड़ा देख शृगालकी युद्ध-लालसा जाग उठी और जिस प्रकार मेघोंका समूह वर्षाद्वारा पर्वतपर आक्रमण करता है, उसी प्रकार उसने वेगपूर्वक उनपर धावा किया॥ १४॥ तब भगवान् श्रीकृष्ण मुसकराकर उसका सामना करनेके लिये खड़े हो गये; फिर तो समरभूमिमें उन दोनोंका बड़ा भयंकर युद्ध होने लगा, जैसे वनमें दो मदमत्त हाथी आपसमें लड़ रहे हों॥ १५॥ उस समय मोहवश जो अपने गौरवसे गिर गया था, उस तेजस्वी शृगालने समराङ्गणमें उपस्थित हुए श्रीकृष्णसे युद्धविषयक आसक्तिसे प्रेरित होकर कहा—॥ १६॥

गोमन्ते युद्धमार्गेण यत् त्वया कृष्ण चेष्टितम्।
अनायकानां मूर्खाणां नृपाणां दुर्बले बले॥ १७

स मे सुविदितः कृष्ण क्षत्रियाणां पराजयः।
कृपणानामसत्त्वानामयुद्धानां रणोत्सवे॥ १८

तिष्ठेदानीं यथाकामं स्थितोऽहं पार्थिवे पदे।
क्व यास्यसि मया रुद्धो रणेष्वपरिनिष्ठितः॥ १९

न चाहमेकं सबलो युक्तस्त्वां योद्धुमाहवे।
अहमेकस्त्वमप्येको द्वौ युध्याव रणे स्थितौ॥ २०

किं जनेन निरस्तेन त्वं वाहं च रणे स्थितः।
धर्मयुद्धेन निधनं व्रजत्वेकतरो रणे॥ २१

लोकेऽस्मिन् वासुदेवोऽहं भविष्यामि हते त्वयि।
हते मयि त्वमप्येको वासुदेवो भविष्यसि॥ २२

शृगालस्य वचः श्रुत्वा वासुदेवः क्षमापरः।
ईर्ष्यन्तं प्रहरस्वेति तमुक्त्वा चक्रमाददे॥ २३

ततः सायकजालानि शृगालः क्रोधमूर्छितः।
चिक्षेप कृष्णे घोराणि युद्धाय लघुविक्रमः॥ २४

शस्त्राणि यानि चान्यानि मुसलादीनि संयुगे।
पातयामास गोविन्दे स शृगालः प्रतापवान्॥ २५

शृगालप्रहितैरस्त्रैः पावकज्वालमालिभिः।
निर्दयाभिहतः कृष्णः स्थितो गिरिरिवाचलः॥ २६

सोऽस्त्रप्रहाराभिहतः किंचिद् रोषसमन्वितः।
चक्रमुद्यम्य गोविन्दः शृगालस्य परिक्षिपत्॥ २७

तं रथस्थं प्रमाणस्थं शृगालं युद्धदुर्मदम्।
जघान समरे चक्रं जातदर्पं महाबलम्॥ २८

ततः सुदर्शनं चक्रं पुनरायाद् गुरोः करे।
चक्रेणोरसि निर्भिन्नः स गतासुर्गतोत्सवः।
पपात क्षतजस्त्रावी शृगालोऽद्रिरिवाहतः॥ २९

'कृष्ण! तुमने गोमन्तके समीप नायकरहित मूर्ख नरेशोंकी दुर्बल सेनाके भीतर युद्धके मार्गसे जो-जो चेष्टाएँ की हैं, उनके विषयमें मुझे सब कुछ भलीभाँति विदित हो गया है। क्षत्रियोंके उस पराजयसे मैं अच्छी तरह परिचित हूँ; परंतु वे क्षत्रिय कायर, धैर्य और शक्तिसे रहित तथा समरोत्सवमें कभी युद्ध न कर सकनेवाले थे॥ १७-१८॥ परंतु इस समय तुम इच्छानुसार युद्ध करनेके लिये खड़े हो जाओ, मैं यहाँ राजाके पदपर प्रतिष्ठित हूँ। यदि मैं तुम्हें सब ओरसे घेरा डालकर रोक लूँ तो तुम कहाँ जाओगे; क्योंकि तुम तो रणकर्ममें परिनिष्ठित (निपुण) हो नहीं॥ १९॥ तुम अकेले हो और मैं सेनाके साथ हूँ। अतः रणभूमिमें तुम्हारे साथ युद्ध करना मेरे लिये उचित न होगा। इधरसे मैं अकेला रहूँ और उधरसे तुम, फिर हम दोनों समरभूमिमें डटकर युद्ध करें॥ २०॥ साधारण लोगोंको मारनेसे क्या लाभ? रणभूमिमें खड़े हुए तुम या मैं—दोनोंमेंसे एक योद्धा धर्मयुद्धके द्वारा मृत्युको प्राप्त हो॥ २१॥ तुम्हारे मारे जानेपर इस संसारमें मैं अकेला ही वासुदेव रहूँगा और मेरे मारे जानेपर तुम भी अकेले वासुदेव बने रहोगे'॥ २२॥ शृगालकी यह बात सुनकर क्षमाशील भगवान् वासुदेवने उस ईर्ष्यालु नरेशसे कहा—'पहले तुम प्रहार करो' ऐसा कहकर उन्होंने हाथमें चक्र ले लिया॥ २३॥ तब युद्धके लिये शीघ्रतापूर्वक पराक्रम प्रकट करनेवाले शृगालने क्रोधसे उन्मत्त होकर श्रीकृष्णपर घोर बाण-समूहोंकी वर्षा आरम्भ कर दी॥ २४॥ प्रतापी शृगालने उस युद्धमें गोविन्दपर मूसल आदि अन्य शस्त्रोंका भी प्रहार किया॥ २५॥ शृगालके चलाये हुए अस्त्रोंद्वारा, जिनसे आगकी लपटें उठ रही थीं, निर्दयतापूर्वक आहत होनेपर भी श्रीकृष्ण पर्वतके समान अविचलभावसे खड़े रहे। उसके अस्त्रोंके प्रहारसे घायल होकर किञ्चित् रोषसे युक्त हुए भगवान् गोविन्दने चक्र उठाकर शृगालपर प्रहार किया॥ २६-२७॥ रणदुर्मद महाबली शृगाल घमण्डमें भरकर रथपर ही बैठा रहा, अपनी जगहसे हटा नहीं। इसी समय (भगवान्‌के चलाये हुए) चक्रने समरभूमिमें उसपर गहरी चोट की॥ २८॥ इसके बाद सुदर्शन चक्र पुनः जगद्गुरु भगवान् श्रीकृष्णके हाथमें आ गया। उस चक्रसे आहत होकर शृगालकी छाती फट गयी और वह वज्रके मारे हुए पर्वतकी भाँति खूनकी धारा बहाता हुआ प्राणशून्य होकर पृथ्वीपर गिर पड़ा। उसके जीवनका सारा आनन्दोत्सव समाप्त हो गया॥ २९॥

निशम्य तं निपतितं वज्रपातादिवाचलम्।
तस्य सैन्यान्यपययुर्विमनांसि हते नृपे॥ ३०
केचित् प्रविश्य नगरं कश्मलाभिहता भृशम्।
रुरुदुर्दुःखसंतप्ता भर्तृशोकाभिपीडिताः॥ ३१
केचित् तत्रैव शोचन्तः स्मरन्तः सुकृतानि च।
पतितं भूपतिं भूमौ न त्यजन्ति स्म दुःखिताः॥ ३२
ततो मेघनिनादेन स्वरेणारिविमर्दनः।
कृष्णः कमलपत्राक्षो जनानामभयं ददौ॥ ३३
चक्रोचितेन हस्तेन राजताङ्गुलिपर्वणा।
न भेतव्यं न भेतव्यमिति तानभ्यभाषत॥ ३४
नास्य पापस्य दोषेण निराबाधकरं जनम्।
घातयिष्यामि समरे नेदं शूरव्रतं मतम्॥ ३५
अश्रुपूर्णमुखा दीनाः क्रन्दमाना भृशं तदा।
ते स्म पश्यन्ति पतितं धरण्यां धरणीपतिम्॥ ३६
चक्रनिर्दारितोरस्कं भिन्नशृङ्गमिवाचलम्॥ ३७
विलपन्ति स्म ते सर्वे सचिवाः सप्रजा भृशम्।
साश्रुपातेक्षणा दीनाः शोकस्य वशमागताः॥ ३८
तेषां रुदितशब्देन पौराणां विस्वरैः स्वरैः।
महिष्यस्तस्य निष्पेतुः सपुत्रा रुदिताननाः॥ ३९
तास्तं निपतितं दृष्ट्वा श्लाघ्यं भूमिपतिं पतिम्।
स्तनानारुज्य करजैर्भृशार्ताः पर्यदेवयन्॥ ४०
उरांस्युरसिजांश्चैव शिरोजान्याकुलान्यपि।
निर्दयं ताडयन्त्यस्ता विस्वरं रुरुदुः स्त्रियः॥ ४१
तस्योरसि सुदुःखार्ता मृदिताः क्लिन्नलोचनाः।
पेतुरूर्ध्वभुजाः सर्वाश्छिन्नमूला लता इव॥ ४२
तासां बाष्पाम्बुपूर्णानि नेत्राणि नृपयोषिताम्।
वारिविप्रहतानीव पङ्कजानि चकाशिरे॥ ४३
ताः पतिं पतितं भूमौ रुदन्त्यो हृदि ताडिताः।
लालप्यमानाः करुणं योषितः पर्यदेवयन्॥ ४४
पुत्रं चास्य पुरस्कृत्य बालं प्रस्रुतलोचनम्।
शक्रदेवं पितुः पार्श्वे द्विगुणं रुरुदुः स्त्रियः॥ ४५

वज्रपातसे धराशायी हुए पर्वतकी भाँति राजा शृगालको पृथ्वीपर पड़ा देख, उसके मारे जानेपर उसके सारे सैनिक खिन्नचित्त होकर भाग गये॥ ३०॥ कुछ सैनिक नगरमें प्रवेश करके अत्यन्त मोहग्रस्त, दुःखसे सन्तप्त तथा स्वामीके शोकसे पीड़ित हो फूट-फूटकर रोने लगे॥ ३१॥ कुछ सैनिक वहीं शोक करने लगे। वे स्वामीके उपकारोंका स्मरण करके दुःखी हो भूमिपर पड़े हुए भूपालको छोड़ नहीं रहे थे॥ ३२॥ तदनन्तर शत्रुमर्दन कमलनयन श्रीकृष्णने मेघ-गर्जनाके समान गम्भीर स्वरसे उन सब लोगोंको अभयदान दिया॥ ३३॥ उन्होंने अङ्गुलिपर्वसे सुशोभित तथा चक्र धारण करनेके योग्य उठे हुए दाहिने हाथके द्वारा संकेत करके उन सबसे कहा—'सैनिको! तुम डरो मत! डरो मत!! इस पापीके अपराधसे मैं समरभूमिमें निरपराध मनुष्योंका वध नहीं करूँगा; क्योंकि—यह वीरोंका व्रत नहीं है'॥ ३४-३५॥ वे सैनिक अत्यन्त दीनभावसे क्रन्दन करते हुए उस समय पृथ्वीपर पड़े हुए पृथ्वीपति शृगालकी ओर देख रहे थे। उनका सारा मुखमण्डल आँसुओंसे भींगा हुआ था। राजाका वक्षःस्थल चक्रसे विदीर्ण हो गया था। वह टूटे हुए शिखरवाले पर्वतके समान भूमिपर पड़ा था॥ ३६-३७॥ वे समस्त सचिव तथा प्रजावर्गके लोग शोकके वशीभूत हो नेत्रोंसे अश्रुपात करते हुए अत्यन्त दीनभावसे विलाप करते थे॥ ३८॥ उन पुरवासियोंके रोनेके शब्द तथा फटे हुए स्वरोंसे अनिष्टकी आशङ्का करके राजा शृगालकी रानियाँ भी पुत्रोंको साथ लिये रोती हुई वहाँ निकल आयीं॥ ३९॥ अपने स्पृहणीय पति भूमिपाल शृगालको वहाँ धरतीपर पड़ा देख वे रानियाँ अत्यन्त आर्त हो अपनी अङ्गुलियोंसे स्तनोंको नोचती हुई करुण विलाप करने लगीं॥ ४०॥ वे स्त्रियाँ अपनी छाती, स्तन और वहाँ फैले हुए सिरके बालोंको भी निर्दयतापूर्वक पीटती हुई पुक्का फाड़-फाड़कर रोने लगीं॥ ४१॥ वे सब रानियाँ अत्यन्त दुःखसे आतुर और मर्दित हो नेत्रोंसे आँसू बहाती हुई दोनों बाँहें ऊपर उठाकर जड़से कटी हुई लताओंकी भाँति राजाकी छातीपर गिर पड़ीं॥ ४२॥ उन राजरानियोंके आँसूभरे नेत्र जल (या ओले)- से आहत हुए कमलोंके समान प्रकाशित होते थे॥ ४३॥ धरतीपर पड़े हुए पतिकी ओर देखकर रोती और छाती पीटती हुई वे राजपत्नियाँ करुण विलाप करती हुई शोकोद्गार प्रकट करने लगीं॥ ४४॥ उस राजाके बालक पुत्र शक्रदेवको अपने आगे पिताके पास खड़ा करके वे रानियाँ और दूने वेगसे रोने तथा विलाप करने लगीं। उस बालकके नेत्रोंसे भी आँसू बह रहा था॥ ४५॥

अयं ते वीर विक्रान्तो बालः पुत्रो न पण्डितः।
त्वद्विहीनः कथमयं पदे स्थास्यति पैतृके॥ ४६

कथमेकपदे त्यक्त्वा गतोऽस्यन्तःपुरं परम्।
अतृप्तास्तव सौख्यानां किं कुर्मो विधवा वयम्॥ ४७

तस्य पद्मावती नाम महिषी प्रमदोत्तमा।
रुदती पुत्रमादाय वासुदेवमुपस्थिता॥ ४८

यस्त्वया पातितो वीर रणप्रोक्तेन कर्मणा।
तस्य प्रेतगतस्यायं पुत्रस्त्वां शरणं गतः॥ ४९

यदि त्वां प्रणमेतासौ कुर्याद् वा शासनं तव।
नायमेकप्रहारेण जनस्तप्येत दारुणम्॥ ५०

यदि कुर्यादयं मूढस्त्वयि बान्धवकं विधिम्।
नैवं परीतः कृपणः सेवेत धरणीतलम्॥ ५१

अयमस्य विपन्नस्य बान्धवस्य तवानघ।
सन्तती रक्ष्यतां वीर पुत्रः पुत्र इवात्मजः॥ ५२

तस्यास्तद् वचनं श्रुत्वा महिष्या यदुनन्दनः।
मृदुपूर्वमिदं वाक्यमुवाच वदतां वरः॥ ५३

राजपत्नि गतो रोषः सहानेन दुरात्मना।
प्रकृतिस्था वयं जाता देवि सैषोऽस्मि बान्धवः॥ ५४

रोषो मे विगतः साध्वि तव वाक्यैरकल्मषैः।
योऽयं पुत्रः श्रृगालस्य ममाप्येष न संशयः॥ ५५

अभयं चाभिषेकं च ददाम्यस्मै सुखाय वै।
आहूयन्तां प्रकृतयः पुरोधा मन्त्रिणस्तथा॥ ५६

पितृपैतामहे राज्ये तव पुत्रोऽभिषिच्यताम्।
ततः प्रकृतयः सर्वाः पुरोधा मन्त्रिणस्तथा॥ ५७

अभिषेकार्थमाजग्मुर्यतो वै रामकेशवौ।
ततः सिंहासनस्थं तु राजपुत्रं जनार्दनः॥ ५८

वे बोलीं—'वीर महाराज! यह आपका पराक्रमी पुत्र अभी बालक है, विद्वान् नहीं हो सका है। अब आपके बिना यह अपने पैतृक राज्यपर कैसे प्रतिष्ठित हो सकेगा?॥ ४६॥ (प्राणनाथ!) आप अपने अन्तःपुरकी रानियोंको सहसा त्यागकर क्यों परलोकको चले गये? हम आपके दिये हुए सुखोंसे अभी तृप्त नहीं हुई थीं। हाय! हम विधवा हो गयीं, अब क्या करें?'॥ ४७॥ राजा शृगालकी पटरानीका नाम पद्मावती था। वह स्त्रियोंमें श्रेष्ठ थी। पद्मावती रोती हुई अपने पुत्रको साथ ले भगवान् वासुदेवके पास गयी॥ ४८॥ और बोली—'वीर! आपने युद्ध-कर्मके द्वारा जिन्हें मार गिराया है, उन्हीं परलोकवासी नरेशका यह पुत्र आपकी शरणमें आया है॥ ४९॥ यदि ये महाराज आपको प्रणाम करते—आपके सम्मुख विनीत भावका परिचय देते अथवा आपकी आज्ञाका पालन करते तो आपके एक ही प्रहारसे इन्हें संतापका भागी नहीं होना पड़ता॥ ५०॥ यदि ये मूढ (विवेकशून्य) नरेश आपके प्रति बन्धु-जनोचित बर्ताव करते तो इन्हें मांसभक्षी जन्तुओंसे घिरकर पृथ्वीका सेवन नहीं करना पड़ता॥ ५१॥ अनघ! वीर! यह आपके इस मरे हुए बान्धवकी ही सन्तति है; आप अपने पुत्रकी ही भाँति इसकी रक्षा करें'॥ ५२॥ रानीका यह वचन सुनकर वक्ताओंमें श्रेष्ठ यदुनन्दन श्रीकृष्णने मधुर वाणीमें कहा—॥ ५३॥ 'राजरानी! मेरा रोष तो इस दुरात्माके मारे जानेके साथ ही दूर हो गया। देखें! अब हम स्वाभाविक स्थितिमें हैं। मैं आपका वही भाई-बन्धु हूँ॥ ५४॥ साध्वी रानी! तुम्हारे इन निर्दोष वचनोंसे मेरा सारा क्रोध दूर हो गया। राजा शृगालका जो यह पुत्र है, यह मेरे लिये भी पुत्रके ही समान है, इसमें संशय नहीं है॥ ५५॥ मैं इसके सुखके लिये इसे अभय देनेके साथ ही इसका राज्याभिषेक भी कर दूँगा। आप समस्त प्रकृतियों तथा मन्त्री और पुरोहितोंको भी बुलवाइये, जिससे आपके इस पुत्रको, इसके बाप-दादोंके राज्यपर अभिषिक्त कर दिया जाय'। तदनन्तर, सारी प्रकृतियाँ (प्रजा आदि), पुरोहित और मन्त्री भी राजकुमारका अभिषेक करनेके लिये उस स्थानपर आये, जहाँ श्रीबलराम और श्रीकृष्ण विराजमान थे। इसके बाद पराक्रमी भगवान् जनार्दनने राजकुमारको राज्य-सिंहासनपर बिठाकर दिव्य अभिषेककी विधिसे उसका राज्याभिषेक-कर्म सम्पन्न किया॥ ५६—५८॥

अभिषेकेण दिव्येन योजयामास वीर्यवान्।
अभिषिच्य शृगालस्य करवीरपुरे सुतम्।
कृष्णस्तदहरेवाशु प्रस्थानमभ्यरोचयत्॥ ५९

रथेन हरियुक्तेन तेन युद्धार्जितेन वै।
केशवः प्रस्थितोऽध्वानं वृत्रहा त्रिदिवं यथा॥ ६०

शक्रदेवोऽपि धर्मात्मा सह मात्रा परंतपः।
सबालवृद्धयुवतीमुख्याः प्रकृतयस्तथा॥ ६१

शिबिकायामथारोप्य शृगालं युद्धदुर्मदम्।
संहता दूरमार्गेण पश्चिमाभिमुखा ययुः॥ ६२

नैधनस्य विधानेन चक्रुस्ते तस्य सत्क्रियाम्।
सत्कारं कारयामासुः पितॄणां पारलौकिकम्॥ ६३

उद्दिश्योद्दिश्य राजानं श्राद्धं कृत्वा सहस्रशः।
ततस्ते सलिलं दत्त्वा नामगोत्रादिकीर्तनैः॥ ६४

पितर्युपरते घोरे शोकसंविग्नमानसः।
कृत्वोदकं तदा राजा प्रविवेश पुरोत्तमम्॥ ६५

शृगालके पुत्रको करवीरपुरके राज्यपर अभिषिक्त करके श्रीकृष्णने उसी दिन वहाँसे शीघ्रतापूर्वक प्रस्थान कर देना उचित समझा॥ ५९॥ जैसे इन्द्र स्वर्गलोकको जाते हैं, उसी प्रकार भगवान् श्रीकृष्ण भी युद्धमें प्राप्त हुए उस अश्वयुक्त रथके द्वारा मथुराके पथपर चल दिये॥ ६०॥ शत्रुओंको संताप देनेवाला धर्मात्मा राजा शक्रदेव भी माताके साथ बालक, वृद्ध और युवती आदि सारी प्रकृतियोंको साथ ले रणदुर्मद शृगालके शवको पालकीमें सुलाकर सब लोग संगठित हो नगरसे दूरके रास्तेपर पश्चिमकी ओर चले॥ ६१-६२॥ श्मशान-भूमिमें ले जाकर अन्त्येष्टिकी विधिसे उन सबने शक्रदेवद्वारा राजाका दाह-संस्कार करवाया और पितरोंके लिये पारलौकिक कृत्यका सम्पादन कराया॥ ६३॥ राजाके उद्देश्यसे सहस्रों प्रकारकी वस्तुएँ श्राद्धमें देकर उन सबने शृगालके लिये नाम-गोत्र आदिके उच्चारणपूर्वक जलदान किया। इस प्रकार पिताकी घोर मृत्यु हो जानेपर शोकसे व्याकुलचित्त हुए राजा शक्रदेवने उन्हें जलाञ्जलि देकर अपने उत्तम नगरमें प्रवेश किया॥ ६४-६५॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे विष्णुपर्वणि शृगालवधो नाम चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः॥ ४४॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत विष्णुपर्वमें शृगालका वधनामक चौवालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ४४॥

पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः

बलराम और श्रीकृष्णका मथुरामें प्रत्यागमन और स्वागत

वैशम्पायन उवाच

तौ तु स्वल्पेन कालेन दमघोषेण संगतौ।
अथाध्वविधिना तौ तु पञ्चरात्रोषितौ पथि॥ १

दमघोषेण संगम्य एकरात्रोषिताविव।
जगमतुः सहितौ वीरौ मुदा परमया युतौ।
नगरीं मथुरां प्राप्तौ वसुदेवसुतावुभौ॥ २

ततः प्रत्युद्गताः सर्वे यादवा यदुनन्दनौ।
सबला हृष्टमनस उग्रसेनपुरोगमाः॥ ३

श्रेण्यः प्रकृतयश्चैव मन्त्रिणश्च यथोचिताः।
सबालवृद्धा सा चैव पुरी समभिवर्तत॥ ४

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! तदनन्तर वे दोनों भाई चेदिराज दमघोषके साथ मिलकर यात्रा करने लगे। मार्गके नियमानुसार चलते हुए उन्होंने बीच-बीचमें पाँच रात निवास किया; किंतु दमघोषके साथ रहनेसे उन्हें ऐसा प्रतीत हुआ कि हम एक ही रात मार्गमें रहे हैं। इस प्रकार परमानन्दसे सम्पन्न हो वे दोनों वीर वसुदेवकुमार साथ-साथ थोड़े ही समयमें मथुरा नगरीमें जा पहुँचे॥ १-२॥ उस समय उग्रसेन आदि सभी यादवोंने सेनासहित आगे आकर प्रसन्नचित्तसे उन दोनों यदुनन्दन वीरोंका स्वागत किया॥ ३॥ अनेक प्रकारके शिल्पोंद्वारा जीवन-निर्वाह करनेवाले नाना जातिके शिल्पी, प्रजावर्ग, मन्त्री तथा बालकों और वृद्धोंसहित सारी मथुरापुरी यथोचित रीतिसे उनके स्वागतमें जुटी थी॥ ४॥

नन्दितूर्याण्यवाद्यन्त स्तूयेतां पुरुषर्षभौ।
रथ्यां पताकामालिन्यो भासन्ति स्म समन्ततः॥ ५

हृष्टा प्रमुदिता सर्वा पुरी परमशोभिता।
भ्रात्रोस्तयोरागमने यथैवेन्द्रमहे तथा॥ ६

मुदितास्तत्र गायन्ति राजमार्गेषु गायकाः।
स्तवाशीर्बहुला गाथा यादवानां प्रियंकराः॥ ७

गोविन्दरामौ सम्प्राप्तौ भ्रातरौ लोकविश्रुतौ।
स्वे पुरे निर्भयाः सर्वे क्रीडध्वं यादवाः सुखम्॥ ८

न तत्र कश्चिद् दीनो वा मलिनो वा विचेतनः।
मथुरायामभूत् कश्चिद् रामकृष्णसमागमे॥ ९

वयांसि साधुवाक्यानि प्रहृष्टा गोहयद्विपाः।
नरनारीगणाश्चैव भेजिरे मानसं सुखम्॥ १०

शिवाश्च प्रववुर्वाता विरजस्का दिशो दश।
दैवतान्यपि सर्वाणि हृष्यन्त्यायतनेष्वथ॥ ११

यानि लिङ्गानि लोकस्य वृत्तानीह कृते युगे।
तानि सर्वाण्यदृश्यन्त तयोरागमने तदा॥ १२

ततः काले शिवे पुण्ये स्यन्दनेनारिमर्दनौ।
हरियुक्तेन तौ वीरौ प्रविष्टौ मथुरां पुरीम्॥ १३

प्रविशन्तं पुरीं रम्यां गोविन्दं राममेव च।
अनुजग्मुर्यदुगणाः शक्रं देवगणा इव॥ १४

वसुदेवस्य भवनं पितुस्तौ यदुनन्दनौ।
प्रविष्टौ हृष्टवदनौ चन्द्रादित्याविवाचलम्॥ १५

तत्रायुधानि संन्यस्य गृहे स्वे स्वैरचारिणौ।
मुमुदाते यदुवरौ वसुदेवसुतावुभौ॥ १६

ततस्तु वसुदेवस्य पादौ समभिपीड्य च।
तत्रोग्रसेनं राजानमन्यांश्च यदुपुङ्गवान्॥ १७

यथान्यायं पूजयित्वा तौ सर्वैश्चाभिनन्दितौ।
जग्मतुर्हृष्टमनसौ मातुरेव निवेशनम्॥ १८

आनन्दवर्धक मङ्गल-वाद्य बजने लगे। उन दोनों पुरुषप्रवर वीरोंकी स्तुति होने लगी। सब ओरकी गलियाँ और सड़कें पताकाओंसे अलंकृत हो उत्तम शोभा पाने लगीं॥ ५॥ उन दोनों भाइयोंके आनेसे इन्द्रोत्सवके समान सारी पुरी परम शोभासे सम्पन्न हो हर्षसे खिल उठी। सर्वत्र आनन्द छा गया॥ ६॥ सड़कोंपर आनन्दमग्न हुए गायक यादवोंको प्रिय लगनेवाली आशीर्वादयुक्त गाथाएँ गा रहे थे॥ ७॥ और सर्वत्र यह घोषणा करते थे कि 'यादवो! विश्वविख्यात वीर दोनों भाई श्रीकृष्ण और बलराम अब अपने नगरमें आ गये हैं, अतः सब लोग निर्भय होकर सुखपूर्वक क्रीड़ा करो'॥ ८॥ बलराम और श्रीकृष्णके आ जानेपर उस मथुरापुरीमें कोई भी दीन, मलिन अथवा उदासचित्त नहीं दिखायी देता था॥ ९॥ पक्षी सुमधुर बोली बोलते थे; गौ, घोड़े और हाथी भी बहुत प्रसन्न थे तथा स्त्रियों और पुरुषोंके मनको भी बड़ा ही सुख मिला॥ १०॥ शीतल एवं सुखदायिनी हवाएँ चलने लगीं, दसों दिशाओंकी धूल उड़ गयी और मन्दिरोंमें स्थित सम्पूर्ण देवता भी बड़े प्रसन्न हुए॥ ११॥ सत्ययुग आनेपर इस जगत्‌में जो-जो लक्षण एवं वृत्तान्त घटित होते हैं, वे सब-के-सब श्रीकृष्ण एवं बलरामके आगमनपर प्रत्यक्ष दिखायी देने लगे॥ १२॥ तदनन्तर मङ्गलमय पुण्य-मुहूर्तमें वे दोनों शत्रुमर्दन वीर उस अश्वयुक्त रथके द्वारा मथुरापुरीमें प्रविष्ट हुए॥ १३॥ उस रमणीय पुरीमें प्रवेश करते समय श्रीकृष्ण और बलरामके पीछे समस्त यादव उसी प्रकार चले, जैसे देवता इन्द्रके पीछे चलते हैं॥ १४॥ जैसे चन्द्रमा और सूर्य सुमेरुपर्वतकी गुफामें प्रवेश करते हों, उसी प्रकार वे दोनों यदुनन्दन वीर पिता वसुदेवके घरमें प्रविष्ट हुए। उस समय उन दोनोंके मुखपर प्रसन्नता छा रही थी॥ १५॥ वहाँ अपने घरमें आयुधोंको रखकर वे दोनों यदुकुलतिलक वसुदेवपुत्र स्वेच्छानुसार विचरते हुए आनन्दमग्न रहने लगे॥ १६॥ तदनन्तर वसुदेवजीके दोनों चरणोंको दबाकर राजा उग्रसेन तथा अन्य प्रधान यदुवंशियोंका यथोचित सत्कार करनेके पश्चात् उन सबके द्वारा स्वयं भी अभिनन्दित हो, वे दोनों भाई प्रसन्न मनसे माताके ही महलमें चले गये॥ १७-१८॥

एवं तावेकनिर्माणौ मथुरायां शुभाननौ।
उग्रसेनानुगौ भूत्वा कञ्चित्कालं मुमोदतुः ॥ १९

इस प्रकार एक ही तत्त्वके बने और एक ही उद्देश्यकी सिद्धिके लिये प्रकट हुए वे दोनों श्रीकृष्ण और बलराम राजा उग्रसेनके अनुगामी होकर कुछ कालतक वहाँ सुखसे रहे॥ १९॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे विष्णुपर्वणि रामकृष्णयोर्मथुरां प्रत्यागमने पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४५॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत विष्णुपर्वमें बलराम और श्रीकृष्णका मथुरामें प्रत्यागमनविषयक पैंतालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ४५॥

षट्चत्वारिंशोऽध्यायः

बलरामजीकी व्रजयात्रा तथा उनके द्वारा यमुनाजीका आकर्षण

वैशम्पायन उवाच

कस्यचित् त्वथ कालस्य स्मृत्वा गोपेषु सौहृदम्।
जगामैको व्रजं रामः कृष्णस्यानुमते स्थितः॥ १

स गतस्तत्र रम्याणि ददर्श विपुलानि वै।
भुक्तपूर्वाण्यरण्यानि सरांसि सुरभीणि च॥ २

स प्रविष्टस्तु वेगेन तं व्रजं कृष्णपूर्वजः।
वन्येन रमणीयेन वेषेणालंकृतः प्रभुः॥ ३

स तानभाषत प्रीत्या यथापूर्वमरिंदमः।
गोपांस्तेनैव विधिना यथान्यायं यथावयः॥ ४

तथैव प्राह तान् सर्वांस्तथैव परिहर्षयन्।
तथैव सह गोपीभिर्योजयन् मधुराः कथाः॥ ५

तमूचुः स्थविरा गोपाः प्रियं मधुरभाषिणः।
रामं रमयतां श्रेष्ठं प्रवासात् पुनरागतम्॥ ६

स्वागतं ते महाबाहो यदूनां कुलनन्दन।
अद्य स्म निर्वृतास्तात यत् त्वां पश्यामहे वयम्॥ ७

प्रीताश्चैव वयं वीर यत् त्वं पुनरिहागतः।
विख्यातस्त्रिषु लोकेषु रामः शत्रुभयङ्करः॥ ८

वर्धनीया वयं वीर त्वया यादवनन्दन।
अथवा प्राणिनस्तात रमन्ते जन्मभूमिषु॥ ९

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! कुछ कालके अनन्तर गोपोंके सौहार्दका स्मरण करके श्रीकृष्णकी अनुमति ले बलरामजी अकेले ही व्रजमें गये॥ १॥ वहाँ जाकर उन्होंने बहुत-से बड़े-बड़े सुगन्धित वन तथा सरोवर देखे, जो पहले उनके उपभोगमें आ चुके थे॥ २॥ श्रीकृष्णके पूर्वज बलरामजी बड़े वेगसे उस व्रजमें प्रविष्ट हुए। उस समय वे प्रभावशाली संकर्षण वनवासियोंके योग्य रमणीय वेष-भूषासे अलंकृत थे॥ ३॥ शत्रुदमन बलराम पहलेकी ही भाँति उसी तौर-तरीकेसे अवस्थाकी छोटाई-बड़ाईके अनुसार यथायोग्य सब गोपोंके साथ मिले और प्रेमपूर्वक उनसे बातचीत करने लगे॥ ४॥ उन्होंने पूर्ववत् सबका हर्ष बढ़ाते हुए सबसे उसी तरह बातें कीं तथा गोपियोंके साथ भी पहले-जैसी ही मधुर चर्चाएँ छेड़ दीं॥ ५॥ रमानेवाले (मनको आनन्दित करनेवाले) पुरुषोंमें श्रेष्ठ बलरामजी परदेशमें रहकर फिर लौटे थे और गोपोंके बहुत ही प्रिय थे। अतः मधुरभाषी बड़े-बूढ़े गोपोंने उनसे कहा— ॥ ६॥ 'यदुकुलको आनन्दित करनेवाले महाबाहो! तुम्हारा स्वागत है। तात! आज हम बहुत खुश हैं, क्योंकि हमें दीर्घकालके बाद तुम्हें देखनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ है॥ ७॥ वीर! तुम जो पुनः लौटकर यहाँ आये हो, इससे हम बहुत संतुष्ट हैं। शत्रुओंको भय देनेवाले वीर बलरामकी तीनों लोकोंमें प्रसिद्धि है॥ ८॥ वीर! यादवनन्दन! यहाँ आकर तुमने हमारा गौरव बढ़ाया है, यह तुम्हारे लिये उचित ही है। अथवा तात! अपनी जन्मभूमिमें सभी प्राणियोंको सुख मिलता है'॥ ९॥

त्रिदशानां वयं मान्या ध्रुवमद्यामलानन।
ये स्म दृष्टास्त्वया तात काङ्क्षमाणास्तवागमम्॥ १०

दिष्ट्या ते निहता मल्लाः कंसश्च विनिपातितः।
उग्रसेनोऽभिषिक्तश्च माहात्म्येन जनेन वै॥ ११

समुद्रे च श्रुतोऽस्माभिस्तिमिना सह विग्रहः।
वधः पञ्चजनस्यैव जरासंधेन विग्रहः।
गोमन्ते च श्रुतोऽस्माभिः क्षत्रियैः सह विग्रहः॥ १२

दरदस्य वधश्चैव जरासंधपराजयः।
तत्रायुधावतरणं श्रुतं नः परमाहवे॥ १३

वधश्चैव शृगालस्य करवीरपुरोत्तमे।
तत्सुतस्याभिषेकश्च नागराणां च सान्त्वनम्॥ १४

मथुरायां प्रवेशश्च कीर्तनीयः सुरोत्तमैः।
प्रतिष्ठिता च वसुधा पार्थिवाश्च वशीकृताः॥ १५

तव चागमनं दृष्ट्वा सभाग्याः स्म यथा पुरा।
तेन स्म परितुष्टा वै हृषिताश्च सबान्धवाः॥ १६

प्रत्युवाच ततो रामः सर्वांस्तानभितः स्थितान्।
यादवेष्वपि सर्वेषु भवन्तो मम बान्धवाः॥ १७

इहावयोर्गतं बाल्यमिह चैवावयो रतम्।
भवद्भिर्वर्द्धिताश्चैव यास्यामो विक्रियां कथम्॥ १८

गृहेषु भवतां भुक्तं गावश्च परिरक्षिताः।
अस्माकं बान्धवाः सर्वे भवन्तो बद्धसौहृदाः॥ १९

ब्रुवत्येवं यथातत्त्वं गोपमध्ये हलायुधे।
संहृष्टवदना भूयो बभूवुर्व्रजयोषितः॥ २०

'अमलानन! तुमने जो हम लोगोंपर कृपादृष्टि की है, इससे निश्चय ही अब हम देवताओंके लिये माननीय हो गये। तात! हमलोग प्रतिदिन तुम्हारा शुभागमन चाहते थे॥ १०॥ बड़े सौभाग्यकी बात है कि तुम दोनों भाइयोंके द्वारा वे मल्ल मारे गये, कंस भी मार गिराया गया तथा उग्रसेनका राज्यपर अभिषेक हो गया। उनके महात्मापन (साधुस्वभाव)-के कारण ही सब लोगोंने उनको राज्यपर अभिषिक्त किया है॥ ११॥ हमने यह भी सुना है कि समुद्रमें तिमि (पञ्चजन नामक मगरमच्छ)-के साथ तुम लोगोंका युद्ध हुआ था। उसमें पञ्चजन मारा गया। तत्पश्चात् मथुरामें जरासंधके साथ बड़ा भारी युद्ध हुआ। इतना ही नहीं, हमारे सुननेमें यह भी आया है कि गोमन्तपर्वतके निकट क्षत्रियोंके साथ तुम लोगोंका घोर युद्ध हुआ था॥ १२॥ उस संग्राममें राजा दरदका वध हुआ और जरासंधकी पराजय हुई। सुना था कि उस महायुद्धमें तुम लोगोंके लिये आकाशसे दिव्य आयुध उतर आये थे॥ १३॥ इसके सिवा, उत्तम करवीरपुरमें राजा शृगालका वध करके उसके पुत्रका वहाँ अभिषेक किया और वहाँके नागरिकोंको तुम्हारी ओरसे सान्त्वना दी गयी॥ १४॥ फिर तुमलोगोंका मथुरामें प्रवेश हुआ, जो देवताओंके लिये कीर्तन करने योग्य है। पृथ्वीका भार उतारकर तुमने इसे भलीभाँति प्रतिष्ठित कर दिया और भूमण्डलके सभी नरेशोंको वशमें कर लिया॥ १५॥ तुम्हारा शुभागमन देखकर हम पूर्ववत् सौभाग्यशाली हो गये हैं। हमें सब तरहसे संतोष प्राप्त हुआ है और हम अपने बन्धु-बान्धवोंसहित हर्षसे उत्फुल्ल हो उठे हैं'॥ १६॥ तब बलरामजीने अपने सब ओर खड़े हुए उन समस्त गोपोंसे कहा—'समस्त यादवोंके होते हुए भी आपलोग ही हमारे सगे बान्धव हैं। यहीं हम लोगोंका बचपन बीता, यहीं हम खेले-कूदे और आप लोगोंने ही हमें पाल-पोषकर बड़ा किया; फिर हम आपलोगोंको भुला कैसे सकते हैं॥ १७-१८॥ हमने आपके घरोंमें खाया-पीया और गौएँ चरायीं। आप सब लोग हममें अनुराग रखनेवाले हमारे बन्धु-बान्धव हैं'॥ १९॥ हल धारण करनेवाले बलरामजी जब इस प्रकार यथार्थ बात कह रहे थे, उस समय उनकी बातें सुनकर व्रजसुन्दरियोंके मुखपर पुनः प्रसन्नता छा गयी॥ २०॥

ततो वनान्तरगतो रेमे रामो महाबलः।
एतस्मिन्नन्तरे प्राप्ते रामाय विदितात्मने॥ २१

गोपालैर्देशकालज्ञैरुपानीयत वारुणी।
सोऽपिबत् पाण्डुराभ्राभस्तत्कालं ज्ञातिभिर्वृतः॥ २२

वनान्तरगतो रामः पानं मदसमीरणम्।
उपनिन्युस्ततस्तस्मै वन्यानि विविधानि च॥ २३

प्रत्यग्ररमणीयानि पुष्पाणि च फलानि च।
मेध्यांश्च विविधान् गन्धान् भक्ष्यांश्च हृदयंगमान्।
सद्यो हृतानि पद्मानि विकचान्युत्पलानि च॥ २४

शिरसा चारुकेशेन किञ्चिदावृतमौलिना।
श्रवणैकावलम्बेन कुण्डलेन विराजता॥ २५

चन्दनार्द्रेण पीतेन वनमालावलम्बिना।
विबभावुरसा रामः कैलासेनेव मन्दरः॥ २६

नीले वसानो वसने प्रत्यग्रजलदप्रभे।
रराज वपुषा शुभ्रस्तिमिरौघे यथा शशी॥ २७

लाङ्गलेनावसिक्तेन भुजगाभोगवर्तिना।
तथा भुजाग्रश्लिष्टेन मुसलेन च भास्वता॥ २८

स मत्तो बलिनां श्रेष्ठो रराजाघूर्णिताननः।
शैशिरीषु त्रियामासु यथा स्वेदालसः शशी॥ २९

रामस्तु यमुनामाह स्नातुमिच्छे महानदि।
एहि मामभिगच्छ त्वं रूपिणी सागरंगमे॥ ३०

संकर्षणस्य मत्तोक्तां भारतीं परिभूय सा।
नाभ्यवर्तत तं देशं स्त्रीस्वभावेन मोहिता॥ ३१

ततश्चुक्रोध बलवान् रामो मदसमीरितः।
चकार स हलं हस्ते कर्षणाधोमुखं बली॥ ३२

तस्यामुपरि मेदिन्यां पेतुस्तामरसस्त्रजः।
मुमुचुः पुष्पकोशैश्च वासरेणवरुणं जलम्॥ ३३

स हलेनानताग्रेण कूले गृह्य महानदीम्।
चकर्ष यमुनां रामो व्युत्थितां वनितामिव॥ ३४

तदनन्तर महाबली बलराम वनके भीतर जाकर सुखपूर्वक विचरने लगे। इसी समय उनके मनोभावको जानकर देश-कालके ज्ञाता गोपालगण उनके लिये वारुणी (सुधा या शहद) ले आये। फिर उन बन्धुजनोंसे घिरे हुए गौर-कान्ति बलरामने उस समय उसका पान किया॥ २१-२२॥ वनमें गये हुए बलरामजीने जो मधु पीया था, वह कुछ नशा लानेवाला था; उसके पीनेके बाद ग्वाल-बाल उनके लिये वनके नाना प्रकारके पुष्प और फल ले आये, जो अभी नये (ताजे) होनेके कारण बड़े रमणीय लगते थे। इसके सिवा गोपोंने उनके लिये भाँति-भाँतिकी पवित्र गन्ध तथा मनोरम भक्ष्य पदार्थ प्रस्तुत किये। तुरंतके लाये हुए विकसित कमल और उत्पल भी भेंट किये॥ २३-२४॥ बलरामजीके सिरके बाल बड़े मनोहर थे। उसपर रखा हुआ मुकुट कुछ टेढ़ा था। उनके एक कानमें सुन्दर कुण्डल लटक रहा था, वक्षःस्थल चन्दनके अनुलेपसे आर्द्र एवं पीत था, उसपर वनमाला लटक रही थी। ऐसे वक्षसे बलरामजीकी वैसी ही शोभा होती थी, जैसे कैलास पर्वतसे मन्दराचल सुशोभित होता है॥ २५-२६॥ उन्होंने नूतन जलधरके समान कान्तिवाले दो नीले वस्त्र धारण कर रखे थे और शरीरसे वे गोरे थे; अतः अन्धकारराशिमें चन्द्रमाके समान सुशोभित होते थे॥ २७॥ उनके एक हाथमें सर्प-शरीरके समान हल शोभा पाता था और दूसरेमें प्रकाशमान मुसल॥ २८॥ बलवानोंमें श्रेष्ठ बलरामजी मधुसे मत्त-से हो रहे थे। उनका मुख झूम रहा था। वे ऐसे लगते थे, मानो शरद्की रातोंमें स्वेद-बिन्दुओंसे युक्त अलसाये हुए चन्द्रमा शोभा पाते हों॥ २९॥ उस समय बलरामजीने यमुनासे कहा—'महानदि! मैं स्नान करना चाहता हूँ। सागरगामिनि! मूर्तिमती होकर आओ, चलो मेरे साथ'॥ ३०॥ संकर्षणकी बातको मतवालेकी बहक समझकर नारी-स्वभावसे मोहित हुई उस नदीने उसकी अवहेलना कर दी। वह उनके अभीष्ट स्थानको नहीं गयी॥ ३१॥ तब बलवान् बलराम मदसे प्रेरित हो कुपित हो उठे। उन्होंने यमुनाका कर्षण करनेके लिये हलका मुख नीचेको कर लिया॥ ३२॥ यमुनाको खींचते समय उनके गलेसे जो कमल-पुष्पकी मालाएँ टूटकर पृथ्वीपर गिरीं, वे पुष्प-कोशोंद्वारा सुगन्धित परागसे अरुण रंगका जल छोड़ने लगीं॥ ३३॥ जिसका अग्रभाग कुछ झुका हुआ था, उस हलको यमुनाके तटसे लगाकर स्वेच्छाचारिणी वनिताके समान उस महानदीको अभीष्ट दिशाकी ओर खींचा॥ ३४॥

सा विह्वलजलस्रोता ह्रदप्रस्थितसंचया।
व्यावर्तत नदी भीता हलमार्गानुसारिणी॥ ३५

लाङ्गलादिष्टवर्त्मा सा वेगगा वक्रगामिनी।
संकर्षणभयत्रस्ता योषेवाकुलतां गता॥ ३६

पुलिनश्रोणिबिम्बौष्ठी मृदितैस्तोयताडितैः।
फेनमेखलसूत्रैश्च च्छिन्नैरम्बुदगामिनी॥ ३७

तरङ्गविषमापीडा चक्रवाकोन्मुखस्तनी।
वेगगम्भीरवक्राङ्गी त्रस्तमीनविभूषणा॥ ३८

सितहंसेक्षणापाङ्गी काशक्षौमोच्छ्रिताम्बरा।
तीरजोद्धूतकेशान्ता जलस्खलितगामिनी॥ ३९

लाङ्गलोल्लिखितापाङ्गी क्षुभिता सागरंगमा।
मत्तेव कुटिला नारी राजमार्गेण गच्छती॥ ४०

कृष्यते सातिवेगेन स्रोतःस्खलितगामिनी।
उन्मार्गानीतमार्गा सा येन वृन्दावनं वनम्॥ ४१

वृन्दावनस्य मध्येन सा नीता यमुना नदी।
रोरूयमाणेव खगैरन्विता तोयवासिभिः॥ ४२

सा यदा समतिक्रान्ता नदी वृन्दावनं वनम्।
तदा स्त्रीरूपिणी भूत्वा यमुना राममब्रवीत्॥ ४३

प्रसीद नाथ भीतास्मि प्रतिलोमेन कर्मणा।
विपरीतमिदं रूपं तोयं च मम जायते॥ ४४

असत्यहं नदीमध्ये रौहिणेय त्वया कृता।
कर्षणेन महाबाहो स्वमार्गव्यभिचारिणी॥ ४५

प्राप्तां मां सागरे पूर्वं सपत्न्यो वेगगर्विताः।
फेनहासैर्हसिष्यन्ति तोयव्यावृत्तगामिनीम्॥ ४६

उसका जलस्रोत क्षुब्ध हो उठा। कुण्डोंमें जो अगाध जलराशिका संचय था, वह वहाँसे निकलने लगा और वह नदी भयभीत-सी होकर हलके बनाये हुए मार्गसे चलने लगी॥ ३५॥ हलकी रेखा ही उसे गन्तव्य मार्गका आदेश दे रही थी। सीधे मार्गपर वेगसे बहनेवाली वह नदी टेढ़े रास्तेपर मन्थर गतिसे चलने लगी। वह संकर्षणके भयसे त्रस्त हुई किसी युवतीकी भाँति व्याकुल हो उठी थी॥ ३६॥ दोनों किनारे ही उसके नितम्ब थे, रक्तकमलोंका समूह ही उसके अरुण अधरोंका प्रतीक था। फेन ही उसके मेखलासूत्र थे, जो जलसे ताडित और मर्दित होकर छिन्न-भिन्न हो गये थे; वह नदीरूपिणी युवती समुद्ररूपी प्रियतमके साथ समागम करनेवाली थी॥ ३७॥ उसके तरङ्गरूपी शिरोभूषण ऊँचे-नीचे हो रहे थे, चक्रवाकरूपी स्तन ऊँचे उठे हुए थे, उसके गम्भीर अंग वेगके कारण वक्र हो रहे थे, वह त्रस्त मीनरूपी आभूषणोंसे विभूषित थी॥ ३८॥ श्वेत हंस उसके नेत्र और अपाङ्ग* थे, काश-पुष्प उसके फहराते हुए रेशमी वस्त्र थे, तटवर्ती पौधे या वृक्ष उसके केश थे तथा जलका प्रवाह ही उसकी स्खलित गतिका प्रतीक था॥ ३९॥ उसके नेत्र-प्रान्त मानो हलकी नोकसे छिल गये थे, वह सागरगामिनी क्षुब्ध हो उठी थी, वह कुटिला एवं मतवाली स्त्रीके समान खुली सड़कपर चल रही थी॥ ४०॥ ऊँचे-नीचे प्रवाह ही उसकी स्खलित गतिके सूचक थे। वह उस विपरीत मार्गपर लायी गयी थी, जिस ओर वृन्दावन सुशोभित होता था॥ ४१॥ यमुना नदी वृन्दावनके बीचसे लायी गयी थी। जलमें निवास करनेवाले पक्षी उसके साथ-साथ बोलते हुए आ रहे थे। उन पक्षियोंके शब्दोंमें मानो वह नदी ही जोर-जोरसे रो रही थी॥ ४२॥ वह नदी जब वृन्दावनको लाँघ गयी, तब स्त्रीरूपमें प्रकट हो बलरामजीसे बोली—॥ ४३॥ 'नाथ! प्रसन्न होइये। मैं आपके इस विपरीत कर्मसे बहुत डर गयी हूँ। मेरा यह रूप और जल विपरीत हो गया है॥ ४४॥ रोहिणीनन्दन! महाबाहो! आपने इस तरह मुझे खींचकर नदियोंके बीचमें 'असती' बना दिया। मुझे मेरे मार्गसे भ्रष्ट कर दिया॥ ४५॥ जब मैं समुद्रके निकट जाऊँगी, उस समय मेरी सौतें वेगसे गर्वित होकर अपने फेनरूपी हासोंद्वारा मेरी हँसी उड़ायेंगी, मुझे जलके द्वारा विपरीतगामिनी बतायेंगी॥ ४६॥

* नेत्रके अन्तभाग।

प्रसादं कुरु मे वीर याचे त्वां कृष्णपूर्वज।
सुप्रसन्नमना नित्यं भव त्वं सुरसत्तम॥ ४७
कर्षणायुधकृष्टास्मि रोषोऽयं विनिवर्त्यताम्।
मूर्ध्ना गच्छामि चरणौ तवैषा लाङ्गलायुध।
मार्गमादिष्टमिच्छामि क्व गच्छामि महाभुज॥ ४८

वैशम्पायन उवाच

प्रणयावनतां दृष्ट्वा यमुनां लाङ्गलायुधः।
प्रत्युवाचार्णववधूं मदक्लान्त इदं वचः॥ ४९
लाङ्गलादिष्टमार्गा त्वमिमं मे प्रियदर्शने।
देशमम्बुप्रदानेन प्लावयस्वाखिलं शुभे॥ ५०
एष ते सुभ्रु संदेशः कथितः सागरंगमे।
शान्तिं व्रज महाभागे गम्यतां च यथासुखम्॥ ५१
यावत् स्थास्यति लोकोऽयं तावत् तिष्ठतु मे यशः।
यमुनाकर्षणं दृष्ट्वा सर्वे ते व्रजवासिनः॥ ५२
साधु साध्विति रामाय प्रणामं चक्रिरे तदा।
तां विसृज्य महाभागां तांश्च सर्वान् व्रजौकसः॥ ५३
ततः संचिन्त्य मनसा रामः प्रहरतां वरः।
पुनः प्रतिजगामाशु मथुरां रोहिणीसुतः॥ ५४
स गत्वा मथुरां रामो भवने मधुसूदनम्।
परिवर्तमानं ददृशे पृथिव्याः सारमव्ययम्॥ ५५
तथैवाध्वन्यवेषेण सोपश्लिष्टो जनार्दनम्।
प्रत्यग्रवनमालेन वक्षसाभिविराजता॥ ५६
स दृष्ट्वा तूर्णमायान्तं रामं लाङ्गलधारिणम्।
सहसोत्थाय गोविन्दो ददावासनमुत्तमम्॥ ५७
उपविष्टं तदा रामं पप्रच्छ कुशलं व्रजे।
बान्धवेषु च सर्वेषु गोषु चैव जनार्दनः॥ ५८
प्रत्युवाच ततो रामो भ्रातरं साधुभाषिणम्।
सर्वत्र कुशलं कृष्ण येषां कुशलमिच्छसि॥ ५९
ततस्तयोर्विचित्रार्थाः पौराण्यश्चाभवन् कथाः।
वसुदेवाग्रतः पुण्या रामकेशवयोस्तदा॥ ६०

'श्रीकृष्णके बड़े भैया वीर सुरश्रेष्ठ! आप मुझपर कृपा करें। मैं आपसे याचना करती हूँ, आप मुझपर सदा प्रसन्नचित्त रहें॥ ४७॥ हलायुध! मैं आपके कर्षणायुध (हल)-से यहाँतक खींच लायी गयी हूँ। आप अपने इस रोषको लौटा लें। मैं आपके चरणोंमें मस्तक रखती हूँ। महाबाहो! मुझे राह बताइये, मैं कहाँ जाऊँ?'॥ ४८॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! समुद्र-पत्नी यमुनाको प्रेमसे नतमस्तक हुई देख मधुके मदसे क्लान्त हुए बलरामजीने यह बात कही॥ ४९॥ 'शुभे! प्रियदर्शने! मैंने हलके द्वारा तुम्हारे जानेके लिये मार्ग बता दिया है, तुम इस सारे प्रदेशको अपना जल देकर आप्लावित कर दो॥ ५०॥ सुभ्रु! सागरगामिनी महाभागे! यह तुम्हारे लिये सन्देश कहा गया है। शान्ति धारण करो और जहाँ तुम्हारी मौज हो चली जाओ। जबतक यह संसार रहेगा, तबतक मेरा यह सुयश भी बना रहेगा' यमुनाजीका आकर्षण हुआ देख समस्त व्रजवासियोंने उस समय साधु! साधु!! (वाह-वाह) कहकर बल-रामजीको प्रणाम किया। महाभागा यमुना तथा उन समस्त व्रजवासियोंको विदा करके प्रहार करनेवालोंमें श्रेष्ठ रोहिणीपुत्र बलरामजीने मन-ही-मन कुछ सोचकर पुनः शीघ्र ही मथुराको प्रस्थान किया॥ ५१—५४॥ मथुरा पहुँचकर बलरामने पृथ्वीके सारभूत अविनाशी मधु-सूदनको भवनके भीतर शय्यापर करवट बदलते देखा॥ ५५॥ तब उसी राहगीरके वेषमें बलरामने नूतन वन-मालासे विभूषित सुन्दर वक्षःस्थलद्वारा भगवान् जनार्दनका आलिङ्गन किया॥ ५६॥ लाङ्गलधारी बलरामको शीघ्रतापूर्वक आते देख गोविन्दने सहसा उठकर उनके लिये उत्तम आसन दिया॥ ५७॥ जब बलरामजी बैठ गये, तब श्रीकृष्णने उनसे व्रजकी कुशल पूछी। समस्त बान्धवों तथा गौओंके विषयमें भी जिज्ञासा की॥ ५८॥ तब बलरामने उत्तम भाषण करनेवाले भाई श्रीकृष्णको इस प्रकार उत्तर दिया— 'श्रीकृष्ण! तुम जिनकी कुशल चाहते हो, उनकी सर्वत्र कुशल है'॥ ५९॥ तदनन्तर वसुदेवजीके आगे बलराम और श्रीकृष्णकी विचित्र अर्थसे युक्त पवित्र एवं पुरातन कथाएँ होने लगीं॥ ६०॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे विष्णुपर्वणि यमुनाकर्षणे षट्चत्वारिंशोऽध्यायः॥ ४६॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत विष्णुपर्वमें बलरामजीके द्वारा यमुनाजीका आकर्षणविषयक छियालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ४६॥

सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः

श्रीकृष्णका यादवोंके साथ रुक्मिणी-स्वयंवरके अवसरपर कुण्डिनपुरमें जाना तथा राजा कैशिकद्वारा उनका सत्कार

वैशम्पायन उवाच

एतस्मिन्नन्तरे प्राप्ता लोकप्रावृत्तिका नराः।
चक्रायुधगृहं सर्वे लोकपालगृहोपमम्॥ १
तेष्वात्ययिकशंसीषु लोकप्रावृत्तिकेष्विह।
कृतसंज्ञा यदुश्रेष्ठाः समेताः कृष्णसंसदि॥ २
समागतेषु सर्वेषु यदुमुख्येषु संसदि।
प्रावृत्तिका नराः प्राहुः पार्थिवात्ययिकं वचः॥ ३
जनार्दन नरेन्द्राणां पार्थिवानां समागमः।
भविष्यति क्षितीशानां समूढानामनेकशः॥ ४
त्वरितास्तत्र गच्छन्ति नानाजनपदेश्वराः।
कुण्डिने पुण्डरीकाक्ष भोजपुत्रस्य शासनात्॥ ५
प्रकाशं स्म कथास्तत्र श्रूयन्ते मनुजेरिताः।
रुक्मिणी किल नामास्ति रुक्मिणः प्रथमा स्वसा॥ ६
भावी स्वयंवरस्तत्र तस्याः किल जनार्दन।
इत्यर्थमेते सबला गच्छन्ति मनुजाधिपाः॥ ७
तस्यास्त्रैलोक्यसुन्दर्यास्तृतीयेऽहनि यादव।
रुक्मभूषणभूषिण्या भविष्यति स्वयंवरः॥ ८
राज्ञां तत्र समेतानां हस्त्यश्वरथगामिनाम्।
द्रक्ष्यामः शतशस्तत्र शिबिराणि महात्मनाम्॥ ९
सिंहशार्दूलदृप्तानां मत्तद्विरदगामिनाम्।
सदा युद्धप्रियाणां हि परस्परममर्षिणाम्॥ १०
जयाय शीघ्रं सहिता बलौघेन समन्विताः।
निरुद्धाः पृथिवीपालाः किमेकान्तचरा वयम्।
निरुत्साहा भविष्यामो गच्छामो यदुनन्दन॥ ११
श्रुत्वैतत् केशवो वाक्यं हृदि शल्यमिवार्पितम्।
निर्जगाम यदुश्रेष्ठो यदूनां सहितो बलैः॥ १२

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! इसी बीचमें जगत्में होनेवाली प्रवृत्तियों अथवा घटनाओंकी सूचना देनेवाले सब लोग मथुरामें आये और लोकपालोंके भवनकी भाँति शोभा पानेवाले चक्रधारी श्रीकृष्णके गृहमें एकत्र हुए॥ १॥ वे लोग विनाशकारी युद्धका समाचार बताना चाहते थे। उनके आ जानेपर आपसका संकेत पाकर समस्त श्रेष्ठ यादव श्रीकृष्णकी सभामें जुट गये॥ २॥ समस्त प्रधान यादवोंके उस सभामें आ जानेपर वे समाचार या सन्देश लानेवाले मनुष्य राजाओंके विनाशका कारणभूत वचन इस प्रकार बोले—॥ ३॥ 'जनार्दन! अनेक देशोंके विवाहार्थी पृथ्वीपतियों, शासकों एवं नरेशोंका समागम होनेवाला है॥ ४॥ कमलनयन! भोजपुत्र रुक्मीका निमन्त्रण पाकर अनेक जनपदोंके राजा बड़ी उतावलीके साथ वहाँ कुण्डिनपुरमें जा रहे हैं॥ ५॥ जनार्दन! वहाँ लोगोंके मुँहसे यह बात स्पष्टरूपसे सुनी जाती है कि रुक्मीकी जो बहन है, जिसका नाम रुक्मिणी है, उसका वहाँ स्वयंवर होनेवाला है। इसीलिये ये नरेशगण सेनाओं-सहित वहाँ पधार रहे हैं॥ ६-७॥ यदुनन्दन! आजसे तीसरे दिन सुवर्णमय आभूषणोंसे विभूषित रहनेवाली उस त्रिलोकसुन्दरी रुक्मिणीका स्वयंवर होगा॥ ८॥ हाथी, घोड़े और रथसे यात्रा करके वहाँ एकत्र हुए महामनस्वी नरेशोंके सैकड़ों शिबिर हमें वहाँ देखनेको मिलेंगे॥ ९॥ जो सिंह और बाघके समान अपने बलके घमण्डमें भरे रहते हैं, मतवाले हाथियोंके समान चलते हैं, सदा युद्धसे ही प्रेम रखते हैं और आपसमें एक-दूसरेके प्रति अमर्षसे भरे रहते हैं, ऐसे नरेशोंपर शीघ्र विजय पानेके लिये बहुत-से भूपाल अपने सैन्यसमूहके साथ संगठित होकर यहाँ रुक्मिणीको पानेकी इच्छासे रुके हुए हैं। यदुनन्दन! क्या हमलोग एकान्तमें रहनेवाले कोल-भील हैं, जो ऐसे अवसरपर उत्साहहीन हो बैठे रहेंगे, हम भी अवश्य उत्साहपूर्वक वहाँ चलेंगे'॥ १०-११॥ यह समाचार सुनकर श्रीकृष्णको ऐसा लगा, जैसे उनके हृदयमें किसीने काँटा-सा चुभो दिया हो। वे यदुश्रेष्ठ गोविन्द यदुवंशियोंकी सेनाके साथ नगरसे बाहर निकले॥ १२॥

यादवास्ते बलोदग्राः सर्वे संग्रामलालसाः।
निर्ययुः स्यन्दनवरैर्गर्वितास्त्रिदशा इव॥ १३

बलाग्रेण नियुक्तेन हरिरीशानसम्मतः।
चक्रोद्यतकरः कृष्णो गदापाणिर्व्यरोचत॥ १४

यादवाश्चापरे तत्र वासुदेवानुयायिनः।
रथैरादित्यसंकाशैः किङ्किणीप्रतिनादितैः॥ १५

उग्रसेनं तु गोविन्दः प्राह निश्चितदर्शनः।
तिष्ठ त्वं नृपशार्दूल भ्रात्रा मे सहितोऽनघ॥ १६

क्षत्रिया निकृतिप्रज्ञाः शास्त्रनिश्चितदर्शनाः।
पुरीं शून्यामिमं वीर जघन्येऽभिपतन्ति ह॥ १७

अस्माकं शङ्किताः सर्वे जरासंधवशानुगाः।
मोदन्ते सुखिनस्तत्र देवलोके यथामराः॥ १८

वैशम्पायन उवाच

तस्य तद् वचनं श्रुत्वा भोजराजो महायशाः।
कृष्णस्नेहेन विकृतं बभाषे वचनामृतम्॥ १९
कृष्ण कृष्ण महाबाहो यदूनां नन्दिवर्द्धन।
श्रूयतां यदहं त्वद्य वक्ष्यामि रिपुसूदन॥ २०
त्वया विहीनाः सर्वे स्म न शक्ताः सुखमासितुम्।
पुरेऽस्मिन् विषयान्ते वा पतिहीना इव स्त्रियः॥ २१
त्वत्सनाथा वयं तात त्वद्बाहुबलमाश्रिताः।
बिभीमो न नरेन्द्राणां सेन्द्राणामपि मानद॥ २२
विजयाय यदुश्रेष्ठ यत्र तत्र गमिष्यसि।
तत्र त्वं सहितोऽस्माभिर्गच्छेथा यादवर्षभ॥ २३
तस्य राज्ञो वचः श्रुत्वा सस्मितं देवकीसुतः।
यथेष्टं भवतामद्य तथा कर्तास्म्यसंशयम्॥ २४

वैशम्पायन उवाच

एवमुक्त्वा तु वै कृष्णो जगामाशु रथेन वै।
भीष्मकस्य गृहं प्राप्तो लोहितायति भास्करे॥ २५

वे समस्त यादव, जो बलमें बढ़े-चढ़े थे और संग्रामकी लालसा रखते थे, श्रेष्ठ रथोंद्वारा यात्राके लिये निकले। उस समय वे गर्वीले देवताओंके समान जान पड़ते थे॥ १३॥ अपनी आज्ञाके अनुसार चलनेवाली श्रेष्ठ सेनाके साथ यात्राके लिये उद्यत हुए भगवान् श्रीकृष्ण, जो शिवजीके परम प्रिय हैं, एक हाथमें चक्र और दूसरेमें गदा लिये बड़ी शोभा पा रहे थे॥ १४॥ दूसरे यादव भी सूर्यके समान तेजस्वी तथा छोटी-छोटी घण्टियोंके नादसे निनादित रथोंद्वारा भगवान् वासुदेवके पीछे-पीछे वहाँ जानेको उद्यत हुए॥ १५॥ उस समय निश्चित दृष्टि रखनेवाले भगवान् गोविन्दने राजा उग्रसेनसे कहा—'अनघ! नृपश्रेष्ठ! आप मेरे बड़े भाई बलरामजीके साथ यहीं रहिये॥ १६॥ वीर! प्रायः क्षत्रिय छल-कपटमें चतुर होते हैं, उनकी दृष्टि राजनीतितक ही सीमित रहती है। कहीं ऐसा न हो कि वे मेरे जानेके पश्चात् इस पुरीको सूनी समझकर इसपर आक्रमण कर दें॥ १७॥ हमसे शङ्कित हो वे सब-के-सब जरासंधके वशवर्ती हो गये हैं और देवताओंकी भाँति वे जरासंधके यहाँ बड़े सुख और आनन्दसे रहते हैं'॥ १८॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! श्रीकृष्णकी वह बात सुनकर महायशस्वी भोजराज उग्रसेन उनके स्नेहसे गद्गद हुई अमृतमयी वाणीमें बोले॥ १९॥ 'कृष्ण! कृष्ण!! महाबाहो!!! तुम यादवोंका आनन्द बढ़ानेवाले हो। शत्रुसूदन! इस समय मैं तुमसे जो कुछ कहता हूँ, उसको सुनो॥ २०॥ तुम्हारे बिना हम सब लोग इस नगर या राज्यमें सुखसे नहीं रह सकते, ठीक उसी तरह जैसे पतिहीन स्त्रियाँ कहीं भी सुखसे नहीं रह पाती हैं॥ २१॥ दूसरोंको मान देनेवाले तात! तुमसे ही हमलोग सनाथ हैं। तुम्हारे बाहुबलका आश्रय लेकर हम नरेन्द्रोंकी तो बात ही क्या है? देवेन्द्रसहित देवताओंसे भी नहीं डरते हैं॥ २२॥ यदुश्रेष्ठ! यादवप्रवर! तुम विजयके लिये जहाँ-जहाँ भी जाओ, वहाँ हम लोगोंके साथ ही चलो'॥ २३॥ राजा उग्रसेनकी यह बात सुनकर देवकीनन्दन श्रीकृष्ण मुस्कुराते हुए बोले—'महाराज! आप लोगोंकी जैसी इच्छा होगी, वैसा ही मैं करूँगा, इसमें संशय नहीं है'॥ २४॥

वैशम्पायनजी कहते हैं— जनमेजय! ऐसा कहकर श्रीकृष्ण शीघ्र ही रथसे चल दिये और सूर्यका रंग लाल होते राजा भीष्मकके घरपर जा पहुँचे॥ २५॥

प्राप्ते राजसमाजे तु शिबिराकीर्णभूतले।
रङ्गं सुविपुलं दृष्ट्वा राजसीं तनुमाविशत्॥ २६

वित्रासनार्थं भूपानां प्रकाशार्थं पुरातनम्।
मनसा चिन्तयामास वैनतेयं महाबलम्॥ २७

ततश्चिन्तितमात्रस्तु विदित्वा विनतात्मजः।
सुखलक्ष्यं वपुः कृत्वा निलिल्ये केशवान्तिके॥ २८

तस्य पक्षनिपातेन पवनोद्भ्रान्तकारिणा।
कम्पिता मनुजाः सर्वे न्युब्जाश्च पतिता भुवि॥ २९

गरुडाभिहताः सर्वे प्रचेष्टन्तो यथोरगाः।
तान् संनिपतितान् दृष्ट्वा कृष्णो गिरिरिवाचलः॥ ३०

स तदा पक्षवातेन मेने पतगसत्तमम्।
ददर्श गरुडं प्राप्तं दिव्यस्रगनुलेपनम्॥ ३१

पक्षवातेन पृथिवीं चालयन्तं मुहुर्मुहुः।
पृष्ठासक्तैः प्रहरणैर्लेलिह्यन्तमिवोरगैः॥ ३२

वैष्णवं हस्तसंश्लेषं मन्यमानमवाङ्मुखम्।
चरणाभ्यां प्रकर्षन्तं पाण्डुरं भोगिनां वरम्॥ ३३

हेमपत्रैरुपचितं धातुमन्तमिवाचलम्।
अमृतारम्भहर्तारं द्विजिह्वेन्द्रविनाशनम्॥ ३४

त्रासनं दैत्यसंघानां वाहनं ध्वजलक्षणम्।
तं दृष्ट्वा स ध्वजं प्राप्तं सचिवं साम्परायिकम्॥ ३५

धृतिमन्तं गरुत्मन्तं जगाद मधुसूदनः।
दृष्ट्वा परमसंहृष्टः स्थितं देवमिवापरम्।
तुल्यसामर्थ्यया वाचा गरुत्मन्तमवस्थितम्॥ ३६

राजाओंका समाज आ चुका था। उनके शिबिरोंसे कुण्डिनपुरके आस-पासका भूभाग आच्छादित हो गया था। स्वयंवरका रङ्गस्थल भी बहुत विस्तृत था। उसे देखकर भगवान् श्रीकृष्णने राजस प्रकृतिका आश्रय लिया॥ २६॥ उन्होंने राजाओंको डराने और अपने प्रभावको प्रकाशित करनेके लिये पुरातन वाहन महाबली विनता-नन्दन गरुड़का मन-ही-मन चिन्तन किया॥ २७॥ उनके चिन्तन करनेमात्रसे ही उनके मनोभावको जानकर विनता-कुमार गरुड़ सुखपूर्वक देखने योग्य सौम्य शरीर धारण करके श्रीकृष्णके पास छिपे हुए आये॥ २८॥ उनका पंखसंचालन वायुको भी उद्भ्रान्त कर देनेवाला था। इसकी हवा लगनेसे वहाँके सारे मनुष्य काँप उठे और औंधे होकर पृथ्वीपर गिर पड़े॥ २९॥ गरुड़के वेगसे आहत होकर पृथ्वीपर गिरे हुए वे सारे मनुष्य सर्पोंके समान छटपटाने लगे। उन सबको गिरा हुआ देख पर्वतके समान अविचल भावसे खड़े हुए श्रीकृष्णने उस समय पंखकी हवासे ही अनुमान कर लिया कि पक्षियोंमें श्रेष्ठ गरुड़ आ गये। (फिर उन्होंने मन-ही-मन उनका आदर किया) थोड़ी देरमें ही उन्होंने देखा, गरुड़ आ पहुँचे। वे दिव्य पुष्पोंके हार और दिव्य चन्दनसे अलंकृत थे। वे अपने पंखोंके संचालनसे उठी हुई वायुके द्वारा पृथ्वीको भी बारम्बार हिला देते थे। उनके पृष्ठभागमें कुछ दिव्य आयुध सटे हुए थे, जिनसे ऐसा जान पड़ता था कि कुछ सर्प उन्हें चाट रहे हैं। वे मुँह नीचे किये मन-ही-मन अनुभव कर रहे थे कि मुझे भगवान् विष्णुके वरद हस्तका स्पर्श प्राप्त हो रहा है। गरुड़ अपने दोनों पंजोंसे एक विशाल सर्पको खींचे चले आ रहे थे, जिसका रंग श्वेत था। वे सुवर्णमय पंखोंसे सम्पन्न होनेके कारण विविध धातुओंसे युक्त पर्वतके समान प्रतीत होते थे। ये वे ही गरुड़ थे, जिन्होंने एक बार अमृतका अपहरण कर लिया था। वे बड़े-बड़े सर्पराजोंका विनाश करनेमें समर्थ, दैत्यसमूहोंको भयभीत करनेवाले तथा भगवान् विष्णुके ध्वजचिह्न एवं वाहन थे। अपने ध्वज, सचिव तथा संकटकालके साथी धैर्यवान् गरुड़को आया देख भगवान् मधुसूदनको बड़ा हर्ष हुआ। वे दूसरे देवताकी भाँति सामने खड़े थे। इस प्रकार सम्मुख उपस्थित हुए गरुड़से अपने समान शक्तिशालिनी वाणीद्वारा मधुसूदनने इस प्रकार कहा॥ ३०—३६॥

श्रीकृष्ण उवाच

स्वागतं खेचरश्रेष्ठ सुरसेनारिमर्दन।
विनताहृदयानन्द स्वागतं केशवप्रिय॥ ३७
व्रज पत्ररथश्रेष्ठ कैशिकस्य निवेशनम्।
वयं तत्रैव गत्वाद्य प्रतीक्षाम स्वयंवरम्॥ ३८
राज्ञां तत्र समेतानां हस्त्यश्वरथगामिनाम्।
द्रक्ष्यामः शतशस्तत्र समेतानां महात्मनाम्॥ ३९
एवमुक्त्वा महाबाहुर्वैनतेयं महाबलम्।
जगामाथ पुरीं कृष्णः कैशिकस्य महात्मनः॥ ४०
वैनतेयसखः श्रीमान् यादवैश्च महारथैः।
विदर्भनगरीं प्राप्ते कृष्णे देवकिनन्दने॥ ४१
हृष्टाः प्रमुदिताः सर्वे निवासायोपचक्रमुः।
सर्वे शस्त्रायुधधरा राजानो बलशालिनः॥ ४२

वैशम्पायन उवाच

एतस्मिन्नेव काले तु राजा नयविशारदः।
कैशिकस्तत उत्थाय प्रहृष्टेनान्तरात्मना॥ ४३

अर्घ्यमाचमनं दत्त्वा स राजा कैशिकः स्वयम्।
सत्कृत्य विधिवत् कृष्णं स्वपुरं सम्प्रवेशयत्॥ ४४

पूर्वमेव तु कृष्णाय कारितं दिव्यमन्दिरम्।
विवेश सबलः श्रीमान् कैलासं शंकरो यथा॥ ४५

खाद्यपानादिरत्नौघैरर्चितो वासवानुजः।
सुखेन उषितः कृष्णस्तस्य राज्ञो निवेशने।
पूजितो बहुमानेन स्नेहपूर्णेन चेतसा॥ ४६

श्रीकृष्ण बोले—आकाशचारियोंमें श्रेष्ठ गरुड़! तुम्हारा स्वागत है। देवसेनाके शत्रुओंका मर्दन करनेवाले केशवप्रिय विनतानन्दन! तुम्हारा स्वागत है॥ ३७॥ पंख ही जिनका रथ है, उन पक्षियोंमें सबसे श्रेष्ठ गरुड़! तुम राजा कैशिकके* भवनमें चलो। हम आज वहीं चलकर स्वयंवरकी प्रतीक्षा करें॥ ३८॥ वहाँ हाथी, घोड़े और रथोंद्वारा यात्रा करनेवाले सैकड़ों महामनस्वी नरेश एकत्र हुए हैं, जिनका दर्शन प्राप्त होगा॥ ३९॥ महाबली विनतानन्दन गरुड़से ऐसा कहकर महाबाहु श्रीमान् कृष्ण गरुड़ तथा महारथी यादवोंके साथ महामना कैशिककी राजधानी कुण्डिनपुरमें गये। देवकीनन्दन श्रीकृष्णके विदर्भनगरमें पहुँच जानेपर उनके साथके सब लोग बड़े प्रसन्न हुए। सबके मनमें बड़ा हर्ष हुआ। वे समस्त बलशाली तथा अस्त्र-शस्त्रधारी राजपूत वहाँ ठहरनेकी तैयारी करने लगे॥ ४०—४२॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! इसी समय नीतिविशारद राजा कैशिक प्रसन्नचित्तसे उठकर स्वयं ही श्रीकृष्णके पास गये और उन्हें अर्घ्य, आचमन आदि देकर विधिपूर्वक सत्कार करके अपने नगरमें ले आये॥ ४३-४४॥ उन्होंने श्रीकृष्णके लिये पहले ही एक दिव्य भवनका निर्माण करा रखा था। जैसे भगवान् शंकर कैलासधाममें जाते हैं, उसी प्रकार श्रीमान् कृष्णने अपनी सेनाके साथ कैशिकके उस भवनमें प्रवेश किया॥ ४५॥ इन्द्रके छोटे भाई श्रीकृष्ण उस राजमहलमें खान-पान आदिसे एवं रत्न-राशियोंद्वारा भलीभाँति पूजित हो सुखपूर्वक रहने लगे। राजा कैशिकने बड़े ही सम्मानके साथ स्नेहपूर्ण हृदयसे उनका पूजन किया था॥ ४६॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे विष्णुपर्वणि रुक्मिणीस्वयंवरे सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः॥ ४७॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत विष्णुपर्वमें रुक्मिणीस्वयंवरविषयक सैंतालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ४७॥

---

* ये राजा कैशिक विदर्भराज भीष्मकके पिता तथा रुक्मीके पितामह थे।

अष्टचत्वारिंशोऽध्यायः

श्रीकृष्णके आगमनसे चिन्तित हुए राजाओंकी सभामें जरासंध और सुनीथका भाषण

वैशम्पायन उवाच

ते कृष्णमागतं दृष्ट्वा वैनतेयसहाच्युतम्।
बभूवुश्चिन्तयाविष्टाः सर्वे नृपतिसत्तमाः॥ १

ते समेत्य सभां राजन् राजानो भीमविक्रमाः।
मन्त्राय मन्त्रकुशला नीतिशास्त्रार्थवित्तमाः॥ २

भीष्मकस्य सभां गत्वा रम्यां हेमपरिष्कृताम्।
सिंहासनेषु चित्रेषु विचित्रास्तरणेषु च।
निषेदुस्ते नृपवरा देवा देवसभामिव॥ ३

तेषां मध्ये महाबाहुर्जरासंधो महाबलः।
बभाषे स महातेजा देवान् देवेश्वरो यथा॥ ४

जरासंध उवाच

श्रूयतां भो नृपश्रेष्ठा भीष्मकश्च महामतिः।
कथ्यमानं मया बुद्ध्या वचनं वदतां वराः॥ ५

योऽसौ कृष्ण इति ख्यातो वसुदेवसुतो बली।
वैनतेयसहायेन सम्प्राप्तः कुण्डिनं त्विह॥ ६

कन्याहेतोर्महातेजा यादवैरभिसंवृतः।
अवश्यं कुरुते यत्नं कन्यावाप्तिर्यथा भवेत्॥ ७

यदत्र कारणं कार्यं सुनयोपेतमृद्धितम्।
कुरुध्वं नृपशार्दूला विनिश्चित्य बलाबलम्॥ ८

पदातिनौ महावीर्यौ वसुदेवसुतावुभौ।
वैनतेयं विना तस्मिन् गोमन्ते पर्वतोत्तमे।
कृतवन्तौ महाघोरं भवद्भिर्विदितं हि तत्॥ ९

वृष्णिभिर्यादवैश्चैव भोजान्धकमहारथैः।
समेत्य युद्ध्यमानस्य कीदृशो विग्रहो भवेत्॥ १०

कन्यार्थे यततानेन गरुडस्थेन विष्णुना।
कः स्थास्यति रणे तस्मिन्नपि शक्रः सुरैः सह॥ ११

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! अपनी महिमासे कभी च्युत न होनेवाले श्रीकृष्णको गरुड़के साथ आया देख सभी श्रेष्ठ नरपति चिन्तामग्न हो गये॥ १॥ राजन्! वे भयानक पराक्रमी राजा नीतिशास्त्रके भी अच्छे ज्ञाता तथा मन्त्रणा करनेमें कुशल थे। उन्होंने परस्पर मन्त्रणा करनेके लिये एक सभामें एकत्र होनेका विचार किया॥ २॥ फिर जैसे देवता देवसभामें विराजमान होते हैं, उसी प्रकार वे श्रेष्ठ नरेशगण राजा भीष्मककी सुवर्णभूषित रमणीय सभामें जाकर विचित्र बिछौनोंसे युक्त भाँति-भाँतिके सिंहासनोंपर बैठे॥ ३॥ उनके बीचमें महाबली, महातेजस्वी और महाबाहु जरासंधने उसी तरह भाषण देना आरम्भ किया, जैसे देवराज इन्द्र देवताओंके समक्ष प्रवचन करते हैं॥ ४॥

जरासंध बोला—इस सभामें उपस्थित हुए वक्ताओंमें श्रेष्ठ नरेशो! मैं यहाँ अपनी बुद्धिके अनुसार जो कुछ कह रहा हूँ, उसे आपलोग तथा परम बुद्धिमान् राजा भीष्मक भी सुनें॥ ५॥ वे जो कृष्ण नामसे विख्यात बलवान् वसुदेवपुत्र इस कुण्डिनपुरमें गरुड़के साथ पधारे हैं, बड़े तेजस्वी हैं। यहाँकी राजकन्याको प्राप्त करनेके लिये ही वे यादवोंसे घिरे हुए यहाँतक आये हैं। जिस तरह भी कन्याकी प्राप्ति हो सके वैसा ही प्रयत्न वे अवश्य करेंगे॥ ६-७॥ श्रेष्ठ नरपतियो! यहाँ जो सुनीतिसे युक्त तथा समृद्धिका हेतुभूत कारण (उपाय) काममें लाने योग्य है, उसे अपने बलाबलका विचार करके आपलोग करें॥ ८॥ वसुदेवके ये दोनों पुत्र महान् पराक्रमी हैं। ये लोग पर्वतोंमें श्रेष्ठ गोमन्तपर गरुड़को साथ लिये बिना पैदल आये थे तो भी इन्होंने जो घोर महायुद्ध किया था, वह आपलोगोंको विदित ही है॥ ९॥ इस समय जब ये यदुवंशी, वृष्णिवंशी, भोजवंशी तथा अन्धकवंशी महारथियोंके साथ मिलकर युद्ध करेंगे, तब इनका संग्राम कैसा होगा—(यह आपलोग स्वयं अनुमान कर सकते हैं)॥ १०॥ राजकन्याके लिये यत्न करते हुए इन गरुडवाहन भगवान् विष्णुके साथ युद्धमें देवताओं-सहित इन्द्र ही क्यों न हों, कौन ठहर सकेगा॥ ११॥

यदा चास्मै नापि सुता कदाचित् सम्प्रदीयते।
ततो ह्ययं बलादेनां नेतुं शक्तः सुरैः सह॥ १२

पुरा एकार्णवे घोरे श्रूयते मेदिनी त्वियम्।
पातालतलसम्मग्ना विष्णुना प्रभविष्णुना॥ १३

वाराहं रूपमास्थाय उद्धृता जगदादिना।
हिरण्याक्षश्च दैत्येन्द्रो वराहेण निपातितः॥ १४

हिरण्यकशिपुश्चैव महाबलपराक्रमः।
अवध्योऽमरदैत्यानामृषिगन्धर्वकिन्नरैः॥ १५

यक्षराक्षसनागानां नाकाशे नावनिस्थले।
न चाभ्यन्तररात्र्यह्नोर्न शुष्केणार्द्रकेण च॥ १६

अवध्यस्त्रिषु लोकेषु दैत्येन्द्रस्त्वपराजितः।
नरसिंहेन रूपेण निहतो विष्णुना पुरा॥ १७

वामनेन तु रूपेण कश्यपस्यात्मजो बली।
अदित्या गर्भसम्भूतो बलिर्बद्धोऽसुरोत्तमः॥ १८

सत्यरज्जुमयैः पाशैः कृतः पातालसंश्रयः।
कार्तवीर्यो महावीर्यः सहस्रभुजविग्रहः॥ १९

दत्तात्रेयप्रसादेन मत्तो राज्यमदेन च।
जामदग्न्यो महातेजा रेणुकागर्भसंभवः॥ २०

त्रेताद्वापरयोः संधौ रामः शस्त्रभृतां वरः।
पशुना वज्रकल्पेन सप्तद्वीपेश्वरो नृपः।
विष्णुना निहतो भूयः छद्मरूपेण हैहयः॥ २१

इक्ष्वाकुकुलसम्भूतो रामो दाशरथिः पुरा।
त्रिलोकविजयं वीरं रावणं संन्यपातयत्॥ २२

पुरा कृतयुगे विष्णुः संग्रामे तारकामये।
षोडशार्द्धभुजो भूत्वा गरुडस्थो हि वीर्यवान्॥ २३

निजघानासुरान् युद्धे वरदानेन गर्वितान्।
कालनेमिश्च दैतेयो देवानां च भयप्रदः॥ २४

यदि कदाचित् इन्हें कन्या न भी दी जाय तो ये देवताओंके साथ उपस्थित हो बलपूर्वक इसे ले जानेमें समर्थ हैं॥ १२॥ सुना जाता है कि प्राचीन कालमें यह पृथ्वी भयंकर एकार्णवमें निमग्न हो रसातलमें जा पहुँची थी। उस समय जगत्के आदिकारण इन्हीं प्रभावशाली विष्णुने वाराहरूप धारण करके इसका उद्धार किया था। उस समय दैत्यराज हिरण्याक्षको भी वाराहरूपसे ही मार गिराया था॥ १३-१४॥ महान् बल और पराक्रमसे सम्पन्न दैत्यराज हिरण्यकशिपु देवताओं और दैत्योंके लिये भी अवध्य था। ऋषि, गन्धर्व और किन्नर भी उसे मार नहीं सकते थे। यक्ष, राक्षस और नागोंके लिये भी वह अजेय था। वह न तो आकाशमें मर सकता था, न पृथ्वीपर। न रातमें न दिनमें और न सूखे अस्त्रसे न गीले अस्त्रसे ही॥ १५-१६॥ तीनों लोकोंमें अवध्य वह दैत्यराज किसीसे पराजित होनेवाला नहीं था तो भी पूर्वकालमें भगवान् विष्णुने नरसिंहरूप धारण करके उसे मार डाला॥ १७॥ फिर किसी समय बलवान् विष्णु महर्षि कश्यपके पुत्ररूपमें देवी अदितिके गर्भसे प्रकट हुए। उस समय उन्होंने वामनरूप धारण करके असुरराज बलिको सत्यकी रस्सीसे बनाये गये पाशोंद्वारा बाँध लिया और उसे पाताललोकका निवासी बना दिया। कृतवीर्यका पुत्र महापराक्रमी अर्जुनका शरीर दत्तात्रेयजीकी कृपासे सहस्र भुजाओंसे सुशोभित होता था। वह राज्यमदसे उन्मत्त हो गया था। (उसके दमनके लिये भगवान् विष्णु) त्रेता और द्वापरकी सन्धिके समय रेणुकाके गर्भसे प्रकट हुए। वे शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ महातेजस्वी जमदग्निकुमार परशुरामके नामसे प्रसिद्ध हुए। इस तरह पुनः छद्म-रूपधारी भगवान् विष्णुने हैहयवंशमें उत्पन्न राजा कार्तवीर्यका, जो सातों द्वीपोंका स्वामी था, अपने वज्रतुल्य फरसेसे मार डाला॥ १८—२१॥ तत्पश्चात् इक्ष्वाकुकुलमें दशरथनन्दन श्रीरामके रूपमें प्रकट हुए। उन्होंने पूर्व-कालमें त्रिलोकविजयी रावणको मार गिराया था॥ २२॥ प्राचीन कालकी बात है—सत्ययुगमें जब तारकामय संग्राम हुआ था, उस समय पराक्रमी विष्णु आठ भुजाओंसे युक्त हो गरुडपर बैठकर वहाँ पधारे। वहाँ उन्होंने वरदानसे गर्वित हुए असुरोंको युद्धमें मार डाला तथा देवताओंको भय देनेवाले कालनेमि नामक दैत्यका भी वध कर दिया॥ २३-२४॥

सहस्रकिरणाभेन चक्रेण निहतो युधि।
महायोगबलेनाजौ विश्वरूपेण विष्णुना॥ २५

अनेन प्राप्तकालास्ते निहता बहवोऽसुराः।
वने वनचरा दैत्या महाबलपराक्रमाः॥ २६

निहता बालभावेन प्रलम्बारिष्टधेनुकाः।
शकुनीं केशिनं चैव यमलार्जुनकावपि॥ २७

नागं कुवलयापीडं चाणूरं मुष्टिकं तथा।
कंसं च बलिनां श्रेष्ठं सगणं देवकीसुतः॥ २८

न्यहनद् गोपवेषेण क्रीडमानो हि केशवः।
एवमादीनि दिव्यानि छद्मरूपाणि चक्रिणा॥ २९

कृतानि दिव्यरूपाणि विष्णुना प्रभविष्णुना।
तेनाहं वः प्रवक्ष्यामि भवतां हितकाम्यया॥ ३०

तं मन्ये केशवं विष्णुं सुराद्यमसुरान्तकम्।
नारायणं जगद्योनिं पुराणं पुरुषं ध्रुवम्॥ ३१

स्रष्टारं सर्वभूतानां व्यक्ताव्यक्तं सनातनम्।
अधृष्यं सर्वलोकानां सर्वलोकनमस्कृतम्॥ ३२

अनादिमध्यनिधनं क्षरमक्षरमव्ययम्।
स्वयम्भुवमजं स्थाणुमजेयं सचराचरैः॥ ३३

त्रिविक्रमं त्रिलोकेशं त्रिदशेन्द्रारिनाशनम्।
इति मे निश्चिता बुद्धिर्जातोऽयं मथुरामधि॥ ३४

कुले महति वै राज्ञां विपुले चक्रवर्तिनाम्।
कथमन्यस्य मर्त्यस्य गरुडो वाहनं भवेत्॥ ३५

विशेषेण तु कन्यार्थे विक्रमस्थे जनार्दने।
कः स्थास्यति पुमानद्य गरुडस्याग्रतो बली॥ ३६

स्वयंवरकृतेनासौ विष्णुः स्वयमिहागतः।
विष्णोरागमने चैव महान् दोषः प्रकीर्तितः॥ ३७
भवद्भिरनुचिन्त्येदं क्रियतां यदनन्तरम्।

यह सम्पूर्ण विश्व जिनका रूप है, उन भगवान् विष्णुने युद्धमें महान् योगबलसे सूर्यतुल्य तेजस्वी चक्रद्वारा उस दैत्यका संहार किया था॥ २५॥ इस श्रीकृष्णने ऐसे बहुतसे असुरोंको मार डाला है, जिनका काल आ पहुँचा था। वनमें विचरनेवाले महान् बल और पराक्रमसे सम्पन्न प्रलम्ब और धेनुक नामक दैत्योंको इन्होंने बाल्यावस्थामें ही वनके भीतर मार गिराया था। पूतना, केशी, यमलार्जुन, कुवलयापीड हाथी, चाणूर, मुष्टिक तथा बलवानोंमें श्रेष्ठ कंसको उसके गणोंसहित इन देवकीपुत्र केशवने नष्ट कर दिया है। उस समय ये गोपवेशमें क्रीडा करते थे। इन प्रभावशाली चक्रधारी विष्णुने ये तथा और भी इसी तरहके बहुत-से दिव्य छद्मरूप समय-समयपर धारण किये हैं। इसलिये मैं आपलोगोंके हितकी इच्छासे कह रहा हूँ कि श्रीकृष्ण देवताओंके आदि कारण एवं असुर-विनाशक विष्णु हैं। मैं उन्हें ऐसा ही समझता हूँ। वे जगत्‌की उत्पत्तिके स्थानभूत पुराणपुरुष अविनाशी भगवान् नारायण हैं। वे ही समस्त भूतोंकी सृष्टि करनेवाले तथा व्यक्ताव्यक्तस्वरूप सनातन परमात्मा हैं। सम्पूर्ण लोक मिलकर भी उनको पराजित नहीं कर सकते। सारा संसार उनके चरणोंमें मस्तक झुकाता है। वे आदि, मध्य और अन्तसे रहित, क्षर(सर्वभूतमय), अक्षर (कूटस्थ) और अविकारी हैं। वे ही स्वयंभू, अजन्मा, सदा स्थिर रहनेवाले तथा चराचर प्राणियोंके लिये अजेय हैं। उन्हींको मैं देवेन्द्रके शत्रुओंका विनाशक, त्रिलोकीनाथ, त्रिविक्रमरूपधारी विष्णु मानता हूँ। यह मेरी बुद्धिका निश्चय है। ये विष्णु ही मथुरामें चक्रवर्ती राजाओंके महान् एवं विशाल कुलमें प्रकट हुए हैं। अन्यथा दूसरे किसी मनुष्यका वाहन गरुड़ कैसे हो सकते हैं॥ २६—३५॥ विशेषतः जब भगवान् जनार्दन राजकन्याकी प्राप्तिके लिये पराक्रम प्रकट करनेपर तुल जायँगे, तब कौन ऐसा बलवान् पुरुष है, जो आज गरुड़के सामने खड़ा हो सकेगा॥ ३६॥ इस स्वयंवरके लिये साक्षात् विष्णु यहाँ पधारे हैं। विष्णुका आगमन होनेपर हमारे लिये जो महान् दोष (बाधा) उपस्थित है, उसे मैंने बताया। आपलोग भी इसपर विचार करके आगे जो कुछ करना हो, वह करें॥ ३७ $\frac{1}{2}$॥

वैशम्पायन उवाच

एवं विब्रुवमाणे तु मगधानां जनेश्वरे॥ ३८
सुनीथोऽथ महाप्राज्ञो वचनं चेदमब्रवीत्।

सुनीथ उवाच

सम्यगाह महाबाहुर्मगधाधिपतिर्नृपः॥ ३९
समक्षं नरदेवानां यथावृत्तं महाहवे।
गोमन्ते रामकृष्णाभ्यां कृतं कर्म सुदुष्करम्॥ ४०

गजाश्वरथसम्बाधा पत्तिध्वजसमाकुला।
निर्दग्धा महती सेना चक्रलाङ्गलवह्निना॥ ४१

तेनायं मागधः श्रीमाननागतमचिन्तयत्।
ब्रुवते राजसेनायामनुस्मृत्य सुदारुणम्॥ ४२

पदात्योर्युध्यतोस्तत्र बलकेशवयोर्युधि।
दुर्निवार्यतरो घोरो ह्यभवद् वाहिनीक्षयः॥ ४३

विदितं वः सुपर्णस्य स्वागतस्य नृपोत्तमाः।
पक्षवेगानिलोद्धूता बभ्रमुर्गगनेचराः॥ ४४

समुद्राः क्षुभिताः सर्वे चचालाद्रिर्मही मुहुः।
वयं सर्वे सुसंत्रस्ताः किमुत्पातेति विक्लवाः॥ ४५

यदा संनह्य युध्येत आरूढः केशवः खगम्।
कथमस्मद्विधः शक्तः प्रतिस्थातुं रणाजिरे॥ ४६

राज्ञां स्वयंवरो नाम सुमहान् हर्षवर्धनः।
कृतो नरवरैराद्यैर्यशोधर्मस्य वै विधिः॥ ४७

इदं तु कुण्डिनगरमासाद्य मनुजेश्वराः।
पुनरेवैष्यते क्षिप्रं महापुरुषविग्रहम्॥ ४८

यदि सा वरयेदन्यं राज्ञां मध्ये नृपात्मजा।
कृष्णस्य भुजयोर्वीर्यं कः पुमान् प्रसहिष्यति॥ ४९

विज्ञापितमिदं दोषं स्वयंवरमहोत्सवे।
तदर्थमागतः कृष्णो वयं चैव नराधिपाः॥ ५०

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! मगधदेशका राजा इस प्रकार भाषण दे चुका, तब महाबुद्धिमान् सुनीथने इस प्रकार कहा॥ ३८ १/२॥

सुनीथ बोले—महाबाहु मगधराज ठीक कहते हैं। गोमन्त पर्वतके समीप महासमरमें जैसी घटना घटित हुई थी तथा बलराम और श्रीकृष्णने जो अत्यन्त दुष्कर कर्म कर दिखाया था, वह इन समस्त नरेशोंने अपनी आँखों देखा था॥ ३९-४०॥ हाथी, घोड़े और रथोंसे भरी तथा पैदलों और ध्वजोंसे व्याप्त हुई राजाओंकी वह विशाल सेना चक्र और हलरूपी अग्निसे जलकर भस्म हो गयी॥ ४१॥ इसीलिये इन श्रीमान् मगधनरेशने आज भावी परिणामका विचार किया है। राजाओंकी सेनामें जो अत्यन्त दारुण घटना घटित हुई थी, उसका स्मरण करके ये इस समय उपर्युक्त बात कह गये हैं। वहाँ युद्धमें बलराम और श्रीकृष्ण पैदल ही लड़ रहे थे तो भी हमारी विशाल वाहिनीका ऐसा घोर संहार हुआ, जिसे रोकना अत्यन्त कठिन हो गया था॥ ४२-४३॥ श्रेष्ठ नरपतियो! गरुड़के आते समय यहाँ जो प्रभाव पड़ा था, उसे आपलोग अच्छी तरह जानते हैं। उनके पंखोंके वेगसे जो वायु उठी थी, उसका झोंका खाकर आकाशचारी प्राणी चक्कर काटने लगे थे॥ ४४॥ सारे समुद्र क्षुब्ध हो उठे थे। पर्वत काँपने लगे थे और धरती भी बार-बार डोलने लगी थी। हम सब यह सोचकर भयभीत एवं व्याकुल हो गये थे कि यह कैसा उत्पात खड़ा हो गया॥ ४५॥ जब केशव कवच बाँधकर गरुड़की पीठपर आरूढ़ हो युद्ध करेंगे, उस समय हमारे-जैसा पुरुष समराङ्गणमें कैसे ठहर सकता है॥ ४६॥ स्वयंवर राजाओंके लिये महान् आनन्दवर्धक उत्सव है। पूर्वकालके श्रेष्ठ नरेशोंने इसे सुयश और धर्मकी सिद्धिके लिये प्रचलित किया था॥ ४७॥ परंतु मनुजेश्वरो! इस कुण्डिनपुरमें आकर हमारे सामने पुनः शीघ्र ही महापुरुषके साथ महान् युद्धका अवसर आना चाहता है॥ ४८॥ यदि राजकुमारी रुक्मिणी राजाओंके बीचमें किसी दूसरे नरेशका वरण कर ले, तब कौन ऐसा पुरुष है—जो श्रीकृष्णकी भुजाओंका पराक्रम सह सकेगा॥ ४९॥ इस स्वयंवर-महोत्सवमें यह युद्धकी सम्भावना ही महान् दोष है, जिसे सूचित कर दिया गया। श्रीकृष्ण तथा हम सब नरेश भी स्वयंवरके लिये ही यहाँ पधारे हैं।

कृष्णस्यागमनं चैव नृपाणामतिगर्हितम्।
कन्याहेतोर्नरेन्द्राणां यथा वदति मागधः॥ ५१

राजकन्याके उद्देश्यसे श्रीकृष्णका आगमन हम सब नरेशोंके लिये अत्यन्त गर्हित सिद्ध हो रहा है—जैसा कि मगधराजका कथन है॥ ५०-५१॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे विष्णुपर्वणि रुक्मिणीस्वयंवरे मागधसुनीथवाक्ये अष्टचत्वारिंशोऽध्यायः॥ ४८॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत विष्णुपर्वमें रुक्मिणीस्वयंवरके प्रसंगमें जरासंध और सुनीथका भाषणविषयक अड़तालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ४८॥

एकोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

दन्तवक्त्र और शाल्वका भाषण सुनकर भीष्मकका श्रीकृष्णके प्रभावका वर्णन करते हुए उन्हें प्रसन्न करनेका ही निश्चय करना

वैशम्पायन उवाच

इत्येवमुक्ते वचने सुनीथेन महात्मना।
करूषाधिपतिर्वीरो दन्तवक्त्रोऽभ्यभाषत॥ १

दन्तवक्त्र उवाच

यदुक्तं मागधेनात्र सुनीथेन नराधिपाः।
युक्तपूर्वमहं मन्ये यदस्माकं वचो हितम्॥ २

न च विद्वेषणेनाहं न चाहंकारवादिना।
न चात्मविजिगीषुत्वाद् दूषयामि वचोऽमृतम्॥ ३

वाक्यार्णवं महागाधं नीतिशास्त्रार्थबृंहितम्।
क एष निखिलं वक्तुं शक्तो वै राजसंसदि॥ ४

किं त्वनुस्मरणार्थेऽहं यद् ब्रवीमि शृणुष्व मे।
आगतो वासुदेवेति किमाश्चर्यं नराधिपाः॥ ५

यथाऽऽगता वयं सर्वे कृष्णोऽपीह तथाऽऽगतः।
किमत्र दोषो गौण्यो वा कन्याहेतोः समागताः॥ ६

यदस्माभिः समेत्यैक्यात् कृतं गोमन्तरोधनम्।
तत्र युद्धकृतं दोषं कथं वै वक्तुमर्हथ॥ ७

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! महामना सुनीथके ऐसा कहनेपर करूषदेशके वीर राजा दन्तवक्त्रने भाषण देना आरम्भ किया॥ १॥

दन्तवक्त्र बोला—राजाओ! यहाँ मगधराजने और राजा सुनीथने जो कुछ कहा है, उसे मैं युक्तिसंगत मानता हूँ; क्योंकि इनका प्रवचन हमलोगोंके लिये हितकर है॥ २॥ मैं न तो विद्वेषके कारण, न अहंकारवादी होनेके कारण और न अपनी विजयकी अभिलाषा रखनेके ही कारण आप दोनोंके अमृतमय वचनोंको सदोष बता रहा हूँ॥ ३॥ इस राजसभामें कौन ऐसा पुरुष है जो इस प्रकार समुद्रके समान अत्यन्त अगाध एवं नीतिशास्त्रके अनुकूल सर्वगुणसम्पन्न बात कह सके॥ ४॥ परंतु आपलोगोंको एक कर्तव्य याद दिलानेके लिये मैं जो कुछ कहता हूँ, मेरी यह बात सुन लीजिये। नरेश्वरो! यदि वसुदेवनन्दन भगवान् श्रीकृष्ण यहाँ पधारे हैं तो इसमें आश्चर्यकी क्या बात है॥ ५॥ जैसे हम सब लोग यहाँ आये हैं, उसी तरह श्रीकृष्ण भी चले आये हैं। इसमें क्या दोष है और क्या गुण। हम सब लोगोंके आगमनका एक उद्देश्य है—राजकन्याकी प्राप्ति। हमलोगोंने एक साथ मिलकर आपसमें एकता स्थापित करके जो गोमन्तपर्वतपर घेरा डाल रखा था, उस दशामें यदि वहाँ युद्ध हुआ तो उसे आपलोग दोष कैसे बता रहे हैं॥ ६-७॥

वनवासे स्थितौ वीरौ कंसव्यामोहहेतुना।
देवर्षिवचनाद् राजन् वृन्दावनतटे स्थितौ॥ ८

तावाहूय वधार्थेन उभौ रामजनार्दनौ।
नागेनोद्दीपितौ वीरौ हत्वा नागं विवेशतुः॥ ९

ततः स्ववीर्यमाश्रित्य निहतो रङ्गसागरे।
गतासुरिव चासीनो मथुरेशः सहानुगः॥ १०

किमत्र विहितो दोषो येनास्माभिर्वयोऽधिकैः।
उपरोधपरा राजन् वयं सर्वे समागताः॥ ११

सेनातिबलमालोक्य वित्रस्तौ रामकेशवौ।
पुरं बलं समुत्सृज्य गोमन्ते च गतावुभौ॥ १२

तत्रापि गतमस्माभिर्हन्तुं समरयोधिभिः।
अप्राप्तयौवनाभ्यां च पदातिभ्यां रणाजिरे॥ १३

रथाश्वनरनागेन नास्माभिर्विग्रहः कृतः।
कृत्वोपरोधं शैलस्य क्षत्रधर्मेण दीपितः॥ १४

दावाग्निमुखमाविश्य दुर्विनीततपस्विनौ।
विनीत इति मन्यामः सर्वे क्षत्रियपुङ्गवाः।
प्रतियुद्धे कृते त्वेवं दूषयाम जनार्दनम्॥ १५

यत्र यत्र प्रयास्यामो वयं तत्र भवेत् कलिः।
प्रीत्यर्थे प्रयतिष्यामः कृष्णेन सह भूमिपाः॥ १६

इदं कुण्डिनपुरं कृष्णो नागतः कलिहेतुना।
कन्यानिमित्तागमने कस्य युद्धं प्रयच्छति॥ १७

मर्त्येऽस्मिन् पुरुषेन्द्रोऽसौ न कश्चित् प्राकृतो नरः।
देवलोकेषु देवेषु प्रवरः पुरुषोत्तमः॥ १८

देवानामपि कर्तासौ लोकानां च विशेषतः।
न चैव बालिशा बुद्धिर्न चेर्ष्या नापि मत्सरः॥ १९

राजन्! वीर बलराम और श्रीकृष्ण कंसको मोहमें डालनेके लिये वनवास कर रहे थे। वृन्दावनके किनारे रहते थे; परंतु देवर्षि नारदके कहनेसे उन दोनों भाई बलराम और श्रीकृष्णको कंसने उनका वध करनेके लिये बुलवाया और कुवलयापीड हाथीके द्वारा आक्रमण कराकर उन दोनों वीरोंके क्रोधको उद्दीपित किया। उस दशामें वे दोनों उस हाथीको मारकर समुद्रके समान विशाल रंगशालामें प्रविष्ट हुए; फिर उन्होंने अपने बाहुबलका आश्रय लेकर मुर्देके समान बैठे हुए मथुरानरेशको यदि उसके साथियोंसहित मार डाला तो इसमें उनके द्वारा क्या दोष बन गया। राजन्! इसी तरह कंसका वध करके यदि श्रीकृष्ण और बलरामने हम वयोवृद्ध नरेशोंके साथ विरोध किया और उस दशामें यदि हम सब लोगोंने वहाँ पहुँचकर मथुरापुरीपर घेरा डाल दिया तो उसमें भी क्या दोष था॥ ८—११॥ हमारी सेनाका महान् बल देखकर बलराम और कृष्ण डर गये और अपने नगर तथा सेनाको छोड़कर दोनों भाई गोमन्तपर्वतपर चले गये॥ १२॥ तत्पश्चात् हम समराङ्गणमें युद्ध करनेवाले योद्धाओंने उन्हें मार डालनेके लिये वहाँ भी धावा किया। वे दोनों अभी जवान नहीं हुए थे और रणभूमिमें पैदल ही लड़ते थे, इसलिये हमने हाथी, घोड़े, रथ और पैदल सैनिकोंकी चतुरङ्गिणी सेनाद्वारा उनके साथ युद्ध नहीं किया; अपितु क्षत्रिय-धर्मके अनुसार गोमन्तपर्वतपर घेरा डालकर उसमें आग लगा दी थी॥ १३-१४॥ हम सभी क्षत्रिय-पुङ्गव यह समझते थे कि ये दोनों उद्दण्ड तपस्वी बालक दावानलके मुखमें पड़कर सीख जायँगे (अपने कियेका फल पा जायँगे)। ऐसी दशामें उन दोनों भाइयोंने यदि प्रतिशोधात्मक युद्ध किया तो हम जनार्दनको इस तरह दोष क्यों दें (उन्होंने जो कुछ किया, ठीक ही किया)॥ १५॥ (श्रीकृष्णसे वैर रखनेपर) हमलोग जहाँ-जहाँ जायँगे, वहीं-वहीं कलह हो सकता है। अतः राजाओ! आजसे हम श्रीकृष्णके साथ प्रेम बढ़ानेका प्रयत्न करेंगे॥ १६॥ इस कुण्डिनपुरमें श्रीकृष्ण युद्धके लिये नहीं आये हैं। यदि राजकन्याके निमित्त ही उनका आगमन हुआ है, तब किसके साथ युद्ध करेंगे॥ १७॥ वे कोई प्राकृत मनुष्य नहीं हैं। इस मर्त्यलोकमें श्रेष्ठ पुरुष हैं। देवलोकवासी देवताओंमें भी सर्वश्रेष्ठ पुरुषोत्तम हैं॥ १८॥ वे देवताओंके भी कर्ता हैं और विशेषतः सम्पूर्ण लोकोंके स्रष्टा भी वे ही हैं। उनकी बुद्धि गँवारों-जैसी नहीं है। उनके मनमें न ईर्ष्या है, न मात्सर्य॥ १९॥

न स्तब्धो न कृशो नार्तः प्रणतार्तिहरः सदा।
एष विष्णुः प्रभुर्देवो देवानामपि दैवतम्॥ २०

आगतो गरुडेनेह छद्मप्राकाश्यहेतुना।
नानास्त्रसहितो याति कृष्णः शत्रुविनाशने॥ २१

इमां यात्रां विजानीध्वं प्रीत्यर्थं ह्यागतो हरिः।
सहितो यादवेन्द्रैश्च भोजवृष्ण्यन्धकैरिह॥ २२

अर्घ्यमाचमनं दत्त्वा आतिथ्यं च नराधिपाः।
करिष्यामो वयं सर्वे केशवाय महात्मने॥ २३

एवं संधानतः कृत्वा कृष्णेन सहिता वयम्।
वसामो विगतोद्वेगा निर्भया विगतज्वराः॥ २४

तस्य तद् वचनं श्रुत्वा दन्तवक्त्रस्य धीमतः।
शाल्वः प्रवदतां श्रेष्ठस्तानुवाच नराधिपान्॥ २५

शाल्व उवाच

किं भयेनास्य नः सर्वे न्यस्तशस्त्रा भवामहे।
संधानकरणाद्धेतोः कृष्णस्य भयकम्पिताः॥ २६

परस्तवेन किं कार्यं विनिन्द्य बलमात्मनः।
नैष धर्मो नरेन्द्राणां क्षात्रे धर्मे च तिष्ठताम्॥ २७

महत्सु राजवंशेषु सम्भूताः कुलवर्द्धनाः।
तेषां कापुरुषा बुद्धिः कथं भवितुमर्हति॥ २८

अहं जानामि वै कृष्णमादिदेवं सनातनम्।
प्रभुं सर्वामरेन्द्राणां नारायणपरायणम्॥ २९

वैकुण्ठमजयं लोके चराचरगुरुं हरिम्।
सम्भूतं देवकीगर्भे विष्णुं लोकनमस्कृतम्॥ ३०

कंसराजवधार्थाय भारावतरणाय च।
अस्माकं च विनाशाय लोकसंरक्षणाय च॥ ३१

अंशावतरणे कृत्स्नं जाने विष्णोर्विचेष्टितम्।
संग्राममतुलं कृत्वा विष्णुना सह भूमिपाः॥ ३२

ये न तो कठोर हैं, न दुर्बल हैं और न रोग-शोकसे पीड़ित ही हैं। ये तो सदा शरणागतोंका दुःख दूर करते रहते हैं। ये श्रीकृष्ण साक्षात् भगवान् विष्णु तथा देवताओंके भी देवता हैं॥ २०॥ इस समय ये अपने छद्मरूपको प्रकाशित करनेके लिये गरुड़के द्वारा यहाँ पधारे हैं। श्रीकृष्ण शत्रुओंका विनाश करनेके लिये नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्रोंके साथ यात्रा करते हैं। परंतु उनकी इस यात्राको वैसा न समझो। इस समय तो ये श्रीहरि भोज, वृष्णि, अन्धक आदि यादवेन्द्रोंके साथ यहाँ प्रीति बढ़ानेके लिये ही आये हैं॥ २१-२२॥ अतः नरेश्वरो! हम सब लोग यहाँ महात्मा केशवको अर्घ्य और आचमन आदि देकर उनका आतिथ्य-सत्कार करेंगे॥ २३॥ इस प्रकार सन्धि करके हमलोग श्रीकृष्णके साथ उद्वेग, भय और चिन्तासे रहित होकर निवास करेंगे॥ २४॥ बुद्धिमान् दन्तवक्त्रका यह वचन सुनकर वक्ताओंमें श्रेष्ठ शाल्वने उन नरेशोंसे कहा— ॥ २५॥

शाल्व बोला—राजाओ! यदि ऐसी बात है तो क्या हमलोग श्रीकृष्णके भयसे अब अपने अस्त्र-शस्त्र नीचे डालकर निहत्थे हो जायँ। सन्धि करनेके हेतुसे तो यही पता लगता है कि सब नरेश श्रीकृष्णके भयसे काँप रहे हैं॥ २६॥ अपने बलकी निन्दा करके दूसरेकी स्तुति करनेसे क्या प्रयोजन। क्षत्रिय-धर्ममें स्थित रहनेवाले नरेशोंका यह धर्म नहीं है॥ २७॥ जो महान् राजवंशोंमें उत्पन्न होकर अपने कुलकी कीर्ति बढ़ानेवाले हैं, उन राजाओंकी बुद्धिमें ऐसे कायरता-पूर्ण विचारका उदय कैसे हो सकता है॥ २८॥ मैं जानता हूँ, श्रीकृष्ण समस्त अमरेश्वरोंके स्वामी आदिदेव सनातन पुरुष हैं। नारायण ही इनके महान् आश्रय (स्वरूप) हैं॥ २९॥ लोकमें अजेय, वैकुण्ठधामके अधिपति, चराचरगुरु, पापहारी विश्ववन्दित भगवान् विष्णु ही पृथ्वीका भार उतारने, कंसराजको मारने तथा हमारा विनाश और सम्पूर्ण लोकोंकी रक्षा करनेके लिये देवकीके गर्भसे प्रकट हुए हैं। अपने अंशसहित भगवान् विष्णुके इस पूर्ण अवतारमें जो-जो कार्य होनेवाला है, वह सब मैं अच्छी तरह जानता हूँ। अतः भूमिपालो! हमलोग इन भगवान् विष्णुके साथ अनुपम संग्राम

चक्रानलविनिर्दग्धा यास्यामो यमसादनम्।
तत्त्वं जानामि राजेन्द्राः कालेनायुःक्षयो भवेत्॥ ३३

नाकाले म्रियते कश्चित् प्राप्ते काले न जीवति।
एवं विनिश्चयं कृत्वा न कुर्यात् कस्यचिद् भयम्॥ ३४

स एव भगवान् विष्णुरालोक्य तपसः क्षयम्।
निहन्ता दितिजेन्द्राणां यथाकालेन योगवित्॥ ३५

बलिं वैरोचनिं चैवं बद्ध्वावध्यं महाबलम्।
कृतवान् देवदेवेशः पातालतलवासिनम्॥ ३६

एवमादीनि वै विष्णोश्चेष्टानि च नराधिपाः।
तस्मादयुक्तं भवतां विग्रहार्थं विचारणम्॥ ३७

न च संग्रामहेतोर्हि कृष्णस्यागमनं त्विह।
यस्य वा कस्य वा कन्या वरयिष्यति तस्य सा।
किमत्र विग्रहो राज्ञां प्रीतिर्भवतु वै ध्रुवम्॥ ३८

वैशम्पायन उवाच

एवं कथयमानानां नृपाणां बुद्धिशालिनाम्।
न किंचिदब्रवीद् राजा भीष्मकः पुत्रकारणात्॥ ३९

महावीर्यमदोत्सिक्तं भार्गवास्त्राभिरक्षितम्।
रणप्रचण्डातिरथं विचिन्त्य मनसा सुतम्॥ ४०

भीष्मक उवाच

कृष्णं न सहते नित्यं पुत्रो मे बलदर्पितः।
नित्याभिमानी च रणे न बिभेति च कस्यचित्॥ ४१

कृष्णस्य भुजवीर्येण ह्रियते नात्र संशयः।
भविष्यति ततो युद्धं महापुरुषविग्रहम्॥ ४२

द्वेषी चैवाभिमानी च कुतो जीवति मे सुतः।
जीवितं नात्र पश्यामि मम पुत्रस्य केशवात्॥ ४३

कन्याहेतोः सुतं ज्येष्ठं पितॄणां नन्दिवर्द्धनम्।
कारयिष्ये कथं युद्धं पुत्रेण सह केशवम्॥ ४४

करके इनकी चक्राग्निसे दग्ध हो यमलोकमें जा पहुँचेंगे। राजेन्द्रगण! मैं इस तत्त्वको जानता हूँ कि कालसे ही आयु क्षीण होती है। जबतक काल न आया हो कोई नहीं मरता है और काल आ जानेपर कोई जीवित नहीं रहता। अपने मनमें ऐसा दृढ़ निश्चय रखकर कभी किसीसे भय नहीं रखना चाहिये। वे ही योगवेत्ता भगवान् विष्णु दैत्यराजोंकी तपस्या क्षीण हुई देख यथासमय उनका संहार करते हैं॥ ३०—३५॥ उन्हीं देवदेवेश्वरने महाबली विरोचनकुमार बलिको, जो किसीके हाथसे मारे जानेवाले नहीं हैं, बाँधकर उन्हें पाताल-लोकका निवासी बना दिया है॥ ३६॥ नरेश्वरो! भगवान् विष्णुकी ऐसी ही चेष्टाएँ हुआ करती हैं। अतः आप लोगोंका युद्धके लिये विचार करना अनुचित है॥ ३७॥ श्रीकृष्णका यहाँ आना युद्धके लिये नहीं हुआ है। राजकन्या जिस किसीका भी वरण करेगी, उसीकी पत्नी होगी। इसमें झगड़ेकी कौन-सी बात है। राजाओंमें सदा अटल प्रीति बनी रहनी चाहिये॥ ३८॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! उन बुद्धिशाली नरेशोंके इस प्रकार कहनेपर भी राजा भीष्मक अपने पुत्रके कारण कुछ बोल न सके॥ ३९॥ वह अपने महान् बलके घमंडमें भरा रहता था। भार्गवास्त्रसे सुरक्षित था और रणभूमिमें प्रचण्ड पराक्रम प्रकट करनेवाला अतिरथी वीर था। भीष्मकने मन-ही-मन अपने उस पुत्रका चिन्तन करके इस प्रकार कहा—॥ ४०॥

भीष्मक बोले—मेरा पुत्र सदा बलके घमंडमें भरा रहनेवाला और अभिमानी है। वह श्रीकृष्ण और उनके प्रभावको सहन नहीं कर पाता है तथा युद्धमें किसीसे डरता नहीं है॥ ४१॥ इसमें सन्देह नहीं कि श्रीकृष्णकी भुजाओंके बलसे कन्याका अपहरण होगा। उस अवसरपर महापुरुषके साथ महान् विग्रह एवं युद्ध होकर ही रहेगा॥ ४२॥ उस अवस्थामें श्रीकृष्णसे द्वेष रखनेवाला मेरा अभिमानी पुत्र कैसे जीवित रह सकता है। अतः मुझे श्रीकृष्णके हाथसे यहाँ अपने पुत्रकी रक्षा होती नहीं दिखायी देती॥ ४३॥ कन्याके लिये पितरोंका आनन्द बढ़ानेवाले अपने ज्येष्ठ पुत्रको केशवके साथ और केशवको अपने पुत्रके साथ युद्ध करनेका अवसर कैसे दूँगा॥ ४४॥

न च नारायणं देवं वरमिच्छति रुक्मवान्।
मूढभावो मदोन्मत्तः संग्रामेष्वनिवर्तकः।
नियतं भस्मसाद् याति तूलराशिर्यथानलात्॥ ४५

करवीरेश्वरः शूरः शृगालश्चित्रयोधिना।
क्षणेन भस्मसान्नीतः केशवेन बलीयसा॥ ४६

वृन्दावनेऽवसच्छ्रीमान् केशवो बलिनां वरः।
उद्धृत्यैकेन हस्तेन सप्ताहं धृतवान् गिरिम्॥ ४७
दुष्करं कर्म संस्मृत्य मनः सीदति मे भृशम्॥ ४८

नगेन्द्रे सहसाऽऽगम्य दैवतैः सह वृत्रहा।
अभिषिच्याब्रवीत् कृष्णमुपेन्द्रेति शचीपतिः॥ ४९

यथा वै दमितो नागः कालियो यमुनाह्रदे।
विषाग्निज्वलितो घोरः कालान्तकसमप्रभः॥ ५०

केशी चापि महावीर्यो दानवो हयविग्रहः।
निहतो वासुदेवेन देवैरपि दुरासदः॥ ५१

सान्दीपनिसुतश्चैव चिरनष्टो हि सागरे।
दैत्यं पञ्चजनं हत्वा आनीतो यममन्दिरात्॥ ५२

गोमन्ते सुमहद् युद्धं बहुभिर्वेष्टितावुभौ।
कृत्वा वित्रासजननं नागाश्वरथसंक्षयम्॥ ५३

गजेन गजवृन्दानि रथेन रथयोधिनः।
सादिनश्चाश्वयोधेन नरेण च पदातिनः।
जघ्नतुस्तौ महावीर्यौ वसुदेवसुतावुभौ॥ ५४

न देवासुरगन्धर्वा न यक्षोरगराक्षसाः।
न नागा न च दैत्येन्द्रा न पिशाचा न गुह्यकाः॥ ५५

कृतवन्तस्तथा घोरं गजाश्वरथसंक्षयम्।
तमनुस्मृत्य संग्रामं भृशं सीदति मे मनः॥ ५६

न मया श्रुतपूर्वो वा दृष्टपूर्वः कुतोऽपि वा।
तादृशो भुवि मर्त्योऽन्यो वासुदेवात् सुरोत्तमात्॥ ५७

रुक्मीका मनोभाव मूढ़तासे भरा हुआ है। अतः वह भगवान् नारायणको रुक्मिणीका वर बनाना नहीं चाहता। वह बलके मदसे उन्मत्त रहता और युद्धसे कभी मुँह नहीं मोड़ता है। अतः जैसे आग लगनेसे रूईका ढेर जल जाता है, उसी प्रकार वह श्रीकृष्णसे भिड़कर निश्चय ही भस्म हो जायगा॥ ४५॥ विचित्र प्रकारसे युद्ध करनेवाले अत्यन्त बलवान् केशवने करवीरपुरके शूरवीर राजा शृगालको क्षणभरमें धूलमें मिला दिया॥ ४६॥ जब बलवानोंमें श्रेष्ठ श्रीमान् केशव वृन्दावनमें रहते थे, उस समय उन्होंने गोवर्धनपर्वतको उठाकर सात दिनोंतक उसे एक ही हाथसे धारण कर रखा था। उनके उस दुष्कर कर्मको याद करके मेरा हृदय अत्यन्त शिथिल हो जाता है॥ ४७-४८॥ उस समय देवताओंके साथ वृत्रासुरविनाशक शचीपति इन्द्रने सहसा गिरिराज गोवर्धनपर आकर श्रीकृष्णका गौओंके इन्द्रके पदपर अभिषेक किया और उन्हें उपेन्द्र कहकर पुकारा॥ ४९॥ यमुनाके कुण्डमें निवास करनेवाले घोर कालिय नाग अपनी विषाग्निसे प्रज्वलित हो काल और अन्तकके समान प्रतीत होता था, किंतु इन श्रीकृष्णने उसका भी जिस प्रकार दमन किया (वह सबको विदित है)॥ ५०॥ महापराक्रमी केशी नामक दानव घोड़ेका शरीर धारण करके रहता था। उसको जीतना देवताओंके लिये भी अत्यन्त कठिन था; परंतु इन भगवान् वासुदेवने उसको भी मार डाला॥ ५१॥ इन्होंने समुद्रमें चिरकालसे नष्ट हुए सान्दीपनिके पुत्रको पञ्चजन दैत्यका वध करके यमलोकसे ला दिया था॥ ५२॥ गोमन्तपर्वतपर जो महान् युद्ध हुआ था, उसमें बहुत-से राजाओंद्वारा ये दोनों भाई घिर गये थे। परंतु वसुदेवके उन दोनों महापराक्रमी पुत्रोंने हाथी, घोड़े तथा रथोंका संहाररूप अत्यन्त भयदायक पराक्रम कर दिखाया। हाथीसे हाथियोंके समूहोंको, रथसे रथारूढ़ योद्धाओंको, घुड़सवारसे ही घुड़सवारोंको और पैदल योद्धासे ही पैदलोंको मारकर यमलोक पहुँचा दिया॥ ५३-५४॥ देवताओं, असुरों, गन्धर्वों, यक्षों, सर्पों, राक्षसों, नागों, दैत्यराजों, पिशाचों और गुह्यकोंने भी कभी हाथी, घोड़े और रथोंका ऐसा घोर संहार नहीं मचाया था। उस संग्रामको बारम्बार याद करके मेरा मन शिथिल होता जा रहा है॥ ५५-५६॥ मैंने पहले कभी भूतलपर सुरश्रेष्ठ भगवान् वासुदेवको छोड़कर दूसरे किसी वैसे मनुष्यका होना न तो देखा है और न सुना ही है॥ ५७॥

सम्यगाह महाबाहुर्दन्तवक्त्रो महीपतिः।
सान्त्वयित्वा महावीर्यं संविधास्याम यत्क्षमम्॥ ५८

महाबाहु राजा दन्तवक्त्र ठीक कहते हैं। हम पहले महापराक्रमी श्रीकृष्णको सान्त्वनाद्वारा शान्त करके फिर जैसा उचित हो वैसा करें॥ ५८॥

वैशम्पायन उवाच

इति संचिन्त्य मनसा बलाबलविनिश्चयम्।
गमनाय मतिं चक्रे प्रसादयितुमच्युतम्॥ ५९

चिन्तयानो नरेन्द्रस्तु बहुभिर्नयशालिभिः।
सूतमागधवन्दिभ्यो बोधितः स्तुतिमङ्गलैः॥ ६०

प्रभातायां रजन्यां तु कृतपूर्वाह्णिकक्रियाः।
उपविष्टा नृपाः सर्वे स्वेषु विश्रामवेश्मसु॥ ६१

ये विसृष्टास्तु राजानो विदर्भायां नराधिपैः।
तैरागम्य स्वभूपेषु रहो गत्वा निवेदितम्॥ ६२

श्रुत्वा कृष्णाभिषेकं तु केचिद्धृष्टा नराधिपाः।
केचिद् दीनतरा भीता उदासीनास्तथा परे॥ ६३

त्रिधा प्रभिन्ना सा सेना नरनागाश्वमालिनी।
महार्णव इव क्षुब्धा अभिषेकेण चालिता॥ ६४

नृपाणां भेदमालोक्य भीष्मको राजसत्तमः।
व्यतिक्रममचिन्त्यं च कृतं नृपतिना स्वयम्॥ ६५

विचिन्त्य मनसा राजा दह्यमानेन चेतसा।
जगाम नरदेवानां समाजे प्रतिबोधितुम्॥ ६६

एतस्मिन्नन्तरे दूताः सम्प्राप्ताः क्रथकैशिकौ।
लेखमुद्धृत्य शिरसा विविशुस्ते नृपार्णवम्॥ ६७

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! इस प्रकार मन-ही-मन अपने बलाबलका निश्चय करके राजा भीष्मकने भगवान् श्रीकृष्णको प्रसन्न करनेके लिये उनके पास जानेका विचार किया॥ ५९॥ बहुत-से नीतिशाली विद्वान् मन्त्रियोंके साथ विचार करते हुए राजा भीष्मक जब रातमें सो गये, तब सबेरा होनेके समय सूतों, मागधों और बन्दियोंके मुखसे स्तुति एवं मङ्गल-पाठ सुनकर जगे॥ ६०॥ जब रात बीतनेपर प्रभातकाल आया, तब सब नरेश पूर्वाह्णकालके नित्यकर्म पूर्ण करके अपने-अपने विश्राम-भवनोंमें बैठे॥ ६१॥ राजाओंने अपनी ओरसे जिन-जिन राजकुमारोंको विदर्भपुरीमें भेजा था, उन्होंने लौटकर अपने-अपने राजाओंके पास एकान्तमें जाकर वहाँका समाचार निवेदन किया॥ ६२॥ श्रीकृष्णके अभिषेकका समाचार सुनकर कुछ नरेश तो बहुत ही प्रसन्न हुए, कुछ लोग अत्यन्त दीन, भयभीत हो गये और दूसरे राजा उदासीन (तटस्थ) बने रहे॥ ६३॥ इस प्रकार श्रीकृष्णके अभिषेकसे चालित हुई मनुष्यों, हाथियों और घोड़ोंसे भरी हुई वह सेना तीन भागोंमें बँट गयी और महासागरके समान विक्षुब्ध हो उठी॥ ६४॥ राजाओंमें श्रेष्ठ भीष्मक उन नरेशोंमें भेद हुआ देखकर और स्वयं अपने ही किये हुए अचिन्त्य अपराधका विचार करके मन-ही-मन चिन्तासे दग्ध होते हुए उन नरदेवोंके समाजमें उन्हें समझानेके लिये गये॥ ६५-६६॥ इसी बीचमें इन्द्रके दूत राजा क्रथ और कैशिकके पास जा पहुँचे और सिर झुका एक पत्र निकालकर उन्हें दिया; फिर वे राजाओंके समुद्र-जैसे समाजमें घुस गये॥ ६७॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे विष्णुपर्वणि रुक्मिणीस्वयंवरे एकोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः॥ ४९॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत विष्णुपर्वमें रुक्मिणीस्वयंवरविषयक उनचासवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ४९॥

पञ्चाशत्तमोऽध्यायः

क्रथ और कैशिकद्वारा भगवान् श्रीकृष्णको अपने राज्यका समर्पण, देवराज इन्द्रके आदेशसे सब नरेशोंद्वारा भगवान्का राजेन्द्रके पदपर अभिषेक तथा भगवान्का सबको आश्वासन देना

जनमेजय उवाच

हत्वा कंसं महावीर्यं देवैरपि दुरासदम्।
नाभिषिक्तः स्वयं राज्ये नोपविष्टो नृपासने॥ १

कन्यार्थे चागतः कृष्णस्तत्रापि न कृतोऽतिथिः।
अमानमतुलं प्राप्य क्षान्तवान् केन हेतुना॥ २

विनतायाः सुतश्चैव महाबलपराक्रमः।
स चापि क्षमया युक्तः कारणं किमपेक्षितः।
एतदाख्याहि भगवन् परं कौतूहलं हि मे॥ ३

वैशम्पायन उवाच

विदर्भनगरीं प्राप्ते वैनतेये सहाच्युते।
मनसा चिन्तयामास वासुदेवाय कैशिकः॥ ४

दृष्ट्वाऽऽश्चर्यं हि नः सर्वान् राजन्यान् प्रवदाम्यहम्।
वसुदेवसुते दृष्टे ध्रुवं पापक्षयो भवेत्॥ ५

विशुद्धभावः कृष्णस्य आवयोर्दृष्टतत्त्वतः।
अतः पात्रतरः कोऽन्यस्त्रिषु लोकेषु विद्यते॥ ६

कृष्णात् कमलपत्राक्षाद् देवदेवाज्जनार्दनात्।
तस्यावां किं प्रदास्याव आतिथ्यकरणे नृप॥ ७

पात्रमासाद्य वै राजन् यथा धर्मो न लुप्यते।
एवमन्योन्य संचिन्त्य भ्रातरौ क्रथकैशिकौ॥ ८

जनमेजयने पूछा—मुने! जो देवताओंके लिये भी दुर्जय था, उस महापराक्रमी कंसका वध करके भगवान् श्रीकृष्ण स्वयं न तो राज्यपर अभिषिक्त हुए और न राजाके आसनपर ही बैठे, इसका क्या कारण है?॥ १॥ भगवान् श्रीकृष्ण कुण्डिनपुरमें कन्याके लिये आये थे परंतु वहाँ भी वे निमन्त्रित अतिथि नहीं बनाये गये थे (अपने-आप बिना बुलाये आये थे और अपने प्रभावके कारण पूजित हुए थे)। ऐसे अनुपम अपमानको पाकर भी श्रीकृष्णने किसलिये क्षमा कर दी॥ २॥ विनताके पुत्र गरुड़ भी तो महान् बल और पराक्रमसे सम्पन्न हैं। उन्होंने भी किस कारणकी अपेक्षासे क्षमाभाव धारण कर लिया? भगवन्! यह मुझे बताइये, इसको सुननेके लिये मेरे मनमें बड़ा कौतूहल हो रहा है॥ ३॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! (क्रथ और कैशिक भगवान्के भक्त थे। उनपर कृपा करनेके लिये ही भगवान् वहाँ स्वयं पधारे थे।) जब भगवान् श्रीकृष्णके साथ विनतानन्दन गरुड़ भी विदर्भपुरीमें गये, उस समय कैशिकने उन वासुदेवके लिये मन-ही-मन इस प्रकार चिन्तन किया॥ ४॥ (यदि हम दोनों भाई श्रीकृष्णका अभिषेक करें तो) भगवान् श्रीकृष्णके आश्चर्यमय अभिषेकको देखकर हमारे पापोंका नाश हो जायगा तथा सबके मनमें विशुद्ध भावका उदय होगा, अतः मैं राजाओंसे कहूँगा—'वसुदेवपुत्र भगवान् श्रीकृष्णका दर्शन कर लेनेपर निश्चय ही सबके पापोंका क्षय हो जाता है। हम दोनोंने श्रीकृष्णके तत्त्वका साक्षात्कार किया है। तीनों लोकोंमें उन कमलनयन देवाधिदेव जनार्दन श्रीकृष्णसे बढ़कर सुपात्र दूसरा कौन है। नरेश्वर! हम दोनों उनके आतिथ्य-सत्कारके समय उन्हें कौन-सी ऐसी वस्तु भेंट करें, जिससे उत्तम पात्रको पाकर उसका समुचित आदर न करनेके कारण हमारे धर्मका लोप न होने पाये। इस प्रकार दोनों भाई क्रथ और कैशिक आपसमें विचार करके

स्वं राज्यं दातुकामौ तु जग्मतुः केशवान्तिकम्।
देवमासाद्य तौ वीरौ विदर्भनगराधिपौ॥ ९

ऊचतुस्तौ महाभागौ प्रणम्य शिरसा हरिम्।
अद्यावां सफलं जन्म अद्यावां सफलं यशः।
अद्यावां पितरस्तृप्ता देवे चावां गृहागते॥ १०

चामरं व्यजनं छत्रं ध्वजं सिंहासनं बलम्।
स्फीतकोशा पुरी चेयमावाभ्यां सहिता तव॥ ११

उपेन्द्रस्त्वं महाबाहो देवेन्द्रेणाभिषिक्तवान्।
आवामिह हि राज्ये त्वामभिषिक्तं ददामि ते॥ १२

आवयोर्यत्कृतं कार्यं बहुभिः पार्थिवैरपि।
न शक्यतेऽन्यथा कर्तुं जरासंधेन वा स्वयम्॥ १३

शत्रुस्ते मागधो राजा जरासंधो महाद्युतिः।
कथां ते ब्रुवते नित्यं नृपाणामभयप्रदः॥ १४

सिंहासनमनध्यास्यं पुरं चास्य न विद्यते।
कथं राजसमाजेऽस्मिन्नास्यते देवकीसुतः॥ १५

कृष्णोऽपि सुमहावीर्यो ह्यभिमानी महाद्युतिः।
न चागमिष्यते वास्मिन् कन्यार्थे च स्वयंवरे॥ १६

पार्थिवेषूपविष्टेषु स्वेषु सिंहासनेषु वै।
कथमास्यति नीचेषु आसनेषु महाद्युतिः॥ १७

इति संचोद्यमानस्तु श्रुत्वासौ भीष्मको नृपः।
आवयोः सह सम्मन्त्र्य विग्रहोपशमाय च॥ १८

तव विश्रामहेतोर्हि कारितेदं गृहोत्तमम्।
देवानामादिदेवोऽसि सर्वलोकनमस्कृतः॥ १९

मानुष्ये मर्त्यलोकेऽस्मिन् राजेन्द्रत्वं समाचर।
समाजे मनुजेन्द्राणां मा भूदासनसंकटम्॥ २०

अपना राज्य समर्पित करनेकी इच्छासे भगवान् केशवके निकट गये। भगवान्के पास पहुँचकर विदर्भ-नगरके स्वामी वे दोनों महाभाग वीर उन श्रीहरिको सिर झुकाकर प्रणाम करनेके पश्चात् उनसे इस प्रकार बोले— 'भगवन्! आज आप हमारे घर पधारे, इससे हम दोनोंका जीवन सफल हो गया, हमारा यश भी सफल हो गया और हमारे सम्पूर्ण पितर भी तृप्त हो गये॥ ५—१०॥ यह चामर, व्यजन, छत्र, ध्वज, सिंहासन, सेना तथा समृद्धिशाली कोषसे परिपूर्ण यह पुरी हम दोनों भाइयोंके साथ आपकी सेवामें समर्पित है—हम सब आपके हैं॥ ११॥ महाबाहो! आप उपेन्द्र हैं। साक्षात् देवेन्द्रने आपका अभिषेक किया है। हम भी इस राज्यपर आपका अभिषेक करते हैं—सारा राज्य आपको दे रहे हैं॥ १२॥ हम दोनोंने जो आपका अभिषेकरूप कार्य कर दिया है, उसे बहुत-से भूपाल अथवा स्वयं राजा जरासंध भी अन्यथा नहीं कर सकता॥ १३॥ मगधदेशका अधिपति महातेजस्वी राजा जरासंध आपका शत्रु है। उसने आपके विरुद्ध होकर राजाओंको अभय प्रदान किया है। वह प्रतिदिन आपके सम्बन्धमें इस तरहकी बातें किया करता है—॥ १४॥ 'कोई भी सिंहासन श्रीकृष्णके बैठने योग्य नहीं है (क्योंकि इसपर मूर्धाभिषिक्त नरेश ही बैठ सकते हैं), इनका कोई नगर या राजधानी भी नहीं है, अतः देवकीनन्दन श्रीकृष्ण राजाओंके इस समाजमें सिंहासनपर कैसे बैठेंगे॥ १५॥ श्रीकृष्ण भी महापराक्रमी, अभिमानी और महातेजस्वी हैं। वे कन्याके लिये इस स्वयंवरमें कदापि नहीं पधारेंगे॥ १६॥ जब राजालोग अपने सिंहासनोंपर बैठे होंगे, उस समय वहाँ महातेजस्वी श्रीकृष्ण नीच आसनोंपर कैसे बैठेंगे'॥ १७॥ इस प्रकार पूछे जानेपर राजा भीष्मकने उसकी बात सुनकर हम दोनोंके साथ सलाह की और कलहकी शान्तिके लिये उन्होंने आपके विश्रामके लिये इस उत्तम भवनका निर्माण कराया है। प्रभो! आप देवताओंके भी आदिदेव हैं। समस्त संसार आपके चरणोंमें मस्तक झुकाता है। आप मर्त्यलोकमें इस मानव-जगत्में राजा ही नहीं, राजेन्द्र बनकर रहिये, जिससे नरेन्द्रोंके समुदायमें आसनका संकट (सिंहासनपर बैठनेके प्रश्नको लेकर विवाद) उपस्थित न हो'॥ १८—२०॥

विदर्भनगरे वैषां राजेन्द्रत्वं विचेष्टय।
आस्यतामासने शुभ्रे श्वः प्रभाते महाद्युते॥ २१

अधिवास्याद्य चात्मानं विधिदृष्टेन कर्मणा।
यथा गमिष्यन्ति नृपाः करिष्ये देवशासनात्॥ २२

एवमुक्त्वा सुरश्रेष्ठं प्रणिपत्य कृताञ्जली।
प्रेषयामासतुर्वीरौ रङ्गमध्ये नृपैर्वृते॥ २३

देवदूतस्य वचनं यथोक्तं वज्रपाणिना।
लिखित्वा सुमहातेजाः कैशिकः प्राह शासनम्॥ २४

कैशिक उवाच

विदितं वो नृपाः सर्वे वैनतेयसहाच्युतः।
आगतोऽतिथिरूपेण विदर्भनगरीं हरिः॥ २५

प्राप्तमालोक्य पात्रोऽयमिति संचिन्त्य भूपतिः।
प्रददौ वासुदेवाय स्वं राज्यं धर्महेतुना॥ २६

इदमासनमास्वेति भ्रात्रा मे चोदिते ततः।
वागुक्ता चाशरीरेण केनापि व्योमचारिणा॥ २७

देवदूत उवाच

न युक्तमासनं दातुं त्वयासीनं नराधिप।
इदमस्यासनं दिव्यं सर्वरत्नविभूषितम्॥ २८

जाम्बूनदमयं शुभ्रं रचितं विश्वकर्मणा।
प्रेषितं देवराजेन सिंहलक्षणलक्षितम्॥ २९

अत्रोपविष्टं देवेशं चराचरनमस्कृतम्।
अभिषिञ्चन्तु राजेन्द्रं बहुभिः पार्थिवैः सह॥ ३०

आगताः कुण्डिनगरे कन्याहेतोर्नराधिपाः।
नागमिष्यति यः कश्चित् सोऽस्य वध्यो भविष्यति॥ ३१

'महातेजस्वी गोविन्द! विदर्भनगरमें इन राजाओंकी राजेन्द्रताको आप विचलित कर दीजिये और कल प्रात:काल रंगभूमिमें एक उज्ज्वल सिंहासनपर विराजमान होइये॥ २१॥ आज आप शास्त्रीय विधिके अनुसार अपने-आपको अधिवासित (राज्याभिषेकके पूर्वाङ्ग संस्कारसे सम्पन्न) कीजिये। फिर कल मैं ऐसा प्रयत्न करूँगा, जिससे देवराज इन्द्रके आदेशसे सब राजा आपके अभिषेकके लिये यहाँ पधारेंगे'॥ २२॥ ऐसा कहकर वीर क्रथ और कैशिकने दोनों हाथ जोड़कर सुरश्रेष्ठ श्रीकृष्णको प्रणाम किया और राजाओंसे भरे हुए रङ्गस्थलमें (देवराज इन्द्रका वह आदेशपत्र) भेजा॥ २३॥ महातेजस्वी कैशिकने देवदूतके वचनको, जैसा कि वज्रधारी इन्द्रने उसके द्वारा कहलाया था, स्वयं लिखकर राजाओंको सुनाया तथा इन्द्रके आदेशपत्रको भी पढ़ा॥ २४॥

कैशिक बोले—राजाओ! आप सब लोगोंको यह विदित है कि अपनी महिमासे कभी च्युत न होनेवाले भगवान् श्रीहरि गरुड़के साथ अतिथिरूपसे विदर्भपुरीमें पधारे हैं॥ २५॥ उन्हें आया देख 'यह उत्तम पात्र हैं' ऐसा सोचकर राजा क्रथने भगवान् वासुदेवको धर्मके लिये अपना सारा राज्य समर्पित कर दिया। फिर मेरे भाई क्रथने भगवान्से कहा—'प्रभो! यह सिंहासन आपकी सेवामें समर्पित है, इसपर बैठिये।' उनके इतना कहते ही किसी आकाशचारी दिव्य प्राणीने, जिसका शरीर दिखायी नहीं देता था, यह बात कही॥२६-२७॥

देवदूत बोला—नरेश्वर! जिसपर दूसरे लोग बैठ चुके हैं, ऐसा सिंहासन तुम्हें श्रीकृष्णके लिये देना उचित नहीं है। इनके लिये तो यह सम्पूर्ण रत्नोंसे विभूषित दिव्य सिंहासन प्रस्तुत है, जो जाम्बूनद नामक सुवर्णका बना हुआ और परम उज्ज्वल है। साक्षात् विश्वकर्माने इसका निर्माण किया है। यह सिंहके चिह्नसे चिह्नित है, देवराज इन्द्रने यह आसन भगवान्के लिये भेजा है। समस्त चराचर प्राणी जिनके चरणोंमें मस्तक झुकाते हैं, वे देवेश्वर भगवान् श्रीकृष्ण जब इसपर बैठ जायँ, तब तुम लोग बहुत-से राजाओंके साथ रहकर इनका राजेन्द्रके पदपर अभिषेक करो॥ २८—३०॥ इस कुण्डिनपुरमें राजकन्याकी प्राप्तिके लिये जो-जो नरेश पधारे हैं, उनमेंसे जो कोई भी इनके अभिषेकमें न आयेगा, वह इनका वध्य होगा॥ ३१॥

इमे चैवाष्टकलशा निधीनामंशसम्भवाः।
अक्षया राजराजस्य धनेशस्य महात्मनः॥ ३२

दिव्याः काञ्चनरत्नाढ्या दिव्याभरणयोनयः।
राजेन्द्रस्याभिषेकार्थमागच्छन्ति नृपैर्वृताः॥ ३३

एष शक्रस्य संदेशः कथितो वो नराधिपाः।
लेखेनाहूय तान् सर्वानभिषिञ्चन्तु केशवम्॥ ३४

कैशिक उवाच

इति संचोद्य खस्थोऽसौ देवदूतो गतो दिवम्।
दत्त्वाऽऽसनं च कृष्णाय बालार्कसदृशप्रभम्॥ ३५

तेनाहं नोदयिष्यामि भवद्भिर्ये समागताः।
दुर्निवार्यतरं घोरं शक्रस्य स्वयमीरितम्॥ ३६

युष्माभिर्दर्शने युक्तमद्भुतं भुवि दुर्लभम्।
कलशैरभिषिच्यन्तं स्वयमेव नभस्तलात्॥ ३७

दृष्ट्वाऽऽश्चर्यं हि नः सर्वान् ध्रुवं पापक्षयो भवेत्।
स्नापनार्थे च कृष्णाय देवदेवाय विष्णवे॥ ३८

आगच्छध्वं नृपश्रेष्ठा न भयं कर्तुमर्हथ।
आवयोः कृतसन्धानो युष्मदर्थे जनार्दनः॥ ३९

सर्वेषां मनुजेन्द्राणामभयं कुरुते हरिः।
विशुद्धभावः कृष्णस्तु आवयोर्दृष्टतत्त्वतः॥ ४०

मागधस्य विशेषेण न वैरं हृदि दृश्यते।
यदत्र कारणं कार्यं तद् भवद्भिर्विचिन्त्यताम्॥ ४१

वैशम्पायन उवाच

एवं संचिन्तयामासुर्नृपाः शापभयार्दिताः।
भूयः शुश्रुवू राजेन्द्राः केशवाय महात्मने॥ ४२

मेघगम्भीरनादेन स्वरेणापूरयन् नभः।
वागुवाचाशरीरेण देवराजस्य शासनात्॥ ४३

ये आठ अक्षय कलश हैं, जो निधियोंके अंशसे उत्पन्न हुए हैं। ये राजाधिराज महात्मा धनेश (कुबेर)-के कलश दिव्य कलश हैं, जो सुवर्ण और रत्नोंसे सम्पन्न हैं। इनके आभूषण और आसन भी दिव्य हैं। ये कलश श्रीकृष्णका राजेन्द्रपदपर अभिषेक करनेके लिये राजाओंके साथ आ रहे हैं॥ ३२-३३॥ नरेश्वरो! यह मैंने आपलोगोंसे इन्द्रका संदेश सुनाया है। अतः आपलोग इस लिखित आज्ञापत्रके द्वारा सब राजाओंको बुलाकर भगवान् श्रीकृष्णका अभिषेक करें॥ ३४॥

कैशिकने कहा—ऐसी प्रेरणा देकर तथा श्रीकृष्णके लिये प्रातःकालीन सूर्यके समान कान्तिमान् सिंहासन समर्पित करके वह आकाशमें स्थित हुआ देवदूत स्वर्गलोकको चला गया॥ ३५॥ इसलिये मैं आपलोगोंको श्रीकृष्णका अभिषेक करनेके लिये प्रेरित कर रहा हूँ। आपमेंसे जो लोग यहाँ पधारे हैं, उन सबके लिये साक्षात् इन्द्रके द्वारा दी गयी इस आज्ञाका उल्लङ्घन करना अत्यन्त कठिन एवं भयंकर है॥ ३६॥ आकाशसे आठ कलशोंद्वारा श्रीकृष्णका स्वयं ही अभिषेक होगा—यह अद्भुत दृश्य पृथ्वीपर सर्वथा दुर्लभ है। आपलोगोंको भी यह दर्शनीय उत्सव अवश्य देखना चाहिये। इस आश्चर्यजनक दृश्यको देखकर हम सब लोगोंका पाप निश्चय ही दूर हो जायगा। श्रेष्ठ नरपतियो! आपलोग देवाधिदेव विष्णुस्वरूप श्रीकृष्णको नहलानेके लिये आइये। उनसे भय न कीजिये। हमने आपलोगोंके लिये जनार्दनसे संधि कर ली है। भगवान् श्रीहरि समस्त नरेशोंको अभयदान कर रहे हैं। हमने श्रीकृष्णके स्वरूपको अच्छी तरह देख और समझ लिया है। आपलोगोंके प्रति इनका भाव सर्वथा शुद्ध है॥ ३७—४०॥ विशेषतः मगधराज जरासंधके लिये उनके हृदयमें तनिक भी वैर नहीं दिखायी देता है। इसलिये यहाँ जो कार्य-कारण उपस्थित है, उसपर आपलोग अच्छी तरह विचार कर लें॥ ४१॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! ऐसी बात सुनकर वे राजा शापके भयसे पीड़ित हो नाना प्रकारकी चिन्ताएँ करने लगे। इतनेमें ही उन राजेन्द्रोंने महात्मा केशवके निमित्त पुनः आकाशवाणी सुनी॥ ४२॥ देवराजके शासनसे किसी अदृश्य व्यक्तिने मेघके समान गम्भीर ध्वनिसे आकाशको पूर्ण करते हुए इस प्रकार कहा—॥ ४३॥

चित्राङ्गद उवाच

त्रैलोक्याधिपतिः शक्रः प्रजापालनहेतुना।
आज्ञापयति युष्माकं नृपाणां हितकाम्यया॥ ४४

न युक्तं वसतान्योन्यं कृष्णेन सह वैरिणा।
वसध्वं प्रीतिमुत्पाद्य स्वराष्ट्रेषु नृपोत्तमाः॥ ४५

प्रणतार्तिहरः कृष्णः प्रतिसेनान्तकोऽनलः।
अनेन सह सम्प्रीत्या मोदध्वं विगतज्वराः॥ ४६

मानुषाणां नृपा देवा नृपाणां देवताः सुराः।
सुराणां देवता शक्रः शक्रस्यापि जनार्दनः॥ ४७

एष विष्णुः प्रभुर्देवो देवानामपि दैवतम्।
जातोऽयं मानुषे लोके नररूपेण केशवः॥ ४८

अजेयः सर्वलोकेषु देवदानवमानवैः।
कार्तिकेयसहायस्य अपि शूलभृतः स्वयम्॥ ४९

तस्मै देवाधिदेवाय केशवाय महात्मने।
अभिषेक्तुं सुरैः सार्द्धं किमिच्छेयमतः परम्॥ ५०

न चाधिकारो देवानां राजेन्द्रस्याभिषेचने।
तेनाहं नाभिषिञ्चामि सर्वलोकनमस्कृतम्॥ ५१

नृपाणामधिकारोऽयं राजेन्द्रस्य निवेशने।
गत्वा यूयं विदर्भायां क्रथकैशिकयोः सह॥ ५२

संचिन्त्य विधिदृष्टेन कुरुध्वं नृपसत्तमाः।
प्रीतिसन्धानकालोऽयमिति संचिन्त्य वासवः॥ ५३

बोधनार्थं विसृष्टोऽहं युष्माकं मनुजेश्वराः।
विदर्भनगरे कृष्णः श्रावितोऽस्याधिवासनम्॥ ५४

राजेन्द्रत्वाभिषेकार्थं राजानौ क्रथकैशिकौ।
ताभ्यां सह नृपश्रेष्ठाः कृत्वा सुमहदुत्सवम्॥ ५५

चित्राङ्गद बोला—त्रिलोकीनाथ इन्द्र प्रजा-पालनके लिये तुम सब राजाओंका हित चाहते हुए तुम्हें इस प्रकार आज्ञा दे रहे हैं॥ ४४॥ श्रेष्ठ नरेशगण! तुम लोग श्रीकृष्णके साथ वैरभाव रखकर अथवा श्रीकृष्णको वैरी बनाकर जो उनके साथ रहते हो, ऐसा तुम्हारे लिये उचित नहीं है। तुम्हें एक-दूसरेके साथ वैरभाव नहीं रखना चाहिये। तुमलोग परस्पर प्रेमभाव उत्पन्न करके अपने-अपने राष्ट्रोंमें निवास करो॥ ४५॥ श्रीकृष्ण शरणागतोंका दुःख दूर करनेवाले हैं; परंतु शत्रुओंकी सेनाके लिये काल और अग्निके समान भयंकर हैं। तुमलोग इनके साथ प्रेमभाव रखकर निश्चिन्त एवं प्रसन्न रहो॥ ४६॥ साधारण मनुष्योंके लिये राजा ही देवता हैं। राजाओंके लिये देवता ही आराध्यदेव हैं। देवताओंके देवता इन्द्र हैं और इन्द्रके भी देवता भगवान् श्रीकृष्ण हैं॥ ४७॥ ये भगवान् विष्णुदेव देवताओंके भी देवता हैं। ये केशव ही मनुष्यलोकमें मानवरूपमें अवतीर्ण हुए हैं॥ ४८॥ समस्त लोकोंमें देवता, दानव और मनुष्य इन्हें कभी जीत नहीं सकते। कार्तिकेयके साथ साक्षात् भगवान् त्रिशूलधारी शंकरके लिये भी ये अजेय हैं॥ ४९॥ उन्हीं देवाधिदेव महात्मा केशवके लिये देवताओंसहित मेरी यह इच्छा है कि इनका राजेन्द्रपदपर अभिषेक हो। इससे बढ़कर मुझे और कौन-सी इच्छा हो सकती है॥ ५०॥ परंतु राजेन्द्रपदपर किसीका अभिषेक करनेके लिये देवताओंका अधिकार नहीं है; इसीलिये मैं सर्वलोकवन्दित श्रीकृष्णका स्वयं भी अभिषेक नहीं कर रहा हूँ॥ ५१॥ श्रेष्ठ नरेशगण! राजेन्द्रपदपर किसीको प्रतिष्ठित करनेका अधिकार केवल राजाओंको ही प्राप्त है। अतः तुम लोग क्रथ और कैशिकके साथ विदर्भपुरीमें जाकर भलीभाँति सोच-विचार करके शास्त्रीय विधिके अनुसार श्रीकृष्णका अभिषेक करो। नरेश्वरो! यह तुम लोगोंके लिये परस्पर प्रेमपूर्वक संधि कर लेनेका समय है। इसलिये तुम्हें समझानेके लिये मैं देवताओंकी ओरसे दूत बनाकर भेजा गया हूँ। श्रेष्ठ राजाओ! भगवान् श्रीकृष्ण विदर्भ नगरमें विराजमान हैं और उन्हें उनका अधिवास (अभिषेकका पूर्वाङ्ग संस्कार) सुना दिया गया है अर्थात् वे पूर्वाङ्ग संस्कारसे सम्पन्न हो गये हैं। राजा क्रथ और कैशिक उनका राजेन्द्रपदपर अभिषेक करनेके लिये सारी तैयारी कर चुके हैं। तुम सब लोग उन दोनोंके साथ महान् उत्सव करके

अभिषेकेण सत्कृत्य प्रतिगृह्यास्य दक्षिणम्।
आगमिष्यथ संहृष्टाः पुनरेव स्वयंवरम्॥ ५६

जरासंधः सुनीथश्च रुक्मी चैव महारथः।
शाल्वः सौभपतिश्चैव चत्वारो राजसत्तमाः॥ ५७
रङ्गस्याशून्यहेतोर्हि तिष्ठन्तु इह पार्थिवाः।

वैशम्पायन उवाच

एवमाज्ञां सुरेशस्य श्रुत्वा चित्राङ्गदेरिताम्॥ ५८
गमनाय मतिं चक्रुः सर्व एव नृपोत्तमाः।
अनुज्ञाता नरेन्द्रेण जरासंधेन धीमता॥ ५९
भीष्मकं पुरतः कृत्वा प्रयाताः स्वबलैर्वृताः।
भीष्मकश्च महाबाहुः स्वबलेन समन्वितः॥ ६०
जगाम पार्थिवैः सार्द्धं दह्यमानेन चेतसा।
यत्र कृष्णो महाबाहुः कैशिकस्य निवेशने॥ ६१
दूरादेव प्रकाशन्ती पताकाध्वजमालिनी।
शुभा देवसभा रम्या स्नानहेतोरिहागता॥ ६२
दिव्यरत्नप्रभाकीर्णा दिव्यध्वजसमाकुला।
दिव्याम्बरपताकाढ्या दिव्याभरणभूषिता॥ ६३
दिव्यस्रग्दामकलिला दिव्यगन्धाधिवासिता।
विमानयानैः श्रीमद्भिः समन्तात् परिवारिता॥ ६४
दिव्याप्सरोगणाश्चैव विद्याधरगणास्तथा।
गन्धर्वा मुनयश्चैव किन्नराश्च समन्ततः॥ ६५
उपगायन्ति देवेशमम्बरान्तरमाश्रिताः।
स्तुवन्ति मुनयश्चैव सिद्धाश्च परमर्षयः॥ ६६
देवदुन्दुभयश्चैव स्वयमेवानदन् दिवि।
पञ्चयोनिसमुत्थानि गन्धचूर्णान्यनेकशः॥ ६७
समन्तात् पात्यमानानि चाकाशस्थैर्दिवौकसैः।
स्वयमागत्य देवेन्द्रो देवैः सह शचीपतिः॥ ६८

राज्याभिषेकके द्वारा भगवान्का सत्कार और उनकी परिक्रमा करनेके पश्चात् पुनः प्रसन्नतापूर्वक स्वयंवरमें लौट आओ॥ ५२—५६॥ यह रङ्गभूमि सूनी न हो जाय—इसके लिये यहाँ चार श्रेष्ठ राजा बैठे रहें—जरासंध, सुनीथ, महारथी रुक्मी और सौभविमानके अधिपति राजा शाल्व॥ ५७$\frac{1}{2}$॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—इस प्रकार चित्राङ्गदके द्वारा कही गयी देवेश्वर इन्द्रकी आज्ञा सुनकर उन सभी श्रेष्ठ नरेशोंने श्रीकृष्णके अभिषेकमें जानेका विचार कर लिया। बुद्धिमान् नरेश जरासंधने भी उन्हें जानेकी अनुमति दे दी॥ ५८-५९॥ फिर तो वे राजा भीष्मकको आगे करके अपनी सेनाओंके साथ वहाँ गये। महाबाहु भीष्मक भी अपनी सेनाके साथ दूसरे राजाओंको साथ लिये कैशिकके भवनमें, जहाँ महाबाहु श्रीकृष्ण विराजमान थे, गये। उस समय अपने पुत्रके दोषसे उनका चित्त चिन्ताकी आगमें जल रहा था॥ ६०-६१॥ भगवान्के स्नानके लिये सुन्दर सुरम्य देवसभा इस भूतलपर उतर आयी थी, जो दूरसे ही प्रकाशित हो रही थी। वह ध्वजा, पताकाओंसे अलंकृत थी॥ ६२॥ उसमें दिव्य रत्नोंकी प्रभा सब ओर व्याप्त हो रही थी। दिव्य ध्वजाएँ फहराती थीं। दिव्य वस्त्रोंकी पताकाएँ उसकी शोभा बढ़ाती थीं और दिव्य आभूषणों (सजावटकी सामग्रियों)-से वह सभा विभूषित थी॥ ६३॥ उसमें जगह-जगह दिव्य पुष्पोंकी मालाएँ लटक रही थीं। दिव्य गन्धोंसे वह सभा सुवासित थी। विमानपर चलनेवाले कान्तिमान् देवताओंने उसे सब ओरसे घेर रखा था॥ ६४॥ दिव्य अप्सराओंके समुदाय, विद्याधरोंके समूह, गन्धर्व, मुनि और किन्नर सब ओर आकाशमें स्थित हो देवेश्वर श्रीकृष्णका यश गाते थे तथा मुनि, सिद्ध एवं महर्षि उनकी स्तुति करते थे॥ ६५-६६॥ देवताओंकी दुन्दुभियाँ आकाशमें स्वयं ही बज उठीं। आकाशमें खड़े हुए देवता सब ओरसे बारम्बार पञ्चयोनिजनित* सुगन्धचूर्ण गिरा रहे थे। देवताओंके साथ शचीवल्लभ देवेन्द्र स्वयं आकर

* विभिन्न वृक्षोंके मूल, त्वचा, पत्र, पुष्प और फल—ये पाँच योनि अर्थात् कारण हैं। इनसे जो गन्धचूर्ण तैयार किये गये हैं, उन्हें पञ्चयोनिजनित कहते हैं। अथवा मन्दार, पारिजात, संतान, कल्पवृक्ष और हरिचन्दन नामक जो पाँच देववृक्ष हैं, उनसे प्रकट हुए दिव्य गन्धचूर्णको भी यहाँ पञ्चयोनिजनित कहा गया है।

विमानवरमारुह्य सप्रकाशः स्थितोऽम्बरे।
अष्टौ ये लोकपालास्ते स्वासु दिक्षु समास्थिताः॥ ६९

उपगायन्ति नृत्यन्ति स्तुवन्ति च समन्ततः।
श्रुत्वा सुतुमुलं नादं सर्व एव नराधिपाः॥ ७०

विस्मयोत्फुल्लनयना विविशुस्ते सभां शुभाम्।
कैशिकश्च महाबाहुरुपगम्य नराधिपान्॥ ७१

प्रवेशयामास बली प्रतिपूज्य यथाविधि।
निवेदिते सुरश्रेष्ठे पार्थिवानां समागमे॥ ७२

निर्जगाम हरिः श्रीमान् सर्वमङ्गलपूजितः।
ततोऽम्बरस्थास्ते दिव्याः कलशाश्चैलकण्ठिनः॥ ७३

सहकारसमायुक्ता ववर्षुर्जलदा इव।
दिव्यकाञ्चनरत्नौघैर्दिव्यपुष्पसमन्वितैः॥ ७४

गन्धचूर्णविमिश्रैश्च राजेन्द्रस्याभिषेचने।
यथोक्तविधिपूर्वेण अभिषिच्य जनार्दनम्॥ ७५

दर्शयित्वा नरेन्द्राणां दिव्यैरावरणैः शुभैः।
दिव्याम्बरविचित्रैश्च दिव्यमाल्यानुलेपनैः॥ ७६

सत्कृत्य विधिवद्राज्ञ उपविष्टो जनार्दनः।
शुभे देवसभे रम्ये स्नानहेतोरिहागते॥ ७७

उपास्यमानो यदुभिर्विदर्भैश्च नराधिपैः।
वैनतेयश्च बलवान् कामरूपी नराकृतिः॥ ७८

दक्षिणं पार्श्वमाश्रित्य आसनस्थो महाबलः।
क्रथश्च कैशिको वीरो वामपार्श्वे तथासने॥ ७९

उपविष्टौ महात्मानौ देवस्यानुमते नृपौ।
तथैव वामपार्श्वे तु वृष्ण्यन्धकमहारथाः॥ ८०

सात्यकिप्रमुखा वीरा उपविष्टा महाबलाः।
भास्करप्रतिमे दिव्ये दिव्यास्तरणविस्तृते॥ ८१

एक श्रेष्ठ विमानपर आरूढ़ हो आकाशमें स्थित थे और सब लोग उन्हें प्रत्यक्ष देख रहे थे। जो आठ लोकपाल थे, वे अपनी दिशाओंमें स्थित हो सब ओर भगवान्‌के यशका गान, नृत्य एवं स्तुति करते थे। उनके नृत्य-गान आदिके सम्मिलित शब्दको सुनकर सभी नरेशोंके नेत्र आश्चर्यसे खिल उठे और उन्होंने उस मङ्गलमयी दिव्य सभामें प्रवेश किया। उस समय बलवान् महाबाहु कैशिक समस्त नरेशोंके पास जाकर उनका विधिपूर्वक पूजन करके उन सबको भीतर ले आये। जब सुरश्रेष्ठ भगवान्‌को समस्त राजाओंके शुभागमनकी सूचना दी गयी, तब सम्पूर्ण मङ्गलमयी सामग्रियोंसे पूजित हुए वे श्रीमान् हरि भवनसे बाहर निकले। तदनन्तर आकाशमें स्थित हुए वे दिव्य कलश, जिनके कण्ठमें वस्त्र लपेटे गये थे तथा जो आम्रपल्लवोंसे सुशोभित थे, भगवान्‌के ऊपर बादलोंके समान जलकी वर्षा करने लगे। उन दिव्य कलशोंने भगवान्‌का राजेन्द्रपदपर अभिषेक करते समय दिव्य सुवर्ण एवं रत्नोंके समुदायसे युक्त, दिव्य पुष्पोंसे सुवासित तथा सुगन्धचूर्णसे मिश्रित जलके द्वारा शास्त्रोक्त विधिके अनुसार श्रीकृष्णके अभिषेकका कार्य सम्पन्न करके उन्हें सुन्दर दिव्य वस्त्राभूषणोंद्वारा अलंकृत एवं नरेशोंके लिये दर्शनीय कर दिया। तत्पश्चात् दिव्य वस्त्र, विचित्र दिव्य माला और दिव्य अनुलेपनसे वहाँ आये हुए राजाओंका विधिपूर्वक सत्कार करके उनकी अनुमति ले, भगवान् श्रीकृष्ण अपने स्नानके लिये इस भूतलपर उतरी हुई सुन्दर एवं रमणीय देवसभाके भीतर (एक उज्ज्वल दिव्य सिंहासनपर) विराजमान हुए॥ ६७—७७॥
उस समय यादव तथा विदर्भदेशीय नरेश उनकी सेवामें पास ही खड़े थे। इच्छानुसार रूप धारण करनेवाले बलवान् एवं महापराक्रमी गरुड़ मनुष्यका रूप धारण करके भगवान्‌के दाहिने बगलमें जाकर एक आसनपर बैठे। वीर क्रथ और कैशिक—ये दोनों महात्मा नरेश भगवान्‌की आज्ञा पाकर उनके वाम पार्श्वमें एक आसनपर बैठे। उसी प्रकार वाम भागमें ही वृष्णि और अन्धक वंशके महारथी सात्यकि आदि महाबली वीर भी विराजमान हुए। सूर्यके समान तेजस्वी तथा दिव्य

सुखोपविष्टं श्रीमन्तं देवैरिव शचीपतिम्।
सचिवैः श्राविताः सर्वे प्रविष्टास्ते नराधिपाः ॥ ८२

यथार्हेण च सम्पूज्य राजानः सर्व एव ते।
सुखोपविष्टास्ते स्वेषु आसनेषु नराधिपाः ॥ ८३

कैशिकस्तु महाप्राज्ञः सर्वशास्त्रार्थवित्तमः।
पूजयित्वा यथान्यायमुवाच वदतां वरः ॥ ८४

कैशिक उवाच

अविज्ञाता नृपाः सर्वे मानुषोऽयमिति प्रभो।
भवन्तमुपरुद्धानां देव त्वं क्षन्तुमर्हसि ॥ ८५

श्रीकृष्ण उवाच

न मे वैरं प्रवसति एकाहमपि कैशिक।
विशेषेण नरेन्द्राणां क्षत्रधर्मेऽवतिष्ठताम् ॥ ८६

योद्धव्यमिति धर्मेण अधर्मे तु पराङ्मुखे।
तेषां किंहेतुना कोपः कर्तव्यस्त्ववनीश्वराः ॥ ८७

यद्‌गतं तदतिक्रान्तं ये मृतास्ते दिवं गताः।
एष धर्मो नृलोकेऽस्मिञ्जायन्ते च म्रियन्ति च ॥ ८८

तस्मादशोच्यं भवतां मृतार्थे च नराधिपाः।
क्षन्तव्यं रोचतेऽस्माकं वीतवैरा भवन्तु ते ॥ ८९

वैशम्पायन उवाच

एवमुक्त्वा नरेन्द्रांस्तानाश्वास्य मधुसूदनः।
कैशिकस्य मुखं वीक्ष्य विरराम महाद्युतिः ॥ ९०

एतस्मिन्नेव काले तु भीष्मको नयकोविदः।
पूजयित्वा यथान्यायमुवाच वदतां वरः ॥ ९१

बिछौनोंसे सुसज्जित दिव्य सिंहासनपर सुखपूर्वक बैठे हुए श्रीमान् भगवान् श्रीकृष्ण देवताओंके साथ विराजमान शचीपति इन्द्रके समान शोभा पा रहे थे। तदनन्तर मन्त्रियोंसे राजाज्ञा पाकर सभी नरेश उस भवनमें प्रविष्ट हुए। उन समस्त नरेशोंने यथायोग्य भगवान्‌का पूजन किया; फिर वे अपने आसनोंपर सुखपूर्वक बैठ गये ॥ ७८—८३ ॥ इसके बाद वक्ताओंमें श्रेष्ठ महाज्ञानी कैशिक, जो समस्त शास्त्रोंके मर्मज्ञ थे, यथोचितरूपसे भगवान्‌का पूजन करके इस प्रकार बोले— ॥ ८४ ॥

कैशिकने कहा—प्रभो! देव! अबतक सब राजा अज्ञानवश आपके विषयमें यही जानते थे कि ये भी मनुष्य ही हैं; इसीलिये ये लोग आपके प्रति अपराध कर बैठे हैं। आप इन अपराधियोंको क्षमा कर दें ॥ ८५ ॥

श्रीकृष्ण बोले—कैशिक! मेरे मनमें एक दिन भी वैर नहीं टिकता है। विशेषतः क्षत्रिय-धर्ममें स्थिर रहनेवाले नरेशोंपर, जो युद्धको धर्म समझकर उसमें प्रवृत्त होते और अधर्मसे मुँह मोड़े रहते हैं, किसलिये क्रोध किया जाय? भूमिपालो! जो बीत गया, वह गया; जो लोग मर गये, वे स्वर्गमें चले गये। इस मनुष्य-लोकका यह स्वाभाविक धर्म (नियम) है कि यहाँ प्राणी जन्म लेते और मरते रहते हैं ॥ ८६—८८ ॥ अतः नरेश्वरो! जो लोग मर गये या मारे गये, उनके लिये आपलोगोंको शोक नहीं करना चाहिये। हमें तो क्षमा ही अच्छी लगती है। अतः वे सब राजा आजसे वैरभावका त्याग करके निर्वैर हो जायँ ॥ ८९ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! उन नरेशोंसे ऐसा कहकर उन्हें आश्वासन दे महातेजस्वी भगवान् मधुसूदन कैशिकके मुँहकी ओर देखकर चुप हो गये ॥ ९० ॥ इसी समय वक्ताओंमें श्रेष्ठ नीतिकुशल राजा भीष्मक भगवान्‌का यथोचित पूजन करके बोले— ॥ ९१ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे विष्णुपर्वणि रुक्मिणीस्वयंवरे पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५० ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत विष्णुपर्वमें रुक्मिणीका स्वयंवरविषयक पचासवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ५० ॥

एकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

श्रीकृष्ण और भीष्मकका संवाद, भीष्मकद्वारा श्रीकृष्णकी स्तुति तथा श्रीकृष्णका मथुरागमन

भीष्मक उवाच

पुत्रो मे बालभावेन भगिनीं दातुमिच्छति।
स्वयंवरे नरेन्द्राणां न चाहं दातुमुत्सहे॥ १

अतीव बालभावत्वाद् दातुमिच्छेन्मतिर्मम।
एका ह्येकं समालोक्य वरयिष्यति मे मतिः॥ २

अतः प्रसादयिष्ये त्वां पुत्रदुर्नयहेतुना।
प्रसादं कुरु देवेश क्षन्तुमर्हसि मे प्रभो॥ ३

श्रीकृष्ण उवाच

बालभावेन पुत्रेण चालितं नृपमण्डलम्।
यदा भवति वै प्रौढः कीदृशोऽविनयो भवेत्॥ ४

सूर्येन्दुसदृशाँल्लोकांस्तपसोपार्जितश्रियः।
लोकेऽस्मिन् नरदेवानां महाकुलसमुद्भवान्॥ ५

एकस्यापि नृपस्याग्रे मोहाद् यो वितथं वदेत्।
न स तिष्ठति लोकेऽस्मिन् निर्दहेद् दण्डवह्निना॥ ६

एष धर्मो नरेन्द्राणामिति ते विदितं प्रभो।
लोकधर्मं पुरस्कृत्य पुरा गीतं स्वयम्भुवा॥ ७

कथं तव सुतस्तेषामग्रतो मनुजेश्वर।
वक्तुमर्हति राजेन्द्र वितथं राजसंसदि॥ ८

तादृशं रङ्गमतुलं कारयंस्तनयस्तव।
कथं त्वया ह्यविज्ञात इति मे संशयो महान्॥ ९

आगतानां नरेन्द्राणामनलार्केन्दुवर्चसाम्।
यथार्हेण तु सम्पूज्य आतिथ्यं कृतवानसि॥ १०

भीष्मकने कहा— भगवन्! मेरा पुत्र रुक्मी अपने बालचापल्य या अविवेकके कारण अपनी बहिनको नरेन्द्रोंके समक्ष स्वयंवरमें देना चाहता है; परंतु मेरी इच्छा उसे स्वयंवरमें देनेकी नहीं है॥ १॥ अत्यन्त बचपन या मूर्खताके कारण ही वह अपनी बहिनको स्वयंवरमें देना चाहता है, ऐसा मेरा विश्वास है। मेरी राय तो यही है कि वह अकेली एकमात्र मनोनीत पतिका वरण करे॥ २॥ अतः प्रभो! मैं अपने पुत्रकी दुर्नीतिके कारण (अपनेको अपराधी मानकर) आपको प्रसन्न करना चाहता हूँ। देवेश्वर! आप मुझपर कृपा बनाये रखें और मेरे अपराधको क्षमा कर दें॥ ३॥

श्रीकृष्ण बोले— राजन्! आपके पुत्रने बाल्यावस्थामें ही समस्त नरेश-मण्डलमें हलचल मचा दी है; फिर जब वह प्रौढ़ होगा, तब न जाने उसकी उद्दण्डता कैसी हो जायगी?॥ ४॥ जो एक राजाके सामने भी मोहवश झूठ बोलता है, वह राजाओंको मिलनेवाले सूर्य और चन्द्रमाके समान प्रकाशमान तथा तपस्यासे श्रीसम्पन्न हुए लोकोंको, जो उसे महान् कुलमें उत्पन्न होनेके कारण सुगमतापूर्वक किये गये बड़े-बड़े यज्ञोंद्वारा प्राप्त हुए हैं, यम-यातनाकी आगसे दग्ध कर देता है और उन लोकोंमेंसे ही एक जो यह लोक है, इसमें भी वह रह नहीं पाता है॥ ५-६॥ प्रभो! यह (सत्यभाषण) नरेशोंका धर्म है। इस बातको आप भी जानते ही होंगे। स्वयम्भू ब्रह्माजीने पूर्वकालमें लोकधर्मको सामने रखते हुए सत्यके ही महत्त्वका मान किया है॥ ७॥ मनुजेश्वर! राजेन्द्र! ऐसी दशामें आपका पुत्र राजसभामें उन राजाओंके आगे झूठ कैसे बोल सकता है? (जिसमें आपकी सम्मति नहीं होगी, उसकी घोषणा वह कैसे कर सकता है)॥ ८॥ आपका पुत्र जब वैसा अनुपम रंगस्थल बनवा रहा था, तब आप उसकी उस चेष्टासे किस तरह अनजान रह गये? यह मेरे मनमें महान् संशय है॥ ९॥ अग्नि, सूर्य और चन्द्रमाके समान कान्तिमान् नरेश यहाँ पधारे हैं और आपने उन सबका यथायोग्य पूजन करके आतिथ्य-सत्कार किया है। (फिर आप इन बातोंसे अपनेको अपरिचित कैसे बता रहे हैं)॥ १०॥

रथाश्वनरनागानां विमर्दमतुलं तथा।
कथं न ज्ञातवान् राजंस्तव पुत्रस्य चेष्टितम्॥ ११

विषादो न भवेदत्र चतुरङ्गबलागमे।
कथं न ज्ञायते राजन्निति मे बुद्धिसंशयः॥ १२

ममागमनमेवेह प्रायेण न हितं तव।
अतो न कृतमातिथ्यमपात्राय नरेश्वर॥ १३

पात्रेभ्यो दीयतां कन्या मामपास्य नरेश्वर।
ममागमनदोषेण कथं कन्यां न दास्यसे॥ १४

कन्याविघ्नं च कुर्वाणो नरके परिपच्यते।
इति धर्मविदैर्गीतं मन्वादिभिर्नरोत्तमैः॥ १५

अतोऽर्थं न प्रविष्टोऽहं रङ्गमध्ये विशाम्पते।
विदित्वा न कृतातिथ्यं नरदेव तवालयम्॥ १६

ह्रियाभिभूतो राजेन्द्रपार्थिवोऽहं नराधिप।
विदर्भनगरे राजन् बलविश्रामहेतुना॥ १७

आवाभ्यां कृतमातिथ्यं कैशिकस्तु प्रियातिथिः।
उषितौ च यथा स्वर्गे पुरा गरुडकेशवौ॥ १८

वैशम्पायन उवाच

एवमेव ब्रुवाणं तु कृष्णं वाग्वज्रचोदितम्।
श्लक्ष्णवाचाम्बुनाऽऽसिच्य शमितोऽग्निरिव ज्वलन्॥ १९

भीष्मक उवाच

प्रसीद देवलोकेश पाहि मां लोकशासन।
अज्ञानतमसाविष्टं ज्ञानचक्षुःप्रदो भव॥ २०

मानुष्ये मांसचक्षुष्ट्वादसम्यग्विदिता वयम्।
न प्रसिद्ध्यन्ति कर्माणि क्रियतामविचारणात्॥ २१

राजन्! रथ, घोड़े, हाथी और पैदल सैनिकोंसे भरी हुई चतुरङ्गिणी सेनाका जो अनुपम संहार हुआ है, वह सब आपके पुत्रकी कुचेष्टाका ही फल है, इस बातकी जानकारी आपको कैसे नहीं हुई?॥ ११॥ राजन्! जब यहाँ चतुरङ्गिणी सेनाका जमाव होगा, तब क्या कोई खेदजनक घटना नहीं घटित होगी—यह बात आपकी समझमें कैसे नहीं आ रही है। यह मेरी बुद्धिमें संशय उत्पन्न हो गया है॥ १२॥ नरेश्वर! मेरा यहाँ आगमन ही प्रायः आपके लिये हितकर नहीं है—ऐसा समझकर ही आपने मुझ अपात्रका आतिथ्य-सत्कार नहीं किया॥ १३॥ राजन्! मुझे छोड़कर आप इन सुपात्र राजाओंको अपनी कन्या दीजिये। मेरे आ जानेके दोषसे आप अपनी कन्याका दान कैसे नहीं करेंगे॥ १४॥ कन्याके विवाहमें विघ्न डालनेवाला मनुष्य नरककी आगमें पकाया जाता है—ऐसा मनु आदि धर्मज्ञ नरेशोंने कहा है॥ १५॥ प्रजानाथ! इसलिये मैं रङ्गभूमिमें नहीं आया हूँ, नरदेव! मुझे पहले ही ज्ञात हो गया था कि आपका घर आतिथ्य-हीन है॥ १६॥ राजन्! नरेश्वर! मैंने विदर्भ नगरमें विश्रामके लिये जो अपनी सेनाको ठहरा दिया—इसके कारण राजेन्द्रोंका राजा होकर भी मैं लज्जासे गड़ गया हूँ (क्योंकि यदि मैंने यहाँ विश्राम न किया होता तो मुझे आपके द्वारा सत्कृत न होनेका अपमान नहीं सहना पड़ता)॥ १७॥ इतनेपर भी मैंने और गरुड़ने पूरा-पूरा आतिथ्य-सत्कार प्राप्त किया है; क्योंकि राजा कैशिकको अतिथि प्रिय है। हम दोनों यहाँ उसी तरह सुखसे रहे हैं, जैसे पहले वैकुण्ठधाममें रहा करते थे॥ १८॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! ऐसी ही बातें कहकर जिन्होंने वाग्वज्रका प्रहार किया था, उन्हीं भगवान् श्रीकृष्णको, जो अग्निके समान प्रज्वलित हो रहे थे, राजा भीष्मकने अपनी मधुर वाणीरूप जलसे सींचकर शान्त किया॥ १९॥

भीष्मक बोले—देवलोकेश्वर! आप मुझपर प्रसन्न हों, लोकशासक परमेश्वर! मेरी रक्षा कीजिये। मैं अज्ञानरूपी अन्धकारसे घिरा हुआ हूँ, आप मुझे ज्ञानरूपी नेत्र प्रदान करें॥ २०॥ मनुष्ययोनिमें जन्म लेकर मांसपिण्डपर ही दृष्टि रखनेके कारण अथवा केवल स्थूलदर्शी होनेके कारण हम सम्यग् ज्ञानसे वञ्चित हैं (हमारी बुद्धि उलटी हो गयी है)। अतः अविचारपूर्वक कर्म करनेके कारण हमारे कार्य सिद्ध नहीं हो पाते॥ २१॥

भवन्तं शरणं प्राप्य देवानामपि दैवतम्।
सम्यग् भवतु मे दृष्टिः सम्पश्यन्तु च मे क्रियाः॥ २२

अनिष्पन्नामपि क्रियां नयोपेतां विचक्षणाः।
फलदां हि प्रकुर्वन्ति महासेनापतिर्यथा॥ २३

भवन्तं शरणं प्राप्य नाति बाधति मे भयम्।
यन्मया चिन्तितं कार्यं तद् भवाञ्छ्रोतुमर्हति॥ २४

न दातुमिच्छे कन्यां वै पार्थिवेभ्यः स्वयंवरे।
प्रसादं कुरु देवेश न कोपं कर्तुमर्हसि॥ २५

श्रीकृष्ण उवाच

वचनेन किमुक्तेन त्वया राजन् महामते।
स्वकन्यां दास्यसे नेति कोऽत्र नेता तवानघ॥ २६

मा देहीति न चाख्येयं ददस्वेति न मे वचः।
रुक्मिण्या दिव्यमूर्तित्वं सम्बन्धे कारणं मम॥ २७

मेरुकूटे पुरा देवैः कृतमंशावतारणम्।
तदा निसृष्टा श्रीः पूर्वं गच्छ त्वं पतिना सह॥ २८

मानुष्ये कुण्डिनगरे भीष्मकस्याङ्गनोदरे।
जायस्व विपुलश्रोणि प्रत्यवेक्ष्य च वासवम्॥ २९

तेनाहं वः प्रवक्ष्यामि राजन्नकृतकं वचः।
श्रुत्वा स्वयं विनिश्चित्य यद् युक्तं तत् करिष्यति॥ ३०

रुक्मिणी नाम ते कन्या न सा प्राकृतमानुषी।
श्रीरेषा ब्रह्मवाक्येन जाता केनापि हेतुना॥ ३१

न च सा मनुजेन्द्राणां स्वयंवरविधिक्षमा।
एका त्वेकाय दातव्या इति धर्मो व्यवस्थितः॥ ३२

न च तां शक्यसे राजल्लँक्ष्मीं दातुं स्वयंवरे।
सदृशं वरमालोक्य दातुमर्हसि धर्मतः॥ ३३

आप देवताओंके भी देवता हैं। आपकी शरणमें आकर मेरी दृष्टि उत्तम हो जाय और मेरे सारे कर्म ठीक ढंगसे सम्पन्न हों॥ २२॥ जैसे प्रधान सेनापति अयोग्य सेनाका भी नीतिपूर्वक सञ्चालनकर उसे सफल बना देता है, उसी तरह विद्वान् पुरुष असम्पन्न कर्मको भी यदि वह न्याययुक्त है तो फलदायक बना देते हैं॥ २३॥ आपकी शरणमें आ जानेके कारण अब मुझे किसी प्रकारका भय नहीं सता रहा है। मैंने जो कार्य सोचा है, उसे आप सुननेकी कृपा करें॥ २४॥ देवेश्वर! मैं स्वयंवरमें आये हुए राजाओंको अपनी कन्या नहीं देना चाहता। आप मुझपर कृपा करें, क्रोध न करें॥ २५॥

श्रीकृष्ण बोले—महामते नरेश्वर! आप केवल बातें बनाते हैं। इससे क्या होगा? अनघ! आप अपनी कन्या किसीको देंगे या नहीं—इस विषयमें आपको रोकनेवाला कौन है?॥ २६॥ 'आप दूसरेको कन्या न दीजिये, मुझे ही दीजिये' यह दोनों प्रकारकी बातें मुझे नहीं कहनी चाहिये। रुक्मिणी दिव्यरूपधारिणी देवी है, उसकी यह दिव्यता ही उसके साथ मेरे भावी सम्बन्धमें कारण है॥ २७॥ पूर्वकालमें मेरुपर्वतके शिखरपर एकत्र हुए देवताओंने अपने-अपने अंशको भूतलपर उतारा था। उस समय ब्रह्माजीने लक्ष्मीसे कहा—'देवि! तुम भी अपने पतिके साथ जाओ और मनुष्यलोकमें कुण्डिनपुरके भीतर राजा भीष्मककी रानीके गर्भसे जन्म लो। विपुलश्रोणि! इन्द्रपर कृपा करके तुम्हें ऐसा करना चाहिये'॥ २८-२९॥ राजन्! इसीलिये मैं आपसे स्वाभाविक बात कह रहा हूँ, इसमें कहीं कृत्रिमता या बनावट नहीं है। इस बातको सुनकर आपकी कन्या रुक्मिणी स्वयं ही अपने कर्तव्यका निश्चय करके जो उचित समझेगी, वह करेगी; क्योंकि वह साधारण स्त्री नहीं है, यह साक्षात् लक्ष्मी है और किसी कारणवश ब्रह्माजीके कहनेसे यहाँ प्रकट हुई है॥ ३०-३१॥ वह नरेन्द्रोंके सामने स्वयंवरविधिका पालन करनेयोग्य नहीं है। एक कन्याको एक ही वरके हाथमें देना चाहिये—यही सिद्धान्तभूत सुस्थिर धर्म है॥ ३२॥ राजन्! आप उस लक्ष्मीको स्वयंवरमें नहीं दे सकते। किसी योग्य वरको देखकर धर्मपूर्वक उसके हाथमें उसका दान कर देना ही आपके लिये उचित है॥ ३३॥

अतोऽर्थं वैनतेयोऽयं विघ्नकारणहेतुना।
आगतः कुण्डिनगरे देवराजेन चोदितः॥ ३४

अहं चैवागतो राज्ञां द्रष्टुकामो महोत्सवम्।
तां च कन्यां वरारोहां पद्मेन रहितां श्रियम्॥ ३५

क्षन्तव्यमिति यत् प्रोक्तं त्वया राजन् ममाग्रतः।
युक्तिपूर्वमहं मन्ये कलुषाय न पार्थिव॥ ३६

पूर्वमेव मयाऽऽख्यातं येनास्मि विषये तव।
आगतः सौम्यरूपेण तेनैव क्षान्तवान् विभो॥ ३७

क्षान्तेषु गुणबाहुल्यं दोषापहरणं क्षमा।
कथमस्मद्विधे राजन् कलुषो वसते हृदि॥ ३८

कुलजे सत्त्वसम्पन्ने धर्मज्ञे सत्यवादिनि।
भवादृशे कथं राजन् कलुषो भुवि वर्तते॥ ३९

क्षान्तोऽयमिति मन्तव्यं मम सेनासहागतम्।
न चाहं सेनया सार्द्धं यास्यामि रिपुवाहिनीम्॥ ४०

अक्षान्तश्चारिसेनायां यास्यामि द्विजवाहने।
स्थितः सोमार्कसंकाशान्यायुधानि करैर्वहन्॥ ४१

मान्योऽस्माकं त्वया राजन् वयसा च पिता समः।
पालयस्व पुरीं सम्यक्क्षत्रेषु पितृवद् वस॥ ४२

कलुषो नाम राजेन्द्र वसेत् कापुरुषेषु वै।
शूरेषु शुद्धभावेषु कलुषो वसते कथम्॥ ४३

जानीध्वमेषा मे वृत्तिः पुत्रेषु पितृवद् वयम्।
इमावपि च राजानौ विदर्भनगराधिपौ॥ ४४

आतिथ्यकरणेऽस्माकं स्वराज्यं ददतावुभौ।
तेन दानफलेनास्य दशपूर्वा दिवं गताः॥ ४५

भविष्याश्चैव राजानः पुत्रपौत्रा दशावराः।
तेऽपि तत्रैव यास्यन्ति देवलोकं नराधिपाः॥ ४६

इसीलिये देवराज इन्द्रसे प्रेरित होकर यह विनतानन्दन गरुड़ इस स्वयंवरमें विघ्न डालने-हेतु कुण्डिनपुरमें पधारे हैं॥ ३४॥ मैं राजाओंके इस महान् उत्सवको तथा बिना कमलकी लक्ष्मीरूपा इस परम सुन्दरी राजकन्याको देखनेकी इच्छासे यहाँ आया था ॥ ३५॥ राजन्! पृथ्वीनाथ! आपने जो मेरे सामने यह बात कही कि मेरा अपराध क्षमा करना चाहिये,सो ठीक है। मैं इसे युक्तिसंगत मानता हूँ। इसमें दुर्भावका कोई कारण नहीं है॥ ३६॥ विभो! इस विषयमें तो मैं पहले ही कह चुका हूँ कि आपके राज्यमें सौम्यरूपसे आया हूँ (विरोधीरूपसे नहीं)। इसीसे आपको समझ लेना चाहिये कि मैंने क्षमा कर दी है॥ ३७॥ राजन्! क्षमाशील पुरुषोंमें बहुत-से गुण प्रकट होते हैं। क्षमा सब दोषोंको हर लेनेवाली है। मुझ-जैसे पुरुषके हृदयमें दुर्भाव कैसे रह सकता है॥ ३८॥ नरेश्वर! आप भी कुलीन, सत्त्वगुण-सम्पन्न, धर्मज्ञ और सत्यवादी हैं। इस भूतलपर आप-जैसे पुरुषके हृदयमें कलुषभाव कैसे टिक सकता है॥ ३९॥ मैं सेनाके साथ यहाँ आया हूँ, इसलिये आपको यही मानना चाहिये कि ये क्षमाशील हैं; क्योंकि मैं शत्रुओंकी सेनामें अपनी सेना साथ लेकर नहीं जाता हूँ॥ ४०॥ जब मैं असहिष्णु होकर शत्रु-सेनापर आक्रमण करता हूँ, तब गरुड़पर बैठता हूँ और अपने हाथोंमें चन्द्रमा तथा सूर्यके समान चमकीले अस्त्र-शस्त्र धारण करता हूँ॥ ४१॥ राजन्! मेरे लिये पिता सबसे अधिक आदरणीय हैं, जो अवस्थामें आपके ही तुल्य हैं (अतः आप मेरे लिये पिताके तुल्य हैं)। आप अपनी पुरीका भलीभाँति पालन कीजिये और क्षत्रियोंमें पिताके समान आदरणीय बनकर रहिये॥ ४२॥ राजेन्द्र! दुर्भाव तो कायरोंमें रहा करता है, विशुद्ध भाववाले शूरवीरोंमें कलुषित भाव कैसे रह सकता है॥ ४३॥ मेरी यह वृत्ति सर्वथा कलुषभावसे रहित है, इस बातको आपलोग अच्छी तरह जान लें। हम पुत्रोंपर पिताके तुल्य ही स्नेह रखते हैं। ये दोनों विदर्भनगरके अधिपति राजा क्रथ और कैशिक भी ऐसे ही स्वभावके हैं॥ ४४॥ इन दोनोंने हमलोगोंका आतिथ्य-सत्कार करते समय मुझे अपना सारा राज्य ही समर्पित कर दिया। उस दानके फलसे इनके दस पीढ़ी पहलेके पूर्वज स्वर्गलोकमें चले गये॥ ४५॥ भविष्यमें भी दस पीढ़ीतक जो पुत्र-पौत्र आदि राजा होंगे, वे सभी नरेश उक्त दानके फलसे उसी देवलोकमें जायँगे॥ ४६॥

अनयोः सुचिरं कालं भुक्त्वा राज्यमकण्टकम्।
यदाभिलाषो मोक्षस्य यास्यते निर्वृतिं सुखम्॥ ४७

नरेन्द्राश्च महाभागा येऽभिषेचितुमागताः।
कालेन तेऽपि यास्यन्ति देवलोकं त्रिविष्टपम्॥ ४८

स्वस्ति वोऽस्तु गमिष्यामि वैनतेयसहायवान्।
नगरीं मथुरां रम्यां भोजराजेन पालिताम्॥ ४९

वैशम्पायन उवाच

एवमुक्त्वा तु राजानं भीष्मकं यदुनन्दनः।
राज्ञश्चैवमुपामन्त्र्य वैदर्भाभ्यां विशेषतः॥ ५०
सभान्निष्क्रम्य देवेशो जगाम रथमन्तिकम्।
ततः प्रहृष्टो राजर्षिर्भीष्मकः किल केशवम्॥ ५१
ते सर्वे च महीपाला विषण्णवदनाभवन्।
आद्यं स्वायम्भुवं रूपं सुरासुरनमस्कृतम्॥ ५२
सहस्रपात् सहस्राक्षं सहस्रभुजविग्रहम्।
सहस्रशिरसं देवं सहस्रमुकुटोज्ज्वलम्॥ ५३
दिव्यमाल्याम्बरधरं दिव्यगन्धानुलेपनम्।
दिव्याभरणसंयुक्तं दिव्यानेकोद्यतायुधम्॥ ५४
कृष्णं रक्तारविन्दाक्षं चन्द्रसूर्याग्निलोचनम्।
दृष्ट्वा स राजा राजेन्द्रं प्रणिपत्य कृताञ्जलिः॥ ५५
वाङ्मनःकायसंयुक्तं स्तोतुमारब्धवांस्तदा।

भीष्मक उवाच

देवदेव नमस्तुभ्यमनादिनिधनाय वै॥ ५६

शाश्वतायादिदेवाय नारायण परायण।
स्वयम्भुवे च विश्वाय स्थाणवे वेधसाय च॥ ५७

पद्मनाभाय जटिने दण्डिने पिङ्गलाय च।
हंसप्रभाय हंसाय चक्ररूपाय वै नमः॥ ५८

वैकुण्ठाय नमस्तस्मै अजाय परमात्मने।
सदसद्भावयुक्ताय पुराणपुरुषाय च॥ ५९

इन दोनोंको चिरकालतक अकण्टक राज्य भोग लेनेके पश्चात् जब मोक्षकी अभिलाषा होगी, तब ये सुखस्वरूप परमानन्द पदको प्राप्त कर लेंगे॥ ४७॥ जो महाभाग नरेश मेरा अभिषेक करनेके लिये आये थे, वे भी समयानुसार देवताओंके निवासभूत स्वर्गलोकमें चले जायँगे॥ ४८॥ आपलोगोंका कल्याण हो, अब मैं गरुड़के साथ भोजराज उग्रसेनद्वारा पालित रमणीय मथुरापुरीको जाऊँगा॥ ४९॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! राजा भीष्मकसे ऐसा कहकर विशेषतः वहाँ बैठे हुए राजाओंसे विदा ले यदुकुलनन्दन देवेश्वर श्रीकृष्ण विदर्भराज क्रथ और कैशिकके साथ सभाभवनसे निकलकर रथके निकट गये। तदनन्तर भगवान् श्रीकृष्णको जाते देख राजर्षि भीष्मक बड़े प्रसन्न हुए और उन समस्त भूपालोंके मुखपर विषाद छा गया। जो सबके आदिकारण, स्वयम्भूरूप, देवताओं और असुरोंद्वारा वन्दित, सहस्रों चरणोंसे युक्त, सहस्रों नेत्रोंसे विभूषित, सहस्रों भुजाओंसे सुशोभित शरीरवाले, सहस्रों मस्तकोंसे सम्पन्न तथा सहस्रों मुकुटोंसे प्रकाशमान हैं, जो दिव्य माला तथा दिव्य वस्त्र धारण करनेवाले, दिव्य गन्ध और दिव्य अनुलेपनसे अलंकृत हैं, जिनके श्रीअङ्गोंपर दिव्य आभूषण शोभा देते हैं, जो अनेक दिव्य आयुधोंसे सम्पन्न हैं तथा चन्द्रमा, सूर्य और अग्नि जिनके नेत्र हैं, उन अरुण कमलनयन राजेन्द्र श्रीकृष्णको देखकर राजा भीष्मक हाथ जोड़ उनके चरणोंमें गिर पड़े। इस प्रकार मन, वाणी और शरीरद्वारा प्रणाम करके उन्होंने उस समय उनकी स्तुति आरम्भ की॥ ५०—५५ $\frac{१}{२}$ ॥

भीष्मक बोले—देवदेव! आपको नमस्कार है। आप आदि और अन्तसे रहित हैं, आपको नमस्कार है। नारायण! आप सबके परम आश्रय हैं। आप सनातन आदिदेवको नमस्कार है। आप ही स्वयम्भू (ब्रह्मा), विश्वरूप, स्थाणु (महादेव अथवा स्थावर प्राणी), वेधस् (विधाता), पद्मनाभ, जटाधारी, दण्डधारी, पिङ्गलवर्ण, हंसकान्ति, हंसरूप तथा चक्रस्वरूप हैं। आपको नमस्कार है॥ ५६—५८॥ आप वैकुण्ठधामके अधिपति, अजन्मा एवं परमात्मा हैं। आपको नमस्कार है। आप ही सद्भाव और असद्भावसे युक्त हैं, आप ही पुराणपुरुष हैं। आपको नमस्कार है॥ ५९॥

पुरुषोत्तमाय युक्ताय निर्गुणाय नमोऽस्तु ते।
वरदो भव मे नित्यं त्वद्भक्ताय सुरोत्तम॥ ६०
लोकनाथोऽसि नाथ त्वं विष्णुस्त्वं विदितात्मनाम्।

वैशम्पायन उवाच

एवं स्तुत्वा महादेवं नृपाणामग्रतो नृपः॥ ६१
महार्हमणिमुक्ताभिर्वज्रवैदूर्यहासिनम्।
शातकुम्भस्य निचयं कृष्णाय प्रददौ नृपः॥ ६२
पुनश्चक्रे नमस्कारं वैनतेये महाबले।

भीष्मक उवाच

नमस्तस्मै खगेन्द्राय नमो मारुतरंहसे॥ ६३
कामरूपाय दिव्याय काश्यपाय च वै नमः।

वैशम्पायन उवाच

इति संक्षेपतः स्तुत्वा सत्कृत्य वरभूषणैः॥ ६४
ततो विसर्जयामास कृष्णं कमललोचनम्।
अनुजग्मुर्नृपाश्चैव प्रस्थितं वासवानुजम्॥ ६५
प्रतिगृह्य च सत्कारं नृपानामन्त्र्य वीर्यवान्।
जगाम मथुरां कृष्णो द्योतयानो दिशो दश॥ ६६
वैनतेयं पुरस्कृत्य सौम्यरूपं खगोत्तमम्।
महता रथवृन्देन परिवार्य समन्ततः॥ ६७
भेरीपटहनादेन शङ्खदुन्दुभिनिःस्वनैः।
बृंहितेन च नागानां हयानां हेषितेन च॥ ६८
सिंहनादेन शूराणां रथनेमिस्वनेन च।
तुमुलः सुमहानासीन्महामेघरवोपमः॥ ६९
गते कृष्णे महावीर्ये आदाय वरमासनम्।
सभामादाय देवाश्च प्रययुस्त्रिदशालयम्॥ ७०
महता चतुरङ्गेण बलेन परिवारिताः।
क्रोशमात्रमुपव्रज्य अनुज्ञाते जनार्दने॥ ७१
प्रययुस्ते नृपाः सर्वे पुनरेव स्वयंवरम्॥ ७२

आप योगयुक्त पुरुषोत्तम एवं निर्गुण परमात्मा हैं। आपको नमस्कार है। सुरश्रेष्ठ! मैं आपका भक्त हूँ। आप मेरे लिये सदा वरदायक हों। नाथ! आप ही सम्पूर्ण लोकोंके नाथ—संरक्षक हैं। आत्मज्ञानियोंके 'विष्णु' (सर्वव्यापी परमात्मा) भी आप ही हैं॥ ६० १/२॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! राजा भीष्मकने समस्त नरेशोंके सामने बहुमूल्य मणियों तथा मुक्ताओंद्वारा वज्र और वैदूर्यमणिका भी उपहास करनेवाले महान् देवता श्रीकृष्णकी इस प्रकार स्तुति करके उन्हें सुवर्णकी राशि भेंट की। फिर महाबली विनतानन्दन गरुड़को भी नमस्कार किया॥ ६१-६२ १/२॥

भीष्मक बोले—जिनका वेग वायुके समान है, जो इच्छानुसार रूप धारण करनेवाले, दिव्यस्वरूप एवं कश्यपमुनिके पुत्र हैं, उन पक्षिराज गरुड़को नमस्कार है, नमस्कार है॥ ६३ १/२॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! इस प्रकार संक्षेपसे ही गरुड़की स्तुति करके उत्तम आभूषणोंद्वारा सत्कार करनेके पश्चात् राजाने कमललोचन श्रीकृष्णको विदा किया। इन्द्रके छोटे भाई उपेन्द्रके प्रस्थान करनेपर बहुत-से राजा उनके पीछे-पीछे गये॥ ६४-६५॥ पराक्रमी श्रीकृष्ण उन राजाओंका सत्कार ग्रहण करके उनसे विदा ले दसों दिशाओंको प्रकाशित करते हुए सौम्यरूपधारी पक्षिप्रवर विनतानन्दन गरुड़को आगे करके मथुरापुरीको गये। वे अपनेको चारों ओरसे विशाल रथसमूहद्वारा घेरकर भेरी, पटह, शङ्ख और दुन्दुभियोंकी ध्वनिके साथ प्रस्थित हुए। हाथियोंके चिग्घाड़ने, घोड़ोंके हिनहिनाने, शूरवीरोंके सिंहनाद करने तथा रथके पहियोंकी घर्घराहटसे मिलकर उन वाद्योंका ऐसा महान् तुमुल नाद हुआ, जो महामेघोंकी गम्भीर गर्जनाके समान प्रतीत होता था॥ ६६—६९॥ महापराक्रमी श्रीकृष्णके चले जानेपर देवतालोग उस श्रेष्ठ सिंहासन तथा सभाभवनको साथ ले स्वर्गलोकको चले गये॥ ७०॥ विशाल चतुरङ्गिणी सेनासे घिरे हुए राजा लोग एक कोसतक पीछे-पीछे जाकर भगवान् जनार्दनकी आज्ञा मिलनेपर लौटे और सब-के-सब पुनः स्वयंवरमें चले गये॥ ७१-७२॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे विष्णुपर्वणि श्रीकृष्णाभिषेको नामैकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः॥ ५१॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत विष्णुपर्वमें श्रीकृष्णका अभिषेक नामक इक्यावनवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ५१॥

द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

शाल्वके कथनानुसार जरासंध आदि नरेशोंका शाल्वको ही कालयवनके पास दूत बनाकर भेजना

वैशम्पायन उवाच

ततः प्रयाते वसुदेवपुत्रे
नराधिपा भूषणभूषिताङ्गाः।
सभां समाजग्मुः सुरेन्द्रकल्पाः
प्रबोधनार्थं गमनोत्सवास्ते॥ १

सभागतान् सोमरविप्रकाशान्
सुखोपविष्टान् रुचिरासनेषु।
समीक्ष्य राजा सुनयार्थवादी
जगाद वाक्यं नरराजसिंहः॥ २

स्वयंवरकृतं दोषं विदित्वा वो नराधिपाः।
क्षन्तव्यो मम वृद्धस्य दुर्दग्धस्य फलोदयम्॥ ३

वैशम्पायन उवाच

एवमाभाष्य तान् सर्वान् सत्कृत्य च यथाविधि।
ततो विसर्जयामास नृपांस्तान् मध्यदेशजान्॥ ४
पूर्वपश्चिमजांश्चैव उत्तरापथिकानपि।
येऽपि सर्वे महेष्वासाः प्रहृष्टमनसो नराः॥ ५
यथार्हेण च सम्पूज्य जग्मुस्ते नरपुङ्गवाः।
जरासंधः सुनीथश्च दन्तवक्त्रश्च वीर्यवान्॥ ६
शाल्वः सौभपतिश्चैव महाकूर्मश्च पार्थिवः।
क्रथकैशिकमुख्याश्च नृपाः प्रवरवंशजाः॥ ७
वेणुदारिश्च राजर्षिः काश्मीराधिपतिस्तथा।
एते चान्ये च बहवो दक्षिणापथिका नृपाः॥ ८
श्रोतुकामा रहो वाक्यं स्थिता वै भीष्मकान्तिके।
तान् वै समीक्ष्य राजेन्द्रः स राजा भीष्मको बली॥ ९
स्नेहपूर्णेन मनसा स्थितांस्तानवनीश्वरान्।
त्रिवर्गसहितं श्लक्ष्णं षड्गुणालंकृतं शुभम्॥ १०
उवाच नयसम्पन्नं स्निग्धगम्भीरया गिरा।

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! वसुदेवपुत्र श्रीकृष्णके वहाँसे चले जानेपर सब राजा अपने अङ्गोंको आभूषणोंसे विभूषित करके देवेन्द्रके समान सज-धजकर राजा भीष्मककी सभामें उन्हें समझानेके लिये गये। श्रीकृष्णके चले जानेसे उन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई थी॥ १॥ सभामें आकर सुन्दर सिंहासनोंपर सुखपूर्वक बैठे हुए सोम और सूर्यके समान प्रकाशित होनेवाले राजाओंको देखकर उत्तम नीतिके अनुकूल युक्तियुक्त बात कहनेवाले नरेशोंमें सिंहके समान पराक्रमी राजा भीष्मक इस प्रकार बोले॥ २॥ 'नरेश्वरो! स्वयंवरके द्वारा जो श्रीकृष्ण-विरोधरूपी दोष सम्पादित हो रहा था, उसे जानकर (मैंने इसे स्थगित कर दिया।) आपलोग मुझ वृद्धके अपराधको क्षमा करें। जिसे दैवरूपी दावानलने अच्छी तरह जला दिया हो, उस वृक्षसे फलकी प्राप्ति कैसे हो सकती है (जिस स्वयंवरमें भगवद्विरोधकी सम्भावना हो, वह सफल नहीं हो सकता)॥ ३॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! ऐसा कहकर भीष्मकने उन सब राजाओंका विधिपूर्वक सत्कार करके उन्हें विदा कर दिया। उनमेंसे कोई मध्य देशके थे, कोई पूर्व, पश्चिम और उत्तर भारतके। उन सबको उन्होंने सादर विदा किया। वे सब महाधनुर्धर नरेश भी प्रसन्नचित्त होकर राजाका यथायोग्य सम्मान करके अपने-अपने स्थानको चले गये। जरासंध, सुनीथ, पराक्रमी दन्तवक्त्र, सौभपति शाल्व, राजा महाकूर्म, क्रथ और कैशिक आदि श्रेष्ठ कुलके नरेश, राजर्षि वेणुदारि तथा काश्मीरनरेश—ये एवं दूसरे बहुत-से दाक्षिणात्य नरपाल राजा भीष्मककी एकान्त वार्ता सुननेकी इच्छासे उनके पास ही ठहर गये। उन सबको देखकर बलवान् राजाधिराज राजा भीष्मकने स्नेहपूर्ण हृदयसे वहाँ खड़े हुए उन भूपालोंके प्रति स्निग्ध एवं गम्भीर वाणीमें धर्म, अर्थ और कामसे युक्त, मधुर, सन्धि-विग्रह आदि छः गुणोंसे अलंकृत, शुभ एवं नीतिसम्पन्न बात कही॥ ४—१०½॥

भीष्मक उवाच

भवतामवनीशानां समालोक्य नयान्वितम्॥ ११
वचनं व्याहृतं श्रुत्वा कृतवान् कार्यमीदृशम्।
सद्भिर्भवद्भिः क्षन्तव्यं वयं नित्यापराधिनः॥ १२

वैशम्पायन उवाच

एवमुक्त्वा तु राजा स भीष्मको नयकोविदः।
उवाच सुतमुद्दिश्य वचनं राजसंसदि॥ १३

भीष्मक उवाच

पुत्रस्य चेष्टामालोक्य त्रासाकुलितलोचनः।
मन्ये बालानिमाँल्लोकान् स एष पुरुषः परः॥ १४
कीर्तिः कीर्तिमतां श्रेष्ठो यशश्च विपुलं तथा।
स्थापितं भुवि मर्त्येऽस्मिन् स्वबाहुबलमूर्जितम्॥ १५
धन्या खलु महाभागा देवकी योषितां वरा।
पुत्रं त्रिभुवनश्रेष्ठं कृत्वा गर्भेण केशवम्॥ १६
कृष्णं कमलपत्राक्षं श्रीपुञ्जममरार्चितम्।
नेत्राभ्यां स्नेहपूर्णाभ्यां वीक्षते मुखपङ्कजम्॥ १७

वैशम्पायन उवाच

एवं लालप्यमानं तु राजानं राजसंसदि।
उवाच श्लक्ष्णया वाचा शाल्वराजो महाद्युतिः॥ १८

शाल्व उवाच

अलं खेदेन राजेन्द्र सुताय रिपुमर्दिने।
क्षत्रियस्य रणे राजन् ध्रुवं जयपराजयौ॥ १९
नियता गति[1] मर्त्यानामेष धर्मः सनातनः।
बलकेशवयोरन्यस्तृतीयः कः पुमानिह॥ २०
रणे योधयितुं शक्तस्तव पुत्रं महाबलम्।
रथातिरथवृन्दानामेक एव रणाजिरे॥ २१
रिपून् बाधयितुं शक्तो धनुर्गृह्य महाभुजः।
भार्गवास्त्रं महारौद्रं देवैरपि दुरासदम्॥ २२

भीष्मक बोले—राजाओ! आप सब पृथ्वीपतियोंकी ओर देखकर और आपके द्वारा कहे गये नीतियुक्त वचनको सुनकर मैंने ऐसा कार्य किया है। आप सब लोग सत्पुरुष हैं; अतः मेरे इस बर्तावको क्षमापूर्वक सह लेंगे। हम अपनेको सदा अपराधी मानते हैं॥ ११-१२॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! ऐसा कहकर नीति-निपुण विद्वान् राजा भीष्मक उस राजसभामें अपने पुत्रको लक्ष्य करके बोले॥ १३॥

भीष्मकने कहा—राजाओ! अपने पुत्रकी चेष्टाको देखकर मेरे नेत्र भयसे व्याकुल हो उठे हैं। मैं इन लोगोंको (रुक्मी आदिको) बालक (विवेकशून्य) मानता हूँ। मेरी दृष्टिमें ये भगवान् श्रीकृष्ण परम पुरुष हैं॥ १४॥ ये कीर्तिमानोंमें श्रेष्ठ हैं। इन्होंने इस मर्त्यलोकमें भूतलपर अपनी उत्तम कीर्ति और सुयशकी स्थापना की है तथा अपने ओजस्वी बाहुबलका भी परिचय दिया है॥ १५॥ धन्य हैं नारियोंमें श्रेष्ठ महाभागा देवकी, जो तीनों लोकोंमें सबसे श्रेष्ठ, शोभाके पुञ्ज, देवपूजित, कमलदललोचन केशव कृष्णको पुत्ररूपसे गर्भमें रखकर जन्म देनेके पश्चात् सदा स्नेहपूर्ण नेत्रोंसे उनके मुखारविन्दको निहारा करती हैं॥ १६-१७॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! राजसभामें राजा भीष्मकको इस प्रकार बारम्बार बोलते देख महातेजस्वी शाल्वराजने सान्त्वनापूर्ण मधुर वाणीमें कहा॥ १८॥

शाल्व बोला—राजेन्द्र! (आप खेद क्यों प्रकट करते हैं) आपका पुत्र शत्रुओंका मान मर्दन करनेवाला है। इसके लिये खेद करना व्यर्थ है (इसपर तो आपको गर्व होना चाहिये)। राजन्! रणभूमिमें क्षत्रियको जय अथवा पराजय अवश्य प्राप्त होती है॥ १९॥ यह मनुष्योंकी नियत गति है। यह सनातन धर्म है। बलराम और श्रीकृष्णके सिवा इस भूतलपर तीसरा कौन ऐसा पुरुष है, जो समराङ्गणमें आपके महाबली पुत्रका सामना कर सके। यह महाबाहु वीर हाथमें धनुष लेकर अकेला ही युद्धक्षेत्रमें रथियों और अतिरथियोंके समूहका सामना करने और शत्रुओंको बाधा पहुँचानेमें समर्थ है। जिस समय यह अपने बाहुबलसे देवताओंके लिये

१. 'गति' के स्थानमें 'गतिः' समझना चाहिये। नीलकण्ठने यहाँ विभक्तिका लोप आर्ष माना है।

सृजतो बाहुवीर्येण कः पुमान् प्रसहिष्यति।
अयं तु पुरुषः कृष्णो ह्यनादिनिधनोऽव्ययः॥ २३

तं विजेता नृलोकेऽस्मिन् नापि शूलधरः स्वयम्।
तव पुत्रो महाराज सर्वशास्त्रार्थतत्त्ववित्॥ २४

विदित्वा देवमीशानं न योधयति केशवम्।
अद्य तस्य रणे जेता यवनाधिपतिर्नृप॥ २५

स कालयवनो नाम अवध्यः केशवस्य ह।
तप्त्वा सुदारुणं घोरं तपः परमदुश्चरम्॥ २६

रुद्रमाराधयामास द्वादशाब्दानयोऽशनः।
पुत्रकामेन मुनिना तोष्य रुद्रात्सुतो वृतः॥ २७

माथुराणामवध्योऽयं भवेदिति च शङ्करात्।
एवमस्त्विति रुद्रोऽपि प्रददौ मुनये सुतम्॥ २८

एवं गार्ग्यस्य तनयः श्रीमान् रुद्रवरोद्भवः।
माथुराणामवध्योऽयं मथुरायां विशेषतः॥ २९

कृष्णोऽपि बलवानेष माथुरो जातवानयम्।
स जेष्यति रणे कृष्णं मथुरायां समागतः॥ ३०

मन्यध्वं यदि वा युक्तां नृपा वाचं मयेरिताम्।
तत्र दूतं विसृजध्वं यवनेन्द्रपुरं प्रति॥ ३१

वैशम्पायन उवाच

श्रुत्वा सौभपतेर्वाक्यं सर्वे ते नृपसत्तमाः।
कुर्म इत्यब्रुवन् हृष्टा जरासंधं महाबलम्॥ ३२

स तेषां वचनं श्रुत्वा जरासंधो महीपतिः।
बभूव विमना राजन् ब्रह्मणो वचनं स्मरन्॥ ३३

भी दुर्जय महाभयंकर भार्गवास्त्रका प्रयोग करेगा, उस समय इस वीरका आक्रमण कौन पुरुष सह सकेगा? ये श्रीकृष्ण तो अनादि, अनन्त और अविनाशी पुरुष हैं। इस नरलोकमें साक्षात् त्रिशूलधारी भगवान् शङ्कर भी उन्हें जीत नहीं सकते। महाराज! आपका पुत्र सम्पूर्ण शास्त्रोंका तत्त्ववेत्ता है। यह श्रीकृष्णको देवता और ईश्वर समझकर ही उनसे युद्ध नहीं करता है। नरेश्वर! आजकल युद्धमें श्रीकृष्णपर विजय पानेवाला केवल कालयवन है, जो यवनोंका अधिपति है। वह श्रीकृष्णके लिये अवध्य है। गार्ग्यमुनिने अत्यन्त दुष्कर, भयंकर एवं दारुण तपस्या करके बारह वर्षोंतक पुत्रकी कामनासे रुद्रदेवकी आराधना की थी। वे उन दिनों केवल लोहेका चूर्ण खाकर रहते थे। इस प्रकार रुद्रदेवको संतुष्ट करके उन्होंने उनसे एक पुत्र माँगा तथा भगवान् शङ्करसे यह भी प्रार्थना की कि मेरा पुत्र माथुरों (मथुरामें उत्पन्न हुए लोगों)-के लिये अवध्य हो। तब रुद्रदेवने 'एवमस्तु' कहकर मुनिको वैसा पुत्र प्रदान कर दिया॥ २०—२८॥ इस तरह गार्ग्यका वह तेजस्वी पुत्र रुद्रदेवके वरसे उत्पन्न हुआ है और विशेषतः माथुरों (मथुरामें पैदा हुए वीरों)-के लिये अवध्य है॥ २९॥ ये श्रीकृष्ण बलवान् होनेपर भी मथुरामें जन्म लेनेके कारण माथुर ही हैं। अतः मथुरामें आया हुआ कालयवन रणभूमिमें श्रीकृष्णको अवश्य जीत लेगा॥ ३०॥ नरपतियो! यदि आपलोग मेरी कही हुई इस बातको उचित समझें तो यवनराजके नगरको दूत भेज दें॥ ३१॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! सौभ विमानके अधिपति राजा शाल्वकी बात सुनकर वे सभी श्रेष्ठ नरेश हर्षमें भरकर महाबली जरासंधसे बोले—'हमलोग अवश्य ऐसा ही करें'॥ ३२॥ राजन्! उन राजाओंकी बात सुनकर आकाशवाणीकी बात याद करके पृथ्वीपति जरासंधका मन उदास हो गया॥ ३३॥

जरासंध उवाच

मां समाश्रित्य पूर्वस्मिन् नृपा नृपभयार्दिताः।
प्राप्नुवन्ति हृतं राज्यं सभृत्यबलवाहनम्॥ ३४

इह संचोद्यते भूपैः परसंश्रयहेतुना।
कन्येव स्वपतिद्वेषादन्यं रतिपरायणा॥ ३५

अहो सुबलवद् दैवमशक्यं विनिवर्तितुम्।
यदहं कृष्णभीतोऽन्यं संश्रयामि बलाधिकम्॥ ३६

नूनं योगविहीनोऽहं कारयिष्ये पराश्रयम्।
श्रेयो हि मरणं मह्यं न चान्यं संश्रये नृपाः॥ ३७

कृष्णो वा बलदेवो वा यो वासौ वा नराधिपः।
हन्तारं प्रतियोत्स्यामि यथा ब्राह्मप्रचोदितः॥ ३८

एषा मे निश्चिता बुद्धिरेतत्सत् पुरुषव्रतम्।
अतोऽन्यथा न शक्तोऽहं कर्तुं परसमाश्रयम्॥ ३९

भवतां साधुवृत्तानामाबाधं न करोति सः।
तेन दूतं प्रदास्यामि नृपाणां रक्षणाय वै॥ ४०

व्योममार्गेण यातव्यं यथा कृष्णो न बाधते।
गच्छन्तमनुचिन्त्यैवं प्रेषयध्वं नृपोत्तमाः॥ ४१

अयं सौभपतिः श्रीमाननलार्केन्दुविक्रमः।
रथेनादित्यवर्णेन प्रयाति स्वपुरं बली॥ ४२

यवनेन्द्रो यथाभ्येति नरेन्द्राणां समागमम्।
वचनं च तथास्माभिर्दूत्ये नः कृष्णविग्रहे॥ ४३

वैशम्पायन उवाच

पुनरेवाब्रवीद् राजा सौभस्य पतिमूर्जितम्।
गच्छ सर्वनरेन्द्राणां साहाय्यं कुरु मानद॥ ४४

जरासंध बोला—आजसे पहले सब राजा दूसरे राजाओंके भयसे पीड़ित होनेपर मेरी शरणमें आते थे और भृत्य, सेना तथा वाहनोंसहित अपने खोये हुए राज्यको मेरे सहयोगसे पुनः प्राप्त कर लेते थे॥ ३४॥ इस समय यहाँ सब राजा मुझे दूसरेका आश्रय लेनेके लिये प्रेरित कर रहे हैं। जैसे रतिलोलुप नारी अपने पतिके प्रति द्वेष होनेसे उसे छोड़कर दूसरे पुरुषका आश्रय लेती है, (उसी प्रकार मैं अपने बलका आश्रय न लेकर दूसरेका सहारा लेनेको उद्यत हुआ हूँ)॥ ३५॥ अहो! दैव बड़ा प्रबल है। उसे लौटाया नहीं जा सकता; क्योंकि आज मैं श्रीकृष्णसे डरकर दूसरे अधिक बलशाली राजाका आश्रय ग्रहण कर रहा हूँ॥ ३६॥ निश्चय ही मैं निरुपाय हो गया हूँ, अतः मुझे दूसरेका आश्रय लेना पड़ेगा; परंतु ऐसे जीवनसे तो मेरा मर जाना ही अच्छा है। नरपतियो! मैं दूसरेकी शरण नहीं लूँगा॥ ३७॥ श्रीकृष्ण हों, बलदेव हों अथवा जो कोई भी राजा क्यों न हो, जो मुझे मारेगा, उसका मैं डटकर सामना करूँगा। जैसा कि आकाशवाणीने कहा है कि मुझे कोई दूसरा मारनेवाला है॥ ३८॥ यही मेरी बुद्धिका निश्चय है, यही सत्पुरुषका व्रत है। इसके विपरीत मैं दूसरेका आश्रय लेनेमें असमर्थ हूँ॥ ३९॥ आप सदाचारी नरेशोंको श्रीकृष्ण बाधा न पहुँचायें, इस उद्देश्यसे राजाओंकी रक्षाके लिये मैं दूत दूँगा अर्थात् दूत भेजना स्वीकार करूँगा॥ ४०॥ श्रेष्ठ राजाओ! उस दूतको आकाशमार्गसे जाना चाहिये, जिससे यहाँसे जाते समय उसे श्रीकृष्ण बाधा न दे सकें। इसपर भलीभाँति विचार करके ही तुमलोग दूत भेजो॥ ४१॥ ये श्रीमान् सौभपति बलवान् राजा शाल्व अग्नि, सूर्य और चन्द्रमाके समान पराक्रमी हैं। ये सूर्यतुल्य तेजस्वी रथ (विमान)-द्वारा अपने नगरको जाते हैं॥ ४२॥ ये दूतकर्म करते समय हमलोगोंकी ओरसे जैसी बात कहनी चाहिये, वैसी ही कहें, जिससे श्रीकृष्णके साथ हम लोगोंका युद्ध उपस्थित होनेपर वह यवनराज कालयवन हम नरेशोंकी मण्डलीसे आकर मिल जाय॥ ४३॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! फिर राजा जरासंधने सौभविमानके स्वामी बलवान् राजा शाल्वसे कहा—'मानद! जाओ, सम्पूर्ण नरेशोंकी सहायता करो'॥ ४४॥

यवनेन्द्रो यथा याति यथा कृष्णं विजेष्यति।
यथा वयं च तुष्यामस्तथा नीतिर्विधीयताम्॥ ४५

एवं संदिश्य सर्वांस्तान् भीष्मकं पूज्य धर्मतः।
प्रययौ स्वपुरं राजा स्वेन सैन्येन संवृतः॥ ४६

शाल्वोऽपि नृपतिश्रेष्ठस्तांश्च सम्पूज्य धर्मतः।
जगामाकाशमार्गेण रथेनानिलरंहसा॥ ४७

तेऽपि सर्वे महीपाला दक्षिणापथवासिनः।
अनुव्रज्य जरासंधं गताः स्वनगरं प्रति॥ ४८

भीष्मकः सह पुत्रेण तावुभौ चिन्त्य दुर्नयम्।
स्वे गृहे न्यवसद् दीनः कृष्णमेवानुचिन्तयन्॥ ४९

विदिता रुक्मिणी साध्वी स्वयंवरनिवर्तनम्।
कृष्णस्यागमनाद्धेतोर्नृपाणां दोषदर्शनम्॥ ५०

गत्वा तु सा सखीमध्ये उवाच व्रीडितानना।
न चान्येषां नरेन्द्राणां पत्नी भवितुमुत्सहे।
कृष्णात् कमलपत्राक्षात् सत्यमेतद् वचो मम॥ ५१

'तुम ऐसी नीतिका प्रयोग करो, जिससे यवनराज चढ़ाई करे, श्रीकृष्णको जीते और हमलोगोंको संतोष हो'॥ ४५॥ इस प्रकार सबको संदेश देकर और धर्मानुसार भीष्मकका भी सम्मान करके राजा जरासंध अपनी सेनाके साथ अपने नगरको चला गया॥ ४६॥ राजाओंमें श्रेष्ठ शाल्व भी उन सबका धर्मपूर्वक आदर करके वायुके समान वेगशाली विमानद्वारा आकाशमार्गसे चला गया॥ ४७॥ दक्षिण भारतके रहनेवाले जो समस्त भूमिपाल वहाँ उपस्थित थे, वे भी कुछ दूरतक जरासंधके पीछे जाकर फिर अपने नगरको चले गये॥ ४८॥ राजा भीष्मक अपने पुत्र रुक्मीके साथ ही उन दोनों शाल्व और जरासंधका तथा उन सबकी दुर्नीतिका विचार करके श्रीकृष्णका ही चिन्तन करते हुए दीनभावसे अपने घरमें रहने लगे॥ ४९॥ सती साध्वी रुक्मिणीको जब यह पता लग गया कि श्रीकृष्णका आगमन होनेसे स्वयंवर स्थगित हो गया तथा राजाओंकी जो दोषदृष्टि थी उसका भी ज्ञान हो गया, तब वे अपनी सखियोंके बीचमें जाकर लज्जासे सिर झुकाये हुए बोलीं—'सखियो! मैं कमल-नयन श्रीकृष्णको छोड़कर दूसरे नरेशोंकी पत्नी नहीं हो सकती—यह मेरी सच्ची बात है॥ ५०-५१॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे विष्णुपर्वणि रुक्मिणीस्वयंवरे द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः॥ ५२॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत विष्णुपर्वमें रुक्मिणीका स्वयंवरविषयक बावनवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ५२॥

त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

कालयवनकी विशेषता, राजा शाल्वका उसके यहाँ दूत बनकर आना और उसे जरासंधका संदेश सुनाना

वैशम्पायन उवाच

यवनानां बलोदग्रः स कालयवनो नृपः।
बभूव राजा धर्मेण रक्षिता पुरवासिनाम्॥ १

त्रिवर्गविदितः प्राज्ञः षड्गुणानुपजीवकः।
सप्तव्यसनसम्मूढो गुणेष्वभिरतः सदा॥ २

श्रुतिमान् धर्मशीलश्च सत्यवादी जितेन्द्रियः।
सांग्रामिकविधिज्ञश्च दुर्गलाभानुसारणः॥ ३

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! सबसे अधिक बलशाली कालयवन यवनोंका राजा था, जो धर्मके अनुसार पुरवासियोंकी रक्षा करता था॥ १॥ वह त्रिवर्ग (पद, स्थान एवं वृद्धि अथवा धर्म, अर्थ और काम)-का ज्ञाता, बुद्धिमान्, राजनीतिके छः गुणों (संधि-विग्रह आदि)-का आश्रय लेनेवाला, सात* प्रकारके व्यसनोंसे अनभिज्ञ और सदा गुणोंमें तत्पर रहनेवाला था॥ २॥ विद्यावान्, धर्मशील, सत्यवादी, जितेन्द्रिय, युद्धविधिका ज्ञाता तथा दुर्लभ लाभका अनुसरण करनेवाला था॥ ३॥

* सात व्यसन इस प्रकार हैं—मृगया, जुआ, दिनमें सोना, परायी निन्दा, स्त्रीविषयक आसक्ति, मद्यपान और व्यर्थ भाषण।

शूरोऽप्रतिबलश्चैव मन्त्रिप्रवरसेवकः।
सुखासीनः सभां रम्यां सचिवैः परिवारितः॥ ४

उपास्यमानो यवनैरात्मविद्भिर्विपश्चितैः।
विविधाश्च कथा दिव्याः कथ्यमानाः परस्परम्॥ ५

एतस्मिन्नेव काले तु दिव्यगन्धवहोऽनिलः।
प्रववौ मदनाबोधं चकार सुखशीतलः॥ ६

किंस्विदित्येकमनसः सभायां ये समागताः।
उत्फुल्लनयनाः सर्वे राजा चैवावलोक्य सः॥ ७

अपश्यन्त रथं दिव्यमायान्तं भास्करोपमम्।
शातकुम्भमयैः शुभ्रं रथाङ्गैरुपशोभितम्॥ ८

दिव्यरत्नप्रभाकीर्णं दिव्यध्वजपताकिनम्।
वाहितं दिव्यतुरगैर्मनोमारुतरंहसैः॥ ९

चन्द्रभास्करबिम्बानि कृत्वा जाम्बूनदेन तम्।
रचितं वै विश्वकृता वैयाघ्रवरभूषितम्॥ १०

रिपूणां त्रासजननं मित्राणां हर्षवर्द्धनम्।
दक्षिणादिगुपायान्तं रथं पररथारुजम्॥ ११

तत्रोपविष्टं श्रीमन्तं सौभस्य पतिमूर्जितम्।
दृष्ट्वा परमसंहृष्टश्चार्घ्यं पाद्येति चासकृत्॥ १२

उवाच यवनेन्द्रस्य मन्त्री मन्त्रविदां वरः।
तत्रोत्थाय महाबाहुः स्वयमेव नृपासनात्॥ १३

उसके समान बलवान् दूसरा कोई नहीं था। वह शूरवीर और श्रेष्ठ मन्त्रियोंका सेवन करनेवाला था। एक दिन जब वह मन्त्रियोंसे घिरा हुआ अपनी रमणीय सभामें सुखपूर्वक बैठा था, आत्मज्ञ एवं विद्वान् यवन उसकी सेवामें उपस्थित थे और उनमें परस्पर नाना प्रकारकी दिव्य कथाएँ हो रही थीं। इसी समय दिव्य सुगन्ध लेकर मन्द-मन्द वायु बहने लगी। वह सुखद एवं शीतल वायु उन सबके कामभावको जाग्रत् करने लगी॥ ४—६॥ उस समय सभामें जो लोग आये थे, वे सभी एकचित्त होकर यह जिज्ञासा करने लगे कि 'यह क्या है?' सबके नेत्र आश्चर्यसे खिल उठे। राजा कालयवन भी यह अद्भुत बात देखकर प्रभावित हुए बिना नहीं रह सका॥ ७॥ उन सबने आकाशसे एक सूर्यके समान तेजस्वी दिव्य विमानको उतरते देखा, जो सुवर्णमय चमकीले पहियोंसे शोभा पाता था, वह रथ या विमान दिव्य रत्नोंकी प्रभासे व्याप्त था। उसमें दिव्य ध्वजा-पताकाएँ फहरा रही थीं तथा मन एवं वायुके समान वेगशाली दिव्य अश्व उस रथको खींच रहे थे॥ ८-९॥ विश्वकर्माने चन्द्रमा और सूर्यके बिम्ब बनाकर जाम्बूनद नामक सुवर्णसे उस रथका निर्माण किया था। वह चारों ओरसे उत्तम व्याघ्रचर्मद्वारा मढ़ा हुआ था॥ १०॥ वह रथ शत्रुओंके मनमें त्रास उत्पन्न करनेवाला और मित्रोंका हर्ष बढ़ानेवाला था। वह दक्षिण दिशाकी ओरसे आ रहा था और शत्रुओंके रथको तोड़ डालनेमें समर्थ था॥ ११॥ उसमें बैठे हुए सौभपति तेजस्वी राजा श्रीमान् शाल्वको देखकर मन्त्रवेत्ताओंमें श्रेष्ठ यवनराजका मन्त्री बहुत प्रसन्न हुआ और बारम्बार कहने लगा—'अरे! अर्घ्य लाओ, पाद्य लाओ'। उस समय महाबाहु राजा कालयवन स्वयं ही राजसिंहासनसे उठा

प्रत्युद्गम्यार्घ्यमादाय रथावतरणे स्थितः।
शाल्वोऽपि च महातेजा दृष्ट्वा राजानमागतम्॥ १४

मुदा परमया युक्तं शक्रप्रतिमतेजसम्।
अवतीर्य सुविश्रब्ध एक एव रथोत्तमात्॥ १५

विवेश परमं प्रीतो मित्रदर्शनलालसः।
दृष्ट्वार्घमुद्यतं राजा शाल्वो राजर्षिसत्तमः॥ १६

उवाच श्लक्ष्णया वाचा नार्घार्होऽस्मि महाद्युते।
दूतोऽहं मनुजेन्द्राणां सकाशाद् भवतोऽन्तिकम्॥ १७

प्रेषितो बहुभिः सार्द्धं जरासंधेन धीमता।
तेन मन्ये महाराज नार्घार्होऽस्मीति राजसु॥ १८

कालयवन उवाच

जानाम्यहं महाबाहो दौत्येन त्वामिहागतम्।
साहित्ये नरदेवानां प्रेषितो मागधेन वै॥ १९
तेन त्वामर्चये राजन् विशेषेण महामते।
अर्घ्यपाद्यादिसत्कारैरासनेन यथाविधि॥ २०
भवत्यभ्यर्चिते राज्ञां सर्वेषामर्चितं भवेत्।
आस्यतामासने शुभ्रे मया सार्द्धं जनेश्वर॥ २१

वैशम्पायन उवाच

स हस्तालिङ्गनं कृत्वा पृष्ट्वा च कुशलामयम्।
सुखोपविष्टौ सहितौ शुभे सिंहासने स्थितौ॥ २२

कालयवन उवाच

यद्बाहुबलमाश्रित्य वयं सर्वे नराधिपाः।
वसामो विगतोद्विग्ना देवा इव शचीपतिम्॥ २३
किमसाध्यं भवेदस्य येनासि प्रेषितो मयि।
वद सत्यं वचस्तस्य किमाज्ञापयति प्रभुः।
करिष्ये वचनं तस्य अपि कर्म सुदुष्करम्॥ २४

शाल्व उवाच

यथा वदति राजेन्द्र मगधाधिपतिस्तव।
तथाहं सम्प्रवक्ष्यामि श्रूयतां यवनाधिप॥ २५

और अर्घ्य लिये आगे बढ़कर विमानसे उतरनेकी सीढ़ीके पास खड़ा हो गया। महातेजस्वी राजा शाल्व भी इन्द्रके समान तेजस्वी राजा कालयवनको बड़ी प्रसन्नताके साथ आया देख निर्भय हो अकेला ही उस उत्तम रथसे उतर पड़ा और मित्रके दर्शनकी लालसा मनमें रखकर अत्यन्त संतुष्ट हो उसके भवनमें प्रविष्ट हुआ। अपने लिये अर्घ्य उपस्थित देख राजर्षियोंमें श्रेष्ठ राजा शाल्व मधुर वाणीमें बोला—'महाद्युते! मैं अर्घ्य ग्रहण करनेके योग्य नहीं हूँ। मैं नरेशोंका दूत बनकर उनकी ओरसे आपके पास आया हूँ। बुद्धिमान् जरासंध तथा बहुत-से नरेशोंने एक साथ मिलकर मुझे आपके पास भेजा है। महाराज! इसीलिये मैं समझता हूँ कि इस समय मैं राजाओंका अर्घ्य लेने योग्य नहीं हूँ'॥ १२—१८॥

कालयवन बोला—महाबाहो! मैं जानता हूँ कि तुम दूत बनकर यहाँ आये हो और नरपतियोंके साथ मगधराज जरासंधने तुम्हें यहाँ भेजा है॥ १९॥ राजन्! महामते! इसीलिये मैं तुम्हारी विशेषरूपसे पूजा करना चाहता हूँ। अर्घ्य, पाद्य आदि सत्कारोंसे तथा विधिपूर्वक आसन देनेसे यदि आपकी पूजा हो जायगी तो इसके द्वारा समस्त राजाओंका पूजन सम्पन्न हो जायगा। अत: जनेश्वर! अब मेरे साथ उज्ज्वल सिंहासनपर विराजमान होइये॥ २०-२१॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! कालयवनने शाल्वसे हाथ मिलाकर उसका कुशलमङ्गल पूछा। फिर दोनों एक सुन्दर सिंहासनपर साथ-साथ सुखपूर्वक बैठे॥ २२॥

उस समय कालयवनने कहा—राजन्! जिनके बाहुबलका सहारा लेकर हम सब नरेश उसी प्रकार निर्भय रहते हैं, जैसे देवता शचीपति इन्द्रका सहारा लेकर भयसे मुक्त हो जाते हैं; उन्हीं महाराज जरासंधके लिये कौन-सा कार्य असाध्य हो गया है, जिससे उन्होंने मेरे पास आपको भेजा है? उन्होंने क्या कहा है, यह सच-सच बताइये। वे प्रभु मेरे लिये क्या आज्ञा देते हैं? मैं उनकी आज्ञाका पालन करूँगा। उनके कहनेसे अत्यन्त दुष्कर कर्म भी कर सकता हूँ॥ २३-२४॥

शाल्व बोला—राजेन्द्र! यवनेश्वर! मगधराज जरासंधने आपसे जैसी बात कहनेको कहा है, वैसी ही बता रहा हूँ, सुनिये॥ २५॥

जरासंध उवाच

जातोऽयं जगतां बाधी कृष्णः परमदुर्जयः।
विदित्वा तस्य दुर्वृत्तमहं हन्तुं समुद्यतः॥ २६

पार्थिवैर्बहुभिः सार्द्धं समग्रबलवाहनैः।
उपरुध्य महासैन्यैर्गोमन्तमचलोत्तमम्॥ २७

चेदिराजस्य वचनं महार्थं श्रुतवानहम्।
तदा तयोर्विनाशाय हुताशनमयोजयम्॥ २८

ज्वालाशतसहस्राढ्यं युगान्ताग्निसमप्रभम्।
दृष्ट्वा रामो गिरेः कूटादाप्लुतो हेमतालधृक्॥ २९

विनिष्पत्य महासेनां मध्ये सागरसंनिभाम्।
आजघान दुराधर्षो नराश्वरथदन्तिनाम्॥ ३०

सर्पन्तमिव सर्पेन्द्रं विकृष्याकृष्य लाङ्गलम्।
नरनागाश्ववृन्दानि मुसलेन व्यपोथयत्॥ ३१

गजेन गजमास्फाल्य रथेन रथयोधिनम्।
हयेन च हयारोहं पदातेन पदातिनम्॥ ३२

समरे स महातेजा नृपार्कशतसंकुले।
विचरन् विविधान् मार्गान् निदाघे भास्करो यथा॥ ३३

रामादनन्तरं कृष्णः प्रगृह्यार्कसमप्रभम्।
चक्रं चक्रभृतां श्रेष्ठः सिंहः क्षुद्रमृगं यथा॥ ३४

प्रविचाल्य महावीर्यः पादवेगेन तं गिरिम्।
शत्रुसैन्ये पपातोच्चैर्यदुवीरः प्रतापवान्॥ ३५

प्रनृत्यन्निव शैलेन्द्रस्तोयधाराभिषेचितः।
घूर्णमानो विवेशोर्वीं विनिर्वाप्य हुताशनम्॥ ३६

आदीप्यमानशिखरादवप्लुत्य जनार्दनः।
जघान वाहिनीं राजंश्चक्रव्यग्रेण पाणिना॥ ३७

जरासंधका कथन है कि—ये जो परम दुर्जय श्रीकृष्ण प्रकट हुए हैं, सम्पूर्ण जगत्‌को बड़ा कष्ट दे रहे हैं। उनके दुराचारको जानकर मैं उन्हें मार डालनेके लिये उद्यत हुआ था॥ २६॥ बहुत-से राजा अपनी समूची सेना और सवारियाँ लेकर मेरे साथ हो गये थे। उन सबकी विशाल सेनाओंद्वारा मैंने गोमन्त नामक उत्तम पर्वतपर घेरा डाला (क्योंकि उस समय श्रीकृष्ण और बलराम गोमन्तपर ही विद्यमान थे)। घेरा डालनेके बाद मैंने चेदिराज दमघोषका वचन सुना, जो महान् अर्थसे भरा था। तब मैंने उन दोनोंके विनाशके लिये उस पर्वतपर आग लगा दी॥ २७-२८॥ वह आग सैकड़ों और हजारों लपटोंसे प्रज्वलित हो उठी, जो प्रलयकालकी संवर्तक अग्निके समान प्रकाशित हो रही थी। उस आगको देखकर सुवर्णमय तालध्वज धारण करनेवाले बलराम पर्वतके शिखरसे कूद पड़े और समुद्र-जैसी प्रतीत होनेवाली उस विशाल सेनाके मध्यभागमें पहुँचकर हाथी, घोड़े, रथ और पैदलोंका संहार करने लगे। उस समय उन्हें पराजित करना अत्यन्त कठिन हो गया था॥ २९-३०॥ उन्होंने सर्पराजके समान सरकते हुए हलका आकर्षण और विकर्षण करके अर्थात् उस हलद्वारा शत्रुसैनिकोंको ढकेलते और खींचते हुए बहुत-से मनुष्यों, घोड़ों और हाथियोंको मुसलसे मार डाला॥ ३१॥ वे हाथीसे हाथीको, रथसे रथी योद्धाको, घोड़ेसे घुड़सवारको तथा पैदलसे पैदल सिपाहीको मौतके घाट उतार देते थे॥ ३२॥ जैसे ग्रीष्म ऋतुमें सूर्यदेव प्रचण्ड तेजसे सम्पन्न हो जाते हैं, उसी प्रकार सैकड़ों राजारूपी सूर्यसे व्याप्त समराङ्गणमें वे महातेजस्वी बलराम भाँति-भाँतिके पैंतरे दिखाते हुए विचरने लगे॥ ३३॥ बलरामसे छोटे हैं श्रीकृष्ण, जो चक्रधारियोंमें श्रेष्ठ हैं। वे सूर्यके समान तेजस्वी चक्र हाथमें लेकर उसी तरह शत्रुसैनिकोंपर टूट पड़े, जैसे सिंह क्षुद्र मृगोंपर आक्रमण करता है॥ ३४॥ महापराक्रमी प्रतापी यदुवीर श्रीकृष्ण अपने पैरोंके वेगसे उस पर्वतको हिलाकर जब ऊँचे शिखरसे शत्रुओंकी सेनामें कूदे थे, उस समय वह शैलराज नाचता-सा प्रतीत होता था। वह अपने ही अवयवोंसे निकली हुई जलधारासे नहा उठा और सारी आगको बुझाकर चक्कर काटता-सा कुछ दूरतक पृथ्वीमें घुस गया॥ ३५-३६॥ राजन्! पर्वतके जलते हुए शिखरसे नीचे कूदकर श्रीकृष्णने चक्रयुक्त हाथसे राजाओंकी सेनाका संहार आरम्भ किया॥ ३७॥

विक्षिप्य विपुलं चक्रं गदापातादनन्तरम्।
नरनागाश्ववृन्दानि मुसलेन व्यचूर्णयत्॥ ३८

क्रोधानिलसमुद्धूतचक्रलाङ्गलवह्निना।
निर्दग्धा महती सेना नरेन्द्रार्काभिपालिता॥ ३९

नरनागाश्वकलिलं पत्तिध्वजसमाकुलम्।
रथानीकं पदातिभ्यां क्षणेन विदलीकृतम्॥ ४०

सेनां प्रभग्नामालोक्य चक्रानलभयार्दिताम्।
महता रथवृन्देन परिवार्य समन्ततः॥ ४१

तत्राहं युद्ध्यमानस्तु भ्रातास्य बलवान् बली।
स्थितो ममाग्रतः शूरो गदापाणिर्हलायुधः॥ ४२

द्वादशाक्षौहिणीर्हत्वा प्रभिन्न इव केसरी।
हलं सौनन्दमुत्सृज्य गदया मामताडयत्॥ ४३

वज्रपातनिभं वेगं पातयित्वा ममोपरि।
भूयः प्रहर्तुकामो मां वैशाखेनास्थितो महीम्॥ ४४

वैशाखं स्थानमास्थाय गुहः क्रौञ्चं यथा पुरा।
तथा मां दीर्घनेत्राभ्यामीक्षते निर्दहन्निव॥ ४५

तादृग्रूपं समालोक्य बलदेवं रणाजिरे।
जीवितार्थी नृलोकेऽस्मिन् कः पुमान् स्थातुमर्हति॥ ४६

गृहीत्वा स गदां भीमां कालदण्डमिवोद्यताम्।
कालाङ्कुशेन निर्धूतां स्थित एवाग्रतो मम॥ ४७

ततो जलदगम्भीरस्वरेणापूरयन् नभः।
वागुवाचाशरीरेण स्वयं लोकपितामहः॥ ४८

प्रहर्तव्यो न राजायमवध्योऽयं तवानघ।
कल्पितोऽस्य वधोऽन्यस्माद् विरमस्व हलायुध॥ ४९

श्रुत्वाहं तेन वाक्येन चिन्ताविष्टो निवर्तितः।
सर्वप्राणहरं घोरं ब्रह्मणा स्वयमीरितम्॥ ५०

विशाल चक्र फेंककर फिर गदाद्वारा आघात करते थे। तदनन्तर बलराम मुसलसे हाथी, घोड़े और मनुष्योंके समूहोंका कचूमर निकाल देते थे॥ ३८॥ क्रोधरूपी वायुसे प्रज्वलित चक्र और हलरूपी आगसे नरेशरूपी सूर्यद्वारा पालित वह विशाल सेना जलकर भस्म हो गयी॥ ३९॥ इन दो ही पैदल वीरोंने हाथी, घोड़ों और मनुष्योंसे परिपूर्ण एवं पैदलों और ध्वजोंसे व्याप्त रथसमूहका क्षणभरमें ही संहार कर डाला॥ ४०॥ चक्राग्निके भयसे पीड़ित हुई अपनी सेनाको पलायन करती देख मैं विशाल रथसमूहके द्वारा उन दोनोंको सब ओरसे घेरकर युद्ध करने लगा। उस समय श्रीकृष्णके बलवान् भ्राता शूरवीर बलराम हाथमें गदा और हल लिये मेरे सामने खड़े हो गये॥ ४१-४२॥ उन्होंने चोट खाये हुए सिंहके समान कुपित हो मेरी बारह अक्षौहिणी सेनाओंका संहार करके हल और मुसलको तो छोड़ दिया और गदासे ही मुझपर आघात किया॥ ४३॥ उसका वेग वज्रपातके समान था। मेरे ऊपर उस गदाका प्रहार करके वे पुनः मुझपर चोट करनेकी इच्छासे वैशाखी (शक्ति) लेकर पृथ्वीपर खड़े हो गये॥ ४४॥ जैसे पूर्वकालमें कार्तिकेयने क्रौञ्च पर्वतको विदीर्ण किया था, उसी प्रकार वे मेरे मर्मस्थानको लक्ष्य करके शक्ति छोड़नेकी इच्छासे अपने बड़े-बड़े नेत्रोंद्वारा मेरी ओर इस तरह देखने लगे, मानो मुझे जलाकर भस्म कर डालेंगे॥ ४५॥ रणभूमिमें बलदेवके वैसे स्वरूपको देखकर अपने जीवनकी इच्छा रखनेवाला इस मनुष्यलोकका कौन पुरुष उनके सामने ठहर सकता है॥ ४६॥ फिर कालदण्डके समान उठी हुई भयानक गदाको हाथमें लेकर वे मेरे सामने खड़े हो गये। वह गदा कालकी प्रेरणासे घुमायी जा रही थी॥ ४७॥ इसी बीचमें साक्षात् लोकपितामह ब्रह्माजी मेघके समान गम्भीर स्वरसे आकाशको पूर्ण करते हुए अदृश्यरूपसे बोले—'अनघ! इस राजापर प्रहार न करना। यह तुम्हारे लिये अवध्य है। इसका वध दूसरेके हाथसे निश्चित किया गया है, अतः हलधारी बलराम! तुम प्रहारसे विरत हो जाओ'॥ ४८-४९॥ यह सुनकर उस आकाशवाणीके कारण मैं चिन्तामें निमग्न हो गया और युद्धसे लौट पड़ा; क्योंकि साक्षात् ब्रह्माजीने वह ऐसा घोर वचन सुनाया था, जो मेरी सम्पूर्ण प्राणशक्तिको हर लेनेवाला था॥ ५०॥

तेनाहं वः प्रवक्ष्यामि नृपाणां हितकाम्यया।
श्रुत्वा त्वमेव राजेन्द्र कर्तुमर्हसि तद् वचः ॥ ५१

तपसोग्रेण महता पुत्रार्थी तोष्य शङ्करम्।
प्राप्तवान् देवदेवं त्वामवध्यं माथुरैर्जनैः ॥ ५२

महामुनिश्चायसचूर्णमश्न-
न्नुपस्थितो द्वादशवार्षिकं व्रतम्।
सुरासुरैः संस्तुतपादपङ्कजः
स लब्धवानीप्सित कामसम्पदम् ॥ ५३

तपोबलाद् गार्ग्यमुनेर्महात्मनो
वरप्रभावाच्छकलेन्दुमौलिनः ।
भवन्तमासाद्य जनार्दनो हिमं
विलीयते भास्कररश्मिना यथा ॥ ५४

यतस्व राज्ञां वचनप्रचोदितो
व्रजस्व यात्रां विजयाय केशवम्।
प्रविश्य राष्ट्रं मथुरां च सेनया
निहत्य कृष्णं प्रथयन् स्वकं यशः ॥ ५५

माथुरो वासुदेवोऽयं बलदेवः सबान्धवः।
तौ विजेष्यसि संग्रामे गत्वा तां मथुरां पुरीम् ॥ ५६

शाल्व उवाच

इत्येवं नरपतिभास्करप्रगीतं
वाक्यं ते कथितमिदं हितं नृपाणाम्।
तत्सर्वं सह सचिवैर्विमृश्य बुद्ध्या
यद्युक्तं कुरु मनुजेन्द्र चात्मनिष्ठम् ॥ ५७

राजेन्द्र! इसलिये मैं तुमसे समस्त नरेशोंके हितकी कामनासे कुछ कहना चाहता हूँ, उसे सुनकर तुम्हीं उसे पूर्ण कर सकते हो ॥ ५१ ॥ महामुनि गार्ग्य, जिनके चरणारविन्दोंकी स्तुति देवता और असुर भी करते हैं; बारह वर्षोंतक ब्रह्मचर्यव्रतका पालन करनेके पश्चात् लोहचूर्ण खाकर तपस्या करने लगे। मनमें पुत्रकी कामना रखकर उस उग्र एवं महान् तपके द्वारा भगवान् शङ्करको संतुष्ट करके उनसे उन्होंने अपनी अभीष्ट कामसम्पत्तिके रूपमें देवराजतुल्य तुमको प्राप्त किया। तुम मथुरामण्डलमें उत्पन्न होनेवाले लोगोंके लिये अवध्य हो ॥ ५२-५३ ॥ महामुनि गार्ग्यके तपोबल और चन्द्रार्धशेखर भगवान् शिवके वरदानसे तुम्हारा प्राकट्य हुआ है। तुमसे टक्कर लेनेपर श्रीकृष्ण उसी प्रकार नष्ट हो जायँगे, जैसे बर्फ सूर्यकी किरणोंसे गल जाता है ॥ ५४ ॥ राजन्! तुम राजाओंके वचनोंसे प्रेरित हो श्रीकृष्णको जीतनेका प्रयत्न करो। उनपर विजय पानेके लिये मथुरापर चढ़ाई कर दो। अपनी सेनाद्वारा मथुराके राज्य और नगरमें प्रवेश करके श्रीकृष्णको मारकर अपने यशका विस्तार करो ॥ ५५ ॥ वसुदेवपुत्र श्रीकृष्ण और बलदेव अपने बन्धु-बान्धवोंसहित माथुर ही हैं; तुम मथुरापुरीपर चढ़ाई करके उन दोनों भाइयोंको युद्धमें जीत लोगे ॥ ५६ ॥

शाल्व कहता है—नरेन्द्र! राजाओंमें सूर्यके समान प्रकाशित होनेवाले जरासंधने इस प्रकार जो सम्पूर्ण नरेशोंके लिये हितकारक बात कही है, वह मैंने तुम्हें कह सुनायी। तुम अपने मन्त्रियोंके साथ बैठकर उन सारी बातोंपर बुद्धिपूर्वक विचार करके जो अपने लिये लाभदायक और उचित जान पड़े, वह करो ॥ ५७ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे विष्णुपर्वणि शाल्ववाक्ये त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५३ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत विष्णुपर्वमें शाल्वका वाक्यविषयक तिरपनवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ५३ ॥

चतुष्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः

कालयवनका राजाओंका अनुरोध स्वीकार करके श्रीकृष्णपर विजय पानेके लिये मथुराको प्रस्थान

वैशम्पायन उवाच

एवं कथयमानं तं शाल्वराजं नृपाज्ञया।
उवाच परमप्रीतो यवनाधिपतिर्नृपः॥ १

कालयवन उवाच

धन्योऽस्म्यनुगृहीतोऽस्मि सफलं जीवितं मम।
कृष्णनिग्रहहेतोर्यन्नियुक्तो बहुभिर्नृपैः॥ २

दुर्जयस्त्रिषु लोकेषु सुरासुरगणैरपि।
तस्य निग्रहहेतोर्मामवधार्य जयाशिषम्॥ ३

प्रहृष्टै राजसिंहैस्तैरवधार्यो जयो मम।
तेषां वाचाम्बुवर्षेण विजयो मे भविष्यति॥ ४

करिष्ये वचनं तेषां नृपसत्तमचोदितम्।
पराजयोऽपि राजेन्द्र जयेन सदृशो मम॥ ५

अद्यैव तिथिनक्षत्रं मुहूर्तं करणं शुभम्।
यास्यामि मथुरां राजन् विजेतुं केशवं रणे॥ ६

वैशम्पायन उवाच

एवमाभाष्य राजानं सौभस्य पतिमूर्जितम्।
सत्कृत्य च यथान्यायं महार्हमणिभूषणैः॥ ७

ब्राह्मणेभ्यो ददौ वित्तं सिद्ध्यादेशाय वै नृपः।
पुरोहिताय राजेन्द्र प्रददौ बहुशो धनम्॥ ८

हुत्वाग्निं विधिवद् राजा कृतकौतुकमङ्गलः।
प्रस्थानं कृतवान् सम्यग् जेतुकामो जनार्दनम्॥ ९

शाल्वोऽपि भरतश्रेष्ठ कृतार्थो हृष्टमानसः।
यवनेन्द्रं परिष्वज्य जगाम स्वपुरं नृपः॥ १०

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! नरेशोंकी आज्ञाके अनुसार शाल्वराजने जब उपर्युक्त बात कही, तब यवनोंके अधिपति राजा कालयवनने अत्यन्त प्रसन्न होकर कहा॥ १॥

कालयवन बोला—बहुत-से राजाओंने मिलकर जो मुझे श्रीकृष्णके निग्रहके लिये नियुक्त किया है, इससे मैं धन्य हो गया। यह उन सबका मुझपर महान् अनुग्रह है। आज मेरा जीवन सफल हो गया॥ २॥ जो तीनों लोकोंमें देवताओं और असुरोंके लिये भी दुर्जय हैं, उन्हींके निग्रहके लिये मुझे भेजनेका निश्चय किया गया और मुझे विजयसूचक आशीर्वाद भी प्राप्त हुआ। हर्षमें भरे हुए उन राजसिंहोंने यदि मेरी विजयका निश्चय किया है तो उनके वचनामृतकी वर्षासे मेरी जीत अवश्य होगी॥ ३-४॥ राजेन्द्र! मैं नृपश्रेष्ठ जरासंधके कथनानुसार उन राजाओंके वचनका पालन अवश्य करूँगा। इस युद्धमें यदि मेरी पराजय भी हुई तो वह मेरे लिये विजयके ही समान होगी॥ ५॥ राजन्! मैं आजकी तिथि, नक्षत्र, मुहूर्त और करणको शुभ मानकर श्रीकृष्णको युद्धमें जीतनेके लिये आज ही मथुराको प्रस्थान करूँगा॥ ६॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! सौभविमानके अधिपति बलवान् राजा शाल्वसे ऐसा कहकर कालयवनने बहुमूल्य मणिमय आभूषणोंद्वारा उसका यथोचित सत्कार किया। राजेन्द्र! तत्पश्चात् उस राजाने सिद्धिसूचक आशीर्वाद प्राप्त करनेके लिये ब्राह्मणोंको धन दान दिया और पुरोहितको बहुत-सा धन अर्पित किया॥ ७-८॥ तदनन्तर विधिपूर्वक अग्निमें आहुति करके यात्राकालिक मङ्गलाचार सम्पन्न करनेके पश्चात् राजा कालयवनने जनार्दन श्रीकृष्णपर भलीभाँति विजय पानेके लिये वहाँसे प्रस्थान किया॥ ९॥ भरतश्रेष्ठ! इधर राजा शाल्व भी कृतार्थ एवं प्रसन्नचित्त हो यवनराजको हृदयसे लगाकर अपने नगरको चला गया॥ १०॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे विष्णुपर्वणि कालयवनवाक्ये चतुष्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः॥ ५४॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत विष्णुपर्वमें कालयवनका वाक्यविषयक चौवनवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ५४॥

पञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

गरुड़का श्रीकृष्णके निवासयोग्य भूमि देखनेके लिये जाना, मथुरामें राजेन्द्र श्रीकृष्णका स्वागत, श्रीकृष्णद्वारा राजा उग्रसेन तथा मथुरावासियोंका सत्कार एवं गरुड़का लौटकर कुशस्थलीके विषयमें बताना

जनमेजय उवाच

विदर्भनगराद् याते शक्रतुल्यपराक्रमे।
किमर्थं गरुडो नीतः किं च कर्म चकार सः॥ १

न चारुरोह भगवान् वैनतेयं महाबलम्।
एतन्मे संशयं ब्रह्मन् ब्रूहि तत्त्वं महामुने॥ २

वैशम्पायन उवाच

शृणु राजन् सुपर्णेन कृतं कर्मातिमानुषम्।
विदर्भनगरीं गत्वा वैनतेयो महाद्युतिः॥ ३

असम्प्राप्ते च नगरीं मथुरां मधुसूदने।
मनसा चिन्तयामास वैनतेयो महाद्युतिः॥ ४

यदुक्तं देवदेवेन नृपाणामग्रतः प्रभो।
यास्यामि मथुरां रम्यां भोजराजेन पालिताम्॥ ५

इति तद्वचनस्यान्ते गमिष्येति विचिन्तयन्।
कृताञ्जलिपुटः श्रीमान् प्रणिपत्याब्रवीदिदम्॥ ६

गरुड उवाच

देव यास्यामि नगरीं रैवतस्य कुशस्थलीम्।
रैवतं च गिरिं रम्यं नन्दनप्रतिमं वनम्॥ ७

रुक्मिणोद्वासितां रम्यां शैलोदधितटाश्रयाम्।
वृक्षगुल्मलताकीर्णां पुष्परेणुविभूषिताम्॥ ८

गजेन्द्रभुजगाकीर्णामृक्षवानरसेविताम्।
वराहमहिषाक्रान्तां मृगयूथैरनेकशः॥ ९

तां समन्तात् समालोक्य वासार्थं ते क्षमां क्षमा।
यदि स्याद् भवतो रम्या प्रशस्ता नगरीति च॥ १०
कण्टकोद्धरणं कृत्वा आगमिष्ये तवान्तिकम्।

जनमेजयने पूछा—इन्द्रके तुल्य पराक्रमी भगवान् श्रीकृष्ण जब विदर्भ नगरसे मथुराको गये, उस समय अपने साथ गरुड़को क्यों ले गये और गरुड़ने वहाँ जाकर कौन-सा कार्य सम्पन्न किया?॥ १॥ महामुने! ब्रह्मन्! भगवान् श्रीकृष्ण महाबली गरुड़पर आरूढ़ क्यों नहीं हुए? यह मेरा संशय है। आप इसका ठीक-ठीक समाधान करें॥ २॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन्! महातेजस्वी विनतानन्दन गरुड़ने विदर्भनगरमें जाकर ऐसा कार्य किया था, जो मानवीय शक्तिसे परेकी वस्तु है॥ ३॥ प्रभो! मधुसूदन श्रीकृष्ण विदर्भनगरसे चलकर अभी मार्गमें ही थे, मथुरापुरी नहीं पहुँचे थे। तभी महातेजस्वी गरुड़ने मन-ही-मन विचार किया कि देवाधिदेव श्रीहरिने सब राजाओंके सामने जो कहा था कि 'मैं भोजराज उग्रसेनके द्वारा पालित रमणीय नगरी मथुराको जाऊँगा' उनके उस कथनके अन्तमें 'चलूँगा' यह कहकर मैंने भी चलना स्वीकार कर लिया था। यही सोचते हुए गरुड़को एक कार्य सूझ गया और उन तेजस्वी पक्षिराजने दोनों हाथ जोड़ भगवान्को प्रणाम करके इस प्रकार कहा—॥ ४—६॥

गरुड़ बोले—देव! मैं राजा रैवतकी कुशस्थली नगरीको जाऊँगा। वहाँ रमणीय रैवत गिरि है, जहाँ नन्दनके समान मनोहर वन है॥ ७॥ रुक्मीने पर्वत और समुद्रतटका आश्रय लेकर बसी हुई उस रमणीय नगरीको उजाड़ दिया है। वहाँ हरे-भरे वृक्ष, गुल्म और लताएँ फैली हुई हैं। फूलोंके पराग उसकी शोभा बढ़ाते हैं॥ ८॥ वहाँ हाथी और सर्प भरे हुए हैं। रीछ तथा वानर उसका सेवन करते हैं। वाराह, भैंसे तथा मृगोंके अनेकानेक झुंड वहाँ वास करते हैं॥ ९॥ उस भूमिका सब ओरसे निरीक्षण करके मैं यह देखूँगा कि वह आपके निवासके लिये उपयुक्त है या नहीं। यदि वह आपके योग्य रमणीय या उत्तम नगरी हो सकेगी, तो वहाँके कण्टकोंको (आपके मार्गका अवरोध करनेवाले शत्रुओंको) उखाड़ फेंकूँगा और आपके पास लौट आऊँगा॥ १० $\frac{१}{२}$॥

वैशम्पायन उवाच

एवं विज्ञाप्य देवेशं प्रणिपत्य जनार्दनम्॥ ११
जगाम पतगेन्द्रोऽपि पश्चिमाभिमुखो बली।
कृष्णोऽपि यदुभिः सार्द्धं विवेश मथुरां पुरीम्॥ १२
स्वैरिण्य उग्रसेनश्च नागराश्चैव सर्वशः।
प्रत्युद्गम्यार्चयन् कृष्णं प्रहृष्टजनसंकुलम्॥ १३

जनमेजय उवाच

श्रुत्वाभिषिक्तं राजेन्द्रं बहुभिर्वसुधाधिपैः।
किं चकार महाबाहुरुग्रसेनो महीपतिः॥ १४

वैशम्पायन उवाच

श्रुत्वाभिषिक्तं राजेन्द्रं बहुभिः पार्थिवोत्तमैः।
इन्द्रेण कृतसंधानं दूतं चित्राङ्गदं कृतम्॥ १५
एकैकं नृपतेर्भागं शतसाहस्त्रसम्मितम्।
राजेन्द्रे त्वर्बुदं दत्तं मानवेषु च वै दश॥ १६
ये तत्र समनुप्राप्ता न रिक्तास्ते गृहं गताः।
शङ्खो यादवरूपेण प्रददौ हरिचिन्तितम्॥ १७
एवं निधिपतिः श्रीमान् दैवतैरनुमोदितः।
इति श्रुत्वात्मिकजनाल्लोकप्रवृत्तिकान्नरात्॥ १८
चकार महतीं पूजां देवतायतनेष्वपि।
वसुदेवस्य भवने तोरणोभयपार्श्वतः॥ १९
नटानां नृत्यगेयानि वाद्यानि च समन्ततः।
पताकध्वजमालाढ्यां कारयामास वै नृपः॥ २०
कंसराजस्य च सभां विचित्राम्बरसुप्रभाम्।
पताका विविधाकारा दापयामास भोजराट्॥ २१
तोरणं गोपुरं चैव सुधापङ्कानुलेपनम्।
कारयामास राजेन्द्रो राजेन्द्रस्यासनालयम्॥ २२
नटानां नृत्यगेयानि वाद्यानि च समन्ततः।
पताका वनमालाढ्याः पूर्णकुम्भाः समन्ततः॥ २३
राजमार्गेषु राजेन्द्र चन्दनोदकसेचितम्।
वस्त्राभरणकं राजा दापयामास भूतले॥ २४

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! इस प्रकार अपना अभिप्राय निवेदन करके देवेश्वर जनार्दनको प्रणाम करनेके अनन्तर बलवान् पक्षिराज गरुड़ पश्चिम दिशाकी ओर चल दिये॥ ११½॥ इधर श्रीकृष्ण भी यदुवंशियोंके साथ मथुरापुरीमें जा पहुँचे। उस समय राजा उग्रसेन, नर्तकियाँ तथा मथुराके नागरिक सबने आगे बढ़कर हृष्ट-पुष्ट मनुष्योंके साथ आये हुए श्रीकृष्णका स्वागत-सत्कार किया॥ १२-१३॥

जनमेजयने पूछा—बहुत-से राजाओंने मिलकर श्रीकृष्णका राजेन्द्रपदपर अभिषेक किया है—यह समाचार सुनकर महाबाहु राजा उग्रसेनने क्या किया?॥ १४॥

वैशम्पायनजीने कहा—बहुत-से श्रेष्ठ नरेशोंने मिलकर श्रीकृष्णका राजेन्द्रके पदपर अभिषेक किया है। इन्द्रका अभिप्राय निवेदन करनेके लिये चित्राङ्गद दूत बनकर आये थे। एक-एक राजाको एक-एक लाख मुद्राएँ पुरस्कारमें दी गयीं। जो राजेन्द्र था, उसे एक अर्बुद (दस करोड़) दिया गया तथा साधारण मनुष्योंको भी दस-दस हजार रुपये दिये गये। जो वहाँ पहुँच गये थे, वे खाली हाथ घर नहीं लौटे। श्रीमान् निधिपति शङ्ख ही यादवरूपसे उपस्थित हो भगवान् श्रीकृष्णकी इच्छाके अनुसार धन देता था और सम्पूर्ण देवता इसका अनुमोदन करते थे॥ १५—१७½॥ यह समाचार आत्मीय जनोंसे सुनकर तथा लोकवृत्तान्तकी जानकारी करानेवाले गुप्तचरके मुखसे जानकर उग्रसेनने देवमन्दिरोंमें विशेष रूपसे पूजाकी व्यवस्था करायी। वसुदेवके भवनके दोनों बगलमें तोरण लगे और सब ओर नटोंके नाच-गान होने और बाजे बजने लगे। राजा उग्रसेनने कंसराजकी सभाको विचित्र वस्त्रोंसे सुसज्जित तथा ध्वजा-पताका एवं मालाओंसे अलंकृत कराया। भोजराजने सब ओर भाँति-भाँतिकी पताकाएँ लगवायीं और प्रत्येक फाटक एवं गोपुरको चूनेसे लिपवाया। इस प्रकार राजेन्द्र उग्रसेनने राजेन्द्र श्रीकृष्णके लिये सिंहासन और भवन तैयार करवाया॥ १८—२२॥ राजेन्द्र! नगरमें चारों ओर नाच-गान होने और बाजे बजने लगे। राजमार्गोंपर चन्दनयुक्त जलका छिड़काव किया गया था और वहाँ चारों ओर जलसे भरे हुए कलश रखे गये थे। उन कलशोंको पताका और वनमालाओंसे अलंकृत किया गया था। राजा उग्रसेनने भूतलपर पाँवड़ेके रूपमें वस्त्र बिछवा दिये

धूपं पार्श्वोभये चैव चन्दनागुरुगुग्गुलैः।
गुडं सर्जरसं चैव दह्यमानं ततस्ततः॥ २५

वृद्धस्त्रीजनसंघैश्च गायद्भिः स्तुतिमङ्गलम्।
अर्घं कृत्वा प्रतीक्षन्ते स्वेषु स्थानेषु योषितः॥ २६

एवं कृत्वा पुरानन्दमुग्रसेनो नराधिपः।
वसुदेवगृहं गत्वा प्रियाख्यानं निवेद्य च॥ २७

रामेण सह सम्मन्त्र्य निर्गतो रथमन्तिकम्।
तस्मिन्नेवान्तरे राजञ्शङ्खध्वनिरभून्महान्॥ २८

पाञ्चजन्यस्य निनदं श्रुत्वा मधुरवासिनः।
स्त्रियो वृद्धाश्च बालाश्च सूता मागधवन्दिनः॥ २९

विनिर्ययुर्महासेना रामं कृत्वाग्रतो नृप।
अर्घ्यं पाद्यं पुरस्कृत्य उग्रसेनेन धीमता॥ ३०

दृष्टिपन्थानमासाद्य उग्रसेनो महीपतिः।
अवतीर्य रथाच्छुभ्रात् पादमार्गेण चाग्रतः॥ ३१

दृष्ट्वाऽऽसीनं रथे रम्ये दिव्यरत्नविभूषितम्।
अङ्गेष्वाभरणं चैव दिव्यरत्नप्रभायुतम्॥ ३२

वनमालोरसं दिव्यं तपन्तमिव भास्करम्।
चामरं व्यजनं छत्रं खगेन्द्रध्वजमुच्छ्रितम्॥ ३३

राजलक्षणसम्पूर्णमासन्नार्कमिवोज्ज्वलम्।
श्रियाभिभूतं देवेशं दुर्निरीक्ष्यतरं हरिम्॥ ३४

दृष्ट्वा स राजा राजेन्द्र हर्षगद्गदया गिरा।
बभाषे पुण्डरीकाक्षं रामं बलनिषूदनम्॥ ३५

रथेन न मया गन्तुं युक्तपूर्वेति चिन्त्य वै।
अवतीर्णो महाभाग गच्छ त्वं स्यन्दनेन च॥ ३६

विष्णुना छद्मरूपेण गत्वेमां मथुरां पुरीम्।
अनुप्रकाशितात्मानं देवेन्द्रत्वं नृपार्णवे॥ ३७

और वहाँ फूलोंकी मालाएँ रखवा दी थीं तथा सड़कोंके दोनों बगल चन्दन, अगुरु और गुग्गुलकी धूप जलवायी। जहाँ-तहाँ राल और गुड़ जलाये जा रहे थे॥ २३—२५॥ बूढ़ी स्त्रियोंके समुदाय स्थान-स्थानपर स्तुति और मङ्गल गाते थे। उनके साथ ही युवतियाँ अपने-अपने घरोंपर अर्घ्य सजाकर श्रीकृष्णके शुभागमनकी बाट जोह रही थीं॥ २६॥ इस प्रकार राजा उग्रसेन नगरमें आनन्दोत्सवकी व्यवस्था करके वसुदेवके घरपर गये और श्रीकृष्णके अभिषेक तथा आगमनका प्रिय समाचार निवेदन करके बलरामके साथ सलाहकर श्रीकृष्णके रथके निकट चले। राजन्! नरेश्वर! इसी बीचमें बड़े जोरसे शङ्ख-ध्वनि सुनायी दी। पाञ्चजन्यका गम्भीर नाद सुनकर मधुपुरवासी स्त्री, बालक, वृद्ध, सूत, मागध और वन्दी बलरामजीको आगे करके विशाल सेनाके साथ अर्घ्य-पाद्य आदि लिये नगरसे बाहर निकले। इन सबके साथ बुद्धिमान् राजा उग्रसेन भी थे॥ २७—३०॥ श्रीकृष्णके दृष्टिपथमें आकर राजा उग्रसेन अपने उज्ज्वल रथसे उतर पड़े और पैदल ही आगे बढ़े॥ ३१॥ उन्होंने देखा, भगवान् श्रीकृष्ण एक रमणीय रथपर विराजमान हैं। दिव्य रत्नमय आभूषणोंसे विभूषित हैं। उनके अङ्गोंके आभूषण दिव्य रत्नोंकी प्रभासे प्रकाशित हो रहे हैं। उनके वक्षःस्थलपर वनमाला विराज रही है। वे दिव्य रूपधारी श्रीहरि तपते हुए सूर्यके समान जान पड़ते हैं। उनके दोनों पार्श्वमें चँवर और व्यजन डुलाये जाते हैं। सिरपर छत्र तना हुआ है। रथपर ऊँचा गरुड़ध्वज फहरा रहा है। वे समस्त राजोचित लक्षणोंसे सम्पन्न हैं और निकट आये हुए सूर्यके समान दिव्य ज्योतिसे जाज्वल्यमान हो रहे हैं। अद्भुत शोभासे व्याप्त दिखायी देते हैं। उन देवेश्वर श्रीहरिकी ओर देखना भी अत्यन्त कठिन हो रहा है॥ ३२—३४॥ राजेन्द्र! भगवान् श्रीकृष्णको इस रूपमें देखकर राजा उग्रसेन शत्रुसैन्यहन्ता कमलनयन बलरामजीसे हर्षगद्गद वाणीमें बोले—॥ ३५॥ 'महाभाग! मैंने पहलेसे ही यह सोच लिया है कि मुझे रथपर बैठकर भगवान्‌के सामने नहीं जाना चाहिये। अतः तुम्हीं रथसे यात्रा करो।' ऐसा कहकर वे रथसे उतर गये॥ ३६॥ उतरकर वे फिर बोले—भगवान् विष्णु छद्मरूप धारण करके इस मथुरापुरीमें आये थे। इन्होंने राजाओंके समुद्रमें जाकर अपने देवेन्द्र-रूपको प्रकाशित किया है;

तमहं स्तोतुमिच्छामि सर्वभावेन केशवम्।
प्रत्युवाच महातेजा राजानं कृष्णपूर्वजः॥ ३८

न युक्तं नृपते स्तोतुं व्रजन्तं देवसत्तमम्।
विना स्तोत्रेण संतुष्टस्तव राजञ्जनार्दनः॥ ३९

तुष्टस्य स्तुतिना किं ते दर्शनेन तव स्तुतिः।
राजेन्द्रत्वमनुप्राप्य आगतस्तव वेश्मनि॥ ४०

न त्वया स्तुतवान् राजन् दिव्यैः स्तोत्रैरमानुषैः।
एवमाब्रुवमाणौ तौ सम्प्राप्तौ केशवान्तिकम्॥ ४१

अर्घोद्यतभुजं दृष्ट्वा स्थापयित्वा रथोत्तमम्।
उवाच वदतां श्रेष्ठ उग्रसेनं नराधिपम्॥ ४२

यन्मया चाभिषिक्तस्त्वं मथुरेशो भवत्विति।
न युक्तमन्यथा कर्तुं मथुराधिपते स्वयम्॥ ४३

अर्घ्यमाचमनीयं च पाद्यं चास्मै निवेदितम्।
न दातुमर्हसे राजन्नेष मे मनसः प्रियः॥ ४४

तवाभिप्रायं विज्ञाय ब्रवीमि नृपते वचः।
त्वमेव माथुरो राजा नान्यथा कर्तुमर्हसि॥ ४५

स्थानभागं च नृपते दास्यामि तव दक्षिणम्।
यथा नृपाणां सर्वेषां तथा ते स्थापितोऽग्रतः॥ ४६

शतसाहस्त्रिको भागो वस्त्राभरणवर्जितः।
आरुहस्व रथं शुभ्रं चामीकरविभूषितम्॥ ४७

चामरं व्यजनं छत्रं ध्वजं च मनुजेश्वर।
दिव्याभरणसंयुक्तं मुकुटं भास्करप्रभम्॥ ४८

धारयस्व महाभाग पालयस्व पुरीमिमाम्।
पुत्रपौत्रैः प्रमुदितो मथुरां परिपालय॥ ४९

जित्वारिगणसंघांश्च भोजवंशं विवर्द्धय।
देवदेवाद्यनन्ताय शौरिणे वज्रपाणिना॥ ५०

प्रेषितं देवराजेन दिव्याभरणमम्बरम्।
माथुराणां च सर्वेषां भागा दीनारका दश॥ ५१

अतः मैं केशवकी सर्वतोभावसे स्तुति करना चाहता हूँ। तब श्रीकृष्णके बड़े भाई महातेजस्वी बलरामने राजा उग्रसेनको इस प्रकार उत्तर दिया—'नरेश्वर! यहाँ आते हुए देवप्रवर श्रीकृष्णकी स्तुति करना आपके लिये उचित नहीं है। राजन्! आपपर तो श्रीकृष्ण बिना स्तुतिके ही संतुष्ट हैं। जब वे संतुष्ट ही हैं तो उनकी स्तुतिसे आपको क्या लेना है। आपके दर्शनमात्रसे ही उनकी स्तुति हो गयी। राजन्! श्रीकृष्ण राजेन्द्रका पद पाकर आपके घर आ रहे हैं; इसलिये आप अमानुषिक दिव्य स्तुतियोंद्वारा उनकी स्तुति करें—यह आपके लिये उचित नहीं है। इस तरह बातचीत करते हुए वे दोनों श्रीकृष्णके निकट जा पहुँचे। राजा उग्रसेनको हाथमें अर्घ्य लिये खड़ा देख वक्ताओंमें श्रेष्ठ श्रीकृष्ण अपने उत्तम रथको ठहराकर उनसे इस प्रकार बोले— ॥ ३७—४२ ॥ 'मथुरापते! मैंने जो आपका इसलिये अभिषेक किया था कि आप मथुराराज्यके स्वामी हों, उसे आप स्वयं ही मटियामेट कर दें—यह आपके लिये उचित नहीं है॥ ४३॥ राजन्! मैंने आपको अर्घ्य, पाद्य और आचमनीय निवेदन किया है। अतः आप मुझे ये सब वस्तुएँ न दें—यही मेरे मनको प्रिय है॥ ४४॥ नरेश्वर! मैं आपके मनोभावको जानकर कहता हूँ। आप ही मथुराके राजा हैं और रहेंगे। इसे अन्यथा करना आपके लिये उचित नहीं है॥ ४५॥ महाराज! मैं आपको पुरस्कारके रूपमें नियत धनका भाग अर्पित करूँगा। जैसे अन्य सब राजाओंको दिया गया है, वैसे आपके लिये भी सामने रखा हुआ है॥ ४६॥ वस्त्र और आभूषण छोड़कर केवल एक लाख स्वर्ण (दीनार) आपके हिस्सेमें अर्पित हैं। अब आप इस स्वर्णभूषित शुभ्र रथपर आरूढ़ होइये॥ ४७॥ 'महाभाग! मनुजेश्वर! चँवर, व्यजन, छत्र, ध्वज और दिव्य आभूषणोंसहित सूर्यके समान प्रकाशमान मुकुट धारण कीजिये। साथ ही इस पुरीका पालन करते रहिये। आप पुत्रों और पौत्रोंके साथ आनन्दित रहकर मथुरापुरीका पालन कीजिये। शत्रुगणोंको पराजित करके भोजवंशको बढ़ाइये। 'व्रजधारी इन्द्रने शूरसेनके कुलमें उत्पन्न हुए देवताओंके भी देवता, सबके आदि कारण शेष-स्वरूप बलरामजीके लिये दिव्य वस्त्र और आभूषण भेजा है। 'मथुराके सभी नागरिकोंके लिये पृथक्-पृथक् दस-दस दीनार[1] सुवर्णके भाग नियत किये गये हैं।

१. एक हजार स्वर्णमुद्राओंका एक दीनार होता है। इसके अनुसार मथुराके प्रत्येक नागरिकको दस-दस हजार स्वर्णमुद्राएँ अर्पित की गयीं।

सूतमागधबन्दीनामेकैकस्य सहस्रकम्।
वृद्धस्त्रीजनसंघानां गणिकानां शतं शतम्॥ ५२

नृपेण सह तिष्ठन्ति विकद्रुप्रमुखाश्च ये।
दशसाहस्रिको भागस्तेषां धात्रा प्रकल्पितः॥ ५३

वैशम्पायन उवाच

एवं सम्पूज्य राजानं माथुराणां चमूमुखे।
कृत्वा सुमहदानन्दां मथुरां मधुसूदनः॥ ५४

दिव्याभरणमाल्यैश्च दिव्याम्बरविलेपनैः।
दीप्यमानाः समन्ताच्च देवा इव त्रिविष्टपे॥ ५५

भेरीपटहनादेन शङ्खदुन्दुभिनिःस्वनैः।
बृंहितेन च नागानां हयानां हेषितेन च॥ ५६

सिंहनादेन शूराणां रथनेमिस्वनेन च।
तुमुलः सुमहानासीन्मेघनाद इवाम्बरे॥ ५७

बन्दिभिः स्तूयमानं च नमश्चक्रुरपि प्रजाः।
दत्त्वा दानमनन्तं च न ययौ विस्मयं हरिः॥ ५८

स्वभावोन्नतभावत्वाद् दृष्टपूर्वात् ततोऽधिकम्।
अनहंकारभावाच्च विस्मयं न जगाम ह॥ ५९

दीप्यमानं स्ववपुषा आयान्तं भास्करप्रभम्।
दृष्ट्वा मथुरवासिन्यो नमश्चक्रुः पदे पदे॥ ६०

एष नारायणः श्रीमान् क्षीरार्णवनिकेतनः।
नागपर्यङ्कमुत्सृज्य प्राप्तोऽयं मथुरां पुरीम्॥ ६१

बद्ध्वा बलिं महावीर्यं दुर्जयं त्रिदशैरपि।
शक्राय प्रददौ राज्यं त्रैलोक्यं वज्रपाणये॥ ६२

सूत, मागध और बन्दीजनोंमेंसे एक-एकको एक-एक हजार दीनार प्राप्त होंगे। मङ्गल गानेवाली बूढ़ी स्त्रियों तथा नर्तकियोंको सौ-सौ दीनार दिये जायँगे। विकद्रु आदि जो प्रमुख यादव राजा उग्रसेनके साथ रहते हैं, उनमेंसे प्रत्येकका भाग इन्द्रने दस-दस हजार दीनार नियत किया है'॥ ४८—५३॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! इस प्रकार मथुरावासियोंकी सेनाके मुहानेपर राजा उग्रसेनका सम्मान करके भगवान् मधुसूदनने सारी मथुराको महान् आनन्दसे परिपूर्ण करते हुए उसमें प्रवेश किया॥ ५४॥ जैसे स्वर्गमें देवता शोभा पाते हैं, उसी प्रकार मथुरामें भगवान् श्रीकृष्ण और वहाँके नागरिक दिव्य आभूषणों, दिव्य पुष्पोंकी मालाओं तथा दिव्य वस्त्र और चन्दनोंसे अलंकृत हो सब ओर प्रकाशित हो रहे थे॥ ५५॥ 'भेरी, पटह, शङ्ख और दुन्दुभि आदि वाद्योंकी ध्वनिके साथ हाथियोंके चिग्घाड़ने, घोड़ोंके हींसने, शूरवीरोंके सिंहनाद करने तथा रथके पहियोंकी घरघराहट होनेसे जो सम्मिलित महान् शब्द होता था, वह आकाशमें मेघोंकी गर्जनाके समान प्रतीत होता था॥ ५६-५७॥ बन्दीजन भगवान्‌की स्तुति करते थे और प्रजावर्गके लोग उनके चरणोंमें मस्तक झुकाते थे। उस समय धनका अनन्त दान करके भी श्रीहरिको कोई विस्मय या गर्व नहीं हुआ॥ ५८॥ एक तो स्वभावसे ही उनका ऊँचा भाव था। वे उससे पहले उसकी अपेक्षा भी अधिक धनका दान देख चुके थे और स्वाभाविक ही उन्हें अहंकार छू नहीं गया था; इसलिये उनको विस्मय या गर्व नहीं हुआ॥ ५९॥ अपने इस शरीरसे प्रकाशित होते हुए सूर्यतुल्य तेजस्वी भगवान् श्रीकृष्णको आते देख मथुरावासी स्त्रियाँ पग-पगपर उन्हें नमस्कार करती थीं॥ ६०॥ (उस समय मथुरावासी आपसमें इस प्रकार कहते थे) 'ये ही क्षीरसमुद्रमें निवास करनेवाले श्रीमान् भगवान् नारायण हैं, जो इस समय शेषशय्याका परित्याग करके मथुरापुरीमें आ गये हैं॥ ६१॥ इन्होंने देवताओंके लिये भी दुर्जय महापराक्रमी राजा बलिको बाँधकर वज्रधारी इन्द्रको त्रिलोकीका राज्य दे दिया था'॥ ६२॥

हत्वा दैत्यगणान् सर्वान् कंसं च बलिनां वरम्।
भोजराजाय मथुरां दत्त्वा केशिनिषूदनः ॥ ६३

नाभिषिक्तः स्वयं राज्ये न चासीनो नृपासने।
राजेन्द्रत्वं च सम्प्राप्य मथुरामाविशत् ततः ॥ ६४

एवमन्योन्यसंजल्पं श्रुत्वा पुरनिवासिनाम्।
बन्दिमागधसूतानामिदमूचुर्गणाधिपाः ॥ ६५

किं वा शक्यामहे वक्तुं गुणानां ते गुणोदधे।
मानुषेणैकजिह्वेन प्रभावोत्साहसम्भवान् ॥ ६६

स तत्र भोगी नागेन्द्रः कदाचिद् देव बुद्धिमान्।
द्विसाहस्रेण जिह्वेन वासुकिः कथयिष्यति ॥ ६७

किं त्वद्भुतमिदं लोके मानवेन्द्रेषु भूतले।
न भूतं न भविष्यं च शक्रादासनमागतम् ॥ ६८

सभावतरणं चैव कलशैरागतं स्वयम्।
न श्रुतं न च दृष्टं वा तेन मन्यामहेऽद्भुतम् ॥ ६९

धन्या देवी महाभागा देवकी योषितां वरा।
भवन्तं त्रिदशश्रेष्ठं धृत्वा गर्भेण केशवम् ॥ ७०

कृष्णं पद्मपलाशाक्षं श्रीपुञ्जममरार्चितम्।
नेत्राभ्यां स्नेहपूर्णाभ्यां वीक्षते मुखपङ्कजम् ॥ ७१

इति संजल्पमानानां शृण्वन्तौ पृथगीरितम्।
उग्रसेनं पुरस्कृत्य भ्रातरौ रामकेशवौ ॥ ७२

प्राकारद्वारि सम्प्राप्तावर्चयामास वै तदा।
अर्घ्यमाचमनं दत्त्वा पाद्यं पाद्येति चाब्रवीत् ॥ ७३

उग्रसेनस्ततो धीमान् केशवस्य रथाग्रतः।
प्रणम्य शिरसा कृष्णं गजमारुह्य वीर्यवान् ॥ ७४

घनवत् तोयधारेण ववर्ष कनकाम्बुभिः।
घनौघैर्वर्षमाणस्तु सम्प्राप्तः पितृवेश्मनि ॥ ७५

'इन केशिनिषूदन केशवने समस्त दैत्यसमूहोंका वध करके बलवानोंमें श्रेष्ठ कंसको मारकर मथुराका राज्य भोजराज उग्रसेनको दे दिया; किंतु न तो स्वयं ये राज्यपर अभिषिक्त हुए और न राजाके सिंहासनपर ही बैठे। इस समय राजेन्द्रपद प्राप्त करके ये मथुरामें प्रविष्ट हुए हैं'॥ ६३-६४॥ इस प्रकार आपसमें कही गयी पुरवासियोंकी बातें सुनकर सूत, मागध और बन्दी-जनोंके प्रधान लोग इस प्रकार कहने लगे— ॥ ६५ ॥ 'गुणसागर! हम मनुष्यको मिली हुई एक जिह्वाके द्वारा आपके गुणोंका प्रभाव, उत्साह और प्राकट्य कैसे बता सकते हैं?॥ ६६ ॥ देव! कदाचित् पाताललोकमें रहनेवाले सर्पशरीरधारी नागराज बुद्धिमान् वासुकि (शेष) अपनी दो हजार जिह्वाओंद्वारा आपके गुण-प्रभावका वर्णन कर सकेंगे॥ ६७॥ इस भूतलपर या जगत्में नरेशोंके लिये कभी इन्द्रलोकसे सिंहासन आया हो, यह अद्भुत बात न कभी हुई थी और न भविष्यमें कभी होनेवाली है (किंतु आपने इस असम्भवको भी सम्भव कर दिखाया) ॥ ६८ ॥ स्वर्गसे सभाभवनका उतरना और आकाशमें दिव्य कलशोंका प्रकट होकर स्वयं ही अभिषेक करना न तो किसीने देखा था और न कभी सुननेमें ही आया था। इसलिये हम इस घटनाको अद्भुत मानते हैं॥ ६९ ॥ युवतियोंमें श्रेष्ठ महाभागा देवकीदेवी धन्य हैं, जिन्होंने आप देवप्रवर केशवको गर्भमें धारण करनेका महान् सौभाग्य प्राप्त किया और अब वे अपने स्नेहपूर्ण नेत्रोंसे आपके श्यामसुन्दर कमल-नयन शोभाधाम देवपूजित मुखारविन्दको निहारा करती हैं'॥ ७०-७१ ॥ ऐसी बातें कहनेवाले सूत, मागध और बन्दियोंके पृथक्-पृथक् वचनोंको सुनते हुए दोनों भाई बलराम और श्रीकृष्ण उग्रसेनको आगे करके नगरकी चहारदिवारीके दरवाजेपर आ पहुँचे। उस समय बुद्धिमान् राजा उग्रसेनने भगवान् श्रीकृष्णके रथके आगे खड़ा होकर कहा—'पाद्य लाओ, पाद्य लाओ।' फिर स्वयं ही पाद्य, अर्घ्य और आचमन देकर उनका पूजन किया। तत्पश्चात् श्रीकृष्णको सिरसे प्रणाम करके वे पराक्रमी राजा उग्रसेन हाथीपर चढ़ गये और जैसे मेघ पानीकी धारा गिराता है, उसी प्रकार वे सुवर्णमय जलकी वर्षा करने लगे। उस वर्षाके साथ ही श्रीकृष्ण अपने पिताके घर जा पहुँचे॥ ७२—७५॥

मथुराधिपतिः श्रीमानुवाच मधुसूदनम्।
राजेन्द्रत्वमनुप्राप्य युक्तं मे नृपवेश्मनि॥ ७६

स्थापितुं देवराजेन दत्तं सिंहासनं प्रभो।
नेष्यामि मथुरेशस्य सभां भुजबलार्जिताम्॥ ७७

प्रसादयिष्ये भगवन् न कोपं कर्तुमर्हसि।
देवकी वसुदेवश्च रोहिणी च विशाम्पते॥ ७८

न किंचित्करणे शक्ता हर्षक्लमविमोहिता।
कंसमाता ततो राजन्नर्चयामास केशवम्॥ ७९

नानादिग्देशजानीतं कंसेनोपार्जितं धनम्।
देशकालं समालोक्य पादयुग्मे न्यवेदयत्॥ ८०
उग्रसेनं समाहूय उवाच श्लक्ष्णया गिरा।

श्रीकृष्ण उवाच

न चाहं मथुराकाङ्क्षी न मया वित्तकाङ्क्षया॥ ८१
घातितस्तव पुत्रोऽयं कालेन निधनं गतः।
यजस्व विविधान् यज्ञान् ददस्व विपुलं धनम्॥ ८२
जयस्व रिपुसैन्यानि मम बाहुबलाश्रयात्।
त्यजस्व मनसस्तापं कंसनाशोद्भवं भयम्॥ ८३
नयस्व वित्तनिचयं मया दत्तं पुनस्तव।
इति प्राश्वास्य राजानं कृष्णस्तु हलिना सह॥ ८४
प्रविवेश ततः श्रीमान् मातापित्रोरथान्तिकम्।
आनन्दपरिपूर्णाभ्यां हृदयाभ्यां महाबलौ॥ ८५
पितृमात्रोस्तु पादान् वै नमश्चक्रतुरानतौ।
तस्मिन् मुहूर्ते नगरी मथुरा तु बभूव सा॥ ८६
स्वर्गलोकं परित्यज्यावतीर्णेवामरावती।
वसुदेवस्य भवनं समीक्ष्य पुरवासिनः॥ ८७
मनसा चिन्तयामासुर्देवलोकं न भूतलम्।
विसृज्य मथुरेशं तु महिषीसहितं तदा॥ ८८
भवनं वसुदेवस्य प्रविश्य बलकेशवौ।
न्यस्तशस्त्रावुभौ वीरौ स्वगृहे स्वैरचारिणौ॥ ८९
ततः कृताह्निकौ भूत्वा सुखासीनौ कथान्तरे।
एतस्मिन्नेव काले तु महोत्पातो बभूव ह॥ ९०

वहाँ श्रीमान् मथुरानरेश उग्रसेनने मधुसूदन श्रीकृष्णसे कहा—प्रभो! आपने राजेन्द्रका पद प्राप्त किया है; अतः आपके लिये यही उचित है कि आप देवराज इन्द्रके दिये हुए सिंहासनको इस राजमहलमें स्थापित करें। 'भगवन्! आप ही मथुराके स्वामी हैं। आपने यहाँकी राजसभाको अपनी भुजाओंके बलसे प्राप्त किया है। मैं आपको उस सभामें ले चलूँगा। एवं अपने व्यवहारोंसे आपको प्रसन्न रखनेकी चेष्टा करूँगा। आप मुझपर क्रोध न करें। प्रजानाथ! देवकी, वसुदेव और रोहिणी—ये हर्षके उद्रेकसे मोहित हो गये थे; अतः उस समय कुछ भी न कर सके। राजन्! तब कंसकी माता पद्मावतीने भगवान् केशवका पूजन किया और कंस अनेक देशोंसे जिस धनको जीतकर लाया था, उसे देशकालका विचार करके श्रीकृष्णके युगल चरणोंमें निछावर कर दिया। इस समय श्रीकृष्णने राजा उग्रसेनको बुलाकर मधुर वाणीमें इस प्रकार कहा॥ ७६—८० $\frac{1}{2}$ ॥

श्रीकृष्ण बोले—महाराज! मैं मथुराका राज्य नहीं चाहता। मैंने धनकी अभिलाषासे आपके पुत्रका वध नहीं किया है। यह कालसे ही मृत्युको प्राप्त हुआ है। राजन्! आप नाना प्रकारके यज्ञ कीजिये, प्रचुर धनका दान दीजिये और मेरे बाहुबलका आश्रय लेकर शत्रुओंकी सेनाओंपर विजय पाइये। आप मानसिक संतापको त्याग दीजिये। कंस-वधजनित भयको मनसे निकाल दीजिये तथा मेरी दी हुई इस धनराशिको पुनः अपने ही भवनमें ले जाइये। इस तरह राजा उग्रसेनको आश्वासन दे श्रीमान् श्रीकृष्ण हलधरके साथ माता-पिताके पास गये। वहाँ उन दोनों महाबली वीरोंने आनन्दपूर्ण हृदयसे विनीत होकर माता-पिताके चरणोंमें नमस्कार किया। उस मुहूर्तमें मथुरा नगरी ऐसी जान पड़ती थी, मानो अमरावतीपुरी स्वर्गलोकका परित्याग करके भूतलपर उतर आयी हो। वसुदेवके घरकी ओर देखकर पुरवासी अपने मनमें सोचने लगे कि यह भूलोक नहीं देवलोक है। उस समय रानीसहित मथुरानरेशको विदा करके दोनों वीर बलराम और श्रीकृष्ण वसुदेवके घरमें प्रविष्ट हुए और अस्त्र-शस्त्र रखकर अपने घरमें इच्छानुसार विचरने लगे॥ ८१—८९॥ तदनन्तर नित्य कर्म करके सुखपूर्वक बैठकर जब वे दोनों बातचीत करने लगे, इसी समय वहाँ महान् उत्पात प्रकट हुआ॥ ९०॥

बभ्रमुश्च घनाकाशे चेलुश्च भुवि पर्वताः।
समुद्राः क्षुभिताः सर्वे विभ्रान्तो भोगिनां वरः॥ ९१

कम्पिता यादवाः सर्वे न्युब्जाश्च पतिता भुवि।
तौ तान् निपतितान् दृष्ट्वा रामकृष्णौ तु निश्चलौ॥ ९२

महता पक्षवातेन विज्ञातौ पतगोत्तमम्।
ददर्श समनुप्राप्तं दिव्यस्त्रगनुलेपनम्॥ ९३

प्रणम्य शिरसा ताभ्यां सौम्यरूपी कृतासनः।
तं दृष्ट्वा समनुप्राप्तं सचिवं साम्परायिकम्॥ ९४

धृतिमन्तं गरुत्मन्तमुवाच बलिसूदनः।
स्वागतं खेचरश्रेष्ठ सुरसेनारिमर्दन॥ ९५

विनताहृदयानन्द स्वागतं केशवप्रिय।
तमुवाच ततः कृष्णः स्थितं देहमिवापरम्॥ ९६
तुल्यसामर्थ्यया वाचा आसीनं विनतात्मजम्।

श्रीकृष्ण उवाच

यास्यामः पतगश्रेष्ठ भोजस्यान्तःपुरं महत्॥ ९७
तत्र गत्वा सुखासीना मन्त्रयामो मनोगतम्।

वैशम्पायन उवाच

प्रविष्टौ तौ महावीर्यौ बलदेवजनार्दनौ॥ ९८

वैनतेयतृतीयौ च गुह्यं मन्त्रमथाब्रुवन्।
अवध्योऽसौकृतोऽस्माकं सुमहच्च रिपोर्बलम्॥ ९९

वृतः सैन्येन महता महद्भिश्च नराधिपैः।
बहुलानि च सैन्यानि हन्तुं वर्षशतैरपि॥ १००

न शक्ष्यामः क्षयं कर्तुं जरासंधस्य वाहिनीम्।
अतोऽर्थं वैनतेय त्वां ब्रवीमि मथुरां पुरीम्॥ १०१
वसतोरावयोः श्रेयो न भवेदिति मे मतिः।

आकाशमें बादल चक्कर काटने लगे। पृथ्वीपर पर्वत हिलने लगे। सारे समुद्र क्षुब्ध हो उठे और सर्पोंमें श्रेष्ठ शेषनाग भी चकरा गये। समस्त यादव कम्पित हो औंधे मुँह पृथ्वीपर गिर पड़े। उन सबको गिरा हुआ देखकर भी बलराम और श्रीकृष्ण विचलित नहीं हुए। पाँखोंसे उठी हुई प्रचण्ड वायुके द्वारा उन्हें यह पता लग गया कि पक्षियोंमें श्रेष्ठ गरुड़ आ रहे हैं। इतनेमें ही श्रीकृष्णने देखा, गरुड़जी आ गये। वे दिव्य पुष्पोंके हार और दिव्य चन्दनसे अलंकृत थे। उन्होंने सिर झुकाकर उन दोनों भाइयोंको प्रणाम किया। फिर वे सौम्यरूप धारण करके एक आसनपर बैठ गये। अपने समर-सचिव धैर्यवान् गरुड़को आया देख बलिको बाँधनेवाले भगवान् श्रीकृष्ण इस प्रकार बोले—'पक्षियोंमें श्रेष्ठ गरुड़! तुम्हारा स्वागत है। देवसेनाके शत्रुओंको कुचल देनेवाले पक्षिराज! तुम्हारा स्वागत है। विनताके हृदयको आनन्द देनेवाले केशवप्रिय गरुड़! तुम्हारा स्वागत है'। तदनन्तर श्रीकृष्ण अपने दूसरे शरीरके समान बैठे हुए विनतानन्दन गरुड़से अपनी शक्तिके अनुरूप वाणीद्वारा इस प्रकार बोले—॥ ९१—९६ $\frac{1}{2}$ ॥

श्रीकृष्णने कहा—पक्षिप्रवर! हमलोग भोजराजके विशाल अन्तःपुरमें चलेंगे और वहीं सुखपूर्वक बैठकर मनोगत विषयपर गुप्तरूपसे विचार करेंगे॥ ९७ $\frac{1}{2}$ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! इसके बाद महापराक्रमी बलराम और श्रीकृष्ण तीसरे गरुड़को साथ लेकर उक्त भवनमें प्रविष्ट हुए और गुप्त विषयपर मन्त्रणा करने लगे। उस समय श्रीकृष्ण बोले—'विनतानन्दन! जरासंधको हमलोगोंके लिये अवध्य बना दिया गया है (यही दशा कालयवनकी भी है)। परंतु हमारे उस शत्रुका सैनिक एवं शारीरिक बल बहुत बड़ा है। वह बहुत बड़ी सेना तथा महान् नरेशोंसे घिरा रहता है। उसकी सेनाएँ इतनी अधिक हैं कि हमलोग जरासंधकी उस विशाल-वाहिनीका सौ वर्षोंमें भी संहार नहीं कर सकेंगे। अतः मैं तुमसे कहता हूँ कि अब मथुरापुरीमें रहनेसे हम दोनोंका भला नहीं होगा। मेरा तो ऐसा ही विश्वास है'॥ ९८—१०१ $\frac{1}{2}$ ॥

गरुड उवाच

देवदेवं नमस्कृत्य गतोऽहं भवतोऽन्तिकात्॥ १०२

वासार्थमीक्षितुं भूमिं तव देव कुशस्थलीम्।
गत्वाहं खे समास्थाय समन्तादवलोक्य ताम्॥ १०३

दृष्ट्वाहं विबुधश्रेष्ठ पुरीं लक्षणपूजिताम्।
सागरानूपविपुलां प्रागुदक्प्लवशीतलाम्॥ १०४

सर्वतोदधिमध्यस्थामभेद्यां त्रिदशैरपि।
सर्वरत्नाकरवतीं सर्वकामफलद्रुमाम्॥ १०५

सर्वर्तुकुसुमाकीर्णां सर्वतः सुमनोहराम्।
सर्वाश्रमाधिवासां च सर्वकामगुणैर्युताम्॥ १०६

नरनारीसमाकीर्णां नित्यामोदविवर्द्धिनीम्।
प्राकारपरिखोपेतां गोपुराट्टालमालिनीम्॥ १०७

विचित्रचत्वरपथां विपुलद्वारतोरणाम्।
यन्त्रार्गलविचित्राढ्यां हेमप्राकारशोभिताम्॥ १०८

नरनागाश्वकलिलां रथसैन्यसमाकुलाम्।
नानादिग्देशजाकीर्णां दिव्यपुष्पफलद्रुमाम्॥ १०९

पताकाध्वजमालाढ्यां महाभवनशालिनीम्।
भीषणीं रिपुसंघानां मित्राणां हर्षवर्द्धनीम्॥ ११०

मनुजेन्द्राधिवासेभ्यो विशिष्टां नगरोत्तमाम्।
रैवतं च गिरिश्रेष्ठं कुरु देव सुरालयम्॥ १११

नन्दनप्रतिमं दिव्यं पुरद्वारस्य भूषणम्।
कारयस्वाधिवासं च तत्र गत्वा सुरोत्तम॥ ११२

गरुड़ बोले—देव! आप देवताओंके भी देवता हैं। आपको नमस्कार करके मैं आपके निकटसे आपहीके रहनेयोग्य निवासभूमिका निरीक्षण करनेके लिये कुशस्थलीकी ओर चला गया था। सुरश्रेष्ठ! वहाँ जाकर आकाशका आश्रय ले सब ओरसे निरीक्षण करके मैं इस निश्चयपर पहुँचा हूँ कि वहाँ सभी शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न एवं सम्मानित पुरीका निर्माण हो सकता है। कुशस्थलीके बहुत-से प्रदेश सागरके समीप होनेसे जलप्राय हैं। वहाँकी भूमि पूर्व और उत्तरकी ओरसे कुछ ढालू और शीतल है। वह सब ओरसे समुद्रके बीचमें है, इस कारण वहाँ बसी हुई पुरीका भेदन करना देवताओंके लिये भी असम्भव होगा। वहाँ जो पुरी बनेगी, वह सब प्रकारके रत्नोंकी खान होगी। वहाँके वृक्ष सम्पूर्ण मनोवाञ्छित कामनाओंको फलके रूपमें प्रदान करनेवाले होंगे। सभी ऋतुओंमें खिलनेवाले फूल उस पुरीकी शोभा बढ़ायेंगे। वह सब ओरसे अत्यन्त मनोहर होगी। वहाँ सभी आश्रमोंके लोग निवास करेंगे। वह पुरी समस्त कमनीय गुणोंसे अलंकृत होगी। असंख्य नर-नारियोंसे भरी रहकर सदा ही आमोद-प्रमोदको बढ़ानेवाली होगी। वह नगरी परकोटों, खाइयों, गोपुरों और अट्टालिकाओंकी पङ्क्तियोंसे सुशोभित होगी। इसकी सड़कें और चौराहे अद्भुत शोभासे सम्पन्न होंगे। उस पुरीके द्वार एवं फाटक बहुत बड़े-बड़े होंगे। विचित्र-विचित्र यन्त्रों और अर्गलाओंसे वह सम्पन्न होगी। सोनेकी चहारदीवारी उसकी शोभा बढ़ायेगी॥ १०२—१०८॥ हाथी, घोड़े, मनुष्य और रथोंकी सेनासे वह पुरी व्याप्त रहेगी। विभिन्न दिशाओं और देशोंके लोगों तथा वहाँ उत्पन्न हुए पदार्थोंसे वह भरी होगी। दिव्य पुष्प और फल देनेवाले देववृक्ष उसकी शोभा बढ़ायेंगे॥ १०९॥ वह नगरी ध्वजा-पताकाओंकी पङ्क्तियोंसे अलंकृत तथा बड़े-बड़े भवनोंसे सुशोभित होगी। शत्रु-समूहोंका भय और मित्रोंका हर्ष बढ़ाती रहेगी॥ ११०॥ देव! अबतक नरेन्द्रके जितने अधिवास हैं, उन सबसे वह पुरी विशिष्ट होगी। देवताओंका निवासस्थान जो गिरिश्रेष्ठ रैवतक है, उसको और वहाँके नन्दनवन-सदृश दिव्य वनको अपने नगरद्वारका भूषण बनाइये। सुरश्रेष्ठ! वहीं चलकर आप निवास कीजिये॥ १११-११२॥

कुमारीणां प्रचारश्च सुरमण्यो भविष्यति।
नाम्ना द्वारवती ज्ञेया त्रिषु लोकेषु विश्रुता॥ ११३

भविष्यति पुरी रम्या शक्रस्येवामरावती।
यदि स्यात् संवृतां भूमिं प्रदास्यति महोदधिः॥ ११४

यथेष्टं विविधं कर्म विश्वकर्मा करिष्यति।
मणिमुक्ताप्रवालाभिर्वज्रवैदूर्यसप्रभैः॥ ११५

दिव्यैरभिप्राययुतैर्दिव्यरत्नैस्त्रिलोकजैः।
दिव्यस्तम्भशताकीर्णान् स्वर्गे देवसभोपमान्॥ ११६

जाम्बूनदमयाञ्छुभ्रान् सर्वरत्नविभूषितान्।
दिव्यध्वजपताकाढ्यान् देवगन्धर्वपालितान्॥ ११७
चन्द्रसूर्यप्रतीकाशान् प्रासादान् कारय प्रभो।

वैशम्पायन उवाच

एवं कृत्वा तु संकल्पं वैनतेयोऽथ केशवम्॥ ११८

प्रणम्य शिरसा ताभ्यां निषसाद कृतासनः।
कृष्णोऽपि रामसहितो विचिन्त्य हितमीरितम्॥ ११९

प्रकाशकर्तुकामौ तौ विसृज्य विनतात्मजम्।
सत्कृत्य विधिवद् राजन् महार्हवरभूषणैः॥ १२०

मोदेते सुखिनौ तत्र सुरलोके यथामरौ।
तस्य तद् वचनं श्रुत्वा भोजराजो महायशाः॥ १२१

कृष्णं स्नेहेन विस्रब्धं बभाषे वचनामृतम्।
कृष्ण कृष्ण महाबाहो यदूनां नन्दिवर्द्धन॥ १२२

श्रूयतां वचनं त्वाद्य वक्ष्यामि रिपुसूदन।
त्वया विहीनाः सर्वे स्म न शक्ताः सुखमासितुम्॥ १२३

पुरेऽस्मिन् विषयान्ते वा पतिहीना इव स्त्रियः।
त्वत्सनाथा वयं तात त्वद्बाहुबलमाश्रिताः॥ १२४
बिभीमो न नरेन्द्राणां सेन्द्राणामपि मानद।

वहाँ कुमारियोंका अत्यन्त मनोहर ढंगसे घूमना-फिरना हो सकेगा। उस पुरीका नाम होगा द्वारवती या द्वारका, जो तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध होगी। वह पुरी इन्द्रकी अमरावतीके समान परम रमणीय होगी। यदि महासागर जलसे ढकी हुई भूमि (-का कुछ भाग) दे देगा, तो वहाँ उपर्युक्त गुणोंसे सम्पन्न पुरीका निर्माण हो सकेगा। साक्षात् विश्वकर्मा पधारकर वहाँ आपकी इच्छाके अनुसार नाना प्रकारके शिल्प-कर्म करेंगे। प्रभो! आप मणि, मोती, मूँगा, हीरा, वैदूर्य तथा दिव्य भावोंसे युक्त त्रिलोकीके अन्यान्य दिव्य रत्नोंद्वारा ऐसे महल बनवाइये, जो स्वर्गलोककी देव-सभाओंके समान शोभा पा रहे हों। उनमें सैकड़ों दिव्य खम्भे लगे हों। वे महल सोनेकी ईंटोंसे बने हों और उन्हें सब प्रकारके रत्नोंसे विभूषित किया गया हो। वे शुभ्र प्रासाद दिव्य ध्वजा और पताकाओंसे अलंकृत हों। चन्द्रमा और सूर्यके समान प्रतीत होते हों और देव-गन्धर्व उनकी रक्षामें तत्पर रहें॥ ११३—११७ $\frac{1}{2}$॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! इस प्रकार श्रीकृष्णके प्रति अपना मनोभाव प्रकट करके विनता-नन्दन गरुड़ने सिर झुकाकर उन दोनों भाइयोंको प्रणाम किया। फिर वे अपने आसनपर बैठ गये। राजन्! फिर बलरामसहित श्रीकृष्णने भी गरुड़की कही हुई हितकर बातपर विचार करके उसे प्रकाशित करनेकी इच्छा की और बहुमूल्य सुन्दर आभूषणोंद्वारा विनतानन्दन गरुड़का विधिवत् सत्कार करके उन्हें विदा कर दिया। तत्पश्चात् देवलोकमें विहार करनेवाले दो अमरोंकी भाँति वे दोनों भाई मथुरामें सुख और आनन्दके साथ रहने लगे। गरुड़का यह वचन सुनकर महायशस्वी भोजराज उग्रसेन श्रीकृष्णसे स्नेह और विश्वासपूर्वक यह अमृतके समान मधुर वचन बोले—'श्रीकृष्ण! यदुकुलका आनन्द बढ़ानेवाले महाबाहु श्रीकृष्ण! शत्रुसूदन! आज मैं तुमसे जो बात कहता हूँ, उसे सुनो॥ ११८—१२२ $\frac{1}{2}$॥ 'जैसे पतिहीन स्त्रियाँ कहीं सुखसे नहीं रह सकतीं, उसी प्रकार तुमसे बिछुड़कर हम समस्त यादव इस नगर या राज्यमें सुखसे नहीं रह सकते हैं। दूसरोंको मान देनेवाले तात! हम तुमसे सनाथ होकर तुम्हारे बाहुबलका आश्रय ले नरेन्द्रोंकी तो बात ही क्या है, इन्द्रसहित सम्पूर्ण देवताओंसे भी नहीं डरते हैं॥१२३-१२४ $\frac{1}{2}$॥

विजयाय यदुश्रेष्ठ यत्र यत्र गमिष्यसि॥ १२५
तत्र त्वं सहितोऽस्माभिर्गच्छेथा यादवर्षभ।
तस्य राज्ञो वचः श्रुत्वा सस्मितं देवकीसुतः॥ १२६
यथेष्टं भवतामद्य तथा कर्तास्म्यसंशयम्॥ १२७

यदुश्रेष्ठ! यादवप्रवर! तुम विजयके लिये जहाँ-जहाँ जाओ, वहाँ हम सबको साथ लिये चलो'। राजा उग्रसेनकी बात सुनकर देवकीनन्दन भगवान् श्रीकृष्ण मुसकराकर बोले—'राजन्! अब आपकी जैसी इच्छा होगी, वैसा ही करूँगा, इसमें संशय नहीं है'॥१२५—१२७॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे विष्णुपर्वणि श्रीकृष्णस्य मथुरागमनमहोत्सवो द्वारवतीप्रयाणसंकेतो नाम पञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः॥ ५५॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत विष्णुपर्वमें श्रीकृष्णका मथुरा-गमनमहोत्सव तथा उनके द्वारका जानेका संकेत नामक पचपनवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ५५॥

षट्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः

श्रीकृष्णकी आज्ञासे यादवोंका द्वारकापुरीको प्रस्थान

वैशम्पायन उवाच

कस्यचित् त्वथ कालस्य सभ्यांस्तान् यदुसंसदि।
बभाषे पुण्डरीकाक्षो हेतुमद्वाक्यमुत्तमम्॥ १
यादवानामियं भूमिर्मथुरा राष्ट्रमालिनी।
वयं चैवेह सम्भूता व्रजे च परिवर्द्धिताः॥ २
तदिदानीं गतं दुःखं शत्रवश्च पराजिताः।
नृपेषु जनितं वैरं जरासंधेन विग्रहः॥ ३
वाहनानि च नः सन्ति पादातं चाप्यनन्तकम्।
रत्नानि च विचित्राणि मित्राणि च बहूनि च॥ ४
इयं च माथुरी भूमिरल्पा गम्या परस्य तु।
वृद्धिश्चैव परास्माकं बलतो मित्रतस्तथा॥ ५
कुमारकोट्यो याश्चेमाः पदातीनां गणाश्च ये।
एषामपीह वसतां सम्मर्दमुपलक्षये॥ ६
अत्र नो रोचते मह्यं निवासो यदुपुङ्गवाः।
पुरीं निवेशयिष्यामि मम तत् क्षन्तुमर्हथ॥ ७

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! तदनन्तर किसी समय कमलनयन भगवान् श्रीकृष्णने यादवोंकी सभामें बैठे हुए समस्त सभासदोंसे यह हेतुयुक्त उत्तम वचन कहा—॥ १॥ यह राष्ट्रकी मालासे अलंकृत (समूचे राष्ट्रको मालाकी भाँति धारण करनेवाली राजधानी) मथुरापुरी यादवोंकी भूमि है। हम भी यहीं पैदा हुए हैं और इसीके व्रजमें पलकर बड़े हुए हैं॥ २॥ इस समय हमारा सारा दुःख दूर हो गया है। हमारे शत्रु भी हमसे हार मान चुके हैं। हमने राजाओंसे वैर मोल ले लिया और जरासंधसे लड़ाई छेड़ दी है॥ ३॥ हमारे पास पर्याप्त वाहन हैं। पैदलोंकी संख्या भी अनन्त है। हमारे खजानेमें विचित्र रत्न हैं तथा हमारे मित्रोंकी संख्या भी बहुत है॥ ४॥ परंतु यह मथुराकी भूमि बहुत छोटी है और शत्रुका सुगमतापूर्वक इसमें प्रवेश हो जाता है। इधर हमारे सैनिकों और मित्रोंकी बहुत अधिक वृद्धि हुई है॥ ५॥ हमारे पास जो ये एक करोड़ कुमार (अविवाहित) सैनिक हैं तथा ये जो पैदलोंके बहुत-से दल हैं, इनके भी यहीं रहनेसे यहाँ बड़ी भीड़-भाड़ दिखायी देती है॥ ६॥ अतः यदुपुङ्गवो! अब यहाँ निवास करना मुझे अच्छा नहीं लगता है; इसलिये मैं दूसरी पुरी बसाऊँगा। मेरी इस धृष्टताको आपलोग क्षमा करेंगे'॥ ७॥

एतद् यदनुरूपं वो ममाभिप्रायजं वचः।
भवाय भवतां काले यदुक्तं यदुसंसदि॥ ८

तमूचुर्यादवाः सर्वे हृष्टेन मनसा तदा।
साध्यतां यदभिप्रेतं जनस्यास्य भवाय वै॥ ९

ततः सम्मन्त्रयामासुर्वृष्णयो मन्त्रमुत्तमम्।
अवध्योऽसौ कृतोऽस्माकं सुमहच्च रिपोर्बलम्॥ १०

कृतः सैन्यक्षयश्चापि महानिह नराधिपैः।
बहुलानि च सैन्यानि हन्तुं वर्षशतैरपि।
न शक्ष्यामो ह्यतस्तेषामपयानेऽभवन्मतिः॥ ११

तस्मिंश्चैवान्तरे राजा सकालयवनस्तदा।
सैन्येन तद्विधेनैव मथुरामभ्युपागमत्॥ १२

ततो जरासंधबलं दुर्निवार्यमभूत् तदा।
ते कालयवनं चैव श्रुत्वेदं प्रतिपेदिरे॥ १३

केशवः पुनरेवाह यादवान् सत्यसंगरः।
अद्यैव दिवसः पुण्यो निर्यामः स्वबलानुगाः॥ १४

ततो निश्चक्रमुः सर्वे यादवाः कृष्णशासनात्।
ओघा इव समुद्रस्य बलौघप्रतिनादिताः॥ १५

संगृह्य ते कलत्राणि वसुदेवपुरोगमाः।
सुसन्नद्धैर्गजैर्मत्तै रथैरश्वैश्च दंशितैः॥ १६

आहत्य दुन्दुभीन् सर्वे स्वजनज्ञातिबान्धवाः।
निर्ययुर्यादवाः सर्वे मथुरामपहाय वै॥ १७

स्यन्दनैः काञ्चनापीडैर्मत्तैश्च वरवारणैः।
सूतैः प्लुतैश्च तुरगैः कशापार्ष्णिप्रणोदितैः॥ १८

स्वानि स्वानि बलाग्राणि शोभयन्तः प्रकर्षिणः।
प्रत्यङ्मुखा ययुर्हृष्टा वृष्णयो भरतर्षभ॥ १९
ततो मुख्यतमाः सर्वे यादवा रणकोविदाः।
अनीकाग्राणि कर्षन्तो वासुदेवपुरोगमाः॥ २०

इस यादवसभामें मेरे हार्दिक अभिप्रायके अनुसार जो बात कही गयी है, वह समयानुसार आपलोगोंके उद्भवके लिये ही है। यदि आपलोगोंको अनुकूल जँचती हो तो कहिये॥ ८॥ तब समस्त यादव प्रसन्न मनसे बोल उठे—'प्रभो! इस यादव-समाजके उद्भवके लिये आपको जो अभीष्ट हो, वह कार्य कीजिये'॥ ९॥ तब समस्त वृष्णिवंशी मिलकर उत्तम मन्त्रणा करने लगे—'यह जरासंध (या कालयवन) हमलोगोंके लिये अवध्य कर दिया गया है। हमारे उस शत्रुका सैनिक बल बहुत बड़ा है॥ १०॥ हमारे पक्षके नरेशोंने शत्रुकी उस सेनाका बड़ा भारी विनाश किया है तो भी उसके पास अभी बहुत-सी सेनाएँ हैं, जिन्हें हमलोग सौ वर्षोंमें भी नहीं मार सकते। अतः हमारा विचार उनसे हट जानेके लिये हो गया है'॥ ११॥ इसी बीचमें कालयवनसहित राजा जरासंध फिर वैसी ही सेना साथ लेकर मथुरापर चढ़ आया॥ १२॥ उस समय मथुराके सैनिकोंके लिये जरासंधकी सेनाको ही रोकना अत्यन्त कठिन कार्य था। फिर जब यादवोंने कालयवनका भी आगमन सुना, तब तो उन्होंने मथुरासे हट जाना ही अपने लिये श्रेयस्कर समझा॥ १३॥ सत्यप्रतिज्ञ श्रीकृष्णने वहाँ यादवोंसे फिर कहा—'आज ही वह पुण्य दिवस है, जब कि अपनी सेनाके साथ हमें यहाँसे निकल चलना है'॥ १४॥ यह सुनकर समस्त यादव श्रीकृष्णकी आज्ञासे उस पुरीको छोड़कर निकल गये। उस समय सैन्यसमूहोंके कोलाहलसे भरे हुए यादवोंके दल समुद्रके जलप्रवाहकी भाँति जान पड़ते थे॥ १५॥ वसुदेव आदि सभी यादव अपनी स्त्रियोंको साथ ले कसे-कसाये मतवाले हाथियों, रथों और सुसज्जित अश्वोंके द्वारा मथुरा छोड़कर चल दिये। उन सबने डंके पीटकर स्वजनों तथा जाति-भाइयोंके साथ वहाँसे प्रस्थान किया था॥ १६-१७॥ भरतश्रेष्ठ! सुवर्णभूषित रथों, मतवाले गजराजों और सारथीकी आज्ञामात्रसे उछलकर चलनेवाले तथा हाथमें चाबुक लिये सवारोंद्वारा हाँके जानेवाले घोड़ोंसे अपनी-अपनी श्रेष्ठ सेनाओंकी शोभा बढ़ाते तथा उन्हें खींचकर अपने साथ लिये जाते हुए वृष्णिवंशी बड़े हर्षके साथ पश्चिम दिशाकी ओर प्रस्थित हुए॥ १८-१९॥ तदनन्तर युद्धकुशल श्रीकृष्ण आदि सभी मुख्य-मुख्य यादव अपनी सेनाओंको साथ लेकर चले॥ २०॥

ते स्म नानालताचित्रं नारिकेलवनायुतम्।
कीर्णं नागबलैः कान्तं केतकीखण्डमण्डितम्॥ २१

तालपुन्नागबकुलद्राक्षावनघनं क्वचित्।
अनूपं सिन्धुराजस्य प्रपेतुर्यदुपुङ्गवाः॥ २२

ते तत्र रमणीयेषु विषयेषु सुखप्रियाः।
मुमुदुर्यादवाः सर्वे देवाः स्वर्गगता इव॥ २३

पुरवास्तु विचिन्वन् स कृष्णस्तु परवीरहा।
ददर्श विपुलं देशं सागरेणोपशोभितम्॥ २४

वाहनानां हितं चैव सिकताताम्रमृत्तिकम्।
पुरलक्षणसम्पन्नं कृतास्पदमिव श्रिया॥ २५

सागरानिलसंवीतं सागराम्बुनिषेवितम्।
विषयं सिन्धुराजस्य शोभितं पुरलक्षणैः॥ २६

तत्र रैवतको नाम पर्वतो नातिदूरतः।
मन्दरोदारशिखरः सर्वतोऽभिविराजते॥ २७

तत्रैकलव्यसंवासो द्रोणेनाध्युषितश्चिरम्।
प्रभूतपुरुषोपेतः सर्वरत्नसमाकुलः॥ २८

विहारभूमिस्तत्रैव तस्य राज्ञः सुनिर्मिता।
नाम्ना द्वारवती नाम स्वायताष्टापदोपमा॥ २९

केशवेन मतिस्तत्र पुर्यर्थे विनिवेशिता।
निवेशं तत्र सैन्यानां रोचयन्ति स्म यादवाः॥ ३०

ते रक्तसूर्यदिवसे तत्र यादवपुङ्गवाः।
सेनापालांश्च संचक्रुः स्कन्धावारनिवेशनम्॥ ३१

ध्रुवाय तत्र न्यवसत् केशवः सह यादवैः।
देशे पुरनिवेशाय स यदुप्रवरो विभुः॥ ३२

तस्यास्तु विधिवन्नाम वास्तूनि च गदाग्रजः।
निर्ममे पुरुषश्रेष्ठो मनसा यादवोत्तमः॥ ३३

वे यदुपुङ्गव वीर सिंधुराजके जलप्राय देशमें जा पहुँचे, जो नाना प्रकारकी लताओंसे विचित्र शोभा पा रहा था। नारियलके बहुत-से वन वहाँ सुशोभित होते थे। नागकेसरोंके झुंड इधर-उधर सब ओर फैले थे, जिनसे वहाँकी कमनीयता और भी बढ़ गयी थी। केवड़ोंकी झाड़ियोंसे वह प्रदेश अलंकृत हो रहा था। कहीं-कहीं ताड़, पुन्नाग, वकुल और अंगूरके वन उस भूभागको और घना बना रहे थे॥ २१-२२॥ जिन्हें सुख ही प्रिय है, वे सब यादव वहाँके रमणीय स्थानोंमें स्वर्गमें रहनेवाले देवताओंके समान आनन्दका अनुभव करने लगे॥ २३॥ शत्रुवीरोंका संहार करनेवाले श्रीकृष्णने नगरके वास्तुस्थानकी खोज करते हुए समुद्रसे सुशोभित होनेवाले एक विशाल प्रदेशको देखा॥ २४॥ वह स्थान बालूके साथ ही ताँबेके रङ्गवाली मिट्टीसे सुशोभित था। वाहनोंके लिये हितकर तथा नगरोपयोगी शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न था। वह ऐसा मनोहर प्रतीत होता था, मानो लक्ष्मीने उसे अपना वासस्थान बना लिया हो॥ २५॥ सिंधुराजका वह प्रदेश समुद्रकी वायुसे विजित, सागरके जलसे सेवित तथा नगरोपयोगी लक्षणोंसे सुशोभित था॥ २६॥ वहाँ पास ही रैवतक नामसे प्रसिद्ध पर्वत था, जिसके शिखर मन्दराचलके समान ऊँचे और रमणीय थे। वह पर्वत सब ओरसे बड़ी शोभा पा रहा था॥ २७॥ वहाँ एकलव्य रहता था। आचार्य द्रोण भी वहाँ दीर्घकालतक निवास कर चुके थे। बहुत-से मनुष्य वहाँ आते-जाते थे तथा वह पर्वत सब प्रकारके रत्नोंसे व्याप्त था॥ २८॥ उसके पास ही उस राजा रेवतकी विहारभूमि थी, जिसका बड़े सुन्दर ढंगसे निर्माण किया गया था। उस भूमिका नाम था द्वारवती, जो विशाल होनेके साथ ही शतरंज या चौसरकी बिछौंतके समान चौकोर थी॥ २९॥ भगवान् श्रीकृष्णने वहाँ नगर बसानेका विचार किया। यादवोंको भी वहाँ सेनाका पड़ाव डालना जँच गया॥ ३०॥ दिनमें जब कि सूर्यपर लाली छा रही थी, वहाँ श्रेष्ठ यादवोंने सेनाके रक्षक नियुक्त किये और सैनिकोंके ठहरनेके लिये छावनियाँ तैयार करायीं॥ ३१॥ यदुप्रवर भगवान् श्रीकृष्णने यादवोंके साथ उस प्रदेशमें एक सुस्थिर नगर बसानेके लिये निवास किया॥ ३२॥ गदके बड़े भाई यादवश्रेष्ठ पुरुषोत्तमने मानसिक संकल्पके द्वारा उस पुरीका नाम निश्चित किया और मनसे ही विधिपूर्वक उसमें गृहोंका विभाग किया॥ ३३॥

एवं द्वारवतीं चैव पुरीं प्राप्य सबान्धवाः।
सुखिनो न्यवसन् राजन् स्वर्गे देवगणा इव॥ ३४
कृष्णोऽपि कालयवनं ज्ञात्वा केशिनिषूदनः।
जरासंधभयाच्चैव पुरीं द्वारवतीं ययौ॥ ३५

राजन्! इस प्रकार बन्धु-बान्धवोंसहित यदुवंशी द्वारकापुरीमें पहुँचकर वहाँ उसी तरह सुखसे रहने लगे, जैसे देवता स्वर्गमें रहते हैं॥ ३४॥ केशिहन्ता श्रीकृष्ण भी कालयवनका आना जानकर उसके और जरासंधके भयसे द्वारकापुरीको चले गये॥ ३५॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे विष्णुपर्वणि द्वारवतीप्रयाणे षट्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः॥ ५६॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत विष्णुपर्वमें श्रीकृष्णसहित यादवोंका द्वारकापुरीको प्रयाणविषयक छप्पनवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ५६॥

सप्तपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

कालयवनका वध

जनमेजय उवाच

भगवञ्छ्रोतुमिच्छामि विस्तरेण महात्मनः।
चरितं वासुदेवस्य यदुश्रेष्ठस्य धीमतः॥ १
किमर्थं च परित्यज्य मथुरां मधुसूदनः।
मध्यदेशस्य ककुदं धाम लक्ष्म्याश्च केवलम्॥ २
शृङ्गं पृथिव्याः स्वालक्ष्यं प्रभूतधनधान्यवत्।
आर्याढ्यजलभूयिष्ठमधिष्ठानवरोत्तमम्॥ ३
अयुद्धेनैव दाशार्हस्त्यक्तवान् द्विजसत्तम।
स कालयवनश्चापि कृष्णे किं प्रत्यपद्यत॥ ४
द्वारकां च समासाद्य वारिदुर्गां जनार्दनः।
किं चकार महाबाहुर्महायोगी महातपाः॥ ५
किंवीर्यः कालयवनः केन जातश्च वीर्यवान्।
यमसह्यं समालक्ष्य व्यपयातो जनार्दनः॥ ६

वैशम्पायन उवाच

वृष्णीनामन्धकानां च गुरुर्गार्ग्यो महामनाः।
ब्रह्मचारी पुरा भूत्वा न स्म दारान् स विन्दति॥ ७
तथा हि वर्तमानं तमूर्ध्वरेतसमव्ययम्।
श्यालोऽभिशस्तवान् गार्ग्यमपुमानिति राजनि॥ ८
सोऽभिशस्तस्तदा राजन् नगरे त्वजितं जये।
अलिप्संस्तु स्त्रियं चैव तपस्तेपे सुदारुणम्॥ ९

जनमेजयने पूछा—भगवन्! मैं बुद्धिमान् यदुश्रेष्ठ महात्मा वसुदेवनन्दन भगवान् श्रीकृष्णका चरित्र विस्तारपूर्वक सुनना चाहता हूँ॥ १॥ भगवान् मधुसूदन किसलिये मथुरा छोड़कर चले गये? वह तो मध्यदेशका ककुद (सर्वोत्तम स्थान), लक्ष्मीका अद्वितीय धाम, पृथ्वीका शृङ्ग, सुन्दर, दर्शनीय, प्रचुर धन-धान्यसे सम्पन्न, आर्योंका निवासस्थान, जलकी अधिकतासे सुशोभित तथा सभी अधिष्ठानोंमें सबसे उत्तम है। द्विजश्रेष्ठ! दशार्हकुलनन्दन श्रीकृष्णने बिना युद्धके ही उसे क्यों छोड़ दिया? तथा कालयवनने भी श्रीकृष्णके साथ क्या बर्ताव किया?॥ २—४॥ महाबाहु, महायोगी और महातपस्वी भगवान् जनार्दनने जलरूपी दुर्गसे घिरी हुई द्वारकामें जाकर क्या किया?॥ ५॥ कालयवनका पराक्रम कैसा था? किसने उस बलशाली वीरको जन्म दिया था, जिसे असह्य समझकर भगवान् श्रीकृष्ण द्वारकासे हट गये थे?॥ ६॥

वैशम्पायनजीने कहा—राजन्! वृष्णि और अन्धक वंशी यादवोंके गुरु (पुरोहित) महामना गार्ग्यमुनि पहले नियमपूर्वक ब्रह्मचारी रहकर किसी साधनामें लगे हुए थे। वे उन दिनों स्त्री-संसर्गसे दूर रहते थे॥ ७॥ विकाररहित ऊर्ध्वरेता ब्रह्मचारीके रूपमें रहते हुए उन गार्ग्यमुनिपर उन्हींके सालेने राजसभामें नपुंसक होनेका कलङ्क लगाया॥ ८॥ राजन्! जिन्होंने अजित परमात्माको भी जीत लिया था, उस नगरमें इस प्रकार कलङ्कित होनेपर उन्होंने स्त्रीकी इच्छा तो नहीं की, परंतु क्रोधपूर्वक अत्यन्त कठोर तपस्या आरम्भ कर दी॥ ९॥

ततो द्वादशवर्षाणि सोऽयश्चूर्णमभक्षयत्।
आराधयन् महादेवमचिन्त्यं शूलपाणिनम्॥ १०
रुद्रस्तस्मै वरं प्रादात् समर्थं युधि निग्रहे।
वृष्णीनामन्धकानां च सर्वतेजोमयं सुतम्॥ ११
ततः शुश्राव तं राजा यवनाधिपतिर्वरम्।
पुत्रप्रसवजं दैवादपुत्रः पुत्रकामिता॥ १२
स नृपस्तमुपानाय्य सान्त्वयित्वा द्विजोत्तमम्।
तं घोषमध्ये यवनो गोपस्त्रीषु समासृजत्॥ १३
गोपाली त्वप्सरास्तत्र गोपस्त्रीवेषधारिणी।
धारयामास गार्ग्यस्य गर्भं दुर्धरमच्युतम्॥ १४
मानुष्यां गार्ग्यभार्यायां नियोगाच्छूलपाणिनः।
स कालयवनो नाम जज्ञे शूरो महाबलः॥ १५
अपुत्रस्याथ राज्ञस्तु ववृधेऽन्तःपुरे शिशुः।
तस्मिन्नुपरते राजन् स कालयवनो नृपः॥ १६
युद्धाभिकामो नृपतिः पर्यपृच्छद् द्विजोत्तमान्।
वृष्ण्यन्धककुलं तस्य नारदेन निवेदितम्॥ १७
ज्ञात्वा तु वरदानं तन्नारदान्मधुसूदनः।
उपप्रैक्षत तेजस्वी वर्द्धन्तं यवनेषु तम्॥ १८
समृद्धो हि यदा राजा यवनानां महाबलः।
तत एवं नृपा म्लेच्छाः संश्रित्यानुययुस्तदा॥ १९
शकास्तुषारा दरदाः पारदाः शृङ्गलाः खसाः।
पह्लवाः शतशश्चान्ये म्लेच्छा हैमवतास्तथा॥ २०
स तैः परिवृतो राजा दस्युभिः शलभैरिव।
नानावेषायुधैर्भीमैर्मथुरामभ्यवर्तत॥ २१
गजवाजिखरोष्ट्राणामयुतैरर्बुदैरपि।
पृथिवीं कम्पयामास सैन्येन महता वृतः॥ २२
रेणुना सूर्यमार्गं तु समवच्छाद्य पार्थिवः।
मूत्रेण शकृता चैव सैन्येन ससृजे नदीम्॥ २३
अश्वोष्ट्रशकृतां राशेर्निस्सृतेति जनाधिप।
ततोऽश्वशकृदित्येवं नाम नद्या बभूव ह॥ २४

वे गार्ग्यमुनि अचिन्त्यस्वरूप शूलपाणि महादेवजीकी आराधना करते हुए बारह वर्षोंतक केवल लोहेका चूर्ण खाकर रहे॥ १०॥ तब भगवान् रुद्रने उन्हें वरके रूपमें पूर्ण तेजस्वी पुत्र प्रदान किया, जो युद्धमें वृष्णि और अन्धक-वंशके वीरोंका भी निग्रह करनेमें समर्थ था॥ ११॥ इसी समय यवनोंके अधिपति एक राजाने उस पुत्र प्रदान करनेवाले वरका वृत्तान्त सुना। वह दैवयोगसे पुत्रहीन था और पुत्र पानेकी इच्छा रखता था॥ १२॥ उस यवन-नरेशने द्विजश्रेष्ठ गार्ग्यको सान्त्वनापूर्वक घर लाकर ठहराया और किसी गोष्ठके भीतर उन्हें गोपनारियोंके संसर्गमें रखा॥ १३॥ उसी गोष्ठमें गोपाली नामवाली अप्सरा थी, जो गोपनारीका वेष धारण करके वहाँ रहती थी। उसीने गार्ग्यमुनिके उस दुर्धर एवं अच्युत गर्भको धारण किया॥ १४॥ भगवान् शङ्करके वरके प्रभावसे गार्ग्यमुनिकी उस मानवीरूपधारिणी अप्सरारूपा भार्याके गर्भसे महाबली शूरवीर कालयवनका जन्म हुआ॥ १५॥ राजन्! उस शिशुका उस पुत्रहीन राजाके अन्तःपुरमें लालन-पालन एवं संवर्द्धन होने लगा। उस राजाकी मृत्यु होनेके पश्चात् कालयवन ही उसके राज्यका अधिपति हुआ॥ १६॥ राजा कालयवन युद्धकी अभिलाषा रखकर श्रेष्ठ द्विजोंसे पूछने लगा कि 'सबसे बड़े वीर कौन हैं और कहाँ रहते हैं?' तब देवर्षि नारदने उसे वृष्णि और अन्धकवंशका परिचय दिया॥ १७॥ नारदजीसे उसको मिले हुए वरदानका समाचार जानकर भी तेजस्वी मधुसूदनने यवनोंके यहाँ पलते हुए उस कालयवनकी उपेक्षा कर दी॥ १८॥ जब यवनोंका राजा महाबली कालयवन समृद्धिशाली हुआ, तब दूसरे म्लेच्छ नरेश उसकी शरण लेकर उसीका अनुसरण करने लगे॥ १९॥ शक, तुषार, दरद, पारद, शृङ्गल, खस, पह्लव तथा दूसरे-दूसरे सैकड़ों हिमालय-निवासी म्लेच्छ उसके साथ हो गये॥ २०॥ शलभोंके समान उन अगणित लुटेरोंसे, जो नाना प्रकारके वेश और आयुध धारण करनेके कारण बड़े भयंकर प्रतीत होते थे, घिरा हुआ राजा कालयवन मथुरापर चढ़ आया॥ २१॥ उसके साथ हाथी, घोड़े, गदहे और ऊँट हजारों, लाखों तथा करोड़ोंकी संख्यामें विद्यमान थे। वह उस विशाल सेनासे घिरकर इस पृथ्वीको कम्पित कर रहा था। उस राजाने सेनाद्वारा उठी हुई धूलसे सूर्यके मार्गको आच्छादित कर दिया और सैनिकोंके मल-मूत्रसे नूतन नदीकी सृष्टि कर दी॥ २२-२३॥ जनेश्वर! घोड़ों और ऊटोंकी लीदोंके ढेरसे वह नदी प्रकट हुई थी, इसलिये उसका नाम 'अश्वशकृत्' हो गया॥ २४॥

तत्सैन्यं महदायाद् वै श्रुत्वा वृष्ण्यन्धकाग्रणीः।
वसुदेवः समानाय्य ज्ञातीनिदमुवाच ह॥ २५

इदं समुत्थितं घोरं वृष्ण्यन्धकभयं महत्।
अवध्यश्चापि नः शत्रुर्वरदानात् पिनाकिनः॥ २६

सामादयोऽभ्युपायाश्च विहितास्तस्य सर्वशः।
मत्तो मदबलाभ्यां तु युद्धमेव चिकीर्षति॥ २७

एतावानिह वासश्च कथितो नारदेन मे।
एतावति च वक्तव्यं सामैव परमं मतम्॥ २८

जरासंधश्च नो राजा नित्यमेव न मृष्यते।
तथान्ये पृथिवीपाला वृष्णिचक्रप्रतापिताः॥ २९

केचित् कंसवधाच्चापि विरक्तास्तद्‌गता नृपाः।
समाश्रित्य जरासंधमस्मानिच्छन्ति बाधितुम्॥ ३०

बहवो ज्ञातयश्चैव यदूनां निहता नृपैः।
वर्द्धितुं नैव शक्ष्याम पुरेऽस्मिन्निति केशवः॥ ३१

अपयाने मतिं कृत्वा दूतं तस्मै ससर्ज ह।
ततः कुम्भे महासर्पं भिन्नाञ्जनचयोपमम्॥ ३२

घोरमाशीविषं कृष्णं कृष्णः प्राक्षेपयत् तदा।
ततस्तं मुद्रयित्वा तु स्वेन दूतेन हारयत्॥ ३३

निदर्शनार्थं गोविन्दो भीषयामास तं नृपम्।
स दूतः कालयवने दर्शयामास तं घटम्॥ ३४

कालसर्पोपमः कृष्ण इत्युक्त्वा भरतर्षभ।
तत्कालयवनो बुद्ध्वा त्रासनं यादवैः कृतम्॥ ३५

पिपीलिकानां चण्डानां पूरयामास तं घटम्।
स सर्पो बहुभिस्तीक्ष्णैः सर्वतस्तैः पिपीलिकैः।
भक्ष्यमाणः किलाङ्गेषु भस्मीभूतोऽभवत् तदा॥ ३६

उसकी विशाल सेनाके आगमनका समाचार सुनकर वृष्णि और अन्धक कुलके अगुआ वसुदेवजी सब जाति-भाइयोंको एकत्र करके उनसे इस प्रकार बोले— ॥ २५ ॥ 'बन्धुओ! यह वृष्णि और अन्धक कुलके लिये महान् एवं घोर संकट उठ खड़ा हुआ है। पिनाकपाणि भगवान् शंकरके वरदानसे हमारा शत्रु अवध्य है॥ २६ ॥ उसे शान्त करनेके लिये हमने साम आदि उपायोंका भी सर्वथा प्रयोग किया है, परंतु वह मद और बलसे उन्मत्त होनेके कारण केवल युद्ध करनेकी ही इच्छा प्रकट करता है॥ २७ ॥ नारदजीने इतने ही समयतक हमलोगोंका यहाँ निवास बतलाया था। ऐसे शक्ति-साधन-सम्पन्न शत्रुके प्रति सान्त्वनापूर्ण वचन कहना ही परम उत्तम माना गया है॥ २८ ॥ राजा जरासंध हमलोगोंको कभी क्षमा नहीं करता है—हमारे प्रति सदा अमर्षसे ही भरा रहता है तथा दूसरे भूपाल जो वृष्णिमण्डलसे सताये गये हैं एवं कुछ नरेश, जो कंसवधके कारण हमलोगोंसे विरक्त हो गये हैं, वे सब-के-सब जरासंधसे मिल गये हैं और उसीका आश्रय लेकर हमलोगोंको बाधा पहुँचाना चाहते हैं॥ २९-३० ॥ उन राजाओंने यदुकुलके बहुत-से भाई-बन्धुओंको मार डाला है। हमलोग यहाँ रहकर फल-फूल नहीं सकेंगे, यही सोचकर श्रीकृष्णने यहाँसे हट जानेका विचार करके उसके पास एक दूत भेजा था। श्रीकृष्णने उस समय खानसे काटकर निकाले गये कोयलेके ढेरके समान काले, भयंकर, विषधर महासर्पको एक घड़ेमें रखवाया और उसका मुँह बंद करके उस घड़ेको अपने दूतके द्वारा उसके पास पहुँचवा दिया॥ ३१—३३ ॥ गोविन्दने दृष्टान्तके लिये वह सर्प भेजकर उस राजाको डरानेकी चेष्टा की थी। भरतश्रेष्ठ! उस दूतने कालयवनसे यह कहकर श्रीकृष्ण काले सर्पके समान भयंकर हैं, उसे वह घड़ा दिखलाया। कालयवनने यह समझकर कि यादवोंने मुझे डरानेका प्रयत्न किया है, उस घड़ेमें बहुत-से रोषभरे चींटोंको भर दिया। उन बहुसंख्यक तीखे चींटोंने सब ओरसे उस सर्पके शरीरको काटना शुरू किया, जिससे वह काला सर्प तत्काल कालके गालमें चला गया॥ ३४—३६ ॥

तं मुद्रयित्वा तु घटं तथैव यवनाधिपः।
प्रेषयामास कृष्णाय बाहुल्यमुपवर्णयन्॥ ३७

वासुदेवस्तु तं दृष्ट्वा योगं विहतमात्मनः।
उत्सृज्य मथुरामाशु द्वारकामभिजग्मिवान्॥ ३८

वैरस्यान्तं विधित्संस्तु वासुदेवो महायशाः।
निवेश्य द्वारकां राजन् वृष्णीनाश्वास्य चैव ह॥ ३९

पदातिः पुरुषव्याघ्रो बाहुप्रहरणस्तदा।
आजगाम महावीर्यो मथुरां मधुसूदनः॥ ४०

तं दृष्ट्वा निर्ययौ हृष्टः स कालयवनो रुषा।
प्रेक्षापूर्वं च कृष्णोऽपि निश्चकर्ष महाबलः॥ ४१

अथान्वगच्छद् गोविन्दं जिघृक्षुर्यवनेश्वरः।
न चैनमशकद् राजा ग्रहीतुं योगधर्मिणम्॥ ४२

मान्धातुस्तु सुतो राजा मुचुकुन्दो महायशाः।
पुरा देवासुरे युद्धे कृतकर्मा महाबलः॥ ४३

वरेण च्छन्दितो देवैर्निद्रामेव गृहीतवान्।
श्रान्तस्य तस्य वागेवं तदा प्रादुरभूत् किल॥ ४४

प्रसुप्तं बोधयेद् यो मां तं दहेयमहं सुराः।
चक्षुषा क्रोधदीप्तेन एवमाह पुनः पुनः॥ ४५

एवमस्त्विति तं शक्र उवाच त्रिदशैः सह।
स सुरैरभ्यनुज्ञातो ह्यद्रिराजमुपागमत्॥ ४६

स पर्वतगुहां काञ्चित् प्रविश्य श्रमकर्शितः।
सुष्वाप कालमेतं वै यावत्कृष्णस्य दर्शनम्॥ ४७

तत्सर्वं वासुदेवाय नारदेन निवेदितम्।
वरदानं च देवेभ्यस्तेजस्तस्य च भूपतेः॥ ४८

कृष्णोऽनुगम्यमानश्च तेन म्लेच्छेन शत्रुणा।
तां गुहां मुचुकुन्दस्य प्रविवेश विनीतवत्॥ ४९

शिरःस्थाने तु राजर्षेर्मुचुकुन्दस्य केशवः।
संदर्शनपथं त्यक्त्वा तस्थौ बुद्धिमतां वरः॥ ५०

फिर उस घड़ेको उसी तरह बंद करके यवनराजने अपनी सैनिक-शक्तिकी बहुलताका वर्णन करते हुए श्रीकृष्णके पास भेज दिया॥ ३७॥ भगवान् श्रीकृष्णने अपने उस प्रयोगको विफल हुआ देख तुरंत मथुरा छोड़कर द्वारकाको प्रस्थान कर दिया॥ ३८॥ राजन्! महायशस्वी वासुदेवने उस वैरका अन्त कर डालनेकी इच्छासे द्वारकापुरी बसाकर वृष्णिवंशियोंको आश्वासन दे (पुनः वहाँसे मथुराको प्रस्थान किया)॥ ३९॥ महापराक्रमी पुरुषसिंह मधुसूदन केवल भुजाओंको ही आयुधरूपमें साथ ले पैदल ही मथुरामें आये॥ ४०॥ उन्हें देखकर हर्ष और रोषसे भरा हुआ कालयवन निकला। इधर महाबली श्रीकृष्ण भी अपने-आपको दिखाकर भागते हुए उसे भी अपने पीछे खींच ले चले॥ ४१॥ यवनेश्वर राजा कालयवन गोविन्दको पकड़ लेनेकी इच्छासे उनके पीछे-पीछे चला; परंतु इन योगधर्मी श्रीकृष्णको वह पकड़ न सका॥ ४२॥ प्राचीन कालमें जब देवासुर-संग्राम हुआ था, उस समय मान्धाताके पुत्र महायशस्वी, महाबली राजा मुचुकुन्दने देवताओंकी ओरसे युद्ध करके उसमें सफलता प्राप्त की थी॥ ४३॥ देवताओंने उनसे वर माँगनेका अनुरोध किया, तब उन्होंने निद्राको ही वरके रूपमें ग्रहण किया। युद्धसे थके होनेके कारण उस समय उनके मुँहसे निम्नाङ्कित वाणी प्रकट हुई—॥ ४४॥ 'देवताओ! जो मुझे सोतेसे जगा दे, उसे मैं क्रोधसे प्रज्वलित हुई दृष्टिके द्वारा जलाकर भस्म कर दूँ' ऐसा उन्होंने बारंबार कहा॥ ४५॥ तब देवताओंसहित इन्द्रने उनसे कहा 'एवमस्तु' (ऐसा ही हो)। इस प्रकार देवताओंसे आज्ञा लेकर वे गिरिराजके पास आये॥ ४६॥ श्रमसे थके हुए राजाने पर्वतकी किसी गुफामें प्रवेश करके उस समयतक शयन किया, जबतक कि उन्हें श्रीकृष्णका दर्शन नहीं हुआ था॥ ४७॥ राजा मुचुकुन्दके तेज तथा देवताओंसे उन्हें मिले हुए वरदानकी सारी बातें देवर्षि नारदने वसुदेवनन्दन भगवान् श्रीकृष्णको बतायी थी॥ ४८॥ उस म्लेच्छजातीय शत्रुके द्वारा पीछा किये जाते हुए श्रीकृष्णने मुचुकुन्दकी उस गुफामें एक विनीत पुरुषकी भाँति प्रवेश किया॥ ४९॥ बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ श्रीकृष्ण राजर्षि मुचुकुन्दके सिरहानेकी ओर उनके दृष्टिपथको त्यागकर (अर्थात् जहाँसे उन्हें दिखायी न दे सकें—ऐसे स्थानपर) खड़े हो गये॥ ५०॥

अनुप्रविश्य यवनो ददर्श पृथिवीपतिम्।
स तं सुप्तं कृतान्ताभमाससाद सुदुर्मतिः॥ ५१

वासुदेवं तु तं मत्वा घट्टयामास पार्थिवम्।
पादेनात्मविनाशाय शलभः पावकं यथा॥ ५२

मुचुकुन्दस्तु राजर्षिः पादस्पर्शप्रबोधितः।
निद्राच्छेदेन चुक्रोध पादस्पर्शेन तेन च॥ ५३

संस्मृत्य स वरं शक्रादवैक्षत तमग्रतः।
स दृष्टमात्रः क्रोधेन सम्प्रजज्वाल सर्वशः॥ ५४

ददाह पावकस्तं तु शुष्कं वृक्षमिवाशनिः।
क्षणेन कालयवनं नेत्रतेजोविनिर्गतः॥ ५५

तं वासुदेवः श्रीमन्तं चिरसुप्तं नराधिपम्।
कृतकार्योऽब्रवीद् धीमानिदं वचनमुत्तमम्॥ ५६

राजंश्चिरप्रसुप्तोऽसि कथितो नारदेन मे।
कृतं मे सुमहत्कार्यं स्वस्ति तेऽस्तु व्रजाम्यहम्॥ ५७

वासुदेवमुपालक्ष्य राजा ह्रस्वं प्रमाणतः।
परिष्कृतं युगं मेने कालेन महता तदा॥ ५८

उवाच राजा गोविन्दं को भवान् किमिहागतः।
कश्च कालः प्रसुप्तस्य यदि जानासि कथ्यताम्॥ ५९

श्रीकृष्ण उवाच

सोमवंशोद्भवो राजा ययातिर्नाम नाहुषः।
तस्य पुत्रो यदुर्ज्येष्ठश्चत्वारोऽन्ये यवीयसः॥ ६०

यदुवंशात् समुत्पन्नं वसुदेवात्मजं विभो।
वासुदेवं विजानीहि नृपते मामिहागतम्॥ ६१

त्रेतायुगे प्रसुप्तोऽसि विदितो मेऽसि नारदात्।
इदं कलियुगं विद्धि किमन्यत् करवाणि ते॥ ६२

मम शत्रुस्त्वया दग्धो देवदत्तवरो नृप।
अवध्यो यो मया संख्ये भवेद् वर्षशतैरपि॥ ६३

उनके पीछे-पीछे उस कालयवनने भी गुफामें प्रवेश करके सोये हुए राजा मुचुकुन्दको देखा। वह दुर्बुद्धि अपने लिये कालके समान उन नरेशके पास स्वयं ही जा पहुँचा॥ ५१॥ जैसे पतिंगा अपने ही विनाशके लिये आगमें कूद पड़ता है, उसी प्रकार कालयवनने मुचुकुन्दको श्रीकृष्ण समझकर उन्हें अपने विनाशके लिये ही लातसे मारा॥ ५२॥ राजर्षि मुचुकुन्द उसके पैरोंकी ठोकर लगनेसे जाग उठे। एक तो उनकी निद्रा भङ्ग हुई थी और दूसरे उस यवनने उन्हें पैरसे छू दिया था, इससे वे कुपित हो उठे॥ ५३॥ फिर इन्द्रसे मिले हुए वरका स्मरण करके उन्होंने सामने खड़े हुए कालयवनकी ओर देखा। उनके क्रोधपूर्वक देखते ही वह सब ओरसे आगमें जलने लगा॥ ५४॥ जैसे वज्र सूखे वृक्षको जला देता है, उसी प्रकार मुचुकुन्दके नेत्रोंके तेजसे प्रकट हुई उस अग्निने कालयवनको क्षणभरमें ही जलाकर भस्म कर दिया॥ ५५॥ बुद्धिमान् भगवान् श्रीकृष्णका अभीष्ट कार्य सिद्ध हो गया। वे चिरकालसे सोये हुए उन तेजस्वी राजा मुचुकुन्दसे यह उत्तम वचन बोले—॥ ५६॥ राजन्! आप दीर्घकालसे यहाँ सो रहे थे। मुझे नारदजीने आपके विषयमें बताया था। आपने मेरा महान् कार्य सिद्ध कर दिया। आपका कल्याण हो। अब मैं जाता हूँ॥ ५७॥ राजा मुचुकुन्दने वसुदेवनन्दन श्रीकृष्णको कदमें छोटा देखकर यह समझ लिया कि दीर्घकाल व्यतीत होनेसे युग बदल गया॥ ५८॥ राजाने गोविन्दसे पूछा—'आप कौन हैं? और किसलिये यहाँ आये हैं? मेरे सोते-सोते कितना समय व्यतीत हो गया? यदि जानते हों तो बताइये'॥ ५९॥

श्रीकृष्णने कहा—राजन्! चन्द्रवंशमें नहुषके पुत्र राजा ययाति हो गये हैं। उनके ज्येष्ठ पुत्र यदु थे। यदुके चार छोटे भाई और थे॥ ६०॥ विभो! नरेश्वर! आपको विदित हो कि मैं यदुवंशमें उत्पन्न हुआ हूँ। वसुदेवका पुत्र हूँ, अतएव लोग मुझे वासुदेव कहते हैं। मैं वासुदेव ही यहाँ आया हूँ॥ ६१॥ आप त्रेतायुगमें सोये थे। मुझे आपके विषयमें नारदजीसे सब बातें ज्ञात हुई हैं। इस समय द्वापर और कलियुगकी संधिका काल समझिये। इसके सिवा आपकी क्या सेवा करूँ॥ ६२॥ नरेश्वर! तुमने मेरे उस शत्रुको जलाकर भस्म किया है, जिसे देवताओंसे वरदान प्राप्त था और जो युद्धमें मेरे द्वारा सौ वर्षोंमें भी नहीं मारा जा सकता था॥ ६३॥

वैशम्पायन उवाच

इत्युक्तः स तु कृष्णेन निर्जगाम गुहामुखात्।
अन्वीयमानः कृष्णेन कृतकार्येण धीमता॥ ६४

ततो ददर्श पृथिवीमावृतां ह्रस्वकैर्नरैः।
स्वल्पोत्साहैरल्पबलैरल्पवीर्यपराक्रमैः ।
परेणाधिष्ठितं चैव राज्यं केवलमात्मनः॥ ६५

प्रीत्या विसृज्य गोविन्दं प्रविवेश महद् वनम्।
हिमवन्तमगाद् राजा तपसे धृतमानसः॥ ६६

ततः स तप आस्थाय विनिर्मुच्य कलेवरम्।
आरुरोह दिवं राजा कर्मभिः स्वैर्जिताशुभैः॥ ६७

वासुदेवोऽपि धर्मात्मा उपायेन महामनाः।
घातयित्वाऽऽत्मनः शत्रुं तत्सैन्यं प्रत्यपद्यत॥ ६८

प्रभूतरथहस्त्यश्ववर्मशस्त्रायुधध्वजम् ।
आदायोपययौ धीमान् स सैन्यं निहतेश्वरम्॥ ६९

निवेदयामास ततो नराधिपे
तदुग्रसेने प्रतिपूर्णमानसः।
जनार्दनो द्वारवतीं च तां पुरी-
मशोभयत् तेन धनेन भूरिणा॥ ७०

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! श्रीकृष्णके ऐसा कहनेपर राजा मुचुकुन्द गुफाके द्वारसे बाहर निकले। उनके पीछे कृतकृत्य हुए बुद्धिमान् श्रीकृष्ण भी थे॥ ६४॥ उन्होंने देखा, पृथ्वीपर छोटे-छोटे मनुष्य भरे हुए हैं। उन सबके उत्साह, बल, वीर्य और पराक्रम बहुत थोड़े हैं। अब अपना केवल राज्य बच गया है, जिसपर दूसरेका प्रभुत्व स्थापित हो चुका है॥ ६५॥ तब राजाने बड़े प्रेमसे भगवान् श्रीकृष्णको विदा किया और स्वयं अपने मनमें तपस्याका निश्चय करके हिमालयपर्वतपर वहाँके विशाल वनमें चले गये॥ ६६॥ वहाँ तपस्या करके शरीरको त्यागकर राजा मुचुकुन्द अपने अशुभनिवारक पुण्यकर्मोंके द्वारा स्वर्गलोकमें जा पहुँचे॥ ६७॥ इधर महामनस्वी धर्मात्मा भगवान् वासुदेवने भी अपने शत्रुको पूर्वोक्त रूपसे मरवाकर उसकी सारी सेनापर अधिकार कर लिया॥ ६८॥ बुद्धिमान् श्रीकृष्ण बहुसंख्यक रथ, हाथी, घोड़े, कवच, अस्त्र, शस्त्र और ध्वजाओंसे युक्त सेनाको, जिसका राजा मारा गया था, अपने साथ ले गये॥ ६९॥ उनका मनोरथ पूर्ण हो चुका था। जनार्दनने वह सारी सेना राजा उग्रसेनको समर्पित कर दी और उस प्रचुर धनराशिसे उन्होंने द्वारकापुरीकी शोभा बढ़ायी॥ ७०॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे विष्णुपर्वणि कालयवनवधे सप्तपञ्चाशत्तमोऽध्यायः॥ ५७॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत विष्णुपर्वमें कालयवनका वधविषयक सत्तावनवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ५७॥

अष्टपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

द्वारकापुरीका विश्वकर्माद्वारा निर्माण, निधिपति शङ्ख और सुधर्मासभाका आनयन, श्रीकृष्णद्वारा सुव्यवस्थापूर्वक वहाँ यादवोंको बसाना तथा बलरामजीका रेवतीके साथ विवाह

वैशम्पायन उवाच

ततः प्रभाते विमले भास्करे उदिते तदा।
कृतजाप्यो हृषीकेशो वनान्ते निषसाद ह॥ १

परिचक्राम तं देशं दुर्गस्थानदिदृक्षया।
उपतस्थुः कुलप्राग्र्या यादवा यदुनन्दनम्॥ २

रोहिण्यामहनि श्रेष्ठे स्वस्ति वाच्य द्विजोत्तमान्।
पुण्याहघोषैर्विपुलैर्दुर्गस्यारब्धवान् क्रियाम्॥ ३

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! तदनन्तर, निर्मल प्रभातकालमें सूर्योदय होनेपर भगवान् श्रीकृष्ण नैत्यिक जप एवं स्वाध्याय आदि पूर्ण करके वनके भीतर बैठे॥ १॥ तत्पश्चात् दुर्गके लिये उपयुक्त स्थान देखनेकी इच्छासे वे उस प्रदेशमें घूमने लगे। उस समय कुलके बड़े-बूढ़े यदुवंशी भी यदुनन्दन श्रीकृष्णके पास आ गये थे॥ २॥ श्रीकृष्णने रोहिणी नक्षत्रमें श्रेष्ठ शनिवारको उत्तम ब्राह्मणोंसे स्वस्तिवाचन कराकर विपुल पुण्याहघोषके साथ दुर्गनिर्माणका कार्य आरम्भ कर दिया॥ ३॥

ततः पङ्कजपत्राक्षो यादवान् केशिसूदनः।
प्रोवाच वदतां श्रेष्ठो देवान् वृत्ररिपुर्यथा॥ ४

कल्पितेयं मया भूमिः पश्यध्वं देवसद्मवत्।
नाम चास्याः कृतं पुर्याः ख्यातिं यदुपयास्यति॥ ५

इयं द्वारवती नाम पृथिव्यां निर्मिता मया।
भविष्यति पुरी रम्या शक्रस्येवामरावती॥ ६

तान्येवास्याः कारयिष्ये चिह्नान्यायतनानि च।
चत्वरान् राजमार्गांश्च सम्यगन्तःपुराणि च॥ ७

देवा इवात्र मोदन्तु भवन्तो विगतज्वराः।
बाधमाना रिपूनुग्रानुग्रसेनपुरोगमाः॥ ८

गृह्यन्तां वेश्मवास्तूनि कल्प्यन्तां त्रिकचत्वराः।
मीयन्तां राजमार्गाश्च प्रासादस्य च या गतिः॥ ९

प्रेष्यन्तां शिल्पिमुख्या वै नियुक्ता वेश्मकर्मसु।
नियुज्यन्तां च देशेषु प्रेष्यकर्मकरा जनाः॥ १०

एवमुक्ते तु यदवो गृहसंग्रहतत्पराः।
यथानिवेशं संहृष्टाश्चक्रुर्वास्तुपरिग्रहम्॥ ११

सूत्रहस्तास्ततो मानं चक्रुर्यादवसत्तमाः।
पुण्येऽहनि महाराज द्विजातीनभिपूज्य च॥ १२

वास्तुदैवतकर्माणि विधिना कारयन्ति च।
स्थपतीनथ गोविन्दस्तत्रोवाच महामतिः॥ १३

अस्मदर्थे सुविहितं क्रियतामत्र मन्दिरम्।
विविक्तचत्वरपथं सुनिविष्टेष्टदैवतम्॥ १४

ते तथेति महाबाहुमुक्त्वा स्थपतयस्तदा।
दुर्गकर्माणि संस्कारानुपकल्प्य यथाविधि॥ १५

यथान्यायं निर्मिमिरे दुर्गाण्यायतनानि च।
स्थानानि निदधुश्चात्र ब्रह्मादीनां यथाक्रमम्॥ १६

तत्पश्चात् वक्ताओंमें श्रेष्ठ केशिहन्ता कमलनयन श्रीकृष्णने जैसे वृत्रासुरके वैरी इन्द्र देवताओंसे कोई बात कहते हैं, उसी प्रकार यादवोंसे कहा— ॥ ४ ॥ यादवो! मैंने देवसदनके समान इस भूमिका निर्माण कर लिया है। आप सब लोग देखें। मैंने इसका नाम भी निश्चित कर लिया है, जिससे इसकी ख्याति होगी॥ ५ ॥ मेरे द्वारा इस भूतलपर निर्मित हुई यह पुरी द्वारवतीके नामसे प्रसिद्ध होगी तथा इन्द्रकी अमरावतीके समान रमणीय दिखायी देगी॥ ६ ॥ मैं इस पुरीके वे ही चिह्न, वे ही मन्दिर, वैसे ही चौराहे, उसी तरहकी सड़कें और वैसे ही उत्तम अन्तःपुर बनवाऊँगा, जैसे कि अमरावतीमें है॥ ७ ॥ जैसे देवता अमरावतीमें आनन्द भोगते हैं, उसी प्रकार उग्रसेन आदि आपलोग भी निश्चिन्त हो अपने शत्रुओंको पीड़ा देते हुए इस पुरीमें सानन्द निवास करें॥ ८ ॥ घरोंके शिलान्यासकी सामग्रियाँ संग्रह करके लायी जायँ। तिराहों और चौराहोंकी कल्पना की जाय। सड़कोंके लिये भूमिका माप किया जाय तथा राजमहलमें जानेका जो मार्ग है, उसके लिये भी भूमि नापी जाय॥ ९ ॥ गृहनिर्माणके कार्यमें लगे रहनेवाले जो सुयोग्य एवं श्रेष्ठ शिल्पी हों, उन्हें यहाँ भेजा जाय और जगह-जगह मजदूरीका काम करनेवाले मजदूरोंको (कारीगरोंके साथ) काम करनेके लिये लगा दिया जाय'॥ १० ॥ भगवान् श्रीकृष्णके ऐसा कहनेपर सब यादव हर्षसे उल्लसित हो गृहनिर्माणके लिये उपयोगी सामग्रीका संग्रह करनेमें लग गये। उन्होंने सभी घरोंके लिये उनकी स्थितिके अनुसार शिलान्यासके निमित्त आवश्यक वस्तुओंका संग्रह किया॥ ११ ॥ महाराज! तदनन्तर श्रेष्ठ यादवोंने एक पवित्र दिनको ब्राह्मणोंका पूजन करके हाथोंमें सूत्र लेकर भूमिको नापना आरम्भ किया॥ १२ ॥ वे वास्तुदेवताके पूजन आदि कर्म भी विधिपूर्वक सम्पन्न कराने लगे। तत्पश्चात् परम बुद्धिमान् भगवान् श्रीकृष्णने वहाँ थवइयोंसे कहा— ॥ १३ ॥ 'कारीगरो! तुमलोग यहाँ हम यादवोंके लिये सुन्दर ढंगसे एक मन्दिरका निर्माण करो, जिसमें इष्टदेवताकी उत्तम विधिसे स्थापना की जाय। यहाँका मार्ग और चौराहा पृथक् रहना चाहिये'॥ १४ ॥ तब उन थवइयोंने महाबाहु श्रीकृष्णसे 'बहुत अच्छा' कहकर विधिपूर्वक दुर्ग-कर्म (दुर्गनिर्माण-सम्बन्धी प्रारम्भिक कार्य—नींव खोदना आदि) और संस्कार (भूमिशोधन—कण्टकनिवारण आदि) करके यथोचित रीतिसे विभिन्न दुर्गों और मन्दिरोंका निर्माण किया तथा उनमें क्रमशः ब्रह्मा आदि देवताओंके लिये स्थान बनाये॥ १५-१६ ॥

अपामग्नेः सुरेशस्य दृषदोलूखलस्य च।
चातुर्दैवानि चत्वारि द्वाराणि निदधुश्च ते॥ १७
शुद्धाक्षमैन्द्रं भल्लाटं पुष्पदन्तं तथैव च।
तेषु वेश्मसु युक्तेषु यादवेषु महात्मसु॥ १८
पुर्याः क्षिप्रं निवेशार्थं चिन्तयामास माधवः।
तस्य दैवोत्थिता बुद्धिर्विमला क्षिप्रकारिणी॥ १९
पुर्याः प्रियकरी सा वै यदूनामभिवर्द्धिनी।
शिल्पिमुख्यस्तु देवानां प्रजापतिसुतः प्रभुः॥ २०
विश्वकर्मा स्वमत्या वै पुरीं संस्थापयिष्यति।
मनसा समनुध्याय तस्यागमनकारणात्।
त्रिदशाभिमुखः कृष्णो विविक्ते समपद्यत॥ २१
तस्मिन्नेव ततः काले शिल्पाचार्यो महामतिः।
विश्वकर्मा सुरश्रेष्ठः कृष्णस्य प्रमुखे स्थितः॥ २२

विश्वकर्मोवाच

शक्रेण प्रेषितः क्षिप्रं तव विष्णो धृतव्रत।
किङ्करः समनुप्राप्तः शाधि मां किं करोमि ते॥ २३

यथासौ देवदेवो मे शङ्करश्च यथाव्ययः।
तथा त्वं देव मान्यो मे विशेषो नास्ति वः प्रभो॥ २४

त्रैलोक्यज्ञापिकां वाचमुत्सृजस्व महाभुज।
एषोऽस्मि परिदृष्टार्थः किं करोमि प्रशाधि माम्॥ २५

श्रुत्वा विनीतं वचनं केशवो विश्वकर्मणः।
प्रत्युवाच यदुश्रेष्ठः कंसारिरतुलं वचः॥ २६

श्रुतार्थो देवगुह्यस्य भवान् यत्र वयं स्थिताः।
अवश्यं त्विह कर्तव्यं सदनं मे सुरोत्तम॥ २७

तदियं पूः प्रकाशार्थं निवेश्या मयि सुव्रत।
मत्प्रभावानुरूपैश्च गृहैश्चेयं समन्ततः॥ २८

उन्होंने जल, अग्नि, इन्द्र तथा सिल-ओखली—इन चार देवताओंके लिये चार द्वार बनाये (अथवा शुद्धाक्ष आदि चार देवताओंके लिये द्वारोंका निर्माण किया)॥ १७॥ उन कारीगरोंने शुद्धाक्ष, ऐन्द्र, भल्लाट और पुष्पदन्तकी भी मूर्तियाँ बनायीं और उनके लिये उपयुक्त स्थानका निर्माण किया। जब महामनस्वी यादव उन भवनोंके निर्माण कार्यमें जुट गये, तब माधव श्रीकृष्ण इस चिन्तामें पड़े कि किस तरह इस पुरीका शीघ्र निर्माण हो जाय। दैववश उनके भीतर पुरीका शीघ्र निर्माण करानेवाली निर्मल बुद्धिका उदय हुआ, जो यादवोंका प्रिय एवं अभ्युदय करनेवाली थी। उन्होंने सोचा,'देवताओंके प्रधान शिल्पी प्रजापतिपुत्र विश्वकर्मा इस कार्यमें समर्थ हैं। वे अपनी बुद्धिके अनुसार इस पुरीकी स्थापना करेंगे'। मन-ही-मन यह बात सोचकर भगवान् श्रीकृष्ण एकान्त स्थानमें विश्वकर्माके आगमनके लिये देवताओंकी ओर उन्मुख हुए॥ १८—२१॥ इसी समय परम बुद्धिमान् शिल्पाचार्य सुरश्रेष्ठ विश्वकर्मा श्रीकृष्णके सामने आकर खड़े हो गये॥ २२॥

विश्वकर्मा बोले—उत्तम व्रतको धारण करनेवाले विष्णुदेव! मुझे इन्द्रने आपके पास शीघ्र भेजा है। मैं सेवक आपकी सेवामें उपस्थित हूँ। आज्ञा दीजिये, मैं आपकी क्या सेवा करूँ?॥ २३॥ देव! प्रभो! मेरे लिये जैसे देवाधिदेव ब्रह्माजी तथा अविनाशी भगवान् शङ्कर माननीय हैं, उसी प्रकार आप भी मेरे लिये सम्माननीय हैं। मेरी धारणाके अनुसार आप तीनोंमें कोई अन्तर नहीं है॥ २४ ॥ महाबाहो! आपकी वाणी तीनों लोकोंका ज्ञान करानेवाली है (अथवा तीनों लोकोंको आज्ञा देनेमें समर्थ है)। आप मेरे प्रति उसीका प्रयोग कीजिये। मैं शिल्पशास्त्रका पारदर्शी आपके सामने खड़ा हूँ। आज्ञा दीजिये, कौन-सा कार्य करूँ॥ २५॥ विश्वकर्माका यह विनययुक्त वचन सुनकर कंसविध्वंसी यदुश्रेष्ठ भगवान् श्रीकृष्ण उनसे यह अनुपम वचन बोले— ॥ २६॥'सुरश्रेष्ठ! पूर्वकालमें देवताओंकी जो गुप्त सभा बैठी थी, जहाँ हमलोग उपस्थित थे, वहाँ तुम भी थे, अतः देवताओंका जो गूढ़ प्रयोजन है, उसे तुमने भी सुना ही है। अतः यहाँ मेरे रहनेके लिये अवश्य ही सुन्दर सदनका निर्माण करना होगा॥ २७॥ उत्तमव्रतधारी देव! मेरे निमित्त अपने शिल्पकौशलका प्रदर्शन करनेके लिये तुम्हें इस नगरीको बसाना और इसके भवनोंका निर्माण करना है। यह पुरी सब ओरसे मेरे प्रभावके अनुरूप गृहोंद्वारा सुशोभित हो'॥ २८॥

उत्तमा च पृथिव्यां वै यथा स्वर्गेऽमरावती।
तथेयं हि त्वया कार्या शक्तो ह्यसि महामते॥ २९

मम स्थानमिदं कार्यं यथा वै त्रिदिवे तथा।
मर्त्याः पश्यन्तु मे लक्ष्मीं पुर्या यदुकुलस्य च॥ ३०

एवमुक्तस्ततः प्राह विश्वकर्मा मतीश्वरः।
कृष्णमक्लिष्टकर्माणं देवामित्रविनाशनम्॥ ३१

सर्वमेतत् करिष्यामि यत् त्वयाभिहितं प्रभो।
पुरी त्वियं जनस्यास्य न पर्याप्ता भविष्यति॥ ३२

भविष्यति च विस्तीर्णा वृद्धिरस्यास्तु शोभना।
चत्वारः सागरा ह्यस्यां विचरिष्यन्ति रूपिणः॥ ३३

यदीच्छेत् सागरः किंचिदुत्स्रष्टुमपि तोयराट्।
ततः स्वायतलक्षण्या पुरी स्यात् पुरुषोत्तम॥ ३४

एवमुक्तस्ततः कृष्णः प्रागेव कृतनिश्चयः।
सागरं सरितां नाथमुवाच वदतां वरः॥ ३५

समुद्र दश च द्वे च योजनानि जलाशये।
प्रतिसंह्रियतामात्मा यद्यस्ति मयि मान्यता॥ ३६

अवकाशे त्वया दत्ते पुरीयं मामकं बलम्।
पर्याप्तविषया रम्या समग्रं विसहिष्यति॥ ३७

ततः कृष्णस्य वचनं श्रुत्वा नदनदीपतिः।
स मारुतेन योगेन उत्ससर्ज जलाशयम्॥ ३८

विश्वकर्मा ततः प्रीतः पुर्याः संलक्ष्य वास्तु तत्।
गोविन्दे चैव सम्मानं कृतवान् सागरस्तदा॥ ३९

विश्वकर्मा ततः कृष्णमुवाच यदुनन्दनम्।
अद्यप्रभृति गोविन्द सर्वे समधिरोहत॥ ४०

मनसा निर्मिता चेयं मया पूः प्रवरा विभो।
अचिरेणैव कालेन गृहसम्बाधमालिनी॥ ४१

भविष्यति पुरी रम्या सुद्वारा प्राग्र्यतोरणा।
चयाट्टालककेयूरा पृथिव्यां ककुदोपमा॥ ४२

'महामते! जैसे स्वर्गमें अमरावतीपुरी सबसे श्रेष्ठ है, उसी तरह इस पृथ्वीपर यह पुरी जैसे भी सर्वोत्तम हो सके, वैसा ही प्रयत्न करके तुम्हें इसका निर्माण करना है। तुम इस कार्यमें समर्थ हो॥ २९॥ मेरा यह स्थान तुम्हें वैसा ही बनाना है, जैसा कि वैकुण्ठधाममें है। जिससे यहाँके सब मनुष्य मेरा, इस पुरीका तथा यदुकुलका वैभव देख सकें'॥ ३०॥ उनके ऐसा कहनेपर बुद्धिके स्वामी प्रजापति विश्वकर्माने अनायास ही महान् कर्म करनेवाले देवशत्रु-विनाशक श्रीकृष्णसे कहा—॥ ३१॥ 'प्रभो! आपने जो कुछ कहा है, वह सब मैं करूँगा; परंतु पुरीके लिये जो भूमि है, यह इस विशाल जनसमुदायके लिये पर्याप्त नहीं होगी॥ ३२॥ पुरुषोत्तम! आप चाहें तो यह विस्तृत हो सकेगी। मेरी इच्छा है, इसका सुन्दर विस्तार हो। इसमें चारों समुद्र मूर्तिमान् होकर विचरेंगे। यदि जलके स्वामी समुद्र कुछ भूमि छोड़ सकें तो यह पुरी भलीभाँति विस्तृत एवं उत्तम लक्षणोंसे सम्पन्न हो सकेगी'॥ ३३-३४॥ विश्वकर्माके ऐसा कहनेपर वक्ताओंमें श्रेष्ठ श्रीकृष्ण, जो पहलेसे ही समुद्रसे भूमि लेनेका निश्चय कर चुके थे, सरिताओंके स्वामी सागरसे बोले—॥ ३५॥ 'समुद्र! यदि मेरे प्रति तुम्हारी आदरबुद्धि है तो तुम मेरे कहनेसे बारह योजनतक जलाशयमेंसे अपने स्वरूप (जल)-को समेट लो॥ ३६॥ तुम्हारे जगह दे देनेपर यहाँ बननेवाली इस पुरीका प्रदेश पर्याप्त विस्तारको प्राप्त हो जायगा तथा यह रमणीय पुरी मेरे समस्त सैन्यसमूहका भार सहन कर सकेगी'॥ ३७॥ उस समय श्रीकृष्णका यह वचन सुनकर नदों और नदियोंके अधिपति समुद्रने मारुतयोग (वायुके संकोच)-द्वारा अपने जलाशयके जलका उपसंहार करके उतनी भूमि छोड़ दी॥ ३८॥ पुरीका वह विशाल वास्तु देखकर विश्वकर्माको बड़ी प्रसन्नता हुई। समुद्रने उस समय भगवान् श्रीकृष्णका सम्मान किया॥ ३९॥ तत्पश्चात् विश्वकर्माने यदुनन्दन श्रीकृष्णसे कहा—'गोविन्द! आप सब लोग आजसे ही इस पुरीमें निवास करनेके लिये तैयार हो जाइये॥ ४०॥ प्रभो! मैंने मनसे इस श्रेष्ठ पुरीका निर्माण कर लिया है। अब थोड़े ही समयमें यह गृहोंकी पङ्क्तियोंसे अलंकृत रमणीय पुरीके रूपमें प्रकट हो जायगी। इसके दरवाजे बहुत ही सुन्दर होंगे। इसमें सब ओर सुन्दर वन्दनवारें लगी होंगी। टीले, परकोटे और अट्टालिकाएँ इस पुरीको केयूर (भुजबन्द)-के समान सुशोभित करेंगे। यह पुरी भूतलपर पृथ्वीकी चोटीके समान मानी जायगी'॥ ४१-४२॥

अन्तःपुरं च कृष्णस्य परिचर्याक्षयं महत्।
चकार तस्यां पुर्यां वै देशे त्रिदशपूजिते॥ ४३

ततः सा निर्मिता कान्ता पुरी द्वारावती तदा।
मानसेन प्रयत्नेन वैष्णवी विश्वकर्मणा॥ ४४

विधानविहितद्वारा प्राकारवरशोभिता।
परिखाचयसंगुप्ता साट्टप्राकारतोरणा॥ ४५

कान्तनारीनरगणा वणिग्भिरुपशोभिता।
नानापण्यगणाकीर्णा खेचरीव च गां गता॥ ४६

प्रपावापीप्रसन्नोदा उद्यानैरुपशोभिता।
समन्ततः संवृताङ्गी वनितेवायतेक्षणा॥ ४७

समृद्धचत्वरवती वेश्मोत्तमघनाचिता।
रथ्याकोटिसहस्राढ्या शुभ्रराजपथोत्तरा॥ ४८

भूषयन्ती समुद्रं सा स्वर्गमिन्द्रपुरी यथा।
पृथिव्यां सर्वरत्नानामेका निचयशालिनी॥ ४९

सुराणामपि सुक्षेत्रा सामन्तक्षोभकारिणी।
अप्रकाशं तदाकाशं प्रासादैरुपकुर्वती॥ ५०

पृथिव्यां पृथुराष्ट्रायां जनौघप्रतिनादिता।
ओघैश्च वारिराजस्य शिशिरीकृतमारुता॥ ५१

अनूपोपवनैः कान्तैः कान्त्या जनमनोहरा।
सतारका द्यौरिव सा द्वारका प्रत्यराजत॥ ५२

प्राकारेणार्कवर्णेन शातकौम्भेन संवृता।
हिरण्यप्रतिवर्णैश्च गृहैर्गम्भीरनिःस्वनैः॥ ५३

विश्वकर्माने इस पुरीके देवपूजित प्रदेशमें श्रीकृष्णके लिये विशाल अन्तःपुरका निर्माण किया, जिसमें परिचर्या (स्नान आदि)-के लिये अलग-अलग घर बने हुए थे॥ ४३॥ इस प्रकार उस समय विश्वकर्माने मानसिक प्रयत्न (संकल्प)-के द्वारा उस कमनीय वैष्णवीपुरी द्वारावतीका निर्माणकार्य सम्पन्न किया॥ ४४॥ उसके द्वार शिल्पशास्त्रकी विधिके अनुसार बनाये गये थे। श्रेष्ठ परकोटे उसकी शोभा बढ़ाते थे। खाइयों और टीलोंसे वह पुरी सुरक्षित थी तथा उसमें अट्टालिका, चहारदीवारी और तोरण यथास्थान बने हुए थे॥ ४५॥ सुन्दर नर-नारियोंके समुदाय वहाँ बसे हुए थे। व्यापारी वर्गके लोग उसकी शोभा बढ़ाते थे। नाना प्रकारके क्रय-विक्रयकी वस्तुओं और दूकानोंसे वह भरी हुई थी। ऐसा जान पड़ता था, मानो आकाशमें विचरनेवाली पुरी पृथ्वीपर उतर आयी हो॥ ४६॥ उस पुरीके पौंसले और बावड़ियोंमें स्वच्छ जल भरा हुआ था तथा नाना प्रकारके उद्यान उसे सब ओरसे सुशोभित कर रहे थे। इस अवस्थामें वह ढँकी हुई अङ्गोंवाली विशाललोचना वनिताके समान जान पड़ती थी॥ ४७॥ उसके चौराहे बड़े समृद्धिशाली थे। उसके ऊँचे-ऊँचे महल बादलोंसे व्याप्त हो रहे थे। उस पुरीमें कोटि सहस्र गलियाँ थीं और उज्ज्वल राजमार्गसे उसकी उत्कृष्ट शोभा हो रही थी॥ ४८॥ जैसे इन्द्रपुरी स्वर्गकी शोभा बढ़ाती है, उसी प्रकार वह समुद्रकी शोभा बढ़ाती थी। वह भूतलपर सम्पूर्ण रत्नोंके सञ्चयसे सुशोभित होनेवाली एकमात्र नगरी थी॥ ४९॥ द्वारकापुरी देवताओंके लिये भी पुण्यक्षेत्र थी। सीमावर्ती नरेशोंके मनमें क्षोभ उत्पन्न करनेवाली थी तथा वह अपने ऊँचे-ऊँचे महलोंके द्वारा आकाशको भी आच्छादित किये देती थी॥ ५०॥ बहुत-से राष्ट्रोंवाली इस पृथ्वीपर बसी हुई द्वारकापुरी जनसमुदायके कोलाहलसे गूँजती रहती थी और जलके स्वामी समुद्रके प्रवाह एवं उत्ताल तरङ्गोंके कारण वहाँकी वायु सदा शीतल बनी रहती थी॥ ५१॥ समुद्रके जलप्राय तटपर लहराते हुए कमनीय उपवनोंके द्वारा बढ़ी हुई अपनी अनुपम कान्तिसे वह द्वारकापुरी मनुष्योंके मनको मोहे लेती थी और नक्षत्रोंसे युक्त आकाशकी भाँति शोभा पाती थी॥ ५२॥ सूर्यके समान वर्णवाले सुवर्णमय परकोटेसे घिरी हुई वह नगरी गम्भीर घोषवाले स्वर्णनिर्मित भवनों तथा श्वेत

शुभ्रमेघप्रतीकाशैर्द्वारैः सौधैश्च शोभिता।
क्वचित् क्वचिदुदग्राग्रैरुपावृतमहापथा॥ ५४

तामावसत् पुरीं कृष्णः सर्वे यादवनन्दनाः।
अभिप्रेतजनाकीर्णां सोमः खमिव भासयन्॥ ५५

विश्वकर्मा च तां कृत्वा पुरीं शक्रपुरीमिव।
जगाम त्रिदिवं देवो गोविन्देनाभिपूजितः॥ ५६

भूयश्च बुद्धिरभवत् कृष्णस्य विदितात्मनः।
जनानिमान् धनौघैश्च तर्पयेयमहं यदि॥ ५७

स वैश्रवणसंस्पृष्टं निधीनामुत्तमं निधिम्।
शङ्खमाह्वयतोपेन्द्रो निशि स्वे भवने प्रभुः॥ ५८

स शङ्खः केशवाह्वानं ज्ञात्वा हि निधिराट् स्वयम्।
आजगाम समीपं वै तस्य द्वारवतीपतेः॥ ५९

स शङ्खः प्राञ्जलिर्भूत्वा विनयादवनिं गतः।
कृष्णं विज्ञापयामास यथा वैश्रवणं तथा॥ ६०

भगवन् किं मया कार्यं सुराणां वित्तरक्षिणा।
नियोजय महाबाहो यत् कार्यं यदुनन्दन॥ ६१

तमुवाच हृषीकेशः शङ्खं गुह्यकमुत्तमम्।
जनाः कृशधना येऽस्मिंस्तान् धनेनाभिपूरय॥ ६२

नेच्छाम्यनशितं द्रष्टुं कृशं मलिनमेव च।
देहीति चैव याचन्तं नगर्यां निर्धनं नरम्॥ ६३

वैशम्पायन उवाच

गृहीत्वा शासनं मूर्ध्ना निधिराट् केशवस्य ह।
निधीनाज्ञापयामास द्वारवत्यां गृहे गृहे॥ ६४

धनौघैरभिवर्षध्वं चक्रुः सर्वं तथा च ते।
नाधनो विद्यते तत्र क्षीणभाग्योऽपि वा नरः॥ ६५

कृशो वा मलिनो वापि द्वारवत्यां कथंचन।
द्वारवत्यां पुरि पुरा केशवस्य महात्मनः॥ ६६

चकार वायोराह्वानं भूयश्च पुरुषोत्तमः।
तत्रस्थ एव भगवान् यादवानां प्रियंकरः॥ ६७

बादलोंके सदृश उज्ज्वल द्वारों और अट्टालिकाओंसे सुशोभित होती थी। कहीं-कहीं बहुत ऊँचे महलोंकी छायासे उसकी विशाल सड़कें आच्छादित हो रही थीं। ऐसी द्वारकापुरीमें श्रीकृष्ण तथा समस्त यादवनन्दन निवास करने लगे। वह पुरी अभीष्टजनोंसे भरी-पूरी थी। जैसे चन्द्रमा आकाशको प्रकाशित करते हैं, उसी प्रकार भगवान् श्रीकृष्ण उस पुरीकी शोभा बढ़ाते थे॥ ५३—५५॥ इन्द्रपुरीके समान द्वारकापुरीका निर्माण करके देव विश्वकर्मा भगवान् श्रीकृष्णद्वारा सम्मानित हो स्वर्गलोकमें चले गये॥ ५६॥ तत्पश्चात् आत्मज्ञानी भगवान् श्रीकृष्णके मनमें यह विचार उठा कि 'यहाँके लोगोंको यदि मैं धनसे तृप्त कर सकता तो बहुत अच्छा होता'॥ ५७॥ तब उन भगवान् उपेन्द्रने कुबेरके सम्पर्कमें रहनेवाले निधियोंमें उत्तम निधि शङ्खका रात्रिके समय अपने भवनमें आवाहन किया॥ ५८॥ 'भगवान् श्रीकृष्णने मेरा आह्वान किया है' यह जानकर निधियोंका राजा शङ्ख स्वयं ही द्वारकानाथके समीप आ गया॥ ५९॥ उस शङ्खने विनयपूर्वक हाथ जोड़ धरतीपर माथा टेककर कुबेरके ही समान भगवान् श्रीकृष्णको प्रणाम किया और इस प्रकार कहा—॥ ६०॥ 'भगवन्! मैं देवताओंका वित्तरक्षक हूँ। महाबाहु यदुनन्दन! मुझे क्या करना होगा? जो कार्य हो, उसके लिये मुझे आज्ञा दीजिये'॥ ६१॥ तब श्रीकृष्णने उस शङ्ख नामक उत्तम गुह्यकसे कहा—'इस नगरमें जो निर्धन या अल्प धनवाले मनुष्य हैं, उनको धनसे परिपूर्ण कर दो॥ ६२॥ मैं इस नगरीमें किसी भी ऐसे निर्धन मनुष्यको नहीं देखना चाहता, जिसे भोजन न मिलनेके कारण उपवास करना पड़ता हो, जो दुर्बल और मलिन हो तथा 'दीजिये' कहकर किसीके सामने हाथ फैलाता या भीख माँगता हो'॥ ६३॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! भगवान् श्रीकृष्णकी आज्ञा शिरोधार्य करके निधियोंके राजा शङ्खने समस्त निधियोंको आदेश दिया—'तुमलोग द्वारकामें घर-घर जाकर धनराशिकी वर्षा करो।' उन सब निधियोंने वैसा ही किया। इस तरह पूर्वकालमें महात्मा केशवकी पुरी द्वारकामें कोई मनुष्य किसी तरह भी निर्धन अथवा भाग्यहीन नहीं रह गया। दुर्बल या मलिन भी नहीं रहा॥ ६४—६६॥ तत्पश्चात् यादवोंका प्रिय करनेवाले पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्णने द्वारकामें स्थित होकर ही वायुदेवका आवाहन किया॥ ६७॥

प्राणयोनिस्तु भूतानामुपतस्थे गदाधरम्।
एकमासीनमेकान्ते देवगुह्यधरं प्रभुम्॥ ६८

किं मया देव कर्तव्यं सर्वगेनाशुगामिना।
यथैव दूतो देवानां तथैवास्मि तवानघ॥ ६९

तमुवाच ततः कृष्णो रहस्यं पुरुषो हरिः।
मारुतं जगतः प्राणं रूपिणं समुपस्थितम्॥ ७०

गच्छ मारुत देवेशमनुमान्य सहामरैः।
सभां सुधर्मामादाय देवेभ्यस्त्वमिहानय॥ ७१

यादवा धार्मिका ह्येते विक्रान्ताश्च सहस्रशः।
तस्यां विशेयुरेते वै न तु या कृत्रिमा भवेत्॥ ७२

या ह्यक्षया सभा रम्या कामगा कामरूपिणी।
सा यदून् धारयेत् सर्वान् यथैव त्रिदशांस्तथा॥ ७३

संगृह्य वचनं तस्य कृष्णस्याक्लिष्टकर्मणः।
वायुरात्मोपमगतिर्जगाम त्रिदिवालयम्॥ ७४

सोऽनुमान्य सुरान् सर्वान् कृष्णवाक्यं निवेद्य च।
सभां सुधर्मामादाय पुनरायान्महीतलम्॥ ७५

सुधर्माय सुधर्मां तां कृष्णायाक्लिष्टकारिणे।
देवो देवसभां दत्त्वा वायुरन्तरधीयत॥ ७६

द्वारवत्यास्तु सा मध्ये केशवेन निवेशिता।
सुधर्मा यदुमुख्यानां देवानां त्रिदिवे यथा॥ ७७

एवं दिव्यैश्च भोगैश्च जलजैश्चाव्ययो हरिः।
द्रव्यैरलङ्करोति स्म पुरीं स्वां प्रमदामिव॥ ७८

मर्यादाश्चैव संचक्रे श्रेणीश्च प्रकृतीस्तथा।
बलाध्यक्षांश्च युक्तांश्च प्रकृतीशांस्तथैव च॥ ७९

उग्रसेनं नरपतिं काश्यं चापि पुरोहितम्।
सेनापतिमनाधृष्टिं विकद्रुं मन्त्रिपुङ्गवम्॥ ८०

यादवानां कुलकरान् स्थविरान् दश तत्र वै।
मतिमान् स्थापयामास सर्वकार्येष्वनन्तरान्॥ ८१

समस्त भूतोंके प्राणोंकी योनिरूप वायुदेव एकान्तमें अकेले बैठे हुए भगवान् श्रीकृष्णकी, जो देवताओंके गुप्त प्रयोजनको अपने हृदयमें धारण किये हुए थे, सेवामें उपस्थित हुए॥ ६८॥ और बोले—'देव! मैं शीघ्रगामी तथा सर्वग (सर्वत्र पहुँचनेमें समर्थ) हूँ। मुझे आपकी कौन-सी सेवा करनी है? अनघ! मैं जैसे देवताओंका दूत हूँ, उसी तरह आपका भी हूँ'॥ ६९॥ जगत्के प्राणस्वरूप वायुदेव मूर्तिमान् होकर सेवामें उपस्थित हैं, यह देख अन्तर्यामी, पापहारी भगवान् श्रीकृष्ण उनसे रहस्यभरी बात बोले—॥ ७०॥ 'मारुत! जाओ, देवताओंसहित देवराज इन्द्रका आदर करके उनकी अनुमति ले देवताओंके यहाँसे सुधर्मा नामक सभाको यहाँ उठा ले आओ॥ ७१॥ ये सहस्रों धर्मात्मा तथा पराक्रमी यादव उसी सभामें बैठें, जो कृत्रिम (क्षणभंगुर) न हो॥ ७२॥ जो सभा अक्षय, रमणीय, इच्छानुसार सर्वत्र चल सकनेवाली तथा सभासदोंकी इच्छाके अनुरूप स्वरूप धारण करनेवाली है, वह सुधर्मा सभा अपने भीतर इन समस्त यदुवंशियोंको धारण करे, ठीक उसी तरह जैसे वह देवताओंको धारण करती है'॥ ७३॥ अनायास ही महान् कर्म करनेवाले श्रीकृष्णका संदेश लेकर अपने ही समान गतिवाले वायुदेव स्वर्गलोकमें गये॥ ७४॥ उन्होंने समस्त देवताओंको आदरपूर्वक श्रीकृष्णका वचन सुनाया और उनकी अनुमतिसे सुधर्मा सभाको लेकर वे पुनः भूतलपर आये॥ ७५॥ अनायास ही महान् कर्म करनेवाले सुधर्मात्मा श्रीकृष्णको वह सुधर्मा नामक देवसभा देकर वायुदेव अन्तर्धान हो गये॥ ७६॥ श्रीकृष्णने द्वारकापुरीके मध्यभागमें उस सुधर्मा सभाको स्थापित किया। जैसे स्वर्गमें देवताओंकी सभा है, उसी प्रकार भूतलपर वह प्रमुख यादवोंकी सभा हुई॥ ७७॥ इस प्रकार अविनाशी श्रीहरि दिव्य भोगों तथा समुद्रके जलसे प्रकट हुए द्रव्यों (रत्नों)-से अपनी पुरीको युवती स्त्रीकी भाँति अलंकृत करते थे॥ ७८॥ उन्होंने सबके लिये धर्मकी मर्यादाएँ बाँध दीं। व्यापारियों, प्रजाजनों, सेनापतियों तथा प्रजावर्गके शासकोंके लिये भी समुचित मर्यादाएँ स्थापित कर दीं॥ ७९॥ उग्रसेनको द्वारकाका राजा बनाया, काशीके विद्वान् सान्दीपनि मुनिको पुरोहितके पदपर प्रतिष्ठित किया। अनाधृष्टिको सेनापति तथा विकद्रुको प्रधान मन्त्री बनाया॥ ८०॥ बुद्धिमान् श्रीकृष्णने यादवोंके वंशधर दस बड़े-बूढ़े पुरुषोंको* सभी कार्योंमें सलाह देनेके लिये अवान्तर मन्त्रीके पदपर स्थापित किया था॥ ८१॥

* दस बड़े-बूढ़े पुरुषोंके नाम ये हैं—उद्धव, वसुदेव, कङ्क, विपृथु, श्वफल्क, चित्रक, गद, सत्यक, बलभद्र और पृथु।

रथेष्वतिरथो यन्ता दारुकः केशवस्य वै।
योधमुख्यश्च योधानां प्रवरः सात्यकिः कृतः॥ ८२

विधानमेवं कृत्वाथ कृष्णः पुर्यामनिन्दितः।
मुमुदे यदुभिः सार्द्धं लोकस्रष्टा महीतले॥ ८३

रेवतस्याथ कन्यां च रेवतीं शीलसम्मताम्।
प्राप्तवान् बलदेवस्तु कृष्णस्यानुमते तदा॥ ८४

रथोंमें अतिरथी दारुक भगवान् श्रीकृष्णका सारथि था। योधाओंमें श्रेष्ठ सात्यकि ही समस्त योद्धाओंके प्रधान बनाये गये थे॥ ८२॥ समस्त लोकोंके स्रष्टा अनिन्द्य कीर्तिवाले भगवान् श्रीकृष्ण इस प्रकार वैधानिक व्यवस्था करके द्वारकापुरीमें यादवोंके साथ आनन्दपूर्वक रहने लगे॥ ८३॥ उस समय श्रीकृष्णकी अनुमतिसे बलदेवजीने राजा रेवतकी सुशीला कन्या रेवतीको पत्नीरूपमें ग्रहण किया॥ ८४॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे विष्णुपर्वणि द्वारावतीनिर्माणेऽष्टपञ्चाशत्तमोऽध्यायः॥ ५८॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत विष्णुपर्वमें द्वारावतीका निर्माणविषयक अट्ठावनवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ५८॥

एकोनषष्टितमोऽध्यायः

भगवान् श्रीकृष्णके द्वारा रुक्मिणीका हरण तथा यादववीरोंका जरासंध एवं शिशुपाल आदिके साथ घोर युद्ध

वैशम्पायन उवाच

एतस्मिन्नेव काले तु जरासंधः प्रतापवान्।
नृपानुद्योजयामास चेदिराजप्रियेप्सया॥ १

सुताया भीष्मकस्याथ रुक्मिण्या रुक्मभूषणः।
शिशुपालस्य नृपतेर्विवाहो भविता किल॥ २

दन्तवक्त्रस्य तनयं सुवक्त्रममितौजसम्।
सहस्राक्षसमं युद्धे मायाशतविशारदम्॥ ३

पौण्ड्रस्य वासुदेवस्य तथा पुत्रं महाबलम्।
सुदेवं वीर्यसम्पन्नं पृथगक्षौहिणीपतिम्॥ ४

एकलव्यस्य पुत्रं च वीर्यवन्तं महाबलम्।
पुत्रं च पाण्ड्यराजस्य कलिङ्गाधिपतिं तथा॥ ५

कृताप्रियं च कृष्णेन वेणुदारिं नराधिपम्।
अंशुमन्तं तथा क्राथं श्रुतधर्माणमेव च॥ ६

निवृत्तशत्रुं कालिङ्गं गान्धाराधिपतिं तथा।
प्रसह्य च महावीर्यं कौशाम्ब्यधिपमेव च॥ ७

भगदत्तो महासेनः शलः शाल्वो महाबलः।
भूरिश्रवा महासेनः कुन्तिवीर्यश्च वीर्यवान्।
स्वयं वरार्थं सम्प्राप्ता भोजराजनिवेशने॥ ८

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! इसी समय प्रतापी जरासंध चेदिराजका प्रिय करनेकी इच्छासे राजाओंको एकत्र करनेका उद्योग किया॥ १॥ उसने सर्वत्र यह समाचार भेज दिया कि 'भीष्मककी पुत्री रुक्मिणी तथा राजा शिशुपालका विवाह होनेवाला है। इसमें केवल सुवर्णके आभूषणोंका उपयोग होगा॥ २॥ दन्तवक्त्रके पुत्र अमिततेजस्वी सुवक्त्रको, जो सैकड़ों मायाओंके ज्ञान एवं प्रयोगमें कुशल तथा युद्धमें सहस्र नेत्रधारी इन्द्रके तुल्य पराक्रमी था (जरासंधने जोर देकर बुलवाया)॥ ३॥ पौण्ड्रक वासुदेवके महाबली और पराक्रमसम्पन्न पुत्र सुदेवको भी जो पृथक् एक अक्षौहिणी सेनाका अधिपति था (जरासंधने दबाव डालकर ही बुलवाया था)॥ ४॥ एकलव्यके महाबली एवं पराक्रमी पुत्रको, पाण्ड्यराजके पुत्रको, कलिङ्गदेशके अधिपतिको, श्रीकृष्णने जिसका अप्रिय किया था, उस राजा वेणुदारिको, क्रथपुत्र अंशुमान् एवं श्रुतधर्माको, शत्रुओंको पराजित करनेवाले कलिङ्गराजको, गान्धार-नरेशको तथा महापराक्रमी कौशाम्बीपतिको भी जरासंधने बलपूर्वक बुलानेकी चेष्टा की थी॥ ५—७॥ विशाल सेनासे युक्त राजा भगदत्त, शल, महाबली शाल्व, बहुत बड़ी सेनावाले भूरिश्रवा तथा पराक्रमी कुन्तिवीर्य—ये सब लोग स्वयं ही वर शिशुपालकी बारात करनेके लिये भोजराज भीष्मकके भवनमें पधारे थे॥ ८॥

जनमेजय उवाच

कस्मिन् देशे नृपो जज्ञे रुक्मी वेदविदां वरः।
कस्यान्ववाये द्युतिमान् सम्भूतो द्विजसत्तम॥ ९

वैशम्पायन उवाच

राजर्षेर्यादवस्यासीद् विदर्भो नाम वै सुतः।
विन्ध्यस्य दक्षिणे पार्श्वे विदर्भायां न्यवेशयत्॥ १०

क्रथकैशिकमुख्यास्तु पुत्रास्तस्य महाबलाः।
बभूवुर्वीर्यसम्पन्नाः पृथग्वंशकरा नृपाः॥ ११

तस्यान्ववाये भीमस्य जज्ञिरे वृष्णयो नृपाः।
क्रथस्य त्वंशुमान् वंशे भीष्मकः कैशिकस्य तु॥ १२

हिरण्यरोमेत्याहुर्यं दाक्षिणात्येश्वरं नृपाः।
अगस्त्यगुप्तामाशां यः कुण्डिनस्थोऽन्वशान्नृपः॥ १३

रुक्मी तस्याभवत् पुत्रो रुक्मिणी च विशाम्पते।
रुक्मी चास्त्राणि दिव्यानि द्रुमात् प्राप महाबलः॥ १४

जामदग्न्यात् तथा रामाद् ब्राह्ममस्त्रमवाप्तवान्।
प्रास्पर्द्धत स कृष्णेन नित्यमद्भुतकर्मणा॥ १५

रुक्मिणी त्वभवद् राजन् रूपेणासदृशी भुवि।
चकमे वासुदेवस्तां श्रवादेव महाद्युतिः॥ १६

स तया चाभिलषितः श्रवादेव जनार्दनः।
तेजोवीर्यबलोपेतः स मे भर्ता भवेदिति॥ १७

तां ददौ न च कृष्णाय द्वेषाद् रुक्मी महाबलः।
कंसस्य वधसंतापात् कृष्णायामिततेजसे॥ १८

याचमानाय कंसस्य द्वेष्योऽयमिति चिन्तयन्।
चैद्यस्यार्थे सुनीथस्य जरासंधस्तु भूमिपः।
वरयामास तां राजा भीष्मकं भीमविक्रमम्॥ १९

चेदिराजस्य तु वसोरासीत् पुत्रो बृहद्रथः।
मगधेषु पुरा येन निर्मितोऽसौ गिरिव्रजः॥ २०

तस्यान्ववाये जज्ञेऽसौ जरासंधो महाबलः।
वसोरेव तदा वंशे दमघोषोऽपि चेदिराट्॥ २१

जनमेजयने पूछा—द्विजश्रेष्ठ! वेदवेत्ताओंमें उत्तम कान्तिमान् राजा रुक्मी किस देश और किस कुलमें उत्पन्न हुआ था॥ ९॥

वैशम्पायनजीने कहा—राजन्! राजर्षि यादवके विदर्भ नामक एक पुत्र था, जो विन्ध्यगिरिके दक्षिण पार्श्वमें विदर्भानगरीमें निवास करता था॥ १०॥ विदर्भके क्रथ, कैशिक आदि बहुत-से महाबली पुत्र हुए, जो पराक्रमसम्पन्न तथा पृथक्-पृथक् वंशोंके प्रवर्तक नरेश थे॥ ११॥ राजर्षि यादवके ही वंशमें भीमसे वृष्णिवंशी राजाओंकी उत्पत्ति हुई थी। क्रथके वंशमें अंशुमान् और कैशिकके वंशज भीष्मक हुए॥ १२॥ भीष्मकको ही राजा लोग हिरण्यरोमा तथा दाक्षिणात्येश्वर कहते हैं, जिन्होंने कुण्डिनपुरमें रहकर अगस्त्य मुनिके द्वारा सुरक्षित दिशा दक्षिणका शासन किया था॥ १३॥ प्रजानाथ! उन्हीं राजा भीष्मकका पुत्र रुक्मी था तथा रुक्मिणी भी उन्हींकी कन्या थी। महाबली रुक्मीने (किम्पुरुषराज) द्रुमसे दिव्यास्त्र प्राप्त किये थे। साथ ही जमदग्निनन्दन परशुरामसे उसको ब्रह्मास्त्रकी प्राप्ति हुई थी। रुक्मी अद्भुत कर्म करनेवाले श्रीकृष्णके साथ सदा ही स्पर्धा रखता था॥ १४-१५॥ राजन्! रुक्मिणीके रूपकी समानता करनेवाली इस पृथ्वीपर दूसरी कोई स्त्री नहीं थी। महातेजस्वी वसुदेवनन्दन श्रीकृष्ण उसका परिचय सुनकर ही उसे चाहने लगे थे॥ १६॥ इसी प्रकार रुक्मिणी भी श्रीकृष्णकी प्रशंसा सुनकर ही उन्हें चाहने लगी थी। उसकी इच्छा थी कि तेज, वीर्य और बलसे सम्पन्न श्रीकृष्ण ही मेरे पति हों॥ १७॥ महाबली रुक्मी श्रीकृष्णसे द्वेष रखता था, इसलिये उसने श्रीकृष्णको अपनी बहिन नहीं दी। कंसका वध सुनकर उसे बड़ा संताप हुआ था। वह सदा यही सोचता था कि कृष्ण कंसद्रोही है, इसलिये उनके याचना करनेपर भी रुक्मीने अमित तेजस्वी श्रीकृष्णको रुक्मिणी नहीं दी॥ १८$\frac{1}{2}$॥ पृथ्वीपति राजा जरासंधने चेदिराज सुनीथके पुत्र शिशुपालके लिये भयानक पराक्रमी भीष्मकसे उनकी कन्या रुक्मिणीको माँगा था॥ १९॥ चेदिराज उपरिचर वसुके एक पुत्रका नाम बृहद्रथ था, जिसने पूर्वकालमें मगधदेशके भीतर गिरिव्रज नामक नगरका निर्माण कराया था॥ २०॥ उसीके वंशमें महाबली जरासंध पैदा हुआ। उपरिचर वसुके ही वंशमें उन दिनों दमघोष पैदा हुए थे, जो चेदिदेशके राजा थे॥ २१॥

दमघोषस्य पुत्रास्तु पञ्च भीमपराक्रमाः।
भगिन्यां वसुदेवस्य श्रुतश्रवसि जज्ञिरे॥ २२

शिशुपालो दशग्रीवो रैभ्योऽथोपदिशो बली।
सर्वास्त्रकुशला वीरा वीर्यवन्तो महाबलाः॥ २३

ज्ञातेः समानवंशस्य सुनीथः प्रददौ सुतम्।
जरासंधस्तु सुतवद् ददर्शैनं जुगोप च॥ २४

जरासंधं पुरस्कृत्य वृष्णिशत्रुं महाबलम्।
कृतान्यागांसि चैद्येन वृष्णीनां चाप्रियैषिणा॥ २५

जामाता त्वभवत् तस्य कंसस्तस्मिन् हते युधि।
कृष्णार्थं वैरमभवज्जरासंधस्य वृष्णिभिः॥ २६

भीष्मकं वरयामास सुनीथार्थे च रुक्मिणीम्।
तां ददौ भीष्मकश्चापि शिशुपालाय वीर्यवान्॥ २७

ततश्चैद्यमुपादाय जरासंधो नराधिपः।
ययौ विदर्भान् सहितो दन्तवक्त्रेण यायिना॥ २८

अनुज्ञातश्च पौण्ड्रेण वासुदेवेन धीमता।
अङ्गवङ्गकलिङ्गानामीश्वरः स महाबलः॥ २९

मानयिष्यंश्च तान् रुक्मी प्रत्युद्गम्य नराधिपान्।
परया पूजयोपेतांस्तान् निनाय पुरीं प्रति॥ ३०

पितृष्वसुः प्रियार्थं च रामकृष्णावुभावपि।
प्रययुर्वृष्णयश्चान्ये रथैस्तत्र बलान्विताः॥ ३१

क्रथकैशिकभर्ता तान् प्रतिगृह्य यथाविधि।
पूजयामास पूजार्हान् बहिश्चैव न्यवेशयत्॥ ३२

श्वोभाविनि विवाहे च रुक्मिणी निर्ययौ बहिः।
चतुर्युजा रथेनैन्द्रे देवतायतने शुभे॥ ३३

इन्द्राणीमर्चयिष्यन्ती कृतकौतुकमङ्गला।
दीप्यमानेन वपुषा बलेन महता वृता॥ ३४

तां ददर्श तदा कृष्णो लक्ष्मीं साक्षादिव स्थिताम्।
रूपेणाग्र्येण सम्पन्नां देवतायतनान्तिके॥ ३५

दमघोषके पाँच भयानक पराक्रमी पुत्र हुए, जो वसुदेवकी बहिन श्रुतश्रवाके गर्भसे उत्पन्न हुए थे॥ २२॥ उनके नाम इस प्रकार हैं—शिशुपाल, दशग्रीव, रैभ्य, उपदिश और बली। ये सब-के-सब सम्पूर्ण अस्त्रोंके ज्ञानमें निपुण, वीर, पराक्रमी और महाबली थे॥ २३॥ जरासंध कुटुम्बी था तथा समान वंशमें उत्पन्न हुआ था, इसलिये सुनीथ (दमघोष)-ने अपना पुत्र शिशुपाल उसे सौंप दिया था (शिशुपालको जरासंधका सहयोगी बना दिया था)। जरासंध भी शिशुपालको अपने पुत्रके समान समझता था और उसकी रक्षा करता था॥ २४॥ वृष्णिवंशके शत्रु महाबली जरासंधको आगे करके चेदिराजने वृष्णियोंका अप्रिय चाहते हुए उनके अनेक अपराध किये थे॥ २५॥ कंस जरासंधका जामाता था। जब वह युद्धमें श्रीकृष्णके हाथसे मारा गया, तब श्रीकृष्णके ही लिये समस्त वृष्णिवंशियोंके साथ जरासंधका वैर हो गया॥ २६॥ जरासंधने सुनीथपुत्र शिशुपालके लिये ही भीष्मकसे रुक्मिणीको माँगा था और पराक्रमी भीष्मकने उसका शिशुपालके लिये वाग्दान कर दिया॥ २७॥ तब राजा जरासंध अपने सहायक दन्तवक्त्रके साथ शिशुपालको लेकर विदर्भ देशको गया॥ २८॥ बुद्धिमान् पौण्ड्रक वासुदेवने भी इस कार्यमें जरासंधका अनुमोदन किया था। महाबली जरासंध अङ्ग-बङ्ग और कलिङ्ग देशोंका भी सम्राट् था॥ २९॥ रुक्मीने उन नरेशोंका सम्मान करनेके लिये उनकी अगवानी की और अच्छे ढंगसे उनका स्वागत-सत्कार करके वह उन्हें अपनी पुरीमें ले गया॥ ३०॥ बलराम और श्रीकृष्ण—ये दोनों भाई भी अपनी बुआकी प्रसन्नताके लिये वहाँ गये। साथ ही दूसरे बलशाली वृष्णिवंशी वीर भी रथोंद्वारा वहाँ पधारे॥ ३१॥ क्रथकैशिक देशके स्वामी भीष्मकने उन पूजनीय पुरुषोंका विधिपूर्वक पूजन किया और उन्हें बाहर ही ठहराया॥ ३२॥ जब विवाह कल होनेवाला था अर्थात् जब उसके होनेमें एक ही दिन शेष रह गया था, उस समय राजकुमारी रुक्मिणी तत्कालोचित मङ्गलाचारसे सम्पन्न हो अपने दीप्तिमान् शरीरसे सुशोभित होती हुई सुन्दर देवालयमें इन्द्राणीकी पूजा करनेके लिये चार घोड़ोंसे जुते हुए रथपर बैठकर ज्येष्ठा नक्षत्रमें राजमहलसे बाहर निकली। उस समय वह विशाल सेनासे घिरी हुई थी॥ ३३-३४॥ उस यात्राके समय देवमन्दिरके निकट परम सुन्दर रूपसे सम्पन्न साक्षात् लक्ष्मी-सी खड़ी हुई रुक्मिणीको भगवान् श्रीकृष्णने देखा॥ ३५॥

वह्नेरिव शिखां दीप्तां मायां भूमिगतामिव।
पृथिवीमिव गम्भीरामुत्थितां पृथिवीतलात्॥ ३६

मरीचिमिव सोमस्य सौम्यां स्त्रीविग्रहां भुवि।
श्रीमिवाग्र्यां विना पद्मं भविष्यां श्रीसहायिनीम्।
कृष्णेन मनसा दृष्टां दुर्निरीक्ष्यां सुरैरपि॥ ३७

श्यामावदाता सा ह्यासीत् पृथुचार्वायतेक्षणा।
ताम्रौष्ठनयनापाङ्गी पीनोरुजघनस्तनी॥ ३८

बृहती चारुसर्वाङ्गी तन्वी शशिसितानना।
ताम्रतुङ्गनखी सुभ्रूर्नीलकुञ्चितमूर्धजा॥ ३९

अत्यर्थं रूपतः कान्ता पीनश्रोणिपयोधरा।
तीक्ष्णशुक्लैः समैर्दन्तैः प्रभासद्भिरलंकृता॥ ४०

अनन्या प्रमदा लोके रूपेण यशसा श्रिया।
रुक्मिणी रूपिणी देवी पाण्डुरक्षौमवासिनी॥ ४१

तां दृष्ट्वा ववृधे कामः कृष्णस्य प्रियदर्शनाम्।
हविषेवानलस्यार्चिर्मनस्तस्यां समादधत्॥ ४२

रामेण सह निश्चित्य केशवस्तु महाबलः।
तत्प्रमाथेऽकरोद् बुद्धिं वृष्णिभिः प्रणिधाय च॥ ४३

कृते तु देवताकार्ये निष्क्रामन्तीं सुरालयात्।
उन्मथ्य सहसा कृष्णः स्वं निनाय रथोत्तमम्॥ ४४

वृक्षमुत्पाट्य रामोऽपि जघानापततः परान्।
समनह्यन्त दाशार्हास्तदाज्ञप्ताश्च सर्वशः॥ ४५

ते रथैर्विविधाकारैः समुच्छ्रितमहाध्वजैः।
वाजिभिर्वारणैश्चैव परिवव्रुर्हलायुधम्॥ ४६

वह प्रज्वलित हुई अग्निकी शिखा, पृथ्वीपर उतरी हुई देवमाया तथा भूतलसे उठी हुई गम्भीर स्वभाववाली मूर्तिमती भूदेवीके समान जान पड़ती थी॥ ३६॥ उसे देखकर ऐसा प्रतीत होता था, मानो चन्द्रमाकी सौम्य किरण सुन्दरी नारीका रूप धारण करके पृथ्वीपर उतरी हो, बिना कमलकी श्रेष्ठ लक्ष्मी हो अथवा भविष्यमें होनेवाली लक्ष्मीकी सहायिका हो। देवताओंके लिये भी जिसका दर्शन होना अत्यन्त कठिन था, उस रुक्मिणीको श्रीकृष्णने जी भरकर देखा॥ ३७॥ उसकी सोलह वर्षकी अवस्था थी। अङ्गोंकी कान्ति गौरवर्णकी थी। उसके नेत्र बहुत ही मनोहर एवं विशाल थे। ओठ तथा नयनोंके प्रान्तभाग ताँबेके समान लाल थे। जाँघ, नितम्ब और स्तन मोटे एवं मांसल थे॥ ३८॥ वह पतले और लंबे कदकी स्त्री थी। उसके सारे अङ्ग बड़े ही मनोहर थे। उसका मुख चन्द्रमाके समान गौर कान्तिसे सुशोभित था। नख लाल और ऊँचे थे। भौंहें सुन्दर तथा सिरके बाल काले और घुँघराले थे॥ ३९॥ वह रूपकी दृष्टिसे अत्यन्त कमनीया थी। उसके नितम्ब और उरोज पीन (उभरे हुए) थे। वह तीक्ष्ण, श्वेत, बराबर जमे हुए और चमकीले दाँतोंसे सुशोभित होती थी॥ ४०॥ रूप, यश और शोभाकी दृष्टिसे संसारमें दूसरी कोई युवती उसके समान नहीं थी। उज्ज्वल रेशमी साड़ी पहने हुए राजकुमारी रुक्मिणी रूपवती देवी-सी जान पड़ती थी॥ ४१॥ जैसे घीकी आहुति डालनेसे अग्निकी ज्वाला प्रज्वलित हो उठती है, उसी प्रकार उस प्रियदर्शना राजकन्याको देखकर श्रीकृष्णकी उसे पानेके लिये कामना बहुत बढ़ गयी। उन्होंने अपना हृदय उसीपर निछावर कर दिया॥ ४२॥ तदनन्तर महाबली श्रीकृष्णने वृष्णिवंशियोंके साथ सलाह और बलरामजीके साथ कर्तव्यका निश्चय करके रुक्मिणीको हर लेनेका विचार किया॥ ४३॥ इतनेमें ही देवपूजाका कार्य सम्पन्न करके रुक्मिणी देवालयसे निकलने लगी। उसी समय श्रीकृष्णने सहसा पहुँचकर उसे गोदमें उठा लिया और अपने उत्तम रथपर पहुँचा दिया॥ ४४॥ इधर बलरामने भी एक पेड़ उखाड़कर आक्रमण करनेवाले शत्रुओंका उसीसे संहार कर डाला। उस समय बलरामकी आज्ञा पाकर समस्त यदुवंशी वीर युद्धके लिये कमर कसकर तैयार हो गये॥ ४५॥ वे ऊँचे एवं विशाल ध्वजोंसे युक्त भाँति-भाँतिके रथों, घोड़ों और हाथियोंद्वारा बलरामजीको चारों ओरसे घेरकर खड़े हो गये॥ ४६॥

आदाय रुक्मिणीं कृष्णो जगामाशु पुरीं प्रति।
रामे भारं तमासज्य युयुधाने च वीर्यवान्॥ ४७
अक्रूरे विपृथौ चैव गदे च कृतवर्मणि।
चक्रदेवे सुदेवे च सारणे च महाबले॥ ४८
निवृत्तशत्रौ विक्रान्ते भङ्गकारे विदूरथे।
उग्रसेनात्मजे कङ्के शतद्युम्ने च केशवः॥ ४९
राजाधिदेवे मृदुरे प्रसेने चित्रके तथा।
अतिदान्ते बृहद्दुर्गे श्वफल्के सत्यके पृथौ॥ ५०
वृष्ण्यन्धकेषु चान्येषु मुख्येषु मधुसूदनः।
गुरुमासज्य तं भारं ययौ द्वारवतीं प्रति॥ ५१
दन्तवक्त्रो जरासंधः शिशुपालश्च वीर्यवान्।
संनद्धा निर्ययुः क्रुद्धा जिघांसन्तो जनार्दनम्॥ ५२
अङ्गवङ्गकलिङ्गैश्च सार्द्धं पौण्ड्रैश्च वीर्यवान्।
निर्ययौ चेदिराजस्तु भ्रातृभिः स महारथैः॥ ५३
तान् प्रत्यगृह्णन् संरब्धा वृष्णिवीरा महारथाः।
संकर्षणं पुरस्कृत्य वासवं मरुतो यथा॥ ५४
आपतन्तं हि वेगेन जरासंधं महाबलम्।
षड्भिर्विव्याध नाराचैर्युयुधानो महामृधे॥ ५५
अक्रूरो दन्तवक्त्रं तु विव्याध नवभिः शरैः।
तं प्रत्यविद्ध्यत् कारूषो बाणैर्दशभिराशुगैः॥ ५६
विपृथुः शिशुपालं तु शरैर्विव्याध सप्तभिः।
अष्टभिः प्रत्यविद्ध्यत् तं शिशुपालः प्रतापवान्॥ ५७
गवेषणस्तु चैद्यं तु षड्भिर्विव्याध मार्गणैः।
अतिदान्तस्तथाष्टाभिर्बृहद्दुर्गश्च पञ्चभिः॥ ५८
प्रतिविव्याध तांश्चैद्यः पञ्चभिः पञ्चभिः शरैः।
जघानाश्वांश्च चतुरश्चतुर्भिर्विपृथोः शरैः॥ ५९
बृहद्दुर्गस्य भल्लेन शिरश्चिच्छेद चारिहा।
गवेषणस्य सूतं तु प्राहिणोद् यमसादनम्॥ ६०
हताश्वं तु रथं त्यक्त्वा विपृथुस्तु महाबलः।
आरुरोह रथं शीघ्रं बृहद्दुर्गस्य वीर्यवान्॥ ६१
विपृथोः सारथिश्चापि गवेषणरथं द्रुतम्।
आरुह्य जवनानश्वान् नियन्तुमुपचक्रमे॥ ६२

बलवान् श्रीकृष्ण युद्धका सारा भार बलराम तथा सात्यकिपर छोड़कर रुक्मिणीको साथ ले शीघ्र ही द्वारकापुरीको चल दिये॥ ४७॥ मधुसूदन श्रीकृष्णने युद्धका वह गुरुतर भार (बलराम और सात्यकिके सिवा) अक्रूर, विपृथु, गद, कृतवर्मा, चक्रदेव, सुदेव, महाबली सारण, निवृत्तशत्रु, पराक्रमी भङ्गकार, विदूरथ, उग्रसेनकुमार कङ्क, शतद्युम्न, राजाधिदेव, मृदुर, प्रसेन, चित्रक, अतिदान्त, बृहद्दुर्ग, श्वफल्क, सत्यक, पृथु तथा अन्यान्य वृष्णि और अन्धकवंशके प्रमुख वीरोंपर रखकर द्वारकापुरीकी ओर प्रस्थान किया॥ ४८—५१॥ उधर दन्तवक्त्र, जरासंध और पराक्रमी शिशुपाल कवच बाँधकर श्रीकृष्णको मार डालनेकी इच्छासे क्रोधमें भरे हुए निकले॥ ५२॥ पराक्रमी चेदिराज शिशुपाल अङ्ग, बङ्ग, कलिङ्ग तथा पुण्ड्रदेशीय योद्धाओं और अपने महारथी भाइयोंके साथ युद्धके लिये निकला॥ ५३॥ उस समय रोषमें भरे हुए वृष्णिवंशके महारथी वीरोंने जैसे देवता इन्द्रको आगे रखते हैं, उसी प्रकार बलरामजीको आगे करके उन समस्त शत्रुओंको आगे बढ़नेसे रोक दिया॥ ५४॥ उस महासमरमें वेगसे आगे बढ़ते हुए महाबली जरासंधको सात्यकिने छः नाराचोंसे मारकर घायल कर दिया॥ ५५॥ अक्रूरने दन्तवक्त्रको नौ बाणोंसे वेध दिया, तब करूषराज दन्तवक्त्रने दस शीघ्रगामी बाणोंद्वारा अक्रूरको भी बींधकर बदला चुकाया॥ ५६॥ विपृथुने सात बाणोंसे शिशुपालको घायल कर दिया, तब प्रतापी शिशुपालने आठ बाणोंसे विपृथुको क्षत-विक्षत कर दिया॥ ५७॥ तब गवेषणने छः, अतिदान्तने आठ और बृहद्दुर्गने पाँच बाणोंसे चेदिराज शिशुपालको गहरी चोट पहुँचायी॥ ५८॥ शिशुपालने भी उन सबको पाँच-पाँच बाण मारकर बदला चुकाया और चार बाणोंसे विपृथुके चारों घोड़ोंको मार डाला॥ ५९॥ इतना ही नहीं, शत्रुसूदन शिशुपालने एक भल्लसे बृहद्दुर्गका सिर काट लिया और गवेषणके सारथिको यमलोक पहुँचा दिया। तब महाबली एवं पराक्रमी विपृथु अपने अश्वहीन रथको त्यागकर शीघ्र ही बृहद्दुर्गके रथपर जा चढ़े॥ ६०-६१॥ विपृथुका सारथि भी तुरंत ही गवेषणके रथपर जा बैठा और उसके वेगशाली घोड़ोंको काबूमें रखनेकी चेष्टा करने लगा॥ ६२॥

ते क्रुद्धाः शरवर्षेण सुनीथं समवाकिरन्।
नृत्यन्तं रथमार्गेषु चापहस्ताः कलापिनः॥ ६३

चक्रदेवो दन्तवक्त्रं बिभेदोरसि पत्रिणा।
षड्रथं पञ्चभिश्चैव विव्याध युधि मार्गणैः॥ ६४

ताभ्यां स विद्धो दशभिर्बाणैर्मर्मातिगैः शितैः।
ततो बली चक्रदेवं बिभेद दशभिः शरैः॥ ६५

पञ्चभिश्चापि विव्याध सोऽपि दूराद् विदूरथम्।
विदूरथोऽपि तं षड्भिर्विव्याधाजौ शितैः शरैः॥ ६६

त्रिंशता प्रत्यविध्यत् तं बली बाणैर्महाबलम्।
कृतवर्मा बिभेदाजौ राजपुत्रं त्रिभिः शरैः॥ ६७

न्यहनत् सारथिं चास्य ध्वजं चिच्छेद सोच्छ्रितम्।
प्रतिविव्याध तं क्रुद्धः पौण्ड्रः षड्भिः शिलीमुखैः॥ ६८

धनुश्चिच्छेद चाप्यस्य भल्लेन कृतवर्मणः।
निवृत्तशत्रुः कालिङ्गं बिभेद निशितैः शरैः।
तोमरेणांसदेशे तं निर्बिभेद कलिङ्गराट्॥ ६९

गजेनासाद्य कङ्कस्तु गजमङ्गस्य वीर्यवान्।
तोमरेण बिभेदाङ्गं बिभेदाङ्गश्च तं शरैः॥ ७०

चित्रकश्च श्वफल्कश्च सत्यकश्च महारथः।
कलिङ्गस्य तथानीकं नाराचैर्बिभिदुः शतैः॥ ७१

तं निसृष्टद्रुमेणाजौ वङ्गराजस्य कुञ्जरम्।
जघान रामः संक्रुद्धो वङ्गराजं च संयुगे॥ ७२

तं हत्वा रथमारुह्य धनुरादाय वीर्यवान्।
संकर्षणो जघानोग्रैर्नाराचैः कैशिकान् बहून्॥ ७३

षड्भिर्निहत्य कारूषान् महेष्वासान् स वीर्यवान्।
शतं जघान संक्रुद्धो मागधानां महाबले॥ ७४

निहत्य तान् महाबाहुर्जरासंधं ततोऽभ्ययात्।
तमापतन्तं विव्याध नाराचैर्मागधस्त्रिभिः॥ ७५

तं बिभेदाष्टभिः क्रुद्धो नाराचैर्मुसलायुधः।
चिच्छेद चास्य भल्लेन ध्वजं हेमपरिष्कृतम्॥ ७६

तद् युद्धमभवद् घोरं तेषां देवासुरोपमम्।
सृजतां शरवर्षाणि निघ्नतामितरेतरम्॥ ७७

फिर तो वे कुपित हो धनुष और बाण हाथमें लेकर रथमार्गोंपर नृत्य-सा करते हुए सुनीथपुत्र शिशुपालपर बाणोंकी बौछार करने लगे॥ ६३॥ चक्रदेवने पंखवाले बाणसे मारकर दन्तवक्त्रकी छाती छेद डाली। फिर पाँच बाणोंद्वारा उन्होंने युद्धमें षड्रथको भी घायल कर दिया॥ ६४॥ तब उन दोनोंने भी पैनी धारवाले दस मर्मभेदी बाणोंद्वारा चक्रदेवको गहरी चोट पहुँचायी। फिर शिशुपालके भाई बलीने भी चक्रदेवको दस बाण मारे॥ ६५॥ तत्पश्चात् उसने दूरसे ही पाँच बाण मारकर विदूरथको भी घायल कर दिया। विदूरथने भी छः पैने बाण मारकर युद्धमें बलीको आहत कर दिया॥ ६६॥ तब बलीने महाबली विदूरथको बदलेमें तीस बाण मारे। दूसरी ओर कृतवर्माने युद्धमें पौण्ड्रक वासुदेवके पुत्रको तीन बाणोंसे घायल कर दिया। साथ ही उसके सारथिको भी मार डाला और ऊँचे ध्वजको काट गिराया॥ ६७ $\frac{1}{2}$ ॥ तब क्रोधमें भरे हुए पौण्ड्रने छः बाण मारकर बदला चुकाया और एक भल्लसे कृतवर्माका धनुष भी काट दिया॥ ६८ $\frac{1}{2}$ ॥ निवृत्तशत्रुने बहुत-से पैने बाण मारकर कलिङ्गराजको बींध डाला। तब कलिङ्गराजने एक तोमरका प्रहार करके उसके कंधेपर घाव कर दिया॥ ६९॥ पराक्रमी कङ्कने हाथीके द्वारा आक्रमण करके अङ्गराजके हाथी और अङ्गराजको भी तोमरसे घायल कर दिया। तब अङ्गराजने भी अनेक बाणोंद्वारा कङ्कको चोट पहुँचायी॥ ७०॥ उधर चित्रक, श्वफल्क और महारथी सत्यकने कलिङ्गराजकी सेनाको सौ नाराचोंसे मारकर विदीर्ण कर डाला॥ ७१॥ तदनन्तर क्रोधमें भरे हुए बलरामने एक पत्रहीन वृक्षके द्वारा युद्धस्थलमें वङ्गराजके हाथी और वङ्गराजको भी कालके गालमें भेज दिया॥ ७२॥ वङ्गराजका वध करके पराक्रमी संकर्षणने धनुष हाथमें ले रथपर आरूढ़ हो भयंकर नाराचोंद्वारा बहुत-से कैशिकोंका संहार कर डाला॥ ७३॥ अत्यन्त कुपित हुए पराक्रमी बलरामने छः बाणोंसे करूष देशके अनेक महाधनुर्धरोंका वध करके मागधोंकी विशाल सेनामेंसे सौ चुने हुए वीरोंको यमलोक पहुँचा दिया॥ ७४॥ उन सबका संहार करके महाबाहु बलरामने जरासंधपर धावा किया। अपनी ओर आते हुए बलरामको मगधराजने तीन नाराचोंसे घायल कर दिया॥ ७५॥ तब मूसलधारी बलदेवने कुपित हो आठ नाराचोंसे जरासंधको क्षत-विक्षत कर दिया और उसके सुवर्णभूषित ध्वजको एक भल्लसे काट गिराया॥ ७६॥ बाणोंकी वृष्टि करते और एक-दूसरेको मारते हुए उन वीरोंमें देवासुरसंग्रामके समान घोर युद्ध होने लगा॥ ७७॥

गजैर्गजा हि संक्रुद्धाः संनिपेतुः सहस्रशः।
रथै रथाश्च संरब्धाः सादिनश्चापि सादिभिः॥ ७८

पदातयः पदातींश्च शक्तिचर्मासिपाणयः।
छिन्दन्तश्चोत्तमाङ्गानि विचेरुर्युधि ते पृथक्॥ ७९

असीनां पात्यमानानां कवचेषु महास्वनः।
शराणां पततां शब्दः पक्षिणामिव शुश्रुवे॥ ८०

भेरीशङ्खमृदङ्गानां वेणूनां च मृधे ध्वनिम्।
जुगूह घोषः शस्त्राणां ज्याघोषश्च महात्मनाम्॥ ८१

क्रोधसे भरे हुए सहस्रों हाथी हाथियोंसे, रथ रथोंसे और रोषावेशसे युक्त घुड़सवार घुड़सवारोंसे भिड़ गये॥ ७८॥ हाथोंमें शक्ति, ढाल और तलवार लिये हुए पैदल वीर पैदलोंसे जूझते और उनके मस्तक काटते हुए युद्धमें पृथक्-पृथक् विचरने लगे॥ ७९॥ कवचोंपर गिरायी जाती हुई तलवारों और गिरते हुए बाणोंका महान् शब्द पक्षियोंके चहचहानेके समान सुनायी पड़ता था॥ ८०॥ युद्धस्थलमें महामनस्वी वीरोंकी प्रत्यञ्चाके खींचने और शस्त्रोंके टकरानेका शब्द भेरी, शङ्ख, मृदङ्ग और वेणुओंकी ध्वनिको आच्छादित कर देता था॥ ८१॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे विष्णुपर्वणि रुक्मिणीहरणे **एकोनषष्टितमोऽध्यायः**॥ ५९॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत विष्णुपर्वमें रुक्मिणीहरणविषयक उनसठवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ५९॥

षष्टितमोऽध्यायः

श्रीकृष्णद्वारा रुक्मीकी पराजय और रुक्मिणी आदिके साथ श्रीकृष्णका विवाह एवं उनसे उत्पन्न हुई संतानोंका संक्षिप्त परिचय

वैशम्पायन उवाच

कृष्णेन ह्रियमाणां तां रुक्मी श्रुत्वा तु रुक्मिणीम्।
प्रतिज्ञामकरोत् क्रुद्धः समक्षं भीष्मकस्य ह॥ १

रुक्म्युवाच

अहत्वा युधि गोविन्दमनानीय च रुक्मिणीम्।
कुण्डिनं न प्रवेक्ष्यामि सत्यमेतद् ब्रवीम्यहम्॥ २

आस्थाय स रथं वीरः समुदग्रायुधध्वजम्।
जवेन प्रययौ क्रुद्धो बलेन महता वृतः॥ ३

तमन्वयुर्नृपाश्चैव दक्षिणापथवर्तिनः।
क्राथोंऽशुमाञ्छ्रुतर्वा च वेणुदारिश्च वीर्यवान्॥ ४

भीष्मकस्य सुताश्चान्ये रथेन रथिनां वराः।
क्रथकैशिकमुख्याश्च सर्व एव महारथाः॥ ५

ते गत्वा दूरमध्वानं सरितं नर्मदामनु।
गोविन्दं ददृशुः क्रुद्धाः सहैव प्रियया स्थितम्॥ ६

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! रुक्मीने जब सुना कि श्रीकृष्ण रुक्मिणीको हरकर लिये जा रहे हैं, उसने कुपित होकर भीष्मकके सामने ही यह प्रतिज्ञा की॥ १॥

रुक्मी बोला—मैं युद्धमें श्रीकृष्णका वध किये बिना तथा रुक्मिणीको वापस लाये बिना कुण्डिनपुरमें प्रवेश नहीं करूँगा; यह मैं सत्य कहता हूँ॥ २॥ ऐसी प्रतिज्ञा करके क्रोधमें भरा हुआ वीर रुक्मी प्रचण्ड आयुध और ऊँचे ध्वजसे सुशोभित रथपर आरूढ़ हो विशाल सेनाके साथ बड़े वेगसे आगे बढ़ा॥ ३॥ उसके पीछे दक्षिण भारतके बहुत-से नरेश, क्रथपुत्र अंशुमान्, श्रुतर्वा तथा पराक्रमी वेणुदारि भी चले। भीष्मकके अन्य पुत्र भी, जो रथियोंमें श्रेष्ठ थे, रथके द्वारा रुक्मीके साथ गये। क्रथकैशिकदेशके सभी मुख्य महारथियोंने भी रुक्मीका साथ दिया॥ ४-५॥ उन सबने दूरतक रास्ता तै करके नर्मदा नदीके किनारे अपनी प्रियतमा रुक्मिणीके साथ रथपर बैठे हुए श्रीकृष्णको क्रोधपूर्वक देखा॥ ६॥

अवस्थाप्य च तत्सैन्यं रुक्मी मदबलान्वितः।
चिकीर्षुर्द्वैरथं युद्धमभ्ययान्मधुसूदनम्॥ ७
स विव्याध चतुःषष्ट्या गोविन्दं निशितैः शरैः।
तं प्रत्यविध्यत् सप्तत्या बाणैर्युधि जनार्दनः॥ ८
यतमानस्य चिच्छेद ध्वजं चास्य महाबलः।
जहार च शिरः कायात् सारथेस्तस्य वीर्यवान्॥ ९
तं कृच्छ्रगतमाज्ञाय परिवव्रुर्जनार्दनम्।
दाक्षिणात्या जिघांसन्तो राजानः सर्व एव हि॥ १०
तमंशुमान् महाबाहुर्विव्याध दशभिः शरैः।
श्रुतर्वा पञ्चभिः क्रुद्धो वेणुदारिश्च सप्तभिः॥ ११
ततोंऽशुमन्तं गोविन्दो बिभेदोरसि वीर्यवान्।
निषसाद रथोपस्थे व्यथितः स नराधिपः॥ १२
श्रुतर्वणो जघानाश्वांश्चतुर्भिश्चतुरः शरैः।
वेणुदारेर्ध्वजं छित्त्वा भुजं विव्याध दक्षिणम्॥ १३
तथैव च श्रुतर्वाणं शरैर्विव्याध पञ्चभिः।
शिश्रिये स ध्वजं शान्तो न्यषीदच्च व्यथान्वितः॥ १४
मुञ्चन्तः शरवर्षाणि वासुदेवं ततोऽभ्ययुः।
क्रथकैशिकमुख्याश्च सर्व एव महारथाः॥ १५
बाणैर्बाणांश्च चिच्छेद तेषां युधि जनार्दनः।
जघान चैषां संरब्धः पतमानांश्च ताञ्छरान्॥ १६
पुनरन्यांश्चतुःषष्ट्या जघान निशितैः शरैः।
क्रुद्धानापततो वीरानद्रिवत् स महाबलः॥ १७
विद्रुतं स्वबलं दृष्ट्वा रुक्मी क्रोधवशंगतः।
पञ्चभिर्निशितैर्बाणैर्विव्याधोरसि केशवम्॥ १८
सारथिं चास्य विव्याध सायकैर्निशितैस्त्रिभिः।
आजघान शरेणास्य ध्वजं च नतपर्वणा॥ १९
केशवस्त्वरितं दृष्ट्वा क्रुद्धो विव्याध मार्गणैः।
धनुश्चिच्छेद चाप्यस्य यतमानस्य रुक्मिणः॥ २०
अथान्यद् धनुरादाय रुक्मी कृष्णजिघांसया।
प्रादुश्चकार चान्यानि दिव्यान्यस्त्राणि वीर्यवान्॥ २१

रुक्मीको अपने बलका बड़ा घमंड था। उसने अपने साथ आयी हुई सारी सेनाको एक जगह खड़ी करके द्वैरथ युद्ध करनेकी इच्छासे स्वयं ही भगवान् मधुसूदनपर आक्रमण किया॥ ७॥ उसने चौंसठ पैने बाणोंसे श्रीकृष्णको बींध डाला। तब जनार्दनने भी समरमें सत्तर बाण मारकर रुक्मीसे बदला चुका लिया॥ ८॥ महाबली और पराक्रमी श्रीकृष्णने विजयके लिये प्रयत्नशील रुक्मीके ध्वजको काट डाला तथा उसके सारथिके सिरको धड़से काट लिया॥ ९॥ उसे संकटमें पड़ा जान दक्षिण दिशाके समस्त राजाओंने श्रीकृष्णको मार डालनेकी इच्छा रखते हुए उन्हें चारों ओरसे घेर लिया॥ १०॥ महाबाहु अंशुमान्‌ने दस, श्रुतर्वाने पाँच और क्रोधमें भरे हुए वेणुदारिने सात बाणोंसे उन्हें घायल कर दिया॥ ११॥ तब पराक्रमी गोविन्दने एक बाणसे अंशुमान्‌की छाती छेद डाली। इससे व्यथित होकर राजा अंशुमान् रथके पिछले भागमें जा बैठा॥ १२॥ तत्पश्चात् श्रीकृष्णने चार बाणोंसे श्रुतर्वाके चारों घोड़ोंको मार डाला और वेणुदारिकी ध्वजा काटकर उसकी दाहिनी बाँहमें गहरी चोट पहुँचायी॥ १३॥ इसी प्रकार श्रुतर्वाको भी पाँच बाणोंसे घायल कर दिया। श्रुतर्वा व्यथासे पीड़ित हो ध्वजका सहारा ले शान्त होकर बैठ गया॥ १४॥ तत्पश्चात् क्रथकैशिक देशके सभी मुख्य महारथी बाणोंकी वर्षा करते हुए भगवान् श्रीकृष्णपर चढ़ आये॥ १५॥ श्रीकृष्णने युद्धस्थलमें अपने बाणोंद्वारा उन सबके बाण काट डाले तथा रोषावेशमें भरकर उन्होंने शत्रुओंके उन गिरते हुए बाणोंको नष्ट कर दिया॥ १६॥ पर्वतके समान अविचल भावसे खड़े हुए उन महाबली श्रीकृष्णने पुनः चौंसठ पैने बाणोंद्वारा क्रोधमें भरकर अपनेपर आक्रमण करनेवाले शत्रुपक्षके अन्य वीरोंको मार गिराया॥ १७॥ अपनी सेनाको भागती देख रुक्मी क्रोधके वशीभूत हो गया। उसने पाँच तीखे बाणोंसे श्रीकृष्णकी छातीमें गहरी चोट पहुँचायी॥ १८॥ साथ ही तीन पैने सायकोंसे उनके सारथिको भी घायल कर दिया और झुकी हुई गाँठवाले एक बाणसे उनके ध्वजपर भी आघात किया॥ १९॥ रुक्मीको शीघ्रतापूर्वक बाण मारते देख श्रीकृष्ण कुपित हो उठे। उन्होंने अपने बाणोंसे रुक्मीको घायल कर दिया और विजयके लिये प्रयत्नशील हुए रुक्मीके धनुषको भी काट डाला॥ २०॥ फिर तो पराक्रमी रुक्मी दूसरा धनुष हाथमें लेकर श्रीकृष्णको मार डालनेकी इच्छासे दूसरे-दूसरे दिव्यास्त्र प्रकट करने लगा॥ २१॥

अस्त्रैरस्त्राणि संवार्य तस्य कृष्णो महाबलः।
पुनश्चिच्छेद तच्चापं रथेषां च त्रिभिः शरैः॥ २२

स च्छिन्नधन्वा विरथः खड्गमादाय चर्म च।
उत्पपात रथाद् वीरो गरुत्मानिव वीर्यवान्॥ २३

तस्याभिपततः खड्गं चिच्छेद युधि केशवः।
नाराचैश्च त्रिभिः क्रुद्धो बिभेदैनमथोरसि॥ २४

स पपात महाबाहुर्वसुधामनुनादयन्।
विसंज्ञो मूर्च्छितो राजा वज्रेणेव महासुरः॥ २५

तांश्च राज्ञः शरैः सर्वान् पुनर्विव्याध माधवः।
रुक्मिणं पतितं दृष्ट्वा व्यद्रवन्त नराधिपाः॥ २६

विचेष्टमानं तं भूमौ भ्रातरं वीक्ष्य रुक्मिणी।
पादयोर्न्यपतद् विष्णोर्भ्रातुर्जीवितकाङ्क्षिणी॥ २७

तामुत्थाप्य परिष्वज्य सान्त्वयामास केशवः।
अभयं रुक्मिणे दत्त्वा प्रययौ स्वपुरीं ततः॥ २८

वृष्णयोऽपि जरासंधं भङ्क्त्वा तांश्चैव पार्थिवान्।
प्रययुर्द्वारकां हृष्टाः पुरस्कृत्य हलायुधम्॥ २९

प्रयाते पुण्डरीकाक्षे श्रुतर्वाभ्येत्य संगरे।
रुक्मिणं रथमारोप्य प्रययौ स्वां पुरीं प्रति॥ ३०

अनानीय स्वसारं तु रुक्मी मानमदान्वितः।
हीनप्रतिज्ञो नैच्छत् स प्रवेष्टुं कुण्डिनं पुरम्॥ ३१

विदर्भेषु निवासार्थं निर्ममेऽन्यत् पुरं महत्।
तद् भोजकटमित्येव बभूव भुवि विश्रुतम्॥ ३२

तत्रौजसा महातेजा दक्षिणां दिशमन्वगात्।
भीष्मकः कुण्डिने चैव राजोवास महाभुजः॥ ३३

द्वारकां चापि सम्प्राप्ते रामे वृष्णिबलान्विते।
रुक्मिण्याः केशवः पाणिं जग्राह विधिवत् प्रभुः॥ ३४

ततः सह तया रेमे प्रियया प्रीयमाणया।
सीतयेव पुरा रामः पौलोम्येव पुरंदरः॥ ३५

सा हि तस्याभवज्ज्येष्ठा पत्नी कृष्णस्य भामिनी।
पतिव्रता गुणोपेता रूपशीलगुणान्विता॥ ३६

महाबली श्रीकृष्णने अपने अस्त्रोंद्वारा उसके अस्त्रोंका निवारण करके पुनः तीन बाणोंद्वारा उसके धनुष और रथके हरसेको काट डाला॥ २२॥ धनुष कट जानेपर रथहीन हुआ पराक्रमी वीर रुक्मी हाथमें ढाल और तलवार लेकर उस टूटे रथसे गरुड़की भाँति कूद पड़ा॥ २३॥ युद्धमें अपने सामने आते हुए रुक्मीकी तलवारको श्रीकृष्णने काट डाला और कुपित होकर तीन नाराचोंसे उसकी छाती छेद डाली॥ २४॥ तब संज्ञाशून्य हुआ महाबाहु राजा रुक्मी पृथ्वीको प्रतिध्वनित करता हुआ मूर्च्छित होकर गिर पड़ा, मानो कोई महान् असुर वज्रसे मारा गया हो॥ २५॥ तदनन्तर माधवने पुनः अपने बाणोंद्वारा उन सब नरेशोंको घायल करना आरम्भ किया। रुक्मीको धराशायी हुआ देख सब नरेश भाग खड़े हुए॥ २६॥ अपने भाईको भूमिपर छटपटाते देख उसके जीवनकी इच्छा रखनेवाली रुक्मिणी भगवान् श्रीकृष्णके पैरोंपर गिर पड़ी॥ २७॥ तब भगवान् श्रीकृष्णने उसे उठाकर हृदयसे लगा लिया और भलीभाँति सान्त्वना दी। फिर रुक्मीको अभय देकर वे अपनी पुरीको चले गये॥ २८॥ वृष्णिवंशी भी जरासंध तथा उन राजाओंको पीछे हटाकर हर्षसे उल्लसित हो बलरामजीको आगे करके द्वारकापुरीकी ओर चल दिये॥ २९॥ कमलनयन श्रीकृष्णके चले जानेपर श्रुतर्वा रणभूमिमें आया और रुक्मीको रथपर बिठाकर अपनी पुरीकी ओर ले चला॥ ३०॥ अभिमान और मदसे उन्मत्त रहनेवाला रुक्मी अपनी बहिनको लौटाकर न ला सका, इसलिये उसकी प्रतिज्ञा भङ्ग हो गयी। इसीसे उसने कुण्डिनपुरमें प्रवेश करनेकी इच्छा नहीं की॥ ३१॥ उसने विदर्भ देशमें अपने रहनेके लिये दूसरे विशाल नगरका निर्माण किया, जो इस भूतलपर भोजकटके नामसे विख्यात हुआ॥ ३२॥ उस महातेजस्वी वीरने वहाँ बलपूर्वक रहकर दक्षिण दिशाका शासन किया और महाबाहु राजा भीष्मक कुण्डिनपुरमें रहने लगे॥ ३३॥ वृष्णिवंशियोंकी सेनाके साथ जब बलरामजी द्वारकामें पहुँचे, तब भगवान् श्रीकृष्णने विधिपूर्वक रुक्मिणीका पाणिग्रहण किया॥ ३४॥ पूर्वकालमें जैसे श्रीरामचन्द्रजी सीता और देवराज इन्द्र पुलोमकुमारी शचीके साथ सानन्द रमण करते थे, उसी प्रकार भगवान् श्रीकृष्ण प्रसन्न हुई प्रिय पत्नी रुक्मिणीके साथ रमण करने लगे॥ ३५॥ वह श्रीकृष्णकी ज्येष्ठ पत्नी थी। भामिनी रुक्मिणी पतिव्रता, सद्गुणवती, रूपवती, सुशीला तथा अन्यान्य उत्तम गुणोंसे सम्पन्न थी॥ ३६॥

तस्यामुत्पादयामास पुत्रान् दश महारथान्।
चारुदेष्णं सुदेष्णं च प्रद्युम्नं च महाबलम्॥ ३७

सुषेणं चारुगुप्तं च चारुबाहुं च वीर्यवान्।
चारुविन्दं सुचारुं च भद्रचारुं तथैव च॥ ३८

चारुं च बलिनां श्रेष्ठं सुतां चारुमतीं तथा।
धर्मार्थकुशलास्ते तु कृतास्त्रा युद्धदुर्मदाः॥ ३९

महिषीरष्ट कल्याणीस्ततोऽन्या मधुसूदनः।
उपयेमे महाबाहुर्गुणोपेताः कुलोद्भवाः॥ ४०

कालिन्दीं मित्रविन्दां च सत्यां नाग्नजितीमपि।
सुतां जाम्बवतश्चापि रोहिणीं कामरूपिणीम्॥ ४१

मद्रराजसुतां चापि सुशीलां शुभलोचनाम्।
सात्राजितीं सत्यभामां लक्ष्मणां चारुहासिनीम्॥ ४२

शैब्यस्य च सुतां तन्वीं रूपेणाप्सरसोपमाम्।
स्त्रीसहस्राणि चान्यानि षोडशातुलविक्रमः॥ ४३

उपयेमे हृषीकेशः सर्वा भेजे स ताः समम्।
परार्ध्यवस्त्राभरणाः कामैः सर्वैः सुखोचिताः।
जज्ञिरे तासु पुत्राश्च तस्य वीराः सहस्रशः॥ ४४

शास्त्रार्थकुशलाः सर्वे बलवन्तो महारथाः।
यज्वानः पुण्यकर्माणो महाभागा महाबलाः॥ ४५

बल और पराक्रमसे युक्त श्रीकृष्णने रुक्मिणीके गर्भसे दस पराक्रमी पुत्र उत्पन्न किये, जिनके नाम इस प्रकार हैं—चारुदेष्ण, सुदेष्ण, महाबली प्रद्युम्न, सुषेण, चारुगुप्त, चारुबाहु, चारुविन्द, सुचारु, भद्रचारु तथा बलवानोंमें श्रेष्ठ चारु। इनके सिवा एक कन्याको भी उन्होंने जन्म दिया, जिसका नाम चारुमती था। वे सभी पुत्र धर्म और अर्थमें कुशल, अस्त्र-शस्त्रोंके ज्ञाता तथा युद्धमें उन्मत्त होकर लड़नेवाले वीर थे॥ ३७—३९॥ तदनन्तर महाबाहु मधुसूदनने कल्याणस्वरूपा सद्गुणवती तथा उत्तम कुलमें उत्पन्न हुई अन्य आठ पटरानियोंके साथ विवाह किया, जिनके नाम इस प्रकार हैं—१. (सूर्य-पुत्री) कालिन्दी, २. (श्रीकृष्णकी बुआ राजाधिदेवीके गर्भसे अवन्ती देशमें उत्पन्न हुई) मित्रविन्दा, ३. (अयोध्यानरेश) नग्नजित्की पुत्री सत्या, ४. जाम्बवान्की पुत्री जाम्बवती, ५. इच्छानुसार रूप धारण करनेवाली रोहिणी (जिसका दूसरा नाम भद्रा था। केकयनरेशकी पुत्री होनेसे यही कैकेयी कहलाती थी। यह श्रीकृष्णकी बुआ श्रुतकीर्तिकी कन्या थी।), ६. मद्रराजकी सुशीला एवं शुभलोचना पुत्री मनोहर मुसकानवाली लक्ष्मणा, ७. सत्राजित्की पुत्री सत्यभामा, ८. राजा शैब्यकी तन्वङ्गी पुत्री (गान्धारी), जो रूपमें अप्सराके समान थी। इनके सिवा सोलह हजार और स्त्रियाँ थीं। उन सबके साथ अतुल पराक्रमी श्रीकृष्णने एक ही समय उतने ही रूप धारण करके विवाह किया था॥ ४०—४३ $\frac{१}{२}$ ॥ उन सबके वस्त्र और आभूषण बहुमूल्य थे। वे सब-के-सब सम्पूर्ण मनोवाञ्छित भोगोंसे सम्पन्न तथा सुख भोगनेके योग्य थीं। उन सबके गर्भसे श्रीकृष्णके सहस्रों वीर पुत्र उत्पन्न हुए थे॥ ४४॥ वे सभी पुत्र शास्त्रार्थकुशल, बलवान्, महारथी, यज्ञकर्ता, पुण्यकर्मा, महान् भाग्यशाली तथा महाबली थे॥ ४५॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे विष्णुपर्वणि रुक्मिणीहरणं नाम षष्टितमोऽध्यायः॥ ६०॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत विष्णुपर्वमें रुक्मिणीहरणविषयक साठवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ६०॥

एकषष्टितमोऽध्यायः

रुक्मीकी पुत्री शुभाङ्गीद्वारा स्वयंवरमें प्रद्युम्नका वरण, प्रद्युम्नपुत्र अनिरुद्धका रुक्मीकी पौत्री रुक्मवतीके साथ विवाह तथा बलरामद्वारा रुक्मीका वध

वैशम्पायन उवाच

ततः काले व्यतीते तु रुक्मी महति वीर्यवान्।
दुहितुः कारयामास स्वयंवरमरिंदमः॥ १

तत्राहूता हि राजानो राजपुत्राश्च रुक्मिणा।
समाजग्मुर्महावीर्या नानादिग्भ्यः श्रियान्विताः॥ २

तत्राजगाम प्रद्युम्नः कुमारैरपरैर्वृतः।
सा हि तं चकमे कन्या स च तां शुभलोचनाम्॥ ३

शुभाङ्गी नाम वैदर्भी कान्तिद्युतिसमन्विता।
पृथिव्यामभवत् ख्याता रुक्मिणस्तनया तदा॥ ४

उपविष्टेषु सर्वेषु पार्थिवेषु महात्मसु।
वैदर्भी वरयामास प्रद्युम्नमरिसूदनम्॥ ५

स हि सर्वास्त्रकुशलः सिंहसंहननो युवा।
रूपेणाप्रतिमो लोके केशवस्यात्मजोऽभवत्॥ ६

वयोरूपगुणोपेता राजपुत्री च साभवत्।
नारायणीवेन्द्रसेना जातकामा च तं प्रति॥ ७

वृत्ते स्वयंवरे जग्मू राजानः स्वपुराणि ते।
उपादाय च वैदर्भीं प्रद्युम्नो द्वारकां ययौ॥ ८

रेमे सह तया वीरो दमयन्त्या नलो यथा।
स तस्यां जनयामास देवगर्भोपमं सुतम्॥ ९

अनिरुद्धमिति ख्यातं कर्मणाप्रतिमं भुवि।
धनुर्वेदे च वेदे च नीतिशास्त्रे च पारगम्॥ १०

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! तदनन्तर दीर्घकाल व्यतीत हो जानेके पश्चात् शत्रुओंका दमन करनेवाले पराक्रमी वीर रुक्मीने अपनी पुत्रीका स्वयंवर रचाया॥ १॥ उसमें रुक्मीका बुलावा पाकर विभिन्न दिशाओंसे बहुतेरे महापराक्रमी श्रीसम्पन्न राजा और राजकुमार आये॥ २॥ वहाँ बहुत-से अन्य यदुकुमारोंके साथ प्रद्युम्न भी आये थे। रुक्मीकी कन्या उन्हें चाहती थी और प्रद्युम्न भी उस शुभलोचना राजकुमारीको पानेकी इच्छा रखते थे॥ ३॥ उस विदर्भ-राजकुमारीका नाम था शुभाङ्गी। वह कान्ति और शोभासे सम्पन्न थी। रुक्मीकी वह कन्या उन दिनों अपने रूप-सौन्दर्यके लिये समस्त भूमण्डलमें विख्यात थी॥ ४॥ जब सभी महामनस्वी भूपाल स्वयंवरसभामें बैठ गये, तब उस विदर्भ-राजकुमारीने आकर शत्रुसूदन प्रद्युम्नका वरण कर लिया॥ ५॥ प्रद्युम्न सम्पूर्ण अस्त्रोंके ज्ञान एवं प्रयोगमें कुशल थे। उनका शरीर सिंहके समान सुदृढ़ था। वे नवयुवक थे। रूपमें श्रीकृष्णके उस पुत्रकी समानता करनेवाला संसारमें दूसरा कोई नहीं था॥ ६॥ वह राजकुमारी भी नयी अवस्था, सुन्दर रूप और उत्तम गुणोंसे सम्पन्न थी। जैसे नारायणी इन्द्रसेना अपने पति महर्षि मुद्गलके प्रति प्रेम करती थी, उसी प्रकार शुभाङ्गी भी प्रद्युम्नके प्रति अनुरक्त थी॥ ७॥ स्वयंवर समाप्त हो जानेपर सब राजा अपने-अपने नगरको चले गये और प्रद्युम्न उस विदर्भ-राजकुमारीको साथ लेकर द्वारका चले आये॥ ८॥ वीर प्रद्युम्न उसके साथ उसी प्रकार रमण करने लगे, जैसे राजा नल दमयन्तीके साथ करते थे। उन्होंने वैदर्भीके गर्भसे देवकुमारके समान तेजस्वी पुत्रको जन्म दिया॥ ९॥ उसका नाम था अनिरुद्ध। वह अपने पराक्रमपूर्ण कार्यद्वारा भूमण्डलमें अनुपम वीर माना जाता था। वह धनुर्वेद, वेद तथा नीतिशास्त्रका पारंगत विद्वान् था॥ १०॥

अभवत् स यदा राजन्ननिरुद्धो वयोऽन्वितः।
तदास्य रुक्मिणः पौत्रीं रुक्मिणी रुक्मसंनिभाम्।
पत्न्यर्थे वरयामास नाम्ना रुक्मवतीति सा॥ ११
अनिरुद्धगुणैर्दान्तुं कृतबुद्धिर्नृपस्ततः।
प्रीत्या हि रौक्मिणेयस्य रुक्मिण्याश्चाप्युपग्रहात्॥ १२
विस्पर्द्धन्नपि कृष्णेन वैरं त्यज्य महायशाः।
ददामीत्यब्रवीद् राजा प्रीतिमाञ्जनमेजय॥ १३
केशवः सह रुक्मिण्या पुत्रैः संकर्षणेन च।
अन्यैश्च वृष्णिभिः सार्द्धं विदर्भान् सबलो ययौ॥ १४
संयुक्ता ज्ञातयश्चैव रुक्मिणः सुहृदश्च ये।
आहूता रुक्मिणा तेऽपि तत्राजग्मुर्नराधिपाः॥ १५
शुभे तिथौ महाराज नक्षत्रे चाभिपूजिते।
विवाहः सोऽनिरुद्धस्य बभूव परमोत्सवः॥ १६
पाणौ गृहीते वैदर्भ्यास्त्वनिरुद्धेन तत्र वै।
वैदर्भयादवानां च बभूव परमोत्सवः॥ १७
रेमिरे वृष्णयस्तत्र पूज्यमाना यथामराः।
अथाश्मकानामधिपो वेणुदारिरुदारधीः॥ १८
अक्षः श्रुतर्वा चाणूरः क्राथश्चैवांशुमानपि।
जयत्सेनः कलिङ्गानमधिपश्च महाबलः॥ १९
पाण्ड्यश्च नृपतिः श्रीमानृषीकाधिपतिस्तथा।
एते सम्मन्त्र्य राजानो दाक्षिणात्या महर्द्धयः॥ २०
अभिगम्याब्रुवन् सर्वे रुक्मिणं रहसि प्रभुम्।
भवानक्षेषु कुशलो वयं चापि रिरंसवः॥ २१
प्रियद्यूतश्च रामोऽसावक्षेष्वनिपुणोऽपि च।
ते भवन्तं पुरस्कृत्य जेतुमिच्छाम तं वयम्।
इत्युक्तो रोचयामास रुक्मी द्यूतं महारथः॥ २२
ते शुभां काञ्चनस्तम्भां कुसुमैर्भूषिताजिराम्।
सभामाविविशुर्हृष्टाः सिक्तां चन्दनवारिणा॥ २३
तां प्रविश्य ततः सर्वे शुभ्रस्त्रगनुलेपनाः।
सौवर्णेष्वासनेष्वासाञ्चक्रिरे विजिगीषवः॥ २४

राजन्! जब अनिरुद्ध युवावस्थासे सम्पन्न हुए, तब रुक्मिणीने उनकी पत्नी बनानेके लिये रुक्मीकी पौत्रीको, जो सुवर्णके समान गौर वर्णवाली थी, उससे माँगा। उसका नाम था रुक्मवती॥ ११॥ जनमेजय! राजा रुक्मी अनिरुद्धके गुणोंसे ही आकृष्ट होकर अपनी पौत्रीका विवाह उनके साथ करना चाहता था, अतः रुक्मिणीके आग्रहसे उसे राजी रखनेके लिये तथा प्रद्युम्नकी प्रसन्नताके निमित्त उस महायशस्वी राजाने श्रीकृष्णके साथ स्पर्धा रखते हुए भी वैर त्यागकर प्रसन्नतापूर्वक कहा कि 'मैं अपनी पौत्री अनिरुद्धके लिये दे रहा हूँ'॥ १२-१३॥ तब भगवान् श्रीकृष्ण अपनी पत्नी रुक्मिणी, प्रद्युम्न आदि पुत्रगण, भैया बलराम तथा अन्य वृष्णिवंशी योद्धाओंके साथ सेनासहित विदर्भदेशमें गये॥ १४॥ उस विवाहोत्सवमें रुक्मीके भाई-बन्धु और सुहृद् नरेश भी उसका निमन्त्रण पाकर वहाँ आये थे॥ १५॥ महाराज! शुभ तिथि तथा उत्तम नक्षत्रमें अनिरुद्धका वह परम उत्सवमय विवाह-कार्य सम्पन्न हुआ॥ १६॥ जब अनिरुद्धने विदर्भ-राजकुमारी रुक्मवतीका पाणिग्रहण किया, उस समय विदर्भ-निवासियों तथा यादवोंके मनमें बड़ा हर्ष हुआ॥ १७॥ वैदर्भोंद्वारा पूजित हुए यदुवंशी वहाँ देवताओंके समान आनन्दपूर्वक रम रहे थे। इसी समय अश्मक देशका अधिपति उदारबुद्धि वेणुदारि, अक्ष, श्रुतर्वा, चाणूर, क्रथपुत्र अंशुमान्, कलिङ्गदेशका अधिपति जयत्सेन, राजा पाण्ड्य तथा श्रीमान् ऋषीकनरेश—ये सब अत्यन्त समृद्धिशाली दाक्षिणात्य नरेश एकान्तमें सामर्थ्यशाली रुक्मीके पास जाकर बोले— 'आप अक्षविद्या (द्यूत)-में कुशल हैं और हमलोग भी द्यूतक्रीड़ाकी इच्छा रखते हैं। उधर बलराम द्यूतक्रीड़ामें निपुण न होनेपर भी उससे प्रेम रखते हैं। अतः हम चाहते हैं कि आपको आगे करके बलरामको द्यूतक्रीड़ाद्वारा जीत लें।' उनके ऐसा कहनेपर महारथी रुक्मीको जुआ खेलनेकी बात पसंद आ गयी॥ १८—२२॥ तदनन्तर वे समस्त भूपाल बड़े हर्षके साथ सुन्दर द्यूतसभामें प्रविष्ट हुए, जिसमें सोनेके खम्भे लगे थे और जिसके आँगनको फूलोंसे सजाया गया था। उस सभामें चन्दनके जलसे छिड़काव किया गया था॥ २३॥ सुन्दर माला और चन्दनसे अलंकृत हो उस सभामें प्रवेश करके वे सभी राजा सोनेके सिंहासनोंपर बैठ गये। उन सबकी यही इच्छा थी कि हम बलभद्रको जीत लें॥ २४॥

आहूतो बलदेवस्तु कितवैरक्षकोविदैः।
बाढमित्यब्रवीद्धृष्टः सह दीव्याम पण्यताम्॥ २५

निकृत्या विजिगीषन्तो दाक्षिणात्या नराधिपाः।
मणिमुक्ताः सुवर्णं च तत्रानिन्युः सहस्रशः॥ २६

ततः प्रावर्तत द्यूतं तेषां रतिविनाशनम्।
कलहस्यास्पदं घोरं दुर्मतीनां क्षयावहम्॥ २७

निष्काणां च सहस्राणि सुवर्णस्य दशादितः।
रुक्मिणा सह सम्पाते बलदेवो ग्लहं ददौ॥ २८

तं जिगाय ततो रुक्मी यतमानं महाबलम्।
तावदेवापरं भूयो बलदेवं जिगाय सः॥ २९

असकृज्जीयमानस्तु रुक्मिणा केशवाग्रजः।
सुवर्णकोटीर्जग्राह ग्लहं तस्य महात्मनः॥ ३०

जितमित्येव हृष्टोऽथ तमाहूतिरभाषत।
श्लाघ्यमानश्च चिक्षेप प्रहसन् मुसलायुधम्॥ ३१

अविद्यो दुर्बलः श्रीमान् हिरण्यममितं मया।
अजेयो बलदेवोऽयमक्षद्यूते पराजितः॥ ३२

कलिङ्गराजस्तच्छ्रुत्वा प्रजहास भृशं तदा।
दन्तान् संदर्शयन् हृष्टस्तत्राक्रुद्ध्यद्धलायुधः॥ ३३

रुक्मिणस्तद् वचः श्रुत्वा पराजयनिमित्तजम्।
निगृह्यमाणस्तीक्ष्णाभिर्वाग्भिर्भीष्मकसूनुना॥ ३४

रोषमाहारयामास जितरोषोऽपि धर्मवित्।
संक्रुद्धो धर्षणां प्राप्य रौहिणेयो महाबलः॥ ३५

धैर्यान्मनः संनिधाय ततो वचनमब्रवीत्।
दशकोटिसहस्राणि ग्लह एको ममापरः॥ ३६

एनं सम्परिगृह्णीष्व पातयाक्षान् नराधिप।
कृष्णाक्षाँल्लोहिताक्षांश्च देशेऽस्मिंस्त्वधिपांसुले॥ ३७

तदनन्तर द्यूतक्रीड़ामें निपुण जुआरियोंद्वारा बलदेवजीको आमन्त्रित किया गया। वे 'बहुत अच्छा' कहकर प्रसन्नतापूर्वक बोले—'अच्छा, हमलोग साथ-साथ खेलें। आपलोग दावँ लगाइये'॥ २५॥ छलसे जीतनेकी इच्छा रखनेवाले दाक्षिणात्य नरेश वहाँ सहस्रों मणि, मोती एवं सुवर्ण ले आये॥ २६॥ फिर तो उनमें द्यूत आरम्भ हुआ, जो पारस्परिक प्रेमका नाश करनेवाला एवं कलहका घोर स्थान है तथा दुर्बुद्धि पुरुषोंका संहार करनेवाला है॥ २७॥ बलदेवजीने रुक्मीके साथ जुआ खेलते समय पहले दस हजार सोनेकी मोहरें दावँपर रखीं॥ २८॥ महाबली बलदेव जीतनेका प्रयत्न करते ही रह गये, परंतु रुक्मीने उस दावँको जीत लिया। तत्पश्चात् उसने पुनः बलदेवका उतना ही सुवर्ण जीता॥ २९॥ रुक्मीके द्वारा बारम्बार जीते जानेपर श्रीकृष्णके बड़े भाई बलरामने उस महामनस्वी रुक्मीके दावँपर एक करोड़ सुवर्णमुद्राएँ लेकर रखीं॥ ३०॥ रुक्मी अत्यन्त कुटिल था। वह हर्षमें भरकर बोल उठा—'मैंने ही जीता।' सब राजा उसकी प्रशंसा करने लगे। उसने हँसते हुए वहाँ मुसलधारी बलरामजीपर आक्षेप किया—॥ ३१॥ 'ये श्रीमान् बलदेव विद्याहीन एवं दुर्बल हैं। ये अजेय बनते थे; परंतु आज इस अक्षद्यूतमें मुझसे पराजित हो गये। मैंने इनसे असंख्य सुवर्ण जीता है'॥ ३२॥ रुक्मीकी वह बात सुनकर कलिङ्गराज हर्षसे उल्लसित हो उठा। वह अपने दाँत दिखा-दिखाकर जोर-जोरसे हँसने लगा। तब वहाँ बलरामजी कुपित हो उठे॥ ३३॥ रुक्मीके उस वचनको, जो बलदेवजीकी पराजयको निमित्त बनाकर कहा गया था, जब उन्होंने सुना और जब भीष्मकपुत्र रुक्मी अपने तीखे वचनोंसे उन्हें निगृहीत करने लगा, तब महाबली रोहिणीकुमार बलरामजी उस तिरस्कारको पाकर अत्यन्त कुपित हो उठे। यद्यपि वे धर्मज्ञ थे, उन्होंने रोषपर विजय भी पायी थी, तो भी उस समय उनके मनमें बड़ा भारी रोष हुआ॥ ३४-३५॥ इतनेपर भी उन्होंने धैर्यपूर्वक मनको काबूमें किया और इस प्रकार कहा—'विदर्भ-नरेश्वर! दस सहस्र कोटि स्वर्ण-मुद्राओंका यह मेरा एक दूसरा दावँ है। इसे ग्रहण करो और इस अधिक रजोगुणी देश-कालमें तुम काले और लाल पासे फेंको।'

इत्येवमाह्वयामास रुक्मिणं रोहिणीसुतः।
अनुक्त्वा वचनं किंचिद् बाढमित्यब्रवीत् पुनः॥ ३८

अक्षान् रुक्मी ततो हृष्टः पातयामास पार्थिवः।
चातुरक्षे तु निर्वृत्ते निर्जितस्य नराधिपः॥ ३९

बलदेवेन धर्मेण नेत्युवाच ततो बलम्।
धैर्यान्मनः समाधाय स न किंचिदुवाच ह॥ ४०

बलदेवं ततो रुक्मी मया जितमिति स्मयन्।
बलदेवस्तु तच्छ्रुत्वा जिह्मं वाक्यं नराधिप॥ ४१

भूयः क्रोधसमाविष्टो नोत्तरं व्याजहार ह।
ततो गम्भीरनिर्घोषा वागुवाचाशरीरिणी॥ ४२

बलदेवस्य तं क्रोधं वर्धयन्ती महात्मनः।
सत्यमाह बलः श्रीमान् धर्मेणैष पराजितः॥ ४३

अनुक्त्वा वचनं किंचित् प्राप्तो भवति कर्मणा।
मनसा समनुज्ञातं तत् स्यादित्यवगम्यताम्॥ ४४

इति श्रुत्वा वचस्तथ्यमन्तरिक्षात् सुभाषितम्।
संकर्षणस्तथोत्थाय सौवर्णेनोरुणा बली॥ ४५

रुक्मिण्या भ्रातरं ज्येष्ठं निजघान महीतले।
विवादे कुपितो रामः क्षेप्तारं किल रुक्मिणम्।
जघानाष्टापदेनैव प्रमथ्य यदुनन्दनः॥ ४६

ततोऽपसृत्य संक्रुद्धः कलिङ्गाधिपतेरपि।
दन्तान् बभञ्ज संरम्भादुन्ननाद च सिंहवत्॥ ४७

खड्गमुद्यम्य तान् सर्वांस्त्रासयामास पार्थिवान्।
स्तम्भं सभायाः सौवर्णमुत्पाट्य बलिनां वरः॥ ४८

गजेन्द्र इव तं स्तम्भं कर्षन् संकर्षणस्ततः।
निर्जगाम सभाद्वारात् त्रासयामास कैशिकान्॥ ४९

रुक्मिणं निकृतिप्रज्ञं स हत्वा यादवर्षभः।
वित्रास्य विद्विषः सर्वान् सिंहः क्षुद्रमृगानिव॥ ५०

ऐसा कहकर रोहिणीकुमार बलरामने पुनः जुआ खेलनेके लिये ललकारा। इसके उत्तरमें राजा रुक्मीने कोई दूसरी बात न कहकर फिर इतना ही कहा कि 'बहुत अच्छा।' इसके बाद उसने हर्षपूर्वक पासे फेंके। उस समय चार अंकवाला पासा गिरा। उसके अनुसार बलदेवजीने धर्मतः उसे हरा दिया था तो भी उस नरेश्वरने बलदेवजीसे यही कहा कि 'आपकी विजय नहीं हुई है'। बलरामजीने पुनः अपने मनको धैर्यपूर्वक काबूमें करके कोई बात नहीं कही। तब रुक्मीने मुसकराते हुए बलरामजीसे कहा—'यह दावँ भी मैंने ही जीता है'। नरेश्वर! उसकी यह कुटिलतापूर्ण बात सुनकर बलदेवजीको पुनः बड़ा क्रोध हुआ, तथापि उन्होंने उसे कोई उत्तर नहीं दिया। तब गम्भीर घोषके साथ वहाँ आकाशवाणी हुई, जो महात्मा बलदेवके क्रोधको बढ़ानेवाली थी—'श्रीमान् बलदेवजी सत्य कहते हैं। यह रुक्मी धर्मतः पराजित हो चुका है! यद्यपि इसने दावँ लगाते समय कोई बात नहीं कही थी तो भी इसने जो पासा फेंकने आदिका कर्म किया, उससे उस दावँमें इसका सहयोग स्वतः सिद्ध हो जाता है। इसने मनसे उस दावँको स्वीकार कर लिया था, ऐसा समझना चाहिये'॥ ३६—४४॥ आकाशसे सुन्दर ढंगसे कहा गया यह यथार्थ वचन सुनकर बलवान् संकर्षण उठकर खड़े हो गये और उन्होंने सोनेके बने हुए विशाल अष्टापद*के द्वारा रुक्मिणीके बड़े भाई रुक्मीको पृथ्वीपर मार गिराया। विवादमें कुपित हुए यदुनन्दन बलरामने अपने ऊपर आक्षेप करनेवाले रुक्मीको पटककर अष्टापदसे ही मार डाला॥ ४५-४६॥ वहाँसे हटकर अत्यन्त क्रोधमें भरे हुए संकर्षणने कलिङ्गराज जयत्सेनके सारे दाँत तोड़ डाले तथा रोषसे वे सिंहके समान दहाड़ने लगे॥ ४७॥ इसके बाद उन्होंने तलवार उठाकर समस्त राजाओंको भयभीत कर दिया। फिर द्यूतसभाके सुवर्णमय खम्भको उखाड़कर बलवानोंमें श्रेष्ठ बलरामजी आगे बढ़े॥ ४८॥ गजराजके समान उस खम्भेको खींचकर लिये जाते हुए संकर्षण जब सभाद्वारसे बाहर निकले, तब उन्होंने समस्त कैशिकोंको भयभीत कर दिया॥ ४९॥ इस प्रकार छल-कपटमें चतुर रुक्मीको मारकर यादवप्रवर बलरामने समस्त शत्रुओंको उसी तरह भयमें डाल दिया, जैसे सिंह छोटे पशुओंको भयभीत कर देता है॥ ५०॥

* अमरकोषके अनुसार शारिफल (शतरंज या चौसरकी बिछाँत अथवा बिसात)-को अष्टापद कहते हैं।

जगाम शिबिरं रामः स्वयमेव जनावृतः।
न्यवेदयत् स कृष्णाय तत्र सर्वं यथाभवत्॥ ५१
नोवाच स तदा कृष्णः किंचिद् रामं महाद्युतिः।
निगृह्य च तदाऽऽत्मानं कृच्छ्रादश्रूण्यवर्तयत्॥ ५२
न हतो वासुदेवेन यः पूर्वं परवीरहा।
ज्येष्ठो भ्राताथ रुक्मिण्या रुक्मिणीस्नेहकारणात्॥ ५३
स रामकरमुक्तेन निहतो द्यूतमण्डले।
अष्टापदेन बलवान् राजा वज्रधरोपमः॥ ५४
तस्मिन् हते महावीर्ये नृपतौ भीष्मकात्मजे।
द्रुमभार्गवतुल्ये वै द्रुमभार्गवशिक्षिते॥ ५५
कृतौ च युद्धकुशले नित्ययाजिनि पातिते।
वृष्णयश्चान्धकाश्चैव सर्वे विमनसोऽभवन्॥ ५६

वैशम्पायन उवाच

रुक्मिणी च महाभागा विलपन्त्यार्तया गिरा।
विलपन्तीं तथा दृष्ट्वा सान्त्वयामास केशवः॥ ५७
एतत् ते सर्वमाख्यातं रुक्मिणो निधनं यथा।
वैरस्य च समुत्थानं वृष्णिभिर्भरतर्षभ॥ ५८
वृष्णयोऽपि महाराज धनान्यादाय सर्वशः।
रामकृष्णौ समाश्रित्य ययुर्द्वारवतीं प्रति॥ ५९

तदनन्तर स्वजनोंसे घिरे हुए बलराम अपने शिबिरमें गये और द्यूतसभामें जो कुछ हुआ था, वह सब स्वयं ही उन्होंने श्रीकृष्णको बता दिया॥ ५१॥ उस समय महातेजस्वी श्रीकृष्णने बलरामजीसे कुछ नहीं कहा; वे अपने-आपको किसी तरह सँभालकर बड़े कष्टसे आँसू बहाने लगे॥ ५२॥ भगवान् वासुदेवने पहले रुक्मिणीके प्रति स्नेहके कारण उसके जिस बड़े भाईको नहीं मारा था, वही वज्रधारी इन्द्रके समान बलवान् एवं शत्रुवीरोंका संहार करनेवाला राजा रुक्मी बलरामजीके हाथसे छूटे हुए अष्टापदके द्वारा मार डाला गया॥ ५३-५४॥ भीष्मकपुत्र राजा रुक्मी महान् बल-पराक्रमसे सम्पन्न था। वह द्रुम और परशुरामजीसे अस्त्र-शिक्षा पाकर उन्हीं दोनोंके समान पराक्रमी हो गया था। रुक्मी विद्वान्, युद्धकुशल और नित्य यज्ञ करनेवाला था। उसके मारे जानेपर वृष्णि और अन्धकवंशके सभी वीर उदास हो गये॥ ५५-५६॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! (भाईके मारे जानेसे) महाभागा रुक्मिणी आर्तवाणीमें विलाप करने लगीं। उन्हें रोती-बिलखती देख भगवान् कृष्णने सान्त्वना दी॥ ५७॥ भरतश्रेष्ठ! यह मैंने तुम्हें रुक्मीके वधका यथावत् वृत्तान्त बताया है। साथ ही यह भी स्पष्ट कर दिया है कि उसका वृष्णिवंशियोंके साथ किस प्रकार वैर हुआ था?॥ ५८॥ महाराज! वृष्णिवंशी भी वहाँसे सब प्रकारके धन लेकर बलराम और श्रीकृष्णका आश्रय ले द्वारकापुरीको चले गये॥ ५९॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे विष्णुपर्वणि रुक्मिवधो नामैकषष्टितमोऽध्यायः॥ ६१॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत विष्णुपर्वमें रुक्मीका वधविषयक इकसठवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ६१॥

द्विषष्टितमोऽध्यायः

बलदेवजीका माहात्म्य, उनके द्वारा हस्तिनापुरको गङ्गामें गिरानेका अद्भुत प्रयत्न

राजोवाच

भूय एव तु विप्रर्षे बलदेवस्य धीमतः।
माहात्म्यं श्रोतुमिच्छामि शेषस्य धरणीभृतः॥ १
अतीव बलदेवं तं तेजोराशिमनिर्जितम्।
कथयन्ति महात्मानं ये पुराणविदो जनाः॥ २

राजाने कहा—ब्रह्मर्षे! धरतीको धारण करनेवाले शेषके अवतार बुद्धिमान् बलरामके माहात्म्यको मैं पुनः सुनना चाहता हूँ॥ १॥ जो पुराणवेत्ता पुरुष हैं, वे महात्मा बलदेवको अत्यन्त तेजकी राशि और अपराजित बताते हैं॥ २॥

तस्य कर्माण्यहं विप्र श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः।
अनन्तं यं विदुर्नागमादिदेवं महौजसम्॥ ३

वैशम्पायन उवाच

पुराणे नागराजोऽसौ पठ्यते धरणीधरः।
शेषस्तेजोनिधिः श्रीमानकम्प्यः पुरुषोत्तमः॥ ४

योगाचार्यो महावीर्यो देवमन्त्रमुखो बली।
जरासंधं गदायुद्धे जितवान् यो न चावधीत्॥ ५

बहवश्चैव राजानः प्रथिताः पृथिवीतले।
अन्वयुर्मागधं सर्वे ते चापि विजिता रणे॥ ६

नागायुतबलप्राणो भीमो भीमपराक्रमः।
असकृद् बलदेवेन बाहुयुद्धे पराजितः॥ ७

दुर्योधनस्य कन्यां तु हरमाणो न्यगृह्यत।
साम्बो जाम्बवतीपुत्रो नगरे नागसाह्वये॥ ८

राजभिः सर्वतो रुद्धे हरमाणो बलात् किल।
तदुपश्रुत्य संरुद्धमाजगाम महाबलः॥ ९

रामस्तस्य तु मोक्षार्थमागतो नालभच्च तम्।
ततश्चुक्रोध बलवानद्भुतं चाकरोन्महत्॥ १०

अनिवार्यमभेद्यं च दिव्यमप्रतिमं बले।
लाङ्गलास्त्रं समुद्यम्य ब्रह्ममन्त्राभिमन्त्रितम्॥ ११

प्राकारवप्रे विन्यस्य पुरस्य च महाद्युतिः।
प्रक्षेप्तुमैच्छद् गङ्गायां नगरं कौरवस्य तत्॥ १२

तद् विघूर्णितमालक्ष्य पुरं दुर्योधनो नृपः।
साम्बं निर्यातयामास सभार्यं तस्य धीमतः॥ १३

ददौ शिष्यं तदाऽऽत्मानं रामस्य सुमहात्मनः।
गदायुद्धे कुरुपतिं शिष्यं जग्राह तं च सः॥ १४

ततः प्रभृति राजेन्द्र पुरमेतद् विघूर्णितम्।
आवर्जितमिवाभाति गङ्गामभिमुखं नृप॥ १५

विप्रवर! मैं उनके कर्मोंको पुनः यथार्थरूपसे श्रवण करना चाहता हूँ, जिन्हें विद्वान् पुरुष महान् बल-पराक्रमसे सम्पन्न आदिदेव अनन्त नागके रूपमें जानते हैं॥ ३॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! पुराणमें बलभद्रजीको साक्षात् नागराज धरणीधर शेष बताया जाता है। वे तेजकी निधि, दिव्य शोभासे सम्पन्न, कभी कम्पित न होनेवाले और पुरुषोत्तम हैं। वे योगके आचार्य, महापराक्रमी, बलवान् तथा देवताओंकी गुप्त मन्त्रणाको सुनने और उसपर विचार करनेवालोंमें प्रधान हैं। उन्होंने गदायुद्धमें जरासंधको जीत लिया, परंतु उसका वध नहीं किया॥ ४-५॥ भूतलके बहुत-से विख्यात राजा, जो सब-के-सब मगधराज जरासंधका अनुसरण करते थे, युद्धमें बलदेवजीके द्वारा परास्त कर दिये गये॥ ६॥ जिनमें दस हजार हाथियोंका बल था, वे भयानक पराक्रमी भीमसेन बाहुयुद्धमें बलदेवजीके द्वारा अनेक बार पराजित हो चुके थे॥ ७॥ एक समय दुर्योधनकी पुत्री लक्ष्मणाका अपहरण करते हुए जाम्बवतीकुमार साम्बको कौरवोंने हस्तिनापुरमें कैद कर लिया। वह नगर सब ओरसे राजाओंद्वारा घिरा हुआ था। कहते हैं, साम्ब बलपूर्वक उस कन्याको ले जा रहे थे, इसलिये उन्हें बंदी बनाया गया। साम्बको कैद कर लिया गया है, यह सुनकर महाबली बलराम उन्हें छुड़ानेके लिये आये; परंतु वे शान्तिपूर्वक माँगनेपर साम्बको न पा सके। तब बलवान् बलराम कुपित हो उठे और उन्होंने वहाँ एक महान् अद्भुत कार्य कर दिखाया। महातेजस्वी बलरामजीने, जो किसीके द्वारा भी निवारण या भेदन करनेयोग्य नहीं है, उस अप्रतिम शक्तिशाली दिव्य हल नामक अस्त्रको उठाकर उसे ब्रह्ममन्त्रसे अभिमन्त्रित किया और कौरवनगर हस्तिनापुरके परकोटेकी नींवमें धँसाकर समूचे नगरको गङ्गाजीमें उलट देनेकी इच्छा की॥ ८—१२॥ अपने नगरको चक्कर काटता देख राजा दुर्योधनने तुरंत आकर बुद्धिमान् बलदेवजीकी सेवामें पत्नीसहित साम्बको लौटा दिया॥ १३॥ उस समय उसने अपने-आपको महात्मा बलरामजीके हाथमें शिष्यभावसे सौंप दिया। तब उन्होंने कुरुराज दुर्योधनको गदायुद्धकी शिक्षा देनेके लिये अपना शिष्य बना लिया॥ १४॥ राजेन्द्र! तभीसे यह नगर कुछ घुमा और गङ्गाजीकी ओर झुकाया हुआ-सा प्रतीत होता है॥ १५॥

इदमत्यद्भुतं कर्म रामस्य कथितं भुवि।
भाण्डीरे कथितं राजन् यत् कृतं शौरिणा पुरा॥ १६

प्रलम्बं मुष्टिनैकेन यज्जघान हलायुधः।
धेनुकं तु महावीर्यं चिक्षेप नगमूर्द्धनि।
स गतायुः पपातोर्व्यां दैत्यो गर्दभरूपधृक्॥ १७

लवणजलगमा महानदी
द्रुतजलवेगतरङ्गमालिनी।
नगरमभिमुखं यदा हृता
हलविधृता यमुना यमस्वसा॥ १८

बलदेवस्य माहात्म्यमेतत् ते कथितं मया।
अनन्तस्याप्रमेयस्य शेषस्य धरणीभृतः॥ १९

इति पुरुषवरस्य लाङ्गले-
र्बहुविधमुत्तममन्यदेव च।
यदकथितमिहाद्य कर्म ते
तदुपलभस्व पुराणविस्तरात्॥ २०

राजन्! यह भूतलपर बलरामजीका अत्यन्त अद्भुत कर्म कहा गया है। पहले भाण्डीरवटके निकट उन्होंने जो कुछ किया था, उसका वर्णन तो कर ही दिया गया है॥ १६॥ उस समय हलधरने प्रलम्बको एक ही मुक्केसे मारकर कालके गालमें डाल दिया था और महापराक्रमी धेनुकासुरको ताड़की चोटीपर फेंक दिया था। वह गर्दभरूपधारी दैत्य वहींसे गतायु होकर पृथ्वीपर गिरा था॥ १७॥ खारे पानीके समुद्रमें मिलनेवाली यमकी बहिन महानदी यमुनाको, जो बहते हुए जलके वेग और तरंगोंसे अलंकृत थी, उन्होंने हलके द्वारा नगरकी ओर खींच लिया था॥ १८॥ जो अनन्त, अप्रमेय, धरणीधर शेषके अवतार हैं, उन बलदेवजीका माहात्म्य मैंने तुम्हें बता दिया॥ १९॥ इस प्रकार पुरुषोत्तम हलधरके दूसरे-दूसरे भी उत्तम चरित्र हैं, उनके जिस कर्मकी यहाँ चर्चा नहीं की गयी है, उसे तुम विस्तृत पुराणोंसे जान लो॥ २०॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे विष्णुपर्वणि बलदेवमाहात्म्ये द्विषष्टितमोऽध्यायः॥ ६२॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत विष्णुपर्वमें बलदेवका माहात्म्यविषयक बासठवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ६२॥

त्रिषष्टितमोऽध्यायः

नरकासुरका परिचय, द्वारकामें इन्द्रका आगमन और श्रीकृष्णसे नरकवधके लिये अनुरोध, सत्यभामासहित श्रीकृष्णका प्राग्ज्योतिषपुरमें गमन तथा उनके द्वारा मुरु, निसुन्द, हयग्रीव, विरूपाक्ष, पञ्चनाद, अन्यान्य असुर तथा नरकासुरका वध

जनमेजय उवाच

प्रत्येत्य द्वारकां विष्णुर्हते रुक्मिणि वीर्यवान्।
अकरोद् यन्महाबाहुस्तन्मे वद महामुने॥ १

वैशम्पायन उवाच

स तैः परिवृतः श्रीमान् पुरीं यादवनन्दनः।
द्वारकां भगवान् विष्णुः प्रत्यवैक्षत वीर्यवान्॥ २

प्रत्यपद्यत रत्नानि विविधानि वसूनि च।
यथार्हं पुण्डरीकाक्षो नैर्ऋतान् प्रत्यवारयत्॥ ३

जनमेजयने पूछा—महामुने! रुक्मीके मारे जानेपर जब परम पराक्रमी महाबाहु श्रीकृष्ण द्वारकाको लौट आये, तब उन्होंने क्या किया, यह मुझे बताइये॥ १॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! श्रीमान् यादवनन्दन पराक्रमी भगवान् श्रीकृष्ण उन यादवोंसे घिरे हुए जब द्वारकाको आये, तब उन्होंने उस पुरीका भलीभाँति निरीक्षण किया॥ २॥ कमलनयन श्रीकृष्णने जो नाना प्रकारके धन और रत्न प्राप्त किये थे, उनका वे द्वारकामें यथोचितरूपसे संरक्षण करते थे और उन्हें हड़पनेकी इच्छावाले राक्षसोंको उन्होंने मार भगाया था॥ ३॥

तत्र विघ्नं चरन्ति स्म दैतेयाः सह दानवैः।
ताञ्जघान महाबाहुर्वरदृप्तान् महासुरान्॥ ४

विघ्नं चास्याकरोत् तत्र नरको नाम दानवः।
त्रासनः सर्वदेवानां देवराजरिपुर्महान्॥ ५

स भूमौ मूर्तिलिङ्गस्थः सर्वदेवाधिबाधिता।
देवतानामृषीणां च प्रतीपमकरोत् तदा॥ ६

त्वष्टुर्दुहितरं भौमः कशेरुमगमत् तदा।
गजरूपेण जग्राह रुचिराङ्गीं चतुर्दशीम्॥ ७

प्रमथ्य तां वरारोहां नरको वाक्यमब्रवीत्।
नष्टशोकभयो मोहात् प्राग्ज्योतिषपतिस्तदा॥ ८

यानि देवमनुष्येषु रत्नानि विविधानि च।
बिभर्ति च मही कृत्स्ना सागरेषु च यद् वसु॥ ९

अद्यप्रभृति तानीह सहिताः सर्वनैर्ऋताः।
तवैवोपाहरिष्यन्ति दैत्याश्च सह दानवैः॥ १०

एवमुत्तमरत्नानि वस्त्राणि विविधानि च।
स जहार तदा भौमस्तच्च नाधिचकार सः॥ ११

गन्धर्वाणां च याः कन्या जहार नरको बली।
याश्च देवमनुष्याणां सप्त चाप्सरसां गणाः॥ १२

चतुर्दश सहस्राणि एकविंशच्छतानि च।
एकवेणीधराः सर्वाः सतीमार्गमनुव्रताः॥ १३

वैशम्पायन उवाच

तासां पुरवरं भौमोऽकारयन्मणिपर्वतम्।
अलकायामदीनात्मा मुरोः स्वविषयं प्रति॥ १४

वहाँ उनके मार्गमें दैत्य और दानव विघ्न डाला करते थे। महाबाहु श्रीकृष्णने वर पाकर उन्मत्त हुए उन बड़े-बड़े असुरोंको मार डाला॥ ४॥ तत्पश्चात् नरक नामक दानवने भगवान्‌के कार्यमें विघ्न डालना आरम्भ किया। वह समस्त देवताओंको भयभीत करनेवाला तथा देवराज इन्द्रका महान् शत्रु था॥ ५॥ समस्त देवताओंको बाधा देनेवाला नरकासुर भूमिके भीतर मूर्तिलिङ्ग*में स्थित होकर देवताओं और ऋषियोंके प्रतिकूल आचरण किया करता था॥ ६॥ भूमिका पुत्र होनेसे नरकको भौमासुर भी कहते हैं। उसने हाथीका रूप धारण करके प्रजापति त्वष्टाकी पुत्री कशेरुके, जो चौदह वर्षकी अवस्थावाली तथा सुन्दर अङ्गोंसे सुशोभित थी, समीप जाकर उसे पकड़ लिया॥ ७॥ नरकासुर प्राग्ज्योतिषपुरका राजा था। उसके शोक और भय नष्ट हो गये थे। वह मोहवश सुन्दरी कशेरुको अपनी दोनों भुजाओंमें दबाकर हर ले गया और उससे इस प्रकार बोला— ॥ ८॥ 'देवि! देवता और मनुष्योंके पास जो नाना प्रकारके रत्न हैं, सारी पृथ्वी जिन रत्नोंको धारण करती है तथा समुद्रोंमें जो रत्न संचित हैं, उन सबको आजसे सभी राक्षस, दैत्य और दानव भी तुम्हें ही लाकर दिया करेंगे'॥ ९-१०॥ इस प्रकार भौमासुरने नाना प्रकारके उत्तम रत्नों और भाँति-भाँतिके वस्त्रोंका उस समय अपहरण किया था। अपहरण करके भी उसने उनपर अधिकार नहीं किया (उन्हें अपने उपभोगमें नहीं लाया)॥ ११॥ गन्धर्वोंकी जो कन्याएँ थीं, उन्हें भी बलवान् नरकासुर हर लाया था। देवताओं और मनुष्योंकी कन्याओं तथा अप्सराओंके सात समुदायोंका भी उसने अपहरण कर लिया॥ १२॥ इस प्रकार सोलह हजार एक सौ सुन्दरी स्त्रियाँ उसके घरमें एकत्र हो गयीं। वे सब-की-सब सतियोंके मार्गका अनुसरण करके व्रत और नियमोंके पालनमें तत्पर हो एक वेणी धारण करती थीं॥ १३॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! उदार हृदयवाले भौमासुरने उनके रहनेके लिये मणिपर्वतपर एक श्रेष्ठ पुरका निर्माण कराया था। जिस स्थानपर वह पुर बना था, वह अलका नामसे प्रसिद्ध था। वह स्थान मुर नामक दैत्यके अधिकृत प्रदेशमें था॥ १४॥

* मूर्ति या शिवलिङ्गके आकारका कोई दुर्भेद्य गृह, जो पृथ्वीके भीतर गुफामें बनाया गया हो। शत्रुओंसे आत्मरक्षाकी दृष्टिसे नरकासुरने ऐसे निवासस्थानका निर्माण करा रखा था।

ताश्च प्राग्ज्योतिषपतिं मुरोश्चैव दशात्मजाः।
नैर्ऋताश्च यथा मुख्याः पालयन्त उपासते।
स एष तपसः पारे वरदृप्तो महासुरः॥ १५

न चासुरगणैः सर्वैः सहितैः कर्म तत् पुरा।
कृतपूर्वं तदा घोरं यदकार्षीन्महासुरः॥ १६

अदितिं धर्षयामास कुण्डलार्थे महासुरः।
यं मही सुषुवे देवी यस्य प्राग्ज्योतिषं पुरम्॥ १७

द्वारपालाश्च चत्वारस्तस्यासन् युद्धदुर्मदाः।
हयग्रीवो निसुन्दश्च वीरः पञ्चनदस्तथा॥ १८
मुरुः पुत्रसहस्रैश्च वरदत्तोऽसुरो महान्।

आदेवयानमावृत्य पन्थानं समुपस्थितः।
वित्रासनः सुकृतिनां विरूपै राक्षसैः सह॥ १९

तद्वधार्थं महाबाहुः शङ्खचक्रगदासिभृत्।
जातो वृष्णिषु देवक्यां वसुदेवाज्जनार्दनः॥ २०

तस्याथ पुरुषेन्द्रस्य लोकप्रथिततेजसः।
निवासो द्वारका देवैरुपायादुपपादिता॥ २१

अतीव हि पुरी रम्या द्वारका वासवक्षयात्।
महार्णवपरिक्षिप्ता पञ्चपर्वतशोभिता॥ २२

तस्यां देवपुराभायां सभा काञ्चनतोरणा।
सा दाशार्हीति विख्याता योजनायामविस्तृता॥ २३

तत्र वृष्ण्यन्धकाः सर्वे रामकृष्णपुरोगमाः।
लोकयात्रामिमां कृत्स्नां परिरक्षन्त आसते॥ २४

तत्रासीनेषु सर्वेषु कदाचिद् भरतर्षभ।
दिव्यगन्धो ववौ वायुः पुष्पवर्षं पपात ह॥ २५

ततः किलकिलाशब्दः प्रभाजालाभिसंवृतः।
मुहूर्तमन्तरिक्षेऽभूत् ततो भूमौ प्रतिष्ठितः॥ २६

मध्ये तु तेजसस्तस्य पाण्डुरं गजमास्थितः।
वृतो देवगणैः सर्वैर्वासवः समदृश्यत॥ २७

मुर या मुरु नामक दैत्यके दस पुत्र तथा प्रधान-प्रधान राक्षस उन कुमारियों तथा प्राग्ज्योतिषपति भौमकी रक्षा करते हुए उसकी उपासना करते थे। यह महान् असुर नरक तपस्याके अन्तमें वर पाकर उन्मत्त हो गया था॥ १५॥ पूर्वकालमें समस्त महादैत्योंने एक साथ मिलकर भी वैसा अत्यन्त घोर पापकर्म नहीं किया था, जो उस महान् असुरने अकेले ही कर डाला था॥ १६॥ उस महादैत्यने कुण्डलोंके लिये देवमाता अदितितकका तिरस्कार कर दिया था। पृथ्वी देवीने जिसे जन्म दिया था और प्राग्ज्योतिषपुरपर जिसका अधिकार था, उस नरकासुरके चार युद्धोन्मत्त दैत्य द्वारपाल थे। उनके नाम इस प्रकार हैं—हयग्रीव, निसुन्द, वीर पञ्चनद तथा सहस्र पुत्रोंसहित महान् असुर मुरु, जो कि वरदान प्राप्त कर चुका था। वह नरकासुर समूचे देवयान मार्गको घेरकर वहाँ उपस्थित हो जाता और भयंकर रूपवाले राक्षसोंके साथ रहकर उधरसे जानेवाले पुण्यात्माओंको डराया करता था॥ १७—१९॥ उसके वधके लिये शङ्ख, चक्र, गदा और खड्ग धारण करनेवाले महाबाहु श्रीकृष्ण वृष्णिकुलमें देवकीके गर्भ और वसुदेवके संयोगसे प्रकट हुए॥ २०॥ उनका तेज सम्पूर्ण विश्वमें विख्यात है। उन पुरुषप्रवर श्रीकृष्णका निवासस्थान द्वारका है, जिसे देवताओंने उपयुक्त उपायसे उपलब्ध कराया था॥ २१॥ द्वारकापुरी इन्द्रके निवासस्थान अमरावतीपुरीसे भी अत्यन्त रमणीय है। वह महासागरसे घिरी हुई तथा पाँच पर्वतोंसे सुशोभित है॥ २२॥ देवपुरीके समान सुशोभित होनेवाली द्वारकामें एक सभा है, जिसमें सोनेकी बन्दनवारें लगी हैं। उसकी लम्बाई-चौड़ाई एक-एक योजनकी है तथा वह दाशार्ही सभाके नामसे विख्यात है॥ २३॥ उसमें बलराम और श्रीकृष्ण आदि वृष्णि और अन्धकवंशके सभी लोग बैठते थे और सम्पूर्ण लोकजीवनकी रक्षामें दत्तचित्त रहते थे॥ २४॥ भरतश्रेष्ठ! एक दिनकी बात है, सभी यदुवंशी उस सभामें विराजमान थे। इतनेमें ही दिव्य सुगन्धसे भरी हुई वायु चलने लगी और दिव्य कुसुमोंकी वर्षा होने लगी॥ २५॥ तदनन्तर दो ही घड़ीके अंदर आकाशमें किलकिलाहटका शब्द हुआ और तेजोराशिसे घिरी हुई दिव्य आकृति प्रकट हुई, जो धीरे-धीरे पृथ्वीपर आकर खड़ी हो गयी॥ २६॥ उस तेजपुञ्जके भीतर श्वेत हाथीपर बैठे हुए इन्द्र सम्पूर्ण देवताओंके साथ दिखायी दिये॥ २७॥

रामकृष्णौ च राजा स वृष्ण्यन्धकगणैः सह।
प्रत्युद्ययुर्महात्मानं पूजयन्तः सुरेश्वरम्॥ २८

सोऽवतीर्य गजात् तूर्णं परिष्वज्य जनार्दनम्।
सस्वजे बलदेवं च तं च राजानमाहुकम्॥ २९

वृष्णीनन्यान् सस्वजे च यथाकालं यथावयः।
पूजितो रामकृष्णाभ्यामाविवेश स तां सभाम्॥ ३०

तत्रासीनोऽभ्यलंकृत्वा सभांताममरेश्वरः।
अर्घ्यादिसमुदाचारं प्रत्यगृह्णाद् यथाविधि॥ ३१

वैशम्पायन उवाच

अथोवाच महातेजा वासवो वासवानुजम्।
सान्त्वपूर्वं करेणास्य संस्पृश्य वदनं शुभम्॥ ३२

देवकीनन्दन वचः शृणु मे मधुसूदन।
येन त्वाभिगतोऽस्म्यद्य कार्येणामित्रकर्शन॥ ३३

नैर्ऋतो नरको नाम ब्रह्मणो वरदर्पितः।
अदित्याः कुण्डले मोहाज्जहार दितिनन्दनः॥ ३४

देवानां विप्रिये नित्यमृषीणां च स वर्तते।
तं च देवान्तरं प्रेक्ष्य जहि त्वं पापपूरुषम्॥ ३५

अयं त्वां गरुडस्तत्र प्रापयिष्यति कामगः।
कामवीर्योऽतितेजस्वी वैनतेयोऽन्तरिक्षगः॥ ३६

अवध्यः सर्वभूतानां भौमः स नरकोऽसुरः।
निषूदयित्वा तं पापं क्षिप्रमागन्तुमर्हसि॥ ३७

इत्युक्तः पुण्डरीकाक्षो देवराजेन केशवः।
प्रतिजज्ञे महाबाहुर्नरकस्य निबर्हणे॥ ३८

ततः सहैव शक्रेण शङ्खचक्रगदासिभृत्।
प्रतस्थे गरुडेनाथ सत्यभामासहायवान्॥ ३९

क्रमेण सप्तस्कन्धान् स मरुतां सहवासवः।
पश्यतां यदुसिंहानामूर्ध्वमाचक्रमे बली॥ ४०

वारणेन्द्रगतः शक्रो गरुडस्थो जनार्दनः।
विदूरत्वात् प्रकाशेते सूर्याचन्द्रमसाविव॥ ४१

अन्तरिक्षे च गन्धर्वैरप्सरोभिश्च केशवः।
स्तूयमानोऽथ शक्रश्च क्रमेणान्तरधीयत॥ ४२

उस समय महात्मा देवराज इन्द्रका स्वागत करनेके लिये बलराम, श्रीकृष्ण तथा राजा उग्रसेन वृष्णि और अन्धकवंशके अन्य लोगोंके साथ उठकर उनकी अगवानीमें गये॥ २८॥ इन्द्रने हाथीसे उतरकर शीघ्र ही भगवान् श्रीकृष्णको हृदयसे लगाया; फिर बलदेव तथा राजा उग्रसेनसे भी वे उसी प्रकार मिले॥ २९॥ तत्पश्चात् उन्होंने यथासमय अवस्थाके अनुसार सभी वृष्णिवंशी वीरोंको हृदयसे लगाया। इसके बाद बलराम और श्रीकृष्णसे पूजित हो वे उस दाशार्ही सभामें गये॥ ३०॥ वहाँ बैठकर उस सभाकी शोभा बढ़ाते हुए देवेश्वर इन्द्रने विधिपूर्वक अर्घ्य आदि उपचार ग्रहण किया॥ ३१॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! तदनन्तर महातेजस्वी इन्द्रने अपने अनुज श्रीकृष्णको सान्त्वना देकर उनके सुन्दर मुखारविन्दपर हाथ फेरते हुए कहा—॥ ३२॥ 'देवकीनन्दन! मधुसूदन! शत्रुनाशन! आज मैं जिस कार्यसे तुम्हारे पास आया हूँ, उसके विषयमें मेरी बात सुनो॥ ३३॥ नरक नामवाला एक राक्षस है, जो ब्रह्माजीका वरदान पाकर घमंडसे भर गया है। उस दैत्यने मोहवश देवमाता अदितिके दोनों कुण्डल हर लिये हैं॥ ३४॥ देव! वह प्रतिदिन देवताओं तथा ऋषियोंके विरोधमें ही लगा रहता है। अतः तुम अवसर देखकर उस पापात्मा पुरुषको मार डालो॥ ३५॥ ये इच्छानुसार सर्वत्र जा सकनेवाले गरुड़ तुम्हें वहाँ पहुँचा देंगे; क्योंकि इनमें यथेष्ट बल है। ये अन्तरिक्षचारी विनतानन्दन गरुड़ अत्यन्त तेजस्वी हैं॥ ३६॥ भूमिपुत्र नरकासुर समस्त प्राणियोंके लिये अवध्य है, अतः तुम उस पापीका शीघ्र ही संहार करके लौट आओ'॥ ३७॥ देवराजके ऐसा कहनेपर महाबाहु कमलनयन श्रीकृष्णने उनके सामने नरकासुरके संहारकी प्रतिज्ञा की॥ ३८॥ तदनन्तर शङ्ख, चक्र, गदा और खड्ग धारण करनेवाले भगवान् श्रीकृष्ण सत्यभामासहित गरुड़पर बैठकर इन्द्रके साथ ही चल दिये॥ ३९॥ यदुकुलके सिंह-सदृश पराक्रमी वीरोंके देखते-देखते इन्द्रसहित बलवान् श्रीकृष्ण क्रमशः वायुके सातों स्कन्धोंको लाँघकर ऊपर चले गये॥ ४०॥ गजराज ऐरावतपर चढ़े हुए इन्द्र और गरुड़पर बैठे हुए भगवान् जनार्दन अधिक दूर चले जानेके कारण सूर्य और चन्द्रमाके समान प्रकाशित हो रहे थे॥ ४१॥ अन्तरिक्षमें गन्धर्व और अप्सराओंद्वारा स्तुति किये जाते हुए श्रीकृष्ण और इन्द्र बारी-बारीसे अदृश्य हो गये॥ ४२॥

समाधायेतिकर्तव्यं वासवो विबुधाधिपः।
स्वमेव भवनं प्रायात् कृष्णः प्राग्ज्योतिषं प्रति॥ ४३

पक्षानिलहतो वायुः प्रतिलोमं ववौ तदा।
ततो भीमरवा मेघा बभ्रमुर्गगनेचराः॥ ४४

क्षणेन समनुप्राप्तो द्विजेनाकाशगेन वै।
दूरादेव च तान् दृष्ट्वा प्रययौ यत्र ते स्थिताः॥ ४५

अपश्यद् द्वारि तत्रस्थां हस्त्यश्वरथवाहिनीम्।
क्षुरान्तान् मौरवान् पाशान् षट्सहस्रान् ददर्श ह॥ ४६

वैशम्पायन उवाच

गरुडस्योपरि श्रीमाञ्छङ्खचक्रगदाधरः।
बिभ्रन्नीलाम्बुदाकारं पीतवासाश्चतुर्भुजः॥ ४७

वनमालाकुलोरस्कः श्रीवत्साङ्कितभूषणः।
किरीटमूर्द्धा सूर्याभः सविद्युदिव चन्द्रमाः॥ ४८

ज्यां विकूजन्महाशब्दः श्रूयतेऽशनिनिःस्वनः।
ज्ञात्वा च दानवः सर्वं स्वयं विष्णुरिहागतः॥ ४९

क्रोधाद् द्विगुणरक्ताक्षो मुरुः कालान्तकोपमः।
अभ्यधावत वेगेन शक्तिं गृह्य महासुरः॥ ५०

चिक्षेप सुमहाशक्तिं वज्रकाञ्चनभूषिताम्।
तामापतन्तीं शक्तिं तु महोल्कां ज्वलितामिव॥ ५१

समाधत्त शरं चैकं रुक्मपुङ्खं जनार्दनः।
द्विधाच्छिनत् क्षुरप्रेण वासुदेवः स वीर्यवान्॥ ५२

शक्तिं चिच्छेद तत्रासौ विद्युत्पुञ्ज इव ज्वलन्।
पुनश्च क्रोधरक्ताक्षो मुरुर्गृह्य महागदाम्॥ ५३

अपने कार्यकी सिद्धिके लिये उपयुक्त व्यवस्था करके देवराज इन्द्र अपने भवनको चले गये और श्रीकृष्णने प्राग्ज्योतिषपुरकी राह ली॥ ४३॥ गरुड़के पंखोंसे आहत होकर वायु उलटी दिशाको बहने लगी। फिर तो आकाशमें विचरनेवाले बादल भयानक आवाजके साथ वहीं चक्कर काटने लगे॥ ४४॥ आकाशचारी पक्षी गरुड़के द्वारा भगवान् श्रीकृष्ण क्षणभरमें प्राग्ज्योतिषपुरमें जा पहुँचे। उन्होंने दूरसे ही उन राक्षसोंको देखकर जहाँ वे खड़े थे, उधर ही यात्रा की॥ ४५॥ श्रीकृष्णने देखा, प्राग्ज्योतिषपुरके द्वारपर हाथी, घोड़े और रथोंकी विशाल वाहिनी खड़ी है। उन्होंने मुर दैत्यके बनाये हुए छः हजार पाश देखे, जिनके किनारेके भागोंमें छुरे लगे हुए थे॥ ४६॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! शङ्ख, चक्र और गदा धारण करनेवाले श्रीमान् भगवान् श्रीकृष्ण श्याम मेघके समान सुन्दर विग्रह धारण किये गरुड़पर बैठे थे। उनके अङ्गोंपर पीताम्बर शोभा पा रहा था। वे चार भुजाओंसे विभूषित थे॥ ४७॥ उनका वक्षःस्थल वनमालासे व्याप्त था। वे श्रीवत्सचिह्नसे अलंकृत थे। उनके मस्तकपर किरीट शोभा पाता था, जिससे वे सूर्यके समान प्रकाशमान और विद्युत्सहित चन्द्रमाके सदृश शोभायमान दिखायी देते थे॥ ४८॥ उन्होंने धनुषकी प्रत्यञ्चा खींचकर जब उसकी टंकारध्वनि फैलायी, उस समय वज्रपातके समान महाभयंकर शब्द सुनायी दिया। तब दानव मुरने वह सब जानकर यह समझ लिया कि साक्षात् भगवान् विष्णु ही यहाँ पधारे हैं॥ ४९॥ इससे मुरुको बड़ा क्रोध हुआ। उसकी आँखें रोषसे दुगुनी लाल हो गयीं। काल और अन्तकके समान भयंकर वह महान् असुर हाथमें शक्ति लेकर बड़े वेगसे उनकी ओर दौड़ा॥ ५०॥ उसने हीरे और सुवर्णसे भूषित वह महाशक्ति भगवान् श्रीकृष्णपर चलायी। जलती हुई बड़ी भारी उल्काके समान उस शक्तिको अपनी ओर आती देख पराक्रमी वसुदेवपुत्र श्रीकृष्णने एक सोनेके पंखवाले बाणको धनुषपर रखा। उस क्षुरप्रके द्वारा उन्होंने मुरुकी शक्तिके दो टुकड़े कर डाले॥ ५१-५२॥ जब उन्होंने शक्ति काट डाली, तब वहाँ खड़ा हुआ मुरु, जो विद्युत्-पुञ्जके समान प्रज्वलित हो रहा था, पुनः क्रोधसे लाल आँखें करके एक विशाल गदा हाथमें ले ली॥ ५३॥

इन्द्राशनिरिवेन्द्रेण विकृष्ट इव निःस्वनः।
आकर्णमुक्तं चिक्षेप अर्धचन्द्रं सुरोत्तमः॥ ५४

मध्यदेशे तु चिच्छेद गदां तां रुक्मभूषिताम्।
पुनश्चिच्छेद भल्लेन दानवस्य शिरो रणे॥ ५५

संछिद्य पाशान् सर्वांस्तान् मुरुं हत्वा सबान्धवम्।
सोऽग्र्यान् रक्षोगणान् हत्वा नरकस्य महाबलान्॥ ५६

शिलासंघानतिक्रम्य भगवान् देवकीसुतः।
अपश्यद् दानवं सैन्यं निसुन्दं च महाबलम्॥ ५७

हयग्रीवं च दितिजं तथान्यांश्चित्रयोधिनः।
रोधयामास तन्मार्गं स्वसैन्येन महाबलः॥ ५८

निसुन्दो बलिनां श्रेष्ठो रथमारुह्य सत्वरम्।
जग्राह कार्मुकं दिव्यं हेमपृष्ठं दुरासदम्॥ ५९

विव्याध दशभिर्बाणैर्निसुन्दो मधुसूदनम्।
केशवश्चापि सप्तत्या विव्याध निशितैः शरैः॥ ६०

अप्राप्तांश्चान्तरिक्षे ताञ्छरांश्चिच्छेद माधवः।
ते सर्वे सैनिकाः कृष्णं समन्तात् पर्यवारयन्॥ ६१

शरजालेन महता छाद्यमानः सुरोत्तमः।
दृष्ट्वा तान् दानवान् सर्वान् सक्रोधो मधुसूदनः॥ ६२

ततो दिव्येन चास्त्रेण पार्जन्येन जनार्दनः।
महता शरवर्षेण वारयामास तद्बलम्॥ ६३

पञ्चपञ्चशरैस्तेषु एकैकेन च तान् बहून्।
पार्जन्यस्य प्रभावेण सर्वान् मर्मस्वताडयत्॥ ६४

दुद्रुवुर्भयसंत्रस्ता भग्नास्ते दानवा रणे।
स्वसैन्यं विद्रुतं दृष्ट्वा निश्चक्राम पुनर्मृधे॥ ६५

विसृजञ्छरवर्षाणि छादयामास केशवम्।
न विभाति रणे सूर्यो नापि व्योम दिशो दश॥ ६६

शरैः सञ्छादयामास निसुन्दो गरुडध्वजम्।
सावित्रं नाम दिव्यास्त्रं जग्राह पुरुषोत्तमः॥ ६७

इतनेहीमें सुरश्रेष्ठ श्रीकृष्णने अर्धचन्द्रनामक बाण हाथमें लिया, मानो इन्द्रने वज्र उठा लिया हो। उस समय धनुषको खींचनेसे वज्र गिरनेके समान ही शब्द हुआ। भगवान्ने उस अर्धचन्द्रको कानतक खींचकर चलाया। उसने उस सुवर्णभूषित गदाको बीचसे ही काट गिराया। फिर श्रीकृष्णने एक भल्लद्वारा रणभूमिमें उस दानवका सिर उड़ा दिया॥ ५४-५५॥ मुरुके समस्त पाशोंका छेदन करके उसे भाई-बन्धुओंसहित मारकर नरकासुरके महाबली अग्रगामी राक्षसोंका संहार करनेके अनन्तर शिलासमूहोंको लाँघकर भगवान् देवकीनन्दन श्रीकृष्णने दानवोंकी विशाल सेनाको और महाबली निसुन्द दैत्य, हयग्रीव तथा विचित्र युद्ध करनेवाले अन्यान्य दैत्योंको भी देखा। बलवानोंमें श्रेष्ठ महाबली निसुन्दने अपनी सेनाके द्वारा श्रीकृष्णका मार्ग रोक दिया और तुरंत रथपर आरूढ़ हो सोनेकी पीठवाले दिव्य दुर्जय धनुषको हाथमें ले लिया॥ ५६—५९॥ इसके बाद निसुन्दने दस बाणोंसे मधुसूदनको बेध दिया। तब श्रीकृष्णने भी उसपर सत्तर पैने बाणोंका प्रहार किया॥ ६०॥ उस दानवके बाणोंको अपने पास पहुँचनेसे पहले आकाशमें ही श्रीकृष्णने काट डाला। तब उसके सैनिकोंने उन्हें चारों ओरसे घेर लिया और बाणोंके विशाल जालसे ढकना आरम्भ किया। तब उन समस्त दानवोंको देखकर भगवान् मधुसूदन कुपित हो उठे॥ ६१-६२॥ जनार्दनने पार्जन्यनामक दिव्य अस्त्रसे बाणोंकी बड़ी भारी वर्षा करके उसकी सेनाको आगे बढ़नेसे रोक दिया॥ ६३॥ उन्होंने पार्जन्य अस्त्रके प्रभावसे एक-एक करके उन सब बहुसंख्यक दानवोंके मर्मस्थानोंमें पाँच-पाँच बाणोंका प्रहार किया॥ ६४॥ वे सभी दानव भयसे संत्रस्त होकर रणभूमिसे भाग खड़े हुए। अपनी सेनाको भागती देख निसुन्द पुनः युद्धके लिये निकला॥ ६५॥ वह बाणोंकी वर्षा करता हुआ श्रीकृष्णको आच्छादित करने लगा। उस समय युद्धमें न तो सूर्यका पता चलता था और न आकाश तथा दसों दिशाओंका ही॥ ६६॥ निसुन्दने अपने बाणोंसे गरुडध्वजको ढक दिया। तब पुरुषोत्तम श्रीकृष्णने सावित्र नामक दिव्यास्त्रको ग्रहण किया॥ ६७॥

तेन बाणेन तान् बाणांश्चिच्छेद समरे हरिः।
बाणैर्बाणांश्च सञ्छिद्य तस्य कृष्णो महाबलः॥ ६८

छत्रमेकेन बाणेन रथेषां च त्रिभिः शरैः।
पुनश्चिच्छेद तानश्वांश्चतुर्भिश्चतुरः शरैः॥ ६९

सारथिं पञ्चभिर्बाणैर्ध्वजमेकेन चिच्छिदे।
शरैकेन वपुः कृष्णः सुतीक्ष्णेन शितेन वै॥ ७०

शिरश्चिच्छेद भल्लेन निसुन्दस्य सुरोत्तमः।
यः सहस्रसमास्त्वेकः सर्वान् देवानयोधयत्॥ ७१

निसुन्दं पतितं दृष्ट्वा हयग्रीवः प्रतापवान्।
शिलां प्रगृह्य महतीं तोलयामास दानवः॥ ७२

आविध्य सहसामुञ्चच्छिलां शैलसमां प्रभुः।
गृहीत्वा दिव्यपार्जन्यमस्त्रमस्त्रविदां वरः॥ ७३

दिव्यास्त्रेण शिलां विष्णुः सप्तधाकृत तेजसा।
तद् विदार्य महच्चाश्म पातयामास भूतले॥ ७४

ततस्तैः शार्ङ्गनिर्मुक्तैर्नानावर्णैर्महाशरैः।
यथा देवासुरं युद्धमभवद् भरतर्षभ।
नानाप्रहरणाकीर्णं तथा घोरमवर्तत॥ ७५

ततः शार्ङ्गविनिर्मुक्तैर्नानावर्णैर्महाशरैः।
गरुडस्थो महाबाहुर्निजघान महासुरान्॥ ७६

महालाङ्गलनिर्भिन्नाः शङ्खशक्तिनिपातिताः।
विनेशुर्दानवाः सर्वे समासाद्य जनार्दनम्॥ ७७

केचिच्चक्राग्निनिर्दग्धा दानवाः पेतुरम्बरात्।
संनिकर्षगताः केचिद् गतासुविकृताननाः॥ ७८

असृजञ्छरवर्षाणि वृष्टिमन्त इवाम्बुदाः।
विकृताङ्गासुराः सर्वे कृष्णबाणप्रपीडिताः॥ ७९

शोणिताक्ताः स्म दृश्यन्ते पुष्पिता इव किंशुकाः।
व्यद्रवन्त सुवित्रस्ता भग्नास्त्राश्चित्रयोधिनः॥ ८०

उस अस्त्रद्वारा छोड़े हुए बाणसे समराङ्गणमें श्रीहरिने निसुन्दके उन सभी बाणोंको काट डाला। महाबली श्रीकृष्णने अपने बाणोंद्वारा उसके सायकोंके टुकड़े-टुकड़े करके एक बाणसे उसका छत्र और तीन बाणोंसे उसके रथका हरसा काट डाला; फिर चार बाणोंसे उसके चारों घोड़ोंको और पाँच बाणोंसे सारथिको मारकर एक बाणसे उसकी ध्वजा काट डाली। फिर सुरश्रेष्ठ श्रीकृष्णने एक अत्यन्त तीखे बाणसे उसके शरीरको और एक भल्लके द्वारा निसुन्दके मस्तकको भी काट गिराया। जिसने अकेले ही लगातार एक सहस्र वर्षोंतक सम्पूर्ण देवताओंके साथ युद्ध किया था, उसी निसुन्दको धराशायी हुआ देख प्रतापी दानव हयग्रीवने एक बहुत बड़ी चट्टान लेकर उसे हाथोंपर तोला॥ ६८—७२॥ फिर सहसा घुमाकर वह पहाड़-जैसी शिला उसने श्रीकृष्णपर दे मारी, परंतु अस्त्रवेत्ताओंमें श्रेष्ठ भगवान् विष्णुने दिव्य पार्जन्यास्त्र लेकर उसके द्वारा अपने तेजसे उस शिलाके सात टुकड़े कर डाले। उस बहुत बड़ी चट्टानको विदीर्ण करके उन्होंने पृथ्वीपर गिरा दिया॥ ७३-७४॥ भरतश्रेष्ठ! तदनन्तर शार्ङ्गधनुषसे छोड़े गये नाना प्रकारके महान् बाणोंद्वारा देवासुर-संग्रामके समान घोर युद्ध आरम्भ हो गया। उसमें भाँति-भाँतिके अस्त्र-शस्त्र छोड़े जाने लगे, जिनसे सारा युद्धस्थल व्याप्त हो गया॥ ७५॥ तत्पश्चात् गरुड़पर बैठे हुए महाबाहु श्रीकृष्णने शार्ङ्गधनुषसे छोड़े गये भाँति-भाँतिके रंगवाले विशाल बाणोंद्वारा बड़े-बड़े असुरोंका संहार करना आरम्भ किया॥ ७६॥ वे समस्त दानव भगवान् श्रीकृष्णसे टक्कर लेकर उनके द्वारा चलाये गये महान् हलसे विदीर्ण तथा उनके शङ्खकी शक्तिसे धराशायी होकर नष्ट हो गये॥ ७७॥ कितने ही दानव उनके निकट आकर चक्राग्निसे दग्ध हो आकाशसे पृथ्वीपर गिर पड़े। प्राणशून्य होनेपर उनके मुख विकराल हो गये थे॥ ७८॥ वे असुर वर्षा करनेवाले बादलोंकी भाँति श्रीकृष्णपर बाणोंकी वृष्टि करने लगे; परंतु श्रीकृष्णके सायकोंसे अत्यन्त पीड़ित होकर उन सबके अङ्ग-भंग हो गये और वे खूनसे रँग जानेके कारण फूले हुए पलाशके समान दिखायी देते थे। विचित्र युद्ध करनेवाले वे दानव अपने अस्त्र-शस्त्रोंके भंग हो जानेसे अत्यन्त भयभीत हो भाग खड़े हुए॥ ७९-८०॥

पुनश्च क्रोधरक्ताक्षो वायुवेगेन दानवः।
दशव्यामोच्छ्रितं वृक्षं समारुह्य वनस्पतिम्॥ ८१

वृक्षमुत्पाट्य वेगेन प्रतिगृह्याभ्यधावत।
चिक्षेप स महावृक्षं शिक्षया सुघनाकृतिः॥ ८२

वृक्षवेगानिलोद्धूतः शुश्रुवे सुमहास्वनः।
ततः शरसहस्रेण यतमानो जनार्दनः॥ ८३

नैकधा तं प्रचिच्छेद चित्रभानुनिभाकृतिम्।
पुनश्चैकेन बाणेन हयग्रीवस्य चोरसि॥ ८४

विव्याध स्तनयोर्मध्ये सायको ज्वलनप्रभः।
विवेश सोऽपि वेगेन हृदं भित्त्वा विनिर्गतः॥ ८५

तं जघान महाघोरं हयग्रीवं महाबलम्।
अपारतेजा दुर्द्धर्षः स वै यादवनन्दनः॥ ८६

मध्ये लोहितगङ्गस्य भगवान् देवकीसुतः।
औदकायां विरूपाक्षं पाप्मानं पुरुषोत्तमः॥ ८७

अष्टौ शतसहस्राणि दानवानां परंतपः।
निहत्य पुरुषव्याघ्रः प्राग्ज्योतिषमुपाद्रवत्॥ ८८

हत्वा पञ्चनदं नाम नरकस्य महासुरम्।
ततः प्राग्ज्योतिषं नाम दीप्यमानमिव श्रिया॥ ८९

पुरमासादयामास युद्धं तत्राभवन्महत्।
ततः प्राध्मापयच्छङ्खं पाञ्चजन्यं महाबलः॥ ९०

शुश्रुवे सुमहाशब्दः संवर्तनिनदो यथा।
श्रूयते त्रिषु लोकेषु भीमगम्भीरनिःस्वनः।
तं श्रुत्वा नरकश्चासीत् क्रोधसंरक्तलोचनः॥ ९१

तब पुनः क्रोधसे लाल आँखें करके दानव हयग्रीव वायुके समान वेगसे चढ़ आया। उसने दस व्याम[1] ऊँचे एक वनस्पतिको उखाड़ा और उखाड़कर उस वृक्षको हाथोंमें लिये हुए वह बड़े वेगसे श्रीकृष्णकी ओर दौड़ा। काले बादलके समान आकारवाले हयग्रीवने उस विशाल वृक्षको शिक्षाके अनुसार कुशलतापूर्वक श्रीकृष्णपर दे मारा। उस वृक्षके वेगसे उठी हुई वायुके द्वारा बड़े जोरका शब्द सुनायी पड़ा। तब विजयके लिये प्रयत्न करते हुए भगवान् श्रीकृष्णने एक सहस्र बाण मारकर उस वृक्षके बहुतेरे टुकड़े कर डाले। उस समय उसकी आकृति चित्रलिखित सूर्यके समान जान पड़ती थी। फिर उन्होंने एक बाणसे हयग्रीवकी छाती छेद डाली। अग्निके समान प्रकाशित होनेवाला वह बाण उसके दोनों स्तनोंके बीचमें गहरा आघात करता हुआ वेगपूर्वक भीतर घुस गया और हृदय विदीर्ण करके बाहर निकल गया॥ ८१—८५॥ इस प्रकार अपार तेजस्वी दुर्धर्ष वीर यादवनन्दन भगवान् देवकीपुत्र पुरुषोत्तम श्रीकृष्णने लोहितगङ्ग[2] नामक प्रदेशके मध्यभागमें औदका[3] (या अलका)-के समीप कुरूप नेत्रोंवाले महाभयंकर और महाबली पापी हयग्रीवको कालके गालमें डाल दिया॥ ८६-८७॥ तत्पश्चात् आठ लाख दानवोंका संहार करके शत्रुओंको संताप देनेवाले पुरुषसिंह श्रीकृष्णने प्राग्ज्योतिषपुरपर धावा किया॥ ८८॥ नरकासुरके प्रमुख योद्धा महान् असुर पञ्चनद (या पञ्चजन)-को मारकर वे प्राग्ज्योतिषपुरमें जा पहुँचे, जो अपनी शोभासे देदीप्यमान-सा हो रहा था। वहाँ असुरोंके साथ उनका महान् युद्ध हुआ। तत्पश्चात् महाबली श्रीकृष्णने अपना पाञ्चजन्यनामक शङ्ख बजाया। उसका महान् शब्द उसी प्रकार सुनायी दिया, जैसे प्रलयकालीन संवर्तक मेघकी भयानक गम्भीर गर्जना तीनों लोकोंमें सुनायी पड़ती है। उस शङ्ख-ध्वनिको सुनकर नरकासुरकी आँखें क्रोधसे लाल हो गयीं॥ ८९—९१॥

१. दोनों भुजाओंको दोनों ओर फैलानेपर एक हाथकी अँगुलियोंके सिरेसे दूसरे हाथकी अँगुलियोंके सिरेतक जितनी दूरी होती है, उसे व्याम कहते हैं।

२. यह सिन्धुका ही प्रदेशविशेष था।

३. वहाँ जलकी अधिकता थी या जलसे भरी हुई खाईं थी, इसलिये उस पुर या स्थानका नाम 'औदका' रखा गया था। महाभारत सभापर्व अध्याय ३८ वें में भी इसका वर्णन आया है। हरिवंशके इसी अध्यायमें १४ वें श्लोकमें इसका नाम अलका आया है।

लोहचक्राष्टसंयुक्तं त्रिनल्वप्रतिमं रथम्।
रत्नकाञ्चनचित्राढ्यं वेदिकाभोगविस्तरम्॥ ९२

वज्रध्वजेन महता काञ्चनेन विराजितम्।
हेमदण्डपताकाढ्यं वैदूर्यमणिकूबरम्॥ ९३

युक्तमश्वसहस्रेण रथं पररथारुजम्।
लोहजालैश्च सञ्छन्नं चित्रभक्तिविराजितम्॥ ९४

रथमध्यगतो वीरः ससंध्य इव भास्करः।
नानाप्रहरणाकीर्णं रथं हेमपरिष्कृतम्॥ ९५

वज्रं तथोरच्छदमिन्दुवर्णं
व्यानद्धमुक्तानलतुल्यतेजाः।
किरीटमूर्द्धार्कहुताशनाभः
कर्णौ तथा कुण्डलयोर्ज्वलन्तौ॥ ९६

धूम्रवर्णा महाकाया रक्ताक्षा विकृताननाः।
नानाकवचिनः सर्वे दैत्यदानवराक्षसाः॥ ९७

खड्गचर्मधराः केचित् केचित् तूणधनुर्भृतः।
शक्तिहस्तास्तथा केचिच्छूलहस्तास्तथापरे॥ ९८

गजवाजिरथौघैश्च चालयन्तश्च मेदिनीम्।
निर्ययुर्नगरात् सर्वे सुसंनद्धाः प्रहारिणः॥ ९९

वृतो दैत्यगणैः सार्द्धं नरकः कालसंनिभः।
भेरीशङ्खमृदङ्गानां पणवानां सहस्रशः॥ १००

शुश्राव वाद्यमानानां जीमूतनिनदोपमम्।
यतः कृष्णस्ततो गत्वा सर्वे ते विकृताननाः॥ १०१

वह एक ऐसे रथपर आरूढ़ हुआ, जिसमें लोहेके आठ पहिये लगे थे। उसकी लम्बाई तीन नल्व*के बराबर थी। वह रत्न और सुवर्णसे जटित होनेके कारण विचित्र शोभासे सम्पन्न था। उसकी बैठक बहुत विस्तृत थी। वह रथ सुवर्ण-निर्मित तथा हीरक-जटित विशाल ध्वजसे सुशोभित था। उसकी पताकामें सोनेका डंडा लगा हुआ था। उस रथका कूबर वैदूर्य मणिका बना हुआ था। उसमें एक हजार घोड़े जुते हुए थे और वह शत्रुपक्षके रथोंको तोड़ डालनेमें समर्थ था। उसे ऊपरसे लोहेकी जालीद्वारा ढक दिया गया था और वह रथ विचित्र बेल-बूटोंसे सुशोभित था॥ ९२—९४॥ उस रथके मध्यभागमें बैठा हुआ नरकासुर संध्याकालसे युक्त सूर्यके समान जान पड़ता था। उसका वह सुवर्णभूषित रथ नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्रोंसे भरा हुआ था॥ ९५॥ हीरेका बना हुआ वक्षःस्थलको ढकनेवाला उसका कवच चन्द्रमाके समान श्वेत कान्तिसे प्रकाशित हो रहा था। मुक्ताकी माला धारण करके वह अग्निके तुल्य तेजस्वी प्रतीत होता था। मस्तकपर उद्दीप्त किरीट धारण करके वह सूर्य एवं अग्निकी-सी प्रभासे प्रकाशित होता था तथा उसके दोनों कान सुन्दर कुण्डलोंसे जगमगा रहे थे॥ ९६॥ उसके साथ धुएँके समान रंगवाले विशालकाय लाल नेत्र और विकराल मुखवाले जो दैत्य, दानव और राक्षस आये थे, वे सब-के-सब नाना प्रकारके कवच धारण किये हुए थे॥ ९७॥ कोई ढाल और तलवार लिये हुए थे तो कोई धनुष, बाण और तरकस। किन्हींके हाथमें शक्ति थी तो किन्हींके हाथमें शूल॥ ९८॥ वे सब भलीभाँति कवच आदिसे सुसज्जित एवं प्रहार करनेके लिये उद्यत हो हाथी, घोड़े तथा रथसमूहोंद्वारा पृथ्वीको कम्पित करते हुए नगरसे बाहर निकले॥ ९९॥ दैत्य-समूहोंसे घिरे हुए कालसदृश नरकासुरने बजते हुए शङ्ख, भेरी, मृदङ्ग तथा पणव आदि सहस्रों वाद्योंका मेघकी गर्जनाके समान गम्भीर शब्द सुना। वे सभी विकराल मुखवाले निशाचर जहाँ कृष्ण थे, उधर ही जाकर

* प्राचीन कालकी मान्यताके अनुसार भूमिकी एक प्रकारकी नाप या परिमाण, जो किसीके मतसे सौ हाथका और किसीके मतसे चार सौ हाथका होता था।

परिवार्य गरुत्मन्तं सर्वेऽयुध्यन्त संगताः।
महता छादयामासुः शरवर्षेण सैनिकाः॥ १०२

शक्तिशूलगदाप्रासांस्तोमरान् सायकान् बहून्।
आकाशं छादयामासुर्विमुञ्चन्तः सहस्रशः॥ १०३

कृष्णःकृष्णाम्बुदाकारः शार्ङ्गं गृह्य धनुस्ततः।
विस्फार्य सुमहच्चापं धनुर्जलदनिःस्वनम्॥ १०४

व्यसृजच्छरवर्षाणि दानवानां जनार्दनः।
शरवर्षेण तत्सैन्यं व्यद्रवत् तु महाहवात्॥ १०५

तद् युद्धमभवद् घोरं घोररूपेण रक्षसा।
भग्नव्यूहाश्च ते सर्वे कृष्णबाणप्रपीडिताः॥ १०६

केचिच्छिन्नभुजाश्चैव च्छिन्नग्रीवाशिराननाः।
केचिच्चक्रद्विधाच्छिन्नाः केचिद् बाणार्दितोरसः॥ १०७

केचिद् द्विधाकृताः शक्त्या गजाश्वरथवाहनाः।
केचित् कौमोदकीभिन्नाः केचिच्चक्रविदारिताः॥ १०८

एवं विमथिता सर्वा नराश्वरथवाहिनी।
तत्रासीन्नरकेणास्य युद्धं परमदारुणम्॥ १०९

यत् समासेन वक्ष्यामि तन्मे निगदतः शृणु।
त्रासनः सुरसंघानां नरकः पुरुषोत्तमम्॥ ११०

योधयामास तेजस्वी मधुवन्मधुसूदनम्।
क्रोधरक्तान्तनयनो नरको घनसंनिभः॥ १११

जग्राह कार्मुकं वीरः शक्रचापमिवोच्छ्रितम्।
तथार्ककिरणप्रख्यं बाणं जग्राह केशवः॥ ११२

दिव्येनास्त्रेण समरे पूरयामास तं रथम्।
उत्तमास्त्रं महापातं मुमोच नरको बली॥ ११३

वज्रविस्फूर्जिताकारमायान्तं वीक्ष्य केशवः।
चिच्छेदास्त्रं महाभागश्चक्रेण मधुसूदनः॥ ११४

व्यहनत् सारथिं चास्य शरैकेण जनार्दनः।
स रथं सध्वजं साश्वं जघान दशभिः शरैः॥ ११५

गरुड़को घेरकर खड़े हो गये और सब-के-सब संगठित होकर युद्ध करने लगे। उन समस्त सैनिकोंने बाणोंकी बड़ी भारी वर्षा करके भगवान्‌को ढक दिया। उन्होंने कई सहस्र शक्ति, शूल, गदा, प्रास, तोमर और सायकोंका प्रहार करके आकाशको आच्छादित कर दिया॥ १००—१०३॥ काले मेघके समान श्यामसुन्दर शरीरवाले जनार्दन श्रीकृष्णने मेघकी गर्जनाके समान गम्भीर ध्वनि करनेवाले शार्ङ्ग नामक सुविशाल धनुषको हाथमें लेकर उसे खींचा और दानवोंपर बाणोंकी वर्षा आरम्भ कर दी। उस बाणवर्षासे भयभीत हो असुरोंकी वह सेना उस महासमरसे भाग खड़ी हुई॥ १०४-१०५॥ उस भयंकर रूपधारी राक्षसके साथ श्रीकृष्णका घोर युद्ध हुआ। वे सभी दानव श्रीकृष्णके बाणोंसे अत्यन्त पीड़ित हो अपनी सेनाका व्यूह भंग करके भाग गये॥ १०६॥ किन्हींकी भुजाएँ कट गयी थीं, किन्हींके कण्ठ, मस्तक और मुख छिन्न-भिन्न हो गये थे। किन्हींके चक्रद्वारा दो टुकड़े हो गये थे और किन्हींके वक्षःस्थल बाणोंके आघातसे पीड़ित हो रहे थे॥ १०७॥ कोई हाथी, घोड़े और रथोंपर सवार होकर युद्ध करनेवाले योद्धा शक्तिके प्रहारसे दो टूक हो गये थे। कोई कौमोदकी गदाके आघातसे पिस गये थे तथा कितने ही चक्रद्वारा विदीर्ण कर दिये गये थे॥ १०८॥ इस प्रकार मनुष्य, घोड़े, रथ और हाथियोंसे युक्त वह सारी सेना मथ डाली गयी थी। वहाँ नरकासुरके साथ भगवान् श्रीकृष्णका अत्यन्त दारुण युद्ध हुआ था॥ १०९॥ यहाँ मैं संक्षेपसे जो कुछ बता रहा हूँ, वह मेरे मुखसे सुनो। देवसमूहको त्रास देनेवाला तेजस्वी नरकासुर मधुकी भाँति मधुसूदन भगवान् पुरुषोत्तमके साथ युद्ध करने लगा। उसके नेत्रप्रान्त क्रोधसे लाल हो रहे थे और उसकी आकृति मेघके समान काली थी॥ ११०-१११॥ वीर श्रीकृष्णने इन्द्रधनुषके समान ऊँचा शरासन उठाया और सूर्यकिरणोंके समान चमचमाता हुआ बाण हाथमें लिया॥ ११२॥ उन्होंने समराङ्गणमें अपने दिव्यास्त्रद्वारा नरकासुरके उस रथको भर दिया, तब बलवान् नरकासुरने भी बड़े वेगसे आघात करनेवाले उत्तम अस्त्रका प्रहार किया॥ ११३॥ वज्रके समान गड़गड़ाहट पैदा करते हुए उस अस्त्रको आते देख महाभाग मधुसूदन केशवने चक्रके द्वारा उसका उच्छेद कर डाला॥ ११४॥ भगवान् श्रीकृष्णने एक बाणसे उसके सारथिको मार डाला और दस बाणोंसे ध्वज और घोड़ोंसहित उस रथका संहार कर डाला॥ ११५॥

तनुत्रं चैव चिच्छेद शरेण मधुसूदनः।
ततो विमुक्तकवचः सर्पस्येव तनुर्यथा॥ ११६

हताश्वोऽपि रणे वीरो वितनुत्रश्च दानवः।
जग्राह विमलज्वालं लोहभारार्पितं दृढम्॥ ११७

आविध्य सहसा मुक्तं शूलमिन्द्राशनिप्रभम्।
तदापतत् स सम्प्रेक्ष्य शूलं हेमपरिष्कृतम्॥ ११८

द्विधा छिन्नं क्षुरप्रेण कृष्णेनाद्भुतकर्मणा।
तद् युद्धमभवद् घोरं घोररूपेण रक्षसा॥ ११९

शस्त्रपातमहाघातं नरकेण महात्मना।
मुहूर्तं योधयामास नरकं मधुसूदनः॥ १२०

अथोग्रचक्रश्चक्रेण प्रदीप्तेनाकरोद् द्विधा।
चक्रद्विधाकृतं तस्य शरीरमपतद् भुवि॥ १२१

विभक्तं कुलिशेनैव गिरेः शृङ्गं द्विधाकृतम्।
कृष्णमासाद्य देवेशं जगामास्तमिवांशुमान्॥ १२२

चक्रोत्कृन्तितगात्रोऽसौ दानवः पतितो रणे।
वज्रप्रहारनिर्भिन्नं यथा गैरिकपर्वतम्॥ १२३

भूमिस्तु पतितं पुत्रं निरीक्ष्यादाय कुण्डले।
उपातिष्ठत गोविन्दं वचनं चेदमब्रवीत्॥ १२४

दत्तस्त्वयैव गोविन्द त्वयैव विनिपातितः।
यथेच्छसि तथा क्रीड बालः क्रीडनकैरिव॥ १२५
इमे ते कुण्डले देव प्रजास्तस्यानुपालय॥ १२६

इसके बाद मधुसूदनने एक बाणसे उसके कवचको काट गिराया। कवच कट जानेपर उसका शरीर केंचुलसे निकले हुए सर्पके समान प्रतीत होने लगा॥ ११६॥ घोड़ोंके मारे जाने तथा कवचके कट जानेपर भी रणभूमिमें खड़े हुए उस दानव वीरने एक निर्मल ज्वालासे युक्त, लोहभारसे सम्पन्न और सुदृढ़ शूल हाथमें लिया, जो इन्द्रके वज्रकी भाँति प्रकाशित हो रहा था। उसने उस शूलको सहसा घुमाकर छोड़ दिया। उस सुवर्णभूषित शूलको अपनी ओर आता देख अद्भुत-कर्मा श्रीकृष्णने एक क्षुरप्रके द्वारा उसके दो टुकड़े कर डाले। उस समय उनका उस भयानक रूपधारी विशालकाय राक्षस नरकके साथ शस्त्रोंके सम्पात एवं महाघातसे युक्त घोर युद्ध हुआ। उग्र चक्रधारी मधुसूदनने दो घड़ीतक नरकासुरके साथ युद्ध किया। तत्पश्चात् प्रज्वलित चक्रद्वारा उसके शरीरके दो टुकड़े कर डाले। चक्रसे दो टूक हुआ नरकासुरका शरीर पृथ्वीपर गिर पड़ा, मानो किसी पर्वतका शिखर वज्रके आघातसे दो भागोंमें विभक्त होकर धराशायी हो गया हो। देवेश्वर श्रीकृष्णसे टक्कर लेकर वह सूर्यकी भाँति अस्ताचलको चला गया। चक्रसे शरीरके टूक-टूक हो जानेपर वह दानव रणभूमिमें गिर पड़ा। उस समय वह वज्रके प्रहारसे विदीर्ण हुए गेरूके पहाड़-जैसा जान पड़ता था॥ ११७—१२३॥ अपने पुत्रको गिरा हुआ देख मूर्तिमती भूमिदेवी अदितिके दोनों कुण्डल ले गोविन्दकी सेवामें उपस्थित हुई और इस प्रकार बोली—॥ १२४॥ 'गोविन्द! आपहीने मुझे यह पुत्र प्रदान किया था और आपहीने इसे मार गिराया। प्रभो! आपकी जैसी इच्छा हो वैसी क्रीडा कीजिये, ठीक वैसे ही, जैसे बालक खिलौनोंसे खेला करता है। देव! ये ही वे दोनों कुण्डल हैं, इन्हें लीजिये और उस नरकासुरकी संतानका पालन कीजिये'॥ १२५-१२६॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे विष्णुपर्वणि नरकवधे त्रिषष्टितमोऽध्यायः॥ ६३॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत विष्णुपर्वमें नरकासुरका वधविषयक तिरसठवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ६३॥

चतुःषष्टितमोऽध्यायः

श्रीकृष्णका नरकासुरके भवनमें प्रवेश करके वहाँके धन-वैभव तथा सोलह हजार कुमारियोंको द्वारका भेजना और स्वयं देवलोकमें जा अदितिको कुण्डल दे वहाँसे पारिजात लेकर लौटना

वैशम्पायन उवाच

निहत्य नरकं भौमं वासवोपमविक्रमम्।
वासवावरजो विष्णुर्ददर्श नरकालयम्॥ १

अथार्थगृहमासाद्य नरकस्य जनार्दनः।
ददर्श धनमक्षय्यं रत्नानि विविधानि च॥ २

मणिमुक्ताप्रवालानि वैदूर्यस्य च संचयान्।
मासारगल्वकूटानि तथा वज्रस्य संचयान्॥ ३

जाम्बूनदमयान्यस्य शातकुम्भमयानि च।
प्रदीप्तज्वलनाभानि शीतरश्मिनिभानि च॥ ४

शयनानि महार्हाणि तथा सिंहासनानि च।
हिरण्यदण्डरुचिरं शीतरश्मिसमप्रभम्॥ ५

ददर्श तन्महच्छत्रं वर्षमाणमिवाम्बुदम्।
जातरूपस्य शुभ्रस्य धाराः शतसहस्रशः॥ ६

वरुणादाहृतं पूर्वं नरकेणेति नः श्रुतम्।
यावद्रत्नं गृहे दृष्टं नरकस्य धनं बहु॥ ७

नैव राज्ञः कुबेरस्य न शक्रस्य यमस्य च।
रत्नसंनिचयस्तादृग् दृष्टपूर्वो न च श्रुतः॥ ८

हते भौमे निसुन्दे च हयग्रीवे च दानवे।
उपानिन्युस्ततस्तानि रत्नान्यन्तःपुराणि च॥ ९

दानवा हतशिष्टा ये कोशसंचयरक्षिणः।
केशवाय महार्हाणि यान्यर्हति जनार्दनः॥ १०

दैत्या ऊचुः

इमानि मणिरत्नानि विविधानि बहूनि च।
भीमरूपाश्च मातङ्गाः प्रवालविकृताः कुथाः॥ ११

हेमसूत्रा महाकक्षाश्चापतोमरशालिनः।
रुचिराभिः पताकाभिः शबला रुचिरांकुशाः॥ १२

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! इन्द्रके समान पराक्रमी भूमिपुत्र नरकासुरका वध करके इन्द्रके छोटे भाई श्रीकृष्णने उसके भवनका निरीक्षण किया॥ १॥ तदनन्तर नरकासुरके धनागार (खजाने)-में जाकर भगवान् जनार्दनने अक्षय धन और भाँति-भाँतिके रत्न देखे॥ २॥ मणि, मोती, मूँगे, वैदूर्यमणिके ढेर, चन्द्रकान्तमणिकी पर्वतोपम राशि तथा हीरोंके संग्रह देखे। जाम्बूनद तथा शातकुम्भ नामक सुवर्णोंकी बनी हुई बहुत-सी ऐसी वस्तुएँ वहाँ दृष्टिगोचर हुईं, जो प्रज्वलित अग्नि और शीतरश्मि चन्द्रमाके समान प्रकाशित हो रही थीं॥ ३-४॥ बहुमूल्य शय्या तथा सिंहासन भी देखनेमें आये। वहीं उन्होंने वह विशाल छत्र भी देखा, जो वर्षा करनेवाले मेघके समान उज्ज्वल सुवर्णकी लाखों धाराएँ बहा रहा था, उसका सुन्दर दण्ड सुवर्णका बना हुआ था तथा उसकी कान्ति चन्द्रमाके समान श्वेत वर्णकी थी॥ ५-६॥ हमने सुना है कि वह छत्र नरकासुर पहले वरुणके यहाँसे छीन लाया था। नरकासुरके घरमें जितना रत्न और असंख्य धन देखा गया, उतना राजा कुबेर, इन्द्र और यमके पास भी नहीं था। रत्नोंका वैसा संग्रह कुबेर आदिके यहाँ भी न तो कभी देखा गया और न सुना ही गया॥ ७-८॥ भौमासुर, निसुन्द और दानव हयग्रीवके मारे जानेपर मरनेसे बचे हुए जो दानव और खजानेके रक्षक थे, वे उन बहुमूल्य रत्नों और अन्तःपुरकी वस्तुओंको भगवान् श्रीकृष्णके पास ले आये, जिन्हें पाने और रखनेकी योग्यता एकमात्र श्रीकृष्णमें ही थी॥ ९-१०॥

दैत्योंने कहा—जनार्दन! ये जो नाना प्रकारके बहुसंख्यक मणिरत्न हैं तथा जो भयंकर रूपवाले गजराज हैं, जिनके ऊपर बिछायी जानेवाली कालीनें मूँगोंसे विभूषित हैं, जो सोनेके तारोंके बने हुए रस्सोंसे कसे जाते हैं, जिनकी जंजीरें बहुत बड़ी हैं, जो धनुष और तोमर आदि अस्त्र-शस्त्रोंसे सुशोभित होते हैं, जिनके अङ्कुश बड़े सुन्दर हैं तथा जो नाना प्रकारकी सुन्दर पताकाओंद्वारा चितकबरे दिखायी देते हैं।

ते च विंशतिसाहस्रा द्विस्तावत्यः करेणवः।
अष्टौ शतसहस्राणि देशजाश्चोत्तमा हयाः॥ १३
गोषु चापि कृतो यावान् कामस्तव जनार्दन।
तावतीः प्रापयिष्यामो वृष्ण्यन्धकनिवेशनम्॥ १४
आविकानि च सूक्ष्माणि शयनान्यासनानि च।
कामव्याहारिणश्चैव पक्षिणः प्रियदर्शनाः॥ १५
चन्दनागुरुकाष्ठानि तथा कालीयकान्यपि।
वसु यत् त्रिषु लोकेषु धर्मेणाधिगतं तव।
प्रापयिष्याम तत् सर्वं वृष्ण्यन्धकनिवेशनम्॥ १६
देवगन्धर्वरत्नानि पन्नगानां च यद् वसु।
तानि सर्वाणि सन्तीह नरकस्य निवेशने॥ १७

वैशम्पायन उवाच

तच्च सर्वं हृषीकेशः परिगृह्य परीक्ष्य च।
सर्वमाहारयामास दानवैर्द्वारकां पुरीम्॥ १८
ततस्तद् वारुणं छत्रं स्वयमुत्क्षिप्य माधवः।
हिरण्यवर्षं वर्षन्तमारुरोह विहङ्गमम्॥ १९
गरुडं पतगश्रेष्ठं मूर्तिमन्तमिवाम्बुदम्।
ततोऽभ्ययाद् गिरिश्रेष्ठमभितो मणिपर्वतम्॥ २०
तत्र पुण्या ववुर्वाता ह्यभवंश्चामलाः प्रभाः।
मणीनां हेमवर्णानामभिभूय दिवाकरम्॥ २१
तत्र वैदूर्यवर्णानि ददर्श मधुसूदनः।
सतोरणपताकानि द्वाराणि शरणानि च॥ २२
विद्युद्ग्रथितमेघाभः प्रबभौ मणिपर्वतः।
हेमचित्रवितानैश्च प्रासादैरुपशोभितः॥ २३
तत्र ता वरहेमाभा ददर्श मधुसूदनः।
गन्धर्वसुरमुख्यानां प्रिया दुहितरस्तथा॥ २४
ददर्श पृथुलश्रोणीः संरुद्धा गिरिकन्दरे।
नरकेण समानीता रक्ष्यमाणाः समन्ततः॥ २५
त्रिविष्टपसमे देशे तिष्ठन्तीरपराजिताः।
निर्विशन्त्यो यथा देव्यः सुखिन्यः कामवर्जिताः॥ २६

उन गजराजोंकी संख्या बीस हजार है। इनसे दूनी हथिनियाँ हैं। आठ लाख उत्तम देशी घोड़े हैं। इनके सिवा बहुत-सी गौएँ हैं। इनमेंसे जिनके लिये आपको जितनी आवश्यकता हो, उतनी संख्यामें हम इन सबको वृष्णि और अन्धकवंशी यादवोंके निवासस्थान द्वारकामें पहुँचा देंगे॥ ११—१४॥ प्रभो! महीन ऊनी वस्त्र, अनेक प्रकारकी शय्याएँ, बहुत-से आसन, इच्छानुसार बोली बोलनेवाले और देखनेमें सुन्दर पक्षी, चन्दन और अगुरुकाष्ठ, कालागुरु तथा तीनों लोकोंमें जो धन और रत्न यहाँ सञ्चित हैं, उन सबपर आपका धर्मतः अधिकार हो गया है। हम उन सबको वृष्ण्यन्धकपुरी द्वारकामें पहुँचा देंगे। देवताओं और गन्धर्वोंके यहाँ जो रत्न हैं तथा नागोंके यहाँ जो वैभव है, वे सब यहाँ नरकासुरके भवनमें विद्यमान हैं॥ १५—१७॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! भगवान् श्रीकृष्णने वह सारा वैभव लेकर उसकी परीक्षा करके सब-का-सब दानवोंद्वारा द्वारकापुरीको पहुँचवा दिया॥ १८॥ तदनन्तर माधवने सुवर्णकी वर्षा करते हुए वरुणके उस छत्रको स्वयं ही उठाकर गरुड़पर रख दिया और मूर्तिमान् मेघके समान आकाशगामी पक्षिप्रवर गरुड़पर वे स्वयं भी बैठ गये। तत्पश्चात् वे गिरिश्रेष्ठ मणिपर्वतके समीप गये॥ १९-२०॥ वहाँ बड़ी पवित्र हवा चल रही थी। सोनेके समान रंगवाली मणियोंकी निर्मल प्रभाएँ सूर्यको तिरस्कृत-सा करके प्रकाशित हो रही थीं॥ २१॥ वहाँ मधुसूदनने बहुत-से वैदूर्यमणिके समान रंगवाले प्रकाशमान द्वार और घर देखे, जहाँ बन्दनवारें बँधी थीं और पताकाएँ फहरा रही थीं॥ २२॥ वह मणिपर्वत (जो कन्याओंका अन्तःपुर था) बिजलीसे गुँथे हुए मेघके समान प्रकाशित होता था। जिनमें सोनेके विचित्र चँदोवे तने हुए थे, ऐसे महल उसकी शोभा बढ़ाते थे॥ २३॥ वहाँ मधुसूदनने श्रेष्ठ सुवर्णके समान कान्तिवाली प्रधान-प्रधान गन्धर्वों और देवताओंकी उन प्यारी पुत्रियोंको देखा, जो उस पर्वतकी कन्दरामें कैद की गयी थीं। उन सबके नितम्बभाग स्थूल और मांसल थे। नरकासुरने सब ओरसे लाकर उन्हें रख छोड़ा था॥ २४-२५॥ वह प्रदेश स्वर्गके समान सुखद था। वहाँ रहती हुई वे कुमारियाँ नरकासुरसे पराजित नहीं हुई थीं। उन्होंने कामभोगका परित्याग कर रखा था और वे देवियोंके समान वहाँ सुखपूर्वक रहती थीं॥ २६॥

परिवव्रुर्महाबाहुमेकवेणीधराः स्त्रियः।
सर्वाः काषायवासिन्यः सर्वाश्च नियतेन्द्रियाः॥ २७

व्रतोपवासतन्वङ्ग्यः काङ्‌क्षन्त्यः कृष्णदर्शनम्।
समेत्य यदुसिंहस्य सर्वाश्चक्रुः स्त्रियोऽञ्जलीन्॥ २८

नरकं निहतं ज्ञात्वा मुरं चैव महासुरम्।
हयग्रीवं निसुन्दं च ताः कृष्णं पर्यवारयन्॥ २९

ये चासां रक्षिणो वृद्धा दानवा यदुनन्दनम्।
कृताञ्जलिपुटाः सर्वे प्रणिपेतुर्वयोऽधिकाः॥ ३०

तासां परमनारीणामृषभाक्षं निरीक्ष्य तम्।
सर्वासामेव संकल्पः पतित्वेनाभवत् ततः॥ ३१

तस्य चन्द्रोपमं वक्त्रं निरीक्ष्य मुदितेन्द्रियाः।
सम्प्रहृष्टा महाबाहुमिदं वचनमब्रुवन्॥ ३२

सत्यं च यत् पुरा वायुरिहास्मान् वाक्यमब्रवीत्।
सर्वभूतमतिज्ञश्च देवर्षिरपि नारदः॥ ३३

विष्णुर्नारायणो देवः शङ्खचक्रगदासिभृत्।
स भौमं नरकं हत्वा भर्ता च भविता स वः॥ ३४

सुप्रियं बत पश्यामश्चिरश्रुतमरिंदमम्।
दर्शनेन कृतार्था हि वयमद्य महात्मनः॥ ३५

ततस्ताः सान्त्वयामास प्रमदा वासवानुजः।
सर्वाः कमलपत्राक्षीर्दृष्ट्वा चोवाच माधवः॥ ३६

यथार्हतः पूजयित्वा समाभाष्य च केशवः।
यानैः किङ्करसंयुक्तैरुवाह मधसूदनः॥ ३७

किङ्कराणां सहस्राणि रक्षसां वातरंहसाम्।
शिबिकां वहतां तत्र निर्घोषः सुमहानभूत्॥ ३८

तस्य पर्वतराजस्य शृङ्गं यत् परमार्चितम्।
विमलार्केन्दुसंकाशं मणिकाञ्चनतोरणम्॥ ३९

एक वेणी धारण करनेवाली तथा काषाय वस्त्रसे अपने अङ्गोंको आच्छादित करनेवाली उन समस्त कुमारियोंने महाबाहु श्रीकृष्णको चारों ओरसे घेर लिया। उन्होंने अपनी इन्द्रियोंको पूर्णतः संयममें रखा था॥ २७॥ व्रत और उपवास करनेके कारण उनके सारे अङ्ग दुबले हो गये थे। वे सदा ही श्रीकृष्णके दर्शनकी अभिलाषा रखती थीं। यदुकुलके सिंह श्रीकृष्णके पास जाकर उन सब कुमारियोंने हाथ जोड़ लिये॥ २८॥ नरकासुर, महान् असुर मुर, हयग्रीव तथा निसुन्दको मारा गया जानकर वे सब स्त्रियाँ श्रीकृष्णको घेरकर खड़ी हुई थीं॥ २९॥ जो बड़े-बूढ़े दानव उन कुमारियोंके रक्षक थे, उनकी अवस्था बहुत अधिक थी। उन सबने हाथ जोड़कर यदुनन्दनको प्रणाम किया॥ ३०॥ वृषभके समान विशाल नेत्रवाले श्रीकृष्णका दर्शन करके उन समस्त सुन्दरियोंके मनमें उन्हें पति बनानेका संकल्प उदित हुआ॥ ३१॥ श्रीकृष्णका चन्द्रमाके समान मनोहर मुख देखकर उनकी सारी इन्द्रियाँ आनन्दसिन्धुमें निमग्न हो गयी थीं। वे अत्यन्त हर्षमें भरकर उन महाबाहुसे इस प्रकार बोलीं—॥ ३२॥ 'भगवन्! पूर्वकालमें वायुदेवने तथा सम्पूर्ण भूतोंके मनोभावको जाननेवाले देवर्षि नारदने भी जो बात कही थी, वह आज सत्य हो गयी॥ ३३॥ उन्होंने कहा था कि शङ्ख, चक्र, गदा और खड्ग धारण करनेवाले जो सर्वव्यापी नारायणदेव हैं, वे भूमिपुत्र नरकका वध करके तुम सब लोगोंके पति होंगे॥ ३४॥ हम चिरकालसे जिन शत्रुदमन श्यामसुन्दरके विषयमें बहुत कुछ सुनती चली आ रही हैं, आज उन्हीं परम प्रियतम प्रभुको प्रत्यक्ष देखनेका हमें सौभाग्य प्राप्त हुआ। आज आप परमात्माके दर्शनसे हम सब कृतार्थ हो गयीं'॥ ३५॥ तब इन्द्रके छोटे भाई माधवने उन समस्त कमलनयनी युवतियोंको सान्त्वना दी, उनकी ओर देखा और उनसे वार्तालाप किया॥ ३६॥ इसके बाद मधुसूदन केशवने उनका यथोचित सम्मान तथा उनसे सम्भाषण करके उन्हें किङ्कर नामक दानवोंसे युक्त शिबिकाओंपर सवार कराया॥ ३७॥ वायुके समान वेगशाली किङ्कर नामक सहस्रों राक्षस उनकी शिबिकाएँ ढोने लगे। उस समय उनका महान् घोष सर्वत्र छा गया॥ ३८॥ उस पर्वतराज मणिपर्वतका जो सर्वोत्तम एवं प्रशंसित शिखर था, वह निर्मल सूर्य एवं चन्द्रमाके समान प्रकाशित होता था। उसमें मणि एवं सुवर्णके फाटक बने हुए थे॥ ३९॥

सपक्षिगणमातङ्गं समृगव्यालपादपम्।
शाखामृगगणाकीर्णं सुप्रस्तरशिलातलम्॥ ४०
न्यङ्कुभिश्च वराहैश्च रुरुभिश्च निषेवितम्।
सप्रपातं महासानुं विचित्रशिखरद्रुमम्॥ ४१
अत्यद्भुतमचिन्त्यं च मृगवृन्दविलोडितम्।
जीवञ्जीवकसंघैश्च बर्हिभिश्च निनादितम्॥ ४२
तदप्यतिबलो विष्णुर्दोर्भ्यामुत्पाट्य भासुरम्।
आरोपयामास बली गरुडे पक्षिणां वरे॥ ४३
मणिपर्वतशृङ्गं च सभार्यं च जनार्दनम्।
उवाह लीलया पक्षी गरुडः पततां वरः॥ ४४
स पक्षबलविक्षेपैर्हिमाद्रिशिखरोपमः।
दिक्षु सर्वासु संह्लादं जनयामास पक्षिराट्॥ ४५
आरुजन् पर्वताग्राणि पादपांश्च समुत्क्षिपन्।
सञ्जहार महाभ्राणि विजहार च कानिचित्॥ ४६
विषयं समतिक्रम्य देवयोश्चन्द्रसूर्ययोः।
ययौ वातजवः पक्षी जनार्दनवशे स्थितः॥ ४७
स मेरुगिरिमासाद्य देवगन्धर्वसेवितम्।
देवसद्मानि सर्वाणि ददर्श मधुसूदनः॥ ४८
विश्वेषां मरुतां चैव साध्यानां च नराधिप।
भ्राजमानान्यतिक्रामन्नश्विनोश्च परंतप॥ ४९
प्राप्य पुण्यतमाँल्लोकान् देवलोकमरिंदमः।
शक्रसद्म समासाद्य प्रविवेश जनार्दनः॥ ५०
अवतीर्य स ताक्ष्यार्त् तु ददर्श विबुधाधिपम्।
प्रीतश्चैवाभ्यनन्दत् तं देवराजः शतक्रतुः॥ ५१
प्रादाय कुण्डले दिव्ये ववन्दे तं तदाच्युतः।
सभार्यो विबुधश्रेष्ठं नरश्रेष्ठो जनार्दनः॥ ५२
अर्चितो देवराजेन रत्नैश्च प्रतिपूजितः।
सत्यभामा च पौलोम्या यथावदभिनन्दिता॥ ५३
वासवो वासुदेवश्च जग्मतुः सहितौ तदा।
अदित्या भवनं दिव्यं देवमातुर्महर्द्धिमत्॥ ५४

वहाँ पक्षियोंके समुदाय, हाथी, मृग, सर्प और वृक्ष शोभा पाते थे। बंदरोंके समुदाय सब ओर भरे हुए थे। वहाँके प्रस्तर और शिलाएँ बहुत सुन्दर थीं। न्यङ्कु (बारहसिंहाविशेष), वराह और रुरुमृग उसका सेवन करते थे। वहाँ अनेकानेक झरने गिरते थे। उसके कई बड़े-बड़े आन्तर शिखर थे। उसके शृङ्ग और वृक्ष विचित्र शोभासे सम्पन्न थे। मणिपर्वतका वह शिखर अत्यन्त अद्भुत और अचिन्त्य था। मृगोंके झुंड वहाँ दौड़ लगाते रहते थे। चकोरोंके झुंड और मोर अपने कलरवोंसे उसे प्रतिध्वनित किये रहते थे॥ ४०—४२॥ अत्यन्त बलशाली भगवान् श्रीकृष्णने अपनी दोनों भुजाओंसे उस तेजस्वी पर्वत-शिखरको उखाड़कर पक्षिप्रवर गरुड़की पीठपर रख लिया॥ ४३॥ पक्षियोंमें श्रेष्ठ गरुड़ मणिपर्वतके उस शिखरको तथा पत्नीसहित श्रीकृष्णको भी लेकर लीलापूर्वक चलने लगे॥ ४४॥ उनका शरीर हिमालयके शिखरके समान विशाल था। वे पक्षिराज अपनी पाँखोंको बलपूर्वक हिला-हिलाकर सम्पूर्ण दिशाओंमें महान् कोलाहल मचाते जा रहे थे॥ ४५॥ वे बड़े-बड़े पर्वतशिखरोंको तोड़ डालते, वृक्षोंको उखाड़ फेंकते, बड़े-बड़े बादलोंको छिन्न-भिन्न कर देते और कुछको अपने साथ उड़ाये लिये जाते थे॥ ४६॥ चन्द्रदेव और सूर्यदेवके प्रदेशको लाँघकर वे वायुके समान वेगशाली पक्षी गरुड़ भगवान् श्रीकृष्णके वशमें होकर चलते थे॥ ४७॥ देवताओं और गन्धर्वोंसे सेवित मेरुगिरिपर पहुँचकर उन भगवान् मधुसूदनने समस्त देवगृहोंका दर्शन किया॥ ४८॥ शत्रुओंको संताप देनेवाले नरेश्वर! उन्होंने विश्वेदेवों, मरुद्गणों, साध्यों और अश्विनीकुमारोंके प्रकाशमान स्थानोंको लाँघते हुए पुण्यतम लोकोंमें पहुँचकर देवलोकमें पदार्पण किया। तत्पश्चात् शत्रुदमन जनार्दनने इन्द्रभवनके निकट जाकर उसके भीतर प्रवेश किया॥ ४९-५०॥ वहाँ गरुड़से उतरकर वे देवेश्वर इन्द्रसे मिले। देवराज इन्द्रने भी प्रसन्नतापूर्वक उनका अभिनन्दन किया॥ ५१॥ उस समय अपनी महिमासे कभी च्युत न होनेवाले पत्नीसहित नरश्रेष्ठ जनार्दनने वे दोनों दिव्य कुण्डल उन्हें देकर देवप्रवर इन्द्रको प्रणाम किया॥ ५२॥ देवराज इन्द्रने नाना प्रकारके रत्नोंद्वारा श्रीकृष्णका आदर-सत्कार किया। इसी प्रकार पुलोमकन्या शचीने भी सत्यभामाका यथोचित रूपसे अभिनन्दन किया॥ ५३॥ तदनन्तर इन्द्र और भगवान् श्रीकृष्ण दोनोंने एक साथ होकर देवमाता अदितिके अत्यन्त समृद्धिशाली दिव्य भवनमें प्रवेश किया॥ ५४॥

तत्रादितिमुपास्यन्तीमप्सरोभिः समन्ततः।
ददृशाते महात्मानौ महाभागां तपोऽन्विताम्॥ ५५
ततस्ते कुण्डले दिव्ये प्रादाददितिनन्दनः।
ववन्दे तां शचीभर्ता मातरं स्वां पुरंदरः॥ ५६
जनार्दनं पुरस्कृत्य कर्म चैव शशंस तत्।
अदितिस्तौ सुतौ प्रीत्या परिष्वज्याभिनन्द्य च॥ ५७
आशीर्भिरनुकूलाभिरुभावप्यवदत् तदा।
पौलोमी सत्यभामा च प्रीत्या परमया युते॥ ५८
अगृह्णीतां वरार्हाया देव्यास्ते चरणौ शुभौ।
ते चाप्यभ्यवदत् प्रेम्णा देवमाता यशस्विनी॥ ५९
यथावदब्रवीच्चैव जनार्दनमिदं वचः।
अधृष्यः सर्वभूतानामवध्यश्च भविष्यसि॥ ६०
यथैव देवराजोऽयमजितो लोकपूजितः।
भवत्वियं वरारोहा नित्यं च प्रियदर्शना॥ ६१
सर्वलोकेषु विख्याता दिव्यगन्धा मनोरमा।
सत्यभामोत्तमा स्त्रीणां सुभगा स्थिरयौवना॥ ६२
जरां न यास्यति वधूर्यावत्त्वं कृष्ण मानुषः।
एवमभ्यर्चितः कृष्णो देवमात्रा महाबलः॥ ६३
देवराजाभ्यनुज्ञातो रत्नैश्च प्रतिपूजितः।
वैनतेयं समारुह्य सहितः सत्यभामया॥ ६४
देवाक्रीडं परिक्रामन् पूज्यमानं सुरर्षिभिः।
स ददर्श महाबाहुराक्रीडे वासवस्य ह॥ ६५
दिव्यमभ्यर्चितं देवैः पारिजातं महाद्रुमम्।
नित्यपुष्पधरं दिव्यं पुण्यगन्धमनुत्तमम्॥ ६६
यमासाद्य जनः सर्वो जातिं स्मरति पौर्विकीम्।
संरक्ष्यमाणं देवैस्तं प्रसह्यामितविक्रमः॥ ६७
उत्पाट्यारोपयामास विष्णुस्तं गरुडोपरि।
सोऽपश्यत् सत्यभामा च दिव्यमप्सरसां गणम्॥ ६८
पृष्ठतः सत्यभामा च दिव्या योषा च वीक्षिता।
प्रायात् ततो द्वारवतीं वायुजुष्टेन वै पथा॥ ६९

वहाँ उन दोनों महात्माओंने महाभागा तपस्विनी अदितिका दर्शन किया, जिनकी सब ओरसे अप्सराएँ उपासना (सेवा) करती थीं॥ ५५॥ वहाँ अदितिनन्दन शचीवल्लभ पुरन्दर इन्द्रने वे दोनों कुण्डल अपनी माताको दे दिये और उनके चरणोंमें प्रणाम किया॥ ५६॥ इन्द्रने जनार्दनको आगे करके उनके पराक्रमकी भूरि-भूरि प्रशंसा की। अदितिने अपने उन दोनों पुत्रोंको प्रसन्नतापूर्वक हृदयसे लगाकर उनका अभिनन्दन किया और दोनोंके लिये अनुकूल आशीर्वाद प्रदान किया। शची और सत्यभामाने भी बड़ी प्रसन्नताके साथ परम पूजनीया देवी अदितिके सुन्दर चरणोंका स्पर्श किया। तब यशस्विनी देवमाताने उन दोनोंसे भी प्रेमपूर्वक वार्तालाप किया॥ ५७—५९॥ इसके बाद अदितिने भगवान् जनार्दनसे यह यथार्थ बात कही—'वत्स! तुम सम्पूर्ण भूतोंके लिये अजेय और अवध्य होओगे। जैसे ये देवराज इन्द्र हैं, उसी प्रकार तुम भी अपराजित और लोकपूजित होओगे। यह सुन्दरी सत्यभामा सदा प्रियदर्शना, सम्पूर्ण लोकोंमें विख्यात, दिव्य गन्धवाली, मनोरमा, सुस्थिर-यौवना, सौभाग्यवती तथा स्त्रियोंमें उत्तम हो। श्रीकृष्ण! जबतक तुम मानव बनकर मनुष्यलोकमें रहोगे, तबतक बहू सत्यभामा बूढ़ी नहीं होगी'। देवमाता अदितिके द्वारा इस प्रकार सत्कार पाकर देवराजकी आज्ञा ले उनसे रत्नोंद्वारा पूजित हो महाबली श्रीकृष्ण सत्यभामासहित गरुड़पर आरूढ़ हुए और देवर्षियोंद्वारा प्रशंसित देवताओंके क्रीड़ा-कानन नन्दनवनमें सब ओर घूमने लगे। इन्द्रके उस क्रीड़ावनमें महाबाहु श्रीकृष्णने पारिजात नामक दिव्य विशाल वृक्षको देखा, जो देवताओंद्वारा पूजित था। वह दिव्य वृक्ष सदा ही फूल धारण करनेवाला, पवित्र गन्धसे सुवासित तथा परम उत्तम था॥ ६०—६६॥ उसके पास जानेपर सब लोगोंको अपने पूर्वजन्मकी बातोंका स्मरण हो आता था। देवता उस वृक्षकी रक्षा करते थे; परंतु अमितपराक्रमी श्रीकृष्णने उसे बलपूर्वक उखाड़कर गरुड़की पीठपर रख लिया। वहाँ श्रीकृष्ण तथा सत्यभामाने दिव्य अप्सराओंके समुदायको देखा। उन्होंने भी पीछेसे दिव्य युवती सत्यभामाका दर्शन किया। तदनन्तर वायुसेवित मार्गसे श्रीकृष्ण द्वारकापुरीकी ओर चल दिये॥ ६७—६९॥

श्रुत्वा तं देवराजस्तु कर्म कृष्णस्य तत् तदा।
अनुमेने महाबाहुः कृतकर्मेति चाब्रवीत्॥ ७०

स पूज्यमानस्त्रिदशैः सप्तर्षिगणसंस्तुतः।
प्रतस्थे द्वारकां कृष्णो देवलोकादरिंदमः॥ ७१

सोऽभिपत्य महाबाहुर्दीर्घमध्वानमल्पवत्।
पूजितो देवराजेन ददृशे यादवीं पुरीम्॥ ७२

तथा कर्म महत् कृत्वा भगवान् वासवानुजः।
उपायाद् द्वारकां कृष्णः श्रीमान् गरुडवाहनः॥ ७३

महाबाहु देवराज इन्द्रने जब उस समय श्रीकृष्णके पारिजातहरणरूपी उस कर्मको सुना, तब यह कहकर उसका अनुमोदन किया कि 'श्रीकृष्णने मेरा बहुत बड़ा कार्य सिद्ध किया है'॥ ७०॥ देवताओंसे पूजित और सप्तर्षियोंसे प्रशंसित हो शत्रुदमन श्रीकृष्णने देवलोकसे द्वारकाको प्रस्थान किया॥ ७१॥ देवराजसे सम्मानित हुए महाबाहु श्रीकृष्णने उस विशाल मार्गको लघुमार्गकी भाँति थोड़ी ही देरमें तै करके यादवपुरीको देखा॥ ७२॥ इन्द्रके छोटे भाई गरुड़वाहन श्रीमान् भगवान् श्रीकृष्ण वैसा महान् कर्म करके द्वारकामें चले गये॥ ७३॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे विष्णुपर्वणि पारिजातहरणे द्वारकाप्रवेशे चतुःषष्टितमोऽध्यायः॥ ६४॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत विष्णुपर्वमें पारिजातहरण और द्वारकामें प्रवेशविषयक चौंसठवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ६४॥

पञ्चषष्टितमोऽध्यायः

रैवतक पर्वतपर रुक्मिणीके व्रतोद्यापनका उत्सव, उसमें पारिजात-पुष्प देकर श्रीकृष्णद्वारा रुक्मिणीका सम्मान, नारदजीद्वारा रुक्मिणीके सर्वाधिक सौभाग्यकी प्रशंसा तथा सत्यभामाका कोपभवनमें प्रवेश

जनमेजय उवाच

प्रादुर्भावे मुनिश्रेष्ठ माथुरे चरितं शुभम्।
शृण्वन्नैवाधिगच्छामि तृप्तिं कृष्णस्य धीमतः॥ १

द्वारकायां निवसतः कृतदारस्य षड्गुणम्।
चरितं ब्रूहि कृष्णस्य सर्वं हि विदितं तव॥ २

वैशम्पायन उवाच

जनमेजय कृष्णस्य कृतदारस्य भारत।
निबोध चरितं चित्रं तस्यैव सदृशं प्रभो॥ ३

प्राप्तदारो महातेजा वासुदेवः प्रतापवान्।
रुक्मिण्या सहितो देव्या ययौ रैवतकं नृप॥ ४

उपवासावसानं हि रुक्मिण्याः प्रतिपूजयन्।
तर्पयिष्यन् स्वयं विप्राञ्जगाम मधुसूदनः॥ ५

जनमेजयने कहा—मुनिश्रेष्ठ! मथुरामें अवतार लेकर बुद्धिमान् श्रीकृष्णने जो मङ्गलमयी लीलाएँ की हैं, उन्हें सुनते-सुनते मुझे तृप्ति नहीं होती है॥ १॥ द्वारकामें निवास करके सपत्नीक हो जानेपर श्रीकृष्णने जो षड्गुण*सम्पन्न चरित्र किये हैं, उन्हें बताइये; क्योंकि श्रीकृष्णकी सारी लीलाएँ आपको विदित हैं॥ २॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—भरतनन्दन जनमेजय! पत्नी-परिग्रह करनेके पश्चात् श्रीकृष्णके जो विचित्र चरित्र हैं, उन्हें सुनो। प्रभो! वे चरित्र उन्हींके अनुरूप हैं॥ ३॥ नरेश्वर! सपत्नीक होनेके पश्चात् एक समय महातेजस्वी एवं प्रतापी वसुदेवनन्दन श्रीकृष्ण महारानी रुक्मिणीके साथ रैवतक पर्वतपर गये॥ ४॥ उस रुक्मिणी देवीके उपवासव्रतका उद्यापन था। उसका समादर करते हुए भगवान् मधुसूदन स्वयं ही ब्राह्मणोंको भोजन आदिसे तृप्त करनेके लिये वहाँ गये॥ ५॥

* समग्र ऐश्वर्य, समग्र ज्ञान, समग्र यश, समग्र श्री, समग्र वैराग्य और समग्र धर्म—ये छः भग (ऐश्वर्य) ही छः गुण हैं अथवा सर्वज्ञता, तृप्ति, अनादि बोध, स्वतन्त्रता, अलुप्तशक्तिता और अनन्त शक्तिका होना—ये परमेश्वरके स्वरूपभूत गुण ही यहाँ छः गुणोंके नामसे स्मरण किये गये हैं।

कुमाराः प्रययुस्तत्र पुत्रभ्रातर एव च।
प्रेषिता वासुदेवेन नारदस्याभ्यनुज्ञया॥ ६
षोडशस्त्रीसहस्राणि जग्मुरेव च धीमतः।
ऋद्ध्या परमया राजन् विष्णोरेवानुरूपया॥ ७
ततस्तत्र द्विजातीनां कामान् प्रादादधोक्षजः।
अर्थिनां धर्मनित्यानां बन्दिनामिष्टवादिनाम्॥ ८
कल्याणनामगोत्राणां महतां पुण्यकर्मणाम्।
यौनैः श्रौतैश्च माखैश्च शुद्धानां कुरुनन्दन॥ ९
तर्पयित्वा द्विजान् कामैरिष्टैरिष्टः सतां गतिः।
ज्ञातीन् संतर्पयामास यथार्हं भक्तवत्सलः॥ १०
उपवासावसानेऽथ भगवान् स विशेषतः।
बहु मेने प्रियां भार्यां रुक्मिणीं भीष्मकात्मजाम्॥ ११
वसतस्तस्य कृष्णस्य सदारस्यामितौजसः।
सहासीनस्य रुक्मिण्या नारदोऽभ्याययौ मुनिः॥ १२
आगतं चाप्रमेयात्मा मुनिमिन्द्रानुजस्तदा।
शास्त्रदृष्टेन विधिना अर्चयामास केशवः॥ १३
सोऽर्चितो वासुदेवेन मुनिरर्च्यतमः सताम्।
पारिजाततरोः पुष्पं ददौ कृष्णाय भारत॥ १४
तद् वृक्षराजकुसुमं रुक्मिण्याः प्रददौ हरिः।
पार्श्वस्था सा हि कृष्णस्य भोज्या नरवराभवत्॥ १५
प्रतिगृह्य तु तत् पुष्पं कामारणिरनिन्दिता।
शिरस्यमलपत्राक्षी ददौ कृष्णेङ्गितानुगा॥ १६
त्रैलोक्यरूपसर्वस्वं नारायणमनोहरा।
शुशुभे देवपुष्पेण द्विगुणं भैष्मकी तदा॥ १७
तां नारदस्तथोवाच मुनिर्ब्रह्मसुतस्तदा।
तवैवौपयिकं पुष्पमेकं देवि पतिव्रते॥ १८
अलंकृतं पुष्पमेतत् संसर्गात् तव सर्वथा।
अत्यर्हा च मता मे त्वमेतत्पुष्पाद् धृतव्रते॥ १९
कल्याणगुणसम्पन्ने सततं भर्तृवत्सले।
अम्लानमेतत् सततं पुष्पं भवति कामिनि॥ २०

देवर्षि नारदकी अनुमतिसे भगवान् वासुदेवके भेजनेपर यदुकुलके कुमार, पुत्र और भाई भी वहाँ गये॥ ६॥ राजन्! परम बुद्धिमान् विष्णुस्वरूप श्रीकृष्णके अनुरूप उत्तम समृद्धिसे सम्पन्न सोलह हजार स्त्रियाँ भी उस उत्सवमें सम्मिलित होनेके लिये गयीं॥ ७॥ कुरुनन्दन! तदनन्तर वहाँ भगवान् श्रीकृष्णने प्रार्थी, नित्य धर्मपरायण, बन्दी, प्रियवादी, माङ्गलिक नाम-गोत्रसे युक्त, महान् पुण्यकर्मा तथा योनि, विद्या और यज्ञके सम्बन्धसे शुद्ध ब्राह्मणोंको मनोवाञ्छित पदार्थ दिये॥ ८-९॥ ब्राह्मणोंको अभीष्ट वस्तुओंसे तृप्त करके सत्पुरुषोंके प्रिय आश्रय भक्तवत्सल भगवान् श्रीकृष्णने अपने भाई-बन्धुओंको भी यथायोग्य संतुष्ट किया॥ १०॥ उपवासके अन्तमें भगवान् श्रीकृष्णने अपनी प्यारी पत्नी भीष्मकराजकुमारी रुक्मिणीका विशेषरूपसे बहुत आदर किया॥ ११॥ अमिततेजस्वी श्रीकृष्ण पत्नियोंसहित वहाँ रहकर जब रुक्मिणीदेवीके साथ बैठे हुए थे, उसी समय नारदमुनि उनके निकट आये॥ १२॥ अप्रमेयस्वरूप इन्द्रके छोटे भाई भगवान् श्रीकृष्णने उस समय वहाँ आये हुए नारदमुनिका शास्त्रोक्त विधिसे पूजन किया॥ १३॥ भरतनन्दन! भगवान् वासुदेवसे पूजित हो सत्पुरुषोंके परम पूजनीय मुनिने वहाँ श्रीकृष्णके हाथमें पारिजात-वृक्षका एक फूल दिया॥ १४॥ नरश्रेष्ठ! वृक्षराज पारिजातके उस फूलको श्रीहरिने रुक्मिणीदेवीके हाथमें दे दिया; क्योंकि वे भोजकुलनन्दिनी रुक्मिणी श्रीकृष्णके पास उनके बगलमें ही बैठी हुई थीं॥ १५॥ उस पुष्पको हाथमें लेकर प्रद्युम्नजननी सती-साध्वी कमलनयनी रुक्मिणीने, जो श्रीकृष्णके संकेतका अनुसरण करनेवाली थीं, अपने सिरके बालोंमें लगा लिया॥ १६॥ त्रिभुवनकी सारी रूपसम्पत्ति जिनमें निहित थी, वे इन नारायणकी मनोहारिणी लक्ष्मीस्वरूपा रुक्मिणी उस देवपुष्पको धारण करनेसे दुगुनी शोभा पाने लगीं॥ १७॥ उस समय ब्रह्मकुमार नारद मुनि उनसे बोले—'देवि! पतिव्रते! यह एकमात्र पुष्प तुम्हारे ही योग्य था॥ १८॥ व्रतको धारण करनेवाली देवि! तुम्हारे संसर्गसे यह फूल सर्वथा अलंकृत हो गया। इस पुष्पको धारण करनेसे तुम मेरी दृष्टिमें अत्यन्त पूजनीय हो गयी हो॥ १९॥ कल्याणमय गुणोंसे सम्पन्न पतिवत्सले! कामिनि! यह फूल एक वर्षतक सदा ताजा बना रहता है, कभी कुम्हलाता नहीं है।

संवत्सरपरं कालं कालज्ञे गुणसम्मते।
ईप्सितानपि गन्धांश्च ददाति वदतां वरे॥ २१

शीतोष्णे चेच्छिते देवि पुष्पमेतत् प्रयच्छति।
स्रवत्यपि रसान् देवि मनसा काङ्क्षितान् वरान्॥ २२

सेव्यमानं च सौभाग्यं ददाति वरवर्णिनि।
स्रवत्यपि तथा गन्धानीप्सितान् प्रीतिवर्द्धनान्॥ २३

यानि यानि च पुष्पाणि त्वं देव्यभिलषिष्यसि।
कुसुमं वृक्षराजस्य तानि तानि प्रदास्यति॥ २४

एतदेव भगाधानं धर्मिष्ठे पुत्रदं तथा।
मतिं च नाशुभे धत्ते धार्यमाणं सदा शुभे॥ २५

यद् यदिच्छसि वर्णं च तत् सर्वं धारयिष्यति।
स्वल्पं वा यदि वा स्थूलं छन्दतस्ते भविष्यति॥ २६

अनिष्टगन्धहरणमेतत् सद्गन्धवर्द्धनम्।
प्रदीपकर्म रात्रौ च करोति कमलेक्षणे॥ २७

संतानकस्रजो मालां पुष्पवस्त्रादि वाच्युतम्।
पुष्पमण्डपमुख्यानि चिन्तितेन प्रदास्यति॥ २८

बुभुक्षा वा पिपासा वा ग्लानिर्वाप्यथवा जरा।
देववद्धारयन्त्यास्ते स्वच्छन्देन भविष्यति॥ २९

अनुगीतानि गीतानि दास्यत्यपि च चिन्तिते।
सुवादित्रान् सुमधुरांस्तथैव तव सम्मतान्॥ ३०

पूर्णे संवत्सरे देवि पुष्पमेतत् तवान्तिकात्।
निर्वर्त्स्यते तरुवरं समयेन प्रयास्यति॥ ३१

कृतिरेषा हि भद्रं ते पारिजातस्य सुप्रभे।
निसर्गतः सर्गकृता सत्कारार्थेऽसुरद्विषाम्॥ ३२

उमा देववरस्येष्टा हिमालयसुता सती।
धारयन्तीश्वरी नित्यं पुष्पाण्येतानि सुप्रभे॥ ३३

समयका ज्ञान रखनेवाली, अपने गुणोंसे आदर पानेवाली, वक्ताओंमें श्रेष्ठ रुक्मिणी! यह फूल एक सालतक मनोवाञ्छित गन्ध प्रदान करता रहता है॥ २०-२१॥ देवि! जितनी सर्दी या गर्मी अभीष्ट हो, यह फूल उसे देता रहता है तथा मनमें जिन श्रेष्ठ रसोंको प्राप्त करनेकी अभिलाषा हो, उन्हें भी यह पुष्प स्वयं ही झरता रहता है॥ २२॥ वरवर्णिनि! इस पुष्पका सेवन किया जाय तो यह सौभाग्य प्रदान करता है तथा मनकी प्रसन्नताको बढ़ानेवाली अभीष्ट सुगन्ध झरता रहता है॥ २३॥ देवि! तुम जिन-जिन फूलोंकी अभिलाषा करोगी, वृक्षराज पारिजातका यह फूल उन सबको प्रस्तुत कर देगा॥ २४॥ धर्ममें निष्ठा रखनेवाली शुभे! देवि! यह पुष्प ऐश्वर्यकी प्राप्ति करानेवाला तथा पुत्रदायक है। इसे सदा धारण किया जाय तो यह बुद्धिको अशुभ चिन्तनमें नहीं लगने देता॥ २५॥ तुम इस फूलको जिस-जिस रूप-रंगमें देखना चाहोगी, वह सब यह धारण कर लेगा। तुम्हारी इच्छाके अनुसार यह छोटा-बड़ा, हलका-भारी अथवा स्थूल-सूक्ष्म हो जायगा॥ २६॥ कमललोचने! यह पुष्प अप्रिय गन्धका निवारण तथा उत्तम गन्धकी वृद्धि करनेवाला है। रातके समय यह दीपकका भी काम करता है॥ २७॥ यह चिन्तन करनेमात्रसे संतान नामक दिव्य वृक्षके फूलोंका हार, माला, फूल, कभी नष्ट न होनेवाले वस्त्र आदि तथा अच्छे-अच्छे फूलोंके मण्डप प्रदान करेगा॥ २८॥ देवताओंके समान इसको धारण करते समय तुम्हें भूख-प्यास, ग्लानि अथवा वृद्धावस्था नहीं प्राप्त होगी। ये सारी वस्तुएँ तुम्हारी इच्छाके अधीन हो जायँगी॥ २९॥ इतना ही नहीं, यह चिन्तन करनेपर तुम्हें प्रिय लगनेवाले सुन्दर वाद्यों तथा संगीत-शास्त्रके अनुकूल गीतोंका भी आनन्द प्रदान करेगा॥ ३०॥ देवि! वर्ष पूर्ण होनेपर यह फूल तुम्हारे पाससे समयानुसार चला जायगा और वृक्षप्रवर पारिजातसे जुड़ जायगा॥ ३१॥ सुप्रभे! तुम्हारा कल्याण हो। सृष्टिकर्ता ब्रह्माजीने असुरद्रोही देवताओंके सत्कारके लिये स्वभावतः पारिजातकी ऐसी सामर्थ्य रच दी है॥ ३२॥ उत्तम प्रभासे प्रकाशित होनेवाली देवि! देवेश्वर शिवकी प्रियतमा हिमालयपुत्री सती-साध्वी सुरेश्वरी उमा नित्य इन फूलोंको धारण करती हैं॥ ३३॥

अदितिश्च सपौलोमी महेन्द्रसुरतारणी।
सावित्री देवमाता च श्रीश्च सर्वगुणोचिता॥ ३४

देवपत्न्यस्तथैवान्या देवाश्च वसुदेवताः।
संवत्सरपरः कालः सर्वेषां न तु संशयः॥ ३५

षोडशस्त्रीसहस्राणां मध्ये त्वं खलु वर्तसे।
अद्येष्टां वासुदेवस्य वेद्मि त्वां भोजनन्दिनि॥ ३६

सपत्न्यस्ते गुणोपेते सर्वाः सर्वेश्वरप्रिये।
अवमानावसेकेन त्वया सिक्ताद्य भामिनि॥ ३७

प्रकाशमद्य सौभाग्यमनिवार्यं यशश्च ते।
मन्दारकुसुमं दत्तं यत् ते मधुनिघातिना॥ ३८

अद्य सात्राजिती देवी ज्ञास्यते वरवर्णिनी।
सौभाग्याढ्यं सदा वेत्ति याऽऽत्मानं सुभगं सती॥ ३९

साम्बमाता च गान्धारी भार्याश्चान्या महात्मनः।
सौभाग्यार्थोद्यताकाङ्क्षामद्य मोक्ष्यन्ति निःस्पृहाः॥ ४०

सौभाग्यैकरथो जैत्रस्तव देव्यद्य निःसृतः।
मनोरथरथानां यः सहस्रैरपि दुर्जयः॥ ४१

अद्याहमवगच्छामि सर्वथा सर्वशोभने।
आत्मा द्वितीयः कृष्णस्य भोजे त्वमिति भामिनि॥ ४२

त्रैलोक्यरत्नसर्वस्वमददाद् यत् तवाच्युतः।
जीवितातिशयस्तेन त्वया प्राप्तो हरिप्रिये॥ ४३

नारदेनैवमुक्तं तु तथ्यं वाक्यं नराधिप।
तत्रस्थाः शुश्रुवुः प्रेष्याः प्रेषिताः सत्यभामया॥ ४४

देवीनां च तथान्यासां पत्नीनां च विशाम्पते।
दृष्ट्वा ताः सविशेषं च नारदेनाभ्युदाहृतम्॥ ४५

तच्च श्रुत्वा सुनिखिलं प्रेष्याभिः स्त्रीस्वभावतः।
प्रकाशीकृतमेवासीद् विष्णोरन्तःपुरे तदा॥ ४६

कर्णाकर्णि ततो देव्यः कौलीनमिव संघशः।
मन्त्रयाञ्चक्रिरे हृष्टा रुक्मिण्यतिगुणोदयम्॥ ४७

'देवराज इन्द्रकी माता अदिति, देवेन्द्रपत्नी शची, देवमाता सावित्री, सर्वगुणसम्पन्ना लक्ष्मी तथा अन्य देव-पत्नियाँ, देवगण और वसु देवता—ये सब इस पुष्पको धारण करते हैं। उन सबके लिये भी इस पुष्पके धारणका अधिक-से-अधिक समय एक वर्षतक ही है। इसमें संशय नहीं है॥ ३४-३५॥ भोजनन्दिनि! आज मुझे मालूम हो गया कि इन सोलह हजार स्त्रियोंके बीच भगवान् वासुदेवको तुम्हीं सबसे अधिक प्रिय हो॥ ३६॥ सर्वेश्वरप्रिये! सद्‌गुणवती भामिनि! आज तुमने अपनी सारी सौतोंको अपमानके जलसे सींच दिया॥ ३७॥ आज तुम्हारा अनिवार्य सौभाग्य और यश प्रकाशमें आ गया, क्योंकि भगवान् मधुसूदनने यह मन्दार-पुष्प केवल तुम्हारे हाथमें दिया है॥ ३८॥ आज सत्राजित्‌की पुत्री परम सुन्दरी सती सत्यभामा देवी, जो अपने-आपको सदा सबसे अधिक सौभाग्यशालिनी एवं सुभगा समझती रही हैं, जान लेंगी कि किसका सौभाग्य अधिक है॥ ३९॥ साम्बमाता जाम्बवती तथा गान्धारी आदि, जो महात्मा श्रीकृष्णकी अन्य पत्नियाँ हैं, वे आज निःस्पृह होकर सौभाग्यके लिये उठी हुई आकाङ्क्षाका परित्याग कर देंगी॥ ४०॥ देवि! आज तुम्हारे सौभाग्यका एकमात्र विजयशील रथ बाहर निकला है, जो सहस्रों मनोरथरूपी रथोंके लिये दुर्जय है॥ ४१॥ सर्वाङ्गसुन्दरी भामिनि! भोजराजकन्ये! आज मैं सर्वथा इस बातको समझ गया कि श्रीकृष्णकी दूसरी आत्मा तुम्हीं हो॥ ४२॥ हरिप्रिये! तीनों लोकोंके रत्नोंका सर्वस्वरूप यह पारिजात-पुष्प भगवान् श्रीकृष्णने जो तुम्हें ही दिया है, इससे तुमने आज प्राणोंसे भी अधिक उत्कृष्ट वस्तु प्राप्त कर ली है (अथवा तुम्हें आज समस्त सौभाग्यवती स्त्रियोंकी अपेक्षा उत्कृष्ट जीवन प्राप्त हुआ है।)'॥ ४३॥ नरेश्वर! सत्यभामाकी भेजी हुई दासियाँ वहाँ खड़ी थीं। उन्होंने नारदजीके द्वारा इस प्रकार कहे गये यथार्थ वचनोंको सुना॥ ४४॥ प्रजानाथ! अन्य देवियों तथा पत्नियोंकी दासियाँ भी वहाँ खड़ी थीं। उन सबको देखकर नारदजीने उपर्युक्त बातें और भी बढ़ा-चढ़ाकर कही थीं॥ ४५॥ उस समय वे सारी बातें सुनकर उन दूतियोंने स्त्रीस्वभावके कारण भगवान् श्रीकृष्णके अन्तःपुरमें उन्हें प्रकट कर ही दिया॥ ४६॥ कानोंकान वह सब जानकर श्रीकृष्णकी अन्य पत्नियाँ झुंड-की-झुंड एकत्र हो हर्षमें भरकर रुक्मिणीके अत्यन्त गुणयुक्त सौभाग्योदयकी चर्चा करने लगीं, मानो कुलके किसी गूढ़ रहस्यपर गुप्त मन्त्रणा कर रही हों॥ ४७॥

अर्हेति पुत्रमातेति ज्येष्ठेति च समागताः।
प्रायेण प्रवदन्ति स्म हृष्टा दामोदरस्त्रियः॥ ४८
ममृषे न सपत्न्यास्तु तत् सौभाग्यगुणोदयम्।
सत्यभामा प्रिया नित्यं विष्णोरतुलतेजसः॥ ४९
रूपयौवनसम्पन्ना स्वसौभाग्येन गर्विता।
अभिमानवती देवी श्रुत्वैवेर्ष्यावशं गता॥ ५०
समुत्सृजन्ती वसनं सकुंकुमं
शुचिस्मिता शुक्लतमैकमंशुकम्।
जग्राह रोषाकुलितेन चेतसा
वह्नेस्तदा श्रीरिव वर्द्धितेन्धना॥ ५१
दन्दह्यमाना ज्वलनेन वर्द्धता
ईर्ष्यासमुत्थेन गतप्रभेव।
क्रोधान्विता क्रोधगृहं विविक्तं
विवेश तारेव घनं सतोयम्॥ ५२
बद्ध्वा ललाटे हिमचन्द्रशुक्लं
दुकूलपट्टं प्रियरोषचिह्नम्।
पर्यन्तदेशं सरसेन देवी
विलिप्य सा लोहितचन्दनेन॥ ५३
संस्मृत्य संस्मृत्य शिरः सरोषं
प्रकम्पमाना समुपोपविष्टा।
दीर्घोपधाने शयनेऽपनीय
विभूषणान्येव निबद्धवेणी॥ ५४
अकारणार्थेन विकृष्यमाणा
प्रेष्याजनस्याभिजनान्वितापि।
विचूर्णयामास कुशेशयं सा
निःश्वस्य निःश्वस्य नखैर्नतभ्रूः॥ ५५

हर्षसे उत्फुल्ल हुई भगवान् दामोदरकी वे स्त्रियाँ एकत्र होकर प्रायः इस प्रकार कहने लगीं कि वे (रुक्मिणी) हम सब लोगोंकी पूजनीया हैं, ज्येष्ठ पुत्रकी माता हैं और स्वयं भी ज्येष्ठा हैं॥ ४८॥ परंतु अतुल तेजस्वी श्रीकृष्णकी नित्य प्रिया सत्यभामा अपनी सौतके उस सौभाग्य-गुणका उदय नहीं सहन कर सकीं॥ ४९॥ वे रूप और यौवनसे सम्पन्न थीं। उन्हें अपने सौभाग्यपर गर्व था; अतः अभिमानिनी देवी सत्यभामा सौतके अभ्युदयका समाचार सुनते ही ईर्ष्याके वशीभूत हो गयीं॥ ५०॥ पवित्र मुसकानवाली सत्यभामाने कुंकुममें रँगी हुई साड़ी उतारकर रोषाकुल चित्तसे एकमात्र श्वेत वस्त्र धारण कर लिया। वे उस समय अधिक ईंधन डाल देनेसे बढ़ी हुई अग्निकी दीप्तिमती शिखाके समान प्रतीत होती थीं॥ ५१॥ उनके मनमें ईर्ष्याजनित आग बढ़ती जा रही थी, जिससे अत्यन्त दग्ध होनेके कारण वे श्रीहीन-सी हो गयी थीं। जैसे तारा सजल जलधरकी ओटमें चली जाय, उसी प्रकार रोषभरी सत्यभामाने वहाँ एकान्त कोपभवनमें प्रवेश किया॥ ५२॥ देवी सत्यभामाने ललाटमें प्रियतमके प्रति रोषसूचक चिह्नके तौरपर हिम और चन्द्रमाके समान श्वेत दुकूलपट्ट बाँध लिया और उस ललाटके किनारे-किनारे सरस (गीला) लाल चन्दन पोत लिया॥ ५३॥ उन बातोंको याद कर-करके वहाँ बड़े तकियेवाले पलंगपर बैठी हुई वह देवी रोषपूर्वक सिर हिला रही थी और सारे आभूषणोंको उतारकर उसने अपने केशोंको एक वेणीके रूपमें बाँध लिया था॥ ५४॥ 'आपको अकारण ही क्रोध हुआ है' ऐसा कहकर जब दासियोंने उन्हें कोप-भवनसे बाहर चलनेके लिये खींचा, उस समय उत्तम कुलमें उत्पन्न (अथवा परिजनोंसे युक्त) होनेपर भी झुकी भौंहोंवाली सत्यभामाने रोषवश बारम्बार लम्बी साँस खींचकर हस्तगत क्रीड़ाकमलको नखोंसे नोच-नोचकर चूर्ण-सा कर दिया॥ ५५॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे विष्णुपर्वणि पारिजातहरणे पञ्चषष्टितमोऽध्यायः॥ ६५॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत विष्णुपर्वमें पारिजातहरणविषयक पैंसठवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ६५॥

षट्षष्टितमोऽध्यायः

श्रीकृष्णका सत्यभामाको मनाना और सत्यभामाका मानसिक खेद प्रकट करके उनसे तपस्याके लिये अनुमति माँगना

वैशम्पायन उवाच

उपविष्टं मुनिं ज्ञात्वा रुक्मिण्या सह केशवः।
निश्चक्रामाप्रमेयात्मा व्यपदेशेन सर्ववित्॥ १

जगाम त्वरितश्चैव सत्यभामागृहं महत्।
रम्ये रैवतकोद्देशे निर्मितं विश्वकर्मणा॥ २

अभिमानवतीमिष्टां प्राणैरपि गरीयसीम्।
जानन् सात्राजितीं विष्णुर्विवेश शनकैरिव॥ ३

रुषितामिव तां देवीं स्नेहात् संकल्पयन्निव।
भीतभीतः स शनकैर्विवेश मधुसूदनः॥ ४

सेवकं द्वारदेशे तु तिष्ठेत्युक्त्वा विवेश ह।
नारदस्योपचारार्थं प्रद्युम्नं विनियुज्य सः॥ ५

स ददर्श प्रियां दूरात् क्रोधागारगतां तदा।
प्रेष्यामिव स्थितां कोपान्निःश्वसन्तीं मुहुर्मुहुः॥ ६

करजाग्रावलीढं तु पङ्कजं मुखपङ्कजे।
संश्लेषयित्वा निःश्वस्य विहसन्तीं पुनः पुनः॥ ७

किंचिदाकुलिताग्रेण चरणेन वसुन्धराम्।
कृत्वा पृष्ठेऽथ वदनं विहरन्तीं पुनः पुनः॥ ८

करपद्मे पुनः सव्ये मुखपद्मं निवेश्य च।
वनितां चारुसर्वाङ्गीं ध्यायन्तीं कमलेक्षणाम्॥ ९

सरसं चन्दनं गृह्य प्रेष्याहस्तादनिन्दिताम्।
प्रह्लादयित्वा हृदयं क्षिपन्तीं निर्दयं पुनः॥ १०

पुनरुत्थाय शयनात् पतन्तीं च पुनः पुनः।
तास्ताश्चेष्टाः प्रियायाश्च तथान्या ददृशे हरिः॥ ११

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! सब कुछ जाननेवाले अप्रमेयस्वरूप भगवान् श्रीकृष्ण नारदजीको रुक्मिणीके साथ बैठा जान किसी दूसरे कार्यके बहाने वहाँसे निकल गये॥ १॥ वहाँसे निकलकर वे बड़ी उतावलीके साथ सत्यभामाके विशाल भवनमें गये, जिसे रैवतक पर्वतके रमणीय शिखरपर साक्षात् विश्वकर्माने बनाया था॥ २॥ सत्राजित्‌की पुत्री सत्यभामा उन्हें प्राणोंसे भी अधिक प्रिय एवं आदरणीय थीं, परंतु वे स्वभावसे मानिनी थीं; इस बातको जानकर श्रीकृष्ण धीरे-धीरे उनके भवनमें घुसे॥ ३॥ मधुसूदन स्नेहवश देवी सत्यभामाके रूठी होनेका विचार करते हुए भयभीत-से होकर धीरे-धीरे उनके महलमें गये॥ ४॥ अपने साथ आये हुए सेवकको दरवाजेपर खड़े रहनेका आदेश दे और नारदजीके सत्कारके लिये प्रद्युम्नको नियुक्त करके वे उस महलके भीतर प्रविष्ट हुए॥ ५॥ उन्होंने दूरसे ही अपनी प्रिया सत्यभामाको कोपभवनके भीतर गयी हुई देखा। वे क्रोधवश बारम्बार लम्बी साँस खींच रही थीं और दासीकी भाँति वहाँ पड़ी थीं॥ ६॥ अपने मुखारविन्दपर नखोंसे कुचला हुआ एक कमल सटाये वे बारम्बार उच्छ्‌वास लेतीं और कभी-कभी हँस पड़ती थीं॥ ७॥ उनके चरणका अग्रभाग कुछ आकुल एवं चञ्चल-सा हो रहा था। उस चरणके द्वारा वे पृथ्वीपर रेखा-सी खींचतीं और पीछेकी ओर मुँह मोड़कर बार-बार घूमती थीं॥ ८॥ फिर बायें करकमलपर अपने मुखारविन्दको रखकर वे किसी चिन्तामें डूब जाती थीं। उनके सारे अङ्ग अत्यन्त मनोहर थे। नेत्र कमलोंकी शोभाको छीन लेते थे। वे एक सुन्दरी वनिता थीं॥ ९॥ दासीके हाथसे सरस चन्दन लेकर वे सती साध्वी सत्यभामा पहले तो उस चन्दनकी प्रशंसा करके उस दासीके हृदयको आह्लादित कर देतीं; परंतु पुनः निर्दयतापूर्वक उसको झिड़कने और फटकारने लगती थीं॥ १०॥ शय्यासे बार-बार उठकर फिर वहीं गिर पड़ती थीं। श्रीहरिने अपनी प्रियतमाकी वे तथा और भी बहुत-सी चेष्टाएँ देखीं॥ ११॥

अवगुण्ठ्य यदा वक्त्रमुपधाने न्यवेशयत्।
इदमन्तरमित्येवं तदा गत्वा जनार्दनः॥ १२

प्रेष्याजनं स संज्ञाय अनाख्येयोऽस्मि संज्ञया।
स शङ्कितप्रचारश्च वारितोऽन्वगमत् स ताम्॥ १३

ग्रहाय व्यजनं चैव स्थित्वा स परिपार्श्वतः।
शनैरिवासृजद् वातं जहास शनकैरिव॥ १४

स पारिजातपुष्पस्य संसर्गादनुवासितः।
बभार भगवान् गन्धं दिव्यं मानुषदुर्लभम्॥ १५

अत्यद्भुतं सुगन्धं च जिघ्रित्वा विस्मयान्विता।
अपावृणोन्मुखं सत्या किमेतदिति चाब्रवीत्॥ १६

सोत्थिता पृष्ठतो देवमपश्यन्ती शुचिस्मिता।
पर्यपृच्छदथो प्रेष्या गन्धस्य प्रभवे तदा॥ १७

ताः पृष्टास्त्वप्रभाषन्त्यो जानुभ्यां धरणीं गताः।
अधोमुख्यस्ततस्तस्थुः कृताञ्जलिपुटास्तदा॥ १८

तदपूर्वमदृष्ट्वैव गन्धं मुञ्चति मेदिनी।
कथमेकतरस्तस्या गन्धोऽयमिति तत् खलु॥ १९

किं न्विदं स्यादिति च सा विवेक्षन्ती समन्ततः।
ददृशे केशवं देवी सहसा लोकभावनम्॥ २०

युज्यतीति तदोवाच सहसास्त्राविलेक्षणा।
अवतिक्तेव रोषेण बभूव प्रणयान्विता॥ २१

सा प्रस्फुरितचार्वोष्ठी निःश्वस्याधोमुखी तदा।
मुहूर्तमसितापाङ्गी तस्थावन्यमुखी शुभा॥ २२

निबध्य भ्रुकुटिं वामां सम्यग् विक्षिप्य लोचने।
निवेश्य वदनं हस्ते शोभसीत्यब्रवीद्धरिम्॥ २३

तस्याः सुस्राव नेत्राभ्यां वारि प्रणयकोपजम्।
कुशेशयपलाशाभ्यामवश्यायजलं यथा॥ २४

जब उन्होंने अपने मुँहको वस्त्रसे ढककर तकियेपर रखा, तब यही उपयुक्त अवसर है—ऐसा सोचकर श्रीकृष्ण उनके पास चले गये॥ १२॥ वहाँ पहुँचकर उन्होंने संकेतसे दासियोंको समझा दिया कि मेरे आनेकी बात इन्हें बताना मत। दासियोंका शंकित होकर इधर-उधर जाना भी रोक दिया। उस दशामें उन्होंने सत्यभामाका अनुसरण किया (अर्थात् वे उनके पीछे जाकर खड़े हो गये)॥ १३॥ बगलमें खड़े हो हाथमें व्यजन लेकर धीरे-धीरे हवा करने और मुसकराने लगे॥ १४॥ उस समय पारिजात-पुष्पके संसर्गसे सुवासित हुए भगवान् श्रीकृष्ण एक ऐसी दिव्य सुगन्ध धारण करते थे, जो मनुष्यमें दुर्लभ है॥ १५॥ उस अत्यन्त अद्भुत सुगन्धको सूँघकर सत्यभामाको बड़ा विस्मय हुआ। उन्होंने मुँहपरसे कपड़ा हटाया और पूछा, 'यह क्या है?'॥ १६॥ पवित्र मुसकानवाली सत्यभामा उठकर बैठ गयीं और अपने पीछे खड़े हुए भगवान् श्रीकृष्णको न देखकर दासियोंसे पूछने लगीं, 'यह सुगन्ध कहाँसे प्रकट हुई है?'॥ १७॥ स्वामिनीके इस प्रकार पूछनेपर वे कुछ न बोलीं। धरतीपर घुटने टेककर सिर नीचे किये हाथ जोड़कर बैठी रहीं॥ १८॥ गन्धके आश्रयभूत भगवान्‌को न देखकर वे अनुमान करने लगीं कि पृथ्वी ही उस गन्धको प्रकट कर रही है; परंतु उसकी ऐसी उत्कृष्ट गन्ध कैसे हो गयी, यह बात समझमें नहीं आती॥ १९॥ तो फिर यह क्या है? ऐसा कहकर जब देवी सत्यभामाने चारों ओर दृष्टिपात किया, तब उन्हें सहसा विश्वभावन भगवान् श्रीकृष्ण दिखायी दिये॥ २०॥ तब सहसा उनके नेत्रोंमें आँसू भर आये और वे गद्गद कण्ठसे उतना ही कह सकीं कि आपके शरीरसे ऐसी सुगन्धका प्रकट होना उचित ही है। भगवान्‌के प्रति प्रेमभावसे युक्त होनेपर भी वे उस समय रोषसे कुछ तिक्त-सी हो उठी थीं॥ २१॥ उनके मनोहर ओठ फड़कने लगे। उन्होंने लम्बी साँस खींचकर मुँह नीचे कर लिया; फिर कजरारे नेत्रोंवाली वे शुभलक्षणा देवी दो घड़ीतक दूसरी ओर मुँह करके बैठी रहीं॥ २२॥ फिर अपने मुखको हाथपर रखकर बायीं भौंह चढ़ाये भलीभाँति दृष्टिपात करके वे श्रीहरिसे बोलीं—'बड़ी शोभा पा रहे हैं आप!'॥ २३॥ इतना कहकर उनके नेत्रोंसे प्रणयकोपजनित जलकी धारा बहने लगी, मानो कमलके दलोंसे तुषारका जल गिर रहा हो॥ २४॥

समुत्पत्य जलं तत्र पतितं वदनाम्बुजात्।
प्रतिजग्राह पद्माक्षः कराभ्यामतिसत्वरः॥ २५

अथोरसि पतत्तोयं श्रीवत्साङ्कोऽम्बुजेक्षणः।
प्रियानयनजं देवः परिमृज्येदमब्रवीत्॥ २६

स्त्रवत्यसितपत्राक्षि किमर्थं तव भामिनि।
तोयं सुन्दरि नेत्राभ्यां पुष्कराभ्यामिवोदकम्॥ २७

प्रभाते पूर्णचन्द्रस्य मध्याह्ने पङ्कजस्य च।
बिभर्ति तव किं वक्त्रं वपुस्तव मनोहरे॥ २८

किमर्थं कौंकुमं वासो महाराजतमेव च।
नानुगृह्णासि सुश्रोणि शुक्लं वासोऽनुगृह्यते॥ २९

वासस्येते तवाभीष्टे महारजतकौंकुमे।
देवाभिगमनादूर्ध्वं शुक्लं नेष्टं हि तत्स्त्रियाः॥ ३०

किञ्चानाभरणं गात्रं सुगात्रि तव कथ्यताम्।
चित्रकस्थानमाक्रान्तं कस्मादवरवर्णिनि॥ ३१

श्वेतेन तव पट्टेन वाससा प्रियदर्शने।
ललाटं सेव्यते कस्माच्चन्दनेन सुगन्धिना॥ ३२

सरसेनायतापाङ्गि कान्तेन हृदयप्रिये।
प्रभोपमर्दं केनापि कारणेनाननस्य च।
करोषि मम वात्यर्थं मनो ग्लापयसि प्रिये॥ ३३

प्रसृतश्चन्दनरसः कपोलप्रणयी तव।
पत्रलेखासपत्नत्वं प्राप्तो नातिविराजते॥ ३४

रत्नैश्चाभरणैर्मुक्ता तव ग्रीवा न शोभते।
ग्रहनक्षत्ररहिता द्यौरिवाव्यक्तशारदी॥ ३५

पूर्णचन्द्रसपत्नेन स्मेरेणाबहुभाषिणा।
किमु नो भाषसे माद्य मुखेनोत्पलगन्धिना॥ ३६

तब कमलनयन श्रीकृष्ण अत्यन्त उतावले हो उछलकर पलंगपर आ गये और प्रियतमाके मुखारविन्दसे गिरते हुए अश्रुजलको उन्होंने दोनों हाथोंमें ले लिया॥ २५॥ श्रीवत्सचिह्नसे सुशोभित कमलनयन भगवान् गोविन्दने प्रियाके नेत्रोंसे गिरते हुए उस जलको लेकर अपनी छातीमें लगा लिया और इस प्रकार कहा—॥ २६॥ 'नील कमलदलके समान नेत्रोंवाली भामिनि! सुन्दरि! जैसे कमलोंसे जल टपक रहा हो, उसी तरह तुम्हारे युगल नेत्रोंसे यह अश्रुजल कैसे गिर रहा है?॥ २७॥ मनोहारिणी प्रिये! तुम्हारा मुख प्रभातकालके शोभाहीन पूर्ण चन्द्रमा तथा मध्याह्नकालके मुरझाये हुए कमलका स्वरूप क्यों धारण करता है?॥ २८॥ सुश्रोणि! कुंकुम और कुसुम्भ रंगकी साड़ी क्यों नहीं धारण करती हो? श्वेत वस्त्रपर ही आज इतना अनुग्रह क्यों है?॥ २९॥ ये कुसुम्भ और कुंकुमके रंगमें रँगे हुए युगल वस्त्र हैं, जो तुम्हें बहुत प्रिय हैं। देवपूजा करके देवताओंका विसर्जन कर देनेके बाद स्त्रीके लिये श्वेत वस्त्र धारण करना अभीष्ट नहीं है॥ ३०॥ सुन्दर अङ्गोंवाली देवि! बताओ, आज तुम्हारा शरीर आभूषणोंसे भूषित क्यों नहीं है? धूसर कान्तिवाली सत्ये! जो चित्रक—पत्रभङ्ग-रचनाका स्थान है, वह तुम्हारा मुख-मण्डल आज आँसुओंसे लिप्त क्यों हो रहा है?॥ ३१॥ प्रियदर्शने! विशाल नयनप्रान्तवाली हृदयवल्लभे! आज तुम्हारा ललाट श्वेत पट्टवस्त्र और सरस सुगन्धित एवं कमनीय चन्दनद्वारा कैसे सेवित हो रहा है? प्रिये! किस कारणसे तुम अपने मुखकी प्रभाका उपमर्दन (शोभाका निवारण) कर रही हो अथवा यह सब करके क्यों मेरे मनको अत्यन्त ग्लानि पहुँचा रही हो?॥ ३२-३३॥ यह फैला हुआ चन्दन-रस तुम्हारे कपोलोंका प्रेमी बनकर पत्र-रचनाका शत्रु बन बैठा है (अर्थात् जहाँ पत्ररचना होनी चाहिये, वहाँ यह चन्दनका बेढंगा रस फैल रहा है), अतः अधिक शोभा नहीं पा रहा है॥ ३४॥ रत्नमय आभूषणोंसे सूनी हुई तुम्हारी यह ग्रीवा, जहाँ शरद्-ऋतुकी शोभा प्रकट नहीं हुई है, उस ग्रह-नक्षत्रोंके दर्शनसे रहित वर्षाकालके आकाशकी भाँति शोभा नहीं पा रही है॥ ३५॥ तुम्हारा मुसकराता हुआ मुख पूर्ण चन्द्रमाका प्रतिद्वन्द्वी बना रहता है। यह बहुत कम बोलता और कमलकी-सी सुगन्ध बिखेरता रहता है। ऐसे मनोहर मुखके द्वारा आज तुम मुझसे बात क्यों नहीं करती हो?'॥ ३६॥

अर्द्धाक्ष्णापि हि तावन्मां किमर्थं न निरीक्षसे।
मुञ्चस्येव सनिश्वासं तोयमञ्जनदुर्दिनम्॥ ३७

अलमिन्दीवरश्यामे रुदितेन मनस्विनि।
जलमञ्जनकल्माषं मा मोक्षीराननद्विषम्॥ ३८

त्वदीयोऽहं यदा देवि ख्यातो जगति किङ्करः।
नाज्ञापयसि किं मां त्वं पुरेव वरवर्णिनि॥ ३९

किमकार्षमहं देवि विप्रियं तव भामिनि।
येनातिमात्रमात्मानमायासयसि सुन्दरि॥ ४०

मनसा कर्मणा वाचा न त्वामतिचराम्यहम्।
सर्वथा सर्वचार्वङ्गि सत्यमेतद् ब्रवीम्यहम्॥ ४१

बहुमानोपमान्यासु स्त्रीसु सर्वासु शोभने।
स्नेहश्च बहुमानश्च त्वामृतेऽन्यासु नास्ति मे॥ ४२

नैव त्वां मदनो जह्यान्मृतेऽपि मयि मामकः।
इति मे निश्चितं विद्धि चेतः सुरसुतोपमे॥ ४३

क्षमादयश्च मेदिन्यां शब्दाद्याश्चाम्बरे गुणाः।
ध्रुवं पङ्कजगर्भाभे त्वयि स्नेहस्तथा मम॥ ४४

रुचिरग्नौ यथा दिव्या प्रभा चैव दिवाकरे।
कान्तिश्च शाश्वती चन्द्रे स्नेहस्त्वयि तथा मम॥ ४५

एवंवादिनमात्मेष्टं सत्यभामा जनार्दनम्।
शनैरुवाच नेत्राभ्यां प्रमृज्य सुभगा जलम्॥ ४६

मदीयस्त्वमिति ह्यासीन्मम नित्यं मनः प्रभो।
अद्य साधारणं स्नेहं त्वयि तावद् गतास्म्यहम्॥ ४७

नाज्ञासिषमहं पूर्वमनित्यं कालपर्ययम्।
अद्य लोकगतिं कृत्स्नामवगच्छामि न ध्रुवाम्॥ ४८

'पूरी नहीं तो आधी आँखसे भी मेरी ओर क्यों नहीं देखती हो? लम्बी साँस खींचकर अञ्जनसे मलिन हुआ अश्रुजल बहाती ही जा रही हो॥ ३७॥ नील कमलके समान श्याम कान्तिवाली मनस्विनि! यह रोना-धोना व्यर्थ है। इसे बंद करो। यह अञ्जनमिश्रित अश्रुजल तुम्हारे मुखकी शोभाका वैरी है। इसे अब न बहाओ॥ ३८॥ देवि! जब सारे संसारमें यह प्रसिद्ध है कि मैं तुम्हारा किङ्कर हूँ, तब वरवर्णिनि! तुम मुझे पहलेकी ही भाँति अभीष्ट सेवाके लिये आज्ञा क्यों नहीं देती हो?॥ ३९॥ देवि! भामिनि! सुन्दरि! मैंने तुम्हारा कौन-सा ऐसा अप्रिय कार्य (अपराध) किया है, जिससे तुम अपने-आपको अत्यन्त कष्ट दे रही हो॥ ४०॥ सर्वाङ्गसुन्दरि! मैं तुमसे यह सर्वथा सत्य कहता हूँ कि मैं मन, वाणी और क्रियाद्वारा भी कभी तुम्हारी आज्ञाका उल्लङ्घन नहीं करता हूँ॥ ४१॥ शोभने! यों तो मेरी सभी स्त्रियाँ मेरे द्वारा बहुत सम्मान और आदर पानेकी अधिकारिणी हैं, तथापि मेरा विशेष आदर और स्नेह तुम्हारे सिवा अन्य सब स्त्रियोंमें नहीं है॥ ४२॥ देवकन्याओंके समान सुन्दरी सत्यभामे! मेरा जो तुम्हारे प्रति कामभाव अथवा प्रगाढ़ प्रेम है, वह मेरे मर जानेपर भी तुम्हें नहीं छोड़ सकता—यह मेरी निश्चित धारणा है। इस बातको अच्छी तरह समझ लो॥ ४३॥ कमलके भीतरी भागकी-सी आभावाली प्राणवल्लभे! जैसे पृथ्वीमें क्षमा आदि और आकाशमें शब्द आदि गुण नित्य हैं, उसी प्रकार तुम्हारे प्रति मेरा स्नेह भी अटल है॥ ४४॥ जैसे अग्निमें दीप्ति, दिवाकर सूर्यमें दिव्य प्रभा और चन्द्रमामें कान्ति सदा बनी रहती है, उसी प्रकार तुम्हारे प्रति मेरा स्नेह सदा अविचल है'॥ ४५॥ जब श्रीकृष्ण इस प्रकार अपनेको प्रिय लगनेवाली बात कह रहे थे, उस समय सौभाग्यशालिनी सत्यभामाने अपने नेत्रोंसे बहते हुए आँसुओंको पोंछकर उनसे धीरेसे इस प्रकार कहा—॥ ४६॥ 'प्रभो! मेरे मनमें सदा यही विश्वास बना हुआ था कि तुम मेरे हो; परंतु आज यह बात मेरी समझमें आ गयी कि तुम्हारे भीतर मेरे लिये भी साधारण ही स्नेह है (विशेष नहीं)॥ ४७॥ मैं पहले यह नहीं जानती थी कि यहाँका सब कुछ अनित्य है और समय सभी बातोंमें उलट-फेर कर देता है; परंतु अब सम्पूर्ण लोकगतिको ही मैं अस्थिर (क्षणभङ्गुर) समझने लगी हूँ'॥ ४८॥

अमृताया द्वितीयोऽपि जन्मौ हि मम सर्वथा।
किमत्र बहुनोक्तेन हृदयं वेद्मि तेऽच्युत॥ ४९

वाङ्मात्रमेव पश्यामि माधुर्यं सम्प्रयुज्यते।
मयि स्नेहश्च कृतकस्तवान्यत्र न कृत्रिमः॥ ५०

ऋजुस्वभावां भक्तां च सर्वथा पुरुषोत्तम।
अवजानासि जानन् मां कैतवीं वृत्तिमास्थितः॥ ५१

एतावत् खलु पर्याप्तं दृष्टं द्रष्टव्यमव्ययम्।
श्रुतं चाप्यथ यच्छ्राव्यं दृष्टः स्नेहफलोदयः॥ ५२

यदि त्वहमनुग्राह्या मामनुज्ञातुमर्हसि।
तपस्येऽहं परं कृत्वा निश्चयं पुरुषोत्तम॥ ५३

भर्तुश्छन्देन नारीणां तपो वा व्रतकानि वा।
निष्फलं खलु यद् भर्तुरच्छन्देन क्रियेत हि॥ ५४

इतीदमुक्त्वा पुनरेव शोभना
मुमोच तोयं नयनोद्भवं सती।
ग्रहाय पीतं हरिवाससः शुभा
पटान्तमाधाय मुखे शुचिस्मिता॥ ५५

'अच्युत! मैं जबतक जीवित हूँ, तबतक तुम्हीं मेरे लिये द्वितीय (आत्मा, जीवन-सङ्गी, सहायक एवं प्रियतम पति) हो। इसी प्रकार तुम्हारे लिये मैं ही द्वितीया (आत्मा, जीवनसङ्गिनी, सहायिका एवं प्राणवल्लभा पत्नी) हूँ। ऐसा मानकर मैंने अपने जन्म और जीवनको सर्वथा सफल समझा था, परंतु अब यहाँ बहुत कहनेसे क्या लाभ? तुम्हारा हृदय कैसा है, यह मैं अच्छी तरह जान गयी॥ ४९॥ देखती हूँ कि तुम मेरे पास (केवल मीठी-मीठी बातें ही बनाया करते हो) वाणीमात्रके ही माधुर्यका प्रयोग करते हो। मेरे प्रति तुम्हारा स्नेह कृत्रिम (बनावटी) है; परंतु दूसरी जगह कृत्रिम नहीं स्वाभाविक है॥ ५०॥ पुरुषोत्तम! मेरा स्वभाव सरल है और सर्वथा तुम्हारे प्रति भक्तिभाव रखती हूँ—इस बातको जानते हुए तुम छल-कपटका आश्रय लेकर मेरी अवहेलना करते हो॥ ५१॥ अस्तु, इतना ही बहुत है। जो कुछ अपरिवर्तनीय दृश्य देखना था, वह मैंने देख लिया। जो सुननेयोग्य बात थी, वह मैंने सुन ली। तुम्हारे स्नेहके फलका उदय कहाँ किस प्रकार होता है, यह भी प्रत्यक्ष हो गया ॥ ५२॥ पुरुषोत्तम! यदि मैं तुम्हारे अनुग्रहका पात्र होऊँ तो मुझे आज्ञा दे दो। मैं उत्तम निश्चय लेकर तपस्या करूँगी॥ ५३॥ क्योंकि पतिकी इच्छासे ही किये गये नारियोंके तप अथवा व्रत सफल होते हैं। स्वामीकी इच्छाके बिना जो कुछ भी किया जाय, वह निश्चय ही निष्फल हो जाता है'॥ ५४॥ ऐसा कहकर पवित्र मुसकानवाली सुन्दरी शुभलक्षणा सती सत्यभामा भगवान् श्रीकृष्णके पीतवस्त्रका अञ्चल ले उसीसे अपने मुँहको ढककर पुनः नेत्रोंसे आँसू बहाने लगीं॥ ५५॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे विष्णुपर्वणि पारिजातहरणे षट्षष्टितमोऽध्यायः॥ ६६॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत विष्णुपर्वमें पारिजातहरणविषयक छाछठवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ६६॥

सप्तषष्टितमोऽध्यायः

श्रीकृष्णके पूछनेपर सत्यभामाका उन्हें अपने रोष एवं खेदका कारण बताना, श्रीकृष्णका उनके लिये पारिजात-वृक्ष लानेका विश्वास दिलाकर उन्हें संतुष्ट करना, सत्यभामा और श्रीकृष्णद्वारा नारदजीका सत्कार तथा नारदजीके द्वारा पारिजातकी उत्पत्ति और महिमाका वर्णन

वैशम्पायन उवाच

नारायणः सत्यभामां पुनरेवैष भारत।
प्रोवाच प्रणयात् क्रुद्धामभिमानवतीं सतीम्॥ १

श्रीभगवानुवाच

दहतीव ममाङ्गानि शोकः कमललोचने।
किमु तत् कारणं येन त्वमेवमतिविक्लवा॥ २

शापितासि मम प्राणैराचक्ष्वानत्ययो यदि।
श्रोतव्यं यदि भक्तेन भर्त्रा सर्वाङ्गशोभने॥ ३

ततः प्रोवाच भर्तारं सत्या सत्यव्रते स्थितम्।
वाष्पगद्गदया वाचा तथैवाधोमुखी स्थिता॥ ४

त्वयैव स्थापितं पूर्वं सौभाग्यं मम मानद।
जगत्यमलपत्राक्ष यत् ख्यातं केशिनाशन॥ ५

शिरो वहामि चेष्टत्वात् तवाहं देव गर्विता।
सर्वसीमन्तिनीमध्ये स्पृहणीयास्मि सर्वथा॥ ६

साहमद्यावहास्यास्मि सपत्नीनां जनस्य च।
इति प्रेष्याभिराख्यातं श्रुत्वा तथ्यं ततस्ततः॥ ७

यत् पारिजातकुसुमं दत्तवान् नारदस्तव।
तत् किलेष्टजने दत्तं त्वयाहं परिवर्जिता॥ ८

रत्नातिशयदानेन तस्यामभ्यधिकः किल।
स्नेहश्च बहुमानश्च प्रकाशं गमितस्त्वया॥ ९

तामस्तौषीत् समक्षं ते प्रियां स किल नारदः।
तमश्रौषीश्च हृष्टस्त्वं प्रियायाः संस्तवं किल॥ १०

स्तोतव्यो यदि तावत् स नारदेन तवाग्रतः।
दुर्भगोऽयं जनस्तत्र किमर्थमनुशब्दितः॥ ११

वैशम्पायनजी कहते हैं—भारत! नारायणस्वरूप श्रीकृष्णने प्रेमवश कुपित हुई अपनी अभिमानिनी पत्नी सती सत्यभामासे पुनः इस प्रकार कहा॥ १॥

श्रीभगवान् बोले—कमललोचने! तुम्हारा दुःख देखकर मुझे जो शोक हुआ है, वह मेरे सारे अङ्गोंको दग्ध-सा कर रहा है। वह कौन-सा ऐसा कारण है, जिससे तुम इस तरह अत्यन्त व्याकुल हो उठी हो॥ २॥ सर्वाङ्गशोभने! मैं अपने प्राणोंकी शपथ दिलाकर पूछता हूँ। यदि तुम्हें मेरा विनाश अभीष्ट नहीं है और यदि वह बात एक पत्नीभक्त पतिके सुननेयोग्य है तो उसे कहो॥ ३॥ तब सत्यभामा सत्यव्रतके पालनमें स्थित हुए अपने स्वामी श्रीकृष्णसे पूर्ववत् मुख नीचे किये हुए ही अश्रुगद्गद वाणीमें यों बोली—॥ ४॥ 'दूसरोंको मान देनेवाले कमलनयन! केशिनाशन! तुमने ही पहले मेरे सौभाग्यकी स्थापना की थी, जो जगत्‌में विख्यात हो गया था॥ ५॥ देव! तुम्हारी प्रियतमा होनेके कारण मैं बड़े गर्वसे सिर उठाकर चलती थी और समस्त सौभाग्यवती स्त्रियोंके बीचमें सर्वथा स्पृहणीय बनी हुई थी॥ ६॥ परंतु आज मैं अपनी सौतों और दूसरे लोगोंकी दृष्टिमें उपहासका पात्र बन गयी हूँ। मेरी दासियोंने जहाँ-तहाँसे इस तथ्य बातको सुनकर मुझे बताया है॥ ७॥ देवर्षि नारदने जो पारिजातका पुष्प तुम्हारे हाथमें दिया था, उसे तुमने अपने प्रियजनको दे दिया और मेरी उस अवसरपर उपेक्षा कर दी॥ ८॥ जो वस्तु सम्पूर्ण रत्नोंसे बढ़कर थी, उसे देकर तुमने देवी रुक्मिणीके प्रति अपने अधिक स्नेह और विशेष आदरको प्रकाशमें ला दिया है॥ ९॥ कहा जाता है कि तुम्हारे सामने ही नारदजीने तुम्हारी उस प्रियतमाका स्तवन किया और तुम बड़े हर्षके साथ प्राणवल्लभाकी वह स्तुति सुनते रहे॥ १०॥ यदि नारदजीको तुम्हारे सामने उन महारानीकी स्तुति करनी थी तो वहाँ उन्होंने इस अभागिनीके नामका उल्लेख किसलिये किया?॥ ११॥'

प्रणयस्य रसं दत्त्वा पश्चात्तापः प्रभो यदि।
अनुज्ञां मे प्रयच्छस्व तपः कर्तुं प्रसीद मे॥ १२

स्वप्नेनापि न दृष्टाहं श्रद्दध्यां पुष्करेक्षण।
यदन्यदेव निर्वृत्तमश्रौषं पश्यतस्तव॥ १३

कामं कामोऽस्तु तस्यैव मुनेरतुलतेजसः।
अत्र मन्युस्तु मे देव सांनिध्यं तव तत्र यत्॥ १४

मानार्थं जीव्यते लोके सद्भिरित्युक्तवानसि।
तदेवं सति नेच्छामि जीवितुं मानवर्जिता॥ १५

ममाभवद् यतो रक्षा भयमद्य ततो मम।
सर्वतो रक्षते यो मां स मां नाद्याभिरक्षति॥ १६

हा गतिं कां गमिष्यामि त्यक्ता देव त्वया विभो।
कुमुद्वतीगतां नूनं गतिं यास्याम्यसंगता॥ १७

किमकार्षमहं मोहादीश्वराणां प्रियाप्रियम्।
प्रिया भूत्वाप्रिया भूता यद्यहं तव मानद॥ १८

वसन्तकुसुमैश्चित्रं तदा रैवतकं गिरिम्।
प्रिया भूत्वाप्रिया भूता कथं द्रक्ष्याम्यहं पुनः॥ १९

परपुष्टस्वनोन्मिश्रं पुष्पगन्धवहं शुचिम्।
कथं नामानिलं द्वेष्या सेवेयं दुर्भगा सती॥ २०

जलक्रीडां तवाङ्कस्था देव कृत्वा महोदधौ।
कथं दौर्भाग्यमापन्ना पश्येयमपि सागरम्॥ २१

सात्राजिति प्रिया नान्या त्वत्तो मेऽस्तीति विद्धि माम्।
यदवोचः क्व तद् यातमथ वा कः स्मरिष्यति॥ २२

'प्रभो! यदि पहले प्रणयका रस पिलाकर (प्रेमका आनन्द देकर) पीछे संताप ही देना है तो मुझे तपस्या करनेकी आज्ञा दो। मुझपर इतनी कृपा अवश्य करो॥ १२॥ कमलनयन! सपनेमें अपनी आँखों देखकर भी जिस बातपर मैं विश्वास नहीं कर सकती थी, वही तुम्हारे देखते-देखते घटित हुई—यह मैंने सुना है। मैं जैसा सोचती थी, उससे कुछ और ही बात हो गयी॥ १३॥ देव! उन अतुल तेजस्वी मुनिके मनमें जो रुक्मिणीदेवीकी स्तुति करनेकी कामना थी, वह भले ही पूर्ण होती; परंतु मुझे तो यहाँ इसी बातका दुःख और रोष है कि वहाँ तुम्हारा सांनिध्य बना रहा (तुम वहाँ बैठकर प्राणवल्लभा महारानीजीकी स्तुति सुनते रहे)॥ १४॥ तुमने ही कभी कहा था कि श्रेष्ठ पुरुष संसारमें सम्मानके लिये ही जीते हैं; अतः ऐसी दशामें मैं मानरहित होकर जीवित रहना नहीं चाहती॥ १५॥ हाय! जिससे सदा मेरी रक्षा होती आयी है, उसीकी ओरसे आज मुझे भय प्राप्त हुआ। जो सब ओरसे मेरी रक्षा करते रहे हैं, वे आज मेरा संरक्षण नहीं कर रहे हैं॥ १६॥ हा देव! हा प्रभो! तुम्हारे त्याग देनेपर मैं किस गतिको प्राप्त होऊँगी। तुम्हारे सङ्गसे वञ्चित होनेपर मेरी दशा निश्चय ही कुमुद्वतीकी-सी हो जायगी (जैसे कुमुदिनी चन्द्रकिरणोंका स्पर्श न पाकर मुरझा जाती है, उसी प्रकार वही दशा मेरी भी होगी)॥ १७॥ मानद! पता नहीं मैंने मोहवश ऐश्वर्यशाली देवताओंका कौन-सा प्रिय और अप्रिय किया था, जिससे मैं आपकी प्रिया होकर फिर अप्रिया हो गयी॥ १८॥ जब प्रिया होकर मैं अप्रिया हो गयी, तब वसन्त-कुसुमोंसे विचित्र शोभा धारण करनेवाले इस रैवतक पर्वतका मैं पुनः कैसे दर्शन कर सकूँगी?॥ १९॥ आपके द्वेषका पात्र तथा दुर्भाग्यसे दूषित होकर मैं कोकिलकी काकलीसे मिश्रित फूलोंकी सुगन्ध लेकर बहनेवाली यहाँकी पवित्र वायुको कैसे सेवन कर सकूँगी?॥ २०॥ देव! आपके अङ्कमें स्थित हो महासागरमें जलक्रीड़ा करनेका सौभाग्य प्राप्त करके अब दुर्भाग्यकी मारी हुई मैं कैसे इस समुद्रकी ओर दृष्टिपात कर सकती हूँ?॥ २१॥ तुम जो मुझसे यह कहा करते थे कि सत्राजितकुमारी! तुमसे बढ़कर मेरी प्रिया दूसरी कोई स्त्री नहीं है; इसे ठीक समझो। तुम्हारी वे बातें कहाँ हैं? अथवा अब कौन उन बातोंको याद करेगा?॥ २२॥'

यदद्राक्षीद्धि मां श्वश्रूर्बहुमानेन नन्दिनी।
अवज्ञातां त्वया राज्ञीं नूनं दौर्भाग्यकर्शिताम्॥ २३

किं नु गूढेन मे प्रेम्णा सुस्निग्धेनापि मानद।
यत्समानां जनैर्देवो मां न पश्यति नित्यदा॥ २४

नाहं त्वां कितवं धूर्तमज्ञासिषमरिंदम।
अद्य ज्ञातोऽसि तत्पक्षचञ्चलो जनवञ्चकः॥ २५

स्वरवर्णेङ्गिताकारैर्निगूढो देव यत्नतः।
चौर ज्ञातोऽसि तत्पक्षवाङ्मात्रमधुरः शठः॥ २६

एवमीर्ष्यावशं प्राप्तां देवीं सात्राजितीं हरिः।
अभिमानवतीं देवः सान्त्वपूर्वमथाब्रवीत्॥ २७

मैवं पद्मपलाशाक्षि प्राणेश्वरि वद प्रिये।
किमत्र बहुनोक्तेन त्वदीयमवगच्छ माम्॥ २८

तत् पारिजातकुसुमं तस्या देवि ममाग्रतः।
नारदो मत्प्रियं कुर्वन् मुनिरक्लिष्टकर्मकृत्॥ २९

दाक्षिण्यादानुरोधाच्च दत्तवान् नात्र संशयः।
प्रसीदैकापराधं मे मर्षयस्व शुचिस्मिते॥ ३०

पारिजातकपुष्पाणि यदीच्छस्यतिकोपने।
तदा दातास्मि सुश्रोणि सत्यमेतद् ब्रवीमि तम्॥ ३१

स्वर्गास्पदादानयित्वा पारिजातं द्रुमेश्वरम्।
गृहे ते स्थापयिष्यामि यावत्कालं त्वमिच्छसि॥ ३२

एवमुक्ता तु हरिणा प्रोवाच हरिवल्लभा।
यद्येवं स द्रुमः शक्यस्त्विहानयितुमच्युत॥ ३३

मन्युरेष प्रमृष्टो हि भवेद् बहुगुणं मम।
सीमन्तिनीनां सर्वासामधिका स्यामधोक्षज॥ ३४

तथास्तु प्रथमः कल्प इति तां मधुसूदनः।
प्रोवाचाप्रतिमो देवो जगतः प्रभवाप्ययः॥ ३५

'जब तुम मेरा सम्मान करते थे, तब मेरी आनन्द-दायिनी सास मुझे बड़े आदरके साथ देखा करती थीं। अब तुम्हारे द्वारा अपमानित हुई सत्या रानीको वे निश्चय ही दुर्भाग्यसे दुर्बल हुई देखेंगी॥ २३॥ मानद! मेरे अत्यन्त स्निग्ध गूढ़ प्रेमसे क्या लाभ, जब कि देवस्वरूप तुम सदा मुझे दूसरे लोगोंके समान भी नहीं समझते॥ २४॥ शत्रुदमन! मैं नहीं जानती थी कि तुम इतने कपटी और धूर्त हो। आज तुम्हारा स्वरूप समझमें आया है। तुम मेरी सौतका पक्ष लेनेवाले चपल और मुझ-जैसी भोली-भाली अबलाओंको ठगनेवाले हो॥ २५॥ देव! तुम स्वर, वर्ण, चेष्टा और आकृतिके द्वारा यत्नपूर्वक अपने असली स्वरूपको छिपाये हुए थे; किंतु चोर! आज तुम पहचान लिये गये। सौतके पक्षपाती तुम केवल वाणीमात्रसे मधुर हो; वास्तवमें बड़े ही शठ हो'॥ २६॥ इस प्रकार ईर्ष्याके अधीन हुई सत्राजित्कुमारी अभिमानिनी देवी सत्यभामाको सान्त्वना देते हुए भगवान् श्रीकृष्णने कहा— ॥ २७॥ 'कमललोचने! प्राणेश्वरि! प्रिये! ऐसा न कहो। अब इस विषयमें बहुत कहनेसे क्या लाभ? तुम मुझे अपना ही समझो॥ २८॥ देवि! अनायास ही महान् कर्म करनेवाले नारद मुनिने मेरा प्रिय करनेके लिये वह पारिजातका फूल रुक्मिणीके सामने ही मेरे हाथमें दिया था। उसे मैंने उदारतावश और रुक्मिणीके अनुरोधसे उसके हाथमें दे दिया था। इसमें संशय नहीं है। पवित्र मुसकानवाली प्रिये! यदि तुम्हारी दृष्टिमें यह अपराध है तो तुम मेरे इस एकमात्र अपराधको सह लो और मुझपर प्रसन्न हो जाओ॥ २९-३०॥ अत्यन्त कोपमें भरी हुई प्रियतमे! सुश्रोणि! यदि तुम पारिजातके फूल ही चाहती हो तो वह तुम्हें अवश्य दूँगा। यह मैं तुमसे सत्य कहता हूँ॥ ३१॥ वृक्षराज पारिजातको स्वर्गसे लाकर जितने समयतक तुम चाहोगी, उतने समयके लिये तुम्हारे घरमें स्थापित कर दूँगा॥ ३२॥ भगवान् श्रीकृष्णके ऐसा कहनेपर हरिवल्लभा सत्यभामा बोलीं—'अच्युत! यदि इस प्रकार उस वृक्षको यहाँ लाया जा सके तो मैंने यह रोष त्याग दिया और मेरा सुख कई गुना बढ़ सकता है। अधोक्षज! उस दशामें मैं समस्त भाग्यवती स्त्रियोंमें सबसे अधिक गौरवशालिनी हो जाऊँगी'॥ ३३-३४॥ तब जगत्की उत्पत्ति और प्रलयके कारणभूत अनुपम देवता भगवान् मधुसूदनने उनसे कहा 'अच्छा तो तुम्हारा रोष शान्त करनेके लिये यही सर्वोत्तम उपाय हो'॥ ३५॥

तथेत्युक्तेति कृष्णेन तुतोष समितिंजय।
सत्यभामा सतामिष्टा कंसनाशनवल्लभा॥ ३६
ततः स्नातो जगन्नाथः सर्वेशः सर्वभावनः।
चकारावश्यकं सर्वं सर्वकामप्रदः सताम्॥ ३७
दध्यौ च नारदं देवः स्नातो देवमुनिर्नृप।
अभ्याजगाम स्नानान्ते मुनिश्रेष्ठो महोदधौ॥ ३८
तमागतं नरपते सतां गतिरधोक्षजः।
सत्यया सह धर्मात्मा यथाविधि अपूजयत्॥ ३९
पादौ प्रक्षालयाञ्चक्रे मुनेः सात्राजिती स्वयम्।
जलं देवः स्वयं कृष्णो भृङ्गारेण ददौ तदा॥ ४०
अथोपकल्पयामास सुखासीनाय केशवः।
परमान्नं स मुनये प्रयतात्मा जगद्गुरुः॥ ४१
तल्लोककर्त्रा सत्कृत्य दत्तं मुनिरुदारधीः।
बुभुजे वदतां श्रेष्ठः श्रद्धया परया युतः॥ ४२
उपस्पृश्य ततस्तृप्तः प्रददौ चाशिषः प्रभो।
ताश्च प्रीतेन मनसा प्रतिजग्राह केशवः॥ ४३
ततः सात्राजितीं देवीं प्रणतां नारदोऽब्रवीत्।
प्रसार्य दक्षिणं हस्तं सजलं जलजेक्षणाम्॥ ४४
यथेदानीं तथैव त्वं भव देवि पतिव्रता।
सविशेषं च सुभगा भव मत्तपसो बलात्॥ ४५
इत्युक्ता मुनिमुख्येन सत्यभामा हरिप्रिया।
उत्तस्थौ महता युक्ता हर्षेण तु नराधिप॥ ४६
स कृष्णोऽप्यभ्यनुज्ञां तु लब्ध्वा मुनिवरात् तदा।
बुभुजे विघसं धीमानप्रमेयपराक्रमः॥ ४७
ततस्त्वावश्यकं कृत्वा सत्यभामापि भारत।
अनुज्ञया तदा भर्तुर्विवेशान्तर्गृहं मुदा॥ ४८
ततो विनिर्गता देवी कृष्णस्यैवाभ्यनुज्ञया।
स्थिता पार्श्वे च कृष्णस्य नमस्कृत्वा महात्मने॥ ४९
ततो मुहूर्तमासित्वा नारदः कृष्णमब्रवीत्।
आपृच्छे त्वां गमिष्यामि शक्रलोकमधोक्षज॥ ५०

युद्धमें विजय पानेवाले जनमेजय! जब श्रीकृष्णने 'तथास्तु' कहकर उनकी प्रार्थना स्वीकार कर ली, तब सत्पुरुषोंकी इष्टदेवी और कंसनाशन श्रीकृष्णकी वल्लभा सत्यभामा बहुत संतुष्ट हुईं॥ ३६॥ तदनन्तर सबकी उत्पत्ति करनेवाले सर्वेश्वर जगन्नाथ श्रीकृष्णने, जो सत्पुरुषोंकी सम्पूर्ण कामनाओंके दाता हैं, स्नान और अन्य सब आवश्यक कार्य किया॥ ३७॥ नरेश्वर! तत्पश्चात् भगवान्ने देवर्षि नारदका चिन्तन किया। नारदजी उस समय महासागरमें स्नान कर रहे थे। स्नानके पश्चात् वे मुनिश्रेष्ठ भगवान् श्रीकृष्णके पास आये॥ ३८॥ राजन्! उन्हें आया देख सत्पुरुषोंके आश्रयदाता धर्मात्मा अधोक्षज श्रीकृष्णने सत्याके साथ उनका विधिपूर्वक पूजन किया॥ ३९॥ उस समय सत्राजित्की पुत्रीने स्वयं ही नारदजीके दोनों पैर धोये और भगवान् श्रीकृष्णने स्वयं ही झारीसे जल गिराया॥ ४०॥ जब वे सुखपूर्वक बैठ गये, तब अपने मनको वशमें रखनेवाले जगद्गुरु भगवान् श्रीकृष्णने मुनिके लिये उत्तम अन्न परोसा॥ ४१॥ लोकस्रष्टा भगवान् श्रीहरिके सत्कारपूर्वक दिये हुए उस अन्नको वक्ताओंमें श्रेष्ठ उदारबुद्धि नारद मुनिने बड़ी श्रद्धाके साथ भोजन किया॥ ४२॥ प्रभो! तदनन्तर हाथ-मुँह धो आचमन करके तृप्त हुए मुनिने भगवान्को बहुत-से आशीर्वाद दिये और भगवान् केशवने प्रसन्नचित्तसे उन आशीर्वादोंको ग्रहण किया॥ ४३॥ तत्पश्चात् नारदजी अपने चरणोंमें प्रणाम करनेवाली कमलनयनी सत्राजित्-पुत्री सत्यभामा देवीसे भीगे हुए दाहिने हाथको फैलाकर बोले— ॥ ४४॥ 'देवि! तुम इस समय जैसी हो, वैसी ही पतिव्रता सदा बनी रहो तथा मेरे तपके बलसे तुम विशेष सौभाग्यशालिनी होओ'॥ ४५॥ नरेश्वर! मुनिप्रवर नारदजीके ऐसा कहनेपर हरिप्रिया सत्यभामा महान् हर्षसे उत्फुल्ल होकर उठीं॥ ४६॥ उस समय मुनिवर नारदजीसे आज्ञा लेकर अप्रमेय पराक्रमी बुद्धिमान् श्रीकृष्णने भी यज्ञशिष्ट अन्नका भोजन किया॥ ४७॥ भरतनन्दन! तदनन्तर आवश्यक कृत्य करके सत्यभामाने भी पतिकी आज्ञासे अपने घरके भीतर प्रसन्नतापूर्वक प्रवेश किया॥ ४८॥ इसके बाद पुनः श्रीकृष्णकी ही आज्ञासे सत्यादेवी भीतरसे निकलीं और महात्मा नारदजीको नमस्कार करके श्रीकृष्णके पार्श्वभागमें बैठ गयीं॥ ४९॥ दो घड़ीतक बैठनेके पश्चात् नारदजीने श्रीकृष्णसे कहा—'अधोक्षज! अब मैं इन्द्रलोकको जाऊँगा; अतः जानेकी अनुमति चाहता हूँ॥ ५०॥

तत्राद्यं देवमीशानं नमस्कृत्य महेश्वरम्।
गास्यन्ति देवगन्धर्वास्तथैवाप्सरसां गणाः॥ ५१

मासि मास्युचितं ह्येतन्महेन्द्रसदने प्रभो।
पूजार्थं देवदेवस्य गान्धर्वं नृत्यमेव च॥ ५२

अन्तर्हितो देवदेवः सोमः सप्रवरो विभुः।
पश्यत्यमरमुख्येन कृतं भक्त्याद्रिघातिना॥ ५३

निमन्त्रितोऽहं पूर्वेद्युः पुष्पं दत्त्वा महाद्युते।
पारिजातस्य भद्रं ते तरुराज्ञो महात्मनः॥ ५४

यदेतदाहृतं स्वर्गात् त्वदर्थं तु मया विभो।
देवोपभोग्यमेतद्धि तरुराजसमुद्भवम्॥ ५५

इष्टः स वृक्षः सततं शच्याः पुष्करलोचन।
सौभाग्यमावहत्येव पूज्यमानोऽपि नित्यशः॥ ५६

पुण्यं कर्तुं तदा सृष्टः पारिजातो महाद्रुमः।
अदित्या धर्मनित्येन कश्यपेन महात्मना॥ ५७

पुरादित्या महातेजस्तोषितः किल कश्यपः।
वरेण च्छन्दयामास मारीचस्तपसो निधिः॥ ५८

सोवाच सुभगा येन भवेयं मुनिसत्तम।
स्वलंकृता कामतश्च सर्वैरेव विभूषणैः॥ ५९

ईप्सितं गीतनृत्यं च भवेन्मम तपोधन।
कुमारी नित्यदा चैव भवेयं तपसो निधे॥ ६०

विरजा शोकरहिता भवेयमिति नित्यदा।
पतिभक्तिमती चैव धर्मशीला तथैव च॥ ६१

पारिजातं ततोऽस्त्राक्षीददित्याः प्रियकाम्यया।
सर्वकामप्रदैः पुष्पैरावृतं नित्यगन्धदैः॥ ६२

त्रिशाखं सर्वदा दृश्यं सर्वभूतमनोहरम्।
सर्वपुष्पाणि दृश्यन्ते तस्मिन्नेव महाद्रुमे॥ ६३

ईदृशान्यपि पुष्पाणि बिभर्त्येकापि रूपिणी।
बहुरूपाणि चाप्यन्या पद्मानि च ततोऽपरा॥ ६४

'वहाँ देवगन्धर्व और अप्सराएँ आदिदेव ईशान भगवान् महेश्वरको नमस्कार करके उनकी प्रसन्नताके लिये नृत्य एवं गान करेंगी॥ ५१॥ प्रभो! देवाधिदेव महादेवजीकी पूजाके लिये महेन्द्रभवनमें प्रतिमास इस नृत्य और गानका समुचित आयोजन होता है॥ ५२॥ पर्वतोंका विघात करनेवाले देवश्रेष्ठ इन्द्रद्वारा भक्तिभावसे किये गये उस आयोजनको अपने श्रेष्ठ पार्षदों तथा भगवती उमासहित देवाधिदेव भगवान् महादेव अदृश्य रहकर देखते हैं॥ ५३॥ महाद्युते! आपका भला हो। इन्द्रने विशालकाय वृक्षराज पारिजातका फूल देकर पहले ही दिन मुझे वहाँ आनेके लिये निमन्त्रित किया था॥ ५४॥ प्रभो! तरुराज पारिजातका यह फूल, जिसे मैं स्वर्गसे आपके लिये ही लाया था, देवताओंके उपभोगकी वस्तु है॥ ५५॥ कमलनयन! वह वृक्ष इन्द्रपत्नी शचीको सदा ही प्रिय है। प्रतिदिन पूजित होनेपर वह अवश्य ही सौभाग्यकी प्राप्ति कराता है॥ ५६॥ धर्मपरायण महात्मा कश्यपने अदितिदेवीके पुण्यकर्मके लिये उस समय पारिजात नामक महावृक्षकी सृष्टि की थी॥ ५७॥ कहते हैं, पूर्वकालमें अदितिदेवीने महातेजस्वी कश्यप मुनिको अपनी सेवासे संतुष्ट किया। तब तपोनिधि मरीचिनन्दन कश्यपने उन्हें इच्छानुसार वर माँगनेके लिये कहा॥ ५८॥ उस समय उन्होंने उनसे कहा—'मुनिश्रेष्ठ! मुझे कोई ऐसी वस्तु दीजिये, जिससे मैं सदा सौभाग्यशालिनी बनी रहूँ। इच्छा होते ही समस्त आभूषणोंसे विभूषित हो जाऊँ। तपोधन! मुझे मनोवाञ्छित गीत और नृत्य प्राप्त होता रहे। तपोनिधे! मैं सदा कुमारी-सी ही बनी रहूँ और निर्मल, शोकरहित, पतिभक्तिमती एवं धर्मशीला होऊँ॥ ५९—६१॥ तब मुनिवर कश्यपने अदितिका प्रिय करनेकी इच्छासे पारिजातकी सृष्टि की। जो सम्पूर्ण मनोवाञ्छित वस्तुओंको देनेमें समर्थ और नित्य सुगन्धप्रद फूलोंसे भरा रहता है॥ ६२॥ वह सदा तीन शाखाओंसे ही युक्त दिखायी देता है और अपनी शोभासे सम्पूर्ण प्राणियोंका मन हर लेता है। उसी महान् वृक्षमें सभी तरहके फूल दिखायी देते हैं॥ ६३॥ देवताओंकी कोई रूपवती स्त्री तो ऐसे फूल भी धारण करती है (जैसे मैं यहाँ लाया था), दूसरी उसके अनेक रूपवाले फूलोंको ग्रहण करती है तथा तीसरी उस वृक्षसे केवल कमल-जैसे फूलोंको ही चुनती है॥ ६४॥

मन्दारादपि वृक्षाच्च सारमुद्धृत्य कश्यपः।
तस्मादेष तरुश्रेष्ठः सर्वेषां श्रेष्ठतां गतः॥ ६५

ततस्तत्र निबध्याथ कश्यपं प्रददौ शुभा।
अदितिर्मम पुण्यार्थं सौभाग्यार्थं तथैव च॥ ६६

अदित्या कश्यपो दत्तः पुण्यार्थं च तथा मम।
पुष्पदाम्ना वेष्टयित्वा कण्ठे पुण्यार्थमात्मवान्॥ ६७

निष्क्रयेण मया मुक्तः कश्यपस्तु तपोधनः।
इन्द्रो दत्तस्तथेन्द्राण्या सौभाग्यार्थं ततो मम॥ ६८

सोमश्चाप्यथ रोहिण्या ऋद्ध्या च धनदस्तथा।
एवं सौभाग्यदो वृक्षः पारिजातो न संशयः॥ ६९

परि जातो विष्णुपद्याः पारिजातेतिशब्दितः।
मन्दारपुष्पैर्यद्युक्तो मन्दारस्तेन कथ्यते॥ ७०

कोऽप्ययं दारुरित्याहुरजानन्तो यतो जनाः।
कोविदार इति ख्यातस्ततः स सुमहातरुः॥ ७१

मन्दारः कोविदारश्च पारिजातश्च नामभिः।
स वृक्षो ज्ञायते दिव्यो यस्यैतत् कुसुमोत्तमम्॥ ७२

'कश्यपजीने मन्दार-वृक्षसे भी सार निकालकर इस वृक्षका निर्माण किया था; इसलिये यह तरुश्रेष्ठ पारिजात समस्त देववृक्षोंमें उत्कृष्ट माना गया है॥ ६५॥ तदनन्तर शुभलक्षणा देवी अदितिने पुण्य और सौभाग्यकी वृद्धिके लिये उस वृक्षके पास कश्यपजीको बाँधकर मुझे दान कर दिया था॥ ६६॥ अदितिने पुण्यके लिये कश्यपजीके गलेमें फूलोंकी माला लपेटकर उन मनस्वी मुनिको मेरे हाथमें दानके रूपमें दे दिया था। उस दानका एकमात्र उद्देश्य था पुण्यकी प्राप्ति एवं वृद्धि॥ ६७॥ उस समय मैंने निष्क्रय (मूल्य) लेकर तपोधन कश्यपको मुक्त कर दिया था। इसी प्रकार इन्द्राणीने भी सौभाग्यकी वृद्धिके लिये मुझे इन्द्रका दान कर दिया था॥ ६८॥ रोहिणीने सोमका तथा ऋद्धिने धनाध्यक्ष कुबेरका दान भी इसी उद्देश्यसे किया था। इस प्रकार वह पारिजात-वृक्ष सौभाग्य प्रदान करनेवाला है, इसमें संशय नहीं है॥ ६९॥ यह वृक्ष विष्णुपदी गङ्गाके ऊपर प्रकट हुआ था, इसलिये इसका नाम पारिजात हुआ। मन्दारके फूलोंसे भी संयुक्त होनेके कारण यह मन्दार कहलाता है॥ ७०॥ जो लोग इसे नहीं जानते थे, वे इसे देखकर कहने लगे—'**कोऽप्ययं दारुः**' (यह कोई दारु है); इसलिये वह महान् वृक्ष कोविदार नामसे विख्यात हो गया॥ ७१॥ इस प्रकार वह दिव्य वृक्ष मन्दार, कोविदार और पारिजात—इन तीन नामोंसे जाना जाता है, जिसका यह उत्तम पुष्प मैं लाया था'॥ ७२॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे विष्णुपर्वणि पारिजातहरणे सप्तषष्टितमोऽध्यायः॥ ६७॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत विष्णुपर्वमें पारिजातहरणविषयक सरसठवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ६७॥

अष्टषष्टितमोऽध्यायः

श्रीकृष्णका पारिजात-वृक्ष माँगनेके लिये नारदजीके द्वारा इन्द्रके पास संदेश भेजना और न देनेपर उन्हें गदा मारनेकी धमकी देना

वैशम्पायन उवाच

ततो जिगमिषुं तत्र नारदं मुनिसत्तमम्।
प्रोवाच भगवान् विष्णुरप्रमेयपराक्रमः॥ १

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! तदनन्तर अनन्त पराक्रमी भगवान् श्रीकृष्णने इन्द्रलोकको जानेकी इच्छावाले मुनिश्रेष्ठ नारदसे वहाँ इस प्रकार कहा—॥ १॥

महर्षे धर्मतत्त्वज्ञ स्वर्गं गत्वा त्वयानघ।
दृष्ट्वा सदस्यान् देवस्य त्रिपुरघ्नस्य धीमतः॥ २

अनाज्ञया मद्वचनाद् विज्ञाप्यः पाकशासनः।
सम्भावयित्वा भ्रातृत्वं पौराणं वेत्सि यन्मुने॥ ३

यमस्राक्षीन्मुनिश्रेष्ठो भगवान् कश्यपस्तरुम्।
पारिजातं पुरादित्याः सुखार्थं धर्मसत्तमः॥ ४

स पुण्यमतिसौभाग्यं ददाति तरुसत्तमः।
तव दत्तं पुरा दानं व्रतेन तरुमुत्तमम्॥ ५

देवीभिर्धर्मनित्याभिर्धर्मार्थममरोत्तम।
दत्तं श्रुत्वाभिकाङ्क्षन्ति दातुं पत्न्यो मम प्रभो॥ ६

पुण्यार्थं दानधर्मार्थं मम प्रीत्यर्थमेव च।
आनाययद् द्वारवतीं पारिजातं महाद्रुमम्॥ ७

दत्ते दाने पुनः स्वर्गं तरुं त्वं नेतुमर्हसि।
स वाच्य एवं भगवान् बलभिद् भगवंस्त्वया॥ ८

तथा तथा प्रयत्नश्च कार्योऽस्मिन् मुनिसत्तम।
यथा तरुवरं दद्यात् पारिजातं सुरेश्वरः॥ ९

तत्र दूतगुणं तावत् पश्यामस्ते तपोधन।
सम्भाव्या सर्वकृत्यानां सम्पद्धि त्वयि मे मता॥ १०

एवं नारायणेनोक्तो नारदो भगवानृषिः।
प्रहस्योवाच केशिघ्नमिदं वाक्यं तपोधनः॥ ११

बाढमेवं प्रवक्ष्यामि यदुमुख्य सुरेश्वरम्।
न तु दास्यति देवेन्द्रः पारिजातं कथंचन॥ १२

'धर्मके तत्त्वको जाननेवाले निष्पाप महर्षे! आप स्वर्गमें जाकर (वहाँ उत्सव देखनेके लिये पधारे हुए) बुद्धिमान् त्रिपुरविनाशक देव रुद्रके सदस्यों (पार्षदगणों)-का दर्शन करके मेरे शब्दोंमें पाकशासन इन्द्रसे मेरी एक प्रार्थना सुनाइयेगा। मुने! मुझमें और इन्द्रमें जो पुराना (वामनावतारके समयका) भ्रातृभाव है, उसे तो आप जानते ही हैं। उसीको सादर सामने रखते हुए उनसे इस तरह बात कीजियेगा, जिससे मेरी ओरसे आज्ञा देनेका भाव प्रकट न हो॥ २-३॥ (नारदजीसे ऐसा कहकर श्रीकृष्णने अपना संदेश इस प्रकार उपस्थित किया—) देवराज! पूर्वकालमें धर्मात्माओंमें उत्तम मुनि-श्रेष्ठ भगवान् कश्यपने देवमाता अदितिको सुख पहुँचानेके लिये जिस पारिजात-वृक्षकी सृष्टि की थी, वह सब वृक्षोंमें श्रेष्ठ है और दानमें दिये जानेपर अत्यन्त सौभाग्य तथा पुण्य प्रदान करता है। अमरश्रेष्ठ! सुननेमें आया है कि पहले सदा धर्ममें तत्पर रहनेवाली अदिति आदि देवियोंने धर्मके लिये ही आपके उस उत्तम वृक्षको व्रतपालनपूर्वक (पतिसहित) दान कर दिया था (और उसे नारदजीने पुनः आपको लौटाया था)। प्रभो! इस बातको सुनकर मेरी पत्नियाँ भी पुण्य, दानधर्म तथा मेरी प्रसन्नताकी प्राप्तिके लिये उसका दान करना चाहती हैं। इसीलिये आपके इस भाईने उस पारिजात नामक महान् वृक्षको द्वारकापुरीमें मँगवाया है। यहाँ दानका कार्य सम्पन्न हो जानेपर आप पुनः उस वृक्षको स्वर्गलोकमें ले जा सकते हैं। (अब वे नारदजीको सम्बोधित करके बोले—) भगवन्! मुनिश्रेष्ठ! बलासुरका भेदन करनेवाले ऐश्वर्यशाली इन्द्रको आप मेरा संदेश इसी रूपमें सुनाइयेगा। इस विषयमें आपको वैसा-ही-वैसा प्रयत्न करना चाहिये, जिससे देवेश्वर इन्द्र वह तरुश्रेष्ठ पारिजात मुझे दे दें॥ ४—९॥ 'तपोधन! दूतमें जितने गुण होने चाहिये, वे सब मुझे आपके भीतर दिखायी देते हैं। मेरे मनमें आपको सौंपे गये सभी कार्योंकी सम्यक्-रूपसे सिद्धिके लिये निश्चित सम्भावना बनी हुई है'॥ १०॥ नारायणस्वरूप श्रीकृष्णके ऐसा कहनेपर तपोधन भगवान् नारद मुनिने हँसकर केशिनाशन भगवान् श्रीकृष्णसे इस प्रकार कहा— ॥ ११॥ 'यदुश्रेष्ठ! मैं स्वीकार करता हूँ। मैं देवराज इन्द्रसे ऐसी ही बात कहूँगा; परंतु मुझे मालूम है कि देवराज इन्द्र उस पारिजात-वृक्षको किसी तरह भी नहीं देंगे॥ १२॥'

मन्दरं पर्वतश्रेष्ठं दानवैस्त्रिदशैस्तथा।
निक्षिप्य तोयधौ पूर्वं पारिजातः समाहृतः॥ १३

मन्दरात् पर्वतश्रेष्ठान्नयितुं प्रेषितः पुरा।
पारिजातं हरेणापि लोककर्त्रा जनार्दन॥ १४

स्वयं विज्ञापितो गत्वा ततः शक्रेण शङ्करः।
आक्रीडद्रुम उद्याने शच्याः स्यादिति याचितः॥ १५

तथास्त्विति वरो दत्तो महादेवेन चानघ।
न च नीतः पारिजातो मन्दरं चित्रकन्दरम्॥ १६

क्रीडावृक्षः स शच्येति व्यपदेशेन मोक्षितः।
महेन्द्रेण महाबाहो पारिजातस्ततः पुरा॥ १७

प्रियार्थमुमया साक्षात् पारिजातवनं हरः।
गव्यूतिशतविस्तीर्णं मन्दरस्यैव कन्दरम्॥ १८

न तत्र सूर्यभाः कृष्ण प्रविशन्ति नगोत्तमे।
न च चन्द्रप्रभा शीता नैव कृष्ण सदागतिः॥ १९

शीतोष्णे छन्दतस्तत्र शैलपुत्र्या भवन्ति हि।
स्वयंप्रभं वनं तद्धि महादेवस्य तेजसा॥ २०

वर्जयित्वा महादेवौ सगणौ यदुनन्दन।
मां चान्यस्तद्वनं दिव्यं न प्रयाति कथंचन॥ २१

स्रवन्ति तत्र वार्ष्णेय पारिजाताः समन्ततः।
सर्वरत्नानि मुख्यानि मनसा काङ्क्षितानि वै॥ २२

गणास्तान्युपभुञ्जन्ति प्रवराणां महात्मनाम्।
आज्ञया देवदेवस्य लोकनाथस्य केशव॥ २३

पारिजाताद् बहुगुणं फलं तेषां तथा वनम्।
अभिमानं प्रभाश्चैव गुणा भूरिगुणास्तथा॥ २४

मूर्तिमन्तश्च ते वृक्षाः सोमं देवं वृषध्वजम्।
उपतिष्ठन्ति सततं प्रवरैः सह केशव॥ २५

रौद्रेण तेजसा जुष्टा दुःखैर्हीनाः सुखान्विताः।
तरवो मन्दरे ते हि दयिताः शैलकन्यया॥ २६

प्रविवेशान्धको नाम घोरस्तत्र महाबलः।
दैतेयो वरदानेन दर्पितः पापनिश्चयः॥ २७

स हतो देवदेवेन हरेणामित्रघातिना।
अवध्यः सर्वभूतानां वृत्राद् दशगुणं बली॥ २८

'जनार्दन! पहलेकी बात है, दानवों और देवताओंने पर्वतश्रेष्ठ मन्दरको क्षीरसागरमें डालकर उसका मन्थन करके पारिजात-वृक्षको वहाँसे निकाला था। तत्पश्चात् पूर्वकालमें गिरिश्रेष्ठ मन्दराचलसे लोककर्ता भगवान् शङ्करने उसी पारिजातको लेनेके लिये मुझे इन्द्रके पास भेजा था॥ १३-१४॥ उस समय इन्द्रने स्वयं ही जाकर भगवान् शङ्करसे प्रार्थना की और नम्रतापूर्वक यह निवेदन किया कि वह वृक्ष शचीके उद्यानमें क्रीडावृक्षके रूपमें रहे॥ १५॥ अनघ! तब महादेवजीने 'तथास्तु' कहकर इन्द्रको उसे रखनेके लिये वरदान दे दिया। फिर वे विचित्र कन्दराओंसे सुशोभित मन्दराचलपर उस पारिजात-वृक्षको नहीं ले गये॥ १६॥ महाबाहो! इस तरह प्राचीनकालमें महेन्द्रने 'वह शचीका क्रीड़ा-वृक्ष है' ऐसा बहाना बनाकर पारिजातको शङ्करजीके अधिकारसे छुड़ा लिया॥ १७॥ तब उमादेवीका प्रिय करनेके लिये साक्षात् भगवान् शिवने मन्दराचलकी दो सौ कोस विस्तृत कन्दराको ही पारिजातके वनसे परिपूर्ण कर दिया॥ १८॥ श्रीकृष्ण! उस श्रेष्ठ पर्वतपर वहाँ न तो सूर्यकी प्रभा पहुँच पाती है, न चन्द्रमाकी शीतल किरणोंका प्रवेश होता है और न वायुकी ही पहुँच हो पाती है॥ १९॥ वहाँ गिरिराजनन्दिनी उमाकी इच्छाके अनुसार सर्दी और गर्मी होती है। महादेवजीके तेजसे वह वन स्वयं ही प्रकाशित होता रहता है॥ २०॥ यदुनन्दन! महादेवी पार्वती, महादेव शिव, उन दोनोंके गण तथा मुझको छोड़कर दूसरा कोई उस दिव्य वनमें किसी तरह नहीं जाने पाता है॥ २१॥ 'वृष्णिनन्दन! वहाँके परिजात सब ओरसे सम्पूर्ण मनोवाञ्छित श्रेष्ठ रत्न टपकाते रहते हैं॥ २२॥ केशव! वहाँ देवाधिदेव विश्वनाथकी आज्ञासे महात्मा प्रमथोंके समूह उन रत्नोंका उपभोग करते हैं॥ २३॥ स्वर्गीय पारिजातकी अपेक्षा उन मन्दराचलवर्ती पारिजातोंका फल और वन कई गुना अच्छा है। उनमें अभिमान, प्रभा और गुण सभी स्वर्गीय पारिजातसे बढ़कर है। केशव! वहाँके प्रचुर गुणशाली वृक्ष मूर्तिमान् होकर उमासहित भगवान् शङ्करकी प्रमथगणोंके साथ सदा उपासना करते हैं॥ २४-२५॥ 'मन्दराचलपर जो ये परिजातके वृक्ष हैं, वे भगवान् रुद्रके तेजसे युक्त, दुःखरहित और सुखसे सम्पन्न हैं; अतः गिरिराजकुमारी उमाको वे विशेष प्रिय हैं॥ २६॥ एक समयकी बात है, अन्धक नामसे प्रसिद्ध घोर महाबली और पापपूर्ण निश्चय रखनेवाला दैत्य, जो वरदानसे मदमत्त रहता था, उस पारिजात-वनमें घुस गया॥ २७॥ वह वृत्रासुरसे दस गुना बलवान् और समस्त प्राणियोंके लिये अवध्य था तो भी वहाँ शत्रुघाती देवाधिदेव महादेवने उसे मार डाला॥ २८॥

एवं दुःखं न ते देव पारिजातं प्रदास्यति।
पुष्कराक्ष सहस्राक्षः सत्यमेतद् ब्रवीमि ते॥ २९

सततं सहितो देव्या शच्या स हि वरद्रुमः।
सर्वकामप्रदः कृष्ण तथेन्द्राय महौजसे॥ ३०

श्रीभगवानुवाच

मुने तद् युज्यते साधु महादेवेन धीमता।
यच्छचीकारणं कृत्वा न नीतः स तरुः पुरा॥ ३१

स ज्येष्ठः सर्वभूतानां लोककृत् प्रभवोऽव्ययः।
पारावर्यस्य सदृशं कृतवानिति मे मतिः॥ ३२

अहं यवीयान् देवस्य सर्वथा बलघातिनः।
लालनीयश्च भगवञ्जयन्त इव सत्तम॥ ३३

सर्वथा भगवांस्तावदुपायैर्बहुविस्तरैः।
करोतु यत्नं प्रीत्यर्थं शक्तो ह्यसि तपोधन॥ ३४

मया मुने प्रतिज्ञातं पुण्यार्थं सत्यभामया।
स्वर्गादिहानयिष्यामि पारिजातमिति प्रभो॥ ३५

मया तदनृतं कर्तुं कथं शक्यं तपोधन।
नानृतं हि वचो विप्र प्रोक्तं पूर्वं मयानघ॥ ३६

मयि भग्नप्रतिज्ञे वै लोकानां विप्लवो भवेत्।
यन्मया हि मुनिश्रेष्ठ लोकधर्मा गुणान्विताः।
परिधार्याः स्थितौ सर्वे स कथं ह्यनृतं वदेत्॥ ३७

न देवगन्धर्वगणा न राक्षसा
न चासुरा नैव च यक्षपन्नगाः।
मम प्रतिज्ञामपहन्तुमुद्यता
मुने समर्थाः खलु भद्रमस्तु ते॥ ३८

स पारिजातं यदि न प्रदास्यति
प्रयाच्यमानो भवतामरेश्वरः।
ततः शचीव्यामृदितानुलेपने
गदां विमोक्ष्यामि पुरंदरोरसि॥ ३९

'देव! कमलनयन! इस प्रकार दुःखके साथ कहना पड़ता है कि सहस्र नेत्रधारी इन्द्र आपको पारिजात नहीं देंगे। यह मैं आपसे सच्ची बात कहता हूँ॥ २९॥ श्रीकृष्ण! वह श्रेष्ठ वृक्ष हित-साधनकी शक्तिसे युक्त है। वह शचीदेवी तथा महापराक्रमी इन्द्रको सम्पूर्ण मनोवाञ्छित पदार्थ देता रहता है'॥ ३०॥

श्रीभगवान् बोले—मुने! पूर्वकालमें बुद्धिमान् महादेवजी शचीके कारण उस वृक्षको जो मन्दराचलपर नहीं ले गये, वह उनका कार्य ठीक जँचता है॥ ३१॥ वे समस्त भूतोंके लिये ज्येष्ठ, लोकस्रष्टा, जगत्की उत्पत्तिके कारण और अविनाशी परमात्मा हैं। उन्होंने बड़े-छोटेकी जो लोकमर्यादा है, उसके अनुरूप ही कार्य किया। ऐसा मेरा विश्वास है॥ ३२॥ परंतु भगवन्! मुनिश्रेष्ठ! मैं तो बलासुर-विनाशन देवेन्द्रका छोटा भाई हूँ; अतः जयन्तकी भाँति उनके द्वारा सर्वथा लाड़-प्यार पाने योग्य हूँ॥ ३३॥ तपोधन! आप बहुतेरे उपाय करके ऐसा यत्न करें, जिससे हमलोगोंमें प्रेम बना रहे; क्योंकि आप ऐसा करनेमें समर्थ हैं॥ ३४॥ मुने! प्रभो! मैंने सत्यभामाके पुण्यकार्यका सम्पादन करनेके लिये यह प्रतिज्ञा की है कि मैं पारिजात-वृक्षको स्वर्गसे यहाँ ले आऊँगा॥ ३५॥ निष्पाप तपोधन! मैं अपने उस वचनको मिथ्या कैसे कर सकता हूँ। विप्रवर! मैंने पहले भी कोई मिथ्या बात नहीं कही है॥ ३६॥ मुनिश्रेष्ठ! मेरी प्रतिज्ञा भङ्ग हो जानेपर समस्त लोकोंमें विप्लव मच जायगा (सब लोग झूठ बोलने लगेंगे)। मुझे तो जगत्की स्थितिके लिये उत्तम गुणसे युक्त समस्त लोकधर्मोंको धारण करना चाहिये; जिसपर ऐसा उत्तरदायित्व हो, वह झूठ कैसे बोल सकता है?॥ ३७॥ मुने! आपका कल्याण हो। यदि समस्त देवता, गन्धर्व, राक्षस, असुर, यक्ष और नाग भी उद्यत होकर आ जायँ तो वे मेरी प्रतिज्ञाको नष्ट करनेमें समर्थ नहीं हो सकते, नहीं हो सकते॥ ३८॥ यदि आपके याचना करनेपर अमरेश्वर इन्द्र पारिजात नहीं देंगे तो मैं उनके उस वक्षःस्थलपर, जहाँका अनुलेपन शचीके आलिङ्गनसे मिट गया है, अपनी गदाका प्रहार करूँगा॥ ३९॥

इति प्रवाच्यो यदि सामपूर्वकं
प्रयाच्यमानो न तरुं प्रयच्छति।
सुनिश्चयं मद्गमनाय सर्वथा
त्वयापि कार्यः खलु तत्र निश्चयः॥ ४०

यदि वे शान्तिपूर्वक माँगनेसे पारिजात-वृक्ष नहीं देते हैं तो मेरा इन्द्रलोकपर आक्रमण करनेका उत्तम निश्चय सर्वथा अटल है, यह उन्हें बता दीजियेगा तथा उस दशामें आपको भी वहाँ अवश्य यही निश्चय करना चाहिये॥ ४०॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे विष्णुपर्वणि पारिजातहरणे नारदकृष्णाभाषणे अष्टषष्टितमोऽध्यायः॥ ६८॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत विष्णुपर्वमें पारिजातहरणके प्रसङ्गमें नारद और श्रीकृष्णका वार्तालापविषयक अड़सठवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ६८॥

एकोनसप्ततितमोऽध्यायः

स्वर्गमें महादेवजीकी परिचर्याके लिये नृत्य-गीत आदि उत्सव, नारदजीका इन्द्रको श्रीकृष्णका पारिजातके लिये प्रार्थनाविषयक संदेश सुनाना और इन्द्रका अनेक कारण बताकर पारिजातको न देनेका विचार प्रकट करना

वैशम्पायन उवाच

नारदोऽथ मुनिर्गत्वा महेन्द्रसदनं प्रति।
तां रात्रिमवसत् तत्र ददृशे च महोत्सवम्॥ १
तत्रादित्या महात्मानो वसवश्च सुरोत्तमाः।
राजर्षयश्च विद्वांसः स्वर्गताः कर्मभिः शुभैः॥ २
नागा यक्षाश्च सिद्धाश्च चारणाश्च तपोधनाः।
ब्रह्मर्षयश्च शतशो देवर्षिमनवस्तथा॥ ३
सुपर्णाश्च महात्मानो मरुतश्च महाबलाः।
दिवौकसां निकायाश्च शतशोऽन्ये समागताः॥ ४
उपर्युपरि सर्वेषां सोमो देवो महेश्वरः।
तस्थावमितविक्रान्तः स्वैर्गणैः परिवारितः॥ ५
देवर्षिभिर्मुनिश्रेष्ठैः संवृतः सर्वभावनः।
कल्पान्तरसहस्त्रेषु क्षयो येषां न विद्यते॥ ६
यानर्चयन्ति सततं देवा देवेश्वरोपमाः।
आत्मज्ञा नावलेपान्धा ये च धर्मपथि स्थिताः॥ ७
रुद्राश्च काश्यपा देवमध्युपासन्त भारत।
स्कन्दश्च भगवानग्निर्गङ्गा च सरितां वरा॥ ८
अर्चिष्मांस्तुम्बुरुश्चैव भारिश्च वदतां वरः।
नेतारो देवदेवानामेते हि तपसान्विताः॥ ९
एताननुविधीयन्ते सर्वदेवगणा नृप।
धर्मनित्यास्तपोनित्याः सतां मार्गमुपाश्रिताः॥ १०

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! तदनन्तर नारद मुनिने महेन्द्रभवनमें जाकर उस रातमें वहीं निवास किया और पूर्वोक्त महोत्सवको भी देखा॥ १॥ वहाँ महात्मा आदित्यगण, सुरश्रेष्ठ वसुगण, अपने शुभ कर्मोंसे स्वर्गमें गये हुए विद्वान् राजर्षिगण, नाग, यक्ष, सिद्ध, चारण, तपोधन ब्रह्मर्षि, सैकड़ों देवर्षि और मनु, महामना गरुड़ पक्षी, महाबली मरुद्गण तथा देवताओंके जो अन्य सैकड़ों समुदाय हैं, वे सब उस उत्सवमें पधारे थे॥ २—४॥ सबके ऊपर उमासहित अमित पराक्रमी भगवान् महेश्वर अपने प्रमथगणोंसे घिरे हुए खड़े थे। वे सर्वभावन भगवान् शिव उन मुनिश्रेष्ठ देवर्षियोंसे घिरे हुए थे, जिनका सहस्रों कल्पान्तरोंमें भी विनाश नहीं होता है॥ ५-६॥ जो अभिमानसे अन्धे नहीं हुए हैं तथा जो धर्मके मार्गपर स्थित रहनेवाले हैं, वे देवेश्वरोंके समान प्रभावशाली आत्मज्ञानी देवता भी उन देवर्षियोंकी सतत आराधना करते हैं॥ ७॥ भरतनन्दन! रुद्रगण, कश्यपजीके पुत्र (देवगण), भगवान् स्कन्द, अग्निदेव, सरिताओंमें श्रेष्ठ गङ्गा तथा अर्चिष्मान्, तुम्बुरु और वक्ताओंमें श्रेष्ठ भारि (ये तीनों गन्धर्व) वहाँ महादेवजीकी सेवामें उनके पास ही खड़े थे। ये सब-के-सब तपोबलसे सम्पन्न होनेके कारण देवाधिदेवोंके भी नेता हैं (उनका नेतृत्व करनेमें समर्थ हैं)। नरेश्वर! जो नित्य-निरन्तर धर्म और तपमें संलग्न रहकर सत्पुरुषोंके मार्गका आश्रय ले चुके हैं, वे समस्त देवगण इन रुद्र आदिका अनुसरण करते हैं॥ ८—१०॥

ये त्विमे मानुषा देवानर्चयन्ति शुभार्थिनः।
तानर्चयन्ति ह्यमरास्तथा राजञ्छुभार्थिनः॥ ११

पितृकृत्येषु देवानां संन्यासं ते त्वनुष्ठिताः।
स्वाध्यायवन्तः कौरव्य सदा नियमचारिणः॥ १२

गन्धर्वाधिपतिः श्रीमांस्तत्र चित्ररथो नृप।
सपुत्रो वादयामास देववाद्यानि हृष्टवत्॥ १३

ऊर्णायुश्चित्रसेनश्च हाहा हूहूस्तथैव च।
डुम्बरस्तुम्बुरुश्चैव जगुरन्ये च षड्गुणान्॥ १४

उर्वशी विप्रचित्तिश्च हेमा रम्भा च भारत।
हेमदन्ता घृताची च सहजन्या तथैव च॥ १५

जुजोष भगवान् देवस्तदुपस्थानमात्मवान्।
वृत्तेन तुष्टः शक्रस्य जगाम जगतो गतिः॥ १६

गते भूतपतौ सर्वे नृपा जग्मुर्यथागतम्।
महेन्द्रेणार्चिता देवाः स्वानेव निलयान् गताः॥ १७

ततः सर्वेषु यातेषु सुखासीनं पुरंदरम्।
सदस्यैः स्वैः सहासीनं नारदोऽभिययौ मुनिः॥ १८

तमिन्द्रः पूजयामास समुत्थाय तपोधनम्।
दिदेश कुशगर्भं च पीठमात्मासनोपमम्॥ १९

नारदोऽथ महातेजा महेन्द्रमिदमब्रवीत्।
दूतोऽहममरश्रेष्ठ विष्णोरतुलतेजसः॥ २०

किञ्चित्कार्यं पुरस्कृत्य प्रेषितोऽस्मि महात्मना।
आनर्तादार्तिहरणं तस्यैवानघतेजसः॥ २१

प्रीतिवाक्यानि हृद्यानि प्रयुज्य मुनये तदा।
ततः प्रहृष्टो भगवानब्रवीत् पाकशासनः॥ २२

राजन्! जो ये मनुष्य मङ्गलकी कामना रखकर उन देवताओंकी पूजा करते हैं, वे देवता भी उन शुभार्थी मनुष्योंको अभीष्ट फल देकर उनका सत्कार करते हैं॥ ११॥ कुरुनन्दन! जो देवताओं और पितरोंके कृत्योंमें लगे रहते हैं, जिन्होंने संन्यासधर्मका अनुष्ठान किया है, जो सदा स्वाध्यायशील तथा नियमोंके पालनमें तत्पर रहते हैं (उन मनुष्योंको भी अभीष्ट फल देकर वे देवता उनका सत्कार करते हैं)॥ १२॥ नरेश्वर! उस उत्सवके समय वहाँ श्रीमान् गन्धर्वराज चित्ररथ पुत्रसहित प्रसन्नतापूर्वक देवसम्बन्धी वाद्य बजा रहे थे॥ १३॥ ऊर्णायु, चित्रसेन, हाहा, हूहू, डुम्बर, तुम्बुरु तथा अन्य गन्धर्व छः[1] गुणोंसे युक्त गीत गा रहे थे॥ १४॥ भारत! उर्वशी, विप्रचित्ति, हेमा, रम्भा, हेमदन्ता, घृताची और सहजन्या—ये अप्सराएँ भी अपने नृत्य और गीत-कलाका प्रदर्शन करती थीं॥ १५॥ आत्मसंयमशील जगदाधार भगवान् महादेव अपनी आराधनासे सम्बन्ध रखनेवाले उस नृत्य-गीत आदिको प्रसन्नतापूर्वक ग्रहण करते—उसका आनन्द लेते थे। इन्द्रके उस बर्ताव एवं व्यवहारसे संतुष्ट हो वे भगवान् शिव पुनः अपने स्थानको चले गये॥ १६॥ भगवान् भूतनाथके चले जानेपर समस्त राजर्षि (जो अपने पुण्यफलसे स्वर्गमें आये थे,) वहाँसे अपने-अपने स्थानको लौट गये तथा देवता भी देवराज इन्द्रसे सम्मानित हो अपने भवनोंको ही चले गये॥ १७॥ जब सब लोग विदा हो गये और देवराज इन्द्र सुखपूर्वक सिंहासनपर बैठ गये, उस समय अपने सदस्योंके साथ बैठे हुए इन्द्रके पास नारद मुनि गये॥ १८॥ इन्द्रने उठकर उन तपोधनका पूजन किया और अपने आसनके समान ही एक पीठ उन्हें बैठनेके लिये दिया, जिसके भीतर कुश बिछा हुआ था॥ १९॥ किंतु महातेजस्वी नारदने (खड़े-खड़े ही) महेन्द्रसे कहा—'अमरश्रेष्ठ! मैं इस समय अनुपम तेजस्वी भगवान् विष्णुका दूत हूँ॥ २०॥ उन महात्मा श्रीकृष्णने कुछ कार्य सामने रखकर मुझे आनर्तदेश (द्वारकापुरी)-से यहाँ भेजा है। उन निर्मल तेजस्वी श्रीकृष्णका ही कष्ट दूर करना आजका मुख्य कार्य है (जिसके लिये मैं यहाँ आया हूँ)'॥ २१॥ तब हर्षमें भरे हुए भगवान् इन्द्रने देवर्षि नारदके प्रति मनको प्रिय लगनेवाले प्रेमपूर्ण वचनोंका प्रयोग करके इस प्रकार पूछा—॥ २२॥

१. वक्रिम, स्निग्ध, मधुर, लास्य, विभक्त तथा अवबद्ध—ये गीतके छः गुण हैं। (नीलकण्ठीसे)

किमाह पुरुषश्रेष्ठः शीघ्रमाचक्ष्व मे मुने।
चिरस्य खलु कृष्णेन संस्मृतोऽस्मि महात्मना॥ २३

नारद उवाच

महेन्द्रेन्द्रानुजं द्रष्टुं गतोऽहं भ्रातरं तव।
कथञ्चिद् द्वारकां तत्र काश्यपानां यशस्करम्॥ २४

तं तु रैवतकेऽद्राक्षं तदासीनमरिंदमम्।
रुक्मिण्या सहितं वीरमुमयेव वृषध्वजम्॥ २५

पारिजाततरोः पुष्पं तस्य दत्तं मयानघ।
विस्मापनार्थं देवेश पत्नीनामुरुतेजसः॥ २६

तद् दृष्ट्वा तस्य पत्न्यस्तु विस्मयं परमं ययुः।
बहुकामप्रदं पुष्पं वृक्षराजसमुद्भवम्॥ २७

गुणास्तासां मया ख्यातास्तस्य पुष्पस्य मानद।
सृष्टिश्च पारिजातस्य कश्यपेन महात्मना॥ २८

अदित्या कश्यपो दत्तः पुण्यार्थं च यथा मम।
पुष्पदाम्ना वेष्टयित्वा कण्ठे पुण्यार्थमात्मवान्॥ २९

त्वं च दत्तो यथा शच्या देवाश्चान्ये सुरेश्वर।
निष्क्रयश्च यथा दत्तः कश्यपाद्यैर्महर्षिभिः॥ ३०

तच्छ्रुत्वा तस्य पत्न्येका सत्यभामेति विश्रुता।
पुण्यकार्यं मनश्चक्रे दयिता ते यवीयसः॥ ३१

तया चाभ्यर्थितो भर्ता देव देव्या गणेश्वरः।
प्रतिजज्ञे स धर्मार्थं यवीयांस्तव मानद॥ ३२

ततो मामुक्तवान् वीरो विष्णुर्बलवतां वरः।
यथावत् सुरमुख्येश ब्रुवतः शृणु भावतः॥ ३३

लालनीयो यवीयांस्तु प्रणिपत्याच्युतोऽब्रवीत्।
आनयेयं सुरश्रेष्ठ पारिजातं वरद्रुमम्॥ ३४

'मुने! पुरुषोत्तम श्रीकृष्णका कौन-सा संदेश है, यह मुझे शीघ्र बताइये। निश्चय ही महात्मा श्रीकृष्णने चिरकालके पश्चात् मेरा स्मरण किया है'॥ २३॥

नारदजीने कहा—महेन्द्र! मैं तुम्हारे छोटे भाई श्रीकृष्णका दर्शन करनेके लिये किसी तरह द्वारका जा पहुँचा था, जो वहाँ रहकर कश्यपकी संतानों (देवताओं)-के यशका विस्तार करते हैं॥ २४॥ वे शत्रुदमन वीर उस समय (द्वारकापुरीके निकटवर्ती) रैवतक पर्वतपर रुक्मिणी देवीके साथ उसी तरह विराजमान थे, जैसे भगवान् शङ्कर उमा देवीके साथ (कैलास या मन्दराचलपर) विराज रहे हों॥ २५॥ निष्पाप देवेश्वर! वहाँ मैंने उन महातेजस्वी श्रीकृष्णके हाथमें उनकी पत्नियोंको विस्मयमें डालनेके लिये पारिजात-वृक्षका एक फूल दिया॥ २६॥ वृक्षराज पारिजातके उस पुष्पको, जो बहुत-सी कामनाओंको पूर्ण करनेवाला है, देखकर उनकी पत्नियोंको बड़ा आश्चर्य हुआ॥ २७॥ मानद! वहाँ मैंने उनकी पत्नियोंको उस फूलके गुण भी बताये और यह भी कहा कि महात्मा कश्यपने पारिजातकी सृष्टि की है॥ २८॥ सुरेश्वर! फिर अदितिने पुण्यकी प्राप्तिके लिये आत्मसंयमी महर्षि कश्यपके गलेमें फूलोंकी माला लपेटकर जिस तरह मेरे हाथमें उनका दान कर दिया था तथा शचीने जिस प्रकार तुम्हारा दान किया था और अन्य देवता भी जिस प्रकार अपनी पत्नियोंद्वारा दानमें दिये गये थे एवं कश्यप आदि महर्षियोंने जिस प्रकार मुझे अपना निष्क्रय (मूल्य) दिया था, (वह सारा प्रसङ्ग मैंने वहाँ सुनाया)॥ २९-३०॥ वह सुनकर उनकी एक पत्नीने, जिसका नाम सत्यभामा है तथा जो तुम्हारे छोटे भाईको बहुत ही प्रिय है, अपने मनमें वह दानरूप पुण्यकार्य करनेका विचार किया॥ ३१॥ दूसरोंको मान देनेवाले देव! जैसे देवी पार्वती प्रमथगणोंके स्वामी भगवान् शिवसे कोई बात कहती हैं, उसी प्रकार सत्यभामाने अपने पतिसे पारिजात-वृक्षके लिये प्रार्थना की और तुम्हारे छोटे भाईने उसके धर्मकार्यकी सिद्धिके लिये उस वृक्षको ला देनेकी प्रतिज्ञा कर दी॥ ३२॥ देवप्रमुख! देवेश्वर! तदनन्तर बलवानोंमें श्रेष्ठ वीर श्रीकृष्णने तुमसे कहनेके लिये मुझसे जो बात कही थी, उसे ज्यों-की-त्यों सुना रहा हूँ; तुम ध्यान देकर सुनो॥ ३३॥ तुम्हारे छोटे भाई अच्युतने, जो तुमसे लाड़-प्यार पानेके योग्य हैं, तुम्हें प्रणाम करके इस प्रकार कहा है—'सुरश्रेष्ठ! मैं उत्तम वृक्ष पारिजातको यहाँ लाना चाहता हूँ'॥ ३४॥

मनोरथोऽस्तु सफलो वध्वास्तेऽसुरसूदन।
धर्मकृत्ये विशेषेण वध्वास्ते सुरसत्तम॥ ३५

अयं दर्शितकल्याणो लोको लोकगणेश्वर।
पश्यन्त्वमरकल्याणं मत्प्रभावाच्च मानवाः॥ ३६

वैशम्पायन उवाच

वासुदेववचः श्रुत्वा महेन्द्रः कुरुनन्दन।
नारदं वदतां श्रेष्ठमिदं वाक्यमथाब्रवीत्॥ ३७

भजासनं द्विजश्रेष्ठ युक्तमुक्तं त्वया द्विज।
संदेशं प्रतिदास्यामि विष्णोरतुलतेजसः॥ ३८

आसीने नारदे शक्रो लब्धानुज्ञोऽथ नारदात्।
स्वमासनं ततो भेजे तस्यैव सदृशं प्रभो॥ ३९

उपविष्टः सुरपतिरथोवाच तपोधनम्।
निरीक्ष्य स्वबलं वीर्यं हर्षदं वृत्रनाशनः॥ ४०

शक्र उवाच

महर्षे कुशलं पृष्ट्वा वक्तव्यस्ते जनार्दनः।
वचनान्मम धर्मज्ञ सर्वभूतसुखावहः॥ ४१

मदनन्तरमीशस्त्वं जगतो नात्र संशयः।
त्वदीयः पारिजातश्च रत्नान्यन्यानि चाच्युत॥ ४२

त्वं तु भारावतरणं कर्तुं देव महीं गतः।
मानुष्यं सर्ववृत्तानां स्थितः कार्यस्य सिद्धये॥ ४३

त्वयि तीर्णप्रतिज्ञे हि पुनः प्राप्ते त्रिविष्टपम्।
पूरयिष्यामि वध्वास्ते इष्टान् कामानधोक्षज॥ ४४

स्वर्गीयानि च रत्नानि न नेतव्यानि केशव।
स्वल्पार्थे मानुषं लोकमिति पूर्वकृता स्थितिः॥ ४५

उत्क्रम्य हि स्थितिं दैवीं प्रवर्तामि महाबल।
यद्यहं किं प्रवक्ष्यन्ति प्रजापतिगणाः प्रभो॥ ४६

ब्रह्मणा सह पुत्रेण सपौत्रेण महात्मना।
नियमाः सर्वकृत्यानां स्थापिता जगतो ध्रुवाः॥ ४७

प्रजापतिकृतं मार्गमपास्य व्रजतो मम।
श्रुत्वा प्रजापतिर्धीमाञ्छापमप्युत्सृजेत् प्रभुः॥ ४८

'असुरसूदन! सुरश्रेष्ठ! आपकी बहू सत्यभामाका यह मनोरथ, जो विशेषतः धर्मकार्यसे सम्बन्ध रखता है, सफल होना चाहिये॥ ३५॥ लोकगणेश्वर! यह मनुष्यलोक भी उस कल्याणमय वृक्षका दर्शन कर सके (ऐसी कृपा कीजिये)। मेरे प्रभावसे मनुष्य भी देवताओंके लिये कल्याणकारी वृक्ष पारिजातका दर्शन कर लें (ऐसा अवसर दीजिये)'॥ ३६॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—कुरुनन्दन! भगवान् वासुदेवका वह संदेश सुनकर देवराज इन्द्रने वक्ताओंमें श्रेष्ठ नारदजीसे इस प्रकार कहा—॥ ३७॥ 'द्विजश्रेष्ठ! पहले आसन तो ग्रहण कीजिये। ब्रह्मन्! आपने उचित बात कही है। मैं अनुपम तेजस्वी विष्णुके लिये संदेशका उत्तर दूँगा'॥ ३८॥ प्रभो! जब नारदजी बैठ गये, तब उन्हींसे आज्ञा लेकर इन्द्र अपने सिंहासनपर बैठे, जो उन्हींके अनुरूप था॥ ३९॥ सिंहासनपर बैठकर वृत्रासुरका विनाश करनेवाले देवराज इन्द्रने अपने हर्षदायक बल और पराक्रमकी ओर दृष्टिपात करके तपोधन नारदजीसे कहा॥ ४०॥

इन्द्र बोले—धर्मज्ञ महर्षे! आप मेरी ओरसे कुशल पूछकर समस्त प्राणियोंको सुख देनेवाले जनार्दनसे मेरे ही शब्दोंमें इस प्रकार कहियेगा—॥ ४१॥ 'अच्युत! मेरे बाद तुम्हीं इस जगत्के ईश्वर हो, इसमें संशय नहीं है। इस दृष्टिसे पारिजात तथा दूसरे-दूसरे रत्न भी तुम्हारे ही हैं॥ ४२॥ परंतु देव! तुम पृथ्वीका भार उतारनेके लिये भूतलपर गये हो और अभीष्ट कार्यकी सिद्धिके लिये सभी बर्तावों और व्यवहारोंमें मानवीय मर्यादाका ही आश्रय लेते हो॥ ४३॥ अधोक्षज! जब तुम भूभारहरणकी प्रतिज्ञा पूरी करके पुनः स्वर्गलोकमें आओगे, उस समय मैं तुम्हारी पत्नी सत्यभामाके सभी अभीष्ट मनोरथोंको पूर्ण करूँगा॥ ४४॥ केशव! किसी छोटे-मोटे कार्यके लिये स्वर्गीय रत्नोंको मनुष्यलोकमें नहीं ले जाना चाहिये। यह पूर्वकालकी ही बाँधी गयी मर्यादा है॥ ४५॥ महान् बलशाली प्रभो! यदि मैं देवलोककी मर्यादाका उल्लङ्घन करके कोई नया बर्ताव करूँ तो प्रजापतिगण मुझे क्या कहेंगे॥ ४६॥ पुत्र और पौत्रोंसहित महात्मा ब्रह्माजीने जगत्के समस्त कार्योंके लिये कुछ अटल नियम निश्चित कर दिये हैं॥ ४७॥ यदि मैं प्रजापति ब्रह्माद्वारा नियत किये गये मार्गको छोड़कर चलूँ तो इसे सुनकर बुद्धिमान् भगवान् प्रजापति मुझे शाप भी दे सकते हैं'॥ ४८॥

अस्माभिर्भिद्यमानं हि मर्यादासेतुबन्धनम्।
भेत्स्यन्त्यशङ्किता दैत्या दैत्यपक्षास्तथापरे॥ ४९

स्त्रीनिमित्तमितो नीते पारिजाते द्रुमेश्वरे।
स्वर्गौकसो भविष्यन्ति विमनस्काश्च मानद॥ ५०

उपभोगा मनुष्याणां विहिता ये स्वयंभुवा।
तैस्तु तुष्यतु मे भ्राता सम्पश्यन् कालपर्ययम्॥ ५१

इहापि तात त्रिदिवे मम यः स्यात् परिग्रहः।
त्रिदिवस्थोऽपि तं कृष्णः सर्वं भोक्तुमिहार्हति॥ ५२

हृष्टो ह्यामिषभोज्यानामभिमानाज्जनार्दनः।
ततो धर्मं समुत्सृज्य पापमेवानुवर्तते॥ ५३

स्त्रीवश्यता ख्याप्यमाना कृष्णस्य हि महात्मनः।
जगत्ययशसा योगं जनयेदिति मे मतिः॥ ५४

मानुष्यं मानुषे प्राप्तो यदेतन्मधुसूदनः।
कुर्यान्निर्बन्धनीयं यद् भ्रात्रा ज्येष्ठेन नारद॥ ५५

स्वर्ग्यरत्नविलोपेन धर्षणा स्यान्ममानघ।
ज्ञातितो धर्षणा चैव विशेषेणैव गर्हिता॥ ५६

धर्ममर्थं च कामं च क्रमेण मधुसूदनः।
सेवत्वेष सतां धर्मान् स्थापितान् पद्मयोनिना॥ ५७

महीतलं पारिजातमर्पयिष्याम्यहं यदि।
पौलोमीमादितः कृत्वा को नु मां बहु मंस्यते॥ ५८

पारिजातं महीपृष्ठे दृष्ट्वा स्पृष्ट्वा च मानुषाः।
स्वर्गार्थं नोद्यमिष्यन्ति दृष्ट्वा स्वर्गफलं क्षितौ॥ ५९

पारिजातगुणान् मर्त्या जुषन्ति यदि नारद।
देवतानां मनुष्याणां न विशेषो भविष्यति॥ ६०

तत्र यत् क्रियते कर्म इह तद् भुज्यते नरैः।
स्वर्गार्थं न यतिष्यन्ति पारिजातगुणान्विताः॥ ६१

सर्वरत्नवरः स्वर्गे पारिजातस्तपोधन।
तुल्यं देवसमैर्मर्त्यैः सर्वदैव जगद् भवेत्॥ ६२

'यदि हमलोग ही प्राचीन मर्यादारूपी सेतुका बन्धन तोड़ दें तब तो दैत्य तथा दैत्यपक्षके दूसरे लोग निःशङ्क होकर उन मर्यादाओंका भेदन करने लगेंगे॥ ४९॥ मानद! यदि केवल एक स्त्रीको संतुष्ट करनेके लिये स्वर्गसे वृक्षराज पारिजातको भूतलपर पहुँचा दिया जाय तो स्वर्गलोकके निवासियोंका मन उदास हो जायगा॥ ५०॥ स्वयम्भू ब्रह्माने मनुष्योंके लिये जो उपभोगकी वस्तुएँ बनायी हैं, समयके परिवर्तनको देखते हुए मेरे भाईको उन्हींसे संतोष करना चाहिये॥ ५१॥ तात! इस स्वर्गलोकमें मेरे पास जो भोग-सामग्रियोंका संग्रह है, वह सब श्रीकृष्ण यहाँ रहकर भी तो भोग सकते हैं॥ ५२॥ 'मर्त्यलोककी भोग्य वस्तुओंसे हृष्ट-पुष्ट होनेके कारण जनार्दन श्रीकृष्णको कुछ अभिमान हो गया है। उस अभिमानके कारण ही वे धर्मका परित्याग करके पापका ही अनुसरण कर रहे हैं॥ ५३॥ महात्मा श्रीकृष्ण स्त्रीके वशीभूत रहते हैं, इस बातकी प्रसिद्धि तो उनके लिये संसारमें अयश या कलङ्ककी ही प्राप्ति करायेगी; ऐसा मेरा विश्वास है॥ ५४॥ नारद! मनुष्यलोकमें मानव-शरीरको प्राप्त हुए मधुसूदन यदि मुझ बड़े भाईके साथ दुराग्रहपूर्ण बर्ताव करें तो यह उनके लिये उचित नहीं है॥ ५५॥ निष्पाप देवर्षे! स्वर्गीय रत्नके विलोप होने—उसके लूटे जानेसे मेरा तिरस्कार होगा और अपने भाई-बन्धुसे तिरस्कार पाना तो बहुत ही निन्दित है॥ ५६॥ ये मधुसूदन क्रमशः धर्म, अर्थ और कामका सेवन करें। ब्रह्माजीके द्वारा स्थापित किये हुए सत्पुरुषोंके धर्मोंका आश्रय लें॥ ५७॥ यदि मैं पारिजातको भूतलपर भेज दूँगा तो शचीसे लेकर कौन ऐसा स्वर्गवासी होगा, जो मुझे अधिक आदरकी दृष्टिसे देखेगा॥ ५८॥ भूतलपर पारिजातका दर्शन और स्पर्श करके मनुष्य पृथ्वीपर ही स्वर्गका फल उपलब्ध हुआ देख स्वर्गकी प्राप्तिके लिये उद्यम ही नहीं करेंगे॥ ५९॥ नारद! यदि मनुष्य पारिजातके गुणों (और उससे मिलनेवाले लाभों)-का सेवन करने लगेंगे तो देवताओं और मनुष्योंमें कोई अन्तर ही नहीं रह जायगा॥ ६०॥ मर्त्यलोकमें जो शुभकर्म किया जाता है, उसका फल मनुष्य यहाँ स्वर्गमें आकर भोगते हैं। जब उन्हें भूतलपर ही पारिजातके गुण (लाभ) प्राप्त होने लगेंगे, तब वे स्वर्गके लिये यत्न नहीं करेंगे॥ ६१॥ तपोधन! पारिजात स्वर्गके सब रत्नोंमें श्रेष्ठ है। यदि यह भूतलपर चला गया तो मनुष्य देवताओंके समान हो जायँगे और (उनसे भरा हुआ) सारा जगत् सदा ही (स्वर्गके) तुल्य हो जायगा'॥ ६२॥

यज्ञैर्मर्त्या न यक्ष्यन्ति लब्धस्वर्गफला भुवि।
न पूर्तानि प्रदास्यन्ति तुल्यत्वममरैर्गताः॥ ६३

यज्ञैर्जप्याह्निकैश्चैव नित्यमाप्याययन्ति नः।
मानुषाः स्वर्गमिच्छन्तः श्रद्दधानास्तपोधन॥ ६४

तत् सर्वं न करिष्यन्ति पारिजातगुणान्विताः।
निस्तेजसो भविष्याम ते गतास्तद्विहीनताम्॥ ६५

इतः सुवृष्ट्या सस्यैस्ते जीवन्ति पुरुषा भुवि।
आप्याययन्तस्तेऽप्यस्मान् दानैर्यज्ञैस्तथैव च॥ ६६

न बुभुक्षा पिपासा वा बाधते यदि मानुषान्।
रोगो जरा वा मृत्युर्वा धर्मज्ञारतिरेव च॥ ६७

दौर्गन्ध्यं वा सुघोरा वा ईतयः कर्मसम्भवाः।
किमुद्योगं करिष्यन्ति पारिजातगुणान्विताः॥ ६८

सर्वथा नयनं तत्र पारिजातस्य न क्षमम्।
इति वाच्यस्त्वया विप्र विष्णुरक्लिष्टकर्मकृत्॥ ६९

यथा यथा च मे भ्राता तुष्यत्येतद् विचारयन्।
तथा तथा त्वया कार्यं कार्यं मत्प्रीतिमिच्छता॥ ७०

हाराश्च मणयश्चैव चन्दनान्यगुरूणि च।
वस्त्राणि च विचित्राणि वध्वास्त्वं द्वारकां नय॥ ७१

योग्यानि यानि मर्त्यानां यावदिच्छति केशवः।
न स्वर्गपरिमोषं तु कर्तुमर्हति साम्प्रतम्॥ ७२

ददामि रत्नानि यथेप्सितान्यहं
बहूनि चित्राणि विभूषणानि च।
न पारिजातं च कथंचन द्रुमं
मुने प्रदास्यामि दिवौकसां प्रियम्॥ ७३

'पृथ्वीपर स्वर्गका फल पाकर देवताओंकी समानताको प्राप्त हुए मनुष्य न तो यज्ञोंद्वारा देवताओंका यजन करेंगे और न पूर्तकर्मोंमें ही धन लगायेंगे॥ ६३॥ तपोधन! श्रद्धालु मनुष्य स्वर्गकी अभिलाषा रखकर यज्ञ, जप तथा नित्य कर्मोंके द्वारा सदा हमलोगोंको तृप्त एवं पुष्ट करते हैं॥ ६४॥ परंतु पारिजातका लाभ मिल जानेपर मनुष्य वह सब कुछ नहीं करेंगे; फिर तो उन यज्ञ आदिसे वञ्चित होकर हम सब देवता निस्तेज हो जायँगे॥ ६५॥ स्वर्गकी ओरसे जब अच्छी वर्षा की जाती है, तब उससे पैदा होनेवाले सस्यों (अनाजों)-द्वारा भूतलके मनुष्य जीवन-निर्वाह करते हैं और वे भी दान एवं यज्ञोंद्वारा हम देवताओंका पोषण करते हैं॥ ६६॥ धर्मज्ञ नारद! पारिजातका लाभ मिल जानेपर यदि मनुष्योंको भूख-प्यास नहीं सतायेगी, रोग, बुढ़ापा, अरति (असंतोष या दुःख-शोक) अथवा मृत्युकी प्राप्ति नहीं होगी, उनमें दुर्गन्ध नहीं रहेगा और कर्मजनित भयंकर ईतियाँ* उन्हें बाधा नहीं देंगी तो वे स्वर्गके लिये क्यों उद्योग करेंगे॥ ६७-६८॥ विप्रवर! पारिजातका मर्त्यलोकमें ले जाया जाना सर्वथा अनुचित है। यह बात आप अनायास ही महान् कर्म करनेवाले भगवान् विष्णु (श्रीकृष्ण)-से कह दीजियेगा॥ ६९॥ मुने! मेरी प्रसन्नताकी इच्छा रखकर आपको वहाँ वैसा ही कार्य या प्रयत्न करना चाहिये, जिससे मेरे इस कथनपर विचार करके मेरे भाई श्रीकृष्ण संतुष्ट हो जायँ॥ ७०॥ देवर्षे! आप बहू सत्यभामाके लिये यहाँसे हार, मणि, चन्दन, अगुरु और विचित्र वस्त्र द्वारकाको ले जाइये॥ ७१॥ जो-जो वस्तुएँ मनुष्योंके योग्य हैं, उन्हें श्रीकृष्ण जितना चाहें ले सकते हैं; परंतु उन्हें इस समय स्वर्गलोकको लूटकर इसे कंगाल बना देना उचित नहीं है॥ ७२॥ मुने! मैं श्रीकृष्णकी इच्छाके अनुसार बहुत-से रत्न और विचित्र आभूषण दे रहा हूँ, परंतु पारिजात वृक्षको मैं किसी प्रकार नहीं दूँगा; क्योंकि यह स्वर्गवासियोंको बहुत प्रिय है (इसे वे अन्यत्र जाने देना नहीं चाहते)॥ ७३॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे विष्णुपर्वणि पारिजातहरणे इन्द्रवाक्ये एकोनसप्ततितमोऽध्यायः॥ ६९॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत विष्णुपर्वमें पारिजातहरणके प्रसंगमें इन्द्रका वाक्यविषयक उनहत्तरवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ६९॥

* खेतीको हानि पहुँचानेवाले उपद्रव ईति कहलाते हैं। ये छः प्रकारके हैं—१. अतिवृष्टि, २. अनावृष्टि, ३. टिड्डी पड़ना, ४. चूहे लगना, ५. पक्षियोंकी अधिकता और ६. दूसरे राजाकी चढ़ाई।

सप्ततितमोऽध्यायः

श्रीकृष्णके द्वारा गदाप्रहारकी धमकी सुनकर कुपित हुए इन्द्रका नारदजीसे उनके बर्तावकी कटु आलोचना करना और युद्ध किये बिना पारिजात-वृक्षको न देनेका ही निश्चय करना

वैशम्पायन उवाच

देवराजवचः श्रुत्वा नारदः कुरुनन्दन।
प्रोवाच वाक्यं वाक्यज्ञो धर्मात्मा धर्मवित्तमः॥ १

अवश्यमेव वक्तव्यं हितं बलनिषूदन।
मया तव महाबाहो बहुमानोऽस्ति मे त्वयि॥ २

उक्तो मया वासुदेवो जानता भवतो मतम्।
न दत्तः पारिजातोऽयं हरस्यापि त्वया पुरा॥ ३

हेतवश्च मया तस्य दर्शितास्ते समासतः।
न चावगतवान् देवः सत्यमेतद् ब्रवीमि ते॥ ४

उपेन्द्रोऽहं महेन्द्रेण लालनीयः सदेति माम्।
उवाच पुण्डरीकाक्षो दत्तमुत्तरमेव च॥ ५

पुनः पुनर्मया वास्य हेतवो देव दर्शिताः।
ततो न बुद्धिर्व्यावृत्ता वृत्रनाशन तस्य वै॥ ६

अपि चाप्युक्तवान् देवो वाक्यान्ते मधुसूदनः।
प्रत्याह पुरुषश्रेष्ठः सरोषमिव वासव॥ ७

न देवगन्धर्वगणा न राक्षसा
न चासुरा नैव च यक्षपन्नगाः।
मम प्रतिज्ञामपहन्तुमुद्यता
मुने समर्थाः खलु भद्रमस्तु ते॥ ८

स पारिजातं यदि न प्रदास्यति
प्रयाच्यमानो भवतामरेश्वरः।
ततः शचीव्यामृदितानुलेपने
गदां विमोक्ष्यामि पुरंदरोरसि॥ ९

उपेन्द्रस्य महेन्द्रायं भ्रातुस्ते निश्चयः परः।
यदत्र मन्यसे न्याय्यं सम्प्रधार्य कुरुष्व तत्॥ १०

तत्त्वं हितं च देवेश श्रूयतां वदतो मम।
नयनं पारिजातस्य द्वारकां मम रोचते॥ ११

वैशम्पायनजी कहते हैं—कुरुनन्दन! देवराज इन्द्रकी बात सुनकर धर्मज्ञोंमें श्रेष्ठ तथा बातचीत करनेकी कला जाननेवाले धर्मात्मा नारदजीने यह बात कही—॥ १॥ 'महाबाहु बलसूदन! मेरे मनमें तुम्हारे प्रति बहुत आदर है, इसलिये मुझे तुम्हारे हितकी बात अवश्य बतानी चाहिये॥ २॥ मैं तुम्हारे इस विचारको जानता था; क्योंकि तुमने पहले महादेवजीके माँगनेपर भी यह परिजात-वृक्ष उन्हें नहीं दिया था; इसलिये मैंने तुम्हारी ओरसे श्रीकृष्णको सब कुछ बताया था॥ ३॥ तुमने पारिजात न देनेके विषयमें जो कारण बताये हैं, उन्हें भी मैंने संक्षेपसे उनको दर्शाया था; परंतु भगवान् श्रीकृष्णने उन्हें स्वीकार नहीं किया, यह मैं तुमसे सच्ची बात बता रहा हूँ॥ ४॥ मेरी बातका उत्तर देते हुए कमलनयन श्रीकृष्ण कहने लगे,'मैं उपेन्द्र (इन्द्रका छोटा भाई) हूँ; अतः महेन्द्रको सदा ही मेरा लाड़-प्यार करना चाहिये'॥ ५॥ वृत्रासुरविनाशन देव! मैंने बारम्बार उन्हें कारण दिखाये; परंतु उनका विचार नहीं बदला॥ ६॥ इन्द्र! मेरी बातके अन्तमें पुरुषश्रेष्ठ भगवान् मधुसूदनने कुछ रुष्ट-से होकर उत्तर देते हुए कहा—॥ ७॥ 'मुने! आपका कल्याण हो। यदि समस्त देवता, गन्धर्व, राक्षस, असुर, यक्ष और नाग भी उद्यत होकर आ जायँ तो वे मेरी प्रतिज्ञाको नष्ट करनेमें समर्थ नहीं हो सकते, नहीं हो सकते॥ ८॥ 'यदि आपके याचना करनेपर अमरेश्वर इन्द्र पारिजात नहीं देंगे तो मैं उनके उस वक्षःस्थलपर, जहाँका अनुलेपन शचीके आलिङ्गनसे मिट गया है, अपनी गदाका प्रहार करूँगा'॥ ९॥ महेन्द्र! तुम्हारे भाई उपेन्द्रका यही अन्तिम निश्चय है। अब यहाँ तुम जो न्यायोचित कार्य समझो, उसका विचार करके वही करो॥ १०॥ देवेश्वर! मैं तुम्हें तत्त्व और हितकी बात बताता हूँ, सुनो; मुझे पारिजातका द्वारकामें ले जाया जाना ही ठीक जँचता है'॥ ११॥

नारदेनैवमुक्तस्तु सुव्यक्तं बलदेहभित्।
रोषाविष्टः सहस्राक्षोऽब्रवीदेतन्नराधिप॥ १२

अनागसि मयि ज्येष्ठे सोदरे यदि केशवः।
एवं प्रवृत्तः किं शक्यं कर्तुमद्य तपोधन॥ १३

बहूनि प्रतिलोमानि पुरा स कृतवान् मयि।
कृष्णो नारद सोढानि भ्रातेति स्म मया सदा॥ १४

खाण्डवे चार्जुनरथं पुरा वाहयता सता।
मदीया वारिता मेघाः शमयन्तोऽग्निमुद्धतम्॥ १५

गोवर्धनं धारयता विप्रियं च कृतं मम।
तथा वृत्रवधे प्राप्ते साहाय्यार्थं वृतो मया॥ १६

समोऽहमिति सर्वेषां भूतानामिति चोक्तवान्।
स्वबाहुबलमाश्रित्य वृत्रश्च निहतो मया॥ १७

देवासुरेषु प्राप्तेषु संग्रामेषु च नारद।
युध्यत्यात्मेच्छया कृष्णो मुने सुविदितं तव॥ १८

बहुनात्र किमुक्तेन तस्माद् दिष्ट्या प्रवर्तताम्।
ज्ञातिभेदो न नः कार्यः साक्षी त्वं मम नारद॥ १९

ममोरसि गदां मोक्तुमुद्यतो यदि केशवः।
अनुशब्द्याथ पौलोमीं गुणः क इह दृश्यते॥ २०

उदवासगतो धीमान् पिता नः कश्यपः प्रभुः।
अदित्या सह मे मात्रा तयोर्वाक्यमिदं भवेत्॥ २१

नरेश्वर! जब नारदजीने इस प्रकार सुस्पष्ट बात कह दी, तब बलासुरका विनाश करनेवाले सहस्र नेत्रधारी इन्द्र रोषके आवेशमें आकर बोले— ॥ १२ ॥ 'तपोधन! यदि श्रीकृष्ण अपने निरपराध एवं ज्येष्ठ सहोदर भाईके प्रति ऐसा अनुचित बर्ताव करनेके लिये उद्यत हैं तो अब क्या किया जा सकता है?॥ १३ ॥ नारद! श्रीकृष्णने पहले भी मेरे प्रतिकूल बहुत-से कार्य किये हैं; परंतु यह मेरा छोटा भाई है, ऐसा समझकर मैंने सदा उन बातोंको सहन किया है॥ १४ ॥ पहलेकी बात है, ये खाण्डव वनमें अर्जुनका रथ हाँक रहे थे, उस समय उस वनमें लगी हुई प्रचण्ड आगको बुझानेके लिये मैंने जो मेघ नियुक्त किये थे, मेरे उन सभी मेघोंका इन्होंने निवारण कर दिया था॥ १५ ॥ इसी तरह गोवर्धन पर्वतको धारण करके इन्होंने मेरा अप्रिय किया था। जब वृत्रासुरके वधका अवसर प्राप्त हुआ, उस समय मैंने इनसे सहायताके लिये प्रार्थना की थी; परंतु इन्होंने यह कहकर मुझे कोरा जवाब दे दिया कि मैं तो समस्त प्राणियोंके लिये सम हूँ (मेरा किसीसे राग या द्वेष नहीं है)। तब मैंने अपने ही बाहुबलका आश्रय लेकर वृत्रासुरका वध किया था॥ १६-१७॥ मुने! नारद! जब-जब देवासुर-संग्रामके अवसर आते हैं, तब-तब विष्णु अपनी इच्छासे ही युद्ध करते हैं (जीमें आया तो करते हैं और नहीं तो चल देते हैं)। यह बात आपको अच्छी तरह ज्ञात है॥ १८ ॥ इस विषयमें बहुत कहनेसे क्या लाभ (बात बढ़ानेसे कुछ होने-जानेवाला नहीं है); अतः यदि प्रारब्धवश युद्ध ही होना है तो हो; परंतु नारदजी! आप मेरी ओरसे इस बातके साक्षी हैं कि हमलोगोंको अपने भाईसे कलह करना अभीष्ट नहीं है॥ १९ ॥ यदि केशव मेरी छातीमें गदा मारनेको ही उद्यत हैं तो पुलोमकुमारी शचीका नामोल्लेख करके ऐसी बात कहनेमें यहाँ कौन-सा लाभ दिखायी देता है?॥ २० ॥ मेरे बुद्धिमान् पिता भगवान् कश्यप मेरी माता अदितिके साथ क्षीरसागरमें जलवास करनेके लिये गये हैं। वे दोनों मेरे प्रति ऐसी बात कह सकते थे (क्योंकि माता-पिताको यह अधिकार है कि वे पुत्रको राहपर लानेके लिये उसे ताड़ना दे)'॥ २१ ॥

अजितात्मा मम भ्राता रजसा तमसा वृतः।
कामेन च स्त्रियो वाक्यादेवं मामुक्तवान् गुरुम्॥ २२

धिक्स्त्रियः सर्वथा विप्र धिग् राजसमितिं तथा।
यत्राधिक्षिप्तवान् विष्णुरेवं मां स्त्रीजितो द्विज॥ २३

न दृष्टं कश्यपकुले व्यपदेश्यं महामुने।
नैव दक्षकुले दृष्टं मातुर्मे यत्र सम्भवः॥ २४

न ज्येष्ठता न राजत्वं देवानां प्रतिमानितम्।
कामरागाभिभूतेन कृष्णेन खलु नारद॥ २५

पुत्रदारसहस्रैर्हि भ्रातानघ विशिष्यते।
सद्वृत्तो ज्ञानसम्पन्न इति ब्रह्मा पुराब्रवीत्॥ २६

नास्ति भ्रातृसमो बन्धुराहार्य इतरो जनः।
इति मामब्रवीन्माता पिता चैव प्रजापतिः॥ २७

सोदरे तु विशेषं तु पिता मे कश्यपोऽब्रवीत्।
दृप्ता मया विरुध्यन्ते दानवाः पापनिश्चयाः॥ २८

काममेतन्न वक्तव्यं स्वयमात्मस्तवान्वितम्।
प्राप्तस्त्ववसरो विप्र यदिहाद्योच्यते मया॥ २९

धनुर्ज्यायां मुनिश्रेष्ठ छिन्नायां हि पुरानघ।
धन्वीभिरमराणां च वरदानान्महामते॥ ३०

उत्कृत्तशिरसो विष्णोः पुरा देहो धृतो मया।
सन्धितं च शिरो यत्नाच्छिन्नं रौद्रेण तेजसा॥ ३१

अहं विशिष्टो देवानामित्युक्त्वा पुनरच्युतः।
धनुरारोप्य दर्पेण स्थितो नारद केशवः॥ ३२

'परंतु मेरे भाई श्रीकृष्ण अजितात्मा हैं, अपने मनपर काबू नहीं पा सके हैं; साथ ही रजोगुण और तमोगुणसे घिरे हुए हैं; अतः कामवश एक स्त्रीके कहनेमात्रसे मुझ अपने गुरुजनके प्रति उन्होंने ऐसी बात कह डाली है॥ २२॥ विप्रवर! स्त्रियोंको सर्वथा धिक्कार है तथा उस राजसभाको भी धिक्कार है, जहाँ स्त्रीके वशीभूत हुए श्रीकृष्णने मुझपर इस प्रकार आक्षेप किया है॥ २३॥ महामुने! महर्षि कश्यपके कुलमें अबतक कोई निन्दनीय बात नहीं देखी गयी है तथा जहाँ मेरी माताका जन्म हुआ है, उस दक्षकुलमें भी ऐसी कोई बात देखनेमें नहीं आयी है॥ २४॥ नारद! काम और रागसे आक्रान्त हुए श्रीकृष्णने न तो मेरे बड़प्पनका आदर किया है और न मेरे देवराज पदका ही सम्मान किया है॥ २५॥ निष्पाप देवर्षे! पूर्वकालमें ब्रह्माजीने ऐसा कहा था कि सदाचारी और ज्ञानसम्पन्न भाई हजारों स्त्रियों और पुत्रोंसे बढ़कर है॥ २६॥ मेरी माता तथा मेरे पिता प्रजापति कश्यपजीने मुझसे कहा था कि भाईके समान दूसरा कोई बन्धु नहीं है; क्योंकि वह स्वाभाविक बन्धु है और दूसरे लोग भोजन आदि देकर बनाये हुए हैं॥ २७॥ मेरे पिता कश्यपने सहोदर भाईमें विशेष बन्धुत्व बताया है। यद्यपि दानव भी हमारे भाई ही हैं; तथापि वे घमंडी और पापपूर्ण विचार रखनेवाले हो गये हैं; इसलिये मैं उनका विरोध करता हूँ॥ २८॥ विप्रवर! जो बात अपनी प्रशंसासे युक्त हो, उसे स्वयं ही नहीं कहना चाहिये, इसमें संशय नहीं है तथापि इस समय यहाँ मेरे द्वारा जो बात कही जाती है, उसके कहनेका अवसर आ गया है॥ २९॥ मुनिश्रेष्ठ! महामते! पूर्वकालमें (दक्षयज्ञ-विध्वंसके समय) जब भगवान् शङ्करके धनुर्धर पार्षदोंने वरदानके प्रभावसे देवताओंकी धनुषोंकी प्रत्यञ्चा काट डाली और यज्ञरूपी विष्णुका सिर काट लिया गया था, उस समय मैंने ही उनके धड़को धारण किया था तथा रुद्रके तेजसे कटे हुए उनके सिरको यत्नपूर्वक धड़से जोड़ा था॥ ३०-३१॥ नारदजी! जब उनका मस्तक जुड़ गया, तब वे अच्युतस्वरूप केशव पुनः धनुष चढ़ाकर बड़े घमंडके साथ यह कहते हुए खड़े हो गये कि मैं इन देवताओंमें सबसे बढ़कर हूँ'॥ ३२॥

किं मां पिता वा माता वा वक्ष्यतीति मया मुने।
स्नेहेन च स्थितं विष्णोः शरीरं मुनिसत्तम॥ ३३

ऐन्द्रं वैष्णवमस्यैव मुने भागमहं ददौ।
यवीयांसमहं प्रेम्णा कृष्णं पश्यामि नारद॥ ३४

संग्रामेषु प्रहर्तव्यं तेन पूर्वं तपोधन।
राजा किलाहं समरे प्रहराम्यग्रतो ध्रुवम्॥ ३५

प्रादुर्भावेषु सर्वेषु स्वशरीरमिवानघ।
यत्नाद् रक्षामि धर्मज्ञ केशवं भक्तिमाश्रितम्॥ ३६

इदं भङ्क्त्वा मदीयं च भुवनं विष्णुना कृतम्।
उपर्युपरि लोकानामधिकं भुवनं मुने॥ ३७

अवमानः स च मया पृष्ठतः क्रियते मुने।
लालनीयो मया बाल इत्येवं भ्रातृगौरवात्॥ ३८

बालोऽयं मम पुत्रेति यवीयानिति नारद।
पित्रा मात्रा च गोविन्दो मानी च परिभाषितः॥ ३९

इष्टस्तत्र जनानां च केशवः सुविशेषतः।
वयं द्वेष्या न संदेहस्तत्र स्नेहोऽतिरिच्यते॥ ४०

सर्वज्ञो बलवाञ्छूरः पात्रं मानयिता तथा।
केशवेत्येव च ध्यानं यत्तद्वितथतां गतम्॥ ४१

गच्छ नारद वक्तव्यः केशवो वचनान्मम।
आहूतो न निवर्तेयं समरं प्रति शत्रुभिः॥ ४२

'मुने! ऋषिश्रेष्ठ! मैंने उस समय यह सोचकर कि यदि मैं नहीं बचाता हूँ तो मेरे पिता-माता मुझे क्या कहेंगे, बड़े स्नेहके साथ विष्णुके शरीरको थाम लिया था॥ ३३॥ नारद मुने! (वर्षा-ऋतुमें जो सत्कर्म या पूजन किया जाता है, उसपर (मुझ) इन्द्रका ही आधिपत्य है; क्योंकि उस समय श्रीविष्णु शयन करते हैं) उस ऐन्द्र भागको ही वैष्णव भाग बनाकर मैंने इन्हें अर्पित किया है*। इस प्रकार मैं अपने छोटे भाई कृष्णको सदा प्रेमपूर्ण दृष्टिसे ही देखता हूँ॥ ३४॥ तपोधन! संग्रामके अवसरोंपर (यदि कृष्ण मेरे विरोधमें खड़े हों तो) पहले उन्हींको मुझपर प्रहार करना चाहिये। अन्यत्र युद्धमें मैं अवश्य ही पहले प्रहार करता हूँ; क्योंकि मैं राजा हूँ॥ ३५॥ पापरहित धर्मज्ञ नारदजी! सभी अवतारोंके समय मुझमें भक्ति रखनेवाले केशवकी मैं अपने शरीरके समान यत्नपूर्वक रक्षा करता आया हूँ॥ ३६॥ मुने! विष्णुने मेरे इस भुवन (स्वर्गलोक)-की मर्यादा भंग करके सब लोकोंसे ऊपर-ऊपर अपने भुवन (वैकुण्ठधाम)-को प्रतिष्ठित किया और उसे अन्य लोकोंसे बढ़कर महत्त्व दिया॥ ३७॥ मुने! वह अपमान मैंने पीछे कर दिया (भुला दिया)। बड़े भाईका जो गौरव है, उसपर ध्यान देकर मैंने सदा यही सोचा है कि यह बालक है। अतः मेरे द्वारा लाड़-प्यार पानेके योग्य है॥ ३८॥ नारद! श्रीकृष्णके विषयमें मेरा सदा यही भाव रहा है कि यह बालक है, मेरा छोटा भाई है; अतः मेरे द्वारा पुत्रके समान लाड़ लड़ानेके योग्य है, किंतु उनके विषयमें मेरे माता-पिताने भी अपना यही विचार व्यक्त किया है कि गोविन्द मानी है॥ ३९॥ वहाँ (मनुष्यलोक)-के लोगोंको श्रीकृष्ण विशेष प्रिय हैं और हमलोग उनके द्वेषके पात्र हो गये हैं, इसमें कोई संदेह नहीं है। इसका कारण यही है कि श्रीकृष्णका उन मनुष्योंके प्रति स्नेह बढ़ता जा रहा है॥ ४०॥ अबतक जो मेरा यह खयाल था कि केशव सर्वज्ञ, बलवान्, शूरवीर, सुपात्र और दूसरोंको मान देनेवाले हैं, वह सब निष्फल हो गया॥ ४१॥ नारदजी! जाइये और मेरे शब्दोंमें श्रीकृष्णसे कह दीजिये कि 'मैं शत्रुओंके आह्वान करने या ललकारनेपर युद्धसे पीछे नहीं हट सकता॥ ४२॥

* हरिवंशपर्वके पचासवें अध्यायके श्लोक २६ से भी इस बातका समर्थन होता है।

यदीच्छसि तदागच्छ सह्यं ते यत्त्वमिच्छसि।
प्रहरस्व च पूर्वं त्वं भार्याजित यथेच्छसि॥ ४३

रथाङ्गेनाथ शार्ङ्गेण गदया नन्दकेन च।
प्रहरारुह्य गरुडं दृढो भूत्वा जनार्दन॥ ४४

प्रहृते प्रहरिष्यामि यथाशक्त्या च केशव।
अहो धिग् यदि मां स्नेहो विक्लवं न करिष्यति॥ ४५

यावन्न संग्रामगतो जितोऽहं चक्रपाणिना।
पारिजातं न दास्यामि तावद् भो मुनिसत्तम॥ ४६

मां समाह्वयते ज्येष्ठं यवीयान् स तपोधन।
अहो तं मर्षयिष्यामि किमर्थं स्त्रीजितं हरिम्॥ ४७

अद्यैव गच्छ भगवन् द्वारकां कृष्णपालिताम्।
विवादे संस्थितः सोऽज्ञ इति वाच्यस्त्वयाच्युतः॥ ४८

पलाशपत्रार्द्धमपि त्वयाजितो
न पारिजातस्य तव प्रदास्यति।
इति प्रवाच्यो मधुसूदनस्त्वया
वचो मदीयं स्मरता तपोधन॥ ४९

पुनः प्रवाच्यो भगवंस्त्वयाच्युतो
मम प्रियार्थं खलु निर्विशङ्कितम्।
न मायया हर्तुमिहार्हसि द्रुमं
सुयुद्धमेवास्तु धिगस्तु जिह्मताम्॥ ५०

पत्नीके वशमें रहनेवाले श्रीकृष्ण! यदि तुम मुझपर गदाका प्रहार करना चाहते हो तो आ जाओ। तुम जो चाहते हो, तुम्हारे उस प्रहारको सहन किया जायगा। जैसी तुम्हारी इच्छा है, उसके अनुसार पहले तुम्हीं प्रहार करो'॥ ४३॥

'जनार्दन! तुम गरुड़पर चढ़कर सुदृढ़ होकर मेरे ऊपर सुदर्शन चक्र, शार्ङ्ग धनुष, कौमोदकी गदा और नन्दकनामक खड्गके द्वारा प्रहार करो। केशव! यदि भ्रातृस्नेह मुझे व्याकुल नहीं कर देगा तो तुम्हारे प्रहार करनेपर मैं भी यथाशक्ति तुमपर प्रहार करूँगा। अहो, ऐसी परिस्थितिको धिक्कार है!॥ ४४-४५॥ मुनिश्रेष्ठ! जबतक मैं संग्रामभूमिमें उपस्थित होकर चक्रपाणि श्रीकृष्णके द्वारा पराजित नहीं हो जाऊँगा, तबतक उन्हें पारिजात नहीं दूँगा॥ ४६॥ अहो तपोधन! जब श्रीकृष्ण छोटे होकर मुझ बड़े भाईको युद्धके लिये ललकार रहे हैं, तब पत्नीके गुलाम बने हुए उन केशवके इस बर्तावको मैं किस लिये सहन करूँ॥ ४७॥ भगवन्! आप आज ही श्रीकृष्णद्वारा सुरक्षित द्वारकापुरीको चले जाइये और विवादके लिये तैयार खड़े हुए उस अज्ञानी अच्युतसे इस प्रकार मेरा उत्तर सुना दीजिये॥ ४८॥ जबतक तुम पराजित नहीं कर दोगे, तबतक पारिजात वृक्षकी तो बात ही क्या है, उसकी आधी पत्ती भी इन्द्र तुम्हें नहीं देगा। तपोधन! मेरी इस बातको याद रखते हुए आपको मधुसूदन श्रीकृष्णसे इन्हीं शब्दोंमें यह बात कहनी चाहिये॥ ४९॥ भगवन्! आपको मेरा प्रिय करनेके लिये अच्युतसे पुनः निःशङ्क होकर यह बात कह देनी चाहिये कि माया (छल-कपट)-के द्वारा पारिजात वृक्षका अपहरण करना तुम्हारे लिये उचित नहीं है। विशुद्ध युद्ध ही होना चाहिये। कुटिलतापूर्वक बर्तावको धिक्कार है'॥ ५०॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे विष्णुपर्वणि पारिजातहरणे इन्द्रवाक्ये सप्ततितमोऽध्यायः॥ ७०॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत विष्णुपर्वमें पारिजातहरणके प्रसंगमें इन्द्रका वाक्यविषयक सत्तरवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ७०॥

एकसप्ततितमोऽध्यायः

नारदजीके द्वारा श्रीकृष्णकी महत्ताका प्रतिपादन सुनकर भी इन्द्रका उन्हें पारिजात देनेको उद्यत न होना

वैशम्पायन उवाच

महेन्द्रवचनं श्रुत्वा नारदो वदतां वरः।
विविक्ते देवराजानमिदं वचनमब्रवीत्॥ १

कामं प्रियाणि राजानो वक्तव्या नात्र संशयः।
प्राप्तकालं तु वक्तव्यं हितमप्रियमप्युत॥ २

अनियुक्तपुरोभागो न स्यादिति वदन्ति हि।
सुलोकगतितत्त्वज्ञो नयविज्ञानकोविदः॥ ३

कार्याकार्ये समुत्पन्ने परिपृच्छति मां भवान्।
यतस्ततः प्रवक्ष्यामि गृह्यतां यदि रोचते॥ ४

अनुक्तेनापि सुहृदा वक्तव्यं जानता हितम्।
न्याय्यं च प्राप्तकालं च पराभवमनिच्छता॥ ५

वक्तव्यं सर्वथा सद्भिरप्रियं चापि यद्धितम्।
आनृण्यमेतत् स्नेहस्य सद्भिरेवादृतं पुरा॥ ६

अनृते धर्मभग्ने च न शुश्रूषति चाप्रिये।
न प्रियं न हितं वाच्यं सद्भिरेवेति निन्दिताः॥ ७

सर्वथा देव वक्तव्यं श्रूयतां शृण्वतां वर।
श्रुत्वा च कुरु सर्वज्ञ मम श्रेयस्करं वचः॥ ८

अन्योन्यभेदो भ्रातॄणां सुहृदां वा बलान्तक।
भवत्यानन्दकृद् देव द्विषतां नात्र संशयः॥ ९

हितानुबन्धसहितं कार्यं ज्ञेयं सुरेश्वर।
विपरीतं च तद् बुद्ध्वा नित्यं बुद्धिमतां वर॥ १०

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! देवराज इन्द्रका यह वचन सुनकर वक्ताओंमें श्रेष्ठ नारदजीने एकान्तमें उनसे इस प्रकार कहा—॥ १॥ 'देवेश्वर! अवश्य ही राजाओंसे वे ही बात कहनी चाहिये, जो उन्हें प्रिय लगें; इसमें संशय नहीं है तथापि जिसका अवसर प्राप्त हुआ हो, ऐसा हितकारक वचन तो अप्रिय होनेपर भी उनसे कह देना ही उचित है॥ २॥ जो उत्तम लोकगतिके तत्त्वका ज्ञाता है और नीतिके विज्ञानमें भी कुशल है, ऐसा पुरुष बिना कहे-सुने कहीं अगुआ न बने, यह बुद्धिमान् पुरुषोंका कथन है॥ ३॥ कर्तव्याकर्तव्यकी समस्या खड़ी होनेपर प्रायः तुम मुझसे पूछते और सलाह लेते हो, इसलिये इस समय भी मैं तुमसे कुछ कहूँगा। यदि अच्छा लगे तो इसे काममें लाना॥ ४॥ जो राजाकी पराजय नहीं चाहता और किस बातमें उसका हित है, यह अच्छी तरह जानता है—ऐसे सुहृद्को बिना कहे भी न्यायसंगत और समयोचित हितकर वचन अवश्य कहना चाहिये॥ ५॥ सत्पुरुषोंको उचित है कि वे सर्वथा हितकी ही बात बतायें, भले ही वह सुननेमें अप्रिय हो। यही स्नेहसे उऋण होनेका उपाय है, जिसका श्रेष्ठ पुरुषोंने ही प्राचीन कालसे आदर किया है॥ ६॥ जो असत्यवादी, धर्म-मर्यादाको भंग करनेवाले, किसीका उपदेश सुननेकी इच्छा न रखनेवाले और सबके अप्रिय (द्वेषपात्र) हैं, ऐसे लोगोंसे न तो प्रिय बात कहनी चाहिये और न हितकी ही। ऐसा कहकर सत्पुरुषोंने इन सबकी निन्दा की है॥ ७॥ श्रोताओंमें श्रेष्ठ सर्वज्ञ देव! मुझे तुमको सर्वथा हितकी बात बतानी है, सुनो और सुनकर मेरे कल्याणकारी वचनका पालन करो॥ ८॥ बलासुरका विनाश करनेवाले देव! भाइयों अथवा सुहृदोंमें यदि परस्पर भेद (वैरभाव) हो जाय तो वह शत्रुओंको आनन्द देनेवाला होता है, इसमें संशय नहीं है'॥ ९॥

'बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ सुरेश्वर! अपने कल्याणसे सम्बन्ध रखनेवाले कार्यको जानना चाहिये तथा जो इसके विपरीत हो, उसको भी सदा समझ लेना चाहिये। समझ लेनेके

यत् स्यात् तापकरं पश्चादारब्धं कार्यमीदृशम्।
आरभेन्नैव तद् विद्वानेष बुद्धिमतां नयः॥ ११

विपाकमस्य कार्यस्य नानुपश्यामि शोभनम्।
यदत्र कारणं देव निबोध विबुधाधिप॥ १२

य एको विश्वमध्यास्ते प्रधानं जगतो हरिः।
प्रकृत्या यं परं सर्वे क्षेत्रज्ञं वै विदुर्बुधाः॥ १३

तस्याव्यक्तस्य यो व्यक्तो भागः सर्वभवोद्भवः।
तस्यात्मा परमो देवो विष्णुः सर्वस्य धीमतः॥ १४

प्रकृत्याः प्रथमो भाग उमा देवी यशस्विनी।
व्यक्तः सर्वमयो विश्वः स्त्रीसंज्ञो लोकभावनः॥ १५

रुक्मिण्याद्याः स्त्रियस्तस्या व्यक्तत्वं प्रथमो गुणः।
अव्यया प्रकृतिर्देवी गुणी देवो महेश्वरः॥ १६

न विशेषोऽस्य रुद्रस्य विष्णोश्चामरसत्तम।
गुणिनश्चाव्ययः शास्ता सदा च प्रथमोऽगुणः॥ १७

नारायणो महातेजाः सर्वकृल्लोकभावनः।
भोक्ता महेश्वरो देवः कर्ता विष्णुरधोक्षजः॥ १८

ब्रह्मा देवगणाश्चान्ये पश्चात् सृष्टा महात्मना।
महादेवेन देवेश प्रजापतिगणास्तथा॥ १९

एवं पुराणपुरुषो विष्णुर्देवेषु पठ्यते।
अचिन्त्यश्चाप्रमेयश्च गुणेभ्यश्च परस्तथा॥ २०

अदित्या तपसा विष्णुर्महात्माऽऽराधितः पुरा।
वरेण च्छन्दिता तेन परितुष्टेन चादितिः॥ २१

तयोक्तस्त्वत्समं पुत्रमिच्छामीति सुरोत्तम।
प्रणिपत्य च विज्ञाय नारायणमधोक्षजम्॥ २२

तेनोक्तं भुवने नास्ति मत्समः पुरुषोऽपरः।
अंशेन तु भविष्यामि पुत्रः खल्वहमेव ते॥ २३

बाद जो कार्य आरम्भ करनेपर पीछे संताप देनेवाला हो, ऐसे कार्यको विद्वान् पुरुष कदापि आरम्भ न करे—यही बुद्धिमानोंकी नीति है॥ १०-११॥ देव! विबुधेश्वर! मैं इस कार्यका परिणाम अच्छा नहीं देखता हूँ। इसमें जो कारण है, उसे ध्यान देकर सुनो॥ १२॥ जो अकेले ही कार्यभूत जगत् और उसके कारणभूत प्रधानके भी अधिष्ठाता (संचालक) हैं, वे श्रीहरि ही श्रीकृष्ण हैं। जिन्हें समस्त विद्वान् प्रकृतिसे परे विराजमान क्षेत्रज्ञके रूपमें जानते हैं॥ १३॥ उस अव्यक्त प्रकृतिके जो व्यक्तभाग (महत्तत्त्व या समष्टिबुद्धिके अभिमानी चेतन) ब्रह्मा हैं, वे ही समस्त संसारकी उत्पत्तिके कारण हैं। उनके तथा सम्पूर्ण चेतन जीवमात्रके आत्मा वे परमदेव श्रीविष्णु ही हैं॥ १४॥ यशस्विनी उमादेवी प्रकृतिका मुख्य भाग (व्यक्त जगत्स्वरूप) हैं। अतः सर्वमय व्यक्त विश्व स्त्रीसंज्ञक (सम्पूर्ण भोग्य वस्तुरूप) है, जो चेतनमात्रको तृप्त करनेवाला है॥ १५॥ रुक्मिणी आदि स्त्रियाँ भी प्रकृतिका मुख्य गुण (भाग) अर्थात् व्यक्तरूप हैं। अविनाशिनी प्रकृति उमादेवी हैं, जो गुणरूपा हैं और उनसे युक्त गुणी पुरुष भगवान् महेश्वर हैं॥ १६॥ देवश्रेष्ठ! (इसी प्रकार लक्ष्मी या रुक्मिणी गुणमयी अविनाशिनी प्रकृति हैं और विष्णु या श्रीकृष्ण गुणी पुरुष हैं) इन गुणवान् मायावी रुद्र और विष्णुमें कोई अन्तर नहीं है। त्रिगुणात्मक जगत्के जो प्रथम अविनाशी शासक निर्गुण परमात्मा हैं, वे ही महातेजस्वी नारायण हैं। वे सबके स्रष्टा और समस्त जगत्के उत्पादक हैं। देवेश्वर! इन परमात्मा परमदेव नारायणके द्वारा ही भोक्ता महेश्वरदेव, कर्ता अधोक्षज विष्णु, ब्रह्मा, अन्य देवसमुदाय तथा प्रजापतिगण—इन सबकी पीछे सृष्टि हुई है॥ १७—१९॥ इस प्रकार पुराणपुरुष भगवान् विष्णु देवताओंमें अचिन्त्य, अप्रमेय और गुणातीत कहे जाते हैं॥ २०॥ पूर्वकालमें देवमाता अदितिने तपस्याद्वारा परमात्मा विष्णुकी आराधना की। उससे संतुष्ट हो भगवान् विष्णुने भी अदितिको इच्छानुसार वर माँगनेके लिये आज्ञा दी॥ २१॥ सुरश्रेष्ठ! उस समय अदितिने अधोक्षज(इन्द्रियातीत) भगवान् नारायणको पहचानकर उन्हें प्रणाम किया और इस प्रकार कहा—'प्रभो! मैं आपके समान पुत्र चाहती हूँ'॥ २२॥ तब उन्होंने कहा—'देवि! समस्त भुवनोंमें मेरे समान दूसरा कोई पुरुष नहीं है। अतः मैं ही अपने अंशसे तुम्हारा पुत्र होऊँगा'॥ २३॥

स जातः सर्वकृद् देवो भ्राता तव सुरेश्वर।
नारायणो महातेजा यमुपेन्द्रं प्रचक्षते॥ २४

इच्छन्नेव हरिर्देव काश्यपत्वमुपागतः।
तैस्तैर्भावैर्विकुरुते भूतभव्यभवाप्ययः॥ २५

प्रादुर्भावं गतो देवो जगतो हितकाम्यया।
माथुरं जगतो नाथः कर्ता हर्ता च केशवः॥ २६

यथा पललपिण्डः स्याद् व्याप्तः स्नेहेन मानद।
तथा जगदिदं व्याप्तं विष्णुना प्रभविष्णुना॥ २७

ब्रह्मण्यदेवः सर्वात्मा तैस्तैर्भावैर्विकुर्वति।
जगत्यतिगुणो देवो वैकुण्ठः सर्वभावनः॥ २८

अतः समस्तदेवानां पूज्य एव च केशवः।
पद्मनाभश्च भगवान् प्रजासर्गकरो विभुः॥ २९

अनन्तो धारणार्थं च बिभर्ति च महद्यशः।
यज्ञ इत्यपि सद्भिश्च कथ्यते वेदवादिभिः॥ ३०

श्वेतः कृतयुगे देवो रक्तस्त्रेतायुगे तथा।
द्वापरे च तथा पीतः कृष्णः कलियुगे विभुः॥ ३१

अवधीत् स हिरण्याक्षं दिव्यरूपधरो हरिः।
दधाराप्सु निमज्जन्तीमेष देवो वसुन्धराम्॥ ३२

वाराहं वपुराश्रित्य जगतो हितकाम्यया।
जघ्ने हिरण्यकशिपुं नारसिंहवपुर्हरिः॥ ३३

'सुरेश्वर! (इस निश्चयके अनुसार) वे सबकी सृष्टि करनेवाले महातेजस्वी भगवान् नारायण तुम्हारे भाईके रूपमें अवतीर्ण हुए, जिन्हें उपेन्द्र कहते हैं॥ २४॥ देव! भूत और भविष्यकी उत्पत्ति एवं संहारके अधिष्ठानभूत श्रीहरि स्वेच्छासे ही कश्यपजीके पुत्ररूपमें प्रकट हुए थे तथा अपनी इच्छाके अनुसार ही वे विभिन्न रूपोंमें अवतीर्ण होते रहते हैं॥ २५॥ जगत्के संरक्षक, स्रष्टा और संहारक भगवान् केशव जगत्के हितकी कामनासे ही मथुरामें अवतीर्ण हुए हैं॥ २६॥ दूसरोंको मान देनेवाले देवेन्द्र! जैसे मांसपिण्ड स्नेह (चर्बी या चिकनाई)-से व्याप्त होता है, उसी प्रकार यह सारा जगत् प्रभावशाली भगवान् विष्णुसे व्याप्त है॥ २७॥ वे भगवान् ब्राह्मणोंके हितैषी हैं, सबके आत्मा हैं और जगत्में जैसा शरीर धारण करते हैं, उसके अनुसार ही विभिन्न भावों (सुख-दुःखादि धर्मों) द्वारा विकारको प्राप्त होते-से प्रतीत होते हैं। वास्तवमें तो सबकी उत्पत्ति करनेवाले वे भगवान् वैकुण्ठ गुणातीत हैं॥ २८॥ अतः प्रजाकी सृष्टि करनेवाले सर्वव्यापी भगवान् पद्मनाभस्वरूप श्रीकृष्ण समस्त देवताओंके लिये भी पूज्य ही हैं॥ २९॥ वे ही पृथ्वीको अपने मस्तकपर धारण करनेके लिये अनन्त (शेषनाग)-के रूपमें प्रकट हुए हैं। वे महान् यश धारण करते हैं। वेदवादी साधु पुरुष उन्हींका 'यज्ञ' नामसे भी प्रतिपादन करते हैं॥ ३०॥ वे सर्वव्यापी भगवान् सत्ययुगमें श्वेत, त्रेतामें रक्त, द्वापरमें पीत तथा कलियुगमें कृष्णवर्णका स्वरूप धारण करते हैं*॥ ३१॥ उन श्रीहरिने दिव्यरूप धारण करके हिरण्याक्ष नामक दैत्यका वध किया था। उन्होंने जगत्के हितकी कामनासे वाराहरूप धारण करके जलमें डूबती हुई पृथ्वीका उद्धार एवं जलके ऊपर इसका संस्थापन किया था। उन्हीं श्रीहरिने नरसिंह रूप धारण करके

* श्रुतिमें कहा है—

कलिः शयानो भवति संजिहानस्तु द्वापरः। उत्तिष्ठंस्त्रेता भवति कृतं सम्पद्यते चरन्॥

इस श्रुतिके साथ उपर्युक्त श्लोककी सङ्गति लगाते हुए आचार्य नीलकण्ठ कहते हैं कि जो अविद्यारूपी निद्रामें सो रहा है अर्थात् जो अत्यन्त मूढ़ पुरुष है, वही कलि है। उसपर अनुग्रह करनेके लिये इस जगत्में भगवान् श्रीहरि कृष्ण होते हैं (अर्थात् श्रीकृष्णका अवतार ग्रहण करते हैं)। जो कुछ-कुछ कल्याणकी बातोंको देखता और समझता है, जो उस अज्ञान-निद्रासे आधा जग गया है, उस पुरुषको द्वापर कहते हैं। उसके लिये भगवान् पीतवर्ण होते हैं अर्थात् सुवर्णके समान मनोहर कान्ति धारण करते हैं। वह मनुष्य उनके उस दिव्यरूपपर आकृष्ट होकर कुछ भक्तिकी ओर उन्मुख होता है। जो कल्याणकी प्राप्तिके लिये सदा सजग रहकर प्रयत्न करता है, वह साधक त्रेता कहलाता है। उसपर अनुग्रह करनेके लिये भगवान् माताकी भाँति अनुरक्त (वात्सल्यभावसे युक्त) होते हैं। जो युधिष्ठिर आदिकी भाँति भगवान्का अत्यन्त भक्त है, सदा भक्तिके पथपर ही चलता है, वह कृतकृत्य होनेके कारण कृतयुग अथवा सत्ययुग कहा गया है; उसके प्रति भगवान् शुक्लवर्ण होते हैं अथवा उसके समक्ष वे सदा अपने शुद्ध रूपको ही प्रकाशित करते हैं।

जिगाय जगतीं चैव विष्णुर्वामनरूपधृक्।
बबन्ध च बलिं देवः श्रीमान् पन्नगबन्धनैः॥ ३४

देवदानवसम्भूतानाक्रामयदपि श्रियम्।
त्वय्यनन्तः पुरा विष्णुरुदारोऽमितविक्रमः॥ ३५

सावशेषं तपो यस्य तन्निहन्ति जनार्दनः।
अलीकेष्वपि वर्तन्तं व्रतमेतन्महात्मनः॥ ३६

जघ्ने च दानवान् मुख्यान् देवानां ये च शत्रवः।
तव प्रियार्थं गोविन्दो धर्मनित्यः सतां गतिः॥ ३७

रामत्वमपि चावाप्य जघ्ने रावणमात्मवान्।
भूत्वा कामगुणांश्चैव जघान द्विरदं हरिः॥ ३८

हिताय जगतोऽद्यापि लोके वसति मानुषे।
उपेन्द्रो जगतां नाथः सर्वभूतोत्तमोत्तमः॥ ३९

जटी कृष्णाजिनी दण्डी दृष्टपूर्वो मया हरिः।
दैतेयेषु चरन् देवस्तृणेष्वग्निरिवोद्धतः॥ ४०

अद्राक्षमपि गोविन्दं दानवैकार्णवं जगत्।
कुर्वाणं दानवैर्हीनं जगतो हितकाम्यया॥ ४१

अवश्यं पारिजातं ते नयिष्यति जनार्दनः।
द्वारकाममरश्रेष्ठ नानृतं च ब्रवीम्यहम्॥ ४२

भ्रातृस्नेहाभिभूतस्त्वं न कृष्णे प्रहरिष्यसि।
नापि कृष्णस्त्वयि ज्येष्ठे प्रहरिष्यति वासव॥ ४३

नैव चेच्छ्रोष्यति प्रोक्तं मया देव कथञ्चन।
पृच्छ त्वं नयधर्मज्ञान् ये हितास्तव मन्त्रिणः॥ ४४

हिरण्यकशिपुका संहार किया था और उन्हीं वामनरूपधारी श्रीमान् भगवान् विष्णुने इस पृथ्वीको जीता और बलिको नागपाशमें बाँध लिया॥ ३२—३४॥ यद्यपि देवताओं और दानवोंके सम्मिलित प्रयत्नसे प्रकट हुई राजलक्ष्मी दोनोंके लिये साधारण थी तो भी पूर्वकालमें अमितपराक्रमी, उदारहृदय, अनन्तस्वरूप भगवान् विष्णुने तुम्हारे लिये उसपर आक्रमण किया अर्थात् विराट्-रूपसे तीनों लोकोंको आक्रान्त करके त्रिलोकलक्ष्मी तुम्हें समर्पित कर दी॥ ३५॥ जिसकी तपस्या शेष है, वह भी यदि अलीक—मायामय अर्थात् छल-कपट एवं अन्यायपूर्ण बर्ताव करता है तो भगवान् श्रीकृष्ण उसे मार डालते हैं; क्योंकि दुराचारियोंका यह विनाश इन महात्मा श्रीकृष्णका व्रत है॥ ३६॥ सदा धर्मकी रक्षामें तत्पर रहनेवाले सत्पुरुषोंके आश्रयभूत भगवान् गोविन्दने तुम्हारा प्रिय करनेके लिये मुख्य-मुख्य दानवोंका तथा जो लोग देवताओंके शत्रु हुए हैं, उनका भी वध कर डाला है॥ ३७॥ इन मनस्वी प्रभुने ही श्रीरामचन्द्रका रूप धारण करके रावणको मारा था तथा दूसरे-दूसरे अवतार धारण करके इन श्रीहरिने इच्छानुसार शौर्य आदि गुणोंसे युक्त असुरोंका उसी तरह संहार कर डाला था, जैसे सिंह हाथीको नष्ट कर देता है॥ ३८॥ समस्त भूतोंमें जो उत्तम हैं, उनसे भी उत्तम वे जगदीश्वर उपेन्द्र इस समय भी जगत्के हितके लिये मनुष्यके रूपमें निवास करते हैं॥ ३९॥ जैसे तिनकोंमें प्रज्वलित हुई अग्नि फैल रही हो, उसी प्रकार मैंने पूर्वकालमें दैत्यसमूहोंके बीच श्रीहरिको जटा, काला मृगचर्म एवं पलाशदण्ड धारण किये वामन ब्रह्मचारीके रूपमें विचरते देखा है॥ ४०॥ जब सारा संसार दानवरूपी एकार्णवमें मग्न था, उस समय भी जगत्के हितकी कामनासे इस विश्वको दानवहीन करते हुए श्रीगोविन्दका मैंने दर्शन किया है॥ ४१॥ अमरश्रेष्ठ! मैं झूठ नहीं बोलता हूँ, जनार्दन श्रीकृष्ण तुम्हारे इस पारिजातको अवश्य द्वारकापुरीमें ले जायँगे॥ ४२॥ वासव! तुम भ्रातृ-स्नेहसे अभिभूत होकर श्रीकृष्णपर प्रहार नहीं करोगे और श्रीकृष्ण भी तुमपर बड़े भाईके नाते प्रहार नहीं करेंगे॥ ४३॥ देव! यदि मेरी कही हुई बात तुम किसी तरह नहीं सुनोगे तो नीति-धर्मके जाननेवाले जो तुम्हारे हितैषी मन्त्री हों, उनसे जाकर पूछो'॥ ४४॥

वैशम्पायन उवाच

नारदेनैवमुक्तस्तु महेन्द्रो जनमेजय।
इदमुत्तरमीशोऽथ प्रत्युवाच जगद्गुरुम्॥ ४५

एवंविधप्रभावं त्वं कृष्णं वदसि यद् द्विज।
एवमेतत् सुबहुशः श्रुतं खलु मया मुने॥ ४६

यतश्चैवंविधः कृष्णस्ततोऽहं तस्य वै तरुम्।
न प्रदास्यामि दातव्यं सतां धर्ममनुस्मरन्॥ ४७

महाप्रभावो नाल्पार्थे रुष्येदिति विचिन्तयन्।
व्यवस्थितोऽहं भद्रं ते मुने सर्वगुणादिति॥ ४८

महाप्रभावाः सततं भवन्ति हि सहिष्णवः।
श्रोतारश्चैव सततं वृद्धानां ज्ञानचक्षुषाम्॥ ४९

महात्मा कारणे नाल्पे कृष्णो धर्मभृतां वरः।
भ्रात्रा ज्येष्ठेन सर्वज्ञो विरोधं गन्तुमर्हति॥ ५०

यथैवं मम मातुः स वरं प्रादादधोक्षजः।
तथैव तस्याः पुत्राणां ज्येष्ठानां सोढुमर्हति॥ ५१

यथैवोपेन्द्रतां यातः स्वयमिच्छञ्जनार्दनः।
तथैव भ्रातुरिन्द्रस्य सम्मानं कर्तुमर्हति॥ ५२

ज्यैष्ठ्यमेतेन देवेन नारब्धं किं पुरातने।
अथेदानीमपीच्छेत् स ज्येष्ठोऽस्तु मधुसूदनः॥ ५३

सुनिश्चितं बलरिपुमीक्ष्य नारदो
विसर्जितस्त्रिदशवरेण धर्मभृत्।
ययौ पुरीं यदुवृषभाभिरक्षितां
कुशस्थलीं धृतिमतिमांस्तपोधनः॥ ५४

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! नारदजीके ऐसा कहनेपर देवेश्वर इन्द्रने उन जगद्गुरु मुनिको इस प्रकार उत्तर दिया—॥ ४५॥ 'ब्रह्मन्! आप श्रीकृष्णको जो ऐसे प्रभावशाली बता रहे हैं, वह ठीक है। मुने! उनके ऐसे प्रभावकी चर्चा मैंने बहुत बार सुनी है॥ ४६॥ जब श्रीकृष्ण ऐसे महान् हैं, तब मैं सत्पुरुषोंके धर्मका स्मरण करते हुए निश्चय ही उन्हें देनेयोग्य होनेपर भी पारिजात-वृक्ष नहीं दूँगा॥ ४७॥ मुने! आपका कल्याण हो। जो महान् प्रभावशाली पुरुष हैं, वे इस छोटी-सी वस्तुके लिये मुझपर रुष्ट नहीं होंगे, ऐसा सोचकर उन सर्वगुणसम्पन्न श्रीकृष्णसे निर्भय होकर स्थित हूँ॥ ४८॥ महान् प्रभावशाली महापुरुष सदा सहिष्णु होते हैं और ज्ञानदृष्टि रखनेवाले बड़े-बूढ़ोंकी बातें सुनते हैं॥ ४९॥ धर्मात्माओंमें श्रेष्ठ सर्वज्ञ महात्मा श्रीकृष्ण इस छोटे-से कारणपर अपने बड़े भाईके साथ विरोध नहीं करेंगे॥ ५०॥ जैसे अधोक्षज भगवान् विष्णुने मेरी माताको इस प्रकार वरदान दिया है, वैसे ही उन्हें उसके ज्येष्ठ पुत्रोंके अपराधको भी सहन करना चाहिये॥ ५१॥ जैसे स्वयं अपनी ही इच्छासे भगवान् विष्णु उपेन्द्र-भावको प्राप्त हुए (मेरे छोटे भाईके रूपमें अवतीर्ण हुए), उसी प्रकार उन्हें अपने बड़े भाई मुझ इन्द्रका सम्मान भी करना चाहिये॥ ५२॥ क्या पूर्वकालमें (वामन-अवतारके समय) इन विष्णु-देवने मेरी ज्येष्ठता नहीं स्वीकार की थी, उसी तरह इस समय भी यदि मधुसूदन चाहें तो स्वयं ही ज्येष्ठ हो जायँ'॥ ५३॥ धृति और बुद्धिसे युक्त धर्मात्मा तपोधन नारद बल-विनाशन इन्द्रको अपने निश्चयपर अटल देख उन देवेश्वरसे विदा ले यदुपति श्रीकृष्णसे सुरक्षित कुशस्थली (द्वारका)-पुरीको चले गये॥ ५४॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे विष्णुपर्वणि पारिजातहरणे नारदस्य स्वर्गात्पुनरागमने एकसप्ततितमोऽध्यायः॥ ७१॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत विष्णुपर्वमें पारिजातहरणके प्रसंगमें नारदजीका स्वर्गलोकसे पुनरागमनविषयक इकहत्तरवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ७१॥

द्विसप्ततितमोऽध्यायः

श्रीकृष्णका नारदजीको अमरावतीपर आक्रमण करनेका निश्चय बताकर इन्द्रके पास संदेश भेजना, इन्द्र और बृहस्पतिकी बातचीत, बृहस्पतिका कश्यपजीको यह समाचार बताना और कश्यपजीका युद्धकी शान्तिके लिये भगवान् शंकरकी स्तुति करना

वैशम्पायन उवाच

अथैत्य द्वारकां रम्यां नारदो मुनिसत्तमः।
ददर्श पुरुषश्रेष्ठं नारायणमरिंदमम्॥ १

स्ववेश्मनि सुखासीनं सहितं सत्यभामया।
विराजमानं वपुषा सर्वतेजोऽतिगामिना॥ २

तमेवार्थं महात्मानं चिन्तयन्तं दृढव्रतम्।
केवलं योजयन्तं च वाक्यमात्रेण भाविनीम्॥ ३

दृष्ट्वैव नारदं देवः प्रत्युत्थाय अधोक्षजः।
पूजयामास च तथा विधिदृष्टेन कर्मणा॥ ४

सुखोपविष्टं विश्रान्तं प्रहस्य मधुसूदनः।
वृत्तान्तं परिपप्रच्छ पारिजाततरुं प्रति॥ ५

अथाचष्ट मुनिः सर्वं विस्तरेण तपोधनः।
इन्द्रानुजायेन्द्रवाक्यं निखिलं जनमेजय॥ ६

श्रुत्वा कृष्णस्तु तत् सर्वं नारदं वाक्यमब्रवीत्।
अमरावतीं पुरीं यास्ये श्वोऽहं धर्मभृतां वर॥ ७

इत्युक्त्वा नारदेनैव सहितः सागरं ययौ।
संदिदेश ततस्तत्र विविक्ते नारदं हरिः॥ ८

महेन्द्रभवनं गत्वा अद्य ब्रूहि तपोधन।
अभिवाद्य महात्मानं मद्वाक्यममरोत्तमम्॥ ९

न युद्धे प्रमुखे शक्र स्थातुमर्हसि मे प्रभो।
पारिजातस्य नयने निश्चितं त्वमवेहि माम्॥ १०

एवमुक्तस्तु कृष्णेन नारदस्त्रिदिवं गतः।
आचचक्षेऽथ कृष्णोक्तं देवेन्द्रस्यामितौजसः॥ ११

ततो बृहस्पतेः शक्रः शशंस बलनाशनः।
श्रुत्वा बृहस्पतिर्देवमुवाच कुरुनन्दन॥ १२

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! तदनन्तर रमणीय द्वारकापुरीमें जाकर मुनिवर नारदने शत्रुओंका दमन करनेवाले पुरुषप्रवर नारायण (भगवान् श्रीकृष्ण)-का दर्शन किया॥ १॥ वे अपने भवनमें सत्यभामाके साथ सुखपूर्वक बैठे थे और सम्पूर्ण तेजोंका अतिक्रमण करनेवाले अपने दिव्य विग्रहसे विराजमान हो रहे थे॥ २॥ दृढ़तापूर्वक अपने व्रतका पालन करनेवाले महात्मा श्रीकृष्ण उसी (पारिजात)-के विषयमें सोच रहे थे और भामिनी सत्यभामाको केवल वाणीमात्रसे सान्त्वना दे रहे थे॥ ३॥ नारदजीको देखते ही भगवान् अधोक्षज उठकर खड़े हो गये तथा उन्होंने शास्त्रोक्त विधिसे उनका पूजन किया॥ ४॥ जब वे सुखपूर्वक आसनपर बैठ गये और विश्राम कर चुके, तब मधुसूदन श्रीकृष्णने हँसकर उनसे पारिजात-वृक्षके विषयमें समाचार पूछा॥ ५॥ जनमेजय! तब तपोधन मुनि नारदजीने सारा समाचार विस्तारपूर्वक बतलाया और इन्द्रके छोटे भाई श्रीकृष्णके लिये इन्द्रकी कही हुई सारी बातें कह सुनायीं॥ ६॥ वह सब सुनकर श्रीकृष्णने नारदजीसे कहा—'धर्मात्माओंमें श्रेष्ठ मुनीश्वर! मैं कल अमरावतीपुरीकी यात्रा करूँगा'॥ ७॥ ऐसा कहकर श्रीहरि नारदजीके साथ ही समुद्र-तटपर गये और वहाँ एकान्तमें उन्होंने उन देवर्षिको यह संदेश दिया—॥ ८॥ 'तपोधन! आप आज ही इन्द्रभवनमें जाकर मेरी ओरसे अमरश्रेष्ठ महात्मा इन्द्रको प्रणाम करके उनसे मेरी यह बात बता दीजिये कि इन्द्र! प्रभो! आप युद्धमें मेरे सामने नहीं ठहर सकेंगे। आपको यह ज्ञात हो जाना चाहिये कि मैं पारिजातको वहाँसे ले आनेका दृढ़ निश्चय कर चुका हूँ'॥ ९-१०॥ श्रीकृष्णके ऐसा कहनेपर नारदजी स्वर्गलोकको चले गये। वहाँ उन्होंने अमिततेजस्वी देवराज इन्द्रको श्रीकृष्णकी कही हुई सारी बात बता दी॥ ११॥ कुरुनन्दन! तब बलासुरका विनाश करनेवाले इन्द्रने बृहस्पतिसे यह सब प्रसंग कह सुनाया। उसे सुनकर बृहस्पतिने देवेन्द्रसे कहा—॥ १२॥

अहो धिग् ब्रह्मसदनं मयि याते शतक्रतो।
दुर्नीतमिदमारब्धमत्र भेदो हि दारुणः॥ १३

अनाख्यात्वा कथं नाम भवता भुवनेश्वर।
ममैतत् कृत्यमारब्धं देव केनापि हेतुना॥ १४

अथवा भवितव्येन कर्मजेन प्रयुज्यते।
जगद् वृत्रघ्न न विधिः शक्यः समतिवर्तितुम्॥ १५

सहसैव तु कार्याणामारम्भो न प्रशस्यते।
तदेतत् सहसाऽऽरब्धं कार्यं दास्यति लाघवम्॥ १६

बृहस्पतिं महात्मानं महेन्द्रस्त्वब्रवीद् वचः।
एवं गतेऽद्य यत् कार्यं तद् भवान् वक्तुमर्हति॥ १७

तमुवाचाथ धर्मात्मा गतानागततत्त्ववित्।
अधोमुखश्चिन्तयित्वा बृहस्पतिरुदारधीः॥ १८

यतस्व सह पुत्रेण योधयस्व जनार्दनम्।
तथा शक्र करिष्यामि यथा न्याय्यं भविष्यति॥ १९

बृहस्पतिस्त्वेवमुक्त्वा क्षीरोदं सागरं गतः।
आचष्ट मुनये सर्वं कश्यपाय महात्मने॥ २०

तच्छ्रुत्वा कश्यपः क्रुद्धो बृहस्पतिमभाषत।
अवश्यं भाव्यमेतद् भोः सर्वथा नात्र संशयः॥ २१

इच्छतः सदृशीं भार्यां महर्षेर्देवशर्मणः।
अपध्यानकृतो दोषः पतत्येष शतक्रतोः॥ २२

तस्य दोषस्य शान्त्यर्थमारब्धश्च मुने मया।
उदवासः स दोषश्च प्राप्त एव सुदारुणः॥ २३

तद् गमिष्यामि मध्येऽस्य सहादित्या तपोधन।
उभौ तौ वारयिष्यामि दैवं संवदते यदि॥ २४

बृहस्पतिस्तु धर्मात्मा मारीचमिदमब्रवीत्।
प्राप्तकालं त्वया तत्र भवितव्यं तपोधन॥ २५

'अहो, धिक्कार है! शतक्रतो! मैं वहाँसे ब्रह्मलोकको चला गया था। इसी बीचमें तुमने यह दुर्नीति आरम्भ कर दी; क्योंकि तुम्हारे इस बर्तावके कारण यहाँ भयंकर भेद (कलह)-का अवसर उपस्थित हो गया है॥ १३॥ भुवनेश्वर! देव! क्या कारण था कि तुमने मुझसे बताये बिना ही यह दुष्कृत्य आरम्भ कर दिया॥ १४॥ अथवा वृत्रासुर-विनाशन इन्द्र! यह सम्पूर्ण जगत् भावी कर्मफलसे प्रेरित होता रहता है। विधिके विधानका उल्लङ्घन करना असम्भव है॥ १५॥ सहसा किया हुआ कार्योंका आरम्भ अच्छा नहीं माना गया है। तुमने जो सहसा यह कार्य आरम्भ कर दिया है, यह अवश्य तुम्हें लघुता (पराजय) प्रदान करेगा॥ १६॥ तब महेन्द्रने महात्मा बृहस्पतिसे कहा—'गुरुदेव! ऐसी परिस्थितिमें आज जो मेरा कर्तव्य हो, उसे आप बतानेकी कृपा करें'॥ १७॥ यह सुनकर भूत और भविष्यके तत्त्वको जाननेवाले उदारबुद्धि धर्मात्मा बृहस्पतिने नीचे मुँह करके कुछ देरतक सोच-विचारकर उनसे कहा—॥ १८॥ 'देवेन्द्र! अब तुम अपने पुत्र जयन्तके साथ युद्धभूमिमें उपस्थित हो श्रीकृष्णके साथ युद्ध और उसमें विजय पानेका प्रयत्न करो। तबतक मैं ऐसा प्रयत्न करूँगा, जिससे न्यायसंगत परिणाम प्रकट होगा'॥ १९॥ ऐसा कहकर बृहस्पतिजी क्षीरसागरके तटपर गये। वहाँ उन्होंने महात्मा कश्यप मुनिसे सब बातें कह सुनायीं॥ २०॥ वह सुनकर कश्यपजीने कुपित हो बृहस्पतिजीसे कहा—'अजी, यह युद्ध अवश्य होगा। सर्वथा होकर रहेगा--इसमें संशय नहीं है॥ २१॥ महर्षि देवशर्माकी पत्नी रुचि सर्वथा उन्हींके समान शुद्ध आचार-विचारवाली थी; परंतु इन्द्रने उसे प्राप्त करनेकी इच्छा की। इससे मुनिने इन्द्रका अनिष्ट-चिन्तन किया। वही यह दोष इस समय इन्द्रपर पड़ रहा है*॥ २२॥ मुने! उस दोषकी शान्तिके लिये ही मैंने यह जलवासरूप तप आरम्भ किया था तथापि वह अत्यन्त दारुण दोष प्राप्त हो ही गया॥ २३॥ तपोधन! अतः अब मैं अदितिके साथ इस युद्धके अवसरपर मध्यस्थ होकर जाऊँगा और यदि दैव अनुकूल रहा तो दोनोंको युद्धसे रोकूँगा॥ २४॥ तब धर्मात्मा बृहस्पतिने मरीचिनन्दन कश्यपसे इस प्रकार कहा—'तपोधन! अब युद्धका अवसर प्राप्त हो गया। अतः आपको वहाँ अवश्य उपस्थित होना चाहिये'॥ २५॥

* यह प्रसङ्ग महाभारत अनुशासनपर्वके चालीसवें अध्यायमें देख लेना चाहिये।

तथेति कश्यपश्चोक्त्वा सम्प्रस्थाप्य बृहस्पतिम्।
जगामार्चयितुं देवं रुद्रं भूतगणेश्वरम्॥ २६

तत्र सौम्यं महात्मानमानर्च वृषभध्वजम्।
वरार्थी कश्यपो धीमानदित्या सहितः प्रभुः॥ २७

तुष्टाव च तमीशानं मारीचः कश्यपस्तदा।
वेदोक्तैः स्वकृतैश्चैव स्तवैः स्तुत्यं जगद्गुरुम्॥ २८

कश्यप उवाच

उरुक्रमं विश्वकर्माणमीशं
जगत्स्त्रष्टारं धर्मदृश्यं वरेशम्।
ससर्वं त्वां धृतिमद्धाम दिव्यं
विश्वेश्वरं भगवन्तं नमस्ये॥ २९

यो देवानामधिपः पापहर्ता
तं तं विश्वं येन जगन्मयत्वात्।
आपो गर्भं यस्य शुभा धरित्र्यो
विश्वेश्वरं तं शरणं प्रपद्ये॥ ३०

शालावृकान् यो यतिरूपो निजघ्ने
दत्तानिन्द्रेण प्रणुदो हितानाम्।
विरूपाक्षं सुदर्शनं पुण्ययोनिं
विश्वेश्वरं शरणं यामि मूर्ध्ना॥ ३१

भुङ्क्ते य एको विभुर्जगतो विश्वमग्र्यं
धाम्नां धाम सुकृतित्वान्न धृष्यः।
पुष्यात् स मां महसा शाश्वतेन
सोमपानां मरीचिपानां वरिष्ठः॥ ३२

कश्यपजीने 'बहुत अच्छा' कहकर बृहस्पतिको वहाँसे भेज दिया और स्वयं वे भूतगणोंके स्वामी रुद्रदेवकी आराधना करनेके लिये चले गये॥ २६॥ वहाँ अदितिके साथ बुद्धिमान् भगवान् कश्यपने वरप्राप्तिकी इच्छा रखकर सौम्यरूपधारी परमात्मा वृषभध्वज शिवकी पूजा की॥ २७॥ उस समय मरीचिनन्दन कश्यपने स्तुति करनेके योग्य जगद्‌गुरु भगवान् शंकरका वेदोक्त मन्त्रों तथा स्वरचित स्तोत्रोंद्वारा स्तवन किया॥ २८॥

कश्यपजी बोले—जो विष्णुरूपसे वामन-अवतारके समय महान् पग बढ़ाकर त्रिलोकीको नाप लेनेमें समर्थ हुए हैं, यह सम्पूर्ण विश्व जिनका कर्म है, जो सबके ईश्वर हैं, जगत्‌की सृष्टि करनेवाले हैं, धर्मके द्वारा जिनका साक्षात्कार होता है, जो अभीष्ट मनोरथोंके स्वामी तथा उनकी पूर्ति करनेवाले हैं, जो सर्वस्वरूप, सात्त्विकी धृतिवाले योगियोंके जो ये चिन्मय धामस्वरूप हैं,उन दिव्यस्वरूप आप भगवान् विश्वेश्वरको मैं नमस्कार करता हूँ॥ २९॥ जो देवताओंके अधिपति और पापहर्ता हैं, जो जगत्स्वरूप होनेके कारण सम्पूर्ण विश्वमें व्याप्त हैं, शुभ जल (जलात्मक वीर्यसे प्रकट होनेवाले शरीर) जिनके गर्भ (अंशभूत चैतन्य)-को धारण करते हैं, उन भगवान् विश्वेश्वरकी मैं शरण लेता हूँ॥ ३०॥ जिन्होंने यतिरूप होकर—जितेन्द्रिय बनकर इन्द्रके भेजे हुए इन्द्रियरूपी भेड़ियोंको, जो शम-दम आदि हितैषी मित्रोंको दबा देनेवाले हैं, नष्ट कर दिया, जिनके नेत्र विरूप हैं, जो देखनेमें बड़े सुन्दर तथा पुण्यकी योनि हैं, उन भगवान् विश्वेश्वरकी मैं शरण लेता हूँ और उन्हें मस्तक झुकाकर प्रणाम करता हूँ॥ ३१॥ जो एकमात्र इस जगत्‌के स्वामी हैं तथा श्रेष्ठ विश्वका पालन करते (अथवा इसे अपने उपभोगमें लाते) हैं, जो धाम (नेत्र एवं सूर्य आदि)-के भी धाम (आश्रय अथवा प्रकाश) हैं तथा सुकृति (पुण्यरूप अथवा सुकृतनामधारी[1] ब्रह्मरूप) होनेके कारण सबके लिये अजेय हैं, सोमपान करनेवाले कर्मठों और चन्द्ररश्मियोंका पान करनेवाले महामुनियोंमें जिनका सबसे ऊँचा और गौरवपूर्ण स्थान है, वे भगवान् विश्वेश्वर अपने सनातन तेजसे मेरा पोषण करें॥ ३२॥

१. 'तस्मात्तत् सुकृतमुच्यते।' इस श्रुतिके अनुसार ब्रह्मका नाम 'सुकृत' है।

अथर्वाणं सुशिरसं भूतयोनिं
कृतिनं वीरं दानवानां च बाधम्।
यज्ञे हुतिं यज्ञियं संस्कृतं वै
विश्वेश्वरं शरणं यामि देवम्॥ ३३

जगज्जालं विततं यत्र विश्वं
विश्वात्मानं प्रीतिदेवं गतानाम्।
य ऊर्ध्वगं रथमास्थाय याति
विश्वेश्वरः सुमना मेऽस्तु नित्यम्॥ ३४

अन्तश्चरं रोचनं चारुशाखं
महाबलं धर्मनेतारमीड्यम्।
सहस्रनेत्रं शतवर्त्मानमुग्रं
महादेवं विश्वसृजं नमस्ये॥ ३५

शुचिं योगं शंसनं शान्तपापं
शर्वं शम्भुं शंकरं भूतनाथम्।
धुरंधरं गोपतिं चन्द्रचिह्नं
हृषीकाणामयनं यामि मूर्ध्ना॥ ३६

आशुःशिशानं वृषभं रोरुवाणं
कृतं धर्मं वितथं चाशुशेषम्।
वसुंधरं समृजिकं समं त्वां
धृतव्रतं शूलधरं प्रपद्ये॥ ३७

जिनका अथर्ववेदके द्वारा प्रतिपादन किया गया है, जिनके पञ्चकोशरूप पाँच सुन्दर मस्तक हैं, जो सम्पूर्ण भूतोंकी योनि अर्थात् समस्त जगत्के कारण हैं, जो विद्वान्, वीर तथा दानवोंके बाधक हैं, यज्ञमें जिनके लिये आहुति दी जाती है, यज्ञसम्बन्धी संस्कारयुक्त हविष्य जिनका स्वरूप है, उन विश्वेश्वरदेवकी मैं शरण लेता हूँ॥ ३३॥ जिनके ऊपर यह सारा जगत्रूपी इन्द्रजाल फैला हुआ है, जो सम्पूर्ण विश्वके आत्मा हैं, शरणागतोंके लिये प्रीति एवं सुखको प्रकाशित करनेवाले हैं तथा जो ऊर्ध्वगामी (आकाशचारी) रथपर आरूढ़ हो यात्रा करते हैं, वे भगवान् विश्वेश्वर मुझपर सदा प्रसन्नचित्त रहें॥ ३४॥ जो अन्तर्यामी आत्मारूपसे सबके भीतर विचरते हैं, प्रकाशमान (चिन्मय) हैं, वेदमयी मनोहर शाखाएँ जिनसे प्रकट हुई हैं, जो महान् बलशाली, धर्मके प्रवर्तक तथा स्तवन करने योग्य हैं। जिनके सहस्रों नेत्र हैं और जिन्हें पानेके लिये सैकड़ों मार्ग हैं (अथवा जो शतपथविहित कर्मफलके दाता हैं) उन उग्रस्वरूप विश्वस्रष्टा महादेवजीको मैं नमस्कार करता हूँ॥ ३५॥ जो शुचि (पवित्र एवं असङ्ग), योगसे प्राप्त होनेवाले, विभिन्न योगोंके प्रतिपादक, पापशून्य, संहारक, सुखके उत्पत्तिस्थान, कल्याणकारी और सम्पूर्ण भूतोंके अधिपति हैं, जो अकेले ही सम्पूर्ण विश्वका भार वहन करते हैं, इन्द्रियोंके नियन्ता हैं तथा चन्द्रमाको चिह्नके रूपमें अपने मस्तकपर धारण करते हैं, ज्ञानेन्द्रियोंके आश्रयरूप उन भगवान् शिवको मैं मस्तक झुकाकर प्रणाम करता और उनकी शरणमें जाता हूँ॥ ३६॥ जो शीघ्र फल देनेवाला, राग आदि दोषोंको शान्त करनेवाला, अभीष्ट मनोरथोंका वर्षक (पूरक), प्रातः सवन आदिके क्रमसे शब्दायमान और अनुष्ठानमें लाया हुआ जो यज्ञादिरूप धर्म है, वह यदि सकामभावसे किया जाय तो नश्वर फल देनेके कारण व्यर्थ हो जाता है और फलभोगके द्वारा उसकी शीघ्र ही समाप्ति हो जाती है; किंतु वही धर्म यदि निष्कामभावसे किया जाय तो वह आत्मशुद्धि-सम्पादनके साथ ही पुण्यरूपी धनको सुस्थिर रखनेवाला होता है—यह दोनों प्रकारका धर्म आपका ही स्वरूप है। आप सभी अवस्थाओंमें सम हैं। उत्तम व्रतको धारण करनेवाले आप त्रिशूलधारी रुद्रदेवकी मैं शरण लेता हूँ॥ ३७॥

अनन्तवीर्यं धृतकर्माणमाद्यं
यज्ञाशेषं जयता चाभियाज्यम्।
हविर्भुजं भुवनानां सदैवं
ज्येष्ठं द्विजं धर्मभृतां प्रपद्ये॥ ३८

परं गुणेभ्यः पृश्निगर्भस्वरूपं
यशः शृङ्गं व्यूहनं कान्तरूपम्।
शुद्धात्मानं पुरुषं सत्यधामं
सम्मोहनं दुष्कृतिनां नमस्ये॥ ३९

युक्तोङ्कारं स्वशिरसं चारुकर्म
दृढव्रतं दृढधन्वानमाजम्।
शूरं वेत्तारं धनुषोऽस्त्रातिरेकं
पतिं पशूनां शमनं नमस्ये॥ ४०

एको रातिश्चैव भूतं भविष्यं
सर्वातिथिर्यो हि जुषत्यरिघ्नः।
अरिंतुदोऽनुत्तमः संविभागी
विभाजको मां भगवान् पातु देवः॥ ४१

य एको याति जगतां विश्वमीशो
य एकोऽदान्मरुतां प्राणमग्र्यम्।
येनानृशंस्याच्छाश्वतं साम जुष्टं
स मां जुष्यात् सुकृतिश्रेयसेऽद्य॥ ४२

आपके बल-पराक्रमका कहीं अन्त नहीं है, आप ही समस्त कर्मोंको धारण करनेवाले आधार हैं अर्थात् आप ही समस्त कर्मों और उनके फलोंके साक्षी हैं। अन्य देवताओंकी भाँति आप यज्ञके अङ्ग नहीं हैं। आप ही सबके आदि कारण हैं। यजमान अपने यज्ञोंद्वारा जिन यज्ञपुरुषकी आराधना करते हैं, उनके वे आराध्यदेव आप ही हैं। आप ही सदा समस्त जगत्के हविष्यभोक्ता अग्निरूप हैं और आप ही धर्मात्माओंमें ज्येष्ठ द्विज (ब्राह्मण) हैं, मैं आपकी शरण लेता हूँ॥ ३८॥ आप गुणोंसे परे तथा विष्णुस्वरूप हैं। आप यशके समान व्यापक हैं। सारे प्रपञ्चको व्याप्त करके भी सींगके समान उससे ऊपर उठे हुए हैं। आप ही समस्त प्राणियोंके अङ्ग-प्रत्यङ्गको सुगठित करनेवाले हैं। आपका रूप अत्यन्त कमनीय (मनोहर) है। आप विशुद्ध आत्मस्वरूप अन्तर्यामी तथा सत्यधाम (अबाधित चैतन्यस्वरूप अथवा वैकुण्ठादि नित्यधामस्वरूप) हैं। आप दुराचारियोंको मोह (महान् दुःख)-में डालनेवाले हैं। मैं आपको नमस्कार करता हूँ॥ ३९॥ आप योगियोंके लिये प्रणवरूप हैं। अपने स्वरूपभूत ओंकारके सिर अर्थात् उसकी अर्द्धमात्रा आप ही हैं। आपका कर्म हिंसाशून्य होनेके कारण बड़ा ही मनोहर है। आप दृढ़तापूर्वक व्रतका पालन करनेवाले हैं। आपका धनुष अत्यन्त सुदृढ़ है। आप बाणोंको दूरतक फेंकनेवाले, शूरवीर, धनुर्वेदके ज्ञाता और अस्त्र-विज्ञानमें सबसे बढ़े-चढ़े हैं। समस्त पशुओं (जीवों)-के पति (पालक) तथा जगत्का संहार करनेवाले आप भगवान् शंकरको मैं नमस्कार करता हूँ॥ ४०॥ जो सबके एकमात्र मित्र हैं, भूत और भविष्य जिनका ही स्वरूप है, जो सबके अतिथि (अग्नि)-रूपसे हविष्यका सेवन करते हैं, काम आदि शत्रुओंका नाश करनेवाले हैं तथा शत्रुभाव रखनेवाले राक्षसोंको पीड़ा देते हैं, जिनसे उत्तम दूसरा कोई नहीं है, जो यज्ञमें भाग पाते और स्वयं भी भागोंका विभाजन करते हैं, वे भगवान् महादेव मेरी रक्षा करें॥ ४१॥ जो जगदीश्वर एक होकर भी सम्पूर्ण विश्वमें प्रविष्ट हैं तथा जिन अद्वितीय परमात्माने प्राणस्वरूप मरुद्गणोंको भी उत्तम प्राण प्रदान किया है अर्थात् जो प्राणके भी प्राण हैं, जिन्होंने दयालु होनेके कारण सबके साथ सनातन मैत्री जोड़ रखी है, वे भगवान् शिव आज उत्तम कार्य और कल्याणके लिये मुझपर कृपादृष्टि करें॥ ४२॥

ब्रह्मासृजद् यो भुवनोत्तमोत्तमं
तृप्तो विद्वान् ब्राह्मणः षड्गुणस्य।
सृष्ट्वा रसं व्याहृतिस्थं समग्रं
स मां पायादिह बहुरूपोऽरिहाङ्गैः॥ ४३

व्यञ्जनोऽजनोऽथ विद्वान् समग्रः
स्पृशिःशम्भुःप्राणदःकृत्तिवासाः।
रसो ध्रुवः पवमानस्य भर्ता
सपत्नीशः शङ्करः सारधाता॥ ४४

त्र्यम्बकं पुष्टिदं विब्रुवाणं
धर्मं विप्राणां वरदं यज्वनां च।
वराद् वरं रणजेतारमीशं
देवं देवानां शरणं यामि रुद्रम्॥ ४५

आस्यं देवानामन्तकं दुष्कृतीनां
त्रिवृत्स्तोमं वृक्षहं कर्मसाक्ष्यम्।
भूतायनं भूतपतिं गुणज्ञं
गुणाकारं शरणं यामि रुद्रम्॥ ४६

अनुद्धृतं यज्ञकर्तारमन्तं
मध्यं चाद्यं यज्ञकृतां साम्यरूपम्।
वेदव्रतेषु बहुधा गीतमीश-
मभित्रिविष्टपं शरणं यामि रुद्रम्॥ ४७

महाजिनं व्रतिनं मेखलालं
सुतोषणं क्रोधधवं विपापम्।
भूतं क्षेत्रज्ञं गुणिनं वा कपर्दिनं
नतोऽस्मीशं वन्दनं वन्दनानाम्॥ ४८

जिन्होंने ब्रह्मा होकर समस्त भुवनोंमें उत्तमोत्तम दिव्यलोककी रचना की है, जो विद्वान् ब्रह्मवेत्ता होनेके कारण छः गुणों (ऐश्वर्य, ज्ञान, यश, श्री, वैराग्य और धर्म)-से परिपूर्ण हैं, व्याहृतियोंमें स्थित रस तथा उसकी तीन मात्राओंसे उपलक्षित समस्त प्रपञ्चकी सृष्टि करके जो इसके भीतर व्याप्त हैं, वे अनेक रूपधारी,कामादि शत्रुके नाशक, अपने अङ्गोंद्वारा मेरी रक्षा करें॥ ४३ ॥ जो अतीन्द्रिय विषयोंका भी ज्ञान करानेवाले, अजन्मा, विद्वान् तथा सर्वस्वरूप हैं, व्यापक होनेके कारण जो सबका स्पर्श करनेवाले, कल्याणकारी तथा प्राणदाता हैं, जो अपने शरीरपर वस्त्रके स्थानमें गजचर्म धारण करते हैं, ध्रुव रस—अक्षय परमानन्द जिनका स्वरूप है, जो वायुके भी भरण-पोषण करनेवाले हैं, पत्नी और पति (यजमान और उसकी पत्नी)-के साथ रहकर अर्थात् आत्मारूपसे उनके प्रेरक होकर यज्ञादि कर्मोंका सम्पादन करते हैं तथा सार तत्त्वको धारण करनेवाले हैं, वे भगवान् शंकर मेरी रक्षा करें॥ ४४॥ जो त्रिनेत्रधारी तथा सबको पुष्टि प्रदान करनेवाले हैं, विप्रों—विद्वानोंको भी धर्मका उपदेश करते हैं और यज्ञ करनेवाले यजमानोंको अभीष्ट वर देते हैं, जो श्रेष्ठसे भी श्रेष्ठ, संग्रामविजयी, ईश्वर तथा देवताओंके भी देवता हैं, उन भगवान् रुद्रकी मैं शरण लेता हूँ॥ ४५॥ जो अग्निरूपसे देवताओंके मुख, दुराचारियोंका अन्त करनेवाले, त्रिवृत आदि स्तोत्रोंसे युक्त सोमयागस्वरूप, संसारवृक्षका उच्छेद करनेवाले, कर्मोंके साक्षी, भूतोंके लयस्थान, भूतनाथ, गुणज्ञ और गुणस्वरूप हैं, उन रुद्रदेवकी मैं शरण लेता हूँ॥ ४६॥ जिन्हें कोई प्रबलसे भी प्रबल शत्रु उखाड़ नहीं सकता, जो यज्ञका सम्पादन करनेवाले तथा यजमानोंके आदि, मध्य और अन्त हैं, प्रकृतिकी साम्यावस्था जिनका स्वरूप है, वेदोक्त व्रतों (यज्ञों)-में अनेकानेक देवताओंके रूपमें जिनका गान किया गया है तथा जो भूतलसे लेकर स्वर्गतक तीनों लोकोंके ईश्वर हैं, उन भगवान् रुद्रकी मैं शरण लेता हूँ॥ ४७॥ जो महान् गजचर्म धारण करनेवाले, उत्तम व्रतधारी, मेखलासे अलंकृत, अनायास ही संतुष्ट होनेवाले, क्रोधके स्वामी, पाप-तापसे रहित, नित्य सिद्ध, क्षेत्रज्ञ, गुणवान्, जटाजूटधारी तथा वन्दनीयोंके भी वन्दनीय हैं, उन भगवान् शंकरको मैं नमस्कार करता हूँ॥ ४८॥

देवं देवानां पावनं पावनानां
कृतिं कृतीनां महतो महान्तम्।
शतात्मानं संस्तुतं गोपतीनां
पतिं देवं शरणं यामि रुद्रम्॥ ४९

अन्तश्चरं पुरुषं गुह्यसंज्ञं
प्रभास्वन्तं प्रणवं विप्रदीपम्।
हेतुं परं परमस्याक्षरस्य
शुभं देवं गुणिनं संनतोऽस्मि॥ ५०

प्रसूतिरुभयोर्न प्रसूतश्च सूक्ष्मः
पृथग्भूतेभ्यो न पृथक्चैकभूतः।
स्वयं भूतः पातु मां सर्वसादः
प्रदः स्वादः सम्मदः पातु रत्नम्॥ ५१

आसन्नः सन्ततरः साधनानां
श्रद्धावतां श्राद्धवृत्तिप्रणेता।
पतिर्गणानां महतां सत्कृतीनां
पायान्मेषः पूरणः षड्गुणानाम्॥ ५२

अन्तर्बहिर्वृजिनानां निहन्ता
स्वयं कर्ता भूतभावी विकुर्वन्।
धृतायुधः सुकृतिनामुत्तमौजाः
प्रणुद्यान्मे वृजिनं देवदेवः॥ ५३

येनोद्धृतास्त्रैः पुरा मायिनो वै
दग्धा घोरेण वितथान्ताः शरेण।
महत्कुर्वन्तो वृजिनं देवतानां
ज्यायानीशः पातु विश्वोदधाता॥ ५४

जो देवताओंके भी देवता, पावनोंके भी पावन, कृतियोंकी भी कृति, यज्ञोंके भी यज्ञ—अर्थात् यजनीयोंके भी यजनीय हैं, जो महान्से भी महान् शान्तस्वरूप हैं, तथा इन्द्रियोंके अधिष्ठातृ देवताओंके लिये भी स्तवनीय हैं, उन सबके पालक रुद्रदेवकी मैं शरण लेता हूँ॥ ४९ ॥ जो सबके अन्तःकरणमें विचरनेवाले अन्तर्यामी पुरुष, जिन्हें गुह्य कहा गया है, जो दूसरे प्रकाशसे रहित स्वयं प्रकाशरूप हैं, प्रणव (ॐकार) जिनका नाम है, जो परम अक्षर (जीव)-के भी परम कारण हैं, उन मङ्गलकारी गुणवान् देवता भगवान् शिवको मैं प्रणाम करता हूँ॥ ५० ॥ जो जगत् और जीव दोनोंकी योनि हैं, फिर भी समस्त कारणोंसे अतीत होनेके कारण जो उनकी योनि नहीं हैं, अतएव सूक्ष्म (कठिनतासे समझमें आनेवाले) हैं; सम्पूर्ण भूतोंसे पृथक् हैं और उन सबसे एकभूत अभिन्न होनेके कारण पृथक् नहीं भी हैं, जो स्वयं ही समस्त जगत्के रूपमें प्रकट हुए हैं और सबके लयस्थान भी हैं तथा जो उत्तम दाता, स्वाद (रुचि), हर्ष तथा रमणीय रत्नरूप हैं, वे भगवान् शंकर मेरी रक्षा करें॥ ५१ ॥ जो अन्तर्यामी होनेके कारण सबके निकट हैं तथा साधनशील पुरुषोंके लिये सन्नतर—अनावृत अर्थात् अपरोक्ष हैं, श्रद्धालु मनुष्योंको उनकी श्रद्धाके अनुरूप वृत्ति (ज्ञान एवं भक्ति) प्रदान करनेवाले हैं तथा जो महान् पुण्यात्मा प्रमथगणोंके अधिपति और अभीष्ट मनोरथों एवं सर्वज्ञता आदि छः गुणोंकी पूर्ति करनेवाले हैं, वे भगवान् शिव मेरी रक्षा करें॥ ५२ ॥ जो बाहर-भीतरके पाप-तापोंका नाश करनेवाले तथा स्वयं ही जगत्के कर्ता (निमित्त कारण) हैं, पञ्च भूतोंके आकारमें अपने-आपको प्रकट करना जिनका स्वभाव है अर्थात् जो स्वयं ही जगत्का उपादान कारण बनते हैं और आयुध धारण करके क्रोधादि विकारोंको प्रकट करते हैं, जिनका ओज (बल-पराक्रम) सबसे उत्तम है तथा जो देवताओंके भी देवता हैं, वे परमेश्वर शिव पुण्यात्मा पुरुषोंका तथा मेरा भी पाप-ताप दूर करें॥ ५३ ॥ जो देवताओंका महान् अपराध किया करते थे, उन मायावी असुरोंको जिन्होंने पूर्वकालमें अपने अस्त्रोंद्वारा काँटोंकी भाँति उखाड़ फेंका था, अपने भयानक बाणसे उनके तीनों पुरोंको जलाकर उन्हें भी भस्म कर दिया और इस प्रकार शस्त्रोंद्वारा न मारे जानेके कारण उन असुरोंकी मृत्यु व्यर्थ हो गयी थी—यह सब जिनके प्रभावसे सम्भव हुआ तथा जो सबके कारणभूत प्रकृति या प्रधानके भी आश्रय हैं, वे सबसे ज्येष्ठ परमेश्वर शिव मेरी रक्षा करें॥ ५४॥

भागीयसां भागमतोऽन्तमिच्छन्
मखो दाक्षो येन कृत्तोऽन्वधावत्।
विद्वान् यज्ञस्यादिरथान्तः स देवः
पायादीशो मां दक्षयज्ञान्तहेतुः॥ ५५

अन्यो धन्यः संस्कृतश्चोत्तमश्च
जगत् सृष्ट्वा योऽत्ति सर्वातिगुह्यः।
स मां मुखप्रमुखे पातु नित्यं
विचिन्वानः प्रथमः षड्गुणानाम्॥ ५६

गुणत्रैकाल्यं यस्य देवस्य नित्यं
सत्त्वोद्रेको यस्य भावात् प्रसूतः।
गोप्ता गोप्तॄणां सन्नदो दुष्कृतीना-
माद्यो विश्वस्य बाधमानस्य क्रुद्धः॥ ५७

धाम्नो यस्य हरिरग्रोऽथ विश्वो
ब्रह्मा पुत्रैः सहितश्च द्विजाश्च।
पराभूता भवने यस्य सोमो
जुषत्वेष श्रेयसे साधुगोप्ता॥ ५८

यस्माद् भूतानां भूतिरन्तोऽथ मध्यं
धृतिर्भूतिर्यश्च गुहाश्रुतिश्च।
गुहाभिभूतस्य पुरुषेश्वरस्य
महात्मनः सम्मृडवेद्यस्य तस्य॥ ५९

दक्षके यज्ञमें अधिक भाग ग्रहण करनेवाले देवताओंके भागको जिन्होंने नष्ट करनेकी इच्छा की थी, जिनके द्वारा विच्छिन्न हुआ दक्षका यज्ञ वहीं यज्ञेश्वरकी शरणमें गया था, जो यज्ञके ज्ञाता, आदि और अन्त हैं तथा दक्षयज्ञके विनाशमें हेतु बने हुए हैं, वे सर्वेश्वर महादेवजी मेरी रक्षा करें॥ ५५॥ जो ब्रह्मारूपसे जगत्‌की सृष्टि करके रुद्ररूपसे उसका संहार करते हैं, जो सबकी अपेक्षा अत्यन्त गोपनीय हैं, जड जगत्‌से भिन्न (विलक्षण) हैं, शम आदि संस्कारोंसे सम्पन्न होनेके कारण धन्य हैं, सबसे उत्तम हैं, जो इन्द्र और अग्निकी प्रधानतावाले यज्ञमें सदा यजमानोंकी पुण्यराशिका संचय करते हैं और ऐश्वर्य आदि छः गुणोंके मुख्य आश्रय हैं, वे परमेश्वर मेरी तथा मेरी संततिकी प्रतिदिन रक्षा करें॥ ५६॥ जिन परमात्माके गुण भूत, भविष्य और वर्तमान तीनों कालोंमें सदा बने रहते हैं अथवा जिनमें सृष्टि, पालन और संहार कालसम्बन्धी गुण प्रवाहरूपसे नित्य बने रहते हैं; जिनमें सत्त्वगुणकी अधिकता है अर्थात् जो विष्णुरूपसे स्थित हैं, जिनके स्वरूपसे प्रकट हुए श्रीकृष्ण, इन्द्र आदि रक्षकोंके भी रक्षक हैं, जो काल रुद्र बनकर दुराचारियोंको विनाशका कष्ट प्रदान करनेवाले हैं और विश्वके आदिकारण (एवं माता-पिताके समान पालक) होकर भी जो इस जगत्‌को पीड़ा देनेवाले लोगोंपर कुपित हो उनका विनाश कर डालते हैं, वे परमात्मा मेरी रक्षा करें॥ ५७॥ भगवान् विष्णु जिनके तेज:पुञ्जके प्रमुख भाग हैं तथा विश्व (विराट्)-रूप ब्रह्मा, साथ ही उनके पुत्र सनकादि और मरीचि आदि अन्य ब्रह्मर्षि जिनसे प्रकट हुए हैं तथापि वे जिनके भवनमें पराभूत होकर प्रवेश नहीं करने पाते हैं, वे सत्पुरुषोंके रक्षक उमासहित महादेवजी हमारा कल्याण करनेके लिये हमपर प्रसन्न हों॥ ५८॥ जिनसे आकाश आदि पाँचों भूतोंकी उत्पत्ति, स्थिति और अन्त होते हैं (वे भगवान् शिव हमपर प्रसन्न हों)। जो किसीके द्वारा हार्दिक तिरस्कारसे पीड़ित हो एकमात्र सुखदायक भगवान् शिवको ही महान् आश्रय जानकर उनकी शरण लेता है, वह पुरुषोंमें श्रेष्ठ एवं महात्मा है, उसे उन्हीं भगवान् शङ्करसे धृति (धैर्य) और भूति (ऐश्वर्य) आदि अनुग्रहकी उपलब्धि होती है तथा उसे उन्हींसे गुह्य वस्तुका श्रवण (उपदेश) प्राप्त होता है। (अतः संकटके समयमें अपनी शरणमें आये हुए मुझ सेवकका कष्ट वे अवश्य दूर करेंगे—ऐसा मेरा विश्वास है)॥ ५९॥

यल्लिङ्गाङ्कं त्र्यम्बकः सर्वमीशो
भगलिङ्गाङ्कं यद्धयुमा सर्वधात्री।
नान्यत् तृतीयं जगतीहास्ति किंचि-
न्महादेवात् सर्वसर्वेश्वरोऽसौ॥ ६०

इति संस्तूयमानस्तु भगवान् वृषभध्वजः।
दर्शयामास धर्मात्मा कश्यपं धर्मधृग्वरम्॥ ६१

उवाच चैनं देवेशः प्रसन्नेनान्तरात्मना।
येन संस्तौषि कार्येण त्वं तज्जाने प्रजापते॥ ६२

इन्द्रोपेन्द्रौ महात्मानौ देवौ प्रकृतिमेष्यतः।
पारिजातं तु धर्मात्मा नयिष्यति जनार्दनः॥ ६३

अपध्यातो महेन्द्रो हि मुनिना देवशर्मणा।
अस्याकाङ्क्षत् पुरा भार्यां तपोदीप्तस्य कश्यप॥ ६४

गम्यतां तत्र धर्मज्ञ दाक्षायण्या सह त्वया।
अदित्या शक्रसदनं श्रेयस्ते पुत्रयोर्ध्रुवम्॥ ६५

इति हरवचनं निशम्य विद्वान्
कमलभवात्मजसूनुरप्रमेयः।
त्रिदशगणगुरुं प्रणम्य रुद्रं
मुदितमनाः सुमनौकसं जगाम॥ ६६

संसारमें लिङ्ग (पुरुषत्वसूचक चिह्न)-से अङ्कित जो भी शरीर-समुदाय है, वह सब त्रिनेत्रधारी भगवान् शङ्करका स्वरूप है और भग (स्त्रीत्वसूचक) चिह्नसे चिह्नित जो शरीरसमूह है, वह सब सर्वजननी भगवती उमाका प्रतीक है। इस जगत्में इन दोके सिवा तीसरी कोई वस्तु नहीं है। महादेवजी (और उमा)-से भिन्न कुछ नहीं है; वे ही सर्वसर्वेश्वर हैं। (वे हमारी रक्षा करें)॥ ६०॥ इस प्रकार जिनकी स्तुति की जा रही थी, उन धर्मात्मा भगवान् वृषभध्वज (शिव)-ने धर्मात्माओंमें श्रेष्ठ महर्षि कश्यपको दर्शन दिया॥ ६१॥ दर्शन देकर देवेश्वर महादेवजीने उनसे प्रसन्नचित्तसे कहा—'प्रजापते! तुम जिस कार्यसे मेरी स्तुति कर रहे हो, उसे मैं जानता हूँ॥ ६२॥ इन्द्र और उपेन्द्र दोनों महामनस्वी देवता स्वाभाविक स्थितिमें आ जायँगे; परंतु धर्मात्मा जनार्दन पारिजात-वृक्षको अवश्य ले जायेंगे॥ ६३॥ कश्यप! पूर्वकालमें मुनिवर देवशर्माने महेन्द्रका अनिष्ट-चिन्तन किया था; क्योंकि तपस्यासे उद्दीप्त तेजवाले उन महर्षिकी पत्नीको इन्द्रने प्राप्त करनेकी अभिलाषा की थी। यही उनकी वर्तमान पराजयका कारण है॥ ६४॥ धर्मज्ञ! तुम दक्षकन्या अदितिके साथ वहाँ इन्द्रभवनमें जाओ। तुम्हारे दोनों पुत्रोंका अवश्य कल्याण होगा'॥ ६५॥ इस प्रकार भगवान् शङ्करका कथन सुनकर ब्रह्मकुमार मरीचिके पुत्र अप्रतिम शक्तिशाली विद्वान् महर्षि कश्यप उन देवगुरु भगवान् रुद्रको प्रणाम करके प्रसन्नचित्त हो देवलोकको चले गये॥ ६६॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे विष्णुपर्वणि पारिजातहरणे कश्यपकृतरुद्रस्तोत्रे द्विसप्ततितमोऽध्यायः॥ ७२॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत विष्णुपर्वमें पारिजातहरणके प्रसङ्गमें कश्यपकृत रुद्रस्तोत्रविषयक बहत्तरवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ७२॥

त्रिसप्ततितमोऽध्यायः

इन्द्र और श्रीकृष्ण, जयन्त और प्रद्युम्न, प्रवर और सात्यकि तथा ऐरावत और गरुड़का युद्ध

वैशम्पायन उवाच

अथ विष्णुर्महातेजा मुहूर्ताभ्युदिते रवौ।
मृगयाव्यपदेशेन ययौ रैवतकं गिरिम्॥ १
आरोप्यैकरथे देवः सात्यकिं नरपुङ्गवम्।
प्रद्युम्नमनुगच्छेति प्रोक्त्वा कुरुकुलोद्वह॥ २
रैवतं च गिरिं देवो गत्वा दारुकमब्रवीत्।
मदीयं रथमेनं त्वं ग्रहायेहैव दारुक॥ ३
प्रतिपालय मां सौम्य दिनार्द्धं वारयन् हरीन्।
रथेनैव प्रवेष्टाहं द्वारकां सूतसत्तम॥ ४
इति संदिश्य भगवानारुरोह जयोद्यतः।
तार्क्ष्यं ससात्यको धीमानप्रमेयपराक्रमः॥ ५
पृथग् रथेन कौरव्य प्रद्युम्नः शत्रुसूदनः।
आकाशगामिना राजन् पृष्ठतः कृष्णमन्वयात्॥ ६
निमेषान्तरमात्रेण नन्दनं काननं हरिः।
देवोद्यानं ययौ धीमान् पारिजातजिहीर्षया॥ ७
ददर्श तत्र भगवान् देवयोधान् दुरासदान्।
नानायुधधरान् वीरान् नन्दनस्थानधोक्षजः॥ ८
तेषां सम्पश्यतामेव पारिजातं महाबलः।
उत्पाट्यारोपयामास पारिजातं सतां गतिः॥ ९
गरुडं पक्षिराजानमयत्नेनैव भारत।
उपस्थितो विग्रहवान् पारिजातः स केशवम्॥ १०
सान्त्वितो वासुदेवेन पारिजातश्च भारत।
उक्तश्च वृक्ष मा भैस्त्वं केशवेन महात्मना॥ ११
तं प्रस्थितं तरुं दृष्ट्वा पारिजातमधोक्षजः।
अमरावतीं पुरीं श्रेष्ठां ततश्चक्रे प्रदक्षिणाम्॥ १२
ते तु नन्दनगोप्तारः पारिजातो द्रुमोत्तमः।
ह्रियतीति महेन्द्राय गत्वा नृप शशंसिरे॥ १३
अथैरावतमारुह्य निर्ययौ पाकशासनः।
जयन्तेन रथस्थेन पृष्ठतोऽनुगतः प्रभुः॥ १४

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! तदनन्तर सूर्योदयके बाद दो घड़ी बीत जानेपर महातेजस्वी श्रीकृष्ण हिंसक जन्तुओंका शिकार खेलनेके बहाने रैवतक पर्वतपर गये॥ १॥ कुरुकुलभूषण! भगवान् श्रीकृष्णने एक रथपर नरश्रेष्ठ सात्यकिको चढ़ाकर और प्रद्युम्नको भी अपने पीछे आनेकी आज्ञा देकर जब रैवतक पर्वतपर पहुँचे, तब अपने सारथि दारुकसे बोले—'सौम्य दारुक! तुम मेरे इस रथको लेकर यहीं आधे दिनतक इन घोड़ोंको काबूमें रखते हुए मेरी प्रतीक्षा करो। सूतशिरोमणे! मैं रथके द्वारा ही द्वारकापुरीमें प्रवेश करूँगा'॥ २—४॥ दारुकको यह संदेश देकर विजयके लिये उद्यत हुए अप्रमेय पराक्रमी बुद्धिमान् भगवान् श्रीकृष्ण सात्यकिके साथ गरुड़पर आरूढ़ हुए॥ ५॥ कुरुनन्दन! राजन्! शत्रुसूदन प्रद्युम्न भी एक पृथक् आकाशचारी रथके द्वारा श्रीकृष्णके पीछे-पीछे गये॥ ६॥ बुद्धिमान् श्रीकृष्ण पारिजातको हर लेनेकी इच्छासे पलक मारते-मारते देवताओंके उद्यान नन्दनवनमें जा पहुँचे॥ ७॥ वहाँ भगवान् अधोक्षजने नन्दनवनमें स्थित हुए देवताओंके दुर्जय वीर योद्धाओंको देखा, जो नाना प्रकारके आयुध धारण किये हुए थे। भरतनन्दन! सत्पुरुषोंके आश्रयदाता महाबली श्रीकृष्णने उन योद्धाओंके देखते-देखते विशेष प्रयत्नके बिना ही पारिजातको उखाड़कर पक्षिराज गरुड़की पीठपर रख लिया। पारिजात-वृक्ष मूर्तिमान् होकर श्रीकृष्णकी सेवामें उपस्थित हुआ। भारत! उस समय वसुदेवनन्दन महात्मा केशवने पारिजातको सान्त्वना देते हुए कहा—'वृक्ष! तुम डरो मत'॥ ८—११॥ पारिजात-वृक्षको अपने साथ प्रस्थान करते देख भगवान् अधोक्षजने श्रेष्ठ अमरावतीपुरीकी परिक्रमा की॥ १२॥ नरेश्वर! नन्दनवनके उन रक्षकोंने जाकर महेन्द्रसे कहा—'देवराज! वृक्षोंमें उत्तम पारिजातका अपहरण हो रहा है'॥ १३॥ यह सुनकर प्रभावशाली पाकशासन इन्द्र ऐरावतपर आरूढ़ हो निकले। उनके पीछे-पीछे रथपर बैठा हुआ जयन्त भी आया॥ १४॥

पूर्वमभ्यागतं द्वारं केशवं शत्रुनाशनम्।
दृष्ट्वोवाच प्रवृत्तं भोः किमिदं मधुसूदन॥ १५

प्रणम्य गरुडस्थोऽथ केशवः शक्रमब्रवीत्।
वध्वास्ते पुण्यकार्याय नीयतेऽयं वरद्रुमः॥ १६

तमुवाच ततः शक्रो मा मैवं पुष्करेक्षण।
अयोधयित्वा न तरुर्नयितव्यस्त्वयाच्युत॥ १७

प्रहरस्व महाबाहो प्रथमं मयि केशव।
प्रतिज्ञा सफला तेऽस्तु मुक्त्वा कौमोदकीं मयि॥ १८

ततः कृष्णः शरैस्तीक्ष्णैर्देवराजगजोत्तमम्।
बिभेदाशनिसंकाशैः प्रहसन्निव भारत॥ १९

विव्याध गरुडं वज्री दिव्यैः शरवरैस्तथा।
बाणांश्चिच्छेद सहसा केशवस्य तरस्विनः॥ २०

यान् यान् मुमोच देवेन्द्रस्तांस्तांश्चिच्छेद माधवः।
माधवेन प्रयुक्तांश्च चिच्छेद बलवृत्रहा॥ २१

महेन्द्रस्य च शब्देन धनुषः कुरुनन्दन।
शार्ङ्गस्य च निनादेन मुमुहुः स्वर्गवासिनः॥ २२

तयोर्वर्तति संग्रामे गरुडस्थं महाबलः।
पारिजातं जयन्तोऽथ हर्तुमभ्युद्यतो बली॥ २३

प्रद्युम्नमथ कंसघ्नो वारयेति तदाब्रवीत्।
ततस्तं वारयामास रौक्मिणेयः प्रतापवान्॥ २४

जयन्तो जयतां श्रेष्ठो रौक्मिणेयमथेषुभिः।
सर्वगात्रेषु विहसन्नाजघान रथे स्थितः॥ २५

रथस्थ एव रथिनं कामस्तु कमलेक्षणः।
ऐन्द्रिमभ्यर्दयामास बाणैराशीविषोपमैः॥ २६

स संनिपातस्तुमुलो बभूव कुरुनन्दन।
जयन्तस्य च वीरस्य रौक्मिणेयस्य चोभयोः॥ २७

कृतप्रतिकृतं युद्धे चक्रतुस्तौ महाबलौ।
महेन्द्रोपेन्द्रतनयौ जगत्यस्त्रभृतां वरौ॥ २८

देवाश्च मुनयश्चैव ददृशुर्विस्मयान्विताः।
तं संग्रामं महाघोरं सिद्धाश्चैव सचारणाः॥ २९

ततस्तु प्रवरो नाम देवदूतो महाबलः।
पारिजातं पुनर्हर्तुमियेष कुरुनन्दन॥ ३०

जब शत्रुनाशन केशव इन्द्रपुरीके पूर्वद्वारपर आये, तब उन्हें देखकर इन्द्रने कहा—'हे मधुसूदन! यह तुमने क्या किया है?'॥ १५॥ तब गरुड़पर बैठे हुए केशव इन्द्रको प्रणाम करके बोले—'देवराज! आपकी बहूरानीके पुण्यकार्यका सम्पादन करनेके लिये यह श्रेष्ठ वृक्ष यहाँसे ले जाया जाता है'॥ १६॥ तब इन्द्रने उनसे कहा—कमलनयन अच्युत! नहीं, ऐसा नहीं हो सकता। बिना युद्ध किये तुम्हें इस वृक्षको नहीं ले जाना चाहिये॥ १७॥ महाबाहु केशव! पहले मुझपर प्रहार करो। मेरे ऊपर कौमोदकी गदा छोड़कर तुम्हारी प्रतिज्ञा सफल हो'॥ १८॥ भरतनन्दन! तब श्रीकृष्णने हँसते हुए-से अपने वज्रसदृश तीखे बाणोंद्वारा देवराजके गजश्रेष्ठ ऐरावतको बींधना आरम्भ किया॥ १९॥ फिर वज्रधारी इन्द्रने भी अपने दिव्य उत्तम बाणोंद्वारा गरुड़को घायल किया और वेगशाली केशवके बाणोंको सहसा काट डाला॥ २०॥ देवेन्द्रने जो-जो बाण छोड़े, उन्हें माधवने काट दिया और माधवके चलाये हुए बाणोंको बल-वृत्रविनाशक इन्द्रने खण्डित कर दिया॥ २१॥ कुरुनन्दन! इन्द्रधनुष तथा शार्ङ्गधनुषकी टङ्कारोंसे सारे स्वर्गवासी मोहित-से हो गये॥ २२॥ जब उन दोनोंका संग्राम चल रहा था, उसी समय महापराक्रमी एवं बलशाली जयन्त गरुड़की पीठपर रखे हुए पारिजातको हर ले जानेके लिये उद्यत हुआ॥ २३॥ तब कंसविनाशन श्रीकृष्णने प्रद्युम्नसे कहा—'रोको उसे।' आज्ञा पाकर प्रतापी रुक्मिणीकुमारने जयन्तको रोक दिया॥ २४॥ विजयी वीरोंमें श्रेष्ठ जयन्त उस समय रथपर बैठा था। उसने हँसते हुए बाण मारकर प्रद्युम्नके समस्त अङ्गोंमें चोट पहुँचायी॥ २५॥ कामावतार कमलनयन प्रद्युम्न भी रथपर ही बैठे थे। उन्होंने विषधर सर्पके समान भयंकर बाणोंद्वारा रथारूढ़ इन्द्रकुमार जयन्तको पीड़ित कर दिया॥ २६॥ कुरुनन्दन! जयन्त तथा वीर रुक्मिणीकुमार उन दोनोंका वह युद्ध बड़ा भयंकर हुआ॥ २७॥ एक महेन्द्रका बेटा था तो दूसरा उपेन्द्रका। दोनों ही संसारके अस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ एवं महान् बलशाली थे। अतः दोनों एक-दूसरेके छोड़े हुए अस्त्र-शस्त्रोंका निवारण कर देते थे॥ २८॥ देवता, मुनि, सिद्ध और चारण सभी आश्चर्यचकित होकर उस महाभयंकर संग्रामको देखने लगे॥ २९॥ कुरुनन्दन! तब प्रवर नामक महाबली देवदूतने पुनः पारिजात-वृक्षको हर ले जानेकी इच्छा की॥ ३०॥

सखा स देवराजस्य महास्त्रविदरिंदमः।
अवध्यो वरदानेन ब्रह्मणः कुरुनन्दन॥ ३१

ब्राह्मणस्तपसा सिद्धो जम्बूद्वीपाद् दिवं गतः।
स्वशक्त्या नृप संयातः सखित्वं बलघातिना॥ ३२

तमापतन्तं सम्प्रेक्ष्य कृष्णः सात्यकिमब्रवीत्।
अत्रस्थ एव प्रवरं शरैर्वारय सात्यके॥ ३३

न त्वत्र निर्दयं बाणा मोक्तव्याः सात्यके त्वया।
अस्य ब्राह्मणचापल्यं सोढव्यं खलु सर्वथा॥ ३४

ततः षष्ट्या रथेषूणां गरुडस्थं द्विजस्तदा।
आजघान महाबाहो सात्यकिं प्रवरो भृशम्॥ ३५

शिनेर्नप्ता धनुस्तस्य क्षिपतः सायकान् नृप।
चिच्छेद पुरुषव्याघ्रो वचनं चेदमब्रवीत्॥ ३६

ब्राह्मणो नाभिहन्तव्यस्तिष्ठ तिष्ठ स्ववर्त्मनि।
अवध्या यादवानां हि स्वापराधेऽपि हि द्विजाः॥ ३७

प्रवरस्तु प्रहस्यैनमुवाच कुरुनन्दन।
अलं क्षान्त्या नृणां शूर युद्ध्य सर्वात्मना रणे॥ ३८

जामदग्न्यस्य रामस्य शिष्योऽहमपि यादव।
नामतः प्रवरो नाम सखा शक्रस्य धीमतः॥ ३९

न देवा योद्धुमिच्छन्ति मन्यन्तो मधुसूदनम्।
आनृण्यं सौहृदस्याहमधिगन्तास्मि माधव॥ ४०

ततस्तयोस्तदा रौद्रः संग्रामो ववृधे नृप।
अस्त्रैर्दिव्यैर्नरव्याघ्र शैनेयद्विजमुख्ययोः॥ ४१

द्यौश्चचाल तदा राजन् द्युचराश्च सहस्रशः।
तस्मिन् वर्तति संग्रामे तेषामतिमहात्मनाम्॥ ४२

नातिशिष्ये रणे कार्ष्णिरैन्द्रिमस्त्रभृतां वरम्।
ऐन्द्रिः कार्ष्णिं महात्मानं मायिनं शूरसत्तमम्॥ ४३

हन्त गृह्ण प्रतीच्छेति तावुभौ योधसत्तमौ।
युयुधाते नरश्रेष्ठ परस्परजयैषिणौ॥ ४४

कुरुकुलनन्दन! शत्रुओंका दमन करनेवाला प्रवर महान् अस्त्रवेत्ता तथा देवराज इन्द्रका सखा था। वह ब्रह्माजीके वरदानसे अवध्य हो गया था॥ ३१॥ नरेश्वर! वह तपःसिद्ध ब्राह्मण जम्बूद्वीपसे स्वर्गमें गया था और अपनी शक्तिके प्रभावसे बलघाती इन्द्रका मित्र हो गया था॥ ३२॥ उसे आते देख श्रीकृष्णने सात्यकिसे कहा— 'सात्यके! तुम यहीं बैठे-बैठे अपने बाणोंद्वारा इस प्रवरको रोको॥ ३३॥ सात्यके! तुम्हें इसके ऊपर निर्दयतापूर्वक बाण नहीं छोड़ने चाहिये। इस ब्राह्मणकी चपलताको सर्वथा सह लेना ही उचित है'॥ ३४॥ महाबाहो! तदनन्तर प्रवर नामक ब्राह्मणने साठ बाणोंद्वारा गरुड़पर बैठे हुए सात्यकिको गहरी चोट पहुँचायी॥ ३५॥ नरेश्वर! तब पुरुषसिंह शिनि-पौत्र सात्यकिने बाण चलाते हुए ब्राह्मणके धनुष और बाणोंको भी काट डाला और इस प्रकार कहा—॥ ३६॥ 'प्रवर! ब्राह्मण मेरे द्वारा मारे जाने योग्य नहीं हैं; अतः तुम अपने मार्गपर डटे रहो। अपना अपराध करनेपर भी ब्राह्मणोंको यदुवंशी वीर अवध्य ही मानते हैं'॥ ३७॥ कुरुनन्दन! तब प्रवरने हँसकर सात्यकिसे कहा—'मनुष्योंमें शूर सात्यके! क्षमा करनेकी आवश्यकता नहीं है। तुम रणभूमिमें सारी शक्ति लगाकर युद्ध करो॥ ३८॥ यादववीर! मैं भी जमदग्निनन्दन परशुरामका शिष्य हूँ। मेरा नाम प्रवर है और मैं बुद्धिमान् इन्द्रका सखा हूँ॥ ३९॥ मधुवंशी वीर! देवतालोग मधुसूदनका सम्मान करते हैं; अतः उनसे युद्ध करना नहीं चाहते हैं; इसलिये मैं आज इन्द्रके सौहार्दका ऋण चुकानेके लिये आया हूँ'॥ ४०॥ नरेश्वर! पुरुषसिंह! तदनन्तर सात्यकि और उस श्रेष्ठ ब्राह्मणमें उस समय दिव्य अस्त्रोंद्वारा बड़ा भयंकर संग्राम हुआ, जो बढ़ता ही चला गया॥ ४१॥ राजन्! उन अत्यन्त महात्मा वीरोंका वह संग्राम चालू होनेपर उस समय स्वर्गलोक विचलित हो उठा। सहस्रों आकाशचारी प्राणी कम्पित हो उठे॥ ४२॥ रणभूमिमें श्रीकृष्णकुमार प्रद्युम्न अस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ जयन्तसे आगे न बढ़ सके। इसी प्रकार इन्द्रकुमार जयन्त भी शूरशिरोमणि मायाविशारद श्रीकृष्णकुमार महात्मा प्रद्युम्नसे अधिक पराक्रम न दिखा सका॥ ४३॥ नरश्रेष्ठ! परस्पर एक-दूसरेको जीतनेकी इच्छावाले वे दोनों श्रेष्ठ योद्धा 'अरे, यह लो, दो मेरे इस प्रहारका उत्तर' आदि बातें कहते हुए युद्ध करने लगे॥ ४४॥

अथ शार्ङ्गायुधसुतं शचीपुत्रः प्रतापवान्।
विभाष्याभ्यहनद् राजन् दिव्येनास्त्रेण सत्वरः॥ ४५

सोऽस्त्रं तदभिदीप्यन्तमापतन्तं शितैः शरैः।
तस्तम्भे बाणजालेन तदद्भुतमिवाभवत्॥ ४६

ततस्तद् दीप्यमानं तु पपात रणमूर्द्धनि।
रौक्मिणेयस्य कौरव्य घोरं दानवमर्दनम्॥ ४७

तेनास्त्रेण रथो दग्धः प्रद्युम्नस्य महात्मनः।
नादहत् तत् सुघोरं तं रौक्मिणेयं नराधिप॥ ४८

दहत्यग्निं न खल्वग्निरुद्धतोऽपि विशाम्पते।
दग्धाद् रथान्महाबाहू रौक्मिणेयः प्रचक्रमे॥ ४९

अथ नारायणसुतो विरथो रथिनां वरः।
स्थितो धनुष्मानाकाशे जयन्तमिदमब्रवीत्॥ ५०

महेन्द्रपुत्र दिव्यं त्वं यदस्त्रं मुक्तवानसि।
नाहमीदृशरूपाणां शक्यो हन्तुं शतैरपि॥ ५१

प्रयत्नं कुरु शिक्षाणां यत्नं मेऽद्य प्रदर्शय।
नास्ति मेऽतिशयं कर्ता संग्रामेऽमरनन्दन॥ ५२

आसीन्मे साध्वसं दृष्ट्वा रथस्थं त्वां धृतायुधम्।
बिभेमि तव नेदानीं युद्धे दृष्टबलोऽबलम्॥ ५३

मनसा स्मर्यतां सैष पारिजातस्त्वया तरुः।
शक्यं न खलु हस्ताभ्यां स्प्रष्टव्यो यस्त्वया ह्यसौ॥ ५४

रथो मायामयो दग्धस्त्वया यो ह्यस्त्रतेजसा।
ईदृशानां सहस्राणि स्त्रष्टुं शक्तोऽस्मि मायया॥ ५५

एवमुक्तो जयन्तश्च मुमोचास्त्रं महाबलः।
तपसोपचितं तेन स्वयमेवातितेजसा॥ ५६

तत् प्रद्युम्नो महावेगं शरजालैरवारयत्।
चत्वार्यस्त्राणि दिव्यानि मुमुचे चापराणि सः॥ ५७

राजन्! तदनन्तर प्रतापी शचीपुत्र जयन्तने श्रीकृष्ण-कुमारको सम्बोधित करके उनपर बड़ी उतावलीके साथ दिव्यास्त्रद्वारा आघात किया॥ ४५॥ अपनी ओर आते हुए उस तेजस्वी अस्त्रको पैने बाणोंका जाल-सा फैलाकर प्रद्युम्नने बीचमें ही रोक दिया। वह एक अद्भुत-सी बात हुई॥ ४६॥ कुरुनन्दन! तदनन्तर युद्धके मुहानेपर रुक्मिणीनन्दन प्रद्युम्नके लिये भी दुस्सह प्रतीत होनेवाला वह दीप्तिमान् दानव-मर्दन दिव्यास्त्र उनके रथपर गिरा॥ ४७॥ नरेश्वर! उस अस्त्रके द्वारा महात्मा प्रद्युम्नका रथ जलकर भस्म हो गया तो भी वह भयंकर अस्त्र रुक्मिणीकुमार प्रद्युम्नको दग्ध न कर सका॥ ४८॥ प्रजानाथ! अग्नि कितना ही प्रचण्ड रूप क्यों न धारण करे, वह दूसरी अग्निको नहीं जला सकती (उसी तरह उस अस्त्रकी अग्निसे अग्नितुल्य तेजस्वी रुक्मिणीकुमार प्रद्युम्नके शरीरको कोई हानि नहीं पहुँची)। महाबाहु रुक्मिणीनन्दन प्रद्युम्न उस जले हुए रथको छोड़कर अलग हो गये॥ ४९॥ तदनन्तर रथहीन हुए रथियोंमें श्रेष्ठ नारायणकुमार प्रद्युम्न आकाशमें धनुष लिये खड़े हो गये और जयन्तसे इस प्रकार बोले—॥ ५०॥ 'महेन्द्रकुमार! तुमने मेरे ऊपर जो दिव्यास्त्र छोड़ा है ऐसे सैकड़ों दिव्यास्त्र मुझे मार नहीं सकते हैं॥ ५१॥ अमरनन्दन! तुम अपनी शिक्षाके अनुसार प्रयत्न करो और सारा यत्न आज मुझे दिखाओ। संग्राममें मुझसे बढ़कर पराक्रम प्रकट करनेवाला कोई वीर नहीं है॥ ५२॥ तुम रथपर बैठकर हाथमें आयुध लिये जब यहाँ आये थे, तब तुम्हें देखकर मुझे कुछ भय हुआ था; परंतु अब युद्धमें तुम्हारा सारा बल मैंने देख लिया है। तुममें बहुत थोड़ा बल है, अतः इस समय मैं तुमसे भय नहीं मानता हूँ॥ ५३॥ तुम इस पारिजात-वृक्षका केवल मनसे स्मरण कर लो; क्योंकि इस समय दोनों हाथोंसे इसका स्पर्श करना तुम्हारे लिये निश्चय ही असम्भव है॥ ५४॥ तुमने अपने अस्त्रके तेजसे मेरे जिस मायामय रथको जलाया है, ऐसे हजारों रथ मैं मायाद्वारा बना सकता हूँ'॥ ५५॥ प्रद्युम्नके ऐसा कहनेपर महाबली जयन्तने स्वयं ही अत्यन्त तेजस्वी तपसे पुष्ट हुए महान् अस्त्रको उनपर चलाया॥ ५६॥ उस महान् वेगशाली अस्त्रको प्रद्युम्नने अपने बाणसमूहोंसे रोक दिया, तब जयन्तने चार दिव्यास्त्र और छोड़े॥ ५७॥

दिक्षु सर्वासु रुरुधुस्तान्यस्त्राण्यथ भारत।
रौक्मिणेयं महात्मानमन्तरिक्षे च पञ्चमम्॥ ५८

महोल्कासदृशान् बाणानस्त्राण्यमरसत्तमः।
मुमोच यानि घोराणि प्रद्युम्नं प्रति सर्वतः॥ ५९

तानि सर्वाणि बाणौघैः कार्ष्णिरस्त्राण्यवारयत्।
जयन्तं चापरैर्बाणैर्विव्याध निशितैस्तदा॥ ६०

ततो नादः समुत्सृष्टो ह्यमरैः पुण्यकर्मभिः।
दृष्ट्वा स्थैर्यं च शैघ्र्यं च प्रद्युम्नस्य महात्मनः॥ ६१

प्रवरस्यापि बाणेन शितेन शिनिपुङ्गवः।
चिच्छेदेष्वासनं वीरो हस्तावापं च भारत॥ ६२

ततोऽन्यत् स तु जग्राह महत् तद्धनुरुत्तमम्।
महेन्द्रदत्तं प्रवरो महाशनिसमस्वनम्॥ ६३

स तेन वीरो महता धनुषा विप्रसत्तमः।
शरान् मुमोच विविधानर्करश्मिनिभांस्तदा॥ ६४

चकर्त च धनुश्चित्रं शैनेयस्यामितौजसः।
विव्याध सर्वगात्रेषु बाणैरपि च सात्यकिम्॥ ६५

धनुरादाय शैनेयस्ततोऽन्यत् कुरुनन्दन।
दृढं भारसहं धीमान् विव्याध प्रवरं रणे॥ ६६

उच्चकर्ततुरन्योन्यवर्मणी तौ शितैः शरैः।
गात्रेभ्यश्चैव मांसानि मर्मभिद्भिः शरोद्यमैः॥ ६७

अथाष्टधारबाणेन पुनरिष्वासनं द्विधा।
चिच्छेद प्रवरो वीरस्त्रिभिश्चैनमताडयत्॥ ६८

अन्यदिष्वासनं तं तु ग्रहीतुमनसं द्विजः।
गदया ताडयामास क्षेप्यया लघुहस्तवान्॥ ६९

सोऽसिं चर्म च जग्राह सात्यकिः प्रहसन्निव।
न जग्राह धनुर्धीमान् गदयाभिहतो भृशम्॥ ७०

ततः शरशतान्येव मुमोच प्रवरस्तदा।
विहस्तमिव विज्ञाय सात्यकिं युदनन्दनम्॥ ७१

प्रद्युम्नोऽस्य ददौ खड्गं निर्मलाकाशसंनिभम्।
तस्य चिच्छेद भल्लेन निस्त्रिंशं प्रवरस्तदा॥ ७२

त्सरुदेशेऽपातयच्च प्रवरः प्रहसन्निव।
व्यधमच्च तथा चर्म शितैर्बाणैरजिह्मगैः॥ ७३

भरतनन्दन! उन अस्त्रोंने महात्मा रुक्मिणीकुमार प्रद्युम्नको सम्पूर्ण दिशाओंकी ओरसे घेर लिया तथा पीछे चलाये हुए पाँचवें बाणने आकाशमें भी उनकी गति रोक दी॥ ५८॥ अमरश्रेष्ठ जयन्तने बड़ी भारी उल्काके समान जो बाण और भयंकर अस्त्र प्रद्युम्नपर सब ओरसे छोड़े थे, उन सबका श्रीकृष्णकुमारने अपने बाणसमूहोंद्वारा निवारण कर दिया तथा दूसरे-दूसरे तीखे बाणोंके द्वारा जयन्तको घायल कर दिया॥ ५९-६०॥ उस समय महात्मा प्रद्युम्नकी स्थिरता और फुर्ती देखकर पुण्यकर्मा देवताओंने बड़े जोरसे हर्षध्वनि की॥ ६१॥ भरतनन्दन! शिनिवंशविभूषण वीर सात्यकिने एक पैने बाणसे प्रवरके भी धनुष और दस्तानेको काट दिया॥ ६२॥ तब प्रवरने महान् वज्रके समान टङ्कार ध्वनि करनेवाले एक-दूसरे विशाल एवं उत्तम धनुषको हाथमें लिया, जिसे इन्द्रने दे रखा था॥ ६३॥ उस वीर ब्राह्मणशिरोमणिने उस विशाल धनुषके द्वारा उस समय ऐसे-ऐसे नाना प्रकारके बाण छोड़े, जो सूर्यकी किरणोंके समान तेजस्वी थे॥ ६४॥ उसने अमित तेजस्वी सात्यकिके विचित्र धनुषको काट डाला और उनके सारे अङ्गोंमें बाणोंद्वारा गहरी चोट पहुँचायी॥ ६५॥ कुरुनन्दन! तब बुद्धिमान् सात्यकिने दूसरा भार सहन करनेमें समर्थ सुदृढ़ धनुष हाथमें लेकर रणभूमिमें प्रवरको बींधना आरम्भ किया॥ ६६॥ उन दोनोंने तीखे बाणोंद्वारा परस्परके कवच काट डाले तथा मर्मभेदी उत्तम बाणोंद्वारा प्रयत्नपूर्वक वे एक-दूसरेके शरीरोंसे मांस काटने लगे॥ ६७॥ इसी समय वीर प्रवरने एक आठ धारवाले बाणसे सात्यकिके धनुषके पुनः दो टुकड़े कर डाले और तीन बाणोंद्वारा उन्हें घायल कर दिया॥ ६८॥ सात्यकि दूसरा धनुष लेना ही चाहते थे कि फुर्तीले हाथवाले ब्राह्मण प्रवरने फेंकने योग्य गदाके द्वारा उनपर प्रहार किया॥ ६९॥ तब सात्यकिने हँसते हुए-से ढाल और तलवार हाथमें ले ली। वे गदासे अधिक आहत हो चुके थे; अतः उन बुद्धिमान् वीरने धनुष नहीं उठाया॥ ७०॥ इसके बाद युदनन्दन सात्यकिको निहत्था-सा जानकर प्रवरने उनपर सैकड़ों बाण छोड़े॥ ७१॥ उस समय प्रद्युम्नने उन्हें निर्मल आकाशके समान एक खड्ग दिया, परंतु प्रवरने तत्काल एक भल्ल मारकर उनके खड्गको काट डाला॥ ७२॥ प्रवरने हँसते हुए-से उस खड्गको मूठ पकड़नेकी जगहसे काटकर गिरा दिया और सीधे जानेवाले पैने बाणोंसे उनकी ढालकी भी धज्जियाँ उड़ा दीं॥ ७३॥

आजघान च शक्त्यैनं हृदि विप्रो ननाद च।
तं विक्लवमिव ज्ञात्वा पारिजातजिहीर्षया।
तार्क्ष्याभ्याशे रथेनैव स तस्थौ प्रवरस्तदा॥ ७४
तं पक्षपुटवेगेन चिक्षेप गरुडस्तथा।
गव्यूतिमेकां सरथः स पपात मुमोह च॥ ७५
तं जयन्तो निपत्याथ पतितं ब्राह्मणं नृप।
समाश्वास्य रथं शीघ्रं समारोपितवांस्तदा॥ ७६
शैनेयमपि मुह्यन्तं पतन्तं च मुहुर्मुहुः।
आश्वासयानः प्रद्युम्नः पितृव्यं परिषस्वजे॥ ७७
तं हि पस्पर्श हस्तेन सव्येन मधुसूदनः।
विरुजः स्पर्शमात्रेण सात्यकिः समपद्यत॥ ७८
प्रद्युम्नो दक्षिणे पार्श्वे वामे तु शिनिपुङ्गवः।
तस्थतुः पारिजातस्य युद्धशौण्डतरावुभौ॥ ७९
जयन्तः प्रवरश्चैव रथेनैकेन भारत।
सम्पतन्तौ महेन्द्रेण प्रहस्योक्तौ महात्मना॥ ८०
नासन्नमभिगन्तव्यं गरुडस्य कथञ्चन।
बलवानेष पततां राजा च विनतासुतः॥ ८१
दक्षिणे चैव सव्ये च पार्श्वे मम धृतायुधौ।
उभौ स्थितौ युद्ध्यमानं मामेव हि प्रपश्यतम्॥ ८२
एवमुक्तौ स्थितौ वीरौ ततः शक्रस्य पार्श्वयोः।
ददृशाते युद्ध्यमानौ देवराजजनार्दनौ॥ ८३
अथेन्द्रो गरुडं बाणैर्महाशनिसमस्वनैः।
विव्याध सर्वगात्रेषु महास्त्रप्रवरैस्तथा॥ ८४
स तान् बाणानगणयन् वैनतेयः प्रतापवान्।
ससाराभिमुखो वीरः शक्रनागमरिंदमः॥ ८५
उभौ तौ सहसा राजन् बलिनौ गजपक्षिणौ।
प्रयुद्धौ वीर्यसम्पन्नौ महाप्राणौ दुरासदौ॥ ८६
रदनैः पन्नगरिपुं करेण शिरसा तदा।
ऐरावतो गजपतिराजघान नदंस्तथा॥ ८७
तथा नखाङ्कुशैस्तीक्ष्णैर्वैनतेयो बलोत्कटः।
तथा पक्षनिपातैश्च शक्रनागं जघान ह॥ ८८
मुहूर्तं सुमहानासीत् सम्पातो गजपक्षिणोः।
विस्मापनीयो जगतः प्रेक्षितॄणां भयावहः॥ ८९

फिर उस ब्राह्मणने शक्तिके द्वारा उनकी छातीपर आघात किया। इसके बाद वह सिंहके समान गर्जना करने लगा। उन्हें व्याकुल-सा जानकर प्रवर पारिजात हड़प लेनेकी इच्छासे रथके द्वारा ही गरुड़के निकट आकर खड़ा हो गया॥ ७४॥ उस समय गरुड़ने अपने पंखोंके वेगसे प्रवरको दो कोस दूर फेंक दिया। प्रवर रथसहित वहाँ गिरा और मूर्च्छित हो गया॥ ७५॥ नरेश्वर! तब जयन्त दौड़कर वहाँ जा पहुँचा और गिरे हुए ब्राह्मणको सान्त्वना देकर उसे शीघ्र ही रथपर चढ़ा दिया॥ ७६॥ सात्यकि भी बारम्बार मूर्च्छित हो-होकर गिरने लगे। उस समय प्रद्युम्नने चाचा सात्यकिको आश्वासन देते हुए उन्हें हृदयसे लगा लिया॥ ७७॥ उस समय मधुसूदन श्रीकृष्णने बायें हाथसे उनका स्पर्श किया। उनके स्पर्शमात्रसे सात्यकिकी सारी पीड़ा दूर हो गयी॥ ७८॥ तदनन्तर पारिजातके दाहिने भागमें प्रद्युम्न और बायें पार्श्वमें सात्यकि खड़े हो गये। ये दोनों ही युद्धमें अत्यन्त कुशल थे॥ ७९॥ भरतनन्दन! इतनेमें ही जयन्त और प्रवर भी एक ही रथसे दौड़ते हुए वहाँ आ पहुँचे। उस समय महात्मा महेन्द्रने उन दोनोंसे हँसकर कहा—॥ ८०॥ 'तुम दोनों किसी तरह गरुड़के निकट न जाना। यह पक्षियोंका राजा विनतानन्दन गरुड़ बड़ा बलवान् है॥ ८१॥ तुम दोनों मेरे दायें और बायें भागमें धनुष धारण करके खड़े हो जाओ और युद्ध करते समय मेरी ही देख-भाल करो'॥ ८२॥ इन्द्रके ऐसा कहनेपर वे दोनों वीर उनके दोनों बगलमें खड़े हो गये और देवराज इन्द्र तथा श्रीकृष्णका युद्ध देखने लगे॥ ८३॥ तदनन्तर इन्द्र महान् वज्रके समान शब्द करनेवाले बाणों तथा बड़े-बड़े अस्त्रोंद्वारा गरुड़के सारे अङ्गोंमें चोट पहुँचाने लगे॥ ८४॥ तब उनके उन बाणोंको कुछ भी न गिनते हुए शत्रुओंका दमन करनेवाले प्रतापी वीर विनतानन्दन गरुड़ इन्द्रके हाथी ऐरावतकी ओर बढ़े॥ ८५॥ राजन्! वे बलवान् हाथी और पक्षी सहसा एक-दूसरेके साथ जूझने लगे। वे दोनों ही बल-पराक्रमसे सम्पन्न, महान् प्राणशक्तिसे युक्त और दुर्जय थे॥ ८६॥ उस समय गर्जते हुए गजराज ऐरावतने अपनी सूँड़, मस्तक और दाँतोंसे सर्पशत्रु गरुड़पर गहरा आघात किया॥ ८७॥ इसी प्रकार उत्कट बलशाली विनतानन्दन गरुड़ने तीखे नखरूपी अंकुशों और पंखोंसे इन्द्रके हाथीपर चोट की॥ ८८॥ दो घड़ीतक हाथी और पक्षीमें महान् युद्ध होता रहा, जो जगत्‌के लिये आश्चर्यजनक और दर्शकोंके लिये भयावह था॥ ८९॥

मूर्ध्न्यथैरावतं तार्क्ष्यस्ताडयामास भारत।
नखाङ्कुशकरालेन चरणेन महाबलः॥ ९०

सम्प्रहाराभिसंतप्तो निपपात त्रिविष्टपात्।
पारियात्रे गिरिश्रेष्ठे द्वीपेऽस्मिञ्जनमेजय॥ ९१

पतन्तमपि तं शक्रो न मुमोच महाबलः।
कारुण्यादथ सौहार्दात् पूर्वाभ्युपगमादपि॥ ९२

कृष्णोऽप्यन्वगमच्चैनं पृष्ठतः प्रभवोऽव्ययः।
पारिजातवता धीमान् गरुडेन महाबलः॥ ९३

स तस्थौ पर्वतश्रेष्ठे पारियात्रे तु वृत्रहा।
ऐरावते समाश्वस्ते संग्रामो ववृधे पुनः॥ ९४

शरैराशीविषप्रख्यै रत्नयुक्तैः सुतेजितैः।
अन्योन्यं कुरुशार्दूल शक्रकेशवयोर्महान्॥ ९५

ततो वज्रायुधो वज्रमशनिं च पुनः पुनः।
मुमोच गरुडे राजन्नैरावतरिपौ नृप॥ ९६

वज्राशनिनिपातांस्तान् सेहे शक्रस्य पक्षिराट्।
अवध्यो बलिनां श्रेष्ठो निसर्गेण तपोबलात्॥ ९७

मुमोच पक्षमेकैकं मानयन्नशनिं सदा।
वज्रं च देवराज्ञोऽथ भ्रातुः कश्यपसम्भवः॥ ९८

आक्रम्यमाणस्तार्क्ष्येण न्यमज्जन्नृपते गिरिः।
विवेश धरणीं राजञ्छीर्यमाणः समन्ततः॥ ९९

चुकूज बहुमानेन कृष्णस्य स तु पर्वतः।
तं चाद्राक्षीत् ततः कृष्णः किंचिच्छेषमधोक्षजः॥ १००

तं मुक्त्वा गरुडेनाथ तस्थौ देवो विहायसि।
प्रद्युम्नं च तदोवाच सर्वकृल्लोकभावनः॥ १०१

इतो द्वारवतीं गत्वा रथमानय मा चिरम्।
सदारुकं महाबाहो मत्तेजोबलमाश्रितः॥ १०२

वक्तव्यो बलभद्रश्च राजा च कुकुराधिपः।
श्वो जित्वेन्द्रं त्वागमिष्ये द्वारकामिति मानद॥ १०३

भारत! महाबली गरुड़ने नखरूपी अंकुशोंके द्वारा विकराल प्रतीत होनेवाले अपने पैरसे ऐरावतके मस्तकपर प्रहार किया॥ ९०॥ जनमेजय! उस प्रहारसे पीड़ित हो ऐरावत स्वर्गसे नीचे इस जम्बूद्वीपमें पर्वतश्रेष्ठ पारियात्रपर गिर पड़ा॥ ९१॥ महाबली इन्द्र करुणा, सौहार्द तथा साथ न छोड़नेके लिये पहले की हुई प्रतिज्ञाके कारण भी उस गिरते हुए हाथीको छोड़ न सके॥ ९२॥ जगत्‌की उत्पत्तिके कारणभूत अविनाशी महाबली बुद्धिमान् श्रीकृष्ण भी पारिजातयुक्त गरुड़के द्वारा इन्द्रके पीछे-पीछे वहाँतक गये॥ ९३॥ वृत्रासुरविनाशक इन्द्र पर्वतश्रेष्ठ पारियात्रपर पहुँचकर खड़े हो गये। कुरुश्रेष्ठ! ऐरावतके सुस्ता लेनेपर इन्द्र और श्रीकृष्णका वह महान् युद्ध पुनः बढ़ चला। दोनों ओरसे एक-दूसरेपर तेज किये हुए, रत्नयुक्त एवं विषधर सर्पोंके तुल्य भयंकर बाणोंके प्रहार होने लगे॥ ९४-९५॥ राजन्! नरेश्वर! तदनन्तर वज्रधारी इन्द्रने ऐरावतशत्रु गरुड़पर बारम्बार वज्र तथा अशनिका प्रहार किया॥ ९६॥ अवध्य एवं बलवानोंमें श्रेष्ठ पक्षिराज गरुड़ने इन्द्रके उन वज्र और अशनिद्वारा किये गये प्रहारोंको नैसर्गिक शक्ति तथा तपस्याके बलसे सह लिया॥ ९७॥ उन कश्यपकुमार गरुड़ने अपने भाई देवराज इन्द्रके वज्र और अशनिका मान रखते हुए प्रत्येक प्रहारपर अपनी एक-एक पाँख तोड़कर गिरा दी॥ ९८॥ राजन्! गरुड़के आक्रमण करनेपर वह पारियात्र पर्वत सब ओरसे बिखरकर धरतीमें धँस गया॥ ९९॥ श्रीकृष्णके भारी भारसे वह पर्वत आर्तनाद-सा करने लगा। तब अधोक्षज श्रीकृष्णने उसकी ओर देखा। उस पर्वतका कुछ ही भाग धरतीके ऊपर शेष रह गया था॥ १००॥ यह देख सबके स्रष्टा लोकभावन भगवान् श्रीकृष्ण उस पर्वतको छोड़कर गरुड़के द्वारा आकाशमें खड़े हो गये और उस समय प्रद्युम्नसे बोले— ॥१०१॥ 'महाबाहो! यहाँसे द्वारका जाकर मेरे तेज और बलका आश्रय ले दारुकसहित मेरे रथको शीघ्र यहाँ ले आओ॥ १०२॥ 'मानद! वहाँ भैया बलभद्र तथा कुकुरवंशके अधिपति राजा उग्रसेनसे कह देना कि कल इन्द्रको जीतकर मैं द्वारकापुरीको आऊँगा'॥ १०३॥

तथेत्युक्त्वा तु धर्मात्मा प्रद्युम्नः पितरं विभुः।
गत्वा यथोक्तमुक्त्वा च यादवेन्द्रबलावुभौ॥ १०४
नाडिकान्तरमात्रेण पुनस्तं देशमाययौ।
दारुकेण समायुक्तं रथमास्थाय भारत॥ १०५

भारत! तब अपने पितासे 'बहुत अच्छा' कहकर प्रभावशाली धर्मात्मा प्रद्युम्न द्वारकामें गये और यादवराज उग्रसेन तथा बलराम दोनोंसे उनका यथावत् संदेश कहकर वे दारुकके द्वारा जोते गये रथपर आरूढ़ हो घड़ीभरमें फिर उस स्थानपर लौट आये॥ १०४-१०५॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे विष्णुपर्वणि पारिजातहरणे श्रीकृष्णेन्द्रयुद्धे त्रिसप्ततितमोऽध्यायः॥ ७३॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत विष्णुपर्वमें पारिजातहरणके प्रसंगमें श्रीकृष्ण और इन्द्रका युद्धविषयक तिहत्तरवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ७३॥

चतुःसप्ततितमोऽध्यायः

रात्रिमें युद्ध स्थगित करके श्रीकृष्णका पारियात्र-पर्वतको वरदान देना, गङ्गाका स्मरण करना, बिल्व और गङ्गाजलपर महादेवजीका आवाहन करके उन बिल्वोदकेश्वरकी पूजा और स्तुति करना, महादेवजीका उन्हें अभीष्ट वर देकर दैत्योंको मारनेका आदेश देना तथा पारियात्र-पर्वतपर भगवान्‌का निवास एवं उनकी प्रतिमाके पूजनकी महिमा

वैशम्पायन उवाच

तमारुह्य रथं कृष्णः पारियात्रं गिरिं ययौ।
यत्रैरावतमास्थाय स्थितः सुरपतिः प्रभुः॥ १
पारियात्रो गिरिश्रेष्ठो दृष्ट्वा यान्तं जनार्दनम्।
शाणपादसमो भूत्वा प्रविवेश वसुंधराम्॥ २
प्रियार्थं वासुदेवस्य प्रभावज्ञो महात्मनः।
तस्य प्रीतो हृषीकेशः पर्वतस्य जनाधिप॥ ३
ततः प्रयातं युद्धार्थमच्युतं कुरुनन्दन।
सपारिजातो गरुडः पृष्ठतोऽनुययौ तदा॥ ४
प्रद्युम्नः सात्यकिश्चापि गरुडस्थौ महाबलौ।
गतावुभौ रक्षणार्थं पारिजातमरिंदमौ॥ ५
ततस्त्वस्तं गतः सूर्यः प्रवृत्ता रजनी नृप।
उपस्थितं पुनर्युद्धं शक्रकेशवयोरिह॥ ६
सुप्रहाराहतं दृष्ट्वा विष्णुरैरावतं गजम्।
नातिकल्पं महातेजा देवराजानमब्रवीत्॥ ७
गरुडाभिहतः पूर्वं नातिकल्पो गजोत्तमः।
ऐरावतो महाबाहो रात्रिश्च समुपोह्यते॥ ८

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! भगवान् श्रीकृष्ण उस रथपर आरूढ़ हो पारियात्र पर्वतकी ओर चले, जहाँ प्रभावशाली देवराज इन्द्र ऐरावतपर आरूढ़ होकर खड़े थे॥ १॥ भगवान् श्रीकृष्णको आते देख पर्वतश्रेष्ठ पारियात्र उड़दके ढेर या सनके बीजकी राशिके समान शिथिल होकर धरतीमें समा गया॥ २॥ भगवान् वासुदेवकी प्रसन्नताके लिये ही उसने ऐसा किया था; क्योंकि वह महात्मा श्रीकृष्णके प्रभावको जानता था। नरेश्वर! उस पर्वतके इस व्यवहारसे इन्द्रियोंके स्वामी श्रीकृष्णको बड़ी प्रसन्नता हुई॥ ३॥ कुरुनन्दन! तदनन्तर युद्धके लिये जाते हुए श्रीकृष्णके पीछे-पीछे पारिजातसहित गरुड़ भी गये॥ ४॥ गरुड़पर बैठे हुए महाबली प्रद्युम्न और सात्यकि ये दोनों शत्रु-दमन वीर भी पारिजातकी रक्षाके लिये वहाँ गये॥ ५॥ नरेश्वर! तत्पश्चात् सूर्यदेव अस्त हो गये और सब ओर रात फैल गयी तो भी वहाँ इन्द्र और श्रीकृष्णका युद्ध पुनः उपस्थित हुआ॥ ६॥ महातेजस्वी भगवान् श्रीकृष्णने ऐरावत हाथीको गरुड़के प्रहारोंसे अत्यन्त आहत और असमर्थ हुआ देख देवराज इन्द्रसे इस प्रकार कहा—॥ ७॥ 'महाबाहो! गरुड़द्वारा पहलेसे ही आहत होकर आपका यह उत्तम हाथी ऐरावत इस समय कुछ असमर्थ हो गया है। इधर रात भी आ पहुँची है;

श्वः प्रभाते यथाकामं प्रवर्तस्व यथेच्छसि।
एवमस्त्विति कृष्णं तु देवराजोऽब्रवीत् प्रभुः॥ ९

उवास पुष्कराभ्याशे देवराजः पुरंदरः।
व्रजं गिरिमयं कृत्वा धर्मात्मा नृपसत्तम॥ १०

ब्रह्मा ततो जगामाथ कश्यपश्च महानृषिः।
अदितिश्चैव सर्वे च देवा मुनय एव च॥ ११

साध्या विश्वे च कौरव्य नासत्यावश्विनौ तथा।
आदित्याश्चैव रुद्राश्च वसवश्च जनेश्वर॥ १२

नारायणश्च पुत्रेण सात्यकेन च भारत।
सहोवास गिरौ रम्ये पारियात्रे प्रहृष्टवत्॥ १३

यत् स शाणप्रमाणोऽस्य भक्त्या समभवन्नृप।
वरं प्रादात् ततस्तस्य पर्वतस्य महाद्युतिः॥ १४

शाणपाद इति ख्यातो भविष्यसि महागिरे।
पुण्येनार्द्धेन तुल्यो हि पुण्यो हिमवतः शुभः॥ १५

एवमेव च भूयिष्ठो भव पर्वतसत्तम।
मेरुणा स्पर्धमानो हि बहुचित्रमृगैर्युतः।
रमे त्वां पश्यमानोऽहं बहुचित्रनगायुतम्॥ १६

तथा दत्त्वा वरं तस्य पर्वतस्य तु केशवः।
दध्यौ गङ्गां सरिच्छ्रेष्ठां नमस्कृत्वा वृषध्वजम्॥ १७

अथाययौ विष्णुपदी स्मृता कृष्णेन भारत।
सम्पूज्य तां ततः कृष्णः कृत्वा स्नानमधोक्षजः॥ १८

उदकं च गृहायाथ बिल्वं च हरिरव्ययः।
देवमावाहयामास रुद्रं सर्वेश्वरेश्वरम्॥ १९

ततः प्राप्तो महादेवः सोमः सप्रवरो विभुः।
तस्थावुपरि बिल्वस्य तथा गङ्गोदकस्य च॥ २०

तं पारिजातकुसुमैरर्चयामास केशवः।
तुष्टाव वाग्भिरीशेशं सर्वकर्तारमीश्वरम्॥ २१

अतः अब कल सबेरे आपकी जैसी इच्छा हो, उस तरह युद्ध कीजियेगा।' तब प्रभावशाली देवराजने श्रीकृष्णसे कहा, 'एवमस्तु (ऐसा ही हो)'॥ ८-९॥ नृपश्रेष्ठ! इसके बाद धर्मात्मा देवराज इन्द्र अपने लिये पर्वतमय आवरण बनाकर पुष्करके निकट ठहर गये॥ १०॥ कुरुनन्दन! जनेश्वर! तदनन्तर ब्रह्मा, महर्षि कश्यप, अदितिदेवी, समस्त देवता, मुनि, साध्य, विश्वेदेव, नासत्य नामसे प्रसिद्ध अश्विनीकुमार, आदित्य, रुद्र तथा वसुगण उस स्थानपर गये॥ ११-१२॥ भारत! इधर पुत्र प्रद्युम्न तथा भाई सात्यकिके साथ भगवान् श्रीकृष्ण उस रातमें सुरम्य गिरि पारियात्रपर बड़े हर्षके साथ रहे॥ १३॥ नरेश्वर! वह पर्वत भगवान्‌के प्रति भक्ति-भावसे नम्र हो जो शाण (उड़द या सनके बीजकी राशि)-के बराबर हो गया था, इससे उस पर्वतपर प्रसन्न हो महातेजस्वी श्रीकृष्णने उस पर्वतको यह वर दिया—॥ १४॥ 'महागिरे! तुम शाणपादके नामसे विख्यात होओगे। जैसे हिमालय पर्वतका ऊपरी आधा भाग परम पवित्र होता है, उसीके समान तुम भी शुभ एवं पवित्र बने रहोगे॥ १५॥ पर्वतश्रेष्ठ! तुम इसी प्रकार बहुसंख्यक विचित्र मृगोंसे युक्त हो मेरुके साथ स्पर्धा रखते हुए बहुत बड़े हो जाओ। तुम्हें अनेक विचित्र वृक्षोंसे सम्पन्न देखकर मैं आनन्दमग्न हो जाता हूँ'॥ १६॥ इस प्रकार उस पर्वतको वर देकर भगवान् श्रीकृष्णने महादेवजीको नमस्कार करके सरिताओंमें श्रेष्ठ गङ्गाजीका चिन्तन किया॥ १७॥ भारत! श्रीकृष्णके स्मरण करनेपर विष्णुपदी गङ्गा वहाँ आ गयीं। अधोक्षज श्रीकृष्णने उनकी पूजा करके उनके जलसे स्नान किया॥ १८॥ फिर अविनाशी श्रीहरिने गङ्गाजल और बेलका फल लेकर उसीपर सर्वेश्वरेश्वर रुद्र-देवका आवाहन किया॥ १९॥ तब पार्वतीसहित भगवान् महादेव प्रमथगणोंके साथ वहाँ आये और गङ्गाजल तथा बेलके ऊपर खड़े हो गये॥ २०॥ तब श्रीकृष्णने उनका पारिजातके फूलोंद्वारा पूजन किया और सबके कर्ता ईश्वरेश्वर भगवान् शिवका वाणीद्वारा स्तवन किया॥ २१॥

श्रीकृष्ण उवाच

रुद्रो देव त्वं रुदनाद् रावणाच्च
रोरूयमाणो द्रावणाच्चातिदेवः।
भक्तं भक्तानां वत्सलं वत्सलानां
कीर्त्या युङ्क्ष्वेशाद्य प्रपद्ये शरण्यम्॥ २२

ग्राम्यारण्यानां त्वं पतिस्त्वं पशूनां
ख्यातो देवः पशुपतिः सर्वकर्मा।
नान्यस्त्वत्तः परमो देवदेव
जगत्पतिः सुरवीरारिहन्ता॥ २३

यस्मादीशो महतामीश्वराणां
भवानाद्यः प्रीतिदः प्राणदश्च।
तस्माद्धि त्वामीश्वरं प्राहुरीशं
संतो विद्वांसः सर्वशास्त्रार्थतज्ज्ञाः॥ २४

भूतं यस्माज्जगदत्यन्त धीर
त्वत्तोऽव्यक्तादक्षरादक्षरेश ।
तस्मात् त्वामाहुर्भव इत्येव भूतं
सर्वेश्वराणां महतामप्युदारम्॥ २५

यस्माज्जितैरभिषिक्तोऽसि सर्वै-
र्देवासुरैः सर्वभूतैश्च देव।
महेश्वरं विश्वकर्माणमाहु-
स्त्वां वै सर्वे तेन देवातिदेवम्॥ २६

पूज्यो देवैः पूज्यसे नित्यदा वै
शश्वच्छ्रेयःकाङ्क्षिभिर्वरदामेयवीर्य।
तस्माद् विख्यातो भगवान् देवदेवः
सतामिष्टः सर्वभूतात्मभावी॥ २७

भूमित्रयाणां देव यस्मात् प्रतिष्ठा
पुनर्लोकानां भावनामेयकीर्तिः।
त्र्यम्बकेति प्रथमं तेन नाम
तवाप्रमेय त्रिदशेशनाथ॥ २८

श्रीकृष्ण बोले—देव! आप ही रोदन (रोना), रावण (रुलाना), अतिशय 'रव' तथा जन्म-मरणरूप संसारका द्रावण (निवारण) करनेके कारण 'रुद्र' कहे गये हैं। आप सब देवताओंसे बढ़कर हैं। ईश! मैं आपके भक्तोंका भक्त तथा स्नेहियोंका स्नेही हूँ, आप मुझे विजय-कीर्तिका भागी बनाइये। मैं आज आप शरणागतवत्सल प्रभुकी शरण लेता हूँ॥ २२॥ देवदेव! आप ही ग्रामीण और वन्य पशुओं (जीवों)-के पति (पालक) हैं; इसीलिये आप भगवान् पशुपतिके रूपमें विख्यात हैं। यह सारा जगत् आपका ही कर्म है। आपसे बढ़कर दूसरा कोई नहीं है। आप ही जगदीश्वर तथा देववीरोंके शत्रुओंका हनन करनेवाले हैं॥ २३॥ आप बड़े-बड़े ईश्वर-कोटिके पुरुषोंके भी ईश्वर हैं। आप ही आदिपुरुष, प्रीतिदाता तथा प्राणदाता हैं; इसीलिये सम्पूर्ण शास्त्रोंके अर्थतत्त्वको जाननेवाले विद्वान् साधुपुरुष आपको ही ईश्वर तथा ईश कहते हैं॥ २४॥ अत्यन्त[१]! धीर[२]! अक्षरेश्वर[३]! अतः आप अव्यक्त अविनाशी परमेश्वरसे ही जगत् उत्पन्न हुआ है, अतः विद्वान् पुरुष आपको 'भव' कहते हैं। वास्तवमें तो आप 'भूत' (नित्यसिद्ध) हैं। महान् सर्वेश्वरोंके लिये भी अत्यन्त उदार हैं (फिर दीन-दुखियोंके लिये तो बात ही क्या है?)॥ २५॥ देव! अतः पराजित हुए समस्त देवताओं, असुरों तथा सम्पूर्ण प्राणियोंने आपका 'महान् ईश्वर' के पदपर अभिषेक किया है; अतः सभी विद्वान् आप विश्वनिर्माता भगवान्को 'महेश्वर' तथा 'देवातिदेव' (देवताओंसे बढ़कर महादेव) कहते हैं॥ २६॥ अमेय बल-पराक्रमसे सम्पन्न वरदायक महेश्वर! अतः सदा कल्याण-प्राप्तिकी इच्छा रखनेवाले देवता आप पूजनीय परमेश्वरकी नित्य पूजा करते हैं; अतः आप 'भगवान् देवदेव' (देवताओंके भी देवता)-के रूपमें विख्यात हैं। सत्पुरुषोंके इष्टदेव आप ही हैं। आप समस्त भूतोंको अपने भीतर ही उत्पन्न करनेवाले हैं॥ २७॥ ब्रह्मा आदि देवेश्वरोंके भी स्वामी अप्रमेय-स्वरूप देव! बारम्बार लोकोंको उत्पन्न करनेवाले लोक-भावन! अतः आप भूलोक, भुवर्लोक और स्वर्लोक—इन तीनों लोकोंकी भूमियोंके आश्रय हैं, अतः आपका प्रथम (प्रमुख) नाम त्र्यम्बक (त्रिलोकीके आश्रय) है, आपकी कीर्ति अमेय है॥ २८॥

१. अन्त अर्थात् मृत्युको लाँघनेवाले। २. बुद्धिके प्रेरक। ३. अक्षरों—अविनाशी जीवोंके ईश्वर।

शर्वः शत्रूणां शासनादप्रमेय-
स्तथा भूयः शासनाच्चेश्वरेण।
सर्वव्यापित्वाच्छङ्करत्वाच्च सद्भिः
शब्दस्येशानः श्रीकरार्काग्र्यतेजाः॥ २९

संसक्तानां नित्यदा यत् करोषि
शमं भ्रातृव्यान् यद्यनैषीः समस्तान्।
तस्माद् देवः शङ्करोऽस्यप्रमेयः
सद्भिर्द्धर्मज्ञैः कथ्यसे सर्वनाथः॥ ३०

दत्तः प्रहारः कुलिशेन पूर्वं
तवेशान सुरराज्ञातिवीर्य।
कण्ठे नैल्यं तेन ते यत् प्रवृत्तं
तस्मात् ख्यातस्त्वं नीलकण्ठेति कल्पः॥ ३१

यल्लिङ्गाङ्कं यच्च लोके भगाङ्कं
सर्वं सोम त्वं स्थावरं जङ्गमं च।
प्राहुर्विप्रास्त्वां गुणिनं तत्त्वविज्ञा-
स्तथा ध्येयामम्बिकां लोकधात्रीम्॥ ३२

वेदैर्गीता सा हि तत् त्वं प्रसूता
यज्ञो दीक्षाणां योगिनां चातिरूपः।
नात्यद्भुतं त्वत्समं देव भूतं
भूतं भव्यं भवदेवाथ नास्ति॥ ३३

अहं ब्रह्मा कपिलो योऽप्यनन्तः
पुत्राः सर्वे ब्रह्मणश्चातिवीराः।
त्वत्तः सर्वे देवदेव प्रसूता
एवं सर्वेशः कारणात्मा त्वमीड्यः॥ ३४

इति संस्तूयमानस्तु भगवान् गोवृषध्वजः।
प्रसार्य दक्षिणं हस्तं नारायणमथाब्रवीत्॥ ३५

मनीषितानामर्थानां प्राप्तिस्ते सुरसत्तम।
पारिजातं च हर्तासि मा भूत् ते मनसो व्यथा॥ ३६

यथा मैनाकमाश्रित्य तपस्त्वमकरोः प्रभो।
तथा मम वरं कृष्ण संस्मृत्य स्थैर्यमाप्नुहि॥ ३७

अवध्यस्त्वमजेयश्च मत्तः शूरतरस्तथा।
भवितासीत्यवोचं यत् तत् तथा न तदन्यथा॥ ३८

आप संहारकारी होनेके कारण शर्व कहलाते हैं, समस्त शत्रुओंका शासन करनेके कारण अप्रमेय शक्तिसे सम्पन्न हैं; फिर ईश्वररूपसे समस्त जगत्‌का शासन करनेके कारण भी आप अप्रमेय हैं, सर्वव्यापी तथा सत्पुरुषोंके लिये कल्याणकारी होनेसे भी आपको अप्रमेय कहा गया है, श्री (लक्ष्मी)-की प्राप्ति करानेवाले परमेश्वर! आप सम्पूर्ण शब्दोंके भी ईश्वर हैं अर्थात् समस्त शब्दोंद्वारा आपका ही प्रतिपादन होता है। आपका उत्तम तेज सूर्यसे भी बढ़कर है॥ २९॥ आप भक्तजनोंको जो सदा सुख और शान्ति प्रदान करते हैं तथा शत्रुभाव रखनेवाले समस्त असुरोंको जो दण्ड देते हैं, उसके कारण आप अप्रमेय शक्तिसे सम्पन्न कल्याणकारी देवता शङ्कर कहे जाते हैं। धर्मज्ञ संत आपको सर्वनाथ (सबके स्वामी या संरक्षक) कहते हैं॥ ३०॥ अत्यन्त पराक्रमी ईशान! पूर्वकालमें देवराज इन्द्रने आपके कण्ठमें जो वज्रसे प्रहार किया था और उससे जो वहाँ नील चिह्न बन गया था, उसके कारण आप नीलकण्ठ नामसे विख्यात हुए। आप समर्थ होते हुए भी दयावश ऐसे अपराध सह लेते हैं॥ ३१॥ उमासहित महेश्वर! अतः संसारमें सब कुछ लिङ्ग और भगके चिह्नसे ही अङ्कित है, अतः यह समस्त चराचर जगत् आप दोनोंका ही स्वरूप है। तत्त्वज्ञ ब्राह्मण आपको गुणवान् और ध्येयस्वरूपा लोकजननी अम्बिकाको त्रिगुणरूपा कहते हैं॥ ३२॥ वे अम्बिका ही वेदोंमें 'अजा' (माया) नामसे वर्णित हैं, वे ही महत्तत्त्वकी जननी हैं। आप यज्ञकी दीक्षा लेनेवाले यजमानोंके द्रव्ययज्ञ तथा योगियोंके योगयज्ञ हैं। लौकिक रूपसे ऊपर उठे हुए दिव्य चिन्मय विग्रहधारी हैं। देव! आपके समान अत्यन्त अद्भुत भूत (तत्त्व) भूत, वर्तमान और भविष्य कालमें भी दूसरा कोई नहीं है॥ ३३॥ 'देवदेव! मैं, ब्रह्मा, कपिल, शेषनाग और आन्तरिक शत्रुओंपर विजय पानेके कारण अत्यन्त वीर (सनक आदि) सभी ब्रह्मपुत्र—ये सब-के-सब आपसे ही उत्पन्न हुए हैं। इस प्रकार आप सबके ईश्वर और कारणरूप होनेके कारण स्तुतिके योग्य हैं'॥ ३४॥ इस प्रकार श्रीकृष्णने जब स्तुति की, तब भगवान् वृषभध्वज शिवने अपना दाहिना हाथ फैलाकर भगवान् नारायणदेवसे इस प्रकार कहा—॥ ३५॥ 'सुरश्रेष्ठ! तुम्हें अभीष्ट मनोरथोंकी प्राप्ति होगी। तुम पारिजातको अवश्य ले जाओगे। इसके लिये तुम्हारे मनमें व्यथा नहीं होनी चाहिये॥ ३६॥ प्रभो! श्रीकृष्ण! जैसे मैनाकका आश्रय लेकर तुमने तप किया, उसी तरह मेरी ओरसे तुम्हें वर भी मिला। उस वरको याद करके तुम स्थिरता (धैर्य) धारण करो॥ ३७॥ मैंने जो तुमसे कहा था कि तुम अवध्य, अजेय तथा मुझसे भी बढ़कर शूरवीर होओगे, वह बात उसी रूपमें सत्य होगी। उसे कोई अन्यथा नहीं कर सकता'॥ ३८॥

यश्च स्तवेन मां भक्त्या स्तोष्यतेऽमरसत्तम।
त्वया कृतेन धर्मज्ञ धर्मभाक् सम्भविष्यति।
समरे च जयं विष्णो प्राप्य पूजां तथोत्तमाम्॥ ३९
बिल्वोदकेश्वरो नाम भविताहमिहानघ।
देवेश्वर त्वयास्थापि देव सिद्धोपयाचनः॥ ४०
इहस्थोपोषितो विद्वान् भक्तिमान् मम केशव।
त्रिरात्रमीप्सिताँल्लोकान् गमिष्यति जनार्दन॥ ४१
अविन्ध्या नाम देशेऽस्मिन् गङ्गा चैव भविष्यति।
गङ्गास्नानसमं स्नानं मन्त्रतो भविता तथा॥ ४२
षट्पुरं नाम नगरं दानवानां जनार्दन।
अत्रान्तर्द्धरणीदेशे पराक्रम्य महाबलाः॥ ४३
एते दैत्या दुरात्मानो जगतो देव कण्टकाः।
छन्ना वसन्ति गोविन्द सानावस्य महागिरेः॥ ४४
अवध्या देवदेवानां वरेण ब्रह्मणोऽनघ।
मानुषान्तरितस्तस्मात् त्वमेताञ्जहि केशव॥ ४५
एवमुक्त्वा महादेवस्तत्रैवान्तरधीयत।
परिष्वज्य महात्मानं वासुदेवं जनाधिप॥ ४६
ततो याते महादेवे प्रभातायां नराधिप।
तस्यां निशायां गोविन्दो भूयः पर्वतमब्रवीत्॥ ४७
तवाधः पर्वतश्रेष्ठ निवसन्ति महासुराः।
अवध्या देवदेवानां वरेण ब्रह्मणः पुरा॥ ४८
निर्गमिष्यन्ति ते नैव मया रुद्धा महाबलाः।
द्वारे निरुद्धे तत्रैव विनङ्क्ष्यन्ति ममाज्ञया॥ ४९
त्वयि संनिहितश्चाहं भविष्यामि महागिरे।
अधिष्ठाय महाघोरान् निवत्स्यामि च पर्वत॥ ५०
आरुह्य मूर्ध्नि मद्रूपं दृष्ट्वा पर्वतसत्तम।
गोसहस्रप्रदानस्य फलं प्राप्स्यति शाश्वतम्॥ ५१
त्वत्तोऽश्मभिश्च प्रतिमां कारयित्वा हि भक्तितः।
शुश्रूषयन्ति ये नित्यं मम यास्यन्ति ते गतिम्॥ ५२
इति तं पर्वतं कृष्णो वरदोऽनुगृहीतवान्।
तदाप्रभृति देवेशस्तत्र संनिहितोऽच्युतः॥ ५३

'धर्मज्ञ! अमरश्रेष्ठ! विष्णो! जो भक्तिभावसे तुम्हारे द्वारा की हुई इस स्तुतिके द्वारा मेरा स्तवन करेगा, वह समरभूमिमें विजय तथा उत्तम सम्मान पाकर धर्मका भागी होगा॥ ३९॥ 'अनघ! देवेश्वर! देव! तुमने जो मेरी यहाँ स्थापना की है, उसके अनुसार मैं बिल्वोदकेश्वर नामसे विख्यात होऊँगा। यहाँ की हुई याचना मेरे द्वारा अवश्य सफल होगी॥ ४०॥ केशव! जनार्दन! जो विद्वान् पुरुष यहाँ उपवासपूर्वक रहकर मुझमें भक्तिभाव रखते हुए तीन रात उपवास करेगा, वह मनोवाञ्छित लोकोंमें जायगा॥ ४१॥ इस प्रदेशमें अविन्ध्या नामसे प्रसिद्ध गङ्गा प्रवाहित होगी। उसमें गङ्गासम्बन्धी मन्त्रोच्चारणपूर्वक किया हुआ स्नान साक्षात् गङ्गा-स्नानके समान फलदायक होगा॥ ४२॥ जनार्दन! यहाँ धरतीके भीतर दानवोंका 'षट्पुर' नामक नगर है, जहाँ पराक्रमपूर्वक महाबली दानव निवास करते हैं॥ ४३॥ देव! ये दुरात्मा दैत्य जगत्के लिये कण्टकरूप हैं। गोविन्द! ये इस महापर्वतके शिखरपर छिपे रहते हैं॥ ४४॥ अनघ! ब्रह्माजीके दिये हुए वरके प्रभावसे ये दैत्य देवदेवोंके लिये अवध्य हैं; अतः केशव! तुम मानव-शरीरकी आड़ लेकर इन सब दैत्योंको मार डालो'॥ ४५॥ जनेश्वर! ऐसा कहकर महादेवजी महात्मा वासुदेवको हृदयसे लगाकर वहीं अन्तर्धान हो गये॥ ४६॥ नरेश्वर! महादेवजीके चले जानेपर जब रात बीती और प्रभातकाल आया, तब भगवान् गोविन्दने पुनः उस पर्वतसे कहा— ॥ ४७॥ 'पर्वतश्रेष्ठ! तुम्हारे नीचे बड़े-बड़े असुर निवास करते हैं, जो पूर्वकालमें ब्रह्माजीका वर पानेके कारण देवाधिदेवोंके लिये भी अवध्य हैं॥ ४८॥ मैंने उन महाबली दैत्योंका द्वार बंद करके उन्हें अवरुद्ध कर दिया है। अब वे नहीं निकल सकेंगे। मेरी आज्ञासे द्वार अवरुद्ध हो जानेपर वहीं नष्ट हो जायँगे॥ ४९॥ महागिरे! मैं सदा तुमपर निवास करूँगा। पर्वत! उन महाभयानक असुरोंको दबाकर मैं यहीं रहूँगा॥ ५०॥ 'पर्वतप्रवर! जो इस पर्वतके शिखरपर आरूढ़ हो मेरे अर्चाविग्रहका दर्शन करेगा, वह सहस्र गोदानका शाश्वत (अक्षय) फल प्राप्त करेगा॥ ५१॥ जो लोग तुम्हारे प्रस्तरोंसे मेरी प्रतिमा बनवाकर प्रतिदिन भक्तिपूर्वक उसकी सेवा करेंगे, वे मेरी गतिको प्राप्त होंगे'॥ ५२॥ इस प्रकार वरदायक श्रीकृष्णने उस पर्वतपर अनुग्रह किया और तभीसे देवेश्वर अच्युत वहाँ निवास करने लगे॥ ५३॥

पाषाणैः प्रतिमां तात कारयित्वा च कौरव।
शुश्रूषन्ति कृतात्मानो विष्णुलोकाभिकाङ्क्षिणः॥ ५४

तात कुरुनन्दन! शुद्ध अन्तःकरणवाले पुरुष विष्णुलोककी इच्छा रखते हुए पारियात्रके पत्थरोंसे भगवान्‌की प्रतिमा बनवाकर सदा उसकी सेवा करते हैं॥ ५४॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे विष्णुपर्वणि पारिजातहरणे श्रीकृष्णकृतशिवस्तुतिर्नाम चतुःसप्ततितमोऽध्यायः॥ ७४॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत विष्णुपर्वमें पारिजातहरणके प्रसङ्गमें श्रीकृष्णकृत शिवस्तुतिविषयक चौहत्तरवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ७४॥

पञ्चसप्ततितमोऽध्यायः

इन्द्र और उपेन्द्रका पुनर्युद्ध, उत्पातोंका प्राकट्य, ब्रह्माजीकी आज्ञासे कश्यप और अदितिका बीचमें आकर दोनोंका युद्ध बंद कराना, फिर सबका स्वर्गमें गमन, अदितिकी आज्ञासे शचीद्वारा उपहार पाकर पारिजातसहित द्वारकागमन, पारिजातसे द्वारकावासियोंकी प्रसन्नता, सत्यभामाके पुण्यक व्रतमें प्रतिग्रहके लिये श्रीकृष्णद्वारा नारदजीका स्मरण

वैशम्पायन उवाच

ततो रथवरं कृष्णः समारुह्य महामनाः।
बिल्वोदकेश्वरं देवं नमस्कृत्य ययौ नृप॥ १
महेन्द्रमाह्वयामास रथस्थो मधुसूदनः।
सत्कृतं पुष्कराभ्याशे सर्वैर्देवगणैः सह॥ २
ततः शक्रो जयन्तोऽथ हरिभिर्युक्तमुत्तमम्।
आरुरोह रथं देवः सर्वकामप्रदः सताम्॥ ३
ततो रथस्थयोर्युद्धमभवत् कुरुनन्दन।
देवयोर्दैवयोगेन पारिजातकृते तदा॥ ४
ततोऽहनद् रणे विष्णुर्बाणैः शत्रुबलार्दनः।
सैन्यानि देवराजस्य बाणजालैरजिह्मगैः॥ ५
उपेन्द्रं न महेन्द्रोऽथ नैव विष्णुः सुरेश्वरम्।
ताडयामासतुर्वीरौ शस्त्रैः शक्तावपि प्रभो॥ ६
एकैकमश्वं दशभिर्महेन्द्रस्य जनार्दनः।
विव्याध विशिखैस्तीक्ष्णैरस्त्रयुक्तैर्जनेश्वर॥ ७
शैव्याद्यानपि देवेन्द्रः शरैरमरसत्तमः।
छादयामास राजेन्द्र घोरैरस्त्राभिमन्त्रितैः॥ ८
स च बाणसहस्रैश्च कृष्णो गजमवाकिरत्।
गरुडं च महातेजा बलभिद्धरिवाहनम्॥ ९

वैशम्पायनजी कहते हैं—नरेश्वर! तदनन्तर महामनस्वी श्रीकृष्ण बिल्वोदकेश्वरदेवको नमस्कार करके अपने श्रेष्ठ रथपर आरूढ़ हो युद्धके लिये चले॥ १॥ रथपर बैठे हुए मधुसूदनने पुष्करके निकट समस्त देवगणोंके साथ सत्कारपूर्वक खड़े हुए देवराज इन्द्रका युद्धके लिये आह्वान किया॥ २॥ तब साधुओंको समस्त मनोवाञ्छित वस्तु प्रदान करनेवाले देवेन्द्र घोड़ोंसे जुते हुए उत्तम रथपर जयन्तसहित आरूढ़ हुए॥ ३॥ कुरुनन्दन! तत्पश्चात् रथपर बैठे हुए उन दोनों देवताओंका दैववश पारिजातके लिये युद्ध आरम्भ हो गया॥ ४॥ उस रणभूमिमें शत्रुसेनाको पीड़ित करनेवाले श्रीकृष्णने अपने सीधे जानेवाले बाणसमूहोंद्वारा देवराज इन्द्रके सैनिकोंका संहार आरम्भ किया॥ ५॥ प्रभो! वे दोनों वीर शक्तिशाली थे तो भी महेन्द्रने उपेन्द्रपर और उपेन्द्र विष्णुने देवेश्वर इन्द्रपर शस्त्रोंद्वारा प्रहार नहीं किया॥ ६॥ जनेश्वर! जनार्दनने महेन्द्रके एक-एक अश्वको दिव्यास्त्रोंद्वारा अभिमन्त्रित दस-दस तीखे बाणोंसे घायल कर दिया॥ ७॥ राजेन्द्र! अमरश्रेष्ठ देवेन्द्रने भी दिव्यास्त्रोंद्वारा अभिमन्त्रित भयंकर बाणोंसे श्रीकृष्णके शैव्य आदि चारों घोड़ोंको आच्छादित कर दिया॥ ८॥ श्रीकृष्णने इन्द्रके ऐरावत हाथीपर सहस्रों बाण बरसाये तथा महातेजस्वी बलविनाशन इन्द्रने श्रीहरिके वाहन गरुड़पर हजारों बाणोंकी वर्षा की॥ ९॥

भूयिष्ठाभ्यां रथाभ्यां तौ तदहः शत्रुदारणौ।
युयुधाते महात्मानौ नारायणसुराधिपौ॥ १०
चकम्पे वसुधा कृत्स्ना नौर्जलस्थेव भारत।
दिशां दाहेन दिग्देशाः संवृताश्च समन्ततः॥ ११
चेलुर्गिरिवराश्चैव पेतुश्च शतशो द्रुमाः।
पेतुश्च धरणीपृष्ठे मर्त्या धर्मगुणान्विताः॥ १२
निर्घाताः शतशश्चैव पेतुस्तत्र नराधिप।
ऊहुश्च सरितः सर्वाः प्रतिस्रोतो विशाम्पते॥ १३
विष्वग्वाता ववुश्चैव पेतुरुल्काश्च निष्प्रभाः।
मुहुर्मुहुर्भूतसंघा रथनादेन मोहिताः॥ १४
प्रजज्वाल जले चैव वह्निर्जनपदेश्वर।
युयुधुश्च ग्रहैः सार्द्धं ग्रहा नभसि सर्वतः॥ १५
ज्योतींषि शतशः पेतुः स्वर्गाच्च धरणीतले।
दिशां गजाः प्रकुपिता नागाश्च धरणीतले॥ १६
गर्दभारुणसंस्थानैश्छिन्नाभ्रैश्चावृतं नभः।
विनदद्भिर्महारावैरुल्काशोणितवर्षिभिः॥ १७
न भूर्न द्यौर्न गगनं नरेन्द्रवृषभाभवन्।
स्वस्थानि सुरवीरौ तु दृष्ट्वा युद्धगतौ तदा॥ १८
जेपुर्मुनिगणा मन्त्राञ्जगतो हितकाम्यया।
ब्राह्मणाश्च महात्मानो ह्यतिष्ठंस्तेषु सत्वराः॥ १९
ततो ब्रह्मा महातेजाः कश्यपं वाक्यमब्रवीत्।
गच्छ बध्वा सहादित्या पुत्रौ वारय सुव्रत॥ २०
स तथेति तदा देवमुक्त्वा पद्मभवं मुनिः।
जगाम रथमास्थाय तस्थौ नरवरान्तिके॥ २१
स्थितं तु कश्यपं दृष्ट्वा सहादित्या तदन्तरा।
उभौ रथाभ्यां धरणीमवतीर्णौ महाबलौ॥ २२
न्यस्तशस्त्रौ च तौ वीरौ ववन्दतुररिंदमौ।
पितरौ धर्मतत्त्वज्ञौ सर्वभूतहिते रतौ॥ २३
उभौ गृहीत्वा हस्ताभ्यामदितिस्त्वब्रवीद् वचः।
असोदराविवैवं किमन्योन्यं हन्तुमिच्छतः॥ २४
स्वल्पमर्थं पुरस्कृत्य प्रवृत्तमतिदारुणम्।
सदृशं नेति पश्यामि सर्वथा मम पुत्रयोः॥ २५

शत्रुओंको विदीर्ण करनेवाले महात्मा नारायण और देवेन्द्र उस दिन बड़े-बड़े रथोंद्वारा युद्ध कर रहे थे॥ १०॥ भारत! उस समय जलमें ठहरी हुई नौकाकी भाँति सारी पृथ्वी काँपने लगी। दिशाओंके प्रदेश सब ओरसे दिग्दाहजनित आगकी लपटोंसे व्याप्त दिखायी देते थे॥ ११॥ बड़े-बड़े पर्वत हिल गये। सैकड़ों वृक्ष गिर गये और धर्मात्मा मनुष्य भी धराशायी होने लगे॥ १२॥ नरेश्वर! वहाँ सैकड़ों बार वज्रपात हुआ तथा प्रजानाथ! समस्त सरिताएँ अपने प्रवाहके प्रतिकूल उलटी दिशामें बहने लगीं॥ १३॥ चारों ओर आँधी चलने लगी, प्रभाशून्य उल्काएँ गिरने लगीं और प्राणियोंके समुदाय रथोंकी घर्घराहटसे बारम्बार मोहित होने लगे॥ १४॥ जनपदेश्वर! पानीमें भी आग जलने लगी। आकाशमें सब ओर ग्रह दूसरे ग्रहोंके साथ युद्ध करने लगे॥ १५॥ सैकड़ों तारे टूटकर स्वर्गसे पृथ्वीपर गिर पड़े। दिग्गज और पातालनिवासी नाग अत्यन्त कुपित हो उठे॥ १६॥ गदहोंकी भाँति धूसर और अरुण वर्णवाले बादलोंके टुकड़े बड़े जोर-जोरसे गर्जना करते हुए आकाशमें छा गये और उल्कापात तथा रक्तकी वर्षा करने लगे॥ १७॥ नरेन्द्रशिरोमणे! उस समय उन दोनों देववीरोंको युद्धमें उपस्थित हुआ देख भूमि, अन्तरिक्ष तथा आकाशके प्राणी स्वस्थ न रह सके॥ १८॥ मुनिगण जगत्के हितकी कामनासे मन्त्रोंका जप करने लगे और महात्मा ब्राह्मण भी बड़ी उतावलीके साथ उन्हीं मन्त्रोंके जपमें संलग्न हो गये॥ १९॥ तब महातेजस्वी ब्रह्माने कश्यपसे कहा—'सुव्रत! तुम बहू अदितिके साथ जाओ और दोनों पुत्रोंको मना करो'॥ २०॥ नरश्रेष्ठ! तब ब्रह्माजीसे 'बहुत अच्छा' कहकर मुनिवर कश्यप रथपर बैठकर गये और दोनों पुत्रोंके निकट खड़े हो गये॥ २१॥ बीचमें अदितिसहित कश्यपको खड़ा हुआ देख वे दोनों महाबली वीर रथोंसे पृथ्वीपर उतर गये॥ २२॥ शत्रुओंका दमन करनेवाले उन दोनों वीरोंने हथियार नीचे डालकर समस्त भूतोंके हितमें तत्पर रहनेवाले धर्मतत्त्वके ज्ञाता माता-पिताको प्रणाम किया॥ २३॥ उस समय अदितिने दोनोंको हाथोंसे पकड़कर कहा—'जो एक माताकी कोखसे पैदा न हुए हों, ऐसे दो व्यक्तियोंकी भाँति तुम दोनों एक-दूसरेको मारनेकी इच्छा क्यों करते हो?॥ २४॥ 'छोटी-सी वस्तुको सामने रखकर यह अत्यन्त दारुण कर्म आरम्भ हो गया। मैं सब प्रकारसे विचार करके देखती हूँ तो यह काम मुझे अपने पुत्रोंके योग्य नहीं दिखायी देता॥ २५॥

श्रोतव्यं यदि मातुश्च पितुश्चैव प्रजापतेः।
न्यस्तशस्त्रौ स्थितौ भूत्वा कुरुतं वचनं मम॥ २६

तथेत्युक्त्वा च तौ देवौ स्नातुकामौ महाबलौ।
गङ्गां जग्मतुरेवाथ प्रजल्पन्तौ परस्परम्॥ २७

शक्र उवाच

त्वं प्रभुर्लोककृत् कृत्स्नराज्येऽहं स्थापितस्त्वया।
स्थापयित्वा कथं नाम पुनर्मामवमन्यसे॥ २८

भ्रातृत्वमुपगम्यैव ज्येष्ठत्वं चाप्यपोह्य च।
कथं कमलपत्राक्ष निर्वाणं कर्तुमिच्छसि॥ २९

स्नातौ तु जाह्नवीतोये पुनरभ्यागतौ नृप।
यत्रादितिः कश्यपश्च महात्मानौ दृढव्रतौ॥ ३०

प्रियसंगमनं नाम तं देशं मुनयोऽवदन्।
यत्र तौ संगतौ चोभौ पितृभ्यां कमलेक्षणौ॥ ३१

ततः शक्रस्य कौरव्य दत्त्वा वाचाभयं तदा।
यत्र देवगणाः सर्वे समेता धर्मचारिणः॥ ३२

ततो ययुर्विमानैस्तु देवाः सर्वे त्रिविष्टपम्।
ऋद्ध्या परमया युक्तास्तेषामेवानुरूपया॥ ३३

कश्यपश्चादितिश्चैव तथा शक्रजनार्दनौ।
विमानमेकमारुह्य गता राजंस्त्रिविष्टपम्॥ ३४

ते शक्रसदनं प्राप्ता रम्यं सर्वगुणान्वितम्।
ऊषुरेकत्र कौरव्य मुदिता धर्मचारिणः॥ ३५

शची तु कश्यपं पत्न्या सहितं धर्मवत्सला।
उपाचरन्महात्मानं सर्वभूतहिते रतम्॥ ३६

ततस्तस्यां प्रभातायां रजन्यामब्रवीद्धरिम्।
अदितिर्धर्मतत्त्वज्ञा सर्वभूतहितं वचः॥ ३७

उपेन्द्र द्वारकां गच्छ पारिजातं नयस्व च।
वध्वा सम्प्रापयस्वेश पुण्यकं हृदये स्थितम्॥ ३८

पुण्यके सत्यया प्राप्ते पुनरेष त्वया तरुः।
नन्दने पुरुषश्रेष्ठ स्थाप्यः स्थाने यथोचिते॥ ३९

एवमस्त्विति कृष्णेन देवमाता यशस्विनी।
उक्ता धर्मगुणैर्युक्ता नारदेन महात्मना॥ ४०

'यदि तुम दोनोंको माताकी बात सुननी है और अपने पिता प्रजापतिकी आज्ञाका पालन करना है तो तुम दोनों नीचे हथियार डालकर सामने खड़े हो जाओ और मैं जो कहूँ, उसे मानो'॥ २६॥ तब 'बहुत अच्छा' कहकर दोनों महाबली देवता स्नानकी इच्छासे परस्पर बात करते हुए गङ्गातटपर गये॥ २७॥

इन्द्रने कहा— (श्रीकृष्ण!) तुम समस्त संसारकी सृष्टि करनेवाले प्रभु हो! तुमने ही सारी त्रिलोकीके राज्यपर मुझे स्थापित किया है। स्थापित करके फिर किसलिये मेरा अपमान करते हो?॥ २८॥ कमलनयन! तुम मेरे भाई होकर भी मेरी ज्येष्ठताको दूर हटाकर उसका कुछ भी ख़याल न करके कैसे मेरे जीवनदीपको सदाके लिये बुझा देना चाहते हो?॥ २९॥ नरेश्वर! गङ्गाजीके जलमें नहाकर दृढ़तापूर्वक उत्तम व्रतका पालन करनेवाले वे दोनों महात्मा श्रीकृष्ण और इन्द्र जहाँ कश्यप और अदिति विद्यमान थे, वहाँ पुनः आ पहुँचे॥ ३०॥ मुनिलोग उस स्थानका नाम प्रियसङ्गमन बतलाते हैं, जहाँ वे दोनों कमललोचन बन्धु माता-पितासे मिले थे॥ ३१॥ कुरुनन्दन! तदनन्तर श्रीकृष्णने इन्द्रको उस स्थानपर अपनी वाणीद्वारा अभयदान दिया; जहाँ समस्त धर्माचारी देवता एकत्र थे॥ ३२॥ तत्पश्चात् सब देवता उत्तम समृद्धिसे, जो उन्हींके अनुरूप थी, युक्त हो अपने-अपने विमानोंद्वारा स्वर्गलोकको गये॥ ३३॥ राजन्! कश्यप, अदिति, इन्द्र और श्रीकृष्ण—ये सब लोग एक विमानपर बैठकर स्वर्गलोकको गये॥ ३४॥ कुरुनन्दन! सर्वसद्गुण-सम्पन्न रमणीय इन्द्रभवनमें पहुँचकर वे समस्त धर्माचारी महात्मा बड़े आनन्दके साथ एक ही जगह ठहरे॥ ३५॥ धर्मवत्सला शचीने समस्त भूतोंके हितमें तत्पर रहनेवाले पत्नीसहित महात्मा कश्यपकी परिचर्या की॥ ३६॥ तदनन्तर जब रात बीती और प्रातःकाल हुआ, तब धर्मके तत्त्वको जाननेवाली अदितिने श्रीकृष्णसे यह समस्त प्राणियोंके लिये हितकर वचन कहा— ॥३७॥ 'उपेन्द्र! द्वारकाको जाओ और पारिजात भी लेते जाओ। ईश! बहू सत्यभामाके हृदयमें जो पुण्यक नामक व्रतका उत्सव करनेकी इच्छा है, उसे पूर्ण कराओ॥ ३८॥ 'पुरुषश्रेष्ठ! सत्यभामाद्वारा पुण्यक-व्रतका अनुष्ठान पूर्ण हो जानेपर फिर तुम्हीं इस वृक्षको नन्दनवनमें यथोचित स्थानपर स्थापित कर देना'॥ ३९॥ तब श्रीकृष्णने यशस्विनी देवमाता अदितिसे, जिन्हें महात्मा नारदजीने धार्मिक गुणोंसे सम्पन्न बताया था, कहा—'ऐसा ही होगा'॥ ४०॥

ततोऽभिवाद्य पितरं मातरं च जनार्दनः।
महेन्द्रं सह शच्याथ प्रतस्थे द्वारकां प्रति॥ ४१
ददौ कृष्णाय पौलोमी नियोगान् कुरुनन्दन।
सर्वासामेव कृष्णस्य भार्याणां धर्मचारिणी॥ ४२
दिव्यानां सर्वरत्नानां वाससां च मनस्विनी।
नानारागविरक्तानां सदैवारजसामपि॥ ४३
भार्याणां च सहस्राणि यानि षोडश माधवे।
प्रतिगृह्य महातेजाः प्रययौ द्वारकां प्रति॥ ४४
सम्पूज्यमानो द्युतिमान् खेचरैः पुण्यकर्मभिः।
ससात्यकिः सपुत्रश्च प्राप्तो रैवतकं गिरिम्॥ ४५
स तत्र स्थापयित्वा च पारिजातं वरद्रुमम्।
सात्यकं प्रेषयामास द्वारकां द्वारशालिनीम्॥ ४६

श्रीकृष्ण उवाच

पारिजातमिहानीतं महेन्द्रसदनान्मया।
निवेदय महाबाहो भैमानां भैमवर्द्धन॥ ४७
अद्य द्वारवतीं चैव पारिजातमहं द्रुमम्।
प्रवेशयिष्ये नगरे शोभा प्रक्रियतां शुभा॥ ४८
इत्युक्तः सात्यको गत्वा तथोक्त्वा पुनरागतः।
कुमारैर्नागरैः सार्द्धं साम्बप्रभृतिभिः प्रभो॥ ४९
ततोऽग्रतः पारिजातमारोप्य गरुडे तदा।
प्रद्युम्नो द्वारकां रम्यां विवेश रथिनां वरः॥ ५०
शैब्यादिहययुक्तेन रथेनानुययौ हरिः।
तस्याथ रथमुख्येन सात्यकः साम्ब एव च॥ ५१
ये त्वन्ये नृप वार्ष्णेया यानैर्बहुविधैस्तथा।
ययुः प्रहृष्टास्तत् कर्म पूजयन्तो महात्मनः॥ ५२
सात्यकाद् विस्तरं श्रुत्वा यादवा नागरास्तथा।
विस्मयं परमं जग्मुरप्रमेयस्य कर्मणा॥ ५३
तं दिव्यकुसुमं वृक्षं दृष्ट्वाऽऽनर्तनिवासिनः।
राजन् न ततृपुर्हृष्टाः पश्यमाना महोदयम्॥ ५४
तमद्भुतमचिन्त्यं च मदकेलिकलाण्डजम्।
वृक्षोत्तमं पश्यतां वै वृद्धानामगमज्जरा॥ ५५

तदनन्तर पिता-माताको तथा शचीसहित महेन्द्रको प्रणाम करके श्रीकृष्ण द्वारकाकी ओर प्रस्थित हुए॥ ४१॥ कुरुनन्दन! उस समय धर्मचारिणी शचीने श्रीकृष्णकी सभी पत्नियोंके लिये बहुत-से उपहार दिये॥ ४२॥ मनस्विनी शचीने उनकी सोलह हजार पत्नियोंके लिये सब प्रकारके दिव्य रत्न तथा भाँति-भाँतिके रंगोंमें रँगे हुए और कभी मलिन न होनेवाले बहुत-से वस्त्र श्रीकृष्णको अर्पित किये। महातेजस्वी श्रीकृष्ण वह सब उपहार लेकर द्वारकाको चले॥ ४३-४४॥ पुण्यकर्मा आकाशचारी प्राणियोंसे पूजित होते हुए तेजस्वी श्रीकृष्ण सात्यकि और अपने पुत्र प्रद्युम्नसहित रैवतक पर्वतपर आ पहुँचे॥ ४५॥ श्रेष्ठ वृक्ष पारिजातको वहीं स्थापित करके श्रीकृष्णने सात्यकिको द्वारशालिनी द्वारकापुरीको भेजा॥ ४६॥

श्रीकृष्ण बोले—भीमवंशी यादवोंमें भीमकुलकी वृद्धि करनेवाले महाबाहो! तुम द्वारकामें जाकर यह सूचना दे दो कि मैं इन्द्रभवनसे पारिजात वृक्षको यहाँ लाया हूँ॥ ४७॥ आज मैं द्वारवतीपुरीमें पारिजात-वृक्षका प्रवेश कराऊँगा; अतः नगरमें सुन्दर ढंगसे सजावट की जाय॥ ४८॥ प्रभो! श्रीकृष्णके ऐसा कहनेपर सात्यकि नगरमें गये और उनका संदेश सुनाकर साम्ब आदि कुमारों तथा नागरिकोंके साथ फिर वहीं लौट आये॥ ४९॥ तदनन्तर रथियोंमें श्रेष्ठ प्रद्युम्नने पारिजातको अपने आगे गरुड़पर रखकर सबसे पहले रमणीय द्वारकापुरीमें प्रवेश किया॥ ५०॥ फिर शैब्य आदि घोड़ोंसे जुते हुए रथके द्वारा श्रीकृष्णने पारिजातका अनुसरण किया। उन्हींके श्रेष्ठ रथद्वारा सात्यकि और साम्ब भी गये॥ ५१॥ नरेश्वर! जो अन्य वृष्णिवंशी थे, वे अनेक प्रकारके वाहनोंद्वारा महात्मा श्रीकृष्णके उस कर्मकी प्रशंसा करते हुए बड़े हर्षके साथ पुरीमें प्रविष्ट हुए॥ ५२॥ सात्यकिसे पारिजात-हरणका विस्तृत समाचार सुनकर यादव तथा नागरिक अप्रमेयस्वरूप श्रीकृष्णके उस कर्मसे बड़े विस्मयको प्राप्त हुए॥ ५३॥ राजन्! उस महान् अभ्युदयकारी दिव्य पुष्पवाले वृक्षको देखकर आनर्तनिवासी बड़े प्रसन्न हुए। वे बारम्बार देखनेपर भी तृप्त नहीं होते थे॥ ५४॥ उस वृक्षपर बहुत-से पक्षी मदमत्त होकर केलिकलामें आसक्त हो रहे थे। उस अद्भुत, अचिन्त्य एवं उत्तम वृक्षका दर्शन करनेवाले वृद्धोंकी वृद्धावस्था तत्काल दूर हो गयी॥ ५५॥

ये त्वन्धचक्षुषः सर्वे तेऽभवन् दिव्यचक्षुषः।
विरोगा रोगिणश्चासन् घ्रात्वा गन्धं वनस्पतेः ॥ ५६
लपन्तः कोकिलाञ्छ्वेताञ्छ्रुत्वाऽऽनर्तनिवासिनः।
बभूवुर्हृष्टमनसो ववन्दुश्च जनार्दनम् ॥ ५७
नानाविधानि तूर्याणि गेयानि मधुराणि च।
शुश्रुवुस्तस्य वृक्षस्य नातिदूरं गता नराः ॥ ५८
योऽयं संकल्पयामास गन्धं हृद्यं नरस्तथा।
स तदैव तमाजघ्रे पारिजातसमुद्भवम् ॥ ५९
ततः प्रविश्य रम्यां तु द्वारकां यदुनन्दनः।
वसुदेवं महात्मानं ददृशे देवकीं तथा ॥ ६०
कुकुराधिपतिं चैव बलं भ्रातरमेव च।
वृद्धाश्च यादवानां ये मानार्हानमरोपमान् ॥ ६१
विसृज्य तान् वै भगवाननादिनिधनोऽच्युतः।
सम्पूज्य च यथान्यायं स्वमेव भवनं गतः ॥ ६२
स सत्यभामया वासं विवेश मधुसूदनः।
पारिजातं तरुश्रेष्ठं ग्रहाय गदपूर्वजः ॥ ६३
सा देवी पूजयामास प्रहृष्टा वासवानुजम्।
प्रतिजग्राह तं चापि पारिजातं महाद्रुमम् ॥ ६४
मनीषितेन स तरुरल्पो भवति भारत।
महांश्च वासुदेवस्य तदद्भुतमभून्महत् ॥ ६५
कदाचिद् द्वारकां सर्वां प्रच्छादयति भारत।
कदाचिद्धस्तधार्यस्तु भवत्यङ्गुष्ठसंनिभः ॥ ६६
ननन्द सत्या कौरव्य देवी प्राप्य मनोरथम्।
पुण्यकार्थं तु सम्भारान् सम्भर्तुमुपचक्रमे ॥ ६७
यानि द्रव्याणि कौरव्य जम्बूद्वीपे तु कानिचित्।
योग्यानि तानि कृष्णेन सम्भृतानि महात्मना ॥ ६८
मुनिं तदा संस्मृतवान् स नारदं
जनार्दनः सर्वगुणोचितं वशी।
प्रतिग्रहार्थं व्रतकस्य सत्यया
यथोपदिष्टस्य पुरंदरानुजः ॥ ६९

उस वनस्पतिकी गन्ध सूँघकर रोगी नीरोग हो गये और जिनकी आँखें पहले अंधी थीं, वे उस समय दिव्य दृष्टिसे सम्पन्न हो गये॥ ५६॥ पारिजात-वृक्षपर सफेद कोकिलोंको मधुर बोली बोलते सुनकर आनर्त देशके निवासी मन-ही-मन बड़े प्रसन्न हुए और भगवान् जनार्दनकी वन्दना करने लगे॥ ५७॥ उस वृक्षके समीप गये हुए मनुष्य नाना प्रकारके वाद्य और मीठे-मीठे गीत सुनते थे॥ ५८॥ मनुष्य अपने मनमें जिस-जिस मनोरम सुगन्धके लिये संकल्प करते थे, वही तत्काल पारिजात-वृक्षसे उनकी घ्राणेन्द्रियमें प्रकट हो जाती थी॥ ५९॥ तदनन्तर यदुनन्दन श्रीकृष्णने रमणीय द्वारकापुरीमें प्रवेश करके महात्मा वसुदेव तथा माता देवकीका दर्शन किया॥ ६०॥ फिर क्रमशः कुकुरवंशके अधिपति उग्रसेन, भैया बलराम तथा यादवोंमें जो बड़े-बूढ़े माननीय देवोपम पुरुष थे, उन सबसे वे मिले॥ ६१॥ तत्पश्चात् उन सबका यथोचित पूजन करके उन्हें विदा करनेके पश्चात् आदि-अन्तसे रहित भगवान अच्युत अपने ही भवनमें चले गये॥ ६२॥ गदके बड़े भाई उन मधुसूदनने तरुश्रेष्ठ पारिजातको लेकर सत्यभामाके भवनमें प्रवेश किया॥ ६३॥ देवी सत्यभामाने अत्यन्त प्रसन्न होकर इन्द्रके छोटे भाई श्रीकृष्णका पूजन किया और उस विशाल वृक्ष पारिजातको ले लिया॥ ६४॥ भारत! वह वृक्ष वसुदेवनन्दन श्रीकृष्णकी इच्छाके अनुसार कभी छोटा हो जाता था और कभी बहुत बड़ा। यह उसके विषयमें बड़ी ही अद्भुत बात थी॥ ६५॥ भरतनन्दन! कभी तो वह वृक्ष इतना अधिक बढ़ जाता कि सारी द्वारकाको आच्छादित कर लेता था और कभी हाथपर रख लेने योग्य अङ्गूठेके बराबर हो जाता था॥ ६६॥ कुरुनन्दन! देवी सत्या उस मनोवाञ्छित वृक्षको पाकर बहुत प्रसन्न हुईं। उन्होंने पुण्यकव्रतके लिये सामान जुटाना आरम्भ किया॥ ६७॥ कुरुकुलभूषण! जम्बूद्वीपमें जो कोई भी उपयुक्त द्रव्य थे, उन सबका महात्मा श्रीकृष्णने संग्रह कर लिया॥ ६८॥ उस समय इन्द्रके छोटे भाई जितेन्द्रिय जनार्दनने सत्यभामाके बताये और उनके द्वारा आचरणमें लाये गये पुण्यकव्रतमें दिये जानेवाले दानको ग्रहण करनेके लिये सर्वगुणसम्पन्न नारद मुनिका स्मरण किया॥ ६९॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे विष्णुपर्वणि पारिजातानयने पञ्चसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७५ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत विष्णुपर्वमें पारिजातका आनयनविषयक पचहत्तरवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ७५॥

षट्सप्ततितमोऽध्यायः

सत्यभामाद्वारा पुण्यक-व्रतमें श्रीकृष्णका नारदजीको दान, नारदजीका निष्क्रय लेकर श्रीकृष्णको छोड़ना और उनसे वर पाना, श्रीकृष्णका सगे-सम्बन्धियोंको पारिजात दिखाकर पुनः उसे स्वर्गमें पहुँचाना

वैशम्पायन उवाच

अथ कृष्णस्य कौरव्य ध्यातमात्रस्तपोधनः।
आजगाम मुनिश्रेष्ठो नारदो वदतां वरः॥ १

सम्पूजयित्वा विधिवद् वासुदेवो विशाम्पते।
प्रतिग्रहार्थं विधिवच्छ्रीमान् भक्त्या न्यमन्त्रयत्॥ २

ततः काले च सम्प्राप्ते स्नातं देवो महामुनिम्।
सम्पूज्य माल्यैर्गन्धैश्च भोजयामास भारत॥ ३

सार्वकामिकमन्नाद्यं सर्वभूतकृदन्वयः।
सत्यया प्रियया सार्द्धं प्रहृष्टेनान्तरात्मना॥ ४

पुष्पदामावसज्याथ कण्ठे कृष्णस्य भाविनी।
बबन्ध कृष्णं सुभगा पारिजाते वनस्पतौ॥ ५

अद्भिर्ददौ नारदाय ततोऽनुज्ञाप्य केशवम्।
देवी धेनुसहस्रं च काञ्चनस्य च पर्वतम्॥ ६

हिरण्यरूप्यमिश्रं च मणिरत्नप्रभस्य च।
तिलमिश्रस्य च तथा धान्यैरन्यैर्युतस्य च॥ ७

प्रतिगृह्य तु तत् सर्वं नारदो मुनिसत्तमः।
स सम्प्रहृष्टो भुक्त्वाथ भूयः केशवमब्रवीत्॥ ८

भोः केशव मदीयस्त्वमद्भिर्दत्तोऽसि सत्यया।
स त्वं मामनुगच्छस्व कुरु यद्यद् ब्रवीम्यहम्॥ ९

प्रथमः पक्ष इत्येवमब्रवीन्मधुसूदनः।
व्रजन्तमनुवव्राज नारदं च जनार्दनः॥ १०

परिहासं बहुविधं कृत्वा मुनिवरस्तदा।
तिष्ठस्व गच्छामीत्युक्त्वा परिहासविचक्षणः॥ ११

अपनीय ततः कण्ठात् पुष्पदामैनमब्रवीत्।
कपिलां गां सवत्सां भो निष्क्रयार्थं प्रयच्छ मे॥ १२

वैशम्पायनजी कहते हैं—कुरुनन्दन! श्रीकृष्णके चिन्तन करते ही तपस्याके धनी, वक्ताओंमें श्रेष्ठ मुनिवर नारदजी वहाँ आ पहुँचे॥ १॥ प्रजानाथ! वसुदेवनन्दन श्रीकृष्णने विधिपूर्वक नारदजीकी पूजा करके भक्तिभावसे प्रतिग्रह लेनेके लिये उन्हें सविधि निमन्त्रण दिया॥ २॥ भारत! तदनन्तर भोजनका समय प्राप्त होनेपर स्नान किये हुए महामुनि नारदका गन्ध और माल्य आदिके द्वारा पूजन करके सर्वभूतस्रष्टा सर्वव्यापी भगवान् श्रीकृष्णने अपनी प्यारी पत्नी सत्याके साथ अत्यन्त प्रसन्न मनसे उन्हें सबकी रुचिके अनुकूल भोजन कराया॥ ३-४॥ सौभाग्यशालिनी भामिनी सत्यभामाने श्रीकृष्णके कण्ठमें फूलकी माला डालकर उन्हें पारिजात-वृक्षमें बाँध दिया॥ ५॥ तत्पश्चात् श्रीकृष्णकी आज्ञा लेकर देवी सत्याने नारदजीको जलके द्वारा श्रीकृष्णका दान कर दिया। साथ ही एक सहस्र धेनु तथा सोनेका पर्वत भी दिया। वह पर्वत मणि एवं रत्नोंकी प्रभासे युक्त था। उसमें तिलका भी सम्मिश्रण किया गया था तथा अन्य प्रकारके धान्योंसे भी वह सम्पन्न था। उस काञ्चन पर्वतके साथ सोने और चाँदीका भी संयोग था॥ ६-७॥ मुनिश्रेष्ठ नारद वह सारा दान ग्रहण करके बड़े प्रसन्न हुए और भोजन करके पुनः श्रीकृष्णसे बोले—॥ ८॥ 'हे केशव! अब आप मेरे हो गये; क्योंकि सत्याने जलके साथ आपका दान कर दिया है; अतः आप मेरे पीछे-पीछे आइये और मैं जो आज्ञा दूँ, उसका पालन कीजिये'॥ ९॥ तब जनार्दन भगवान् श्रीकृष्णने कहा—'यही मुख्य पक्ष है।' ऐसा कहकर वे जाते हुए नारदजीके पीछे-पीछे चले॥ १०॥ तब परिहासमें कुशल मुनिवर नारदजीने नाना प्रकारका परिहास करके कहा—'अच्छा, अब आप रहिये। मैं जाता हूँ।' ऐसा कहकर उनके कण्ठसे फूलकी माला हटाकर उन्होंने श्रीकृष्णसे कहा—'मुझे निष्क्रयके लिये बछड़ेसहित कपिला गौका दान कीजिये॥ ११-१२॥

कृष्णाजिनं तिलैः पूर्णं प्रयच्छ च सकाञ्चनम्।
एषोऽत्र निष्क्रयः कृष्ण विहितो वृषकेतुना॥ १३
तथेत्युक्त्वा हृषीकेशस्तथा चक्रे जनाधिप।
स उवाच मुनिश्रेष्ठं हसित्वा मधुसूदनः॥ १४
वरं वरय धर्मज्ञ यस्ते नारद काङ्क्षितः।
तत्ते दातास्मि धर्मज्ञ परा प्रीतिर्हि मे त्वयि॥ १५

नारद उवाच

नित्यमेवास्तु मे प्रीतो भवान् विष्णो सनातन।
त्वत्प्रसादात्तु सालोक्यं व्रजेयं ते महामते॥ १६
अयोनिजो भवेयं ते नारायण सतां गते।
भवेयं ब्राह्मणश्चैव पुनर्जात्यन्तरेष्वपि॥ १७
एवमस्त्विति तं देवो विष्णुः प्रोवाच भारत।
तुतोष च ततो धीमान् नारदो मुनिसत्तमः॥ १८
षोडश स्त्रीसहस्राणि विष्णोरतुलतेजसः।
निमन्त्रितानि कौरव्य सत्यया हरिकान्तया॥ १९
तासां ददौ संनियोगमेकैकं हरिवल्लभा।
शच्या यो वासुदेवस्य पुरा दत्तो नराधिप॥ २०
पारिजातो वसंस्तत्र ततः प्रववृते तदा।
आज्ञया वासुदेवस्य नारदेन महात्मना॥ २१
निमन्त्रिता गणाः सर्वे केशवेन महात्मना।
विभूतिं पारिजातस्य ददृशुः कुरुनन्दन॥ २२
पाण्डवांश्चानयामास सहैव पृथया हरिः।
द्रौपद्या च महातेजास्तथैव च सुभद्रया॥ २३
श्रुतश्रवां च ससुतां भीष्मकं ससुतं तदा।
अन्यानपि च कौरव्य मित्र सम्बन्धिबान्धवान्॥ २४
रेमे च सह पार्थेन फाल्गुनेन जनार्दनः।
सान्तःपुरो महातेजाः परमर्द्ध्यावसन्नृप॥ २५
संवत्सरे ततो याते केशिहामरसत्तमः।
पारिजातं पुनः स्वर्गमानयत् सर्वभावनः॥ २६
तत्रादितिं कश्यपं च दृष्ट्वा स्वजननीं प्रभुः।
शक्रेण सहितो धीमानप्रमेयपराक्रमः॥ २७

'श्रीकृष्ण! तिलके साथ काला मृगचर्म और सुवर्ण भी दीजिये। भगवान् शङ्करने यहाँ यही निष्क्रय नियत किया है'॥ १३॥ जनेश्वर! तब 'तथास्तु' कहकर हृषीकेश मधुसूदनने वैसा ही किया। फिर हँसकर वे मुनिश्रेष्ठ नारदसे बोले—॥ १४॥ 'धर्मज्ञ नारद! तुम्हें जो अभीष्ट हो, वह वर मुझसे माँगो। मैं तुम्हें वह अवश्य दूँगा; क्योंकि तुम्हारे ऊपर मेरा बहुत प्रेम है'॥ १५॥

नारदजीने कहा—सनातन विष्णो! महामते! आप मुझपर सदा ही प्रसन्न रहें और आपकी कृपासे मुझे आपहीका सालोक्य प्राप्त हो॥ १६॥ सत्पुरुषोंके आश्रयभूत नारायण! मैं आपकी कृपासे अयोनिज होऊँ और जन्मान्तरोंमें भी पुनः ब्राह्मण ही होऊँ॥ १७॥ भारत! तब भगवान् विष्णुने उनसे कहा—'एवमस्तु (ऐसा ही हो)।' यह वरदान पाकर बुद्धिमान् मुनिश्रेष्ठ नारद बहुत संतुष्ट हुए॥ १८॥ कुरुकुलनन्दन! श्रीकृष्णप्रिया सत्याने अतुल तेजस्वी श्रीहरिकी सोलह हजार स्त्रियोंको अपने भवनमें निमन्त्रित किया॥ १९॥ नरेश्वर! पहले शचीने भगवान् वासुदेवको जो भेंटसामग्री दी थी, श्रीकृष्णवल्लभा सत्यभामाने उसमेंसे एक-एक वस्तुको लेकर उन सबको दिया॥ २०॥ पारिजात वृक्ष वहाँ रहकर अपने गुणोंको प्रसिद्ध करने लगा। तत्पश्चात् श्रीकृष्णकी आज्ञासे महात्मा नारदने उनके समस्त सुहृदोंको निमन्त्रित किया। कुरुनन्दन! महात्मा केशवद्वारा निमन्त्रित हुए उन सब लोगोंने अपनी आँखोंसे पारिजात वृक्षका वैभव देखा॥ २१-२२॥ महातेजस्वी श्रीहरिने कुन्ती, द्रौपदी और सुभद्राके साथ पाण्डवोंको भी द्वारकामें बुलवाया॥ २३॥ कुरुनन्दन! श्रुतश्रवा और उसके पुत्र शिशुपालको, भीष्मक और उसके पुत्र रुक्मीको तथा अन्यान्य मित्रों, सम्बन्धियों एवं बन्धु-बान्धवोंको श्रीकृष्णने वहाँ बुलवाया था॥ २४॥ नरेश्वर! महातेजस्वी जनार्दन कुन्तीपुत्र अर्जुनके साथ रनवाससहित वहाँ क्रीड़ाविनोदपूर्वक बड़े आनन्दसे रहे। वे उच्चकोटिकी समृद्धिसे सम्पन्न होकर द्वारकामें निवास करते थे॥ २५॥ एक वर्ष बीत जानेपर सबको उत्पन्न करनेवाले अमरशिरोमणि केशिहन्ता श्रीकृष्णने पारिजात-वृक्षको पुनः स्वर्गलोकमें पहुँचा दिया॥ २६॥ अप्रमेय पराक्रमशाली बुद्धिमान् भगवान् श्रीकृष्णने वहाँ इन्द्रसहित जाकर पिता कश्यप तथा अपनी माता अदितिका दर्शन किया॥ २७॥

तमुवाचादितिर्माता प्रणतं मधुसूदनम्।
सौभ्रात्रमस्तु वामेवं नित्यं चामरसत्तम॥ २८
मनोरथं मम त्वं च पूरयस्व जनार्दन।
तथेत्येवाब्रवीत् कृष्णस्ततो मातरमात्मवान्॥ २९
आमन्त्रयित्वा पितरौ देवराजानमब्रवीत्।
वासुदेवो महातेजाः कालप्राप्तमिदं वचः॥ ३०
महादेवेन देवेश संदिष्टोऽस्मि महात्मना।
अन्तर्भूमितलेऽवध्यानसुरान् प्रति मानद॥ ३१
तदितो दशरात्रेण हन्ताहमसुरोत्तमान्।
तत्रोपविष्टान् स्थातव्यं प्रवरेण महात्मना॥ ३२
जयन्तेन च वीरेण दानवानां जिघांसया।
एकोऽत्र मानुषो देवो देवपुत्रस्तथा परः॥ ३३
अवध्याः किल ते देवैर्ब्रह्मणो वरदर्पिताः।
अस्माभिः किल हन्तव्या मानुषत्वमुपागतैः॥ ३४
तथेति कृष्णं स हरिः प्रीतरूपस्तथाब्रवीत्।
सस्वजाते ततो देवावन्योन्यं जनमेजय॥ ३५

उस समय अपने चरणोंमें पड़े हुए मधुसूदनसे माता अदितिने कहा—'अमरश्रेष्ठ! तुम दोनोंमें सदा ही अच्छा भ्रातृभाव बना रहे। जनार्दन! तुम मेरे इसी मनोरथको पूर्ण करो'। तब मनस्वी श्रीकृष्णने माता अदितिसे कहा—'बहुत अच्छा, ऐसा ही करूँगा।' तत्पश्चात् पिता-मातासे विदा ले महातेजस्वी वासुदेवने देवराज इन्द्रसे यह समयोचित बात कही—॥ २८—३०॥ 'दूसरोंको मान देनेवाले देवेन्द्र! महात्मा महादेवजीने भूमिके भीतर निवास करनेवाले अवध्य असुरोंका वध करनेके लिये मुझे आदेश दिया है॥ ३१॥ 'अतः मैं आजसे लेकर दस रातके भीतर भूमिके भीतर बैठे हुए उन बड़े-बड़े असुरोंका वध कर डालूँगा। वहाँ दानवोंके वधकी इच्छासे महात्मा प्रवर तथा वीर जयन्तको भी मेरे साथ रहना चाहिये॥ ३२॥ 'इनमेंसे एक (प्रवर) तो मनुष्य देव है और दूसरा (जयन्त) देवपुत्र! ब्रह्माजीके वरसे मदमत्त हुए वे दैत्य देवताओंके लिये अवध्य हैं; परंतु मनुष्यभावको प्राप्त हुए हमलोग उन्हें अवश्य मार डालेंगे'॥ ३२—३४॥ जनमेजय! तब इन्द्रने प्रसन्न होकर श्रीकृष्णसे कहा—'ऐसा ही होगा।' फिर वे दोनों देवता एक-दूसरेसे गले मिले॥ ३५॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे विष्णुपर्वणि पारिजातहरणे स्वर्गे पारिजातस्थापने षट्सप्ततितमोऽध्यायः॥ ७६॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत विष्णुपर्वमें पारिजातहरणके प्रसङ्गमें पारिजातके पुनः स्वर्गलोकमें स्थापनाविषयक छिहत्तरवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ७६॥

सप्तसप्ततितमोऽध्यायः

पुण्यक-विधिके वर्णनका उपक्रम

जनमेजय उवाच

पुण्यकानां ममोत्पत्तिं कथयस्व द्विजोत्तम।
द्वैपायनप्रसादेन सर्वं हि विदितं तव॥ १

वैशम्पायन उवाच

उमया पुण्यकविधिर्नरेन्द्रोत्पादितः पुरा।
शृणु येन विधानेन लोके धर्मभृतां वर॥ २
स्वर्गान्नीते पारिजाते कृष्णेनाक्लिष्टकर्मणा।
ययौ द्वारवतीं धीमान् नारदो मुनिसत्तमः॥ ३

जनमेजयने पूछा—द्विजश्रेष्ठ! पुण्यकोंकी उत्पत्ति किस प्रकार हुई, यह मुझे बताइये; क्योंकि द्वैपायन व्यासकी कृपासे आपको सब कुछ विदित है॥ १॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—धर्मात्माओंमें श्रेष्ठ नरेन्द्र! पूर्वकालमें भगवती उमाने पुण्यकव्रतकी विधिका प्रतिपादन किया है। उसके अनुसार लोकमें जिस विधानसे व्रत किया जाता है, उसे बताता हूँ, सुनो॥ २॥ जब अनायास ही महान् कर्म करनेवाले श्रीकृष्ण स्वर्गसे पारिजात वृक्षको द्वारकामें ले गये, उस समय बुद्धिमान् मुनिश्रेष्ठ नारदजी भी वहाँ पधारे॥ ३॥

देवासुरे नृपश्रेष्ठ संग्रामे समुपस्थिते।
षट्पुरस्य वधे घोरे महादेवाज्ञयानघ॥ ४
कृष्णेन सहितं विप्रं नारदं धर्मवित्तमम्।
आसीनं परिपप्रच्छ रुक्मिणी भैष्मिकी नृप॥ ५
तत्र जाम्बवती देवी सत्यभामा च भामिनी।
गान्धारराजपुत्री च योगयुक्ता नराधिप॥ ६
देव्यश्च नृप कृष्णस्य बह्व्योऽन्या वै समागताः।
कुलशीलगुणोपेता धर्मशीलाः पतिव्रताः॥ ७

रुक्मिण्युवाच

मुने धर्मभृतां श्रेष्ठ धर्मज्ञानभृतां वर।
उत्पत्तिं पुण्यकानां त्वं वक्तुमर्हस्यशेषतः॥ ८
विधिं च फलयोगं च दानकालं तथैव च।
कौतूहलं नस्तत्सिद्धिं वदस्व वदतां वर॥ ९

नारद उवाच

शृणु वैदर्भि धर्मज्ञे सपत्नीभिः सहानघे।
पुण्यकानां विधिः प्रोक्तो यथा देवि पुरोमया॥ १०
चचारोमा व्रतं देवी पुण्यकानां शुचिव्रता।
व्रतावसानेऽथ तया सख्यो देवि निमन्त्रिताः॥ ११
अदित्याद्याः सुताः सर्वा दक्षस्याक्लिष्टकर्मणः।
पौलोमी च शची देवी ख्याता लोके पतिव्रता॥ १२
रोहिणी च महाभागा सोमस्य दयिता सती।
फाल्गुनी च तथा पूर्वा रेवती च विशाम्पते॥ १३
तथा शतभिषा चैव मघा च कुरुनन्दन।
एताभिर्हि महादेवी पूर्वमाराधिता सती॥ १४
गङ्गा सरस्वती चैव वेणी गोदा च निम्नगा।
तथा वैतरणी चैव गण्डकी या च भारत॥ १५
अन्याश्च सरितो रम्या लोपामुद्रा च भारत।
सत्यश्चान्या जगद् देव्यो धारयन्ति हि ताः शुभाः॥ १६
शुभाश्च गिरिनन्दिन्यो वह्निकन्याश्च सुव्रताः।
स्वाहा वह्निप्रिया देवी सावित्री च यशस्विनी॥ १७
ऋद्धिः कुबेरकान्ता च जलेशमहिषी तथा।
भार्या पितृपतेश्चैव वसुपत्न्यस्तथा च याः॥ १८

निष्पाप नृपश्रेष्ठ! जब महादेवजीकी आज्ञासे देवासुरसंग्रामका अवसर उपस्थित था और षट्पुरवासी दानवोंका घोर वध होनेवाला था, उसी समयकी बात है॥ ४॥ नरेश्वर! धर्मज्ञोंमें श्रेष्ठ विप्रवर नारदजी श्रीकृष्णके साथ बैठे थे। उस समय भीष्मककुमारी रुक्मिणीने उनसे पूछा॥ ५॥ नरेश्वर! वहाँ रुक्मिणीके साथ जाम्बवती देवी, भामिनी सत्यभामा, गान्धारराजकुमारी योगयुक्ता शैब्या तथा श्रीकृष्णकी अन्य बहुत-सी कुलवती, सुशीला, गुणवती, धर्मशीला एवं पतिव्रता पत्नियाँ भी आयी हुई थीं॥ ६-७॥

रुक्मिणीने कहा—धर्मात्माओं और ज्ञानियोंमें श्रेष्ठ मुने! आप मुझे पुण्यकोंकी उत्पत्तिका वृत्तान्त पूर्णरूपसे बतानेकी कृपा करें॥ ८॥ वक्ताओंमें श्रेष्ठ देवर्षे! उस पुण्यकव्रतकी विधि, फलयोग और दानकाल क्या है? उसकी सिद्धि कैसे होती है? यह सब बताइये। हमें उसके विषयमें सुननेके लिये बड़ी उत्कण्ठा है॥ ९॥

नारदजीने कहा—धर्मको जाननेवाली निष्पाप विदर्भनन्दिनी! देवि! पूर्वकालमें उमादेवीने पुण्यकोंकी जैसी विधि बतायी थी, उसे तुम अपनी सौतोंके साथ सुनो॥ १०॥ देवि! पवित्र व्रत धारण करनेवाली उमादेवीने जब पुण्यकोंका व्रत किया था, उस समय व्रतके अन्तमें उन्होंने अपनी सखियोंको निमन्त्रित किया॥ ११॥ प्रजानाथ! कुरुनन्दन! अनायास ही सृष्टिसम्बन्धी महान् कर्म करनेवाले प्रजापति दक्षकी अदिति आदि समस्त पुत्रियाँ, लोकविख्यात पतिव्रता पुलोमकुमारी शची देवी, सोमकी प्यारी पत्नी सती साध्वी महाभागा रोहिणी, पूर्वाफाल्गुनी, रेवती, शतभिषा और मघा—ये सब-की-सब निमन्त्रित होकर वहाँ आयी थीं। इन सबने पूर्वकालमें सती महादेवी उमाकी अराधना की थीं॥ १२-१४॥ भारत! गङ्गा, सरस्वती, वेणी, गोदावरी, वैतरणी और गण्डकी—ये तथा और भी बहुत-सी रमणीय सरिताएँ वहाँ आयी थीं। लोपामुद्रा और अन्य शुभलक्षणा सती देवियाँ, जो अपने धर्मसे इस जगत्को धारण करती हैं, वहाँ उपस्थित थीं॥ १५-१६॥ सुन्दरी गिरिकन्याएँ, उत्तम व्रतका पालन करनेवाली अग्निकन्याएँ, अग्निदेवकी प्यारी पत्नी स्वाहा देवी, यशस्विनी सावित्री देवी, कुबेरकान्ता ऋद्धि, जलके स्वामी वरुणकी रानी, यमराजकी भार्या तथा वसुओंकी पत्नियाँ भी वहाँ उपस्थित हुई थीं॥ १७-१८॥

ह्रीः श्रीर्धृतिस्तथा कीर्तिराशा मेधा च सुव्रताः।
प्रीतिर्मतिश्च ख्यातिश्च सन्नीतिश्च तपोधनाः॥ १९

देव्यः सत्यस्तथैवान्याः सर्वभूतहिते रताः।
तासां व्रतावसाने च पूजां चक्रेऽम्बिका तदा॥ २०

तिलरत्नमयं दत्त्वा पर्वतं सर्वधान्यवत्।
वासोभिर्भूषणैर्मुख्यैर्नानारागैः सुमध्यमे॥ २१

प्रतिगृह्य तु तां पूजां दत्तां देव्या तपोधनाः।
उपविष्टाः कथाश्चित्राः कुर्वन्त्यो भर्तृदेवताः॥ २२

पुण्यकार्थं कथास्तासामासन् देवी शशंस याः।
विधिं च पुण्यकस्याथ सतीनां भर्तृदेवते॥ २३

तासां मतेन साध्वीनां सर्वासां सोमनन्दिनी।
पर्यपृच्छदुमां देवीं पुण्यकानां विधिं वरा॥ २४

उमा तासां प्रियार्थं तु पुण्यकान्यब्रवीत् तदा।
समक्षं मम वैदर्भि सर्वभूतहिते रता॥ २५

ममैव चोमया दत्तः स तदा रत्नपर्वतः।
प्रतिगृह्य मया चैव कृतो ब्राह्मणसाच्छुभे॥ २६

उमा त्वरुन्धतीं साध्वीमामन्त्र्य यदभाषत।
शृणु कल्याणि वक्ष्यामि सर्वाभिः सहिता शुभे॥ २७

पुण्यकानां विधिं कृत्स्नं यथावदनुपूर्वशः।
यथा चैव मया दृष्टस्तत एष विधिः शुभे॥ २८

ह्री, श्री, धृति, कीर्ति, आशा, मेधा, प्रीति, मति, ख्याति और संनीति—ये सब उत्तम व्रतका पालन करनेवाली तपोधना नारियाँ भी वहाँ एकत्र हुई थीं॥ १९॥ इनके सिवा और भी समस्त भूतोंके हितमें तत्पर रहनेवाली सती देवियाँ उपस्थित थीं। अम्बिकाने व्रतके अन्तमें उन सबका पूजन किया॥ २०॥ सुमध्यमे! तिल और रत्नोंद्वारा निर्मित हुए सम्पूर्ण धान्योंसे युक्त पर्वतका दान करके उमाने अनेक रंगोंके अच्छे-अच्छे वस्त्रों और श्रेष्ठ आभूषणोंसे उनकी पूजा की॥ २१॥ उमा देवीद्वारा दी गयी उस पूजाको ग्रहण करके वे तपोधना एवं पतिव्रता देवियाँ वहाँ बैठकर आपसमें विचित्र कथावार्ता करने लगीं॥ २२॥ पतिदेवते! उन सब देवियोंकी चर्चाका विषय था पुण्यकव्रत—वे उसके विषयमें जिज्ञासा करती थीं। उस समय देवी उमाने उन सतियोंको पुण्यकव्रत और उसकी विधिका उपदेश दिया था॥ २३॥ वहाँ जुटी हुई उन सभी साध्वी देवियोंके मतसे श्रेष्ठ पतिव्रता सोमनन्दिनी अरुन्धतीने उमा देवीसे पुण्यकोंकी विधि पूछी॥ २४॥ विदर्भ-राजकुमारी! समस्त प्राणियोंके हितमें तत्पर रहनेवाली उमा देवीने उन सतियोंका प्रिय करनेके लिये मेरे सामने ही उस समय उन्हें पुण्यकोंका उपदेश दिया॥ २५॥ शुभे! उमा देवीने उस दिन मुझे ही उस रत्नमय पर्वतका दान दिया था। वह दान लेकर मैंने ब्राह्मणोंके अधीन कर दिया था॥ २६॥ शुभे! कल्याणी! उमा देवीने साध्वी अरुन्धतीको सम्बोधित करके जो भाषण दिया था, उसे मैं बता रहा हूँ। तुम इन सभी रानियोंके साथ उसे सुनो॥ २७॥ शुभे! पुण्यकोंकी सम्पूर्ण विधिका जैसा मैंने वर्णन सुना है और जिस रूपमें उसे देखा है, उसी रूपमें मैं क्रमशः इसका यथावत् वर्णन करता हूँ, तुम सुनो॥ २८॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे विष्णुपर्वणि पुण्यकविधिकथने सप्तसप्ततितमोऽध्यायः॥ ७७॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत विष्णुपर्वमें पुण्यकविधिका कथनविषयक सतहत्तरवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ७७॥

अष्टसप्ततितमोऽध्यायः

उमाद्वारा सती स्त्रीके महत्त्वका वर्णन करते हुए पुण्यक-व्रतकी विधिका उपदेश

उमोवाच

सर्वज्ञाहं यदा भर्तुः प्रसादेन शुचिस्मिते।
तदा पुरा ममादिष्टो दृष्टः पुण्यविधिः शुभः॥ १

सनातनः पुण्यविधिरिति बुद्ध्यावगम्यताम्।
महादेवप्रसादेन मया दृष्टस्त्वरुन्धति॥ २

पुण्यकानि च सर्वाणि चीर्णवत्यस्म्यनिन्दिते।
अनुज्ञया भगवतो भर्तुः शर्वस्य धीमतः॥ ३

सतीत्वं धर्मचरणं यस्या नित्यमखण्डितम्।
पुण्यकानां विधिस्तस्याः पुराणैः परिकीर्तितः॥ ४

दानोपवासपुण्यानि सुकृतान्यप्यरुन्धति।
निष्फलान्यसतीनां हि पुण्यकानि तथा शुभे॥ ५

या वञ्चयन्ति भर्तारं योनिदुष्टाश्च याः स्त्रियः।
योनिदोषात् पुण्यफलं नाश्नन्ति निरयङ्गमाः॥ ६

साध्व्यो जगद् धारयन्ति सुशीलाः पतिदेवताः।
अनन्या धर्मनित्याश्च सतीपन्थानमाश्रिताः॥ ७

अवाग्दुष्टाः शौचयुक्ता धृतिमत्यः शुभव्रताः।
सततं साधुवादिन्यो धारयन्ति जगत् खलु॥ ८

व्याधितः पतितो वापि दीनो वापि कथञ्चन।
न त्यक्तव्यः स्त्रिया भर्ता धर्म एष सनातनः॥ ९

अकार्यकारिणं वापि पतितं वापि निर्गुणम्।
स्त्री पतिं तारयत्येव तथाऽऽत्मानं शुभानने॥ १०

उमा बोलीं—पवित्र मुसकानवाली देवि! मैं अपने पतिदेवकी कृपासे सर्वज्ञा हूँ तो भी पूर्वकालमें पतिदेवने मुझे इसका उपदेश दिया था। तभी मुझे इस शुभ पुण्यकविधिका साक्षात्कार हुआ॥ १॥ अरुन्धति! तुम्हें अपनी बुद्धिसे इस बातको निश्चित रूपसे समझ लेना चाहिये कि पुण्यक-व्रतकी विधि सनातन है। मुझे महादेवजीकी कृपासे उसका दर्शन (ज्ञान) हुआ है॥ २॥ अनिन्दिते! मैंने अपने पति बुद्धिमान् भगवान् शिवकी आज्ञासे समस्त पुण्यकोंका आचरण किया है॥ ३॥ जिस नारीको सतीत्व और धर्माचरणका अखण्डितरूपसे निर्वाह सदा अभीष्ट होता है, उसीके लिये पुरातन महर्षियोंने पुण्यकोंकी विधिका प्रतिपादन किया है॥ ४॥ शुभे! अरुन्धति! असती नारियोंके द्वारा भलीभाँति किये जानेपर भी दान और उपवासके पुण्य तथा पुण्यक निष्फल हो जाते हैं॥ ५॥ जो स्त्रियाँ अपने पतिको ठगती हैं, उन्हें धोखा देती हैं, जिनकी योनि जारसङ्गसे दूषित हो गयी है, वे उस योनिदोषके कारण पुण्यका फल नहीं भोगने पातीं; नरकमें ही गिरती हैं॥ ६॥ जिनके आचार-विचार शुद्ध हैं, जो पतिको ही आराध्यदेव मानती हैं, उनमें अनन्य भावसे अनुरक्त होती हैं, सदा धर्मके अनुष्ठानमें लगी रहती हैं और सतियोंके पथपर ही चलती हैं, वे साध्वी स्त्रियाँ ही इस जगत्‌को धारण करती हैं॥ ७॥ जिनकी वाणी परनिन्दा और असत्य आदि दोषसे दूषित नहीं है, जो बाहर-भीतरसे शुद्ध रहनेवाली हैं, जो धैर्यशालिनी तथा शुभ व्रतका पालन करनेवाली हैं, जो सदा अच्छी ही बातें बोला करती हैं, वे साध्वी स्त्रियाँ इस जगत्‌को धारण करती हैं॥ ८॥ अपना पति रोगी हो, पतित हो अथवा दीन हो, नारीको किसी तरह भी उसका त्याग नहीं करना चाहिये। यह सनातन धर्म है॥ ९॥ शुभानने! पतिव्रता स्त्री अपना तथा न करनेयोग्य काम करनेवाले पतित और गुणहीन पतिका भी उद्धार कर ही देती है॥ १०॥

योनिदुष्टस्त्रियो नास्ति प्रायश्चित्तं हतैव सा।
वाग्दुष्टे विहितं सद्भिः प्रायश्चित्तं पुरातने॥ ११

भर्तुश्छन्देन कर्तव्यं व्रतकं सर्वदा स्त्रिया।
उपवासोऽपि वा सत्ये काङ्क्षन्त्या सुकृतां गतिम्॥ १२

कल्पान्तरसहस्रेषु न स्त्री सा लभते गतिम्।
तिर्यग्योनिसहस्रेषु पच्यते योनिविप्लवात्॥ १३

यदि सा नाम मानुष्यं स्त्री लभेदसती सती।
चण्डालयोनौ दुर्मेधा जायते कुक्कुराशना॥ १४

भर्ता देवः सदा स्त्रीणां सद्भिर्दृष्टस्तपोधने।
यस्या हि तुष्यते भर्ता सा सती धर्मचारिणी॥ १५

कौतूहलहतानां तु स्त्रीणां लोको न शोभनः।
भर्तर्येव मनो यासां सद्भावेन व्यवस्थितम्॥ १६

कर्मणा मनसा वाचा पतिं नातिचरन्ति याः।
तासां पुण्यफलं सौम्ये पुण्यकैः समुदाहृतम्॥ १७

पुण्यकानां विधिं कृत्स्नं स्वर्लोकप्रतिशोभने।
निबोध सह सर्वाभिर्दृष्टो यस्तपसा मया॥ १८

स्नात्वा स्त्री प्रातरुत्थाय पतिं विज्ञापयेत् सती।
उपवासार्थमथ वा व्रतकार्थं धृतव्रते॥ १९

श्वशुराभ्यां च चरणौ सततं सत्तमस्य च।
ग्रहायौदुम्बरं पात्रं सकुशं साक्षतं तथा॥ २०

गोशृङ्गं दक्षिणं सिच्य प्रतिगृह्णीत तज्जलम्।
ततो भर्तुः सती दद्यात् स्नातस्य प्रयतस्य च॥ २१

आत्मनोऽपि निषेक्तव्यं ततः शिरसि तज्जलम्।
त्रैलोक्यसर्वतीर्थेषु स्नानमेतदुदाहृतम्॥ २२

जिस स्त्रीकी योनि दूषित है, उसकी शुद्धिके लिये कोई प्रायश्चित्त ही नहीं है। वह तो अपने पापके द्वारा मारी ही गयी। जो केवल वाणीके दोषसे दूषित है, उसकी शुद्धिके लिये सत्पुरुषोंने वेदमें प्रायश्चित्त बताया है॥ ११॥ सत्यपरायणा अरुन्धति! जो पुण्यात्माओंको प्राप्त होनेवाली गतिकी अभिलाषा रखती हो, उस स्त्रीको अपने पतिकी आज्ञाके अधीन होकर ही सदा व्रतका पालन अथवा उपवास करना चाहिये॥ १२॥ योनि दूषित करनेसे नारी पशु-पक्षी आदिकी सहस्रों योनियोंमें जन्म लेकर कष्ट भोगती है। वह स्त्री सहस्रों कल्पोंमें भी सद्गति नहीं पाती॥ १३॥ यदि असती होकर रहनेवाली नारी मरनेके बाद कभी मनुष्य-योनिमें जन्म लेती है तो चाण्डाल-योनिमें ही उसकी उत्पत्ति होती है और वह खोटी बुद्धिवाली स्त्री कुत्तोंका मांस खानेवाली चाण्डाली होती है॥ १४॥ तपोधने! स्त्रियोंके लिये सदा पति ही देवता है। सत्पुरुषोंने इस सत्यका साक्षात्कार किया है। जिस स्त्रीपर उसका पति संतुष्ट रहता है, वह सती एवं धर्मचारिणी है॥ १५॥ जो कौतूहलवश परपुरुषोंका सङ्ग करके मारी गयी हैं, उन स्त्रियोंको कभी उत्तम लोककी प्राप्ति नहीं होती। जिनका मन सद्भावपूर्वक केवल पतिमें ही लगा रहता है, उन्हींको सती समझना चाहिये॥ १६॥ सौम्य स्वभाववाली अरुन्धति! जो नारियाँ मन, वाणी और क्रियाद्वारा पतिका उल्लङ्घन नहीं करती हैं, उन्हींको पुण्यक-व्रतोंद्वारा पुण्यफलकी प्राप्ति बतायी गयी है॥ १७॥ स्वर्गलोककी शोभा बढ़ानेवाली देवि! मैंने तपस्याद्वारा जिसका साक्षात्कार किया है, पुण्यकोंकी वह सम्पूर्ण विधि बतायी जाती है। तुम इन सारी स्त्रियोंके साथ उसे ध्यान देकर सुनो॥ १८॥ व्रत धारण करनेवाली देवि! साध्वी स्त्रीको चाहिये कि वह प्रातःकाल उठकर स्नान करनेके पश्चात् पतिको यह सूचित करे कि आज मुझे उपवास अथवा व्रत करना है॥ १९॥ वह सास-ससुर तथा साधु-महात्माके चरणोंमें सदा प्रणाम करे; फिर कुश और अक्षतसे युक्त ताम्रपात्र लेकर गायके दाहिने सींगको नहलाकर उस जलको ग्रहण कर ले। इसके बाद सती स्त्री स्नान करके एकाग्र चित्त हुए पतिके मस्तकपर उस जलको छिड़के। तदनन्तर अपने मस्तकपर भी उस जलके छींटे डाले। यह त्रिलोकीके सम्पूर्ण तीर्थोंमें स्नान बताया गया है॥ २०—२२॥

उपवासेषु कर्तव्यमेतद्धि व्रतकेषु च।
स्नानमेतद्धि सामान्यं स्त्रीणां पुंसां च भामिनि॥ २३

अरुन्धति मया दृष्टं तपसा हरतेजसा।
अशल्यविद्धं शयनमासनं च तथाविधम्॥ २४

स्वयं प्रक्षालनं चापि पादयोरनुशब्दितम्।
अश्रुप्रपातो रोषश्च कलहश्च कृतः सति।
उपवासाद् व्रताद् वापि सद्यो भ्रंशयति स्त्रियः॥ २५

शुक्लमेव सदा वासः प्रशस्तं चन्द्रसम्भवे।
अन्तर्वासोऽपरं चैव उपवासे व्रते तथा॥ २६

पादुकार्थं तृणैः कार्यं सर्वदा व्रतके सति।
उपवासेऽपि च विधिरेष एव प्रवर्तितः॥ २७

अञ्जनं रोचनं चापि गन्धान् सुमनसस्तथा।
व्रतके चोपवासे च नित्यमेव विवर्जयेत्॥ २८

दन्तकाष्ठं शिरःस्नानमुद्वर्तनमथापि वा।
विवर्जितं मृदा सर्वं शौचार्थं तु विधीयते॥ २९

बिल्वामृतफलैर्नित्यं श्रीफलैश्च समाचरेत्।
प्रक्षालनं वै शिरसः सदामृन्मिश्रितैर्जलैः॥ ३०

शिरसोऽभ्यञ्जनं सौम्ये नैव तावत् प्रशस्यते।
न पादयोर्न गात्रस्य स्नेहेनेति स्थितिः स्मृता॥ ३१

गोयानमुष्ट्रयानं च खरयानं च वर्जितम्।
नग्नस्नानं च सततं व्रते चाप्युपवासके॥ ३२

नदीजलं प्रस्त्रवजं प्रशस्तं सोमनन्दिनि।
शुभे तडागे वाप्यादौ विस्तीर्णे जलजायुते॥ ३३

भामिनि! उपवास और व्रतके अवसरोंपर यह स्नान अवश्य करना चाहिये। यह स्त्रियों और पुरुषोंके लिये सामान्य स्नान है॥ २३॥ अरुन्धति! मैंने महादेवजीके तेज और अपनी तपस्यासे देखा है कि इस व्रतमें नारीके लिये ऐसी शय्या होनी चाहिये, जो कण्टकविद्ध न हो। आसन भी वैसा ही होना चाहिये॥ २४॥ उसके लिये अपने पैरोंको स्वयं ही धोनेका विधान है। साध्वी अरुन्धति! यदि आँसू गिराया गया, रोष और कलह किया गया तो वह स्त्रियोंको तत्काल ही उपवास और व्रतके पुण्यसे भ्रष्ट कर देता है॥ २५॥ चन्द्रकुमारि! उपवास तथा व्रतमें सदा श्वेत वस्त्र धारण करना ही उत्तम माना गया है। साड़ीके भीतर एक-दूसरा वस्त्र (पेटीकोट आदि) भी डाल लेना चाहिये॥ २६॥ साध्वी अरुन्धति! व्रतके अवसरपर उपयोगमें लानेके लिये सदा बेंत आदि तृणोंकी ही पादुका बनवा लेनी चाहिये (चमड़ेकी पादुका नहीं धारण करनी चाहिये)। उपवासमें भी यही विधि चलायी गयी है॥ २७॥ सती नारीको चाहिये कि वह व्रत तथा उपवासके अवसरपर अञ्जन, गोरोचन, भाँति-भाँतिके गन्ध और फूलोंका सदा ही परित्याग करे॥ २८॥ इस व्रतमें नारीके लिये काठका दातौन करना, सिरके ऊपरसे नहाना अथवा अङ्गोंमें उबटन लगवाना वर्जित है। सब प्रकारकी शुद्धिके लिये मृत्तिकाके ही उपयोगका विधान है॥ २९॥ बेल, हर्रे या आँवला तथा श्रीफलसे जिसमें मिट्टी न मिली हुई हो, संयुक्त जलके द्वारा सदा ही अपने सिरको धोना चाहिये॥ ३०॥ सौम्ये! इस व्रतमें सिरका अभ्यङ्ग अर्थात् उबटन या बेसनका चूर्ण लगाकर नहाना नहीं अच्छा माना गया है। पैरों अथवा समूचे शरीरमें भी तेल न मले। यही मर्यादा मानी गयी है॥ ३१॥ प्रत्येक व्रत और उपवासमें बैल, ऊँट और गदहोंसे जुते हुए वाहनका उपयोग वर्जित है। उसमें कभी नग्न स्नान नहीं करना चाहिये॥ ३२॥ सोमनन्दिनि! नदी और झरनेका जल उत्तम माना गया है। कमलोंसे मण्डित, सुन्दर एवं विस्तृत पोखरे या

गत्वा स्नानं प्रशस्तं तु सदैव खलु सर्वथा।
अलाभे त्ववरुद्धा स्त्री घटस्नानं समाचरेत्॥ ३४

नवैश्च कुम्भैः स्नातव्यं विधिरेष पुरातनः।
स्नानं च कार्यं शिरसा तपःफलमवाप्नुयात्॥ ३५

बावड़ी आदिमें जाकर स्नान करना सदा ही सब प्रकारसे प्रशस्त है। जिसके लिये बाहर जानेपर रोक है, वह परदेके भीतर रहनेवाली नववधू नारी तड़ाग आदिमें स्नानका सुयोग न मिलनेपर घड़ोंके जलसे स्नान करे। वह नये घड़ोंके जलसे स्नान करे—यही प्राचीन विधि है। (व्रतके सिवा अन्य अवसरोंपर) सिरके ऊपरसे स्नान करना चाहिये। इससे तपस्याका फल प्राप्त होता है॥३३—३५॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे विष्णुपर्वणि पारिजातहरणे पुण्यकविधौ अष्टसप्ततितमोऽध्यायः॥ ७८॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत विष्णुपर्वमें पारिजातहरणके प्रसङ्गमें पुण्यकविधिविषयक अठहत्तरवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ७८॥

एकोनाशीतितमोऽध्यायः

पुण्यक-व्रतसम्बन्धी नियम एवं दानका वर्णन तथा पुत्र आदिके निमित्त किये जानेवाले दूसरे व्रत एवं दानका प्रतिपादन

उमोवाच

विधिनैतेन कृत्स्नेन स्त्री सदा भर्तृदेवता।
चरेत् संवत्सरं दान्ता षण्मासान् मासमेव च॥ १

स्त्रियो ह्यावाहयेत् साध्वीरेकादश समाधिना।
स्वयं चैव विधिर्दृष्टो व्रतकानां मया शुभः॥ २

अद्भिर्दद्यात् सतीः सर्वा या मूलव्रतिनी भवेत्।
तासां तु निष्क्रयो देयः कालदेशानुरूपतः॥ ३

ततो मासान्तशुक्लस्य तिथौ च नवमी तथा।
आराधयित्वा कर्तव्यं व्रतकस्यापवर्जनम्॥ ४

उपवासमहोरात्रं व्रतकं चापि निश्चितम्।
आदौ चान्ते च कुर्वीत व्रतकस्यापि सिद्धये॥ ५

क्षुरकर्म ततो भर्तुरात्मनश्चैव कारयेत्।
उत्सादनं च स्नानं च तस्मिन्नहनि संस्मृतम्॥ ६

ततो विवाहवत् स्नानं विहितं पुण्यके शुभे।
मण्डनं चैव विहितं माल्यधारणमेव च॥ ७

उमा कहती हैं—देवि! पतिव्रता स्त्री इस सम्पूर्ण विधिके साथ एक वर्ष या छः मास अथवा एक मासतक सदा इन्द्रिय-संयमपूर्वक व्रतका आचरण करे॥ १॥ इसमें ग्यारह साध्वी स्त्रियोंको बुलाना चाहिये। मैंने स्वयं ही समाधिके द्वारा व्रतोंके इस शुभ विधानका साक्षात्कार किया है॥ २॥ मूल व्रतका अनुष्ठान करनेवाली प्रधान स्त्री अपने यहाँ आमन्त्रित की गयी उन समस्त ग्यारह सतियोंका दान करे और देश-कालके अनुसार उनका निष्क्रय दे दे* ॥ ३॥ तदनन्तर मासके अन्तमें शुक्ल-पक्षकी नवमी तिथिको देवाराधना करके व्रतको समाप्त करना चाहिये॥ ४॥ व्रतके उद्देश्यसे उसकी सिद्धिके लिये आदि और अन्तमें निश्चितरूपसे एक दिन और रातका उपवास करना चाहिये॥ ५॥ तदनन्तर अपने पतिकी हजामत बनवावे और अपना भी नखमात्र कटा ले। उसी दिन व्रतान्त स्नान तथा व्रतके उद्यापन या उत्सर्गका विधान है॥ ६॥ शुभे! पुण्यक-व्रतमें भी विवाहके समान ही विधिपूर्वक स्नान करनेकी आज्ञा है। उसमें शृङ्गार और माला धारण करनेका विधान है॥ ७॥

* इन पंक्तियोंको देखकर यह अनुमान होता है कि पहले जिन ग्यारह सती स्त्रियोंका उनके पतियोंकी अनुमतिसे आवाहन किया जाता है, उनका व्रतचारिणी स्त्री पुनः उनके पतियोंको ही दान कर देती है। देश-कालके अनुरूप निष्क्रय देकर पहले उन्हें अपनी बनाती है और फिर उनको उनके पतियोंको ही संकल्पपूर्वक सौंपकर दानजनित पुण्यकी भागिनी होती है।

कुम्भैस्तु स्नाप्यमानेमं साध्वी मन्त्रमुदीरयेत्।
भर्तुः पादौ नमस्कृत्य मनसा वाथ वा गिरा॥ ८

आपो देव्य ऋषीणां हि विश्वधात्र्यो
दिव्या मदन्त्यो याः शङ्करा धर्मधात्र्यः।
हिरण्यवर्णाः पावकाः शिवतमेन
रसेन श्रेयसो मां जुषन्तु॥ ९

अपामेष स्मृतो मन्त्रः सर्वत्रान्यत्र मे शृणु।
मन्त्राः पुराणविहिताः स्त्रीणां सर्वाङ्गशोभने॥ १०

शुभाव्यया गुणिनी युक्तधर्मा
भर्त्रा साकं मम दास्या वरेण।
मा कर्मणा मनसा वापि वाचा
भर्तुर्भवेयं रुषती स्यां वशङ्गा॥ ११

सपत्नीनामधि नित्यं भवेयं
सपुत्रा स्यां सुभगा चारुरूपा।
सम्पन्नहस्ता गुणवादिनी च
सर्वात्मना स्यां मा दरिद्रा भवेयम्॥ १२

पतिश्च मे स्यात् सुमुखो मत्प्रतीक्षो
नित्यं मद्भक्तः स्यान्मन्मतिर्मद्गतिश्च।
प्रीतिश्च नौ स्याच्चक्रवाकानुरूपा
मनोविरागो न भवेत् साधुवत् स्यात्॥ १३

लोकान् साध्वीनामुत्तमानां व्रजेयं
याभिः सर्वं धार्यते विश्वरूपम्।
उभे कुले याः शुभाः पावयन्ति
पितुर्भर्तुश्च पतिभक्त्योर्जिताश्च॥ १४

भूमिर्वायुर्जलमाकाशमग्नि-
रन्तःक्षेत्रज्ञः प्रकृतिर्यो महांश्च।
अहंकारश्च मम साक्ष्ये नियुक्ताः
स्मरेयुर्मे निश्चयं च व्रतं च॥ १५

यैरारब्धो देहिनां भौतिकोऽयं
विधिः सत्त्वाद्यैर्भूतयुक्तैः सबीजैः।
सन्त्वेते मे साक्षिणः सर्वसंस्था
व्रते चास्मिन् निश्चये चापि नित्यम्॥ १६

घड़ोंके जलसे नहलायी जाती हुई व्रतपरायणा साध्वी स्त्री अपने पतिके दोनों चरणोंको मन अथवा वाणीद्वारा नमस्कार करके निम्नाङ्कित मन्त्रका उच्चारण करे—॥ ८॥ 'जलकी अधिष्ठात्री देवी ऋषियोंकी जननी, सम्पूर्ण विश्वकी माता, आकाशसे प्रकट होनेवाली, हर्ष प्रदान करनेवाली, कल्याणकारिणी, धर्मके पोषणमें तत्पर, सुवर्णके समान वर्णवाली, निर्मल तथा सबको पावन बनानेवाली है। वह अपने परम कल्याणमय रसके द्वारा मुझे श्रेयका भागी बनाये'॥ ९॥ सर्वाङ्गशोभने देवि! यह जलसम्बन्धी मन्त्र सर्वत्र उपयोगमें लाया जाता है। अन्यत्र स्त्रियोंके स्नानके लिये पुराणविहित मन्त्र उपलब्ध होते हैं। उन्हें मुझसे सुनो॥ १०॥ मैं पतिके लिये कल्याणकारिणी होऊँ। धन आदिसे कभी क्षीण न होऊँ। सद्गुणवती होऊँ। सदा पतिके साथ धर्ममें संलग्न रहूँ। मैं अपने स्वामीके साथ दासीके समान रहकर उनकी छोटी-से-छोटी भी सेवा-टहल स्वयं ही करूँ। सदा पतिके अधीन रहूँ और मन, वाणी तथा क्रियाद्वारा भी कभी उनसे रुष्ट न होऊँ॥ ११॥ सपत्नियोंमें मेरा स्थान सदा सबसे ऊपर हो। मैं पुत्रवती, सौभाग्यवती और मनोहर रूपवाली होऊँ। मेरा हाथ सदा सम्पन्न रहे अर्थात् मैं मुक्तहस्त होकर दान कर सकूँ। मैं सम्पूर्ण हृदयसे सदा दूसरोंके गुणोंका ही बखान करूँ और कभी दरिद्र न होऊँ॥ १२॥ मेरे पति भी सदा प्रसन्नमुख रहकर मेरी प्रतीक्षा करनेवाले हों, उनका सदा मुझमें अनुराग बना रहे। उनकी मति और गति मेरी ही ओर रहे। हम दोनोंमें चकवा और चकवीके समान प्रेम बना रहे। हमारे मनमें कभी एक-दूसरेके प्रति विरक्ति न हो और हमारा व्यवहार सदा श्रेष्ठ पुरुषोंके समान हो॥१३॥ जो शुभलक्षणा देवियाँ पतिभक्तिके प्रभावसे शक्तिशालिनी होकर पिता और पति दोनोंके कुलोंको पावन बनाती हैं तथा जो अपने धर्मसे इस सम्पूर्ण विश्वको धारण करती हैं, उन्हीं उत्तम पतिव्रता देवियोंके लोकोंमें मैं जाऊँ॥ १४॥ पृथ्वी, वायु, जल, आकाश, अग्नि, अन्तर्यामी क्षेत्रज्ञ, प्रकृति, महत्तत्त्व और अहङ्कार—इन सबको मैंने अपना साक्षी बनाया है। ये मेरे इस निश्चय और व्रतको स्मरण रखें॥ १५॥ जिन सत्त्व आदि गुणोंने भूतों और उनके कर्मबीजोंसे युक्त हो देहधारियोंके इस भौतिक शरीरका निर्माण किया है, वे और उनके अभिमानी देवता जो सबमें स्थित हैं, मेरे इस व्रत और निश्चयमें सदा साक्षी बने रहें॥१६॥

चन्द्रादित्यौ पुण्यसाक्षी यमश्च
दिशः सर्वा दश चात्मा च मेऽयम्।
सन्त्वेते वै साक्षिणः सर्वसंस्था
व्रते चास्मिन् निश्चये चापि नित्यम्॥ १७
मन्त्रैरेतैः पुराणोक्तैः सर्वद्रव्याभिमन्त्रणम्।
व्रतचर्यात् प्रभृति वै पुराणे समुदाहृतम्॥ १८
स्नात्वाथ वाससी दद्याद् भर्तुः कर्त्य स्वयं शुभे।
अथात्मकर्तितं न स्याच्छुभे विघ्नेन केनचित्॥ १९
वासोऽन्यदेव दद्याच्च श्वेतं मुख्यं नवं शुचि।
स्वकर्तितं च सूत्रं तु वाससा तेन मिश्रयेत्॥ २०
ततो द्विजं शुचिं दान्तं ज्ञानविज्ञानकोविदम्।
भोजयेच्च यथाशक्त्या सह भर्त्रा सुमध्यमे॥ २१
ब्राह्मणस्यापि दातव्यं वासोयुग्मं महातपे।
शय्यासनं गृहं धान्यं दासं दासीं तथैव च॥ २२
अलंकारः शक्तितश्च रत्नपर्वत एव च।
सर्वथान्यसमुन्मिश्रस्तिलैश्च सविशेषतः॥ २३
वासोभिश्च प्रतिच्छन्नो नानावर्णैररुन्धति।
हस्त्यश्वावचयश्चैव देया गौरेव च ध्रुवम्॥ २४
लवणप्रतिमां दद्यान्नवनीतस्य चापराम्।
गुडस्य मधुनश्चैव सुवर्णस्य च शोभनाम्॥ २५
तथैव सर्वगन्धानां रसानां पृथगेव च।
तथा सुमनसां दद्याद् रौप्यस्यौदुम्बरस्य च॥ २६
फलानां चैव सर्वेषां वाससामपि नन्दिनि।
चित्रप्रतिकृतिं चैव काष्ठस्य प्रतिमां तथा॥ २७
शिलां प्रतिकृतिं चैव दध्नोऽथ पयसस्तथा।
सर्पिषा दूर्वया चैव या चान्यामप्यभीप्सति॥ २८
कालदेशानुरूपं च देयं विभवतः सति।
अल्पं वा बहुलं वापि भर्तुश्छन्देन सर्वदा॥ २९
तिलपात्रं प्रदातव्यं न देयं ननु शोभने।
गौस्त्ववश्यं प्रदातव्या कपिला कांस्यमेव च॥ ३०

चन्द्रमा, सूर्य, पुण्यके साक्षी यम, सम्पूर्ण दसों दिशाएँ और मेरा यह आत्मा—ये सबमें स्थित रहनेवाले देवता मेरे इस व्रत एवं निश्चयमें सदा साक्षी बने रहें॥ १७॥ व्रतके आरम्भसे लेकर प्रतिदिन इन पुराणोक्त मन्त्रोंद्वारा समस्त द्रव्योंको अभिमन्त्रित करना चाहिये। यह पुराणमें कहा गया है॥ १८॥ शुभे! स्नान करके अपने पतिको स्वयं ही सूत कातकर बनाये हुये दो वस्त्र भेंट करे। यदि किसी विघ्नविशेषके कारण अपने ही काते हुए सूतका वस्त्र न हो तो दूसरा ही वस्त्र दे दे। वह वस्त्र शुद्ध, नवीन, उत्तम और श्वेतवर्ण-का होना चाहिये। उस वस्त्रके साथ अपना काता हुआ सूत भी मिला दे॥ १९-२०॥ सुमध्यमे! तदनन्तर ज्ञान-विज्ञानकोविद, पवित्र, जितेन्द्रिय ब्राह्मणको अपने पतिके साथ बिठाकर यथाशक्ति भोजन कराये॥ २१॥ महान् तप करनेवाली देवि! अरुन्धति! ब्राह्मणको भी यथासम्भव जोड़ा वस्त्र, शय्या, आसन, गृह, धान्य, दास-दासी, आभूषण, सब प्रकारके धान्यों और विशेषतः तिलोंके मिश्रित रत्नमय पर्वत, जो नाना रंगके वस्त्रोंसे आच्छादित हो, यथाशक्ति दान करना चाहिये। सम्भव हो तो हाथी-घोड़ोंका समूह दिया जाय अन्यथा एक गौका ही दान कर दिया जाय। यथाशक्ति दान देना आवश्यक है॥ २२—२४॥ नमक, माखन, गुड़, मधु और सुवर्णकी बनी हुई पृथक्-पृथक् उमा-महेश्वरकी सुन्दर प्रतिमाका भी दान करना चाहिये॥ २५॥ नन्दिनि! उसी तरह सब प्रकारके सुगन्धित पदार्थों, रसों, फूलों, चाँदी, सम्पूर्ण फल, वस्त्र, चित्र और काष्ठकी प्रतिमाका भी यथासम्भव दान करना चाहिये॥ २६-२७॥ प्रस्तर, दूध, दही, घी और दूर्वाकी प्रतिमाको तथा और तरहकी प्रतिमाको भी, जिसे तुम देना चाहो, दे सकती हो॥ २८॥ पतिव्रते! अगर घरमें वैभव हो तो स्वामीकी आज्ञाके अनुसार सदा देश-कालके अनुरूप थोड़ा-बहुत दान अवश्य देना चाहिये॥ २९॥ शोभने! तिलसे भरा हुआ पात्र भी देना चाहिये; परंतु स्वामीकी आज्ञाके बिना कोई वस्तु नहीं देनी चाहिये। उनकी आज्ञा मिल जानेपर कपिला गौ तथा काँस्यपात्रका दान अवश्य करना चाहिये॥ ३०॥

कृष्णाजिनं च सुभगे सतिलं वाससान्वितम्।
आदर्शश्चैव कूर्चश्च तथाजिनमनिन्दिते॥ ३१

एतद् दत्त्वा सर्वकामानाप्नोति वरवर्णिनि।
पुरोऽधिका पुत्रवती सुभगा रूपभागिनी॥ ३२

मृष्टहस्ता धनाढ्या च स्त्री भवत्यमलेक्षणा।
इच्छया लभते चैव कन्या रूपगुणान्विताः॥ ३३

भवन्ति सुभगाश्चर्यास्तथैव च पुरोऽधिकाः।
पुत्रवत्यो धनाढ्याश्च शीलवत्यश्च नित्यदा॥ ३४

अरुन्धति कृतं ह्येतन्मयैव प्रथमं यतः।
उमाव्रतकमित्येव ख्यातमत्र महीतले॥ ३५

एतदेवोत्तमं स्त्रीणां व्रतं तस्मात् समाचरेत्।
सर्वकामानवाप्नोति दत्त्वैवैतदनिन्दिते॥ ३६

एतद्व्रतकरो ह्येव देवदेवो वृषध्वजः।
पुराभिषिक्तवान्सौम्ये प्रियार्थं मम सर्वकृत्॥ ३७

व्रतकस्यावसानेऽथ देयं भोज्यं च नित्यदा।
स्त्रीणां कामाः प्रदेयाश्च सदृशाः कालदेशयोः॥ ३८

एकैकस्य प्रदातव्यं व्रतकं वरवर्णिनि।
छन्दतो ब्राह्मणानां तु देयमन्नं सदक्षिणम्॥ ३९

पायसं तत्र दातव्यं व्रतके नान्यदिष्यते।
नात्र प्राणिवधः कार्यः पुराणे नियता श्रुतिः॥ ४०

अथ द्वितीयं वक्ष्यामि व्रतं सोमसमुद्भवे।
महादेवप्रसादेन दृष्टवत्यस्मि यच्छुभे॥ ४१

सर्वाः पुत्रफला नार्यः सद्भिरेतदुदाहृतम्।
तस्मादन्विष्यती दद्यात् सपुत्रकरकाञ्छुभे॥ ४२

ज्येष्ठाषाढौ शुभौ मासौ पुरोक्तं विधिमाचरेत्।
अथवा ज्येष्ठमेवैकमाषाढं वा समाचरेत्॥ ४३

सुभगे! अनिन्दिते! काला मृगचर्म, तिल, वस्त्र, दर्पण, कुशासन और मृगचर्मका भी दान करना चाहिये। वरवर्णिनि! इन सब वस्तुओंका दान करके नारी सम्पूर्ण कामनाओंको प्राप्त कर लेती है और नारियोंमें अग्रगण्य, पुत्रवती, सौभाग्यवती, रूपवती, शुद्ध हाथवाली, धनाढ्य तथा निर्मल नेत्रवाली होती है। वह इच्छामात्रसे ऐसी कन्याएँ प्राप्त कर लेती है, जो रूप-गुणसे सम्पन्न, सुभगा, आश्चर्ययुक्त गुणवाली, अग्रगण्य, पुत्रवती, धनाढ्य तथा सदा सुशील होती हैं॥ ३१—३४॥ अरुन्धति! मैंने ही पहले इस व्रतका आचरण किया है, इसलिये इस पृथ्वीपर यह उमाव्रतके नामसे विख्यात होगा॥ ३५॥ स्त्रियोंके लिये यही सबसे उत्तम व्रत है, अतः इसका आचरण अवश्य करे। अनिन्दिते! इस व्रतके लिये विहित यह दान देकर नारी सम्पूर्ण कामनाओंको प्राप्त कर लेती है॥ ३६॥ सौम्ये! इसी व्रतके पुण्यसे मैंने देवाधिदेव भगवान् वृषध्वज शिवको खरीद-सा लिया है। उन सर्वस्रष्टा महादेवजीने मेरा प्रिय करनेके लिये पूर्वकालमें मुझे पट्टमहिषीके पदपर अभिषिक्त किया था॥ ३७॥ व्रतके अन्तमें सदा भोज्य-पदार्थोंका दान करना चाहिये। स्त्रियोंकी अभीष्ट वस्तुओंका भी, जो देश-कालके अनुरूप हों, दान करना उचित है॥ ३८॥ वरवर्णिनि! व्रतके जो उपकरण द्रव्य हैं, उनका बराबर विभाग करके प्रत्येक ब्राह्मणको उसे देना चाहिये तथा ब्राह्मणोंकी इच्छाके अनुसार उन्हें दक्षिणासहित अन्नका दान करना चाहिये॥ ३९॥ उस व्रतमें खीरका दान करना चाहिये। दूसरा कोई अन्न अभीष्ट नहीं है। इसमें प्राणियोंकी हिंसा कदापि नहीं करनी चाहिये। यह पुराणमें निश्चितरूपसे कहा गया श्रुतिका सिद्धान्त है॥ ४०॥ चन्द्रकुमारी! शुभे! अब मैं दूसरे व्रतका वर्णन करूँगी, जिसका महादेवजीकी कृपासे मैंने प्रत्यक्ष अनुभव किया है॥ ४१॥ शुभे! सत्पुरुषोंका कथन है कि सारी स्त्रियाँ पुत्ररूप फलवाली होती हैं अर्थात् पुत्रको जन्म देनेसे ही उनका नारीत्व सफल होता है; अतः पुत्रकी इच्छा रखनेवाली स्त्री पुत्रार्थिनी नारियोंद्वारा देनेयोग्य करकों (कमण्डलुओं)-का दान करे॥ ४२॥ पहले जो विधि बतलायी गयी है, उसका पुत्रार्थिनी स्त्री ज्येष्ठ और आषाढ़ इन दो शुभ मासोंतक पालन करे अथवा केवल ज्येष्ठ या आषाढ़ एक ही महीनेतक उसका आचरण करे॥ ४३॥

ततो मासद्वये पूर्णे मासे वा वरवर्णिनि।
सपुत्रकरकान् दद्यात् फाणितप्रतिपूरितान्॥ ४४

सर्पिषः पयसश्चैव दध्नोऽथ मधुनोऽनघे।
जलस्य च तथा दद्यात् पूरयित्वा शशिप्रभे॥ ४५

एकस्मै ज्ञानवृद्धाय सुव्रताय जितात्मने।
सपुत्रकरकान् दद्याद् यावन्तो मनसः प्रियाः॥ ४६

इच्छेत स्त्री दुहितरं स्त्रीणां कामकरं ततः।
किंचिद् द्रव्यं सुताकामात् सुतां प्राप्नोत्यसंशयः॥ ४७

गौर्वाथ काञ्चनं वापि दक्षिणार्थं प्रशस्यते।
विप्रस्याच्छादनं देयमवश्यं तु शुचिस्मिते॥ ४८

यज्ञोपवीतं व्रतके दद्यान्नारी शुचिव्रता।
सपुत्रकरकाणां तु विधिरुक्तो विपश्चिता॥ ४९

अपत्याख्यानयोगेन ब्राह्मणेभ्यः शुचिव्रता।
संवत्सरं सुसम्पूर्णं व्रतधर्मानुपालिनी॥ ५०

करकानपि दद्याच्च पूर्णे संवत्सरे शुभे।
अनुज्ञया सदा भर्तुः सत्यवादिन्यरुन्धति॥ ५१

सुवर्णसूत्रं विप्राय कौमुद्यां दातुमर्हति।
यज्ञोपवीतं विप्रस्य व्रतं संस्थाप्य कामिकम्॥ ५२

यज्ञोपवीतं करकं दक्षिणां च स्वशक्तितः।
प्रयच्छती सती स्त्रीभ्यः सर्वान् कामान् समश्नुते॥ ५३

नवं न भक्षयेत् किंचिन्नारी धान्यमथो फलम्।
पुष्पाणि नोपयुञ्जीत यावदेवं समाचरेत्॥ ५४

एकभक्तेन धर्मज्ञे पुण्यकं कर्तुमर्हति।
ब्राह्मणाय तथा देयं भर्तुश्च तदनन्तरम्॥ ५५

वरवर्णिनि! फिर व्रतके दो मास अथवा एक ही मास पूर्ण होनेपर पुत्रार्थिनी स्त्रियोंद्वारा देनेयोग्य करकों (कमण्डलुओं)-का दान करे। उन सबमें शीरे अथवा चीनीके शरबत भरे होने चाहिये॥ ४४॥ चन्द्रमाके समान कान्तिवाली निष्पाप अरुन्धति! घी, दूध, दही तथा जलसे भी कमण्डलुओंको भरकर उनका दान करे॥ ४५॥ नारीको चाहिये कि वह उत्तम व्रतका पालन करनेवाले तथा मनको वशमें रखनेवाले एक ही ज्ञानवृद्ध ब्राह्मणको पुत्रार्थिनी स्त्रियोंद्वारा देनेयोग्य उतने कमण्डलु प्रदान करे, जितने उसके मनको अभीष्ट हों॥ ४६॥ जो नारी पुत्री प्राप्त करना चाहती हो, वह पुत्रीकी कामनासे ब्राह्मणी स्त्रियोंको कोई ऐसा द्रव्य दे, जो उनकी इच्छा पूर्ण करनेवाला हो, ऐसा करनेसे उसे पुत्रीकी प्राप्ति होती है। इसमें संशय नहीं है॥ ४७॥ दक्षिणाके लिये गौ अथवा सुवर्णको अच्छा बताया जाता है। पवित्र मुसकानवाली देवि! इस व्रतमें ब्राह्मणको ओढ़नेके लिये वस्त्र अवश्य देना चाहिये॥ ४८॥ पवित्रतापूर्वक व्रतका पालन करनेवाली नारी व्रतमें यज्ञोपवीतका दान करे। विद्वान् पुरुष इसमें पुत्रार्थिनी स्त्रियोंके लिये नियत करकोंके दानका विधान बताते हैं॥ ४९॥ शुभे! व्रत-धर्मका निरन्तर पालन करनेवाली पवित्र व्रतधारिणी स्त्री अपत्याख्यान-योगसे अर्थात् पुँल्लिङ्ग संतान (पुत्र)-की कामना होनेपर पुँल्लिङ्ग नक्षत्र (पुष्य, हस्त और श्रवण)-के योगमें और स्त्रीलिङ्ग संतान (पुत्री)-की इच्छा होनेपर (रोहिणी आदि) स्त्रीलिङ्ग नक्षत्रके योगमें पूरे सालभरतक सदा पतिकी आज्ञासे करकों (करवों)-का दान करे। सत्यवादिनी अरुन्धति! वर्ष पूर्ण होनेपर कार्तिककी पूर्णिमाके दिन ब्राह्मणको सुवर्णसूत्र (यज्ञोपवीत)-का दान करना चाहिये। कामनापूर्वक किये जानेवाले इस व्रतको समाप्त करके ब्राह्मणको यज्ञोपवीत, कमण्डलु और यथाशक्ति दक्षिणा देनी चाहिये। जो सती-साध्वी ब्राह्मणी स्त्रियोंको उनकी रुचिके अनुकूल वस्तुओंका दान करती है, वह सम्पूर्ण कामनाओंको प्राप्त कर लेती है॥ ५०-५३॥ नारी जबतक इस प्रकार व्रतका आचरण करे, तबतक कोई नया अन्न अथवा फल न खाय और नये फूलोंका भी उपयोग न करे॥ ५४॥ धर्मज्ञे! एक समय भोजन करके पुण्यक-व्रत करना चाहिये तथा पहले ब्राह्मणको भोजन देना चाहिये, उसके बाद पतिको॥ ५५॥

एवं संवत्सरं कृत्वा सुभगा रूपशालिनी।
भवत्यविधवा चैव स्त्री धनस्य तथेश्वरी॥ ५६
वार्ताकानि न खादेद् या स्त्री पूर्णं परिवत्सरम्।
न सा पुत्रविनाशं हि पश्यतीत्यवगम्यताम्॥ ५७
शशकं मृगमांसं वा नित्यमेव विवर्जयेत्।
नाप्नोति मरणं नारी प्राप्नोति पतिदेवताम्॥ ५८
अलाबुं वर्जयेन्नारी तथैवोत्पादिकामपि।
कलम्बीं काञ्चनं नाद्याद् या भर्तुः सुखमिच्छति॥ ५९
पूर्णे संवत्सरे दद्यादेकैकं शाकमादृता।
सदक्षिणं पुत्रवती भवत्येका पुरोऽधिका॥ ६०
स्वयं प्रक्षालयाना स्त्री स्वपादावेवमादितः।
प्रतिष्ठां लभते नित्यमुद्वेगं नाधिगच्छति॥ ६१
दिवा या सूर्यपूतेन वर्तयेत् स्त्री पतिव्रता।
एकं संवत्सरं पूर्णं रात्रावन्नं विवर्जयेत्॥ ६२
सा जीवपुत्रा सुभगा भवत्यमरवर्णिनि।
अधितिष्ठति सर्वाश्च सपत्न्यो नात्र संशयः॥ ६३
पूर्णे संवत्सरे दद्यात् सौवर्णं सूर्यमुत्तमम्।
ब्राह्मणायाभिरूपाय दरिद्राय यशस्विने॥ ६४
फलानि वाथ पुष्पाणि भक्ष्याण्यपि च सुव्रता।
दद्यादनस्तमितके चरितव्रतका तथा॥ ६५
या तथास्तमिते सूर्ये भुङ्क्ते स्त्री नियता सती।
चन्द्रनक्षत्रपूतानि भोज्यानि वरवर्णिनि॥ ६६
सा दद्यात् काञ्चनं चन्द्रं नक्षत्राणि ग्रहानपि।
अभिरूपाय विप्राय वासश्च लवणान्वितम्॥ ६७
चन्द्रशीतलगात्री सा भवत्यमरवर्णिनी।
सुभगा दर्शनीया च पुत्रवत्यपि भाविनी॥ ६८
पौर्णमास्यां तु सततं प्राप्ते सोमोदयेऽङ्गना।
अर्घ्यं दद्यात् सुमनसां साक्षतं सकुशं तथा॥ ६९
यावकं च बलिं दद्याद् दध्ना च सह संयुतम्।
एवं या कुरुते नित्यं सर्वान् कामानवाप्नुयात्॥ ७०

एक वर्षतक ऐसा करके नारी सौभाग्यवती, रूप-सौन्दर्यशालिनी, अविधवा और धनकी स्वामिनी होती है॥ ५६॥ जो स्त्री पूरे एक वर्षतक बैगन नहीं खाती है, वह अपने पुत्रका विनाश नहीं देखती है, यह निश्चित रूपसे जान लो॥ ५७॥ स्त्रीको चाहिये कि वह खरगोश, हिरन अथवा अन्य प्राणियोंका मांस सदाके लिये त्याग दे। ऐसा करनेवाली स्त्री (अकाल) मृत्यु या अल्पायुको नहीं प्राप्त होती और पातिव्रत्य धर्मके पालनका फल पाती है॥ ५८॥ जो स्त्री पतिका सुख चाहती है, वह लौकी और पोईको त्याग दे। सागका डंठल और गूलर भी न खाय॥ ५९॥ इस प्रकार एक वर्ष पूर्ण होनेपर प्रत्येक शाकका दक्षिणासहित आदरपूर्वक दान करे। ऐसा करनेवाली स्त्री एक (सपत्नीरहित), पुत्रवती तथा अग्रगण्या होती है॥ ६०॥ जो इस प्रकार व्रतमें स्थित हो आरम्भसे ही अपने पैरोंको स्वयं ही धोती है, उसे सदा प्रतिष्ठा प्राप्त होती है और वह कभी उद्वेगमें नहीं पड़ती॥ ६१॥ देवोपम कान्तिवाली देवि! जो पतिव्रता नारी पूरे एक वर्षतक दिनमें सूर्यसे पवित्र हुए अन्नके द्वारा निर्वाह करती है और रातमें भोजन त्याग देती है, वह चिरंजीवी पुत्रोंसे युक्त और सौभाग्यशालिनी होती है तथा सारी सौतोंपर अधिकार रखती है; इसमें संशय नहीं है॥ ६२-६३॥ एक वर्ष पूर्ण होनेपर वह रूपवान्, दरिद्र और यशस्वी ब्राह्मणको सूर्यकी सुवर्णमयी उत्तम प्रतिमाका दान करे॥ ६४॥ अथवा उस व्रतका आचरण करनेवाली वह सुव्रता नारी सूर्यके अस्त होनेसे पूर्व ही फल-फूल और भक्ष्य पदार्थोंका दान करे॥ ६५॥ वरवर्णिनि! जो सती स्त्री पूर्वोक्त रूपसे व्रत लेकर सूर्यास्त होनेपर ही चन्द्रमा और नक्षत्रोंसे पवित्र हुए भोज्य पदार्थोंका आहार करती है, वह वर्ष पूर्ण होनेपर सुयोग्य एवं रूपवान् ब्राह्मणको सुवर्णमय चन्द्र, नक्षत्र और ग्रहोंकी प्रतिमाका दान करे; साथ ही उत्तम लक्षणसे युक्त वस्त्र भी दे॥ ६६-६७॥ वह नारी चन्द्रमाके समान शीतल गात्रवाली, देवोपम कान्तिसे सुशोभित, सौभाग्यवती, दर्शनीया, पुत्रवती तथा पतिके प्रति अनुरक्त होती है॥ ६८॥ वह कल्याणमयी स्त्री सदा पूर्णिमाको चन्द्रोदय होनेपर अक्षत और कुशके साथ देवताओंको अर्घ्य प्रदान करे तथा दहीके साथ यावक (पूआ)-का नैवेद्य अर्पण करे। जो स्त्री नित्य नियमपूर्वक ऐसा करती है, वह समस्त कामनाओंको प्राप्त कर लेती है॥ ६९-७०॥

अदृष्ट्वा या तु नाश्नाति सूर्यं नारी पतिव्रता।
दुर्दिने वाथवा व्यभ्रे सेष्टान् कामानवाप्नुयात्॥ ७१

जो पतिव्रता नारी आकाशमें मेघोंकी घटा छायी हो अथवा बादलोंसे रहित स्वच्छ आकाश हो, सूर्यका दर्शन किये बिना भोजन नहीं करती है, वह अभीष्ट कामनाओंको प्राप्त कर लेती है॥ ७१॥ वह मनस्विनी सती अपनी शक्तिके अनुसार ब्राह्मणको सुवर्ण दान करे, ऐसा करके वह सौभाग्यवती, दर्शनीया और देवोपम कान्तिसे सुशोभित होती है॥ ७२॥

काञ्चनं शक्तितो दद्यात् सा विप्राय मनस्विनी।
सुभगा दर्शनीया च भवत्यमरवर्णिनी॥ ७२

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे विष्णुपर्वणि पारिजातहरणे व्रतकथने एकोनाशीतितमोऽध्यायः॥ ७९॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत विष्णुपर्वमें पारिजातहरणके प्रसङ्गमें व्रतकथनविषयक उन्यासीवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ७९॥

अशीतितमोऽध्यायः

नाना प्रकारके व्रतोंका विधान

भगवत्युवाच

निर्वेष्टव्यं शरीरं यैर्व्रतकैः पुण्यकैरपि।
अरुन्धति प्रवक्ष्यामि सहैताभिर्वरेण तु॥ १

कृष्णाष्टमीं या क्षिपति स्याद् वा मूलफलाशिनी।
ब्राह्मणायैकमशनं स्वं दत्त्वा भर्तृदेवता॥ २

शुक्लवस्त्रा शुभाचारा गुरुदैवतपूजका।
एवं संवत्सरं कृत्वा ततो दद्याद् द्विजातये॥ ३

गोवालरज्जुसुकृतं चामरं च ध्वजं तथा।
दक्षिणापूर्णमिष्टान्नं शक्त्या वापि शुचिव्रते॥ ४

ऊर्मिमन्तः स्वरालाग्राः श्रोणिदेशावलम्बिनः।
तस्या भवन्ति केशास्तु भक्तिमत्या हि भर्तरि॥ ५

भगवती उमा कहती हैं—अरुन्धति! जिन व्रतों और पुण्योंके द्वारा इस शरीरको परम सुखकी प्राप्तिके योग्य बनाया जा सकता है, उन्हें इन तिथियों और श्रेष्ठ फलके साथ बताती हूँ, सुनो॥ १॥ पवित्र व्रतका पालन करनेवाली देवि! जो पतिव्रता नारी कृष्णपक्षकी अष्टमी तिथिको अपना एक समयका भोजन ब्राह्मणको देकर स्वयं उपवासपूर्वक व्यतीत करती है अथवा उस दिन फल-मूल खाकर रहती है, श्वेत वस्त्र धारण करके सदाचारके पालनपूर्वक गुरुजनों तथा देवताओंकी पूजा करती है और इस प्रकार एक वर्षतक इसी नियमका पालन करके वह अन्तमें सुरही गायके पूँछके बालकी रस्सीसे अच्छी तरह बनाया हुआ चवँर, ध्वज तथा दक्षिणासहित मिष्टान्न यथाशक्ति ब्राह्मणको देती है, उस पतिभक्ता नारीके केश कटि-प्रदेशके नीचेतक लटककर लहराया करते हैं और उनके अग्रभाग घुँघराले हो जाते हैं॥ २—५॥ वरवर्णिनि! जो सिरको सुख पहुँचाना चाहती हो, वह सती-साध्वी स्त्री गोबर, आँवला, कच्चा बेल और श्रीफल (पक्का बेल)—इन सबको सम मात्रामें मिलाकर उसके द्वारा सिरको धोये। उसकी मैल दूर करे। सदा गोमूत्रका पान करे और सिरके ऊपरसे स्नान करते समय उस जलमें गोमूत्रको भी मिला ले। प्रत्येक कृष्णा चतुर्दशीको इस नियमका पालन करना चाहिये।

शिरो निर्वेष्टुकामा तु गोमयेन शिरः सती।
प्रक्षालयेन्मलं धात्र्या बिल्वेन श्रीफलेन च॥ ६

गोमूत्रं च सदा प्राश्येच्छिरःस्नानं च मिश्रयेत्।
कृष्णां चतुर्दशीं त्वेतत् कर्तव्यं वरवर्णिनि॥ ७

भवत्यविधवा चैव सुभगा विज्वरा तथा।
शिरोरोगैर्नैव चास्याः शरीरमभितप्यते॥ ८

दर्शनीयं ललाटं या काङ्क्षति स्त्री शुचिस्मिते।
तिथिं प्रतिपदं नित्यं सा क्षिपेदेकभोजना॥ ९

पयसा च तथाश्नीयाद् यावत्संवत्सरो गतः।
ब्राह्मणाय ततो दद्यात् पटं रूप्यमयं शुभम्॥ १०

ललाटं रूपसम्पन्नमाप्नोति स्त्री सुमध्यमा।
सततं स्त्री द्वितीयायां भ्रुवोरिच्छेत् सुरूपताम्॥ ११

अनन्तरोपवासेन शाकभक्ताशना सती।
ततः संवत्सरे पूर्णे ब्राह्मणं स्वस्ति वाचयेत्॥ १२

फलैः परिणतैः सौम्यैर्माषाणां दक्षिणान्वितैः।
लवणेन च भद्रं ते घृतपात्रेण चानघे॥ १३

आत्मनः शोभनौ कर्णाविच्छती स्त्री सुमध्यमा।
नक्षत्रे श्रवणे प्राप्ते ध्रुवं भुञ्जीत यावकम्॥ १४

ततः संवत्सरे पूर्णे कर्णौ दद्याद्धिरण्मयौ।
घृते प्रक्षिप्य विप्राय पयसा सहिते शुभे॥ १५

नासामिच्छेल्ललाटान्तामव्यङ्गां व्याधिवर्जिताम्।
तिलगुल्मं सदा सिंचेद् यावत् पुष्पेद् विरक्षितः॥ १६

अनन्तरोपवासेन सेक्तव्यः सलिलैः सदा।
तस्मादवाप्य पुष्पाणि घृते प्रक्षिप्य दापयेत्॥ १७

ऐसा करनेवाली स्त्री विधवा नहीं होती; सौभाग्यवती बनी रहती है। उसे ज्वर आदि रोग नहीं सताते तथा उसके शरीरमें सिर-सम्बन्धी रोगोंसे कष्ट नहीं होता॥ ६—८॥ पवित्र मुसकानवाली अरुन्धति! जो स्त्री अपने ललाटको दर्शनीय (शोभासे सम्पन्न) बनाये रखना चाहती है, वह प्रत्येक प्रतिपदा तिथिको एक समय भोजन करके बिताये एवं दूधके साथ भात खाकर रहे। जबतक एक वर्ष पूरा न हो, तबतक ऐसा करती रहे। तदनन्तर ब्राह्मणको सुन्दर सुवर्णमय पट* दान करे। ऐसा करनेवाली सुन्दर कटिप्रदेशवाली स्त्री मनोहर रूप-सौन्दर्यसे युक्त ललाट पाती है। निष्पाप अरुन्धति! तुम्हारा भला हो, जो भौंहोंका सौन्दर्य चाहती हो, वह सती-साध्वी स्त्री सदा द्वितीया तिथिको एक समय उपवास करके साग-भात खाकर रहे। इस तरह एक वर्ष पूर्ण होनेपर सुन्दर पके हुए फल, एक माशा सुवर्णकी दक्षिणा, नमक और घीसे भरा हुआ पात्र देकर ब्राह्मणसे स्वस्तिवाचन कराये॥ ९—१३॥ जो सुन्दर कटिप्रदेशवाली स्त्री अपने कानोंको सुन्दर एवं शोभासम्पन्न बनाये रखना चाहती हो, वह श्रवण नक्षत्र प्राप्त होनेपर अवश्य यावक (जौके आटेका हलवा या पूआ) भोजन करे। इस तरह एक वर्ष पूरा होनेपर दो सुवर्णमय कान बनवाकर उन्हें दुग्धमिश्रित घीमें रखकर ब्राह्मणको दान कर दे॥ १४-१५॥ जो स्त्री यह चाहती हो कि मेरी नासिका ललाटसे संलग्न हो, उसमें किसी तरहकी विकृति न आये और वह सदा रोग-व्याधिसे रहित एवं सुन्दर बनी रहे तो वह सदा तिलके पौधोंको सींचे और तबतक सींचती रहे जबतक कि उसके द्वारा सुरक्षित हुए उन पौधोंमें फूल तथा फल न लग जायँ। जिस दिनसे सींचना आरम्भ करे, उसके एक दिन पहले उपवास कर ले; फिर निरन्तर जलसे सींचती रहे। जब उन पौधोंमें फूल लग जायँ तो उनसे फूल ले घीमें डालकर उस घीका दान कर दे॥ १६-१७॥

* एक आभूषण, जिसे स्त्रियाँ पट्टीकी तरह अपने सिरमें बाँधती हैं।

स्वक्षी भवेयमिति या स्त्री काङ्क्षत्यमृतोद्भवे।
अनन्तरं वै भुञ्जाना पयसाथ घृतेन वा॥ १८

ततः संवत्सरे पूर्णे पद्मपत्राणि मण्डिता।
तथैवोत्पलपत्राणि न्यसेत् क्षीरे शुचिस्मिते॥ १९

प्लवमानानि विप्राय ततो दद्यात् सती सति।
कृष्णसारसमानाक्षी तद् दत्त्वा भवति स्म वै॥ २०

इच्छेदोष्ठौ चारुरूपौ या स्त्री धर्मगुणान्विता।
सा मृण्मयेन तु पिबेदुदकं वत्सरं सती॥ २१

अयाचितेन भुञ्जीत नवम्यां धर्मभागिनी।
ततः संवत्सरे पूर्णे विद्रुमं दातुमर्हति॥ २२

तेन बिम्बफलाभौष्ठी स्त्री भवत्येव शोभने।
सुभगाथ वपुः पुत्रधनाढ्या गोमती तथा॥ २३

या चारुरूपानिच्छेत दन्तानमरवर्णिनि।
शुक्लाष्टमीं न साश्नीयाद् भक्तद्वयमनिन्दिता॥ २४

ततः संवत्सरे पूर्णे दद्याद् रौप्यमयान् सती।
दन्तान् प्रक्षिप्य धर्मज्ञे पयस्यतिगुणोदिते॥ २५

तेन सा जातिपुष्पाभान् दन्तान् प्राप्नोति सा सती।
सौभाग्यमपि चाप्नोति सपुत्रत्वं तथानघे॥ २६

सर्वमेव मुखं कान्तमिच्छेद् या रुचिरानने।
सा पूर्णमास्यां स्नात्वा तु प्राप्य चन्द्रोदये शुभे॥ २७

यावकं पयसा सिद्धं दत्त्वा विप्राय भामिनी।
ततः संवत्सरे पूर्णे चन्द्रं रूप्यमयं शुभम्॥ २८

अमृतमय चन्द्रमासे उत्पन्न हुई अरुन्धति! जो स्त्री यह चाहती हो कि मेरे नेत्र सुन्दर हों, वह निरन्तर दूध अथवा घीसे ही भोजन करे। पवित्र मुसकानवाली देवि! इस तरह एक वर्ष पूर्ण होनेपर वह वस्त्र और आभूषणोंसे विभूषित हो कमल और कुमुदके पत्तोंको दूधमें डाले और जब वे उसमें तैरने लगें, तब वह सती उन पत्तोंसहित उस दूधका ब्राह्मणको दान कर दे। पतिव्रते! वह दान देकर नारी कृष्णसार मृगके समान नेत्रवाली हो जाती है॥ १८—२०॥ जो धर्मरूपी गुणसे युक्त सती-साध्वी स्त्री यह चाहती हो कि मेरे ओठ बड़े सुन्दर हों, वह एक वर्षतक मिट्टीके बर्तनसे पानी पीये और धर्मकी भागिनी होकर प्रत्येक नवमी तिथिको बिना माँगे मिले हुए अन्नका भोजन करे। इस प्रकार एक वर्ष पूर्ण हो जानेपर उसे मूँगा दान करना चाहिये॥ २१-२२॥ शोभने! ऐसा करनेसे उस स्त्रीके ओठ अवश्य ही बिम्बफलके समान लाल हो जाते हैं तथा वह सौभाग्यवती, रूपवती, पुत्रवती, धनाढ्य और गौओंसे युक्त होती है॥ २३॥ अमरवर्णिनि! जो चाहती हो कि मेरे दाँत बहुत ही सुन्दर और स्वच्छ हों, वह साध्वी स्त्री शुक्ल पक्षकी अष्टमी तिथिको दोनों समय भोजन त्याग दे॥ २४॥ धर्मज्ञे! इस तरह एक वर्ष पूर्ण होनेपर वह सती नारी चाँदीके दाँत बनवाकर उन्हें अत्यन्त उत्तम गुणवाले दूधमें डाल दे और दाँतोंसहित उस दुग्धका ब्राह्मणको दान कर दे॥ २५॥ अनघे! ऐसा करनेसे वह सती-साध्वी स्त्री चमेलीके फूल-जैसे श्वेत दाँत पाती है और सौभाग्य तथा पुत्र लाभ करती है॥ २६॥ रुचिरानने! जो स्त्री सम्पूर्ण मुख-मण्डलको ही कमनीय कान्तिसे युक्त देखना चाहे, वह भामिनी पूर्णिमाको स्नान करके शुभ चन्द्रोदय होनेपर दूधमें तैयार किये गये यावकका ब्राह्मणको दान दे। इस तरह एक वर्ष पूर्ण होनेपर सोने या चाँदीकी चन्द्रमाकी सुन्दर प्रतिमा बनवाकर

पद्मे फुल्ले तु विन्यस्य ब्राह्मणान् स्वस्ति वाचयेत्।
पूर्णचन्द्रमुखी तेन दानेन स्त्री शुभा भवेत्॥ २९

स्तनाविच्छति या नारी तृणराजफलोपमौ।
अयाचितं दशम्यां सा नित्यमश्नीत वाग्यता॥ ३०

संवत्सरे ततः पूर्णे द्वे बिल्वे काञ्चने शुभे।
सदक्षिणे ब्राह्मणाय प्रयच्छति धृतात्मने॥ ३१

सौभाग्यं परमाप्नोति बहुपुत्रांस्तथैव च।
सदोन्नतौ स्तनौ सा स्त्री बिभर्त्यमरवर्णिनि॥ ३२

शातोदरत्वमिच्छन्ती क्षिपेदेकान्तभोजिनी।
पञ्चम्यां तत्र भोक्तव्यमन्नं तोयेन नित्यदा॥ ३३

ततः संवत्सरे पूर्णे दद्याज्जातिलतां शुभे।
फुल्लां सदक्षिणां धन्ये ब्राह्मणाय धृतात्मने॥ ३४

हस्ताविच्छति या नारी रूपयुक्तौ सुमध्यमे।
द्वादशीं सा क्षिपत्वेवं शाकैः सर्वैरनिन्दितैः॥ ३५

संवत्सरे ततः प्राप्ते रौक्मे पद्मे ददातु सा।
ब्राह्मणायाभिरूपाय तथा पद्मद्वयं शुभम्॥ ३६

श्रोणीं विशालामन्विच्छेत् स्त्री क्षिपत्वेव सुव्रते।
त्रयोदशीमेकभक्तमश्नात्वेवमयाचितम्॥ ३७

ततः संवत्सरे पूर्णे लवणं सम्प्रयच्छतु।
प्रजापतिमुखाकारं कृत्वा तत्र वरानने॥ ३८

काञ्चनं चैव दातव्यं तदाकारस्य सर्वदा।
अञ्जनेन च धर्मज्ञा शनकैरवचूर्णयेत्॥ ३९

रत्नानि चैव पूर्णानि वासो रक्तं च दापयेत्।
तेन श्रोणीमभिमतां स्त्री सौम्ये प्रतिपद्यते॥ ४०

मधुरां वाचमिच्छन्ती वर्जयेल्लवणं सती।
संवत्सरं वा मासं वा प्रयच्छेल्लवणं ततः॥ ४१

सदक्षिणं ब्राह्मणाय परं माधुर्यमिच्छती।
शुकवाक्याच्छतगुणं भवत्यमरवर्णिनि॥ ४२

उसे कमलके फूलपर रखे और ब्राह्मणोंसे स्वस्तिवाचन कराये और उसका दान कर दे। वह शुभलक्षणा स्त्री उस दानके द्वारा पूर्ण चन्द्रमाके समान मनोहर मुखवाली हो जाती है॥ २७—२९॥ जो नारी यह चाहती है कि मेरे दोनों स्तन ताड़के फलोंके समान पीन हों, वह प्रत्येक दशमी तिथिको सदा मौन रहकर बिना माँगे मिले हुए अन्नका भोजन करे। इस प्रकार एक वर्ष पूर्ण होनेपर जो सोनेके बने हुए दो सुन्दर बेल जितात्मा ब्राह्मणको दक्षिणासहित दानमें देती है, वह परम सौभाग्य एवं बहुत-से पुत्र प्राप्त करती है। देवोपम कान्तिवाली देवि! वह स्त्री सदा ऊँचे स्तन धारण करती है॥ ३०—३२॥ जो कृशोदरी होना चाहती है (अर्थात् जिसकी यह इच्छा है कि मेरा पेट उभड़ने या बढ़ने न पाये, भीतरको दबा रहे), वह एकान्तमें भोजन करे और पञ्चमीको सदा केवल जलसे अन्न ग्रहण करे॥ ३३॥ शुभे! धन्ये! इस तरह एक वर्ष पूर्ण होनेपर जितात्मा ब्राह्मणको खिली हुई चमेलीकी लताका दक्षिणासहित दान करे॥ ३४॥ सुमध्यमे! जो नारी अपने दोनों हाथोंको सुन्दर रूपसे युक्त देखना चाहती है, वह द्वादशी तिथिको सब प्रकारके अनिन्दित (उत्तम) शाकोंद्वारा आहार करके व्यतीत करे। इस तरह एक वर्ष व्यतीत होनेपर वह सुवर्णमय कमलपर दो खिले हुए कमलके फूल रखकर उन सबका सुन्दर एवं सुयोग्य ब्राह्मणको दान करे॥ ३५-३६॥ उत्तम व्रतका पालन करनेवाली देवि! जो नारी विशाल नितम्ब चाहती हो, वह त्रयोदशी तिथिको केवल एक बार अयाचित अन्न भोजन करे और इसी तरह प्रत्येक त्रयोदशीको व्यतीत करे॥ ३७॥ वरानने! इस तरह एक वर्ष पूर्ण होनेपर प्रजापति ब्रह्माजीके मुखकी-सी आकृतिवाली नमककी राशिका दान करे॥ ३८॥ इसी प्रकार प्रजापतिके मुखके आकारका ही सुवर्ण भी सदा दान करना चाहिये। धर्मज्ञ नारी धीरे-धीरे अञ्जनसे किसी ब्राह्मणीके नेत्रोंमें काजल लगाये॥ ३९॥ सौम्ये! पूर्ण रत्न और लाल रंगका वस्त्र भी दे। इससे वह स्त्री अपने मनके अनुकूल नितम्ब पाती है॥ ४०॥ मधुर वाणीकी इच्छा रखनेवाली सती नारी एक वर्ष या एक मासतक नमक खाना छोड़ दे और वाणीके अतिशय माधुर्यकी इच्छा रखकर ब्राह्मणको दक्षिणासहित नमक दान करे। अमरवर्णिनि! ऐसा करनेसे उसकी वाणीकी मिठास तोतेकी वाणीसे सौ गुनी अधिक हो जाती है॥ ४१-४२॥

गूढगुल्फशिरौ पादाविच्छन्त्या सोमनन्दिनि।
षष्ठ्यां षष्ठ्यां वरारोहे भोक्तव्यं सलिलौदनम्॥ ४३

अग्निर्वा ब्राह्मणो वापि न स्प्रष्टव्यः पदा सदा।
यदा पदा स्पृशेत् तं च वन्देत तपसान्विते॥ ४४

पादेन न च वै पादं प्रक्षालयितुमर्हति।
एतैर्नित्यव्रतैर्युक्ता धर्मज्ञा पतिदेवता॥ ४५

कूर्मौ रूप्यमयौ दद्याद् ब्राह्मणाय पतिव्रते।
तौ वराय ब्राह्मणाय स्थापयित्वा घृतेऽनघे॥ ४६

पद्मे चाधोमुखे कृत्वा दद्याद् विप्राय नन्दिनि।
रक्तैर्द्रव्यैर्मिश्रयित्वा काञ्चनेनाभ्यलंकृते॥ ४७

सर्वमेव तु या गात्रमिच्छत्यतिमनोहरम्।
त्रिरात्रं पुष्पकाले सा करोतु पतिदेवता॥ ४८

कौमुद्यामथवाषाढ्यां माघ्यां चाश्वयुजे तथा।
मातरं पितरं चैव मन्यतेऽतिथिदैवतम्॥ ४९

घृतं च नित्यं विप्रेभ्यो ददातु लवणं तथा।
सम्मार्जनं गृहे चैव करोतु पतिदेवता॥ ५०

उपलेपनं च धर्मज्ञे बलिकर्म च मानिनि।
वाग्दुष्टा चैव मा शुभ्रे भवत्वात्मार्थपण्डिता॥ ५१

पर्यश्नातु च सा कञ्चिदपि शाकं यशस्विनि।
बलिं सृजत्वतथ्यं च परित्यजतु भामिनि॥ ५२

सोमनन्दिनि! वरारोहे! जो स्त्री यह चाहती हो कि मेरे पैरोंके गुल्फ (घुट्ठियाँ या गट्टे) और नस-नाड़ियाँ ढकी रहें, वह प्रत्येक षष्ठी तिथिको केवल पानीके साथ भात खाय॥ ४३॥ तपस्विनि! यह व्रत लेनेवाली स्त्रीको सदा ही उचित है कि वह अग्नि अथवा ब्राह्मणका पैरसे स्पर्श न करे। यदि कभी स्पर्श हो जाय तो उनको प्रणाम करे॥ ४४॥ उसे पैरसे पैरको नहीं धोना (रगड़ना) चाहिये। इन नित्य व्रतोंसे युक्त हुई धर्मज्ञ पतिव्रता नारी सोने या चाँदीके दो कछुए बनवाये। निष्पाप पतिव्रते! फिर उन दोनों कछुओंको घीमें रखकर श्रेष्ठ ब्राह्मणको दान कर दे। नन्दिनि! इसके सिवा दो कमलोंको उनके मुख नीचेकी ओर करके रखे, उन्हें लाल रंगके गन्धादि द्रव्योंसे संयुक्त करके सुवर्णसे अलंकृत करे; तत्पश्चात् उनका ब्राह्मणको दान कर दे॥ ४५—४७॥ जो पतिदेवता नारी अपने सम्पूर्ण शरीरको ही अत्यन्त मनोहर बनाना चाहती हो, वह रजोदर्शनके अवसरपर तीन रात उपवास करे॥ ४८॥ वह कार्तिक, आषाढ़, माघ तथा आश्विनकी पूर्णिमाको माता, पिता, अतिथि और देवताका आदर-सत्कार एवं पूजन करे॥ ४९॥ वह पतिव्रता ब्राह्मणोंको प्रतिदिन नमक और घी दान करे। नित्य घरमें झाड़ू लगाये॥ ५०॥ धर्मज्ञे! मानिनि! शुभ्रे! अपने स्वार्थको समझनेमें कुशल नारी घरमें लीपने-पोतने तथा देवताओंको बलि (उपहार-सामग्री) अर्पण करनेका कर्म भी करे। वह कभी दुर्वचनका प्रयोग न करे॥ ५१॥ यशस्विनि! वह किसी एक शाकका ही भक्षण करे। भामिनि! वह देवताओंके लिये उपहार दे और असत्य भाषणका त्याग करे॥ ५२॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे विष्णुपर्वणि पारिजातहरणे व्रतकविधानेऽशीतितमोऽध्यायः॥ ८०॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत विष्णुपर्वमें पारिजातहरणके प्रसङ्गमें व्रतोंका विधानविषयक अस्सीवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ८०॥

एकाशीतितमोऽध्यायः

उमाके द्वारा व्रतकथनका उपसंहार, श्रीनारदजीका देवियोंद्वारा किये गये व्रतोंका वर्णन करना तथा श्रीकृष्ण-पत्नियोंद्वारा व्रतका अनुष्ठान एवं दान

उमोवाच

बान्धवान् सगुणानिच्छेदेकभक्तेन नित्यदा।
सप्तमीं सप्तमीं नित्यं क्षपेत् स्त्री पतिदेवता॥ १

ततः संवत्सरे पूर्णे वृक्षं दद्याद्धिरण्मयम्।
सदक्षिणं ब्राह्मणाय शुभबन्धुमती भवेत्॥ २

करञ्जे दीपकं दद्यात् सदा या प्रमदा वरे।
पूर्णे संवत्सरे दद्यात् सौवर्णं दीपकं ततः॥ ३

रुच्या सा स्त्री भवेद् भर्तुरिष्टा पुत्रवती तथा।
सपत्नीनामधि तथा दीपवज्ज्वलते शुभे॥ ४

या शेषभोजिनी नित्यं नैव च स्यादरुन्तुदा।
न च स्याद् व्यशना सौम्ये नित्यं च पतिदेवता॥ ५

शौचान्विता च सततं न च रूक्षाभिभाषिणी।
श्वश्रूश्वशुरयोर्नित्यं शुश्रूषाभिरता सती॥ ६

किं तस्या व्रतकैः कार्यं किं वा स्यादुपवासकैः।
या भर्तृदेवता नित्यं सत्यधर्मगुणान्विता॥ ७

विधवा स्त्री तु या हि स्याद् दैवयोगात् सती सति।
तस्या वक्ष्यामि यो धर्मः पुराणोक्तः सुमध्यमे॥ ८

पतिं संकल्पयित्वा सा चित्रस्थं वाथ मृण्मयम्।
तस्य पूजां सदा कुर्यात् सतां धर्ममनुस्मरेत्॥ ९

तत एवाभ्यनुज्ञां सा नित्यं याचेत सुव्रता।
व्रतके चोपवासे च भोजने च विशेषतः॥ १०

भर्तृलोकान् व्रजत्येव न चेद् व्युच्चरते पतिम्।
शाण्डिली सूर्यवद् भाति सततं पतिदेवता॥ ११

अद्यप्रभृति सर्वेषां देवानां चैव योषितः।
द्रक्ष्यन्ति पुण्यकविधिं पौराणो यः सनातनः॥ १२

उमादेवी कहती हैं—जो पतिव्रता स्त्री गुणवान् बान्धवोंकी इच्छा रखती है, वह प्रत्येक सप्तमीको सदा एक समय भोजन करके व्यतीत करे॥ १॥ तत्पश्चात् वर्ष पूर्ण होनेपर ब्राह्मणको दक्षिणासहित एक सुवर्णमय वृक्षका दान करे। इससे वह शुभ गुणसम्पन्न बन्धु-बान्धवोंसे युक्त होती है॥ २॥ जो नारी सदा उत्तम करंज (कंजा या करज) वृक्षके नीचे दीप दान करती है, उसे वर्ष पूर्ण होनेपर सुवर्णमय दीपकका दान करना चाहिये॥ ३॥ शुभे! वह स्त्री अपनी सुन्दर कान्तिसे पतिकी प्राणवल्लभा बन जाती है और पुत्रवती होती है। वह सपत्नियोंमें सबसे ऊँचा स्थान बना लेती है और दीपककी भाँति प्रकाशित होती रहती है॥ ४॥ सौम्ये! जो स्त्री प्रतिदिन सबके भोजनके पश्चात् शेष अन्नका आहार करती है, किसीके हृदयको चोट नहीं पहुँचाती, बिना खाये नहीं रहती और सदा पातिव्रत्यमें स्थित रहती है, सदा शौचाचारका पालन करती है, कभी रूखी बात नहीं बोलती, प्रतिदिन सास-ससुरकी सेवामें तत्पर रहती है, उस सती स्त्रीको व्रतोंसे क्या करना है? अथवा उपवासोंसे क्या प्रयोजन है? जो सदा पतिको ही देवताकी भाँति पूजती है और सत्य-धर्म तथा सद्गुणोंसे सम्पन्न है (उसका जीवन सफल है)॥ ५—७॥ सुन्दर कटिप्रदेशवाली पतिव्रते! जो सती-साध्वी नारी कभी दैवयोगसे विधवा हो जाय, उसके लिये पुराणोंमें जो धर्म बताया गया है, उसका वर्णन करती हूँ॥ ८॥ वह पतिके चित्रमें अथवा उसकी मिट्टीकी प्रतिमामें पतिकी भावना करके सदा उसीकी पूजा करे और सत्पुरुषोंके धर्मका निरन्तर स्मरण रखे॥ ९॥ उत्तम व्रतका पालन करनेवाली वह स्त्री प्रतिदिन उसी (चित्रगत या प्रतिमागत) पतिसे व्रत, उपवास और विशेषतः भोजनके लिये आज्ञा माँगे॥ १०॥ यदि वह अपने पतिका उल्लङ्घन नहीं करती तो पतिलोकमें ही जाती है और स्वर्गमें पतिव्रता शाण्डिलीकी भाँति सदा सूर्यके समान प्रकाशित होती रहती है॥ ११॥ आजसे समस्त देवताओंकी पत्नियाँ जो पुराण-प्रतिपादित सनातन पुण्यकविधि है, उसका दर्शन करेंगी॥ १२॥

मुनिश्च नारदः कृत्स्नं पौराणं ज्ञास्यते विधिम्।
उपवासस्य धर्मात्मा व्रतकानां तथैव च॥ १३

अदितिस्तपसेन्द्राणी त्वं च सोमसुते वरे।
प्रवर्तने पुण्यकानां व्रतकानां च सर्वदा॥ १४

कीर्तनीयाः सतीनां हि भविष्यथ गुणान्विताः।
उपवासव्रतविधिं यथावदिह कृत्स्नशः॥ १५

प्रादुर्भावेषु सर्वेषु भार्या विष्णोर्महात्मनः।
ज्ञास्यन्ति पुण्यकविधिं नित्यमेव सनातनम्॥ १६

सविशेषं च धर्माणां स्त्रीधर्मेषु प्रशस्यते।
पतिभक्तिरदुष्टत्वमवाग्दुष्टत्वमेव च॥ १७

नारद उवाच

एवमुक्तास्तु ताः साध्व्यो महादेव्या तपोधनाः।
जग्मुर्हृष्टा महादेवीं प्रणिपत्य हरप्रियाम्॥ १८

अदितिर्व्रतकं चक्रे शृणु यद् धर्मचारिणी।
उमाव्रतविधिः सर्वः पूर्वोद्दिष्टस्तया कृतः॥ १९

पारिजाते निबध्याथ मम दत्तस्तु कश्यपः।
अदितिव्रतकं नाम तद् दत्तं सत्यभामया॥ २०

तदेव व्रतकं दत्तं सावित्र्या धर्मनित्यया।
तैरेव युक्तैः संयुक्तमिदं त्वभ्यधिकं कृतम्॥ २१

संध्याकाले तु सम्प्राप्ते स्थाने स्थाने तथैव च।
पूजनं वा नमस्कारो जपश्च द्विगुणः स्मृतः॥ २२

सावित्रीव्रतकं कृत्वा तथादित्या व्रतं सती।
भर्तुः कुलं पितृकुलमात्मानं चैव तारयेत्॥ २३

इन्द्राणी व्रतकं चक्रे तदेवौमं यथाविधि।
रक्तमभ्यधिकं वासो भोजनं चैव सामिषम्॥ २४

चतुर्थे दिवसे वापि पुण्यकार्थं विधिः पुनः।
अहोरात्रोपवासश्च देयं कुम्भशतं तथा॥ २५

धर्मात्मा नारद मुनि भी व्रत-उपवासकी सम्पूर्ण पौराणिक विधिके ज्ञाता होंगे॥ १३॥ श्रेष्ठ सोमकुमारी! अदिति देवी, इन्द्राणी और तुम भी अपनी तपस्यासे उस विधिको जानोगी। पुण्यकों और व्रतोंके प्रवर्तन (आरम्भ)-में सदा तुम सद्गुणवती देवियोंका सती नारियोंद्वारा कीर्तन होगा। महात्मा विष्णुके सभी अवतारोंमें जो उनकी पत्नियाँ होंगी, वे उपवास-व्रत एवं पुण्यकोंकी सम्पूर्ण सनातन विधिको यहाँ सदा ही यथावत् रूपसे जानेंगी॥ १४—१६॥ सभी धर्मों अथवा स्त्रीधर्मोंमें पतिभक्ति, दुराचारका अभाव और दुर्वचनका प्रयोग न करना—इन तीनोंकी विशेषरूपसे प्रशंसा की जाती है॥ १७॥

नारदजी कहते हैं—देवि! महादेवी पार्वतीके ऐसा कहनेपर वे साध्वी तपोधना देवियाँ हर्षमें भरकर उन हरप्रिया पार्वतीको प्रणाम करके अपने-अपने स्थानको चली गयीं॥ १८॥ धर्मचारिणी अदितिने जो व्रत किया, उसे सुनो—उमाने पहले जो व्रतकी विधि बतायी थी, उस सबका पालन अदिति देवीने किया॥ १९॥ उन्होंने महर्षि कश्यपको पारिजातमें बाँधकर मेरे हाथमें दे दिया। इसीका नाम 'अदिति-व्रतक' है। अदितिने जिस तरह व्रतक (व्रतसम्बन्धी दान) दिया था, उसी प्रकार सत्यभामाने भी दिया॥ २०॥ नित्य धर्मपरायणा सावित्रीने भी वही व्रत किया और उसी तरह दान दिया था। उन्हीं समुचित साधनोंसे संयुक्त होनेके कारण यह संध्याकाल अत्यन्त उत्कृष्ट माना गया है॥ २१॥ संध्याकाल आनेपर जगह-जगह किया गया पूजन, नमस्कार और जप द्विगुण माना गया है॥ २२॥ सती नारी सावित्रीव्रत और अदितिव्रतका अनुष्ठान करके पतिकुल, पितृकुल तथा अपने-आपका भी उद्धार कर देती है॥ २३॥ इन्द्राणीने भी उसी उमाके बताये हुए व्रतका विधिपूर्वक पालन किया। उनमें अधिक या विशेष बात इतनी ही थी कि उन्होंने लाल रंगका वस्त्र और योग्य पदार्थोंसे युक्त उत्तम भोजन दिया॥ २४॥ चौथे दिन फिर पुण्यकव्रतके लिये दानकी विधि है। एक दिन-रातका उपवास करके सौ घड़ोंका दान करना चाहिये॥ २५॥

गङ्ग्या व्रतकं दत्तं तदेवौमं यशस्करि।
स्नानमभ्यधिकं त्वत्र प्रत्यूषस्यात्मनो जले॥ २६

अन्यस्मिन् वा जले माघशुक्लपक्षे हरिप्रिये।
एतद् गङ्गाव्रतं नाम सर्वकामप्रदं स्मृतम्॥ २७

सप्त सप्त च सप्ताथ कुलानि हरिवल्लभे।
स्त्री तारयति धर्मज्ञा गङ्गाव्रतकचारिणी॥ २८

देयं कुम्भसहस्त्रं तु गङ्गाया व्रतके शुभे।
तारणं पारणं चैव तद् व्रतं सार्वकामिकम्॥ २९

यमभार्या चकाराथ व्रतं यामरथं शुभम्।
हेमन्ते तत् तु कर्तव्यमाकाशे हरिवल्लभे॥ ३०

इमानि चैव वाक्यानि ब्रूयादाकाशमास्थिता।
स्नात्वा शुचि समाचारा नमस्कृत्य पतिं शुभे॥ ३१

चराम्यहं यामरथं हिमं पृष्ठेन धारये।
पतिव्रता जीवपुत्रा भवेयं च पुरोऽधिका॥ ३२

सपत्नीरधितिष्ठेयं पश्येयं चैव मा यमम्।
सभर्तृपुत्रा जीवेयं चिरं च सुखमेव च॥ ३३

पतिलोकं च गच्छेयं भवेयं नन्दिनी तथा।
सुचैला मृष्टहस्ता च स्वजनेष्टा गुणान्विता॥ ३४

एवं कृत्वा ततो विप्रं मधुना स्वस्ति वाचयेत्।
तिलैरपि तथा कृष्णैः पायसेन तु भोजयेत्॥ ३५

एवं व्रतानि देवीभिः कृतान्यमरवर्णिनि।
महादेव्या पुरोक्तानि रुद्रपत्न्या हरिप्रिये॥ ३६

अहं ब्रवीमि तपसा मदीयेन समन्विताः।
सर्वा द्रक्ष्यथ गुण्यानि व्रतकानि तथैव च॥ ३७

पौराणान्युमया देव्या यानि दृष्टानि वै पुरा।
कल्याणगुणयुक्तानि पावनानि शुभानि च॥ ३८

यशका विस्तार करनेवाली हरिप्रिये रुक्मिणी! गङ्गाजीने भी उसी उमाके बताये हुए व्रतका अनुष्ठान और दान किया। उनमें अधिक बात इतनी ही थी कि वे प्रतिदिन प्रात:काल माघ शुक्ल पक्षमें अपने ही जलमें अथवा दूसरे जलमें भी स्नान किया करती थीं। यह गङ्गाव्रत समस्त मनोवाञ्छित कामनाओंको देनेवाला माना गया है॥ २६-२७॥ हरिवल्लभे! गङ्गाव्रतका पालन करनेवाली धर्मज्ञ नारी पितृकुल, मातामहकुल और पतिकुलकी सात-सात पीढ़ियोंका उद्धार कर देती है॥ २८॥ शुभे! गङ्गाव्रतमें एक सहस्र घड़ोंका दान करना चाहिये। वह समस्त कामनाओंका पूरक व्रत दु:खसे तारने और मनोरथोंकी पूर्ति करनेवाला है॥ २९॥ हरिवल्लभे! यमराजकी पत्नीने यामरथ नामक शुभ व्रतका अनुष्ठान किया था। वह व्रत हेमन्त-ऋतुमें खुले आकाशके नीचे करना चाहिये॥ ३०॥ शुभे! पवित्र आचरणवाली स्त्री स्नानके पश्चात् पतिको नमस्कार करके खुले मैदानमें खड़ी हो ये निम्नाङ्कित वाक्य कहे—॥ ३१॥ 'मैं अपनी पीठपर हिम (बर्फ या पाला)-का आघात सहती हुई यामरथव्रतका आचरण कर रही हूँ। मेरी यह कामना है कि मैं पतिव्रता, चिरंजीवी पुत्रोंकी माता और नारियोंमें अग्रगण्या होऊँ॥ ३२॥ 'सौतोंपर मेरा प्रभुत्व स्थापित हो, मैं कभी यमका दर्शन न करूँ और अपने पति एवं पुत्रोंके साथ चिरकालतक सुखपूर्वक जीवित रहूँ॥ ३३॥ अन्तमें पतिलोकको प्राप्त होऊँ, अपने कुल-परिवारका आनन्द बढ़ानेवाली होऊँ। मेरे वस्त्र स्वच्छ रहें, मेरा हाथ शुद्ध हो, मैं स्वजनोंकी प्यारी एवं सद्‌गुणवती होऊँ'॥ ३४॥ इस प्रकार व्रतको पूर्ण करके ब्राह्मणसे स्वस्तिवाचन कराये तथा उसे मधु और काला तिलसे मिश्रित खीर खिलाये॥ ३५॥ देवोपम कान्तिवाली देवि! हरिप्रिये! इस प्रकार रुद्रपत्नी महादेवी उमाद्वारा पूर्वकालमें बताये गये व्रतोंका अनुष्ठान पहलेकी देवियोंने किया है॥ ३६॥ मैं कहता हूँ, देवियो! प्राचीन कालमें देवी उमाने जिन कल्याणमय गुणोंसे युक्त, पावन, गुणकारक एवं शुभ पुरातन व्रतोंका साक्षात्कार किया था, उन सबको तुम सब लोग मेरे तपोबलसे सम्पन्न होकर देखोगी॥ ३७-३८॥

वैशम्पायन उवाच

रुक्मिणी व्रतकं चक्रे दृष्ट्वा व्रतकविस्तरम्।
उमाया वरदानेन दृष्ट्वा दिव्येन चक्षुषा॥ ३९

उमाव्रतकवत् सर्वं वृषदानं तथाधिकम्।
रत्नमालाप्रदानं च तथान्नं सार्वकामिकम्॥ ४०

तथा जाम्बवती चक्रे पुरोमाव्रतकं यथा।
ददावभ्यधिकं सा तु रत्नवृक्षं मनोहरम्॥ ४१

सत्या ददौ तथैवाथ पुरोमाव्रतकं तथा।
पीतमभ्यधिकं वासस्तया दत्तमुमाव्रते॥ ४२

रोहिण्याथ च फाल्गुन्या मघया च पुरातने।
व्रतानि खलु दत्तानि बहूनि कुलवर्धन॥ ४३

ददौ शतभिषा चैव व्रतकं पुण्यलक्षणम्।
येन नक्षत्रमुख्यत्वं जगाम कुरुनन्दन॥ ४४

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन्! रुक्मिणीने उमाके वरदानके अनुसार दिव्यदृष्टिसे व्रतोंका विस्तार देखकर स्वयं भी एक 'व्रत' का अनुष्ठान किया॥ ३९॥ उन्होंने सब कुछ उमाके व्रतके ही समान किया, किंतु वृषभदान, रत्नमालादान और सम्पूर्ण कामनाओंका पूरक अन्नदान—उनसे अधिक किया॥ ४०॥ जाम्बवतीने भी वैसा ही किया, जैसा पहले उमाने किया था; किंतु उन्होंने मनोहर रत्नमय वृक्षका दान उनकी अपेक्षा अधिक किया॥ ४१॥ सत्याने भी पूर्वकालमें उमाद्वारा किये गये व्रतके समान ही दान किया; परंतु उस उमाव्रतमें उन्होंने पीतवस्त्रका दान अधिक किया॥ ४२॥ कुलकी वृद्धि करनेवाले नरेश! पुरातन कालमें रोहिणी, फाल्गुनी और मघाने भी बहुत-से व्रत-दान किये थे॥ ४३॥ कुरुनन्दन! शतभिषाने भी पुण्यको लक्षित करानेवाले व्रतकका दान किया था, जिससे उसने नक्षत्रोंमें मुख्यता प्राप्त कर ली॥ ४४॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे विष्णुपर्वणि पारिजातहरणे उमाव्रतकथनसमाप्तौ पारिजातहरणकथनसमाप्तौ चैकाशीतितमोऽध्यायः॥ ८१॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत विष्णुपर्वमें पारिजातहरणके प्रसंगमें उमा-व्रतकथन-समाप्तिविषयक इक्यासीवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ८१॥*

द्व्यशीतितमोऽध्यायः†

षट्पुरवासी असुरोंका संक्षिप्त परिचय, उन्हें ब्रह्मा और भगवान् शिवका वरदान

जनमेजय उवाच

वैशम्पायन धर्मज्ञ व्यासशिष्य तपोधन।
पारिजातस्य हरणे षट्पुरं परिकीर्तितम्॥ १

निवासोऽसुरमुख्यानां दारुणानां तपोधन।
तेषां वधं मुनिश्रेष्ठ कीर्तयस्वान्धकस्य च॥ २

जनमेजयने कहा—धर्मज्ञ! व्यासशिष्य! तपोधन! वैशम्पायनजी! आपने पारिजातहरणके प्रसंगमें 'षट्पुर' की चर्चा की थी॥ १॥ तपोधन! आपने कहा था कि वह नगर बड़े-बड़े भयंकर असुरोंका स्थान था। मुनिश्रेष्ठ! आप उन षट्पुरनिवासी दैत्यों तथा अन्धकासुरके वधका वर्णन कीजिये॥ २॥

* कुछ लोग यहाँ हरिवंश ग्रन्थके पूर्वार्ध भागकी समाप्ति मानते हैं और आगेके ग्रन्थको उत्तरार्धके अन्तर्गत बताते हैं।
† पूनावाली प्रतिकी मान्यताके अनुसार यहाँसे हरिवंशका उत्तरार्ध भाग आरम्भ होता है।

वैशम्पायन उवाच

त्रिपुरे निहते वीर रुद्रेणाक्लिष्टकर्मणा।
तत्र प्रधाना बहवो बभूवुरसुरोत्तमाः॥ ३

शराग्निना न दग्धास्ते रुद्रेण त्रिपुरालयाः।
षष्टिः शतसहस्राणि न न्यूनान्यधिकानि च॥ ४

ते ज्ञातिवधसंतप्ताश्चक्रुर्वीराः पुरा तपः।
जम्बूमार्गे सतामिष्टे महर्षिगणसेविते॥ ५

आदित्याभिमुखा वीराः सहस्राणां शतं समाः।
वायुभक्षा नृपश्रेष्ठ स्तुवन्तः पद्मसम्भवम्॥ ६

तेषामुदुम्बरं राजन् गण एकः समाश्रितः।
वृक्षं तत्रावसन् वीरास्ते कुर्वन्तो महत् तपः॥ ७

कपित्थवृक्षमाश्रित्य केचित् तत्रोषिताः पुरा।
सृगालवाटीस्त्वपरे चेरुरुग्रं तथा तपः॥ ८

वटमूले तथा चेरुस्तपः कौरवनन्दन।
अधीयन्तो परं ब्रह्म वटं गत्वासुरात्मजाः॥ ९

तेषां तुष्टः प्रजाकर्ता नरदेव पितामहः।
वरं दातुं सुरश्रेष्ठः प्राप्तो धर्मभृतां वरः॥ १०

वरं वरयतेत्युक्तास्ते राजन् पद्मयोनिना।
नेषुस्तद्वरदानं तु द्विषन्तस्त्र्यम्बकं विभुम्॥ ११

इच्छन्तोऽपचितिं गन्तुं ज्ञातीनां कुरुनन्दन।
तानुवाच ततो ब्रह्मा सर्वज्ञः कुरुनन्दन॥ १२

विश्वस्य जगतः कर्तुः संहर्तुश्च महात्मनः।
कः शक्तोऽपचितिं गन्तुं मास्तु वोऽत्र वृथा श्रमः॥ १३

अनादिमध्यनिधनः सोमो देवो महेश्वरः।
तमासूय सुखं स्वर्गे वस्तुमिच्छन्ति येऽसुराः॥ १४

ते नेषुस्तत्र केचित् तु दुरात्मानो महासुराः।
अथेषुरपरे राजन्नसुरा भव्यभावनाः॥ १५

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! वीर! अनायास ही समस्त कर्म करनेवाले रुद्रदेवके द्वारा जब दैत्योंके तीनों पुरोंका विनाश किया गया, उस समय वहाँ बहुत-से प्रधान-प्रधान असुर-शिरोमणि शेष रह गये। वे त्रिपुरनिवासी होनेपर भी रुद्रदेवके बाणोंकी आगसे दग्ध न हो सके। उनकी संख्या लगभग साठ लाख थी॥ ३-४॥ उन असुर वीरोंने पूर्वकालमें अपने बन्धु-बान्धवोंके वधसे संतप्त होकर महर्षिगणोंसे सेवित तथा सत्पुरुषोंके प्रिय जम्बूमार्गमें जाकर तपस्या आरम्भ की॥ ५॥ नृपश्रेष्ठ! वे वीर दैत्य सूर्यकी ओर मुँह करके वायुके आहारपर रहकर एक लाख वर्षोंतक कमलयोनि ब्रह्माजीकी स्तुति करते रहे॥ ६॥ राजन्! उन दैत्योंमें एक दल ऐसा था, जो गूलरके वृक्षका आश्रय लेकर रहता था। वे वीर दैत्य वहाँ महान् तप करते हुए निवास करते थे॥ ७॥ पूर्वकालमें उन दैत्योंमेंसे कुछ लोग कपित्थ (कैथ) वृक्षका आश्रय लेकर वहाँ रहते थे और दूसरे सियारोंकी माँदोंमें रहकर वहाँ उग्र तपस्या करते थे (अथवा सृगाल नामक वृक्ष-विशेषकी वाटिकाओंमें रहकर तपस्या करते थे)॥ ८॥ कौरवनन्दन! कुछ असुरकुमार वट-वृक्षकी जड़में रहते और उस वृक्षपर चढ़कर परब्रह्मका चिन्तन करते हुए तपस्या करते थे॥ ९॥ नरदेव! कुछ कालके अनन्तर धर्मात्माओंमें श्रेष्ठ प्रजास्रष्टा देवशिरोमणि पितामह ब्रह्माजी उनपर संतुष्ट हो उन्हें वर देनेके लिये वहाँ आये॥ १०॥ राजन्! कमलयोनि ब्रह्माने उनसे कहा—'वर माँगो'। तब उन्होंने भगवान् त्रिनेत्रधारी रुद्रसे द्वेष रखनेके कारण वरदान लेनेकी इच्छा नहीं की॥ ११॥ कुरुकुलको आनन्द प्रदान करनेवाले कुरुनन्दन! वे रुद्रदेवसे बदला लेकर उनके द्वारा मारे गये अपने भाई-बन्धुओंके ऋणसे उऋण होना चाहते थे। तब सर्वज्ञ ब्रह्माजीने उनसे कहा—॥ १२॥ जो सम्पूर्ण जगत्के कर्ता और संहर्ता हैं, उन महात्मा भगवान् शङ्करसे बदला लेनेमें कौन समर्थ है? इस विषयमें तुम्हें व्यर्थ श्रम नहीं उठाना चाहिये॥ १३॥ उमासहित महेश्वर देव आदि, मध्य और अन्तसे रहित हैं। उनसे द्रोह रखकर जो असुर स्वर्गमें सुखपूर्वक रहना चाहते थे; उन दुरात्मा महान् असुरोंने तो वर लेनेकी इच्छा नहीं की; परंतु राजन्! जो दूसरे असुर भव्य भावनासे सम्पन्न (दूरदर्शी) अथवा भगवान् शिवकी महिमाके ज्ञाता थे, उन्होंने वर लेनेकी अभिलाषा व्यक्त की॥ १४-१५॥

नेषुर्ये सुदुरात्मानस्तानुवाच पितामहः।
वरयध्वं वरं वीरा रुद्रक्रोधमृतेऽसुराः॥ १६

ते ऊचुः सर्वदेवानामवध्याः स्याम हे विभो।
पुराणि षट् च नो देव भवन्त्वन्तर्महीतले॥ १७

सर्वकामसमृद्धार्थं षट्पुरं चास्तु नः प्रभो।
वयं च षट्पुरं गत्वा वसेम च सुखं विभो॥ १८

रुद्रादुग्रं भयं न स्याद् येन नो ज्ञातयो हताः।
निहतं त्रिपुरं दृष्ट्वा भीताः स्म तपसां निधे॥ १९

पितामह उवाच

असुरा भवतावध्या देवानां शङ्करस्य च।
न बाधिष्यथ चेद् विप्रान् सत्पथस्थान् सतां प्रियान्॥ २०

विप्रोपघातं मोहाच्चेत् करिष्यथ कथंचन।
नाशं यास्यथ विप्रा हि जगतः परमा गतिः॥ २१

नारायणाद् बिभेतव्यं कुर्वद्भिर्ब्राह्मणाहितम्।
सर्वभूतेषु भगवान् हितं धत्ते जनार्दनः॥ २२

ते गता असुरा राजन् ब्रह्मणाथ विसर्जिताः।
येऽपि भक्ता महादेवमसुरा धर्मचारिणः॥ २३

स्वयं हि दर्शनं तेषां ददौ त्रिपुरनाशनः।
श्वेतं वृषभमारुह्य सोमः सप्रवरः प्रभुः।
उवाचेदं च भगवानसुरान् स सतां गतिः॥ २४

वैरमुत्सृज्य दम्भं च हिंसां चासुरसत्तमाः।
मामेव चाश्रितास्तस्माद् वरं साधु ददामि वः॥ २५

यैर्दीक्षिताः स्थ मुनिभिः सत्क्रियापरमैर्द्विजैः।
सह तैर्गम्यतां स्वर्गः प्रीतोऽहं वः सुकर्मणा॥ २६

इह ये चैव वत्स्यन्ति तापसा ब्रह्मवादिनः।
अपि कापित्थिका वृक्षे तेषां लोको यथा मम॥ २७

इह मासान्तपक्षान्तौ यः करिष्यति मानवः।
वानप्रस्थेन विधिना पूजयन् मां तपोधनाः॥ २८

वर्षाणां स सहस्रं तु तपसां प्राप्स्यते फलम्।
कृत्वा त्रिरात्रं विधिवल्लप्स्यते चेप्सितां गतिम्॥ २९

जिन दुरात्माओंने वर लेनेकी इच्छा नहीं की, उनसे पितामह ब्रह्माने फिर कहा—'वीर असुरो! तुम भगवान् रुद्रपर क्रोध प्रकट करनेके सिवा दूसरा कोई भी वर माँग लो'॥ १६॥ तब उन्होंने कहा—'विभो! हम सब देवताओंके लिये अवध्य हों। देव! पृथ्वीके भीतर हमारे छः पुर हों। प्रभो! हमारे वे छहों पुर सम्पूर्ण मनोवाञ्छित पदार्थोंकी समृद्धिसे सम्पन्न हों। भगवन्! हम षट्पुरमें जाकर सुखपूर्वक निवास करें॥ १७-१८॥ तपोनिधे! जिन्होंने हमारे बन्धु-बान्धवोंको मार डाला है, उन रुद्रदेवसे हमें उग्र भय प्राप्त न हो; क्योंकि त्रिपुरोंका विनाश देखकर हम भयभीत हो गये हैं'॥ १९॥

पितामह बोले—असुरो! तुम देवताओं तथा भगवान् शङ्करके लिये अवध्य हो जाओगे। परंतु ऐसा तभी होगा, जब तुम सन्मार्गपर सुस्थिर रहनेवाले सत्पुरुषोंके प्रिय ब्राह्मणोंको बाधा नहीं पहुँचाओगे॥ २०॥ यदि मोहवश किसी तरह ब्राह्मणोंकी हत्या करोगे तो नष्ट हो जाओगे, क्योंकि ब्राह्मण जगत्के परम आश्रय हैं॥ २१॥ ब्राह्मणोंका अहित करनेवाले पुरुषोंको भगवान् नारायणसे डरना चाहिये। क्योंकि वे भगवान् जनार्दन समस्त भूतोंके प्रति हित-बुद्धि रखते हैं॥ २२॥ राजन्! ऐसा कहकर ब्रह्माजीके विदा देनेपर वे असुर चले गये तथा जो दूसरे असुर धर्माचरणमें तत्पर रहनेवाले और महादेवजीके भक्त थे, उन्हें त्रिपुरविनाशन भगवान् महादेवजीने उमासहित श्वेत वृषभपर आरूढ़ होकर अपने पार्षदोंके साथ आ स्वयं ही दर्शन दिया तथा सत्पुरुषोंके आश्रयभूत उन भगवान् शिवने उन असुरोंसे इस प्रकार कहा—॥ २३-२४॥ 'असुरशिरोमणियो! तुमने वैर, दम्भ और हिंसाका परित्याग करके जो केवल मेरा ही आश्रय लिया है, इससे मैं तुम्हारे लिये श्रेष्ठ वर प्रदान करता हूँ॥ २५॥ जिन सत्कर्मपरायण ब्रह्मर्षियोंने तुम्हें मेरी भक्तिकी दीक्षा दी है, उनके साथ ही तुम सब लोग स्वर्गलोकमें चले जाओ। मैं तुम्हारे सत्कर्मसे बहुत प्रसन्न हूँ॥ २६॥ जो ब्रह्मवादी तापस इस कपित्थ वृक्षके पास निवास करेंगे, वे कापित्थिक कहलायेंगे और उन्हें मेरे समान लोक प्राप्त होगा॥ २७॥ तपोधनो! जो मनुष्य अमावास्या और पूर्णिमाके दिन वानप्रस्थ विधिसे मेरी पूजा करता हुआ यहाँ निवास करेगा, वह सहस्र वर्षोंतक तपस्या करनेका फल पा लेगा तथा विधिपूर्वक तीन राततक निवास करनेसे उसको मनोवाञ्छित गतिकी प्राप्ति होगी'॥ २८-२९॥

अर्कद्वीपे निवसतो द्विगुणं तद् भविष्यति।
न विदेशे च भद्रं वो वरमेतद् ददाम्यहम्॥ ३०
श्वेतवाहननामानं यश्च मां पूजयिष्यति।
सर्वतो भयचित्तोऽपि गतिं स मम यास्यति॥ ३१
औदुम्बरान् वाटमूलान् द्विजान् कापित्थिकानपि।
तथा सृगालवाटीयान् धर्मात्मानो दृढव्रतान्॥ ३२
मुनींश्च ब्रह्मवादीयान् सविशेषेण ये नराः।
पूजयिष्यन्ति सततं ते यास्यन्तीप्सितां गतिम्॥ ३३
इत्युक्त्वाथ महादेवो भगवाञ्छ्वेतवाहनः।
तैरेव सहितः सर्वै रुद्रलोकं जगाम वै॥ ३४
जम्बूमार्गं गमिष्यामि जम्बूमार्गे वसाम्यहम्।
एवं संकल्पमानोऽपि रुद्रलोके महीयते॥ ३५

अर्कद्वीपमें निवास करनेवालेको उससे दूना फल मिलेगा। परंतु दूर देशमें निवास करनेपर तुम्हारा भला नहीं होगा। यह वर मैं दे रहा हूँ॥ ३०॥ जो श्वेतवाहन नामसे मेरी पूजा करेगा, वह सब ओरसे भयभीत-चित्त होनेपर भी मेरी ही गतिको प्राप्त होगा॥ ३१॥ 'जो मनुष्य औदुम्बर[1], बाटमूल[2], कापित्थिक[3], सृगाल-वाटीय[4], धर्मात्मा दृढ़व्रत एवं ब्रह्मवादी मुनियोंका सदा विशेष-रूपसे पूजन करेंगे, वे मनोवाञ्छित गतिको प्राप्त होंगे'॥ ३२-३३॥ ऐसा कहकर भगवान् श्वेतवाहन महादेव उन सबके साथ रुद्रलोकमें चले गये॥ ३४॥ 'मैं जम्बू-मार्गको जाऊँगा, मैं जम्बू-मार्गपर निवास करूँगा' इस तरह मनमें संकल्प करनेवाला मनुष्य भी रुद्रलोकमें प्रतिष्ठित होता है॥ ३५॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे विष्णुपर्वणि षट्पुरवधे द्व्यशीतितमोऽध्यायः॥ ८२॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत विष्णुपर्वमें षट्पुरवधविषयक बयासीवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ८२॥

त्र्यशीतितमोऽध्यायः

ब्रह्मदत्तके यज्ञमें वसुदेव-देवकीका आगमन, दैत्योंद्वारा ब्रह्मदत्तकी कन्याओंका अपहरण और प्रद्युम्नद्वारा उनकी रक्षा, नारदजीके कहनेसे दैत्योंका क्षत्रियनरेशोंको अपने पक्षमें मिलाना तथा श्रीकृष्णका षट्पुरमें आगमन

वैशम्पायन उवाच

एतस्मिन्नेव काले तु चतुर्वेदषडङ्गवित्।
ब्राह्मणो याज्ञवल्क्यस्य शिष्यो धर्मगुणान्वितः॥ १
ब्रह्मदत्तेति विख्यातो विप्रो वाजसनेयिवान्।
अश्वमेधः कृतस्तेन वसुदेवस्य धीमतः॥ २
स संवत्सरदीक्षायां दीक्षितः षट्पुरालयः।
आवर्तायाः शुभे तीरे सुनद्या मुनिजुष्टया॥ ३
सखा च वसुदेवस्य सहाध्यायी द्विजोत्तमः।
उपाध्यायश्च कौरव्य क्षीरहोता महात्मनः॥ ४

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! इसी समय चारों वेदों और छहों अङ्गोंके ज्ञाता एक ब्राह्मण, जिनका नाम ब्रह्मदत्त था, एक वर्षतक चालू रहनेवाले यज्ञकी दीक्षामें दीक्षित हुए। ब्रह्मदत्त याज्ञवल्क्यके शिष्य, धर्मसम्बन्धी गुणोंसे सम्पन्न तथा शुक्ल यजुर्वेद—वाजसनेय संहिताके अध्येता थे। उनका घर भी षट्पुरमें ही था। उन्होंने कभी बुद्धिमान् वसुदेवजीका अश्वमेध यज्ञ कराया था। वे मुनिसेवित श्रेष्ठ नदी आवर्ताके पवित्र तटपर यज्ञ करते थे॥ १—३॥ कुरुनन्दन! द्विजश्रेष्ठ ब्रह्मदत्त महात्मा वसुदेवजीके सहपाठी, सखा, उपाध्याय और अध्वर्यु भी थे॥ ४॥

१. उदुम्बर (गूलर)-वृक्षका आश्रय लेकर रहनेवाले मुनिकी औदुम्बर संज्ञा है। २. वटवृक्षकी जड़में निवास करनेवालोंको वाटमूल कहा गया है। ३. कपित्थवृक्षका आश्रय लेनेवाले कापित्थिक कहलाते हैं। ४. सृगाल नामक वृक्षकी वाटिकामें वास करनेवालेको सृगालवाटीय कहा गया है।

वसुदेवस्तत्र यातो देवक्या सहितः प्रभो।
यजमानं षट्पुरस्थं यथा शक्रो बृहस्पतिम्॥ ५

तत् सत्रं ब्रह्मदत्तस्य बह्वन्नं बहुदक्षिणम्।
उपासन्ति मुनिश्रेष्ठा महात्मानो दृढव्रताः॥ ६

व्यासोऽहं याज्ञवल्क्यश्च सुमन्तुर्जैमिनिस्तथा।
धृतिमाञ्जाबलिश्चैव देवलाद्याश्च भारत॥ ७

ऋद्ध्यानुरूपया युक्तं वसुदेवस्य धीमतः।
यत्रेप्सितान् ददौ कामान् देवकी धर्मचारिणी॥ ८

वासुदेवप्रभावेण जगत्स्रष्टुर्महीतले।
तस्मिन् सत्रे वर्तमाने दैत्याः षट्पुरवासिनः॥ ९

निकुम्भाद्याः समागम्य तमूचुर्वरदर्पिताः।
कार्यतां यज्ञभागो नः सोमं पास्यामहे वयम्।
कन्याश्च ब्रह्मदत्तो नो यजमानः प्रयच्छतु॥ १०

बह्व्यः सन्त्यस्य कन्याश्च रूपवत्यो महात्मनः।
आहूय ताः प्रदातव्याः सर्वथैव हि नः श्रुतम्॥ ११

रत्नानि च ब्रह्मदत्तो विशिष्टानि ददातु नः।
अन्यथा तु न यष्टव्यं वयमाज्ञापयामहे॥ १२

एतच्छ्रुत्वा ब्रह्मदत्तस्तानुवाच महासुरान्।
यज्ञभागो न विहितः पुराणेऽसुरसत्तमाः॥ १३

कथं सत्रे सोमपानं शक्यं दातुं मया हि वः।
पृच्छतेह मुनिश्रेष्ठान् वेदभाष्यार्थकोविदान्॥ १४

कन्या हि मम या देयास्ताश्च संकल्पिता मया।
अन्तर्वेद्यां प्रदातव्याः सदृशानामसंशयम्॥ १५

रत्नानि तु प्रयच्छामि सान्त्वेनाहं विचिन्त्यताम्।
बलान्नैव प्रदास्यामि देवकीपुत्रमाश्रितः॥ १६

प्रभो! इसीलिये जैसे इन्द्र बृहस्पतिके यहाँ जाते हैं, उसी प्रकार देवकीसहित वसुदेवजी वहाँ षट्पुरमें रहकर यज्ञ करनेवाले ब्रह्मदत्तके यहाँ निमन्त्रित होकर गये थे॥ ५॥ ब्रह्मदत्तका वह यज्ञ बहुत-से अन्न और प्रचुर दक्षिणासे सम्पन्न था। दृढ़तापूर्वक उत्तम व्रतका पालन करनेवाले मुनिश्रेष्ठ महात्मा उस यज्ञका सेवन करते थे॥ ६॥ भरतनन्दन! वह यज्ञ बुद्धिमान् वसुदेवजीके अनुरूप समृद्धिसे युक्त था। उसमें मैं, मेरे गुरु व्यासजी, याज्ञवल्क्य मुनि, सुमन्तु, जैमिनि, धैर्यशील जाबलि (या जाबालि) तथा देवल आदि महर्षि भी उपस्थित थे। उस यज्ञमें धर्मपरायणा देवकी देवी जगत्स्रष्टा भगवान् वासुदेवके प्रभावसे इस पृथ्वीपर सबको मनोवाञ्छित पदार्थ दान करती थीं। जब वह यज्ञ चलने लगा, उस समय षट्पुरमें रहनेवाले निकुम्भ आदि दैत्य, जो वर पाकर घमंडमें भरे रहते थे, वहाँ आकर ब्रह्मदत्तसे बोले—। 'हमारे लिये भी यज्ञका भाग निकाला जाय, हमलोग इस यज्ञमें सोमरसका पान करेंगे। यजमान ब्रह्मदत्त हमें अपनी कन्याएँ दें॥ ७—१०॥ हमने सुना है कि इन महात्माके बहुत-सी रूपवती कन्याएँ हैं। उन सबको बुलाकर सब प्रकारसे हमारे लिये दान कर देना चाहिये। ब्रह्मदत्तजी हमें उत्तमोत्तम रत्न प्रदान करें। (तभी ये यहाँ यज्ञ कर सकते हैं) अन्यथा इन्हें यज्ञ नहीं करना चाहिये। यह हम आज्ञा देते हैं'॥ ११-१२॥ यह सुनकर ब्रह्मदत्तने उन बड़े-बड़े असुरोंसे कहा—'असुरशिरोमणियो! पुरातन वेदमें असुरोंके लिये यज्ञभाग देनेका विधान नहीं है; फिर मैं यज्ञमें आपलोगोंको सोमरस कैसे दे सकता हूँ? यहाँ वेदके विस्तृत अर्थको जाननेवाले श्रेष्ठ मुनि बैठे हैं, इनसे पूछ लीजिये॥ १३-१४॥ मुझे अपनी जिन कन्याओंका दान करना था, उनका मानसिक संकल्प मैंने कर दिया (वे दूसरोंको दी जा चुकी हैं), अब उन्हें अन्तर्वेदीमें योग्य वरोंके हाथमें सौंप देना है। इसमें संशय नहीं है॥ १५॥ अब रही रत्नोंकी बात, उन्हें मैं आपलोगोंको तभी दूँगा, जब आप सान्त्वनापूर्वक बात करें, इस बातको आप अच्छी तरह सोच-समझ लें। बलपूर्वक माँगनेपर मैं कुछ नहीं दूँगा; क्योंकि भगवान् देवकीनन्दनकी शरण ले चुका हूँ (वे ही मेरी रक्षा करेंगे)'॥ १६॥

निकुम्भाद्यास्तु रुषिताः पापाः षट्पुरवासिनः।
यज्ञवाटं विलुलुठुर्जह्रुः कन्याश्च तास्तथा॥ १७

तद् दृष्ट्वा सम्प्रवृत्तं तु दध्यावानकदुन्दुभिः।
वासुदेवं महात्मानं बलभद्रं गदं तथा॥ १८

विदितार्थस्ततः कृष्णः प्रद्युम्नमिदमब्रवीत्।
गच्छ कन्यापरित्राणं कुरु पुत्राशु मायया॥ १९

तावद् यादवसैन्येन षट्पुरं याम्यहं प्रभो।
स ययौ षट्पुरं वीरः पितुराज्ञाकरस्तदा॥ २०

निमेषान्तरमात्रेण गत्वा कामो महाबलः।
कन्यास्ता मायया धीमानपजह्रे महाबलः॥ २१

मायामयीश्च कृत्वाऽन्या न्यस्तवान् रुक्मिणीसुतः।
मा भैरिति च धर्मात्मा देवकीमुक्तवांस्तदा॥ २२

मायामयीस्ततो हृत्वा सुता ह्यस्य दुरासदाः।
षट्पुरं विविशुर्दैत्याः परितुष्टा नराधिप॥ २३

कर्म चासार्यते तत्र विधिदृष्टेन कर्मणा।
यद् विशिष्टं बहुगुणं तदभूच्च नराधिप ॥ २४

एतस्मिन्नन्तरे प्राप्ता राजानस्तत्र भारत।
सत्रे निमन्त्रिताः पूर्वं ब्रह्मदत्तेन धीमता॥ २५

जरासंधो दन्तवक्त्रः शिशुपालस्तथैव च।
पाण्डवा धार्तराष्ट्राश्च मालवाः सगणास्तथा॥ २६

रुक्मी चैवाहृवृतिश्चैव नीलो वा धर्म एव च।
विन्दानुविन्दावावन्त्यौ शल्यः शकुनिरेव च॥ २७

राजानश्चापरे वीरा महात्मानो दृढायुधाः।
आवासिता नातिदूरे षट्पुरस्य च भारत॥ २८

तान् दृष्ट्वा नारदः श्रीमानचिन्तयदनिन्दितः।
क्षत्रस्य यादवानां च भविष्यति समागमः॥ २९

अत्र हेतुरहं युद्धे तस्मात् तत् प्रयताम्यहम्।
एवं संचिन्तयित्वाथ निकुम्भभवनं गतः॥ ३०

पूजितः स निकुम्भेन दानवैश्च तथापरैः।
उपविष्टः स धर्मात्मा निकुम्भमिदमब्रवीत्॥ ३१

यह उत्तर सुनकर षट्पुरमें निवास करनेवाले निकुम्भ आदि पापी असुर रोषमें भर गये। उन्होंने यज्ञमण्डपको तहस-नहस कर दिया और ब्रह्मदत्तकी कन्यायोंको हर लिया॥ १७॥ यज्ञमण्डपमें वह लूट मची हुई देख वसुदेवने महात्मा श्रीकृष्ण, बलदेव और गदका चिन्तन किया॥ १८॥ श्रीकृष्णको तो सब बात ज्ञात ही थी। उन्होंने प्रद्युम्नसे कहा—'बेटा! जाओ और मायाद्वारा ब्रह्मदत्तकी कन्याओंकी शीघ्र रक्षा करो। प्रभो! तबतक मैं यादव वीरोंकी सेनाके साथ षट्पुरको चल रहा हूँ'। महाबली कामस्वरूप वीर प्रद्युम्न पिताकी आज्ञाका पालन करनेवाले थे। वे तत्काल षट्पुरकी ओर चल दिये और पलक मारते-मारते वहाँ पहुँचकर उन महाबली बुद्धिमान् वीरने उन कन्याओंका मायाद्वारा अपहरण कर लिया॥ १९—२१॥ रुक्मिणीनन्दन प्रद्युम्नने मायामयी दूसरी कन्याओंका निर्माण करके उन्हें असुरोंके पास छोड़ दिया था। फिर उन धर्मात्माने अपनी पितामही देवकीसे कहा—'दादीजी! आप भय न करें'॥ २२॥ नरेश्वर! ब्रह्मदत्तकी पुत्रियाँ दैत्योंके लिये दुष्प्राप्य थीं। वे मायामयी कन्याओंका ही अपहरण करके षट्पुरमें जा घुसे और अपनी सफलतापर संतुष्ट हुए॥२३॥ राजन्! इधर शास्त्रीय विधिके अनुसार वहाँ यज्ञकर्मका सम्पादन होने लगा। जो विशिष्ट एवं बहुगुण सम्पन्न कार्य था, वह सब सम्पन्न हुआ॥ २४॥ भारत! इसी बीचमें वहाँ बहुत-से राजा आये, जिन्हें बुद्धिमान् ब्रह्मदत्तने पहलेसे ही यज्ञमें पधारनेके लिये निमन्त्रण दे रखा था॥ २५॥ जरासंध, दन्तवक्त्र, शिशुपाल, पाण्डव, धृतराष्ट्रके सभी पुत्र, अपने गणोंसहित मालवनरेश, रुक्मी, आहृवृति, नील, धर्म, अवन्तीके विन्द और अनुविन्द, शल्य, शकुनि, दूसरे वीर नरेश, सुदृढ़ आयुध धारण करनेवाले दूसरे महामनस्वी वीर नरेश वहाँ पधारे थे। भरतनन्दन! उन्हें षट्पुरसे थोड़ी ही दूरपर ठहराया गया॥ २६—२८॥ उन सबको वहाँ उपस्थित देख साधु-महात्मा श्रीमान् नारदजीने सोचा, यहाँ यादवों तथा दूसरे क्षत्रियोंमें संघर्ष होगा॥ २९॥ इस युद्धमें मैं ही कारण बनूँगा; अतः उसके लिये अभीसे प्रयत्न आरम्भ करता हूँ। ऐसा सोचकर वे निकुम्भके घरमें गये॥ ३०॥ निकुम्भ तथा दूसरे-दूसरे दानवोंने वहाँ इनकी बड़ी आवभगत की। धर्मात्मा नारदजी वहाँ एक आसनपर बैठकर निकुम्भसे इस प्रकार बोले—॥ ३१॥

कथं विरोधं यदुभिः कृत्वा स्वस्थैरिहास्यते।
यो ब्रह्मदत्तः स हरिः स हि तस्य पितुः सखा॥ ३२

शतानि पञ्च भार्याणां ब्रह्मदत्तस्य धीमतः।
आनीता वसुदेवस्य सुतस्य प्रियकाम्यया॥ ३३

शतद्वयं ब्राह्मणीनां राजन्यानां शतं तथा।
वैश्यानां शतमेकं च शूद्राणां शतमेव च॥ ३४

ताभिः शुश्रूषितो धीमान् दुर्वासा धर्मवित्तमः।
तेन तासां वरो दत्तो मुनिना पुण्यकर्मणा॥ ३५

एकैकस्तनयो राजन्नेकैका दुहिता तथा।
रूपेणानुपमाः सर्वा वरदानेन धीमतः॥ ३६

कन्या भवन्ति तनयास्तस्यासुर पुनः पुनः।
सङ्गमे सङ्गमे वीर भर्तृभिः शयने सह॥ ३७

सर्वपुष्पमयं गन्धं प्रस्रवन्ति वराङ्गनाः।
सर्वदा यौवने न्यस्ताः सर्वाश्चैव पतिव्रताः॥ ३८

सर्वा गुणैरप्सरसां गीतनृत्यगुणोदयम्।
जानन्ति सर्वा दैतेय वरदानेन धीमतः॥ ३९

पुत्राश्च रूपसम्पन्नाः शास्त्रार्थकुशलास्तथा।
स्वे स्वे स्थिता वर्णधर्मे यथावदनुपूर्वशः॥ ४०

ताः कन्या भैममुख्यानां दत्ताः प्रायेण धीमता।
अवशेषं शतं त्वेकं यदानीतं किल त्वया॥ ४१

तदर्थे यादवान् वीर योधयिष्यसि सर्वथा।
सहायार्थं तु राजानो ध्रियन्तां हेतुपूर्वकम्॥ ४२

ब्रह्मदत्तसुतार्थं च रत्नानि विविधानि च।
दीयन्तां भूमिपालानां सहायार्थं महात्मनाम्॥ ४३

आतिथ्यं क्रियतां चैव ये समेष्यन्ति वै नृपाः।
एवमुक्ते तथा चक्रुरसुरास्तेऽतिहृष्टवत्॥ ४४

लब्ध्वा पञ्चशतं कन्या रत्नानि विविधानि च।
यथार्हेण नरेन्द्रैस्ता विभक्ता भक्तवत्सलैः॥ ४५

तुमलोग यादवोंके साथ विरोध करके यहाँ कैसे निश्चिन्त बैठे हुए हो। अरे भाई! जो ब्रह्मदत्त हैं, वे ही श्रीकृष्ण हैं; क्योंकि वे ब्रह्मदत्त उन श्रीकृष्णके पिता वसुदेवके मित्र हैं॥ ३२॥ बुद्धिमान् ब्रह्मदत्तके पाँच सौ भार्याएँ हैं, जिन्हें वे वसुदेवनन्दन श्रीकृष्णकी प्रसन्नताके लिये उनकी आराधना करके प्राप्त कर सके थे॥ ३३॥ उनकी स्त्रियोंमें दो सौ तो ब्राह्मणियाँ थीं, एक सौ क्षत्रिय-कन्याएँ, एक सौ वैश्य-कन्याएँ और एक सौ शूद्रोंकी कन्याएँ थीं॥ ३४॥ उन सबने धर्मज्ञोंमें श्रेष्ठ बुद्धिमान् दुर्वासाकी सेवा की थी। उससे प्रसन्न होकर उन पुण्यकर्मा मुनिने उन्हें वर दिया॥ ३५॥ राजन्! उन बुद्धिमान् मुनिके वरदानसे ब्रह्मदत्तकी प्रत्येक स्त्रीके एक-एक पुत्र और एक-एक कन्या हुई। उनकी वे सारी कन्याएँ अनुपम रूपवती हैं॥ ३६॥ वीर असुर! उनकी वे कन्याएँ पतियोंके साथ शयन करते समय प्रत्येक संगमके अवसरपर कुमारी कन्याओंके समान कमनीय हो जाती हैं॥ ३७॥ वे परम सुन्दरी कन्याएँ अपने शरीरसे सब प्रकारके फूलोंकी सुगन्ध प्रकट करती हैं, सदा युवावस्थामें ही स्थित रहती हैं और सब-की-सब पतिव्रताएँ हैं॥ ३८॥ दैत्यकुमार! वे सब अप्सराओंके समान गुणवती हैं और बुद्धिमान् दुर्वासाके वरदानसे संगीत और नृत्यके गुणोंको प्रकट करना जानती हैं॥ ३९॥ उनके सभी पुत्र रूप-सौन्दर्यसे सम्पन्न तथा शास्त्रार्थमें कुशल हैं और क्रमशः सभी यथावत्‌रूपसे अपने-अपने वर्णधर्ममें स्थित रहते हैं॥ ४०॥ बुद्धिमान् ब्रह्मदत्तने प्रायः उन सब कन्याओंका विवाह मुख्य-मुख्य यदुवंशियोंके साथ कर दिया है। केवल एक सौ शेष रह गयी थीं, जिन्हें तुम हर लाये हो॥ ४१॥ वीर! उनके लिये भी तुम्हें सर्वथा यादवोंके साथ युद्ध करना होगा। अतः तुम अपनी सहायताके लिये युक्तिपूर्वक यहाँ आये हुए राजाओंको अपने पक्षमें कर लो॥ ४२॥ ब्रह्मदत्तकी पुत्रियोंके लिये उन महामनस्वी नरेशोंकी सहायता प्राप्त करनेके उद्देश्यसे तुम उन्हें नाना प्रकारके रत्न भेंट करो। जो राजा यहाँ आयें, उन सबका आतिथ्य-सत्कार करो'। नारदजीके ऐसा कहनेपर असुरोंने अत्यन्त प्रसन्न होकर वैसा ही किया। उन भक्तवत्सल नरेशोंने पाँच सौ कन्याएँ और नाना प्रकारके रत्न पाकर उन्हें यथोचित रीतिसे आपसमें बाँट लिया॥ ४३—४५॥

ऋते पाण्डुसुतान् वीरान् वारिता नारदेन ते।
निमेषान्तरमात्रेण तत्र गत्वा महात्मना॥ ४६

तुष्टैस्तैरसुरा ह्युक्ता राजन् भूमिपसत्तमैः।
सर्वकामसमृद्धार्थैर्भवद्भिः खगमैः स्वयम्॥ ४७

अर्चिताः स्म यथान्यायं क्षत्रं किं वः प्रयच्छतु।
क्षत्रं चार्चितपूर्वं हि दिव्यैर्वीरैर्भवद्विधैः॥ ४८

निकुम्भोऽथाब्रवीद् धृष्टः क्षत्रं सुररिपुस्तदा।
अनुवर्णयित्वा क्षत्रस्य माहात्म्यं सत्यमेव च॥ ४९

युद्धं नो रिपुभिः सार्द्धं भविष्यति नृपोत्तमाः।
साहाय्यं दातुमिच्छामो भवद्भिस्तत्र सर्वथा॥ ५०

एवमस्त्विति तानूचुः क्षत्रियाः क्षीणकिल्बिषाः।
पाण्डवेयानृते वीराञ्छ्रुतार्थान्नारदाद् विभो॥ ५१

क्षत्रियाः संनिविष्टास्ते युद्धार्थं कुरुनन्दन।
पत्न्यस्तु ब्रह्मदत्तस्य यज्ञवाटं गता अपि॥ ५२

कृष्णोऽपि सेनया सार्द्धं प्रययौ षट् पुरं विभुः।
महादेवस्य वचनमुद्वहन् मनसा नृप॥ ५३

स्थापयित्वा द्वारवत्यामाहुकं पार्थिवं तदा।
स तया सेनया सार्द्धं पौराणां हितकाम्यया॥ ५४

यज्ञवाटस्याविदूरे देवो निविविशे विभुः।
देशे प्रवरकल्याणे वसुदेवप्रचोदितः॥ ५५

दत्तगुल्माप्रतिसरं कृत्वा तं विधिवत् प्रभुः।
प्रद्युम्नमटने श्रीमान् रक्षार्थं विनियुज्य च॥ ५६

केवल पाँचों पाण्डवोंको छोड़कर और सबने कन्याओं और रत्नोंका भाग ग्रहण किया था। महात्मा नारदजीने पलक मारते-मारते वहाँ पहुँचकर वीर पाण्डवोंको उनका भाग लेनेसे रोक लिया था॥ ४६॥ राजन्! रत्न और कन्या पाकर वे भूपालशिरोमणि बहुत संतुष्ट हुए। उन्होंने असुरोंसे कहा—'आपलोग समस्त मनोवाञ्छित भोगोंसे सम्पन्न तथा स्वयं आकाशमें विचरनेवाले हैं तो भी आपने न्यायोचित रीतिसे हमारा सत्कार किया है; अतः बताइये, यह क्षत्रियसमूह आपलोगोंको क्या दे? आप-जैसे दिव्य वीरोंने पहले-पहल क्षत्रिय-समाजका पूजन किया है'॥ ४७-४८॥ यह सुनकर हर्षमें भरे हुए देववैरी निकुम्भने क्षत्रियोंके यथार्थ माहात्म्यका बारम्बार वर्णन करके उस समय उनसे इस प्रकार कहा—॥ ४९॥ 'श्रेष्ठ नरेशो! हमारा अपने शत्रुओंके साथ युद्ध होनेवाला है। उसमें आपलोग सब प्रकारसे हमें सहायता प्रदान करें, यह हमारी इच्छा है'॥ ५०॥ प्रभो! जिनके पाप क्षीण हो गये थे, उन क्षत्रियोंमेंसे वीर पाण्डवोंको छोड़कर अन्य सबने 'एवमस्तु' कहकर उनकी प्रार्थना स्वीकार कर ली। पाण्डव नारदजीसे सारी बात सुन चुके थे, इसलिये वे उनसे अलग रहे॥ ५१॥ कुरुनन्दन! वे सब क्षत्रिय युद्धके लिये उद्यत हो वहीं डेरा डालकर डटे रहे। इधर ब्रह्मदत्तकी पत्नियाँ यज्ञशालामें प्रविष्ट हुईं और उधरसे सेनासहित भगवान् श्रीकृष्ण भी षट्पुरमें आ पहुँचे। नरेश्वर! महादेवजीके वचनको मन-ही-मन स्मरण करके द्वारकामें राजा उग्रसेनको बिठाकर भगवान् श्रीकृष्ण वहाँ आये थे। भगवान् जनार्दनदेव उस सेनाके साथ आकर षट्पुरवासियोंके हितकी कामनासे यज्ञमण्डपसे थोड़ी ही दूरपर उत्तम कल्याणमय प्रदेशमें वसुदेवकी आज्ञासे छावनी डालकर ठहर गये॥ ५२—५५॥ श्रीमान् भगवान् श्रीकृष्णने वहाँ विधिपूर्वक रक्षक सैनिकोंके दल तैनात कर दिये, जिसके कारण किसी अवाञ्छनीय व्यक्तिको उधरसे आनेके लिये मार्ग नहीं मिल पाता था। साथ ही उन्होंने अपने पुत्र प्रद्युम्नको सब ओरसे घूम-फिरकर सेनाकी देखभाल करनेके लिये नियुक्त कर दिया था॥ ५६॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे विष्णुपर्वणि षट्पुरवधे कृष्णस्य षट्पुरगमने त्र्यशीतितमोऽध्यायः॥ ८३॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत विष्णुपर्वमें षट्पुरवधके प्रसंगमें श्रीकृष्णका षट्पुरगमनविषयक तिरासीवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ८३॥

चतुरशीतितमोऽध्यायः

श्रीकृष्णद्वारा यादव-सेनाकी युद्धके लिये नियुक्ति, दानवोंका निष्क्रमण, निकुम्भद्वारा कुछ यादव वीरोंका गुफामें बंदी होना, श्रीकृष्णके द्वारा दानव-सैनिकोंका संहार, प्रद्युम्नद्वारा राजसैनिकोंका गुफामें अवरोध तथा ब्रह्मदत्तको सान्त्वना

वैशम्पायन उवाच

मुहूर्ताभ्युदिते सूर्ये जनचक्षुषि निर्मले।
बलः कृष्णः सात्यकिश्च तार्क्ष्यमारुरुहुस्तदा॥ १

बद्धगोधाङ्गुलित्राणा दंशिता युद्धकाङ्क्षिणः।
बिल्वोदकेश्वरं देवं नमस्कृत्य सुरोत्तमम्॥ २

आवर्तया जले स्नात्वा रुद्रेण वरदत्तया।
गङ्गायाः कुरुशार्दूल रुद्रवाक्येन पुण्यया॥ ३

प्रद्युम्नमग्रे सैन्यस्य वियति स्थाप्य मानदः।
रक्षार्थं यज्ञवाटस्य पाण्डवान् विनियुज्य च॥ ४

शेषां सेनां गुहाद्वारि भगवान् विनियुज्य च।
जयन्तमथ सस्मार प्रवरं च सतां गतिः॥ ५

तावापेततुरेवाथ स्वयं चापश्यतां तथा।
वियत्येव नियुक्तौ तौ प्रद्युम्न इव भारत॥ ६

ततः कृष्णस्य वचनादाहतो रणदुन्दुभिः।
जलजा मुरजाश्चैव वाद्यान्येवापराणि च॥ ७

मकरो रचितो व्यूहः साम्बेन च गदेन च।
सारणश्चोद्धवश्चैव भोजो वैतरणस्तथा॥ ८

अनाधृष्टिश्च धर्मात्मा पृथुर्विपृथुरेव च।
कृतवर्मा च दंष्ट्रश्च निचक्षुररिमर्दनः॥ ९

सनत्कुमारो धर्मात्मा चारुदेष्णश्च भारत।
अनिरुद्धसहायौ तौ पृष्ठानीकं ररक्षतुः॥ १०

शेषा यादवसेना तु व्यूहमध्ये व्यवस्थिता।
रथैरश्वैर्नरैर्नागैराकुला कुलवर्धन॥ ११

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! कुरुश्रेष्ठ! जब सूर्योदय हुए दो ही घड़ी बीती थी और लोगोंके नेत्र निर्मल हो गये थे, उस समय बलभद्र, श्रीकृष्ण और सात्यकि—ये तीनों गरुड़पर सवार हुए। उन सबने अपने हाथोंमें गोधाचर्मके बने हुए दस्ताने बाँध रखे थे और कवच धारण करके युद्धके लिये इच्छुक थे। उन्होंने सबसे पहले, जिसे रुद्रदेवने वर दिया था और जो उन्हींके वचनसे पुण्यमयी हो गयी थी, उस आवर्ता नामवाली गङ्गामें स्नान करके सुरश्रेष्ठ बिल्वोदकेश्वर-देवको नमस्कार किया था (इसके बाद वे युद्धकी व्यवस्थामें लगे थे।)॥ १—३॥ सबको मान देनेवाले, सत्पुरुषोंके आश्रयभूत श्रीकृष्णने सबसे आगे प्रद्युम्नको सेनाकी रक्षाके लिये उसके ऊपरी भाग आकाशमें स्थापित किया। यज्ञमण्डपकी रक्षाके लिये पाण्डवोंको नियुक्त किया तथा शेष सेनाको गुफाके द्वारपर नियुक्त करके भगवान् श्रीहरिने जयन्त और प्रवरको स्मरण किया॥ ४-५॥ भरतनन्दन! वे दोनों वहाँ आ पहुँचे और स्वयं ही आकर उन्होंने भगवान्का दर्शन किया। तत्पश्चात् भगवान् श्रीकृष्णने उन दोनोंको प्रद्युम्नकी भाँति आकाशमें ही (ऊपरकी ओरसे सेनाकी रक्षाके लिये) नियुक्त कर दिया॥ ६॥ तदनन्तर श्रीकृष्णके कहनेसे युद्धका डंका बजाया गया। शङ्ख, मुरज तथा अन्य बाजे भी बज उठे॥ ७॥ साम्ब और गदने यादव-सेनाका मकरव्यूह बनाया। सारण, उद्धव, भोज, वैतरण, धर्मात्मा अनाधृष्टि, पृथु, विपृथु, कृतवर्मा, दंष्ट्र तथा शत्रुमर्दन निचक्षु—ये सब उस व्यूहके अग्रभागमें खड़े थे॥ ८-९॥ धर्मात्मा सनत्कुमार और चारुदेष्ण—ये दोनों अनिरुद्धके साथ रहकर सेनाके पृष्ठभागकी रक्षा करने लगे। अपने कुलकी वृद्धि करनेवाले नरेश! रथों, घोड़ों, मनुष्यों और हाथियोंसे भरी हुई शेष यादवसेना व्यूहके मध्यभागमें खड़ी थी॥ १०-११॥

षट्पुरादपि निष्क्रान्ता दानवा युद्धदुर्मदाः।
आरुह्य मेघनादांश्च गर्दभानपि हस्तिनः॥ १२

मकराञ्छिशुमारांश्च द्रुतानपि च भारत।
महिषानपि खड्गांश्च उष्ट्रानपि च कच्छपान्॥ १३

एतैरेव रथैर्युक्ता विविधायुधपाणयः।
किरीटापीडमुकुटैरङ्गदैरपि मण्डिताः॥ १४

नानर्दमानैर्विविधैस्तूर्यैर्नेमिस्वनाकुलैः।
प्रध्मायमानैः शङ्खैश्च महाम्बुदसमस्वनैः॥ १५

तासामसुरसेनानामुद्यतानां जनेश्वर।
निकुम्भो निर्ययावग्रे देवानामिव वासवः॥ १६

भूमिं द्यां च ववृधिरे दानवास्ते बलोत्कटाः।
नदन्तो विविधान् नादान् क्ष्वेडन्तश्च पुनः पुनः॥ १७

राजसेनापि संयत्ता चेदिराजपुरोगमा।
असुराणां सहायार्थं निश्चिता जनमेजय॥ १८

दुर्योधनभ्रातृशतं चेदिराजानुजाग्रगम्।
स्थितं रथैर्नरव्याघ्र गन्धर्वनगरोपमैः॥ १९

कठिना नादिनो वीर द्रुपदस्यन्दनास्तथा।
रुक्मी चैवाह्वृतिश्चैव तस्थतुर्निश्चितौ रणे।
तालवृक्षप्रतीकाशे धुन्वानौ धनुषी शुभे॥ २०

शल्यश्च शकुनिश्चोभौ भगदत्तश्च पार्थिवः।
जरासंधस्त्रिगर्तश्च विराटश्च सहोत्तरः॥ २१

युद्धार्थमुद्यता वीरा निकुम्भाद्या जयैषिणः।
युयुत्समाना यदुभिर्देवैरिव महासुराः॥ २२

ततो निकुम्भः समरे शरैराशीविषोपमैः।
ममर्द समरे सेनां भैमानां भीमदर्शनाम्॥ २३

सेनापतिरनाधृष्टिर्नमृषे तत्र यादवः।
ममर्द घोरैर्बाणौघैश्चित्रपुङ्खैः शिलाशितैः॥ २४

तदनन्तर षट्पुरसे भी रणदुर्मद दानव निकले। उनमेंसे कुछ मेघके समान गम्भीर शब्द करनेवाले गदहों और हाथियोंपर आरूढ़ थे॥ १२॥ भरतनन्दन! कितने ही दैत्य वेगशाली मगरों, शिशुमारों (सूँसों), भैंसों, गेंड़ों, ऊँटों और कछुओंपर भी सवार थे॥ १३॥ कितनोंके पास इन्हीं वाहनोंसे जुते हुए रथ थे। उन रथोंसे सम्पन्न हुए वे दैत्य अपने हाथोंमें नाना प्रकारके आयुध लिये हुए थे। वे किरीट, मुकुट या पगड़ी तथा अङ्गदों (भुजबंदों)-से अलंकृत थे॥ १४॥ उनके साथ बारम्बार नाना प्रकारके बाजे बज रहे थे। उन बाजोंकी आवाजमें रथके नेमियों (पहियों)-की घर्घराहट भी मिली हुई थी। वहाँ जोर-जोरसे शङ्ख बजाये जाते थे, जो महान् मेघोंकी गर्जनाके समान गम्भीर ध्वनि प्रकट करते थे॥ १५॥ जनेश्वर! युद्धके लिये उद्यत हुई उन असुर-सेनाओंमें सबसे आगे निकुम्भ निकला, मानो देवताओंके आगे इन्द्र चल रहे हों॥ १६॥ वे उत्कट बलशाली दानव नाना प्रकारसे सिंहनाद करते, बारम्बार गर्जते तथा आकाश और पृथ्वीको गुँजाते हुए बढ़ने लगे॥ १७॥ जनमेजय! राजाओंकी सेना भी असुरोंकी सहायताके लिये निश्चय करके चेदिराज शिशुपालके नेतृत्वमें युद्धके लिये तैयार हो गयी॥ १८॥ पुरुषसिंह! दुर्योधन आदि सौ भाई चेदिराज शिशुपालके छोटे भाइयोंसे आगे चल रहे थे। ये सब-के-सब गन्धर्वनगराकार रथोंद्वारा युद्धके लिये खड़े थे॥ १९॥ वीर! राजा द्रुपदके रथ बड़े कठोर (दु:सह) घरघराहटका शब्द करते थे। रुक्मी और आह्वृति—ये दोनों युद्धके लिये निश्चय करके वहाँ डट गये। वे ताड़-वृक्षके समान अपने सुन्दर धनुष हिलाने लगे॥ २०॥ शल्य, शकुनि, राजा भगदत्त, जरासंध, त्रिगर्तराज सुशर्मा और उत्तरसहित राजा विराट—ये वीर नरेश विजयकी अभिलाषा रखकर निकुम्भकी प्रधानतामें युद्धके लिये उद्यत हुए थे। जैसे महान् असुर देवताओंके साथ जूझना चाहते हैं, उसी प्रकार ये सब नरेश यादवोंके साथ युद्ध करनेकी इच्छा रखते थे॥ २१-२२॥ तब निकुम्भ समराङ्गणमें विषधर सर्पोंके समान भयंकर बाणोंद्वारा भैमों (यादवों)-की भयानक दिखायी देनेवाली सेनाका मर्दन करना आरम्भ किया॥ २३॥ यादव-सेनापति अनाधृष्टि निकुम्भके इस पराक्रमको नहीं सहन कर सके। उन्होंने शिला या शानपर तेज किये हुए विचित्र पंखवाले घोर बाणसमूहोंद्वारा उस असुरको कुचल डाला॥ २४॥

न रथोऽसुरमुख्यस्य ददृशे न च वाजिनः।
न ध्वजो न निकुम्भस्तु सर्वे बाणाभिसंवृताः॥ २५
स परीत्य ततो वीरो निकुम्भो मायिनां वरः।
अस्तम्भयदनाधृष्टिं मायया भैमसत्तमम्॥ २६
स्तम्भयित्वानयद् वीरं गुहां षट्पुरसंज्ञिताम्।
रुद्ध्वा चाभ्यगमद् वीरो मायाबलमुपाश्रितः॥ २७
पुनरेव निकुम्भस्तु कृतवर्माणमाहवे।
अनयच्चारुदेष्णं च भोजं वैतरणं तथा॥ २८
सनत्कुमारमृक्षं च तथैव निशठोल्मुकौ।
बहूंश्चैवापरान् भोजान् मायाबलसमाश्रितः॥ २९
न तस्य ददृशे देहो मायाच्छन्नो जनेश्वर।
नयतो यादवान् घोरान् गुहां षट्पुरसंज्ञिताम्॥ ३०
तद् दृष्ट्वा कदनं घोरं भैमानां भयवर्धनः।
चुकोप भगवान् कृष्णो बलः सत्यक एव च॥ ३१
सविशेषं तथा कामः साम्बश्च परवीरहा।
अनिरुद्धश्च दुर्धर्षो भैमाश्च बहवोऽपरे॥ ३२
ततः शार्ङ्गायुधः शार्ङ्गं कृत्वा सज्यं नरेश्वर।
दानवेषु प्रवृत्तेषु तृणेष्विव हुताशनः॥ ३३
तं दृष्ट्वा दानवा देवमभिदुद्रुवुरीश्वरम्।
शलभाः कालपाशार्ताः प्रदीप्तमिव पावकम्॥ ३४
समुत्सृज्य शतघ्नीश्च परिघांश्च सहस्रशः।
शूलानि चाग्नितुल्यानि प्रदीप्तांश्च परश्वधान्॥ ३५
पर्वताग्राणि वृक्षांश्च घोराश्च विपुलाः शिलाः।
उत्क्षिप्य च गजान् मत्तान् रथानपि हयानपि॥ ३६
नारायणाग्निस्तान् सर्वान् ददाह प्रहसन्निव।
बाणार्चिषा महातेजा जगद्धितकरो हरिः॥ ३७
शारदं वर्षणं यद्वत् सेहे धीरो गवां पतिः।
तद्वद् यदुवृषः सेहे बाणवर्षमरिंदमः॥ ३८
न सेहिरेऽसुरा बाणान् नारायणधनुश्च्युतान्।
वर्षं पर्जन्यविहितं वालुकासेतवो यथा॥ ३९

उस असुर-सेनापतिका न तो रथ दिखायी देता था न घोड़े, न ध्वज और न स्वयं निकुम्भ ही। वे सब-के-सब बाणोंसे ढक गये थे॥ २५॥ तब मायावी असुरोंमें श्रेष्ठ वीर निकुम्भने सब ओर चक्कर लगाकर अपनी मायाद्वारा भैमशिरोमणि (यादवश्रेष्ठ) अनाधृष्टिको स्तम्भित कर दिया॥ २६॥ स्तम्भित करके वह वीर अनाधृष्टिको षट्पुर नामवाली गुफामें उठा ले गया और वहाँ बंद करके मायाबलका आश्रय लेनेवाला वीर निकुम्भ पुनः युद्धभूमिमें लौट आया॥ २७॥ अबकी बार युद्धस्थलमें पुनः मायाबलका आश्रय लेनेवाला निकुम्भ कृतवर्मा, चारुदेष्ण, भोज वैतरण, सनत्कुमार, जाम्बवतीपुत्र ऋक्ष, निशठ, उल्मुक तथा दूसरे-दूसरे बहुत-से भोजवंशियोंको उठा ले गया॥ २८-२९॥ जनेश्वर! घोर यादव वीरोंको षट्पुर नामवाली गुफामें ले जाते समय उस असुरकी देह दिखायी नहीं देती थी; क्योंकि वह उसकी मायासे आच्छादित थी॥ ३०॥ भीमवंशियोंका वह घोर संहार देखकर शत्रुओंका भय बढ़ानेवाले भगवान् श्रीकृष्ण, बलराम और सात्यकि कुपित हो उठे॥ ३१॥ कामावतार प्रद्युम्नको विशेष क्रोध हुआ। शत्रुवीरोंका संहार करनेवाले साम्ब, दुर्धर्ष वीर अनिरुद्ध तथा दूसरे बहुत-से भीमवंशी यादव भी रोषमें भर गये॥ ३२॥ नरेश्वर! शार्ङ्गधनुष धारण करनेवाले श्रीकृष्णने अपने उस धनुषपर प्रत्यञ्चा चढ़ा दी और जैसे अग्नि तिनकोंमें प्रवेश करती हो, उसी प्रकार वे दानवोंपर धनुषसे बाण बरसाने लगे॥ ३३॥ उन भगवान् गोविन्ददेवको वहाँ देखकर सब दानव उन्हींपर टूट पड़े; ठीक वैसे ही, जैसे कालपाशसे पीड़ित हुए पतिंगे जलती हुई आगमें कूद पड़ते हैं॥ ३४॥ वे सहस्रों शतघ्नी, परिघ, अग्नितुल्य त्रिशूल तथा प्रज्वलित हुए फरसे चलाने लगे॥ ३५॥ पर्वतोंके शिखर, वृक्ष, भयंकर बड़ी-बड़ी शिलाएँ, मतवाले हाथी, रथ और घोड़े—इन सबको उठा-उठाकर भगवान् श्रीकृष्णपर फेंकने लगे॥ ३६॥ परंतु जगत्का हित करनेवाले महातेजस्वी भगवान् नारायण हरिने हँसते हुए-से अग्निरूप होकर अपनी बाणमयी लपटोंसे उन सबको जलाकर भस्म कर दिया॥ ३७॥ जैसे धीर साँड़ शरद् ऋतुकी वर्षाको चुपचाप सहन करता है, उसी प्रकार शत्रुओंका दमन करनेवाले यदुश्रेष्ठ श्रीकृष्ण दैत्योंकी बाणवर्षाको धैर्य-पूर्वक सहन करते रहे॥ ३८॥ परंतु जैसे बालूके बने हुए सेतु (पुल) मेघोंद्वारा की गयी वर्षाका वेग नहीं सह सकते, उसी प्रकार वे असुर नारायण (श्रीकृष्ण)-के धनुषसे छूटे हुए बाणोंको नहीं सह सके॥ ३९॥

न शेकुः प्रमुखे स्थातुं कृष्णस्यासुरसत्तमाः।
व्यादितास्यस्य सिंहस्य वृषभा इव भारत॥ ४०
ते वध्यमानाः कृष्णेन दिवमाचक्रमुस्तदा।
जीविताशां वहन्तस्तु नारायणभयार्दिताः॥ ४१
तानाकाशगतानैन्द्रिर्जयन्तः प्रवरस्तथा।
निजघ्नतुः शरैर्घोरैर्ज्वलितार्चिसमैः प्रभो॥ ४२
निपेतुरसुराणां तु शिरांसि धरणीतले।
तृणराजफलानीव मुक्तानि शिखरात् तरोः॥ ४३
निपेतुर्बाहवश्छिन्ना दैत्यानां वसुधातले।
कालेनोपहता वीर पञ्चवक्त्रा इवोरगाः॥ ४४
रौक्मिणेयस्ततः सृष्ट्वा घोरां मायामयीं गुहाम्।
अदृश्यनिष्क्रमं वीरः क्षत्रं प्रक्षेसुमुद्यतः॥ ४५
गदेन सह धर्मात्मा सारणेन सुतेन च।
साम्बेन चापरैश्चापि पूर्वं ये न प्रवेशिताः॥ ४६
प्रमथ्य तरसा कर्णं यतन्तं रणमूर्धनि।
जग्राह बलवान् कार्ष्णिः प्रस्फुरन्तं ततस्ततः॥ ४७
विनद्य च गुहां वीरो घोरां मायामयीं नृप।
दुर्योधनं च राजानं विराटद्रुपदावपि॥ ४८
शकुनिं चैव शल्यं च नीलं चापि नदीसुतम्।
विन्दानुविन्दौ राजानौ जरासंधं च भारत॥ ४९
त्रिगर्तान् मालवांश्चैव वासन्त्यांश्च महाबलान्।
धृष्टद्युम्नादिकांश्चैव पञ्चालानस्त्रकोविदान्॥ ५०
तथाह्वृतिमुवाचेदं मातुलं रुक्मिमेव च।
शिशुपालं च राजानं भगदत्तं च भारत॥ ५१
सम्बन्धं च गुरुत्वं च मानयामि नराधिपाः।
गुहामिमां घोररूपां यत्र प्रक्षेपयामि वः॥ ५२
बिल्वोदकेश्वरेणाहमाज्ञप्तः शूलपाणिना।
प्रक्षेप्तव्या नरेन्द्रास्ते गुहायामिति धीमता॥ ५३
आश्रित्य शाम्बरीं मायां निकुम्भेन महात्मना।
प्रक्षिप्तान् यादवांश्चैव मोक्षयिष्यामि सर्वथा॥ ५४

भारत! जैसे मुँह बाये हुए सिंहके सामने बैल नहीं ठहर सकते, उसी प्रकार वे बड़े-बड़े असुर श्रीकृष्णके सम्मुख खड़े नहीं रह सके॥ ४०॥ नारायणके भयसे पीड़ित हो उनके द्वारा मारे जाते हुए वे असुर जीवनकी आशाका भार वहन करते हुए आकाशमें उड़ चले॥ ४१॥ प्रभो! आकाशमें गये हुए उन असुरोंको जयन्त और प्रवर प्रज्वलित अग्नि-शिखाके समान भयंकर बाणोंद्वारा मार गिराते थे॥ ४२॥ उन असुरोंके कटे हुए सिर वृक्ष-शिखरसे टूटकर गिरे हुए तालफलोंके समान पृथ्वीपर गिरने लगे॥ ४३॥ वीर! दैत्योंकी कटी हुई भुजाएँ पृथ्वीपर कालके मारे हुए पाँच मुखवाले सर्पोंके समान गिर रही थीं॥ ४४॥ तदनन्तर गद, सारण, अनिरुद्ध, साम्ब तथा अन्य वीरोंके साथ, जिन्हें निकुम्भने पहले अपनी गुफामें नहीं घुसाया था, वीर धर्मात्मा रुक्मिणीनन्दन प्रद्युम्न घोर मायामयी गुफाकी सृष्टि करके समस्त क्षत्रिय नरेशोंके समुदायको, जो उस गुफासे निकलनेके मार्गको नहीं देख पाता था, उसमें फेंक देनेके लिये उद्यत हो गये॥ ४५-४६॥ नरेश्वर! बलवान् वीर श्रीकृष्णकुमारने युद्धके मुहानेपर विजयके लिये प्रयत्न करते हुए कर्णको वेगपूर्वक पटककर उसके उछल-कूद मचाने या छटपटानेपर भी पकड़ लिया और गरजकर उसे घोर मायामयी गुफामें फेंकनेका विचार किया। भारत! इसी तरह उन्होंने राजा दुर्योधन, विराट, द्रुपद, शकुनि, शल्य, नील, भीष्म, राजा विन्द और अनुविन्द तथा जरासंधको, त्रिगर्त, मालव एवं महाबली वासन्त्यगणोंको और अस्त्रज्ञानमें निपुण धृष्टद्युम्न आदि पाञ्चाल वीरोंको भी पकड़ लिया। फिर अपने मामा आह्वृति और रुक्मीको एवं राजा शिशुपाल और भगदत्तको सम्बोधित करके कहा— ॥ ४७—५१॥ 'नरेश्वरो! हमारे साथ आपलोगोंका जो सम्बन्ध और गुरुत्व है, उसका मैं आदर करता हूँ तो भी आपलोगोंको इस भयंकर गुफामें जहाँ फेंक रहा हूँ, वहाँ फेंकनेके लिये बुद्धिमान् शूलपाणि भगवान् बिल्वोदकेश्वरने मुझे आज्ञा दी है। उन्होंने कहा है कि तुम सब राजाओंको गुफामें फेंक दो॥ ५२-५३॥ महामनस्वी निकुम्भने शाम्बरी मायाका आश्रय लेकर जिन यादवोंको गुफामें डाल रखा है, उन्हें मैं सर्वथा छुड़ा लूँगा'॥ ५४॥

इत्युक्तः शिशुपालस्तु राजा सेनापतिस्तथा।
शरैस्ततर्द तान् भैमान् प्रद्युम्नं च विशेषतः॥ ५५
बिल्वोदकेश्वरं देवं रौक्मिणेयो नमस्य च।
आरम्भन्नृपतिं बद्धुं शिशुपालं महाबलम्॥ ५६
ततः पाशसहस्राणि गृहाय प्रवरोत्तमः।
शैलादिरब्रवीद् वीरं रौक्मिणेयं महाबलम्॥ ५७
बिल्वोदकेश्वरो देवः प्राह त्वां यदुनन्दन।
सर्वं कुरु तथा रात्र्यां चोक्तस्त्वं भो यथा मया॥ ५८
कन्यार्थं रत्नलुब्धांस्तु बद्ध्वा चेमान् नराधिपान्।
पाशैस्त्वमेव मोक्तुं च प्रमाणं यदुनन्दन॥ ५९
असुरांस्तु महाबाहो निःशेषान् कर्तुमर्हसि।
एवमेव च वक्तव्यस्त्वया वीर जनार्दनः॥ ६०
ततः स भगदत्तं च शिशुपालं च भूमिप।
आह्वृतिं चैव रुक्मिं च शेषांश्चान्यान् नराधिपान्॥ ६१
बबन्ध हरदत्तैस्तैः पाशैरुत्तमवीर्यधृक्।
मायामयीं गुहां चैवमानयत् कुरुनन्दन॥ ६२
बद्ध्वा च रौक्मिणेयोऽथ निःश्वसन्त इवोरगान्।
अनिरुद्धं चकाराथ रक्षितारं स्वमात्मजम्॥ ६३
तेषां निरवशेषेण बबन्ध यदुनन्दनः।
सेनापतीन् क्षत्रियांश्च कोशाध्यक्षांश्च भारत॥ ६४
हस्त्यश्वरथवृन्दांश्च चकार च तथाऽऽत्मसात्।
अव्यग्रस्तु ततो हन्तुमसुरानुद्यतः प्रभो॥ ६५
संनद्ध एव चोवाच ब्रह्मदत्तं द्विजोत्तमम्।
विस्रब्धं वर्ततां कर्म मा भैः पश्य धनंजयम्॥ ६६
न देवेभ्यो नासुरेभ्यो नागेभ्यो द्विजसत्तम।
भयं हि विद्यते तस्य गोप्तारो यस्य पाण्डवाः॥ ६७
न चासुरैस्तव सुताः स्पृष्टाः खल्वपि चेतसा।
यज्ञवाटे निरीक्ष्यन्तां मायया निहिता मया॥ ६८

उनके ऐसा कहनेपर सेनापति राजा शिशुपालने अपने बाणोंद्वारा उन भैमों (यादवों) तथा विशेषतः प्रद्युम्नको पीड़ित कर दिया॥ ५५॥ तब रुक्मिणीनन्दन प्रद्युम्नने बिल्वोदकेश्वरको नमस्कार करके महाबली राजा शिशुपालको बाँधना आरम्भ किया॥ ५६॥ तत्पश्चात् रुद्रदेवके पार्षदोंमें श्रेष्ठ नन्दीने एक सहस्र पाश लेकर महाबली रुक्मिणीकुमार वीर प्रद्युम्नसे कहा— ॥ ५७॥ 'यदुनन्दन! बिल्वोदकेश्वरने तुम्हें यह संदेश दिया है कि मैंने जैसा तुमसे कहा है, उसके अनुसार तुम रातमें सब कार्य करो॥ ५८॥ यदुनन्दन! कन्याओं और रत्नोंपर लुभाये हुए इन राजाओंको पाशोंसे बाँधकर फिर इन्हें मुक्त करनेमें तुम्हीं प्रमाण हो—तुम्हीं चाहो तो इन्हें छोड़ सकते हो॥ ५९॥ वीर महाबाहो! तुम इन असुरोंको निःशेष कर डालो—इनमेंसे एकको भी जीवित न छोड़ो। तुम्हें जनार्दनसे भी ऐसा ही कहना चाहिये'॥ ६०॥ पृथ्वीपते! कुरुनन्दन! तदनन्तर उत्तम बल धारण करनेवाले प्रद्युम्नने भगवान् शङ्करके दिये हुए पाशोंसे राजा भगदत्त, शिशुपाल, आह्वृति, रुक्मी तथा शेष अन्य नरेशोंको भी बाँधा और उन सबको मायामयी गुफामें ले आये॥ ६१-६२॥ रुक्मिणीकुमारने फुफकारते हुए सर्पोंके समान लम्बी साँस खींचते हुए राजाओंको बाँधकर डाल दिया और अपने पुत्र अनिरुद्धको उनका रक्षक नियुक्त कर दिया॥ ६३॥ भारत! यदुनन्दन प्रद्युम्नने उनमेंसे किसीको भी बिना बाँधे नहीं छोड़ा। फिर उनके क्षत्रिय-सेनापतियों, कोषाध्यक्षों तथा हाथी, घोड़ों और रथके समूहोंको भी अपने अधीन कर लिया। प्रभो! तत्पश्चात् अव्यग्र (शान्त)-भावसे स्थित हो वे असुरोंको मार डालनेके लिये उद्यत हो गये और संनद्ध रहकर द्विजश्रेष्ठ ब्रह्मदत्तसे बोले—'ब्रह्मन्! आप निर्भय हो अपना यज्ञकर्म चालू रखें। देखिये, अर्जुन आपकी रक्षामें खड़े हैं॥ ६४—६६॥ द्विजश्रेष्ठ! पाण्डव जिसके रक्षक हों, उसे न तो देवताओंसे, न असुरोंसे और न नागोंसे ही भय ही प्राप्त हो सकता है॥ ६७॥ असुरोंने आपकी पुत्रियोंका मनसे भी स्पर्श नहीं किया है। आप यज्ञमण्डपमें देखिये, मैंने मायाद्वारा उन्हें छिपाकर वहीं रख छोड़ा है'॥ ६८॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे विष्णुपर्वणि षट्पुरवधे चतुरशीतितमोऽध्यायः॥ ८४॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत विष्णुपर्वमें षट्पुरवधविषयक चौरासीवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ८४॥

पञ्चाशीतितमोऽध्यायः

निकुम्भका जयन्तसे पराजित होकर भगवान् श्रीकृष्णके साथ युद्ध करना, श्रीकृष्णका अर्जुनको निकुम्भका चरित्र बताना, आकाशवाणीकी प्रेरणासे सुदर्शन चक्रद्वारा निकुम्भका वध करना और ब्रह्मदत्तको षट्पुरनगर देकर द्वारकाको प्रस्थान करना

वैशम्पायन उवाच

रुद्धेषु भूमिपालेषु सानुगेषु विशाम्पते।
आविवेशासुरांश्चाथ कश्मलं जनमेजय॥ १

दिशः प्रतस्थुस्ते वीरा वध्यमानाः समन्ततः।
कृष्णानन्तप्रभृतिभिर्यदुभिर्युद्धदुर्मदैः॥ २

निकुम्भस्तानथोवाच रुषितो दानवोत्तमः।
भित्त्वा प्रतिज्ञां किं मोहाद् भयार्ता यात विह्वलाः॥ ३

हीनप्रतिज्ञाः काँल्लोकान् प्रयास्यथ पलायिताः।
अगत्वापचितिं युद्धे ज्ञातीनां कृतनिश्चयाः॥ ४

फलं जित्वेह भोक्तव्यं रिपून् समरकर्कशान्।
हतेन चापि शूरेण वस्तव्यं त्रिदिवे सुखम्॥ ५

पलायित्वा गृहं गत्वा कस्य द्रक्ष्यथ हे मुखम्।
दारान् वक्ष्यथ किं चापि धिग् धिक् किं किं न लज्जथ॥ ६

एवमुक्ता निवृत्तास्ते लज्जमाना नृपासुराः।
द्विगुणेन च वेगेन युयुधुर्यदुभिः सह॥ ७

उत्सवे युद्धशौण्डानां नानाप्रहरणैर्नृप।
ये यान्ति यज्ञवाटं तं तान् निहन्ति धनंजयः॥ ८

यमौ भीमश्च राजा च धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः।
द्यां प्रयाताञ्जघानैन्द्रिः प्रवरश्च द्विजोत्तमः॥ ९

अथासुरासृक्तोयाढ्या केशशैवलशाद्वला।
चक्रकूर्मरथावर्ता गजशैलानुशोभिनी॥ १०

वैशम्पायनजी कहते हैं—प्रजानाथ! जनमेजय! जब अनुचरोंसहित सब भूपाल गुफामें बंद कर दिये गये, तब असुरोंपर मोह छा गया॥ १॥ श्रीकृष्ण, बलराम आदि रणदुर्मद यादवोंद्वारा सब ओरसे मारे जाते हुए वीर असुर सम्पूर्ण दिशाओंकी ओर पलायन करने लगे॥ २॥ यह देख दानवश्रेष्ठ निकुम्भ रोषमें भरकर उनसे बोला—'अरे! तुमलोग मोहवश अपनी प्रतिज्ञा तोड़कर भयसे पीड़ित और विह्वल होकर क्यों भागे जा रहे हो?॥ ३॥ प्रतिज्ञाहीन होकर भागे जानेवाले तथा पहले बदला लेनेका निश्चय करके भी युद्धमें अपने भाई-बन्धुओंका ऋण उतारे बिना पीठ दिखानेवाले तुमलोग किन लोकोंमें जाओगे?॥ ४॥ समराङ्गणमें निर्दयतापूर्वक जूझनेवाले शत्रुओंको जीतकर इस लोकमें उत्तम फल (राज्य आदि)-का उपभोग प्राप्त होगा अथवा रणमें मारे जानेपर शूरवीरको स्वर्गलोकमें सुखदायक निवास सुलभ होगा॥ ५॥ हे दैत्यो! भागकर घर जाकर किसका मुँह देखोगे (अथवा किसे मुँह दिखाओगे)? अपनी पत्नियोंसे क्या कहोगे? धिक्कार है, धिक्कार है। क्यों? क्यों तुम्हें लज्जा नहीं आती?'॥ ६॥ नरेश्वर! निकुम्भके ऐसा कहनेपर वे असुर लज्जित होकर लौट पड़े और दुगुने वेगसे यादवोंके साथ युद्ध करने लगे॥ ७॥ राजन्! नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्रोंद्वारा युद्धकुशल योद्धाओंके उस समरोत्सवमें जो दैत्य यज्ञमण्डपकी ओर जाते थे, उन्हें अर्जुन, भीम, नकुल, सहदेव तथा धर्मपुत्र राजा युधिष्ठिर मार डालते थे। जो लोग आकाशमें जाते थे, उन्हें इन्द्रकुमार जयन्त और द्विजश्रेष्ठ प्रवर कालके गालमें भेज देते थे॥ ८—९॥ फिर तो वहाँ वर्षामें बढ़ी हुई नदीके समान एक खूनकी नदी बह चली। असुरोंके रक्त ही उसके जल थे। उनके सिरके केश ही उसमें सेवार और घासके समान प्रतीत होते थे। रथके पहिये उसमें कछुए-जैसे लगते थे और रथ भवँरके समान प्रतीत होते थे। हाथियोंकी लाशें पर्वतोंकी चट्टानोंके समान उसकी शोभा बढ़ाती थीं॥ १०॥

ध्वजकुन्ततरुच्छन्ना स्तनितोत्क्रुष्टनादिनी।
गोविन्दशैलप्रभवा भीरुचित्तप्रमाथिनी॥ ११
असृग्बुद्बुदफेनाढ्या असिमत्स्यतरङ्गिणी।
सुस्राव शोणितनदी नदीव जलदागमे॥ १२
तान् दृष्ट्वैव निकुम्भस्तु वर्द्धमानांश्च शात्रवान्।
हतान् सर्वान् सहायांश्च वीर्यादेवात्पपात ह॥ १३
स वारितो जयन्तेन प्रवरेण च भारत।
शरैः कुलिशसंकाशैर्निकुम्भो रणकर्कशः॥ १४
संनिवृत्याथ दष्टोष्ठः परिघेण दुरासदः।
प्रवरं ताडयामास स पपात महीतले॥ १५
ऐन्द्रिस्तं पतितं भूमौ बाहुभ्यां परिषस्वजे।
विदित्वा चैव सप्राणं हित्वासुरमभिद्रुतः॥ १६
अभिद्रुत्य निकुम्भं च निस्त्रिंशेन जघान ह।
परिघेणापि दैतेयो जयन्तं समताडयत्॥ १७
ततश्च बहुलं गात्रं निकुम्भस्यैन्द्रिराहवे।
स चिन्तयामास तदा वध्यमानो महासुरः॥ १८
कृष्णेन सह योद्धव्यं वैरिणा ज्ञातिघातिना।
श्रावयामि किमात्मानमाहवे शक्रसूनुना॥ १९
एवं स निश्चयं कृत्वा तत्रैवान्तरधीयत।
जगाम चैव युद्धार्थं यत्र कृष्णो महाबलः॥ २०
तं दृष्ट्वैरावतस्कन्धमास्थितो बलनाशनः।
द्रष्टुमभ्यागतो युद्धं जहृषे सह दैवतैः॥ २१
साधु साध्विति पुत्रं च परितुष्टः स सस्वजे।
प्रवरं चापि धर्मात्मा सस्वजे मोहवर्जितम्॥ २२
देवदुन्दुभयश्चापि प्रणेदुर्वासवाज्ञया।
जयमानं रणे दृष्ट्वा जयन्तं रणदुर्जयम्॥ २३
ददर्शाथ निकुम्भस्तु केशवं रणदुर्जयम्।
अर्जुनेन स्थितं सार्धं यज्ञवाटाविदूरतः॥ २४
स नादं सुमहान् कृत्वा पक्षिराजमताडयत्।
परिघेण सुघोरेण बलं सत्यकमेव च॥ २५

ध्वज और भाले तटवर्ती वृक्षोंके समान उसे आच्छादित किये हुए थे। योद्धाओंका गरजना और चीखना ही उसका कलकल नाद था। वह नदी श्रीकृष्णरूपी पर्वतसे प्रकट हुई थी और भीरु पुरुषोंके हृदयमें भय उत्पन्न करती थी। रक्तके बुलबुले ही उसमें फेन थे और तलवारें ही मछलियों और तरंगोंके समान प्रतीत होती थीं॥ ११-१२॥ निकुम्भ अपने उन शत्रुओंको बढ़ता हुआ और समस्त सहायकोंको मारा गया देख अपने बलसे ही ऊपरको उछला॥ १३॥ भारत! ऊपर गये हुए रणकर्कश निकुम्भको जयन्त और प्रवरने अपने वज्रतुल्य बाणोंद्वारा रोका। तब दुर्जय वीर निकुम्भ दाँतोंसे ओठ दबाकर लौटा। उसने प्रवरपर परिघसे प्रहार किया। इससे वह पृथ्वीपर गिर पड़ा॥ १४-१५॥ पृथ्वीपर गिरे हुए इन प्रवरको इन्द्रकुमार जयन्तने अपनी दोनों भुजाओंसे उठाकर हृदयसे लगा लिया और जब उन्हें मालूम हुआ कि प्रवर जीवित हैं, तब वे उन्हें छोड़कर उस असुरकी ओर दौड़े॥ १६॥ निकुम्भपर धावा करके जयन्तने उसे खड्गसे मारा। तब उस दैत्यने भी जयन्तपर परिघसे प्रहार किया॥ १७॥ इन्द्रकुमारने युद्धस्थलमें निकुम्भके शरीरको प्रायः क्षत-विक्षत कर दिया। उनके द्वारा मारे जाते हुए उस महान् असुरने उस समय मन-ही-मन सोचा कि मुझे श्रीकृष्णके साथ युद्ध करना चाहिये, क्योंकि वे मेरे बन्धु-बान्धवोंके घातक एवं वैरी हैं। मैं युद्धमें इन्द्रकुमारके साथ लड़कर अपने लिये कौन-सी ख्याति प्राप्त करूँगा॥ १८-१९॥ ऐसा निश्चय करके वह महाबली असुर वहीं अन्तर्धान हो गया और युद्धके लिये उस स्थानपर गया, जहाँ महाबली श्रीकृष्ण विराजमान थे॥ २०॥ उसे वहाँ गया हुआ देख बलनाशन इन्द्र ऐरावतकी पीठपर बैठकर वह युद्ध देखनेके लिये आये। उस समय वे देवताओंके साथ बहुत प्रसन्न थे॥ २१॥ धर्मात्मा इन्द्रने 'साधु-साधु (वाह-वाह)' कहकर संतुष्ट हो अपने पुत्र जयन्तको हृदयसे लगा लिया और मूर्च्छा दूर हो जानेपर प्रवरसे भी गले मिले॥ २२॥ उस समय रणदुर्जय जयन्तकी युद्धमें विजय देखकर इन्द्रकी आज्ञासे देवताओंकी दुन्दुभियाँ बजने लगीं॥ २३॥ निकुम्भने देखा, युद्धमें जिनपर विजय पाना अत्यन्त कठिन है, वे श्रीकृष्ण यज्ञमण्डपसे थोड़ी ही दूरपर अर्जुनके साथ खड़े हैं॥ २४॥ फिर तो उसने बड़े जोरसे सिंहनाद करके अत्यन्त भयंकर परिघद्वारा पक्षिराज गरुड़, बलराम और सात्यकिपर प्रहार किया॥ २५॥

नारायणं चार्जुनं च भीमं चाथ युधिष्ठिरम्।
यमौ च वासुदेवं स साम्बं कामं च वीर्यवान्॥ २६
युयुधे मायया दैत्यः शीघ्रकारी च भारत।
न चैनं ददृशुः सर्वे सर्वशस्त्रविशारदाः॥ २७
यदा तु नैवापश्यंस्तं तदा बिल्वोदकेश्वरम्।
दध्यौ देवं हृषीकेशः प्रमथानां गणेश्वरम्॥ २८
ततस्ते ददृशुः सर्वे प्रभावादतितेजसः।
बिल्वोदकेश्वरस्याशु निकुम्भं मायिनां वरम्॥ २९
कैलासशिखराकारं ग्रसन्तमिव धिष्ठितम्।
आह्वयन्तं रणे कृष्णं वैरिणं ज्ञातिनाशनम्॥ ३०
सज्यगाण्डीव एवाथ पार्थस्तस्य रथेषुभिः।
परिघं चैव गात्रेषु विव्याधैनमथासकृत्॥ ३१
ते बाणास्तस्य गात्रेषु परिघे च जनाधिप।
भग्नाः शिलाशिताः सर्वे निपेतुः कुञ्चिताः क्षितौ॥ ३२
विफलानस्त्रयुक्तांस्तान् दृष्ट्वा बाणान् धनंजयः।
पप्रच्छ केशवं वीरः किमेतदिति भारत॥ ३३
पर्वतानपि भिन्दन्ति मम वज्रोपमाः शराः।
किमिदं देवकीपुत्र विस्मयोऽत्र महान् मम॥ ३४
तमुवाच ततः कृष्णः प्रहसन्निव भारत।
महद्भूतं निकुम्भोऽयं कौन्तेय शृणु विस्तरात्॥ ३५
पुरा गत्वोत्तरकुरूंस्तपश्चक्रे महासुरः।
शतं वर्षसहस्राणां देवशत्रुर्दुरासदः॥ ३६
अथैनं छन्दयामास वरेण भगवान् हरः।
स वव्रे त्रीणि रूपाणि न वध्यानि सुरासुरैः॥ ३७
तमुवाच महादेवो भगवान् वृषभध्वजः।
मम वा ब्राह्मणानां वा विष्णोर्वाप्रियमाचरन्॥ ३८
भविष्यसि हरेर्वध्यो न त्वन्यस्य महासुर।
ब्रह्मण्योऽहं च विष्णुश्च विप्राणां परमा गतिः॥ ३९
स एष सर्वशस्त्राणामवध्यः पाण्डुनन्दन।
त्रिदेहोऽतिप्रमाथी च वरमत्तश्च दानवः॥ ४०

तत्पश्चात् उस पराक्रमी असुरने श्रीकृष्ण, अर्जुन, भीम, युधिष्ठिर, नकुल, सहदेव तथा श्रीकृष्णकुमार साम्ब और प्रद्युम्नपर भी प्रहार किया॥ २६॥ भरतनन्दन! वह शीघ्रकारी दैत्य मायाद्वारा युद्ध कर रहा था; इसलिये सम्पूर्ण शस्त्रोंके ज्ञानमें कुशल वे समस्त वीर उसे देख नहीं पाते थे॥ २७॥ जब वे उस असुरको नहीं देख सके, तब भगवान् श्रीकृष्णने प्रमथगणोंके स्वामी बिल्वोदकेश्वर देवका स्मरण किया॥ २८॥ फिर तुरंत ही अत्यन्त तेजस्वी बिल्वोदकेश्वरके प्रभावसे उन सबने मायावियोंमें श्रेष्ठ निकुम्भको देखा॥ २९॥ उसका शरीर कैलास-शिखरके समान विशाल था। वह इस प्रकार खड़ा था, मानो सबको ग्रस लेगा। वह अपने बन्धु-बान्धवोंका नाश करनेवाले वैरी श्रीकृष्णको युद्धके लिये ललकार रहा था। उस समय जिनके गाण्डीव धनुषपर प्रत्यञ्चा चढ़ी हुई थी, उन अर्जुनने रथका भेदन करनेवाले बाणों-द्वारा उसके परिघ और अङ्गोंपर बारम्बार प्रहार किया॥ ३०-३१॥ नरेश्वर! अर्जुनके वे सभी बाण जो शिलापर तेज किये गये थे, उसके परिघ और अङ्गोंसे टकराकर टूटकर अथवा मुड़कर पृथ्वीपर गिर पड़े॥ ३२॥ भरतनन्दन! उन दिव्यास्त्रयुक्त बाणोंको निष्फल हुआ देख वीर अर्जुनने श्रीकृष्णसे पूछा—'यह क्या हुआ?॥ ३३॥ देवकीनन्दन! मेरे वज्रतुल्य बाण पर्वतोंको भी विदीर्ण कर डालते हैं (परंतु यहाँ निष्फल हो गये)। यह क्या बात है? इस विषयमें मुझे महान् आश्चर्य हो रहा है'॥ ३४॥ भारत! तब श्रीकृष्णने हँसते हुए-से कहा—'कुन्तीनन्दन! यह निकुम्भ एक महान् भूत है। इसका परिचय विस्तारपूर्वक सुनो॥ ३५॥ पूर्वकालमें इस दुर्जय देवद्रोही महान् असुरने उत्तर-कुरुमें जाकर एक लाख वर्षोंतक तपस्या की थी॥ ३६॥ तब भगवान् शिवने इसे इच्छानुसार वर माँगनेके लिये आज्ञा दी। उस समय इसने महादेवजीसे तीन रूप माँगे, जो देवताओं और असुरोंके लिये अवध्य हो॥ ३७॥ तब महान् देव भगवान् वृषभध्वजने इससे कहा—महान् असुर! यदि तुम मेरा, ब्राह्मणोंका अथवा भगवान् विष्णुका अप्रिय करोगे तो श्रीहरिके हाथसे मारे जाओगे। दूसरे किसीके द्वारा नहीं; क्योंकि मैं और विष्णु दोनों ब्राह्मणोंके हितैषी हैं। उनके परम आश्रय हैं॥ ३८-३९॥ पाण्डुनन्दन! वही यह तीन शरीर धारण करनेवाला अत्यन्त प्रमथनशील दानव है, जो वरदान पाकर मदमत्त हो उठा है। यह सम्पूर्ण शस्त्रोंद्वारा अवध्य है'॥ ४०॥

भानुमत्यापहरणे देहोऽस्यैको गतो मया।
अवध्यं षट्पुरं देहमिदमस्य दुरात्मनः॥ ४१

दितिं शुश्रूषति त्वेको देहोऽस्य तपसान्वितः।
अन्यस्तु देहो घोरोऽस्य येनावसति षट्पुरम्॥ ४२

एतत् तु सर्वमाख्यातं निकुम्भचरितं मया।
त्वरयास्य वधे वीर कथा पश्चाद् भविष्यति॥ ४३

तयोः कथयतोरेवं कृष्णयोरसुरस्तदा।
गुहां षट्पुरसंज्ञां तां विवेश रणदुर्जयः॥ ४४

अन्विष्य तस्य भगवान् विवेश मधुसूदनः।
तां षट्पुरगुहां घोरां दुर्धर्षां कुरुनन्दन॥ ४५

चन्द्रसूर्यप्रभाहीनां ज्वलन्तीं स्वेन तेजसा।
सुखदुःखोष्णशीतानि प्रयच्छन्तीं यथेप्सितम्॥ ४६

तत्र प्रविश्य भगवानपश्यत जनाधिपान्।
युयुधे सह घोरेण निकुम्भेन जनाधिप॥ ४७

कृष्णस्यानुप्रविष्टास्तु बलाद्या यादवास्तदा।
प्रविष्टाश्च तथा सर्वे पाण्डवास्ते महात्मनः॥ ४८

समेतास्तु प्रविष्टास्ते कृष्णस्यानुमतेन वै।
युयुधे स तु कृष्णेन रौक्मिणेयः प्रचोदितः।
आनयद् यादवान् सर्वान् यानयं बद्धवान् पुरा॥ ४९

ते मुक्ता रौक्मिणेयेन प्राप्ता यत्र जनार्दनः।
प्रहृष्टमनसः सर्वे निकुम्भवधकाङ्क्षिणः॥ ५०

राजानो वीर मुञ्चेति पुनः कामं यथाब्रुवन्।
मुमोच चाथ तान् वीरो रौक्मिणेयः प्रतापवान्॥ ५१

अधोमुखमुखाः सर्वे बद्धमौना नराधिपाः।
लज्जयाभिप्लुता वीरास्तस्थुर्नष्टश्रियस्तदा॥ ५२

निकुम्भमपि गोविन्दः प्रयतन्तं जयं प्रति।
योधयामास भगवान् घोरमात्मरिपुं हरिः॥ ५३

परिघेनाहतः कृष्णो निकुम्भेन भृशं विभो।
गदया चापि कृष्णेन निकुम्भस्ताडितो भृशम्॥ ५४

'भानुमतीके अपहरणके समय मैंने इसके एक शरीरको नष्ट कर दिया था। यह अवध्य षट्पुर इस दुरात्माका दूसरा शरीर है॥ ४१॥ तथा इसका एक तपस्वी शरीर दितिदेवीकी सेवामें संलग्न रहता है। जिससे यह षट्पुरमें निवास करता है, वह इसका घोर शरीर दूसरा ही है॥ ४२॥ वीर! यह सब निकुम्भका चरित्र मैंने कह सुनाया। अब तुम इसके वधके लिये जल्दी करो। यह कथा पीछे होती रहेगी'॥ ४३॥ श्रीकृष्ण और अर्जुन इस प्रकार बात कर ही रहे थे कि वह रणदुर्जय असुर उस षट्पुर नामवाली गुफामें जा घुसा॥ ४४॥ कुरुनन्दन! उसके जानेके मार्गका अनुसंधान करके भगवान् मधुसूदन भी उस घोर, दुर्जय षट्पुर नामवाली गुफामें घुस गये॥ ४५॥ वहाँ चन्द्रमा और सूर्यका प्रकाश नहीं था। वह गुफा अपने ही तेजसे प्रकाशित होती और वहाँके निवासियोंको सुख-दुःख, गरमी-सर्दी आदि प्रदान करती थी॥ ४६॥ नरेश्वर! उस गुफामें प्रवेश करके भगवान् श्रीकृष्णने निकुम्भद्वारा बंदी बनाये गये यादवनरेशोंको देखा; फिर वे उस घोर असुर निकुम्भके साथ युद्ध करने लगे॥ ४७॥ महात्मा श्रीकृष्णकी अनुमतिसे बलराम आदि समस्त यादववीर भी उस समय उनके पीछे-पीछे उस गुफामें जा घुसे तथा समस्त पाण्डव भी एक साथ ही उसमें घुस आये॥ ४८॥ निकुम्भ तो श्रीकृष्णके साथ युद्ध करने लगा। इधर श्रीकृष्णकी आज्ञासे रुक्मिणीनन्दन प्रद्युम्न उन सब यादवोंको छुड़ा लाये, जिन्हें निकुम्भने पहले बंदी बना लिया था॥ ४९॥ प्रद्युम्नद्वारा छुड़ाये गये वे समस्त वीर प्रसन्नचित्त हो निकुम्भका वध करनेकी इच्छासे उस स्थानपर गये, जहाँ भगवान् श्रीकृष्ण युद्ध कर रहे थे॥ ५०॥ तब वे राजा जो प्रद्युम्नद्वारा कैद किये गये थे, उन कामस्वरूप प्रद्युम्नसे बार-बार कहने लगे— 'वीर! हमें मुक्त कर दो।' तब प्रतापी वीर रुक्मिणी-कुमारने उन सबको छोड़ दिया॥ ५१॥ वे समस्त वीर नरेश अपना मुँह नीचे किये चुपचाप खड़े थे। उनकी श्री नष्ट हो गयी थी। वे उस समय लज्जामें डूबे हुए थे॥ ५२॥ पापहारी भगवान् गोविन्द विजयके लिये प्रयत्न करनेवाले अपने घोर शत्रु निकुम्भके साथ युद्ध कर रहे थे॥ ५३॥ प्रभो! निकुम्भने परिघद्वारा भगवान् श्रीकृष्णपर बड़े जोरका आघात किया तथा श्रीकृष्णने भी गदाद्वारा निकुम्भको बारम्बार गहरी चोट पहुँचायी॥ ५४॥

तावुभौ मोहमापन्नौ सुप्रहारहतौ तदा।
ततः प्रव्यथितान् दृष्ट्वा पाण्डवांश्चाथ यादवान्॥ ५५

जेपुर्मुनिगणास्तत्र कृष्णस्य हितकाम्यया।
तुष्टुवुश्च महात्मानं वेदप्रोक्तैस्तथा स्तवैः॥ ५६

ततः प्रत्यागतप्राणो भगवान् केशवस्तदा।
दानवश्च पुनर्वीरावुद्यतौ समरं प्रति॥ ५७

वृषभाविव नर्दन्तौ गजाविव च भारत।
शालावृकाविव क्रुद्धौ प्रहरन्तौ रणोत्कटौ॥ ५८

अथ कृष्णं तदोवाच नृप वागशरीरिणी।
चक्रेण शमयस्वैनं देवब्राह्मणकण्टकम्॥ ५९

इति होवाच भगवान् देवो बिल्वोदकेश्वरः।
धर्मं यशश्च विपुलं प्राप्नुहि त्वं महाबल॥ ६०

तथेत्युक्त्वा नमस्कृत्वा लोकनाथः सतां गतिः।
सुदर्शनं मुमोचाथ चक्रं दैत्यकुलान्तकम्॥ ६१

तन्निकुम्भस्य चिच्छेद शिरः प्रवरकुण्डलम्।
नारायणभुजोत्सृष्टं सूर्यमण्डलवर्चसम्॥ ६२

उत्पपात शिरस्तस्य भूमौ ज्वलितकुण्डलम्।
मेघमत्तो गिरेः शृङ्गान्मयूर इव भूतले॥ ६३

निकुम्भे निहते तस्मिन् देवो बिल्वोदकेश्वरः।
तुतोष च नरव्याघ्र जगत्त्रासकरे विभुः॥ ६४

पपात पुष्पवृष्टिश्च शक्रसृष्टा नभस्तलात्।
देवदुन्दुभयश्चैव प्रणेदुररिनाशने॥ ६५

ननन्द च जगत् कृत्स्नं मुनयश्च विशेषतः।
दैत्यकन्याश्च भगवान् यदुभ्यः शतशो ददौ॥ ६६

क्षत्रियाणां च भगवान् सान्त्वयित्वा पुनःपुनः।
रत्नानि च विचित्राणि वासांसि प्रवराणि च॥ ६७

रथानां वाजियुक्तानां षट् सहस्राणि केशवः।
अददात् पाण्डवेभ्यश्च प्रीतात्मा गदपूर्वजः॥ ६८

तब एक-दूसरेके द्वारा अच्छी तरह किये गये प्रहारोंसे आहत होकर वे दोनों ही मूर्च्छित हो गये। इससे पाण्डवों और यादवोंको अत्यन्त व्यथित हुआ देख वहाँ खड़े हुए मुनिगण श्रीकृष्णके हितकी कामनासे 'जप' करने लगे तथा उन्होंने वेदोक्त स्तुतियोंद्वारा परमात्मा श्रीकृष्णका स्तवन किया॥ ५५-५६॥ तब भगवान् केशव सजग हो उठे, मानो उनमें पुनः प्राण लौट आये हों। तदनन्तर वह दानव भी होशमें आ गया। फिर वे दोनों वीर युद्धके लिये उद्यत हो गये॥ ५७॥ भारत! वे दोनों रणोन्मत्त वीर साँड़ोंके समान हँकड़ते, हाथियोंके समान चिग्घाड़ते और भेड़ियोंके समान दहाड़ते हुए क्रोधपूर्वक परस्पर प्रहार करने लगे॥ ५८॥ नरेश्वर! उस समय आकाशवाणीने भगवान् श्रीकृष्णसे कहा—'जनार्दन! यह देवताओं और ब्राह्मणोंके लिये कण्टकरूप है। तुम अपने चक्रद्वारा इसको नष्ट कर दो'॥ ५९॥ यह बात स्वयं भगवान् बिल्वोदकेश्वरदेवने कही थी। फिर उन्होंने इस प्रकार कहा—'महाबली श्रीकृष्ण! तुम (इस दैत्यको मारकर) महान् धर्म और विशाल यश प्राप्त करो'॥ ६०॥ तब 'जो आज्ञा' कहकर सत्पुरुषोंके आश्रयदाता जगदीश्वर श्रीकृष्णने भगवान् बिल्वोदकेश्वरको नमस्कार किया और दैत्यकुलका विनाश करनेवाले सुदर्शन चक्रको निकुम्भपर छोड़ दिया॥ ६१॥ श्रीकष्णके हाथसे छूटे हुए सूर्यमण्डलके समान तेजस्वी चक्रने उत्तम कुण्डलोंसे अलंकृत निकुम्भका मस्तक काट डाला॥ ६२॥ कान्तिमान् कुण्डलोंसे अलंकृत उसका वह मस्तक पृथ्वीपर गिर पड़ा, मानो मेघके दर्शनसे उन्मत्त हुआ कोई मोर पर्वतके शिखरसे धरतीपर आ गिरा हो॥ ६३॥ नरव्याघ्र! जगत्को त्रास देनेवाले उस निकुम्भके मारे जानेपर सर्वव्यापी देव बिल्वोदकेश्वर बहुत संतुष्ट हुए॥ ६४॥ आकाशसे इन्द्रकी बरसायी हुई फूलोंकी वृष्टि होने लगी। उस देवशत्रुका नाश हो जानेपर देवताओंकी दुन्दुभियाँ बजने लगीं॥ ६५॥ सम्पूर्ण जगत् आनन्दमग्न हो गया। ऋषि-मुनियोंको विशेष प्रसन्नता हुई! भगवान् श्रीकृष्णने यादववीरोंको सैकड़ों दैत्य-कन्याएँ दे दीं॥ ६६॥ अन्य क्षत्रिय राजाओंको भी बारम्बार सान्त्वना देकर भगवान्ने विचित्र रत्न और श्रेष्ठ वस्त्र प्रदान किये॥ ६७॥ गदके बड़े भाई श्रीकृष्णने प्रसन्नचित्त होकर पाण्डवोंको छः हजार अश्वयुक्त रथ भेंट किये॥ ६८॥

तदेव चाथ प्रवरं षट्पुरं पुरवर्द्धनः।
द्विजाय ब्रह्मदत्ताय ददौ तार्क्ष्यवरध्वजः॥ ६९

सत्रे समाप्ते च तदा शङ्खचक्रगदाधरः।
विसर्जयित्वा तत् क्षत्रं पाण्डवांश्च महाबलः॥ ७०

बिल्वोदकेश्वरस्याथ समाजमकरोत् प्रभुः।
मांससूपसमाकीर्णं बह्वन्नं व्यञ्जनाकुलम्॥ ७१

नियुद्धकुशलान् मल्लान् देवो मल्लप्रियस्तदा।
योधयित्वा ददौ भूरि वित्तं वस्त्राणि चात्मवान्॥ ७२

मातापितृभ्यां सहितो यदुभिश्च महाबलः।
अभिवाद्य ब्रह्मदत्तं ययौ द्वारवतीं पुरीम्॥ ७३

स विवेश पुरीं रम्यां हृष्टपुष्टजनाकुलाम्।
पुष्पचित्रपथां वीरो वन्द्यमानो नरैः पथि॥ ७४

इमं यः षट्पुरवधं विजयं चक्रपाणिनः।
शृणुयाद् वा पठेद् वापि युद्धे जयमवाप्नुयात्॥ ७५

अपुत्रो लभते पुत्रमधनो लभते धनम्।
व्याधितो मुच्यते रोगी बद्धश्चाप्यथ बन्धनात्॥ ७६

इदं पुंसवनं प्रोक्तं गर्भाधानं च भारत।
श्राद्धेषु पठितं सम्यगक्षय्यकरणं स्मृतम्॥ ७७

इदममरवरस्य भारते
प्रथितबलस्य जयं महात्मनः।
सततमिह हि यः पठेन्नरः
सुगतिमितो व्रजते गतज्वरः॥ ७८

मणिकनकविचित्रपाणिपादो
निरतिशयार्कगुणोऽरिहादिनाथः।
चतुरुदधिशयश्चतुर्विधात्मा
जयति जगत्पुरुषः सहस्रनामा॥ ७९

नगरकी वृद्धि करनेवाले भगवान् गरुड़ध्वजने वह षट्पुर नामक श्रेष्ठ नगर ब्रह्मदत्त नामक ब्राह्मणको दे दिया॥ ६९॥ यज्ञ समाप्त होनेपर शङ्ख, चक्र और गदा धारण करनेवाले महाबली भगवान् श्रीकृष्णने उन क्षत्रियों और पाण्डवोंको विदा करके श्रीबिल्वोदकेश्वरके लिये एक सामूहिक उत्सव किया, जिसमें फलोंके गूदे, दाल तथा अन्यान्य व्यञ्जनोंसे युक्त बहुत-सा अन्न लोगोंको खिलाया गया॥ ७०-७१॥ अपने मनको वशमें रखनेवाले मल्लप्रिय भगवान् श्रीकृष्णने युद्धकुशल मल्लोंको लड़वाकर उन्हें बहुत-सा धन और वस्त्र दिये॥ ७२॥ तदनन्तर महाबली श्रीकृष्ण अपने माता-पिता तथा अन्य यादवोंके साथ ब्रह्मदत्तको प्रणाम करके द्वारकापुरीको चले गये॥ ७३॥ मार्गमें दूसरे लोगोंका प्रणाम स्वीकार करते हुए वीर श्रीकृष्णने हृष्ट-पुष्ट मनुष्योंसे भरी हुई तथा पुष्पोंके बिछाये जानेसे विचित्र पथवाली रमणीय पुरी द्वारकामें प्रवेश किया॥ ७४॥ जो चक्रपाणि भगवान् श्रीकृष्णके इस षट्पुरवधरूप विजयसूचक चरित्रको सुनता अथवा पढ़ता है, वह युद्धमें विजय पाता है॥ ७५॥ (इसके श्रवण अथवा पठनसे) पुत्रहीनको पुत्र और निर्धनको धन मिलता है। रोगी रोगसे और बंदी बन्धनसे छुटकारा पाता है॥ ७६॥ भारत! यह प्रसंग पुंसवन और गर्भाधानमें सहायक कहा गया है (अर्थात् इसके श्रवणसे पत्नीके गर्भाधान होता है और उस गर्भसे पुत्रकी उत्पत्ति होती है)। यदि श्राद्धोंमें इसका सम्यक् रूपसे पाठ किया जाय तो यह उसके फलको अक्षय बनानेवाला माना गया है॥ ७७॥भारतमें जिनका बल विख्यात है तथा जो देवताओंसे भी श्रेष्ठ हैं, उन महात्मा श्रीकृष्णकी इस विजयगाथाका जो मनुष्य यहाँ सदा पाठ करता है, वह रोग-शोकसे मुक्त हो यहाँसे परम गतिको प्राप्त होता है॥ ७८॥ मणि और सुवर्णके आभूषण धारण करनेसे जिनके हाथ-पैरोंकी विचित्र शोभा होती है, जिनमें सूर्यके तेज आदि गुण उनसे भी बहुत अधिक मात्रामें विद्यमान हैं, जो शत्रुओंके नाशक तथा सबके आदिरक्षक हैं, चारों समुद्र जिनके शयनागार हैं तथा जो वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध—इन चार व्यूहोंके रूपमें विद्यमान हैं, वे जगत्के अन्तर्यामी पुरुष सहस्रों नामोंवाले श्रीकृष्ण नित्य विजयशील हैं॥ ७९॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे विष्णुपर्वणि षट्पुरवधे पञ्चाशीतितमोऽध्यायः॥ ८५॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत विष्णुपर्वमें षट्पुरवधके प्रसंगमें पचासीवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ८५॥

षडशीतितमोऽध्यायः

अन्धकासुरकी उत्पत्ति और अनाचार, उसके वधके लिये ऋषियोंका विचार, नारदजीका मन्दारपुष्पोंकी माला धारण करके अन्धकके यहाँ जाना और उससे मन्दारवनके महत्त्व बताना

जनमेजय उवाच

श्रुतोऽयं षट्पुरवधो रम्यो मुनिवरोत्तम।
पुरोक्तमन्धकवधं वैशम्पायन कीर्तय॥ १

भानुमत्याश्च हरणं निकुम्भस्य वधं तथा।
प्रब्रूहि वदतां श्रेष्ठ परं कौतूहलं हि मे॥ २

वैशम्पायन उवाच

दितिर्हतेषु पुत्रेषु विष्णुना प्रभविष्णुना।
तपसाऽऽराधयामास मारीचं कश्यपं पुरा॥ ३

तपसा कालयुक्तेन तथा शुश्रूषया मुनेः।
आनुकूल्येन च तथा माधुर्येण च भारत॥ ४

परितुष्टः कश्यपस्तु तामुवाच तपोधनः।
परितुष्टोऽस्मि ते भद्रे वरं वरय सुव्रते॥ ५

दितिरुवाच

हतपुत्रास्मि भगवन् देवैर्धर्मभृतां वर।
अवध्यं पुत्रमिच्छामि देवैरमितविक्रमम्॥ ६

कश्यप उवाच

अवध्यस्ते सुतो देवि दाक्षायणि भवेदिति।
देवानां संशयो नात्र कश्चित् कमललोचने॥ ७

देवदेवमृते रुद्रं तस्य न प्रभवाम्यहम्।
आत्मा ततस्ते पुत्रेण रक्षितव्यो हि सर्वथा॥ ८

अन्वालभत तां देवीं कश्यपः सत्यवागथ।
अङ्गुल्योदरदेशे तु सा पुत्रं सुषुवे ततः॥ ९

सहस्रबाहुं कौरव्य सहस्रशिरसं तथा।
द्विसहस्रेक्षणं चैव तावच्चरणमेव च॥ १०

जनमेजयने कहा—मुनिवरोंमें उत्तम वैशम्पायनजी! षट्पुरवधका यह रमणीय प्रसंग मैंने सुन लिया। अब पहले जिसकी चर्चा हुई थी, उस अन्धकवधका वृत्तान्त मुझे बताइये॥ १॥ वक्ताओंमें श्रेष्ठ! भानुमतीके हरणका तथा उस अवसरपर किये गये निकुम्भवधका प्रसंग भी सुनाइये; क्योंकि वह सब सुननेके लिये मेरे मनमें बड़ा कौतूहल है॥ २॥

वैशम्पायनजी बोले—राजन्! पहलेकी बात है, प्रभावशाली भगवान् विष्णुके द्वारा जब सभी पुत्र मारे गये, तब देवी दितिने तपस्याके द्वारा मरीचिनन्दन कश्यपजीकी आराधना की॥ ३॥ भरतनन्दन! उनकी समयोचित तपस्या, सेवा, अनुकूल बर्ताव तथा माधुर्यसे तपोधन कश्यपजी बहुत संतुष्ट हुए और उनसे बोले—'उत्तम व्रतका पालन करनेवाली कल्याणी! मैं तुमपर बहुत संतुष्ट हूँ, तुम कोई वर माँगो'॥ ४-५॥

दिति बोली—भगवन्! धर्मात्माओंमें श्रेष्ठ! देवताओंने मेरे सभी पुत्रोंको मार डाला है; अतः मैं एक ऐसा अमित पराक्रमी पुत्र चाहती हूँ, जो देवताओंके लिये अवध्य हो॥ ६॥

कश्यपजीने कहा—देवि! दाक्षायणि! कमललोचने! तुम्हारा पुत्र देवताओंके लिये अवध्य होगा, इसमें कोई संशय नहीं है॥ ७॥ किंतु देवाधिदेव रुद्रको छोड़कर दूसरा कोई देवता उसे नहीं मार सकेगा, क्योंकि उनपर मेरा प्रभुत्व नहीं चल सकता। अतः तुम्हारे पुत्रको सर्वथा उनसे अपने शरीरकी रक्षा करनी चाहिये॥ ८॥ ऐसा कहकर सत्यवादी कश्यपजीने अपनी अङ्गुलिसे देवी दितिके उदरका स्पर्श किया; इससे उन्होंने एक पुत्रको जन्म दिया॥ ९॥ कुरुनन्दन! उसके एक हजार भुजाएँ, उतने ही मस्तक, दो सहस्र नेत्र तथा उतने ही चरण थे॥ १०॥

स व्रजत्यन्धवद् यस्मादनन्धोऽपि हि भारत।
तमन्धकोऽयं नाम्नेति प्रोचुस्तत्र निवासिनः॥ ११

अवध्योऽस्मीति लोकान् स सर्वान् बाधति भारत।
हरत्यपि च रत्नानि सर्वाण्यात्मबलाश्रयात्॥ १२

वासयत्यात्मवीर्येण निगृह्याप्सरसां गणान्।
स वेश्मन्यूर्जितोऽत्यर्थं सर्वलोकभयंकरः॥ १३

परदारापहरणं परत्नविलोपनम्।
चकार सततं मोहादन्धकः पापनिश्चयः॥ १४

त्रैलोक्यविजयं कर्तुमुद्यतः स तु भारत।
सहायैरसुरैः सार्धं बहुभिः सर्वधर्षिभिः॥ १५

तच्छ्रुत्वा भगवाञ्छक्रः कश्यपं पितरं ब्रवीत्।
अन्धकेनेदमारब्धमीदृशं मुनिसत्तम॥ १६

आज्ञापय विभो कार्यमस्माकं समनन्तरम्।
यवीयसः कथं नाम सोढव्यं स्यान्मुने मया॥ १७

इष्टपुत्रे प्रहर्तव्यं कथं नाम मया विभो।
इहात्रभवती कुर्यान्मन्युं मयि हते सुते॥ १८

देवेन्द्रवचनं श्रुत्वा कश्यपोऽथाब्रवीन्मुनिः।
वारयिष्यामि देवेन्द्र सर्वथा भद्रमस्तु ते॥ १९

अन्धकं वारयामास दित्या सह तु कश्यपः।
त्रैलोक्यविजयाद् वीरं कृच्छ्रकृच्छ्रेण भारत॥ २०

वारितोऽपि स दुष्टात्मा बाधत्येव दिवौकसः।
तैस्तैरुपायैर्दुष्टात्मा प्रमथ्य च तथामरान्॥ २१

बभञ्ज कानने वृक्षानुद्यानानि च दुर्मतिः।
उच्चैःश्रवःसुतानश्वान् बलादप्यानयद् दिवः॥ २२

नागान् दिशागजसुतान् दिव्यानपि च भारत।
बलाद्धरति देवानां पश्यतां वरदर्पितः॥ २३

देवानाप्याययन्ते तु ये यज्ञैस्तपसा तथा।
तेषां चकार विघ्नं स दुष्टात्मा देवकण्टकः॥ २४

नेजुर्यज्ञैस्त्रयो वर्णास्तेपुश्च न तपांस्यपि।
अन्धकस्य भयाद् राजन् यज्ञविघ्नानि कुर्वतः॥ २५

भारत! वह अन्धा नहीं था तो भी अन्धेके समान चलता था; अतः वहाँके निवासी उसे अन्धक नामसे पुकारने लगे॥ ११॥ भरतनन्दन! मैं अवध्य हूँ, ऐसा समझकर वह सब लोगोंको सताने लगा। अपने बलके भरोसे वह (सब जगहसे) सभी रत्नोंको हर लाता था॥ १२॥ समस्त लोकोंको भय देनेवाला वह दैत्य अत्यन्त शक्तिशाली होनेके कारण अपने बलसे अप्सराओंको पकड़कर अपने घरमें रखता था॥ १३॥ पापपूर्ण विचार रखनेवाले अन्धकने मोहवश परस्त्रियोंके अपहरण करने और पराये धनको लूट लानेका धंधा सदाके लिये अपना लिया॥ १४॥ भारत! एक बार अन्धक सबका तिरस्कार करनेवाले बहुत-से सहायक असुरोंके साथ तीनों लोकोंपर विजय प्राप्त करनेको उद्यत हुआ॥ १५॥ वह समाचार सुनकर ऐश्वर्यशाली इन्द्रने अपने पिता कश्यपसे कहा—'मुनिश्रेष्ठ! अन्धकासुरने ऐसा कार्य आरम्भ किया है॥ १६॥ प्रभो! हमलोगोंका क्या कर्तव्य है, उसके लिये आज्ञा दीजिये। मुने! छोटे भाईका यह दुराचार मुझसे कैसे सहा जायगा?॥ १७॥ प्रभो! यह मौसीजीका प्रिय पुत्र है। इसपर मैं कैसे प्रहार कर सकता हूँ? अपने पुत्रके मेरे द्वारा मारे जानेपर पूजनीया मौसी यहाँ मुझपर क्रोध करेंगी'॥ १८॥ देवराजकी यह बात सुनकर कश्यप मुनिने कहा—'देवेन्द्र! मैं अन्धकको सर्वथा रोक दूँगा। तुम्हारा कल्याण हो'॥ १९॥ भरतनन्दन! तदनन्तर कश्यपजीने दितिके साथ जाकर वीर अन्धकको बड़ी कठिनाईसे त्रिभुवनविजयके उद्योगसे रोका॥ २०॥ उनके मना करनेपर भी वह दुष्टात्मा उन-उन उपायोंसे स्वर्गवासी देवताओंको मथकर सताता ही रहा॥ २१॥ उस दुर्बुद्धिने नन्दनवनके वृक्षों और उद्यानोंको उजाड़ डाला। उच्चैःश्रवाके वंशज अश्वोंको वह स्वर्गसे बलपूर्वक हाँक लाया॥ २२॥ भारत! वरके घमंडमें भरा हुआ वह दैत्य देवताओंके देखते-देखते दिग्गजकी संतानभूत दिव्य हाथियोंको बलपूर्वक हर लाता था॥ २३॥ देवताओंके लिये कण्टकरूप वह दुष्टात्मा दैत्य जो लोग यज्ञ और तपस्याद्वारा देवताओंको पुष्ट करते थे, उनके उस अनुष्ठानमें विघ्न डाल देता था॥ २४॥ राजन्! तीनों वर्णोंके लोग यज्ञोंमें विघ्न डालनेवाले अन्धकासुरके भयसे न तो यज्ञ कर पाते थे और न तपस्या ही॥ २५॥

तस्येच्छया वाति वायुरादित्यश्च तपत्युत।
चन्द्रमा वा सनक्षत्रो दृश्यते नैव वा पुनः॥ २६

न व्रजन्ति विमानानि विहायसि भयात् प्रभो।
अन्धकस्यातिघोरस्य बलदृप्तस्य दुर्मतेः॥ २७

निरोङ्कारवषट्कारं जगद् वीर तथाभवत्।
अन्धकस्यातिघोरस्य भयात् कुरुकुलोद्वह॥ २८

कुरूंस्तथोत्तरान् पापो द्रावयामास भारत।
भद्राश्वान् केतुमालांश्च जम्बूद्वीपांस्तथैव च॥ २९

मानयन्ति च तं देवा दानवाश्च दुरासदाः।
भूतानि च तथान्यानि समर्थान्यपि सर्वथा॥ ३०

ऋषयो वध्यमानास्तु समेता ब्रह्मवादिनः।
अचिन्तयन्नन्धकस्य वधं धर्मभृतां वर॥ ३१

तेषां बृहस्पतिर्मध्ये धीमानिदमथाब्रवीत्।
नास्य रुद्रादृते मृत्युर्विद्यते च कथञ्चन॥ ३२

तथा वरे दीयमाने कश्यपेनापि शब्दितः।
नाहं रुद्रात् परित्रातुं शक्त इत्येव धीमतः॥ ३३

तमुपायं चिन्तयामः शर्वो येन सनातनः।
जानीयात् सर्वभूतानि पीड्यमानानि शङ्करः॥ ३४

विदितार्थो हि भगवानवश्यं जगतः प्रभुः।
अश्रुप्रमार्जनं देवः करिष्यति सतां गतिः॥ ३५

व्रतं हि देवदेवस्य भवस्य जगतो गुरोः।
सन्तोऽसद्भ्यो रक्षितव्या ब्राह्मणास्तु विशेषतः॥ ३६

ते वयं नारदं सर्वे प्रयाम शरणं द्विजम्।
उपायं वेत्स्यते तत्र वयस्यो हि भवस्य सः॥ ३७

बृहस्पतिवचः श्रुत्वा सर्वेऽप्यथ तपोधनाः।
तावद् ददृशुराकाशे प्राप्तं देवर्षिसत्तमम्॥ ३८

वायु उसकी इच्छाके अनुसार चलती थी। सूर्य भी उसकी रुचिके अनुसार ही तपते थे तथा नक्षत्रोंसहित चन्द्रमा भी उसकी इच्छासे ही दीखते अथवा नहीं दीखते थे॥ २६॥ प्रभो! बलके घमंडमें भरे हुए खोटी बुद्धिवाले अत्यन्त घोर अन्धकासुरके भयसे आकाशमें विमान नहीं चलने पाते थे॥ २७॥ कुरुकुल-धुरन्धर वीर! अत्यन्त भयानक अन्धकासुरके भयसे सारा जगत् ॐकार और वषट्कारकी ध्वनिसे शून्य हो गया॥ २८॥ भारत! वह पापी उत्तरकुरु, भद्राश्व, केतुमाल तथा जम्बूद्वीपके अन्य प्रदेशोंपर भी धावा बोला करता था॥ २९॥ दुर्जय देवता और दानव भी उसका सम्मान करते थे तथा अन्यान्य भूत सर्वथा समर्थ होनेपर भी उसका आदर करते थे॥ ३०॥ धर्मात्माओंमें श्रेष्ठ नरेश! उसके द्वारा मारे और सताये जानेवाले ब्रह्मवादी ऋषि एकत्र हो अन्धकासुरके वधका उपाय सोचने लगे॥ ३१॥ उन ऋषियोंमें बुद्धिमान् बृहस्पति भी थे। उन्होंने इस प्रकार कहा—'इस असुरकी मृत्यु रुद्रदेवके सिवा दूसरेके हाथसे किसी तरह नहीं हो सकती। दितिको वर देते समय महर्षि कश्यपने भी यह बात कह दी थी। मैं भगवान् रुद्रसे इसकी रक्षा नहीं कर सकता। यही बुद्धिमान् कश्यपजीका वचन है॥ ३२-३३॥ अतः हमलोग उस उपायपर विचार करें, जिससे दुष्टोंका संहार करनेवाले सनातनदेव भगवान् शङ्करको यह पता लग जाय कि अन्धकासुरके अत्याचारसे समस्त प्राणी पीड़ित हो रहे हैं॥ ३४॥ भगवान् रुद्रदेव इस जगत्के स्वामी और सत्पुरुषोंके आश्रय हैं। जब उन्हें इस बातका पता चल जायगा, तब वे अवश्य सबके आँसू पोंछेंगे (अन्धकासुरको मारकर जगत्का दुःख दूर कर देंगे)॥ ३५॥ उन देवाधिदेव जगद्गुरु भगवान् शिवका यह व्रत है कि दुष्टोंसे साधु पुरुषोंकी, विशेषतः ब्राह्मणोंकी अवश्य रक्षा करनी चाहिये॥ ३६॥ अतः हम सब लोग नारद बाबाकी शरणमें चलें। वे ही इसका उपाय जानते होंगे; क्योंकि वे भगवान् शङ्करके मित्र हैं'॥ ३७॥ बृहस्पतिजीकी बात सुनकर उन सभी तपोधनोंने जब आकाशमें दृष्टि डाली तो देखा देवर्षि-शिरोमणि नारद स्वयं आ पहुँचे हैं॥ ३८॥

पूजयित्वा यथान्यायं सत्कृत्य विधिवन्मुनिम्।
देवर्षे भगवन् साधो कैलासं व्रज सत्वरम्॥ ३९

विज्ञसुमर्हसे देवमन्धकस्य वधे हरम्।
त्राणार्थं नारदं प्रोचुस्तांस्तथेति स चोक्तवान्॥ ४०

ऋषिष्वथ प्रयातेषु तत्कार्यं नारदो मुनिः।
विचार्य मनसा विद्वानिति कार्यं स दृष्टवान्॥ ४१

स देवदेवं भगवान् द्रष्टुं मुनिरथाययौ।
मन्दारवनमध्यस्थो यत्र नित्यो वृषध्वजः॥ ४२

स तत्र रजनीमेकामुषित्वा मुनिसत्तमः।
मन्दाराणां वने रम्ये दयितः शूलपाणिनः॥ ४३

आजगाम पुनः स्वर्गं लब्ध्वानुज्ञां वृषध्वजात्।
मन्दारपुष्पैः सुकृतां मालामाबध्य भारत॥ ४४

ग्रथितां सविशेषां तां सर्वगन्धोत्तमोत्तमाम्।
संतानमाल्यदामाथ तैरेव कुसुमैः कृतम्॥ ४५

तच्च कण्ठे समासज्य महागन्धं नराधिप।
आययावन्धको यत्र दुरात्मा बलदर्पितः॥ ४६

अन्धकस्त्वथ तं दृष्ट्वा गन्धमाघ्राय चोत्तमम्।
संतानकानां स्त्रङ्मालां महागन्धां महामुने।
कुत्रायं पुष्पजातिर्वा कमनीया तपोधन॥ ४७

गन्धान् वर्णाञ्छुभांस्तान् हि भोः पुष्यति मुहुर्मुहुः।
स्वर्गे संतानकुसुमान्यतिवर्तति सर्वथा॥ ४८

कः प्रभुस्तस्य वृक्षस्य शक्यं वाऽऽनयितुं मुने।
आचक्ष्व यद्यनुग्राह्या वयं ते देवतातिथे॥ ४९

तमुवाच मुनिश्रेष्ठः प्रहसन्निव भारत।
आदाय दक्षिणे हस्ते महतस्तपसो निधिः॥ ५०

उन्होंने नारद मुनिका यथोचित रीतिसे पूजन और विधिवत् सत्कार करके कहा—'देवर्षे! भगवन्! साधो! आप शीघ्र कैलासपर्वतको चले जाइये और अन्धकासुरका वध करनेके लिये भगवान् शङ्करको आवश्यक सूचना दीजिये। आप ही इस कार्यके योग्य हैं।' उन ऋषियोंने नारदजीसे कहा—आप जगत्‌की रक्षाके लिये प्रयत्नशील हों।' तब नारदमुनिने 'तथास्तु' कहकर उनका अनुरोध स्वीकार कर लिया। ऋषियोंके चले जानेपर उन विद्वान् मुनिने उस कार्यके विषयमें मन-ही-मन विचार करके यह देख और समझ लिया कि इस विषयमें अपनेको क्या करना है?॥ ३९—४१ ॥ तत्पश्चात् भगवान् नारद मुनि देवाधिदेव महादेवजीका दर्शन करनेके लिये उस स्थानपर आये, जहाँ नित्य भगवान् वृषध्वज मन्दारवनमें विराजमान होते हैं॥ ४२ ॥ भगवान् शूलपाणिके प्रिय सखा मुनिश्रेष्ठ नारद वहाँ मन्दारोंके उस रमणीय वनमें एक रात रहकर भगवान् शिवसे आज्ञा ले पुनः स्वर्गलोकको लौट आये। भरतनन्दन! उन्होंने अपने गलेमें मन्दार-पुष्पोंद्वारा अच्छी तरह बनायी गयी और विशेष कलाके साथ गूँथी गयी माला धारण कर रखी थी, जिसकी सुगन्ध सभी श्रेष्ठ सुगन्धोंमें परम उत्तम थी। नरेश्वर! उन्होंने संतान-मालाकी लड़ियाँ भी गलेमें डाल रखी थीं, जो उन्हीं संतान-कुसुमोंसे बनी हुई थीं। उससे भी बड़ी सुगन्ध फैल रही थी। उन मालाओंको धारण करके वे उस स्थानपर आये, जहाँ बलके घमंडमें भरा हुआ दुरात्मा अन्धकासुर रहता था॥ ४३—४६ ॥ अन्धकासुरने नारदजीको देखकर उस उत्तम सुगन्धका अनुभव करके महान् गन्धसे भरी हुई संतान-पुष्पोंकी मालापर भी दृष्टि डाली और पूछा—'महामुने! तपोधन! यह कमनीय पुष्पोंकी जाति कहाँ उपलब्ध होती है?॥ ४७ ॥ अजी! यह तो बारम्बार अपने सुन्दर वर्णों और मनोहर गन्धोंकी पुष्टि कर रही है। स्वर्गमें जो संतानपुष्प उपलब्ध होते हैं, उनसे तो ये पुष्प सर्वथा बढ़-चढ़कर हैं॥ ४८ ॥ मुने! देवताओंके अतिथि नारद! उस वृक्षका स्वामी कौन है? क्या यह पुष्प वहाँसे लाया जा सकता है? यदि मैं आपका कृपापात्र होऊँ तो आप मुझे इसका पता बताइये'॥ ४९ ॥ भरतनन्दन! तब महान् तपकी निधि मुनिश्रेष्ठ नारदने अन्धकासुरका दाहिना हाथ पकड़कर हँसते हुए-से कहा— ॥ ५० ॥

मन्दरे पर्वतश्रेष्ठे वीर कामगमं वनम्।
तत्र चैवंविधं पुष्पं भोः सृष्टिः शूलपाणिनः॥ ५१

न तु तत्र वनं कश्चिदच्छन्देन महात्मनः।
प्रवेष्टुं लभते तद्धि रक्षन्ति प्रवरोत्तमाः॥ ५२

नानाप्रहरणा घोरा नानावेषा दुरासदाः।
अवध्याः सर्वभूतानां महादेवाभिरक्षिताः॥ ५३

नित्यं प्रक्रीडते तत्र सोमः सप्रवरो हरः।
मन्दारद्रुमखण्डेषु सर्वात्मा सर्वभावनः॥ ५४

तपोविशेषैराराध्य हरं त्रिभुवनेश्वरम्।
शक्यं मन्दारपुष्पाणि प्राप्तुं कश्यपवंशज॥ ५५

स्त्रीरत्नमणिरत्नानि यानि चान्यानि चाप्यथ।
काङ्क्षितानि फलन्ति स्म ते द्रुमा हरवल्लभाः॥ ५६

न तत्र सूर्यः सोमोऽथ तपत्यतुलविक्रम।
स्वयंप्रभं तरुवनं तद् भो दुःखविवर्जितम्॥ ५७

तत्र गन्धान् स्त्रवन्त्यन्ये नीराण्यन्ये महाद्रुमाः।
वासांसि विविधान्यन्ये सुगन्धीनि महाबल॥ ५८

भक्ष्यं भोज्यं च पेयं च चोष्यं लेह्यं तथैव च।
तरुभ्यः स्त्रवते तेभ्यो विविधं मनसेप्सितम्॥ ५९

पिपासा वा बुभुक्षा वा ग्लानिश्चिन्तापि वानघ।
न मन्दारवने वीर भवतीत्युपधार्यताम्॥ ६०

न ते वर्णयितुं शक्या गुणा वर्षशतैरपि।
गुणा ये तत्र वर्द्धन्ते स्वर्गाद् बहुगुणोत्तराः॥ ६१

अतीव हि जयेल्लोकान् समहेन्द्रान् न संशयः।
एकाहमपि यस्तत्र वसेच्च दितिजोत्तम॥ ६२

स्वर्गस्यापि हि तत् स्वर्गं सुखानामपि तत् सुखम्।
बभूव जगतः सर्वमिति मे धीयते मनः॥ ६३

'वीर! पर्वतप्रवर मन्दराचलपर एक इच्छानुसार चलनेवाला वन है। उसीमें इस तरहके फूल हैं। अजी! वह वन साक्षात् शूलपाणि भगवान् शङ्करकी सृष्टि है॥ ५१॥ वहाँ उस वनमें महात्मा शिवजीकी इच्छाके बिना कोई भी प्रवेश नहीं कर सकता; क्योंकि उनके श्रेष्ठ पार्षद उसकी रक्षा करते हैं॥ ५२॥ वे नाना प्रकारके वेष धारण किये भाँति-भाँतिके अस्त्र-शस्त्र लिये रहते हैं। उनका स्वरूप बड़ा भयंकर है तथा उनपर विजय पाना अत्यन्त कठिन है। महादेवजीसे सुरक्षित होनेके कारण वे सभी प्राणियोंके लिये अवध्य हैं॥ ५३॥ वहाँ मन्दार-वृक्षोंके बगीचोंमें उमासहित सर्वात्मा सर्वभावन महादेवजी नित्य क्रीड़ा करते और अपने पार्षदोंके साथ रहते हैं॥ ५४॥ कश्यपकुमार! विशेष तपस्याके द्वारा तीनों लोकोंके स्वामी भगवान् शिवकी आराधना करके ही ये मन्दारपुष्प प्राप्त किये जा सकते हैं॥ ५५॥ वे सभी वृक्ष भगवान् शङ्करके प्रिय हैं और स्त्रीरत्न, मणिरत्न तथा अन्य जो-जो अभिलषित पदार्थ हैं, उन सबको वे फलरूपसे प्रस्तुत करते हैं॥ ५६॥ अतुल पराक्रमी दैत्य! वहाँ मन्दारवनमें न तो सूर्य तपते हैं और न चन्द्रमा ही प्रकाश करते हैं। मन्दार-वृक्षोंसे भरा हुआ वह वन स्वयं अपनी ही प्रभासे प्रकाशित होता है। वहाँ दुःख-शोकका प्रवेश नहीं है॥ ५७॥ महाबली अन्धक! वहाँ कुछ वृक्ष ऐसे हैं, जो उत्तम सुगन्ध उत्पन्न करते हैं, दूसरे विशाल वृक्ष जल प्रकट करते हैं तथा अन्य वृक्ष नाना प्रकारके सुगन्धित वस्त्र प्रदान करते हैं॥ ५८॥ इतना ही नहीं, उन वृक्षोंसे भाँति-भाँतिके मनोवाञ्छित भक्ष्य, भोज्य, पेय, चोष्य और लेह्य आदि पदार्थ प्राप्त होते हैं॥ ५९॥ निष्पाप वीर! तुम यह समझ लो कि उस मन्दारवनमें भूख-प्यास, ग्लानि अथवा चिन्ता भी नहीं फटकने पाती है॥ ६०॥ वहाँ स्वर्गसे कई गुने उत्तम जो गुण दिनोंदिन बढ़ते हैं, उनका सैकड़ों वर्षोंमें भी वर्णन नहीं किया जा सकता। दैत्यप्रवर! जो वहाँ एक दिन भी निवास कर लेगा, वह महेन्द्रसहित सम्पूर्ण लोकोंपर अतिशय विजय प्राप्त कर लेगा, इसमें संशय नहीं है॥ ६१-६२॥ वह स्वर्गका भी स्वर्ग और समस्त सुखोंका भी सुख है। मेरे मनका तो ऐसा विश्वास है कि वही सम्पूर्ण जगत्का सर्वस्व-सार है'॥ ६३॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे विष्णुपर्वणि अन्धकवधे षडशीतितमोऽध्यायः॥ ८६॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत विष्णुपर्वमें अन्धकवधविषयक छियासीवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ८६॥

सप्ताशीतितमोऽध्यायः

मन्दराचलपर गये हुए अन्धकासुरका महादेवजीद्वारा वध

वैशम्पायन उवाच

अन्धको नारदवचः श्रुत्वा तत्त्वेन भारत।
मन्दरं पर्वतं गन्तुं मनो दध्रे महासुरः॥ १

सोऽसुरान् सुमहातेजाः समानीय महाबलः।
जगाम मन्दरं क्रुद्धो महादेवालयं तदा॥ २

तं महाभ्रप्रतिच्छन्नं महौषधिसमाकुलम्।
नानासिद्धसमाकीर्णं महर्षिगणसेवितम्॥ ३

चन्दनागुरुवृक्षाढ्यं सरलद्रुमसंकुलम्।
किन्नरोद्गीतरम्यं च बहुनागकुलाकुलम्॥ ४

वातोद्धूतैर्वनैः फुल्लैर्नृत्यन्तमिव च क्वचित्।
प्रस्नुतैर्धातुभिश्चित्रैर्विलिप्तमिव च क्वचित्॥ ५

पक्षिस्वनैः सुमधुरैर्नदन्तमिव च क्वचित्।
हंसैः शुचिपदैः कीर्णं सम्पतद्भिरितस्ततः॥ ६

महाबलैश्च महिषैश्चरद्भिर्दैत्यनाशनैः।
चन्द्रांशुविमलैः सिंहैर्भूषितं हेमसंचयम्॥ ७

मृगराजसमाकीर्णं मृगवृन्दनिषेवितम्।
स मन्दरं गिरिं प्राह रूपिणं बलदर्पितः॥ ८

वेत्सि त्वं हि यथावध्यो वरदानादहं पितुः।
मम चैव वशे सर्वं त्रैलोक्यं सचराचरम्॥ ९

प्रतियोद्धुं न मां कश्चिदिच्छत्यपि गिरे भयात्।
पारिजातवनं चास्ति तव सानौ महागिरे।
सर्वकामप्रदैः पुष्पैर्भूषितं रत्नमुत्तमम्॥ १०

वैशम्पायनजी कहते हैं—भारत! नारदजीकी बातको ठीकसे सुनकर महान् असुर अन्धकने मन्दराचलपर जानेका विचार किया॥ १॥ वह महातेजस्वी, महाबली दैत्य बहुत-से असुरोंको एकत्र करके कुपित हो उस समय महादेवजीके निवासस्थान मन्दरपर्वतपर गया॥ २॥ वह पर्वत बड़े-बड़े मेघोंसे आच्छादित, महौषधियोंसे सम्पन्न, नाना प्रकारके सिद्धोंसे भरा हुआ और महर्षियोंके समुदायसे सेवित था॥ ३॥ वहाँ सब ओर चन्दन और अगुरुके वृक्ष शोभा पाते थे। सरल (चीड़)-के वृक्ष सर्वत्र फैले हुए थे। किन्नरोंके उच्च स्वरसे गाये जानेवाले मधुर गीतोंसे उसकी रमणीयता बढ़ गयी थी। वह बहुत-से नागकुलों (हाथियों अथवा सर्पों)-से व्याप्त था॥ ४॥ कहीं वायुके वेगसे कम्पित हुए प्रफुल्ल काननोंद्वारा वह नृत्य करता-सा जान पड़ता था। कहीं पिघलकर बहे हुए विचित्र धातुओंके कारण वह चन्दन आदिसे चर्चित हुआ-सा प्रतीत होता था॥ ५॥ कहीं पक्षियोंके अत्यन्त मधुर शब्दोंसे वह पर्वत गरजता या कोलाहल करता-सा जान पड़ता था। पवित्र स्थानोंपर बैठनेवाले हंस वहाँ इधर-उधर उड़ते-फिरते थे; जिनसे सारा पर्वत व्याप्त प्रतीत होता था॥ ६॥ वहाँ दैत्योंका विनाश करनेमें समर्थ महाबली भैंसे विचरण करते थे। चन्द्रमाकी किरणोंके समान निर्मल कान्तिवाले सिंह उस पर्वतकी शोभा बढ़ाते थे। वह समस्त शैल सुवर्णकी राशिरूप था॥ ७॥ वहाँ बहुत-से मृगराज (सिंह) सब ओर बिखरे हुए थे। झुंड-के-झुंड मृग उस पर्वतका सेवन करते थे। वह मन्दरपर्वत देवतारूपमें मूर्तिमान् होकर अन्धकासुरके सामने प्रकट हुआ। उसे देखकर बलके घमंडमें भरे हुए अन्धकासुरने कहा— ॥ ८॥ 'महागिरे! यह तो तुम जानते ही होगे कि मैं किस प्रकार अपने पिताके वरदानसे सबके लिये अवध्य हूँ। चराचर प्राणियोंसहित समस्त त्रिलोकी इस समय मेरे वशमें है। कोई भी भयके कारण मुझसे युद्ध करना नहीं चाहता। मुझे पता लगा है कि तुम्हारे शिखर-पर सम्पूर्ण कामनाओंको देनेवाले पुष्पोंसे विभूषित एक पारिजात वन है, जो यहाँका उत्तम रत्न है'॥ ९-१०॥

तदाचक्ष्वोपभोक्ष्यामि तद् वनं तव सानुजम्।
किं करिष्यसि क्रुद्धस्त्वं मनो हि त्वरते मम॥ ११
त्रातारं नानुपश्यामि मया खल्वर्दितस्य ते।
इत्युक्तो मन्दरस्तेन तत्रैवान्तरधीयत॥ १२
ततोऽन्धकोऽतिरुषितो वरदानेन दर्पितः।
मुमोच नादं सुमहदिदं वचनमब्रवीत्॥ १३
मया वै त्वं याच्यमानो यस्मान्न बहु मन्यसे।
अहं चूर्णीकरोमि त्वां बलं पर्वत पश्य मे॥ १४
एवमुक्त्वा गिरेः शृङ्गमुत्पाट्य बहुयोजनम्।
निष्पिपेष गिरेस्तस्य शृङ्गेष्वन्यत्र वीर्यवान्॥ १५
सह तैरसुरैः सर्वैर्वरदानेन दर्पितः।
तं प्रच्छन्ननदीजालं मन्यमानं महागिरिम्॥ १६
विदित्वा भगवान् रुद्रश्चकारानुग्रहं गिरेः।
सविशेषतरं वीर मत्तद्विपमृगायुतम्॥ १७
नदीजालैर्बहुतरैराचितं चित्रकाननम्।
नभश्च्युतैः पुरा यद्वत् तद्वदेव विराजते॥ १८
अथ देवप्रभावेण शृङ्गाण्युत्पाटितानि तु।
क्षिप्तानि चासुरानेव घ्नन्ति घोराणि भारत॥ १९
क्षिप्त्वा ये प्रपलायन्ते शृङ्गाणि तु महासुराः।
शृङ्गैस्तैस्तैः स्म वध्यन्ति पर्वतस्य जनाधिप॥ २०
ये स्वस्थास्त्वसुरास्तत्र तिष्ठन्ति गिरिसानुषु।
शृङ्गैस्ते न स्म वध्यन्ते मन्दरस्य महागिरेः॥ २१
ततोऽन्धकस्तदा दृष्ट्वा सेनां तां मर्दितां तथा।
रुषितः सुमहानादं नर्दित्वैवं तदाब्रवीत्॥ २२
आह्वये तं वनं यस्य युद्धार्थमुपतिष्ठतु।
किं त्वयाचल युद्धेन हताः स्म च्छद्मना रणे॥ २३
एवमुक्ते त्वन्धकेन वृषभेण महेश्वरः।
सम्प्राप्तः शूलमुद्यम्य देवोऽन्धकजिघांसया॥ २४
प्रमथानां गणैर्धीमान् वृतो वै बहुलोचनः।
तथा भूतगणैश्चैव धीमान् भूतगणेश्वरः॥ २५

'वह कहाँ है, उसे बताओ? मैं तुम्हारे शिखरपर उत्पन्न हुए उस वनका उपभोग करूँगा। मेरा मन उसमें जानेके लिये उतावला हो उठा है। तुम कुपित होकर मेरा क्या कर लोगे? मुझे ऐसा कोई पुरुष नहीं दिखायी देता, जो मेरे द्वारा पीड़ित होनेपर तुम्हारी निश्चितरूपसे रक्षा कर सके।' उसके ऐसा कहनेपर मन्दराचलका वह अधिष्ठाता देव वहीं अन्तर्धान हो गया॥ ११-१२॥ तब वरदानसे घमंडमें भरा हुआ अन्धक अत्यन्त रुष्ट हो बड़े जोरसे सिंहनाद करने लगा और इस प्रकार बोला—'अरे पर्वत! मेरे याचना करनेपर भी जो तू मुझे अधिक सम्मान नहीं दे रहा है, इससे कुपित होकर मैं तुझे अभी चूर्ण किये देता हूँ। देख ले मेरा बल'॥ १३-१४॥ ऐसा कहकर वरदानसे दर्पमें भरे हुए उस पराक्रमी दैत्यने उन सब असुरोंके साथ मन्दराचलके एक शिखरको, जो अनेक योजन विस्तृत था, उखाड़ लिया और उसे उसी पर्वतके दूसरे शिखरोंपर पटककर पीस डाला। उस महान् पर्वतने अपनी नदियोंके समुदायको भी छिपा लिया। उसकी परिस्थितिको समझकर भगवान् रुद्रने उस पर्वतपर अनुग्रह किया। वीर! भगवान्‌के अनुग्रहसे पारिजात आदि विशेषतर वनोंसे युक्त, मतवाले हाथियों और मृगोंसे सम्पन्न तथा आकाशसे गिरे हुए बहुसंख्यक नदी समूहोंसे व्याप्त वह विचित्र कानननोंवाला पर्वत जैसा पहले था, उसी रूपमें प्रकाशित होने लगा॥ १५—१८॥ भरतनन्दन! उन महादेवजीके प्रभावसे असुरोंद्वारा उखाड़कर फेंके गये उसके घोर शिखर उन असुरोंको ही मार डालते थे॥ १९॥ जनेश्वर! जो महान् असुर मन्दराचलके शिखरोंको फेंककर भागते थे, वे उन्हीं शिखरोंद्वारा मारे जाते थे॥ २०॥ जो असुर वहाँ पर्वत-शिखरोंपर स्वस्थभावसे खड़े थे, वे महागिरि मन्दरके उन शिखरोंद्वारा नहीं मारे जाते थे॥ २१॥ तब अन्धकने अपनी उस सेनाको कुचली गयी देख उस समय रोषपूर्वक महान् सिंहनाद करके इस प्रकार कहा—॥ २२॥ 'अचल! तेरे साथ युद्ध करनेसे क्या लाभ? तूने रणभूमिमें दैत्योंको छलसे मारा है। अब मैं उस पुरुषको ललकारता हूँ, जिसका यह वन है। वह युद्धके लिये मेरे सामने उपस्थित हो'॥ २३॥ अन्धकासुरके ऐसा कहनेपर उसे मार डालनेकी इच्छासे भगवान् महेश्वरदेव त्रिशूल उठाये अपने वृषभके द्वारा वहाँ आ पहुँचे॥ २४॥ भूतगणोंके स्वामी बुद्धिमान् भगवान् त्रिलोचन प्रमथगणों तथा भूत-समूहोंसे घिरे हुए थे॥ २५॥

प्रचकम्पे ततः कृत्स्नं त्रैलोक्यं रुषिते हरे।
सिन्धवश्च प्रतिस्त्रोतमूहुः प्रज्वलितोदकाः॥ २६

जग्मुर्दिशोऽग्निदाहाश्च सर्वे ते हरतेजसा।
युयुधुश्च ग्रहाः सर्वे विपरीता जनाधिप॥ २७

चेलुश्च गिरयस्तत्र काले कुरुकुलोद्वह।
प्रववर्षाथ पर्जन्यः सधूमाङ्गारवृष्टयः॥ २८

उष्णभाश्चन्द्रमाश्चासीत् सूर्यः शीतप्रभस्तथा।
न ब्रह्म विविदुस्तत्र मुनयो ब्रह्मवादिनः॥ २९

वडवाः सुषुवुर्गाश्च गावोऽश्वानपि चानघ।
पेतुर्वृक्षाश्च मेदिन्यामच्छिन्ना भस्मसात्कृताः॥ ३०

बाधन्ते वृषभा गाश्च गावश्चारुरुहुर्वृषान्।
राक्षसा यातुधानाश्च पिशाचाश्चापि सर्वशः॥ ३१

विपरीतं जगद् दृष्ट्वा महादेवस्तथागतम्।
मुमोच भगवाञ्छूलं प्रदीप्ताग्निसमप्रभम्॥ ३२

तत् पपात हरोत्सृष्टमन्धकोरसि दुर्द्धरम्।
भस्मसाच्चाकरोद् रौद्रमन्धकं साधुकण्टकम्॥ ३३

ततो देवगणाः सर्वे मुनयश्च तपोधनाः।
शंकरं तुष्टुवुश्चैव जगच्छत्रौ निबर्हिते॥ ३४

देवदुन्दुभयो नेदुः पुष्पवृष्टिः पपात ह।
त्रैलोक्यं निर्वृतं चासीन्नरेन्द्र विगतज्वरम्॥ ३५

प्रजगुर्देवगन्धर्वा ननृतुश्चाप्सरोगणाः।
जेपुश्च ब्राह्मणा वेदानीजुश्च क्रतुभिस्तदा॥ ३६

ग्रहाः प्रकृतिमापेदुरूहुर्नद्यो यथा पुरा।
न जज्वाल जले वह्निराशाः सर्वाः प्रसेदिरे॥ ३७

मन्दरः पर्वतश्रेष्ठः पुनरेव रराज ह।
श्रिया परमया जुष्टः सर्वतेजःसमुच्छ्रयात्॥ ३८

रेमे सोमश्च भगवान् पारिजातवने हरः।
सुप्रचारान् सुरान् कृत्वा शक्रादीन् धर्मतः प्रभुः॥ ३९

भगवान् शङ्करके रुष्ट होनेपर सारी त्रिलोकी काँप उठी। नदियाँ अपने प्रवाहके विपरीत उद्गमस्थानकी ओर बहने लगीं। उनका जल खौल उठा॥ २६॥ जनेश्वर! महादेवजीके तेजसे सम्पूर्ण दिशाओंमें अग्निदाह फैल गये और समस्त ग्रह विपरीत होकर परस्पर जूझने लगे॥ २७॥ कुरुकुलधुरंधर वीर! उस समय सारे पर्वत हिलने लगे और उनके ऊपर मेघ धूमयुक्त अङ्गारोंकी वर्षा करने लगे॥ २८॥ चन्द्रमाकी शीतल किरणें गरम हो गयीं। सूर्यकी प्रभा ठंडी पड़ गयी। ब्रह्मवादी मुनियोंका सारा ब्रह्मज्ञान भूल गया॥ २९॥ निष्पाप नरेश्वर! घोड़ियोंके पेटसे गायके बछड़े पैदा होने लगे और गौएँ घोड़ोंको जन्म देने लगीं। पृथ्वीपर बिना काटे ही बहुत-से वृक्ष भस्म होकर गिर पड़े॥ ३०॥ साँड़ गौओंको सताने लगे। गौएँ भी साँड़ोंपर चढ़ जाती थीं। राक्षस, यातुधान और पिशाच—ये सब-के-सब (प्राणियोंको कष्ट देने लगे)॥ ३१॥ संसारकी इस प्रकार विपरीत अवस्था देख भगवान् शङ्करने प्रज्वलित अग्निके समान तेजस्वी अपना त्रिशूल छोड़ा॥ ३२॥ भगवान् शङ्करका छोड़ा हुआ वह दुःसह अस्त्र अन्धकासुरकी छातीपर गिरा। उसने साधुओंके लिये कण्टकरूप भयंकर अन्धकासुरको जलाकर भस्म कर दिया॥ ३३॥ तदनन्तर समस्त देवगण और तपोधन मुनि जगत्के शत्रु अन्धकासुरके मारे जानेपर भगवान् शङ्करकी स्तुति करने लगे॥ ३४॥ नरेन्द्र! देवताओंकी दुन्दुभियाँ बज उठीं। आकाशसे फूलोंकी वर्षा होने लगी और तीनों लोकोंके प्राणियोंने निश्चिन्त होकर संतोषकी साँस ली॥ ३५॥ उस समय देवगन्धर्व गाने और अप्सराएँ नाचने लगीं। ब्राह्मणलोग वेदोंका जप, स्वाध्याय तथा यज्ञोंका अनुष्ठान करने लगे॥ ३६॥ ग्रह स्वाभाविक स्थितिमें आ गये। नदियाँ पहलेके समान बहने लगीं। जलमें आगका जलना बंद हो गया और सारी दिशाएँ प्रसन्न हो गयीं॥ ३७॥ पर्वतश्रेष्ठ मन्दराचल अपने सम्पूर्ण तेजकी वृद्धि होनेके कारण परम शोभासे सम्पन्न हो पुनः पूर्ववत् प्रकाशित होने लगा॥ ३८॥ सबके प्रभु उमासहित भगवान् शङ्कर इन्द्र आदि देवताओंको धर्मतः सर्वत्र घूमने-फिरने योग्य बनाकर पारिजातवनमें विहार करने लगे॥ ३९॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे विष्णुपर्वणि अन्धकवधे सप्ताशीतितमोऽध्यायः॥ ८७॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत विष्णुपर्वमें अन्धकवधविषयक सत्तासीवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ८७॥

अष्टाशीतितमोऽध्यायः

पिण्डारकतीर्थके अन्तर्गत समुद्रमें श्रीकृष्ण तथा अन्य यादवोंका जलविहार

जनमेजय उवाच

मुनेऽन्धकवधः श्राव्यः श्रुतोऽयं खलु भो मया।
शान्तिस्त्रयाणां लोकानां कृता देवेन धीमता॥ १

निकुम्भस्य हतं देहं द्वितीयं चक्रपाणिना।
यदर्थं च यथा चैव तद् भवान् वक्तुमर्हति॥ २

वैशम्पायन उवाच

श्रद्दधानस्य राजेन्द्र वक्तव्यं भवतोऽनघ।
चरितं लोकनाथस्य हरेरमिततेजसः॥ ३

द्वारवत्यां निवसतो विष्णोरतुलतेजसः।
समुद्रयात्रा सम्प्राप्ता तीर्थे पिण्डारके नृप॥ ४

उग्रसेनो नरपतिर्वसुदेवश्च भारत।
निक्षिप्तौ नगराध्यक्षौ शेषाः सर्वे विनिर्गताः॥ ५

पृथग्बलः पृथग्धीमाँल्लोकनाथो जनार्दनः।
गोष्ठ्यः पृथक्कुमाराणां नृदेवामिततेजसाम्॥ ६

गणिकानां सहस्राणि निःसृतानि नराधिप।
कुमारैः सह वार्ष्णेयै रूपवद्भिः स्वलंकृतैः॥ ७

दैत्याधिवासं निर्जित्य यदुभिर्दृढविक्रमैः।
वेश्या निवेशिता वीर द्वारवत्यां सहस्रशः॥ ८

सामान्यास्ताः कुमाराणां क्रीडानार्यो महात्मनाम्।
इच्छाभोग्या गुणैरेव राजन्या वेषयोषितः॥ ९

स्थितिरेषा हि भैमानां कृता कृष्णेन धीमता।
स्त्रीनिमित्तं भवेद् वैरं मा यदूनामिति प्रभो॥ १०

रेवत्या चैकया सार्धं बलो रेमेऽनुकूलया।
चक्रवाकानुरागेण यदुश्रेष्ठः प्रतापवान्॥ ११

जनमेजय बोले—मुने! अन्धकवधका प्रसंग अवश्य सुनने योग्य है। मैंने उसे अच्छी तरह सुना है। अन्धकासुरका वध करके बुद्धिमान् महादेवजीने तीनों लोकोंमें शान्ति फैला दी॥ १॥ अब मैं यह जानना चाहता हूँ कि चक्रपाणि भगवान् श्रीकृष्णने निकुम्भके दूसरे शरीरका किसलिये और किस प्रकार वध किया था। आप उसे बतानेकी कृपा करें॥ २॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—निष्पाप राजेन्द्र! तुम श्रद्धालु हो; इसलिये तुमसे अमित तेजस्वी जगन्नाथ श्रीहरिके चरित्रका वर्णन करना उचित है॥ ३॥ नरेश्वर! एक समयकी बात है, द्वारकामें रहते समय अतुल तेजस्वी श्रीकृष्णको पिण्डारकतीर्थमें समुद्रयात्राका अवसर प्राप्त हुआ॥ ४॥ भरतनन्दन! राजा उग्रसेन तथा वसुदेव—इन दोनोंको नगरका अध्यक्ष बनाकर द्वारकापुरीमें ही छोड़ दिया गया। शेष सब लोग यात्राके लिये निकले॥ ५॥ नरदेव! बलरामजी अपने परिवारके साथ अलग थे, सम्पूर्ण जगत्के स्वामी बुद्धिमान् भगवान् जनार्दनका दल अलग था तथा अमित तेजस्वी कुमारोंकी मण्डलियाँ भी अलग-अलग थीं॥ ६॥ नरेश्वर! वस्त्राभूषणोंसे अलंकृत तथा रूप-सौन्दर्यसे सम्पन्न वृष्णिवंशी कुमारोंके साथ सहस्रों गणिकाएँ भी यात्राके लिये निकलीं॥ ७॥ वीर! सुदृढ़ पराक्रमी यादववीरोंने दैत्योंके निवास-स्थान समुद्रको जीतकर वहाँ द्वारकापुरीमें सहस्रों वेश्याओंको बसा दिया था॥ ८॥ विविध वेश धारण करनेवाली वे युवतियाँ महामनस्वी यादवकुमारोंके लिये सामान्य क्रीड़ानारियाँ थीं। वे अपने गुणोंद्वारा सभी कुमारोंकी इच्छाके अनुसार उनके उपभोगमें आनेवाली थीं। राजकुमारोंकी उपभोग्या होनेके कारण वे राजन्या कहलाती थीं॥ ९॥ प्रभो! बुद्धिमान् श्रीकृष्णने भीमवंशी यादवोंके लिये ऐसी व्यवस्था कर दी थी, जिससे यादवोंमें स्त्रीके कारण परस्पर वैर न हो॥ १०॥ प्रतापी यदुश्रेष्ठ बलरामजी सदा अपने अनुकूल रहनेवाली एकमात्र रेवतीदेवीके साथ चकवा-चकवीके समान परस्पर अनुरागपूर्वक रमण करते थे॥ ११॥

कादम्बरीपानकलो भूषितो वनमालया।
चिक्रीड सागरजले रेवत्या सहितो बलः॥ १२

षोडश स्त्रीसहस्राणि जले जलजलोचनः।
रमयामास गोविन्दो विश्वरूपेण सर्वदृक्॥ १३

अहमिष्टा मया सार्द्धं जले वसति केशवः।
इति ता मेनिरे सर्वा रात्रौ नारायणस्त्रियः॥ १४

सर्वाः सुरतचिह्नाङ्ग्यः सर्वाः सुरततर्पिताः।
मानमूहुश्च ताः सर्वा गोविन्दे बहुमानजम्॥ १५

अहमिष्टाहमिष्टेति स्निग्धे परिजने तदा।
नारायणस्त्रियः सर्वा मुदा शश्लाघिरे शुभाः॥ १६

करजद्विजचिह्नानि कुचाधरगतानि ताः।
दृष्ट्वा दृष्ट्वा जहृषिरे दर्पणे कमलेक्षणाः॥ १७

गोत्रमुद्दिश्य कृष्णस्य जगिरे कृष्णयोषितः।
पिबन्त्य इव कृष्णस्य नयनैर्वदनाम्बुजम्॥ १८

कृष्णार्पितमनोदृष्ट्यः कान्ता नारायणस्त्रियः।
मनोहरतरा राजन्नभवन्नेकनिश्चयाः॥ १९

एकार्पितमनोदृष्ट्यो नेर्ष्यां ताश्चक्रिरेऽङ्गनाः।
नारायणेन देवेन तर्प्यमाणमनोरथाः॥ २०

शिरांसि गर्वितान्यूहुः सर्वा निरवशेषतः।
वाल्लभ्यं केशवमयं वहन्त्यश्चारुदर्शनाः॥ २१

ताभिस्तु सह चिक्रीड सर्वाभिर्हरिरात्मवान्।
विश्वरूपेण विधिना समुद्रे विमले जले॥ २२

उवाह सर्वगन्धाढ्यं स्वच्छं वारि महोदधिः।
तोयं विलवणं मृष्टं वासुदेवस्य शासनात्॥ २३

गुल्फदघ्नं जानुदघ्नमूरुदघ्नमथापि वा।
नार्यस्ताः स्तनदघ्नं वा जलं समभिकाङ्क्षितम्॥ २४

वे कादम्बरी (मधु)-का पान करके मस्त रहते थे। वनमालासे विभूषित हुए बलराम वहाँ रेवतीके साथ समुद्रजलमें क्रीडा करने लगे॥ १२॥ सबके द्रष्टा कमलनयन गोविन्द सर्वरूपसे अर्थात् जितनी स्त्रियाँ थीं, उतने ही रूप धारण करके जलमें अपनी सोलह हजार स्त्रियोंको रमाते थे॥ १३॥ उस रातमें नारायणस्वरूप श्रीकृष्णकी वे सारी रानियाँ यही मानती थीं कि मैं ही इन्हें अधिक प्रिय हूँ; अतः केशव मेरे ही साथ जलमें विहार कर रहे हैं॥ १४॥ सभीके अङ्गोंमें सुरतके चिह्न थे। सभी सुरत-सुखका अनुभव करके तृप्त हो गयी थीं; अतः वे सब-की-सब गोविन्दके प्रति बहुमानजनित सम्मानका भाव धारण करती थीं॥ १५॥ श्रीकृष्णकी वे सभी सुन्दरी रानियाँ अपने स्नेही परिजनोंके समीप प्रसन्नतापूर्वक अपने भाग्यकी सराहना करती हुई कहती थीं कि मैं ही अपने प्राणनाथको अधिक प्रिय हूँ। मैं ही उन्हें अधिक प्यारी हूँ॥ १६॥ वे कमलनयनी सुन्दरियाँ दर्पणमें अपने कुचोंपर श्रीकृष्णके नखक्षत और अधरोंपर दन्तक्षतके चिह्न देख-देखकर हर्षमें भर जाती थीं॥ १७॥ श्रीकृष्णकी वे सुन्दरी पत्नियाँ उनके नाम ले-लेकर गीत गातीं और अपने नेत्रपुटोंसे उनके मुखारविन्दका रस पान करती थीं॥ १८॥ राजन्! उनके मन और नेत्र श्रीकृष्णमें ही लगे रहते थे। नारायणकी वे कमनीय भार्याएँ अत्यन्त मनोहारिणी और एक निश्चयपर अटल रहनेवाली थीं॥ १९॥ नारायणदेव उनके सारे मनोरथ पूर्ण करके उन्हें तृप्त रखते थे; अतः वे अङ्गनाएँ एकको ही अपना हृदय और दृष्टि अर्पित करके भी आपसमें कभी ईर्ष्या नहीं करती थीं॥ २०॥ वे सारी-की-सारी मनोहर दृष्टिवाली (अथवा मनोहर दिखायी देनेवाली) सुन्दरियाँ केशवकी वल्लभा होनेका अथवा केशवको प्राणवल्लभके रूपमें प्राप्त करनेका सौभाग्य वहन करती हुई अपने सिरको बड़े गर्वसे ऊँचा किये रहती थीं॥ २१॥ अपने मनको वशमें रखनेवाले भगवान् श्रीकृष्ण समुद्रके निर्मल जलमें पूर्वोक्त विश्वरूप विधिसे उन सबके साथ क्रीड़ा करते थे॥ २२॥ भगवान् वासुदेवके शासनसे उस समय महासागर समस्त सुगन्धोंसे युक्त, स्वच्छ, लवणरहित और शुद्ध स्वादिष्ट जल धारण करता था॥ २३॥ समुद्रका वह जल कहीं घुट्ठीभर था तो कहीं घुटनोंतक, कहीं जाँघोंतक था तो कहीं स्तनोंतक। उन नारियोंको इतना ही जल अभीष्ट था॥ २४॥

सिषिचुः केशवं पत्न्यो धारा इव महोदधिम्।
सिषेच ताश्च गोविन्दो मेघः फुल्ललता इव॥ २५

अवलम्ब्य पराः कण्ठे हरिं हरिणलोचनाः।
उपगूहस्व मां वीर पतामीत्यब्रुवन् स्त्रियः॥ २६

काश्चित् काष्ठमयैस्तेरुः प्लवैः सर्वाङ्गशोभनाः।
क्रौञ्चबर्हिणनागानामाकारसदृशैः स्त्रियः॥ २७

मकराकृतिभिश्चान्या मीनाभैरपि चापराः।
बहुरूपाकृतिधरैः पुप्लुवुश्चापराः स्त्रियः॥ २८

स्तनकुम्भैस्तथा तेरुः कुम्भैरिव तथापराः।
समुद्रसलिले रम्ये हर्षयन्त्यो जनार्दनम्॥ २९

रराम सह रुक्मिण्या जले तस्मिन् मुदा युतः।
येनैव कार्ययोगेन रमतेऽमरसत्तमः॥ ३०

तत् तदेव हि ताश्चक्रुर्मुदा नारायणस्त्रियः।
तनुवस्त्रावृतास्तन्व्यो लीलयन्त्यस्तथापराः।
चिक्रीडुर्वासुदेवस्य जले जलजलोचनाः॥ ३१

यस्या यस्यास्तु यो भावस्तां तां तेनैव केशवः।
अनुप्रविश्य भावज्ञो निनायात्मवशं वशी॥ ३२

हृषीकेशोऽपि भगवान् हृषीकेशः सनातनः।
बभूव देशकालेन कान्तावशगतः प्रभुः॥ ३३

कुलशीलसमोऽस्माकं योग्योऽयमिति मेनिरे।
वंशरूपेण वर्तन्तमङ्गनास्ता जनार्दनम्॥ ३४

तदा दाक्षिण्ययुक्तं तं स्मितपूर्वाभिभाषिणम्।
कृष्णं भार्याश्चकमिरे भक्त्या च बहु मेनिरे॥ ३५

पृथग्गोष्ठ्यः कुमाराणां प्रकाशं स्त्रीगणैः सह।
अलंचक्रुर्जलं वीराः सागरस्य गुणाकराः॥ ३६

श्रीकृष्णकी वे रानियाँ उनपर सब ओरसे जल उलीचने लगीं, जैसे नदियोंकी अनेक धाराएँ महासागरको सींचती हैं। भगवान् गोविन्द भी उनपर जल छिड़कने लगे, मानो मेघ खिली हुई लताओंपर जल बरसा रहा हो॥ २५॥ कितनी ही मृगनयनी नारियाँ श्रीहरिके कण्ठमें अपनी बाँहें डालकर कहने लगीं—'वीर! मुझे हृदयसे लगा लो, अपनी भुजाओंमें कस लो; अन्यथा मैं जलमें गिरी जाती हूँ'॥ २६॥ कितनी ही सर्वाङ्गसुन्दरी स्त्रियाँ क्रौञ्च, मोर तथा नागोंके आकारमें बनी हुई काठकी नौकाओंद्वारा जलपर तैरने लगीं॥ २७॥ दूसरी-दूसरी स्त्रियाँ मगर, मत्स्य तथा अन्यान्य विविध प्राणियोंकी आकृति धारण करनेवाली नौकाओंद्वारा तैरने लगीं। कितनी ही रानियाँ समुद्रके रमणीय जलमें श्रीकृष्णको हर्ष प्रदान करती हुई घटोंके समान अपने स्तनकुम्भोंद्वारा तैर रही थीं॥ २८-२९॥ अमरशिरोमणि श्रीकृष्ण उस जलमें आनन्दपूर्वक महारानी रुक्मिणीके साथ रमण करते थे। वे जिस-जिस कार्य या उपायसे आनन्द मानते, उनकी वे सुन्दरी स्त्रियाँ प्रशंसापूर्वक वही-वही कार्य या उपाय करती थीं। महीन वस्त्रोंसे ढकी हुई दूसरी तन्वङ्गी एवं कमलनयनी स्त्रियाँ भाँति-भाँतिकी लीलाएँ करती हुई जलमें भगवान् श्रीकृष्णके साथ क्रीड़ा करती थीं॥ ३०-३१॥ जिस-जिस रानीके मनमें जो-जो भाव था, सबके भावोंको जानने और मनको वशमें रखनेवाले श्रीकृष्ण उसी-उसी भावसे उस स्त्रीके अन्तरमें प्रवेश करके उसे अपने वशमें कर लेते थे॥ ३२॥ इन्द्रियोंके प्रेरक और सबके स्वामी होकर भी सनातन भगवान् हृषीकेश देश-कालके अनुसार अपनी प्रेयसी पत्नियोंके वशमें हो गये थे॥ ३३॥ वे समस्त वनिताएँ अपने कुलके अनुरूप बर्ताव करनेवाले जनार्दनको ऐसा समझती थीं कि ये कुल और शीलमें समान होनेके कारण हमारे ही योग्य हैं॥ ३४॥ मुसकराकर बात करनेवाले तथा औदार्य-गुणसे सम्पन्न उन प्राणवल्लभ श्रीकृष्णको उस समय उनकी वे पत्नियाँ हृदयसे चाहने लगीं तथा भक्ति एवं अनुरागके कारण उनका बहुत सम्मान करने लगीं॥ ३५॥ यादवकुमारोंकी गोष्ठियाँ अलग थीं। वे वीर यादवकुमार उत्तम गुणोंकी खान थे और प्रकाशरूपसे स्त्रीसमुदायोंके साथ समुद्रके जलकी शोभा बढ़ा रहे थे॥ ३६॥

गीतनृत्यविधिज्ञानां तासां स्त्रीणां जनेश्वर।
तेजसाप्याहृतानां ते दाक्षिण्यात् तस्थिरे वशे॥ ३७

शृण्वन्तश्चारुगीतानि तथा स्वभिनयान्यपि।
तूर्याण्युत्तमनारीणां मुमुहुर्यदुपुङ्गवाः॥ ३८

पञ्चचूडां ततः कृष्णः कौबेर्यश्च वराप्सराः।
माहेन्द्रीश्चानयामास विश्वरूपेण हेतुना॥ ३९

ताः प्रोवाचाप्रमेयात्मा सान्त्वयित्वा जगत्प्रभुः।
उत्थापयित्वा प्रणताः कृताञ्जलिपुटास्तथा॥ ४०

क्रीडायुवत्यो भैमानां प्रविशध्वमशङ्किताः।
मत्प्रियार्थं वरारोहा रमयध्वं च यादवान्॥ ४१

दर्शयध्वं गुणान् सर्वान् नृत्यगीतै रहःसु च।
तथाभिनययोगेषु वाद्येषु विविधेषु च॥ ४२

एवं कृते विधास्यामि श्रेयो वो मनसेप्सितम्।
मच्छरीरसमा ह्येते सर्वे निरवशेषतः॥ ४३

शिरसाज्ञां तु ताः सर्वाः प्रतिगृह्य हरेस्तदा।
क्रीडायुवत्यो विविशुर्भैमानामप्सरोवराः॥ ४४

ताभिः प्रविष्टमात्राभिर्द्योतितः स महार्णवः।
सौदामिनीभिर्नभसि घनवृन्दमिवानघ॥ ४५

ता जले स्थलवत् स्थित्वा जगुश्चाप्यथ वादयन्।
चक्रुश्चाभिनयं सम्यक्स्वर्गावास इवाङ्गनाः॥ ४६

गन्धैर्माल्यैश्च ता दिव्यैर्वस्त्रैश्चायतलोचनाः।
हेलाभिर्हास्यभावैश्च जह्रुर्भैममनांसि ताः॥ ४७

कटाक्षैरिङ्गितैर्हास्यैः केलिरोषैः प्रसादितैः।
मनोऽनुकूलैर्भैमानां समाजह्रुर्मनांसि ताः॥ ४८

उत्क्षिप्योत्क्षिप्य चाकाशं वातस्कन्धान् बहूंश्च तान्।
मदिरावशगा भैमा मानयन्ति वराप्सराः॥ ४९

जनेश्वर! वे स्त्रियाँ गीत और नृत्यकी क्रियाको जाननेवाली थीं तथा उन कुमारोंके तेजसे स्वयं ही उनकी ओर आकृष्ट हुई थीं तो भी वे कुमार उदारताके कारण उनके वशमें स्थित थे॥ ३७॥ उन उत्तम नारियोंके मनोहर गीत और वाद्य सुनते तथा उनके सुन्दर अभिनय देखते हुए वे यदुपुङ्गववीर उनपर लट्टू हो रहे थे॥ ३८॥ तदनन्तर श्रीकृष्णने विश्वरूप होनेके कारण स्वयं ही प्रेरणा देकर पञ्चचूड़ा नामवाली अप्सराको तथा कुबेरभवन और इन्द्रभवनकी भी सुन्दरी अप्सराओंको वहाँ बुला मँगाया॥ ३९॥ अप्रमेयस्वरूप जगदीश्वर श्रीकृष्णने हाथ जोड़कर चरणोंमें पड़ी हुई उन अप्सराओंको उठाया और सान्त्वना देकर कहा—॥ ४०॥ 'सुन्दरियो! तुम निःशङ्क होकर भीमवंशी यादवकुमारोंकी क्रीडायुवतियोंमें प्रविष्ट हो जाओ और मेरा प्रिय करनेके लिये इन यादवोंको सुख पहुँचाओ॥ ४१॥ नाच, गान, एकान्त-परिचर्या, अभिनय-योग तथा नाना प्रकारके बाजे बजानेकी कलामें तुमलोगोंके पास जितने गुण हों, उन सबको दिखाओ॥ ४२॥ ऐसा करनेपर मैं तुम्हें मनोवाञ्छित कल्याण प्रदान करूँगा; क्योंकि ये सब-के-सब यादव मेरे शरीरके ही समान हैं'॥ ४३॥ उस समय श्रीहरिकी उस आज्ञाको शिरोधार्य करके वे सब श्रेष्ठ अप्सराएँ यादवकुमारोंकी क्रीडा-युवतियोंमें सम्मिलित हो गयीं॥४४॥ निष्पाप नरेश! उनके प्रवेश करते ही वह महासागर दिव्य प्रभासे उद्दीप्त हो उठा। ठीक उसी तरह, जैसे आकाशमें मेघोंका समुदाय बिजलियोंके चमकनेसे प्रकाशित हो उठता है॥ ४५॥ वे दिव्य अङ्गनाएँ जलमें भी स्थलकी ही भाँति खड़ी हो स्वर्गलोककी ही भाँति गीत गाने, बाजे बजाने तथा सुन्दर अभिनय करने लगीं॥ ४६॥ वे विशाल नेत्रोंवाली सुन्दरियाँ दिव्य गन्ध, माल्य तथा वस्त्रोंसे सुशोभित हो अपनी विविध लीलाओं तथा हास्ययुक्त हाव-भावोंसे यादवकुमारोंके चित्त चुराने लगीं॥ ४७॥ कटाक्षों, संकेतों, क्रीडाजनित रोषों तथा प्रसन्नतासूचक मनोऽनुकूल भावोंके द्वारा वे भीमवंशियोंके मन मोहने लगीं॥ ४८॥ वे अप्सराएँ उन यादवकुमारोंको ऊपर-ऊपर आकाशमें प्रवह आदि वायुके मार्गोंमें ले जाकर उनके साथ विहार करती थीं, अतः वे मदमत्त हुए भीमवंशीकुमार उन सुन्दरी अप्सराओंका बड़ा सम्मान करते थे॥ ४९॥

कृष्णोऽपि तेषां प्रीत्यर्थं विजह्रे वियति प्रभुः।
सर्वैः षोडशभिः सार्द्धं स्त्रीसहस्रैर्मुदान्वितः॥ ५०

प्रभावज्ञास्तु ते वीराः कृष्णस्यामिततेजसः।
न जग्मुर्विस्मयं भैमा गाम्भीर्यं परमास्थिताः॥ ५१

केचिद् रैवतकं गत्वा पुनरायान्ति भारत।
गृहान्यन्ये वनान्यन्ये काङ्क्षितान्यरिमर्दन॥ ५२

अपेयः पेयसलिलः सागरश्चाभवत् तदा।
आज्ञया लोकनाथस्य विष्णोरतुलतेजसः॥ ५३

अधावन् स्थलवच्चापि जले जलजलोचनाः।
गृह्य हस्ते तथा नार्यो युक्तामज्जंस्तथापि च॥ ५४

भक्ष्यभोज्यानि पेयानि चोष्यं लेह्यं तथैव च।
बहुप्रकारं मनसा ध्याते तेषां भवत्युत॥ ५५

अम्लानमाल्यधारिण्यस्ताः स्त्रियस्ताननिन्दितान्।
रहःसु रमयांचक्रुः स्वर्गे देवरतानुगाः॥ ५६

नौभिर्गृहप्रकाराभिश्चिक्रीडुरपराजिताः।
स्नातानुलिप्तमुदिताः सायाह्नेऽन्धकवृष्णयः॥ ५७

आयताश्चतुरस्राश्च वृत्ताश्च स्वस्तिकास्तथा।
प्रासादा नौषु कौरव्य विहिता विश्वकर्मणा॥ ५८

कैलासमन्दरच्छन्दा मेरुच्छन्दास्तथैव च।
तथा नानावयश्छन्दास्तथेहामृगरूपिणः॥ ५९

वैडूर्यतोरणैश्चित्राश्चित्राभिर्मणिभक्तिभिः।
मसारगल्वर्कमयैश्चित्रभक्तिशतैरपि॥ ६०

आक्रीडगरुडच्छन्दाश्चित्राः कनकरीतिभिः।
क्रौञ्चच्छन्दाः शुकच्छन्दा गजच्छन्दास्तथापरे॥ ६१

भगवान् श्रीकृष्ण भी उन यादवोंकी प्रसन्नताके लिये आकाशमें स्थित हो अपनी सोलह हजार स्त्रियोंके साथ प्रसन्नतापूर्वक विहार करते थे॥ ५०॥ वे वीर यादव अमित तेजस्वी श्रीकृष्णका प्रभाव जानते थे; अतः आकाशमें क्रीडा करनेके कारण उन्हें कोई आश्चर्य नहीं हुआ। वे उस दशामें भी अत्यन्त गम्भीर बने रहे॥ ५१॥ शत्रुमर्दन! भरतनन्दन! कुछ यादव रैवतक पर्वतपर जाकर फिर लौट आते थे। दूसरे घरोंमें जाकर आ जाते तथा अन्य लोग अभिलषित वनोंमें घूम-फिरकर लौटते थे॥ ५२॥ उस समय अतुल तेजस्वी लोकनाथ भगवान् विष्णु (श्रीकृष्ण)-की आज्ञासे अपेय समुद्रका जल भी पीनेयोग्य हो गया था॥ ५३॥ वे कमलनयनी नारियाँ जब इच्छा होती, तब जलमें भी स्थलकी भाँति दौड़ती थीं और जब चाहतीं परस्पर हाथ पकड़कर एक साथ ही गोता लगा लेती थीं॥ ५४॥ यादवोंके मनसे चिन्तन करते ही उनके लिये नाना प्रकारके भक्ष्य, भोज्य, पेय, चोष्य और लेह्य पदार्थ प्रस्तुत हो जाते थे॥ ५५॥ जो कभी कुम्हलाती नहीं थी, ऐसी माला धारण करनेवाली वे दिव्य अप्सराएँ स्वर्गमें देवताओंके साथ की गयी रतिक्रीडाका अनुसरण करती हुई उन श्रेष्ठ यादवकुमारोंको एकान्तमें रमणका अवसर देती थीं॥ ५६॥ किसीसे पराजित न होनेवाले अन्धक और वृष्णिवंशके वीर सायंकालमें स्नानके पश्चात् अनुलेपन धारण करके आनन्दमग्न हो गृहाकार बनी हुई नौकाओंद्वारा क्रीडा करने लगे॥ ५७॥ कुरुनन्दन! विश्वकर्माने नौकाओंमें अनेक प्रकारके महल बनाये थे, जिनमेंसे कुछ लम्बे थे और कुछ चौकोर। कुछ गोलाकार थे और कुछ स्वस्तिकाकार॥ ५८॥ वे महल कैलास, मन्दराचल और मेरुपर्वतकी भाँति इच्छानुसार रूप धारण कर लेते थे। कई नाना प्रकारके पक्षियों और ईहामृगों (भेड़ियों)-के समान रूप धारण करनेवाले थे॥ ५९॥ उनमें वैदूर्यमणिके तोरण लगे थे, जिनसे उन महलोंकी विचित्र शोभा होती थी। वे विचित्र मणिमय शय्याओंसे सुसज्जित थे। मरकत, चन्द्रकान्त और सूर्यकान्तमणिमय विचित्र रागोंसे वे रञ्जित थे तथा नाना प्रकारके सैकड़ों आस्तरण (बिस्तर) उनकी शोभा बढ़ाते थे॥ ६०॥ खेलके लिये बनाये गये गरुड़के समान भी उन भवनोंकी आकृति थी। वे विचित्र भवन सुवर्णकी धाराओंसे शोभा पाते थे। कोई क्रौञ्चके समान, कोई तोतेके तुल्य और कितने ही भवन हाथियोंकी-सी आकृति धारण करते थे॥ ६१॥

कर्णधारैर्गृहीतास्ता नावः कार्तस्वरोज्ज्वलाः।
सलिलं शोभयामासुः सागरस्य महोर्मिमत्॥ ६२
समुच्छ्रितः सितैः पोतैर्यानपात्रैस्तथैव च।
नौभिश्च झिल्लिकाभिश्च शुशुभे वरुणालयः॥ ६३
पुराण्याकाशगानीव गन्धर्वाणामितस्ततः।
बभ्रमुः सागरजले भैमयानानि सर्वतः॥ ६४
नन्दनच्छन्दयुक्तेषु यानपात्रेषु भारत।
नन्दनप्रतिमं सर्वं विहितं विश्वकर्मणा॥ ६५
उद्यानानि सभावृक्षा दीर्घिकाः स्यन्दनानि च।
निवेशितानि शिल्पानि तादृशान्येव सर्वथा॥ ६६
स्वर्गच्छन्देषु चान्येषु समासात् स्वर्गसंनिभाः।
नारायणाज्ञया वीर विहिता विश्वकर्मणा॥ ६७
वनेषु रुरुवुर्हृद्यं मधुरं चैव पक्षिणः।
मनोहरतरं चैव भैमानामतितेजसाम्॥ ६८
देवलोकोद्भवाः श्वेता विलेपुः कोकिलास्तदा।
मधुराणि विचित्राणि यदूनां काङ्क्षितानि च॥ ६९
चन्द्रांशुसमरूपेषु हर्म्यपृष्ठेषु बर्हिणः।
ननृतुर्मधुरारावाः शिखण्डिगणसंवृताः॥ ७०
पताका यानपात्राणां सर्वाः पक्षिगणायुताः।
भ्रमरैरुपगीताश्च स्रग्दामासक्तवासिभिः॥ ७१
नारायणाज्ञया वृक्षाः पुष्पाणि मुमुचुर्भृशम्।
ऋतवश्चारुरूपाणि विहायसि गतास्तथा॥ ७२
ववौ मनोहरो वातो रतिखेदहरः सुखः।
रजोभिः सर्वपुष्पाणां पृक्तश्चन्दनशैत्यभृत्॥ ७३
शीतोष्णमिच्छतां तत्र बभूव वसुधापते।
वासुदेवप्रसादेन भैमानां क्रीडतां तदा॥ ७४
न क्षुत्पिपासा न ग्लानिर्न चिन्ता शोक एव च।
आविवेश तदा भैमान् प्रभावाच्चक्रपाणिनः॥ ७५
अप्रशान्तमहातूर्या गीतनृत्योपशोभिताः।
बभूवुः सागरक्रीडा भैमानामतितेजसाम्॥ ७६

सुवर्णसे प्रकाशित होनेवाली वे नौकाएँ कर्णधारोंके नियन्त्रणमें रहकर उत्ताल तरंगोंसे युक्त सागरकी जलराशिको सुशोभित कर रही थीं॥ ६२॥ सफेद जलपोतों, यात्रोपयोगी बड़ी-बड़ी नावों, वेगवती नौकाओं और महल आदिसे युक्त विशाल जहाजोंसे उस वरुणालय (समुद्र)-की बड़ी शोभा हो रही थी॥ ६३॥ यादवोंके वे जलयान समुद्रके जलमें सब ओर चक्कर लगा रहे थे। वे ऐसे जान पड़ते थे, मानो गन्धर्वोंके नगर आकाशमें विचर रहे हों॥ ६४॥ भारत! नन्दनवनकी आकृति और समृद्धियोंसे युक्त यानपात्रोंमें विश्वकर्माने सब कुछ नन्दन-जैसा ही बना दिया था॥ ६५॥ उद्यान, सभा, वृक्ष, झील और झरने (या फौवारे) आदि शिल्प सर्वथा वैसे ही उनमें समाविष्ट किये गये थे॥ ६६॥ वीर! स्वर्ग-जैसे बने हुए दूसरे जलयानोंमें विश्वकर्माने भगवान् नारायणकी आज्ञासे स्वर्गकी-सी सारी वस्तुएँ संक्षेपसे रच दी थीं॥ ६७॥ वहाँके वनोंमें पक्षी हृदयको प्रिय लगनेवाली मधुर बोली बोलते थे। उनकी वह बोली उन अत्यन्त तेजस्वी यादवोंको बहुत ही मनोहर प्रतीत होती थी॥ ६८॥ देवलोकमें उत्पन्न हुए सफेद कोकिल उस समय यादववीरोंकी इच्छाके अनुसार विचित्र एवं मधुर आलाप छेड़ रहे थे॥ ६९॥ चन्द्रमाकी किरणोंके समान रूपवाली श्वेत अट्टालिकाओंपर मीठी बोली बोलनेवाले मोर दूसरे मोरोंसे घिरकर नृत्य करते थे॥ ७०॥ विशाल जलयानोंपर लगी हुई सारी पताकाओंपर पक्षियोंके समुदाय बैठे थे। उनमें जो पुष्पमालाओंकी लड़ियाँ बँधी थीं, उनपर आसक्त होकर रहनेवाले भ्रमर वहाँ गुञ्जारव फैला रहे थे॥ ७१॥ नारायण (श्रीकृष्ण)-की आज्ञासे वृक्ष तथा ऋतुएँ आकाशमें स्थित हो मनोहर रूपवाले पुष्पोंकी अधिक वर्षा करने लगीं॥ ७२॥ रतिजनित खेद अथवा श्रमको हर लेनेवाली मनोहर एवं सुखदायिनी हवा चलने लगी, जो सब प्रकारके फूलोंके परागसे संयुक्त तथा चन्दनकी शीतलताको धारण करनेवाली थी॥ ७३॥ पृथ्वीपते! क्रीड़ामें तत्पर होकर सर्दी-गरमीकी इच्छा रखनेवाले यादवोंको उस समय वहाँ भगवान् वासुदेवकी कृपासे वह सब उनकी रुचिके अनुकूल प्राप्त होती थी॥ ७४॥ भगवान् चक्रपाणिके प्रभावसे उस समय उन भीम-वंशियोंके भीतर न तो भूख-प्यास, न ग्लानि, न चिन्ता और न शोकका ही प्रवेश होता था॥ ७५॥ अत्यन्त तेजस्वी यादवोंकी समुद्रके जलमें होनेवाली वे क्रीड़ाएँ निरन्तर चल रही थीं। उनमें बड़े-बड़े वाद्योंकी ध्वनि शान्त नहीं होती थी तथा गीत और नृत्य उनकी शोभा बढ़ा रहे थे॥ ७६॥

बहुयोजनविस्तीर्णं समुद्रं सलिलाशयम्।
रुद्धा चिक्रीडुरिन्द्राभा भैमाः कृष्णाभिरक्षिताः॥ ७७

परिच्छदस्यानुरूपं यानपात्रं महात्मनः।
नारायणस्य देवस्य विहितं विश्वकर्मणा॥ ७८

रत्नानि यानि त्रैलोक्ये विशिष्टानि विशाम्पते।
कृष्णस्य तानि सर्वाणि यानपात्रेऽतितेजसः॥ ७९

पृथक्पृथङ्निवासाश्च स्त्रीणां कृष्णस्य भारत।
मणिवैडूर्यचित्रास्ताः कार्तस्वरविभूषिताः॥ ८०

सर्वर्तुकुसुमाकीर्णाः सर्वगन्धाधिवासिताः।
यदुसिंहैः शुभैर्जुष्टाः शकुनैः स्वर्गवासिभिः॥ ८१

श्रीकृष्णद्वारा सुरक्षित वे इन्द्रतुल्य तेजस्वी यादव अनेक योजन विस्तृत समुद्रके जलाशयको रोककर क्रीडा कर रहे थे॥ ७७॥ विश्वकर्माने महात्मा भगवान् नारायणदेवके लिये उनके विशाल परिवार (सोलह हजार रानियोंके समुदाय)-के अनुरूप ही जहाज बना रखा था॥ ७८॥ प्रजानाथ! तीनों लोकोंमें जो विशिष्ट रत्न थे, वे सभी अत्यन्त तेजस्वी श्रीकृष्णके उस यानपात्रमें लगे थे॥ ७९॥ भारत! श्रीकृष्णकी स्त्रियोंके लिये उसमें पृथक्-पृथक् निवासस्थान बने थे, जो मणि और वैदूर्यसे जटित होनेके कारण विचित्र शोभासे सम्पन्न तथा सुवर्णसे विभूषित थे॥ ८०॥ उन गृहोंमें सभी ऋतुओंमें खिलनेवाले फूल लगाये गये थे। वहाँ सभी तरहके उत्तम सुगन्ध फैलकर उन भवनोंको सुवासित कर रहे थे। श्रेष्ठ यादव-वीर तथा स्वर्गवासी पक्षी उन निवासस्थानोंका सेवन करते थे॥ ८१॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे विष्णुपर्वणि भानुमतीहरणे अष्टाशीतितमोऽध्यायः॥ ८८॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत विष्णुपर्वमें भानुमतीहरणविषयक अट्ठासीवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ८८॥

एकोननवतितमोऽध्यायः

बलराम और श्रीकृष्ण आदि यादवोंकी जलक्रीड़ा एवं गान आदिका वर्णन

वैशम्पायन उवाच

रेमे बलश्चन्दनपङ्कदिग्धः
कादम्बरीपानकलः पृथुश्रीः।
रक्तेक्षणो रेवतिमाश्रयित्वा
प्रलम्बबाहुर्ललितप्रयातः॥ १

नीलाम्बुदाभे वसने वसान-
श्चन्द्रांशुगौरो मदिराविलाक्षः।
रराज रामोऽम्बुदमध्यमेत्य
सम्पूर्णबिम्बो भगवानिवेन्दुः॥ २

वामैककर्णामलकुण्डलश्रीः
स्मेरं मनोज्ञाब्जकृतावतंसः।
तिर्यक्कटाक्षं प्रियया मुमोद
रामः सुखं चार्वभिवीक्ष्यमाणः॥ ३

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! बलरामजी अपने अङ्गोंमें चन्दनसे चर्चित थे। मधु पीकर वे बड़े मनोहर लग रहे थे। उनकी शोभा बहुत बढ़ी हुई थी। नेत्र कुछ-कुछ लाल थे तथा भुजाएँ बहुत बड़ी थीं। वे रेवतीदेवीका सहारा लेकर सुललित गतिसे चल रहे थे॥ १॥ उन्होंने श्याम मेघके समान कान्तिवाले दो नील वस्त्र धारण कर रखे थे। उनकी अङ्गकान्ति चन्द्रमाकी किरणोंके समान गौर थी और मधुमाती आँखें अलसायी-सी जान पड़ती थीं। समुद्रके बीचमें आकर भगवान् बलरामजी सम्पूर्ण बिम्बवाले चन्द्रमाके समान शोभा पा रहे थे॥ २॥ उनके एकमात्र बायें कानमें निर्मल कुण्डलकी शोभा फैल रही थी। उन्होंने दूसरे कानमें मनोहर कमलको ही कर्णभूषणके रूपमें धारण कर रखा था। उनकी प्रिया रेवती मन्द मुसकान और बाँकी चितवनके साथ उनकी ओर सुखपूर्वक निहार रही थीं तथा बलरामजी उनके साथ आनन्दमग्न हो रहे थे॥ ३॥

अथाज्ञया कंसनिकुम्भशत्रो-
रुदाररूपोऽप्सरसां गणः सः।
द्रष्टुं मुदा रेवतिमाजगाम
वेलालयं स्वर्गसमानमृद्ध्या॥ ४

तां रेवतीं चाप्यथ वापि रामं
सर्वा नमस्कृत्य वराङ्गयष्ट्यः।
वाद्यानुरूपं ननृतुः सुगात्र्यः
समन्ततोऽन्या जगिरे च सम्यक्॥ ५

चक्रुस्तथैवाभिनयेन रङ्गं
यथावदेषां प्रियमर्थयुक्तम्।
हृद्यानुकूलं च बलस्य तस्य
तथाज्ञया रेवतराजपुत्र्याः॥ ६

चक्रुर्हसन्त्यश्च तथैव रासं
तद्देशभाषाकृतिवेषयुक्ताः।
सहस्ततालं ललितं सलीलं
वराङ्गना मङ्गलसम्भृताङ्ग्यः॥ ७

संकर्षणाधोक्षजनन्दनानि
संकीर्तयन्त्योऽथ च मङ्गलानि।
कंसप्रलम्बादिवधं च रम्यं
चाणूरघातं च तथैव रङ्गे॥ ८

यशोदया च प्रथितं यशोऽथ
दामोदरत्वं च जनार्दनस्य।
वधं तथारिष्टकधेनुकाभ्यां
व्रजे च वासं शकुनीवधं च॥ ९

तथा च भग्नौ यमलार्जुनौ तौ
सृष्टिं वृकाणामपि वत्सयुक्ताम्।
स कालियो नागपतिर्ह्रदे च
कृष्णेन दान्तश्च यथा दुरात्मा॥ १०

शङ्खह्रदादुद्धरणं च वीर
पद्मोत्पलानां मधुसूदनेन।
गोवर्द्धनोऽर्थे च गवां धृतोऽभूद्
यथा च कृष्णेन जनार्दनेन॥ ११

कुब्जां यथा गन्धकपीषिकां च
कुब्जत्वहीनां कृतवांश्च कृष्णः।

तदनन्तर कंस और निकुम्भके शत्रु श्रीकृष्णकी आज्ञासे अप्सराओंका उदार एवं सुन्दर रूपवाला समुदाय स्वर्गके समान समृद्धिशाली समुद्रमें रेवतीका दर्शन करनेके लिये प्रसन्नतापूर्वक उनके पास आया॥ ४॥ उन सबके अङ्ग छड़ीके समान पतले और मनोहर थे। उन समस्त सुन्दरियोंने उन रेवतीदेवी और बलरामजीको नमस्कार करके बाजेके लयपर नाचना आरम्भ किया। दूसरी अप्सराएँ उन्हें सब ओरसे घेरकर उत्तम रीतिसे गीत गाने लगीं॥ ५॥ वे अप्सराएँ बलराम और रेवतराजकुमारी रेवतीकी आज्ञासे अभिनयपूर्वक ऐसा खेल खेलने लगीं, जो इन यादवोंको प्रिय, सार्थक, मनोरम और अनुकूल प्रतीत हो॥ ६॥ अपने अङ्गोंमें मङ्गलसूचक शृङ्गार धारण करनेवाली वे सुन्दरी अप्सराएँ उस देशकी भाषा, आकृति और वेशसे युक्त हो हँसती और हाथोंपर ताल देती हुई लीलापूर्वक ललित रास (नृत्य-गान) करने लगीं॥ ७॥ वीर! उस रासमें वे श्रीकृष्ण और बलरामको आनन्द देनेवाली उनकी मङ्गलमयी लीलाओंका संकीर्तन करती थीं। कंस और प्रलम्ब आदिके वधका रमणीय प्रसङ्ग, रङ्गशालामें चाणूर आदिका घात, जिसके कारण यशोदाने जनार्दनका दामोदर नाम और यश फैलाया, वह ऊलूखलबन्धनकी लीला, अरिष्टासुर और धेनुकासुरका वध, व्रजमें निवास, पूतनाका वध, यमलार्जुन-भङ्ग, भेड़ियेकी सृष्टि, वत्सासुरका वध, यमुनाके ह्रदमें श्रीकृष्णद्वारा दुरात्मा नागराज कालियका दमन, शङ्खनिधिसे युक्त उस यमुनाह्रदसे मधुसूदन श्रीकृष्णद्वारा कमलों और उत्पलोंका उखाड़ा जाना, गौओंकी रक्षाके लिये जनार्दन श्रीकृष्णद्वारा गोवर्धन-धारण, सुगन्धयुक्त अनुलेपन पीसनेवाली कुब्जाके कुब्जत्वका उनके द्वारा निवारण आदि लीलाप्रसङ्ग जैसे-जैसे हुए थे, उन सबका वे अप्सराएँ गान करती थीं॥ ८—११½॥

अवामनं वामनकं च चक्रे
कृष्णो यथाऽऽत्मानमजोऽप्यनिन्द्यः॥ १२

सौभप्रमाथं च हलायुधत्वं
वधं मुरस्याप्यथ देवशत्रोः।
गान्धारकन्यावहने नृपाणां
रथे तथा योजनमूर्जितानाम्॥ १३

ततः सुभद्राहरणे जयं च
युद्धे च बालाहकजम्बुमाले।
रत्नप्रवेकं च युधाजितैर्यत्
समाहृतं शक्रसमक्षमासीत्॥ १४

एतानि चान्यानि च चारुरूपा
जगुः स्त्रियः प्रीतिकराणि राजन्।
सङ्कर्षणाधोक्षजहर्षणानि
चित्राणि चानेककथाश्रयाणि॥ १५

कादम्बरीपानमदोत्कटस्तु
बलः पृथुश्रीः स चुकूर्द रामः।
सहस्ततालं मधुरं समं च
स भार्यया रेवतराजपुत्र्या॥ १६

तं कूर्दमानं मधुसूदनश्च
दृष्ट्वा महात्मा च मुदान्वितोऽभूत्।
चुकूर्द सत्यासहितो महात्मा
हर्षागमार्थं च बलस्य धीमान्॥ १७

समुद्रयात्रार्थमथागतश्च
चुकूर्द पार्थो नरलोकवीरः।
कृष्णेन सार्द्धं मुदितश्चुकूर्द
सुभद्रया चैव वराङ्गयष्ट्या॥ १८

राजन्! अनवद्य (स्तुत्य) और अजन्मा श्रीकृष्णने अपने अवामन (विराट्)-स्वरूपको भी जिस प्रकार वामन बना लिया, जिस प्रकार सौभविमानको मथ डाला तथा बलरामने जिस तरह हलरूप आयुध ग्रहण किया, श्रीकृष्णद्वारा जिस प्रकार देवशत्रु मुरका वध किया गया, गान्धारराजकन्या शैव्याके विवाहमें जिस प्रकार बलशाली राजाओंको रथमें जोता या बाँधा गया, सुभद्राहरणके समय जिस प्रकार अर्जुनकी विजय हुई, बालाहक और जम्बुमालीके साथ होनेवाले युद्धमें जिस प्रकार श्रीकृष्ण आदिको विजय प्राप्त हुई, युद्धमें जीते गये राक्षसोंद्वारा इन्द्रके सामने ही जो रत्नराशि द्वारका पहुँचायी गयी; इनको तथा अन्य चरित्रोंको, जो यादवोंको प्रसन्न करनेवाले थे, उन मनोहररूपवाली अप्सराओंने गाया। श्रीकृष्ण और बलरामको हर्ष प्रदान करनेवाले जो उनकी अनेक लीलाकथाओंसे सम्बन्ध रखनेवाले विचित्र गीत थे, उन सबका उन्होंने गान किया॥ १२—१५॥ तदनन्तर मधुपानसे मत्त हुए परम शोभायमान बलराम अपनी पत्नी रेवतराजकुमारी रेवतीके साथ हाथपर ताल देते हुए मधुर स्वरमें सम[१] स्थानके प्रदर्शनपूर्वक गीत गाने लगे॥ १६॥ उन्हें गाते देख महात्मा मधुसूदनको बड़ी प्रसन्नता हुई। फिर तो उन बुद्धिमान् महात्मा श्रीकृष्णने भी बलरामजीका हर्ष बढ़ानेके लिये सत्यभामाके साथ गान आरम्भ कर दिया॥ १७॥ नरलोकके प्रमुख वीर कुन्तीनन्दन अर्जुन भी समुद्रयात्राके लिये वहाँ आये थे। वे भी आनन्दमें मग्न होकर श्रीकृष्ण और सुन्दराङ्गी सुभद्राके साथ गीत अलापने लगे॥ १८॥

१. संगीतमें वह स्थान, जहाँ गाने-बजानेवालोंका सिर या हाथ आप-से-आप हिल जाता है। वह स्थान तालके अनुसार निश्चित होता है। जैसे तितालेमें दूसरे तालपर और चौतालमें पहले तालपर सम होता है। इसी प्रकार भिन्न तालोंमें भिन्न-भिन्न स्थानोंपर सम होता है। वाद्योंका आरम्भ तथा गीतों और वाद्योंका अन्त इसी समपर होता है। परंतु गाने-बजानेके बीच-बीचमें भी सम बराबर आता रहता है।

गदश्च धीमानथ सारणश्च
प्रद्युम्नसाम्बौ नृप सात्यकिश्च।
सात्राजितीसूनुरुदारवीर्यः
सुचारुदेष्णश्च सुचारुरूपः॥ १९
वीरौ कुमारौ निशठोल्मुकौ च
रामात्मजौ वीरतमौ चुकूर्दतुः।
अक्रूरसेनापतिशंकवश्च
तथापरे भैमकुलप्रधानाः॥ २०
तद् यानपात्रं ववृधे तदानीं
कृष्णप्रभावेण जनेन्द्रपुत्र।
आपूर्णमापूर्णमुदारकीर्ते
चुकूर्दयद्भिर्नृप भैममुख्यैः॥ २१
तै राससक्तैरतिकूर्दमानै-
र्यदुप्रवीरैरमरप्रकाशैः।
हर्षान्वितं वीर जगत् तथाभू-
च्छेमुश्च पापानि जनेन्द्रसूनो॥ २२
देवातिथिस्तत्र च नारदोऽथ
विप्रः प्रियार्थं मुरकेशिशत्रोः।
चुकूर्द मध्ये यदुसत्तमानां
जटाकलापागलितैकदेशः॥ २३
रासप्रणेता मुनि राजपुत्र
स एव तत्राभवदप्रमेयः।
मध्ये च गत्वा च चुकूर्द भूयो
हेलाविकारैः सविडम्बिताङ्गैः॥ २४
स सत्यभामामथ केशवं च
पार्थं सुभद्रां च बलं च देवम्।
देवीं तथा रेवतराजपुत्रीं
संदृश्य संदृश्य जहास धीमान्॥ २५
ता हासयामास सुधैर्ययुक्ता-
स्तैस्तैरुपायैः परिहासशीलः।
चेष्टानुकारैर्हसितानुकारै-
र्लीलानुकारैरपरैश्च धीमान्॥ २६

नरेश्वर! फिर तो बुद्धिमान् गद, सारण, प्रद्युम्न, साम्ब, सात्यकि, उदार पराक्रमी सत्यभामाकुमार भानु[1] और अत्यन्त मनोहर रूपवाले सुचारुदेष्ण, बलरामजीके पुत्र दोनों वीर कुमार निशठ और उल्मुक जो अत्यन्त वीर थे, गाने लगे। अक्रूर, यादवसेनापति अनाधृष्टि, शङ्कु तथा भीमकुलके अन्य प्रधान पुरुष भी वहाँ गान करने लगे। उदार कीर्तिवाले नरेन्द्रकुमार! उस समय वह यानपात्र (जहाज) गाते हुए प्रमुख यादववीरोंसे ज्यों-ज्यों भरता गया त्यों-ही-त्यों श्रीकृष्णके प्रभावसे बढ़ता चला गया॥ १९—२१॥ वीर राजकुमार! रासमें संलग्न हो अत्यन्त गीत गानेवाले उन देवोपम यादववीरोंके साथ सारा जगत् हर्षोल्लाससे परिपूर्ण हो गया। सबके पाप-ताप शान्त हो गये॥ २२॥ तदनन्तर मुर और केशीके शत्रु श्रीकृष्णका प्रिय करनेके लिये देवताओंके अतिथि विप्रवर नारदजी उन यादव-शिरोमणियोंके बीचमें आकर गान करने लगे। उनके शरीरका एक देश उनके जटा-कलापसे आच्छादित था॥ २३॥ राजपुत्र! वे अप्रमेयस्वरूप नारदमुनि ही वहाँ रासनृत्यके प्रणेता (संचालक या सूत्रधार) हो गये। वे अपने अनुकरणशील अङ्गोंद्वारा लीलाका अनुकरण करते हुए यादव-मण्डलीके मध्यमें पहुँचकर गीत गाने लगे॥ २४॥ वे बुद्धिमान् मुनि सत्यभामा, श्रीकृष्ण, अर्जुन, सुभद्रा, बलदेव तथा रेवतराजकुमारी रेवती-देवीकी ओर देख-देखकर हँस रहे थे॥ २५॥ परिहास-शील बुद्धिमान् नारदजी किसीकी चेष्टाओंका, किसीकी हँसीका और किसीकी लीलाओंका अनुकरण करके तथा अन्य प्रकारके दूसरे-दूसरे उपायोंद्वारा उन अत्यन्त धैर्यशालिनी देवियोंको भी हँसा देते थे॥ २६॥

१. श्रीमद्भागवतके अनुसार सत्यभामाके बड़े बेटेका नाम भानु था। इनसे छोटे नौ भाइयोंके नाम इस प्रकार हैं—सुभानु, स्वर्भानु, प्रभानु, भानुमान्, चन्द्रभानु, बृहद्भानु, अतिभानु, श्रीभानु और प्रतिभानु।

आभाषितं किंचिदिवोपलक्ष्य
नादातिनादान् भगवान् मुमोच ।
हसन् विहासांश्च जहास हर्षा-
द्धास्यागमे कृष्णविनोदनार्थम्॥ २७
कृष्णाज्ञया सातिशयानि तत्र
यथानुरूपाणि ददुर्युवत्यः ।
रत्नानि वस्त्राणि च रूपवन्ति
जगत्प्रधानानि नृदेवसूनो॥ २८
माल्यानि च स्वर्गसमुद्भवानि
संतानदामान्यतिमुक्तकानि ।
सर्वर्तुकान्यप्यनयंस्तदानीं
ददुर्हरेरिङ्गितकालतज्ज्ञाः ॥ २९
रासावसाने त्वथ गृह्य हस्ते
महामुनिं नारदमप्रमेयः ।
पपात कृष्णो भगवान् समुद्रे
सात्राजितीं चार्जुनमेव चाथ॥ ३०
उवाच चामेयपराक्रमोऽथ
शैनेयमीषत्प्रहसन् पृथुश्रीः ।
द्विधा कृतास्मिन् पतताशु भूत्वा
क्रीडाजलेनोऽस्तु सहाङ्गनाभिः ॥ ३१
सरेवतीकोऽस्तु बलोऽर्द्धनेता
पुत्रा मदीयाश्च सहार्द्धभैमाः ।
भैमार्द्धमेवाथ बलात्मजाश्च
मत्पक्षिणः सन्तु समुद्रतोये॥ ३२
आज्ञापयामास ततः समुद्रं
कृष्णः स्मितं प्राञ्जलिनं प्रतीतः ।
सुगन्धतोयो भव मृष्टतोय-
स्तथा भव ग्राहविवर्जितश्च॥ ३३
दृश्या च ते रत्नविभूषिता तु
सा वेलिका भूरथ पत्सुखा च।
मनोऽनुकूलं च जनस्य तत्तत्
प्रयच्छ विज्ञास्यसि मत्प्रभावात्॥ ३४

जब कोई कुछ मन्दस्वरमें बहुत थोड़ा और धीरे-धीरे बोलता तो ऐश्वर्यशाली नारदजी उसके उत्तरमें बहुत ही ऊँचे स्वरमें सिंहनाद-सा करते हुए जोर-जोरसे बोलने लगते थे और हास्यके अवसरपर हँसते-हँसते हर्षातिरेकसे अट्टहास करने लगते थे। यह सब कुछ वे श्रीकृष्णके मनोरञ्जनके लिये करते थे॥ २७॥ नरदेवकुमार! श्रीकृष्णकी आज्ञासे वहाँ बैठी हुई युवतियोंने जगत्के प्रधान-प्रधान रत्न, सुन्दर वस्त्र जो मुनिके अनुरूप थे, उन्हें अधिक मात्रामें दिये॥ २८॥ श्रीकृष्णके संकेत तथा समयकी आवश्यकताको समझनेवाली उन रानियोंने उस समय स्वर्गीय पुष्पहार, संतान- (पारिजात) पुष्पोंकी लड़ियाँ, अतिमुक्तक तथा सभी ऋतुओंमें खिलनेवाले फूल उन्हें अर्पित किये॥ २९॥ रासके अन्तमें अप्रमेयस्वरूप भगवान् श्रीकृष्ण नारद- मुनिका हाथ पकड़कर तथा सत्यभामा और अर्जुनको भी साथमें लेकर समुद्रके जलमें कूद पड़े॥ ३०॥ तदनन्तर अप्रमेय पराक्रमी तथा प्रचुर शोभासे सम्पन्न श्रीकृष्णने किञ्चित् मुसकराकर सात्यकिसे कहा—'तुम सब लोग दो भागोंमें बँटकर अपनी-अपनी स्त्रियोंके साथ ही इस क्रीड़ाजलमें कूद पड़ो॥ ३१॥ 'मेरे सारे पुत्र और आधे यदुवंशी इन सबको मिलाकर जो आधे द्वारकावासियोंका दल होगा, उसके नेता रेवतीसहित बलभद्रजी हों और आधे भीमवंशियोंके साथ बलरामजीके सभी पुत्र ये मेरे पक्षमें रहें। इस प्रकार समुद्रके जलमें (दो दलोंमें बँटकर हमलोग क्रीड़ा करें)'॥ ३२॥ तदनन्तर श्रीकृष्णने पूर्ण विश्वस्त होकर वहाँ हाथ जोड़कर मुसकराते हुए समुद्रको आज्ञा दी—'तुम अपने जलको सुगन्धित और शुद्ध एवं स्वादिष्ट बना लो तथा ग्राहोंसे रहित हो जाओ॥ ३३॥ तुम्हारी तटभूमि रत्नोंसे विभूषित दिखायी दे, पैरोंके लिये सुखदायिनी हो तथा लोगोंके लिये जो मनोऽनुकूल वस्तुएँ हों, वे सब उन्हें अर्पण करो। मेरे प्रभावसे तुम्हें सबकी अभीष्ट वस्तुओंका ज्ञान हो जायगा'॥ ३४॥

भवस्यपेयोऽप्यथ चेष्टपेयो
जनस्य सर्वस्य मनोऽनुकूलः।
वैडूर्यमुक्तामणिहेमचित्रा
भवन्तु मत्स्यास्त्वयि सौम्यरूपाः॥ ३५
बिभृस्व च त्वं कमलोत्पलानि
सुगन्धसुस्पर्शरसक्षमाणि ।
षट्पादजुष्टानि मनोहराणि
कीलालवर्णैश्च समन्वितानि॥ ३६
मैरेयमाध्वीकसुरासवानां
कुम्भांश्च पूर्णान् स्थपयस्व तोये।
जाम्बूनदं पाननिमित्तमेषां
पात्रं पपुर्येषु ददस्व भैमाः॥ ३७
पुष्पोच्चयैर्वासितशीततोयो
भवाप्रमत्तः खलु तोयराशे।
यथा व्यलीकं न भवेद् यदूनां
सस्त्रीजनानां कुरु तत् प्रयत्नम्॥ ३८
इतीदमुक्त्वा भगवान् समुद्रं
ततः प्रचिक्रीड सहार्जुनेन।
सिषेच पूर्वं नृप नारदं तु
सात्राजिती कृष्णमुखेङ्गितज्ञा॥ ३९
ततो मदावर्जितचारुदेहः
पपात रामः सलिले सलीलम्।
साकारमालम्ब्य करं करेण
मनोहरं रेवतराजपुत्रीम्॥ ४०
कृष्णात्मजा ये त्वथ भैममुख्या
रामस्य पश्चात् पतिताः समुद्रे।
विरागवस्त्राभरणाः प्रहृष्टाः
क्रीडाभिरामा मदिराविलाक्षाः॥ ४१
शेषास्तु भैमा हरिमभ्युपेताः
क्रीडाभिरामा निशठोल्मुकाद्याः।
विचित्रवस्त्राभरणाश्च मत्ताः
संतानमाल्यावृतकण्ठदेशाः ॥ ४२

'यद्यपि तुम्हारा जल अपेय है तो भी वह प्रिय एवं पीनेयोग्य हो जायगा। तुम सब लोगोंके मनोऽनुकूल हो जाओगे। तुम्हारे भीतर जो मत्स्य हैं, वे वैदूर्य, मोती, मणि और सुवर्णसे चित्रित तथा सौम्य रूपवाले हो जायँगे॥ ३५॥ तुम लाल रंगके कमल और उत्पल धारण करो, जो उत्तम गन्ध, सुखद स्पर्श तथा रुधिर रसको प्रकट करनेमें समर्थ हों। वे भ्रमरोंसे सेवित तथा देखनेमें मनोहर हों॥ ३६॥ तुम अपने जलके ऊपर मैरेय, माध्वीक, सुरा और आसव नामक मधुसे भरे हुए कलश स्थापित करो। साथ ही इनके पीनेके लिये सोनेके पानपात्र दो, जिनमें ये यादव मधुपान कर सकें॥ ३७॥ जलनिधे! तुम निश्चय ही ऐसे बन जाओ, जिससे तुम्हारा शीतल जल फूलोंकी राशिसे वासित हो जाय। इसके लिये सतत सावधान रहो और ऐसा प्रयत्न करो, जिससे स्त्री-पुरुषोंसहित यादवोंके प्रति कोई विपरीत बर्ताव न हो जाय'॥ ३८॥ समुद्रसे ऐसा कहकर भगवान् श्रीकृष्ण अर्जुनके साथ क्रीड़ा करने लगे। नरेश्वर! श्रीकृष्णके मुखके संकेतोंको समझनेवाली सत्यभामाने पहले देवर्षि नारदपर जल उछालकर उन्हें भिगो दिया॥ ३९॥ तदनन्तर मदके आवेशसे रहित मनोहर शरीरवाले बलरामजी अपने हाथसे मनोहारिणी रेवतराजकुमारी रेवतीका हाथ पकड़कर इच्छानुसार गीत गाते हुए लीलापूर्वक जलमें कूद पड़े॥ ४०॥ बलरामजीके कूदनेके पश्चात् श्रीकृष्णके पुत्र तथा भीमवंशियोंके प्रधान-प्रधान व्यक्ति नाना प्रकारके रंगवाले वस्त्र और आभूषण धारण किये हर्षमें भरकर समुद्रमें कूद पड़े। उस समय वे जल-क्रीड़ामें अभिरत थे और उनकी आँखें मधुसे मतवाली हो रही थीं॥ ४१॥ शेष यादव तथा निशठ और उल्मुक आदि बलरामपुत्र क्रीड़ामें अभिरत होकर श्रीकृष्णके निकट गये। वे विचित्र वस्त्राभूषणोंसे विभूषित और मदमत्त थे तथा उनके कण्ठदेश संतान-पुष्पोंकी मालाओंसे अलंकृत थे॥ ४२॥

वीर्योपपन्नाः कृतचारुचिह्ना
विलिप्तगात्रा जलपात्रहस्ताः।
गीतानि तद्वेषमनोहराणि
स्वरोपपन्नान्यथ गायमानाः॥ ४३

ततः प्रचक्रुर्जलवादितानि
नानास्वराणि प्रियवाद्यघोषाः।
सहाप्सरोभिस्त्रिदिवालयाभिः
कृष्णाज्ञया वेशवधूशतानि॥ ४४

आकाशगङ्गाजलवादनज्ञाः
सदा युवत्यो मदनैकचित्ताः।
अवादयंस्ता जलदर्दुरांश्च
वाद्यानुरूपं जगिरे च हृष्टाः॥ ४५

कुशेशयाकोशविशालनेत्राः
कुशेशयापीडविभूषिताश्च।
कुशेशयानां रविबोधितानां
जह्रुः श्रियं ताः सुरचारुमुख्यः॥ ४६

स्त्रीवक्त्रचन्द्रैः सकलेन्दुकल्पै
रराज राजञ्छतशः समुद्रः।
यदृच्छया दैवविधानतो वा
नभो यथा चन्द्रसहस्त्रकीर्णम्॥ ४७

समुद्रमेघः स रराज राज-
ञ्छतह्रदास्त्रीप्रभयाभिरामः।
सौदामिनीभिन्न इवाम्बुनाथो
देदीप्यमानो नभसीव मेघः॥ ४८

नारायणश्चैव सनारदश्च
सिषेच पक्षे कृतचारुचिह्नः।
बलं सपक्षं कृतचारुचिह्नं
स चैव पक्षं मधुसूदनस्य॥ ४९

हस्तप्रमुक्तैर्जलयन्त्रकैश्च
प्रहृष्टरूपाः सिषिचुस्तदानीम्।
रागोद्धता वारुणिपानमत्ताः
संकर्षणाधोक्षजदेवपत्न्यः॥ ५०

वे सब-के-सब बल-पराक्रमसे सम्पन्न तथा मनोहर वेशभूषासे युक्त थे। उनके अङ्गोंमें चन्दनका लेप लगा था। वे हाथोंमें जलपात्र लिये हुए थे और उस वेषके अनुरूप स्वरसम्पन्न मनोहर गीत गा रहे थे॥ ४३॥ तत्पश्चात् श्रीकृष्णकी आज्ञासे स्वर्गवासिनी अप्सराओंके साथ सैकड़ों वेषवधुओंने, जिन्हें वाद्यघोष बहुत प्रिय था, नाना स्वरोंमें जल-तरंग आदि बाजे बजाने आरम्भ किये॥ ४४॥ अप्सराएँ नित्य युवती, एकमात्र काममें ही मनको लगानेवाली तथा आकाशगङ्गाके जलसे बाजा बजानेकी कलाका ज्ञान रखनेवाली थीं। उन्होंने जलँदर्दुर* बजाये और हर्षमें भरकर उस वाद्यके अनुरूप गीत भी गाये॥ ४५॥ स्वर्गीय अप्सराओंके नेत्र कमलकलिकाओंके समान विशाल थे। वे कमलोंके ही मुकुटोंसे विभूषित थीं तथा सूर्यकी किरणोंद्वारा खिले हुए कमलोंकी शोभाको चुराये लेती थीं। उन सबके मुख देवताओंके समान मनोहर थे॥ ४६॥ राजन्! सम्पूर्ण चन्द्रमण्डलके समान मनोहर नारियोंके सैकड़ों मुख-चन्द्रोंसे अलंकृत हुआ समुद्र उस आकाशके समान शोभा पा रहा था, जो अकस्मात् या दैवके विधानके अनुसार सहस्रों चन्द्रमाओंसे व्याप्त हो गया हो॥ ४७॥ नरेश्वर! विद्युत्के समान कान्तिमती स्त्रियोंकी प्रभासे अत्यन्त मनोहर दिखायी देनेवाला वह समद्ररूपी मेघ उसी तरह सुशोभित हो रहा था, जैसे जलका स्वामी मेघ आकाशमें बिजलियोंसे संयुक्त होकर अत्यन्त उद्भासित हो उठता है॥ ४८॥ सुन्दर एवं मनोहर वेश-भूषा धारण किये भगवान् श्रीकृष्ण और नारद अपने दलके लोगोंके साथ स्थित हो सुन्दर वेश-भूषावाले बलराम तथा उनके पक्षके लोगोंपर पानी उछालने लगे और बलराम-पक्षके लोग भी श्रीकृष्णके पक्षवालोंको जलसे भिगोने लगे॥ ४९॥ उस समय जिनका सारा शरीर हर्षोल्लाससे परिपूर्ण हो रहा था, वे मधुपानसे मत्त और रागसे उद्धत हुई बलराम और श्रीकृष्णकी पत्नियाँ अपने हाथों तथा जलयन्त्रों (पिचकारियों)-से दूसरोंको भिगोने लगीं॥ ५०॥

* प्राचीन कालका एक बाजा, जिसपर चमड़ा मढ़ा होता था।

आरक्तनेत्रा जलमुक्तिसक्ताः
स्त्रीणां समक्षं पुरुषायमाणाः।
ते नोपरेमुः सुचिरं च भैमा
मानं वहन्तो मदनं मदं च॥ ५१

अतिप्रसङ्गं तु विचिन्त्य कृष्ण-
स्तान् वारयामास रथाङ्गपाणिः।
स्वयं निवृत्तो जलवाद्यशब्दैः
सनारदः पार्थसहायवांश्च॥ ५२

कृष्णेङ्गितज्ञा जलयुद्धसङ्गाद्
भैमा निवृत्ता दृढमानिनोऽपि।
नित्यं तथाऽऽनन्दकराः प्रियाणां
प्रियाश्च तेषां ननृतुः प्रतीताः॥ ५३

नृत्यावसाने भगवानुपेन्द्र-
स्तत्याज धीमानथ तोयसङ्गान्।
उत्तीर्य तोयादनुकूललेपं
जग्राह दत्त्वा मुनिसत्तमाय॥ ५४

उपेन्द्रमुत्तीर्णमथाशु दृष्ट्वा
भैमा हि ते तत्यजुरेव तोयम्।
विविक्तगात्रास्त्वथ पानभूमिं
कृष्णाज्ञया ते ययुरप्रमेयाः॥ ५५

यथानुपूर्व्या च यथावयश्च
यत्सन्नियोगाश्च तदोपविष्टाः।
अन्नानि वीरा बुभुजुः प्रतीताः
पपुश्च पेयानि यथानुकूलम्॥ ५६

मांसानि पक्वानि फलाम्लकानि
चुक्रोत्तरेणाथ च दाडिमेन।
निष्टप्तशूलाञ्छकलान् पशूंश्च
तत्रोपजह्रुः शुचयोऽथ सूदाः॥ ५७

वे भीमवंशी यादव अपने हृदयमें मान, मदन और मदको धारण किये कुछ-कुछ लाल नेत्रोंसे युक्त हो पानी उछालनेमें लगे थे और स्त्रियोंके समक्ष पुरुषार्थ दिखा रहे थे। वे बहुत देरतक उस जलक्रीड़ासे विरत नहीं हुए॥ ५१॥ उनकी अत्यन्त बढ़ती हुई आसक्तिका विचार करके चक्रपाणि भगवान् विष्णुने उन सबको रोक दिया और जलवाद्यके मधुर शब्दोंको सुनते हुए वे देवर्षि नारद और अर्जुनके साथ स्वयं भी जल-विहारसे निवृत्त हो गये॥ ५२॥ श्रीकृष्णके संकेतोंको समझनेवाले भीमवंशी यादव सुदृढ़ अभिमानसे युक्त होनेपर भी उस जलयुद्धके प्रसंगसे निवृत्त हो गये। तदनन्तर उन प्रिय पुरुषोंको नित्य आनन्द देनेवाली उनकी प्यारी वारवनिताएँ विश्वस्त होकर नृत्य करने लगीं॥ ५३॥ नृत्यके अन्तमें बुद्धिमान् भगवान् श्रीकृष्णने जलक्रीडाके प्रसंग त्याग दिये। उन्होंने जलसे ऊपर आकर मुनिवर नारदजीको अनुकूल चन्दनका लेप देकर फिर स्वयं भी उसे ग्रहण किया॥ ५४॥ भगवान् श्रीकृष्णको जलसे बाहर निकला देख अन्य यादवोंने भी जलक्रीड़ा त्याग दी। फिर वे अप्रमेय शक्तिशाली यादव शुद्ध शरीर हो श्रीकृष्णकी आज्ञासे पानभूमि (रसोईके स्थान)-में गये॥ ५५॥ वहाँ वे क्रमशः अवस्था और सम्बन्धके अनुसार उस समय भोजनके लिये बैठे। तदनन्तर उन प्रख्यात वीरोंने अपनी रुचिके अनुकूल अन्न खाये और पेयरसोंका पान किया॥ ५६॥ पके फलोंके गूदे, खट्टे फल, अधिक खट्टे अनारके साथ शूलमें गूँथकर सेंके गये कन्द या फलोंके टुकड़े, पोषक[1] तत्त्व (अन्न)—ये सब पदार्थ पवित्र रसोइयोंने उनके लिये परोसे॥ ५७॥

१. (प्रश्न—) कतमः प्रजापतिः? प्रजापति अर्थात् प्रजाका पालन करनेवाला कौन है? (उत्तर—) पशुरिति, पशु ही प्रजापालक है। शतपथ ब्राह्मणके इस प्रश्नोत्तरसे यह सूचित होता है कि जो पदार्थ या शक्तियाँ प्रजाका पोषण करनेवाली हैं, उन्हें पशु कहा गया है। 'नृणां व्रीहिमयः पशुः'—इस उक्तिके अनुसार मनुष्योंके लिये पोषक तत्त्व अन्न ही है।

सुस्विन्नशूल्यान् महिषांश्च बाला-
ञ्छूल्यान् सुनिष्टप्तघृतावसिक्तान्।
वृक्षाम्लसौवर्चलचुक्रपूर्णान्
पौरोगवोक्त्या उपजह्रुरेषाम्॥ ५८

पौरोगवोक्त्या विधिना मृगाणां
मांसानि सिद्धानि च पीवराणि।
नानाप्रकाराण्युपजह्रुरेषां
मृष्टानि पक्कानि च चुक्रचूतैः॥ ५९

पार्श्वानि चान्ये शकलानि तत्र
ददुः पशूनां घृतमृक्षितानि।
सामुद्रचूर्णैरवचूर्णितानि
चूर्णेन मृष्टेन समारिचेन॥ ६०

समूलकैर्दाडिममातुलिङ्गैः
पर्णासहिङ्ग्वार्द्रकभूस्तृणैश्च ।
तदोपदंशैः सुमुखोत्तरैस्ते
पानानि हृष्टाः पपुरप्रमेयाः॥ ६१

कट्वाङ्कशूलैरपि पक्षिभिश्च
घृताम्लसौवर्चलतैलसिक्तैः ।
मैरेयमाध्वीकसुरासवांस्ते
पपुः प्रियाभिः परिवार्यमाणाः॥ ६२

श्वेतेन युक्तानपि शोणितेन
भक्ष्यान्सुगन्धांल्लवणान्वितांश्च।
आर्द्रान् किलादान् घृतपूर्णकांश्च
नानाप्रकारानपि खण्डखाद्यान्॥ ६३

अपानपाश्चोद्धवभोजमिश्राः
शाकैश्च सूपैश्च बहुप्रकारैः।
पेयैश्च दध्ना पयसा च वीराः
स्वन्नानि राजन् बुभुजुः प्रहृष्टाः॥ ६४

तथारनालांश्च बहुप्रकारान्
पपुः सुगन्धानपि पालवीषु।
श्रृतं पयः शर्करया च युक्तं
फलप्रकारांश्च बहूंश्च खादन्॥ ६५

शूलमें गूँथकर पकाये गये भैंसाकन्द तथा अन्यान्य कन्द या मूल-फल, नारियल, तपे हुए घीमें तले गये अन्यान्य खाद्य पदार्थ, अमलवेंत, कालानमक और चूकके मेलसे बने हुए लेह्यपदार्थ (चटनी)—ये सब वस्तुएँ पाकशालाध्यक्षके कहनेसे रसोइयोंने इन यादवोंके लिये प्रस्तुत कीं॥ ५८॥ पाकशालाध्यक्षके बताये अनुसार विधिवत् तैयार किये गये मृगनामक कन्दविशेषके मोटे-मोटे गूदे, आमकी खटाई डालकर बनाये गये नाना प्रकारके विशुद्ध व्यञ्जन भी इनके लिये परोसे गये॥ ५९॥ दूसरे रसोइयोंने पास रखे हुए पोषक शाकोंके टुकड़े-टुकड़े करके उन्हें घीमें तल दिये और उनमें नमक तथा मिर्चके चूर्ण मिलाकर खानेवालोंको परोस दिये॥ ६०॥ मूली, अनार, बिजौरा नीबू, तुलसी, हींग और भूतृणनामक शाकविशेषके साथ सुन्दर मुखवाले पानपात्र लेकर उन अप्रमेय शक्तिशाली यादवोंने बड़े हर्षके साथ पेय-रसका पान किया॥ ६१॥ कट्वाङ्क अर्थात् कटुक—परवल, शूलहर (हींग) तथा नमक-खटाई मिलाकर घी और तेलमें सेंके गये लकुच या बड़हर[1]के साथ मैरेय, माध्वीक, सुरासव नामक मधुका उन यादवोंने अपनी प्रियतमाओंसे घिरे रहकर पान किया॥ ६२॥ नरेश्वर! श्वेत रंगके खाद्य-पदार्थ मिश्री आदि तथा लाल रंगके फलके साथ नाना प्रकारके सुगन्धित एवं नमकीन भोजन एवं आर्द्र (रसदार साग), किलाद (भैंसके दूधमें पकाये गये खीर आदि), घीसे भरे हुए पदार्थ (पूआ-हलुआ आदि) तथा भाँति-भाँतिके खण्ड-खाद्य (खाँड़ आदि) उन्होंने खाये॥ ६३॥ राजन्! उद्धव, भोज आदि श्रेष्ठ यादववीरोंने जो मादक रसोंका पान नहीं करते थे, बड़े हर्षके साथ नाना प्रकारके साग, दाल, पेय-पदार्थ तथा दही-दूध आदिके साथ उत्तम अन्नका भोजन किया॥ ६४॥ उन्होंने प्यालोंमें अनेक प्रकारके सुगन्धित आरनाल (कांजीरस)-का पान किया। चीनी मिलाये हुए गरम-गरम दूध पीया और भाँति-भाँतिके फल भी खाये॥ ६५॥

१. यहाँ पक्षीका अर्थ खगवक्त्र है, जो लकुच या बड़हरका बोधक है।

तृप्ताः प्रवृत्ताः पुनरेव वीरा-
स्ते भैममुख्या वनितासहायाः।
गीतानि रम्याणि जगुः प्रहृष्टाः
कान्ताभिनीतानि मनोहराणि॥ ६६

आज्ञापयामास ततः स तस्यां
निशि प्रहृष्टो भगवानुपेन्द्रः।
छालिक्यगेयं बहुसंनिधानं
यदेव गान्धर्वमुदाहरन्ति॥ ६७

जग्राह वीणामथ नारदस्तु
षड्ग्रामरागादिसमाधियुक्ताम्।
हल्लीसकं तु स्वयमेव कृष्णः
सवंशघोषं नरदेव पार्थः॥ ६८

मृदङ्गवाद्यानपरांश्च वाद्यान्
वराप्सरस्ता जगृहुः प्रतीताः।
आसारितान्ते च ततः प्रतीता
रम्भोत्थिता साभिनयार्थतज्ज्ञा॥ ६९

तयाभिनीते वरगात्रयष्ट्या
तुतोष रामश्च जनार्दनश्च।
अथोर्वशी चारुविशालनेत्रा
हेमा च राजन्नथ मिश्रकेशी॥ ७०

तिलोत्तमा चाप्यथ मेनका च
एतास्तथान्याश्च हरिप्रियार्थम्।
जगुस्तथैवाभिनयं च चक्रु-
रिष्टैश्च कामैर्मनसोऽनुकूलैः॥ ७१

खा-पीकर तृप्त होनेके पश्चात् वे मुख्य-मुख्य यदुवंशी वीर पुनः स्त्रियोंको साथ लेकर बड़े हर्षके साथ रमणीय एवं मनोहर गीत गाने लगे। उनकी प्रेयसी कामिनियाँ अपने हाव-भावद्वारा उन गीतोंके अर्थका अभिनय करती जाती हैं॥ ६६॥ तदनन्तर हर्षमें भरे हुए भगवान् उपेन्द्रने उस रातमें बहुसंख्यक मनुष्योंद्वारा सम्पन्न होनेवाले उस छालिक्य गानके लिये आज्ञा दी, जिसे गान्धर्व कहते हैं॥ ६७॥ उस समय नारदजीने अपनी वीणा सँभाली, जो छः ग्रामोंपर[1] आधारित राग आदिके द्वारा चित्तको एकाग्र कर देनेवाली थी। नरदेव! साक्षात् श्रीकृष्णने वंशी बजाकर हल्लीसक[2](रास) नामक नृत्यका आयोजन किया। कुन्तीपुत्र अर्जुनने मृदङ्ग वाद्य ग्रहण किया। अन्य वाद्योंको श्रेष्ठ अप्सराओंने ग्रहण किया, जो उनके वादनकलामें प्रख्यात थीं। आसारित[3] (प्रथम आसारनर्तकी-प्रवेश)-के बाद अभिनयके अर्थतत्त्वका ज्ञान रखनेवाली रम्भा नामक अप्सरा उठी, जो अपनी अभिनयकलाके लिये विख्यात थी॥ ६८-६९॥ उसकी अङ्गयष्टि बड़ी सुन्दर थी। उसके द्वारा अभिनय किये जानेपर बलराम और श्रीकृष्णको बड़ा संतोष हुआ। राजन्! तदनन्तर मनोहर एवं विशाल नेत्रोंवाली उर्वशी, हेमा, मिश्रकेशी, तिलोत्तमा और मेनका—ये तथा और भी बहुत-सी अप्सराएँ श्रीकृष्णका प्रिय करनेके लिये मनके अनुकूल प्रिय कामनाओंको प्रस्तुत करती हुई गाने और अभिनय करने लगीं॥ ७०-७१॥

१. क्रमशः सात स्वरोंका समूह ग्राम कहलाता है। संगीतमें सुभीतेके लिये षड्ज, मध्यम और पञ्चम तथा किसी-किसीके मतसे षड्ज, मध्यम और गान्धार नामक तीन ग्राम निश्चित कर लिये गये हैं। जिन्हें क्रमशः नन्द्यावर्त, सुभद्र और जीमूत भी कहते हैं तथा जिनके देवता क्रमसे ब्रह्मा, विष्णु और शिव हैं। प्रत्येक ग्राममें सात-सात मूर्च्छनाएँ होती हैं। सा (षड्ज)-से आरम्भ करके (सा रे ग म प ध नि) जो सात स्वर हों, उनके समूहको षड्ज ग्राम, म (मध्यम)-से आरम्भ करके (म प ध नि सा रे ग) जो सात स्वर हों, उनके समूहको मध्यम ग्राम और इसी प्रकार गा (गांधार) या प (पञ्चम) से आरम्भ करके जो स्वर हों, उनके समूहको गांधार अथवा पञ्चम (जैसी अवस्था हो) ग्राम मानते हैं। इनमेंसे पहले दो ग्रामोंका व्यवहार तो इसी लोकमें मनुष्योंद्वारा होता है, पर तीसरे ग्रामका व्यवहार स्वर्गलोकमें नारद करते हैं। यहाँ रागोंके छः स्थानोंको छः ग्राम कहा गया है, जिनके नाम इस प्रकार हैं—मध्य, शुद्ध, भिन्न, गौड, मिश्र और गीत।

२. बहुत-सी स्त्रियोंके साथ किया जानेवाला नृत्य हल्लीसक या रास कहलाता है।

३. भरत मुनिने नृत्य-विधिमें चार प्रकारके आसार (चिह्न) या आसारितका उपदेश किया है, जो क्रमशः इस प्रकार हैं—पहले नर्तकीका प्रवेश होता है, यह प्रथम आसार है। तदनन्तर आसारित अर्थका अभिनय होता है, जिसे नाट्य कहते हैं, यही उसका दूसरा भेद है। तत्पश्चात् तालका अनुसरण करते हुए जो अङ्गाहरण अङ्गविक्षेप (चमकना, मटकना और हाथ-पैर हिलाना) होता है, यही तीसरा आसार है। तदनन्तर देवताके चिह्नरूपसे जो नृत्य किया जाता है, वह चौथा आसार है। यहाँ नर्तकीप्रवेश नामक प्रथम आसारके अन्तमें नाट्यके लिये अभिनयकुशल रम्भा खड़ी हुई। उसके द्वारा द्वितीय आसार अर्थात् अभिनय सम्पन्न हो जानेपर शेष दो आसारोंकी पूर्तिके लिये उर्वशी आदिका उत्थान हुआ।

ता वासुदेवेऽप्यनुरक्तचित्ताः
स्वगीतनृत्याभिनयैरुदारैः ।
नरेन्द्रसूनो परितोषितेन
ताम्बूलयोगाश्च वराप्सरोभिः॥ ७२
तदागताभिर्नृवराहृतास्तु
कृष्णेप्सया मानमयास्तथैव।
फलानि गन्धोत्तमवन्ति वीरा-
श्छालिक्यगान्धर्वमथाहृतं च॥ ७३
कृष्णेच्छया च त्रिदिवान्नृदेव
अनुग्रहार्थं भुवि मानुषाणाम्।
स्थितं च रम्यं हरितेजसेव
प्रयोजयामास स रौक्मिणेयः॥ ७४
छालिक्यगान्धर्वमुदारबुद्धि-
स्तेनैव ताम्बूलमथ प्रयुक्तम्।
प्रयोजितं पञ्चभिरिन्द्रतुल्यै-
श्छालिक्यमिष्टं सततं नराणाम्॥ ७५
शुभावहं वृद्धिकरं प्रशस्तं
मङ्गल्यमेवाथ तथा यशस्यम्।
पुण्यं च पुष्ट्यभ्युदयावहं च
नारायणस्येष्टमुदारकीर्तेः ॥ ७६
जयावहं धर्मभरावहं च
दुःस्वप्ननाशं परिकीर्त्यमानम्।
करोति पापं च तथा विहन्ति
शृण्वन् सुरावासगतो नरेन्द्रः॥ ७७
छालिक्यगान्धर्वमुदारकीर्ति-
र्मेने किलैकं दिवसं सहस्रम्।
चतुर्युगानां नृप रेवतोऽथ
ततः प्रवृत्ता च कुमारजातिः॥ ७८
गान्धर्वजातिश्च तथापरापि
दीपाद् यथा दीपशतानि राजन्।
विवेद कृष्णश्च स नारदश्च
प्रद्युम्नमुख्यैर्नृप भैममुख्यैः॥ ७९

नरेन्द्रकुमार! वे रम्भा आदि अप्सराएँ मन-ही-मन वसुदेवनन्दन भगवान् श्रीकृष्णमें अनुरक्त थीं। उन्होंने अपने गीत, नृत्य एवं उदार अभिनयोंद्वारा सबको संतोष प्रदान करके प्रसन्न कर लिया। नरेश्वर! उस समय श्रीकृष्णकी इच्छासे जल-क्रीड़ामें आयी हुई उन श्रेष्ठ अप्सराओंने उनकी ओरसे पानके बीड़े प्राप्त किये, जो उनके लिये सम्मानस्वरूप थे। नरदेव! श्रीकृष्णकी इच्छासे मनुष्योंपर अनुग्रह करनेके लिये स्वर्गसे वह छालिक्य गान्धर्व (दिव्य संगीत एवं नृत्यविशेष) भूतलपर लाया गया था; साथ ही उत्तम गन्धोंसे युक्त देवयोग्य फल भी यहाँ लाये गये थे। वीर यादवोंने इन सबका रसास्वादन किया। वह रमणीय छालिक्य गान्धर्व भगवान् श्रीकृष्णके ही प्रभावसे इस पृथ्वीपर प्रद्युम्न आदिमें प्रतिष्ठित हुआ। उदारबुद्धि रुक्मिणीकुमार प्रद्युम्नने उक्त गान्धर्व-कलाको प्रयोगमें लाकर दिखाया भी था। उन्होंने ही ताम्बूलका प्रयोग किया। इन्द्रतुल्य पराक्रमी पाँच वीरों (श्रीकृष्ण, बलराम, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध और साम्ब)-ने यहाँ छालिक्य गान्धर्वका आयोजन किया था, जो मनुष्योंको सदा ही अभीष्ट है। वह शुभकारक, वृद्धि करनेवाला, प्रशस्त, मङ्गलकारी, यशोवर्द्धक, पुण्यदायक, पुष्टि और अभ्युदयको देनेवाला है। उदारकीर्तिवाले भगवान् नारायणको वह परम प्रिय है॥ ७२—७६॥ उसकी चर्चा करनेमात्रसे वह विजयकी प्राप्ति और धर्मका लाभ कराता है। दुःस्वप्नका नाश और पापका निवारण कर देता है। किसी समय देवलोकमें गये हुए उदारकीर्ति राजा रेवतने छालिक्य गान्धर्वको इतनी तन्मयताके साथ सुना था कि उन्हें चार हजार युगोंका समय भी एक दिनके समान ही प्रतीत हुआ। राजन्! उसी छालिक्य गान्धर्वसे कुमारजाति तथा अन्य गान्धर्व जातिकी प्रवृत्ति हुई है। ठीक उसी तरह, जैसे एक दीपकसे सैकड़ों दीपक जल जाते हैं। नरेश्वर! प्रद्युम्न आदि मुख्य-मुख्य यादवोंके साथ भगवान् श्रीकृष्ण और नारदजी ही छालिक्य

विज्ञानमेतद्धि परे यथाव-
दुद्देशमात्राच्च जनास्तु लोके।
जानन्ति छालिक्यगुणोदयानां
तोयं नदीनामथवा समुद्रः॥ ८०

ज्ञातुं समर्थो हि महागिरिर्वा
फलाग्रतो वा गुणतोऽथ वापि।
शक्यं न छालिक्यमृते तपोभिः
स्थाने विधानान्यथ मूर्च्छनासु॥ ८१

षड्ग्रामरागेषु च तत्तु कार्यं
तस्यैकदेशावयवेन राजन्।
लेशाभिधानां सुकुमारजातिं
निष्ठां सुदुःखेन नराः प्रयान्ति॥ ८२

छालिक्यगान्धर्वगुणोदयेषु
ये देवगन्धर्वमहर्षिसङ्घाः।
निष्ठां प्रयान्तीत्यवगच्छ बुद्ध्या
छालिक्यमेवं मधुसूदनेन॥ ८३

भैमोत्तमानां नरदेव दत्तं
लोकस्य चानुग्रहकाम्ययैव।
गतं प्रतिष्ठाममरोपगेयं
बाला युवानश्च तथैव वृद्धाः॥ ८४

क्रीडन्ति भैमाः प्रसवोत्सवेषु
पूर्वं तु बालाः समुदावहन्ति।
वृद्धाश्च पश्चात् प्रतिमानयन्ति
स्थानेषु नित्यं प्रतिमानयन्ति॥ ८५

मर्त्येषु मर्त्यान् यदवोऽतिवीराः
स्ववंशधर्मं समनुस्मरन्तः।
पुरातनं धर्मविधानतज्ज्ञाः
प्रीतिः प्रमाणं न वयः प्रमाणम्॥ ८६

प्रीतिप्रमाणानि हि सौहृदानि
प्रीतिं पुरस्कृत्य हि ते दशार्हाः।
वृष्ण्यन्धकाः पुत्रसखा बभूवु-
र्विसर्जिताः केशिविनाशनेन॥ ८७

गुणोदयके इस विज्ञानको यथावत् रूपसे जानते हैं। संसारके दूसरे मनुष्योंको तो इसकी नाममात्रकी ही जानकारी है। जैसे नदियोंके जलको समुद्र अथवा कोई विशाल पर्वत ही यथार्थरूपसे जान सकता है, उसी प्रकार भगवान् ही छालिक्यके श्रेष्ठ फल अथवा गुणोंको ठीक-ठीक जानते हैं। तपस्या किये बिना छालिक्य गान्धर्वको तथा उसके मूर्च्छनाविषयक विधानको नहीं जाना जा सकता। यह कथन सर्वथा उचित ही है॥ ७७—८१॥ राजन्! छः ग्रामोंवाले जो राग हैं, उनमें भी छालिक्यका उसके एकदेशीय अवयवके द्वारा गान करना चाहिये। लेश नामक जो छालिक्यकी सुकुमार जाति है, उसका गान करनेवाले मनुष्य भी बड़े दुःखसे (कठिनाईसे) उसकी समाप्ति कर पाते हैं (फिर सम्पूर्ण छालिक्यके गानकी तो बात ही क्या है?)॥ ८२॥ नरदेव! जो देवता, गन्धर्व और महर्षियोंके समुदाय हैं, वे ही छालिक्य गान्धर्वके गुणोंके प्रकट करनेकी कलामें पारंगत होते हैं। इस बातको तुम अपनी बुद्धिद्वारा अच्छी तरह जान लो। ऐसा समझकर ही भगवान् मधुसूदनने सम्पूर्ण जगत्पर अनुग्रह करनेकी इच्छासे मुख्य यादवोंको छालिक्य गान्धर्वका ज्ञान प्रदान किया था। वह देवताओंद्वारा गाये जानेयोग्य छालिक्य इस प्रकार मनुष्यलोकमें प्रतिष्ठित हुआ है। बालक, युवक और वृद्ध यदुवंशी जन्मोत्सवोंमें उक्त गान्धर्वद्वारा क्रीडा या मनोरञ्जन करते थे। पहले बालक उस कलाको प्रसन्नतापूर्वक ग्रहण करने लगे। तत्पश्चात् वृद्धलोग भी उसके प्रति आदरका भाव दिखाने लगे; फिर तो सब लोग सदा सभी स्थानोंमें उसकी भूरि-भूरि प्रशंसा करने लगे॥ ८३—८५॥ धर्मके विधानको जाननेवाले अत्यन्त वीर यादव अपने पुरातन वंश-धर्मका स्मरण करते हुए मर्त्यलोकमें मनुष्योंको जो सदा सम्मान देते थे, वह इस बातका सूचक है कि प्रेम ही प्रधान एवं महत्त्वकी वस्तु है। अवस्थाका महत्त्व नहीं है॥ ८६॥ सौहार्दका मूल आधार है प्रेम। अतः वे दशार्ह, वृष्णि और अन्धक-वंशी यादवपुत्रोंके साथ भी मित्रवत् बर्ताव करते थे। उस उत्सवके बाद भगवान् केशिविनाशन श्रीकृष्णने उन सबको विदा कर दिया॥ ८७॥

स्वर्गं गताश्चाप्सरसां समूहाः
कृत्वा प्रणामं मधुकंसशत्रोः।
प्रहृष्टरूपस्य सुहृष्टरूपा
बभूव हृष्टः सुरलोकसङ्घः॥ ८८

तत्पश्चात् वे अप्सराएँ भी मधु और कंसके शत्रु आनन्दमूर्ति श्रीकृष्णको प्रणाम करके स्वयं भी अत्यन्त हर्षमें मग्न हो स्वर्गलोकको चली गयीं। उस समय देवताओंके समुदायमें हर्ष छा गया॥ ८८॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे विष्णुपर्वणि भानुमतीहरणे छालिक्यक्रीडावर्णने एकोननवतितमोऽध्यायः॥ ८९॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत विष्णुपर्वमें भानुमतीहरणके प्रसङ्गमें छालिक्यक्रीड़ाका वर्णनविषयक नवासीवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ८९॥

नवतितमोऽध्यायः

निकुम्भद्वारा भानुमतीका अपहरण, श्रीकृष्ण, अर्जुन और प्रद्युम्नके साथ उसका युद्ध, गोकर्णतीर्थमें उसका पतन, प्रद्युम्नका भानुमतीको लेकर द्वारका पहुँचाना, फिर तीनोंका निकुम्भके साथ युद्ध, उसकी अद्भुत मायाका वर्णन और श्रीकृष्णद्वारा निकुम्भका वध

वैशम्पायन उवाच

तेषां क्रीडावसक्तानां यदूनां पुण्यकर्मणाम्।
छिद्रमासाद्य दुर्बुद्धिर्देवशत्रुर्दुरासदः॥ १

कन्यां भानुमतीं नाम भानोर्दुहितरं नृप।
जहारात्मवधाकाङ्क्षी निकुम्भो नाम दानवः॥ २

अन्तर्हितो मोहयित्वा यदूनां प्रमदाजनम्।
मायावी मायया राजन् पूर्ववैरमनुस्मरन्॥ ३

भ्रातुर्हि वज्रनाभस्य तस्य कन्या प्रभावती।
प्रद्युम्नेन हृता वीर वज्रनाभस्तथा हतः॥ ४

भानोरेव तथारण्ये वसत्यवसरेण हि।
अस्वाधीने दुराधर्षे छिद्रज्ञो दानवाधमः॥ ५

कन्यापुरे महानादः सहसा समुपस्थितः।
तस्यां ह्रियन्त्यां कन्यायां रुदन्त्यां समितिंजय॥ ६

वसुदेवाहुकौ वीरौ दंशितौ निर्गतावुभौ।
आर्तनादमुपश्रुत्य भानोः कन्यापुरे तदा॥ ७

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! जब पुण्यकर्मा यदुवंशी जलक्रीड़ामें आसक्त हो रहे थे, उसी समय मौका पाकर दुर्जय देवद्रोही दुर्बुद्धि दानव निकुम्भने मानो अपने ही वधकी इच्छासे भानु नामक यादवकी पुत्री भानुमतीका अपहरण कर लिया॥ १-२॥ राजन्! अदृश्यरूपसे अन्तःपुरमें पहुँचकर मायाद्वारा यादवोंकी स्त्रियोंको मोहित करके उस मायावी दानवने पहलेके वैरको याद रखते हुए ही भानुमतीका अपहरण किया था॥ ३॥ वीर नरेश! उसके भाई वज्रनाभकी एक कन्या थी, जो प्रभावतीके नामसे विख्यात थी। प्रद्युम्नने उसे हर लिया और वज्रनाभको भी मार डाला॥ ४॥ तबसे वह नीच दानव अवसरकी खोजके लिये भानुके ही उपवनमें रहा करता था। भानुका कन्यापुर यद्यपि बड़ा ही दुर्धर्ष था, तथापि उस समय किसी रक्षकके अधीन नहीं था। उसकी इस दुर्बलताको दानवाधम निकुम्भ जानता था; (इसलिये उसे कन्याको हर लेनेका अवसर मिल गया)॥ ५॥ शत्रुविजयी नरेश! जब उस भानुकुमारीका अपहरण होने लगा और वह रोने-चिल्लाने लगी, उस समय सहसा कन्यापुरमें बड़े जोरसे कोलाहल मच गया॥ ६॥ भानुके कन्यापुरमें होनेवाले आर्तनादको सुनकर वीर वसुदेव और उग्रसेन दोनों कवच धारण करके तत्काल बाहर निकले॥ ७॥

न दृष्टिगोचरे तौ तु ददृशातेऽपकारिणम्।
तथैव दंशितौ यातौ यत्र कृष्णो महाबलः॥ ८

श्रुतार्थः स्वं विमानं तदारुरोह जनार्दनः।
पार्थेन सहितस्ताक्ष्यं नागशत्रुमरिंदमः॥ ९

रथी त्वमनुगच्छेति संदिश्य मकरध्वजम्।
त्वरेति गरुडं वीरः संदिदेश च काश्यपम्॥ १०

वज्रं नगरमायान्तं निकुम्भं रणदुर्जयम्।
पार्थकृष्णौ महात्मानावासेदतुररिंदमौ॥ ११

प्रद्युम्नश्च महातेजा मायिनां प्रवरो नृप।
निकुम्भश्चाथ तान् दृष्ट्वा त्रिधाऽऽत्मानमथाकरोत्॥ १२

तान् सर्वान् योधयामास निकुम्भः प्रहसन्निव।
बहुकण्टकगुर्वीभिर्गदाभिरमरोपमः ॥ १३

सव्येनालम्ब्य हस्तेन कन्यां भानुमतीं नृप।
दक्षिणेनाथ हस्तेन गदया प्राहरत् पुनः॥ १४

कन्यार्थं न च कृष्णौ वा कामो वा नृपसत्तम।
निर्दयं प्रहरन्ति स्म निकुम्भे च महासुरे॥ १५

समर्थास्ते महात्मानः शत्रुं हन्तुं दुरासदाः।
निशश्वसुर्नरपते दयाभारावपीडिताः॥ १६

श्रेष्ठो धनुष्मतां पार्थः सर्वथा कुशलो युधि।
नागोष्ट्रविधिना दैत्यं शरपङ्क्त्या जघान ह॥ १७

ते तु वैतस्तिकैर्बाणैर्विविधान् दानवान् युधि।
न कन्यां कलया युक्त्या शिक्षया च महीपते॥ १८

ततः स कन्यया सार्द्धं तत्रैवान्तरधीयत।
आसुरीमाश्रितो मायां न च तां वेत्ति कश्चन॥ १९

तं कृष्णौ रौक्मिणेयश्च पृष्ठतोऽनुययुस्तदा।
हारितः शकुनो भूत्वा तस्थावथ महासुरः॥ २०

परंतु जहाँतक उनकी दृष्टि गयी, वहाँतक किसी अपराधीको उन्होंने नहीं देखा; फिर वे दोनों उसी तरह कवच बाँधे उस स्थानपर गये, जहाँ महाबली श्रीकृष्ण विराजमान थे॥ ८॥ उनके मुखसे द्वारकापुरका सब समाचार सुनकर शत्रुओंका दमन करनेवाले श्रीकृष्ण उस समय अर्जुनके साथ अपने वाहन सर्पशत्रु गरुड़पर आरूढ़ हुए॥ ९॥ फिर वे वीर श्रीकृष्ण प्रद्युम्नको यह आदेश देकर कि तुम रथपर बैठकर मेरे साथ आओ, कश्यपनन्दन गरुड़से बोले, शीघ्रता करो॥ १०॥ वज्र नामक नगरकी ओर जाते हुए रणदुर्जय निकुम्भको शत्रुओंका दमन करनेवाले महात्मा अर्जुन और श्रीकृष्णने रास्तेमें ही पा लिया॥ ११॥ नरेश्वर! मायावियोंमें श्रेष्ठ महातेजस्वी प्रद्युम्न भी उसके पास जा पहुँचे। निकुम्भने उन तीनोंको देखकर अपने तीन रूप बना लिये॥ १२॥ तत्पश्चात् देवोपम वीर निकुम्भ अनेक काँटोंसे भरी हुई भारी गदाके द्वारा उन सबके साथ हँसता हुआ-सा युद्ध करने लगा॥ १३॥ नरेश्वर! बायें हाथसे यादवकन्या भानुमतीको पकड़कर (उसे ढालकी भाँति सामने रखकर) वह दाहिने हाथसे बारम्बार गदाका प्रहार करता था॥ १४॥ नृपश्रेष्ठ! कन्याकी रक्षाके लिये ही श्रीकृष्ण, अर्जुन तथा प्रद्युम्न उस निकुम्भ नामक महान् असुरपर निर्दयतापूर्वक प्रहार नहीं करते थे॥ १५॥ महाराज! वे दुर्जय महात्मा उस शत्रुका वध करनेमें सर्वथा समर्थ थे तो भी दयाके भारसे दबे होनेके कारण वे निःश्वास लेकर रह जाते थे॥ १६॥ धनुर्धारियोंमें श्रेष्ठ अर्जुन युद्धमें सर्वथा कुशल थे; अतः वे नागोष्ट्र[1]-विधिसे अपने बाणसमूहद्वारा उस दैत्यको घायल करने लगे॥ १७॥ पृथ्वीनाथ! वे श्रीकृष्ण आदि वीर अपनी कला, युक्ति और शिक्षाके प्रभावसे एक-एक बित्तेके बाणोंद्वारा नाना प्रकारके दानवोंको उस युद्धमें घायल करते थे; किंतु राजकन्याको चोट नहीं लगने देते थे॥ १८॥ तब वह आसुरी मायाका आश्रय लेकर कन्याके साथ वहीं अन्तर्धान हो गया। उस मायाको उन तीनोंमेंसे कोई नहीं जानता था॥ १९॥ श्रीकृष्ण, अर्जुन और प्रद्युम्न तीनोंने ही तत्काल उस दानवका पीछा किया। आगे जाकर वह महान् असुर हारित पक्षी होकर बैठ गया॥ २०॥

१. नागोष्ट्रका अर्थ है सर्प और ऊँट। किसी वनमें एक ऊँटके शरीरपर अजगर सर्प लिपट गया था। यह देख किसी धनुर्धर वीरने अपना अस्त्र-लाघव दिखाते हुए ऐसा बाण मारा, जिससे अजगर तो मारा गया, किंतु ऊँट बाल-बाल बच गया। यही नागोष्ट्र-विधि है। ये अर्जुन आदि वीर अपने बाणोंसे दैत्यको घायल करते थे, किंतु कन्याके शरीरपर आँच नहीं आने देते थे।

तं बाणैः पुनरेवाथ वीरो भूयो धनञ्जयः।
वैतस्तिकैर्मर्मभिद्भिः कन्यां रक्षन्नताडयत्॥ २१

स इमां पृथिवीं कृत्स्नां सप्तद्वीपां महासुरः।
बभ्रामानुगतश्चैव तैर्वीरैररिमर्दनः॥ २२

गोकर्णस्योपरिष्टात्तु पर्वतस्य महासुरः।
पपात वेलां गङ्गायाः पुलिने सह कन्यया॥ २३

न देवा नासुराश्चापि लङ्घयन्ति तपोधनाः।
गोकर्णं तेजसा गुप्तं महादेवस्य भारत॥ २४

एतदन्तरमासाद्य प्रद्युम्नः शीघ्रविक्रमः।
कन्यां भानुमतीं भैमो जग्राह रणदुर्जयः॥ २५

असुरः सोऽर्दितो राजन् कृष्णाभ्यां निशितैः शरैः।
त्यक्त्वाथोत्तरगोकर्णं निकुम्भो दक्षिणां दिशम्।
जगाम पृष्ठतो यातौ कृष्णौ तार्क्ष्यगतौ तदा॥ २६

विवेश षट्पुरं चैव ज्ञातीनामालयं तथा।
तत्र वीरौ गुहाद्वारि कृष्णौ रात्रौ तदोषतुः॥ २७

रौक्मिणेयोऽपि कृष्णेन संदिष्टो द्वारकां पुरीम्।
अनयद् भानुतनयां प्रहृष्टेनान्तरात्मना॥ २८

नयित्वा चाययौ वीरः षट्पुरं दानवाकुलम्।
ददर्श च गुहाद्वारि कृष्णौ भीमपराक्रमौ॥ २९

ऊषतुर्द्वारमाक्रम्य षट्पुरस्य महाबलौ।
कृष्णौ प्रद्युम्नसहितौ निकुम्भवधकाङ्क्षिणौ॥ ३०

ततोऽनन्तरमेतस्माद् बिलादतिबलस्तदा।
निर्जगाम बली योद्धुं निकुम्भो भीमविक्रमः॥ ३१

तस्य निर्गच्छतस्तस्माद् बिलात् पार्थो विशाम्पते।
रुरोध सर्वतो मार्गं शरैर्गाण्डीवनिःसृतैः॥ ३२

सोऽभिसृत्य गदां घोरामुद्यम्य बहुकण्टकाम्।
शिरस्यताडयत् पार्थं निकुम्भो बलिनां वरः॥ ३३

अदृष्टेनाहतो वीरः शिरस्यथ मुमोह सः।
गदयाभिहते पार्थे रक्तं वमति मुह्यति॥ ३४

हसित्वा सोऽसुरो दृप्तो रौक्मिणेयमताडयत्।
तं प्राङ्मुखमुखं वीरं मायावी मायिनां वरम्।
अदृष्टेनाहतो वीरः शिरस्यथ मुमोह सः॥ ३५

तब वीर धनञ्जयने पुनः कन्याकी रक्षा करते हुए वैतस्तिक नामक मर्मभेदी बाणोंद्वारा उस दैत्यपर प्रहार किया॥ २१॥ तब वह शत्रुमर्दन महान् असुर इस सात द्वीपोंसे युक्त सारी पृथ्वीपर चक्कर लगाने लगा और वे तीनों वीर निरन्तर उसका पीछा करते रहे॥ २२॥ वह महान् असुर जब गोकर्ण पर्वतके ऊपरसे होकर निकलने लगा, उस समय कन्यासहित गङ्गातटपर समुद्रके किनारे गिर पड़ा॥ २३॥ भरतनन्दन! गोकर्ण पर्वत महादेवजीके तेजसे सुरक्षित है। उसे देवता, असुर तथा तपोधन महर्षि भी नहीं लाँघ सकते हैं॥ २४॥ यह अवसर पाकर भीमकुलभूषण शीघ्रपराक्रमी रणदुर्जय वीर प्रद्युम्नने उस कन्या भानुमतीको अपने साथ ले लिया॥ २५॥ राजन्! श्रीकृष्ण और अर्जुनद्वारा तीखे बाणोंसे पीड़ित किया गया असुर निकुम्भ उत्तर गोकर्णको त्यागकर दक्षिण दिशाकी ओर चल दिया। गरुड़पर बैठे हुए श्रीकृष्ण और अर्जुन भी उस समय उसके पीछे-पीछे गये॥ २६॥ निकुम्भ अपने सजातीय बन्धुओंके निवासस्थान षट्पुरमें जा घुसा। श्रीकृष्ण और अर्जुन दोनों वीर रातमें वहाँ गुफाके द्वारपर बैठे रहे॥ २७॥ श्रीकृष्णकी आज्ञा पाकर रुक्मिणीनन्दन प्रद्युम्नने प्रसन्न-मनसे भानुकुमारी भानुमतीको द्वारकापुरीमें पहुँचा दिया॥ २८॥ उसे पहुँचाकर वीर प्रद्युम्न पुनः दानवोंसे भरे हुए षट्पुरमें आये और वहाँ गुफाके द्वारपर भयंकर पराक्रमी श्रीकृष्ण और अर्जुनसे मिले॥ २९॥ निकुम्भके वधकी इच्छा रखनेवाले महाबली श्रीकृष्ण और अर्जुन प्रद्युम्नके साथ षट्पुरका दरवाजा घेरकर बैठे थे॥ ३०॥ तदनन्तर भयंकर पराक्रमी अत्यन्त बलशाली बली निकुम्भ युद्धके लिये उस बिलसे बाहर निकला॥ ३१॥ प्रजानाथ! उस बिलसे निकलते समय निकुम्भके मार्गको अर्जुनने गाण्डीव धनुषसे छूटे हुए बाणोंद्वारा चारों ओरसे अवरुद्ध कर दिया॥ ३२॥ तब बलवानोंमें श्रेष्ठ निकुम्भने निकट आकर बहुतेरे कण्टकोंसे भरी हुई अपनी भयानक गदाको उठाकर अर्जुनके मस्तकपर दे मारा॥ ३३॥ उसने अदृश्य रहकर यह आघात किया था। सिरपर गदाकी चोट पड़नेसे वीर अर्जुन मूर्च्छित हो गये। वे रक्त वमन करते हुए जब अचेत हो गये, तब उस घमंडी एवं मायावी असुरने हँसकर मायावियोंमें श्रेष्ठ वीर रुक्मिणीकुमारको चोट पहुँचायी। वे पूर्वाभिमुख होकर खड़े थे; अतः उस असुरको उन्होंने देखा नहीं था। उस अदृश्य असुरके द्वारा सिरपर आघात होनेसे वीर प्रद्युम्नको भी मूर्च्छा आ गयी॥ ३४-३५॥

तथागतौ तु दृष्ट्वा तौ मुह्यमानौ सुताडितौ।
अभिदुद्राव गोविन्दो निकुम्भं क्रोधमूर्च्छितः॥ ३६

कौमोदकीं समुद्यम्य गदपूर्वोद्भवो गदाम्।
तावन्योन्यं दुराधर्षौ गर्जन्तावभिपेततुः॥ ३७

ऐरावतगतः शक्रः सर्वैर्देवगणैः सह।
ददर्श तन्महायुद्धं घोरं देवासुरं तदा॥ ३८

दृष्ट्वा देवान् हृषीकेशश्चित्रैर्युद्धैररिंदमः।
इयेष दानवं हन्तुं देवानां हितकाम्यया॥ ३९

स मण्डलानि चित्राणि दर्शयामास केशवः।
कौमोदकीं महाबाहुर्लालयन् युद्धकोविदः॥ ४०

तथैवासुरमुख्योऽपि गदां तां बहुकण्टकाम्।
शिक्षया भ्रामयाणोऽथ मण्डलानि चचार ह॥ ४१

वृषभाविव गर्जन्तौ बृहन्ताविव कुञ्जरौ।
इषितान्तरमासाद्य क्रुद्धौ शालावृकाविव॥ ४२

आजघान निकुम्भस्तु गदया गदपूर्वजम्।
स्पष्टाष्टघंटया वीर नादं मुक्त्वातिदारुणम्॥ ४३

तत्कालमेव कृष्णोऽपि भ्रामयित्वा महागदाम्।
निकुम्भमूर्द्धनि तदा पातयामास भारत॥ ४४

अवष्टभ्य मुहूर्तं तु हरिः कौमोदकीं गदाम्।
तस्थौ जगद्गुरुर्धीमान् मुमोह पतितः क्षितौ॥ ४५

हाहाभूतं जगत् सर्वं तत्कालमभवत् तदा।
तथागते वासुदेवे नरदेव महात्मनि॥ ४६

आकाशगङ्गातोयेन शीतेन च सुगन्धिना।
सिषेचामृतमिश्रेण कृष्णं देवेश्वरः स्वयम्॥ ४७

नूनमात्मेच्छया कृष्णस्तथा चक्रे सुरोत्तमः।
को हि शक्तो महात्मानं युद्धे मोहयितुं हरिम्॥ ४८

कृष्णः प्रत्यागतप्राणश्चक्रमुद्यम्य भारत।
प्रतीच्छेति दुरात्मानमुवाच रिपुनाशनः॥ ४९

भारी आघातसे पीड़ित हो अचेत पड़े हुए उन दोनों वीरोंको देखकर भगवान् श्रीकृष्णका क्रोध बहुत बढ़ गया और वे गदके बड़े भाई गोविन्द कौमोदकी गदा उठाकर निकुम्भकी ओर दौड़े। वे दोनों दुर्धर्ष वीर गर्जना करते हुए एक-दूसरेपर टूट पड़े। ऐरावतपर बैठे हुए इन्द्र समस्त देवताओंके साथ आकर उस समय देवताओं और असुरोंके उस घोर महायुद्धको देखने लगे॥ ३६—३८॥ देवताओंको देखकर शत्रुओंका दमन करनेवाले श्रीकृष्णने उनके हितकी कामनासे विचित्र युद्धोंद्वारा उस दानवको मार डालनेकी इच्छा की॥ ३९॥ युद्धकलाकोविद महाबाहु श्रीकृष्ण अपनी कौमोदकी गदाका लालन करते हुए विचित्र मण्डल (पैंतरे) दिखाने लगे॥ ४०॥ इसी प्रकार असुरोंमें श्रेष्ठ निकुम्भ भी अपनी बहुत-से कण्टकोंवाली गदाको शिक्षाके अनुसार घुमाता हुआ पैंतरे दिखाने लगा॥ ४१॥ जैसे वासिता—मैथुनकी इच्छावाली गायको अपने बीचमें पाकर दो साँड़ हँकड़ते हुए आपसमें लड़ते हैं; जैसे वासिता हथिनीके लिये दो हाथी चिग्घाड़ते हुए परस्पर युद्ध करते हैं तथा जैसे दो भेड़िये किसी माँदा भेड़ियाके लिये परस्पर जूझते हैं, उसी प्रकार वे श्रीकृष्ण और निकुम्भ क्रोधमें भरकर एक-दूसरेसे भिड़े हुए थे॥ ४२॥ वीर नरेश! निकुम्भने अत्यन्त भयंकर सिंहनाद करके जिसमें आठ घण्टियाँ स्पष्ट दिखायी देती थीं, ऐसी गदाके द्वारा भगवान् गदाग्रजपर आघात किया॥ ४३॥ भरतनन्दन! भगवान् श्रीकृष्णने तत्काल ही अपनी विशाल गदा घुमाकर उस समय निकुम्भके मस्तकपर दे मारी॥ ४४॥ उस समय बुद्धिमान् जगद्गुरु भगवान् श्रीकृष्ण दो घड़ीतक कौमोदकी गदाको थामे हुए खड़े रहे। तत्पश्चात् (अपनी ही इच्छासे) मूर्च्छित हो पृथ्वीपर गिर पड़े॥ ४५॥ नरदेव! उस समय महात्मा वसुदेवनन्दन श्रीकृष्णकी वैसी अवस्था हो जानेपर तत्काल सारे जगत्में हाहाकार मच गया॥ ४६॥ स्वयं देवेश्वर इन्द्रने अमृतमिश्रित आकाशगङ्गाके शीतल एवं सुगन्धित जलसे श्रीकृष्णका अभिषेक किया॥ ४७॥ निश्चय ही सुरश्रेष्ठ श्रीकृष्णने अपनी इच्छासे ही ऐसा (मूर्च्छाका अभिनय) किया था; अन्यथा युद्धमें उन महात्मा श्रीहरिको मूर्च्छित कर देनेकी शक्ति किसमें है?॥ ४८॥ भारत! सचेत होनेपर शत्रुनाशन श्रीकृष्णने चक्र उठाकर उस दुरात्मासे कहा—'अरे! अब इस चक्रकी चोट सहन कर'॥ ४९॥

निकुम्भोऽप्यतिमायावी उत्पपात दुरासदः।
शरीरं तत् परित्यज्य न तु तं वेत्ति केशवः॥ ५०

मुमूर्षति मृतो वायमिति मत्वा जनार्दनः।
ररक्ष स्मरमाणोऽथ वीरो वीरव्रतं विभो॥ ५१

अथ प्रद्युम्नकौन्तेयावागतौ लब्धचेतनौ।
स्थितौ नारायणाभ्याशे निकुम्भवधनिश्चितौ॥ ५२

प्रद्युम्नोऽप्यथ मायावी विदितः कृष्णमब्रवीत्।
निकुम्भस्तात नास्त्यत्र गतः क्वापि सुदुर्मतिः॥ ५३

प्रद्युम्नेनैवमुक्ते तु तन्ननाश कलेवरम्।
प्रजहासाथ भगवानर्जुनेन सह प्रभुः॥ ५४

तदायुतसहस्राणि निकुम्भानां जनाधिप।
ददृशुस्ते ततो वीराः क्षितौ दिवि च सर्वतः॥ ५५

सहस्राण्येव कृष्णं तु तथा पार्थमरिंदम।
रौक्मिणेयं तथा वीरं तदद्भुतमिवाभवत्॥ ५६

पाण्डवस्य धनुः केचित्केचिदस्य महाशरान्।
अन्येऽस्य जगृहुर्हस्तावन्ये पादौ महासुराः॥ ५७

एवं ग्रहाय तं वीरमगमंस्ते विहायसि।
पार्थानामपि कोट्यस्तु गृहीतानां तदाभवन्॥ ५८

नान्तं ददर्श कृष्णश्च कार्ष्णिश्च रिपुनाशनौ।
विच्छिद्य तौ शरैर्वीरौ निकुम्भं पार्थवर्जितौ॥ ५९

एकैकस्तु द्विधा च्छिन्नो द्वेधा भवति भारत।
दिव्यज्ञानस्तदा कृष्णो भगवाननुदृष्टवान्॥ ६०

निकुम्भं तत्त्वतश्चापि ददर्श मधुसूदनः।
स्रष्टारं सर्वमायानां हर्तारं फाल्गुनस्य च॥ ६१

स चक्रेण शिरस्तस्य चकर्तासुरसूदनः।
पश्यतां सर्वभूतानां भूतभव्यभवो हरिः॥ ६२

स मुक्त्वा फाल्गुनं राजञ्छिन्ने शिरसि भारत।
पपातासुरमुख्योऽथ च्छिन्नमूल इव द्रुमः॥ ६३

उनकी यह बात सुनकर अत्यन्त मायावी दुर्जय वीर निकुम्भ भी अपने उस शरीरको वहीं त्यागकर ऊपरकी ओर उड़ गया। श्रीकृष्णको उसकी इस चालका पता न लगा॥ ५० ॥ प्रभो! यह मरना चाहता है अथवा मर गया है—ऐसा समझकर वीर-व्रतका स्मरण रखते हुए वीर जनार्दनने उसकी रक्षा की (गिरे हुए उस दानवके शरीरपर अपना अस्त्र नहीं चलाया)॥ ५१ ॥ तदनन्तर प्रद्युम्न और अर्जुन दोनों सचेत हो श्रीकृष्णके निकट आकर खड़े हो गये। उन दोनोंने निकुम्भके वधका निश्चय कर लिया था॥ ५२ ॥ प्रद्युम्न भी मायावी थे; अतः उन्होंने निकुम्भकी मायाको पहचान लिया और श्रीकृष्णसे कहा—'तात! निकुम्भ यहाँ नहीं है। वह दुर्बुद्धि कहीं चला गया'॥ ५३ ॥ प्रद्युम्नके इतना कहते ही निकुम्भका वह कलेवर अदृश्य हो गया। यह देख अर्जुनके साथ भगवान् श्रीकृष्ण जोर-जोरसे हँसने लगे॥ ५४॥ नरेश्वर! इतनेहीमें उन वीरोंने पृथ्वीपर, आकाशमें तथा सब ओर सहस्रों अयुत (एक करोड़) निकुम्भके शरीर देखे॥ ५५ ॥ शत्रुदमन नरेश! श्रीकृष्ण, अर्जुन तथा रुक्मिणीकुमार वीर प्रद्युम्नके भी सहस्रों शरीर दिखायी दिये। वह अद्भुत-सा दृश्य प्रकट हुआ॥ ५६ ॥ किन्हीं महान् असुरोंने अर्जुनका धनुष ले लिया, किन्हींने उनके बड़े-बड़े बाण छीन लिये, दूसरोंने उनके दोनों हाथ पकड़ लिये और अन्य असुरोंने उनके दोनों पैर॥ ५७॥ इस तरह वीर अर्जुनको पकड़कर वे सब आकाशमें ले गये; फिर उन असुरोंद्वारा पकड़े गये अर्जुनके करोड़ों रूप हो गये॥ ५८॥ शत्रुओंका नाश करनेवाले श्रीकृष्ण और प्रद्युम्न दोनों वीरोंने पार्थसे रहित हो अपने बाणोंसे निकुम्भको काट डाला तो भी उसका अन्त होता नहीं देखा॥ ५९ ॥ भारत! एक-एक निकुम्भके दो टुकड़े कर देनेपर वह एकसे दो रूप धारण कर लेता था। उस समय दिव्यज्ञानसम्पन्न भगवान् श्रीकृष्णने बारम्बार उसके विषयमें विचार किया॥ ६० ॥ तब भगवान् मधुसूदनने सम्पूर्ण मायाओंके स्रष्टा तथा अर्जुनका अपहरण करनेवाले निकुम्भको यथार्थ रूपसे देखा॥ ६१ ॥ भूत, वर्तमान और भविष्यको उत्पन्न करनेवाले असुरसूदन श्रीहरिने समस्त प्राणियोंके देखते-देखते अपने चक्रसे निकुम्भका सिर काट लिया॥ ६२॥ राजन्! भरतनन्दन! सिर कट जानेपर वह मुख्य असुर अर्जुनको छोड़कर जड़से कटे हुए वृक्षकी भाँति पृथ्वीपर गिर पड़ा॥ ६३॥

अथाकाशगतं पार्थं पतमानं विहायसः।
कृष्णवाक्येन जग्राह कार्ष्णिर्वियति मानद॥ ६४

निकुम्भे पतिते भूमौ समाश्वास्य धनञ्जयम्।
जगाम द्वारकां देवः पार्थकामसमन्वितः॥ ६५

समियाय दशार्होऽथ द्वारकां मुदितो विभुः।
नारदं च महात्मानं ववन्दे यदुनन्दनः॥ ६६

नारदोऽथ महातेजा भानुं यादवमब्रवीत्।
भानो मा कार्षीर्मन्युं त्वं श्रूयतां भैमनन्दन॥ ६७

क्रीडन्त्या रैवतोद्याने दुर्वासाः कोपितोऽनया।
स शशाप ततो रोषान्मुनिर्दुहितरं तव॥ ६८

अतिदुर्ललितैः कन्या शत्रुहस्तं गमिष्यति।
सुतार्थे ते मया सार्द्धं मुनिभिः स प्रसादितः॥ ६९

बालां व्रतवतीं कन्यामनागसमिमां मुने।
शप्तवानसि धर्मज्ञ कथं धर्मभृतां वर।
अनुग्रहं विधत्स्वात्र वयं विज्ञापयामहे॥ ७०

अस्माभिरेवमुक्तस्तु दुर्वासा भैमनन्दन।
उवाचाधोमुखो भूत्वा मुहूर्तं कृपयान्वितः॥ ७१

यदवोचमहं वाक्यं तत् तथा न तदन्यथा।
रिपुहस्तमवश्यं हि गमिष्यति न संशयः॥ ७२

अदूषिता नु धर्मेण भर्तारमुपलप्स्यति।
बहुपुत्रा बहुधना सुभगा च भविष्यति॥ ७३

सुगन्धगन्धा च सदा कुमारी च पुनः पुनः।
न च शोकमिमं घोरं तन्वङ्गी धारयिष्यति॥ ७४

एवं भानुमती वीर सहदेवाय दीयताम्।
श्रद्धानः स शूरश्च धर्मशीलश्च पाण्डवः॥ ७५

ततो भानुमतीं भानुर्ददौ माद्रीसुताय वै।
सहदेवाय धर्मात्मा नारदस्य वचः स्मरन्॥ ७६

मानद! उस समय श्रीकृष्णकी आज्ञासे प्रद्युम्नने आकाशमें पहुँचकर वहाँसे गिरते हुए अर्जुनको पकड़ लिया॥ ६४॥ निकुम्भके धराशायी हो जानेपर अर्जुनको आश्वासन दे उनके और प्रद्युम्नके साथ भगवान् श्रीकृष्ण द्वारकाको चले गये॥ ६५॥ दशार्हवंशी यदुकुलनन्दन भगवान् श्रीकृष्णने बड़ी प्रसन्नताके साथ द्वारकामें पदार्पण किया और वहाँ महात्मा नारदजीको मस्तक झुकाया॥ ६६॥ तदनन्तर महातेजस्वी नारदजीने भानु नामक यादवसे कहा—"भैमनन्दन! भानो! कन्याका अपहरण होनेके कारण मनमें खेद न करो। मेरी बात सुनो॥ ६७॥ "यह भानुमती किसी दिन रैवतवनके उद्यानमें खेल रही थी। वहाँ इसने दुर्वासा मुनिको क्रोध दिला दिया। तब मुनिने क्रोधवश आपकी पुत्रीको शाप दे दिया—॥ ६८॥ "यह कन्या अपनी दुर्ललित चेष्टाओंसे शत्रुके हाथमें पड़ जायगी।' उस समय मैंने तथा दूसरे मुनियोंने आपकी इस पुत्रीके लिये दुर्वासाको प्रसन्न किया और कहा—'मुने! यह बाला ब्रह्मचर्यव्रतका पालन करनेवाली कन्या है। इसने आपका कोई अपराध भी नहीं किया है; फिर आपने इसे कैसे शाप दे दिया? धर्मात्माओंमें श्रेष्ठ धर्मज्ञ महर्षे! इस कन्यापर अनुग्रह कीजिये। इसके लिये हमलोग यहाँ प्रार्थना करते हैं'॥ ६९-७०॥ "भैमनन्दन! हमारे ऐसा कहनेपर दुर्वासाजी नीचे मुँह किये दो घड़ीतक मौन रहे; फिर दयापूर्वक बोले—॥ ७१॥ "महर्षियो! मैंने जो बात कही है, वह उसी तरह होगी। उसे कोई बदल नहीं सकता। यह शत्रुके हाथमें अवश्य पड़ेगी, इसमें संशय नहीं है; परंतु यह भी निश्चय है कि यह दूषित नहीं होने पायगी और धर्मके अनुसार पतिको प्राप्त करेगी। इसके बहुत-से पुत्र होंगे। यह बहुत धनसे सम्पन्न और सौभाग्यवती होगी॥ ७२-७३॥ "इसके शरीरकी गन्ध सदा सुगन्धित होगी। यह पति-समागमके पश्चात् बारम्बार कुमारी ही बनी रहेगी। इस कृशाङ्गी कन्याको अपने अपहरण-जनित घोर शोकका स्मरण नहीं रहेगा"॥ ७४॥ "वीर भानो! तुम मेरी बात मानकर भानुमतीका सहदेवके साथ ब्याह कर दो; क्योंकि पाण्डुपुत्र सहदेव श्रद्धालु, शूरवीर तथा धर्मशील हैं"॥ ७५॥ तदनन्तर नारदजीके वचनोंको याद रखते हुए धर्मात्मा भानुने अपनी कन्या भानुमती माद्रीकुमार सहदेवको दे दी॥ ७६॥

आनीतः सहदेवश्च प्रेषितश्चक्रपाणिना।
विवाहे च तदा वृत्ते सभार्यः स पुरीं गतः॥ ७७

चक्रपाणि भगवान् श्रीकृष्णने सहदेवको बुलवाया और उस समय विवाह-कार्य सम्पन्न हो जानेपर उन्हें पत्नीसहित विदा कर दिया, फिर वे अपनी पुरीको चले गये॥ ७७॥

इमं कृष्णस्य विजयं यः पठेच्छृणुयादथ।
विजयं सर्वकृत्येषु श्रद्दधानो लभेन्नरः॥ ७८

जो मनुष्य श्रद्धापूर्वक भगवान् श्रीकृष्णकी इस विजय-वार्ताको पढ़ेगा या सुनेगा, वह सभी कार्योंमें विजय प्राप्त करेगा॥ ७८॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे विष्णुपर्वणि भानुमतीहरणे निकुम्भवधो नाम नवतितमोऽध्यायः॥ ९०॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत विष्णुपर्वमें भानुमतीहरणके प्रसङ्गमें निकुम्भका वधविषयक नब्बेवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ९०॥

एकनवतितमोऽध्यायः

वज्रनाभकी तपस्या और वरप्राप्ति, उसका त्रिभुवन-विजयके लिये उद्योग, इन्द्रकी श्रीकृष्णसे वार्ता, भद्रनामा नटको मुनियोंका वरदान, इन्द्रका हंसोंको आवश्यक कर्तव्य बताकर वज्रनाभपुरमें भेजना

जनमेजय उवाच

भानुमत्यापहरणं विजयं केशवस्य च।
छालिक्यनयनं चैव देवलोकान्महामुने॥ १
क्रीडां च सागरे दिव्यां वृष्णीनामतितेजसाम्।
अश्रौषं परमाश्चर्यं मुने धर्मभृतां वर॥ २
वज्रनाभवधो ह्युक्तो निकुम्भवधकीर्तने।
तन्मे कौतूहलं श्रोतुं प्रसादाद् भवतो मुने॥ ३

जनमेजयने कहा—धर्मात्माओंमें श्रेष्ठ महामुने! भानुमतीका अपहरण, श्रीकृष्णकी विजय, देवलोकसे छालिक्य गान्धर्वका आनयन और अत्यन्त तेजस्वी वृष्णिवंशियोंकी समुद्रमें होनेवाली दिव्यक्रीड़ा—इन सबका अत्यन्त आश्चर्ययुक्त वर्णन मैंने सुना है॥ १-२॥ मुने! निकुम्भ-वधका वर्णन करते समय आपने वज्रनाभके वधकी भी चर्चा की है। आपकी कृपासे उसे सुननेके लिये मेरे मनमें कौतूहल हो रहा है॥ ३॥

वैशम्पायन उवाच

हन्त ते वर्तयिष्यामि वज्रनाभवधं नृप।
विजयं चैव कामस्य साम्बस्यैव च भारत॥ ४
मेरोः सानौ नरपते तपश्चक्रे महासुरः।
वज्रनाभ इति ख्यातो निश्चितः समितिंजयः॥ ५
तस्य तुष्टो महातेजा ब्रह्मा लोकपितामहः।
वरेण च्छन्दयामास तपसा परितोषितः॥ ६
अवध्यत्वं स देवेभ्यो वव्रे दानवसत्तमः।
पुरं वज्रपुरं चापि सर्वरत्नमयं शुभम्॥ ७
स्वच्छन्देन प्रवेशश्च न वायोरपि भारत।
अचिन्तितेन कामानामुपपत्तिर्नराधिप॥ ८

वैशम्पायनजीने कहा—नरेश्वर! भरतनन्दन! मैं प्रसन्नतापूर्वक तुम्हें वज्रनाभके वधका वृत्तान्त बताऊँगा। साथ ही प्रद्युम्न और साम्बकी विजयका भी वर्णन करूँगा॥ ४॥ नरेन्द्र! वज्रनाभ नामसे विख्यात महान् असुर निश्चय ही युद्धमें विजय पानेवाला था। एक समय उसने मेरुपर्वतके शिखरपर बड़ी भारी तपस्या की॥ ५॥ उसकी तपस्यासे महातेजस्वी लोकपितामह ब्रह्माजी बहुत संतुष्ट हुए। उन्होंने प्रसन्न होकर उससे इच्छानुसार वर माँगनेके लिये कहा॥ ६॥ तब उस श्रेष्ठ दानवने देवताओंसे अवध्य होनेका वर माँगा; साथ ही सम्पूर्ण रत्नोंके बने हुए सुन्दर वज्रपुर नामक नगरकी भी याचना की॥ ७॥ भारत! उस नगरमें स्वच्छन्दतापूर्वक वायुका भी प्रवेश नहीं होता था। नरेश्वर! बिना चिन्तन किये ही वहाँ सम्पूर्ण मनोवाञ्छित भोगोंकी प्राप्ति होती रहती थी॥ ८॥

शाखानगरमुख्यानां संवाहानां शतानि च।
नगरस्याप्रमेयस्य समन्ताज्जनमेजय॥ ९
तथा तदभवत् तस्य वरदानेन भारत।
उवास वज्रनगरे वज्रनाभो महासुरः॥ १०
कोटिशो वरलब्धं तमसुराः परिवार्य ते।
ऊषुर्वज्रपुरे राजन् संवाहेषु तथैव च॥ ११
शाखानगरमुख्येषु रम्येषु च नराधिप।
हृष्टपुष्टप्रमुदिता नृप देवस्य शत्रवः॥ १२
वज्रनाभोऽथ दुष्टात्मा वरदानेन दर्पितः।
पुरस्य चात्मनश्चैव जगद् बाधितुमुद्यतः॥ १३
महेन्द्रमब्रवीद् गत्वा देवलोकं विशाम्पते।
अहमीशितुमिच्छामि त्रैलोक्यं पाकशासन॥ १४
अथवा मे प्रयच्छस्व युद्धं देवगणेश्वर।
सामान्यं हि जगत्कृत्स्नं काश्यपानां महात्मनाम्॥ १५
स बृहस्पतिना सार्द्धं मन्त्रयित्वा महेश्वरः।
वज्रनाभं सुरश्रेष्ठः प्रोवाच कुरुवंशज॥ १६
सत्रेषु दीक्षितः सौम्य कश्यपो नः पिता मुनिः।
तस्मिन् वृत्ते यथा न्याय्यं तथा स हि करिष्यति॥ १७
ततः स पितरं गत्वा कश्यपं दानवोऽब्रवीत्।
यथोक्तं देवराजेन तमुवाचाथ कश्यपः॥ १८
सत्रे वृत्ते करिष्यामि यथा न्याय्यं भविष्यति।
त्वं तु वज्रपुरे पुत्र वत्स गच्छ समाहितः॥ १९
एवमुक्ते वज्रनाभः स्वमेव नगरं गतः।
महेन्द्रोऽपि ययौ देवो द्वारकां द्वारशालिनीम्॥ २०
गत्वा चान्तर्हितो देवो वासुदेवमथाब्रवीत्।
वज्रनाभस्य वृत्तान्तं तमुवाच जनार्दनः॥ २१
शौरेरुपस्थितो देव वाजिमेधो महाक्रतुः।
तस्मिन् वृत्ते वज्रनाभं पातयिष्यामि वासव॥ २२
तत्रोपायं प्रवेशे तु चिन्तयावः सतां गते।
नानिच्छया प्रवेशोऽस्ति तत्र वायोरपि प्रभो॥ २३

जनमेजय! उस अप्रमेय नगरके चारों ओर शाखा-नगरोंके मुख्य-मुख्य सैकड़ों उद्यान शोभा पाते थे, जो चहारदीवारियोंसे घिरे हुए थे॥ ९॥ भारत! उसको मिले हुए वरदानसे ही वह नगर उस रूपमें प्रतिष्ठित हुआ था। महान् असुर वज्रनाभ उस वज्रनगरमें निवास करता था॥ १०॥ राजन्! वर पाये हुए वज्रनाभको सब ओरसे घेरकर करोड़ों देवद्रोही असुर हृष्ट, पुष्ट और आनन्दित हो वज्रपुरमें तथा उसके शाखानगरोंके मुख्य-मुख्य घिरे हुए उद्यानोंमें निवास करते थे॥ ११-१२॥ अपनेको तथा अपने नगरको प्राप्त हुए वरदानसे घमंडमें भरा हुआ दुष्टात्मा वज्रनाभ सम्पूर्ण जगत्को कष्ट देनेके लिये उद्यत हो गया॥ १३॥ प्रजानाथ! वह देवलोकमें जाकर महेन्द्रसे बोला—'पाकशासन! मैं तीनों लोकोंपर शासन करना चाहता हूँ॥ १४॥ 'देवगणेश्वर! (या तो मेरे लिये देवलोक खाली कर दो) अथवा मुझे युद्ध प्रदान करो; क्योंकि सम्पूर्ण जगत्पर सभी महामनस्वी कश्यपपुत्रोंका समान अधिकार है'॥ १५॥ कुरुनन्दन! तब सुरश्रेष्ठ महेश्वर इन्द्रने बृहस्पतिजीके साथ सलाह करके वज्रनाभसे कहा—॥ १६॥ 'सौम्य! हम सबके पिता कश्यपमुनि यज्ञकी दीक्षा ले चुके हैं। उनका वह यज्ञ पूर्ण हो जानेपर वे जैसा उचित समझेंगे, वैसा हमलोगोंके लिये निर्णय कर देंगे'॥ १७॥ तब उस दानवने अपने पिता कश्यपके पास जाकर देवराज इन्द्रने जो कुछ कहा था, सब कह सुनाया। उसकी बात सुनकर कश्यपजीने कहा—॥ १८॥ 'वत्स! यज्ञ समाप्त हो जानेपर जैसा उचित होगा, वैसा करूँगा। तबतक तुम वज्रपुरमें चलकर सावधान होकर रहो'॥ १९॥ पिताके ऐसा कहनेपर वज्रनाभ अपने ही नगरको चला गया। उधर महेन्द्रदेव भी सुन्दर द्वारसे सुशोभित होनेवाली द्वारकापुरीको गये॥ २०॥ वहाँ जाकर अदृश्य होकर ही इन्द्रदेवने भगवान् श्रीकृष्णसे वज्रनाभका सारा वृत्तान्त कह सुनाया। तब श्रीकृष्ण उनसे बोले—॥ २१॥ 'देव! वासव! मेरे पिताजीका अश्वमेध नामक महान् यज्ञ उपस्थित है। उसके पूर्ण हो जानेपर मैं वज्रनाभको अवश्य मार गिराऊँगा॥ २२॥ सत्पुरुषोंके आश्रयदाता प्रभो! उसके नगरमें प्रवेश करनेका क्या उपाय है—यह हम दोनों सोचें; क्योंकि वज्रनाभकी इच्छाके बिना वहाँ वायुका भी प्रवेश नहीं हो सकता'॥ २३॥

ततो गतो देवराजो वासुदेवेन सत्कृतः।
वाजिमेधे च सम्प्राप्ते वसुदेवस्य भारत॥ २४

तस्मिन् यज्ञे वर्तमाने प्रवेशार्थं सुरोत्तमौ।
चिन्तयामासतुर्वीरौ देवराजाच्युतावुभौ॥ २५

तत्र यज्ञे वर्तमाने सुनाट्येन नटस्तदा।
महर्षींस्तोषयामास भद्रनामेति नामतः॥ २६

तं वरेण मुनिश्रेष्ठाश्छन्दयामासुरात्मवत्।
स वव्रे तु नटो भद्रो वरं देवेश्वरोपमः॥ २७

देवेन्द्रकृष्णाच्छन्देन सरस्वत्या प्रचोदितः।
प्रणिपत्य मुनिश्रेष्ठानश्वमेधे समागतान्॥ २८

नट उवाच

भोज्यो द्विजानां सर्वेषां भवेयं मुनिसत्तमाः।
सप्तद्वीपां च पृथिवीं विचरेयमिमामहम्॥ २९

प्रसिद्धाकाशगमनः शक्तुवंश्च विशेषतः।
अवध्यः सर्वभूतानां स्थावरा ये च जङ्गमाः॥ ३०

यस्य यस्य च वेषेण प्रविशेयमहं खलु।
मृतस्य जीवतो वापि भाव्येनोत्पादितस्य वा॥ ३१

सतूर्यस्तादृशः स्यां वै जरारोगविवर्जितः।
तुष्येयुर्मुनयो नित्यमन्ये च मम सर्वदा॥ ३२

एवमस्त्विति सम्प्रोक्तो ब्राह्मणैर्नृपते नटः।
सप्तद्वीपां वसुमतीं पर्यटत्यमरोपमः॥ ३३

पुराणि दानवेन्द्राणामुत्तरांश्च कुरूंस्तथा।
भद्राश्वान् केतुमालांश्च कालाम्रद्वीपमेव च॥ ३४

पर्वणीषु तु सर्वासु द्वारकां यदुमण्डिताम्।
आयाति वरदत्तः स लोकवीरो महानटः॥ ३५

ततो हंसान् धार्तराष्ट्रान् देवलोकनिवासिनः।
उवाच भगवाञ्छक्रः सान्त्वयित्वा सुरेश्वरः॥ ३६

भवन्तो भ्रातरोऽस्माकं काश्यपा देवपक्षिणः।
विमानवाहा देवानां सुकृतीनां तथैव च॥ ३७

तत्पश्चात् श्रीकृष्णके द्वारा सत्कार पाकर देवराज इन्द्र चले गये। भारत! जब वसुदेवजीका अश्वमेध यज्ञ प्राप्त हुआ (तब उसमें देवराज इन्द्र भी पधारे।)॥ २४॥ जब वह यज्ञ चालू हुआ, उस समय सुरश्रेष्ठ वीर देवराज इन्द्र और श्रीकृष्ण दोनों वज्रपुरमें प्रवेश करनेके लिये कोई उपाय सोचने लगे॥ २५॥ उस यज्ञमें भद्रनामा नामक एक नटने अपने उत्तम नाट्यके द्वारा महर्षियोंको संतुष्ट किया॥ २६॥ तब उन श्रेष्ठ मुनियोंने उसे अपने योग्य वर माँगनेके लिये कहा। तब देवेन्द्र तथा श्रीकृष्णकी इच्छाके अनुसार सरस्वतीसे प्रेरित हो अश्वमेध यज्ञमें पधारे हुए मुनिवरोंको प्रणाम करके देवेन्द्रतुल्य भद्र नामक नटने इस प्रकार वर माँगा॥ २७-२८॥

नट बोला—मुनिवरो! मैं समस्त द्विजोंके लिये भोजनीय होऊँ अर्थात् सब द्विज मुझे सादर भोजन करायें अथवा समस्त ब्राह्मण मेरा अन्न भोजन करें। सातों द्वीपोंसे युक्त इस सम्पूर्ण पृथ्वीपर मैं विचरण कर सकूँ। आकाशमें चलने-फिरनेकी उत्कृष्ट शक्ति मुझे प्राप्त हो। मैं विशेष शक्तिशाली रहकर स्थावर-जङ्गम सभी प्राणियोंके लिये अवध्य होऊँ॥ २९-३०॥ जो मर गया है, जीवित है अथवा जो भविष्यरूपसे मेरे द्वारा तत्काल उत्पन्न किया गया है, ऐसे लोगोंमेंसे जिस-जिसके वेषसे मैं कहीं प्रवेश करना चाहूँ, मैं वाद्योंसहित ठीक वैसा ही हो जाऊँ! जरा और रोग मुझे छू न सकें। मुझपर ऋषि-मुनि तथा अन्य लोग भी नित्य-निरन्तर संतुष्ट रहें॥ ३१-३२॥ नरेश्वर! तब ब्राह्मणोंने 'एवमस्तु' कहकर उस नटको अभीष्ट वरदान दे दिया। तबसे वह देवोपम शक्तिशाली नट सातों द्वीपोंवाली पृथ्वीपर विचरण करता रहता है॥ ३३॥ वह दानवेन्द्रोंके नगरोंमें तथा उत्तर-कुरु, भद्राश्व, केतुमाल तथा कालाम्र द्वीपोंमें घूमा करता था॥ ३४॥ वह वर पाया हुआ लोकवीर महानट सभी पर्वोंपर यादवोंसे अलंकृत द्वारकापुरीमें आया करता था॥ ३५॥ तदनन्तर देवलोकमें निवास करनेवाले हंसोंको, जो धृतराष्ट्री एवं कश्यपके वंशज थे, देवराज इन्द्रने बुलवाया और उन्हें सान्त्वना देकर कहा—॥ ३६॥ 'हंसो! तुम लोकपिता कश्यपजीकी संतति होनेके कारण हमारे भाई हो, देवपक्षी हो तथा देवताओं और पुण्यात्माओंके विमानवाहक हो॥ ३७॥

देवानामस्ति कर्तव्यं कार्यं शत्रुवधान्वितम्।
तत् कर्तव्यं न मन्त्रश्च भेत्तव्यो वः कथंचन॥ ३८

न कुर्वतां देवताज्ञामुग्रो दण्डः पतेदपि।
सर्वत्राप्रतिषिद्धं वो गमनं हंससत्तमाः॥ ३९

गत्वाप्रवेश्यमन्येषां वज्रनाभपुरोत्तमम्।
इतोऽन्तःपुरवापीषु चरध्वमुचितं हि वः॥ ४०

तस्यास्ति कन्यारत्नं हि त्रैलोक्यातिशयं शुभम्।
नाम्ना प्रभावती नाम चन्द्राभेव प्रभावती॥ ४१

वरदानेन सा लब्धा मात्रा किल वरानना।
हैमवत्या महादेव्याः सकाशादिति नः श्रुतम्॥ ४२

स्वयंवरा च सा कन्या बन्धुभिः स्थापिता सती।
आत्मेच्छया पतिं हंसा वरयिष्यति शोभना॥ ४३

तद्भवद्भिर्गुणा वाच्याः प्रद्युम्नस्य महात्मनः।
सद्भूताः कुलरूपस्य शीलस्य वयसस्तथा॥ ४४

यदा सा रक्तभावा च वज्रनाभसुता सती।
तस्याः सकाशात् संदेशो नयितव्यः समाधिना॥ ४५

प्रद्युम्नस्य पुनस्तस्मादानयध्वं तथैव च।
स्वबुद्ध्या प्राप्तकालं च संविधेयं हितं मम॥ ४६

नेत्रवक्त्रप्रसादश्च कर्तव्यस्तत्र सर्वथा॥ ४७
तथा तथा गुणा वाच्याः प्रद्युम्नस्य महात्मनः।
यथा यथा प्रभावत्या मनस्तत्र भवेत् स्थितम्॥ ४८

वृत्तान्तश्चानुदिवसं प्रदेयो मम सर्वथा।
द्वारवत्यां च कृष्णस्य भ्रातुर्मम यवीयसः॥ ४९

तावद्यत्नश्च कर्तव्यः प्रद्युम्नो यावदात्मवित्।
पर्यावर्तेद् वरारोहां वज्रनाभसुतां विभुः॥ ५०

अवध्यास्ते तु देवानां ब्रह्मणो वरदर्पिताः।
देवपुत्रैर्हि हन्तव्याः प्रद्युम्नप्रमुखैर्युधि॥ ५१

'इस समय देवताओंके सामने शत्रुवध-सम्बन्धी कार्य उपस्थित है, जो हम सबके लिये आवश्यक कर्तव्य है। उस कार्यको तुम्हें पूरा करना है और इस गुप्त मन्त्रको किसी तरह फूटने नहीं देना है॥ ३८॥ 'देवताओंकी इस आज्ञाका पालन न करनेपर तुम्हारे ऊपर भयानक दण्ड भी पड़ सकता है। श्रेष्ठ हंसो! तुम्हारी सर्वत्र अप्रतिहत गति है॥ ३९॥ 'वज्रनाभके श्रेष्ठ नगरमें प्रवेश करना दूसरोंके लिये असम्भव है। तुम वहाँ जाकर अन्तःपुरकी बावड़ियोंमें विचरो, क्योंकि यह कार्य तुम्हारे ही योग्य है॥ ४०॥ 'व्रजनाभके एक रत्नस्वरूपा कन्या है, जो त्रिलोकीमें अतिशय सुन्दरी है। उसका नाम प्रभावती है। वह ऐसी प्रतीत होती है मानो चन्द्रमाकी आभा ही उसकी प्रभा बनकर प्रकाशित हो रही हो॥ ४१॥ 'उसकी माताने गिरिराज हिमवान्की पुत्री महादेवी उमासे मिले हुए वरदानके प्रभावसे उस सुन्दर मुखवाली कन्याको प्राप्त किया है, ऐसा हमारे सुननेमें आया है॥ ४२॥ 'हंसो! अपने बन्धुओंद्वारा सुरक्षित हुई वह सुन्दरी कन्या प्रभावती स्वयंवरा है। स्वयंवरमें अपनी इच्छाके अनुसार पतिका वरण करेगी॥ ४३॥ 'अतः तुमलोग प्रभावतीके सम्मुख महात्मा प्रद्युम्नके उत्तम कुल, सुन्दर रूप, अच्छे शील-स्वभाव तथा नयी अवस्थाके श्रेष्ठ गुणोंका बखान करो॥ ४४॥ 'व्रजनाभकी वह सती-साध्वी पुत्री जब प्रद्युम्नके प्रति हृदयसे अनुरक्त हो जाय, तब एकाग्रचित्त होकर उसका संदेश तुम्हें प्रद्युम्नके पास पहुँचाना चाहिये; फिर वहाँसे तुमलोग उस संदेशका उत्तर लाया करो। साथ ही, अपनी बुद्धिसे भी सोच-विचारकर अवसरके अनुरूप कार्य करके मेरा हित-साधन करो॥ ४५-४६॥ 'तुम्हें वहाँ अपने नेत्रों और मुखके द्वारा सब प्रकारसे प्रसन्नता प्रकट करनी चाहिये। महात्मा प्रद्युम्नके गुणोंको उसी-उसी प्रकारसे बताना चाहिये, जिससे प्रभावतीका मन उनमें पूर्णतः अनुरक्त हो जाय॥ ४७-४८॥ 'इन सब बातोंका समाचार तुम्हें प्रतिदिन मुझे और द्वारकामें मेरे छोटे भाई श्रीकृष्णको भी बताना चाहिये'॥ ४९॥ 'जबतक आत्मज्ञानी वैभवशाली प्रद्युम्न वज्रनाभकी सुन्दरी पुत्री प्रभावतीको अपनी न बना लें तबतक तुम्हारा प्रयत्न चालू रहना चाहिये॥ ५०॥ 'ब्रह्माजीके वरदानसे घमंडमें भरे रहनेवाले वज्रनाभ आदि सारे दैत्य देवताओंके लिये अवध्य हैं। वे युद्धमें प्रद्युम्न आदि देवकुमारोंद्वारा ही मारे जा सकते हैं॥ ५१॥

नटो दत्तवरस्तस्य वेषमास्थाय यादवाः।
प्रद्युम्नाद्या गमिष्यन्ति वज्रनाभविनाशनाः॥ ५२

एतच्च सर्वं कर्तव्यमन्यच्च सर्वमेव हि।
प्राप्तकालं विधातव्यमस्माकं प्रियकाम्यया॥ ५३

प्रवेशस्तत्र देवानां नास्ति हंसाः कथंचन।
वज्रनाभेप्सिते तत्र प्रदेशे खलु सर्वथा॥ ५४

'मुनियोंका वर प्राप्त करनेवाला जो भद्रनामा नट है, उसीका वेष धारण करके प्रद्युम्न आदि यादव वज्रनाभका विनाश करनेके लिये उसके नगरमें जायँगे॥ ५२॥ 'ये तथा और भी जो समयोचित कर्तव्य प्राप्त हों, उन सबको हमारा प्रिय करनेकी इच्छासे तुमलोगोंको पूर्ण करना चाहिये॥ ५३॥ 'हंसो! वहाँ वज्रनाभके अभीष्ट प्रदेशमें देवताओंका किसी तरह भी प्रवेश नहीं हो सकता। यह सर्वथा निश्चित है'॥ ५४॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे विष्णुपर्वणि वज्रनाभवधे एकनवतितमोऽध्यायः॥ ९१॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत विष्णुपर्वमें वज्रनाभवधके प्रसंगमें इक्यानबेवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ९१॥

द्विनवतितमोऽध्यायः

हंसोंका वज्रपुरमें निवास, हंसीका प्रभावतीको प्रद्युम्नके प्रति अनुरक्त कराना, प्रभावतीका हंसीसे प्रद्युम्नकी प्राप्ति करानेका अनुरोध, हंसी और वज्रनाभका संवाद, हंसोंके मुँहसे सब समाचार सुनकर श्रीकृष्णका नटवेषमें प्रद्युम्न आदि यादवोंको वज्रपुरमें भेजना

वैशम्पायन उवाच

ते वासववचः श्रुत्वा हंसा वज्रपुरं ययुः।
पूर्वोचितं हि गमनं तेषां तत्र जनाधिप॥ १

ते दीर्घिकासु रम्यासु निपेतुर्वीर पक्षिणः।
पद्मोत्पलैरावृतासु काञ्चनैः स्पर्शनक्षमैः॥ २

ते वै नदन्तो मधुरं संस्कृतापूर्वभाषिणः।
पूर्वमप्यागतास्ते तु विस्मयं जनयन्ति हि॥ ३

अन्तःपुरोपभोग्यासु चेरुर्वापीषु ते नृप।
दृष्टास्ते वज्रनाभस्य त्रिविष्टपनिवासिनः॥ ४

आलपन्तः सुमधुरं धार्तराष्ट्रा जनेश्वर।
स तानुवाच दैतेयो धार्तराष्ट्रानिदं वचः॥ ५

त्रिविष्टपे नित्यरता भवन्तश्चारुभाषिणः।
यदैवेहोत्सवोऽस्माकं भवद्भिरवगम्यते॥ ६

आगन्तव्यं जालपादाः स्वमिदं भवतां गृहम्।
विस्रब्धं च प्रवेष्टव्यं त्रिविष्टपनिवासिभिः॥ ७

ते तथोक्ताः शकुनयो वज्रनाभेन भारत।
तथेत्युक्त्वा हि विविशुर्दानवेन्द्रनिवेशनम्॥ ८

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजा जनमेजय! इन्द्रकी यह बात सुनकर वे हंस वज्रपुरमें गये। वहाँका मार्ग उनके लिये पूर्व-परिचित था॥ १॥ वीर! वे पक्षी वहाँके रमणीय सरोवरोंमें, जो स्पर्शके योग्य सुवर्णमय कमलोंसे आवृत थे, जाकर बैठे॥ २॥ वे हंस अपूर्व संस्कृत भाषा बोलते और मधुर कलरव करते थे। यद्यपि वे उस नगरमें पहले भी आ चुके थे, तथापि नये आये हुएके समान वहाँके निवासियोंको आश्चर्यमें डाल रहे थे॥ ३॥ नरेश्वर! वे अन्तःपुरके उपभोगमें आनेवाली बावड़ियोंमें चरने लगे। उन स्वर्गवासी हंसोंपर वज्रनाभकी भी दृष्टि पड़ी॥ ४॥ जनेश्वर! वे हंस अत्यन्त मधुर बोली बोल रहे थे। उन्हें देखकर उस दैत्यने उनसे इस प्रकार कहा— ॥ ५॥ 'हंसो! तुमलोग सदा स्वर्गलोकमें रमते और मनोहर बोली बोलते हो। जब कभी यहाँ हमलोगोंके घर उत्सव हो और तुम्हें इसका पता लग जाय, तब तुम अवश्य यहाँ पधारना। यह तुम्हारा अपना ही घर है। स्वर्गनिवासी हंसोंको यहाँ निर्भय होकर प्रवेश करना चाहिये'॥ ६-७॥ भारत! वज्रनाभके ऐसा कहनेपर उन पक्षियोंने 'तथास्तु' कहकर उसकी बात मान ली और उस दानवराजके महलमें प्रवेश किया॥ ८॥

चक्रुः परिचयं ते च देवकार्यव्यपेक्षया।
मानुषालापिनस्ते तु कथाश्चक्रुः पृथग्विधाः॥ ९

वंशबद्धाः काश्यपानां सर्वकल्याणभागिनाम्।
स्त्रियो रेमुर्विशेषेण शृण्वन्त्यः सङ्गताः कथाः॥ १०

विचरन्तस्ततो हंसा ददृशुश्चारुहासिनीम्।
प्रभावतीं वरारोहां वज्रनाभसुतां तदा॥ ११

हंसाः परिचितां चक्रुस्तां ततश्चारुहासिनीम्।
सखीं शुचिमुखीं चक्रे हंसीं राजसुता तदा॥ १२

सा तां कदाचित् पप्रच्छ वज्रनाभसुतां सखीम्।
विश्रम्भितां पृथक्सूक्तैराख्यानकशतैर्वराम्॥ १३

त्रैलोक्यसुन्दरीं वेद्मि त्वामहं हि प्रभावति।
रूपशीलगुणैर्देवि किंचित् त्वां वक्तुमुत्सहे॥ १४

व्यतिक्रामति ते भीरु यौवनं चारुहासिनि।
यदतीतं पुनर्नैति गतं स्रोत इवाम्भसः॥ १५

कामोपभोगतुल्या हि रतिर्देवि न विद्यते।
स्त्रीणां जगति कल्याणि सत्यमेतद् ब्रवीमि ते॥ १६

स्वयंवरे च न्यस्ता त्वं पित्रा सर्वाङ्गशोभने।
न च कांश्चिद् वरयसे देवासुरकुलोद्भवान्॥ १७

व्रीडिता यान्ति सुश्रोणि प्रत्याख्यातास्त्वया शुभे।
रूपशौर्यगुणैर्युक्तान् सदृशांस्त्वं कुलस्य हि॥ १८

आगतान् नेच्छसे देवि सदृशान् कुलरूपयोः।
इहैष्यति किमर्थं त्वां प्रद्युम्नो रुक्मिणीसुतः॥ १९

त्रैलोक्ये यस्य रूपेण सदृशो न कुलेन वा।
गुणैर्वा चारुसर्वाङ्गि शौर्येणाप्यति वा शुभे॥ २०

देवेषु देवः सुश्रोणि दानवेषु च दानवः।
मानुषेष्वपि धर्मात्मा मनुष्यः स महाबलः॥ २१

उन्होंने देवताओंके कार्यको सिद्ध करनेकी इच्छासे वहाँ सबसे परिचय प्राप्त किया। वे मनुष्योंकी-सी बोली बोलते और भाँति-भाँतिकी कथाएँ कहते थे॥ ९॥ समस्त कल्याणमय पदार्थोंका उपभोग करनेवाले कश्यपवंशी दानवोंकी स्त्रियाँ अपने वंशसे सम्बन्ध रखनेवाली सुसङ्गत कथाएँ सुनती हुई उनमें विशेषरूपसे रम जाती थीं॥ १०॥ तदनन्तर वहाँ विचरते हुए हंसोंने उस समय वज्रनाभकी पुत्री मनोहर मुसकानवाली सुन्दरी प्रभावतीको देखा॥ ११॥ फिर उन सभी हंसोंने उस चारुहासिनी राजकुमारीसे परिचय कर लिया। राजकुमारी प्रभावतीने उस समय शुचिमुखी नामवाली हंसीको अपनी सखी बना लिया॥ १२॥ एक दिनकी बात है, शुचिमुखीने सैकड़ों कथाएँ तथा भाँति-भाँतिकी सुन्दर उक्तियाँ सुनाकर अपनी श्रेष्ठ सखी वज्रनाभकुमारी प्रभावतीके मनमें पूर्ण विश्वास पैदा कर लिया। तत्पश्चात् उससे पूछा— ॥ १३॥ 'प्रभावति! मैं तुम्हें त्रिभुवनकी अद्वितीय सुन्दरी मानती हूँ। देवि! तुम रूप, शील और गुणोंमें श्रेष्ठ हो, इसलिये मैं तुमसे कुछ कहना चाहती हूँ॥ १४॥ 'भीरु! चारुहासिनि! तुम्हारी जवानी व्यर्थ बीती जा रही है। जैसे जलका बहता हुआ स्रोत फिर पीछे नहीं लौटता, उसी प्रकार जो अवस्था बीत गयी, वह फिर वापिस नहीं आती है॥ १५॥ 'देवि! कल्याणि! संसारमें स्त्रियोंके लिये कामोपभोगके समान दूसरा कोई सुख नहीं है; यह मैं तुमसे सत्य कहती हूँ॥ १६॥ 'सर्वाङ्गशोभने! तुम्हारे पिताने तुम्हें स्वयंवरमें उपस्थित किया, परंतु तुम देवताओं तथा असुरोंके कुलमें उत्पन्न हुए किन्हीं योग्य पुरुषका वरण ही नहीं करती हो (इसका क्या कारण है?)॥ १७॥ 'शुभे! सुश्रोणि! तुम्हारे इनकार कर देनेपर ब्याहके लिये आये हुए पुरुष लज्जित होकर लौट जाते हैं। देवि! जो रूप और शौर्य आदि गुणोंसे युक्त हैं तथा तुम्हारे कुलके सर्वथा अनुरूप हैं, ऐसे कुल और रूपमें अपने ही समान पुरुषोंके आनेपर भी तुम उन्हें वरण करना नहीं चाहती (ऐसा क्यों करती हो?) 'भला, रुक्मिणीनन्दन प्रद्युम्न यहाँ किसलिये आयेंगे? जिनके रूप और कुलकी समानता करनेवाला त्रिलोकीमें दूसरा कोई नहीं है। शुभे! सर्वाङ्गसुन्दरि! वे गुणों अथवा शौर्यमें भी सबसे बढ़कर हैं॥ १८—२०॥ 'सुश्रोणि! वे महाबली प्रद्युम्न देवताओंमें देवता, दानवोंमें दानव और मनुष्योंमें भी धर्मात्मा मनुष्य हैं॥ २१॥

यं सदा देवि दृष्ट्वा हि स्रवन्ति जघनानि हि।
आपीनानीव धेनूनां स्रोतांसि सरितामिव॥ २२

न पूर्णचन्द्रेण मुखं नयने वा कुशेशयैः।
उत्सहे नोपमातुं हि मृगेन्द्रेणाथ वा गतिम्॥ २३

जगतः सारमुद्धृत्य पुत्रः स विहितः शुभे।
कृत्वानङ्गं वरे साङ्गं विष्णुना प्रभविष्णुना॥ २४

हृतेन शम्बरो बाल्ये येन पापो निवर्हितः।
मायाश्च सर्वाः सम्प्राप्ता न च शीलं विनाशितम्॥ २५

यान् यान् गुणान् पृथुश्रोणि मनसा कल्पयिष्यसि।
एष्टव्यास्त्रिषु लोकेषु प्रद्युम्ने सर्व एव ते॥ २६

रुच्या वह्निप्रतीकाशः क्षमया पृथिवीसमः।
तेजसा सूर्यसदृशो गाम्भीर्येण ह्रदोपमः।
प्रभावती शुचिमुखीं त्वितीहोवाच भामिनी॥ २७

प्रभावत्युवाच

विष्णुर्मानुषलोकस्थः श्रुतः सुबहुशो मया।
पितुः कथयतः सौम्ये नारदस्य च धीमतः॥ २८

शत्रुः किल स दैत्यानां वर्जनीयः सदानघे।
कुलानि किल दैत्यानां तेन दग्धानि मानिनि॥ २९

प्रदीप्तेन रथाङ्गेन शार्ङ्गेण गदया तथा।
शाखानगरदेशेषु वसन्ति किल येऽसुराः॥ ३०

इत्येते दानवेन्द्रेण संदिश्यन्ते हि तं प्रति।
मनोरथो हि सर्वासां स्त्रीणामेव शुचिस्मिते॥ ३१

भवेद्धि मे पतिकुलं श्रेष्ठं पितृकुलादिति।
यदि नामाभ्युपायः स्यात् तस्येहागमनं प्रति॥ ३२

महाननुग्रहो मे स्यात् कुलं स्यात् पावितं च मे।
समर्थनां मे पृष्टा त्वं प्रयच्छ शुचिलापिनि॥ ३३

प्रद्युम्नः स्याद् यथा भर्ता स मे वृष्णिकुलोद्भवः।
अत्यन्तवैरी दैत्यानामुद्वेजनकरो हरिः॥ ३४

असुराणां स्त्रियो वृद्धाः कथयन्त्यो मया श्रुताः।

देवि! जैसे दूध देनेवाली गौओंके थन और सरिताओंके स्रोत टपकते हैं, उसी तरह उन प्रद्युम्नको देखकर सदा ही स्त्रियोंके जघनप्रदेश आर्द्र हो जाते हैं॥ २२॥ 'उनके मुखकी पूर्ण चन्द्रसे, नयनोंकी नीलकमलसे अथवा गति (चाल)-की सिंहसे मैं उपमा नहीं दे सकती (क्योंकि ये सब हीन प्रतीत होते हैं)॥ २३॥ 'शुभे! सुन्दरि! प्रभावशाली भगवान् विष्णुने सारे जगत्का सार निकालकर अनङ्गको साङ्ग करके अपने उस पुत्रका निर्माण किया है॥ २४॥ 'बाल्यावस्थामें उन्हें शम्बरासुरने हर लिया था; परंतु उन्होंने बड़े होनेपर उस पापीको मार डाला! उसकी सारी मायाएँ प्राप्त कर लीं; फिर भी किसीके शीलका विनाश नहीं किया॥ २५॥ 'पृथुश्रोणि! तुम मनसे जिन-जिन उत्तम गुणोंकी कल्पना करोगी अथवा तीनों लोकोंमें जो-जो श्रेष्ठ गुण वाञ्छनीय हैं, वे सब-के-सब प्रद्युम्नमें वर्तमान हैं॥ २६॥ 'वे कान्तिमें अग्निके समान, क्षमामें पृथ्वीके तुल्य, तेजमें सूर्यके सदृश तथा गम्भीरतामें सागरके समान हैं'। यह सुनकर भामिनी प्रभावतीने शुचिमुखीसे इस प्रकार कहा॥ २७॥

प्रभावती बोली—सौम्ये! मैंने बुद्धिमान् नारदजी तथा अपने पिताके मुखसे कई बार सुना है कि भगवान् विष्णु इस समय मनुष्यलोकमें अवतीर्ण होकर विराज रहे हैं॥ २८॥ पापरहित मानिनि! शाखानगरके प्रदेशोंमें जो असुर निवास करते हैं, उन्हें मेरे पिता दानवराज वज्रनाभ भगवान् विष्णुके विषयमें इस प्रकार संदेश दिया करते हैं—'विष्णु दैत्योंके शत्रुके रूपमें प्रसिद्ध हैं, अतः उन्हें सदाके लिये त्याग देना चाहिये। उन्होंने अपने तेजस्वी चक्र, शार्ङ्गधनुष तथा कौमोदकी गदाके द्वारा दैत्योंके बहुत-से कुल दग्ध कर डाले हैं'। पवित्र मुसकानवाली हंसी! प्रायः सभी स्त्रियोंका ऐसा ही मनोरथ होता है कि मेरा पतिकुल पितृकुलसे श्रेष्ठ हो। यदि प्रद्युम्नके यहाँ आनेके लिये कोई उपाय हो सके तो यह मुझपर तुम्हारा महान् अनुग्रह होगा और मेरा कुल पवित्र हो जायगा। पवित्र वार्ता करनेवाली हंसी! मैंने तुमसे कार्यसिद्धिका उपाय पूछा है। वह उपाय तुम

प्रद्युम्नस्य तथा जन्म पुरस्तादपि मे श्रुतम्॥ ३५

यथा च तेन निहतो बलवान् कालशम्बरः।
हृदि मे वर्तते नित्यं प्रद्युम्नः खलु सत्तमे॥ ३६

हेतुः स नास्ति स्यात् तेन यथा मम समागमः।
दासी तवाहं सख्यार्हे दूत्ये त्वां च विसर्जये॥ ३७

पण्डितासि वदोपायं मम तस्य च संगमे।
ततस्तां सान्त्वयित्वा सा प्रहसन्तीदमब्रवीत्॥ ३८

शुचिमुख्युवाच

तत्र दूती गमिष्यामि तवाहं चारुहासिनि।
इमां भक्तिं तवोदारां प्रवक्ष्यामि शुचिस्मिते॥ ३९

तथा चैव करिष्यामि यथैष्यति तवान्तिकम्।
साक्षात्कामेन सुश्रोणि भविष्यति सकामिनी॥ ४०

इति मे भाषितं नित्यं स्मरेथाः शुचिलोचने।
कथाकुशलतां पित्रे कथयस्वायतेक्षणे॥ ४१

मम त्वं तत्र मे देवि हितं सम्यक् प्रपत्स्यसे।
इत्युक्ता सा तथा चक्रे यत्तत् सा तामथाब्रवीत्॥ ४२

दानवेन्द्रश्च तां हंसीं पप्रच्छान्तःपुरे तदा।
प्रभावत्या समाख्याता कथाकुशलता तव॥ ४३

तत्त्वं शुचिमुखि ब्रूहि कथां योग्यतया वरे।
किं त्वया दृष्टमाश्चर्यं जगत्युत्तमपक्षिणि॥ ४४

अदृष्टपूर्वमन्यैर्वा योग्यायोग्यमनिन्दिते।
सोवाच वज्रनाभं तु हंसी नरवरोत्तम॥ ४५

श्रूयतामित्यथामन्त्र्य दानवेन्द्रं महाद्युतिम्।
दृष्टा मे शाण्डिली नाम साध्वी दानवसत्तम।
आश्चर्यं कर्म कुर्वन्ती मेरुपार्श्वे मनस्विनी॥ ४६

सुमनाश्चैव कौशल्या सर्वभूतहिते रता।
कथंचिद् वरशाण्डिल्याः शैलपुत्र्याः शुभा सखी॥ ४७

नटश्चैव मया दृष्टो मुनिदत्तवरः शुभः।
कामरूपी च भोज्यश्च त्रैलोक्ये नित्यसम्मतः॥ ४८

मुझे प्रदान करो। वृष्णिवंशावतंस प्रद्युम्न जिस प्रकार मेरे पति हो सकें, वैसा यत्न करो। मैंने असुरोंकी बड़ी-बूढ़ी स्त्रियोंके मुखसे यह बात सुनी है कि भगवान् विष्णु दैत्योंके अत्यन्त वैरी और उन्हें उद्वेगमें डालनेवाले हैं। प्रद्युम्नके जन्मका वृत्तान्त मैंने पहले भी सुना है। जिस प्रकार उनके द्वारा बलवान् कालशम्बर मारा गया था, वह प्रसङ्ग भी मेरे सुननेमें आया है। साध्वीशिरोमणे! प्रद्युम्न सदा मेरे हृदयमें विद्यमान रहते हैं; परंतु ऐसी कोई युक्ति या साधन नहीं है, जिससे उनके साथ मेरा समागम हो सके। आदरणीया सखी! मैं तुम्हारी दासी हूँ और तुम्हें दूतीके कामपर नियुक्त करती हूँ। तुम विदुषी हो। मेरे और प्रद्युम्नके मिलनका कोई उपाय बताओ। तब हंसीने उसे सान्त्वना देकर हँसते हुए कहा॥ २९—३८॥

शुचिमुखी बोली—चारुहासिनि! शुचिस्मिते! मैं वहाँ तुम्हारी दूती बनकर जाऊँगी और प्रद्युम्नसे तुम्हारी इस उदार भक्तिका वर्णन करूँगी॥ ३९॥ सुश्रोणि! मैं ऐसा प्रयत्न भी करूँगी, जिससे वे तुम्हारे निकट पधारेंगे और तुम साक्षात् कामसे मिलकर अपनी कामना सफल करोगी॥ ४०॥ पवित्र नेत्रोंवाली राजकुमारी! विशाललोचने! मेरी इस बातको तुम सदा याद रखना। अपने पिताके सामने बराबर मेरे कथा-कौशलकी चर्चा करती हुई यह कहना कि शुचिमुखी कथा कहनेमें बहुत ही कुशल है। देवि! वहाँ पिताके निकट तुम सदा मेरे हित-साधनका ध्यान रखना। शुचिमुखीके ऐसा कहनेपर प्रभावतीने वैसा ही किया, जैसा कि उस (हंसी)-ने उससे कहा था। उस समय दानवराज वज्रनाभने अन्तःपुरमें उस हंसीसे पूछा—'शुचिमुखि! प्रभावतीने बताया है कि तुम कथा कहनेमें बड़ी चतुर हो। अतः उत्तम पक्षिणि! तुम कोई कथा कहो, क्योंकि योग्यतामें बड़ी हो। बताओ, संसारमें तुमने कौन-सी आश्चर्यकी बात देखी है? अनिन्दिते! जिसे दूसरोंने पहले कभी नहीं देखा हो, ऐसी कोई योग्य या अयोग्य आश्चर्यकी बात तुमने देखी हो तो बताओ'। नरेशशिरोमणे! तब हंसीने महातेजस्वी दानवराज वज्रनाभको सम्बोधित करके कहा—सुनिये—'दानवश्रेष्ठ! मैंने मेरुगिरिके पार्श्वभागमें साध्वी मनस्विनी शाण्डिलीको देखा है, जो वहाँ आश्चर्यजनक कार्य करती हैं॥ ४१—४६॥ 'समस्त प्राणियोंके हितमें तत्पर रहनेवाली कौशल्या सुमनाका भी किसी प्रकार दर्शन किया है, जो शैलपुत्री श्रेष्ठ शाण्डिलीकी शुभ सखी हैं॥ ४७॥ 'एक नटको भी मैंने देखा है, जिसे मुनियोंने अभीष्ट वर दे रखा है। वह शुभलक्षण नट इच्छानुसार रूप धारण करनेवाला, भोजनीय तथा त्रिभुवनमें सबको सदा ही प्रिय है॥ ४८॥

कुरून् यात्युत्तरान् वीर कालाम्रद्वीपमेव च।
भद्राश्वान् केतुमालांश्च द्वीपानन्यांस्तथानघ॥ ४९

देवगन्धर्वगेयानि नृत्यानि विविधानि च।
स वेत्ति देवान् नृत्येन विस्मापयति सर्वथा॥ ५०

वज्रनाभ उवाच

श्रुतमेतन्मया हंसि न चिरादिव विस्तरम्।
चारणानां कथयतां सिद्धानां च महात्मनाम्॥ ५१

कुतूहलं ममाप्यस्ति सर्वथा पक्षिनन्दिनि।
नटे दत्तवरे तस्मिन् संस्तवस्तु न विद्यते॥ ५२

हंस्युवाच

सप्तद्वीपान् विचरति नटः स दितिजोत्तम।
गुणवन्तं जनं श्रुत्वा गुणकार्यः स सर्वथा॥ ५३
तव चेच्छृणुयाद् वीर सद्भूतं गुणविस्तरम्।
नटं तदागतं विद्धि पुरं तव महासुर॥ ५४

वज्रनाभ उवाच

उपायः सृजतां हंसि येनेह स नटः शुभे।
आगच्छेन्मम भद्रं ते विषयं पक्षिनन्दिनि॥ ५५
ते हंसा वज्रनाभेन कार्यहेतोर्विसर्जिताः।
देवेन्द्रायाथ कृष्णाय शशंसुः सर्वमेव तत्॥ ५६
अधोक्षजेन प्रद्युम्नो नियुक्तस्तत्र कर्मणि।
प्रभावत्याश्च संसर्गे वज्रनाभवधे तथा॥ ५७
दैवीं मायां समाश्रित्य संविधाय हरिर्नटम्।
नटवेषेण भैमानां प्रेषयामास भारत॥ ५८
प्रद्युम्नं नायकं कृत्वा साम्बं कृत्वा विदूषकम्।
पारिपार्श्वे गदं वीरमन्यान् भैमांस्तथैव च॥ ५९
वारमुख्या नटीः कृत्वा तत्तूर्यसदृशास्तदा।
तथैव भद्रं भद्रस्य सहायांश्च तथाविधान्॥ ६०
प्रद्युम्नविहितं रम्यं विमानं ते महारथाः।
जग्मुरारुह्य कार्यार्थं देवानाममितौजसाम्॥ ६१

'वीर! वह उत्तर कुरुमें जाता तथा कालाम्रद्वीपकी भी यात्रा करता है। अनघ! वह भद्राश्व, केतुमाल तथा अन्य द्वीपोंमें भी जाया करता है॥ ४९॥ 'देवता और गन्धर्व ही जिन्हें गाते हैं, उन गीतोंको भी वह गाता है तथा भाँति-भाँतिके नृत्योंको भी जानता है। वह अपने नृत्योंसे देवताओंको भी सर्वथा आश्चर्यचकित कर देता है'॥ ५०॥

वज्रनाभ बोला—हंसी! थोड़े ही दिन हुए मैंने भी महात्मा, सिद्धों और चारणोंके मुखसे यह नटविषयक समाचार विस्तारपूर्वक सुना है॥ ५१॥ पक्षिनन्दिनि! मुझे भी उस वरप्राप्त नटको देखनेके लिये सर्वथा उत्कण्ठा हो रही है; परंतु मालूम होता है, मेरी प्रसिद्धि उसके कानोंतक नहीं गयी है (इसीलिये वह अबतक यहाँ नहीं आ सका है)॥ ५२॥

हंसीने कहा—दैत्यप्रवर! वह नट सातों द्वीपोंमें विचरता है और गुणवान् पुरुषका नाम सुनकर उसके पास जाता है। उसके कार्य सर्वथा गुणयुक्त होते हैं। वीर महासुर! यदि वह तुम्हारे श्रेष्ठ एवं विस्तृत गुणोंको सुन ले तो उसे अपने नगरमें आया हुआ ही समझो॥ ५३-५४॥

वज्रनाभ बोला—शुभे! पक्षिनन्दिनी हंसि! तुम्हारा भला हो। तुम ऐसा कोई उपाय करो, जिससे वह नट मेरे राज्यमें आ जाय॥ ५५॥ वज्रनाभद्वारा अपने कार्यकी सिद्धिके लिये भेजे गये उन हंसोंने देवराज इन्द्र तथा भगवान् श्रीकृष्णसे वह सब समाचार कह सुनाया॥ ५६॥ तब भगवान् श्रीकृष्णने प्रद्युम्नको उस कार्यमें नियुक्त किया। उनका काम था प्रभावतीसे मेल-जोल बढ़ाना और वज्रनाभका वध करना॥ ५७॥ श्रीहरिने दैवी माया-का आश्रय लेकर प्रद्युम्नको नट बनाकर भेजा। भारत! उन्होंने नटके वेषमें ही मुख्य-मुख्य यादवोंको वहाँ भेज दिया॥ ५८॥ उन्होंने प्रद्युम्नको नायक, साम्बको विदूषक और वीरवर गदको पारिपार्श्विक बनाकर अन्यान्य यादवोंको भी उसी तरह विभिन्न भूमिकाओंमें सजाकर भेजा॥ ५९॥ मुख्य-मुख्य वाराङ्गनाओंको नटी बनाकर, जो उस नृत्य, गीत एवं वाद्यके अनुरूप थीं, भेजा। उसी तरह भद्र और उसके सहायकोंको भी तदनुरूप वेषोंमें भेज दिया॥ ६०॥ वे महारथी वीर प्रद्युम्नके बनाये हुए रमणीय विमानपर आरूढ़ हो महातेजस्वी देवताओंके कार्यकी सिद्धिके लिये वहाँ गये॥ ६१॥

एकैकस्य समा रूपे पुरुषाः पुरुषस्य ते।
स्त्रीणां च सदृशाः सर्वे ते स्वरूपैर्नराधिपाः ॥ ६२

ते वज्रनगरस्याथ शाखानगरमुत्तमम्।
जग्मुर्दानवसंकीर्णं सुपुरं नाम नामतः ॥ ६३

वे सभी पुरुष रूपमें एक-एक पुरुषके अनुरूप थे तथा वे सभी राजकुमार अपने रूप-सौन्दर्यद्वारा स्त्रियोंकी भी समानता करते थे॥ ६२॥ वे सब-के-सब वज्रपुरके उत्तम शाखानगर सुपुरमें, जो दानवोंसे भरा-पूरा था, गये॥ ६३॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे विष्णुपर्वणि वज्रनाभप्रद्युम्नोत्तरे प्रद्युम्नादिगमने द्विनवतितमोऽध्यायः ॥ ९२ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत विष्णुपर्वमें वज्रनाभ और प्रद्युम्नकी प्रधानतामें होनेवाले युद्धके प्रसङ्गमें प्रद्युम्न आदिका वज्रपुरको गमनविषयक बानबेवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ९२॥

त्रिनवतितमोऽध्यायः

नटवेशधारी यादवोंका सुपुर और वज्रपुरमें सफल अभिनय करके दानवोंको रिझाकर उनसे उपहार पाना तथा प्रद्युम्नका प्रभावतीके घरमें प्रवेश

वैशम्पायन उवाच

ततः सुपुरवासीनामसुराणां नराधिप।
ददावाज्ञां वज्रनाभो दीयतां गृहमुत्तमम्॥ १

आतिथ्यं क्रियतामेषां बहुरत्नमुपायनम्।
वासांसि सुविचित्राणि सुखाय जनरञ्जनम्॥ २

भर्तुराज्ञां समालभ्य तथा चक्रुश्च सर्वशः।
पूर्वश्रुतो नटः प्राप्तः कौतूहलमजीजनत्॥ ३

नटस्याथ ददुर्दैत्याः सत्कारं परया मुदा।
पर्यायार्थे ददुश्चापि रत्नानि सुबहून्यथ॥ ४

ततः स ननृते तत्र वरदत्तो नटस्तथा।
सुपुरे पुरवासीनां परं हर्षं समादधत्॥ ५

रामायणं महाकाव्यमुद्दिश्य नाटकं कृतम्।
जन्म विष्णोरमेयस्य राक्षसेन्द्रवधेप्सया॥ ६

लोमपादो दशरथ ऋष्यशृङ्गं महामुनिम्।
शान्तामप्यानयामास गणिकाभिः सहानघ॥ ७

रामलक्ष्मणशत्रुघ्ना भरतश्चैव भारत।
ऋष्यशृङ्गश्च शान्ता च तथारूपैर्नटैः कृताः॥ ८

वैशम्पायनजी कहते हैं—नरेश्वर! तदनन्तर वज्रनाभने सुपुरवासी असुरोंको आज्ञा दी कि 'इन नटोंके लिये उत्तम गृह प्रदान करो॥ १॥ 'इन सबका आतिथ्य-सत्कार करो। इन्हें उपहारमें बहुत-से रत्न तथा सुन्दर एवं विचित्र वस्त्र प्रदान करो। साथ ही इन्हें सुख पहुँचानेके लिये ऐसी सामग्री भेंट करो, जो मनुष्यमात्रके मनको प्रसन्न करनेवाली हो'॥ २॥ स्वामीकी आज्ञा पाकर उन असुरोंने सब कुछ वैसा ही किया। पहले जिसके विषयमें सुना गया था, वही नट आया है; इस भावनाने सबके मनमें नयी उत्कण्ठा उत्पन्न कर दी थी॥ ३॥ दैत्योंने भद्र नामक नटको बड़ी प्रसन्नताके साथ उत्तम सत्कार प्रदान किया। उन्होंने वेश-धारणके लिये उसे बहुत-से रत्न दिये॥ ४॥ तदनन्तर वर प्राप्त किये हुए उस नटने वहाँ सुपुरमें नृत्य किया और पुरवासियोंके मनमें महान् हर्ष भर दिया॥ ५॥ उसने रामायण नामक महाकाव्यकी कथावस्तुको लेकर वहाँ एक नाटक किया। उसमें यह दिखाया गया कि राक्षसराज रावणके वधकी इच्छासे अप्रमेयस्वरूप भगवान् विष्णुका भूतलपर अवतार हुआ॥ ६॥ अनघ! लोमपादने महामुनि ऋष्यशृङ्गको गणिकाओंके साथ अपने यहाँ बुलवाया; फिर महाराज दशरथने ऋष्यशृङ्गके साथ उनकी पत्नी शान्ताको भी अपने यहाँ निमन्त्रित किया॥ ७॥ भरतनन्दन! राम, लक्ष्मण, शत्रुघ्न, भरत, ऋष्यशृङ्ग तथा शान्ताका वेश उन्हींके-जैसे रूपवाले नटोंने धारण किया था॥ ८॥

तत्कालजीविनो वृद्धा दानवा विस्मयं गताः।
आचचक्षुश्च तेषां वै रूपतुल्यत्वमच्युत॥ ९

संस्काराभिनयौ तेषां प्रस्तावानां च धारणम्।
दृष्ट्वा सर्वे प्रवेशं च दानवा विस्मयं गताः॥ १०

ते रक्ता विस्मयं नेदुरसुराः परया मुदा।
उत्थायोत्थाय नाट्यस्य विषयेषु पुनः पुनः॥ ११

ददुर्वस्त्राणि तुष्टाश्च ग्रैवेयवलयानि च।
हारान् मनोहरांश्चैव हेमवैडूर्यभूषितान्॥ १२

पृथगर्थेषु दत्तेषु लोकैस्ते तुष्टुवुर्नटाः।
असुरांश्च मुनींश्चैव गोत्रैरभिजनैरपि॥ १३

प्रेषितं वज्रनाभस्य शाखानगरवासिभिः।
नटस्य दिव्यरूपस्य नरेन्द्रागमनं तदा॥ १४

पुरा श्रुतार्थो दैत्येन्द्रः प्रेषयामास भारत।
आनीयतां वज्रपुरं नटोऽसाविति हर्षितः॥ १५

दानवेन्द्रवचः श्रुत्वा शाखानगरवासिभिः।
नीता वज्रपुरं रम्यं नटवेषेण यादवाः॥ १६

आवासश्च ततो दत्तः सुकृतो विश्वकर्मणा।
एष्टव्यं यच्च तत् सर्वं दत्तं शतगुणोत्तरम्॥ १७

अथ कालोत्सवं चक्रे वज्रनाभो महासुरः।
कारयामास रम्यं च चमूवाटं प्रहृष्टवान्॥ १८

ततस्तान् परिविश्रान्तान् प्रेक्षार्थाय प्रचोदयत्।
दत्त्वा रत्नानि भूरीणि वज्रनाभो महाबलः॥ १९

उपविष्टश्च तान् द्रष्टुं सह ज्ञातिभिरात्मवान्।
छन्ने चान्तःपुरं स्थाप्य चक्षुर्दृश्ये नराधिप॥ २०

भैमापि बद्धनेपथ्या नटवेषधरास्तथा।
कार्यार्थं भीमकर्माणो नृत्यार्थमुपचक्रमुः॥ २१

राजन्! जो रामके समयमें जीवित थे, वे बूढ़े दानव भी उन्हें देखकर आश्चर्यचकित हो गये और कहने लगे, इनका रूप तो ठीक उन्हीं व्यक्तियोंके तुल्य है॥ ९॥ उनके संस्कार (वेश-धारण), अभिनय, प्रस्तावों (क्रिया-प्रसङ्गों)-का धारण तथा प्रवेश (पात्रोंका प्रथम दर्शन) देखकर सभी दानव बड़े विस्मयमें पड़ गये थे॥ १०॥ उस नाटकमें अनुरक्त हुए वे असुरगण नाट्य विषयोंमें बारम्बार उठ-उठकर बड़ी प्रसन्नताके साथ आश्चर्ययुक्त कोलाहल करते और संतुष्ट हो नटोंको वस्त्र, गलेका भूषण, कङ्कण, मनोहर हेमवैदूर्यभूषित हार देते थे॥ ११-१२॥ लोगोंके इस प्रकार पृथक्-पृथक् वस्तुओंकी भेंट देनेपर वे नट बहुत संतुष्ट हुए। उन्होंने उनके गोत्रों और पूर्वजोंका उल्लेख करके उन असुरों और ऋषि-मुनियोंकी भूरि-भूरि प्रशंसा की॥ १३॥ नरेन्द्र! उस समय शाखा-नगरनिवासी असुरोंने वज्रनाभके पास उस दिव्य रूपधारी नटके पधारनेका शुभ समाचार भेजा॥ १४॥ भारत! दैत्यराजने पहले ही यह समाचार सुन लिया था। अतः उसने अत्यन्त हर्षित होकर यह संदेश भेजा कि उस नटको वज्रपुरमें ले आया जाय॥ १५॥ दानवराजका वह आदेश सुनकर शाखानगरनिवासी असुर नटवेशधारी यादवोंको रमणीय वज्रपुरमें ले गये॥ १६॥ दैत्यराजने उन्हें ठहरनेके लिये विश्वकर्माका बनाया हुआ सुन्दर भवन प्रदान किया और जिन-जिन वस्तुओंकी इच्छा या आवश्यकता होती है, उन सबको उन्होंने सौ गुना अधिक करके दे दिया॥ १७॥ तदनन्तर महान् असुर वज्रनाभने महाकाल नामक रुद्रदेवका उत्सव आरम्भ किया। उसमें उसने बड़े हर्षमें भरकर रमणीय चमूवाट (सैनिकोंके मनोरञ्जनका स्थान) बनवाया॥ १८॥ तत्पश्चात् जब वे नट पूर्ण विश्राम कर चुके, तब महाबली वज्रनाभने उन्हें बहुत-से रत्न देकर नाट्यकलाका प्रदर्शन करनेके लिये आज्ञा दी॥ १९॥ नरेश्वर! अन्तःपुरकी स्त्रियोंको पर्देकी ओटमें जहाँसे वे अपने नेत्रोंद्वारा सब कुछ देख सकती थीं, बिठाकर मनस्वी वज्रनाभ स्वयं भी जाति-भाइयोंके साथ उन नटोंका अभिनय देखनेके लिये बैठा॥ २०॥ भयंकर कर्म करनेवाले वे यादवकुमार भी उपयुक्त शृङ्गार करके नटवेश धारण किये नृत्यका उपक्रम करने लगे॥ २१॥

ततो घनं ससुषिरं मुरजानकभूषितम्।
तन्त्रीस्वरगणैर्विद्धानातोद्यानन्ववादयन्॥ २२

ततस्तु देवगान्धारं छालिक्यं श्रवणामृतम्।
भैमस्त्रियः प्रजगिरे मनःश्रोत्रसुखावहम्॥ २३

आगान्धारग्रामरागं गङ्गावतरणं तथा।
विद्धमासारितं रम्यं जगिरे स्वरसम्पदा॥ २४

लयतालसमं श्रुत्वा गङ्गावतरणं शुभम्।
असुरांस्तोषयामासुरुत्थायोत्थाय भारत॥ २५

नान्दिं च वादयामासुः प्रद्युम्नो गद एव च।
साम्बश्च वीर्यसम्पन्नः कार्यार्थं नटतां गतः॥ २६

नान्द्यन्ते च तदा श्लोकं गङ्गावतरणाश्रितम्।
रौक्मिणेयस्तदोवाच सम्यक् स्वभिनयान्वितम्॥ २७

रम्भाभिसारं कौबेरं नाटकं ननृतुस्ततः।
शूरो रावणरूपेण रम्भावेषा मनोवती॥ २८

नलकूबरस्तु प्रद्युम्नः साम्बस्तस्य विदूषकः।
कैलासो रूपितश्चापि मायया यदुनन्दनैः॥ २९

शापश्च दत्तः क्रुद्धेन रावणस्य दुरात्मनः।
नलकूबरेण च यथा रम्भा चाप्यथ सान्त्विता॥ ३०

एतत् प्रकरणं वीरा ननृतुर्यदुनन्दनाः।
नारदस्य मुनेः कीर्तिं सर्वज्ञस्य महात्मनः॥ ३१

पादोद्धारेण नृत्येन तथैवाभिनयेन च।
तुष्टुवुर्दानवा वीरा भैमानामतितेजसाम्॥ ३२

फिर तो घन (झाँझ और करताल आदि), सुषिर (मुरली आदि), मुरज (मृदङ्ग), आनक (ढोल या नगाड़ा) तथा वीणाके स्वरोंसे मिश्रित दूसरे-दूसरे बाजे उन नटोंद्वारा बजाये जाने लगे॥ २२॥ तत्पश्चात् यादवकुमारोंके साथ आयी हुई वाराङ्गनाएँ देवगान्धार नामक छालिक्य गान्धर्वका गान करने लगीं, जो कानोंको अमृतके समान मधुर प्रतीत होता था। वह श्रोताके मन और कान दोनोंको सुख देनेवाला था॥ २३॥ गान्धार आदि सातों स्वरोंको व्याप्त करके स्थित होनेवाले जो त्रिविध[1] ग्राम (कतिपय स्वरोंके समूह), वसन्त आदि राग तथा गङ्गावतरण नामक गीतविशेष हैं, उन्हें रागान्तरसे मिश्रित, व्याप्त तथा रमणीय बनाकर वे अपनी मधुर स्वरसम्पत्तिके द्वारा गाने लगीं॥ २४॥ भारत! लय और तालके अनुरूप सुन्दर गङ्गावतरणको सुनकर (प्रद्युम्न, गद और साम्ब—ये तीनों बीच-बीचमें) खड़े हो-होकर असुरोंको संतोष प्रदान करते थे॥ २५॥ कार्यवश नटभावको प्राप्त हुए पराक्रमसम्पन्न प्रद्युम्न, गद और साम्ब नान्दी[2] बजाने लगे॥ २६॥ उस समय नान्दी (माङ्गलिक पद्यपाठ)-के अन्तमें रुक्मिणीनन्दन प्रद्युम्नने गङ्गावतरणसे सम्बन्ध रखनेवाले श्लोकका उत्तम अभिनयके साथ पाठ किया॥ २७॥ तत्पश्चात् कुबेरलोकसम्बन्धी रम्भाभिसार नामक नाटकका वे सब लोग अभिनय करने लगे। शूर नामक यादव रावणरूपसे उपस्थित हुए। मनोवती नामक वाराङ्गनाने रम्भाका वेष धारण किया॥ २८॥ प्रद्युम्न ही नलकूबर बने। साम्ब उनके विदूषक बनकर तदनुरूप कार्य करने लगे। यादवकुमारोंने मायासे वहाँ कैलासको ही मूर्तिमान् कर दिया॥ २९॥ क्रोधमें भरे हुए नलकूबरने जिस प्रकार दुरात्मा रावणको शाप दिया और जिस तरह रम्भाको सान्त्वना प्रदान की, इस प्रकरणका, जिसके द्वारा सर्वज्ञ महात्मा नारदमुनिकी कीर्तिपर प्रकाश पड़ता है, उन वीर यादवकुमारोंने नाटकद्वारा प्रदर्शन किया॥ ३०-३१॥ अत्यन्त तेजस्वी भीमवंशियोंके पाद-विक्षेपपूर्वक किये गये नृत्य और अभिनयसे संतुष्ट हुए दानववीर उनकी भूरि-भूरि प्रशंसा करने लगे॥ ३२॥

१. षड्ज, मध्यम और गान्धार—ये तीन ग्राम हैं।

२. यहाँ नान्दि शब्द एक वाद्यविशेषका वाचक है। यह चमड़ेके थैलेके समान होता है और उसके मुखपर शिववाहन नन्दीके मुखकी आकृति बनी रहती है, इसीलिये उसे नान्दी कहते हैं। कुछ लोगोंके मतमें बारह पटहों (नगाड़ों)-की ध्वनिको ही नान्दि कहते हैं। कहीं-कहीं नान्दिकी जगह नान्दी पाठ है। देवताओं और द्विजों आदिकी शुभाशंसा करनेवाली जो पद्य अथवा गीतमयी वाक्यावली है, जो नाटकके पूर्व रंगमें प्रार्थनाके रूपमें पढ़ी जाती है, उसका नाम नान्दी है। उस नान्दीके अन्तमें सूत्रधार नाटककी प्रस्तावना करता है।

ते ददुर्वस्त्रमुख्यानि रत्नान्याभरणानि च।
हारांस्तरलविद्धांश्च वैडूर्यमणिभूषितान्॥ ३३
विमानानि विचित्राणि रथांश्चाकाशगामिनः।
गजानाकाशगांश्चैव दिव्यनागकुलोद्भवान्॥ ३४
चन्दनानि च दिव्यानि शीतानि रसवन्ति च।
गुरूण्यगुरुमुख्यानि गन्धाढ्यानि च भारत॥ ३५
चिन्तामणीनुदारांश्च चिन्तिते सर्वकामदान्।
प्रेक्षासु तासु बह्वीषु ददन्तो दानवास्तथा॥ ३६
धनरत्नैर्विरहिताः कृताः पुरुषसत्तम।
स्त्रियो दानवमुख्यानां तथैव च जनेश्वर॥ ३७
ततो हंसी प्रभावत्याः सखी प्राह प्रभावतीम्।
गतास्मि द्वारकां रम्यां भैमगुप्तामनिन्दिते॥ ३८
प्रद्युम्नश्च मया दृष्टो विविक्ते चारुलोचने।
भक्तिश्च कथिता तस्य मया तव शुचिस्मिते॥ ३९
तेन हृष्टेन कालश्च कृतः कमललोचने।
अद्य प्रदोषसमये त्वया सह समागमे॥ ४०
तदद्य रुचिरश्रोणि तव प्रियसमागमः।
न ह्यात्मवति भाषन्ति मिथ्या भैमकुलोद्भवाः॥ ४१
ततः प्रभावती हृष्टा हंसीं तामिदमब्रवीत्।
उषितासि ममावासे स्वप्तुमर्हसि सुन्दरि॥ ४२
त्वयाहं सहिताऽऽवासे द्रष्टुमिच्छामि कैशविम्।
निःसाध्वसा भविष्यामि त्वया सह विहङ्गमे॥ ४३
हंसी तथेति चोवाच सखीं कमललोचनाम्।
आरुरोह च तद्धर्म्यं प्रभावत्या विहङ्गमा॥ ४४
विश्वकर्मकृते तत्र हर्म्यपृष्ठे प्रभावती।
संविधानं चकाराशु प्रद्युम्नागमनक्षमम्॥ ४५
तस्मिन् कृते संविधाने काममानयितुं ययौ।
प्रभावतीमनुज्ञाप्य हंसी वायुसमा गतौ॥ ४६
नटवेषधरं कामं गत्वोवाच शुचिस्मिता।
अद्य भूतः स भगवन् समयो वर्तते निशि॥ ४७

उन्होंने अच्छे-अच्छे वस्त्र, रत्नमय आभूषण तथा वर्तुलाकार मणिसे विद्ध एवं वैदूर्यमणिसे विभूषित हार दिये॥ ३३॥ विचित्र विमान, आकाशगामी रथ और दिव्य नागोंके कुलमें उत्पन्न हुए आकाशचारी हाथी भी प्रदान किये॥ ३४॥ भरतनन्दन! उन दानवोंने यादवकुमारोंको दिव्य शीतल एवं सरस चन्दन, अगुरु आदि श्रेष्ठ सुगन्धित पदार्थ तथा चिन्तन करनेमात्रसे सम्पूर्ण कामनाओंको देनेवाले उदार चिन्तामणि नामक रत्न भी दिये। पुरुषप्रवर! नरेश्वर! वहाँ बहुत बार नाटक देखनेको अवसर मिले। उन सभी अवसरोंपर दानवों तथा प्रधान-प्रधान दानवोंकी स्त्रियोंने इतने उपहार दिये कि वे सब-के-सब धन तथा रत्नोंसे रहित हो गये॥ ३५—३७॥ तब प्रभावतीकी सखी हंसीने प्रभावतीसे कहा— 'अनिन्दिते! मैं यादवोंद्वारा सुरक्षित रमणीय द्वारकापुरीमें गयी थी॥ ३८॥ 'चारुलोचने! वहाँ एकान्तमें मैंने प्रद्युम्नसे भेंट की। शुचिस्मिते! तुम्हारी प्रद्युम्नके प्रति जो भक्ति है, उसकी भी मैंने उनसे चर्चा की॥ ३९॥ 'कमललोचने! मेरी बात सुनकर उन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई और उन्होंने आज ही प्रदोषकालमें तुमसे मिलनेका समय निश्चित किया है॥ ४०॥ 'अतः सुश्रोणि! आज ही तुम्हारी अपने प्राणवल्लभसे भेंट होगी; क्योंकि यदुकुलमें उत्पन्न हुए पुरुष अपने प्रेमीजनोंके प्रति कोई मिथ्या संदेश नहीं देते हैं'॥ ४१॥ यह सुनकर प्रभावतीको बड़ा हर्ष हुआ। वह उस हंसीसे इस प्रकार बोली—'सुन्दरि! तुम पहले भी मेरे घरमें रह चुकी हो। उसी तरह आज भी मेरे ही महलमें शयन करो॥ ४२॥ 'विहङ्गमे! आज इस घरमें तुम्हारे साथ रहकर ही मैं केशवकुमार प्रद्युम्नका दर्शन करना चाहती हूँ। तुम्हारे साथ होनेसे मैं निर्भय रहूँगी'॥ ४३॥ तब आकाशचारिणी हंसीने अपनी कमललोचना सखी प्रभावतीसे कहा—'बहुत अच्छा, आज यहीं सोऊँगी।' फिर वह प्रभावतीकी अट्टालिकापर आरूढ़ हुई॥ ४४॥ विश्वकर्मांके बनाये हुए प्रासादपृष्ठमें प्रभावतीने शीघ्र ही प्रद्युम्नके आगमनके योग्य सजावट कर दी॥ ४५॥ वह सजावट हो जानेपर वायुके समान तीव्र वेगसे चलनेवाली हंसी प्रभावतीसे पूछकर प्रद्युम्नको ले आनेके लिये गयी॥ ४६॥ पवित्र मुसकानवाली वह हंसी नटवेषधारी प्रद्युम्नके पास जाकर बोली—'भगवन्! आपने पहलेसे जो समय निश्चित कर रखा है, वह आजकी ही रातमें आ रहा है'॥ ४७॥

तथेति प्राह तां कामः सा निवृत्ताथ पक्षिणी।
अभ्यागता च सा हंसी प्रभावतिमथाब्रवीत्।
अभ्येति रौक्मिणेयोऽसावाश्वसायतलोचने॥ ४८

प्रद्युम्नो नीयमानं तु ददृशे माल्यमात्मवान्।
भ्रमरैरावृतं वीरः सुगन्धमरिमर्दनः॥ ४९

निलिल्ये तत्र माल्ये तु भूत्वा मधुकरस्तदा।
प्रभावत्या नीयमाने विदितार्थः प्रतापवान्॥ ५०

प्रवेशितं च तन्माल्यं स्त्रीभिर्मधुकरायुतम्।
उपनीतं प्रभावत्यै स्त्रीभिस्तद् भ्रमरावृतम्॥ ५१

अविदूरे च विन्यस्तं प्रभावत्या जनाधिप।
भ्रमरास्ते ययुः सौम्य संध्याकाले ह्युपस्थिते॥ ५२

स भैमप्रवरो वीरस्तैः सहायैर्विहीनतः।
कर्णोत्पले प्रभावत्या निलिल्ये शनकैरिव॥ ५३

ततः प्रभावती हंसीमुवाच वदतां वरा।
उद्यतं पूर्णचन्द्रं सा समीक्ष्यातिमनोहरम्॥ ५४

सखि दह्यन्ति मेऽङ्गानि मुखं च परिशुष्यति।
औत्सुक्यं हृदि चातीव कोऽयं व्याधिरनौषधः॥ ५५

दधद् द्विगुणमौत्सुक्यमसौ पूर्णनिशाकरः।
नवोदिताः शीतरश्मिः सख्यं हरति च प्रियः॥ ५६

न दृष्टपूर्वो हि मया श्रुतमात्रेण काङ्क्षितः।
अहो धूमयतेऽङ्गानि स्त्रीस्वभावस्य धिक् खलु॥ ५७

कल्पयामि यथा बुद्ध्या यदि नाभ्येति मे प्रियः।
कुमुद्वतीगतं मार्गं हा गमिष्याम्यकिंचना॥ ५८

मदनाशीविषेणास्मि हा हा दष्टा मनस्विनी।
शीतवीर्याः प्रकृत्यैव जगतो ह्लादनाः सुखाः।
दहन्ति मम गात्राणि किं नु चन्द्रगभस्तयः॥ ५९

तब प्रद्युम्नने उससे कहा—'बहुत अच्छा' उनका यह उत्तर सुनकर पक्षिणी लौट गयी। महलमें लौटकर हंसीने प्रभावतीसे कहा—'विशाललोचने! धीरज धारण करो। वे रुक्मिणीनन्दन तुम्हारे पास आ रहे हैं'॥ ४८॥ उधर शत्रुमर्दन मनस्वी वीर प्रद्युम्नने देखा कि प्रभावतीके यहाँ सुगन्धित पुष्पमाला ले जायी जा रही है, जिसपर बहुत-से भ्रमर आ बैठे हैं॥ ४९॥ फिर तो सर्वज्ञ एवं प्रतापी वीर प्रद्युम्न प्रभावतीके यहाँ ले जायी जानेवाली मालामें भ्रमर होकर छिप गये॥ ५०॥ स्त्रियोंने भ्रमरोंसे आवृत हुई उस मालाको प्रभावतीके महलमें पहुँचा दिया। फिर दूसरी स्त्रियोंने वह भ्रमरावृत माला प्रभावतीके हाथमें दे दी॥ ५१॥ नरेश्वर! प्रभावतीने उसे पास ही रख लिया। सौम्य! संध्याकाल उपस्थित होनेपर वे भ्रमर चले गये॥ ५२॥ उन अपने सहायकोंसे बिछुड़कर वीर यदुश्रेष्ठ प्रद्युम्न धीरेसे प्रभावतीके कानमें पहने गये कमलमें छिप गये॥ ५३॥ तब वक्ताओंमें श्रेष्ठ प्रभावतीने अत्यन्त मनोहर पूर्ण चन्द्रको उदित हुआ देख हंसीसे कहा— ॥ ५४॥ सखि! मेरे तो सारे अङ्ग जले जा रहे हैं। मुँह सूख रहा है। हृदयमें अत्यन्त उत्कण्ठा बढ़ गयी है। यह कौन-सा रोग लग गया, जिसकी कोई दवा ही नहीं है?॥ ५५॥ 'वह शीतल किरणोंवाला नवोदित पूर्ण चन्द्र दूनी उत्सुकता बढ़ा रहा है। वह देखनेमें प्रिय लगता है; परंतु मित्रभावका अपहरण कर रहा है—अप्रियवत् बर्ताव करने लगा है॥ ५६॥ 'अहो! जिसे मैंने पहले कभी देखा नहीं है, केवल नाम सुनकर उसे चाहने लगी हूँ तो भी वह मेरे सारे अङ्गोंमें आग सुलगा रहा है। मुझे धूमाच्छन्न किये देता है। नारीके इस स्वभावको धिक्कार है॥ ५७॥ 'जैसा कि मैं बुद्धिसे सोच रही हूँ, यदि मेरे प्रियतम नहीं आये तो मैं अकिञ्चन नारी उसी मार्गको अपनाऊँगी, जिसपर कुमुद्वती चल चुकी है अर्थात् प्रियतम पतिके जीते जी ही युवावस्थामें मुझे अपने प्राणोंका परित्याग करना पड़ेगा। हा! यह कितने कष्टकी बात है?॥ ५८॥ ' हाय! हाय!! मुझ मनस्विनी नारीको कामदेवरूपी विषधर सर्पने डँस लिया है, अन्यथा शीतलता ही जिनकी शक्ति है, जो स्वभावसे ही जगत्को आह्लाद एवं सुख प्रदान करनेवाली हैं, वे चन्द्रमाकी किरणें मेरे अङ्गोंको क्यों जला रही हैं?॥ ५९॥

प्रकृत्या शीतलो वायुर्नानापुष्परजोवहः।
दावाग्निसदृशो मेऽद्य दन्दहीति शुभां तनुम्॥ ६०

ततः संकल्पये एव स्थैर्यं कार्यमिवात्मनः।
नावतिष्ठति निर्वीर्यं मनः संकल्पधर्षितम्॥ ६१

विमनस्कास्मि मुह्यामि वेपथुर्मे महान् हृदि।
बम्भ्रमीति च मे दृष्टिर्हा हा यामि ध्रुवं क्षयम्॥ ६२

'जो स्वभावसे ही शीतल है और नाना प्रकारके पुष्पोंकी सुगन्धित रज लेकर बहती है, वही वायु आज मेरे लिये दावानलके समान होकर मेरे सुन्दर शरीरको अत्यन्त दग्ध किये देती है॥ ६०॥ 'मैं बारम्बार संकल्प कर रही हूँ कि मुझे अपने मनको स्थिर कर लेना चाहिये; परंतु मेरा मन कामसे मथित होकर अत्यन्त निर्बल हो गया है; अतः स्थिर नहीं हो पाता है॥ ६१॥ 'उन्मनी हुई जा रही हूँ, मुझपर मोह छा रहा है। मेरे हृदयमें महान् कम्पन हो रहा है और मेरी दृष्टि बारम्बार घूम रही है। हाय! हाय! अब निश्चय ही मैं नष्ट हो जाऊँगी'॥ ६२॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे विष्णुपर्वणि वज्रनाभपुरे प्रद्युम्नगमने त्रिनवतितमोऽध्यायः॥ ९३॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत विष्णुपर्वमें वज्रनाभपुरमें प्रद्युम्नका गमनविषयक तिरानबेवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ९३॥

चतुर्नवतितमोऽध्यायः

प्रद्युम्न और प्रभावतीका गान्धर्व-विवाह एवं समागम; फिर गद और चन्द्रवतीका तथा साम्ब और गुणवतीका गान्धर्व-विवाह

वैशम्पायन उवाच

आविष्टेयं मया बाला सर्वथेत्यवगम्य तु।
कार्ष्णिर्हृष्टेन मनसा हंसीमिदमुवाच ह॥ १

दैत्येन्द्रतनयां प्राप्तमवगच्छस्व मामिह।
षट्पदैः सह षट्पादो भूत्वा माल्ये निलीय हि॥ २

विधेयोऽस्मि प्रभावत्या यथेष्टं मयि वर्तताम्।
इत्युक्त्वा दर्शयामास सुरूपो रूपमात्मनः॥ ३

तद्धर्म्यपृष्ठं प्रभया द्योतितं तस्य धीमतः।
अभिभूता प्रभा चैव राजंश्चन्द्रोद्भवा शुभा॥ ४

प्रभावत्यास्तु तं दृष्ट्वा ववृधे कामसागरः।
चन्द्रस्येवोदये प्राप्ते पर्वण्यां सरितां पतिः॥ ५

सलज्जाधोमुखी किञ्चित् किञ्चित् तिर्यगवेक्षिणी।
प्रभावती तदा तस्थौ निश्चलं कमलेक्षणा॥ ६

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! श्रीकृष्णकुमार प्रद्युम्नने जब यह समझ लिया कि असुरबाला प्रभावतीपर सर्वथा मेरा (कामका) आवेश हो गया है, तब वे प्रसन्न मनसे हंसीसे इस प्रकार बोले—॥ १॥ 'विहङ्गमे! तुम्हें मालूम होना चाहिये कि मैं भ्रमरोंके साथ भ्रमर बनकर इसी मालामें लुक-छिपकर यहाँ दैत्यराजकुमारी प्रभावतीके पास आ गया हूँ (तुम इसे मेरे आगमनकी सूचना दो)। मैं प्रभावतीका आज्ञापालक हूँ। वह मेरे प्रति जैसा चाहे बर्ताव कर सकती है'। राजन्! ऐसा कहकर सुन्दर रूपवाले प्रद्युम्नने उसे अपने रूपका दर्शन कराया। वह प्रासादपृष्ठ प्रज्ञावान् प्रद्युम्नकी प्रभासे प्रकाशित हो उठा। उनकी कान्तिसे चन्द्रमाकी सुन्दर कान्ति भी तिरस्कृत हो गयी॥ २—४॥ प्रद्युम्नको देखते ही प्रभावतीके कामरूपी समुद्रमें ज्वार आ गया; ठीक उसी तरह, जैसे पूर्ण चन्द्रोदयका पर्व प्राप्त होनेपर सरिताओंके स्वामी समुद्रमें बाढ़ आ जाती है॥ ५॥ प्रभावतीका मुख लज्जासे कुछ नीचेको झुक गया तो भी वह कुछ-कुछ तिरछी चितवनसे अपने प्राणवल्लभकी ओर देख लेती थी। उस समय कमलनयनी प्रभावती स्थिरभावसे खड़ी थी॥ ६॥

करेणाधःप्रदेशे तां चारुभूषणभूषिताम्।
स्पृष्ट्वोवाच वरारोहां रोमाञ्चिततनुस्ततः॥ ७

मनोरथशतैर्लब्धं किं पूर्णेन्दुसमप्रभम्।
अधोमुखं मुखं कृत्वा न मां किञ्चित् प्रभाषसे॥ ८

प्रभोपमर्दं मा कार्षीर्वदनस्य वरानने।
साध्वसं त्यज्यतां भीरु दासः साध्वनुगृह्यताम्॥ ९

न कालमिव पश्यामि भीरु भीरुत्वमुत्सृज।
याचाम्येषोऽञ्जलिं कृत्वा प्राप्तकालं निबोध मे॥ १०

गान्धर्वेण विवाहेन कुरुष्वानुग्रहं मम।
देशकालानुरूपेण रूपेणाप्रतिमा सती॥ ११

उपस्पृश्य ततो भैमो मणिस्थं जातवेदसम्।
जुहाव समये वीरः पुष्पैर्मन्त्रानुदीरयन्॥ १२

जग्राहाथ करं तस्या वराभरणभूषितम्।
चक्रे प्रदक्षिणं चैव तं मणिस्थं हुताशनम्॥ १३

प्रजज्वाल स तेजस्वी मानयन्नच्युतात्मजम्।
भगवाञ्जगतः साक्षी शुभस्याथाशुभस्य च॥ १४

उद्दिश्य दक्षिणां वीरो विप्राणां यदुनन्दनः।
उवाच हंसीं द्वारस्थां तिष्ठावां रक्ष पक्षिणि॥ १५

तस्यां प्रणम्य यातायां कामस्तां चारुलोचनाम्।
ग्रहाय दक्षिणे हस्ते निनाय शयनोत्तमम्॥ १६

ऊरावेवोपवेश्यैनां सान्त्वयित्वा पुनः पुनः।
चुचुम्ब शनकैर्गण्डं वासयन् मुखमारुतैः॥ १७

ततोऽस्याश्च पपौ वक्त्रपद्मं मधुकरो यथा।
आलिलिङ्गे च सुश्रोणीं क्रमेण रतिकोविदः॥ १८

मनोहर आभूषणोंसे विभूषित हुई सुन्दराङ्गी प्रभावतीके मुखके नीचेके भाग (ठोढ़ी)-का हाथसे स्पर्श करके प्रद्युम्नका शरीर पुलकित हो गया। वे उससे इस प्रकार बोले— ॥ ७ ॥ 'सुमुखि! तुम्हारा यह पूर्ण चन्द्रमाके समान कान्तिमान् मुख मुझे सैकड़ों मनोरथोंके द्वारा आज प्राप्त हुआ है। तुम इसे नीचेकी ओर करके मुझसे कुछ बोलती क्यों नहीं हो? तुम अपने मुखचन्द्रकी प्रभाका इस तरह तिरस्कार या लोभ न करो। भीरु! भय छोड़ो और इस दासपर भलीभाँति अनुग्रह करो ॥ ८-९ ॥ 'भीरु! तुम्हारा यह सलज्ज मौनभाव मुझे इस समयके लिये उपयुक्त-सा नहीं दिखायी देता। भय त्याग दो। इसके लिये मैं यह हाथ जोड़कर याचना करता हूँ। समयोचित कर्तव्य क्या है—यह मुझसे सुनो ॥ १० ॥ 'संसारमें तुम्हारे रूपकी कहीं तुलना नहीं है। तुम देश-कालके अनुरूप गान्धर्व-विवाह करके मुझपर अनुग्रह करो'॥ ११ ॥ तदनन्तर वीर यादव प्रद्युम्नने आचमन करके सूर्यकान्तमणिमें स्थित अग्निदेवको प्रकट किया और उस समय मन्त्रोंका उच्चारण करते हुए पुष्पोंद्वारा आहुति दी ॥ १२ ॥ तत्पश्चात् उन्होंने प्रभावतीके सुन्दर आभूषणोंसे विभूषित हाथको अपने हाथमें लिया और सूर्यकान्तमणिमें विराजमान अग्निदेवकी परिक्रमा की ॥ १३ ॥ उस समय सम्पूर्ण जगत्के शुभाशुभके साक्षी तेजस्वी भगवान् अग्निदेव अच्युतकुमार प्रद्युम्नका आदर करते हुए वहाँ प्रज्वलित हो उठे ॥ १४ ॥ इसके बाद वीर यदुनन्दनने ब्राह्मणोंके उद्देश्यसे दक्षिणा संकल्प करके द्वारपर खड़ी हुई हंसीसे कहा—'पक्षिणि! तुम इस भवनके बाहरी द्वारपर खड़ी रहो और हम दोनोंको दूसरोंकी दृष्टि पड़नेसे बचाओ'॥ १५ ॥ यह सुनकर हंसी उन्हें प्रणाम करके चली गयी। तब प्रद्युम्न मनोहर नेत्रोंवाली प्रभावतीका दाहिना हाथ पकड़कर उसे सुन्दर शय्यापर ले गये ॥ १६ ॥ वहाँ उसे अपनी जाँघपर ही बिठाकर उन्होंने बारम्बार सान्त्वना दी और अपने मुखकी सुगन्धित वायुसे उसके कपोलको सुवासित करते हुए धीरेसे उसको चूम लिया ॥ १७ ॥ तत्पश्चात् जैसे भ्रमर प्रफुल्ल कमलके मकरन्दका पान करता है, उसी प्रकार वे उसके मुखारविन्दका—उसके अधरोंका रस पीने लगे। फिर क्रमशः रति-कला-कुशल प्रद्युम्नने मनोहर नितम्बवाली प्रभावतीका पूर्णरूपसे आलिङ्गन किया ॥ १८ ॥

अरीरमद् रहस्येनां न चोद्वेजितवांस्तदा।
अपकृष्टं चरत्यर्थं रतिकार्यविशारदः।
उवास स तया सार्द्धं रमन् कृष्णसुतः प्रभुः॥ १९

अरुणोदयकाले च ययौ यत्र नटालयम्।
अकामया प्रभावत्या कथञ्चित् स विसर्जितः॥ २०

तामेव मनसा कान्तां कान्तरूपां समुद्वहन्।
त ऊषुर्नटवेषेण कार्यार्थं भैमवंशजाः॥ २१

प्रतीक्षन्तस्तदा वाक्यमिन्द्रकेशवयोस्तदा।
उद्योगं वज्रनाभस्य त्रैलोक्यविजयं प्रति॥ २२

प्रतीक्षन्तो महात्मानो गुह्यसंरक्षणे रताः।
कश्यपस्य मुनेः सत्रं यावत् तावन्नराधिप॥ २३

देवासुराणां सर्वेषामविरोधो महात्मनाम्।
त्रैलोक्यविजयार्थाय यततां धर्मचारिणाम्॥ २४

एवं कालं प्रतीक्षाणां वसतां तत्र धीमताम्।
सम्प्राप्तः प्रावृषो रम्यः सर्वभूतमनोहरः॥ २५

अहर्निशं च वृत्तान्तं प्रयच्छन्ति मनोजवाः।
शक्रकेशवयोर्हंसाः कुमाराणां महात्मनाम्॥ २६

रेमे सह प्रभावत्या प्रद्युम्नश्चानुरूपया।
रात्रौ रात्रौ महातेजा धार्तराष्ट्राभिरक्षितः॥ २७

तैर्हि वज्रपुरं हंसैर्वसद्भिर्वासवाज्ञया।
व्याप्तं नृप नटांस्तांश्च न विदुः कालमोहिताः॥ २८

दिवापि रौक्मिणेयस्तु प्रभावत्या नृपालये।
तिष्ठत्यन्तर्हितो वीरो हंससंघाभिरक्षितः॥ २९

माययास्य प्रतिच्छाया दृश्यते हि नटालये।
देहार्धेन तु कौरव्य सिषेवेऽसौ प्रभावतीम्॥ ३०

संनतिं विनयं शीलं लीलां दाक्ष्यमथार्जवम्।
स्पृहयन्त्यसुरा दृष्ट्वा विद्वत्तां च महात्मनाम्॥ ३१

रतिकला-कोविद एवं सामर्थ्यशाली श्रीकृष्णकुमार प्रद्युम्न उसके साथ एकान्तमें रमण करने लगे। वे उसे उद्विग्न नहीं करते थे। कोई क्षुद्र बर्ताव (बलात्कार आदि) भी नहीं करते थे। उसके साथ रमण करते हुए वे रातभर वहीं रहे॥ १९॥ अरुणोदय-कालमें वे वहीं चले गये, जहाँ नटोंका स्थान था। प्रभावती नहीं चाहती थी कि वे एक क्षणके लिये भी उससे अलग हों तथापि किसी तरह उसने उस समय उन्हें विदा किया॥ २०॥ प्रद्युम्न कमनीय रूपवाली उस प्राणवल्लभा प्रभावतीका ही मन-ही-मन चिन्तन करते रहे। वे भीमवंशी यादवकुमार उस समय देवराज इन्द्र और भगवान् श्रीकृष्णके आदेशकी प्रतीक्षा करते हुए अभीष्ट कार्यकी सिद्धिके लिये वहाँ नटवेशमें रहने लगे। वे महामनस्वी वीर अपने गूढ़ उद्देश्यको सर्वथा छिपाये रखनेके लिये तत्पर होकर वज्रनाभके त्रिलोकविजय-सम्बन्धी उद्योगकी राह देखते थे। नरेश्वर! जबतक कश्यपमुनिका यज्ञ होता रहा, तबतक त्रैलोक्य-विजयके लिये प्रयत्नशील रहनेवाले समस्त महामनस्वी धर्मपरायण देवताओं और असुरोंमें परस्पर कोई विरोध नहीं हुआ॥ २१—२४॥ इस तरह समयकी प्रतीक्षा करते हुए वहाँ निवास करनेवाले बुद्धिमान् यादववीरोंके समक्ष वर्षा-ऋतु प्राप्त हुई, जो समस्त प्राणियोंके लिये रमणीय एवं मनोहर है॥ २५॥ मनके समान वेगशाली हंस उन महामनस्वी यादवकुमारोंको प्रतिदिन इन्द्र और श्रीकृष्णका समाचार दिया करते थे॥ २६॥ प्रत्येक रात्रिको हंसोंसे सुरक्षित हुए महातेजस्वी प्रद्युम्न अपनी मनोऽनुरूप भार्या प्रभावतीके साथ रमण करते थे॥ २७॥ नरेश्वर! इन्द्रकी आज्ञासे वज्रपुरमें निवास करनेवाले हंसोंसे वह सारा नगर व्याप्त हो रहा था; परंतु कालसे मोहित हुए दानव यह नहीं जानते थे कि वास्तवमें वे हंस और वे नट कौन हैं?॥ २८॥ राजन्! वीर रुक्मिणीकुमार दिनमें भी हंससमुदायसे सुरक्षित हो छिपे रूपसे प्रभावतीके घरमें रहते थे॥ २९॥ कुरुनन्दन! मायासे उनकी छायामात्र नटोंके स्थानमें दिखायी देती थी। वे अपने आधे शरीरसे प्रभावतीका ही सेवन करते थे॥ ३०॥ उन महामनस्वी नटोंकी विनय, प्रणति, शील, लीला, चातुरी, सरलता और विद्वत्ता देखकर असुर सदा ही उन्हें चाहते रहते थे॥ ३१॥

रूपं विलासं गन्धं च मञ्जुभाषामथार्यताम्।
तासां यादवनारीणां स्पृहयन्त्यसुरस्त्रियः॥ ३२

वज्रनाभस्य तु भ्राता सुनाभो नाम विश्रुतः।
दुहितृद्वयं च नृपते तस्य रूपगुणान्वितम्॥ ३३

एका चन्द्रवती नाम्ना गुणवत्यथ चापरा।
प्रभावत्यालयं ते तु व्रजतः खलु नित्यदा॥ ३४

ददृशाते तु ते तत्र रतिसक्तां प्रभावतीम्।
परिपप्रच्छतुश्चैव विस्रम्भोपगतां सतीम्॥ ३५

सोवाच मम विद्यास्ति याधीता काङ्क्षितं पतिम्।
रत्यर्थं साऽऽनयत्याशु सौभाग्यं च प्रयच्छति॥ ३६

देवं वा दानवं वापि विवशं सद्य एव हि।
साहं रमामि कान्तेन देवपुत्रेण धीमता॥ ३७

दृश्यतां मत्प्रभावेण प्रद्युम्नः सुप्रियो मम।
ते दृष्ट्वा विस्मयं याते रूपयौवनसम्पदम्॥ ३८

पुनरेवाब्रवीत् ते तु भगिन्यौ चारुहासिनी।
प्रभावती वरारोहा कालप्राप्तमिदं वचः॥ ३९

देवा धर्मरता नित्यं दम्भशीला महासुराः।
देवास्तपसि रक्ता हि सुखे रक्ता महासुराः॥ ४०

देवाः सत्ये रता नित्यमनृते तु महासुराः।
धर्मस्तपश्च सत्यं च यत्र तत्र जयो ध्रुवम्॥ ४१

देवपुत्रौ वरयतां पतिविद्यां ददाम्यहम्।
उचितौ मत्प्रभावेण सद्य एवोपलप्स्यथः॥ ४२

तां तथेत्यूचतुर्हृष्टे भगिन्यौ चारुलोचनाम्।
परिपप्रच्छ भैमं च कार्यं तत् पतिमानिनी॥ ४३

स पितृव्यं गदं वीरं साम्बं चाथाब्रवीत् तदा।
रूपान्वितौ सुशीलौ च शूरौ च रणकर्मणि॥ ४४

उन असुरोंकी स्त्रियाँ भी यादवकुमारोंके साथ आयी हुई सुन्दरियोंके रूप, विलास, सुगन्ध, मनोहर बोली और श्रेष्ठ स्वभावकी सदा ही अभिलाषा करती थीं॥ ३२॥ वज्रनाभके एक भाई था, जो सुनाभ नामसे विख्यात था। नरेश्वर! उसके दो पुत्रियाँ थीं, जो सुन्दर रूप और उत्तम गुणोंसे युक्त थीं॥ ३३॥ उनमेंसे एकका नाम चन्द्रवती और दूसरीका नाम गुणवती था। वे प्रतिदिन प्रभावतीके महलमें जाया करती थीं॥ ३४॥ उन दोनोंने वहाँ प्रभावतीको रतिमें आसक्त देखा। सती-साध्वी प्रभावतीका अपनी इन दोनों बहिनोंपर बड़ा विश्वास था; अतः इन दोनोंने उससे पूछा—(बहिन! तुम किसके साथ क्रीड़ा करती हो?')॥ ३५॥ प्रभावती बोली—'मेरे पास एक विद्या है, जिसका अध्ययन कर लेनेपर वह रतिके लिये शीघ्र ही मनोवाञ्छित पतिको ला देती है और सौभाग्य प्रदान करती है। अभिलषित पुरुष देवता हो या दानव, यह विद्या उसे तत्काल विवश करके अपने पास उसे ला देती है। 'अतः मैं उसी विद्याके प्रभावसे परम बुद्धिमान् देवकुमारको अपना प्राणवल्लभ बनाकर उनके साथ रमण करती हूँ। देखो, मेरे या मेरी विद्याके प्रभावसे प्रद्युम्न मेरे अत्यन्त प्रिय हो गये हैं'। उनके रूप और यौवनकी सम्पत्ति देखकर उन दोनों बहनोंको बड़ा विस्मय हुआ। फिर मनोहर हास्यवाली सुन्दरी प्रभावतीने उन दोनों बहनोंसे यह समयोचित बात कही—॥ ३६—३९॥ 'देवता सदा धर्ममें तत्पर रहते हैं और महान् असुर दम्भी होते हैं। देवता तपस्यामें अनुरक्त होते हैं और महान् असुर सुखमें आसक्त॥ ४०॥ 'देवता सदा सत्यमें तत्पर रहते हैं तो महान् असुर असत्यमें। जहाँ धर्म, तप और सत्य होता है, उसी पक्षको युद्धमें निश्चितरूपसे विजय प्राप्त होती है॥ ४१॥ 'अतः तुम दोनों भी दो सुयोग्य देवकुमारोंका वरण कर लो। पतिकी प्राप्ति करानेवाली यह विद्या मैं तुम्हें देती हूँ। तुम मेरे प्रभावसे तत्काल ही अभीष्ट पति प्राप्त कर लोगी'॥ ४२॥ तब वे दोनों बहनें अत्यन्त हर्षमें भरकर चारुलोचना प्रभावतीसे बोलीं—'बहुत अच्छा।' तदनन्तर पतिको आदर देनेवाली प्रभावतीने प्रद्युम्नसे उस कार्यके विषयमें पूछा॥ ४३॥ प्रद्युम्नने उस समय अपने चाचा वीरवर गद और भाई साम्बका नाम बताया और कहा—'वे दोनों सुन्दर रूपवाले, सुशील तथा युद्धकर्ममें शूरवीर हैं'॥ ४४॥

प्रभावत्युवाच

परितुष्टेन दत्ता मे विद्या दुर्वाससा पुरा।
परितुष्टेन सौभाग्यं सदा कन्यात्वमेव च॥ ४५

देवदानवयक्षाणां यं ध्यास्यति स ते पतिः।
भवितेति मया चैव वीरोऽयमभिकाङ्क्षितः॥ ४६

गृह्णीतं तदिमां विद्यां सद्यो वां प्रियसङ्गमः।
ततो जगृहतुर्हृष्टे तां विद्यां भगिनीमुखात्॥ ४७

दध्यतुर्गदसाम्बौ च विद्यामभ्यस्य ते शुभे।
तौ प्रद्युम्नेन सहितौ प्रविष्टौ भैमनन्दनौ॥ ४८

प्रच्छन्नौ मायया वीरौ कार्ष्णिना मायिना नृप।
गान्धर्वेण विवाहेन तावप्यरिबलार्दनौ॥ ४९

पाणिं जगृहतुर्वीरौ मन्त्रपूर्वं सतां प्रियौ।
चन्द्रवत्या गदः साम्बो गुणवत्या च कैशविः॥ ५०

रेमिरेऽसुरकन्याभिर्वीरास्ते यदुपुङ्गवाः।
मार्गमाणास्त्वनुज्ञां ते शक्रकेशवयोस्तदा॥ ५१

तब प्रभावती अपनी दोनों बहनोंसे बोली— पूर्वकालमें सेवासे संतुष्ट हुए दुर्वासामुनिने मुझे यह विद्या दी; साथ ही अखण्ड सौभाग्य तथा सदा कन्या-जैसी बनी रहनेका वरदान दिया॥ ४५॥ उन्होंने यह भी कहा था कि तुम देवता, दानव तथा यक्षोंमेंसे जिसका चिन्तन करोगी, वही तुम्हारा पति होगा। उनके इस वरदानके अनुसार मैंने इन्हीं वीर प्रद्युम्नको अपना पति बनानेकी इच्छा की॥ ४६॥ अतः तुम दोनों ही इस विद्याको ग्रहण करो। इससे तुम्हें तत्काल ही प्रियतमका समागम प्राप्त होगा। यह सुनकर हर्षमें भरी हुई उन दोनों बहनोंने बहन प्रभावतीके मुखसे वह विद्या ग्रहण की॥ ४७॥ उन शुभलक्षणा कन्याओंने विद्याका अभ्यास करके गद और साम्बका ध्यान किया; फिर तो वे दोनों यादवकुमार गद और साम्ब प्रद्युम्नके साथ ही उस महलमें प्रविष्ट हुए॥ ४८॥ नरेश्वर! मायावी प्रद्युम्नने अपनी मायासे उन दोनों वीरोंको छिपाकर वहाँ उपस्थित किया था। शत्रुसेनाका संहार करनेवाले उन दोनों वीरोंने भी गान्धर्व-विवाहकी विधिसे मन्त्रोच्चारणपूर्वक उन कन्याओंका पाणिग्रहण किया। वे दोनों ही सत्पुरुषोंके प्रिय थे। चन्द्रवतीके साथ गद और गुणवतीके साथ केशवकुमार साम्बका विवाह हुआ॥ ४९-५०॥ इस तरह वे तीनों यदुपुङ्गव वीर उन दिनों इन्द्र और श्रीकृष्णके आदेशकी प्रतीक्षा करते हुए उन असुरकन्याओंके साथ रमण करने लगे॥ ५१॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे विष्णुपर्वणि प्रभावतीपाणिग्रहणे चतुर्नवतितमोऽध्यायः॥ ९४॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत विष्णुपर्वमें प्रभावतीका पाणिग्रहणविषयक चौरानबेवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ९४॥



पञ्चनवतितमोऽध्यायः

प्रद्युम्नका प्रभावतीसे वर्षाका वर्णन करते हुए उसे अपने कुलका परिचय देना

वैशम्पायन उवाच

नभो नभस्येऽथ निरीक्ष्य मासि
कामस्तदा तोयदवृन्दकीर्णम्।
प्रभावतीं चारुविशालनेत्रा-
मुवाच पूर्णेन्दुनिकाशवक्त्रः॥ १

तवाननाभो वरगात्रि चन्द्रो
न दृश्यते सुन्दरि चारुबिम्बः।
त्वत्केशपाशप्रतिमैर्निरुद्धो
बलाहकैश्चारुनिरन्तरोरु ॥ २

संदृश्यते सुभ्रु तडिद् घनस्था
त्वं हेमचार्वाभरणान्वितेव।
मुञ्चन्ति धाराश्च घना नदन्त-
स्त्वद्धारयष्टेः सदृशा वराङ्गि॥ ३

घनप्रदेशेषु बलाकपङ्क्तय-
स्त्वद्दन्तपङ्क्तिप्रतिमा विभान्ति।
निमग्नपद्मानि सरित्सु सुभ्रु
न भान्ति तोयानि रयाकुलानि॥ ४

अमी घना वायुवशोपयाता
बलाकमालामलचारुदन्ताः ।
अन्योन्यमभ्याहनितुं प्रवृत्ता
वनेषु नागा इव शुक्लदन्ताः॥ ५

धनुस्त्रिवर्णं वरगात्रि पश्य
कृतं तवापाङ्गमिवाननस्थम्।
विभूषयन्तं गगनं घनाश्च
प्रहर्षणं कामिजनस्य कान्ते॥ ६

घनान् नदन्तः प्रतिनर्दमानान्
निरीक्ष्य सुश्रोणि शिखीन् प्रहृष्टान्।
समादृतानुद्धतपिच्छभारान्
प्रियाभिरामानुपनृत्यमानान् ॥ ७

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! पूर्ण चन्द्रमाके समान मनोहर मुखवाले प्रद्युम्नने भाद्रपदमासमें आकाशको मेघोंकी घटासे आच्छन्न हुआ देख उस समय मनोहर एवं विशाल नेत्रोंवाली प्रभावतीसे कहा— ॥ १ ॥ 'मनोहर एवं परस्पर सटी हुई जाँघोंवाली वराङ्गी! सुन्दरि! इस समय सुन्दर बिम्बवाला चन्द्रमा, जो तुम्हारे मुखके समान मनोरम जान पड़ता था, नहीं दिखायी देता है। तुम्हारे इन केशपाशोंके समान काले बादलोंने उसे छिपा दिया है॥ २॥ 'सुन्दर भौंहोंवाली सुन्दरि! यह जो मेघोंके अङ्कमें विद्युत् दिखायी देती है, वह सोनेके मनोहर आभूषणोंसे भूषित हुई तुम-जैसी ही प्रतीत होती है और ये गरजते हुए मेघ तुम्हारे मौक्तिक हारोंके समान जलकी स्वच्छ धाराएँ गिरा रहे हैं॥ ३॥ 'सुभ्रु! आकाशमें जहाँ बादल घिरे हुए हैं, उन प्रदेशोंमें बगुलोंकी पंक्तियाँ तुम्हारे दाँतोंकी श्रेणियोंके समान सुशोभित हो रही हैं। सरिताओंके जलोंमें कमलोंके समूह डूब गये हैं और वे जल महान् वेगसे व्याप्त हैं; अतः उनकी विशेष शोभा नहीं हो रही है॥ ४॥ 'ये बादल वायुके अधीन हो रहे हैं। बगुलोंकी पंक्तियाँ उनके निर्मल एवं मनोहर दाँतोंके समान शोभा पाती हैं। ये वनोंमें सफेद दाँतवाले हाथियोंके समान एक-दूसरेसे टक्कर लेनेके लिये उद्यत हैं॥ ५॥ 'सुन्दर अङ्गोंवाली प्राणवल्लभे! वह इन्द्र-धनुष देखो, जो तुम्हारे मुखमण्डलमें स्थित नेत्रोंके कोणभाग-सा तिरंगा बना हुआ है। वह आकाश और बादलोंकी शोभा बढ़ाता हुआ कामीजनोंको महान् हर्ष प्रदान करता है॥ ६॥ 'अपनी बोली बोलते हुए मोर बादलोंको गरजते देख अत्यन्त हर्षमें भरकर नृत्य-कलाके प्रति आदरभाव रखते हुए पंखोंके भारोंको ऊपर उठाकर आस-पास ही नृत्य कर रहे हैं; इस अवस्थामें ये बहुत ही प्रिय एवं मनोहर प्रतीत होते हैं। तुम इनकी ओर दृष्टिपात करो॥ ७॥

हर्म्येषु चान्ये शशिपाण्डुरेषु
राजन्ति सुश्रोणि मयूरसंघाः।
मुहूर्तशोभामतिचारुरूपां
दत्त्वा पतन्तो वलभीपुटेषु॥ ८
प्रक्लिन्नपक्षास्तरुमस्तकेषु
मुहूर्तचूडामणितां विधाय।
प्रयान्ति भूमिं नवशाद्वलाना-
माशङ्कमाना धृतचारुदेहाः॥ ९
प्रवाति धारान्तरनिःसृतश्च
सुखोऽनिलश्चन्दनपङ्कशीतः।
कदम्बसर्जार्जुनपुष्पभूतं
समावहन् गन्धमनङ्गबन्धुम्॥ १०
रतिश्रमस्वेदविनाशहेतु-
र्नवोदभारानयने च हेतुः।
न मारुतः स्याद् यदि चारुगात्रि
न मेघकालो मम वल्लभः स्यात्॥ ११
एवंविधेषु प्रियसङ्गमेषु
रतावसाने यदुपैति वायुः।
रतिश्रमस्वेदहरः सुगन्धी
ततः परं किं सुखमस्ति लोके॥ १२
जलाप्लुतानीक्ष्य महानदीनां
सुगात्रि हंसाः पुलिनानि हृष्टाः।
गताः श्रमं मानसवासलुब्धाः
ससारसाः क्रौञ्चगणानुविद्धाः॥ १३
न भान्ति नद्यो न सरांसि चैव
हतत्विषीवायतचारुनेत्रे।
गतेषु हंसेष्वथ सारसेषु
रथाङ्गतुल्याह्वयनेषु चैव॥ १४
भोगैकदेशेन शुभं शयानं
ध्रुवं जगन्नाथमुपेन्द्रमीशम्।
निद्राभ्युपेता वरकालतज्ज्ञा
श्रियं प्रणम्योत्तरचारुरूपाम्॥ १५

'सुश्रोणि! चन्द्रमाके समान श्वेतवर्णवाली अट्टालिकाओंपर बैठे हुए दूसरे मयूर-समुदाय वहाँ दो घड़ीके लिये अत्यन्त मनोहर शोभा प्रदान करके छज्जोंपर उड़ते हुए बड़ी शोभा पा रहे हैं॥ ८॥ 'मनोहर देह धारण करनेवाले मोर वृक्षोंकी सर्वोच्च शिखाओंपर बैठे हैं। उनकी पाँखें भींग गयी हैं और वे दो घड़ीके लिये उन वृक्षोंके सिरोंपर चूड़ामणिकी-सी शोभाकी सृष्टि करके नयी-नयी घासोंसे ढकी हुई भूमिपर जा रहे हैं। उनके मनमें यह शङ्का है कि ये घासें भूमिसे भिन्न हैं या अभिन्न॥ ९॥ 'जलकी धाराओंके बीचसे निकलकर सुखदायिनी हवा चल रही है, जो चन्दनपङ्कके समान शीतल प्रतीत होती है। यह कदम्ब, सर्ज और अर्जुनके फूलोंकी सुगन्ध लिये आ रही है। वह सुगन्ध कामोद्दीपनमें सहायक हो रही है॥ १०॥ 'मनोहर अङ्गोंवाली प्रिये! यदि इस समय रतिके श्रमसे प्रकट होनेवाले पसीनोंको मिटाने और नूतन जलके भारको खींच लानेमें सहायक यह वायु न चलती होती तो यह वर्षाकाल मुझे अधिक प्यारा न लगता॥ ११॥ 'जब इस प्रकार प्रियजनोंके समागम प्राप्त हों, उस अवसरपर रतिक्रीड़ाके अन्तमें जो रतिश्रमजनित स्वेदबिन्दुओंको हर लेनेवाली सुगन्धित वायु अपने पास आती है, उससे बढ़कर सुख इस संसारमें दूसरा कौन है?॥ १२॥ 'सुन्दर अङ्गवाली प्राणवल्लभे! बड़ी-बड़ी नदियोंके तटोंको जलमें निमग्न देख सारस और क्रौञ्चोंसहित हंस मानसरोवरमें निवासके लिये लुब्ध हो बड़े हर्षके साथ वहाँतक जानेका परिश्रम स्वीकार करते हैं॥ १३॥ 'विशाल एवं मनोहर नेत्रवाली प्रिये! हंसों, सारसों और चक्रवाकोंके चले जानेपर नदी और तालाब श्रीहीन-से प्रतीत होते हैं। उनके बिना न तो नदियाँ अच्छी लगती हैं और न सरोवर ही॥ १४॥ 'श्रेष्ठ वर्षाकाल और उसमें शयन करनेवाले भगवान् विष्णुको जाननेवाली योगनिद्रा निश्चय ही लोकोत्तर मनोहर रूप धारण करनेवाली श्रीदेवीको प्रणाम करके शेषके शरीरके एक देशमें सोये हुए मङ्गलमय ईश्वर जगन्नाथ उपेन्द्रके निकट आयी है॥ १५॥

निद्रायमाणे भगवत्युपेन्द्रे
मेघाम्बराक्रान्तनिशाकरोऽद्य।
पद्मामलाभः कमलायताक्षि
कृष्णस्य वक्त्रानुकृतिं करोति॥ १६
कदम्बनीपार्जुनकेतकानां
स्रजो ध्रुवं कृष्णमुपानयन्ति।
पुष्पाणि चान्यान्यृतवः समस्ताः
कृष्णात् प्रसादानभिकाङ्क्षमाणाः॥ १७
नागाश्चरन्तो विषदिग्धवक्त्राः
स्पृशन्ति पुष्पाण्यपि पादपान्यान्।
पेपीयमानान् भ्रमरैर्जनानां
कौतूहलं ते जनयन्त्यतीव॥ १८
तोयातिभाराम्बुदवृन्दनद्धं
नभः पतिष्यन्तमिवाभिवीक्ष्य।
निपानगम्भीरमभिन्नवृष्टं
मनोहरं चारुमुखस्तनोरु॥ १९
बलाकमालाकुलमाल्यदाम्ना
निरीक्ष रम्यं घनवृन्दमेतत्।
सस्यानि भूमावभिवर्षमाणं
जगद्धितार्थं विमलाङ्गयष्टे॥ २०
जलावलम्बाम्बुदवृन्दकर्षी
घनैर्घनान् योधयतीव वायुः।
प्रवृत्तचक्रो नृपतिर्वनस्थान्
गजान् गजैः स्वैरिव वीर्यदृप्तान्॥ २१
अभौममम्भो विसृजन्ति मेघाः
पूतं पवित्रं पवनैः सुगन्धि।
हर्षावहं चातकबर्हिणानां
वराण्डजानां जलदप्रियाणाम्॥ २२
प्लवंगमः षोडशपक्षशायी
विरौति गोष्ठः सह कामिनीभिः।
ऋचो द्विजातिः प्रियसत्यधर्मा
यथा सुशिष्यैः परिवार्यमाणः॥ २३

'प्रफुल्ल कमलके समान विशाल नेत्रोंवाली प्रियतमे! भगवान् उपेन्द्रके योगनिद्राको स्वीकार कर लेनेपर श्वेत कमलके समान अमल कान्तिवाले चन्द्रमा अब मेघरूपी अम्बर (वस्त्र)-से आच्छादित हो भगवान् श्रीकृष्णके मुखका अनुकरण कर रहे हैं॥ १६॥ 'सारी ऋतुएँ भगवान् श्रीकृष्णसे कृपाप्रसाद पानेकी अभिलाषा रखकर निश्चय ही उनकी सेवामें कदम्ब, नीप, अर्जुन और केवड़ोंके गजरे तथा दूसरे-दूसरे पुष्प ले आती हैं॥ १७॥ 'जिन सुकुमारतर वृक्षों एवं फूलोंके रस भ्रमर बारम्बार पीते हैं, उन्हें विषपूर्ण मुखवाले सर्प स्वच्छन्द विचरते हुए जब छू देते हैं, तब उनके स्पर्शमात्रसे वे कुम्हला जाते हैं। इस प्रकार वे लोगोंको अत्यन्त आश्चर्यमें डाल रहे हैं॥ १८॥ 'निपान*-सदृश गम्भीर आकाशको जलके भारी भारसे युक्त मेघोंकी घटाद्वारा बँधकर गिरता हुआ-सा देख तुम्हारे मनोहर एवं सुन्दर मुख, स्तन और ऊरु कामोद्रेकवश पसीनेसे भर गये हैं॥ १९॥ 'निर्मल अङ्गयष्टिवाली सुन्दरि! जो बगुलोंकी पाँतसे परिपूर्ण होकर मानो श्वेत पुष्पहारसे अलंकृत हुआ है, उस रमणीय मेघसमूहकी ओर तो देखो; यह जगत्के हितके लिये पृथ्वीपर मानो अन्नकी वर्षा करता है॥ २०॥ 'पानीके आधारभूत मेघसमूहोंको अपने साथ खींच लानेवाला पावससमीर बादलोंसे बादलोंको लड़ाता-सा जान पड़ता है; मानो कोई चक्रवर्ती नरेश बलके मदसे उन्मत्त हुए जंगली हाथियोंको अपने गजराजोंके साथ लड़ा रहा हो॥ २१॥ 'ये मेघ शुद्ध, पवित्र और सुगन्धित वायुसे सुवासित उस दिव्य जलकी वर्षा करते हैं, जो मेघोंके प्रेमी चातक और मोर आदि श्रेष्ठ पक्षियोंको हर्ष प्रदान करता है॥ २२॥ 'जो बरसातके पहले सोलह पक्षों (आठ महीनों)-तक कहीं बिलमें शयन करता रहता है, वही मेढक बरसातके आठ पक्षोंमें गोष्ठ (गोसमुदाय)-की भाँति अपनी स्त्रियोंके साथ आर्तनाद-सा करता है; मानो सत्य और धर्मसे प्रेम रखनेवाला कोई विद्वान् ब्राह्मण अपने अच्छे शिष्योंसे घिरकर वेदकी ऋचाओंका पाठ कर रहा हो॥ २३॥

* कुएँके आस-पास पशुओंके पानी पीनेके लिये जो छोटा-सा जलकुण्ड बनाया जाता है, उसे 'निपान' कहते हैं।

गुणो महांस्तोयदकालजोऽय-
मबुद्धमेघस्वनभीषितानाम् ।
परिष्वजन्तः परिवर्द्धयन्ति
विनापि शय्यासमयं प्रियाणाम्॥ २४
दोषोऽयमेकः सलिलागमस्य
मां प्रत्युदारान्वयवर्णशीले।
न दृश्यते यत् तव वक्त्रतुल्यो
घनग्रहग्रस्ततनुः शशाङ्कः॥ २५
प्रदृश्यते भीरु यदा शशाङ्को
घनान्तरस्थो जगतः प्रदीपः।
तदानुपश्यन्ति जनाः प्रहृष्टा
बन्धुं प्रवासादिव संनिवृत्तम्॥ २६
विलापसाक्षी प्रियहीनितानां
संदृश्यते भीरु यदा शशाङ्कः।
नेत्रोत्सवः प्रोषितकामुकानां
दृष्ट्वैव कान्तं भवतीत्यवैमि॥ २७
नेत्रोत्सवः कान्तसमागतानां
दावाग्नितुल्यः प्रियहीनितानाम्।
तेनैव देहेन वराङ्गनानां
चन्द्रोऽपि तावत्प्रियविप्रियश्च॥ २८
विनापि चन्द्रेण पुरे पितुस्ते
यतः प्रभा चन्द्रगभस्तिगौरी।
गुणागुणांश्चन्द्रमसा न वेद्मि
यतस्ततोऽहं प्रशशंसयिष्ये॥ २९
अवाप यो ब्राह्मणराज्यमीड्यो
दुरापमन्यैः सुकृतैस्तपोभिः।
गायन्ति विप्राः पवमानसंज्ञं
समागताः पर्वणि चाप्युदारम्॥ ३०
पिता बुधस्योत्तरवीर्यकर्मा
पुरूरवा यस्य सुतो नृदेवः।
प्राणाग्निरीड्योऽग्निमजीजनद् यो
नष्टं शमीगर्भभवं भवात्मा॥ ३१

'वर्षाकालका यह एक महान् गुण है कि अज्ञात मेघ-गर्जनाको सहसा सुनकर भयभीत हुई प्रियतमाओंको प्रेमी पुरुष हृदयसे लगाकर शयनकालके बिना भी उनकी कामवासनाओंको बढ़ा देते हैं॥ २४॥ 'उत्तम वंश, सुन्दर वर्ण और अच्छे स्वभाववाली प्रिये! मुझे अपने लिये वर्षाकालका यही एक दोष प्रतीत होता है कि तुम्हारे मुखके समान शोभा पानेवाला चन्द्रमा मेघरूपी ग्रहसे ग्रस्त होकर (मेघोंकी घटाओंमें छिपकर) दिखायी नहीं देता है॥ २५॥ 'भीरु! जब जगत्को प्रकाशित करनेवाला चन्द्रमा मेघोंके भीतर दीख जाता है, तब सब लोग परदेशसे लौटे हुए प्रेमी बन्धुकी भाँति उसे बड़े हर्षमें भरकर बारम्बार देखने लगते हैं॥ २६॥ 'भीरु! प्रियवियोगिनी वनिताओंके विलापका साक्षीभूत चन्द्रमा जब दृष्टिगोचर होता है, तब जिनके पति परदेशमें रहकर लौटे हैं, उन कामिनियोंके नेत्रोंमें अपने प्रियतमका दर्शन करके ही आनन्दोत्सव प्रतीत होता है, ऐसा मैं समझता हूँ॥ २७॥ 'यह नेत्रोत्सव उन्हींको प्रतीत होता है, जिन्हें अपने प्रियतमका संयोग प्राप्त है; प्रियवियोगिनी अबलाओंके लिये तो यह चन्द्रमा दावाग्निके तुल्य दाहक प्रतीत होता है। इस प्रकार चन्द्रमा आह्लादक होनेपर भी संयोग और वियोग-अवस्थाके भेदसे अपने उसी शरीरद्वारा श्रेष्ठ नारियोंको प्रिय और अप्रिय प्रतीत होता है॥ २८॥ 'प्रिये! तुम्हारे पिताके इस नगरमें तो चन्द्रमाके बिना भी चन्द्रकिरणोंके समान गौर प्रकाश छाया रहता है। अतः मुझे यहाँ चन्द्रमाके होने और न होनेके गुण-अवगुणका पता नहीं लगता; इसलिये मैं बारम्बार इस बातकी चर्चा करूँगा॥ २९॥ 'जो दूसरे लोगोंके लिये पुण्य और तपस्यासे भी दुर्लभ है, उस ब्राह्मणराज्यको जिन्होंने अनायास ही प्राप्त कर लिया, जो स्तवन करनेके योग्य हैं, यज्ञमें एकत्र हुए ब्राह्मण पवमान नामवाले जिन उदार सोमदेवके गुण गाते हैं, वे उन बुधके पिता हैं, जिनके पुत्र लोकोत्तर बल और पराक्रमसे सम्पन्न राजा पुरूरवा हैं। वे प्राणाग्निस्वरूप और स्तुति करनेके योग्य हैं, (ओषधियों और वनस्पतियोंके स्वामी होनेके कारण) उन्होंने नष्ट हुई अग्निको अश्वत्थके उत्पादनद्वारा शमीके गर्भसे प्रकट किया। वे रुद्रस्वरूप हैं॥ ३०-३१॥

तथैव पश्चाच्चकमे महात्मा
पुरोर्वशीमप्सरसां वरिष्ठाम्।
पीतः पुरा योऽमृतसर्वदेहो
मुनिप्रवीरैर्वरगात्रि घोरैः॥ ३२
नृपः कुशाग्रैः पुनरेव यश्च
धीमानतोऽग्निर्दिवि पूज्यते च।
आयुश्च वंशे नहुषश्च यस्य
यो देवराजत्वमवाप वीरः॥ ३३
देवातिदेवो भगवान् प्रसूतो
वंशे हरिर्यत्र जगत्प्रणेता।
भैमः प्रवीरः सुरकार्यहेतो-
र्यः सुभ्रु दक्षस्य वृतः सुताभिः॥ ३४
बभूव राजाथ वसुश्च यस्य
वंशे महात्मा शशिवंशदीपः।
यश्चक्रवर्तित्वमवाप वीरः
स्वैः कर्मभिः शक्रसमप्रभावः॥ ३५
यदुश्च राजा शशिवंशमुख्यो
योऽवाप मह्यामधिराजभावम्।
भोजाः कुले यस्य नराधिपस्य
वीराः प्रसूताः सुरराजतुल्याः॥ ३६
न कूटकृद् यस्य नृपोऽस्ति वंशे
न नास्तिको नैष्कृतिकोऽपि वाथ।
अश्रद्दधानोऽप्यथवा कदर्यः
शौर्येण वा वारिरुहाक्षि हीनः॥ ३७
वंशे वधूस्त्वं कमलायताक्षि
श्लाघ्या गुणानामतिपात्रभूता।
कुरु प्रणामं शिखराग्रदन्ति
तस्य त्वमीशस्य सतां प्रियस्य॥ ३८
नारायणायात्मभवायनाय
लोकायनाय त्रिदशायनाय।
खगेन्द्रकेतोः पुरुषोत्तमाय
कुरु प्रणामं श्वशुराय देवि॥ ३९

'सुन्दर अङ्गोंवाली प्रिये! तत्पश्चात् इन महात्मा चन्द्रदेवने पूर्वकालमें अप्सराओंमें श्रेष्ठ उर्वशीकी (पुरूरवारूपसे) कामना की थी। उनका सारा शरीर ही अमृतमय है। पहले कभी घोर स्वभाववाले श्रेष्ठ मुनियोंने उन अमृतमय चन्द्रमाको पी लिया था॥ ३२॥ 'उन्हींके वंशज बुद्धिमान् राजा पुरूरवा हुए, जो कुशाग्रोंद्वारा आरम्भ करके अनेकानेक यज्ञोंका सम्पादन कर स्वर्गमें अग्नितुल्य तेजस्वी रूपसे प्रतिष्ठित हो पूजित होते हैं। पुरूरवाके वंशमें आयु हुए, जिनके पुत्र नहुष थे। उन वीर नहुषने देवराजपद प्राप्त कर लिया था॥ ३३॥ 'देवताओंके लिये भी उत्कृष्ट देवता, जगत्स्रष्टा भगवान् श्रीहरि देवताओंका कार्य सिद्ध करनेके लिये चन्द्रमाके ही वंशमें प्रमुख भीमवंशी वीरके रूपमें प्रकट हुए हैं। सुभ्रु! उन चन्द्रमाको नक्षत्रस्वरूपा दक्षकी कन्याओंने पतिरूपसे वरण किया है॥ ३४॥ 'चन्द्रमाके ही वंशमें शशिकुल-दीपक वीर एवं महात्मा राजा उपरिचर वसु हुए हैं, जो अपने कर्मोंसे चक्रवर्तीपदको प्राप्त हुए। उनका प्रभाव इन्द्रके समान था'॥ ३५॥ 'चन्द्रवंशके प्रधान पुरुष राजा यदु हो गये हैं, जो इस पृथ्वीपर राजाधिराज पदको प्राप्त हुए थे। उन्हीं महाराजके कुलमें देवराज इन्द्रके तुल्य पराक्रमी भोजवंशी वीर प्रकट हुए हैं॥ ३६॥ 'कमललोचने! यदुकुलमें कोई राजा ऐसा नहीं हुआ है, जो छल-कपटसे काम लेनेवाला हो। उस कुलमें न तो कोई नास्तिक हुआ है न शठ, न श्रद्धाहीन हुआ है न कदर्य अथवा शौर्यहीन ही॥ ३७॥ 'कमलके समान विशाल नेत्र और शिखरमणिके तुल्य सुन्दर दाँतोंवाली सुन्दरि! तुम उसी चन्द्रवंश एवं यदुवंशकी वधू हो। तुम सद्गुणोंका अत्यन्त पात्र एवं स्पृहणीय हो। तुम सत्पुरुषोंके प्रिय जगदीश्वर श्रीहरिको प्रणाम करो॥ ३८॥ 'देवि! जो स्वयम्भू ब्रह्माजीके आश्रयस्थान हैं, सम्पूर्ण जगत् तथा देवताओंके भी आधार हैं,वे गरुड़ध्वज पुरुषोत्तम भगवान् नारायण तुम्हारे श्वशुर हैं। तुम उन्हें प्रणाम करो'॥ ३९॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे विष्णुपर्वणि प्रद्युम्नभाषणे पञ्चनवतितमोऽध्यायः॥ ९५॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत विष्णुपर्वमें प्रद्युम्नका भाषणविषयक पञ्चानबेवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ९५॥

षण्णवतितमोऽध्यायः

कश्यपके मना करनेपर भी वज्रनाभका त्रिलोकविजयके लिये प्रस्थान, श्रीकृष्ण और इन्द्रका प्रद्युम्नको संदेश देना और उनकी संततिके प्रभावका उल्लेख करना, दैत्योंका प्रद्युम्न आदिके पुत्रोंको बंदी बनाना, प्रभावती आदिका पतियोंको तलवार देकर युद्धके लिये भेजना, इन्द्रके द्वारा उनकी सहायता तथा प्रद्युम्नका अद्भुत पराक्रम

वैशम्पायन उवाच

सत्रावसाने च मुनेः कश्यपस्यातितेजसः।
जग्मुर्देवासुराः स्वानि स्थानान्यमितविक्रमाः॥ १

वज्रनाभोऽपि निर्वृत्ते सत्रे कश्यपमभ्यगात्।
त्रैलोक्यविजयाकाङ्क्षी तमुवाचाथ कश्यपः॥ २

वज्रनाभ निबोध त्वं श्रोतव्यं यदि चेन्मम।
वस वज्रपुरे पुत्र स्वजनेन समावृतः॥ ३

तपसाभ्यधिकः शक्रः शक्तश्चैव स्वभावतः।
ब्रह्मण्यश्च कृतज्ञश्च ज्येष्ठः श्रेष्ठतमो गुणैः॥ ४

राजा कृत्स्नस्य जगतः पात्रभूतः सतां गतिः।
सम्प्राप्तो लोकराज्यं स सर्वभूतहिते रतः॥ ५

नैव शक्यस्त्वया जेतुं वज्रनाभ विहन्यसे।
अहिं पदा व्युत्क्रमन् वै नचिराद् विनशिष्यसि॥ ६

वज्रनाभश्च तद्वाक्यं नाभिनन्दति भारत।
कालपाशपरीताङ्गो मर्तुकाम इवौषधम्॥ ७

अभिवाद्य स दुर्बुद्धिः कश्यपं लोकभावनम्।
त्रैलोक्यविजयारम्भे मतिं चक्रे दुरासदः॥ ८

ज्ञातियोधान् समानीय मित्राणि सुबहूनि च।
प्रतस्थे स्वर्गमेवाग्रे विजिगीषन् विशाम्पते॥ ९

एतस्मिन्नन्तरे देवौ कृष्णेन्द्रौ च महाबलौ।
प्रेषयामासतुर्हंसान् वज्रनाभवधं प्रति॥ १०

समागतास्तु तच्छ्रुत्वा यदुमुख्या महाबलाः।
मन्त्रयित्वा महात्मानश्चिन्तामापेदिरे तथा॥ ११

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! अत्यन्त तेजस्वी कश्यपमुनिका यज्ञ समाप्त होनेपर अमित पराक्रमी देवता और असुर अपने-अपने स्थानको गये॥ १॥ यज्ञ पूर्ण होनेपर वज्रनाभ भी त्रिभुवन-विजयकी अभिलाषा लेकर कश्यपजीके पास गया। तब कश्यपजीने उससे कहा— ॥ २॥ 'बेटा वज्रनाभ! यदि मेरी बात सुनने और माननेयोग्य हो तो ध्यान देकर सुनो। तुम अपने स्वजनोंसे घिरे रहकर वज्रपुरमें ही निवास करो॥ ३॥ 'इन्द्र तपस्यामें तुमसे बढ़े-चढ़े हैं। स्वभावसे ही शक्तिशाली हैं। ब्राह्मणभक्त, कृतज्ञ, भाइयोंमें ज्येष्ठ और उत्तम गुणोंकी दृष्टिसे श्रेष्ठतम हैं॥ ४॥ 'वे सम्पूर्ण जगत्‌के राजा, सुपात्र और सत्पुरुषोंके आश्रय हैं तथा तीनों लोकोंका राज्य पाकर समस्त प्राणियोंके हितमें तत्पर रहते हैं॥ ५॥ 'वज्रनाभ! तुम उन्हें जीत नहीं सकते। जीतनेके प्रयत्नमें स्वयं ही मारे जाओगे। साँपको पैरोंसे ठुकरानेवालेकी भाँति शीघ्र ही नष्ट हो जाओगे'॥ ६॥ भारत! वज्रनाभका सारा शरीर कालके पाशसे बँधा हुआ था। जैसे मरनेवाले रोगीको दवा अच्छी नहीं लगती, उसी प्रकार उसे कश्यपजीकी बात पसंद नहीं आयी॥ ७॥ अत्यन्त खोटी बुद्धिवाले उस दुर्जय असुरने लोकस्रष्टा कश्यपजीको प्रणाम करके त्रिभुवन-विजयका कार्य आरम्भ करनेका विचार किया॥ ८॥ प्रजानाथ! सजातीय बन्धुओं तथा बहुत-से मित्रोंको ही योद्धाओंके रूपमें साथ लेकर उसने विजयकी इच्छासे पहले स्वर्गलोकको प्रस्थान किया॥ ९॥ इसी बीचमें महाबली श्रीकृष्ण और इन्द्र दोनों देवताओंने वज्रनाभ-वधके लिये संदेश देकर हंसोंको भेजा॥ १०॥ वज्रपुरमें एकत्र हुए महाबली महामनस्वी प्रमुख यादव-वीर हंसोंके मुखसे वह संदेश सुनकर आपसमें सलाह करके इस प्रकार विचार करने लगे॥ ११॥

वज्रनाभोऽद्य हन्तव्यः प्रद्युम्नेनेत्यसंशयम्।
तयोर्दुहितरो भार्या भक्त्या ताः सर्वभावनाः॥ १२

सर्वाः सगर्भास्ताश्चैव किं नु कार्यमनन्तरम्।
प्राप्तः प्रसवकालश्च तासां नातिचिरादिव॥ १३

सम्मन्त्रयित्वैतदर्थं हंसानूचुर्महाबलाः।
आख्येयमर्थवत् कृत्स्नं शक्रकेशवयोस्तदा॥ १४

हंसैर्गत्वा तदाख्यातं देवयोस्तद् यथातथम्।
ताभ्यां हंसास्तु संदिष्टा न भेतव्यमिति प्रभो॥ १५

उत्पत्स्यन्ति गुणैः श्लाघ्याः पुत्रा वः कामरूपिणः।
गर्भस्थाः सर्ववेदांश्च साङ्गान् वेत्स्यन्त्यनिन्दिताः॥ १६

तथा चानागतं सर्वमस्त्राणि विविधानि च।
सद्य एव युवानश्च भविष्यन्ति सुपण्डिताः॥ १७

एवमुक्ता गता हंसाः पुनर्वज्रपुरं विभो।
शशंसुश्चैव भैमानां शक्रकेशवभाषितम्॥ १८

प्रभावती तदा पुत्रं सुषुवे सदृशं पितुः।
सद्यो यौवनसम्प्राप्तं सर्वज्ञत्वं च भारत॥ १९

मासमात्रेण सुषुवे देवी चन्द्रवती नृप।
चन्द्रप्रभमिति ख्यातं तनयं सदृशं पितुः॥ २०

सद्यश्च यौवनं प्राप्तं सर्वज्ञत्वं च भारत।
गुणवत्यपि पुत्रं च गुणवन्तमनिन्दिता॥ २१

युवानावथ सद्यस्तौ सर्वशास्त्रार्थकोविदौ।
इन्द्रोपेन्द्रप्रसादेन संवृत्तौ युद्धवर्द्धनौ॥ २२

हर्म्यपृष्ठे वर्द्धमाना दृष्टास्ते यदुनन्दनाः।
इन्द्रोपेन्द्रेच्छया वीर नान्यथेत्यवधार्यताम्॥ २३

इसमें संदेह नहीं कि आज प्रद्युम्नके द्वारा वज्रनाभका वध अवश्य होना चाहिये। परंतु वज्रनाभ और उसके भाई दोनोंकी कन्याएँ भक्तिपूर्वक हमलोगोंकी भार्याएँ हो गयी हैं। वे सब-की-सब हर तरहसे हमारा शुभचिन्तन करती हैं। इस समय वे तीनों दानव-कन्याएँ गर्भवती हैं; अतः अब हमें क्या करना चाहिये? उन तीनोंका प्रसवकाल शीघ्र ही आनेवाला है॥ १२-१३॥ इस विषयमें भलीभाँति परस्पर विचार करके उन महाबली यादवोंने उस समय हंसोंसे कहा—'तुम्हें भगवान् श्रीकृष्ण और इन्द्रके पास जाकर यहाँकी प्रयोजनयुक्त सारी बातें कहनी चाहिये'॥ १४॥ प्रभो! तब हंसोंने वहाँ जाकर उन दोनों देवताओंसे वहाँकी सारी बातें यथार्थरूपसे कह सुनायीं। फिर उन दोनोंने हंसोंको यह संदेश दिया कि 'यादवो! तुम्हें भयभीत नहीं होना चाहिये। तुम्हारे उन स्त्रियोंके गर्भसे इच्छानुसार रूप धारण करनेवाले पुत्र उत्पन्न होंगे; जो अपने उत्तम गुणोंके कारण स्पृहणीय होंगे। वे उत्तम पुत्र गर्भमें रहते समय ही अङ्गोंसहित सम्पूर्ण वेदोंका ज्ञान प्राप्त कर लेंगे॥ १५-१६॥ 'उसी प्रकार उन्हें नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्रों तथा भविष्यमें होनेवाली सारी बातोंका स्वतः ज्ञान हो जायगा। वे जन्म लेनेपर तत्काल ही तरुण एवं अच्छे पण्डित हो जायँगे'॥ १७॥ प्रभो! उनके ऐसा कहनेपर वे हंस पुनः वज्रपुरको गये। वहाँ उन्होंने यादवकुमारोंसे देवराज इन्द्र और श्रीकृष्णका संदेश कह सुनाया॥ १८॥ उस समय प्रभावतीने एक पुत्रको जन्म दिया, जो अपने पिताके समान ही सर्वगुणसम्पन्न था! भारत! वह तत्काल युवावस्थाको प्राप्त हो गया तथा उसमें सर्वज्ञता भी थी॥ १९॥ नरेश्वर! उसके एक मासके बाद चन्द्रवतीदेवीने भी एक पुत्र उत्पन्न किया, जो अपने पिताके समान ही सुन्दर एवं शक्तिशाली था। उसका नाम चन्द्रप्रभ था॥ २०॥ भारत! वह भी तत्काल युवावस्थाको प्राप्त हो गया और उसमें भी सर्वज्ञता थी। तत्पश्चात् साध्वी गुणवतीने भी एक गुणवान् पुत्रको जन्म दिया। वे दोनों बालक तत्काल युवावस्थासे सम्पन्न और सम्पूर्ण शास्त्रोंके मर्मज्ञ हो गये। वे दोनों युद्धमें आगे बढ़नेवाले थे। इन्द्र और उपेन्द्रके प्रसादसे उन बालकोंमें ये सद्गुण आये थे॥ २१-२२॥ वीर! एक दिन अट्टालिकाकी छतपर घूमते हुए उन वृद्धिशील यादवकुमारोंको दानवोंने देख लिया। इन्द्र और उपेन्द्रकी इच्छासे ही ऐसा हुआ था, अन्यथा नहीं। इस बातको तुम निश्चितरूपसे जान लो॥ २३॥

निवेदिताश्च सम्भ्रान्तैर्दैत्यैराकाशरक्षिभिः।
वज्रनाभाय वीराय त्रिविष्टपजयैषिणे॥ २४

वधाय सर्वे गृह्यन्तां ममैते गृहधर्षकाः।
इत्युवाचासुरपतिर्वज्रनाभो महासुरः॥ २५

ततः सैन्यं समाज्ञप्तमसुरेन्द्रेण धीमता।
आवारयामास दिशः सर्वाः कुरुकुलोद्वह॥ २६

गृह्यन्तामाशु वध्यन्तामिति वाचस्ततस्ततः।
उच्चेरुरसुरेन्द्रस्य शासनादरिशासिनः॥ २७

तच्छ्रुत्वा व्यथितास्तेषां मातरः पुत्रवत्सलाः।
रुरुदुस्ता रुदन्तीश्च प्रद्युम्नः प्रहसन् ब्रवीत्॥ २८

मा भैष्ट जीवमानेषु स्थितेष्वस्मासु सर्वथा।
किं नो दैत्याः करिष्यन्ति सर्वथा भद्रमस्तु वः॥ २९

प्रभावतीमथोवाच प्रद्युम्नो विप्लवां स्थिताम्।
पिता तव गदापाणिः पितृव्याश्च स्थितास्तव॥ ३०

भ्रातरश्चैव ते देवि ज्ञातयश्च तथापरे।
एते पूज्याश्च मान्याश्च तवार्थे खलु सर्वथा॥ ३१

भगिन्यौ पृच्छ भद्रं ते कालोऽयं खलु दारुणः।
मरणं सहमानानां युद्ध्यतां विजयो ध्रुवम्॥ ३२

दानवेन्द्रादयो ह्येते योत्स्यन्तेऽस्मद्वधैषिणः।
किमत्र कार्यमस्माभिः सर्वैश्चक्रान्तरस्थितैः॥ ३३

प्रभावती रुदन्ती तु प्रद्युम्नमिदमब्रवीत्।
शिरस्यञ्जलिमाधाय जानुभ्यां पतिता क्षितौ॥ ३४

गृहाण शस्त्रमात्मानं रक्ष शत्रुनिबर्हण।
जीवन् पुत्रांश्च दारांश्च द्रष्टासि यदुनन्दन॥ ३५

आर्यां नृवर वैदर्भीमनिरुद्धं च मानद।
स्मृत्वैतन्मोक्षयात्मानं व्यसनादरिमर्दन॥ ३६

दुर्वाससा वरो दत्तो मुनिना मम धीमता।
वैधव्यरहिता हृष्टा जीवपुत्रा भविष्यसि॥ ३७

उस समय आकाशकी ओरसे नगरकी रक्षा करनेवाले दैत्योंने बड़ी घबराहटमें पड़कर स्वर्गविजयकी इच्छा रखनेवाले वीर वज्रनाभसे उन बालकोंके विषयमें निवेदन किया॥ २४॥ यह सुनकर असुरोंके स्वामी महान् असुर वज्रनाभने कहा—ये बालक मेरे घरको कलङ्कित करनेवाले हैं। इन सबको मार डालनेके लिये कैद कर लो'॥ २५॥ कुरुकुलतिलक जनमेजय! तदनन्तर बुद्धिमान् असुरराजकी आज्ञासे असुरोंकी सेनाने सम्पूर्ण दिशाओंकी ओरसे आकर उस नगरको घेर लिया। सब ओर इधर-उधर यही बात सुनायी देने लगी—'पकड़ लो, शीघ्र मार डालो।' शत्रुओंको दण्ड देनेवाले असुरराजके आदेशसे समस्त सैनिक ऐसी ही बातें बोल रहे थे॥ २६-२७॥ ये बातें सुनकर उन बालकोंकी पुत्रवत्सला माताएँ शोकसे व्यथित होकर रोने लगीं। उस समय उन रोती हुई देवियोंसे प्रद्युम्नने हँसते हुए कहा—॥ २८॥ 'दानवकन्याओ! तुम डरो मत। तुम्हारा सर्वथा भला हो। जब हम सब प्रकारसे जीते-जागते यहाँ खड़े हैं, तब ये दैत्य हमारा क्या कर लेंगे'॥ २९॥ इसके बाद प्रद्युम्नने व्याकुल होकर खड़ी हुई प्रभावतीसे कहा—'देवि! तुम्हारे पिता और चाचा हाथमें गदा लेकर खड़े हैं। तुम्हारे भाई और दूसरे कुटुम्बीजन भी युद्धके लिये उपस्थित हैं। ये सब-के-सब तुम्हारे नाते सर्वथा मेरे पूजनीय एवं आदरणीय हैं॥ ३०-३१॥ 'तुम्हारा कल्याण हो। तुम अपनी दोनों बहनोंसे भी पूछ लो। यह समय बड़ा भयंकर है। जो मरणका कष्ट सहकर युद्ध करते हैं, उनकी विजय अवश्य होती है॥ ३२॥ 'ये दानवराज वज्रनाभ आदि हमारे वधकी इच्छासे युद्ध करेंगे। ऐसी दशामें हमलोगोंको क्या करना चाहिये? हम सब लोग तुम्हारी आज्ञाके अधीन हैं'॥ ३३॥ उस समय प्रभावती रोती हुई घुटनोंके बल पृथ्वीपर गिर पड़ी और मस्तकपर अञ्जलि बाँधकर प्रद्युम्नसे इस प्रकार बोली—॥ ३४॥ 'शत्रुओंका संहार करनेवाले यदुनन्दन! शस्त्र उठाओ और अपनी रक्षा करो। नरश्रेष्ठ! मानद! यदि जीवित रहोगे तो पुत्रों और पत्नियोंको देखोगे। आर्या रुक्मिणी तथा पुत्र अनिरुद्धसे भी मिल सकोगे। शत्रुमर्दन! यह सब सोचकर अपने-आपको संकटसे मुक्त करो॥ ३५-३६॥ 'बुद्धिमान् दुर्वासामुनिने मुझे वर दिया है कि तू वैधव्यरहित, प्रसन्न एवं जीवित पुत्रोंकी माता होगी॥ ३७॥

एष मे हृदयाश्वासो भविता न तदन्यथा।
सूर्याग्नितेजसो वाक्यं मुनेरिन्द्रानुजात्मज॥ ३८

इत्युक्त्वाथासिमादाय सूपस्पृष्ट्वा मनस्विनी।
प्रददौ रौक्मिणेयाय जयस्वेति वरं वरा॥ ३९

स तं जग्राह धर्मात्मा प्रहृष्टेनान्तरात्मना।
प्रणम्य शिरसा दत्तं प्रियया भक्तियुक्तया॥ ४०

चन्द्रवत्यपि निस्त्रिंशं गदाय प्रददौ मुदा।
तदा गुणवती चैव साम्बायासिं महात्मने॥ ४१

हंसकेतुमथोवाच प्रद्युम्नः प्रणतं प्रभुः।
इहैव साम्बसहितो युध्यस्व सह यादवैः॥ ४२

आकाशे दिक्षु सर्वासु योत्स्याम्यहमरिंदम।
इत्युक्त्वाथ रथं चक्रे मायया मायिनां वरः॥ ४३

सहस्रशिरसं नागं कृत्वा सारथिमात्मवान्।
अनन्तभोगं कौरव्य सर्वनागोत्तमोत्तमम्॥ ४४

स तेन रथमुख्येन हर्षयन् वै प्रभावतीम्।
चचारासुरसैन्येषु तृणेष्विव हुताशनः॥ ४५

शरैराशीविषप्रख्यैरर्द्धचन्द्रानुकारिभिः।
भेदनैर्गाधनैश्चैव ततर्द दितिसम्भवान्॥ ४६

असुराश्च रणे मत्ताः कार्ष्णिं शस्त्रैरितस्ततः।
जघ्नुः कमलपत्राक्षं परं निश्चयमास्थिताः॥ ४७

चिच्छेद बाहून् केषांचित् केयूरवलयोज्ज्वलान्।
सकुण्डलानि केषांचिच्छिरांस्यपि च चिच्छिदे॥ ४८

क्षुरच्छिन्नैः शिरोभिश्च कायैश्च शकलैरपि।
असुराणां मही कीर्णा प्रद्युम्नेनातितेजसा॥ ४९

देवेश्वरो देवगणैः सहितः समितिञ्जयः।
ददर्श मुदितो युद्धं भैमानां दितिजैः सह॥ ५०

ये गदं चैव साम्बं च दैत्याः समभिदुद्रुवुः।
ते ययुर्निधनं सर्वे यादांसीव महोदधौ॥ ५१

विषमं तु तदा युद्धं दृष्ट्वा देवपतिर्हरिः।
गदाय प्रेषयामास स्वं रथं हरिवाहनः॥ ५२

'इन्द्रानुजकुमार! यह वर मेरे हृदयको आश्वासन देनेवाला है। यह सूर्य और अग्निके समान तेजस्वी दुर्वासामुनिका वचन सत्य होगा, मिथ्या कभी नहीं होगा'॥ ३८॥ ऐसा कहकर श्रेष्ठ मनस्विनी नारी प्रभावतीने एक तलवार लेकर उसे अच्छी तरह साफ किया और रुक्मिणीनन्दन प्रद्युम्नके हाथमें दे दिया। साथ ही यह वर दिया कि तुम विजयी होओ॥ ३९॥ अपने प्रति भक्ति रखनेवाली प्रियतमा प्रभावतीके दिये हुए उस खड्गको धर्मात्मा प्रद्युम्नने मस्तक झुकाकर प्रणाम किया और प्रसन्न चित्तसे उसको हाथमें ले लिया॥ ४०॥ इसी प्रकार चन्द्रवतीने भी उस समय गदको प्रसन्नतापूर्वक खड्ग दिया। तदनन्तर गुणवतीने भी महात्मा साम्बको तलवार भेंट की॥ ४१॥ तदनन्तर प्रभावशाली प्रद्युम्नने विनीतभावसे खड़े हुए (अपने सारथि) हंसकेतुसे कहा—'तुम यहीं यादवों तथा साम्बके साथ रहकर असुरोंके साथ युद्ध करो॥ ४२॥ 'शत्रुदमन! मैं आकाश तथा सम्पूर्ण दिशाओंमें युद्ध करूँगा।' ऐसा कहकर मायावियोंमें श्रेष्ठ प्रद्युम्नने मायासे एक रथका निर्माण किया॥ ४३॥ कुरुनन्दन! मनस्वी प्रद्युम्न अनन्त शरीरवाले, सहस्र मस्तकोंसे युक्त एक नागको, जो समस्त उत्तम नागोंसे भी उत्तम था, अपना सारथि बनाकर उस मुख्य रथके द्वारा प्रभावतीका हर्ष बढ़ाते हुए असुर-सेनाओंमें उसी तरह विचरने लगे, जैसे तिनकोंमें आग फैलती है॥ ४४-४५॥ प्रद्युम्न विषधर सर्पोंके समान भयंकर, अर्धचन्द्राकार, भेदन (पतली नोकवाले) तथा गाधन (मोटे अग्रभागवाले) बाणोंद्वारा दैत्योंको पीड़ित करने लगे॥ ४६॥ असुर भी उत्तम निश्चयका आश्रय ले रणभूमिमें मतवाले होकर इधर-उधरसे शस्त्रोंद्वारा कमलनयन प्रद्युम्नपर प्रहार करने लगे॥ ४७॥ प्रद्युम्नने कितने ही असुरोंकी भुजाएँ काट डालीं, जो केयूर और कङ्कणकी कान्तिसे प्रकाशित हो रही थीं एवं कितनोंके कुण्डलयुक्त मस्तक भी धड़से अलग कर दिये॥ ४८॥ अत्यन्त तेजस्वी प्रद्युम्नने क्षुरोंद्वारा कटे हुए असुरोंके मस्तकों, शरीरों और उनके टुकड़ोंसे वहाँकी सारी धरती पाट दी॥ ४९॥ युद्धमें विजय पानेवाले देवराज इन्द्र देवताओंके साथ आकाशमें खड़े होकर बड़ी प्रसन्नताके साथ दैत्यों और यादवोंका युद्ध देख रहे थे॥ ५०॥ जिन दैत्योंने गद और साम्बपर आक्रमण किया, वे सब-के-सब कालके गालमें चले गये; मानो अगणित जलजन्तु महासागरमें निमग्न हो गये हों॥ ५१॥ उस समय उस युद्धको विषम स्थितिमें देखकर हरिवाहन*

* हरे रंगके घोड़े इन्द्रके रथको वहन करते हैं, इसलिये उन्हें हरिवाहन कहा गया है।

दिदेश मातलिसुतं यन्तारं च सुवर्चसम्।
साम्बायैरावणं नागं प्रेषयामास चेश्वरः॥ ५३

जयन्तं रौक्मिणेयस्य सहायमददाद् विभुः।
ऐरावणमधिष्ठातुं प्रवरं स नियुक्तवान्॥ ५४

देवपुत्रद्विजौ वीरावप्रमेयपराक्रमौ।
अनुज्ञाप्य सुराध्यक्षं ब्रह्माणं लोकभावनम्॥ ५५

तं मातलिसुतं चैव गजमैरावणं तदा।
देवः प्रेषितवाञ्छक्रो विधिज्ञो वरकर्मसु॥ ५६

क्षीणमस्य तपो वध्यो यदूनामेष दुर्मतिः।
प्रवदन्ति तु भूतानि सर्वत्र तु यथेप्सितम्॥ ५७

प्रद्युम्नश्च जयन्तश्च प्राप्तौ हर्म्यं महाबलौ।
असुराञ्छरजालौघैर्विक्राम्यन्तौ प्रणश्यतुः॥ ५८

गदं कार्ष्णिस्तदोवाच दुर्वार्यरणदुर्जयः।
उपेन्द्रानुज शक्रेण रथोऽयं प्रेषितस्तव॥ ५९

हरियुङ्मातलिसुतो यन्ता चायं महाबलः।
प्रवराधिष्ठितश्चायं साम्बस्यैरावणो गजः॥ ६०

अद्योपहारो रुद्रस्य द्वारकायां महाबलः।
श्व एष्यति हृषीकेशस्तस्मिन् वृत्तेऽच्युतानुज॥ ६१

तस्याज्ञया वधिष्यामो वज्रनाभं सबान्धवम्।
अभ्युत्थानकृतं पापं त्रिविष्टपजयं प्रति॥ ६२

करिष्यामि विधानं तु नैष शक्रं सुतान्वितम्।
विजेष्यत्यप्रमादस्तु कर्तव्य इति मे मतिः॥ ६३

कलत्ररक्षणं कार्यं सर्वोपायैर्नरैर्बुधैः।
कलत्रधर्षणं लोके मरणादतिरिच्यते॥ ६४

एवं संदिश्य भैमः स गदसाम्बौ महाबलः।
प्रद्युम्नकोट्यः ससृजे मायया दिव्यरूपया॥ ६५

देवराज इन्द्रने गदके लिये अपना रथ भेज दिया; साथ ही मातलिके पुत्र सुवर्चाको सारथिके रूपमें दिया। इसके सिवा देवेश्वरने साम्बकी सवारीके लिये अपना ऐरावत हाथी भेज दिया॥ ५२-५३॥ इतना ही नहीं, भगवान् इन्द्रने जयन्तको प्रद्युम्नका सहायक बनाकर उन्हें दे दिया और ऐरावतका सञ्चालन करनेके लिये प्रवर नामक ब्राह्मणको नियुक्त किया॥ ५४॥ देवकुमार जयन्त और ब्राह्मणकुमार प्रवर—ये दोनों वीर अप्रमेय पराक्रमी थे। श्रेष्ठ कर्मोंमें उसके आवश्यक विधानको जाननेवाले देवेन्द्रने सुराध्यक्ष लोकभावन ब्रह्माजीकी आज्ञा लेकर जयन्त, प्रवर, मातलिपुत्र सुवर्चा और अपने ऐरावत हाथीको उस समय वहाँ भेजा था॥ ५५-५६॥ सब प्राणी सर्वत्र अपने इच्छानुसार यही कहते थे कि 'इस वज्रनाभकी तपस्या क्षीण हो चली है। यह दुर्बुद्धि दैत्य अब यादवोंके हाथसे मारा जायगा'॥ ५७॥ प्रद्युम्न और जयन्त—ये दोनों महाबली वीर महलकी छतपर आ गये और पराक्रम प्रकट करते हुए अपने बाणसमूहोंद्वारा असुरोंको नष्ट करने लगे॥ ५८॥ उस समय किसीसे भी रोके न जा सकनेवाले रणदुर्जय वीर श्रीकृष्णकुमार प्रद्युम्नने गदसे कहा—'उपेन्द्रके छोटे भैया! देवराज इन्द्रने आपके लिये यह रथ भेजा है॥ ५९॥ 'इसमें हरे रंगके घोड़े जुते हैं और ये मातलिके महाबली पुत्र सुवर्चा इस रथके सारथि हैं तथा यह ऐरावत हाथी, जिसके अधिष्ठाता प्रवर हैं, साम्बकी सवारीमें आया है॥ ६०॥ 'चाचाजी! आज द्वारकामें महादेवजीकी महापूजा है। उसके पूर्ण हो जानेपर मेरे पूज्य पिता महाबली श्रीकृष्ण कल यहाँ पधारेंगे॥ ६१॥ 'उन्हींकी आज्ञासे स्वर्गलोकको जीतनेके लिये उठे हुए पापी वज्रनाभको उसके बन्धु-बान्धवोंसहित हमलोग मार डालेंगे॥ ६२॥ 'मैं ऐसा उपाय करूँगा, जिससे यह दैत्य पुत्रसहित देवराज इन्द्रको पराजित न कर सके; परंतु हमें तनिक भी प्रमाद नहीं करना चाहिये—सावधान रहना चाहिये; ऐसा मेरा विचार है॥ ६३॥ 'विद्वान् पुरुषोंको सभी उपायोंद्वारा अपनी पत्नियोंकी रक्षा करनी चाहिये। यदि पत्नीका पर-पुरुषके द्वारा तिरस्कार हो जाय तो वह संसारमें मृत्युसे भी बढ़कर (कष्टदायक होता) है'॥ ६४॥ गद और साम्बसे ऐसा कहकर महाबली प्रद्युम्नने अपनी दिव्य मायासे करोड़ों प्रद्युम्नोंकी सृष्टि कर डाली॥ ६५॥

तमश्च नाशयामास दैत्यसृष्टं दुरासदम्।
जहृषे देवराजश्च तं दृष्ट्वा रिपुमर्दनम्॥ ६६
ददृशुः सर्वभूतानि कार्ष्णिं सर्वेषु शत्रुषु।
अन्तरात्मनि वर्तन्तं क्षेत्रज्ञमिव तं विदुः॥ ६७
एवं व्यतीता रजनी रौक्मिणेयस्य युध्यतः।
असुराणां त्रिभागश्च निहतश्चातितेजसा॥ ६८
यावद् वियोधयामास कार्ष्णिर्दैत्यान् रणाजिरे।
संध्योपास्ता जयन्तेन तावद् विष्णुपदीजले॥ ६९
अयोधयज्जयन्तश्च यावद् दैत्यान् महाबलः।
तावदाकाशगङ्गायां भैमः संध्यामुपास्तवान्॥ ७०

तथा दैत्योंने जो दुर्निवार्य अन्धकार उत्पन्न किया था, उसे नष्ट कर दिया। शत्रुमर्दन प्रद्युम्नको ऐसा पराक्रम करते देख देवराज इन्द्रको बड़ा हर्ष हुआ॥ ६६॥ समस्त प्राणियोंने सभी शत्रुओंके बीचमें श्रीकृष्णकुमार प्रद्युम्नको देखा और उन्हें प्रत्येक अन्तरात्मामें विद्यमान क्षेत्रज्ञके समान समझा॥ ६७॥ इस प्रकार युद्ध करते हुए रुक्मिणीकुमार प्रद्युम्नकी वह सारी रात बीत गयी। उन्होंने अपने अत्यन्त तेजसे असुरोंके तीन हिस्सोंको नष्ट कर दिया॥ ६८॥ श्रीकृष्णकुमार प्रद्युम्न समराङ्गणमें जबतक दैत्योंके साथ जूझते रहे, तबतक जयन्तने गङ्गाजीके जलमें संध्योपासना कर ली। फिर महाबली जयन्त आकर जबतक युद्ध करते रहे, तबतक प्रद्युम्नने भी आकाशगङ्गाके जलमें संध्योपासनाका कार्य पूर्ण कर लिया॥ ६९-७०॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे विष्णुपर्वणि प्रद्युम्नदैत्ययुद्धे षण्णवतितमोऽध्यायः॥ ९६॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत विष्णुपर्वमें प्रद्युम्न और दैत्यका युद्धविषयक छियानबेवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ९६॥

सप्तनवतितमोऽध्यायः

प्रद्युम्नद्वारा वज्रनाभका वध तथा प्रद्युम्न आदिके पुत्रोंका राज्याभिषेक

वैशम्पायन उवाच

जगतश्चक्षुषि ततो मुहूर्ताभ्युदिते रवौ।
प्रादुरासीद्धरिर्देवस्तार्क्ष्येणोरगशत्रुणा॥ १
हंसवायुमनोभिश्च सुशीघ्रतरगः खगः।
तस्थौ वियति शक्रस्य समीपे कुरुनन्दन॥ २
समेत्य च यथान्यायं कृष्णो वासवसंनिधौ।
पाञ्चजन्यं हरिर्दध्मौ दैत्यानां भयवर्द्धनम्॥ ३
तं श्रुत्वाभ्यागतस्तत्र प्रद्युम्नो परवीरहा।
वज्रनाभं जहीत्युक्तः केशवेन त्वरेति च॥ ४
तार्क्ष्यमारुह्य गच्छेति पुनरेव प्रणोदितः।
चकार स तथा वीरः प्रणिपत्य सुरोत्तमौ॥ ५
स मनोरंहसा वीर तार्क्ष्येणाशु ययौ नृप।
अभ्याशं वज्रनाभस्य महाद्वन्द्वस्य भारत॥ ६

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! तदनन्तर जब जगत्के नेत्ररूप भगवान् सूर्यके उदित हुए दो घड़ी बीत गयी, तब सर्पशत्रु गरुड़के द्वारा भगवान् श्रीहरि वहाँ प्रकट हुए॥ १॥ कुरुनन्दन! हंस, वायु और मनसे भी अत्यन्त शीघ्रतर गतिसे गमन करनेवाले पक्षी गरुड़ आकाशमें इन्द्रके समीप खड़े हो गये॥ २॥ श्रीकृष्णने देवराज इन्द्रके समीप जाकर उनके साथ यथोचित रीतिसे मिलकर अपना पाञ्चजन्य नामक शङ्ख बजाया, जो दैत्योंका भय बढ़ानेवाला था॥ ३॥ शत्रु-वीरोंका संहार करनेवाले प्रद्युम्न वह शङ्खध्वनि सुनकर तुरंत वहाँ आये। उस समय श्रीकृष्णने उनसे कहा—'बेटा! वज्रनाभको मार डालो और इस कार्यमें शीघ्रता करो'॥ ४॥ उन्होंने पुनः प्रेरित करते हुए कहा—'गरुड़पर चढ़कर जाओ।' वीर प्रद्युम्नने उन दोनों श्रेष्ठ देवताओंको नमस्कार करके वैसा ही किया॥ ५॥ वीर! भरतनन्दन! नरेश्वर! तब वे मनके समान वेगशाली गरुड़के द्वारा तुरंत ही महान् द्वन्द्वयुद्ध करनेवाले वज्रनाभके निकट जा पहुँचे॥ ६॥

ततस्ताक्ष्यर्गतो वीरस्ततर्द रणमूर्द्धनि।
वज्रनाभं स्थिरो भूत्वा सर्वास्त्रविदनिन्दितः॥ ७

तेन ताक्ष्यर्गतेनैव गदया कृष्णसूनुना।
उरस्यभ्याहतो वीरो वज्रनाभो महात्मना॥ ८

स तेनाभिहतो वीरो दैत्यो मोहवशं गतः।
चक्षार च भृशं रक्तं बभ्रामैव गतासुवत्॥ ९

आश्वसेत्यथ तं कार्ष्णिरुवाच रणदुर्जयः।
लब्धसंज्ञः स वीरस्तु प्रद्युम्नमिदमब्रवीत्॥ १०

साधु यादव वीर्येण श्लाघ्यो मम रिपुर्भवान्।
प्रतिप्रहारकालोऽयं स्थिरो भव महाबल॥ ११

एवमुक्त्वा महानादं मुक्त्वा मेघशतोपमम्।
गदां मुमोच वेगेन सघण्टां बहुकण्टकाम्॥ १२

तया ललाटेऽभिहतः प्रद्युम्नो गदया नृप।
उद्वमन् रुधिरं भूरि मुमोह यदुनन्दनः॥ १३

तं दृष्ट्वा भगवान् कृष्णः पाञ्चजन्यं जलोद्भवम्।
दध्मावाश्वासनकरं पुत्रस्य रिपुनाशनः॥ १४

तं पाञ्चजन्यशब्देन प्रत्याश्वस्तं महाबलम्।
दृष्ट्वा प्रमुदिता लोका विशेषेणेन्द्रकेशवौ॥ १५

तस्य चक्रं करे यातं कृष्णाच्छन्देन भारत।
क्षुरनेमिसहस्त्रारं दैत्यसंघकुलान्तकम्॥ १६

तन्मुमोचाच्युतसुतस्तस्य नाशाय भारत।
नमस्कृत्वा सुरेन्द्राय कृष्णाय च महात्मने॥ १७

वज्रनाभस्य तत्कायादुच्चकर्त शिरस्तदा।
नारायणसुतोन्मुक्तं दैत्यानामनुपश्यताम्॥ १८

गदः सुनाभमवधीद् यतमानं रणाजिरे।
हर्म्यपृष्ठे जिघांसन्तं रणदृप्तं भयानकम्॥ १९

साम्बः समरमध्यस्थानसुरानरिमर्दनः।
निनाय निशितैर्बाणैः प्रेताधिपपरिग्रहम्॥ २०

सम्पूर्ण अस्त्र-शस्त्रोंके ज्ञाता तथा निन्दारहित वीर प्रद्युम्न गरुड़पर स्थिरभावसे बैठकर युद्धके मुहानेपर वज्रनाभको पीड़ा देने लगे॥ ७॥ गरुड़पर बैठे हुए ही महामना श्रीकृष्णकुमार प्रद्युम्नने वज्रनाभकी छातीमें गदाद्वारा प्रहार किया॥ ८॥ उनसे आहत होकर वह वीर दैत्य मूर्च्छित हो गया। उसने मुँहसे बहुत-सा रक्त वमन किया। उसे चक्कर आने लगा और वह मृतकतुल्य हो गया॥ ९॥ तब रणदुर्जय श्रीकृष्णकुमारने उससे कहा—'तुम आश्वस्त हो जाओ।' इससे सचेत होकर उस वीरने प्रद्युम्नसे इस प्रकार कहा—॥ १०॥ 'बहुत अच्छा, यादव! तुम शत्रु होते हुए भी पराक्रमके द्वारा मेरे लिये स्पृहणीय हो। अब यह मेरी ओरसे तुम्हारे प्रहारका उत्तर देनेका अवसर आया है। अतः महाबली वीर! तुम स्थिर हो जाओ'॥ ११॥ ऐसा कहकर सैकड़ों मेघोंकी गर्जनाओंके समान महान् सिंहनाद करके बहुत-से कण्टकों तथा घण्टोंवाली गदाको उसने वेगपूर्वक चलाया॥ १२॥ नरेश्वर! उस गदाने प्रद्युम्नके ललाटपर गहरा आघात किया। अतः यदुनन्दन प्रद्युम्न अधिक रक्त वमन करते हुए मूर्च्छित हो गये॥ १३॥ उन्हें अचेत हुआ देख शत्रुनाशन भगवान् श्रीकृष्णने पुत्रको आश्वासन देनेके लिये समुद्रजलसे प्रकट हुए अपने पाञ्चजन्य नामक शङ्खको बजाया॥ १४॥ पाञ्चजन्यके शब्दसे महाबली प्रद्युम्नको आश्वस्त हुआ देख सब लोगोंको बड़ी प्रसन्नता हुई। विशेषतः इन्द्र और श्रीकृष्ण बहुत प्रसन्न हुए॥ १५॥ भारत! श्रीकृष्णकी इच्छासे उनका चक्र प्रद्युम्नके हाथमें चला गया। उसमें सहस्रों अरे थे और उसके नेमि या प्रान्तभागमें छुरे लगे हुए थे। वह चक्र दैत्यसमूहोंके वंशका विनाश करनेवाला था॥ १६॥ भारत! श्रीकृष्णके पुत्र प्रद्युम्नने देवराज इन्द्र और महात्मा श्रीकृष्णको प्रणाम करके उस दैत्यके विनाशके लिये वह चक्र चला दिया॥ १७॥ श्रीकृष्णकुमार प्रद्युम्नके हाथसे छोड़े गये उस चक्रने उस समय समस्त दैत्योंके देखते-देखते वज्रनाभके मस्तकको उसके धड़से काट गिराया॥ १८॥ महलकी छतपर खड़े हुए गदने अपनेको मार डालनेकी इच्छावाले युद्धोन्मत्त भयानक दैत्य सुनाभका, जो समराङ्गणमें विजयके लिये प्रयत्नशील था, वध कर डाला॥ १९॥ शत्रुमर्दन साम्बने भी समरके मध्यभागमें खड़े हुए असुरोंको अपने पैने बाणोंद्वारा यमराजके घर भेज दिया॥ २०॥

निकुम्भोऽपि हते वीरे वज्रनाभे महासुरे।
जगाम षट्पुरं वीरो नारायणभयार्दितः॥ २१

निबर्हिते देवरिपौ वज्रनाभे महासुरे।
अवतीर्णौ महात्मानौ हरी वज्रपुरं तदा॥ २२

लब्धप्रशमनं चैव चक्रतुः सुरसत्तमौ।
सान्त्वयामासतुश्चैव बालवृद्धं भयार्दितम्॥ २३

इन्द्रोपेन्द्रौ महात्मानौ मन्त्रयित्वा महाबलौ।
आयत्यां च तदात्वे च बृहस्पतिमतानुगौ॥ २४

वज्रनाभस्य तद् राज्यं चतुर्धा चक्रतुर्नृप।
विजयस्य चतुर्भागं जयन्ततनयस्य वै॥ २५

प्रद्युम्नस्य चतुर्भागं रौक्मिणेयसुतस्य च।
चन्द्रप्रभस्य ददतुश्चतुर्भागं जनेश्वर॥ २६

कोट्यश्चतस्रो ग्रामाणामधिकास्ता विशाम्पते।
शाखापुरसहस्रं च स्फीतं वज्रपुरोपमम्।
चतुर्धा चक्रतुस्तत्र संहृष्टौ शक्रकेशवौ॥ २७

कम्बलाजिनवासांसि रत्नानि विविधानि च।
चतुर्द्धा चक्रतुर्वीरौ वीर वासवकेशवौ॥ २८

ततोऽभिषिक्तास्ते वीरा राजानो वासवाज्ञया।
देवदुन्दुभिवाद्येन नृप विष्णुपदीजलैः॥ २९

स्वयं शक्रेण देवेन केशवेन च धीमता।
ऋषिवंशे महात्मानः शक्रमाधवनन्दनाः॥ ३०

विजयस्य प्रसिद्धैव गतिर्वियति धीमतः।
मातृजेन गुणेनापि माधवानां महात्मनाम्॥ ३१

अभिषिच्य जयन्तं तु वासवो भगवान् ब्रवीत्।
त्वयैते वीर संरक्ष्या राजानः समितिञ्जयाः॥ ३२

मम वंशकरोऽत्रैकः केशवस्य त्रयोऽनघ।
अवध्याः सर्वभूतानां भविष्यन्ति ममाज्ञया॥ ३३

महान् असुर वीर वज्रनाभके मारे जानेपर नारायण (श्रीकृष्ण)-के भयसे पीड़ित हुआ वीर निकुम्भ भी षट्पुरको चला गया॥ २१॥ जब देवद्रोही महान् असुर वज्रनाभका संहार हो गया, तब महात्मा श्रीकृष्ण और इन्द्र दोनों वज्रपुरमें उतरे॥ २२॥ उस समय उन दोनों श्रेष्ठ देवताओंने वहाँ प्राप्त हुए दुःख और शोकका शमन किया। वहाँ बालकोंसे लेकर बूढ़ेतक सभी भयसे पीड़ित थे। उन सबको उन्होंने सान्त्वना दी॥ २३॥ नरेश्वर! उस समय महाबली महात्मा इन्द्र और उपेन्द्रने भविष्य और वर्तमानके विषयमें परस्पर सलाह करके बृहस्पतिके मतका अनुसरण करते हुए वज्रनाभके उस राज्यको चार भागोंमें बाँट दिया। जनेश्वर! उन्होंने एक चौथाई भाग तो जयन्तके पुत्र विजयको दे दिया, दूसरा प्रद्युम्नके पुत्रको, तीसरा साम्बके पुत्रको दिया और शेष चौथा भाग गदके पुत्र चन्द्रप्रभको अर्पित कर दिया॥ २४—२६॥ प्रजानाथ! वज्रनाभके अधिकारमें चार करोड़से कुछ अधिक ग्राम थे तथा एक हजार शाखानगर थे, जो वज्रपुरके समान ही वैभवशाली थे। हर्षमें भरे हुए इन्द्र और श्रीकृष्णने वहाँकी सभी वस्तुओंके चार भाग कर लिये थे॥ २७॥ वीर जनमेजय! वीर इन्द्र और केशवने वहाँ प्राप्त हुए कम्बल (कालीन), मृगचर्म, वस्त्र तथा भाँति-भाँतिके रत्नोंको भी चार भागोंमें बाँट दिया॥ २८॥ नरेश्वर! तदनन्तर इन्द्रकी आज्ञासे वे चारों वीर देवदुन्दुभियोंकी ध्वनिके साथ गङ्गाजीके जलसे राजाके पदपर अभिषिक्त हुए। इन्द्र और श्रीकृष्णको आनन्दित करनेवाले उन चारों महात्मा राजकुमारोंको स्वयं इन्द्रदेव तथा बुद्धिमान् श्रीकृष्णने ऋषिसमुदायके निकट अभिषिक्त किया॥ २९-३०॥ बुद्धिमान् विजयकी आकाशमें चलने-फिरनेकी शक्ति तो प्रसिद्ध ही थी; महामनस्वी यादवकुमार भी अपनी माताओंके गुणसे नियुक्त हो आकाशमें चल-फिर सकते थे॥ ३१॥ ऐश्वर्यशाली इन्द्रने उन चारोंका अभिषेक करके जयन्तसे कहा—'वीर! तुम्हें इन युद्धविजयी राजाओंकी भी रक्षा करनी चाहिये॥ ३२॥ 'अनघ! इनमें एक तो मेरे वंशका प्रवर्तक है और तीन श्रीकृष्णके वंशका विस्तार करनेवाले हैं। ये सब मेरी आज्ञासे समस्त प्राणियोंके लिये अवध्य होंगे॥ ३३॥

गमनागमनं चैव दिवि सिद्धं भविष्यति।
त्रिविष्टपं द्वारकां च रम्यां भैमाभिरक्षिताम्॥ ३४
दिशागजसुतान् नागान् हयांश्चोच्चैःश्रवोऽन्वयान्।
इच्छयैषां प्रयच्छस्व रथांस्त्वष्टृकृतानपि॥ ३५

गजावैरावणसुतौ शत्रुञ्जयरिपुञ्जयौ।
प्रयच्छाकाशगौ वीर साम्बस्य च गदस्य च॥ ३६

आकाशेन पुरीं यातु द्वारकां भैमरक्षिताम्।
आयातु च सुतौ द्रष्टुं यथेष्टं भैमनन्दनौ॥ ३७

इति संदिश्य भगवान् देवराजः पुरन्दरः।
जगाम भगवान् स्वर्गं द्वारकामपि केशवः॥ ३८

षण्मासानुषितस्तत्र गदः प्रद्युम्न एव च।
साम्बश्च द्वारकां याता रूढे राज्ये महाबलाः॥ ३९

अद्यापि तानि राज्यानि मेरोः पार्श्वे तथोत्तरे।
तिष्ठन्ति च जगद् यावत् स्थास्यन्त्यमरसंनिभ॥ ४०

निवृत्ते मौसले युद्धे स्वर्गं यातेषु वृष्णिषु।
गदप्रद्युम्नसाम्बास्ते गता वज्रपुरं विभो॥ ४१

ततः प्रोष्य पुनर्यान्ति स्वर्गं स्वैः कर्मभिः शुभैः।
प्रसादेन च कृष्णस्य लोककर्तुर्जनेश्वर॥ ४२

प्रद्युम्नोत्तरमेतत् ते नृदेव कथितं मया।
धन्यं यशस्यमायुष्यं शत्रुनाशनमेव च॥ ४३

पुत्रपौत्रा विवर्धन्ते आरोग्यधनसम्पदः।
यशो विपुलमाप्नोति द्वैपायनवचो यथा॥ ४४

'इनका आकाशमें गमनागमन स्वतःसिद्ध होगा। स्वर्गमें तथा यादवोंद्वारा सुरक्षित रमणीय द्वारकापुरीमें भी ये आते-जाते रहेंगे॥ ३४॥ 'दिग्गजोंके पुत्र जो हाथी हैं, उच्चैःश्रवाके कुलमें उत्पन्न जो घोड़े हैं तथा विश्वकर्माके बनाये जो रथ हैं, उन सबको इन्हें इच्छानुसार प्रदान करो॥ ३५॥ 'वीर! ऐरावतके पुत्र जो शत्रुञ्जय और रिपुञ्जय नामक आकाशगामी हाथी हैं, उन्हें साम्ब और गदको दे दो; जिससे वे दोनों भीमकुलनन्दन वीर यादवोंद्वारा सुरक्षित रमणीय द्वारकापुरीमें आकाशमार्गसे जा सकें तथा अपने दोनों पुत्रोंको देखनेके लिये यहाँ भी, जब इच्छा हो आ सकें'॥ ३६-३७॥ ऐसा संदेश देकर ऐश्वर्यशाली देवराज इन्द्र स्वर्गको तथा भगवान् केशव द्वारकापुरीको चले गये॥ ३८॥ गद, प्रद्युम्न और साम्ब—ये तीनों महाबली वीर वहाँ छः महीने और रह गये। जब वहाँका राज्य सुदृढ़ हो गया, तब वे द्वारकाको गये॥ ३९॥ देवोपम वीर जनमेजय! आज भी मेरुपर्वतके उत्तर पार्श्वमें वे राज्य विद्यमान हैं और जबतक यह संसार रहेगा, तबतक वे बने रहेंगे॥ ४०॥ विभो! मौसलयुद्ध समाप्त होनेपर जब समस्त वृष्णिवंशी स्वर्गलोकको चले गये, तब गद, प्रद्युम्न और साम्ब वज्रपुरमें गये थे॥ ४१॥ जनेश्वर! वहाँ रहकर लोग लोककर्ता भगवान् श्रीकृष्णके प्रसादसे अपने शुभ कर्मोंद्वारा पुनः स्वर्गलोकमें चले जाते हैं॥ ४२॥ नरदेव! यह मैंने तुमसे प्रद्युम्नके उत्कर्षका वर्णन किया है। यह धन, यश तथा आयु प्रदान करनेवाला है। इसके पाठसे काम, क्रोध आदि शत्रुओंका नाश भी होता है। पुत्रों और पौत्रोंकी वृद्धि होती है। आरोग्य तथा धन-सम्पत्तिकी प्राप्ति होती है एवं मनुष्य महान् यशका भागी होता है। जैसा कि द्वैपायन व्यासका कथन है॥ ४३-४४॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे विष्णुपर्वणि वज्रनाभवधो नाम सप्तनवतितमोऽध्यायः॥ ९७॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत विष्णुपर्वमें वज्रनाभका वध नामक सत्तानबेवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ९७॥

अष्टनवतितमोऽध्यायः

इन्द्रकी आज्ञासे विश्वकर्माद्वारा पुनः परिष्कृत की गयी द्वारकापुरीका वर्णन

वैशम्पायन उवाच

ददर्शाथ पुरीं कृष्णो द्वारकां गरुडे स्थितः।
देवसद्मप्रतीकाशां समन्तात् प्रतिनादिताम्॥ १

मणिपर्वतयन्त्राणि तथा क्रीडागृहाणि च।
उद्यानवनमुख्यानि वलभीचत्वराणि च॥ २

सम्प्राप्ते तु तदा कृष्णे पुरीं देवकिनन्दने।
विश्वकर्माणमाहूय देवराजोऽब्रवीदिदम्॥ ३

प्रियमिच्छसि चेत् कर्तुं मह्यं शिल्पवतां वर।
कृष्णप्रियार्थं भूयस्त्वं प्रकुरुष्व मनोहराम्॥ ४

उद्यानशतसम्बाधां द्वारकां स्वर्गसम्मिताम्।
कुरुष्व विबुधश्रेष्ठ यथा मम पुरी तथा॥ ५

यत्किञ्चित् त्रिषु लोकेषु रत्नभूतं प्रपश्यसि।
तेन संयुज्यतां क्षिप्रं पुरी द्वारवती त्वया॥ ६

कृष्णो हि सुरकार्येषु सर्वेषु सततोत्थितः।
संग्रामान् घोररूपांश्च विगाहति महाबलः॥ ७

तामिन्द्रवचनाद् गत्वा विश्वकर्मा पुरीं ततः।
अलंचक्रे समन्ताद् वै यथेन्द्रस्यामरावती॥ ८

तां ददर्श दशार्हाणामीश्वरः पक्षिवाहनः।
विश्वकर्मकृतैर्दिव्यैरभिप्रायैरलंकृताम्॥ ९

तां तदा द्वारकां दृष्ट्वा प्रभुर्नारायणो विभुः।
हृष्टः सर्वार्थसम्पन्नः प्रवेष्टुमुपचक्रमे॥ १०

सोऽपश्यद् वृक्षखण्डांश्च रम्यान् दृष्टिमनोहरान्।
द्वारकां प्रति दाशार्हश्चित्रितां विश्वकर्मणा॥ ११

पद्मखण्डाकुलाभिश्च हंससेवितवारिभिः।
गङ्गासिन्धुप्रकाशाभिः परिखाभिर्वृतां पुरीम्॥ १२

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! गरुड़पर बैठे हुए भगवान् श्रीकृष्णने द्वारकापुरीको देखा, जो देवलोकके समान शोभा पा रही थी। वहाँ चारों ओर समुद्रगर्जनाकी प्रतिध्वनि व्याप्त हो रही थी॥ १॥ उस पुरीमें जहाँ-तहाँ मणिमय पर्वत तथा यन्त्र सुशोभित थे। बहुत-से क्रीड़ागृह बने हुए थे। अनेकानेक उद्यान, श्रेष्ठ वन, छज्जे और चबूतरे शोभा दे रहे थे। श्रीकृष्णने इन सबको देखा॥ २॥ देवकीनन्दन श्रीकृष्ण जब द्वारकापुरीके समीप पहुँचे, तब देवराज इन्द्रने विश्वकर्माको बुलाकर इस प्रकार कहा— ॥ ३॥ 'शिल्पियोंमें श्रेष्ठ विश्वकर्मन्! यदि तुम मेरा प्रिय करना चाहते हो तो श्रीकृष्णकी प्रसन्नताके लिये पुनः द्वारकापुरीको पहलेसे भी अधिक मनोहर बना दो॥ ४॥ 'विबुधश्रेष्ठ! जैसी यह मेरी पुरी है, उसी प्रकार तुम द्वारकाको सैकड़ों उद्यानोंसे हरी-भरी तथा स्वर्गतुल्य मनोहारिणी बना दो॥ ५॥ 'तीनों लोकोंमें जो कुछ भी तुम्हें रत्नरूप दिखायी दे, उससे द्वारकापुरीको शीघ्र ही संयुक्त कर दो॥ ६॥ 'क्योंकि महाबली श्रीकृष्ण समस्त देवकार्योंके लिये सदा तैयार रहते हैं और घोर-से-घोर संग्रामोंमें भी प्रवेश कर जाते हैं'॥ ७॥ विश्वकर्माने इन्द्रके आदेशसे उस पुरीमें जाकर उसे सब ओरसे उसी प्रकार अलंकृत किया, जैसे देवराजकी अमरावतीपुरी सुसज्जित रहती है॥ ८॥ यादवोंके स्वामी गरुड़वाहन श्रीकृष्णने अपनी उस पुरीको विश्वकर्माद्वारा निर्मित दिव्य भावोंसे अलंकृत देखा॥ ९॥ उस समय उस तरह सजी हुई द्वारकाको देखकर सम्पूर्ण अर्थोंसे सम्पन्न सर्वव्यापी भगवान् नारायणने बड़ी प्रसन्नताके साथ उसमें प्रवेश आरम्भ किया॥ १०॥ विश्वकर्माद्वारा विचित्र शोभासे सम्पन्न की हुई द्वारकामें भगवान् श्रीकृष्णने बहुत-से रमणीय वृक्षखण्ड देखे, जो दृष्टि और मनको आकृष्ट कर लेते थे॥ ११॥ वह पुरी गङ्गा और सिन्धुके समान सुशोभित होनेवाली चौड़ी खाइयोंसे घिरी हुई थी। उनमें कमलोंके समूह भरे हुए थे तथा हंस उनके जलका सेवन करते थे॥ १२॥

प्राकारेणार्कवर्णेन शातकौम्भेन राजता।
चयमूर्ध्नि निविष्टेन द्यां यथैवाभ्रमालया॥ १३

काननैर्नन्दनप्रख्यैस्तथा चैत्ररथोपमैः।
बभौ चारुपरिक्षिप्ता द्वारका द्यौरिवाम्बुदैः॥ १४

बभौ रैवतकः शैलो रम्यसानुगुहाजिरः।
पूर्वस्यां दिशि लक्ष्मीवान् मणिकाञ्चनतोरणः॥ १५

दक्षिणस्यां लतावेष्टः पञ्चवर्णो विराजते।
इन्द्रकेतुप्रतीकाशः पश्चिमां दिशमाश्रितः।
सुकक्षो राजतः शैलश्चित्रपुष्पमहावनः॥ १६

उत्तरां दिशमत्यर्थं विभूषयति वेणुमान्।
मन्दराद्रिप्रतीकाशः पाण्डुरः पार्थिवर्षभ॥ १७

चित्रकं पञ्चवर्णं च पाञ्चजन्यं वनं महत्।
सर्वर्तुकवनं चैव भाति रैवतकं प्रति॥ १८

लतावेष्टितपर्यन्तं मेरुप्रभवनं महत्।
भाति भानुवनं चैव पुष्पकं च महद् वनम्॥ १९

अक्षकैर्बीजकैश्चैव मन्दारैश्चोपशोभितम्।
शतावर्तवनं चैव करवीराकरं तथा॥ २०

भाति चैत्ररथं चैव नन्दनं च वनं महत्।
रमणं भावनं चैवं वेणुमन्तं समन्ततः॥ २१

वैडूर्यपत्रैर्जलजैस्तदा मन्दाकिनी नदी।
भाति पुष्करिणी रम्या पूर्वस्यां दिशि भारत॥ २२

सानवो भूषितास्तत्र केशवस्य प्रियैषिभिः।
बहुभिर्देवगन्धर्वैश्चोदितैर्विश्वकर्मणा॥ २३

महानदी द्वारवतीं पञ्चाशद्भिर्महामुखैः।
प्रविष्टा पुण्यसलिला भावयन्ती समन्ततः॥ २४

अप्रमेयां महोत्सेधामगाधपरिखायुताम्।
प्राकारवरसम्पन्नां सुधापाण्डुरलेपनाम्॥ २५

ऊँचे टीलेपर बने हुए सुन्दर सुवर्णमय प्राकार (परकोटे)-से, जो सूर्यके सदृश प्रभापुञ्जसे परिपूर्ण था, घिरी हुई द्वारकापुरी घनमालासे घिरे हुए आकाशके समान शोभा पाती थी॥ १३॥ नन्दन और चैत्ररथ नामक वनोंके समान मनोहर काननोंसे भलीभाँति घिरी हुई द्वारकापुरी मेघोंसे घिरे हुए द्युलोककी भाँति सुशोभित हो रही थी॥ १४॥ द्वारकापुरीकी पूर्व दिशामें शोभासम्पन्न रैवतक पर्वत बड़ा ही मनोहर प्रतीत होता था। उसके शिखर, गुफा और आँगन सभी रमणीय थे। उसके बाहरी फाटक मणि एवं सुवर्णके बने हुए थे॥ १५॥ पुरीके दक्षिण भागमें लतावेष्ट नामक पर्वत शोभा पा रहा था, जो पाँच रंगका होनेके कारण इन्द्रध्वज-सा प्रतीत होता था। पश्चिम दिशामें सुकक्ष नामक रजत पर्वत था, जिसके ऊपर विचित्र पुष्पोंसे अलंकृत महान् वन सुशोभित हो रहा था॥ १६॥ नृपश्रेष्ठ! मन्दराचलके समान श्वेत वर्णवाला वेणुमान् पर्वत द्वारकाकी उत्तर दिशाको अत्यन्त शोभासम्पन्न बना रहा था॥ १७॥ रैवतक पर्वतके चारों ओर चित्रक, पञ्चवर्ण, विशाल पाञ्चजन्य तथा सर्वर्तुक नामक वन शोभा पा रहे थे॥ १८॥ लतावेष्ट पर्वतके चारों ओर मेरुप्रभ नामक महान् वन, भानुवन तथा पुष्पक नामक विशाल वन शोभा पा रहे थे॥ १९॥ सुकक्ष पर्वतके चारों ओर रुद्राक्षोंसे सुशोभित वन, बीजकवन, मन्दार वृक्षोंसे सुशोभित मन्दारवन, शतावर्तवन तथा करवीराकर नामक वन सुशोभित होते थे। वेणुमान् पर्वतके सब ओर चैत्ररथवन, नन्दन नामक महान् वन, रमणवन तथा भावन नामक वन शोभा पाते थे॥ २०-२१॥ भारत! वहाँ वैदूर्यमणिमय पत्रवाले कमलोंसे सुशोभित मन्दाकिनी नदी पुरीकी पूर्वदिशामें एक रमणीय पुष्करिणीके रूपमें शोभा पाती थी॥ २२॥ विश्वकर्मासे प्रेरित होकर भगवान् केशवका प्रिय चाहनेवाले बहुत-से देवगन्धर्व वहाँके पर्वतीय शिखरोंकी शोभा बढ़ाते थे॥ २३॥ पुण्यसलिला महानदी मन्दाकिनी पचास बड़े-बड़े स्रोतोंद्वारा द्वारकावासियोंको प्रसन्न करती हुई सब ओरसे उस पुरीमें प्रविष्ट हुई थी॥ २४॥ द्वारकापुरी कितनी बड़ी है, इसका कोई माप नहीं था। उसकी ऊँचाई भी बहुत अधिक थी। वह अगाध खाइयोंसे घिरी हुई थी। सुन्दर परकोटे उसे शोभासम्पन्न कर रहे थे। उस पुरीकी दीवारोंको चूनेसे लीपकर श्वेत बनाया गया था॥ २५॥

तीक्ष्णयन्त्रशतघ्नीभिर्हेमजालैश्च भूषिताम्।
आयसैश्च महाचक्रैर्ददर्श द्वारकां पुरीम्॥ २६

अष्टौ रथसहस्राणि नगरे किङ्किणीकिनाम्।
समुच्छ्रितपताकानि यथा देवपुरे तथा॥ २७

अष्टयोजनविस्तीर्णामचलां द्वादशायताम्।
द्विगुणोपनिवेशां च ददर्श द्वारकां पुरीम्॥ २८

अष्टमार्गमहारथ्यां महाषोडशचत्वराम्।
एवंमार्गपरिक्षिप्तां साक्षादुशनसा कृताम्॥ २९

स्त्रियोऽपि यस्यां युध्येरन् किमु वृष्णिमहारथाः।
व्यूहानामुत्तमा मार्गाः सप्त चैव महापथाः॥ ३०

तत्र वै विहिताः साक्षाद् विविधा विश्वकर्मणा।
तस्मिन् पुरवरश्रेष्ठे दाशार्हाणां यशस्विनाम्॥ ३१

वेश्मानि जहृषे दृष्ट्वा ततो देवकिनन्दनः।
काञ्चनैर्मणिसोपानैरुपेतानि नृहर्षणैः॥ ३२

भीमघोषमहाघोषैः प्रासादवरचत्वरैः।
समुच्छ्रितपताकानि पारिप्लववनानि च॥ ३३

काञ्चनाग्राणि भास्वन्ति प्रासादशिखराणि च।
गृहाणि रमणीयानि मेरुकूटनिभानि च॥ ३४

पाण्डुपाण्डुरशृङ्गैश्च शातकुम्भपरिष्कृतैः।
रत्नसानुगुहाशृङ्गैर्विचित्रैरिव पर्वतैः॥ ३५

पञ्चवर्णैः सुवर्णैश्च पुष्पवृष्टिसमप्रभैः।
पर्जन्यतुल्यनिर्घोषैर्नानारूपैरिवाद्रिभिः॥ ३६

भगवान्ने द्वारकापुरीको तीखे यन्त्र, शतघ्नी और सोनेकी जालियोंसे विभूषित देखा। वह लोहेके बड़े-बड़े चक्रोंसे सुरक्षित थी॥ २६॥ देवताओंके नगरकी भाँति द्वारकापुरीमें क्षुद्रघण्टिकाओंसे युक्त आठ हजार रथ शोभा पाते थे, जिनमें ऊँची उठी हुई पताकाएँ फहरा रही थीं॥ २७॥ द्वारकापुरीकी चौड़ाई आठ योजन थी और लम्बाई बारह योजन अर्थात् उसका सम्पूर्ण विस्तार छानबे योजन था। उसका उपनिवेश (समीपस्थ प्रदेश) उससे दुगुना अर्थात् एक सौ बानबे योजन विस्तृत था। श्रीकृष्णने उस अविचल द्वारकापुरीका दर्शन किया॥ २८॥ उसमें जानेके लिये आठ महामार्ग थे और सोलह बड़े-बड़े चौराहे बने थे। इस प्रकार विभिन्न मार्गोंसे परिष्कृत द्वारकापुरी साक्षात् शुक्राचार्यकी नीतिके अनुसार बनायी गयी थी॥ २९॥ उस पुरीमें रहकर स्त्रियाँ भी युद्ध कर सकती थीं; फिर साक्षात् वृष्णिवंशी महारथियोंकी तो बात ही क्या? उसमें व्यूहोंके उत्तम मार्ग हैं। सात बड़ी-बड़ी सड़कें हैं॥ ३०॥ वहाँ साक्षात् विश्वकर्माने उन विविध मार्गोंका निर्माण किया था। नगरोंमें श्रेष्ठ उस द्वारकापुरीमें यशस्वी दशार्हवंशियोंके महल देखकर देवकीनन्दन भगवान् श्रीकृष्णको बड़ी प्रसन्नता हुई। वे महल मनुष्योंको हर्ष प्रदान करनेवाली सोने और मणियोंकी सीढ़ियोंसे अलंकृत थे॥ ३१-३२॥ महान् एवं भयंकर घोषों, महलों तथा सुन्दर आँगनोंसे शोभा पानेवाले उन महलोंके ऊपर ऊँची-ऊँची पताकाएँ फहरा रही थीं। उन महलोंके भीतर लगे हुए उद्यानोंके वृक्ष हवासे झूमते रहते थे॥ ३३॥ उन महलोंके शिखर सोनेके कंगूरों या कलशोंसे सुशोभित हो उद्भासित होते रहते थे। वे गगनचुम्बी रमणीय भवन मेरुपर्वतके शिखरोंके समान प्रतीत होते थे॥ ३४॥ उन महलोंके शिखर श्वेतसे भी अधिक श्वेत थे। उनमें सोने मढ़े गये थे। वे रत्नमय शिखर गुफा और चोटियोंवाले विचित्र पर्वतोंके समान शोभा पाते थे॥ ३५॥ वे गृह पाँच प्रकारके रंगोंसे रँगे गये थे। कितने ही सुनहरे रंगसे सुशोभित थे। कुछ गृहोंकी कान्ति ऐसी जान पड़ती थी, मानो वहाँ फूलोंकी वर्षा हो रही हो। उन महलोंसे मेघोंकी गम्भीर गर्जनाके समान शब्द प्रकट होते रहते थे। वे बहुरंगे भवन अनेक रूपवाले पर्वतोंके समान जान पड़ते थे॥ ३६॥

दावाग्निज्वलितप्रख्यैर्निर्मितैर्विश्वकर्मणा।
आलिखद्भिरिवाकाशमतिचन्द्रार्कभास्वरैः ॥ ३७

तैर्दाशार्हैर्महाभागैर्बभासे तद्वनद्रुमैः।
वासुदेवेन्द्रपर्जन्यैर्गृहमेघैरलंकृता ॥ ३८

ददृशे द्वारका चारुमेघैर्द्यौरिव संवृता।
साक्षाद् भगवतो वेश्म विहितं विश्वकर्मणा ॥ ३९

ददृशे वासुदेवस्य चतुर्योजनमायतम्।
तावदेव च विस्तीर्णमप्रमेयमहाधनम् ॥ ४०

प्रासादवरसम्पन्नं युक्तं जगति पर्वतैः।
यच्चकार महाभागस्त्वष्टा वासवनोदितः ॥ ४१

प्रासादं चैव हेमाभं सर्वभूतमनोहरम् ॥ ४२

मेरोरिव गिरेः शृङ्गमुच्छ्रितं काञ्चनं महत्।
रुक्मिण्याः प्रवरं वासं विहितं विश्वकर्मणा ॥ ४३

सत्यभामा पुनर्वेश्म यदावसत पाण्डुरम्।
विचित्रमणिसोपानं तद् विदुर्भोगवानिति ॥ ४४

विमलादित्यवर्णाभिः पताकाभिरलंकृतम्।
व्यक्तसंजवनोद्देशो यश्चतुर्दिङ्महाध्वजः ॥ ४५

स च प्रासादमुख्योऽथ जाम्बवत्या विभूषितः।
प्रभयाभ्यभवत् सर्वांस्तानन्यो भास्करो यथा ॥ ४६

उद्यद्भास्करवर्णाभस्तयोरन्तरमाश्रितः ।
विश्वकर्मकृतो दिव्यः कैलासशिखरोपमः ॥ ४७

विश्वकर्माके बनाये हुए वे तेजस्वी भवन दावानलकी ज्वालाके समान देदीप्यमान होते थे। उन्हें देखकर ऐसा जान पड़ता था मानो वे आकाशमें सुनहरी रेखा खींच रहे हों। उनका प्रकाश चन्द्रमा और सूर्यसे भी बढ़कर था ॥ ३७ ॥ उन चित्रक आदि वनोंके वृक्षों तथा दशार्हवंशी महाभाग वीरों एवं गृहरूपी मेघोंसे अलंकृत द्वारकापुरी अत्यन्त शोभा पाती थी और मनोहर घनमालाओंसे घिरे हुए आकाशकी भाँति दिखायी देती थी। भगवान् श्रीकृष्ण ही वहाँ इन्द्र एवं पर्जन्यके रूपमें शोभा पाते थे। विश्वकर्माका बनाया हुआ साक्षात् भगवान् वासुदेवका भवन चार योजन लम्बा और उतना ही चौड़ा दिखायी देता था। उसमें कितना महान् धन लगा था, इसका अनुमान लगाना असम्भव है ॥ ३८—४० ॥ उस विशाल भवनके भीतर अनेकानेक सुन्दर महल और अट्टालिकाएँ बनी थीं। वह प्रासाद जगत्के सभी पर्वतीय दृश्योंसे युक्त था अथवा उसमें जगत्के सुप्रसिद्ध पर्वत क्रीड़ाके लिये कृत्रिम रूपसे बनाये गये थे। महाभाग विश्वकर्माने इन्द्रसे प्रेरित होकर उसका निर्माण किया था ॥ ४१ ॥ वह सुवर्णमय प्रासाद समस्त प्राणियोंके लिये मनोहर था। उसके ऊँचे शिखरपर सुवर्ण मढ़ा गया था; जिससे वह मेरु पर्वतके उत्तुङ्ग शृङ्गकी शोभा धारण करता था। विश्वकर्माने उस श्रेष्ठ प्रासादको महारानी रुक्मिणीके रहनेके लिये बनाया था ॥ ४२-४३ ॥ सत्यभामा जिस भवनमें निवास करती थीं, वह श्वेतवर्णका था। उसमें विचित्र मणियोंके सोपान बनाये गये थे। उसे सब प्रकारके भोगोंसे सम्पन्न समझा जाता था। निर्मल सूर्यके समान तेजस्विनी पताकाएँ उस मनोरम प्रासादकी शोभा बढ़ाती थीं। जिसके बाहर-भीतरका प्रदेश प्रतिक्षण अभिनव रूप-सौन्दर्यसे युक्त प्रतीत होता था और जिसमें चारों ओर बड़ी-बड़ी ध्वजाएँ फहरा रही थीं। उस मुख्य प्रासादको जाम्बवतीदेवी सुशोभित करती थीं, वह दूसरे सूर्यकी भाँति अन्य सब प्रासादोंको अपनी प्रभासे तिरस्कृत कर रहा था ॥ ४४—४६ ॥ उसकी कान्ति उदयकालके सूर्यकी प्रभाके समान थी। वह रुक्मिणी और सत्यभामाके प्रासादोंके बीचमें बना था। विश्वकर्माद्वारा बनाया गया वह दिव्य प्रासाद कैलास-शिखरके समान शोभा पाता था ॥ ४७ ॥

जाम्बूनद इवादीप्तः प्रदीप्तज्वलनो यथा।
सागरप्रतिमोऽतिष्ठन्मेरुरित्यभिविश्रुतः ॥ ४८

तस्मिन् गान्धारराजस्य दुहिता कुलशालिनी।
गान्धारी भरतश्रेष्ठ केशवेन निवेशिता ॥ ४९

पद्मकूल इति ख्यातं पद्मवर्णं महाप्रभम्।
सुभीमाया महाकूटं वेश्मातिरुचिरप्रभम् ॥ ५०

सूर्यप्रभस्तु प्रासादः सर्वकामगुणैर्युतः।
लक्ष्मणाया नृपश्रेष्ठ निर्दिष्टः शार्ङ्गधन्वना ॥ ५१

वैडूर्यमणिवर्णाभः प्रासादो हरितप्रभः।
यं विदुः सर्वभूतानि परमित्येव भारत ॥ ५२

वासं तं मित्रविन्दाया देवर्षिगणपूजितम्।
महिष्या वासुदेवस्य भूषणं तेषु वेश्मसु ॥ ५३

यस्तु प्रासादमुख्योऽत्र विहितो विश्वकर्मणा।
अतीव रम्यरम्योऽसौ धिष्ठितः पर्वतो यथा ॥ ५४

सुवार्ताया निवासः स प्रशस्तः सर्वदैवतैः।
महिष्या वासुदेवस्य केतुमानिति विश्रुतः ॥ ५५

यस्तु प्रासादमुख्यो वै यं त्वष्टा विदधे स्वयम्।
योजनायतविष्कम्भः सर्वरत्नमयः शुभः ॥ ५६

स श्रीमान् विरजा नाम व्यराजत् तत्र सुप्रभः।
उपस्थानगृहं यत्र केशवस्य महात्मनः ॥ ५७

तस्मिन् सुविहिताः सर्वे रुक्मदण्डाः पताकिनः।
सदने वासुदेवस्य मार्गसंजवनध्वजाः ॥ ५८

रत्नजालानि दिव्यानि तत्रैव च निवेशिताः।
आहृत्य यदुसिंहेन वैजयन्तोऽचलो महान् ॥ ५९

हंसकूटस्य यच्छृङ्गमिन्द्रद्युम्नसरः प्रति।
षष्टितालसमुत्सेधमर्धयोजनमायतम् ॥ ६०

सकिन्नरमहानागं तदप्यमिततेजसा।
पश्यतां सर्वभूतानामानीतं लोकविश्रुतम् ॥ ६१

भरतश्रेष्ठ! जो जाम्बूनद सुवर्ण तथा प्रज्वलित अग्निके समान देदीप्यमान था, विशालतामें जिसकी समुद्रसे उपमा दी जाती थी, जो मेरुके नामसे विख्यात होकर खड़ा था, उस महान् प्रासादमें गान्धारराजकी कुलीन कन्या नाग्नजिती सत्या अथवा गान्धारीको भगवान् श्रीकृष्णने ठहराया था॥ ४८-४९ ॥ पद्मकूल नामसे विख्यात, पद्मके समान वर्णवाला, अत्यन्त प्रकाशमान, महान् शिखरके समान ऊँचा और अत्यन्त रुचिर प्रभासे प्रकाशित जो भवन था, वह सुभीमादेवीका निवासस्थान बना था॥ ५० ॥ नृपश्रेष्ठ! जो प्रासाद समस्त मनोवाञ्छित गुणोंसे युक्त तथा सूर्यके समान प्रकाशमान था, उसे शार्ङ्गधन्वा श्रीकृष्णने लक्ष्मणाका आवास निश्चित किया था॥ ५१ ॥ भारत! जो हरितकान्तिसे प्रकाशित तथा वैदूर्यमणिकी-सी आभासे उद्भासित था, जिसे समस्त प्राणी सबसे उत्तम समझते थे, वह प्रासाद वासुदेवकी पटरानी मित्रविन्दाका निवास था। देवता तथा ऋषियोंके समुदाय भी उसकी भूरि-भूरि प्रशंसा करते थे। वह उन सभी भवनोंमें भूषणरूप था॥ ५२-५३ ॥ द्वारकामें विश्वकर्माद्वारा बनाया गया जो प्रमुख प्रासाद था, जो अत्यन्त रमणीयसे भी रमणीय प्रतीत होता था और पर्वतके समान खड़ा था, वह श्रीकृष्णमहिषी सुवार्ताका निवासभवन था। सम्पूर्ण देवता उसकी प्रशंसा करते थे। वह केतुमान् नामसे विख्यात था॥ ५४-५५ ॥ जो सभी प्रासादोंमें श्रेष्ठ था, जिसे साक्षात् विश्वकर्माने बनाया था, जिसकी लम्बाई-चौड़ाई एक-एक योजन थी, जो सभी रत्नोंद्वारा निर्मित एवं शुभ-स्वरूप था, वह उत्तम प्रभासे युक्त कान्तिमान् प्रासाद वहाँ 'विरजा' नामसे विख्यात होकर बड़ी शोभा पा रहा था। उसीमें महात्मा केशवका उपस्थान-गृह था॥ ५६-५७ ॥ वसुदेवनन्दन श्रीकृष्णके उस सुन्दर सदनमें जो मार्गका ज्ञान करानेवाले ध्वज लगे थे, उन सबके दण्ड सुवर्णमय बनाये गये थे तथा उनपर पताकाएँ फहराती रहती थीं। यदुसिंह श्रीकृष्णने वहाँ दिव्य रत्नोंके समूह संचित किये थे तथा वैजयन्त नामक महान् पर्वत वहाँ लाकर स्थापित किया था॥ ५८-५९ ॥ इन्द्रद्युम्न सरोवरके पास हंसकूट पर्वतका जो शिखर था, वह साठ ताड़के बराबर ऊँचा और आधा योजन चौड़ा था॥ ६० ॥ अमित तेजस्वी विश्वकर्मा समस्त प्राणियोंके देखते-देखते उस विश्वविख्यात पर्वतशिखरको किन्नर और बड़े-बड़े नागोंसहित वहाँ ले आये थे॥ ६१ ॥

आदित्यपथगं यत् तु मेरोः शिखरमुत्तमम्।
जाम्बूनदमयं दिव्यं त्रिषु लोकेषु विश्रुतम्॥ ६२

तदप्युत्पाट्य कृष्णार्थमानीतं विश्वकर्मणा।
भ्राजमानमतीवाग्र्यं सर्वौषधिसमन्वितम्॥ ६३

तदिन्द्रवचनात् त्वष्टा कार्यहेतोः समानयत्।
पारिजातश्च तत्रैव केशवेनाहृतः स्वयम्॥ ६४

नीयमाने तु तत्रासीद् युद्धमद्भुतकर्मणः।
कृष्णस्य येऽभ्यरक्षंस्तु देवाः पादपमुत्तमम्॥ ६५

पुण्डरीकशतैर्जुष्टं विमानैश्च हिरण्मयैः।
विहिता वासुदेवार्थं रत्नपुष्पफलद्रुमाः॥ ६६

पद्मखण्डजलोपेता रत्नसौगन्धिकोत्पलाः।
मणिहेमप्लवाकीर्णाः पुष्करिण्यः सरांसि च॥ ६७

तासां परमकूलानि शोभयन्ति महाद्रुमाः।
शालास्तालाः कदम्बाश्च शतशाखाश्च रौहिणाः॥ ६८

ये च हैमवता वृक्षा ये च मेरुरुहास्तथा।
आहृत्य यदुसिंहार्थं विहिता विश्वकर्मणा॥ ६९

रक्तपीतारुणश्यामाः श्वेतपुष्पाश्च पादपाः।
सर्वर्तुफलसम्पन्नास्तेषु काननसन्धिषु॥ ७०

समकूलजलोपेताः शान्तशर्करवालुकाः।
तस्मिन् पुरवरे नद्यः प्रसन्नसलिला ह्रदाः॥ ७१

पुष्पाकुलजलोपेता नानाद्रुमलताकुलाः।
अपराश्चाभवन् नद्यो हेमशर्करवालुकाः॥ ७२

मत्तबर्हिणसंघैश्च कोकिलैश्च सदामदैः।
बभूवुः परमोपेतास्तस्यां पुर्यां च पादपाः॥ ७३

तत्रैव गजयूथानि पुरे गोमहिषास्तथा।
निवासश्च कृतस्तत्र वराहमृगपक्षिभिः॥ ७४

पुर्यां तस्यां तु रम्यायां प्राकारो वै हिरण्मयः।
व्यक्तः किष्कुशतोत्सेधो विहितो विश्वकर्मणा॥ ७५

मेरुपर्वतका उत्तम शिखर जो सूर्यके मार्गतक पहुँचा हुआ है तथा स्वरूपसे जाम्बूनदमय, दिव्य एवं त्रिभुवनविख्यात है, उसे भी श्रीकृष्णके लिये विश्वकर्मा उखाड़ लाये थे। वह सब प्रकारकी ओषधियोंसे अलंकृत, प्रकाशमान तथा अत्यन्त उत्तम था॥ ६२-६३॥ विश्वकर्मा इन्द्रके कहनेसे कार्यवश उसे वहाँ ले आये थे। वहीं साक्षात् श्रीकृष्ण पारिजातका वृक्ष भी ले आये थे॥ ६४॥ पारिजातके लाये जाते समय अद्भुतकर्मा श्रीकृष्णका उन देवताओंके साथ घोर युद्ध हुआ, जो उस उत्तम वृक्षकी रक्षा कर रहे थे॥ ६५॥ वह वृक्ष सैकड़ों कमलोंसे पूजित तथा सुवर्णमय विमानोंसे सेवित एवं सुरक्षित था। विश्वकर्माने श्रीकृष्णके लिये रत्नमय फूल और फल देनेवाले वृक्षोंका निर्माण किया था॥ ६६॥ उन्होंने बहुत-सी पोखरियाँ और सरोवर भी बनाये थे, जिनके जल कमलसमूहोंसे सुशोभित थे, उनमें रत्नमय सौगन्धिक कमल खिले हुए थे। मणि एवं सुवर्णसे जटित नौकाएँ उनमें सब ओर व्याप्त थीं॥ ६७॥ उन पुष्करिणियोंके उत्तम तटोंको बड़े-बड़े वृक्ष सुशोभित करते थे। शाल, ताल, कदम्ब, सैकड़ों शाखाओंवाले वटवृक्ष तथा जो हिमालय और मेरुपर्वतपर होनेवाले वृक्ष हैं, उन सबको विश्वकर्माने वहाँसे लाकर यदुसिंह श्रीकृष्णकी प्रसन्नताके लिये द्वारकामें स्थापित कर दिया था॥ ६८-६९॥ वे वृक्ष लाल, पीले, अरुण और श्याम रंगके थे, उनके फूल श्वेतवर्णके थे। वहाँ वन-उपवनोंकी संधियोंमें जो वृक्ष लगे थे, वे सभी ऋतुओंके फलोंसे सम्पन्न थे॥ ७०॥ उस श्रेष्ठ नगरमें जो नदियाँ थीं, वे समान तट और जलसे सुशोभित थीं, उनके कंकड़ और बालू नीचे बैठ गये थे, वहाँ जो ह्रद (कुण्ड या जलाशय) थे, उनका जल बहुत स्वच्छ था॥ ७१॥ वहाँ जो दूसरी नदियाँ थीं, उनके बालू और कंकड़ सुवर्णमय थे तथा वे पुष्पवासित जलसे भरी हुई थीं। उनके तटोंपर नाना प्रकारके वृक्ष और लताएँ फैली हुई थीं॥ ७२॥ उस पुरीमें जो-जो वृक्ष थे, वे मदमत्त मयूरों तथा सदा मतवाले बने रहनेवाले कोकिलोंसे परम शोभायमान थे॥ ७३॥ उस द्वारकापुरीमें ही हाथियोंके यूथ और गाय-भैंसोंके झुंड भी रहते थे। वराहों, मृगों और पक्षियोंने भी वहाँ अपना निवास बना रखा था॥ ७४॥ उस रमणीय पुरीका परकोटा स्पष्ट ही सोनेका बना हुआ था। विश्वकर्माने उसे सौ हाथ ऊँचा बनाया था॥ ७५॥

अतीव रम्यः सोऽथासीद् वेष्टितः पर्वतो यथा।
ते च ते च महाशैलाः सरितश्च सरांसि च।
परिक्षिप्तानि भौमेन वनान्युपवनानि च॥ ७६

वह परकोटा बहुत ही सुन्दर एवं रमणीय था और घेरा बने हुए पर्वतके समान जान पड़ता था। विश्वकर्माने उस परकोटेके द्वारा पूर्वोक्त बड़े-बड़े पर्वतों, सरिताओं, सरोवरों, वनों और उपवनोंको भी घेर रखा था॥ ७६॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे विष्णुपर्वणि द्वारकाविशेषनिर्माणं नामाष्टनवतितमोऽध्यायः॥ ९८॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत विष्णुपर्वमें द्वारकाका विशेषरूपसे निर्माणविषयक अट्ठानबेवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ९८॥

नवनवतितमोऽध्यायः

श्रीकृष्णका द्वारका तथा अन्तःपुरमें प्रवेश और मणिपर्वत एवं पारिजातको यथोचित स्थानमें स्थापित करना

वैशम्पायन उवाच

एवमालोकयानः स द्वारकां वृषभेक्षणः।
अपश्यत् स्वगृहं कृष्णः प्रासादशतशोभितम्॥ १

मणिस्तम्भसहस्राणामयुतैर्विवृतं शतैः।
तोरणैर्ज्वलनप्रख्यैर्मणिविद्रुमराजतैः॥ २

तत्र तत्र प्रभासद्भिश्चित्रकाञ्चनवेदिकैः।
प्रासादस्तत्र सुमहान् कृष्णोपस्थानिकोऽभवत्॥ ३

स्फाटिकस्तम्भविवृतो विस्तीर्णः सर्वकाञ्चनः।
पद्माकुलजलोपेता रक्तसौगन्धिकोत्पलाः॥ ४

मणिहेमनिभाश्चित्रा रत्नसोपानभूषिताः।
मत्तबर्हिणजुष्टाश्च कोकिलैश्च सदामदैः॥ ५

बभूवुः परमोपेता वाप्यश्च विकचोत्पलाः।
विश्वकर्मकृतः शैलः प्राकारस्तस्य वेश्मनः॥ ६

व्यक्तकिष्कुशतोत्सेधः परिखापरिवेष्टितः।
तद् गृहं वृष्णिसिंहस्य निर्मितं विश्वकर्मणा॥ ७

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! वृषभके समान विशाल नेत्रोंवाले श्रीकृष्णने इस प्रकार द्वारकाका निरीक्षण करते हुए अपने आवास-स्थानको देखा, जो सैकड़ों प्रासादोंसे सुशोभित था॥ १॥ उसमें मणियोंके बने हुए लाखों-करोड़ों खम्भे लगे थे, जिनकी प्रभासे वहाँका सब कुछ सुस्पष्ट दिखायी देता था। वहाँके बाहरी फाटक मणि-मूँगे एवं चाँदीके बने हुए थे और प्रज्वलित अग्निके समान उद्भासित होते थे॥ २॥ जहाँ-तहाँ प्रकाशित होनेवाले उन फाटकोंमें सोनेकी विचित्र वेदिकाएँ बनी हुई थीं। उन सबसे उद्दीप्त दिखायी देनेवाला श्रीकृष्णका वह महान् प्रासाद उनका उपस्थान-गृह था॥ ३॥ उसमें स्फटिकमणिके खम्भे लगे हुए थे, जिनसे वह प्रासाद प्रकाशित होता था। उसका विस्तार बहुत बड़ा था। वहाँकी सभी वस्तुएँ सोनेकी बनी हुई थीं, वहाँकी बावड़ियोंका जल कमलोंसे आच्छादित था, उनमें लाल रंगके सौगन्धिक कमल खिले हुए थे॥ ४॥ वे बावड़ियाँ मणि और सुवर्णके समान विचित्र शोभासे सम्पन्न दिखायी देती थीं, रत्नमयी सीढ़ियोंसे अलंकृत थीं, मतवाले मोर और सदा मदमत्त रहनेवाले कोकिल उनका सेवन करते थे, विकसित कमलोंसे आच्छादित होनेके कारण वे उत्तम शोभासे सम्पन्न हो रही थीं। श्रीकृष्णके उस भवनका परकोटा विश्वकर्माने प्रस्तरसे बनाया था। उसकी ऊँचाई सौ हाथकी थी और वह खाइयोंसे घिरा हुआ था। वृष्णिवंशके सिंह श्रीकृष्णके उस भवनका निर्माण साक्षात् विश्वकर्माने किया था॥ ५—७॥

महेन्द्रसदृशं वेश्म समन्तादर्धयोजनम्।
ततस्तं पाण्डुरं शौरिर्मूर्ध्नि तिष्ठन् गरुत्मतः॥ ८
प्रीतः शङ्खमुपाध्मासीद् द्विषतां रोमहर्षणम्।
तस्य शङ्खस्य शब्देन सागरश्चुक्षुभे भृशम्।
ररास च नभः कृत्स्नं तच्चित्रमभवत् तदा॥ ९
पाञ्चजन्यस्य निर्घोषं संश्रुत्य कुकुरान्धकाः।
विशोकाः समपद्यन्त गरुडस्य च दर्शनात्॥ १०
शङ्खचक्रगदापाणिं गरुडस्योपरि स्थितम्।
दृष्ट्वा जहृषिरे पौरा भास्करोपमतेजसम्॥ ११
ततस्तूर्यप्रणादश्च भेरीणां च महास्वनाः।
जज्ञिरे सिंहनादाश्च सर्वेषां पुरवासिनाम्॥ १२
ततस्ते सर्वदाशार्हाः सर्वे च कुकुरान्धकाः।
प्रीयमाणाः समाजग्मुरालोक्य मधुसूदनम्॥ १३
वासुदेवं पुरस्कृत्य शङ्खतूर्यरवैः सह।
उग्रसेनो ययौ राजा वसुदेवनिवेशनम्॥ १४
आनन्दिनी पर्यचरत् स्वेषु वेश्मसु देवकी।
रोहिणी च यशोदा च आहुकस्य च याः स्त्रियः॥ १५
ततः कृष्णः सुपर्णेन स्वं निवेशनमभ्यगात्।
चचार च यथोद्देशमीश्वरानुचरो हरिः॥ १६
अवतीर्य गृहद्वारि कृष्णस्तु यदुनन्दनः।
यथार्हं पूजयामास यादवान् यादवर्षभः॥ १७
रामाहुकगदाक्रूरप्रद्युम्नादिभिरर्चितः।
प्रविवेश गृहं शौरिरादाय मणिपर्वतम्॥ १८
तं च शक्रस्य दयितं पारिजातं महाद्रुमम्।
प्रवेशयामास गृहं प्रद्युम्नो रुक्मिणीसुतः॥ १९
तेऽन्योन्यं ददृशुर्वीरा देहबन्धानमानुषान्।
पारिजातप्रभावेण ततो मुमुदिरे जनाः॥ २०
तैः स्तूयमानो गोविन्दः प्रहृष्टैर्यादवर्षभैः।
प्रविवेश गृहं श्रीमान् विहितं विश्वकर्मणा॥ २१

सब ओरसे आधा योजन विस्तृत वह श्रीकृष्णका महल देवराज इन्द्रके भवन-सा मनोहर था। तदनन्तर गरुड़के ऊपर बैठे हुए भगवान् श्रीकृष्णने मन-ही-मन प्रसन्न होकर श्वेतवर्णवाले अपने उस पाञ्चजन्य शङ्खको बजाया, जो शत्रुओंके रोंगटे खड़े कर देनेवाला था। उस शङ्खके शब्दसे समुद्र विक्षुब्ध हो उठा तथा सम्पूर्ण आकाशमण्डल गूँजने लगा, उस समय वहाँ यह अद्भुत बात हुई॥ ८-९॥ पाञ्चजन्यका गम्भीर घोष सुनकर और गरुड़का दर्शन पाकर कुकुर तथा अन्धकवंशी यादव शोकरहित हो गये॥ १०॥ भगवान् श्रीकृष्णके हाथोंमें शङ्ख, चक्र और गदा आदि आयुध सुशोभित थे। वे गरुड़के ऊपर बैठे थे। उनका तेज भगवान् भास्करके समान था। उन्हें देखकर समस्त पुरवासियोंको बड़ा हर्ष हुआ॥ ११॥ तदनन्तर तुरही और भेरियाँ बज उठीं, उनकी आवाज बहुत दूरतक फैल गयी, फिर समस्त पुरवासी भी सिंहनाद कर उठे॥ १२॥ तत्पश्चात् सभी दशार्हवंशी यादव तथा कुकुर और अन्धकवंशके सब लोग भगवान् मधुसूदनका दर्शन करके बड़े प्रसन्न हुए और सभी उनकी अगवानीके लिये आ गये॥ १३॥ राजा उग्रसेन भगवान् वासुदेवको आगे करके शङ्ख और तूर्य आदि वाद्योंकी ध्वनिके साथ वसुदेवके महलतक उन्हें पहुँचानेके लिये गये॥ १४॥ वहाँ आनन्दमें डूबी हुई देवकी, रोहिणी, यशोदा तथा उग्रसेनकी रानियोंने अपने-अपने भवनोंमें भगवान् श्रीकृष्णका विशेष सत्कार किया॥ १५॥ तदनन्तर श्रीकृष्ण गरुड़के द्वारा अपने महलमें गये। इन्द्र आदि ऐश्वर्यशाली देवता जिनके अनुचर हैं, वे श्रीहरि अपने अभीष्ट स्थानपर जा पहुँचे॥ १६॥ घरके मुख्य द्वारपर उतरकर यादवशिरोमणि यदुनन्दन श्रीकृष्णने उन यादवोंका यथायोग्य सत्कार किया॥ १७॥ बलराम, उग्रसेन, गद, अक्रूर और प्रद्युम्न आदिसे सम्मानित हो श्रीकृष्णने अपने गृहमें प्रवेश किया। उस समय रुक्मिणीनन्दन प्रद्युम्नने मणिपर्वत तथा इन्द्रके प्रिय महान् वृक्ष पारिजातको लेकर भगवान्के महलमें पहुँचा दिया॥ १८-१९॥ द्वारकावासी वीरोंने वहाँ पारिजात वृक्षके प्रभावसे एक-दूसरेके देह-सम्बन्धको अमानुष (दिव्य) देखा, इससे उन्हें बड़ा हर्ष हुआ॥ २०॥ हर्षमें भरे हुए वे यादवशिरोमणि वीर उन भगवान् गोविन्दकी स्तुति करने लगे। उनकी स्तुति सुनते हुए वे श्रीमान् भगवान् विश्वकर्माके बनाये हुए उस गृहमें प्रविष्ट हुए॥ २१॥

ततोऽन्तःपुरमध्ये तं सशृङ्गमणिपर्वतम्।
न्यवेशयदमेयात्मा वृष्णिभिः सहितोऽच्युतः॥ २२

तं च दिव्यं द्रुमश्रेष्ठं पारिजातममित्रजित्।
अर्च्यमर्चितमव्यग्रमिष्टे देशे न्यवेशयत्॥ २३

अनुज्ञाप्य ततो ज्ञातीन् केशवः परवीरहा।
ताः स्त्रियः पूजयामास संहृता नरकेण याः॥ २४

वस्त्रैराभरणैर्दिव्यैर्दासीभिर्धनसञ्चयैः।
हारैश्चन्द्रांशुसंकाशैर्मणिभिश्च महाप्रभैः॥ २५

पूर्वमभ्यर्चिताश्चैव वसुदेवेन ताः स्त्रियः।
देवक्या सह रोहिण्यां रेवत्या चाहुकेन च॥ २६

सत्यभामोत्तमा स्त्रीणां सौभाग्येनाभवत् तदा।
कुटुम्बस्येश्वरी त्वासीद् रुक्मिणी भीष्मकात्मजा॥ २७

तासां यथार्हहर्म्याणि प्रासादशिखराणि च।
आदिदेश गृहान् कृष्णः पारिबर्हांश्च पुष्कलान्॥ २८

तदनन्तर अमेय आत्मबलसे सम्पन्न शत्रुविजयी भगवान् अच्युतने वृष्णिवंशियोंको साथ लेकर शिखरसहित मणिपर्वतको अन्तःपुरमें रखा तथा उस दिव्य, पूज्य एवं पूजित वृक्षप्रवर पारिजातको भी शान्तभावसे अभीष्ट स्थानमें स्थापित कर दिया॥ २२-२३॥ तत्पश्चात् शत्रुवीरोंका संहार करनेवाले केशवने समस्त भाई-बन्धुओंकी आज्ञा ले उन सब स्त्रियोंका समादर किया, जो नरकासुर-द्वारा हरकर लायी गयी थीं॥ २४॥ दिव्य वस्त्र, दिव्य आभूषण, दासीगण, धनकी राशि, चन्द्रकिरणोंके समान श्वेत हीरकहार तथा महान् प्रभापुञ्जसे प्रकाशित मणियोंद्वारा श्रीहरिने उनका सत्कार किया॥ २५॥ उनसे भी पहले वसुदेवजी, देवकी, रोहिणी, रेवती तथा उग्रसेनने भी उन सबका समादर किया था॥ २६॥ उस समय सौभाग्यकी दृष्टिसे सत्यभामा सभी स्त्रियोंमें श्रेष्ठ मानी गयी; परंतु कुटुम्बकी स्वामिनी तो भीष्मकनन्दिनी महारानी रुक्मिणी ही थीं॥ २७॥ श्रीकृष्णने उन सब रानियोंको यथायोग्य महल, अटारी, प्रासादशिखर, गृह तथा बहुत-से उपहार अर्पित किये॥ २८॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे विष्णुपर्वणि द्वारकाप्रवेशनं नाम नवनवतितमोऽध्यायः॥ ९९॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत विष्णुपर्वमें द्वारकाप्रवेशविषयक निन्यानबेवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ९९॥

शततमोऽध्यायः

श्रीकृष्णका समस्त यादवोंसे मिलकर उन्हें सम्मानित करनेके लिये सभामें बुलाना

वैशम्पायन उवाच

ततः सम्पूज्य गरुडं वासुदेवोऽनुमान्य च।
सखिवच्चोपगृह्यैनमनुजज्ञे गृहं प्रति॥ १

सोऽनुज्ञातो हि सत्कृत्य प्रणम्य च जनार्दनम्।
ऊर्ध्वमाचक्रमे पक्षी यथेष्टं गगनेचरः॥ २

स पक्षवातसंक्षुब्धं समुद्रं मकरालयम्।
कृत्वा वेगेन महता ययौ पूर्वमहोदधिम्॥ ३

कृत्यकाले उपस्थास्य इत्युक्त्वा गरुडे गते।
कृष्णो ददर्श पितरं वृद्धमानकदुन्दुभिम्॥ ४

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! तदनन्तर भगवान् वासुदेवने गरुड़की पूजा और समादर करके उन्हें एक मित्रकी भाँति अपनाकर घर लौटनेकी आज्ञा दी॥ १॥ आकाशचारी पक्षी गरुड़ सत्कारपूर्वक जानेकी आज्ञा पाकर भगवान् जनार्दनको प्रणाम करके अपनी इच्छाके अनुसार ऊपरको उड़े॥ २॥ वे अपने पंखोंकी हवासे मकरालय समुद्रको विक्षुब्ध करके बड़े वेगसे पूर्ववर्ती महासागरकी ओर चले॥ ३॥ 'आवश्यकताके समय मैं पुनः उपस्थित हो जाऊँगा' ऐसा कहकर जब गरुड़ चले गये, तब श्रीकृष्णने अपने बूढ़े पिता आनकदुन्दुभि (वसुदेव)-का दर्शन किया॥ ४॥

उग्रसेनं च राजानं बलदेवं स सात्यकिम्।
काश्यं सान्दीपनिं चैव ब्रह्मगार्ग्यं तथैव च॥ ५

अन्यांश्च वृद्धान् वृष्णीनां तांश्च भोजान्धकांस्तथा।
रत्नप्रवेकैर्दाशार्हान् वीर्यलब्धैस्तथार्चयत्॥ ६

हता ब्रह्मद्विषः सर्वे जयन्त्यन्धकवृष्णयः।
रणात् प्रतिनिवृत्तोऽयमक्षतो मधुसूदनः॥ ७

इति चत्वररथ्यासु द्वारवत्यां सुपूजितः।
चाक्रिको घोषयामास पुरुषो मृष्टकुण्डलः॥ ८

ततः सान्दीपनिं पूर्वमभिगम्य जनार्दनः।
ववन्दे वृष्णिनृपतिमाहुकं विनयान्वितः॥ ९

तथाश्रुपरिपूर्णाक्षमानन्दागतचेतसम्।
ववन्दे सह रामेण पितरं वासवानुजः॥ १०

उपगम्य तथा शेषान् सत्कृत्य च यथार्हतः।
सर्वेषां नाम जग्राह दाशार्हाणामधोक्षजः॥ ११

ततः सर्वाणि दिव्यानि सर्वरत्नमयानि च।
आसनाग्र्याणि विविशुरुपेन्द्रप्रमुखास्तदा॥ १२

ततस्तद्धनमक्षय्यं किङ्करैर्यत्समाहृतम्।
तत्सभामानयामासुः पुरुषाः कृष्णशासनात्॥ १३

ततः सम्मानयामास दाशार्हांश्च यदूत्तमः।
सर्वान् दुन्दुभिशब्देन पूजयिष्यञ्जनार्दनः॥ १४

तामासनवतीं रम्यां मणिविद्रुमतोरणाम्।
सभां सर्वदशार्हास्ते विविशुः कृष्णशासनात्॥ १५

ततः पुरुषसिंहैर्या यदुभिः सर्वतो वृता।
सर्वार्थगुणसम्पन्ना सा सभा भरतर्षभ।
शुशुभेऽभ्यधिकं शुभ्रा सिंहैर्गिरिगुहा यथा॥ १६

तत्पश्चात् वे राजा उग्रसेन, भाई बलदेव, सात्यकि, काश्यदेशमें उत्पन्न हुए गुरु सान्दीपनि तथा ब्रह्मगार्ग्यसे भी मिले॥ ५॥ फिर दूसरे-दूसरे बड़े-बूढ़े वृष्णिवंशियों, भोजों और अन्धकोंसे भी उन्होंने भेंट की। तत्पश्चात् अपने पराक्रमद्वारा प्राप्त हुए रत्नसमूहोंसे उन्होंने समस्त यादवोंका सत्कार किया॥ ६॥ समस्त ब्रह्मद्रोही असुर मारे गये। अन्धक और वृष्णिवंशके वीरोंकी विजय हुई तथा ये भगवान् मधुसूदन युद्धसे सकुशल लौट आये, इनके शरीरपर कहीं कोई चोट नहीं आयी है॥ ७॥ इस प्रकार विशुद्ध सोनेके कुण्डलोंसे अलंकृत तथा राजाज्ञा घोषित करनेवाला चाक्रिक पुरुष भलीभाँति सम्मानित हो द्वारकाके चौराहों और सड़कोंपर राजघोषणा सुनाने लगा॥ ८॥ तत्पश्चात् विनयशील जनार्दनने पहले गुरु सान्दीपनिके पास जा उनके चरण छूकर फिर वृष्णिवंशी नरेश राजा उग्रसेनको प्रणाम किया॥ ९॥ इसके बाद इन्द्रके छोटे भाई श्रीकृष्णने बलरामजीके साथ जाकर पिताके चरणोंमें प्रणाम किया। उस समय पिता वसुदेवके नेत्रोंमें प्रेमके आँसू भर आये और उनका हृदय आनन्दके समुद्रमें निमग्न हो गया॥ १०॥ फिर शेष यादवोंके पास जाकर उनका यथायोग्य सत्कार करके भगवान् श्रीकृष्णने सभी दशार्हवंशियोंके नाम लेकर उन्हें बुलाया॥ ११॥ तब श्रीकृष्ण आदि सब यादव उस समय उन सभी सर्वरत्नमय दिव्य एवं श्रेष्ठ आसनोंपर बैठे॥ १२॥ तदनन्तर किङ्कर नामक राक्षस जिसे ले आये थे, उस अक्षय धनको श्रीकृष्णकी आज्ञासे सेवकगण सभामें ले आये॥ १३॥ इसके बाद यदुकुलतिलक जनार्दनने समस्त दाशार्होंका दुन्दुभिनादके द्वारा पूजन करते हुए उन सबका सम्मान किया॥ १४॥ श्रीकृष्णकी आज्ञासे वे समस्त यादव उस रमणीय सभामें प्रविष्ट हुए, जिसमें सदस्योंके बैठनेके लिये आसन सजाये गये थे तथा जिसके बाहरी दरवाजे मणि और मूँगोंके बने हुए थे॥ १५॥ भरतभूषण! वह शुभ सभा सब ओरसे पुरुषसिंह यादवोंद्वारा भरी हुई एवं सभी पदार्थों और गुणोंसे सम्पन्न थी। जैसे सिंहोंसे पर्वतकी गुफा सुशोभित होती है, उसी प्रकार उन यादवोंसे उस सभाकी अधिकाधिक शोभा हो रही थी॥ १६॥

रामेण सह गोविन्दः काञ्चनं महदासनम्।
उग्रसेनं पुरस्कृत्य भोजवृष्णिपुरस्कृतः॥ १७

तत्रोपविष्टांस्तान् वीरान् यथाप्रीति यथावयः।
समाभाष्य यदुश्रेष्ठानुवाच पुरुषोत्तमः॥ १८

राजा उग्रसेन तथा भोज और वृष्णिवंशके श्रेष्ठ पुरुषोंको अपने आगे रखकर बलरामसहित भगवान् श्रीकृष्ण सुवर्णके बने हुए विशाल सिंहासनपर आसीन थे॥ १७॥ वहाँ बैठे हुए उन यदुश्रेष्ठ वीरोंको उनकी अवस्था और प्रीतिके अनुसार सम्बोधित करके पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण उनसे इस प्रकार बोले॥ १८॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे विष्णुपर्वणि सभाप्रवेशनं नाम शततमोऽध्यायः॥ १००॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत विष्णुपर्वमें सभाप्रवेशविषयक सौवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १००॥

एकाधिकशततमोऽध्यायः

श्रीकृष्णद्वारा यादवोंका सत्कार तथा नारदजीका यादवोंकी सभामें श्रीकृष्णके प्रभावका वर्णन करना

श्रीकृष्ण उवाच

भवतां पुण्यकीर्तीनां तपोबलसमाधिभिः।
अपध्यानाच्च पापात्मा भौमः स नरको हतः॥ १

मोक्षितं बन्धनाद् गुप्तं कन्यान्तःपुरमुत्तमम्।
मणिपर्वतमुत्पाट्य शिखरं चैतदाहृतम्॥ २

अयं धनौघः सुमहान् किङ्करैराहृतो मम।
ईशा भवन्तो द्रव्यस्य तानुक्त्वा विरराम ह॥ ३

तच्छ्रुत्वा वासुदेवस्य भोजवृष्ण्यन्धका वचः।
जहृषुर्हृष्टरोमाणः पूजयन्तो जनार्दनम्॥ ४

ऊचुश्चैनं नृवीरास्ते कृताञ्जलिपुटास्ततः।
नैतच्चित्रं महाबाहो त्वयि देवकिनन्दने॥ ५

यत्कृत्वा दुष्करं कर्म देवैरपि दुरासदम्।
लालयेः स्वजनान् भोगै रत्नैश्च स्वयमर्जितैः॥ ६

ततः सर्वदशार्हाणामाहुकस्य च याः स्त्रियः।
प्रीयमाणाः समाजग्मुर्वासुदेवदिदृक्षया॥ ७

श्रीकृष्णने कहा—यादवो! आप सब लोग पवित्र कीर्तिवाले हैं, आपकी तपस्या, बल और एकाग्रतासे तथा आपके द्वारा किये गये अनिष्टचिन्तनसे भूमिपुत्र पापात्मा नरकासुर मारा गया॥ १॥ उसके यहाँ जो सुरक्षित कन्याओंका उत्तम अन्तःपुर था, उसे मैंने बन्धनसे मुक्त किया तथा मणिपर्वतके इस शिखरको उखाड़कर भी मैं यहाँ साथ लेता आया हूँ॥ २॥ किङ्कर नामक राक्षसोंने जिसे मेरे यहाँ पहुँचाया है, वही यह महान् धनराशि आपलोगोंके समक्ष है। आप सभी इस धनके स्वामी हैं। उनसे ऐसा कहकर भगवान् चुप हो गये॥ ३॥ भगवान् वासुदेवका यह वचन सुनकर भोज, वृष्णि और अन्धकवंशके लोग हर्षमें भर गये। उनके शरीरमें रोमाञ्च हो आया और वे नरवीर भगवान् श्रीकृष्णकी प्रशंसा करते हुए उनसे हाथ जोड़कर बोले—'महाबाहो! आप देवकीनन्दनमें ऐसी उदारताका होना आश्चर्यकी बात नहीं है, जो देवताओंके लिये भी दुर्लभ है ऐसा दुष्कर कर्म करके आप अपने ही द्वारा उपार्जित रत्नों और भोगोंसे हम स्वजनोंका लालन करते हैं'॥ ४—६॥ तदनन्तर सब दशार्हकुलकी स्त्रियाँ तथा राजा उग्रसेनकी रानियाँ बड़ी प्रसन्नताके साथ भगवान् वासुदेवको देखनेके लिये आयीं॥ ७॥

देवकीसप्तमा देव्यो रोहिणी च शुभानना।
ददृशुः कृष्णमासीनं रामं चैव महाभुजम्॥ ८
तौ तु पूर्वमतिक्रम्य रोहिणीमभिवाद्य च।
अभिवादयतां देवीं देवकीं रामकेशवौ॥ ९
सा ताभ्यामृषभाक्षाभ्यां पुत्राभ्यां शुशुभेऽम्बिका।
अदितिर्देवमातेव मित्रेण वरुणेन च॥ १०
ततः प्राप्ता नराग्र्यौ तु तस्याः सा दुहिता तदा।
एकानंशेति यामाहुर्नरा वै कामरूपिणीम्॥ ११
तथा क्षणमुहूर्ताभ्यां यथा जज्ञे सुरेश्वरः।
यत्कृते सगणं कंसं जघान पुरुषोत्तमः॥ १२
सा कन्या ववृधे तत्र वृष्णिसद्मनि पूजिता।
पुत्रवत् पाल्यमाना वै वासुदेवाज्ञया तदा॥ १३
एकानंशेति यामाहुरुत्पन्नां मानवा भुवि।
योगकन्यां दुराधर्षां रक्षार्थं केशवस्य ह॥ १४
यां वै सर्वे सुमनसः पूजयन्ति स्म यादवाः।
देववद् दिव्यपुरुषः कृष्णः संरक्षितो यया॥ १५
तां च तत्रोपसंगम्य प्रियामिव सखीं स्वसाम्।
दक्षिणेन कराग्रेण परिजग्राह माधवः॥ १६
तथैव रामोऽतिबलः सम्परिष्वज्य भाविनीम्।
मूर्ध्न्युपाघ्राय सव्येन प्रतिजग्राह पाणिना॥ १७
ददृशुस्ताः स्त्रियो मध्ये भगिनीं रामकृष्णयोः।
रुक्मपद्मव्यग्रकरां स्त्रियं पद्मालयामिव॥ १८
तथाक्षतमहावृष्ट्या पुष्पैश्च विविधैः शुभैः।
अवकीर्य च लाजैस्ताः स्त्रियो जग्मुर्यथालयम्॥ १९
ततस्ते यादवाः सर्वे पूजयन्तो जनार्दनम्।
उपोपविविशुः प्रीताः प्रशंसन्तोऽद्भुतं कृतम्॥ २०
पूज्यमानो महाबाहुः पौराणां रतिवर्धनः।
विरराज महाकीर्तिर्देवैरिव स तैः सह॥ २१

वसुदेवकी सहदेवा* आदि सात देवियाँ, जिनमें सातवीं देवकी थीं और सुन्दर मुखवाली रोहिणीदेवी इन सबने वहाँ सिंहासनपर बैठे हुए श्रीकृष्ण तथा महाबाहु बलरामका दर्शन किया॥ ८॥ बलराम और श्रीकृष्ण दोनों भाइयोंने पहले औरोंको छोड़कर रोहिणीको प्रणाम करनेके अनन्तर देवी देवकीका अभिवादन किया॥ ९॥ माता देवकी वृषभके समान विशाल नेत्रोंवाले उन दोनों पुत्रोंके साथ उसी प्रकार शोभा पाने लगीं, जैसे मित्र और वरुणके साथ देवमाता अदिति सुशोभित होती हैं॥ १०॥ उसी समय उन दोनों श्रेष्ठ पुरुषोंके पास यशोदाजीकी वह पुत्री आ पहुँची, जिसे लोग इच्छानुसार रूप धारण करनेवाली एकानंशा कहते हैं॥ ११॥ जिसके दिये हुए संकेत और मुहूर्तके अनुसार देवेश्वर श्रीहरिका प्रादुर्भाव हुआ था और जिसके ही कारण पुरुषोत्तम श्रीकृष्णने सेवकोंसहित कंसका वध कर डाला था॥ १२॥ वह कन्या वृष्णिवंशियोंके घरमें बड़े आदर-सत्कारके साथ पल रही थी। भगवान् वासुदेवकी आज्ञासे उस समय उसका पुत्रकी भाँति पालन किया जाता था॥ १३॥ श्रीकृष्णकी रक्षाके लिये भूतलपर उत्पन्न हुई उस दुर्धर्ष योगकन्याको मनुष्य एकानंशा कहते हैं॥ १४॥ समस्त यादव प्रसन्नचित्तसे उस देवीकी पूजा करते हैं, जिसने देवतुल्य दिव्य पुरुष श्रीकृष्णकी रक्षा की थी॥ १५॥ वहाँ अपनी प्रिय सखीकी भाँति उस बहिनसे मिलकर श्रीकृष्णने दाहिने हाथसे उसका हाथ अपने हाथमें ले लिया॥ १६॥ उसी प्रकार अत्यन्त बलशाली बलरामजीने उस भामिनी बहिनको हृदयसे लगाकर उसका मस्तक सूँघा और बायें हाथसे उसका हाथ पकड़ लिया॥ १७॥ बलराम और श्रीकृष्णके बीचमें खड़ी हुई उनकी उस बहिनको सभी स्त्रियोंने देखा। वह सुवर्णमय कमल हाथमें लिये हुए कमलालया लक्ष्मीकी भाँति सुशोभित होती थी॥ १८॥ वे स्त्रियाँ अक्षतोंकी बड़ी भारी वर्षा करके नाना प्रकारके माङ्गलिक पुष्प और खील बिखेर कर अपने-अपने घरको चली गयीं॥ १९॥ तदनन्तर वे समस्त यादव श्रीकृष्णकी पूजा तथा उनके अद्भुत कर्मकी प्रशंसा करते हुए प्रसन्नतापूर्वक उनके पास बैठ गये॥ २०॥ महान् कीर्तिशाली महाबाहु श्रीकृष्ण पुरवासियोंका प्रेम बढ़ाते हुए उनसे पूजित हो देवताओंके साथ इन्द्रकी भाँति उन सबके साथ विशेष शोभा पाने लगे॥ २१॥

*सहदेवा, शान्तिदेवा, श्रीदेवा, देवरक्षिता, वृकदेवी, उपदेवी और देवकी—ये सात देवककी पुत्रियाँ थीं, जो क्रमशः वसुदेवको ही विवाही गयी थीं।

समासीनेषु सर्वेषु यादवेषु जनार्दनम्।
नियोगात् त्रिदशेन्द्रस्य नारदोऽभ्यागमत् सभाम्॥ २२

सोऽथ सम्पूजितः पूज्यः शूरैस्तैर्यदुपुङ्गवैः।
करं संस्पृश्य स हरेर्विवेश परमासने॥ २३

सुखोपविष्टस्तान् वृष्णीनुपविष्टानुवाच ह।
सम्प्राप्तं शक्रवचनाज्जानीध्वं मां नरर्षभाः॥ २४

शृणुध्वं राजशार्दूलाः कृष्णस्यास्य पराक्रमम्।
यानि कर्माणि कृतवान् बाल्यात्प्रभृति केशवः॥ २५

उग्रसेनसुतः कंसः सर्वान् निर्मथ्य यादवान्।
राज्यं जग्राह दुर्बुद्धिर्बद्ध्वा पितरमाहुकम्॥ २६

समाश्रित्य जरासंधं श्वशुरं कुलपांसनः।
भोजवृष्ण्यन्धकान् सर्वानवमन्यत दुर्मतिः॥ २७

ज्ञातिकार्यं चिकीर्षुस्तु वसुदेवः प्रतापवान्।
उग्रसेनस्य रक्षार्थं स्वपुत्रं पर्यरक्षत॥ २८

स गोपैः सह धर्मात्मा मथुरोपवने स्थितः।
अत्यद्भुतानि कर्माणि कृतवान् मधुसूदनः॥ २९

प्रत्यक्षं शूरसेनानां श्रूयते महदद्भुतम्।
उत्तानेन शयानेन शकटान्तरचारिणा॥ ३०

राक्षसी निहता रौद्रा शकुनीवेषधारिणी।
पूतना नाम घोरा सा महाकाया महाबला॥ ३१

विषदिग्धं स्तनं रौद्रं प्रयच्छन्ती जनार्दने।
ददृशुर्निहतां तां ते राक्षसीं वनगोचराः॥ ३२

पुनर्जातोऽयमित्याहुरुक्तस्तस्मादधोक्षजः।
अत्यद्भुतमिदं चासीद् यच्छिशुः पुरुषोत्तमः॥ ३३

जब समस्त यादव बैठ गये, उस समय इन्द्रकी आज्ञासे देवर्षि नारदजी उस सभामें श्रीकृष्णके पास आये॥ २२॥ पूज्य देवर्षि नारद उन यादवशिरोमणि शूरवीरोंसे भलीभाँति पूजित हो भगवान् श्रीकृष्णका हाथ पकड़कर उत्तम आसनपर विराजमान हुए॥ २३॥ स्वयं सुखपूर्वक बैठ जानेपर वहाँ बैठे हुए उन वृष्णिवंशियोंसे वे इस प्रकार बोले—'नरश्रेष्ठ यादवो! तुम यह समझ लो, मैं इन्द्रकी आज्ञासे यहाँ आया हूँ॥ २४॥ 'राजाओंमें सिंहके समान पराक्रमी वीरो! श्रीकृष्णने बचपनसे लेकर अबतक जो-जो कर्म किये हैं, उनके उस पराक्रमका वर्णन सुनो॥ २५॥ 'उग्रसेनके दुर्बुद्धि पुत्र कंसने अपने पिताको कैद करके समस्त यादवोंको रौंदकर मथुराका राज्य अपने अधिकारमें कर लिया था॥ २६॥ 'खोटी बुद्धिवाला वह कुलाङ्गार अपने श्वशुर जरासंधका आश्रय ले भोज, वृष्णि और अन्धक-वंशके सब लोगोंका अपमान करता था॥ २७॥ 'उस समय भाई-बन्धुओंका कार्य सिद्ध करनेकी इच्छासे और उग्रसेनकी रक्षा करनेके लिये प्रतापी वसुदेवने अपने पुत्र श्रीकृष्णकी कंससे रक्षा की॥ २८॥ 'वसुदेवका वह पुत्र यह धर्मात्मा मधुसूदन ही हैं, जो मथुराके निकटवर्ती वनमें गोपोंके साथ रहे हैं और वहाँ इन्होंने बड़े अद्भुत कर्म किये हैं॥ २९॥ 'वहाँ इनके विषयमें एक बड़ी अद्‌भुत बात सुनी जाती है, जिसे शूरसेनवासियोंने प्रत्यक्ष देखा है। ये बाल्यावस्थामें छकड़ेके नीचे एक खाटपर उतान सोये थे। उस समय वहाँ पक्षीका वेश धारण करके रहनेवाली एक महाबलशालिनी विशालकाया घोर एवं भयानक राक्षसी पूतना इनके द्वारा मारी गयी॥ ३०-३१॥ 'वह जनार्दन श्रीकृष्णको अपना विषसे लिप्त भयानक स्तन पिलाना चाहती थी। वहाँ इनके द्वारा मारी गयी उस राक्षसीको वनवासी गोपोंने प्रत्यक्ष देखा था॥ ३२॥ 'उस समय वे कहने लगे, इस बालकका पुनर्जन्म हुआ है—इसने अक्ष (गाड़ी)-के अधः (नीचे) फिर जन्म पाया है। उनके ऐसा कहनेसे ये बालकृष्ण अधोक्षज नामसे प्रसिद्ध हुए। यह भी बड़ी अद्‌भुत बात हुई कि शैशवावस्थामें खेलते हुए इन पुरुषोत्तमने

पादाङ्गुष्ठेन शकटं क्रीडमानो व्यलोडयत्।
दाम्ना चोलूखले बद्धो विप्रकुर्वन् कुमारकम्॥ ३४

बभञ्जार्जुनवृक्षौ द्वौ ख्यातो दामोदरस्तदा।
कालियश्च महानागो दुराधर्षो महाबलः॥ ३५

क्रीडता वासुदेवेन निर्जितो यमुनाह्रदे।
अक्रूरस्य समक्षं च यन्नागभवने विभुः॥ ३६

पूज्यमानं तदा नागैर्दिव्यं वपुरधारयत्।
शीतवातार्दिता गाश्च दृष्ट्वा कृष्णेन धीमता॥ ३७

धृतो गोवर्धनः शैलः सप्तरात्रं महात्मना।
शिशुना वासुदेवेन गवां त्राणार्थमिच्छताम्॥ ३८

तथोक्षदुष्टोऽतिबलो महाकायो नरान्तकृत्।
गोपतिर्वासुदेवेन हतोऽरिष्टो महासुरः॥ ३९

धेनुकः स महाकायो दानवः सुमहाबलः।
निहतो वासुदेवेन गवां त्राणाय दुर्मतिः॥ ४०

सुनामानममित्रघ्नः सर्वसैन्यपुरस्कृतम्।
वृकैर्विद्रावयामास ग्रहीतुं समुपस्थितम्॥ ४१

रौहिणेयेन संगम्य वने विचरता पुनः।
गोपवेषधरेणैव कंसस्य भयमाहितम्॥ ४२

तथा व्रजगतः शौरिर्दृष्ट्वा युद्धबलं हयम्।
प्रग्रहं भोजराजस्य जघान पुरुषोत्तमः॥ ४३

प्रलम्बश्च महाकायो रौहिणेयेन धीमता।
दानवो मुष्टिनैकेन कंसामात्यो निपातितः॥ ४४

एतौ हि वसुदेवस्य पुत्रौ सुरसुतोपमौ।
ववृधाते महावीर्यौ ब्रह्मगार्ग्येण संस्कृतौ॥ ४५

जन्मप्रभृति चाप्येतौ गार्ग्येण परमर्षिणा।
याथातथ्येन विज्ञाप्य संस्कारं प्रतिपादितौ॥ ४६

यदा त्विमौ नरश्रेष्ठौ स्थितौ यौवनसम्मुखे।
सिंहशावाविवोदीर्णौ मत्तौ हैमवतौ यथा॥ ४७

पैरके अँगूठेसे धक्का देकर छकड़ेको उलट दिया। 'कुमारावस्थाकी लीला करते हुए इन्हें एक दिन मैयाने रस्सीसे ओखलीमें बाँध दिया। उसी अवस्थामें उस ओखलीको घसीटते हुए इन्होंने दो अर्जुन वृक्षोंको तोड़ डाला, उस समय दाम (रस्सी)-से उदरमें बँधनेके कारण यह दामोदर नामसे विख्यात हुए। यमुनाजीके कुण्डमें निवास करनेवाले दुर्धर्ष एवं महाबली महानाग कालियको इन भगवान् वासुदेवने खेल-खेलमें ही पराजित कर दिया। इन भगवान् श्रीहरिने उस दिन अक्रूरकी आँखोंके सामने नागभवनमें नागोंद्वारा पूजित होनेवाले अपने दिव्य रूपको धारण किया था। बुद्धिमान् वसुदेवपुत्र महात्मा श्रीकृष्ण सरदी और हवासे गौओंको कष्ट पाते देख अपनी रक्षा चाहनेवाली उन गौओंके प्राण बचानेके लिये बाल्यावस्थामें ही लगातार सात रातोंतक गोवर्धन पर्वतको हाथपर उठाये रहे॥ ३३—३८॥ 'उसी प्रकार मनुष्योंका अन्त करनेवाला एक अत्यन्त बलशाली, महाकाय, महान् असुर अरिष्ट, जो साँड़के रूपमें रहता था और साँड़ोंमें सबसे अधिक दुष्ट था, भगवान् वासुदेवके हाथसे मारा गया॥ ३९॥ 'वह महाबली और विशालकाय दानव दुर्बुद्धि धेनुक भी गौओंकी रक्षाके लिये ही वसुदेवनन्दन बलरामके हाथसे मारा गया॥ ४०॥ 'शत्रुओंका नाश करनेवाले श्रीकृष्णने समस्त सेनाओंके साथ आये हुए सुनामाको, जो इन्हें कैद करनेके लिये उपस्थित हुआ था, भेड़ियोंद्वारा मार भगाया॥ ४१॥ 'एक समय रोहिणीनन्दन बलरामजीके साथ मिलकर वनमें विचरते हुए गोपवेशधारी श्रीकृष्णने पुनः एक महाबली दैत्यका वध करके कंसको भयभीत कर दिया॥ ४२॥ 'व्रजमें रहते हुए वसुदेवनन्दन पुरुषोत्तम श्रीहरिने भोजराज कंसके परिचारक अश्वरूपधारी दैत्यको, जिसका युद्ध ही बल था, अपने सामने उपस्थित देख मार डाला॥ ४३॥ 'बुद्धिमान् रोहिणीनन्दन बलरामने कंसके मन्त्री महाकाय दानव प्रलम्बको एक ही मुक्केसे मार गिराया॥ ४४॥ 'व्रजमें वसुदेवके ये दोनों महापराक्रमी पुत्र जो देवकुमारोंके समान तेजस्वी थे, ब्रह्मगार्ग्यके द्वारा क्षत्रियोचित संस्कारोंसे सम्पन्न हो दिनोंदिन बढ़ते रहे॥ ४५॥ 'महर्षि गार्ग्यने जन्मसे ही लेकर इन दोनोंके सभी संस्कार समय-समयपर स्वयं ही सूचित करके यथार्थरूपसे सम्पन्न किये हैं॥ ४६॥ 'जब ये नरश्रेष्ठ यौवनके सामने उपस्थित हुए, तब दो उद्गत सिंहशावकों तथा हिमालयके दो मतवाले हाथियोंके समान सुशोभित होने लगे॥ ४७॥

ततो मनांसि गोपीनां हरमाणौ महाबलौ।
आस्तां गोष्ठवरौ वीरौ देवपुत्रोपमद्युती॥ ४८

एतौ जये वा युद्धे वा क्रीडासु विविधासु च।
नन्दगोपस्य गोपाला न शेकुः प्रसमीक्षितुम्॥ ४९

व्यूढोरस्कौ महाबाहू शालस्कन्धाविवोद्गतौ।
श्रुत्वासौ व्यथितः कंसो मन्त्रिभिः सहितोऽभवत्॥ ५०

नाशकच्च यदा कंसो ग्रहीतुं बलकेशवौ।
निजग्राह ततः क्रोधाद् वसुदेवं सबान्धवम्॥ ५१

सहोग्रसेनेन तदा चोरवद् गाढबन्धनम्।
कालं महान्तमनयत् कृच्छ्रमानकदुन्दुभिः॥ ५२

कंसस्तु पितरं बद्ध्वा शूरसेनाञ्शशास ह।
जरासंधं समाश्रित्य तथैवाह्वृतिभीष्मकौ॥ ५३

कस्यचित् त्वथ कालस्य मथुरायां महोत्सवम्।
पिनाकिनं समुद्दिश्य चक्रे कंसो नराधिपः॥ ५४

तत्र मल्लाः समाजग्मुर्नानादेश्या विशाम्पते।
नर्तना गायनाश्चैव कुशला नृत्यकर्मसु॥ ५५

ततः कंसो महातेजा रङ्गवाटं महाधनम्।
कुशलैः कारयामास शिल्पिभिः साधुनिष्ठितैः॥ ५६

तत्र मञ्चसहस्राणि पौरजानपदैर्जनैः।
समाकीर्णानि दृश्यन्ते ज्योतींषि गगने यथा॥ ५७

भोजराजः श्रिया जुष्टं रङ्गवाटं महर्द्धिमत्।
आरुरोह ततः कंसो विमानं सुकृती यथा॥ ५८

रङ्गवाटे गजं मत्तं प्रभूतायुधकल्पितम्।
शूरैरधिष्ठितं कंसः स्थापयामास वीर्यवान्॥ ५९

यदा हि स महातेजा रामकृष्णौ समागतौ।
शुश्राव पुरुषव्याघ्रौ सूर्याचन्द्रमसाविव॥ ६०

तदाप्रभृति यत्नोऽभूद् रक्षां प्रति नराधिप।
न च शिश्ये सुखं रात्रौ रामकृष्णौ विचिन्तयन्॥ ६१

'फिर तो देवपुत्रोंके समान कान्तिमान् ये दोनों महाबली वीर गोपियोंके चित्त चुराते हुए व्रजके प्रमुख व्यक्ति हो गये॥ ४८॥ 'विजयमें, युद्धमें अथवा भाँति-भाँतिकी क्रीड़ाओंमें व्रजके दूसरे-दूसरे ग्वाले नन्दगोपके इन दोनों पुत्रोंकी ओर आँख उठाकर देख भी नहीं सकते थे (समता करना तो दूरकी बात है)॥ ४९॥ 'इनकी छाती चौड़ी है, भुजाएँ बड़ी-बड़ी हैं तथा ये साखूके तनेकी भाँति मोटे और ऊँचे कदके हैं, यह सुनकर कंस अपने मन्त्रियोंसहित व्यथित हो उठा था॥ ५०॥ 'जब बलराम और श्रीकृष्णको कंस किसी तरह पकड़ न सका, तब क्रोधमें आकर उसने उग्रसेन और बन्धु-बान्धवोंसहित वसुदेवको कैद कर लिया और चोरकी भाँति उन्हें सुदृढ़ बन्धनमें डाल दिया। उन दिनों वसुदेवजीने दीर्घकालतक बड़े भारी कष्टका सामना किया॥ ५१-५२॥ 'पिताको कैद करके कंस जरासंध, आह्वृति और भीष्मकका सहारा ले शूरसेन-देशका शासन करने लगा॥ ५३॥ 'किसी समय मथुरामें राजा कंसने पिनाकधारी भगवान् शङ्करकी प्रसन्नताके लिये एक बड़ा भारी उत्सव किया॥ ५४॥ 'प्रजानाथ उग्रसेन! उस उत्सवमें अनेक देशोंके मल्ल तथा नृत्यकर्ममें कुशल बहुत-से नर्तक और गायक आये थे॥ ५५॥ 'उस समय महातेजस्वी कंसने शिल्पकर्ममें कुशल अच्छे-अच्छे शिल्पियोंद्वारा एक रङ्गशाला बनवायी, जिसमें बहुत धन खर्च किया गया था॥ ५६॥ 'वहाँ हजारों मञ्च रखे गये थे, जो नगर और जनपदके लोगोंसे भरे-पूरे दिखायी देते थे। वे आकाशमें फैले हुए नक्षत्रोंके समान दृष्टिगोचर होते थे॥ ५७॥ 'तदनन्तर भोजराज कंस अनुपम शोभासे युक्त बहुमूल्य रङ्गमञ्चपर आरूढ़ हुआ, मानो कोई पुण्यात्मा पुरुष विमानपर चढ़ा हो॥ ५८॥ 'पराक्रमी कंसने रङ्गशालाके द्वारपर शूरवीर महावतोंसे युक्त एक मतवाले हाथीको खड़ा करा रखा था, जो बहुसंख्यक अस्त्र-शस्त्रोंसे सुसज्जित था॥ ५९॥ 'नरेश्वर! महातेजस्वी कंसने जब सुना कि सूर्य और चन्द्रमाके समान दोनों भाई पुरुषसिंह बलराम और श्रीकृष्ण मथुरामें आ गये हैं, तबसे वह अपनी रक्षाके लिये विशेष प्रयत्नशील हो गया। बलराम और श्रीकृष्णका ही चिन्तन करता हुआ वह रातमें सुखकी नींद सो न सका॥ ६०-६१॥

श्रुत्वा तु रामः कृष्णश्च तं समाजमनुत्तमम्।
उभौ विविशतुर्वीरौ शार्दूलौ गोव्रजं यथा॥ ६२

ततः प्रवेशे संरुद्धौ रक्षिभिः पुरुषर्षभौ।
हत्वा कुवलयापीडं ससादिनमरिंदमौ।
अवमृद्य दुराधर्षौ रङ्गं विविशतुस्तदा॥ ६३

चाणूरान्ध्रौ विनिष्पिष्य केशवेन बलेन च।
औग्रसेनिः सुदुष्टात्मा सानुजो विनिपातितः॥ ६४

यत् कृतं यदुसिंहेन देवैरपि सुदुष्करम्।
कर्म तत् केशवादन्यः कर्तुमर्हति कः पुमान्॥ ६५

यद्धि नाधिगतं पूर्वैः प्रह्लादबलिशम्बरैः।
तदिदं प्रापितं वित्तं शौरिणा भवतां कृते॥ ६६

एतेन मुरुमाक्रम्य दैत्यं पञ्चजनं तथा।
निष्क्रम्य शैलसंघातान्निसुन्दः सगणो हतः॥ ६७

नरकश्च हतो भौमः कुण्डले चाहृते शुभे।
प्राप्तं च दिवि देवेषु केशवेन महद्यशः॥ ६८

वीतशोकभयाबाधाः कृष्णबाहुबलाश्रयाः।
यजध्वं विविधैर्यज्ञैर्यादवा वीतमत्सराः॥ ६९

देवानां सुमहत् कार्यं कृतं कृष्णेन धीमता।
प्रियमावेदयाम्येष भवतां भद्रमस्तु वः॥ ७०

यदिष्टं वो यदुश्रेष्ठाः कर्तास्मि तदतन्द्रितः।
भवतामस्मि यूयं च मम युष्मास्वहं स्थितः॥ ७१

इति सम्बोधयन् कृष्णमब्रवीत् पाकशासनः।
स मां प्रैषीत् सुरश्रेष्ठः प्रीतस्तुष्टास्तथा वयम्॥ ७२

यत्र धीः श्रीः स्थिता तत्र यत्र श्रीस्तत्र संनतिः।
संनतिर्धीस्तथा श्रीश्च नित्यं कृष्णे महात्मनि॥ ७३

'बलराम और श्रीकृष्ण दोनों वीर उस परम उत्तम समाज (उत्सव)-का समाचार सुनकर उस रङ्गशालामें उसी प्रकार प्रवेश करने लगे, जैसे दो व्याघ्र गौओंके व्रजमें घुस रहे हों॥ ६२॥ 'उसमें प्रवेश करते समय रक्षकोंने उन दोनों पुरुषप्रवर बन्धुओंको रोक दिया, तब उन दोनों दुर्जय शत्रुदमन बन्धुओंने सवारोंसहित कुवलयापीड़ हाथीको मारकर मिट्टीमें मिला दिया, फिर वे रङ्गशालामें घुस गये॥ ६३॥ 'श्रीकृष्ण और बलरामने चाणूर तथा आन्ध्रका कचूमर निकालकर उग्रसेनके दुष्टात्मा पुत्र कंसको भाइयोंसहित मार गिराया॥ ६४॥ 'जो देवताओंके लिये भी अत्यन्त दुष्कर है, ऐसा जो-जो कर्म यदुकुलसिंह श्रीकृष्णने किया, उसे इनके सिवा दूसरा कौन पुरुष कर सकता है॥ ६५॥ 'पहलेके प्रह्लाद, बलि और शम्बर आदि नरेशोंने जिसे नहीं पाया था, वही यह अनन्त धन श्रीकृष्णने तुमलोगोंके लिये यहाँ ला दिया है॥ ६६॥ 'इन्होंने मुरु तथा पञ्चजन नामक दैत्यपर आक्रमण करके शैलसमूहोंको पारकर निसुन्द नामक दैत्यको उसके गणोंसहित मार डाला॥ ६७॥ 'भूमिपुत्र नरकको भी मौतके घाट उतार दिया। उसके यहाँ अदितिके जो दोनों सुन्दर कुण्डल थे, उनको वापिस ले लिया। इस प्रकार केशवने देवलोक तथा देवताओंमें महान् यश प्राप्त किया॥ ६८॥ 'यादवो! अब तुमलोग श्रीकृष्णके बाहुबलका आश्रय ले शोक, भय और बाधाओंसे रहित हो ईर्ष्या-द्वेषका त्याग करके नाना प्रकारके यज्ञोंका अनुष्ठान करो॥ ६९॥ 'बुद्धिमान् श्रीकृष्णने देवताओंका बहुत बड़ा कार्य सिद्ध किया है। मैं तुमलोगोंको यह प्रिय निवेदन करता हूँ, तुम सब लोगोंका भला हो॥ ७०॥ 'यदुवरो! तुम्हें जो अभीष्ट हो, वह कार्य मैं आलस्यरहित होकर करूँगा। मैं तुम्हारा हूँ और तुम मेरे। मैं तुममें ही स्थित हूँ॥ ७१॥ 'इस प्रकार तुम सबको श्रीकृष्णकी महिमा समझाते हुए पाकशासन इन्द्रने उपर्युक्त बातें कही हैं। उन्हीं सुरश्रेष्ठने प्रसन्न होकर मुझे यहाँ भेजा है। इससे हम भी संतुष्ट हुए हैं॥ ७२॥ 'जहाँ बुद्धि है, वहाँ श्री विद्यमान है। जहाँ श्री है, वहाँ संनति (विनय) है। महात्मा श्रीकृष्णमें विनय, बुद्धि और श्री—ये तीनों नित्य विद्यमान हैं'॥ ७३॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे विष्णुपर्वणि नारदवाक्यं नामैकाधिकशततमोऽध्यायः॥ १०१॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत विष्णुपर्वमें नारदजीका वाक्यविषयक एक सौ एकवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १०१॥

द्व्यधिकशततमोऽध्यायः

नारदजीके द्वारा भगवान् श्रीकृष्णके अद्भुत कर्मोंका वर्णन

नारद उवाच

सादिता मौरवाः पाशा निसुन्दनरकौ हतौ।
कृतः क्षेम्यः पुनः पन्थाः पुरं प्राग्ज्योतिषं प्रति॥ १

शौरिणा पृथिवीपालास्त्रासिताः स्पर्द्धिनो रणे।
धनुषश्च निनादेन पाञ्चजन्यस्वनेन च॥ २

मेघप्रख्यै रथानीकैर्दाक्षिणात्यैः सुरक्षितम्।
रुक्मिणं युधि निर्जित्य महाबलपराक्रमम्।
रुक्मिणीमाजहाराशु केशवो वृष्णिपुङ्गवः॥ ३

ततः पर्जन्यघोषेण रथेनादित्यवर्चसा।
उवाह महिषीं भोज्यां शङ्खचक्रगदासिभृत्॥ ४

जारूथ्यामाहृवृतिः क्राथः शिशुपालश्च निर्जितः।
वक्रश्च सह सैन्येन शतधन्वाथ निर्जितः॥ ५

इन्द्रद्युम्नो हतः कोपाद् यवनश्च कशेरुमान्।
हतः सौभपतिः श्रीमाञ्छाल्वश्च दृढधन्वना॥ ६

पर्वतानां सहस्रं च चक्रेण पुरुषोत्तमः।
विकीर्य पुण्डरीकाक्षो द्युमत्सेनं व्यपोथयत्॥ ७

महेन्द्रशिखरे चैव निमेषान्तरचारिणौ।
जग्राह पुरुषव्याघ्रो वरुणस्याभितश्चरौ॥ ८

इरावत्यां महाभोजावग्निसूर्यसमौ युधि।
गोपतिस्तालकेतुश्च निहतौ शार्ङ्गधन्वना॥ ९

अक्षप्रपतने चैव डिम्भो हंसश्च दानवौ।
उभौ तावपि कृष्णेन सानुगौ विनिपातितौ॥ १०

दग्धा वाराणसी चैव केशवेन महात्मना।
सराष्ट्रः सानुबन्धश्च काशीनामधिपो हतः॥ ११

नारदजी कहते हैं—यादवो! भगवान् श्रीकृष्णने मुर दैत्यके पाश काट डाले, निसुन्द और नरकासुरको मार डाला तथा प्राग्ज्योतिषपुरका मार्ग सब लोगोंके लिये क्षेममय—निष्कण्टक बना दिया॥ १॥ शूरनन्दन श्रीकृष्णने अपने धनुषकी टंकार और पाञ्चजन्य शङ्खके हुंकारसे उन समस्त भूपालोंको आतङ्कित कर दिया, जो युद्धमें उनके साथ स्पर्धा रखते थे॥ २॥ मेघोंकी घटाके समान छायी हुई दक्षिणदेशीय रथसेनाओंसे सुरक्षित तथा महान् बल और पराक्रमसे सम्पन्न रुक्मीको युद्धमें पराजित करके इन वृष्णिकुलतिलक केशवने मेघके समान गम्भीर घोष करनेवाले एवं सूर्यतुल्य तेजस्वी रथके द्वारा रुक्मिणीको शीघ्र हर लिया। इस प्रकार शङ्ख, चक्र, गदा और खड्ग धारण करनेवाले श्रीकृष्णने भोजकुलनन्दिनी रुक्मिणीके साथ विवाह किया और उन्हें अपनी पटरानी बनाया॥ ३-४॥ जारूथी नगरीमें आहृवृति, क्राथ एवं शिशुपालको परास्त किया, सेनासहित दन्तवक्त्र और शतधन्वाको भी हरा दिया॥ ५॥ इन्होंने इन्द्रद्युम्न, कालयवन और कशेरुमान्‌का भी क्रोधपूर्वक वध किया है तथा हाथमें सुदृढ़ धनुष धारण करके सौभविमानके स्वामी श्रीमान् राजा शाल्वको भी मार डाला है॥ ६॥ इन कमलनयन पुरुषोत्तमने चक्रद्वारा सहस्रों पर्वतोंको टूक-टूक करके बिखेर दिया और द्युमत्सेनको मार गिराया॥ ७॥ जो युद्धमें अग्नि और सूर्यके समान पराक्रमी थे और वरुण देवताके उभय-पार्श्वमें विचरण करते थे, जिनमें पलक मारते-मारते एक स्थानसे दूसरे स्थानमें पहुँच जानेकी शक्ति थी, वे गोपति और तालकेतु नामक महाभोज महेन्द्र पर्वतके शिखरपर पुरुषसिंह श्रीकृष्णद्वारा पकड़े गये और उन शार्ङ्गधन्वाके हाथसे इरावती नदीके तटपर मारे गये॥ ८-९॥ इन्हीं श्रीकृष्णने डिम्भ और हंस नामक दोनों दानवोंको अक्षप्रपतन नामक स्थानमें सेवकोंसहित मार गिराया॥ १०॥ महात्मा केशवने वाराणसी नगरी जला दी तथा राष्ट्रके लोगों और सगे-सम्बन्धियोंसहित काशिराजको कालके गालमें भेज दिया॥ ११॥

विजित्य च यमं संख्ये शरैः संनतपर्वभिः।
अथैन्द्रसेनिरानीतः कृष्णेनाद्भुतकर्मणा॥ १२
सहितः सर्वयादोभिः सागरेषु महाबलः।
प्राप्य लोहितकूटं च कृष्णेन वरुणो जितः॥ १३
महेन्द्रभवने जातो देवैर्गुप्तो महात्मभिः।
अचिन्तयित्वा देवेन्द्रं पारिजातद्रुमो हृतः॥ १४
पाण्ड्यं पौण्ड्रं कलिङ्गं च मात्स्यं चैव जनार्दनः।
जघान सहितान् सर्वान् वङ्गराजं तथैव च॥ १५
एष चैकशतं हत्वा रणे राज्ञां महात्मनाम्।
गान्धारीमावहद् वीरो महिषीं प्रियदर्शनाम्॥ १६
तथा गाण्डीवधन्वानं क्रीडन्तं मधुसूदनः।
जिगाय भरतश्रेष्ठं कुन्त्याः प्रमुखतो विभुः॥ १७
द्रोणं द्रौणिं कृपं कर्णं भीष्मं चैव सुयोधनम्।
चक्रयानैः प्रह्लवणे जिगाय पुरुषोत्तमः॥ १८
बभ्रोश्च प्रियमन्विच्छञ्छङ्खचक्रगदासिभृत्।
सौवीरराजस्य सुतां प्रसह्य हृतवान् प्रभुः॥ १९
पर्यस्तां पृथिवीं कृत्स्नां साश्वां सरथकुञ्जराम्।
वैणुदारिकृते यत्नाज्जिगाय पुरुषोत्तमः॥ २०
अवाप्य तपसो वीर्यं बलमोजश्च माधवः।
पूर्वदेहे जहारायं बलेस्त्रिभुवनं हरिः॥ २१
वज्राशनिगदाखड्गैस्त्रासयद्भिश्च दानवैः।
यस्य नाधिगतो मृत्युः पुरं प्राग्ज्योतिषं प्रति॥ २२
अभिभूतश्च कृष्णेन सगणः सुमहाबलः।
बलेः पुत्रो महावीर्यो बाणो द्रविणवत्तरः॥ २३
पीठं तथा महाबाहुः कंसामात्यं जनार्दनः।
पैठिकं चासिलोमानं निजघान महाबलः॥ २४
जृम्भमैरावणं चापि विरूपं च महायशाः।
जघान पुरुषव्याघ्रो दैत्यं मानुषरूपिणम्॥ २५
तथा नागपतिं तोये कालीयं च महौजसम्।
निर्जित्य पुण्डरीकाक्षः प्रेषयामास सागरम्॥ २६
संजीवयामास मृतं पुत्रं सान्दीपनेस्तथा।
निर्जित्य पुरुषव्याघ्रो यमं वैवस्वतं हरिः॥ २७

इन अद्भुतकर्मा श्रीकृष्णने युद्धमें झुकी हुई गाँठवाले बाणोंद्वारा यमराजको जीतकर वहाँसे इन्द्रसेनके पुत्रको वापस लौटाया था॥ १२॥ इन्हीं श्रीकृष्णने समुद्रोंमें तथा लोहित शिखरपर जाकर समस्त जलजन्तुओंसहित महाबली वरुणको भी जीता था॥ १३॥ जो महेन्द्रभवनमें उत्पन्न होकर सदा महामनस्वी देवताओंद्वारा सुरक्षित रखा गया था, उस पारिजात नामक वृक्षको इन श्रीकृष्णने देवराजकी परवा न करके हर लिया॥ १४॥ इन जनार्दनने एक साथ आये हुए पाण्ड्य, पौण्ड्र, कलिङ्ग, मत्स्य तथा वङ्गदेशके समस्त राजाओंको युद्धमें मार डाला था॥ १५॥ इन वीर श्रीकृष्णने रणभूमिमें एक सौ महामना नरेशोंका वध करके अपनी परम सुन्दरी पटरानी गान्धारीसे विवाह किया था॥ १६॥ गाण्डीव धनुष लेकर युद्धकी क्रीडा करते हुए भरतश्रेष्ठ अर्जुनको इन भगवान् मधुसूदनने कुन्तीके सामने ही जीत लिया (अथवा सहायता देकर उन्हें विजयी बना दिया)॥ १७॥ इन पुरुषोत्तमने (अर्जुनद्वारा) रथयुद्धमें द्रोणाचार्य, अश्वत्थामा, कृपाचार्य, कर्ण, भीष्म और दुर्योधनको परास्त कर दिया॥ १८॥ बभ्रुका प्रिय चाहते हुए शङ्ख, चक्र, गदा और खड्ग धारण करनेवाले भगवान् केशवने सौवीरराजकी पुत्रीको बलपूर्वक हर लिया था॥ १९॥ इन पुरुषोत्तमने वैणुदारिके लिये घोड़े, रथ और हाथियोंसहित सारी पृथ्वीको, जो अस्त-व्यस्त हो गयी थी, यत्नपूर्वक जीत लिया॥ २०॥ इन भगवान् माधवने पूर्व शरीरमें वामनरूप होकर तपस्याका बल, वीर्य और ओज पाकर राजा बलिसे त्रिलोकीका राज्य छीन लिया था॥ २१॥ वज्र, अशनि, गदा और खड्गके प्रहारसे त्रास देते हुए दानव प्राग्ज्योतिषपुरमें प्रयत्न करनेपर भी इन्हें मार न सके॥ २२॥ महाबली, महापराक्रमी तथा अत्यन्त वैभवशाली बलिपुत्र बाणासुरको भी श्रीकृष्णने पराजित कर दिया था॥ २३॥ इन महाबली महाबाहु जनार्दनने कंसके मन्त्री पीठ, पैठिक और असिलोमाको भी मौतके घाट उतार दिया॥ २४॥ महायशस्वी पुरुषसिंह श्रीकृष्णने मानवरूपधारी जृम्भ, अहिरावण और विरूप नामक दैत्यको कालके गालमें भेज दिया॥ २५॥ इसी तरह कमलनयन केशवने यमुनाजीके जलमें रहनेवाले महाबली नागराज कालियको जीतकर समुद्रमें भेज दिया॥ २६॥ इन्हीं पुरुषसिंह श्रीहरिने वैवस्वत यमको जीतकर सान्दीपनिके मरे हुए पुत्रको पुनः जीवनदान दिया था॥ २७॥

एवमेष महाबाहुः शास्ता तेषां दुरात्मनाम्।
देवांश्च ब्राह्मणांश्चैव ये द्विषन्ति सदा नृप॥ २८

निहत्य नरकं भौममाहृत्य मणिकुण्डले।
देवमातुर्ददौ चैव प्रीत्यर्थं वज्रपाणिनः॥ २९

एवं सदैव दैत्यानां सुराणां च महायशाः।
भयाभयकरः कृष्णः सर्वलोककरो विभुः॥ ३०

संस्थाप्य धर्मान् मर्त्येषु यज्ञैरिष्ट्वाऽऽप्तदक्षिणैः।
कृत्वा देवार्थममितं स्वस्थानं प्रतिपत्स्यते॥ ३१

कृष्णो भोगवतीं रम्यामृषिकान्तां महायशाः।
द्वारकामात्मसात्कृत्वा समुद्रं गमयिष्यति॥ ३२

बहुरत्नसमाकीर्णां चैत्ययूपशताङ्किताम्।
द्वारकां वरुणावासं प्रवेक्ष्यति सकाननाम्॥ ३३

तां सूर्यसदनप्रख्यां मतज्ञः शार्ङ्गधन्वनः।
विसृष्टां वासुदेवेन सागरः प्लावयिष्यति॥ ३४

सुरासुरमनुष्येषु नासीन्न भविता क्वचित्।
य इमामावसेत् कश्चिदन्यो वै मधुसूदनात्॥ ३५

एवमेष दशार्हाणां विधाय विधिमुत्तमम्।
विष्णुर्नारायणः सोमः सूर्यश्च भविता स्वयम्॥ ३६

अप्रमेयस्त्वचिन्त्यश्च यथा कामचरो वशी।
मोदत्येष सदा भूतैर्बालः क्रीडनकैरिव॥ ३७

न प्रमातुं महाबाहुः शक्योऽयं मधुसूदनः।
परं ह्यपरमेतस्माद् विश्वरूपान्न विद्यते॥ ३८

श्रुतोऽयमेव शतशस्तथा शतसहस्रशः।
अन्तो हि कर्मणामस्य दृष्टपूर्वो न केनचित्॥ ३९

एवमेतानि कर्माणि शिशुमध्यगतस्तदा।
कृतवान्पुण्डरीकाक्षः सङ्कर्षणसहायवान्॥ ४०

इत्युवाच पुरा व्यासस्तपोवीर्येण चक्षुषा।
महायोगी महाबुद्धिः सर्वप्रत्यक्षदर्शिवान्॥ ४१

नरेश्वर! इस प्रकार यह महाबाहु श्रीकृष्ण उन दुरात्माओंको दण्ड देनेवाले हैं, जो देवताओं और ब्राह्मणोंसे सदा द्वेष रखते हैं॥ २८॥ इन्होंने वज्रपाणि इन्द्रकी प्रसन्नताके लिये भूमिपुत्र नरकासुरको मारकर देवमाता अदितिको उनके दोनों मणिमय कुण्डल लाकर दे दिये॥ २९॥ इस प्रकार सम्पूर्ण लोकोंके स्रष्टा, सर्वव्यापी, महायशस्वी भगवान् श्रीकृष्ण सदा ही दुराचारी दैत्योंको भय और धर्मात्मा देवताओंको अभय प्रदान करते हैं॥ ३०॥ ये मनुष्योंमें धर्मकी स्थापना करके पर्याप्त दक्षिणावाले यज्ञोंका अनुष्ठान करते हुए देवताओंके असंख्य कार्य सिद्ध करनेके अनन्तर अपने परमधामको पधारेंगे॥ ३१॥ महायशस्वी श्रीकृष्ण भोग-वैभवसे सम्पन्न रमणीय तथा ऋषियोंके लिये कमनीय द्वारकापुरीको अपने अधीन करके अन्ततोगत्वा इसे समुद्रमें डुबो देंगे॥ ३२॥ जो बहुसंख्यक रत्नोंसे व्याप्त तथा सैकड़ों चैत्यों और यूपोंसे चिह्नित है, वन-उपवनसहित उस द्वारकापुरीको वरुणालयमें निमग्न कर देंगे॥ ३३॥ शार्ङ्गधन्वा श्रीकृष्णके मतको जाननेवाला समुद्र इन भगवान् वासुदेवके द्वारा छोड़ी हुई सूर्यलोक-तुल्य तेजस्विनी द्वारकाको अपने जलमें विलीन कर लेगा॥ ३४॥ देवताओं, असुरों और मनुष्योंमें इन भगवान् मधुसूदनके सिवा दूसरा कोई ऐसा न तो हुआ है और न कभी होगा ही, जो इनके द्वारा छोड़ी गयी इस द्वारकापुरीमें निवास कर सके॥ ३५॥ इस प्रकार दशार्हवंशी यादवोंके लिये उत्तम विधिका विधान करके ये सर्वव्यापी नारायण देव स्वयं ही चन्द्रमा और सूर्यरूपसे प्रकाशित होंगे॥ ३६॥ ये अप्रमेय, अचिन्त्य, इच्छानुसार विचरनेवाले और सबको वशमें रखनेवाले हैं। जैसे बालक खिलौनोंसे प्रसन्न होता है, उसी प्रकार ये समस्त प्राणियोंके साथ क्रीडा करते हुए आनन्दमग्न होते हैं॥ ३७॥ इन महाबाहु मधुसूदनको सीमित प्रमाणोंद्वारा मापा नहीं जा सकता। यह पर और अपररूप जगत् इन विश्वरूप परमेश्वरसे भिन्न नहीं है॥ ३८॥ ये ही सैकड़ों और लाखों बार सुने गये हैं। किसीने पहले कभी इनके कर्मोंका अन्त नहीं देखा है॥ ३९॥ इस तरह बालकोंके बीचमें रहकर सङ्कर्षणसहित कमलनयन श्रीकृष्णने ये पूर्वोक्त कर्म किये थे॥ ४०॥ पूर्वकल्पके महायोगी, महाबुद्धिमान् और सब कुछ प्रत्यक्ष देखनेवाले व्यासने अपनी तपोबलसे सम्पन्न दृष्टिद्वारा देखकर यह सब कुछ बताया था॥ ४१॥

वैशम्पायन उवाच

इति संस्तूय गोविन्दं महेन्द्रवचनान्मुनिः।
यदुभिः पूजितः सर्वैर्नारदस्त्रिदिवं ययौ॥ ४२

ततस्तद् वसु गोविन्दो दिदेशान्धकवृष्णिषु।
यथार्हं पुण्डरीकाक्षो विधिवन्मधुसूदनः॥ ४३

यादवाश्च धनं प्राप्य विधिवद् भूरिदक्षिणैः।
यज्ञैरिष्ट्वा महात्मानो द्वारकामावसन् पुरीम्॥ ४४

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! इस प्रकार देवराज इन्द्रके आदेशसे भगवान् गोविन्दकी स्तुति करके नारदमुनि समस्त यादवोंसे पूजित हो स्वर्गलोकको चले गये॥ ४२॥ तदनन्तर कमलनयन मधुसूदन भगवान् गोविन्दने समस्त अन्धक और वृष्णिवंशके लोगोंको विधिपूर्वक वह सारा धन यथोचितरूपसे बाँट दिया॥ ४३॥ उस धनको पाकर महामनस्वी यादव प्रचुर दक्षिणावाले यज्ञोंका विधिपूर्वक अनुष्ठान करते हुए द्वारकापुरीमें निवास करने लगे॥ ४४॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे विष्णुपर्वणि नारदवाक्यं नाम द्व्यधिकशततमोऽध्यायः॥ १०२॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत विष्णुपर्वमें नारदजीका वाक्यविषयक एक सौ दोवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १०२॥

त्र्यधिकशततमोऽध्यायः

श्रीकृष्णकी संततिका वर्णन तथा वृष्णिवंशका उपसंहार

जनमेजय उवाच

बहूनां स्त्रीसहस्त्राणामष्टौ भार्याः प्रकीर्तिताः।
तासामपत्यान्यष्टानां भगवान् प्रब्रवीतु मे॥ १

वैशम्पायन उवाच

अष्टौ महिष्यः पुत्रिण्य इति प्राधान्यतः स्मृताः।
सर्वा वीरप्रजाश्चैव तास्वपत्यानि मे शृणु॥ २

रुक्मिणी सत्यभामा च देवी नाग्नजिती तथा।
सुदत्ता च तथा शैब्या लक्ष्मणा चारुहासिनी॥ ३

मित्रविन्दा च कालिन्दी जाम्बवत्यथ पौरवी।
सुभीमा च तथा माद्री रुक्मिणीतनयाञ्छृणु॥ ४

प्रद्युम्नः प्रथमं जज्ञे शम्बरान्तकरः शुभः।
द्वितीयश्चारुदेष्णश्च वृष्णिसिंहो महारथः॥ ५

चारुभद्रश्चारुगर्भः सुदेष्णो द्रुम एव च।
सुषेणश्चारुगुप्तश्च चारुविन्दश्च वीर्यवान्॥ ६

जनमेजयने पूछा—भगवन्! भगवान् श्रीकृष्णकी कई हजार रानियोंमेंसे आठको प्रमुख बताया गया है। उन आठोंकी संतानें कौन-कौन-सी थीं? यह आप मुझे बताइये॥ १॥

वैशम्पायनजीने कहा—राजन्! प्रधानतः आठों पटरानियाँ पुत्रवती थीं, ऐसा माना गया है। उनकी सभी संतानें वीर थीं। उन रानियोंके जो-जो संतानें हुईं, मैं बताता हूँ, सुनो॥ २॥ रुक्मिणी, सत्यभामा, देवी नाग्नजिती (सत्या), शिबिदेशकी राजकुमारी सुदत्ता, मनोहर हासवाली लक्ष्मणा, मित्रविन्दा, कालिन्दी, जाम्बवती, पौरवी और मद्रदेशकी राजकुमारी सुभीमा—ये श्रीकृष्णकी मुख्य रानियाँ थीं। इनमेंसे रुक्मिणीके पुत्रोंका वर्णन करता हूँ, सुनो॥ ३-४॥ रुक्मिणीके गर्भसे पहले शुभलक्षणसम्पन्न प्रद्युम्नका जन्म हुआ, जिन्होंने आगे चलकर शम्बरासुरका वध किया था। उनके दूसरे पुत्र चारुदेष्ण थे, जो वृष्णिवंशमें सिंहके समान पराक्रमी और महारथी वीर थे॥ ५॥ तीसरे चारुभद्र, चौथे चारुगर्भ, पाँचवें सुदेष्ण और छठे द्रुम थे, सातवें सुषेण, आठवें चारुगुप्त, नवें पराक्रमी चारुविन्द

चारुबाहुः कनीयांश्च कन्या चारुमती तथा।
जज्ञिरे सत्यभामायां भानुर्भीमरथः क्षुपः॥ ७

रोहितो दीप्तिमांश्चैव ताम्रजाक्षो जलान्तकः।
भानुर्भीमलिका चैव ताम्रपर्णी जलन्धमा॥ ८

चतस्रो जज्ञिरे तेषां स्वसारो गरुडध्वजात्।
जाम्बवत्याः सुतो जज्ञे साम्बः समितिशोभनः॥ ९

मित्रवान् मित्रविन्दश्च मित्रवत्यपि चाङ्गना।
मित्रबाहुः सुनीथश्च नाग्नजित्याः प्रजाः शृणु॥ १०

भद्रकारो भद्रविन्दः कन्या भद्रवती तथा।
सुदत्तायां तु शैब्यायां संग्रामजिदजायत॥ ११

सत्यजित् सेनजिच्चैव तथा शूरः सपत्नजित्।
सुभीमायाः सुतो माद्र्या वृकाश्वो वृकनिर्वृतिः॥ १२

कुमारो वृकदीप्तिश्च लक्ष्मणायाः प्रजाः शृणु।
गात्रवान् गात्रगुप्तश्च गात्रविन्दश्च वीर्यवान्॥ १३

जज्ञिरे गात्रवत्या च भगिन्याऽनुजया सह।
अश्रुतश्च सुतो जज्ञे कालिन्द्याः श्रुतसम्मितः॥ १४

अश्रुतं श्रुतसेनायै प्रददौ मधुसूदनः।
तं प्रदाय हृषीकेशस्तां भार्यां मुदितोऽब्रवीत्॥ १५

एष वामुभयोरस्तु दायादः शाश्वतीः समाः।
बृहत्यां तु गदं प्राहुः शैव्यायामङ्गदं सुतम्॥ १६

उत्पन्नं कुमुदं चैव श्वेतं श्वेता तथाङ्गना।
अगावहः सुमित्रश्च शुचिश्चित्ररथस्तथा॥ १७

चित्रसेनः सुदेवायाश्चित्रा चित्रवती तथा।
वनस्तम्बश्च जज्ञाते सुतः स्तम्बवनश्च ह॥ १८

निवासनोऽवनस्तम्बः कन्या स्तम्बवती तथा।
उपसन्नश्च शङ्कुश्च वज्रांशुः क्षिप्र एव च॥ १९

कौशिक्यां सुतसोमायां यौधिष्ठिर्यां युधिष्ठिरः।
कपाली गरुडश्चैव जज्ञाते चित्रयोधिनौ॥ २०

और दसवें चारुबाहु थे। चारुबाहु सबसे छोटे थे। इनके सिवा रुक्मिणीके एक कन्या भी उत्पन्न हुई थी, जिसका नाम चारुमती था, सत्यभामाके गर्भसे भानु, भीमरथ, क्षुप, रोहित, दीप्तिमान्, ताम्रजाक्ष और जलान्तक नामक पुत्र उत्पन्न हुए। भगवान् गरुड़ध्वजसे इनकी चार बहिनें उत्पन्न हुई थीं, जिनके नाम थे—भानु, भीमलिका, ताम्रपर्णी और जलन्धमा। जाम्बवतीके ज्येष्ठ पुत्र साम्ब उत्पन्न हुए, जो युद्धमें बड़ी शोभा पाते थे। इनके सिवा मित्रवान्, मित्रविन्द, मित्रबाहु और सुनीथ—ये चार पुत्र और थे। जाम्बवतीके मित्रवती नामवाली एक कन्या भी उत्पन्न हुई थी। अब नाग्नजितीकी संतानोंका वर्णन सुनो॥ ६—१०॥ नाग्नजितीके भद्रकार और भद्रविन्द नामक दो पुत्र हुए थे तथा भद्रवती नामवाली एक कन्या भी उत्पन्न हुई थी। शिबिदेशकी राजकुमारी सुदत्ताके गर्भसे संग्रामजित्, सत्यजित्, सेनजित् और शूरवीर सपत्नजित्—इन चार पुत्रोंका जन्म हुआ था। माद्री सुभीमाके वृकाश्व, वृकनिर्वृति तथा कुमार वृकदीप्ति—ये तीन पुत्र थे। अब लक्ष्मणाकी संतानोंका परिचय सुनो। गात्रवान्, गात्रगुप्त तथा पराक्रमी गात्रविन्द—ये तीन पुत्र लक्ष्मणाके गर्भसे उत्पन्न हुए थे, साथ ही इनकी छोटी बहिन गात्रवतीका भी जन्म हुआ था। कालिन्दीके दो पुत्र हुए—अश्रुत और श्रुतसम्मित। मधुसूदनने अश्रुत नामक पुत्रको श्रुतसेना नामवाली पत्नीकी गोदमें दे दिया। उसे देकर भगवान् श्रीकृष्ण बड़े प्रसन्न हुए और अपनी उस पत्नीसे बोले—'यह सदाके लिये तुम दोनोंका पुत्र रहे'। श्रीकृष्णकी बृहती नामवाली पत्नीके गर्भसे गदकी उत्पत्ति बतायी जाती है। शैव्याके गर्भसे अङ्गद, कुमुद और श्वेत नामक पुत्रकी उत्पत्ति कही गयी है। शैव्याके श्वेता नामवाली एक कन्या भी थी। सुदेवाके गर्भसे अगावह, सुमित्र, शुचि, चित्ररथ तथा चित्रसेन—ये पाँच पुत्र और चित्रा तथा चित्रवती—ये दो कन्याएँ उत्पन्न हुई थीं। वनस्तम्ब, स्तम्बवन, निवासन तथा अवनस्तम्ब—ये चार पुत्र और स्तम्बवती नामवाली कन्या—इन सबकी उत्पत्ति कौशिकीके गर्भसे हुई थी। उपसन्न, शङ्कु, वज्रांशु और क्षिप्र—ये चार पुत्र सुतसोमाके गर्भसे उत्पन्न हुए थे। यौधिष्ठिरीके गर्भसे युधिष्ठिर नामक पुत्रका जन्म हुआ था। इसके सिवा दो पुत्र और उत्पन्न हुए थे—कपाली तथा गरुड। ये दोनों ही विचित्र रीतिसे युद्ध करनेवाले थे॥ ११—२०॥

एवमादीनि पुत्राणां सहस्राणि निबोध मे।
दशायुतं समाख्याता वासुदेवस्य ते सुताः॥ २१

अयुतानि तथा चाष्टौ शूरा रणविशारदाः।
जनार्दनस्य प्रसवः कीर्तितोऽयं तथा मया॥ २२

प्रद्युम्नस्य सुतो जज्ञे वैदर्भ्यां राजसत्तम।
अनिरुद्धो रणेऽरुद्धो जज्ञे स मृगकेतनः॥ २३

रेवत्यां बलदेवस्य जज्ञाते निशठोल्मुकौ।
भ्रातरौ देवसंकाशावुभौ पुरुषसत्तमौ॥ २४

सुतनुश्च सुतारा च शौरेरास्तां परिग्रहः।
पौण्ड्रकः कपिलश्चैव वसुदेवस्य तौ सुतौ॥ २५

तारायां कपिलो जज्ञे पौण्ड्रश्च सुतनोः सुतः।
तयोर्नृपोऽभवत् पौण्ड्रः कपिलश्च वनं ययौ॥ २६

तुर्यां समभवद् वीरो वसुदेवान्महाबलः।
जरा नाम निषादानां प्रभुः सर्वधनुष्मताम्॥ २७

काश्या सुपार्श्वं तनयं लेभे साम्बात् तरस्विनम्।
सानुर्जज्ञेऽनिरुद्धस्य वज्रः सानोरजायत॥ २८

वज्राज्जज्ञे प्रतिरथः सुचारुस्तस्य चात्मजः।
अनमित्राच्छिनिर्जज्ञे कनिष्ठाद् वृष्णिनन्दनात्॥ २९

शिनेस्तु सत्यवाग् जज्ञे सत्यकश्च महारथः।
सत्यकस्यात्मजः शूरो युयुधानस्त्वजायत॥ ३०

असङ्गो युयुधानस्य मणिस्तस्याभवत् सुतः।
मणेर्युगन्धरः पुत्र इति वंशः समाप्यते॥ ३१

ये तथा इसी तरह और भी सहस्रों पुत्र श्रीकृष्णसे उत्पन्न हुए थे। इस बातको तुम मेरे द्वारा जान लो। भगवान् वासुदेवके वे पुत्र एक लाख अस्सी हजार बताये गये हैं। वे सब-के-सब रण-कर्म-विशारद तथा शूरवीर थे। इस प्रकार मैंने तुमसे भगवान् जनार्दनकी संततिका वर्णन किया है॥ २१-२२॥ नृपश्रेष्ठ! प्रद्युम्नके विदर्भराजकुमारी रुक्मवतीके गर्भसे अनिरुद्ध नामक पुत्रका जन्म हुआ, जिसकी गतिको युद्धमें कोई रोक नहीं सकता था। अनिरुद्धकी ध्वजापर मृगका चिह्न था॥ २३॥ बलदेवजीके रेवतीके गर्भसे दो पुत्र उत्पन्न हुए, जिनके नाम थे निशठ और उल्मुक। ये दोनों भाई देवताओंके समान तेजस्वी तथा पुरुषोंमें श्रेष्ठ थे॥ २४॥ वसुदेवके दो पत्नियाँ और थीं—सुतनु तथा सुतारा। इन दोनोंके गर्भसे वसुदेवके दो पुत्र हुए—पौण्ड्रक तथा कपिल॥ २५॥ इनमेंसे कपिल तो सुताराके गर्भसे उत्पन्न हुआ था और पौण्ड्रक सुतनुका पुत्र था। उन दोनों भाइयोंमेंसे पौण्ड्रक तो राजा हुआ और कपिल वनको चला गया॥ २६॥ वसुदेवसे उनकी चतुर्थ वर्णवाली भार्यासे एक महाबली वीरका जन्म हुआ था, जिसका नाम था जरा। वह समस्त धनुर्धर निषादोंका स्वामी था॥ २७॥ काश्याने साम्बसे सुपार्श्व नामक पुत्र प्राप्त किया, जो महान् वेगशाली था। अनिरुद्धके सानु नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। सानुसे वज्रका जन्म हुआ॥ २८॥ वज्रसे प्रतिरथ उत्पन्न हुआ। प्रतिरथके पुत्रका नाम सुचारु था। वृष्णिके छोटे पुत्र अनमित्रसे शिनिका जन्म हुआ॥ २९॥ शिनिसे महारथी सत्यवादी सत्यक उत्पन्न हुए। सत्यकसे उनके शूरवीर पुत्र युयुधान (सात्यकि)-का जन्म हुआ॥ ३०॥ युयुधानका पुत्र असङ्ग और असङ्गका पुत्र मणि हुआ। मणिके पुत्रका नाम युगन्धर था। इस प्रकार यहाँ वंशका वर्णन समाप्त किया जाता है॥ ३१॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे विष्णुपर्वणि वृष्णिवंशानुकीर्तने त्र्यधिकशततमोऽध्यायः॥ १०३॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत विष्णुपर्वमें वृष्णिवंशका वर्णनविषयक एक सौ तीनवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १०३॥

चतुरधिकशततमोऽध्यायः

प्रद्युम्नका जन्म, शम्बरासुरद्वारा प्रद्युम्नका सूतिकागृहसे अपहरण, प्रद्युम्न-मायावती-संवाद और प्रद्युम्नका शम्बरासुरके सौ पुत्रोंके साथ युद्ध

जनमेजय उवाच

य एष भवता पूर्वं शम्बरघ्नेत्युदाहृतः।
प्रद्युम्नः स कथं जघ्ने शम्बरं तद् ब्रवीहि मे॥ १

वैशम्पायन उवाच

रुक्मिण्यां वासुदेवस्य लक्ष्म्यां कामो धृतव्रतः।
शम्बरान्तकरो जज्ञे प्रद्युम्नः कामदर्शनः।
सनत्कुमार इति यः पुराणे परिगीयते॥ २

तं सप्तरात्रे सम्पूर्णे निशीथे सूतिकागृहात्।
जहार कृष्णस्य सुतं शिशुं वै कालशम्बरः॥ ३

विदितं तस्य कृष्णस्य देवमायानुवर्तिनः।
ततो न निगृहीतः स दानवो युद्धदुर्मदः॥ ४

स मृत्युना परीतायुर्मायया संजहार तम्।
दोर्भ्यामुत्क्षिप्य नगरं स्वं निनाय महासुरः॥ ५

अनपत्या तु तस्यासीद् भार्या रूपगुणान्विता।
नाम्ना मायावती नाम मायेव शुभदर्शना॥ ६

ददौ तं वासुदेवस्य पुत्रं पुत्रमिवात्मजम्।
तस्या महिष्या मायिन्या दानवः कालचोदितः॥ ७

मायावती तु तं दृष्ट्वा सम्प्रहृष्टतनूरुहा।
हर्षेण महता युक्ता पुनः पुनरुदैक्षत॥ ८

अथ तस्या निरीक्षन्त्याः स्मृतिः प्रादुर्बभूव ह।
अयं स मम कान्तोऽभूत् स्मृत्वैवं चान्वचिन्तयत्॥ ९

अयं स नाथो भर्ता मे यस्यार्थेऽहं दिवानिशम्।
चिन्ताशोकार्णवे मग्ना न विन्दामि रतिं क्वचित्॥ १०

जनमेजयने पूछा—मुने! आपने पहले जो यह बताया है कि प्रद्युम्नने शम्बरासुरका वध किया था, उसके विषयमें मैं यह जानना चाहता हूँ कि प्रद्युम्नने किस प्रकार शम्बरासुरका वध किया था, यह मुझे बताइये॥ १॥

वैशम्पायनजीने कहा—राजन्! भगवान् वासुदेवकी लक्ष्मीस्वरूपा रुक्मिणीके गर्भसे उत्तम व्रतधारी कामदेव ही प्रद्युम्नरूपसे उत्पन्न हुए, जो कामदेवके समान ही मनोहर दिखायी देते थे। उन्होंने ही शम्बरासुरका विनाश किया था। किन्हीं-किन्हींके मतमें जो पुराणमें सनत्कुमार कहे जाते हैं, वे ही प्रद्युम्नरूपसे प्रकट हुए थे॥ २॥ प्रद्युम्नके जन्मके पश्चात् सात रात पूर्ण हो जानेपर कालरूपी शम्बरासुरने श्रीकृष्णके उस शिशु पुत्रको आधी रातके समय सूतिकागृहसे हर लिया॥ ३॥ देवमायाका अनुसरण करनेवाले श्रीकृष्णको भविष्यमें होनेवाली सारी बातें विदित थीं, इसलिये उन्होंने उस रणदुर्मद दानवको उस समय बंदी नहीं बनाया॥ ४॥ मृत्युने उसकी आयुपर अधिकार कर लिया था, इसलिये उस महान् असुरने मायासे उस बालकको हर लिया और उसे दोनों हाथोंसे ऊपर उठाये हुए वह अपने नगरमें ले गया॥ ५॥ उसकी रूप और गुणसे युक्त एक भार्या थी, जिसके कोई संतान नहीं थी। उसका नाम था मायावती, जो मायाके समान ही सुन्दर दिखायी देती थी॥ ६॥ उस कालप्रेरित दानवने भगवान् श्रीकृष्णके उस पुत्रको अपने पुत्रके समान मानकर अपनी उस मायावती भार्याके हाथमें दे दिया॥ ७॥ उस बालकको देखते ही मायावतीके शरीरमें हर्षजनित रोमाञ्च हो आया। वह बड़े हर्षके साथ बारम्बार उसकी ओर देखने लगी॥ ८॥ बालकका निरीक्षण करती हुई मायावतीके हृदयमें पूर्वकालकी स्मृति जाग उठी। 'यही तो पूर्वकालमें मेरे प्रियतम पति थे' यह स्मरण करके वह इस प्रकार सोचने लगी—॥ ९॥ 'ये वे ही मेरे स्वामी एवं भर्ता हैं, जिनके लिये मैं दिन-रात चिन्ता और शोकके समुद्रमें डूबी रहकर कभी कहीं भी चैन नहीं पाती हूँ॥ १०॥

अयं भगवता पूर्वं देवदेवेन शूलिना।
खेदितेन कृतोऽनङ्गो दृष्टो जात्यन्तरे मया॥ ११

कथमस्य स्तनं दास्ये मातृभावेन जानती।
भर्तुर्भार्या त्वहं भूत्वा वक्ष्ये वा पुत्र इत्युत॥ १२

एवं संचिन्त्य मनसा धात्र्यास्तं सा समर्पयत्।
रसायनप्रयोगैश्च शीघ्रमेव व्यवर्धयत्॥ १३

धात्र्याः सकाशात् स च तां शृण्वन् रुक्मिणिनन्दनः।
मायावतीमविज्ञानान्मेने स्वामेव मातरम्॥ १४

सा च तं वर्द्धयामास कार्ष्णिं कमललोचनम्।
मायाश्चास्मै ददौ सर्वा दानवीः काममोहिता॥ १५

स यदा यौवनस्थस्तु प्रद्युम्नः कामदर्शनः।
चिकीर्षितज्ञो नारीणां सर्वास्त्रविधिपारगः॥ १६

तं सा मायावती कान्तं कामयामास कामिनी।
इङ्गितैश्चापि वीक्षन्ती प्रालोभयत सस्मिता।
प्रसज्जन्तीं तु तां देवीं बभाषे चारुहासिनीम्॥ १७

प्रद्युम्न उवाच

मातृभावं व्यतिक्रम्य किमेवं वर्तसेऽन्यथा।
अहो दुष्टस्वभावासि स्त्रीत्वे चपलमानसा॥ १८

या पुत्रभावमुत्सृज्य मयि लोभात् प्रवर्तसे।
न तु तेऽहं सुतः सौम्ये कोऽयं शीलविपर्ययः॥ १९

तत्त्वमिच्छाम्यहं देवि कथितं को न्वयं विधिः।
विद्युत्सम्पातचपलः स्वभावः खलु योषिताम्॥ २०

या नरेषु प्रसज्जन्ते नगाग्रेषु घना इव।
यदि तेऽहं सुतः सौम्ये यदि वा नात्मजः शुभे॥ २१

'प्राचीन कालमें इनके द्वारा खेदमें डाले जानेपर देवाधिदेव त्रिशूलधारी भगवान् शङ्करने इन्हें अनङ्ग बना दिया था (इनके शरीरको जलाकर भस्म कर दिया था)। आज दूसरे जन्ममें इनका मुझे दर्शन हुआ है॥ ११॥ 'जब मैं इस रहस्यको जानती हूँ, तब मातृभावसे इनके मुखमें अपना स्तन कैसे दूँगी। ये मेरे पति हैं, मैं इनकी पत्नी होकर इन्हें पुत्र कैसे कहूँगी'॥ १२॥ मन-ही-मन ऐसा सोचकर मायावतीने बालक प्रद्युम्नको एक धायके हाथमें सौंप दिया तथा रसायनके प्रयोगोंसे उन्हें शीघ्र ही बड़ा कर दिया॥ १३॥ रुक्मिणीनन्दन प्रद्युम्न धायसे मायावतीकी प्रशंसा सुनकर उसे अनजानमें अपनी ही माता मानने लगे॥ १४॥ मायावतीने कमलनयन श्रीकृष्ण-कुमारको जब बड़ा कर लिया, तब उनके प्रति कामभावसे मोहित होकर उन्हें समस्त दानवी मायाओंकी शिक्षा दे दी॥ १५॥ प्रद्युम्न जब युवावस्थामें स्थित हुए, तब साक्षात् कामदेवके समान दिखायी देने लगे। वे स्त्रियोंके मनोभावोंके ज्ञाता और सम्पूर्ण अस्त्रोंके प्रयोगमें पारंगत थे॥ १६॥ उस समय मायावतीने कामवती नारीकी भाँति अपने उस प्रियतम पतिकी कामना की। वह मुसकराती हुई देखने और अपने हाव-भावोंसे उन्हें लुभाने लगी। उस मनोहर हासवाली देवी मायावतीको अपने प्रति आसक्त होती देख वे इस प्रकार बोले॥ १७॥

प्रद्युम्नने कहा—अरी! तू मातृभावका उल्लङ्घन करके इस तरह विपरीत बर्ताव कैसे कर रही है? अहो! तू दुःशीला जान पड़ती है। तेरा चित्त अपने स्त्रीत्वको लेकर चञ्चल हो उठा है॥ १८॥ तभी तो तू मेरे प्रति पुत्रभावका परित्याग करके कामलोभसे प्रेरित हो विपरीत बर्ताव कर रही है। इससे तो जान पड़ता है, मैं तेरा पुत्र नहीं हूँ। सौम्ये! तेरे शील-स्वभावमें यह उलट-फेर कैसा?॥ १९॥ देवि! मैं यथार्थ बात जानना चाहता हूँ, तू ठीक-ठीक बता दे कि तेरा यह व्यवहार कैसा है? निश्चय ही नारियोंका स्वभाव विद्युत्पातके समान चपल होता है। जैसे बादल पर्वतशिखरोंसे ससक्त होते हैं, उसी तरह काममोहित स्त्रियाँ सभी पुरुषोंपर आसक्त हो जाती हैं। सौम्ये! शुभे! यदि मैं तेरा पुत्र होऊँ तो वह बता दे अथवा यदि तेरा पुत्र न भी होऊँ तो वह भी बता दे।

कथितं तत्त्वमिच्छामि किमिदं ते चिकीर्षितम्।
एवमुक्ता तु सा भीरुः कामेन व्यथितेन्द्रिया॥ २२

प्रियं प्रोवाच वचनं विविक्ते केशवात्मजम्।
न त्वं मम सुतः कान्त नापि ते शम्बरः पिता॥ २३

रूपवानसि विक्रान्तस्त्वं जात्या वृष्णिनन्दन।
पुत्रस्त्वं वासुदेवस्य रुक्मिण्यानन्दवर्धनः॥ २४

दिवसे सप्तमे बालो जातमात्रोऽपवाहितः।
सूतिकागारमध्यात् त्वं शिशुरुत्तानशायितः॥ २५

मम भर्त्रा हृतोऽसि त्वं बलवीर्यप्रवर्तिना।
पितुस्ते वासुदेवस्य धर्षयित्वा गृहं महत्॥ २६

पाकशासनकल्पस्य हृतस्त्वं शम्बरेण ह।
सा च ते करुणं माता त्वां बालमनुशोचती॥ २७

अत्यर्थं तप्यते वीर विवत्सा सौरभी यथा।
सोऽपि शक्रादपि महान् पिता ते गरुडध्वजः॥ २८

इह त्वां नाभिजानाति बालमेवापवाहितम्।
कान्त वृष्णिकुमारस्त्वं न हि त्वं शम्बरात्मजः॥ २९

वीर नैवंविधान् पुत्रान् दानवा जनयन्ति हि।
अतोऽहं कामयामि त्वां न हि त्वं जनितो मया॥ ३०

रूपं ते सौम्य पश्यन्ती सीदामि हृदि दुर्बला।
यन्मे व्यवसितं कान्त यत् तु मे हृदि वर्तते॥ ३१

तन्मे मनसि वार्ष्णेय प्रतिसंधातुमर्हसि।
एष ते कथितः सर्वः सद्भावस्त्वयि यो मम॥ ३२

यथा न मम पुत्रस्त्वं न पुत्रः शम्बरस्य च।
श्रुत्वैवमखिलं सर्वं मायावत्या प्रभाषितम्॥ ३३

चक्रायुधात्मजः क्रुद्धः शम्बरं स समाह्वयत्।
सर्वमायास्वभिज्ञोऽसौ नाम विश्राव्य चात्मनः॥ ३४

मैं तेरे मुखसे यथार्थ बात सुनना चाहता हूँ। तू यह क्या करना चाहती है। उनके इस प्रकार पूछनेपर भीरुहृदया मायावती, जिसकी सारी इन्द्रियाँ कामसे व्यथित हो उठी थीं, एकान्तमें अपने प्रियतम केशवकुमारसे इस प्रकार बोली—'प्राणवल्लभ! तुम मेरे पुत्र नहीं हो और शम्बरासुर भी तुम्हारा पिता नहीं है॥ २०—२३॥ 'वृष्णिकुलनन्दन! तुम जन्मसे ही रूपवान् और पराक्रमी हो। वसुदेवनन्दन श्रीकृष्णके पुत्र हो और माता रुक्मिणीका आनन्द बढ़ानेवाले उनके लाड़ले लाल हो॥ २४॥ 'तुम्हारे जन्मके सातवें दिन जब कि तुम बालशिशुके रूपमें शय्यापर उतान सुलाये गये थे, मेरा भरण-पोषण करनेवाले तथा बल और पराक्रमपूर्वक किसी कार्यमें प्रवृत्त होनेवाले शम्बरासुरने तुम्हारे पिता भगवान् वासुदेवके विशाल गृहको तिरस्कृत करके सूतिकागारके भीतरसे तुम्हारा अपहरण कर लिया॥ २५-२६॥ 'तुम इन्द्रके समान तेजस्वी पिताके पुत्र हो तो भी शम्बरासुरने तुम्हें हर लिया। वीर! तुम्हारी माता रुक्मिणी भी तुम-जैसे बालकके लिये निरन्तर शोकमग्न रहकर करुण विलाप करती और अत्यन्त संतप्त होती हैं, ठीक उसी तरह जैसे अपने बछड़ेसे बिछुड़ी हुई गाय उसके लिये क्रन्दन करती रहती है। तुम्हारे पिता भगवान् गरुडध्वज इन्द्रसे भी महान् हैं, किंतु उन्हें भी इस बातका पता नहीं है कि तुम बाल्यावस्थामें ही यहाँ हर लाये गये हो। प्रियतम! तुम वृष्णिकुलके कुमार हो, शम्बरके पुत्र नहीं। वीर! दानव तुम-जैसे पुत्रोंको जन्म नहीं देते। सौम्य! इसीलिये मैं तुम्हें चाहती हूँ; क्योंकि मैंने तुम्हें उत्पन्न नहीं किया है। मैं दुर्बल अबला तुम्हारे मनोहर रूपका दर्शन करके मन-ही-मन कामसे संतप्त हो रही हूँ। प्राणवल्लभ! वृष्णिनन्दन! मैंने जो कुछ करनेका निश्चय किया है, मेरे हृदयमें जो भाव है, उसे तुम मेरे मनोमन्दिरमें निवास करके पूर्ण करो। तुम्हारे प्रति मेरे हृदयमें जो सद्भाव था, वह सब मैंने तुम्हें बता दिया, न तो तुम मेरे पुत्र हो और न शम्बरासुरके ही'। मायावतीकी कही हुई यह सारी बात सुनकर भगवान् चक्रपाणिके पुत्र प्रद्युम्न कुपित हो उठे। वे समस्त मायाओंके ज्ञाता थे, उन्होंने अपना नाम सुनाकर शम्बरासुरको युद्धके लिये ललकारनेका निश्चय किया॥ २७—३४॥

अहो दानवदुष्टात्मा केशवस्यात्मजं शिशुम्।
हरते निर्भयश्चैव भयमद्य करोम्यहम्॥ ३५
कथं वै क्रोधमागच्छेद् वध्यते वा कथं मया।
प्रथमं किं करिष्यामि येन कुप्यति मन्दधीः॥ ३६
अस्ति चास्य ध्वजं चित्रं सिंहकेतुविभूषितम्।
तोरणं गृहमासाद्य उच्छ्रितं मेरुशृङ्गवत्॥ ३७
एतदुन्मथ्य पातिष्ये भल्लेन निशितेन वै।
ध्वजच्छेदं विदित्वाथ शम्बरो निष्क्रमिष्यति॥ ३८
ततो युद्धेन हत्वाऽऽजौ गन्तास्मि द्वारकां प्रति।
इत्युक्त्वा सज्यमाचक्रे सशरं चापमोजसा॥ ३९
चिच्छेद ध्वजरत्नं तु शम्बरस्य महाभुजः।
तच्छ्रुत्वा तु ध्वजच्छेदं प्रद्युम्नेन महात्मना॥ ४०
क्रुद्धस्त्वाज्ञापयामास पुत्रान् वै कालशम्बरः।
जिघांसध्वं महावीरा रौक्मिणेयं त्वरान्विताः॥ ४१
नैवं वै द्रष्टुमिच्छामि मम विप्रियकारकम्।
श्रुत्वा तु शम्बराद् वाक्यं सुतास्ते शम्बरस्य ह॥ ४२
संनद्धा निर्ययुर्हृष्टाः प्रद्युम्नवधकाङ्क्षया।
चित्रसेनोऽतिसेनश्च विष्वक्सेनो गदस्तथा॥ ४३
श्रुतसेनः सुषेणस्तु सोमसेनो मनस्तथा।
सेनानी सैन्यहन्ता च सेनाहा सैनिकस्तथा॥ ४४
सेनस्कन्धोऽतिसेनश्च सेनको जनकः सुतः।
सकालो विकलः शान्तः स शातान्तकरोऽशुचिः॥ ४५
कुम्भकेतुः सुदंष्ट्रश्च केशिरित्येवमादयः।
चक्रतोमरशूलानि पट्टिशानि परश्वधान्॥ ४६
गृहीत्वा निर्ययुर्हृष्टा मन्युना परमाप्लुताः।
आह्वयंस्तममित्रं वै तस्थुः संग्राममूर्धनि॥ ४७
प्रद्युम्नस्तु महाबाहू रथमारुह्य सत्वरम्।
निर्ययौ चापमादाय संग्रामाभिमुखस्तदा॥ ४८
ततः प्रवृत्तं युद्धं तु तुमुलं लोमहर्षणम्।
शम्बरस्य तु पुत्राणां केशवस्य च सूनुना॥ ४९
ततो देवाः सगन्धर्वाः समहोरगचारणाः।
देवराजं पुरस्कृत्य विमानाग्रेषु धिष्ठिताः॥ ५०
नारदस्तुम्बुरुश्चैव हाहाहूहूश्च गायनाः।
अप्सरोभिः परिवृताः सर्वे तत्रावतस्थिरे॥ ५१

वे मन-ही-मन कहने लगे,'अहो! इस दुष्टात्मा दानवने केशवके शिशु पुत्रका अपहरण किया है तो भी यह निर्भय बना बैठा है और मैं आज इससे भय मान रहा हूँ॥ ३५॥ 'अब यह किस प्रकार मेरे ऊपर कुपित होगा और कैसे मेरे द्वारा इसका वध किया जायगा? मैं पहले क्या करूँ, जिससे यह मन्दबुद्धि दानव मुझपर कुपित हो?॥ ३६॥ 'इसके यहाँ एक विचित्र ध्वज है, जो सिंहके चिह्नसे युक्त पताकाद्वारा विभूषित है। वह ध्वज बाहरी फाटकपर लगा है और मेरुपर्वतके शिखरके समान ऊँचा जान पड़ता है॥ ३७॥ 'आज मैं अपने तीखे भल्लसे इसको काट गिराऊँगा। अपने ध्वजको खण्डित हुआ जानकर शम्बरासुर युद्धके लिये निकलेगा॥ ३८॥ 'तब मैं युद्धके द्वारा समराङ्गणमें इसका वध करके द्वारकापुरीको जाऊँगा।' मन-ही-मन ऐसा कहकर प्रद्युम्नने बलपूर्वक धनुषपर प्रत्यञ्चा चढ़ायी और उसपर बाणका संधान किया॥ ३९॥ उस बाणके द्वारा महाबाहु प्रद्युम्नने शम्बरासुरके ध्वज-रत्नको काट डाला। महात्मा प्रद्युम्नके द्वारा ध्वजके खण्डित होनेका समाचार सुनकर कुपित हुए कालशम्बरने अपने पुत्रोंको आज्ञा दी,'महावीरो! इस रुक्मिणीपुत्रको तुरंत मार डालनेकी चेष्टा करो। इसने मेरा अप्रिय किया है, अब मैं इस तरह इसे जीवित देखना नहीं चाहता'। शम्बरका यह आदेश सुनकर उसके पुत्र कवच आदिसे सुसज्जित हो प्रद्युम्नके वधकी इच्छासे हर्षपूर्वक निकले। चित्रसेन, अतिसेन, विष्वक्सेन, गद, श्रुतसेन, सुषेण, सोमसेन, मन, सेनानी, सैन्यहन्ता, सेनाहा, सैनिक, सेनस्कन्ध, अतिसेन, सेनक, जनक, सुत, सकाल, विकल, शान्त, शातान्तकर, अशुचि, कुम्भकेतु, सुदंष्ट्र और केशि आदि उनके नाम थे। वे सब-के-सब हर्ष और उत्साहसे परिपूर्ण हो प्रद्युम्नके प्रति क्रोधसे भरकर चक्र, तोमर, शूल, पट्टिश तथा फरसे लिये निकले एवं अपने उस शत्रुको ललकारते हुए युद्धके मुहानेपर खड़े हो गये॥ ४०—४७॥ उस समय महाबाहु प्रद्युम्न तुरंत ही रथपर आरूढ़ हो धनुष लेकर युद्धक्षेत्रकी ओर चल दिये॥ ४८॥ तदनन्तर शम्बरासुरके पुत्रोंका केशवकुमारके साथ भयंकर एवं रोमाञ्चकारी युद्ध आरम्भ हो गया॥ ४९॥ फिर तो सब देवता, गन्धर्व, बड़े-बड़े नाग और चारण देवराज इन्द्रको आगे करके विमानोंके अग्रभागोंमें स्थित हुए॥ ५०॥ नारद, तुम्बुरु, हाहा और हूहू—ये गान करनेवाले गन्धर्व अप्सराओंसे घिरकर सभी उन विमानोंमें स्थित थे॥ ५१॥

देवराजप्रतीहारो गन्धर्वश्चित्रमद्भुतम्।
शशंस देवराजाय वज्रिणे तद्विचेष्टितम्॥ ५२

देवराज इन्द्रका प्रतीहार गन्धर्व वज्रधारी इन्द्रको प्रद्युम्नकी विचित्र एवं अद्‌भुत चेष्टाएँ सुनाने लगा— ॥ ५२ ॥

शम्बरस्य शतं पुत्रा एकः कृष्णस्य चात्मजः।
बहूनां युध्यतामेष कथं विजयमाप्नुयात्॥ ५३

'एक ओर तो शम्बरासुरके सौ पुत्र हैं और दूसरी ओर श्रीकृष्णके एकमात्र पुत्र प्रद्युम्न हैं, बहुत-से योद्धाओंके सामने ये अकेले ही कैसे विजय पा सकते हैं'॥ ५३ ॥

तच्छ्रुत्वा भाषितं तस्य प्रहस्य बलसूदनः।
उवाच वचनं चेदं शृणु योऽस्य पराक्रमः॥ ५४

उसका वह कथन सुनकर बलसूदन इन्द्र जोर-जोरसे हँस पड़े और बोले—'प्रद्युम्नका जो पराक्रम है, उसका वर्णन सुनो॥ ५४॥

कामोऽयं पूर्वदेहे तु हरक्रोधाग्निना हतः।
रत्या प्रसादितो देवः कामपत्न्या त्रिलोचनः।
परितुष्टेन देवेन वरमस्याः प्रदीयते॥ ५५

'ये कामदेव हैं,जो पूर्वशरीरमें रहते समय भगवान् शङ्करकी क्रोधाग्निसे भस्म हो गये थे, फिर कामपत्नी रतिने महादेवजीको प्रसन्न किया। प्रसन्न हुए महादेवजीने उसे वर दिया॥ ५५ ॥

विष्णुर्मानुषदेहस्तु द्वारकायां भविष्यति।
तस्य पुत्रत्वमस्यैव भविष्यति न संशयः॥ ५६

'भगवान् विष्णु मानव-शरीर धारण करके जब द्वारकामें निवास करेंगे, उस समय तुम्हारे स्वामी कामदेव उनके पुत्र होंगे, इसमें संशय नहीं है॥ ५६ ॥

अनङ्ग इति विख्यातस्त्रैलोक्ये तु महायशाः।
तत्रोत्पन्नो महातेजाः शम्बरं घातयिष्यति॥ ५७

'इस समय ये महायशस्वी कामदेव तीनों लोकोंमें अनङ्ग नामसे विख्यात होंगे और द्वारकामें उत्पन्न होनेपर महान् तेजसे सम्पन्न हो शम्बरासुरका वध करेंगे॥ ५७ ॥

सप्ताहे जातमात्रे तु रुक्मिण्याः क्रोडसंस्थितम्।
आस्थाय शम्बरो मायां प्रद्युम्नमपनेष्यति॥ ५८

'उनके जन्मसे केवल सात दिनका समय व्यतीत होनेपर रुक्मिणीकी गोदमें स्थित हुए प्रद्युम्नको मायाका आश्रय ले शम्बरासुर हर ले जायगा॥ ५८ ॥

तद् गच्छ शम्बरगृहं भार्या मायावती भव।
मायारूपप्रतिच्छन्ना शम्बरं मोहयिष्यसि॥ ५९

'अतः तू शम्बरासुरके घर जा और उसकी मायामयी भार्या बन जा। मायासे अपने यथार्थ रूपको छिपाकर तू शम्बरासुरको मोहमें डाले रहेगी॥ ५९ ॥

तत्र त्वमात्मनः कान्तं बालरूपं विवर्धय।
प्राप्तयौवनदेहस्तु शम्बरं निहनिष्यति॥ ६०

'वहीं तुम्हें अपने प्रियतम कामदेव बालरूपमें प्राप्त होंगे। धायद्वारा उनका पालन-पोषण करके तुम उन्हें बड़ा बनाना। जब वे तरुण शरीर प्राप्त कर लेंगे, उस समय शम्बरासुरका वध करेंगे॥ ६० ॥

ततस्त्वया सहानङ्गो द्वारकां वै गमिष्यति।
रमिष्यति त्वया सार्द्धं शैलपुत्र्या यथा ह्यहम्॥ ६१

'तदनन्तर कामदेव तुम्हारे साथ द्वारकामें जायँगे और जैसे पार्वतीके साथ मैं रहता हूँ, उसी प्रकार तुम्हारे साथ वे आनन्दपूर्वक रहेंगे'॥ ६१ ॥

एवमादिश्य देवेशो जगाम पुरुषोत्तमः।
कैलासं मेरुसंकाशं सिद्धचारणसेवितम्॥ ६२

'ऐसा आदेश देकर देवेश्वर पुरुषोत्तम शिव सिद्ध-चारण-सेवित कैलासपर्वतको, जो मेरुगिरिके समान है, चले गये॥ ६२ ॥

कामपत्नी प्रणम्याथ देवदेवमुमापतिम्।
जगाम शम्बरगृहं कालस्यान्तं प्रतीक्षती॥ ६३

'इसके बाद कामपत्नी रति देवाधिदेव उमा-पतिको प्रणाम करके कालके अन्तकी प्रतीक्षा करती हुई शम्बरासुरके घरको चली गयी॥ ६३ ॥

एवमेष महाबाहुः शम्बरं निहनिष्यति।
सह पुत्रेण प्रद्युम्नो हन्ता तस्य दुरात्मनः॥ ६४

'इस प्रकार ये महाबाहु प्रद्युम्न पुत्रोंसहित शम्बरासुरका संहार कर डालेंगे; क्योंकि वे ही इस दुरात्माका अन्त करनेवाले हैं'॥ ६४॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे विष्णुपर्वणि शम्बरवधे चतुरधिकशततमोऽध्यायः॥ १०४॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत विष्णुपर्वमें शम्बरासुरका वधविषयक एक सौ चारवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १०४॥

पञ्चाधिकशततमोऽध्यायः

प्रद्युम्नद्वारा शम्बरासुरकी सेना और मन्त्रियोंका संहार

वैशम्पायन उवाच

ततः प्रवृद्धं युद्धं तु तुमुलं लोमहर्षणम्।
शम्बरस्य तु पुत्राणां रुक्मिण्या नन्दनस्य च॥ १

ततः क्रुद्धा महादैत्याः शरशक्तिपरश्वधान्।
चक्रतोमरकुन्तानि भुशुण्डीर्मुसलानि च॥ २

युगपत् पातयन्ति स्म प्रद्युम्नोपरि वेगिताः।
कार्ष्णायनिस्तु संक्रुद्धः सर्वास्त्रधनुषश्च्युतैः॥ ३

एकैकं पञ्चभिः क्रुद्धश्चिच्छेद रणमूर्धनि।
पुनरेवासुराः क्रुद्धाः सर्वे ते कृतनिश्चयाः॥ ४

ववृषुः शरजालानि प्रद्युम्नवधकाङ्क्षया।
ततः प्रकुपितोऽनङ्गो धनुरादाय सत्वरः॥ ५

शम्बरस्य जघानाशु दश पुत्रान् महौजसः।
ततोऽपरेण भल्लेन कुपितः केशवात्मजः॥ ६

चिच्छेदाशु शिरस्तस्य चित्रसेनस्य वीर्यवान्।
ततस्ते हतशेषास्तु समेत्य समयुद्ध्यत॥ ७

शरवर्षं विमुञ्चन्तो ह्यभ्यधावञ्जिघांसितुम्।
ततः संधाय बाणांस्ते विमुञ्चन्तो रणोत्सुकाः॥ ८

क्रीडन्निव महातेजाः शिरांस्येषामपातयत्।
निहत्य समरे सर्वाञ्छतमुत्तमधन्विनाम्॥ ९

प्रद्युम्नः समराकाङ्क्षी तस्थौ संग्राममूर्धनि।
हतं पुत्रशतं श्रुत्वा शम्बरः क्रोधमादधे॥ १०

सूतं संचोदयामास रथं मे सम्प्रयोजय।
राज्ञो वाक्यं निशम्याथ प्रणम्य शिरसा भुवि॥ ११

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! तत्पश्चात् शम्बरासुरके पुत्रों तथा रुक्मिणीनन्दन प्रद्युम्नका घोर रोमाञ्चकारी युद्ध आरम्भ हुआ॥ १॥ उस समय क्रोधमें भरे हुए बड़े-बड़े वेगशाली दैत्य एक ही साथ प्रद्युम्नपर बाण, शक्ति, फरसे, चक्र, तोमर, कुन्त, भुशुण्डी और मुसलोंकी वर्षा करने लगे। यह देख श्रीकृष्णकुमार प्रद्युम्न अत्यन्त कुपित हो उठे और अपने सर्वास्त्रवर्षी धनुषसे छूटे हुए पाँच-पाँच बाणोंद्वारा उन्होंने युद्धके मुहानेपर शत्रुओंके प्रत्येक अस्त्रको क्रोधपूर्वक काट डाला। तब वे सभी असुर पुनः कुपित हो युद्धके लिये दृढ़ निश्चय करके प्रद्युम्नके वधकी इच्छासे बाणसमूहोंकी वर्षा करने लगे। इससे अनङ्गस्वरूप प्रद्युम्नका क्रोध बहुत बढ़ गया। उन्होंने तुरंत ही धनुष हाथमें लेकर अपने बाणोंद्वारा शम्बरासुरके दस महाबली पुत्रोंको तत्काल कालके गालमें भेज दिया। तत्पश्चात् कुपित हुए पराक्रमी केशवकुमारने दूसरे भल्लसे बड़ी शीघ्रताके साथ चित्रसेनका मस्तक काट डाला। तदनन्तर जो मरनेसे बच गये, वे सब एक साथ संगठित होकर युद्ध करने लगे। बाणोंकी वर्षा करते हुए उन्होंने प्रद्युम्नको मार डालनेकी इच्छासे उनपर धावा किया। वे बाणोंको धनुषपर रखकर युद्धके लिये उत्सुक हो उन्हें छोड़ने लगे॥ २—८॥ महातेजस्वी प्रद्युम्न खेल-सा करते हुए इनके मस्तक काट-काटकर गिराने लगे। समराङ्गणमें जो सौ उत्तम धनुर्धर वीर थे, उन सबका संहार करके वे मनमें और भी युद्धकी अभिलाषा लिये संग्रामके मुहानेपर खड़े हो गये। अपने सौ पुत्रोंका वध हुआ सुनकर शम्बरासुरको बड़ा क्रोध हुआ। उसने सारथिको आदेश दिया कि मेरे रथको जोतो। राजाकी यह बात सुनकर सारथिने पृथ्वीपर मस्तक टेककर प्रणाम किया और

ससैन्यं नोदयामास रथं सः सुसमाहितम्।
युक्तमृष्यसहस्रेण सर्पयोक्त्रेण योजितम्॥ १२

शार्दूलचर्मसंविष्टं किङ्किणीजालमालिनम्।
ईहामृगगणाकीर्णं पङ्क्तिभक्तिविराजितम्॥ १३

ताराचित्रपिनद्धाङ्गं स्वर्णकूबरभूषितम्।
सुपताकमहोच्छ्रायं मृगराजोग्रकेतनम्॥ १४

सुविभक्तवरूथं च लोहेषावज्रकूबरम्।
मन्दरोदग्रशिखरं चारुचामरभूषितम्॥ १५

नक्षत्रमालापिहितं हेमदण्डसमाहितम्।
विराजमानं श्रीमन्तमारोहच्छम्बरो रथम्॥ १६

काञ्चनं चित्रसंनाहं धनुर्गृह्य शरांस्तथा।
प्रस्थितः समराकाङ्क्षी मृत्युना परिचोदितः॥ १७

चतुर्भिः सचिवैः सार्द्धं सैन्येन महता वृतः।
दुर्धरः केतुमाली च शत्रुहन्ता प्रमर्दनः॥ १८

एतैः परिवृतोऽमात्यैर्युयुत्सुः प्रस्थितो रणे।
दशनागसहस्राणि रथानां द्वे शते तथा॥ १९

हयानां चाष्टसाहस्रैः प्रयुतैश्च पदातिनाम्।
एतैः परिवृतो योधैः शम्बरः प्रययौ तदा॥ २०

प्रयातस्य तु संग्रामे उत्पाता बहवोऽभवन्।
गृध्रचक्राकुलं व्योम संध्याकाराभ्रनादितम्॥ २१

गर्जन्ति परुषं मेघा निर्घातश्चाम्बरात् पतत्।
शिवा विनेदुरशिवं सैन्यं संकालयन्महत्॥ २२

ध्वजशीर्षेऽपतद् गृध्रः काङ्क्षन् वै दानवासृजम्।
रथाग्रे पतितश्चास्य कबन्धो भुवि दृश्यते॥ २३

चीचीकूचीति वाशन्ति शम्बरस्य रथोपरि।
स्वर्भानुग्रस्त आदित्यः परिघैः परिवेष्टितः॥ २४

स्फुरते नयनं चास्य सव्यं भयनिवेदनम्।
बाहुः प्रकम्पते सव्यः प्रास्खलन् रथवाजिनः॥ २५

सेनासहित रथको पूरी सावधानीके साथ युद्धके लिये प्रेरित किया। उस रथमें एक सहस्र मृग जुते हुए थे। वह सर्पोंकी रस्सियोंसे जोता गया था। वह रथ व्याघ्रचर्मसे ढका हुआ था, उसमें घुँघुरुओंकी माला शोभा दे रही थी, वह कृत्रिम पशु-पक्षियोंसे व्याप्त तथा दस चित्रभागोंसे विभूषित था॥ ९—१३॥ उसके सारे अङ्ग तारिकाओंके चित्रसे व्याप्त थे। सोनेका कूबर उस रथकी शोभा बढ़ा रहा था। उसका बहुत ही ऊँचा भाग सुन्दर पताकाओंसे सुशोभित था। उसमें सिंहके चिह्नवाली उग्र ध्वजा फहरा रही थी॥ १४॥ उस रथका आवरण सुन्दर विभागपूर्वक बना हुआ था। उसमें लोहेके हरसे और वज्रमणिजटित कूबर शोभा पाते थे। उसका शिखर मन्दराचलके समान ऊँचा था। वह सुन्दर चँवरसे विभूषित था॥ १५॥ नक्षत्रोंकी मालाओंसे आवृत तथा सुवर्णमय दण्डसे सुस्थिर बने हुए उस शोभाशाली कान्तिमान् रथपर शम्बरासुर आरूढ़ हुआ॥ १६॥ सोनेका विचित्र कवच, धनुष और बाण धारण करके कालसे प्रेरित हो युद्धकी इच्छासे वह प्रस्थित हुआ॥ १७॥ उसके साथ चार मन्त्री थे और वह विशाल सेनासे घिरा हुआ था। दुर्धर, केतुमाली, शत्रुहन्ता और प्रमर्दन—इन मन्त्रियोंसे घिरा हुआ वह युद्धकी इच्छासे रणभूमिकी ओर प्रस्थित हुआ। दस हजार हाथी, दो सौ रथ, आठ हजार घोड़े और दस लाख पैदल, इतने योद्धाओंसे घिरे हुए शम्बरासुरने उस समय युद्धके लिये प्रस्थान किया॥ १८—२०॥ युद्धके लिये जाते समय उसके सामने बहुत-से उत्पात प्रकट हुए। आकाशमें गृध्रोंका मण्डल मँडराने लगा। संध्याकालके समान लाल रङ्गके बादल गड़गड़ाने लगे॥ २१॥ मेघ बड़े कठोर शब्दमें गर्जना करने लगे, आकाशसे बिजली गिरने लगी, गीदड़ियाँ अमङ्गलसूचक बोली बोलने लगीं, जिससे सेनाके महान् संहारकी सूचना मिलती थी॥ २२॥ गीध दानवोंके रक्तका पान करनेकी इच्छा रखकर उसकी ध्वजाके अग्रभागपर जा बैठा। उसके रथके सामने पृथ्वीपर कबन्ध पड़ा हुआ दिखायी देने लगा॥ २३॥ शम्बरासुरके रथके ऊपर बहुत-से पक्षी 'चीची कूची' ऐसी बोली बोलने लगे। सूर्यको राहुने ग्रस लिया और उनपर अनेक घेरे पड़ गये॥ २४॥ उसका बायाँ नेत्र फड़कने लगा, जो भयकी सूचना दे रहा था। बायीं भुजा काँपने लगी और रथके घोड़े लड़खड़ाकर गिरने लगे॥ २५॥

ध्वाङ्क्षो मूर्ध्नि निपतितः शम्बरस्य सुरारिणः।
ववर्ष रुधिरं देवः शर्कराङ्गारमिश्रितम्॥ २६
उल्कापातसहस्राणि निपेतू रणमूर्धनि।
प्रतोदो न्यपतद्धस्तात् सारथेर्हययायिनः॥ २७
एतानचिन्तयित्वा तु उत्पातान् समुपस्थितान्।
प्रययौ शम्बरः क्रुद्धः प्रद्युम्नवधकाङ्क्षया॥ २८
भेरीमृदङ्गशङ्खानां पणवानकदुन्दुभेः।
युगपन्नाद्यमानानां पृथिवी समकम्पत॥ २९
तेन शब्देन महता संत्रस्ता मृगपक्षिणः।
समन्ताद् दुद्रुवुस्तस्माद् भयविक्लवचेतसः॥ ३०
रणमध्ये स्थितः कार्ष्णिश्चिन्तयन् निधनं रिपोः।
सैन्यैः परिवृतोऽसंख्यैर्युद्धाय कृतनिश्चयः॥ ३१
क्रुद्धः शरसहस्रेण प्रद्युम्नं समताडयत्।
सम्प्राप्तांश्चैव तान् बाणांश्चिच्छेद कृतहस्तवत्॥ ३२
प्रद्युम्नो धनुरादाय शरवर्षं मुमोच ह।
तस्मिन् सैन्ये न कोऽप्यस्ति यो न विद्धः शरेण वै॥ ३३
प्रद्युम्नशरपातेन तत् सैन्यं विमुखीकृतम्।
शम्बरस्य तथाभ्याशे स्थितं संहृत्य भीतवत्॥ ३४
स्वबलं विद्रुतं दृष्ट्वा शम्बरः क्रोधमूर्च्छितः।
आज्ञापयामास तदा सचिवान् दानवेश्वरः॥ ३५
गच्छध्वं मन्नियोगेन प्रहरध्वं रिपोः सुतम्।
नोपेक्षणीयः शत्रुर्वै वध्यतां क्षिप्रमेष वै॥ ३६
उपेक्षित इव व्याधिः शरीरं नाशयेद् ध्रुवम्।
तदेष दुर्मतिः पापो वध्यतां मत्प्रियेप्सया॥ ३७
ततस्ते सचिवाः क्रुद्धाः शिरसा गृह्य शासनम्।
शरवर्षं विमुञ्चन्तस्त्वरिता नोदयन् रथान्॥ ३८
तान् दृष्ट्वा धावतः संख्ये क्रुद्धो मकरकेतनः।
चापमुद्यम्य सम्भ्रान्तस्तस्थौ प्रमुखतो बली॥ ३९
दुर्धरं पञ्चविंशत्या शरैः संनतपर्वभिः।
बिभेद सुमहातेजाः केतुमालिं त्रिषष्टिभिः॥ ४०

देवद्रोही शम्बरासुरके मस्तकपर कौआ जा बैठा, पर्जन्यदेव कंकड़ और अङ्गारोंसे मिश्रित रक्तकी वर्षा करने लगे॥ २६॥ संग्रामके मुहानेपर सहस्रों उल्कापात होने लगे, घोड़े हाँकनेवाले सारथिके हाथसे चाबुक गिर पड़ा॥ २७॥ इन उपस्थित हुए उत्पातोंकी कोई परवा न करके क्रोधमें भरा हुआ शम्बरासुर प्रद्युम्नको मार डालनेकी इच्छासे आगे बढ़ा॥ २८॥ उस समय एक ही साथ भेरी, मृदङ्ग, शङ्ख, पणव, आनक और दुन्दुभि आदि बाजे बज उठे। उनकी तुमुल ध्वनिसे यह पृथ्वी काँपने लगी॥ २९॥ उस महान् शब्दसे सारे पशु-पक्षी संत्रस्त हो गये और भयसे व्याकुलचित्त होकर सब ओर भागने लगे॥ ३०॥ उस समय रणभूमिके मध्यभागमें शत्रुके वधका चिन्तन करते हुए श्रीकृष्णकुमार प्रद्युम्न असंख्य सेनाओंसे घिरे हुए युद्धके लिये दृढ़ निश्चय करके खड़े हुए थे॥ ३१॥ शम्बरासुरने कुपित होकर प्रद्युम्नपर एक हजार बाणोंका प्रहार किया, उन बाणोंको अपने पास आते ही प्रद्युम्नने एक सिद्धहस्त योद्धाकी भाँति काट डाला॥ ३२॥ अब प्रद्युम्न धनुष लेकर बाणोंकी वर्षा करने लगे। उस समय उस सेनामें ऐसा कोई भी सैनिक नहीं था, जो उनके बाणोंसे विद्ध न हुआ हो॥ ३३॥ प्रद्युम्नके बाणोंके प्रहारसे वह सारी सेना युद्धसे विमुख हो गयी तथा भयभीतकी भाँति शम्बरासुरके समीप सिमटकर खड़ी हो गयी॥ ३४॥ अपनी सेनाको भागती देख दानवराज शम्बर क्रोधसे अचेत-सा हो गया। उस समय उसने अपने मन्त्रियोंको आज्ञा दी—॥ ३५॥ 'तुम सब लोग जाओ और मेरे आदेशसे शत्रुके उस पुत्रपर प्रहार करो। तुम्हें इस शत्रुकी उपेक्षा नहीं करनी चाहिये। इसे शीघ्र ही मार डालो॥ ३६॥ 'यदि इसकी उपेक्षा की गयी तो यह उपेक्षित रोगकी भाँति निश्चय ही शरीरका नाश कर डालेगा, अतः मेरा प्रिय करनेकी इच्छासे इस दुर्बुद्धि पापीका वध कर डालो'॥ ३७॥ तब उन मन्त्रियोंने स्वामीकी आज्ञाको शिरोधार्य करके क्रोधपूर्वक बाणवर्षा करते हुए बड़ी उतावलीके साथ रथोंको हाँका॥ ३८॥ युद्धमें उन्हें धावा करते देख बलवान् मकरध्वज प्रद्युम्न भी कुपित हो उठे और बड़े वेगसे धनुष उठाकर शत्रुओंके सामने खड़े हो गये॥ ३९॥ रुक्मिणीका आनन्द बढ़ानेवाले महातेजस्वी प्रद्युम्नने अत्यन्त अमर्षमें भरकर झुकी हुई गाँठवाले पच्चीस बाणोंसे दुर्धरको, तिरसठ बाणोंसे केतुमालीको,

सप्तत्या शत्रुहन्तारं द्व्यशीत्या तु प्रमर्दनम्।
बिभेद परमामर्षी रुक्मिण्या नन्दिवर्धनः॥ ४१

ततस्ते सचिवाः क्रुद्धाः प्रद्युम्नं शरवृष्टिभिः।
एकैकशो बिभेदाजौ षष्टिभिः षष्टिभिः शरैः॥ ४२

तानप्राप्ताञ्छरान् बाणैश्चिच्छेद मकरध्वजः।
ततोऽर्द्धचन्द्रमादाय दुर्द्धरस्य स सारथिम्॥ ४३

जघान पश्यतां राज्ञां सर्वेषां सैनिकस्य वै।
चतुर्भिरथ नाराचैः सुपर्वैः कङ्कतेजितैः॥ ४४

जघान चतुरः सोऽश्वान् दुर्धरस्य रथं प्रति।
एकेन योक्त्रं छत्रं च ध्वजमेकेन बन्धुरम्॥ ४५

षष्ट्या च युगचक्राक्षं चिच्छेद मकरध्वजः।
अथापरं शरं गृह्य कङ्कपत्रं सुतेजितम्॥ ४६

मुमोच हृदये तस्य दुर्द्धरस्यान्यजीविनः।
स गतासुर्गतश्रीको गतसत्त्वो गतप्रभः॥ ४७

निपपात रथोपस्थात् क्षीणपुण्य इव ग्रहः।
दुर्धरे निहते शूरे दानवे दानवेश्वरः॥ ४८

केतुमाली शरव्रातैरभिदुद्राव कृष्णजम्।
प्रद्युम्नमथ संक्रुद्धो भ्रुकुटीभीषणाननः॥ ४९

कृत्वाभ्यधावत् सहसा तिष्ठ तिष्ठेति चाब्रवीत्।
संक्रुद्धः कृष्णसूनुस्तु शरवर्षैरवाकिरत्॥ ५०

पर्वतं वारिधाराभिः प्रावृषीव यथा घनः।
स विद्धो दानवामात्यः प्रद्युम्नेन धनुष्मता॥ ५१

चक्रमादाय चिक्षेप प्रद्युम्नवधकाङ्क्षया।
तं तु प्राप्तं सहस्रारं कृष्णचक्रसमद्युतिम्॥ ५२

निपत्योत्पत्य सहसा सर्वेषामेव पश्यताम्।
तेनैव तस्य चिच्छेद केतुमालेः शिरस्तदा॥ ५३

सत्तर बाणोंसे शत्रुहन्ताको और बयासी बाणोंसे प्रमर्दनको घायल कर दिया॥ ४०-४१॥ तदनन्तर वे कुपित हुए मन्त्री भी प्रद्युम्नको बाण-वर्षाका निशाना बनाने लगे। उनमेंसे एक-एकने प्रद्युम्नको साठ-साठ बाण मारे॥ ४२॥ उन बाणोंको अपने पास आनेसे पहले ही प्रद्युम्नने तीखे सायकोंसे काट डाला। तत्पश्चात् एक अर्धचन्द्राकार बाण लेकर समस्त राजाओं और उनके सैनिकोंके देखते-देखते दुर्धरके सारथिको मार डाला। फिर उत्तम गाँठवाले, कङ्कपत्रयुक्त चार तीखे नाराचोंद्वारा दुर्धरके रथसम्बन्धी चार घोड़ोंको कालके गालमें भेज दिया। इसके बाद एक बाणसे रथको जोड़नेवाली रस्सी, छत्र और ध्वज तथा एक बाणसे बन्धुरके टुकड़े-टुकड़े कर डाले। फिर साठ बाणोंसे प्रद्युम्नने रथके जुए, धुरे और पहियोंको भी काट डाला। तदनन्तर प्रद्युम्नने कङ्कपक्षीके पर लगे हुए और अत्यन्त तेज किये हुए एक बाणको लेकर दूसरेके आश्रयपर जीनेवाले दुर्धरके हृदयपर छोड़ा। तब वह दुर्धर निष्प्राण हो शोभा और सत्त्वसे रहित हो गया। उसकी कान्ति फीकी पड़ गयी। वह रथकी बैठकमेंसे नीचे गिर पड़ा। उस समय वह, जिसका पुण्य क्षीण हो गया हो ऐसे ग्रहके समान दीखने लगा। दुर्धर शूर दानव था, उसके मारे जानेपर दानवेश्वर केतुमाली भी कृष्णकुमार प्रद्युम्नपर बाणोंके समूहोंको छोड़ता हुआ चढ़ आया। तदनन्तर क्रोधमें भरा हुआ केतुमाली भ्रुकुटी चढ़ाकर मुखको भीषण बना प्रद्युम्नपर सहसा दौड़ पड़ा और उनसे कहने लगा 'खड़ा रह! खड़ा रह!!' यह सुनकर श्रीकृष्णकुमार प्रद्युम्नको बड़ा क्रोध हुआ, उन्होंने बाणोंकी वर्षा करके केतुमालीको ढक दिया, ठीक उसी तरह जैसे वर्षा-ऋतुमें बादल जलकी धाराओंसे पर्वतको आच्छादित कर देता है। धनुर्धर प्रद्युम्नके द्वारा घायल हुए दानवमन्त्री केतुमालीने प्रद्युम्नका वध करनेकी इच्छासे चक्र लेकर उनके ऊपर चलाया। श्रीकृष्णके चक्रके समान तेजस्वी उस सहस्रार चक्रको पास आया देख प्रद्युम्नने सहसा उछलकर उसे पकड़ लिया और सबके देखते-देखते उस समय उसी चक्रसे केतुमालीका सिर काट लिया॥ ४३—५३॥

तद् दृष्ट्वा कर्म विपुलं रौक्मिणेयस्य देवराट्।
विस्मयं परमं प्राप्तः सर्वैर्देवगणैः सह।
गन्धर्वाप्सरसश्चैव पुष्पवर्षैरवाकिरन्॥ ५४

केतुमालिं हतं दृष्ट्वा शत्रुहन्ता प्रमर्दनः।
महाबलसमूहेन प्रद्युम्नमथ दुद्रुवे॥ ५५

ते गदां मुसलं चक्रं प्रासतोमरसायकान्।
भिन्दिपालान् कुठारांश्च भास्वरान् कूटमुद्गरान्॥ ५६

युगपत् संक्षिपन्ति स्म वधार्थं कृष्णनन्दने।
सोऽपि तान्यस्त्रजालानि शस्त्रजालैरनेकधा॥ ५७

चिच्छेद बहुधा वीरो दर्शयन् पाणिलाघवम्।
गजान् सोऽभ्यहनत् क्रुद्धो गजारोहान् सहस्रशः॥ ५८

रथान् सारथिभिः सार्धं हयांश्चैव ममर्द ह।
पातयंस्ताञ्छरव्रातैर्नाविद्धः कश्चिदीक्ष्यते॥ ५९

एवं सर्वाणि सैन्यानि ममन्थ मकरध्वजः।
नदीं प्रावर्तयद् घोरां शोणिताम्बुतरङ्गिणीम्॥ ६०

मुक्ताहारोर्मिबहुलां मांसमेदःसपङ्किनीम्।
छत्रद्वीपां शरावर्तां रथैः पुलिनमण्डिताम्॥ ६१

केयूरकुण्डलाकूर्मां ध्वजमत्स्यविभूषिताम्।
नागग्राहवतीं रौद्रामसिनक्रविभूषिताम्॥ ६२

केशशैवलसञ्छन्नां श्रोणिसूत्रमृणालिकाम्।
वराननसुपद्मां च हंसचामरवीजिताम्॥ ६३

शिरस्तिमिसमाकीर्णां शोणितौघप्रवर्तिनीम्।
नदीं दुस्तरणीं भीमामनङ्गेन प्रवर्तिताम्॥ ६४

दुष्प्रेक्षां दुर्गमां रौद्रां हीनतेजःसुदुस्तराम्।
शस्त्रग्राहवतीं घोरां यमराष्ट्रविवर्द्धनीम्॥ ६५

रुक्मिणीकुमारका वह महान् कर्म देखकर समस्त देवताओंसहित देवराज इन्द्रको बड़ा विस्मय हुआ। उस समय गन्धर्वों और अप्सराओंने उनके ऊपर फूलोंकी वर्षा की॥ ५४॥ केतुमालीको मारा गया देख शत्रुहन्ता और प्रमर्दन विशाल सैन्यसमूहके साथ प्रद्युम्नपर टूट पड़े॥ ५५॥ वे गदा, मुसल, चक्र, प्रास, तोमर, सायक, भिन्दिपाल, कुठार और चमकीले कूटमुद्गरोंको एक साथ ही श्रीकृष्णकुमारके वधके लिये उनके ऊपर फेंकने लगे। वीर प्रद्युम्नने भी अपने हाथोंकी फुर्ती दिखाते हुए शस्त्रसमूहोंद्वारा शत्रुओंके अस्त्र-जालके बारम्बार बहुतेरे टुकड़े कर डाले। उन्होंने कुपित होकर सहस्रों हाथियों और हाथीसवारोंको मार डाला। सारथियोंसहित रथों और घोड़ोंको भी रौंदकर मिट्टीमें मिला दिया। उन सबको धराशायी करते हुए प्रद्युम्नने अपने बाण-समूहोंद्वारा समस्त सैनिकोंको वींध डाला। कोई भी ऐसा नहीं दिखायी देता था, जो उनके बाणोंसे विद्ध न हुआ हो॥ ५६—५९॥ इस प्रकार मकरध्वजने शत्रुकी सारी सेनाओंको मथ डाला और एक भयानक नदी बहा दी, जो रक्तमय जलकी तरङ्गोंसे सुशोभित होती थी॥ ६०॥ मोतियोंके हार उसमें उठती हुई बहुसंख्यक लहरोंके समान प्रतीत होते थे। वसा और मेदे कीचके समान जान पड़ते थे। छत्र द्वीप और बाण आवर्त (भँवर)-के समान थे। रथ ही उस नदीके तट बनकर उसकी शोभा बढ़ाते थे॥ ६१॥ केयूर और कुण्डल उसमें कछुएका भ्रम उत्पन्न करते थे। ध्वजरूपी मत्स्य उसकी शोभा बढ़ाते थे। हाथीरूपी ग्राहोंसे युक्त होनेके कारण वह बड़ी भयङ्कर जान पड़ती थी। खड्गरूपी नाकें उसके आभूषण थे॥ ६२॥ वह केशरूपी सेवारसे ढकी हुई थी, कटिसूत्र कमलनालके समान प्रतीत होते थे, सुन्दर मुख ही उसमें खिले हुए मनोहर कमल थे, हिलते हुए चँवर हंसोंके पङ्खसञ्चालनकी भाँति प्रतीत होते थे, मानो उनके द्वारा उस नदीको हवा की जा रही थी॥ ६३॥ (हाथी आदि पशुओंके कटे हुए) मस्तक उसमें तिमि नामक मत्स्यके समान सब ओर व्याप्त थे। वह शोणितकी वेगयुक्त धारा बहा रही थी। अनङ्गस्वरूप प्रद्युम्नके द्वारा बहायी गयी वह रक्तनदी अत्यन्त दुस्तर, दुर्लक्ष्य, दुर्गम एवं भयंकर थी। तेजोहीन पुरुषोंके लिये उसे पार करना अत्यन्त कठिन था। शस्त्ररूपी ग्राहोंसे युक्त वह घोर नदी यमराजके राज्यकी वृद्धि कर रही थी॥ ६४-६५॥

तत्र रुक्मिसुतः श्रीमान् विलोडयति धन्विनः।
शत्रुहन्तारमाश्रित्य शरानभ्यकिरद् बहून्॥ ६६

शत्रुहन्ता पुनः क्रुद्धो मुमोच शरमुत्तमम्।
प्रद्युम्नस्य समासाद्य हृदये निपपात ह॥ ६७

स विद्धस्तेन बाणेन प्रद्युम्नो न व्यकम्पत।
शक्तिं जग्राह बलवाञ्छत्रुहन्त्रे मुमूर्षवे॥ ६८

सा क्षिप्ता रौक्मिणेयेन शक्तिर्ज्वालाकुला रणे।
पपात हृदयं भित्त्वा शक्राशनिसमस्वना॥ ६९

स भिन्नहृच्च स्रस्ताङ्गो मुक्तमर्मास्थिबन्धनः।
पपात रुधिरोद्गारी शत्रुहन्ता महाबलः॥ ७०

पतितं शत्रुहन्तारं दृष्ट्वा तस्थौ प्रमर्दनः।
जग्राह मुसलं सोऽथ वचनं चेदमाददे॥ ७१

तिष्ठ किं प्राकृतैरेभिः करिष्यसि रणप्रियः।
मां योधयस्व दुर्बुद्धे ततस्त्वं न भविष्यसि॥ ७२

वृष्णिवंशकुले जातः शत्रुरस्मत्पिता तव।
पुत्रं हन्तास्म्यहं तस्य ततोऽसौ निहतो भवेत्॥ ७३

मृतेन तेन दुर्बुद्धे सर्वदेवक्षयो भवेत्।
दैतेया दानवाः सर्वे मोदन्तां हतशत्रवः॥ ७४

हते त्वयि ममास्त्रेण त्वत्समुत्थैश्च शोणितैः।
शम्बरस्य तु पुत्राणां करोम्युदकसत्क्रियाम्॥ ७५

अद्य सा भीष्मकसुता करुणं विलपिष्यति।
निहतं त्वां च श्रुत्वैव यौवनस्थं गतायुषम्॥ ७६

स ते पिता चक्रधरो निष्फलाशो भविष्यति।
हतं त्वां स विदित्वाथ प्राणांस्त्यक्ष्यति मन्दधीः॥ ७७

इत्युक्त्वा परिघेणाशु ताडयद् रुक्मिणीसुतम्।
ताडितो हि महातेजा रौक्मिणेयः प्रतापवान्॥ ७८

उस युद्धमें श्रीमान् रुक्मिणीकुमार प्रद्युम्नने बहुत-से धनुर्धरोंको मथ डाला और शत्रुहन्तापर अनेक बाणोंकी वर्षा की॥ ६६॥ तब पुनः क्रोधमें भरे हुए शत्रुहन्ताने एक उत्तम बाण छोड़ा, जो प्रद्युम्नकी छातीपर जाकर लगा॥ ६७॥ उस बाणसे घायल होकर बलवान् प्रद्युम्न तनिक भी विचलित नहीं हुए, उन्होंने मरणासन्न शत्रुहन्ताके लिये एक शक्ति उठायी॥ ६८॥ रणभूमिमें रुक्मिणीकुमारने वह अग्निकी ज्वालासे युक्त शक्ति चला दी। इन्द्रके वज्रकी भाँति गड़गड़ाहट पैदा करती हुई वह शक्ति शत्रुहन्ताका हृदय विदीर्ण करके पृथ्वीपर गिर पड़ी॥ ६९॥ हृदय विदीर्ण हो जानेसे उसके सारे अङ्ग शिथिल हो गये, मर्मस्थानों और अस्थियोंके बन्धन खुल गये, उस दशामें महाबली शत्रुहन्ता रक्त वमन करता हुआ धरतीपर गिर पड़ा॥ ७०॥ शत्रुहन्ताको धराशायी हुआ देख प्रमर्दन युद्धके लिये डट गया। उसने मुसल हाथमें ले लिया और यह बात कही—॥ ७१॥ 'अरे! खड़ा रह! तुझे युद्ध बड़ा प्रिय है न? इन प्राकृत सैनिकोंके मारनेसे तू क्या लाभ उठायेगा। दुर्बुद्धे! तू मेरे साथ युद्ध कर, फिर तो तू नहीं हो जायगा॥ ७२॥ 'तू वृष्णिकुलमें उत्पन्न हुआ है, तेरा पिता हमलोगोंका शत्रु है, मैं उसके पुत्रको मार डालूँगा, फिर वह स्वयं ही मर जायगा॥ ७३॥ 'दुर्बुद्धे! उसके मरनेसे समस्त देवताओंका क्षय हो जायगा, इस प्रकार अपने शत्रुओंके मर जानेपर समस्त दैत्य और दानव आनन्दके भागी होंगे॥ ७४॥ 'मेरे अस्त्रसे तेरा वध हो जानेपर तेरे ही रक्तसे मैं शम्बरासुरके पुत्रोंका तर्पण करूँगा॥ ७५॥ 'आज वह भीष्मककी पुत्री रुक्मिणी तो तुझ-जैसे नौजवान बेटेको मारा गया और गतायु हुआ सुनकर निश्चय ही करुण विलाप करेगी॥ ७६ ॥ 'तेरे उस पिता चक्रधारी कृष्णकी आशा अब निष्फल हो जायगी। तुझे मारा गया जानकर वह मन्दबुद्धि मानव अपने प्राणोंका परित्याग कर देगा'॥ ७७॥ ऐसा कहकर उसने तुरंत ही रुक्मिणी-कुमार प्रद्युम्नपर परिघसे प्रहार किया। उससे ताड़ित हुए महान् तेजस्वी और प्रतापी प्रद्युम्नने अपनी दोनों

दोर्भ्यामुत्क्षिप्य तस्यैव रथ मह्यां व्यचूर्णयत्।
सोऽवप्लुत्य रथात् तस्मात् पदातिरवतस्थिवान्॥ ७९

तां गदां गृह्य सहसा रौक्मिणेयमुपाद्रवत्।
तयैव गदया कामः प्रमर्दनमपोथयत्॥ ८०

हते प्रमर्दने दैत्ये दृष्ट्वा सर्वे प्रदुद्रुवुः।
न शक्ताः प्रमुखे स्थातुं सिंहत्रासाद् गजा इव॥ ८१

सारमेयं यथा दृष्ट्वाविगणो वै पलायते।
तथा सेना विषीदन्ती प्रद्युम्नस्य भयार्दिता॥ ८२

क्षतजादिग्धवस्त्रा वै मुक्तकेशा विशोभना।
रजस्वलेव युवतिः सेना समवगूहते॥ ८३

मदनशरविभिन्ना सैनिकानभ्ययायाद्
युवतिसदृशवेषा साध्वसैः पीड्यमाना।
रतिसमरमशक्ता वीक्षितुं सोच्छ्वसन्ती
स्वगृहगमनकामा नेच्छते स्थातुमत्र॥ ८४

भुजाओंसे उसके रथको ही ऊपरको उछाल दिया और पृथ्वीपर गिराकर चूर-चूर कर डाला। प्रमर्दन उस रथसे कूदकर पैदल ही युद्धके लिये खड़ा हो गया और अपनी उस प्रसिद्ध गदाको हाथमें लेकर उसने सहसा रुक्मिणीकुमारपर आक्रमण किया, परंतु प्रद्युम्नने उसकी फेंकी हुई उस गदासे ही प्रमर्दनको मार गिराया॥ ७८—८०॥ दैत्य प्रमर्दनके मारे जानेपर समस्त असुर सैनिक भाग खड़े हुए। सिंहके भयसे भागे हुए हाथियोंके समान वे प्रद्युम्नके सामने ठहर न सके॥ ८१॥ जैसे शिकारी कुत्तेको देखकर भेड़ोंका समूह पलायन करने लगता है, उसी प्रकार प्रद्युम्नके भयसे पीड़ित हुई दैत्यसेना विषादग्रस्त होकर भागने लगी॥ ८२॥ उन सब सैनिकोंके वस्त्र खूनसे रँग गये थे, केश खुले हुए थे। वे शोभाहीन हो गये थे। इस अवस्थामें वह दैत्यसेना रजस्वला युवतीकी भाँति कहीं छिप जानेका प्रयत्न करने लगी॥ ८३॥ युवतीके समान वेष धारण करनेवाली वह दैत्यसेना कामदेव (प्रद्युम्न)-के बाणोंसे घायल हो सैनिकोंकी ओर चली। उस समय वह भय आदिसे पीड़ित हो रही थी। समररूपी सुरतको तो देखनेमें भी असमर्थ थी, केवल उच्छ्वास लेती हुई अपने घरको जाना चाहने लगी, वहाँ ठहरना नहीं॥ ८४॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे विष्णुपर्वणि शम्बरसैन्यभङ्गो नाम पञ्चाधिकशततमोऽध्यायः॥ १०५॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत विष्णुपर्वमें शम्बरासुरकी सेनाका पलायनविषयक एक सौ पाँचवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १०५॥

षडधिकशततमोऽध्यायः

शम्बरासुर और प्रद्युम्नका मायामय युद्ध, शम्बरकी चिन्ता, देवराज इन्द्रकी आज्ञासे नारदजीका प्रद्युम्नको उनके पूर्वस्वरूपका स्मरण दिलाना और आवश्यक कर्तव्य सुझाना

वैशम्पायन उवाच

शम्बरस्तु ततः क्रुद्धः सूतमाह विशाम्पते।
शत्रुप्रमुखतो वीर रथं मे वाहय द्रुतम्॥ १
यावदेनं शरैर्हन्मि मम विप्रियकारकम्।
ततो भर्तृवचः श्रुत्वा सूतस्तत्प्रियकारकः॥ २
रथं संचोदयामास चामीकरविभूषितम्।
तं दृष्ट्वा रथमायान्तं प्रद्युम्नः फुल्ललोचनः॥ ३
संदधे चापमादाय शरं कनकभूषितम्।
तेनाहनत् सुसंक्रुद्धः कोपयञ्शम्बरं रणे॥ ४

वैशम्पायनजी कहते हैं—प्रजानाथ! तब शम्बरासुरने कुपित होकर अपने सारथिसे कहा—'वीर! तुम शीघ्र ही मेरे रथको शत्रुके सामने ले चलो, जिससे अपना अप्रिय करनेवाले इस प्रद्युम्नको मैं अपने बाणोंसे मार डालूँ'। तब स्वामीका यह वचन सुनकर उनका प्रिय करनेवाले सूतने उस सुवर्णभूषित रथको आगे बढ़ाया। उस रथको आते देख प्रद्युम्नके नेत्र हर्षसे खिल उठे॥ १—३॥ उन्होंने अत्यन्त कुपित हो धनुष लेकर उसपर एक सुवर्णभूषित बाण रखा और उस बाणसे शम्बरासुरका क्रोध बढ़ाते हुए उसे रणभूमिमें घायल कर दिया॥ ४॥

हृदये ताडितस्तेन देवशत्रुः सुविक्लवः।
रथशक्तिं समाश्रित्य तस्थौ सोऽथ विचेतनः॥ ५

स चेतनां पुनः प्राप्य धनुरादाय शम्बरः।
विव्याध कार्ष्णिं कुपितः सप्तभिर्निशितैः शरैः॥ ६

तानप्राप्ताञ्शरान् सोऽथ सप्तभिः सप्तधाच्छिनत्।
शम्बरं च जघानाथ सप्तत्या निशितैः शरैः॥ ७

पुनः शरसहस्रेण कङ्कबर्हिणवाससा।
अहनच्छम्बरं क्रोधाद् धाराभिरिव पर्वतम्॥ ८

प्रदिशो विदिशश्चैव शरधारासमावृताः॥ ९

अन्धकारीकृतं व्योम दिनकर्ता न दृश्यते।
ततोऽन्धकारमुत्सार्य वैद्युतास्त्रेण शम्बरः॥ १०

प्रद्युम्नस्य रथोपस्थे शरवर्षं मुमोच ह।
तदस्त्रजालं प्रद्युम्नः शरेणानतपर्वणा॥ ११

चिच्छेद बहुधा राजन् दर्शयन् पाणिलाघवम्।
हते तस्मिन् महावर्षे शराणां कार्ष्णिना तदा॥ १२

द्रुमवर्षं मुमोचाथ मायया कालशम्बरः।
द्रुमवर्षोच्छ्रितं दृष्ट्वा प्रद्युम्नः क्रोधमूर्च्छितः॥ १३

आग्नेयास्त्रं मुमोचाथ तेन वृक्षाननाशयत्।
भस्मीभूते वृक्षवर्षे शिलासंघातमुत्सृजत्॥ १४

प्रद्युम्नस्तं तु वायव्यैः प्रोत्सारयत संयुगे।
ततो मायां परां चक्रे देवशत्रुः प्रतापवान्॥ १५

सिंहान् व्याघ्रान् वराहांश्च तरक्षूनृक्षवानरान्।
वारणान् वारिदप्रख्यान् हयानुष्ट्रान् विशाम्पते॥ १६

मुमोच धनुरायम्य प्रद्युम्नस्य रथोपरि।
गान्धर्वास्त्रेण चिच्छेद सर्वांस्तान् खण्डशस्तदा॥ १७

प्रद्युम्नेन तु सा माया हता तां वीक्ष्य शम्बरः।
अन्यां मायां मुमोचाथ शम्बरः क्रोधमूर्च्छितः॥ १८

उस बाणने उसकी छातीमें चोट पहुँचायी थी, इससे वह देवशत्रु शम्बर अत्यन्त व्याकुल हो अचेत हो गया और रथशक्तिका सहारा लेकर टिका रहा॥ ५॥ फिर होशमें आनेपर कुपित हुए शम्बरासुरने धनुष हाथमें ले सात पैंने बाणोंद्वारा श्रीकृष्णकुमारपर प्रहार किया॥ ६॥ उन बाणोंको अपने पास पहुँचनेसे पहले ही प्रद्युम्नने सात सायकोंसे मारकर सात बार खण्डित किया, साथ ही सत्तर तीखे बाणोंसे शम्बरासुरको घायल कर दिया॥ ७॥ इसके बाद गीध और मोरकी पाँख लगे हुए एक हजार बाणोंकी क्रोधपूर्वक वर्षा करके उन्होंने पुनः शम्बरासुरको आहत कर दिया, ठीक उसी तरह जैसे मेघ जलकी धाराओंसे पर्वतको आप्लावित कर देता है॥ ८॥ समस्त दिशाएँ और विदिशाएँ बाणधारासे आवृत हो गयीं। आकाशमें अन्धकार छा गया। दिनकर सूर्यका दीखना बंद हो गया। तब शम्बरासुरने वैद्युतास्त्रका प्रयोग करके अन्धकारका निवारण कर दिया और प्रद्युम्नके रथकी बैठकमें बाणोंकी वर्षा आरम्भ कर दी। राजन्! प्रद्युम्नने अपने हाथोंकी फुर्ती दिखाते हुए झुकी हुई गाँठवाले बाणसे शत्रुके उस अस्त्रजालको अनेक टुकड़ोंमें छिन्न-भिन्न कर दिया। श्रीकृष्णकुमारद्वारा जब बाणोंकी वह महावृष्टि शान्त कर दी गयी, तब कालशम्बरने मायाद्वारा वृक्षोंकी वर्षा प्रारम्भ कर दी। वृक्षोंकी उस वर्षाको बढ़ती देख प्रद्युम्न क्रोधसे मूर्च्छित-से हो गये, फिर तो उन्होंने आग्नेयास्त्रका प्रयोग किया और उसके द्वारा समस्त वृक्षोंका नाश कर डाला। वृक्षोंकी वर्षा नष्ट हो जानेपर उसने शिलासमूह बरसाना आरम्भ किया, परंतु प्रद्युम्नने युद्धस्थलमें वायव्यास्त्रका प्रयोग करके उन शिलाओंको दूर हटा दिया। प्रजानाथ! तब प्रतापी देवशत्रु शम्बरने दूसरी माया प्रकट की। उसने धनुष तानकर प्रद्युम्नके रथपर सिंह, व्याघ्र, वराह, तरक्षु (सेई), रीछ, वानर, मेघोंके समान काले-काले हाथी, घोड़े और ऊँटके रूपोंमें बाणोंका प्रहार किया। प्रद्युम्नने गान्धर्वास्त्रका प्रयोग करके उन सबके टुकड़े-टुकड़े कर डाले॥ ९—१७॥ प्रद्युम्नने वह माया नष्ट कर दी, यह देखकर क्रोधसे मूर्च्छित हुए शम्बरासुरने दूसरी मायाका प्रयोग किया॥ १८॥

गजेन्द्रान् भिन्नवदनान् षष्टिहायनयौवनान्।
महामात्रोत्तमारूढान् कल्पितान् रणकोविदान्॥ १९

तामापतन्तीं मायां तु कार्ष्णिः कमललोचनः।
सैंहीं मायां समुत्स्त्रष्टुं चक्रे बुद्धिं महामनाः॥ २०

सा सृष्टा सिंहमाया तु रौक्मिणेयेन धीमता।
माया नागवती नष्टा आदित्येनेव शर्वरी॥ २१

निहतां हस्तिमायां तु तां समीक्ष्य महासुरः।
अन्यां सम्मोहिनीं मायां सोऽसृजद् दानवोत्तमः॥ २२

तां दृष्ट्वा मोहिनीं नाम मायां मयविनिर्मिताम्।
संज्ञास्त्रेण तु प्रद्युम्नो नाशयामास वीर्यवान्॥ २३

शम्बरस्तु ततः क्रुद्धो हतया मायया तदा।
सैंहीं मायां महातेजाः सोऽसृजद् दानवेश्वरः॥ २४

सिंहानापततो दृष्ट्वा रौक्मिणेयः प्रतापवान्।
अस्त्रं गान्धर्वमादाय शरभानसृजत् तदा॥ २५

तेऽष्टापदा बलोदग्रा नखदंष्ट्रायुधा रणे।
सिंहान् विद्रावयामासुर्वायुर्जलधरानिव॥ २६

सिंहान् विद्रवतो दृष्ट्वा माययाष्टापदेन वै।
शम्बरश्चिन्तयामास कथमेनं निहन्मि वै।
अहो मूर्खस्वभावोऽहं यन्मया न हतः शिशुः॥ २७

प्राप्तयौवनदेहस्तु कृतास्त्रश्चापि दुर्मतिः।
तत् कथं निहनिष्यामि शत्रुं रणशिरःस्थितम्॥ २८

माया सा तिष्ठते तीव्रा पन्नगी नाम भीषणा।
दत्ता मे देवदेवेन हरेणासुरघातिना॥ २९

तां सृजामि महामायामाशीविषसमाकुलाम्।
तया दह्येत दुष्टात्मा ह्येष मायामयो बली॥ ३०

सा सृष्टा पन्नगी माया विषज्वालासमाकुला।
तया पन्नगमय्या तु सरथं सहवाजिनम्॥ ३१

उसने साठ वर्षोंकी अवस्थावाले नवयौवनसम्पन्न बहुत-से गजराज प्रकट किये, जिनके मस्तकसे मदकी धारा फूट रही थी। उनके ऊपर अच्छे-अच्छे महावत बैठे थे। उन्हें युद्धकी सज्जासे सजाया गया था। वे सब-के-सब युद्धकी कलामें चतुर जान पड़ते थे॥ १९॥ उस गजाकार मायाको अपनी ओर आती देख कमलनयन महामना श्रीकृष्णकुमारने सिंहरूपिणी मायाके प्रयोगका विचार किया॥ २०॥ बुद्धिमान् रुक्मिणीनन्दनके द्वारा जब वह सिंहमयी माया रची गयी, तब जैसे सूर्योदयसे रात्रिका अन्धकार नष्ट होता है, उसी प्रकार वह हाथियोंसे युक्त माया विलीन हो गयी॥ २१॥ उस हस्तिमयी मायाका नाश हुआ देख महान् असुर दानव-राज शम्बरने दूसरी सम्मोहिनी नामक मायाका प्रयोग किया॥ २२॥ मयद्वारा निर्मित उस मोहिनी मायाको देखकर पराक्रमी प्रद्युम्नने संज्ञास्त्रके द्वारा उसका नाश कर डाला॥ २३॥ जब वह माया भी नष्ट हो गयी, तब कुपित हुए महातेजस्वी दानवराज शम्बरने सिंहमयी मायाकी सृष्टि की॥ २४॥ सिंहको अपने ऊपर आते देख प्रतापी रुक्मिणीकुमारने गान्धर्वास्त्र लेकर शरभोंकी सृष्टि की॥ २५॥ वे आठ पैरोंवाले तथा प्रचण्ड बलशाली थे। नख और दाढ़ें ही उनके आयुध थीं। जैसे वायु बादलोंको उड़ा देती है, उसी प्रकार उन शरभोंने शत्रुके उन सिंहोंको मार भगाया॥ २६॥ शरभमयी मायासे सिंहोंको भागते देख शम्बरासुर इस चिन्तामें पड़ा कि मैं किस प्रकार प्रद्युम्नका वध करूँ। अहो! मैं बड़े मूर्खस्वभावका हूँ, क्योंकि मैंने बाल्यावस्थामें ही इसका वध नहीं कर डाला॥ २७॥ अब तो जवानीका शरीर पाकर यह दुर्बुद्धि शत्रु सम्पूर्ण अस्त्रोंका ज्ञाता भी हो चुका है। अतः युद्धके मुहानेपर खड़े हुए इस शत्रुका मैं किस प्रकार वध करूँगा॥ २८॥ अच्छा, वह पन्नगी नामक अत्यन्त दुःसह एवं भीषण माया अभी मेरे पास मौजूद है, जिसे असुरघाती देवाधिदेव महादेवजीने मुझे दिया था॥ २९॥ विषधर सर्पोंसे युक्त उस महामायाकी मैं सृष्टि करता हूँ, उससे यह बलवान् मायामय दुष्टात्मा शत्रु अवश्य दग्ध हो जायगा॥ ३०॥ ऐसा सोचकर उस असुरने पन्नगी मायाकी सृष्टि की, जो विषकी ज्वालाओंसे व्याप्त थी। उस सर्पमयी मायासे शम्बरने रथ, घोड़े और

ससूत स हि प्रद्युम्नं बबन्ध शरबन्धनैः।
बध्यमानं तदा दृष्ट्वा आत्मानं वृष्णिवंशजः॥ ३२

मायां संचिन्तयामास सौपर्णीं सर्पनाशिनीम्।
सा चिन्तिता महामाया प्रद्युम्नेन महात्मना॥ ३३

सुपर्णा विचरन्ति स्म सर्पा नष्टा महाविषाः।
भग्नायां सर्पमायायां प्रशंसन्ति सुरासुराः॥ ३४

साधु वीर महाबाहो रुक्मिण्यानन्दवर्धन।
यत् त्वया धर्षिता माया तेन स्म परितोषिताः॥ ३५

हतायां सर्पमायायां शम्बरोऽचिन्तयत् पुनः।
अस्ति मे कालदण्डाभो मुद्गरो हेमभूषितः॥ ३६

तमप्रतिहतं युद्धे देवदानवमानवैः।
पुरा यो मम पार्वत्या दत्तः परमतुष्टया॥ ३७

गृहाण शम्बरेमं त्वं मुद्गरं हेमभूषितम्।
मया सृष्टं स्वदेहे वै तपः परमदुश्चरम्॥ ३८

मायान्तकरणं नाम सर्वासुरविनाशनम्।
अनेन दानवौ रौद्रौ बलिनौ कामरूपिणौ॥ ३९

शुम्भश्चैव निशुम्भश्च सगणौ सूदितौ मया।
प्राणसंशयमापन्ने त्वया मोक्ष्यः स शत्रवे॥ ४०

इत्युक्त्वा पार्वती देवी तत्रैवान्तरधीयत।
तदहं मुद्गरं श्रेष्ठं मोचयिष्यामि शत्रवे॥ ४१

तस्य विज्ञाय चित्तं तु देवराजोऽभ्यभाषत।
गच्छ नारद शीघ्रं त्वं प्रद्युम्नस्य रथं प्रति॥ ४२

सम्बोधय महाबाहुं पूर्वजातिं च मोक्षय।
वैष्णवास्त्रं प्रयच्छास्मै वधार्थं शम्बरस्य च॥ ४३

अभेद्यं कवचं चास्य प्रयच्छासुरसूदने।
एवमुक्तो मघवता नारदः प्रययौ त्वरम्॥ ४४

आकाशेऽधिष्ठितोऽवोचन्मकरध्वजकेतनम्।
कुमार पश्य मां प्राप्तं देवगन्धर्वनारदम्।
प्रेषितं देवराजेन तव सम्बोधनाय वै॥ ४५

सारथिसहित प्रद्युम्नको सर्पाकार बाणोंके बन्धनोंद्वारा बाँध लिया। अपनेको सर्पोंसे बद्ध होते देख वृष्णिवंशी प्रद्युम्नने सर्पोंको नाश करनेवाली सौपर्णी (गरुड़सम्बन्धिनी) मायाका चिन्तन किया। महात्मा प्रद्युम्नने ज्यों ही उस महामायाका चिन्तन किया, त्यों ही वहाँ बहुत-से गरुड़ पक्षी आकर विचरने लगे और वे महाविषधर सर्प नष्ट हो गये। उस सर्पमयी मायाके नष्ट होनेपर देवता और असुर सभी प्रद्युम्नकी भूरि-भूरि प्रशंसा करने लगे, 'रुक्मिणीका आनन्द बढ़ानेवाले महाबाहु वीर! तुमने बहुत अच्छा किया। तुम्हारे द्वारा जो इस मायाकी पराजय हुई है, इससे हम बहुत संतुष्ट हैं'॥ ३१—३५॥ उस सर्पमयी मायाके नष्ट होनेपर शम्बरासुरने पुनः सोचा 'अभी मेरे पास सुवर्णभूषित मुद्गर है, जो कालदण्डके समान भयंकर है॥ ३६॥ वह युद्धमें देवता, दानवों और मानवोंके द्वारा भी प्रतिहत होनेवाला नहीं है, मैं उसीका प्रयोग करूँगा। पूर्वकालमें परम संतुष्ट हुई पार्वतीदेवीने मुझे वह मुद्गर दिया और इस प्रकार कहा— ॥ ३७॥ शम्बर! तू यह सुवर्णभूषित मुद्गर ग्रहण कर। मैंने अपने शरीरसे अत्यन्त दुष्कर तपस्या करके इसकी सृष्टि की है॥ ३८॥ यह मायाओंका अन्त करनेवाला तथा समस्त असुरोंका विनाशक है। इसके द्वारा मैंने इच्छानुसार रूप धारण करनेवाले दो बलवान् एवं भयंकर दानव शुम्भ और निशुम्भका उनके सैनिकगणोंसहित संहार किया है। प्राणसंकटकी स्थिति आनेपर ही तुझे अपने शत्रुपर इस मुद्गरका प्रयोग करना चाहिये॥ ३९-४०॥ ऐसा कहकर पार्वतीदेवी वहीं अन्तर्धान हो गयी थीं, अतः मैं उसी श्रेष्ठ मुद्गरका अपने शत्रुपर प्रहार करूँगा॥ ४१॥ उस समय उसके मनोभावको जानकर देवराज इन्द्रने नारदजीसे कहा—'नारदजी! आप शीघ्र ही प्रद्युम्नके रथके पास चले जाइये और उन महाबाहु वीरको समझाइये तथा उन्हें उनके पूर्वजन्मका स्मरण दिलाइये। साथ ही शम्बरासुरके वधके लिये उन्हें वैष्णवास्त्र प्रदान कीजिये। असुरसंहारके कर्ममें लगे हुए इन्हें अभेद्य कवच भी दीजिये'। इन्द्रके ऐसा कहनेपर नारदजी बड़ी उतावलीके साथ वहाँ गये और आकाशमें खड़े होकर मकरध्वज कामसे इस प्रकार बोले—'कुमार! देखो, मैं देवगन्धर्व नारद यहाँ आया हूँ। देवराज इन्द्रने मुझे तुमको समझानेके लिये यहाँ भेजा है'॥ ४२—४५॥

स्मर त्वं पूर्वकं भावं कामदेवोऽसि मानद।
हरकोपानलाद् दग्धस्तेनानङ्ग इहोच्यसे॥ ४६

त्वं वृष्णिवंशजातोऽसि रुक्मिण्या गर्भसम्भवः।
जातोऽसि केशवेन त्वं प्रद्युम्न इति कीर्त्यसे॥ ४७

आहृत्य शम्बरेण त्वमिहानीतोऽसि मानद।
सप्तरात्रे त्वसम्पूर्णे सूतिकागारमध्यतः॥ ४८

वधार्थं शम्बरस्य त्वं ह्रियमाणो ह्युपेक्षितः।
केशवेन महाबाहो देवकार्यार्थसिद्धये॥ ४९

यैषा मायावती नाम भार्या वै शम्बरस्य तु।
रतिं तां विद्धि कल्याणीं तव भार्यां पुरातनीम्॥ ५०

तव संरक्षणार्थाय शम्बरस्य गृहेऽवसत्।
मायां शरीरजां तस्य मोहनार्थं दुरात्मनः॥ ५१

रतेः सम्पादनार्थाय प्रेषयत्यनिशं तदा।
एवं प्रद्युम्न बुद्ध्वा वै तत्र भार्या प्रतिष्ठिता॥ ५२

हत्वा तं शम्बरं वीर वैष्णवास्त्रेण संयुगे।
गृह्य मायावतीं भार्यां द्वारकां गन्तुमर्हसि॥ ५३

गृहाण वैष्णवं चास्त्रं कवचं च महाप्रभम्।
शक्रेण तव संगृह्य प्रेषितं शत्रुसूदन॥ ५४

शृणु मे ह्यपरं वाक्यं क्रियतामविशङ्कया।
अस्य देवरिपोस्तात मुद्गरो नित्यमूर्जितः॥ ५५

पार्वत्यां परितुष्टायां दत्तः शत्रुनिबर्हणः।
अमोघश्चैव संग्रामे देवदानवमानवैः॥ ५६

तदस्त्रप्रविघातार्थं देवीं त्वं स्मर्तुमर्हसि।
स्तव्या चैव नमस्या च महादेवी रणोत्सुकैः॥ ५७

तत्र वै क्रियतां यत्नः संग्रामे रिपुणा सह।
इत्युक्त्वा नारदो वाक्यं प्रययौ यत्र वासवः॥ ५८

'मानद! तुम अपने पूर्वजन्मका स्मरण करो। तुम साक्षात् कामदेव हो। भगवान् शङ्करकी क्रोधाग्निसे दग्ध हो गये थे, इसलिये इस जगत्में अनङ्ग कहलाते हो॥ ४६॥ तुम्हारा वर्तमान जन्म वृष्णिवंशमें हुआ है। तुम रुक्मिणीदेवीके गर्भसे उत्पन्न हुए हो। साक्षात् भगवान् केशवने तुम्हें जन्म दिया है। तुम प्रद्युम्न नामसे पुकारे जाते हो॥ ४७॥ मानद! तुम्हारे जन्मकी सातवीं रात अभी पूरी भी नहीं हुई थी कि शम्बरासुर तुम्हें सूतिकागारसे हरकर यहाँ उठा लाया॥ ४८॥ महाबाहो! देवताओंका कार्य सिद्ध करने और शम्बरासुरको मारनेके लिये ही भगवान् श्रीकृष्णने तुम्हारे अपहरणकी उपेक्षा की॥ ४९॥ यह जो मायावती नामसे प्रसिद्ध शम्बरासुरकी भार्या बनी बैठी है, इसे तुम अपनी कल्याणमयी पुरातन पत्नी रति समझो॥ ५०॥ तुम्हारे शरीरकी रक्षा करनेके लिये ही इसने शम्बरासुरके घरमें निवास किया है। उस दुरात्मा दैत्यको मोहनेके लिये यह अपने शरीरसे एक मायामयी स्त्री प्रकट करके उसकी प्रसन्नताके लिये सदा भेजा करती है। प्रद्युम्न! यह सब समाचार जानकर ही तुम्हारी पत्नी वहाँ स्थिरतापूर्वक रहती है। वीर! तुम वैष्णवास्त्रके द्वारा युद्धमें शम्बरासुरका वध करके अपनी भार्या मायावतीको साथ ले द्वारकाको जानेयोग्य हो॥ ५१—५३॥ शत्रुसूदन! यह वैष्णव अस्त्र तथा अत्यन्त कान्तिमान् कवच संग्रह करके इन्द्रने तुम्हारे लिये भेजा है। तुम इन्हें ग्रहण करो॥ ५४॥ अब तुम मेरी दूसरी बात सुनो और निःशङ्क होकर उसका पालन करो। तात! इस देवद्रोहीका मुद्गर नित्य शक्तिशाली है पार्वतीदेवीने प्रसन्न होकर वह शत्रुनाशक मुद्गर इसे प्रदान किया था। यह संग्राममें देवताओं, दानवों और मानवोंके लिये भी अमोघ है॥ ५५-५६॥ उस अस्त्रका निवारण करनेके लिये तुम्हें पार्वतीदेवीका स्मरण करना चाहिये। युद्धके लिये उत्सुक रहनेवाले वीरोंको महादेवी पार्वतीकी स्तुति और वन्दना अवश्य करनी चाहिये॥ ५७॥ शत्रुके साथ संग्राम करते समय तुम्हें पार्वतीदेवीकी स्तुतिके लिये भी अवश्य प्रयत्न करना चाहिये।' ऐसा कहकर नारदजी जहाँ इन्द्र थे, वहीं चले गये॥ ५८॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे विष्णुपर्वणि शम्बरवधे नारदवाक्ये षडधिकशततमोऽध्यायः॥ १०६॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत विष्णुपर्वमें शम्बरवधके प्रसङ्गमें नारदजीका वाक्यविषयक एक सौ छठा अध्याय पूरा हुआ॥ १०६॥

सप्ताधिकशततमोऽध्यायः

प्रद्युम्नके द्वारा शम्बरासुरका वध

वैशम्पायन उवाच

शम्बरस्तु ततः क्रुद्धो मुद्गरं तं समाददे।
मुद्गरे गृह्यमाणे तु द्वादशार्काः समुत्थिताः॥ १
पर्वताश्चलिताः सर्वे तथैव वसुधातलम्।
उन्मार्गाः सागरा याताः संक्षुब्धाश्चापि देवताः॥ २
गृध्रचक्राकुलं व्योम उल्कापातो बभूव ह।
ववर्ष रुधिरं देवः परुषं पवनो ववौ॥ ३
एवं दृष्ट्वा महोत्पातान् प्रद्युम्नः स त्वरान्वितः।
अवतीर्य रथाद् वीरः कृताञ्जलिपुटः स्थितः॥ ४
देवीं सस्मार मनसा पार्वतीं शङ्करप्रियाम्।
प्रणम्य शिरसा देवीं स्तोतुं समुपचक्रमे॥ ५

प्रद्युम्न उवाच

ॐनमः कात्यायन्यै गिरीशायै नमो नमः।
नमस्त्रैलोक्यमायायै कात्यायन्यै नमो नमः॥ ६

नमः शत्रुविनाशिन्यै नमो गौर्यै शिवप्रिये।
नमस्ये शुम्भमथनीं निशुम्भमथनीमपि॥ ७

कालरात्रि नमस्तुभ्यं कौमार्यै च नमो नमः।
कान्तारवासिनीं देवीं नमस्यामि कृताञ्जलिः॥ ८

विन्ध्यवासिनीं दुर्गघ्नां रणदुर्गां रणप्रियाम्।
नमस्यामि महादेवीं जयां च विजयां तथा॥ ९

अपराजितां नमस्येऽहमजितां शत्रुनाशिनीम्।
घण्टाहस्तां नमस्यामि घण्टामालाकुलां तथा॥ १०

त्रिशूलिनीं नमस्यामि महिषासुरघातिनीम्।
सिंहवाहां नमस्यामि सिंहप्रवरकेतनाम्॥ ११

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! तब क्रोधमें भरे हुए शम्बरासुरने वह मुद्गर हाथमें ले लिया। उसे लेते समय सहसा बारह सूर्य प्रकट हो गये॥ १॥ समस्त पर्वत हिलने लगे, पृथ्वी काँप उठी, सब समुद्र ऊपरको उछलने लगे, इसी प्रकार समस्त देवताओंमें भी क्षोभ फैल गया॥ २॥ आकाशमें गीधोंके समूह मँडराने लगे, उल्कापात होने लगा, बादल रुधिर बरसाने लगे और अत्यन्त रूखी वायु चलने लगी॥ ३॥ वीर प्रद्युम्न इस प्रकारके महान् उत्पातोंको देखकर फुर्तीके साथ रथसे नीचे उतर दोनों हाथ जोड़कर खड़े हो गये॥ ४॥ वे मन-ही-मन भगवान् शङ्करकी प्रिया देवी पार्वतीका स्मरण करने लगे। उन्होंने सिर झुकाकर देवीको प्रणाम करके उनकी स्तुति आरम्भ की॥ ५॥

प्रद्युम्नने कहा—सच्चिदानन्दमयी कात्यायनी देवीको प्रणाम है। पर्वतोंकी स्वामिनी पार्वती देवीको बारम्बार नमस्कार है। तीनों लोकोंकी मायास्वरूपा कात्यायनी देवीको मेरा बारम्बार अभिवादन है॥ ६॥ शत्रुओंको नष्ट करनेवाली गौरीदेवीको बारम्बार प्रणाम है। शिवप्रिये! शुम्भ दैत्यको मथ डालनेवाली और निशुम्भको भी रौंदनेवाली आपको मैं प्रणाम करता हूँ॥ ७॥ कालरात्रि! आपको प्रणाम है। कौमारी शक्तिरूपा आपको बारम्बार नमस्कार है। मैं कान्तारवासिनी देवीको हाथ जोड़कर प्रणाम करता हूँ॥ ८॥ मैं विन्ध्याचलमें निवास करनेवाली, विपत्तियोंको नष्ट करनेवाली, रणचण्डी, रणप्रिया, जया और विजया नामवाली महादेवीको प्रणाम करता हूँ॥ ९॥

मैं किसीसे पराजित न होनेवाली, शत्रुओंकी विनाशकारिणी अपराजिता देवीको प्रणाम करता हूँ। घण्टाओंकी मालाओंसे व्याप्त और हाथमें घण्टा धारण करनेवाली देवीको मैं प्रणाम करता हूँ॥ १०॥

मैं महिषासुरका संहार करनेवाली त्रिशूलधारिणी देवीको नमस्कार करता हूँ। सिंहपर सवार होनेवाली और सिंहके चिह्नसे अलंकृत श्रेष्ठ ध्वजावाली देवीको मैं प्रणाम करता हूँ॥ ११॥

एकानंशां नमस्यामि गायत्रीं यज्ञसत्कृताम्।
सावित्रीं चापि विप्राणां नमस्येऽहं कृताञ्जलिः॥ १२
रक्ष मां देवि सततं संग्रामे विजयं कुरु।
इति कामवचस्तुष्टा दुर्गा सम्प्रीतमानसा॥ १३
उवाच वचनं देवी सुप्रीतेनान्तरात्मना।
पश्य पश्य महाबाहो रुक्मिण्यानन्दवर्द्धन॥ १४
वरं वरय वत्स त्वममोघं दर्शनं मम।
देव्यास्तु वचनं श्रुत्वा रोमाञ्चोद्गतमानसः॥ १५
प्रणम्य शिरसा देवीं विज्ञप्तुमुपचक्रमे।
यदि त्वं देवि तुष्टासि दीयतां मे यदीप्सितम्॥ १६
वरं च वरदे याचे सर्वामित्रेषु मे जयः।
यस्त्वया मुद्गरो दत्तः शम्बरस्यात्मसम्भवः॥ १७
एष मे गात्रमासाद्य माला पद्मवती भवेत्।
तथास्त्विति च साप्युक्त्वा तत्रैवान्तरधीयत॥ १८
प्रद्युम्नस्तु महातेजास्तुष्टो रथमथारुहत्।
मुद्गरं तं गृहीत्वा च शम्बरः क्रोधमूर्च्छितः॥ १९
भ्रामयित्वा च चिक्षेप प्रद्युम्नोरसि वीर्यवान्।
स गत्वा मदनाभ्याशं माला भूत्वा तु पौष्करी॥ २०
प्रद्युम्नस्य च कण्ठे तु समासक्ता व्यराजत।
नक्षत्राणां तु मालायां यथा परिवृतो विधुः॥ २१
ततो देवाः सगन्धर्वाः सिद्धाश्च परमर्षयः।
साधु साध्विति वाचोचुः पूजयन् केशवात्मजम्॥ २२
मुद्गरं पुष्पभूतं तु दृष्ट्वा प्रद्युम्नसंनिधौ।
वैष्णवं परमास्त्रं तु नारदेन यथाहृतम्॥ २३
संदधे चापमानम्य इदं वचनमब्रवीत्।
यद्यहं रुक्मिणीपुत्रः केशवस्यात्मजो ह्यहम्॥ २४
तेन सत्येन बाणेन जहि त्वं शम्बरं रणे।
इत्युक्त्वा चापमाकृष्य संधाय च महामनाः॥ २५

मैं एकानंशा देवीको प्रणाम करता हूँ, यज्ञोंमें पूजित गायत्री देवीको नमस्कार करता हूँ और विप्रोंकी सावित्री (रूपसे उपास्य) देवीको भी मैं हाथ जोड़कर अभिवादन करता हूँ। देवि! आप सर्वदा मेरी रक्षा कीजिये और संग्राममें मुझे विजय प्रदान कीजिये। कामस्वरूप प्रद्युम्नके ऐसे प्रार्थनापूर्ण वचनोंसे दुर्गा देवी संतुष्ट हो गयीं। उनका मन प्रसन्न हो गया। तदनन्तर दुर्गा देवी हृदयमें अत्यन्त आह्लादित हो यह वचन कहने लगीं—'रुक्मिणीके आनन्दको बढ़ानेवाले महाबाहु प्रद्युम्न! (मेरी ओर) देख! देख!! मेरा दर्शन अमोघ है, अतः वत्स! तू मनोवाञ्छित वर माँग ले'। देवीके इस वचनको सुनकर प्रद्युम्न रोमाञ्चित हो गये, हर्षसे उनका हृदय उछलने लगा। तब उन्होंने सिर झुकाकर देवीको प्रणाम करके उनसे इस प्रकार निवेदन किया—'देवि! यदि आप प्रसन्न हैं तो मैं जो चाहता हूँ, वह मुझे दीजिये॥ १२—१६॥ 'वरदे! मैं यह वर माँगता हूँ कि सब शत्रुओंपर मुझे विजय प्राप्त हो और अपने शरीरसे प्रकट किया हुआ जो मुद्गर आपने शम्बरासुरको दिया है, वह मेरे शरीरपर प्राप्त होकर कमलोंकी माला बन जाय।' तब वे देवी 'ऐसा ही होगा' यह कहकर वहाँ ही अन्तर्धान हो गयीं॥ १७-१८॥ तब महातेजस्वी प्रद्युम्न संतुष्ट होकर रथपर आरूढ़ हुए। उधर क्रोधसे अचेत हुए पराक्रमी शम्बरने उस मुद्गरको हाथमें लेकर घुमाया और प्रद्युम्नकी छातीपर दे मारा। प्रद्युम्नके निकट जाकर वह मुद्गर कमल-पुष्पोंकी माला बन गया। वह माला प्रद्युम्नके कण्ठमें आसक्त होकर अतिशय शोभा पाने लगी। उस समय वे नक्षत्रोंकी मालासे घिरे हुए चन्द्रमाकी भाँति सुशोभित हुए॥ १९—२१॥ तत्पश्चात् देवता, गन्धर्व, सिद्ध और महर्षि 'साधु! साधु!' कहकर केशवकुमारकी प्रशंसा करने लगे। प्रद्युम्नके निकट जब वह मुद्गर कमलपुष्प बन गया, तब प्रद्युम्नने नारदजीके दिये हुए वैष्णव नामक दिव्यास्त्रका संधान किया और अपने धनुषको झुकाकर इस प्रकार कहा—'वैष्णवास्त्र! यदि मैं रुक्मिणीदेवी और भगवान् श्रीकृष्णका पुत्र हूँ तो इस सत्यके प्रभावसे तुम अपने बाणद्वारा रणभूमिमें शम्बरासुरको मार डालो'। ऐसा कहकर महा-मनस्वी प्रद्युम्नने धनुष खींचकर उसपर बाण रखा

चिक्षेप शम्बरस्याथ दहँल्लोकत्रयं यथा।
स क्षिप्तो वृष्णिसिंहेन शरः क्रव्यादमोहनः॥ २६
हृदयं शम्बरस्याथ भित्त्वा धरणिमागतः।
न चास्य मांसं न स्नायुर्नास्थि न त्वङ् न शोणितम्॥ २७
सर्वं तद् भस्मसाद्भूतं वैष्णवास्त्रस्य तेजसा।
हते दैत्ये महाकाये दानवे शम्बरेऽधमे॥ २८
जहृषुर्देवगन्धर्वा ननृतुश्चाप्सरोगणाः।
उर्वशी मेनका रम्भा विप्रचित्तिस्तिलोत्तमा॥ २९
ननृतुर्हृष्टमनसो जगत् स्थावरजङ्गमम्।
देवराजस्तु सुप्रीतः सर्वदेवगणैः सह।
प्रद्युम्नं पुष्पवर्षेण तमभ्यर्च्य प्रहृष्टवत्॥ ३०
अथ समरहते तु दैत्यराजे
मधुमथनस्य सुतेन वैष्णवास्त्रैः।
विगतरिपुभयाः सुराश्च जग्मु-
र्मकरविभूषणकेतनं स्तुवन्तः॥ ३१
स च समरपरिश्रमं वहन् वै
नगरमुखं प्रविवेश रौक्मिणेयः।
प्रियतम इव कान्तया प्रहृष्ट-
स्त्वरितपदं रतिदर्शनं चकार॥ ३२

और तीनों लोकोंको जलाते हुए उसको शम्बरासुरके ऊपर छोड़ दिया। वृष्णिवंशके सिंह प्रद्युम्नके द्वारा चलाया गया वह बाण राक्षसोंको मोहमें डालनेवाला था। वह शम्बरासुरके हृदयको विदीर्ण करके पृथ्वीपर आ गया, इससे उस दैत्यका न तो मांस, न स्नायुजाल, न हड्डी, न त्वचा और न रक्त ही शेष बचा। वैष्णवास्त्रके तेजसे वह सब कुछ भस्म हो गया। उस महाकाय अधम दानव शम्बर दैत्यके मारे जानेपर देवता और गन्धर्व हर्षसे खिल उठे तथा उर्वशी, मेनका, रम्भा, विप्रचित्ति और तिलोत्तमा आदि अप्सराएँ नृत्य करने लगीं॥ २२—२९॥ उपर्युक्त अप्सराएँ जब प्रसन्नचित्त होकर नाचने लगीं, उस समय यह चराचर जगत् भी हर्षसे झूम उठा। समस्त देवताओंसहित देवराज इन्द्र अत्यन्त प्रसन्न हो फूलोंकी वर्षासे प्रद्युम्नका सत्कार करके हर्षविभोर हो गये॥ ३०॥ मधुसूदन श्रीकृष्णके पुत्र प्रद्युम्नद्वारा समरभूमिमें वैष्णवास्त्रसे दैत्यराज शम्बरके मारे जानेपर समस्त देवताओंका शत्रुसम्बन्धी भय दूर हो गया और वे मकरध्वज प्रद्युम्नकी स्तुति करते हुए अपने स्थानको चले गये॥ ३१॥ अपने शरीरद्वारा युद्धजनित थकावटका भार वहन करते हुए रुक्मिणीकुमार प्रद्युम्नने नगरद्वारमें प्रवेश किया। जैसे प्रेयसीसे मिलकर प्रियतमको प्रसन्नता होती है, उसी प्रकार अत्यन्त हर्षमें भरे हुए प्रद्युम्नने तुरंत ही अपनी पत्नी रतिसे साक्षात्कार किया॥ ३२॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे विष्णुपर्वणि शम्बरवधे सप्ताधिकशततमोऽध्यायः॥ १०७॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत विष्णुपर्वमें शम्बरासुरका वधविषयक एक सौ सातवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १०७॥

अष्टाधिकशततमोऽध्यायः

मायावतीसहित प्रद्युम्नका द्वारकामें आगमन और रुक्मिणीके भवनमें प्रवेश

वैशम्पायन उवाच

समाप्तमायो मायाज्ञो विक्रान्तः समरेऽव्ययः।
अष्टम्यां निहतो युद्धे मायावी कालशम्बरः॥ १
तमृक्षवन्ते नगरे निहत्यासुरसत्तमम्।
गृह्य मायावतीं देवीमागच्छन्नगरं पितुः॥ २
सोऽन्तरिक्षगतो भूत्वा मायावी शीघ्रविक्रमः।
आजगाम पुरीं रम्यां रक्षितां तेजसा पितुः॥ ३

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! शम्बरासुर मायाओंका ज्ञाता था, किंतु उसकी सारी माया समाप्त हो गयी। मायावी कालशम्बर रणभूमिमें पराक्रम प्रकट करनेवाला और अविनाशी था तो भी अष्टमीको युद्धमें प्रद्युम्नद्वारा मार डाला गया॥ १॥ ऋक्षवन्त नामक नगरमें असुरशिरोमणि शम्बरका वध करके देवी मायावतीको साथ ले प्रद्युम्न अपने पिताके नगरमें आये॥ २॥ शीघ्रतापूर्वक पराक्रम प्रकट करनेवाले मायावी प्रद्युम्न आकाशमें स्थित हो अपने पिताके तेजसे सुरक्षित रमणीय पुरी द्वारकामें आये॥ ३॥

सोऽन्तरिक्षान्निपतितः केशवान्तःपुरे शिशुः।
मायावत्या सह तया रूपवानिव मन्मथः॥ ४

तस्मिंस्तत्रावपतिते महिष्यः केशवस्य याः।
विस्मिताश्चैव हृष्टाश्च भीताश्चैवाभवंस्ततः॥ ५

ततस्तं कामसंकाशं कान्तया सह सङ्गतम्।
प्रेक्षन्त्यो हृष्टवदनाः पिबन्त्यो नयनोत्सवम्॥ ६

तं विनीतमुखं दृष्ट्वा लज्जमानं पदे पदे।
अभवन् स्निग्धसंकल्पाः सर्वास्ताः कृष्णयोषितः॥ ७

रुक्मिणी चैव तं दृष्ट्वा शोकार्ता पुत्रगर्द्धिनी।
सपत्नीशतसंकीर्णा सबाष्पा वाक्यमब्रवीत्॥ ८

यादृक् स्वप्नो मया दृष्टो निशायां यौवने गते।
कंसारिणा ममानीय दत्तं साहारपल्लवम्॥ ९

शशिरश्मिप्रतीकाशं मुक्तादाम च शोभनम्।
केशवेनाङ्कमारोप्य मम कण्ठे न्यबध्यत॥ १०

श्यामा सुचारुकेशा स्त्री शुक्लाम्बरविभूषिता।
पद्महस्ता निरीक्षन्ती प्रविष्टा मम वेश्मनि॥ ११

तया पुनरहं गृह्य स्नापिता रुचिराम्बुना।
कुशेशयमयीं मालां स्त्री संगृह्याथ पाणिना॥ १२

मम मूर्धन्युपाघ्राय दत्ता स्वच्छा तया मम।
एवं स्वप्नान् कीर्तयन्ती रुक्मिणी हृष्टमानसा॥ १३

सखीजनवृता देवी कुमारं वीक्ष्य तं मुहुः।
धन्यायाः खल्वयं पुत्रो दीर्घायुः प्रियदर्शनः॥ १४

वे आकाशसे भगवान् श्रीकृष्णके अन्तःपुरमें उतर पड़े। उस समय मायावती (रति)-के साथ मूर्तिमान् कामदेवके समान प्रतीत होते थे॥ ४॥ उस समय वहाँ उनके उतरनेपर भगवान् श्रीकृष्णकी जो रानियाँ थीं, उनमेंसे कुछ तो आश्चर्यसे चकित हो उठीं, कितनी स्त्रियोंको महान् हर्ष हुआ और बहुत-सी भयभीत हो गयीं॥ ५॥ प्रद्युम्न अपनी प्रियतमाके साथ मिलकर कामदेवके समान शोभा पा रहे थे। उनकी ओर निहारती हुई रानियोंके मुखपर हर्ष छा रहा था। वे नेत्रोंसे उनकी रूपमाधुरीका पान कर रही थीं, प्रद्युम्न उनके नयनोंके लिये उत्सवरूप हो गये थे॥ ६॥ उनका मुख विनयसे झुका हुआ था। वे पग-पगपर संकोचका अनुभव कर रहे थे। उन्हें देखकर श्रीकृष्णकी सभी रानियोंके हृदयमें वात्सल्य-स्नेहका संचार हो आया था॥ ७॥ पुत्रकी इच्छा रखनेवाली रुक्मिणी उन्हें देखकर शोकसे कातर हो उठीं। वे सैकड़ों सौतोंसे घिरकर आँसू बहाती हुई इस प्रकार बोलीं— ॥ ८॥ 'मैंने रातमें निशाकालकी युवावस्था बीत जानेपर अर्थात् पिछले पहरमें जैसा स्वप्न देखा है, (वह इस प्रकार है—) 'मेरे प्राणनाथ कंसनिषूदनने मेरे हाथमें फलयुक्त आम्रपल्लव लाकर दिया है॥ ९॥ 'फिर श्रीकेशवने मुझे अपने अङ्कमें बिठाकर मोतियोंकी एक बहुत सुन्दर माला मेरे कण्ठमें बाँध दी। वह माला चन्द्रमाकी किरणोंके समान प्रकाशमान थी॥ १०॥ 'फिर एक श्यामा (सोलह वर्षकी अवस्थावाली अथवा श्यामवर्णा) स्त्री मेरे महलमें प्रविष्ट हुई, जिसके केश बड़े ही मनोहर थे। श्वेत वस्त्र उसके अङ्गकी शोभा बढ़ा रहे थे। उसके हाथमें कमल था। वह मेरी ओर देखती हुई घरके भीतर घुसी थी॥ ११॥ 'वह स्त्री मेरा हाथ पकड़कर मुझे स्नानागारमें ले गयी और स्वच्छ जलसे उसने मुझे नहलाया। तत्पश्चात् मेरा मस्तक सूँघकर उसने अपने हाथसे एक निर्मल कमलपुष्पोंकी माला लेकर मुझे पहना दी'। इस प्रकार स्वप्नोंका वर्णन करती हुई रुक्मिणीका हृदय हर्षसे खिल उठा। सखियोंसे घिरी हुई उन महारानीने कुमार प्रद्युम्नकी ओर बारम्बार देखकर कहा—'निश्चय ही यह किसी बड़भागिनी माताका दीर्घायु पुत्र है, जो देखनेमें बहुत ही प्रिय है।

ईदृशः कामसंकाशो यौवने प्रथमे स्थितः।
जीवपुत्रा त्वया पुत्र कासौ भाग्यसमन्विता॥ १५

किमर्थं चाम्बुदश्यामः सभार्यस्त्वमिहागतः।
अस्मिन् वयसि सुव्यक्तं प्रद्युम्नो मम पुत्रकः॥ १६

भवेद् यदि न नीतः स्यात् कृतान्तेन बलीयसा।
व्यक्तं कृष्णकुमारस्त्वं न मिथ्या मम तर्कितम्॥ १७

विज्ञातोऽसि मया चिह्नैर्विना चक्रं जनार्दनः।
मुखं नारायणस्येव केशाः केशान्त एव च॥ १८

ऊरू वक्षो भुजौ तुल्यौ हलिनः श्वशुरस्य मे।
कस्त्वं वृष्णिकुलं सर्वं द्योतयन् वपुषा स्थितः॥ १९

अहो नारायणस्येव दिव्या ते परमा तनुः।
एतस्मिन्नन्तरे कृष्णः सहसा प्रविवेश ह।
नारदस्य वचः श्रुत्वा शम्बरस्य वधं प्रति॥ २०

सोऽपश्यत् तं सुतं ज्येष्ठं सिद्धं मन्मथलक्षणैः।
स्नुषां मायावतीं चैव हृष्टचेता जनार्दनः॥ २१

सोऽब्रवीत् सहसा देवीं रुक्मिणीं देवतामिव।
अयं स देवि सम्प्राप्तः सुतश्चापधरस्तव॥ २२

अनेन शम्बरं हत्वा मायायुद्धविशारदम्।
हृता मायाश्च ताः सर्वा याभिर्देवानबाधयत्॥ २३

सती चेयं शुभा साध्वी भार्या वै तनयस्य ते।
मायावतीति विख्याता शम्बरस्य गृहोषिता॥ २४

मा च ते शम्बरस्येयं पत्नीति भवतु व्यथा।
मन्मथे तु गते नाशं गते चानङ्गतां पुरा॥ २५

कामपत्नी न कान्तैषा शम्बरस्य रतिः प्रिया।
मायारूपेण तं दैत्यं मोहयत्यसकृच्छुभा॥ २६

न चैषा तस्य कौमारे वशे तिष्ठति शोभना।
आत्ममायामयं कृत्वा रूपं शम्बरमाविशत्॥ २७

इस तरह कामदेव-जैसा सुन्दर यह बालक अभी पहले-पहल युवावस्थामें प्रविष्ट हुआ है'। (फिर वे प्रद्युम्नसे बोलीं—) 'बेटा! वह कौन-सी सौभाग्यशालिनी माता है, जो तुम-जैसे चिरंजीवी पुत्रसे पुत्रवती हुई है? मेघके समान श्याम सुन्दर शरीरवाले तुम अपनी पत्नीके साथ किसलिये यहाँ पधारे हो? यदि बलवान् काल न उठा ले गया होता तो मेरा बेटा प्रद्युम्न भी अवश्य ही इसी (तरुण) अवस्थामें स्थित होता। अथवा मेरा तर्क करना—सोचना व्यर्थ नहीं है। तुम अवश्य ही श्रीकृष्णके पुत्र हो। मैंने लक्षणोंसे तुम्हें पहचान लिया। तुम बिना चक्रके जनार्दन हो (यदि तुम्हारे हाथमें चक्र हो तो तुममें और श्रीकृष्णमें कोई अन्तर नहीं रह जायगा)। तुम्हारा मुख नारायण (श्रीकृष्ण)-के समान है। तुम्हारे केश और केशान्तभाग उन्हींके सदृश हैं। तुम्हारी दोनों जाँघें, वक्षःस्थल और दोनों भुजाएँ मेरे श्वशुर हलधरके सदृश हैं। तुम कौन हो, जो यहाँ अपने शरीरकी कान्तिसे समस्त वृष्णिकुलको प्रकाशित करते हुए खड़े हो? अहो! भगवान् नारायणके समान तुम्हारा शरीर परम दिव्य है'। इसी बीचमें शम्बर-वधके विषयमें नारदजीका वचन सुनकर भगवान् श्रीकृष्ण सहसा अन्तःपुरमें आये॥ १२—२०॥ उन्होंने कामदेवके लक्षणोंसे सम्पन्न अपने ज्येष्ठ पुत्र प्रद्युम्नको तथा पुत्रवधू मायावतीको भी देखा। इससे जनार्दनके चित्तमें बड़ा हर्ष हुआ॥ २१॥ वे सहसा देवताके समान दीप्तिमती देवी रुक्मिणीसे बोले—'देवि! यह वही तुम्हारा पुत्र है, जो इस समय धनुष धारण करके तुम्हारे पास आया है॥ २२॥ इसने मायायुद्धविशारद शम्बरासुरका वध करके उसकी ये सारी मायाएँ भी हर ली हैं, जिनके बलपर वह देवताओंको सताया करता था॥ २३॥ यह तुम्हारे पुत्रकी सती साध्वी शुभलक्षणा पत्नी है। इसका नाम मायावती है। यह शम्बरासुरके घरमें चिरकालतक रही है॥ २४॥ यह कहीं शम्बरासुरकी स्त्री न हो, ऐसी बात सोचकर तुम मनमें व्यथित न होना। पूर्वकालमें जब कामदेवका शरीर नष्ट हो गया और वे अनङ्ग हो गये, उस समय उनकी प्यारी पत्नी जो रति थी, वही यह मायावती है। यह शम्बरासुरकी वल्लभा कभी नहीं रही है। यह शुभलक्षणा सुन्दरी सदा मायामयरूपसे ही उस दैत्यको मोहमें डाले रखती थी। यह कुमारावस्थामें कभी उसके वशमें नहीं हुई। अपनी मायासे ही एक मनोहर नारीका रूप रचकर उसीको शम्बरासुरके शयनागारमें प्रविष्ट करती थी'॥ २५—२७॥

पत्न्येषा मम पुत्रस्य स्नुषा तव वराङ्गना।
लोककान्तस्य साहाय्यं करिष्यति मनोमयम्॥ २८

प्रवेशयैनां भवनं पूज्यां ज्येष्ठां स्नुषां मम।
चिरं प्रणष्टं च सुतं भजस्व पुनरागतम्॥ २९

वैशम्पायन उवाच

श्रुत्वा तु वचनं देवी कृष्णेनोदाहृतं तदा।
प्रहर्षमतुलं लब्ध्वा रुक्मिणी वाक्यमब्रवीत्॥ ३०

अहो धन्यतरास्मीति वीरपुत्रसमागमात्।
अद्य मे सफलः कामः पूर्णो मेऽद्य मनोरथः॥ ३१

चिरप्रणष्टपुत्रस्य दर्शनं प्रियया सह।
आगच्छ पुत्र भवनं सभार्यः प्रविशेह च॥ ३२

ततोऽभिवाद्य चरणौ गोविन्दं मातरं च ताम्।
प्रद्युम्नः पूजयामास हलिनं च महाबलम्॥ ३३

उत्थाप्य तं परिष्वज्य मूर्ध्न्युपाघ्राय वीर्यवान्।
प्रद्युम्नं बलिनां श्रेष्ठं केशवः परवीरहा॥ ३४

स्नुषां चोत्थाप्य तां देवी रुक्मिणी रुक्मभूषणा।
परिष्वज्योपसंगृह्य स्नेहाद् गद्गदभाषिणी॥ ३५

समेत्य भवनं पत्न्या शचीन्द्रमदितिर्यथा।
प्रवेशयामास तदा रुक्मिणी सुतमागतम्॥ ३६

'यह सुन्दरी मेरे पुत्रकी पत्नी तथा तुम्हारी बहू है। यह लोककमनीय रूपवाले प्रद्युम्नकी मनोमय (संकल्पमय) सहायता करेगी॥ २८॥ यह मेरी आदरणीय ज्येष्ठ बहू है, इसे घरके भीतर ले चलो। चिरकालसे नष्ट हुआ तुम्हारा पुत्र फिर आ गया। इसे अपनाओ'॥ २९॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! श्रीकृष्णका यह कथन सुनकर उस समय देवी रुक्मिणीको अनुपम हर्ष प्राप्त हुआ। वे बोलीं—॥ ३०॥ 'अहो! आज अपने वीर पुत्रके मिल जानेसे मैं परम धन्य हो गयी। अब मेरी कामना सफल हो गयी। सम्पूर्ण मनोरथ पूर्ण हो गया॥ ३१॥ चिरकालसे खोये हुए पुत्रका आज मुझे उसकी पत्नीके साथ दर्शन हुआ। बेटा! आओ, अपनी पत्नीके साथ इस घरके भीतर प्रवेश करो'॥ ३२॥ तदनन्तर प्रद्युम्नने अपने पिता श्रीकृष्ण और माता रुक्मिणीके चरणोंमें प्रणाम करके अपने ताऊ महाबली हलधरका भी पूजन किया॥ ३३॥ शत्रुवीरोंका संहार करनेवाले पराक्रमी भगवान् श्रीकृष्णने बलवानोंमें श्रेष्ठ प्रद्युम्नको उठाकर हृदयसे लगाया और मस्तक सूँघकर अपना स्नेह प्रदान किया॥ ३४॥ सोनेके आभूषणोंसे विभूषित हुई देवी रुक्मिणीने अपनी उस पुत्रवधूको उठाकर हृदयसे लगा लिया और उसे सर्वतोभावेन अपनाकर स्नेहसे गद्गद वाणीद्वारा उसका स्वागत किया॥ ३५॥ जैसे देवमाता अदितिने शची और इन्द्रको देवभवनमें प्रविष्ट किया था, उसी प्रकार रुक्मिणीने पत्नीके साथ आये हुए पुत्रसे मिलकर उसका भवनके भीतर प्रवेश कराया॥ ३६॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे विष्णुपर्वणि प्रद्युम्नागमने अष्टाधिकशततमोऽध्यायः॥ १०८॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत विष्णुपर्वमें प्रद्युम्नका आगमनविषयक एक सौ आठवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १०८॥

नवाधिकशततमोऽध्यायः

बलदेवजीके द्वारा प्रद्युम्नको आह्निकस्तोत्रका उपदेश

वैशम्पायन उवाच

अत्राश्चर्यात्मकं स्तोत्रमाह्निकं जयतां वर।
प्रद्युम्ने द्वारकां प्राप्ते हत्वा तं कालशम्बरम्॥ १
बलदेवेन रक्षार्थं प्रोक्तमाह्निकमुच्यते।
यज्जप्त्वा तु नृपश्रेष्ठ सायं पूतात्मतां व्रजेत्॥ २
कीर्तितं बलदेवेन विष्णुना चैव कीर्तितम्।
धर्मकामैश्च मुनिभिर्ऋषिभिश्चापि कीर्तितम्॥ ३
कर्हिचिद् रुक्मिणीपुत्रो हलिना संयुतो गृहे।
उपविष्टः प्रणम्याथ तमुवाच कृताञ्जलिः॥ ४

प्रद्युम्न उवाच

कृष्णानुज महाभाग रोहिणीतनय प्रभो।
किंचित् स्तोत्रं मम ब्रूहि यज्जप्त्वा निर्भयोऽभवम्॥ ५

श्रीबलदेव उवाच

सुरासुरगुरुर्ब्रह्मा पातु मां जगतः पतिः।
अथोङ्कारवषट्कारौ सावित्री विधयस्त्रयः॥ ६
ऋचो यजूंषि सामानि छन्दांस्याथर्वणानि च।
चत्वारस्त्वखिला वेदाः सरहस्याः सविस्तराः॥ ७
पुराणमितिहासश्चाखिलान्युपखिलानि च।
अङ्गान्युपाङ्गानि तथा व्याख्यातानि च पान्तु माम्॥ ८
पृथिवी वायुराकाशमापो ज्योतिश्च पञ्चमम्।
इन्द्रियाणि मनो बुद्धिस्तथा सत्त्वं रजस्तमः॥ ९
व्यानोदानौ समानश्च प्राणोऽपानश्च पञ्चमः।
वायवः सप्त चैवान्ये येष्वायत्तमिदं जगत्॥ १०
मरीचिरङ्गिरात्रिश्च पुलस्त्यः पुलहः क्रतुः।
भृगुर्वसिष्ठो भगवान् पान्तु ते मां महर्षयः॥ ११

वैशम्पायनजी कहते हैं—विजयी वीरोंमें श्रेष्ठ जनमेजय! जब प्रद्युम्न कालशम्बरका वध करके द्वारकापुरीमें आये, उस समय बलदेवजीने उनकी रक्षाके लिये उन्हें एक स्तोत्रका उपदेश दिया; जिसे आह्निक कहते हैं। नृपश्रेष्ठ! उसी आश्चर्यमय आह्निक स्तोत्रका यहाँ वर्णन किया जाता है, जिसका सायंकालमें जप करनेसे मनुष्य पूतात्मा (पवित्र अन्तःकरणवाला) हो जाता है॥ १-२॥ इस स्तोत्रका बलदेवजीने, भगवान् विष्णुने तथा धर्माभिलाषी ऋषि-मुनियोंने भी कीर्तन किया है॥ ३॥ एक समयकी बात है, रुक्मिणीपुत्र प्रद्युम्न घरमें बलरामजीके साथ बैठे हुए थे। उन्होंने हाथ जोड़कर बलरामजीको प्रणाम किया और इस प्रकार कहा—॥ ४॥

प्रद्युम्न बोले—भगवान् श्रीकृष्णके बड़े भाई महाभाग रोहिणीनन्दन! प्रभो! मुझे किसी ऐसे स्तोत्रका उपदेश दीजिये, जिसका जप करके मैं निर्भय हो जाऊँ॥ ५॥

श्रीबलदेवजीने कहा—देवताओं और असुरोंके गुरु जगत्पति ब्रह्माजी मेरी रक्षा करें। ओङ्कार, वषट्कार, सावित्री, तीन प्रकारकी[1] विधियाँ, ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद, रहस्य और विस्तारसहित सम्पूर्ण-रूपसे चारों वेद, इतिहास, पुराण, खिल, उपखिल, अङ्ग, उपाङ्ग तथा व्याख्याग्रन्थ—इन सबके अभिमानी देवता मेरी रक्षा करें॥ ६—८॥

पृथ्वी, वायु, आकाश, जल, पाँचवाँ तेज, इन्द्रियाँ, मन, बुद्धि, सत्त्वगुण, रजोगुण, तमोगुण, व्यान, उदान, समान, प्राण और पाँचवाँ अपान, जिनके अधीन यह सारा जगत् है, वे प्रवह आदि अन्य सात वायु, मरीचि, अङ्गिरा, अत्रि, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, भृगु और भगवान् वसिष्ठ—ये महर्षि तथा पूर्वोक्त पृथ्वी आदिके अभिमानी देवता मेरी रक्षा करें॥ ९—११॥

१. अपूर्वविधि, नियमविधि और परिसंख्याविधि।

कश्यपाद्याश्च मुनयश्चतुर्दश दिशो दश।
नरनारायणौ देवौ सगणौ पान्तु मां सदा॥ १२
रुद्राश्चैकादश प्रोक्ता आदित्या द्वादशैव तु।
अष्टौ च वसवो देवा अश्विनौ द्वौ प्रकीर्तितौ॥ १३
ह्रीः श्रीर्लक्ष्मीः स्वधा पुष्टिर्मेधा तुष्टिः स्मृतिर्धृतिः।
अदितिर्दितिर्दनुश्चैव सिंहिका दैत्यमातरः॥ १४
हिमवान् हेमकूटश्च निषधः श्वेतपर्वतः।
ऋषभः पारियात्रश्च विन्ध्यो वैडूर्यपर्वतः॥ १५
सह्योदयश्च मलयो मेरुमन्दरदर्दुराः।
क्रौञ्चकैलासमैनाकाः पान्तु मां धरणीधराः॥ १६
शेषश्च वासुकिश्चैव विशालाक्षश्च तक्षकः।
एलापत्रः शुक्लवर्णः कम्बलाश्वतरावुभौ॥ १७
हस्तिभद्रः पिटरकः कर्कोटकधनंजयौ।
तथा पूरणकश्चैव नागश्च करवीरकः॥ १८
सुमनास्यो दधिमुखस्तथा शृङ्गारपिण्डकः।
मणिनागश्च भगवांस्त्रिषु लोकेषु विश्रुतः॥ १९
नागराडधिकर्णश्च तथा हारिद्रकोऽपरः।
एते चान्ये च बहवो ये चान्ये नानुकीर्तिताः॥ २०
भूधराः सत्यधर्माणः पान्तु मां भुजगेश्वराः।
समुद्राः पान्तु चत्वारो गङ्गा च सरितां वरा॥ २१
सरस्वती चन्द्रभागा शतद्रुर्देविका शिवा।
द्वारावती विपाशा च सरयूर्यमुना तथा॥ २२
कल्माषी च रथोष्मा च बाहुदा च हिरण्यदा।
प्लक्षा चेक्षुमती चैव स्रवन्ती च बृहद्रथा॥ २३
ख्याता चर्मण्वती चैव पुण्या चैव वधूसरा।
एताश्चान्याश्च सरितो याश्चान्या नानुकीर्तिताः॥ २४
उत्तरापथगामिन्यः सलिलैः स्नपयन्तु माम्।
वेणी गोदावरी सीता कावेरी कौङ्कणावती॥ २५
कृष्णा वेणा शुक्तिमती तमसा पुष्पवाहिनी।
ताम्रपर्णी ज्योतिरथा उत्फलोदुम्बरावती॥ २६
नदी वैतरणी पुण्या विदर्भा नर्मदा शुभा।
वितस्ता भीमरथ्या च ऐला चैव महानदी॥ २७

कश्यप आदि चौदह मुनि, दस दिशाएँ तथा अपने गणोंसहित देव नर और नारायण—ये सदा मेरा संरक्षण करें॥ १२॥ ग्यारह रुद्र कहे गये हैं और बारह आदित्य, आठ वसुदेवता बताये गये हैं और दो अश्विनीकुमार—ये सब मेरी रक्षा करें॥ १३॥ ह्री, श्री, लक्ष्मी, स्वधा, पुष्टि, मेधा, तुष्टि, स्मृति, धृति, देवमाता अदिति तथा दैत्योंकी माताएँ दिति, दनु और सिंहिका आदि मेरी रक्षा करें॥ १४॥ हिमवान्, हेमकूट, निषध, श्वेतपर्वत, ऋषभ, पारियात्र, विन्ध्य, वैदूर्यपर्वत, सह्य, उदयगिरि, मलय, मेरु, मन्दर, दर्दुर, क्रौञ्च, कैलास और मैनाक आदि पर्वत मेरी रक्षा करें॥ १५-१६॥ शेष, वासुकि, विशालाक्ष और तक्षक, एलापत्र, शुक्लवर्ण, कम्बल, अश्वतर, हस्तिभद्र, पिटरक, कर्कोटक, धनंजय, पूरणक, करवीरक नाग, सुमनास्य, दधिमुख, शृङ्गारपिण्डक, तीनों लोकोंमें विख्यात भगवान् मणिनाग, नागराज अधिकर्ण तथा हारिद्रक—ये तथा दूसरे भी बहुत-से नाग, जिनके नाम यहाँ नहीं लिये गये हैं, वे सभी सत्यधर्मा एवं पृथ्वीका भार धारण करनेवाले नागराज मेरी रक्षा करें। चारों समुद्र मेरी रक्षा करें। सरिताओंमें श्रेष्ठ गङ्गा, सरस्वती, चन्द्रभागा, शतद्रु, देविका, शिवा, द्वारावती, विपाशा, सरयू, यमुना, कल्माषी, रथोष्मा, बाहुदा, हिरण्यदा, प्लक्षा, इक्षुमती, स्रवन्ती, बृहद्रथा, सुविख्यात चर्मण्वती तथा पुण्यसलिला वधूसरा—ये और दूसरी बहुत-सी नदियाँ जिनके नाम यहाँ नहीं लिये गये हैं तथा जो उत्तर भारतमें बहनेवाली हैं, वे सब-की-सब अपने जलसे मुझे नहलायें। वेणी, गोदावरी, सीता, कावेरी, कौङ्कणावती, कृष्णा, वेणा, शुक्तिमती, तमसा, पुष्पवाहिनी, ताम्रपर्णी, ज्योतिरथा, उत्फला, उदुम्बरावती, वैतरणी नदी, पुण्यसलिला विदर्भा, शुभस्वरूपा नर्मदा, वितस्ता, भीमरथ्या, महानदी ऐला,

कालिन्दी गोमती पुण्या नदः शोणश्च विश्रुतः।
एताश्चान्याश्च वै नद्यो याश्चान्या न तु कीर्तिताः॥ २८
दक्षिणापथवाहिन्यः सलिलैः स्नपयन्तु माम्।
क्षिप्रा चर्मण्वती पुण्या मही शुभ्रवती तथा॥ २९
सिन्धुर्वेत्रवती चैव भोजान्ता वनमालिका।
पूर्वभद्रा पराभद्रा ऊर्मिला च परद्रुमा॥ ३०
ख्याता वेत्रवती चैव चापदासीति विश्रुता।
प्रस्थावती कुण्डनदी नदी पुण्या सरस्वती॥ ३१
चित्रघ्नी चेन्दुमाला च तथा मधुमती नदी।
उमा गुरुनदी चैव तापी च विमलोदका॥ ३२
विमला विमलोदा च मत्तगङ्गा पयस्विनी।
एताश्चान्याश्च वै नद्यो याश्चान्या नानुकीर्तिताः॥ ३३
ता मां समभिषिञ्चन्तु पश्चिमामाश्रिताः दिशम्।
भागीरथी पुण्यजला प्राच्यां दिशि समाश्रिता॥ ३४
सा तु दहतु मे पापं कीर्तिता शम्भुना धृता।
प्रभासं च प्रयागं च नैमिषं पुष्कराणि च॥ ३५
गङ्गातीर्थं कुरुक्षेत्रं श्रीकण्ठं गौतमाश्रमम्।
रामह्रदं विनशनं रामतीर्थं तथैव च॥ ३६
गङ्गाद्वारं कनखलं सोमो वै यत्र चोत्थितः।
कपालमोचनं तीर्थं जम्बूमार्गं च विश्रुतम्॥ ३७
सुवर्णविन्दुं विख्यातं तथा कनकपिङ्गलम्।
दशाश्वमेधिकं चैव पुण्याश्रमविभूषितम्॥ ३८
बदरी चैव विख्याता नरनारायणाश्रमः।
विख्यातं फल्गुतीर्थं च तीर्थं चन्द्रवटं तथा॥ ३९
कोकामुखं पुण्यतमं गङ्गासागरमेव च।
मगधेषु तपोदश्च गङ्गोद्भेदश्च विश्रुतः॥ ४०
तीर्थान्येतानि पुण्यानि सेवितानि महर्षिभिः।
मां प्लावयन्तु सलिलैः यानि मे कीर्तितानि वै॥ ४१
सूकरं योगमार्गं च श्वेतद्वीपं तथैव च।
ब्रह्मतीर्थं रामतीर्थं वाजिमेधशतोपमम्॥ ४२
धारासम्पातसंयुक्ता गङ्गा किल्बिषनाशिनी।
गङ्गा वैकुण्ठकेदारं सूकरोद्भेदनं परम्।
तच्छापमोचनं तीर्थं पुनन्त्वेतानि किल्बिषात्॥ ४३

कालिन्दी, पुण्यसलिला गोमती, सुविख्यात नद शोणभद्र—ये तथा दूसरी नदियाँ जिनके नाम यहाँ नहीं लिये गये हैं और जो दक्षिण भारतमें बहनेवाली हैं, वे सब-की-सब अपने जलसे मुझे नहलायें। क्षिप्रा, चर्मण्वती, पुण्यसलिला मही, शुभ्रवती, सिन्धु, वेत्रवती, भोजान्ता, वनमालिका, पूर्वभद्रा, पराभद्रा, ऊर्मिला, परद्रुमा, विख्यात वेत्रवती, चापदासी, प्रस्थावती, कुण्डनदी, पुण्यसलिला सरस्वती, चित्रघ्नी, इन्दुमाला, मधुमती नदी, उमा, गुरु-नदी, तापी, विमलोदका, विमला, विमलोदा, मत्तगङ्गा, पयस्विनी—ये तथा दूसरी नदियाँ जिनके नाम यहाँ नहीं लिये गये हैं तथा जो पश्चिम दिशाका आश्रय लेकर बहती हैं, वे सब नदियाँ अपने जलसे मेरा अभिषेक करें। पुण्यसलिला भागीरथी जो पूर्व दिशाका आश्रय लेकर बहती हैं और जिन्हें भगवान् शङ्करने अपने मस्तकपर धारण कर रखा है, वे अपना नाम कीर्तन करनेपर मेरे पापको दग्ध कर दें। प्रभास, प्रयाग, नैमिष, पुष्कर, गङ्गातीर्थ, कुरुक्षेत्र, श्रीकण्ठ, गौतमाश्रम, परशुरामकुण्ड, विनशनतीर्थ, रामतीर्थ, गङ्गाद्वार, कनखलतीर्थ, जहाँ सोमका उत्थान हुआ था वह सोमोत्थानतीर्थ, कपाल-मोचनतीर्थ, सुविख्यात जम्बूमार्ग, सुवर्णविन्दु नामसे विख्यात तीर्थ, कनकपिङ्गलतीर्थ, पवित्र आश्रमोंसे विभूषित दशाश्वमेधिक तीर्थ, सुविख्यात बदरीतीर्थ, नर-नारायणका आश्रम,फल्गुतीर्थ, चन्द्रवटतीर्थ, परम पवित्र कोकामुखतीर्थ, गङ्गासागर, मगधदेशीय तपोद तथा गङ्गोद्भेद नामसे विख्यात तीर्थ—ये महर्षियोंद्वारा सेवित सभी पुण्यतीर्थ, जिनका मैंने यहाँ कीर्तन किया है, निश्चय ही मुझे अपने जलसे आप्लावित करें॥ १७—४१॥

सूकरतीर्थ, योगमार्ग, श्वेतद्वीप, ब्रह्मतीर्थ, सौ अश्वमेध यज्ञोंके समान फल देनेवाला रामतीर्थ, धाराके रूपमें गिरती हुई गङ्गा, पापनाशिनी गङ्गा, वैकुण्ठकेदार, उत्तम सूकरोद्भेदनतीर्थ तथा सुप्रसिद्ध शापमोचनतीर्थ—ये सारे तीर्थ मुझे पापसे रहित एवं पवित्र करें॥ ४२-४३॥

धर्मार्थकामविषयो यश:प्राप्तिः शमो दमः।
वरुणेशोऽथ धनदो यमो नियम एव च॥ ४४
कालो नयः संनतिश्च क्रोधो मोहः क्षमा धृतिः।
विद्युतोऽभ्राण्यथौषध्यः प्रमादोन्मादविग्रहाः॥ ४५
यक्षाः पिशाचा गन्धर्वाः किन्नराः सिद्धचारणाः।
नक्तंचराः खेचरिणो दंष्ट्रिणः प्रियविग्रहाः॥ ४६
लम्बोदराश्च बलिनः पिङ्गाक्षा विश्वरूपिणः।
मरुतः सहपर्जन्याः कलात्रुटिलवाः क्षणाः॥ ४७
नक्षत्राणि ग्रहाश्चैव ऋतवः शिशिरादयः।
मासाहोरात्रयश्चैव सूर्याचन्द्रमसौ तथा॥ ४८
आमोदश्च प्रमोदश्च प्रहर्षः शोक एव च ।
रजस्तमस्तपः सत्यं शुद्धिर्बुद्धिर्धृतिः श्रुतिः॥ ४९
रुद्राणी भद्रकाली च भद्रा ज्येष्ठा तु वारुणी।
भासी च कालिका चैव शाण्डिली चेति विश्रुताः॥ ५०
आर्या कुहूः सिनीवाली भीमा चित्ररथी रतिः।
एकानंशा च कूष्माण्डी देवी कात्यायनी च या॥ ५१
लोहित्या जनमाता च देवकन्यास्तु याः स्मृताः।
गोनन्दा देवपत्नी च मां रक्षन्तु सबान्धवम्॥ ५२
नानाभरणवेशाश्च नानारूपाङ्कितानना:।
नानादेशविचारिण्यो नानाशस्त्रोपशोभिताः॥ ५३
मेदो मज्जाप्रियाश्चैव मद्यमांसवसाप्रियाः।
मार्जारद्वीपिवक्त्राश्च गजसिंहनिभाननाः॥ ५४
कङ्कवायसगृध्राणां क्रौञ्चतुल्याननास्तथा।
व्यालयज्ञोपवीताश्च चर्मप्रावरणास्तथा॥ ५५
क्षतजोक्षितवक्त्राश्च खरभेरीसमस्वनाः।
मत्सराः क्रोधनाश्चैव प्रासादा रुचिरालयाः॥ ५६
मत्तोन्मत्तप्रमत्ताश्च प्रहरन्त्यश्च धिष्ठिताः।
पिङ्गाक्षाः पिङ्गकेशाश्च ततोऽन्या लूनमूर्धजाः॥ ५७
ऊर्ध्वकेश्यः कृष्णकेश्यः श्वेतकेश्यस्तथावराः।
नागायुतबलाश्चैव वायुवेगास्तथापराः॥ ५८
एकहस्ता एकपादा एकाक्षाः पिङ्गला मताः।
बहुपुत्राल्पपुत्राश्च द्विपुत्राः पुत्रमण्डिकाः॥ ५९

धर्म, अर्थ और कामविषयक शास्त्र, यशकी प्राप्ति, शम, दम, वरुण, ईश, धनद, यम, नियम, काल, नय, संनति, क्रोध, मोह, क्षमा, धृति, विद्युत्, मेघ, ओषधियाँ, प्रमाद, उन्माद, विग्रह, यक्ष, पिशाच, गन्धर्व, किन्नर, सिद्ध, चारण, निशाचर, खेचर, बड़ी-बड़ी दाढ़ोंवाले हिंसक जीव जिन्हें विग्रह प्रिय हैं, बलवान् लम्बोदर, पीले नेत्रवाले तथा विश्वरूपधारी गण, मरुद्गण, मेघ, कला, त्रुटि, लव, क्षण, नक्षत्र, ग्रह, शिशिर आदि ऋतु, मास, दिन, रात, सूर्य, चन्द्रमा, आमोद, प्रमोद, प्रहर्ष, शोक, रज, तम, तप, सत्य, शुद्धि, बुद्धि, धृति, श्रुति, रुद्राणी, भद्रकाली, भद्रा, ज्येष्ठा, वारुणी, भासी, कालिका, शाण्डिली, आर्या, कुहू, सिनीवाली, भीमा, चित्ररथी, रति, एकानंशा, कूष्माण्डी, कात्यायनी देवी, लोहित्या, जनमाता, देवकन्याएँ, गोनन्दा तथा देवपत्नी—ये बन्धु-बान्धवोंसहित मेरी रक्षा करें ॥ ४४—५२॥ जो नाना प्रकारके आभूषण और वेश धारण करती हैं, जिनके मुखपर अनेक प्रकारके चित्र अङ्कित होते हैं, जो विभिन्न देशोंमें विचरनेवाली तथा अनेक शस्त्रोंसे सुशोभित हैं, जिन्हें मेदा, मज्जा, मद्य, मांस और वसा प्रिय है, जिनके मुख बिल्ली, बाघ, हाथी, सिंह, कंक, कौआ, गीध अथवा क्रौञ्चके समान हैं, जो सर्पमय यज्ञोपवीत धारण करनेवाली तथा चर्ममय वस्त्रसे अपने अङ्गोंको ढकनेवाली हैं, जिनके मुख रक्तसे अभिषिक्त हैं तथा जिनकी वाणी नगाड़ोंकी प्रखर ध्वनिकी भाँति गम्भीर है, जो ईर्ष्यालु और क्रोधी हैं, महल जिनके सुन्दर निवास हैं, जो मत्त, उन्मत्त और प्रमत्त रहकर प्रहार करती हुई घरोंमें स्थित रहती हैं, जिनके नेत्र और केश पिङ्गलवर्णके दिखायी देते हैं, इनके अतिरिक्त जिनके केश कटे हुए हैं, जिनके सिरके बाल ऊपरकी ओर उठे हैं, जो काले अथवा सफेद केश धारण करती हैं, जो छोटे कदकी हैं, जिनमें दस हजार हाथियोंके समान बल है तथा जो वायुके तुल्य वेगवाली हैं, जिनके एक पैर, एक हाथ और एक आँख है, जो देखनेमें पिङ्गल वर्णकी प्रतीत होती हैं, जो अधिक या थोड़े पुत्रवाली हैं, जिनके दो ही पुत्र हैं, जो पुत्रोंका शृङ्गार करनेवाली हैं,

मुखमण्डी बिडाली च पूतना गन्धपूतना।
शीतवातोष्णवेताली रेवती ग्रहसंज्ञिता:॥ ६०

प्रियहास्या: प्रियक्रोधा: प्रियवासा: प्रियंवदा:।
सुखप्रदाश्चासुखदा: सदा द्विजजनप्रिया:॥ ६१

नक्तंचरा: सुखोदर्का: सदा पर्वणि दारुणा:।
मातरो मातृवत्पुत्रं रक्षन्तु मम नित्यश:॥ ६२

पितामहमुखोद्भूता रौद्रा रुद्राङ्गसम्भवा:।
कुमारस्वेदजाश्चैव ज्वरा वै वैष्णवादय:॥ ६३

महाभीमा महावीर्या दर्पोद्भूता महाबला:।
क्रोधनाक्रोधना: क्रूरा: सुरविग्रहकारिण:॥ ६४

नक्तंचरा: केसरिणो दंष्ट्रिण: प्रियविग्रहा:।
लम्बोदरा जघनिन: पिङ्गाक्षा विश्वरूपिण:॥ ६५

शक्त्यृष्टिशूलपरिघप्रासचर्मासिपाणय:।
पिनाकवज्रमुसलब्रह्मदण्डायुधप्रिया:॥ ६६

दण्डिन: कुण्डिन: शूरा जटामुकुटधारिण:।
वेदवेदाङ्गकुशला नित्ययज्ञोपवीतिन:॥ ६७

व्यालापीडा: कुण्डलिनो वीरा: केयूरधारिण:।
नानावसनसंवीताश्चित्रमाल्यानुलेपना:॥ ६८

गजाश्वोष्ट्रर्क्षमार्जारसिंहव्याघ्रनिभानना:।
वराहोलूकगोमायुमृगाखुमहिषानना:॥ ६९

वामना विकटा: कुब्जा: कराला लूनमूर्धजा:।
सहस्त्रशतशश्चान्ये सहस्त्रजटधारिण:॥ ७०

श्वेता: कैलाससंकाशा: केचिद् दिनकरप्रभा:।
केचिज्जलदवर्णाभा नीलाञ्जनचयोपमा:॥ ७१

एकपादा द्विपादाश्च तथा द्विशिरसोऽपरे।
निर्मांसा: स्थूलजंघाश्च व्यादितास्या भयङ्करा:॥ ७२

वापीतडागकूपेषु समुद्रेषु सरित्सु च।
श्मशानशैलवृक्षेषु शून्यागारनिवासिन:॥ ७३

मुखमण्डी, बिडाली, पूतना, गन्धपूतना, शीतवातोष्ण-वेताली तथा रेवती आदि नामोंसे जिनकी प्रसिद्धि है, जिन्हें बालग्रह कहते हैं, जिन्हें हास्य और क्रोध प्रिय है, जो वस्त्र एवं वासस्थानसे प्रेम करती हैं, सदा प्रिय वचन बोलती हैं, जो सुख और दु:ख भी देती हैं तथा जो द्विजातियोंको सदा प्रिय हैं, जो रातमें विचरनेवाली तथा उपासकको भविष्यमें सुख देनेवाली हैं तथा जो पर्वकालमें सदा अपने दारुण स्वभावका परिचय देती हैं, वे मातृकाएँ मेरी प्रतिदिन रक्षा करें, जैसे माता अपने पुत्रकी रक्षा करती है॥ ५३—६२॥ जो पितामह ब्रह्माजीके मुखसे प्रकट हुए हैं, रौद्र हैं, रुद्रदेवके अङ्गोंसे उत्पन्न हुए हैं, कुमार कार्तिकेयके स्वेदसे प्रकट हुए हैं तथा जो वैष्णव आदि ज्वर हैं, जो महाभयंकर, महापराक्रमी, दर्पयुक्त तथा महाबली हैं, क्रोधयुक्त अथवा क्रोधरहित हैं, जिनका स्वभाव क्रूर है, जो देवताओंके समान स्वरूप धारण करनेवाले हैं, जो रात्रिमें विचरनेवाले हैं, जिनके गलेमें अयाल हैं, जिनकी बड़ी-बड़ी दाढ़ें हैं, जिन्हें विग्रह प्रिय है, जिनके पेट लम्बे, कूल्हे मोटे और आँखें पिङ्गलवर्णकी हैं, जो विश्वरूपधारी हैं, जिनके हाथोंमें शक्ति, ऋष्टि, शूल, परिघ, प्रास, ढाल और तलवार आदि अस्त्र-शस्त्र शोभा पाते हैं, पिनाक, वज्र, मुसल और ब्रह्मदण्ड नामक आयुध जिन्हें प्रिय हैं, जो दण्ड और कुण्ड धारण करते हैं, शूरवीर हैं, मस्तकपर जटा और मुकुट धारण किये रहते हैं, वेद और वेदाङ्गमें कुशल हैं, नित्य यज्ञोपवीतधारी हैं, माथेपर सर्पका मुकुट धारण करते हैं, जिनके कानोंमें कुण्डल और भुजाओंमें भुजबन्द शोभा पाते हैं, जो वीर हैं, नाना प्रकारके वस्त्र पहनते हैं, विचित्र माला और अनुलेप धारण करते हैं, जिनके मुख हाथी, घोड़े, ऊँट, रीछ, बिलाव, सिंह, व्याघ्र, सूअर, उल्लू, गीदड़, मृग, चूहों और भैसोंके समान हैं, जो बौने, विकट आकारवाले, कुबड़े, विकराल तथा कटे हुए केशवाले हैं, इनके सिवा जो लाखोंकी संख्यामें सहस्रों जटाएँ धारण करनेवाले हैं, जिनमेंसे कोई कैलास पर्वतके समान श्वेत, कोई दिनकरके समान दीप्तिमान्, कोई मेघोंके समान काले और कोई अञ्जनराशिके समान नील हैं, जो एक अथवा दो पैरोंसे युक्त हैं, जिनके दो-दो सिर हैं, जो मांसरहित कङ्काल-से दिखायी देते हैं, जिनकी पिण्डलियाँ बहुत मोटी हैं, जो मुँह बाये रहनेके कारण बड़े भयङ्कर प्रतीत होते हैं, बावड़ी, पोखरे, कुएँ, समुद्र, नदी, श्मशान-भूमि, पर्वत, वृक्ष तथा सूने घरोंमें निवास करनेवाले हैं,

एते ग्रहाश्च सततं रक्षन्तु मम सर्वतः।
महागणपतिर्नन्दी महाकालो महाबलः।
माहेश्वरो वैष्णवश्च ज्वरौ लोकभयावहौ॥ ७४
ग्रामणीश्चैव गोपालो भृङ्गरीटिर्गणेश्वरः।
देवश्च वामदेवश्च घण्टाकर्णः करंधमः॥ ७५
श्वेतमोदः कपाली च जम्भकः शत्रुतापनः।
मज्जनोन्मज्जनौ चोभौ संतापनविलापनौ॥ ७६
निजघासोऽघसश्चैव स्थूणाकर्णः प्रशोषणः।
उल्कामाली धमधमो ज्वालामाली प्रमर्दनः॥ ७७
संघट्टनः संकुटनः काष्ठभूतः शिवंकरः।
कूष्माण्डः कुम्भमूर्धा च रोचनो वैकृतो ग्रहः॥ ७८
अनिकेतः सुरारिघ्नः शिवश्चाशिव एव च।
क्षेमकः पिशिताशी च सुरारिर्हरिलोचनः॥ ७९
भीमको ग्राहकश्चैव तथैवाग्रमयो ग्रहः।
उपग्रहोऽर्यकश्चैव तथा स्कन्दग्रहोऽपरः॥ ८०
चपलोऽसमवेतालस्तामसः सुमहाकपिः।
हृदयोद्वर्तनश्चैडः कुण्डाशी कङ्कणप्रियः॥ ८१
हरिश्मश्रुर्गरुत्मन्तो मनोमारुतरंहसः।
पार्वत्या रोषसम्भूताः सहस्राणि शतानि च॥ ८२
शक्तिमन्तो धृतिमन्तो ब्रह्मण्याः सत्यसङ्गराः।
सर्वकामापहन्तारो द्विषतां च मृधेमृधे॥ ८३
रात्रावहनि दुर्गेषु कीर्तिताः सकलैर्गुणैः।
तेषां गणानां पतयः सगणाः पान्तु मां सदा॥ ८४
नारदः पर्वतश्चैव गन्धर्वाप्सरसां गणाः।
पितरः कारणं कार्यमाधयो व्याधयस्तथा॥ ८५
अगस्त्यो गालवो गार्ग्यः शक्तिर्धौम्यः पराशरः।
कृष्णात्रेयश्च भगवानसितो देवलो बलः॥ ८६
बृहस्पतिरुतथ्यश्च मार्कण्डेयः श्रुतश्रवाः।
द्वैपायनो विदर्भश्च जैमिनिर्माठरः कठः॥ ८७
विश्वामित्रो वसिष्ठश्च लोमशश्च महामुनिः।
उत्तङ्कश्चैव रैभ्यश्च पौलोमश्च द्वितस्त्रितः॥ ८८
ऋषिर्वै कालवृक्षीयो मुनिर्मेधातिथिस्तथा।
सारस्वतो यवक्रीतिः कुशिको गौतमस्तथा॥ ८९
संवर्त ऋष्यशृङ्गश्च स्वस्त्यात्रेयो विभाण्डकः।
ऋचीको जमदग्निश्च तथौर्वस्तपसां निधिः॥ ९०

ये ग्रह सदा सब ओरसे मेरी रक्षा करें। महागणपति, नन्दी, महाबली, महाकाल, लोकभयङ्कर माहेश्वर तथा वैष्णव ज्वर, ग्रामणी, गोपाल, भृङ्गरीटि, गणेश्वर, देव, वामदेव, घण्टाकर्ण, करंधम, श्वेतमोद, कपाली, जम्भक, शत्रुतापन, मज्जन, उन्मज्जन, संतापन, विलापन, निजघास, अघस, स्थूणाकर्ण, प्रशोषण, उल्कामाली, धमधम, ज्वालामाली, प्रमर्दन, संघट्टन, संकुटन, काष्ठभूत, शिवंकर, कूष्माण्ड, कुम्भमूर्धा, रोचन, वैकृत ग्रह, अनिकेत, सुरारिघ्न, शिव, अशिव, क्षेमक, पिशिताशी, सुरारि, हरिलोचन, भीमक, ग्राहक, अग्रमय ग्रह, उपग्रह, अर्यक, स्कन्दग्रह, चपल, असमवेताल, तामस, सुमहाकपि, हृदयोद्वर्तन, ऐड, कुण्डाशी, कङ्कणप्रिय, हरिश्मश्रु तथा मन और वायुके समान वेगशाली गरुत्मान्, पार्वतीके रोषसे उत्पन्न हुए सैकड़ों और हजारों गण, जो शक्तिमान्, धैर्यवान्, ब्राह्मणभक्त और सत्यप्रतिज्ञ हैं तथा प्रत्येक युद्धमें शत्रुओंकी सम्पूर्ण कामनाओंका विनाश करनेवाले हैं; इन सबका रात और दिनमें दुर्गम संकटके अवसरोंपर जब-जब कीर्तन किया जाय, तब-तब वे समस्त गणपति अपने सारे गुणों और सम्पूर्ण गणोंके साथ सदा मेरी रक्षा करें॥ ६३—८४॥ नारद, पर्वत, गन्धर्वों और अप्सराओंके समुदाय, पितर, कारण, कार्य, आधि-व्याधि, अगस्त्य, गालव, गार्ग्य, शक्ति, धौम्य, पराशर, कृष्णात्रेय, ऐश्वर्यशाली असित-देवल, बल, बृहस्पति, उतथ्य, मार्कण्डेय, श्रुतश्रवा, द्वैपायन, विदर्भ, जैमिनि, माठर, कठ, विश्वामित्र, वसिष्ठ, महामुनि लोमश, उत्तङ्क, रैभ्य, पौलोम, द्वित, त्रित, कालवृक्षीय ऋषि, मुनि मेधातिथि, सारस्वत, यवक्रीति, कुशिक, गौतम, संवर्त, ऋष्यशृङ्ग, स्वस्त्यात्रेय, विभाण्डक, ऋचीक, जमदग्नि, तपोनिधि और्व,

भरद्वाजः स्थूलशिराः कश्यपः पुलहः क्रतुः।
बृहदग्निर्हरिश्मश्रुर्विजयः कण्व एव च॥ ९१
वैतण्डी दीर्घतापश्च वेदगाथोंऽशुमाञ्छिवः।
अष्टावक्रो दधीचिश्च श्वेतकेतुस्तथैव च॥ ९२
उद्दालकः क्षीरपाणिः शृङ्गी गौरमुखस्तथा।
अग्निवेश्यः शमीकश्च प्रमुचुर्मुमुचुस्तथा॥ ९३
एते चान्ये च ऋषयो बहवः शंसितव्रताः।
मुनयः शंसितात्मानो ये चान्ये नानुकीर्तिताः॥ ९४
क्रतवः श्लाघिनः शान्ताः शान्तिं कुर्वन्तु मे सदा।
त्रयोऽग्नयस्त्रयो वेदास्त्रैविद्याः कौस्तुभो मणिः॥ ९५
उच्चैःश्रवा हयः श्रीमान् वैद्यो धन्वन्तरिर्हरिः।
अमृतं गौः सुपर्णश्च दधि गौराश्च सर्षपाः॥ ९६
शुक्लाः सुमनसः कन्याः श्वेतच्छत्रं यवाक्षताः।
दूर्वा हिरण्यं गन्धाश्च वालव्यजनमेव च॥ ९७
तथाप्रतिहतं चक्रं महोक्षश्चन्दनं विषम्।
श्वेतो वृषः करी मत्तः सिंहो व्याघ्रो हयो गिरिः॥ ९८
पृथिवी चोद्धृता लाजा ब्राह्मणा मधु पायसम्।
स्वस्तिको वर्द्धमानश्च नन्द्यावर्तः प्रियङ्गवः॥ ९९
श्रीफलं गोमयं मत्स्यो दुन्दुभिः पटहस्वनः।
ऋषिपत्न्यश्च कन्याश्च श्रीमद् भद्रासनं धनुः।
रोचना रुचकश्चैव नदीनां संगमोदकम्॥ १००
सुपर्णाः शतपत्राश्च चकोरा जीवजीविकाः।
नन्दीमुखो मयूरश्च बद्धमुक्तामणिध्वजाः॥ १०१
आयुधानि प्रशस्तानि कार्यसिद्धिकराणि च।
पुण्यं वै विगतक्लेशं श्रीमद् वै मङ्गलान्वितम्॥ १०२
रामेणोदाहृतं पूर्वमायुःश्रीजयकाङ्क्षिणा।
य इदं श्रावयेद् विद्वांस्तथैव शृणुयान्नरः॥ १०३
मङ्गलाष्टशतं स्नातो जपन् पर्वणि पर्वणि।
वधबन्धपरिक्लेशं व्याधिशोकपराभवम्॥ १०४
न च प्राप्नोति वैकल्यं परत्रेह च शर्मदम्।
धन्यं यशस्यमायुष्यं पवित्रं वेदसम्मितम्॥ १०५
श्रीमत्स्वर्ग्यं सदा पुण्यमपत्यजननं शिवम्।
शुभं क्षेमकरं नृणां मेधाजननमुत्तमम्।
सर्वरोगप्रशमनं स्वकीर्तिकुलवर्धनम्॥ १०६

भरद्वाज, स्थूलशिरा, कश्यप, पुलह, क्रतु, बृहदग्नि, हरिश्मश्रु, विजय, कण्व, वैतण्डी, दीर्घताप, वेदगाथ, अंशुमान्, शिव, अष्टावक्र, दधीचि, श्वेतकेतु, उद्दालक, क्षीरपाणि, शृङ्गी, गौरमुख, अग्निवेश्य, शमीक, प्रमुचु तथा मुमुचु ये और दूसरे बहुत-से उत्तम व्रतका पालन करनेवाले ऋषि एवं शुद्धात्मा मुनि तथा दूसरे यज्ञपरायण, स्पृहणीय तथा शान्त महर्षि जिनका यहाँ कीर्तन नहीं किया गया है, सदा मेरे लिये शान्ति प्रदान करें। तीन अग्नि, तीन वेद, तीनों विद्याओंके ज्ञाता, कौस्तुभमणि, उच्चैःश्रवा अश्व, श्रीमान् धन्वन्तरि वैद्य, हरि, अमृत, गौ, सुपर्ण (गरुड़), दही, श्वेत सरसों, सफेद फूल, कुमारी कन्या, श्वेत छत्र, जौ, अक्षत, दूर्वादल, सुवर्ण, गन्ध, बालव्यजन (चँवर), कहीं भी प्रतिहत न होनेवाला सुदर्शनचक्र, साँड, चन्दन, विष, श्वेत वृषभ, मदमत्त हाथी, सिंह, व्याघ्र, घोड़ा, पर्वत खोदकर निकाली हुई मिट्टी, लाजा, ब्राह्मण, मधु, खीर, स्वस्तिक, वर्धमान, नन्द्यावर्त, प्रियङ्गु, श्रीफल, गोमय, मत्स्य, दुन्दुभि और पटहकी ध्वनि, ऋषिपत्नियाँ, कन्याएँ, शोभाशाली भद्रासन, धनुष, गोरोचन, रुचक, नदियोंके सङ्गमका जल, सुपर्ण, शतपत्र, चकोर, जीवजीवक, नन्दीमुख, मयूर, जिनमें मोती और मणि बँधे हुए हों ऐसे ध्वज, कार्यसिद्धि करनेवाले उत्तम आयुध—ये सब सदा ही मेरी रक्षा करें। पूर्वकालमें आयु, लक्ष्मी तथा विजयकी अभिलाषा रखनेवाले बलरामजीने इस पवित्र क्लेशहारी और उनकी प्राप्ति करानेवाले मङ्गलयुक्त स्तोत्रका वर्णन किया था। जो विद्वान् मनुष्य प्रत्येक पर्वमें स्नान करके जपपरायण हो इस आठ सौ माङ्गलिक नामोंसे युक्त स्तोत्रका श्रवण करता अथवा कराता है, वह वध और बन्धनके क्लेश, व्याधि एवं शोकसे प्राप्त होनेवाले पराभव और व्याकुलताको नहीं पाता। यह स्तोत्र इहलोक और परलोकमें भी कल्याण प्रदान करनेवाला है। इससे धन, यश और आयुकी प्राप्ति होती है। यह पवित्र तथा वेदके तुल्य आदरणीय है। यह श्रीसम्पन्न, स्वर्गदायक, सदा पुण्यकारक, कल्याणमय तथा संतानकी प्राप्ति करानेवाला है; इस शुभ, उत्तम एवं बुद्धिवर्धक स्तोत्रके सेवनसे मनुष्योंको क्षेमकी प्राप्ति होती है। इतना ही नहीं, यह समस्त रोगोंको शान्त करनेवाला तथा अपनी कीर्ति और कुलको बढ़ानेवाला है॥ ८५—१०६॥

श्रद्दधानो दयोपेतो यः पठेदात्मवान् नरः।
सर्वपापविशुद्धात्मा लभते च शुभां गतिम्॥ १०७

जो श्रद्धालु, दयालु और आत्मसंयमी मनुष्य इसका पाठ करता है, वह सब पापोंसे शुद्धचित्त हो शुभ गतिका भागी होता है॥ १०७॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे विष्णुपर्वणि बलदेवाह्निकं नाम नवाधिकशततमोऽध्यायः॥ १०९॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत विष्णुपर्वमें बलदेवाह्निक नामक एक सौ नौवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १०९॥

दशाधिकशततमोऽध्यायः

साम्बकी उत्पत्ति और अस्त्रशिक्षा तथा द्वारकामें पधारे हुए राजाओंके बीच नारदजीके द्वारा भगवान् श्रीकृष्णकी परम धन्यताका प्रतिपादन

वैशम्पायन उवाच

हृतो यदैव प्रद्युम्नः शम्बरेणात्मघातिना।
मासेऽस्मिन्नेव साम्बस्तु जाम्बवत्यामजायत॥ १

बाल्यात्प्रभृति रामेण शस्त्रेषु विनियोजितः।
रामादनन्तरश्चैव मानितः सर्ववृष्णिभिः॥ २

जातमात्रे ततः कृष्णः शुभां तामवसत् पुरीम्।
निहतामित्रसामन्तः शक्रोद्यानं यथामरः॥ ३

यादवीं च श्रियं दृष्ट्वा स्वां श्रियं द्वेष्टि वासवः।
जनार्दनभयाच्चैव न शान्तिं लेभिरे नृपाः॥ ४

कस्यचित् त्वथ कालस्य पुरे वारणसाह्वये।
दुर्योधनस्य यज्ञे वै समीयुः सर्वपार्थिवाः॥ ५

तां श्रुत्वा माधवीं लक्ष्मीं सपुत्रं च जनार्दनम्।
पुरीं द्वारावतीं चैव निविष्टां सागरान्तरे॥ ६

दूतैस्तैः कृतसंधानाः पृथिव्यां सर्वपार्थिवाः।
श्रियं द्रष्टुं हृषीकेशमाजग्मुः कृष्णमन्दिरम्॥ ७

दुर्योधनमुखाः सर्वे धृतराष्ट्रवशानुगाः।
पाण्डवप्रमुखाश्चैव धृष्टद्युम्नादयो नृपाः॥ ८

पाण्ड्याश्चोलकलिङ्गेशा बाह्लीका द्राविडाः खशाः।
अक्षौहिणीः प्रकर्षन्तो दश चाष्टौ च भूमिपाः॥ ९

वैशम्पायनजी कहते हैं— जनमेजय! आत्मघाती शम्बरासुरने जब प्रद्युम्नका अपहरण किया था, उसी महीनेमें जाम्बवतीके गर्भसे साम्बका जन्म हुआ॥ १॥ बलरामजीने साम्बको बचपनसे ही अस्त्र-शस्त्रोंके अभ्यासमें लगा रखा था। बलरामजीके बाद साम्ब ही उनके-जैसे अस्त्र-शस्त्रोंके ज्ञाता थे, इसलिये समस्त वृष्णिवंशी वीर उनका बड़ा सम्मान करते थे॥ २॥ साम्बके जन्म लेनेके पश्चात् भगवान् श्रीकृष्ण अपने शत्रुभूत सामन्तोंका संहार करके शुभस्वरूपा द्वारकापुरीमें रहने लगे; जैसे कोई देवता इन्द्रके उद्यान नन्दनवनमें निवास करता हो॥ ३॥ यदुवंशियोंकी सम्पत्ति देखकर देवराज इन्द्र अपनी राज्यलक्ष्मीसे द्वेष करने लगे थे। भगवान् श्रीकृष्णके भयसे राजाओंको कभी शान्ति नहीं मिलती थी॥ ४॥ किसी समय हस्तिनापुरमें दुर्योधनके यज्ञमें भूमण्डलके समस्त राजा एकत्र हुए॥ ५॥ वहाँ यदुवंशियोंकी राज्य-लक्ष्मी, पुत्रसहित भगवान् श्रीकृष्ण तथा समुद्रके भीतर बसी हुई द्वारकापुरीकी विशेष चर्चा सुनकर अपने दूतोंद्वारा भगवान् श्रीकृष्णके साथ संधि स्थापित करके, पृथ्वीके समस्त भूपाल यादवोंकी राजलक्ष्मीका दर्शन करनेके लिये द्वारकामें भगवान् हृषीकेशके पास उनके निवास-मन्दिरमें आये॥ ६-७॥ धृतराष्ट्रकी आज्ञाके अधीन रहनेवाले दुर्योधन आदि सब भाई, पाण्डवोंको अगुआ बनाकर चलनेवाले धृष्टद्युम्न आदि नरेश, पाण्ड्य, चोल और कलिङ्ग देशके भूपाल, बाह्लीक, द्राविड और खश देशोंके राजा अठारह अक्षौहिणी सेनाएँ साथ लिये

आजग्मुर्यादवपुरीं गोविन्दभुजपालिताम्।
ते पर्वतं रैवतकं परिवार्यावनीश्वराः॥ १०
विविशुर्योजनाख्यासु स्वासु स्वासु च भूमिषु।
ततः श्रीमान् हृषीकेशः सह यादवपुङ्गवैः॥ ११
समीपं मानवेन्द्राणां निर्ययौ कमलेक्षणः।
स तेषां नरदेवानां मध्यस्थो मधुसूदनः॥ १२
व्यराजत यदुश्रेष्ठः शरदीव दिवाकरः।
स तत्र समुदाचारं यथास्थानं यथावयः॥ १३
कृत्वा सिंहासने कृष्णः काञ्चने निषसाद ह।
राजानोऽपि यथास्थानं निषेदुर्विविधेष्वथ॥ १४
सिंहासनेषु चित्रेषु पीठेषु च नराधिपाः।
स यादवनरेन्द्राणां समाजः शुशुभे तदा॥ १५
सुराणामसुराणां च सदसि ब्रह्मणो यथा।
तेषां चित्राः कथास्तत्र प्रवृत्तास्तत्समागमे।
यदूनां पार्थिवानां च केशवस्योपशृण्वतः॥ १६
एतस्मिन्नन्तरे वायुर्ववौ मेघरवोपमः।
तुमुलं दुर्दिनं चासीत् सविद्युत्स्तनयित्नुमत्॥ १७
तद् दुर्दिनतलं भित्त्वा नारदः प्रत्यदृश्यत।
संवेष्टितजटाभारो वीणासक्तेन बाहुना॥ १८
स पपात नरेन्द्राणां मध्ये सागरसंनिभः।
नारदोऽग्निशिखाकारः श्रीमाञ्छक्रसखो मुनिः॥ १९
तस्मिन् निपतिते भूमौ नारदे मुनिपुङ्गवे।
तदद्भुतं महामेघं व्यपाकृष्यत दुर्दिनम्॥ २०
सोऽवगाह्य नरेन्द्राणां मध्ये सागरसंनिभः।
आसनस्थं यदुश्रेष्ठमुवाच मुनिरव्ययम्॥ २१
आश्चर्यं खलु देवानामेकस्त्वं पुरुषोत्तमः।
धन्यश्चासि महाबाहो लोके नान्योऽस्ति कश्चन॥ २२
एवमुक्तः स्मितं कृत्वा प्रत्युवाच मुनिं प्रभुः।
आश्चर्यश्चैव धन्यश्च दक्षिणाभिः सहेत्यहम्॥ २३
एवमुक्तो मुनिश्रेष्ठः प्राह मध्ये महीभृताम्।
कृष्ण पर्याप्तवाक्योऽस्मि गमिष्यामि यथागतम्॥ २४
तं प्रस्थितमभिप्रेक्ष्य पार्थिवाः प्राहुरीश्वरम्।
गुह्यं मन्त्रमजानन्तो वचनं नारदेरितम्॥ २५

श्रीकृष्णकी भुजाओंसे सुरक्षित यादवपुरीमें आये। वे भूमिपाल रैवतक पर्वतको चारों ओरसे घेरकर अपने-अपने लिये निश्चित की हुई एक-एक योजनकी भूमिमें डेरा डालकर बस गये। तदनन्तर कमलनयन श्रीमान् हृषीकेश यादव-शिरोमणियोंके साथ पुरीसे निकलकर उन नरेन्द्रोंके समीप गये। उन नरदेवोंके बीचमें बैठे हुए यदुश्रेष्ठ मधुसूदन शरत्कालके सूर्यकी भाँति शोभा पाने लगे। वहाँ स्थान और अवस्थाके अनुसार शिष्टाचारका निर्वाह करके भगवान् श्रीकृष्ण सोनेके सिंहासनपर विराजमान हुए। फिर वे नरेश भी नाना प्रकारके सिंहासनों और विचित्र पीठोंपर यथास्थान बैठे। वहाँ उस समय यादव नरेशोंका समाज ब्रह्माजीकी सभामें एकत्र हुए देवताओं और असुरोंके समाजकी भाँति शोभा पाने लगा। उस राजसमाजमें वहाँ भगवान् श्रीकृष्णके सुनते हुए उन यादवों और भूपालोंमें विचित्र बातें होने लगीं॥ ८—१६॥ इसी बीचमें मेघोंकी गर्जनाके समान सनसनाहट पैदा करती हुई प्रचण्ड वायु चलने लगी। घोर दुर्दिन छा गया। बिजली चमकने और गड़गड़ाहट पैदा करने लगी॥ १७॥ उस दुर्दिनतल अर्थात् मेघोंके आवरणको भेदकर नारदजी दिखायी दिये, उन्होंने अपने सिरपर बढ़े हुए जटाभारको लपेट रखा था, उनकी एक भुजामें वीणा थी॥ १८॥ वे समुद्रके समान गम्भीर और अग्नि-शिखाके समान तेजस्वी नारद मुनि जो देवराज इन्द्रके मित्र हैं, उन नरेशोंके बीचमें उतरे॥ १९॥ मुनिवर नारदजीके भूमिपर उतर आनेपर महान् मेघोंकी घटासे छाया हुआ वह अद्भुत दुर्दिन तत्काल दूर हो गया॥ २०॥ सागरसदृश गम्भीर स्वभाववाले नारद मुनिने उन नरेशोंके मध्यभागमें प्रवेश करके सिंहासनपर बैठे हुए अविनाशी यदुश्रेष्ठ श्रीकृष्णसे इस प्रकार कहा— ॥ २१॥ 'महाबाहो! बड़े आश्चर्यकी बात है, अवश्य ही देवताओंमें एकमात्र आप ही पुरुषोत्तम हैं और आप ही धन्य हैं, संसारमें दूसरा कोई ऐसा नहीं है'॥ २२॥ उनके ऐसा कहनेपर भगवान् श्रीकृष्ण मुसकराकर नारद मुनिसे बोले—'मैं दक्षिणाओंके साथ आश्चर्य एवं धन्य हूँ'॥ २३॥ भगवान्के ऐसा कहनेपर मुनिश्रेष्ठ नारद उन राजाओंके बीचमें इस प्रकार बोले—'श्रीकृष्ण! मुझे अपनी बातका पूरा उत्तर मिल गया, अब मैं जैसे आया था वैसे ही लौट जाऊँगा'॥ २४॥ उन्हें जाते देख उन नारदजीके कहे हुए गूढ़ मन्त्ररूपी वाक्यका तात्पर्य न जाननेवाले भूपालोंने भगवान्से कहा— ॥ २५॥

आश्चर्यमित्यभिहितं धन्योऽसीति च माधव।
दक्षिणाभिः सहेत्येवं प्रत्युक्तेऽपि च नारदे॥ २६

किमेतन्नाभिजानीमो दिव्यं मन्त्रपदं महत्।
यदि श्राव्यमिदं कृष्ण श्रोतुमिच्छाम तत्त्वतः॥ २७

तानुवाच ततः कृष्णः सर्वान् पार्थिवपुङ्गवान्।
श्रोतव्यं नारदस्त्वेष द्विजो वः कथयिष्यति॥ २८

ब्रूहि नारद तत्त्वार्थं श्रोतुकामा महीभुजः।
यत् त्वयाभिहितं वाक्यं मया नु प्रतिभाषितम्॥ २९

स पीठे काञ्चने शुभ्रे सूपविष्टः स्वलंकृतः।
प्रभावं तस्य वन्द्यस्य प्रवक्तुमुपचक्रमे॥ ३०

नारद उवाच

श्रूयतां भो नृपश्रेष्ठा यावन्तः स्थ समागताः।
अस्य कृष्णस्य महतो यथा पारमहं गतः॥ ३१

अहं कदाचिद् गङ्गायास्तीरे त्रिषवणातिथिः।
चराम्येकः क्षपापाये दृश्यमाने दिवाकरे॥ ३२

अपश्यं गिरिकूटाभं कपालद्वयदेहिनम्।
क्रोशमण्डलविस्तारं तावद् द्विगुणमायतम्॥ ३३

चतुश्चरणसुश्लिष्टं क्लिन्नं चैव सपङ्किलम्।
मम वीणाकृतिं कूर्मं गजचर्मचयोपमम्॥ ३४

सोऽहं तं पाणिना स्पृष्ट्वा प्रोक्तवाञ्जलचारिणम्।
त्वमाश्चर्यशरीरोऽसि कूर्म धन्योऽसि मे मतः॥ ३५

यस्त्वमेवमभेद्याभ्यां कपालाभ्यां समावृतः।
तोये चरसि निःशङ्कः कंचिदन्यमचिन्तयन्॥ ३६

स मामुवाचाम्बुचरः कूर्मो मानुषवत्स्वयम्।
किमाश्चर्यं मयि मुने धन्यश्चाहं कथं विभो॥ ३७

'माधव! नारदजीने आपके विषयमें आश्चर्य और धन्य कहा है और आपने 'दक्षिणाओंके साथ' ऐसा कहकर नारदजीको उनकी बातका उत्तर दे दिया है; यह सब हो जानेपर भी हम यह नहीं समझ सके कि 'यह क्या है?' इस दिव्य एवं महान् मन्त्रपदका तात्पर्य क्या है? श्रीकृष्ण! यदि यह सुनानेयोग्य हो तो हमलोग यथार्थरूपसे इसका रहस्य सुनना चाहते हैं'॥ २६-२७॥ तब भगवान् श्रीकृष्णने उन समस्त भूपालशिरोमणियोंसे कहा—'राजाओ! यदि तुम्हें इसका तात्पर्य सुनना है तो ये विप्रवर नारदजी ही आपके समक्ष पूर्वोक्त वचनोंकी व्याख्या करेंगे'॥ २८॥ ऐसा कहकर वे नारदजीसे बोले—'नारदजी! आपने जो बात कही और मैंने जो उसका उत्तर दिया, उसका यथार्थ रहस्य ये राजालोग सुनना चाहते हैं; अतः आप इन्हें बताइये'॥ २९॥ तब वे सुन्दर सुवर्णमय पीठपर जमकर बैठ गये। वे सुन्दर अलंकारोंसे अलंकृत भी थे, उन्होंने उन वन्दनीय प्रभुके प्रभावका वर्णन इस प्रकार आरम्भ किया॥ ३०॥

नारदजी बोले—नृपवरो! आपलोग जितनी संख्यामें यहाँ पधारे हैं, वे सुनें, मैं इन परम महान् श्रीकृष्णकी महिमाके पार कैसे पहुँचा, यह बता रहा हूँ॥ ३१॥ किसी समय मैं गङ्गाजीके तटपर तीनों समय स्नान करनेवाले अतिथिके रूपमें अकेला ही विचरता था। एक दिन जब रात बीत चुकी थी और सूर्यदेव दिखायी देने लगे थे, मैंने एक कछुआ देखा, जो पर्वतके शिखरके समान प्रतीत होता था। उसका शरीर दो कपालोंके संयोगसे बना था। उसका मण्डलाकार विस्तार एक कोसका था, लम्बाई इससे दूनी थी। उसके चार पैर थे। वह पानीसे भीगा और कीचड़में सना हुआ था। उसकी आकृति मेरी वीणाके समान थी। उसे देखकर ऐसा जान पड़ता था, मानो हाथीके चमड़ेका ढेर लगा हो॥ ३२—३४॥ मैंने उस जलचर जन्तुको हाथसे छूकर उससे कहा—'कूर्म! तुम्हारा शरीर आश्चर्यजनक है। मेरे मतमें तुम धन्य हो॥ ३५॥ क्योंकि तुम दो अभेद्य कपालोंसे आवृत रहकर दूसरे किसीकी परवा न रखते हुए पानीमें निःशङ्क विचरते हो'॥ ३६॥ तब उस जलचर कछुएने स्वयं ही मनुष्यकी-सी बोलीमें मुझसे कहा—'मुने! मुझमें क्या आश्चर्य है? प्रभो! मैं कैसे धन्य हूँ?॥ ३७॥

गङ्गेयं निम्नगा धन्या किमाश्चर्यमतः परम्।
यत्राहमिव सत्त्वानि चरन्त्ययुतशो द्विज॥ ३८

सोऽहं कुतूहलाविष्टो नदीं गङ्गामुपस्थितः।
धन्यासि त्वं सरिच्छ्रेष्ठे नित्यमाश्चर्यभूषिता॥ ३९

या त्वमेवं महादेहैः श्वापदैरुपशोभिता।
ह्लदिनी सागरं यासि रक्षन्ती तापसालयान्॥ ४०

एवमुक्ता ततो गङ्गा रूपिणी प्रत्यभाषत।
नारदं देवगन्धर्वं शक्रस्य दयितं द्विजम्॥ ४१

मा मैवं देवगन्धर्व संग्रामकलहप्रिय।
नाहं धन्या द्विजश्रेष्ठ नैवाश्चर्योपशोभिता॥ ४२

तव सत्ये निविष्टस्य वाक्यं मां प्रतिबाधते।
सर्वाश्चर्यकरो लोके धन्यश्चैवार्णवो द्विज॥ ४३

यत्राहमिव विस्तीर्णाः शतशो यान्ति निम्नगाः।
सोऽहं त्रिपथगावाक्यं श्रुत्वार्णवमुपस्थितः॥ ४४

आश्चर्यं खलु लोकानां धन्यश्चासि महार्णव।
येन खल्वसि योनिस्त्वमम्भसां सलिलेश्वरः॥ ४५

स्थाने त्वां वारिवाहिन्यः सरितो लोकपावनाः।
इमाः समभिगच्छन्ति पत्न्यो लोकनमस्कृताः॥ ४६

समुद्रस्त्वेवमुक्तस्तु ततो मामवदद् वचः।
स्वं जलौघतलं भित्त्वा व्युत्थितः पवनेरितः॥ ४७

मा मैवं देवगन्धर्व नास्म्याश्चर्यो द्विजर्षभ।
वसुधेयं मुने धन्या यत्राहमुपरि स्थितः॥ ४८

ऋते तु पृथिवीं लोके किमाश्चर्यमतः परम्।
सोऽहं सागरवाक्येन क्षितिं क्षितितले स्थितः॥ ४९

कौतूहलसमाविष्टो ह्यब्रुवं जगतो गतिम्।
धरित्रि देहिनां योने धन्या खल्वसि शोभने॥ ५०

आश्चर्यं चापि भूतेषु महत्या क्षमया युते।
तेन खल्वसि भूतानां धरणी मनुजारणिः॥ ५१

ब्रह्मन्! धन्य तो ये गङ्गा नदी हैं। इनसे बढ़कर आश्चर्यकी वस्तु और क्या है? जिनके भीतर मुझ-जैसे हजारों जलजन्तु विचरते हैं'॥ ३८॥ तब मैं कौतूहलवश गङ्गा नदीके निकट गया और बोला—'सरिताओंमें श्रेष्ठ गङ्गे! तुम धन्य हो और सदा आश्चर्यसे विभूषित रहती हो, क्योंकि ऐसे-ऐसे विशालकाय हिंसक जन्तु तुम्हारी शोभा बढ़ाते हैं; तुम अनेकानेक कुण्डोंसे युक्त हो और कितने ही तापसोंके आश्रमोंकी रक्षा करती हुई समुद्रतक जाती हो'॥ ३९-४०॥ मेरे इस तरह कहनेपर गङ्गाजी अपने दिव्यरूपसे प्रकट होकर मुझ देवगन्धर्वजातीय तथा इन्द्रके प्रिय मित्र नारद नामक ब्राह्मणसे यों बोलीं—॥ ४१ ॥ 'देवगन्धर्व! ऐसा न कहो, न कहो। युद्ध और कलहके प्रेमी द्विजश्रेष्ठ! मैं न तो धन्य हूँ और न आश्चर्यजनक जन्तुओंसे सुशोभित ही॥ ४२॥ आप सत्यपरायण महर्षिका यह वचन मेरे प्रति बाधित हो रहा है। ब्रह्मन्! संसारमें पूर्णतः आश्चर्यकारक और धन्य तो एकमात्र समुद्र ही है, जिसमें मुझ-जैसी सैकड़ों विस्तृत नदियाँ जाकर मिलती हैं।' गङ्गाजीका उक्त वचन सुनकर मैं महासागरके तटपर गया और बोला—'महार्णव! तुम समस्त लोकोंमें आश्चर्यमय और धन्य हो, क्योंकि तुम जलकी योनि और स्वामी हो॥ ४३—४५॥ जल बहानेवाली जो ये लोकपावन और विश्ववन्दित नदियाँ पत्नीभावसे तुम्हारे समीप जाती हैं, यह सब उचित ही है'॥ ४६॥ मेरे ऐसा कहनेपर पवनप्रेरित समुद्र अपनी अगाध जलराशिका भेदन करके उठ खड़ा हुआ और मुझसे इस प्रकार बोला—॥ ४७॥ देवगन्धर्व! आप ऐसा न कहें! न कहें!! द्विजश्रेष्ठ! मैं ऐसा आश्चर्यरूप नहीं हूँ। मुने! धन्य तो यह वसुधा है, जिसके ऊपर मैं स्थित हूँ। संसारमें पृथ्वीके सिवा उससे बढ़कर आश्चर्यकी वस्तु दूसरी कौन है?' समुद्रके कहनेसे मैं पृथ्वीपर खड़ा हुआ और कौतूहलयुक्त होकर जगत्की आधार-स्वरूपा पृथ्वीसे बोला—'धरित्रि! तू समस्त देहधारियोंकी योनि है, अतः शोभने! तू निश्चय ही धन्य

क्षमा त्वत्तः प्रभूता च कर्म चाम्बरगामिनाम्।
ततो भूः स्तुतिवाक्येन सा मयोक्तेन तेजिता॥ ५२

विहाय सहजं धैर्यं प्रत्यक्षा मामभाषत।
देवगन्धर्व मा मैवं संग्रामकलहप्रिय॥ ५३

नास्मि धन्या न चाश्चर्यं पारक्येयं धृतिर्मम।
एते धन्या द्विजश्रेष्ठ पर्वता धारयन्ति माम्॥ ५४

आश्चर्याणि च दृश्यन्ते एते लोकस्य हेतवः।
सोऽहं धरणिवाक्येन पर्वतान् समुपस्थितः॥ ५५

धन्या भवन्तो दृश्यन्ते बह्वाश्चर्याश्च भूधराः।
काञ्चनस्याग्ररत्नस्य धातूनां च विशेषतः॥ ५६

तेन खल्वाकराः सर्वे भवन्तो भुवि शाश्वताः।
ते ममैतद् वचः श्रुत्वा पर्वतास्तस्थुषां वराः॥ ५७

ऊचुर्मां सान्त्वयुक्तानि वचांसि वनशोभिताः।
ब्रह्मर्षे न वयं धन्या नाप्याश्चर्याणि सन्ति नः।
ब्रह्मा प्रजापतिर्धन्यः सर्वाश्चर्यः सुरेष्वपि॥ ५८

सोऽहं प्रजापतिं गत्वा सर्वप्रभवमव्ययम्।
तस्य वाक्यस्य पर्यायपर्याप्तमिव लक्षये॥ ५९

सोऽहं पितामहं देवं लोकयोनिं चतुर्मुखम्।
स्तोतुं पश्चादुपगतः प्रणतोऽवनताननः॥ ६०

सोऽहं वाक्यसमाप्त्यर्थं श्रावये पद्मयोनिजम्।
आश्चर्यं भगवानेको धन्योऽसि जगतो गुरुः॥ ६१

न किंचिदन्यत् पश्यामि भूतं यद् भवता समम्।
त्वत्तः सर्वमिदं जातं जगत् स्थावरजङ्गमम्॥ ६२

सदेवदानवा मर्त्या लोके भूतेन्द्रियात्मकाः।
भवन्ति सर्वदेवेश दृष्ट्वा सर्वमिदं जगत्॥ ६३

तेन खल्वसि देवानां देवदेवः सनातनः।
तेषामेवासि यत्स्त्रष्टा लोकानामादिसम्भवः॥ ६४

है। महती क्षमासे संयुक्त होनेके कारण तू सम्पूर्ण भूतोंमें आश्चर्यरूप है। अतः निश्चय ही तू समस्त प्राणियोंको धारण करनेवाली और मनुष्योंका उत्पत्ति-स्थान है'। तुझसे ही क्षमाभाव प्रकट हुआ है। आकाशचारियोंका कर्म भी तुझसे ही सिद्ध होता है'। मेरे द्वारा कहे गये प्रशंसासूचक वचनसे पृथ्वी उत्तेजित-सी हो उठी। उसने अपनी सहज धीरता छोड़ दी और प्रत्यक्ष होकर मुझसे कहा—'युद्ध और कलहसे प्रेम रखनेवाले देवगन्धर्व! ऐसी बात न कहो! न कहो!! न तो मैं धन्य हूँ और न आश्चर्यरूप ही हूँ। मुझमें जो धीरता दिखायी देती है, यह मेरी नहीं दूसरोंकी है। द्विजश्रेष्ठ! ये पर्वत धन्य हैं, जो मुझे धारण करते हैं। ये ही आश्चर्यरूप देखे जाते हैं तथा ये ही जगत्की स्थितिके हेतु हैं।' पृथ्वीके इस कथनसे प्रभावित होकर मैं पर्वतोंके यहाँ उपस्थित हुआ और बोला—'भूधरो! तुम धन्य हो। तुममें बहुत-सी आश्चर्यकी बातें दिखायी देती हैं। सुवर्ण, श्रेष्ठ रत्न और विशेषतः धातुओंके उत्पत्तिस्थान होनेके कारण तुम सब लोग आकर कहलाते हो। इस भूतलपर तुम सब ही सदा बने रहते हो।' मेरी यह बात सुनकर स्थावर पदार्थोंमें श्रेष्ठ पर्वत, जो वनोंसे सुशोभित होते हैं, मुझसे सान्त्वनायुक्त वचन बोले—'ब्रह्मर्षे! न तो हम धन्य हैं और न हमारे पास आश्चर्यजनक वस्तुएँ ही हैं। प्रजापति ब्रह्माजी धन्य हैं, देवताओंमें भी वे ही सम्पूर्ण आश्चर्योंसे युक्त हैं'॥ ४८—५८॥ तब मैंने सबके उत्पत्तिस्थान अविनाशी प्रजापतिके पास जाकर उनमें पर्वतोंके कहे हुए वचनोंकी पर्याप्त सार्थकता देखी॥ ५९॥ इसके बाद मैंने सम्पूर्ण लोकोंकी उत्पत्तिके स्थानभूत, चार मुखवाले पितामहदेवको नतमस्तक होकर प्रणाम किया और फिर स्तवन करनेके लिये मैं उनके पास खड़ा हुआ॥ ६०॥ स्तुतिके बाद अपनी बात समाप्त करनेके लिये मैंने पद्मयोनि ब्रह्माजीको सुनाते हुए कहा—'भगवन्! एकमात्र आप ही आश्चर्यमय हैं, आप ही सम्पूर्ण जगत्के गुरु एवं धन्य हैं॥ ६१॥ मैं दूसरे किसी भूतको ऐसा नहीं देखता, जो आपके समान हो। यह सम्पूर्ण चराचर जगत् आपसे ही उत्पन्न हुआ है॥ ६२॥ सर्वदेवेश्वर! संसारमें भूत और इन्द्रियमय जो देवता, दानव और मनुष्य आदि प्राणी देखे जाते हैं, वे सब आपसे ही उत्पन्न होते हैं, इस सम्पूर्ण जगत्को देखकर यही निश्चय होता है॥ ६३॥ इसलिये आप अवश्य ही देवताओंके सनातन देवाधिदेव हैं; क्योंकि आप ही उनके स्रष्टा हैं और आप ही समस्त लोकोंके आदिकारण हैं'॥ ६४॥

ततो मां प्राह भगवान् ब्रह्मा लोकपितामहः।
धन्याश्चर्याश्रितैर्वाक्यैः किं मां नारद भाषसे॥ ६५
आश्चर्यं परमं वेदा धन्या वेदाश्च नारद।
ये लोकान् धारयन्ति स्म वेदास्तत्त्वार्थदर्शिनः॥ ६६
ऋक्सामयजुषां सत्यमथर्वणि च यन्मतम्।
तन्मयं विद्धि मां विप्र धृतोऽहं तैर्मया च ते॥ ६७
पारमेष्ठ्येन वाक्येन नोदितोऽहं स्वयम्भुवा।
वेदोपस्थानिकां चक्रे मतिं संस्थानविस्तरात्॥ ६८
सोऽहं स्वयम्भूवचनाद् वेदान् वै समुपस्थितः।
अवोचं तांश्च चतुरो मन्त्रप्रवचनान्वितान्॥ ६९
धन्या भवन्तः पुण्याश्च नित्यमाश्चर्यभूषिताः।
आधाराश्चैव विप्राणामेवमाह प्रजापतिः॥ ७०
स्वयम्भुवोऽपीह परं भवत्सु प्रश्नमागतम्।
युष्मत्परतरं नास्ति श्रुत्या वा तपसापि वा॥ ७१
प्रत्यूचुस्ते ततो वाक्यं वेदा मामभितः स्थिताः।
आश्चर्याश्चैव धन्याश्च यज्ञाश्चात्मपरायणाः॥ ७२
यज्ञार्थे च वयं सृष्टा धात्रा येन स्म नारद।
तदस्माकं परो यज्ञो न वयं स्ववशे स्थिताः॥ ७३
स्वयम्भुवः परा वेदा वेदानां क्रतवः पराः।
ततोऽहमब्रुवं यज्ञान् बृहद्वाग्भिः पुरस्कृतान्॥ ७४
भो यज्ञाः परमं तेजो युष्मासु खलु लक्ष्यते।
ब्रह्मणाभिहितं वाक्यं यच्च वेदैरुदीरितम्॥ ७५
आश्चर्यमन्यल्लोकेऽस्मिन् भवद्भ्यो नाभिगम्यते।
धन्याः खलु भवन्तो ये द्विजातीनां स्ववंशजाः॥ ७६
तेऽपि खल्वग्नयस्तृप्तिं युष्माभिर्यान्ति तर्पिताः।
भागैश्च त्रिदशाः सर्वे मन्त्रैश्चैव महर्षयः॥ ७७
अग्निष्टोमादयो यज्ञा मम वाक्यादनन्तरम्।
प्रत्यूचुर्मां ततो वाक्यं सर्वे यूपध्वजाः स्थिताः॥ ७८
आश्चर्यशब्दो नास्मासु धन्यशब्दोऽपि वा मुने।
आश्चर्यं परमं विष्णुः स ह्यस्माकं परा गतिः॥ ७९

तब लोकपितामह भगवान् ब्रह्माने मुझसे कहा—'नारद! धन्य और आश्चर्यके विवेचनसे सम्बन्ध रखनेवाले वचनोंद्वारा मेरे विषयमें क्या कहते हो?॥ ६५॥ 'नारद! सबसे महान् आश्चर्य तो वेद हैं, वे ही धन्य भी हैं; क्योंकि वे तत्त्वार्थदर्शी वेद सम्पूर्ण लोकोंको धारण करते हैं॥ ६६॥ 'विप्रवर! ऋक्, साम और यजुर्वेदका जो सत्य है तथा अथर्ववेदमें जो सत्य माना गया है, उसीको मेरा स्वरूप समझो। वेदोंने मुझे धारण कर रखा है और मैंने वेदोंको'॥ ६७॥ तब स्वयम्भू ब्रह्माजीके कहे हुए उनके स्वरूपके अनुरूप वचनसे प्रेरित हो मैंने लक्षणविस्तारके अनुसार वेदोंके उपस्थानका विचार किया॥ ६८॥ स्वयम्भू ब्रह्माजीके वचनसे मैंने मन्त्र और व्याख्यासे युक्त पूर्वोक्त चारों वेदोंकी सेवामें उपस्थित हो उनसे कहा—'आपलोग धन्य हैं, पवित्र हैं और सदा आश्चर्यसे विभूषित रहते हैं। ब्राह्मणोंके आधार भी आप ही हैं, ऐसा प्रजापतिका कथन है॥ ६९-७०॥ आपलोगोंके विषयमें स्वयम्भू ब्रह्माजीका भी यही निर्णय है कि आपलोग सबसे श्रेष्ठ हैं। श्रुति अथवा तपस्याके द्वारा भी आपलोगोंसे बढ़कर दूसरा कोई नहीं है'॥ ७१॥ तब चारों वेदोंने मेरे सब ओर खड़े होकर इस प्रकार उत्तर दिया—'नारद! परमात्माके उद्देश्यसे किये जानेवाले यज्ञ ही आश्चर्य और धन्य हैं॥ ७२॥ नारद! परमात्माने यज्ञके लिये ही हमें प्रकट किया है, अतः यज्ञ ही हमसे उत्कृष्ट है। हम अपने वशमें नहीं हैं, स्वयम्भू ब्रह्मासे उत्कृष्ट वेद हैं और वेदोंसे उत्कृष्ट यज्ञ हैं।' तब मैंने वेदोंकी वाणीसे पुरस्कृत हुए यज्ञोंसे कहा—'यज्ञो! तुमलोगोंमें सबसे उत्कृष्ट तेज दिखायी देता है। ब्रह्माजीने जो बात कही है और वेदोंने जिस प्रकार प्रतिपादन किया है, उसके अनुसार इस जगत्में आपलोगोंके सिवा दूसरी कोई आश्चर्यकी वस्तु नहीं ज्ञात होती है। 'आपलोग धन्य हैं, जो द्विजातियोंके वंशज हैं। आपलोगोंसे तर्पित होनेपर त्रिविध अग्नियोंको तृप्ति प्राप्त होती है। यज्ञोंमें ही सब देवता अपने भागोंसे और महर्षिगण मन्त्रोंसे तृप्त होते हैं'॥ ७३—७७॥ मेरे ऐसा कहनेके बाद यूपरूपी ध्वजसे सुशोभित समस्त अग्निष्टोम आदि यज्ञ खड़े होकर मुझसे बोले—'मुने! यह आश्चर्य अथवा धन्य शब्द हमलोगोंके लिये उपयुक्त नहीं है। भगवान् विष्णु ही परम आश्चर्यरूप हैं; क्योंकि वे ही हमारी परम गति हैं'॥ ७८-७९॥

यदाज्यं वयमश्नीमो हुतमग्निषु पावनम्।
तत् सर्वं पुण्डरीकाक्षो लोकमूर्तिः प्रयच्छति॥ ८०

सोऽहं विष्णोर्गतिं प्रेप्सुरिह सम्पतितो भुवि।
दृष्टश्चायं मया कृष्णो भवद्भिरिह संवृतः॥ ८१

यन्मयाभिहितो ह्येष त्वमाश्चर्यं जनार्दन।
धन्यश्चासीति भवतां मध्यस्थो ह्यत्र पार्थिवाः॥ ८२

प्रत्युक्तोऽहमनेनाद्य वाक्यस्यास्य यदुत्तरम्।
दक्षिणाभिः सहेत्येवं पर्याप्तं वचनं मम॥ ८३

यज्ञानां हि गतिर्विष्णुः सर्वेषां सहदक्षिणः।
दक्षिणाभिः सहेत्येवं प्रश्नो मम समाप्तवान्॥ ८४

कूर्मेणाभिहितं पूर्वं पारम्पर्यादिहागतम्।
सदक्षिणेऽस्मिन् पुरुषे तद्वाक्यं प्रतिपादितम्॥ ८५

यन्मां भवन्तः पृच्छन्ति वाक्यस्यास्य विनिर्णयम्।
तदेतत् सर्वमाख्यातं साधयामि यथागतम्॥ ८६

नारदे तु गते स्वर्गे सर्वे ते पृथिवीभुजः।
विस्मिताः स्वानि राष्ट्राणि जग्मुः सबलवाहनाः॥ ८७

जनार्दनोऽपि सहितो यदुभिः पावकोपमैः।
स्वमेव भवनं वीरो विवेश यदुनन्दनः॥ ८८

'अग्निमें होमे गये जिस पावन आज्य-भागका हमलोग आस्वादन करते हैं, वह सब विश्वरूप कमलनयन भगवान् विष्णु हमें प्रदान करते हैं'॥ ८०॥ वेदोंके इस कथनके अनुसार मैं भगवान् विष्णुकी गति प्राप्त करनेके लिये यहाँ इस पृथ्वीपर आया हूँ। यहाँ आप राजाओंसे घिरे हुए भगवान् श्रीकृष्णका मैंने दर्शन किया है॥ ८१॥ राजाओ! मैंने जो श्रीकृष्णके विषयमें यह कहा है कि 'जनार्दन! तुम आश्चर्यरूप और धन्य हो' वे ही यहाँ आपलोगोंके बीचमें विराजमान हैं॥ ८२॥ इन्होंने आज मेरी इस बातका जो उत्तर दिया है कि 'दक्षिणाओंके सहित (मैं धन्य हूँ)', यह मेरे प्रश्नका पर्याप्त उत्तर प्राप्त हो गया॥ ८३॥ क्योंकि दक्षिणाओंसहित विष्णु ही सब यज्ञोंके आश्रय हैं, इसलिये 'दक्षिणाओंसहित' इतना कह देनेपर मेरा प्रश्न समाप्त हो गया॥ ८४॥ पहले कच्छपने धन्यताका प्रतिपादन आरम्भ किया था, फिर परम्परासे यहाँ इन दक्षिणासहित परमपुरुष श्रीकृष्णमें उसका उपसंहार हुआ है; अतः कौन धन्य है, इस बातका उत्तर प्राप्त हो गया॥ ८५॥ आपलोग जो मेरे पूर्वोक्त कथनका निश्चित तात्पर्य पूछ रहे थे, उसके विषयमें यह सब कुछ मैंने बता दिया। अतः मैं जैसे आया था, वैसे ही जा रहा हूँ॥ ८६॥ नारदजीके स्वर्गलोकको चले जानेपर वे समस्त भूपाल विस्मित होकर सेना और सवारियोंसहित अपने राष्ट्रोंको चले गये॥ ८७॥ तत्पश्चात् यदुकुलको आनन्दित करनेवाले वीर जनार्दन भी अग्निके समान तेजस्वी यदुवंशी वीरोंके साथ अपने ही भवनमें पधारे॥ ८८॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे विष्णुपर्वणि धन्योपाख्यानं नाम दशाधिकशततमोऽध्यायः॥ ११०॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत विष्णुपर्वमें धन्योपाख्यानविषयक एक सौ दसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ११०॥

एकादशाधिकशततमोऽध्यायः

श्रीकृष्णकी महिमा—अर्जुनका श्रीकृष्णसे आज्ञा लेकर ब्राह्मण-बालककी रक्षाके लिये जाना

जनमेजय उवाच

भूय एव महाबाहो कृष्णस्य जगतां पतेः।
माहात्म्यं श्रोतुमिच्छामि परमं द्विजसत्तम॥ १

न हि मे तृप्तिरस्तीह शृण्वतस्तस्य धीमतः।
कर्मणामनुसंतानं पुराणस्य महात्मनः॥ २

वैशम्पायन उवाच

नान्तः शक्यः प्रभावस्य वक्तुं वर्षशतैरपि।
गोविन्दस्य महाराज श्रूयतामिदमद्भुतम्॥ ३

शरतल्पे शयानेन भीष्मेण परिचोदितः।
गाण्डीवधन्वा बीभत्सुर्माहात्म्यं केशवस्य यत्॥ ४

राज्ञां मध्ये महाराज ज्येष्ठं भ्रातरमब्रवीत्।
युधिष्ठिरं जितामित्रमिति तच्छृणु कौरव॥ ५

अर्जुन उवाच

पुराहं द्वारकां यातः सम्बन्धीनवलोककः।
न्यवसं पूजितस्तत्र भोजवृष्ण्यन्धकोत्तमैः॥ ६

ततः कदाचिद् धर्मात्मा दीक्षितो मधुसूदनः।
एकाहेन महाबाहुः शास्त्रदृष्टेन कर्मणा॥ ७

ततो दीक्षितमासीनमभिगम्य द्विजोत्तमः।
कृष्णं विज्ञापयामास त्राहि त्राहीति चाब्रवीत्॥ ८

ब्राह्मण उवाच

रक्षाधिकारो भवतः परित्रायस्व मां विभो।
चतुर्थांशं हि धर्मस्य रक्षिता लभते फलम्॥ ९

वासुदेव उवाच

न भेतव्यं द्विजश्रेष्ठ रक्षामि त्वां कुतो भयम्।
ब्रूहि तत्त्वेन भद्रं ते यद्यपि स्यात् सुदुष्करम्॥ १०

जनमेजयने कहा—महाबाहो! द्विजश्रेष्ठ! मैं पुनः जगदीश्वर श्रीकृष्णका उत्तम माहात्म्य सुनना चाहता हूँ॥ १॥ उन परम बुद्धिमान् महात्मा पुराणपुरुष श्रीकृष्णके कर्मोंकी परम्पराका श्रवण करनेसे मुझे यहाँ तृप्ति नहीं हो रही है॥ २॥

वैशम्पायनजी बोले—महाराज जनमेजय! भगवान् गोविन्दके प्रभावका पूरा-पूरा वर्णन करना—उसका अन्त बता देना तो सैकड़ों वर्षोंमें भी सम्भव नहीं है। अतः उनके इस अद्भुत माहात्म्यका वर्णन सुनो॥ ३॥ महाराज कुरुनन्दन! बाणशय्यापर सोये हुए पितामह भीष्मकी आज्ञा पाकर गाण्डीवधन्वा अर्जुनने समस्त राजाओंके बीच अपने शत्रुविजयी ज्येष्ठ भ्राता युधिष्ठिरसे भगवान् केशवका जो माहात्म्य बताया था, उसीका वर्णन करता हूँ—सुनो॥ ४-५॥

अर्जुन बोले—पहलेकी बात है, मैं अपने सगे-सम्बन्धियोंसे मिलने-जुलनेके लिये द्वारकापुरीमें गया था। वहाँ भोज, वृष्णि और अन्धक—उत्तम वीरोंसे सम्मानित हो कई दिनोंतक रहा॥ ६॥ एक दिन धर्मात्मा महाबाहु मधुसूदनने शास्त्रोक्त-विधिसे एकाह सोमयागकी दीक्षा ली॥ ७॥ भगवान् श्रीकृष्ण ज्यों ही दीक्षा लेकर बैठे त्यों ही एक श्रेष्ठ ब्राह्मणने उनके पास पहुँचकर अपना संकट निवेदन किया और कहा—'प्रभो! रक्षा कीजिये, रक्षा कीजिये'॥ ८॥

ब्राह्मणने फिर कहा—प्रभो! रक्षा करना आपके अधिकारकी बात है, आप मेरी रक्षा कीजिये; क्योंकि जो रक्षा करता है, वह रक्षित पुरुषके धर्मका चतुर्थांश फल प्राप्त कर लेता है॥ ९॥

भगवान् श्रीकृष्ण बोले--द्विजश्रेष्ठ! तुम्हें डरना नहीं चाहिये। मैं तुम्हारी रक्षा करूँगा। तुम्हारा भला हो, ठीक-ठीक बताओ तुम्हें किससे भय है? यदि अत्यन्त दुष्कर कार्य हो तो भी उसे कहनेमें संकोच न करो॥ १०॥

ब्राह्मण उवाच

जातो जातो महाबाहो पुत्रो मे ह्रियतेऽनघ।
त्रयो हृताश्चतुर्थं त्वं कृष्ण रक्षितुमर्हसि॥ ११

ब्राह्मण्याः सूतिकालोऽद्य तत्र रक्षा विधीयताम्।
यथा ध्रियेदपत्यं मे तथा कुरु जनार्दन॥ १२

अर्जुन उवाच

ततो मामाह गोविन्दो दीक्षितोऽहं क्रताविति।
रक्षा च ब्राह्मणे कार्या सर्वावस्थागतैरपि॥ १३

श्रुत्वाहमेवं कृष्णस्य वचोऽवोचं नराधिप।
मां नियोजय गोविन्द रक्षिष्येऽहं द्विजं भयात्॥ १४

इत्युक्तः स स्मितं कृत्वा मामुवाच जनार्दनः।
रक्षसीत्येवमुक्तस्तु व्रीडितोऽस्मि नराधिप॥ १५

ततो मां व्रीडितं मत्वा पुनराह जनार्दनः।
गम्यतां कौरवश्रेष्ठ शक्यते यदि रक्षितुम्॥ १६

त्वत्पुरोगाश्च रक्षन्तु वृष्ण्यन्धकमहारथाः।
ऋते रामं महाबाहुं प्रद्युम्नं च महाबलम्॥ १७

ततोऽहं वृष्णिसैन्येन महता परिवारितः।
तमग्रतो द्विजं कृत्वा प्रयातः सह सेनया॥ १८

ब्राह्मणने कहा—महाबाहो! निष्पाप श्रीकृष्ण! जब-जब मेरे पुत्र पैदा होता है, तब-तब काल उसे हर ले जाता है। इस प्रकार मेरे तीन पुत्र हर लिये गये। अब चौथा पुत्र होनेवाला है, अतः आप ही उसकी रक्षा करनेयोग्य हैं॥ ११॥ जनार्दन! आज ब्राह्मणी (मेरी पत्नी)-के प्रसवका समय है, अतः वहाँ रक्षा कीजिये। यह मेरी संतान जिस तरह भी जीवित बच जाय, वह उपाय कीजिये॥ १२॥

अर्जुन कहते हैं—तब भगवान् गोविन्दने मुझसे कहा—'पार्थ! मैं तो यज्ञकी दीक्षा ले चुका, परंतु सभी अवस्थाओंमें भी ब्राह्मणकी रक्षा तो करनी ही चाहिये'॥ १३॥ नरेश्वर! श्रीकृष्णका ऐसा वचन सुनकर मैंने उनसे कहा—'गोविन्द! आप मुझे इस कार्यमें नियुक्त कीजिये। मैं इस ब्राह्मणकी भयसे रक्षा करूँगा'॥ १४॥ नरेश्वर! मेरे ऐसा कहनेपर जनार्दन मुसकराकर मुझसे बोले—'क्या तुम रक्षा कर लोगे?' उनकी यह बात सुनकर मैं लज्जित हो गया॥ १५॥ तब मुझे लज्जित जानकर जनार्दनने फिर कहा—'कौरवश्रेष्ठ! यदि तुम रक्षा कर सको तो जाओ॥ १६॥ महाबाहु बलराम तथा महाबली प्रद्युम्नको छोड़कर अन्य वृष्णि और अन्धकवंशी महारथी तुम्हें अगुआ बनाकर जायँ और इस ब्राह्मणकी रक्षा करें'॥ १७॥ तब मैं वृष्णिवीरोंकी विशाल सेनासे घिरकर उस ब्राह्मणको आगे करके सेनाके साथ आगे बढ़ा॥ १८॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे विष्णुपर्वणि वासुदेवमाहात्म्ये एकादशाधिकशततमोऽध्यायः॥ १११॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत विष्णुपर्वमें वासुदेवका माहात्म्यविषयक एक सौ ग्यारहवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १११॥

द्वादशाधिकशततमोऽध्यायः

ब्राह्मणबालककी रक्षा न होनेपर ब्राह्मणद्वारा अर्जुनका तिरस्कार और श्रीकृष्णके साथ उनका उत्तर दिशाको गमन

अर्जुन उवाच

मुहूर्तेन वयं ग्रामं तं प्राप्य भरतर्षभ।
विश्रान्तवाहनाः सर्वे निवासायोपसंस्थिताः॥ १

ततो ग्रामस्य मध्येऽहं निविष्टः कुरुनन्दन।
समन्ताद् वृष्णिसैन्येन महता परिवारितः॥ २

ततः शकुनयो दीप्ता मृगाश्च क्रूरभाषिणः।
दीप्तायां दिशि वाशन्तो भयमावेदयन्ति मे॥ ३

संध्यारागो जपावर्णो भानुमांश्चैव निष्प्रभः।
पपात महती चोल्का पृथिवी चाप्यकम्पत॥ ४

तान् समीक्ष्य महोत्पातान् दारुणाँल्लोमहर्षणान्।
योगमाज्ञापयंस्तत्र जनस्योत्सुकचेतसः॥ ५

युयुधानपुरोगाश्च वृष्ण्यन्धकमहारथाः।
सर्वे युक्तरथाः सज्जाः स्वयं चाहं तथाभवम्॥ ६

गतेऽर्धरात्रसमये ब्राह्मणो भयविक्लवः।
उपागम्य भयादस्मानिदं वचनमब्रवीत्॥ ७

कालोऽयं समनुप्राप्तो ब्राह्मण्याः प्रसवस्य मे।
तथा भवन्तस्तिष्ठन्तु न भवेद् वञ्चनं यथा॥ ८

मुहूर्तादेव चाश्रौषं कृपणं रुदितस्वनम्।
तस्य विप्रस्य भवने ह्रियतेऽह्रियतेति च॥ ९

अथाकाशे पुनर्वाचमश्रौषं बालकस्य वै।
ऊँहेति ह्रियमाणस्य न च पश्यामि राक्षसम्॥ १०

ततोऽस्माभिस्तदा तात शरवर्षैः समन्ततः।
विष्टम्भिता दिशः सर्वा हृत एव स बालकः॥ ११

ब्राह्मणोऽऽर्तस्वरं कृत्वा हृते तस्मिन् कुमारके।
वाचः स परुषास्तीव्राः श्रावयामास मां तदा॥ १२

अर्जुन कहते हैं—भरतश्रेष्ठ! तदनन्तर दो ही घड़ीमें हम सब लोग उस ब्राह्मणके गाँवमें पहुँचकर वहाँ ठहरनेकी व्यवस्थामें लग गये और हमारे वाहन विश्राम करने लगे॥ १॥ कुरुनन्दन! इसके बाद चारों ओरसे विशाल वृष्णिसेनासे घिरा हुआ मैं उस गाँवके भीतर प्रविष्ट हुआ॥ २॥ उस समय मुखसे आग उगलनेवाले बहुत-से पक्षी तथा क्रूरतापूर्ण बोली बोलनेवाले मृग सामने आ गये और दाहयुक्त दिशामें अव्यक्त शब्द करते हुए मुझे भयकी सूचना देने लगे॥ ३॥ संध्याका रंग जपा-कुसुमके समान दिखायी दिया। सूर्यदेव प्रभाहीन प्रतीत हुए। आकाशसे उल्कापात हुआ और पृथ्वी काँपने लगी॥ ४॥ उस भयंकर एवं रोमाञ्चकारी बड़े-बड़े दारुण उत्पातोंको देखकर सात्यकि आदि वृष्णि और अन्धकवंशके महारथियोंने उत्सुक चित्तवाले लोगोंको तैयार हो जानेकी आज्ञा दे दी। सबके रथ जोत दिये गये; सभी सुसज्जित हो गये। स्वयं मैं भी सब प्रकारसे तैयार हो गया॥ ५-६॥ जब आधी रातका समय बीत गया, तब ब्राह्मण भयसे व्याकुल होकर हमलोगोंके पास आया और भयभीत होकर इस प्रकार बोला— ॥ ७॥ 'मेरी ब्राह्मणीके प्रसवका यह समय आ पहुँचा है, अब आपलोग इस तरह रहें, जिससे फिर धोखा न हो'॥ ८॥ फिर तो दो घड़ीमें ब्राह्मणके घरके भीतर दीनतापूर्वक रोदनकी ध्वनि मुझे सुनायी दी। लोग कह रहे थे—'हाय! बालकको हर ले जाता है, हर ले गया'॥ ९॥ फिर आकाशमें मैंने अपहृत बालकका 'ऊँह' यह शब्द सुना; परंतु उसका अपहरण करनेवाले राक्षसको मैं नहीं देख पाता था॥ १०॥ तात! तब हमलोगोंने बाण-वर्षा करके चारों ओरसे सम्पूर्ण दिशाओंको रूँध डाला तो भी उस बालकका अपहरण तो हो ही गया॥ ११॥ उस कुमारका अपहरण हो जानेपर ब्राह्मणने आर्तनाद करके उस समय मुझे अत्यन्त कड़वी खरी-खोटी बातें सुनानी आरम्भ कीं॥ १२॥

वृष्णयो हतसंकल्पास्तथाहं नष्टचेतनः।
मामेवं हि विशेषेण ब्राह्मणः प्रत्यभाषत॥ १३

रक्षिष्यामीति चोक्तं ते न च रक्षितवानसि।
शृणु वाक्यमिदं शेषं यत् त्वमर्हसि दुर्मते॥ १४

वृथा त्वं स्पर्धसे नित्यं कृष्णेनामितबुद्धिना।
यदि स्यादिह गोविन्दो नैतदत्याहितं भवेत्॥ १५

यथा चतुर्थं धर्मस्य रक्षिता लभते फलम्।
पापस्यापि तथा मूढ भागं प्राप्नोत्यरक्षिता॥ १६

रक्षिष्यामीति चोक्तं ते न च शक्तोऽसि रक्षितुम्।
मोघं गाण्डीवमेतत् ते मोघं वीर्यं यशश्च ते॥ १७

अकिञ्चिदुक्त्वा तं विप्रं ततोऽहं प्रस्थितस्तथा।
सह वृष्ण्यन्धकसुतैर्यत्र कृष्णो महाद्युतिः॥ १८

ततो द्वारवतीं गत्वा दृष्ट्वा मधुनिघातिनम्।
व्रीडितः शोकसंतप्तो गोविन्देनोपलक्षितः॥ १९

स तु मां व्रीडितं दृष्ट्वा विनिन्दन् कृष्णसंनिधौ।
मौढ्यं पश्यत मे योऽहं श्रद्दधे क्लीबकत्थनम्॥ २०

न प्रद्युम्नो नानिरुद्धो न रामो न च केशवः।
यत्र शक्ताः परित्रातुं कोऽन्यस्तदवनेश्वरः॥ २१

धिगर्जुनं वृथावादं धिगात्मश्लाघिनो धनुः।
दैवोपसृष्टो यो मौर्ख्यादागच्छति च दुर्मतिः॥ २२

एवं शपति विप्रर्षौ विद्यामास्थाय वैष्णवीम्।
ययौ संयमिनीं वीरो यत्रास्ते भगवान् यमः॥ २३

विप्रापत्यमचक्षाणस्तत ऐन्द्रीमगात् पुरीम्।
आग्नेयीं नैर्ऋतीं सौम्यामुदीचीं वारुणीं तथा॥ २४

रसातलं नाकपृष्ठं धिष्ण्यान्यन्यान्युदायुधः।
ततोऽलब्ध्वा द्विजसुतमनिस्तीर्णप्रतिश्रवः॥ २५

वृष्णिवंशी वीरोंका सारा मनसूबा चौपट हो गया, मेरी तो चेतना ही नष्ट-सी हो गयी। वह ब्राह्मण विशेषतः मुझसे इस प्रकार कहने लगा—॥ १३॥ 'दुर्मते! तूने कहा था कि रक्षा करूँगा, किंतु रक्षा नहीं की। अतः अन्तमें मेरी यह बात सुन, तू इसीका पात्र है!॥ १४॥ 'तू अमित बुद्धिमान् भगवान् श्रीकृष्णके साथ सदा व्यर्थ ही स्पर्धा रखता है। यदि वे भगवान् गोविन्द स्वयं यहाँ होते तो यह दुर्घटना नहीं होने पाती॥ १५॥ मूढ़! जैसे रक्षा करनेवाला क्षत्रिय रक्षित पुरुषके धर्मका चतुर्थांश फल पाता है, उसी प्रकार रक्षा न करनेवाला पुरुष अरक्षितके पापका भी भागी होता है॥ १६॥ तूने घोषणा तो की थी कि 'मैं रक्षा करूँगा,' परंतु तू रक्षा करनेमें समर्थ नहीं है। तेरा यह गाण्डीव धनुष व्यर्थ है! तेरा पराक्रम और यश भी व्यर्थ ही है'॥ १७॥ उस ब्राह्मणसे कुछ न कहकर मैं वृष्णि और अन्धकवंशके उन राजकुमारोंके साथ प्रस्थित हो उस स्थानपर आया, जहाँ महातेजस्वी श्रीकृष्ण विराजमान थे॥ १८॥ द्वारकामें पहुँचकर मधुसूदनका दर्शन करके मैं लज्जित एवं शोकसे संतप्त हो उठा। गोविन्दने मेरी इस अवस्थाको लक्ष्य किया॥ १९॥ इसी बीचमें उस ब्राह्मणने आकर मुझे लज्जित देख भगवान् श्रीकृष्णके समीप ही इस तरह निन्दित वचन कहना आरम्भ किया—'अहो! मेरी मूर्खता तो देखो। मैंने इस कायर या नपुंसककी बातपर विश्वास कर लिया॥ २०॥ जहाँ प्रद्युम्न, अनिरुद्ध, बलराम और श्रीकृष्ण भी रक्षा करनेमें असमर्थ हों, वहाँ दूसरा कौन रक्षा कर सकता है?॥ २१॥ व्यर्थ बातें बनानेवाले इस अर्जुनको धिक्कार है! झूठी आत्मप्रशंसा करनेवाले इस अर्जुनके धनुषको भी धिक्कार है! क्योंकि यह खोटी बुद्धिवाला पुरुष स्वयं ही दैवका मारा हुआ है तो भी मूर्खतावश मेरी रक्षा करने आया था'॥ २२॥ (वैशम्पायनजी कहते हैं—) वे ब्रह्मर्षि जब इस प्रकार आक्षेप करने लगे, तब वीर अर्जुन वैष्णवी विद्याका आश्रय लेकर संयमनीपुरीमें गये, जहाँ भगवान् यम विराजमान हैं॥ २३॥ वहाँ ब्राह्मणके बालकको न देखकर ये क्रमशः इन्द्र, अग्नि, निर्ऋति, सोमकी उदीची तथा वरुण—इन सबकी पुरीमें गये॥ २४॥ फिर वे अपना अस्त्र-शस्त्र लिये रसातल तथा स्वर्गमें भी गये। इतनेपर भी ब्राह्मण-बालकको न पाकर अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण न कर सके॥ २५॥

अग्निं विविक्षुः कृष्णेन प्रद्युम्नेन निषेधितः।
दर्शये द्विजसूनुं ते मावज्ञात्मानमात्मना॥ २६

कीर्तिं त एते विपुलां स्थापयिष्यन्ति मानवाः।
इति सम्भाष्य मां स्नेहात् समाश्वास्य च माधवः॥ २७

सान्त्वयित्वा तु तं विप्रमिदं वचनमब्रवीत्।
सुग्रीवं चैव शैब्यं च मेघपुष्पबलाहकौ॥ २८

योजयाश्वानिति तदा दारुकं प्रत्यभाषत।
आरोप्य ब्राह्मणं कृष्णो ह्यवरोप्य च दारुकम्॥ २९

मामुवाच ततः शौरिः सारथ्यं क्रियतामिति।
ततः समास्थाय रथं कृष्णोऽहं ब्राह्मणः स च।
प्रयाताः स्म दिशं सौम्यामुदीचीं कौरवर्षभ॥ ३०

अतः उन्होंने जलती आगमें प्रवेश करनेका विचार किया। उस समय श्रीकृष्ण और प्रद्युम्नने आकर उन्हें ऐसा करनेसे रोका और कहा—'मैं उन ब्राह्मण-बालकोंको तुम्हें दिखा दूँगा, तुम स्वयं ही अपनी अवज्ञा न करो। ये संसारके मनुष्य तुम्हारी सुविस्तृत कीर्तिकी स्थापना करेंगे'। (अर्जुन कहते हैं—) इस प्रकार स्नेहपूर्वक बात करके माधवने मुझे आश्वासन दिया और उन ब्राह्मणको सान्त्वना देकर सारथिसे यह बात कही—'दारुक! तुम सुग्रीव, शैब्य, मेघपुष्प और बलाहक नामक घोड़ोंको रथमें जोतो।' इस प्रकार उस समय उन्होंने दारुकसे कहा। तदनन्तर रथ जुत जानेपर शूरनन्दन श्रीकृष्णने ब्राह्मणको रथपर चढ़ा लिया और दारुकको उतारकर मुझसे कहा—'तुम सारथिका काम करो। कौरवश्रेष्ठ! तत्पश्चात् श्रीकृष्ण, मैं और वह ब्राह्मण तीनों उस रथपर बैठकर सोमपालित उत्तर दिशाकी ओर चल दिये॥ २६—३०॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे विष्णुपर्वणि वासुदेवमाहात्म्ये श्रीकृष्णस्योदीचीगमने द्वादशाधिकशततमोऽध्यायः॥ ११२॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत विष्णुपर्वमें वासुदेव-माहात्म्यके प्रसंगमें श्रीकृष्णका उत्तर दिशाको गमनविषयक एक सौ बारहवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ११२॥

त्रयोदशाधिकशततमोऽध्यायः

श्रीकृष्णद्वारा ब्राह्मणपुत्रोंका आनयन

अर्जुन उवाच

ततः पर्वतजालानि सरितश्च वनानि च।
अपश्यं समतिक्रम्य सागरं वरुणालयम्॥ १

ततोऽर्घ्यमुदधिः साक्षादुपनीय जनार्दनम्।
स प्राञ्जलिः समुत्थाय किं करोमीति चाब्रवीत्॥ २

प्रतिगृह्य स तां पूजां तमुवाच जनार्दनः।
रथपन्थानमिच्छामि त्वया दत्तं नदीपते॥ ३

अथाब्रवीत् समुद्रस्तु प्राञ्जलिर्गरुडध्वजम्।
प्रसीद भगवन् नैवमन्योऽप्येवं गमिष्यति॥ ४

अर्जुन कहते हैं—तदनन्तर बहुत-से पर्वत-समूहों, सरिताओं और वनोंको लाँघकर मैंने वरुणालय समुद्रको देखा॥ १॥ उस समय साक्षात् समुद्रने भगवान् जनार्दनको अर्घ्य निवेदन किया और हाथ जोड़ खड़ा होकर कहा— 'प्रभो! मैं आपकी क्या सेवा करूँ?'॥ २॥ समुद्रद्वारा अर्पित की हुई पूजाको ग्रहण करके भगवान् जनार्दनने कहा—'नदीपते! मैं चाहता हूँ कि तुम मुझे मेरे रथके लिये मार्ग दे दो'॥ ३॥ तब समुद्रने हाथ जोड़कर गरुडध्वज श्रीकृष्णसे कहा—'भगवन्! प्रसन्न होइये। इस तरह मेरे भीतर मार्ग न बनाइये, नहीं तो दूसरे लोग भी इसी तरह आया-जाया करेंगे॥ ४॥

त्वयैव स्थापितः पूर्वमगाधोऽस्मि जनार्दन।
त्वया प्रवर्तिते मार्गे यास्यामि गमनायताम्॥ ५

अन्येऽप्येवं गमिष्यन्ति राजानो दर्पमोहिताः।
एवं संचिन्त्य गोविन्द यत् क्षमं तत् समाचर॥ ६

वासुदेव उवाच

ब्राह्मणार्थं मदर्थं च कुरु सागर मद्वचः।
मदृते न पुमान् कश्चिदन्यस्त्वां धर्षयिष्यति॥ ७
अथाब्रवीत् समुद्रस्तु पुनरेव जनार्दनम्।
अभिशापभयाद् भीतो बाढमेवं भविष्यति॥ ८
शोषयाम्येष मार्गं ते येन त्वं कृष्ण यास्यसि।
रथेन सह सूतेन सध्वजेन तु केशव॥ ९

वासुदेव उवाच

मया दत्तो वरः पूर्वं न शोषं यास्यसीति ह।
मानुषास्ते न जानीयुर्विविधान् रत्नसंचयान्॥ १०

जलं स्तम्भय साधो त्वं ततो यास्याम्यहं रथी।
न च कश्चित् प्रमाणं ते रत्नानां वेत्स्यते नरः॥ ११

सागरेण तथेत्युक्ते प्रस्थिताः स्मो जलेन वै।
स्तम्भितेन तथा भूमौ मणिवर्णेन भास्वता॥ १२

ततोऽर्णवं समुत्तीर्य कुरूनप्युत्तरान् वयम्।
क्षणेन समतिक्रान्ता गन्धमादनमेव च॥ १३

ततस्तु पर्वताः सप्त केशवं समुपस्थिताः।
जयन्तो वैजयन्तश्च नीलो रजतपर्वतः॥ १४

महामेरुः सकैलास इन्द्रकूटश्च नामतः।
बिभ्राणा वर्णरूपाणि विविधान्यद्भुतानि च॥ १५

उपस्थाय च गोविन्दं किं कुर्मेत्यब्रुवंस्तदा।
तांश्चैव प्रतिजग्राह विधिवन्मधुसूदनः॥ १६

तानुवाच हृषीकेशः प्रणामावनतान् स्थितान्।
विवरं गच्छतो मेऽद्य रथमार्गः प्रदीयताम्॥ १७

'जनार्दन! पहले आपने ही मुझे इस रूपमें प्रतिष्ठित किया है। मैं अगाध हूँ। जब आप मेरे भीतर मार्ग बना देंगे, तब मैं सबके लिये गमनीय (लाँघ जानेके योग्य) हो जाऊँगा॥ ५॥ फिर तो अभिमानसे मोहित हुए दूसरे राजा भी मुझे इसी तरह लाँघ जाया करेंगे। गोविन्द! इस बातका विचार करके जो उचित हो वह कीजिये'॥ ६॥

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—सागर! तुम इस ब्राह्मणके लिये और मेरे लिये भी मेरी इस बातको मान लो, मेरे सिवा दूसरा कोई पुरुष तुम्हें नहीं लाँघ सकेगा॥ ७॥ तब शापके डरसे डरे हुए समुद्रने पुनः जनार्दनसे कहा—'बहुत अच्छा, ऐसा ही होगा॥ ८॥ श्रीकृष्ण! केशव! यह लीजिये, मैं आपके मार्गको सुखाये देता हूँ, जिससे कि आप सारथि और ध्वजसहित रथके द्वारा यात्रा करेंगे'॥ ९॥

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—सरित्पते! मैंने पूर्वकालमें तुम्हें वर दिया है कि तुम कभी सूखोगे नहीं। मनुष्य तुम्हारे भीतर रखे हुए नाना प्रकारके रत्नोंके ढेरोंको न जान सकें, इसके लिये तुम केवल अपने जलको स्तम्भित कर लो। साधो! ऐसा करनेसे मैं रथपर बैठा हुआ तुम्हारे ऊपरसे चला जाऊँगा और कोई मनुष्य तुम्हारे रत्नोंका प्रमाण नहीं जान सकेगा॥ १०-११॥ तब समुद्रने 'तथास्तु' कहकर उनकी बात स्वीकार कर ली। फिर हम सब लोग स्तम्भित हुए जलके मार्गसे चले। वह मार्ग भूमिपर स्थित प्रकाशमान मणियोंकी प्रभासे उद्भासित हो रहा था॥ १२॥ तत्पश्चात् समुद्रको पार करके हम उत्तर कुरुमें जा पहुँचे। फिर एक ही क्षणमें गन्धमादन पर्वतको भी लाँघ गये॥ १३॥ तदनन्तर जयन्त, वैजयन्त, नील, रजतपर्वत, महामेरु, कैलास और इन्द्रकूट नामवाले सात पर्वत भगवान् श्रीकृष्णकी सेवामें उपस्थित हुए। उन्होंने नाना प्रकारके अद्भुत रूप-रङ्ग धारण किये थे॥ १४-१५॥ उस समय गोविन्दकी सेवामें उपस्थित हो वे सब-के-सब कहने लगे—'भगवन्! हम आपकी क्या सेवा करें?' तब मधुसूदनने विधिपूर्वक उन सबका सत्कार ग्रहण किया॥ १६॥ प्रणाम करके विनीत भावसे खड़े हुए उन पर्वतोंसे हृषीकेशने इस प्रकार कहा—'पर्वतो! मैं एक गूढ़-स्थानमें जा रहा हूँ। वहाँ जानेके लिये आज मेरे रथको मार्ग प्रदान करो'॥१७॥

ते कृष्णस्य वचः श्रुत्वा प्रतिगृह्य च पर्वताः।
प्रददुः कामतो मार्गं गच्छतो भरतर्षभ॥ १८

तत्रैवान्तर्हिताः सर्वे तदाश्चर्यतरं मम।
असक्तं च रथो याति मेघजालेष्विवांशुमान्॥ १९

सप्त द्वीपान् ससिन्धूंश्च सप्त सप्त गिरीनथ।
लोकालोकां तथातीत्य विवेश सुमहत्तमः॥ २०

ततः कदाचिद् दुःखेन रथमूहुस्तुरङ्गमाः।
पङ्कभूतं हि तिमिरं स्पर्शाद् विज्ञायते नृप॥ २१

अथ पर्वतभूतं तत् तिमिरं समपद्यत।
तदासाद्य महाराज निष्प्रयत्ना हयाः स्थिताः॥ २२

ततश्चक्रेण गोविन्दः पाटयित्वा तमस्तदा।
आकाशं दर्शयामास रथपन्थानमुत्तमम्॥ २३

निष्क्रम्य तमसस्तस्मादाकाशे दर्शिते तदा।
भविष्यामीति संज्ञा मे भयं च विगतं मम॥ २४

ततस्तेजः प्रज्वलितमपश्यं तत् तदाम्बरे।
सर्वलोकं समाविश्य स्थितं पुरुषविग्रहम्॥ २५

तं प्रविष्टो हृषीकेशो दीप्तं तेजोनिधिं तदा।
रथ एव स्थितश्चाहं स च ब्राह्मणसत्तमः॥ २६

स मुहूर्तात् ततः कृष्णो निश्चक्राम तदा प्रभुः।
चतुरो बालकान् गृह्य ब्राह्मणस्यात्मजांस्तदा॥ २७

प्रददौ ब्राह्मणायाथ पुत्रान् सर्वाञ्जनार्दनः।
त्रयः पूर्वं हृता ये च सद्योजातश्च बालकः॥ २८

प्रहृष्टो ब्राह्मणस्तत्र पुत्रान् दृष्ट्वा पुनः प्रभो।
अहं च परमप्रीतो विस्मितश्चाभवं तदा॥ २९

ततो वयं पुनः सर्वे ब्राह्मणस्य च ते सुताः।
यथा गता निवृत्ताः स्म तथैव भरतर्षभ॥ ३०

ततः स्म द्वारकां प्राप्ताः क्षणेन नृपसत्तम।
असम्प्राप्तेऽर्धदिवसे विस्मितोऽहं पुनः पुनः॥ ३१

भरतश्रेष्ठ! भगवान् श्रीकृष्णका यह वचन सुनकर उनकी आज्ञा शिरोधार्य करके उन पर्वतोंने जाते समय उन्हें इच्छानुसार मार्ग दे दिया॥ १८॥ फिर वे सब-के-सब वहीं अन्तर्धान हो गये। वह मेरे लिये परम आश्चर्यकी बात थी। रथ बिना किसी अटक या रुकावटके आगे बढ़ता जा रहा था, मानो अंशुमाली सूर्य मेघोंकी घटाओंमें अनासक्त भावसे चले जा रहे हों॥ १९॥ सात द्वीपों, सातों समुद्रों तथा प्रत्येक द्वीपके सात-सात कुलपर्वतोंको लाँघकर लोकालोक पर्वतको भी पार करके वह रथ बड़े भारी अन्धकारमें प्रविष्ट हुआ॥ २०॥ तब घोड़े कभी-कभी बड़े कष्टसे रथ खींचते थे। नरेश्वर! वह अन्धकार कीचड़के रूपमें उपलब्ध हुआ, जो स्पर्श करनेसे ज्ञात होता था॥ २१॥ तत्पश्चात् वह अन्धकार पर्वतके रूपमें प्राप्त हुआ। महाराज! उसके पास पहुँचकर रथके घोड़े निश्चेष्ट होकर खड़े हो गये॥ २२॥ तब गोविन्दने अपने चक्रसे उस अन्धकारको विदीर्ण करके आकाश दिखाया, जो रथके लिये उत्तम मार्ग था॥ २३॥ उस अन्धकारसे निकलकर आकाशका दर्शन करनेपर मुझे यह ज्ञान हुआ कि अब मैं जी जाऊँगा, फिर तो मेरा सारा भय दूर हो गया॥ २४॥ इसके बाद मैंने आकाशमें एक प्रज्वलित तेजका दर्शन किया, जो पुरुषके आकारमें स्थित था। वह सम्पूर्ण लोकोंमें व्याप्त जान पड़ता था॥ २५॥ उस समय भगवान् हृषीकेश उस प्रज्वलित तेजकी राशिमें समा गये, किंतु मैं और वह श्रेष्ठ ब्राह्मण रथपर ही बैठे रहे॥ २६॥ फिर दो ही घड़ीमें भगवान् श्रीकृष्ण ब्राह्मणके चारों बालकोंको साथमें लेकर वहाँसे निकले॥ २७॥ तीन तो वे बालक थे, जिनका पहले अपहरण हुआ था और चौथा वह नवजात बालक था। भगवान् जनार्दनने वे सब पुत्र ब्राह्मणको दे दिये॥ २८॥ प्रभो! वहाँ अपने पुत्रोंको पुनः देखकर ब्राह्मणको बड़ा हर्ष हुआ। मुझे भी बड़ी प्रसन्नता हुई। मैं तो उस समय आश्चर्यचकित हो गया था॥ २९॥ भरतश्रेष्ठ! तदनन्तर हम सब लोग और वे ब्राह्मण-बालक पुनः जैसे गये थे, वैसे ही लौट आये॥ ३०॥ नृपश्रेष्ठ! अभी दोपहरी भी नहीं हुई थी तभी हमलोग एक क्षणमें द्वारका आ पहुँचे। मैं तो बारम्बार विस्मित हो रहा था॥ ३१॥

सपुत्रं भोजयित्वा तु द्विजं कृष्णो महायशाः।
धनेन वर्षयित्वा च गृहं प्रास्थापयत् तदा॥ ३२

इसके बाद महायशस्वी श्रीकृष्णने पुत्रोंसहित ब्राह्मणको भोजन कराकर उसके लिये धनकी वर्षा करके उसे तत्काल घर भेज दिया॥ ३२॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे विष्णुपर्वणि वासुदेवमाहात्म्ये ब्राह्मणपुत्रानयने त्रयोदशाधिकशततमोऽध्यायः॥ ११३॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत विष्णुपर्वमें वासुदेवमाहात्म्यके प्रसङ्गमें ब्राह्मणपुत्रोंका आनयनविषयक एक सौ तेरहवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ११३॥

चतुर्दशाधिकशततमोऽध्यायः

भगवान् श्रीकृष्णका अर्जुनको अपने यथार्थ स्वरूपका परिचय देना

अर्जुन उवाच

ततः कृष्णो भोजयित्वा शतानि सुबहूनि च।
विप्राणामृषिकल्पानां कृतकृत्योऽभवत् तदा॥ १
ततः सह मया श्रुत्वा वृष्णिभोजैश्च सर्वशः।
विचित्राश्च कथा दिव्याः कथयामास भारत॥ २
ततः कथान्ते तत्राहमभिगम्य जनार्दनम्।
अपृच्छं तद् यथावृत्तं कृष्णं यद् दृष्टवानहम्॥ ३
कथं समुद्रः स्तब्धोदः कृतस्तु कमलेक्षण।
पर्वतानां च विवरं कृतं तत् कथमच्युत॥ ४
तमस्तच्च कथं घोरं घनं चक्रेण पाटितम्।
तच्च यत् परमं तेजः प्रविष्टोऽसि कथं च तत्॥ ५
किमर्थं तेन ते बालास्तदा चापहृताः प्रभो।
यच्च ते दीर्घमध्वानं संक्षिप्तं तत् कथं पुनः॥ ६
कथं चाल्पेन कालेन जातं नस्तद्गतागतम्।
एतत् सर्वं यथावृत्तमाचक्ष्व मम केशव॥ ७

वासुदेव उवाच

मद्दर्शनार्थं ते बाला हृतास्तेन महात्मना।
विप्रार्थमेष्यते कृष्णो नागच्छेदन्यथेति ह॥ ८
ब्रह्म तेजोमयं दिव्यं महद् यद् दृष्टवानसि।
अहं स भरतश्रेष्ठ मत्तेजस्तत् सनातनम्॥ ९
प्रकृतिः स मम परा व्यक्ताव्यक्ता सनातनी।
यां प्रविश्य भवन्तीह मुक्ता योगविदुत्तमाः॥ १०

अर्जुन कहते हैं—राजन्! तदनन्तर भगवान् श्रीकृष्ण कई सौ ऋषितुल्य ब्राह्मणोंको भोजन कराकर कृतकृत्य हुए॥ १॥ भारत! तत्पश्चात् मेरे और वृष्णि तथा भोजवंशी वीरोंके साथ स्वयं भी भोजन करके वे सर्वथा दिव्य एवं विचित्र कथाएँ सुनाने लगे॥ २॥ फिर कथाके अन्तमें जनार्दन श्रीकृष्णके पास जाकर मैंने जो कुछ देखा था, उसका यथावत् वृत्तान्त पूछा— ॥ ३॥ 'कमलनयन अच्युत! आपने समुद्रके जलको स्तम्भित कैसे कर दिया? तथा पर्वतोंमें छेद या अवकाश किस तरह बना दिया?॥ ४॥ उस घोर एवं घने अन्धकारको किस प्रकार चक्रसे विदीर्ण किया और वह जो परम उत्कृष्ट तेज था, उसमें आप किस प्रकार प्रविष्ट हुए?॥ ५॥ प्रभो! उस परम तेजःस्वरूप पुरुषने उस समय ब्राह्मण-बालकोंका अपहरण किस लिये किया था? और वह जो विशाल मार्ग था, उसे आपने इतना संक्षिप्त कैसे कर दिया?॥ ६॥ केशव! इतने थोड़े समयमें हमलोगोंका वहाँतक जाना-आना कैसे सम्भव हुआ? यह सब वृत्तान्त मुझे यथार्थरूपसे बताइये'॥ ७॥

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—अर्जुन! उन महात्मा तेजस्वी पुरुषने मुझे देखनेके लिये ही उन बालकोंका अपहरण किया था। वे जानते थे कि ब्राह्मणोंके कार्यके लिये ही श्रीकृष्ण आयेंगे, अन्यथा नहीं॥ ८॥ भरतश्रेष्ठ! तुमने जिस दिव्य तेजोमय महद्ब्रह्मका दर्शन किया था, वह मैं ही हूँ। वह मेरा सनातन तेज है॥ ९॥ वह मेरी व्यक्ताव्यक्तस्वरूपा सनातन परा प्रकृति है, जिसमें प्रवेश करके योगवेत्ताओंमें उत्तम पुरुष मुक्त हो जाते हैं॥ १०॥

सा सांख्यानां गतिः पार्थ योगिनां च तपस्विनाम्।
तत् पदं परमं ब्रह्म सर्वं विभजते जगत्॥ ११

मामेव तद् घनं तेजो ज्ञातुमर्हसि भारत।
समुद्रः स्तब्धतोयोऽहमहं स्तम्भयिता जलम्॥ १२

अहं ते पर्वताः सप्त ये दृष्टा विविधास्त्वया।
पङ्कभूतं हि तिमिरं दृष्टवानसि यद्धि तत्॥ १३

अहं तमो घनीभूतमहमेव च पाटकः।
अहं च कालो भूतानां धर्मश्चाहं सनातनः॥ १४

चन्द्रादित्यौ महाशैलाः सरितश्च सरांसि च।
चतस्त्रश्च दिशः सर्वा ममैवात्मा चतुर्विधः॥ १५

चातुर्वर्ण्यं मत्प्रसूतं चातुराश्रम्यमेव च।
चातुर्विध्यस्य कर्ताहमिति बुध्यस्व भारत॥ १६

अर्जुन उवाच

भगवन् सर्वभूतेश वेत्तुमिच्छामि ते प्रभो।
पृच्छामि त्वां प्रपन्नोऽहं नमस्ते पुरुषोत्तम॥ १७

वासुदेव उवाच

ब्रह्म च ब्राह्मणाश्चैव तपः सत्यं च भारत।
उग्रं बृहत्तमं चैव मत्तस्तद् विद्धि पाण्डव॥ १८
प्रियस्तेऽहं महाबाहो प्रियो मेऽसि धनंजय।
तेन ते कथयिष्यामि नान्यथा वक्तुमुत्सहे॥ १९
अहं यजूंषि सामानि ऋचश्चाथर्वणानि च।
ऋषयो देवता यज्ञा मत्तेजो भरतर्षभ॥ २०
पृथिवी वायुराकाशमापो ज्योतिश्च पञ्चमम्।
चन्द्रादित्यावहोरात्रं पक्षा मासास्तथर्तवः।
मुहूर्ताश्च कलाश्चैव क्षणाः संवत्सरास्तथा॥ २१

पार्थ! वही सांख्ययोगियों, कर्मयोगियों तथा तपस्वी पुरुषोंकी गति है। वही परम ब्रह्म पद है, जो सम्पूर्ण जगत्का विभाजन करता है—चेतनसे जडको पृथक् करता है॥ ११॥ भारत! वह जो घनीभूत तेज था, उसे मेरा स्वरूप समझो। जिसके जलका स्तम्भन किया गया था, वह समुद्र मैं ही हूँ और जलका स्तम्भन करनेवाला भी मैं ही हूँ॥ १२॥ वे सात पर्वत जिन्हें तुमने नाना रूपोंमें देखा था, मैं ही हूँ और कीचड़के रूपमें जो अन्धकार दृष्टिगोचर हुआ था, वह भी मैं ही हूँ॥ १३॥ मैं ही घनीभूत अन्धकार और मैं ही उसे विदीर्ण करनेवाला हूँ। मैं ही समस्त भूतोंका काल और मैं ही उनका सनातन धर्म हूँ॥ १४॥ चन्द्रमा, सूर्य, बड़े-बड़े पर्वत, सरिताएँ और सरोवर भी मैं ही हूँ। ये जो चारों दिशाएँ हैं, वे सब-की-सब मेरा ही चतुर्विध रूप हैं॥ १५॥ भारत! चारों वर्ण तथा चारों आश्रम मुझसे ही प्रकट हुए हैं। जरायुज, अण्डज, स्वेदज और उद्भिज्ज—इन चार प्रकारके प्राणियोंकी सृष्टि करनेवाला मैं ही हूँ; इस बातको तुम अच्छी तरह जान लो॥ १६॥

तब मैं (अर्जुन)-ने कहा—भगवन्! सर्वभूतेश्वर! प्रभो! पुरुषोत्तम! आपको नमस्कार है। मैं आपके स्वरूपोंको भलीभाँति जानना चाहता हूँ; इसीलिये उसके विषयमें आपसे जिज्ञासा करता हूँ और आपकी शरणमें आया हूँ॥ १७॥

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—पाण्डुनन्दन भारत! ब्रह्म, ब्राह्मण, तप, सत्य, उग्र (संसारबन्धन) और बृहत्तम (कैवल्य)—ये सब मुझसे ही प्रकट होते हैं, ऐसा समझो॥ १८॥ महाबाहु धनंजय! मैं तुम्हें प्रिय हूँ और तुम मुझे। इसीलिये मैं तुमसे इस रहस्यका वर्णन करता हूँ, अन्यथा कदापि नहीं कह सकता॥ १९॥ भरतश्रेष्ठ! मैं ही यजुर्वेद, सामवेद, ऋग्वेद और अथर्ववेद हूँ। ऋषि, देवता और यज्ञ मेरे ही तेज हैं॥ २०॥ पार्थ! पृथ्वी, वायु, आकाश, जल, चन्द्रमा, सूर्य, दिन, रात, पक्ष, मास, ऋतु, मुहूर्त, कला, क्षण, संवत्सर,

मन्त्राश्च विविधाः पार्थ यानि शास्त्राणि कानिचित्।
विद्याश्च वेदितव्यं च मत्तः प्रादुर्भवन्ति हि॥ २२

मन्मयं विद्धि कौन्तेय क्षयं सृष्टिं च भारत।
सच्चासच्च ममैवात्मा सदसच्चैव यत्परम्॥ २३

नाना प्रकारके मन्त्र, जो कोई भी शास्त्र, विद्या और वेदितव्य—ये सब मुझसे ही प्रकट होते हैं॥ २१-२२॥ कुन्तीनन्दन भारत! सृष्टि और संहारको भी मेरा ही स्वरूप समझो। सत्, असत्, सदसत् तथा उससे भी विलक्षण जो तत्त्व है, वह सब मेरा ही आत्मा है॥ २३॥

अर्जुन उवाच

एवमुक्तोऽस्मि कृष्णेन प्रीयमाणेन वै तदा।
तथैव च मनो नित्यमभवन्मे जनार्दने॥ २४

एतच्छ्रुतं च दृष्टं च माहात्म्यं केशवस्य मे।
यन्मां पृच्छसि राजेन्द्र भूयांश्चातो जनार्दनः॥ २५

अर्जुन कहते हैं—राजेन्द्र! उस समय प्रसन्न हुए श्रीकृष्णने जब मुझे इस प्रकारका उपदेश दिया, तबसे मेरा मन सदा उन्हीं जनार्दनमें संलग्न रहने लगा। इस प्रकार मैंने केशवका माहात्म्य प्रत्यक्ष देखा और सुना है, जिसके विषयमें आप मुझसे पूछ रहे थे। मैंने जो कुछ देखा और जाना है, भगवान् जनार्दन उससे भी महान् हैं॥ २४-२५॥

वैशम्पायन उवाच

एतच्छ्रुत्वा कुरुश्रेष्ठो धर्मराजो युधिष्ठिरः।
पूजयामास धर्मात्मा गोविन्दं पुरुषोत्तमम्॥ २६

विस्मितश्चाभवद् राजा सह सर्वैः सहोदरैः।
राजभिश्च समासीनैर्ये तत्रासन् समागताः॥ २७

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! यह सुनकर धर्मात्मा कुरुश्रेष्ठ धर्मराज युधिष्ठिरने पुरुषोत्तम भगवान् गोविन्दका पूजन किया॥ २६॥ उस समय जो-जो राजा वहाँ पधारे और बैठे हुए थे, उनके तथा अपने समस्त भाइयोंके साथ राजा युधिष्ठिरको बड़ा आश्चर्य हुआ था॥ २७॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे विष्णुपर्वणि वासुदेवमाहात्म्ये कृष्णार्जुनभाषणे चतुर्दशाधिकशततमोऽध्यायः॥ ११४॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत विष्णुपर्वमें वासुदेव-माहात्म्यके प्रसङ्गमें श्रीकृष्ण और अर्जुनका संवादविषयक एक सौ चौदहवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ११४॥

पञ्चदशाधिकशततमोऽध्यायः

भगवान् श्रीकृष्णके पराक्रमोंका संक्षेपसे वर्णन

जनमेजय उवाच

भूय एव द्विजश्रेष्ठ यदुसिंहस्य धीमतः।
कर्माण्यपरिमेयाणि श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः॥ १

श्रूयन्ते विविधानि स्म अद्भुतानि महाद्युतेः।
असंख्येयानि दिव्यानि प्रकृतान्यपि सर्वशः॥ २

यान्यहं विविधान्यस्य श्रुत्वा प्रीये महामुने।
प्रब्रूयाः सर्वशस्तात तानि मे शृण्वतोऽनघ॥ ३

जनमेजयने कहा—द्विजश्रेष्ठ! मैं परम बुद्धिमान् यदुसिंह श्रीकृष्णके अपरिमेय कर्मोंका तात्त्विक वर्णन पुनः सुनना चाहता हूँ॥ १॥ महातेजस्वी भगवान् श्रीकृष्णके अनेक प्रकारके अद्भुत, असंख्य एवं दिव्य चरित्र सुने जाते हैं, जो सर्वथा उनके द्वारा उत्कृष्टरूपसे किये गये हैं॥ २॥ निष्पाप महामुने! तात! भगवान्‌के जिन-जिन विविध चरित्रोंको सुनकर प्रसन्न होता हूँ, उनका सम्पूर्णरूपसे वर्णन कीजिये। मैं उन्हें ध्यानसे सुनूँगा॥ ३॥

वैशम्पायन उवाच

बहून्याश्चर्यभूतानि केशवस्य महात्मनः।
कथितानि महाबाहो नान्तं शक्यं हि कर्मणाम्॥ ४

गन्तुं हि भरतश्रेष्ठ विस्तरेण समन्ततः।
अवश्यं हि मया वाच्यं लेशमात्रेण भारत॥ ५

विष्णोरमितवीर्यस्य प्रथितोदारकर्मणः।
आनुपूर्व्यात्प्रवक्ष्यामि शृणुष्वैकमना नृप॥ ६

द्वारवत्यां निवसता यदुसिंहेन धीमता।
राष्ट्राणि नृपमुख्यानां क्षोभितानि महात्मनाम्॥ ७

यदूनामन्तरप्रेप्सुर्विचक्रो दानवो हतः।
पुरं प्राग्ज्योतिषं गत्वा पुनस्तेन महात्मना॥ ८

समुद्रमध्ये दुष्टात्मा नरको दानवो हतः।
वासवं च रणे जित्वा पारिजातो हृतो बलात्॥ ९

वरुणश्चैव भगवान् निर्जितो लोहितो ह्रदे।
दन्तवक्त्रश्च कारूषो निहतो दक्षिणापथे॥ १०

शिशुपालश्च सम्पूर्णे किल्बिषैकशते हतः।
गत्वा च शोणितपुरं शंकरेणाभिरक्षितः॥ ११

बलेः सुतो महावीर्यो बाणो बाहुसहस्रभृत्।
महामृधे महाराज जित्वा जीवन् विसर्जितः॥ १२

निर्जितः पावकश्चैव गिरिमध्ये महात्मना।
शाल्वश्च विजितः संख्ये सौभश्च विनिपातितः॥ १३

विक्षोभ्य सागरं चैव पाञ्चजन्यो वशीकृतः।
हयग्रीवश्च निहतो नृपाश्चान्ये महाबलाः॥ १४

जरासंधस्य निधने मोक्षिताः सर्वपार्थिवाः।
रथेन जित्वा नृपतीन् गान्धारतनया हृता॥ १५

भ्रष्टराज्याश्च शोकार्ताः पाण्डवाः परिरक्षिताः।
दाहितं च वनं घोरं पुरुहूतस्य खाण्डवम्॥ १६

गाण्डीवं चाग्निना दत्तमर्जुनायोपपादितम्।
दौत्यं च तत्कृतं घोरे विग्रहे जनमेजय॥ १७

वैशम्पायनजी कहते हैं—भरतश्रेष्ठ! महाबाहो! महात्मा केशवके बहुत-से आश्चर्यजनक चरित्र बताये गये। सब ओरसे विस्तारके साथ वर्णन करनेपर उनके कर्मोंका पार पाना असम्भव है। अतः भारत! मैं संक्षेपसे ही उनके उन कर्मोंका अवश्य वर्णन करूँगा॥ ४-५॥ नरेश्वर! अपरिमित पराक्रमी तथा सुविख्यात उदार कर्मवाले भगवान् विष्णुके चरित्रोंका मैं क्रमशः वर्णन करूँगा, एकाग्रचित्त होकर सुनो॥ ६॥ द्वारकामें निवास करते हुए यदुकुलसिंह बुद्धिमान् श्रीकृष्णने मुख्य-मुख्य महामनस्वी नरेशोंके राष्ट्रोंमें हलचल मचा दिया था॥ ७॥ उन दिनों एक विचक्र नामक दानव था, जो यादवोंके छिद्र ही ढूँढ़ा करता था। श्रीकृष्णने उसका वध कर डाला। फिर उस महात्माने प्राग्ज्योतिषपुरमें जाकर समुद्रके भीतर रहनेवाले दुष्टात्मा नरक नामक दानवका संहार किया। एक बार श्रीकृष्णने इन्द्रको भी युद्धमें हराकर बलपूर्वक पारिजात वृक्षका अपहरण कर लिया था। इसी प्रकार लोहितह्रदमें भगवान् वरुणको पराजित किया था। करूषदेशका राजा दन्तवक्त्र दक्षिणापथमें उनके द्वारा मारा गया। एक सौ अपराध पूर्ण होनेपर शिशुपालको भी उन्होंने कालके गालमें भेज दिया। महाराज! बलिका महापराक्रमी पुत्र बाण एक सहस्र भुजाएँ धारण करता था और भगवान् शङ्करके द्वारा वह सर्वथा सुरक्षित था; किंतु भगवान् श्रीकृष्णने शोणितपुरमें जाकर महासमरमें उसे पराजित किया और जीवित छोड़ दिया॥ ८—१२॥ उन महात्माने मेरु गिरिमें अग्निदेवपर विजय पायी तथा युद्धमें सौभ विमानके अधिपति राजा शाल्वको जीता और मार गिराया॥ १३॥ फिर सागरमें क्षोभ पैदा करके पञ्चजनको मारकर पाञ्चजन्य शङ्खपर अधिकार कर लिया। हयग्रीवका वध किया और अन्य महाबली नरेशोंको भी कालके गालमें डाल दिया॥ १४॥ जरासंधकी मृत्यु करवाकर सब राजाओंको उसके बन्धनसे मुक्त किया। एकमात्र रथके द्वारा राजाओंको जीतकर गान्धार-राजकुमारीका अपहरण किया॥ १५॥ पाण्डव अपने राज्यसे भ्रष्ट हो चुके थे और शोकसे आतुर थे, उस अवस्थामें भगवान् श्रीकृष्णने उन सबकी रक्षा की। इन्द्रके घोर खाण्डववनको अर्जुनद्वारा दग्ध करा दिया॥ १६॥ जनमेजय! फिर अग्निका दिया हुआ गाण्डीव धनुष अर्जुनको अर्पित किया तथा कौरव-पाण्डवके घोर विग्रहके समय पाण्डवोंका दूतत्व किया॥ १७॥

अनेन यदुमुख्येन यदुवंशो विवर्धितः।
कुन्त्याश्च प्रमुखे प्रोक्ता प्रतिज्ञा पाण्डवान् प्रति॥ १८
निवृत्ते भारते युद्धे प्रतिदास्यामि तत्सुतान्।
मोक्षितश्च महातेजा नृगः शापात् सुदारुणात्॥ १९
यवनश्च हतः संख्ये काल इत्यभिविश्रुतः।
वानरौ च महावीर्यौ मैन्दो द्विविद एव च॥ २०
विजितौ युधि दुर्धर्षौ जाम्बवांश्च पराजितः।
सान्दीपनेस्तथा पुत्रस्तव चैव पिता तथा॥ २१
गतौ वैवस्वतवशं जीवितौ तस्य तेजसा।
संग्रामा बहवः प्राप्ता घोरा नरवरक्षयाः॥ २२
निहताश्च नृपाः सर्वे कृत्वा तज्जयमद्भुतम्।
जनमेजयास्य युद्धेषु यथा ते वर्णिता मया॥ २३

इन्हीं यादवशिरोमणिने यदुवंशकी वृद्धि की और कुन्तीके सामने पाण्डवोंके विषयमें यह प्रतिज्ञा की कि 'महाभारत-युद्ध समाप्त होनेपर मैं तुम्हें तुम्हारे पुत्रोंको वापस दे दूँगा'। इन्होंने महातेजस्वी राजा नृगको अत्यन्त भयंकर शापसे मुक्त किया। कालयवनको युद्धमें मारा (मुचुकुन्दद्वारा उसका नाश करा दिया)। दो महापराक्रमी दुर्धर्ष वानर मैन्द और द्विविदको तथा ऋक्षराज जाम्बवान्को भी युद्धमें पराजित किया। सान्दीपनिका पुत्र तथा तुम्हारे पिता परीक्षित्—ये दोनों यमराजके वशमें हो गये थे; परंतु उन श्रीकृष्णके तेजसे जीवित हो गये। जनमेजय! बड़े-बड़े राजाओंका विनाश करनेवाले बहुत-से घोर संग्राम प्राप्त हुए, परंतु उन युद्धोंमें अद्भुत विजय पाकर भगवान् श्रीकृष्णने जिस प्रकार समस्त नरेशोंको मार गिराया, उसका वर्णन मैं कर चुका हूँ॥ १८—२३॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे विष्णुपर्वणि वासुदेवमाहात्म्ये पञ्चदशाधिकशततमोऽध्यायः॥ ११५॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत विष्णुपर्वमें वासुदेव-माहात्म्यविषयक एक सौ पंद्रहवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ११५॥

षोडशाधिकशततमोऽध्यायः

भगवान् शङ्करका बाणासुरको अपने और देवी पार्वतीके पुत्रके रूपमें स्वीकार करना, बाणासुरका उनसे युद्धके लिये वर माँगना और पाना तथा इससे बाणमन्त्री कुम्भाण्डका चिन्तित होना

जनमेजय उवाच

भूय एव महाबाहोर्यदुसिंहस्य धीमतः।
कर्माण्यपरिमेयाणि श्रुतानि द्विजसत्तम॥ १
त्वत्तः श्रुतवतां श्रेष्ठ वासुदेवस्य धीमतः।
यत् त्वया कथितं पूर्वं बाणं प्रति महासुरम्॥ २
तदहं श्रोतुमिच्छामि विस्तरेण तपोधन।
कथं च देवदेवस्य पुत्रत्वमसुरो गतः॥ ३
योऽभिगुप्तः स्वयं ब्रह्मञ्छङ्करेण महात्मना।
सहवासं गतेनैव सगणेन गुहेन तु॥ ४
बलेर्बलवतः पुत्रो ज्येष्ठो भ्रातृशतस्य यः।
वृतो बाहुसहस्रेण दिव्यास्त्रशतधारिणा॥ ५

जनमेजयने कहा—विद्वानोंमें उत्तम द्विजश्रेष्ठ! मैंने आपके मुखसे बुद्धिमान् महाबाहु यदुकुलसिंह वसुदेवनन्दन श्रीकृष्णके अपरिमेय कर्मोंको फिरसे सुना। तपोधन! आपने पहले महान् असुर बाणके विषयमें जो चर्चा की है, उसको मैं विस्तारसे सुनना चाहता हूँ। ब्रह्मन्! वह असुर देवाधिदेव महादेवजीके पुत्रभावको कैसे प्राप्त हुआ? जिससे महात्मा भगवान् शङ्करने स्वयं उसकी रक्षा की तथा उसके सहवासमें रहनेवाले गणोंसहित भगवान् स्कन्दने भी उसका संरक्षण किया॥ १—४॥ बलवान् बलिका पुत्र जो अपने सौ भाइयोंमें ज्येष्ठ था, वह सैकड़ों दिव्यास्त्र धारण करनेवाली सहस्र भुजाओंसे युक्त था॥ ५॥

असंख्यैश्च महाकायैर्महाबलशतैर्वृतः।
वासुदेवेन स कथं बाणः संख्ये पराजितः॥ ६
संरब्धश्चैव युद्धार्थी जीवन्मुक्तः कथं च सः।

वैशम्पायन उवाच

शृणुष्वावहितो राजन् कृष्णस्यामिततेजसः॥ ७
मनुष्यलोके बाणेन यथाभूद् विग्रहो महान्।
वासुदेवेन यत्रासौ रुद्रस्कन्दसहायवान्॥ ८
बलिपुत्रो रणश्लाघी जित्वा जीवन् विसर्जितः।
यथा चास्य वरो दत्तः शंकरेण महात्मना॥ ९
नित्यं सांनिध्यतां चैव गाणपत्यं तथाक्षयम्।
यथा बाणस्य तद् युद्धं जीवन्मुक्तो यथा च सः॥ १०
यथा च देवदेवस्य पुत्रत्वं सोऽसुरो गतः।
यदर्थं च महद् युद्धं तत् सर्वमखिलं शृणु॥ ११
दृष्ट्वा वपुः कुमारस्य क्रीडतश्च महात्मनः।
बलिपुत्रो महावीर्यो विस्मयं परमं गतः॥ १२
तस्य बुद्धिः समुत्पन्ना तपश्चर्तुं सुदुष्करम्।
रुद्रस्याराधनार्थाय देवस्य स्यां यथा सुतः॥ १३
ततोऽग्लपयदात्मानं तपसा श्लाघते च सः।
देवश्च परमं तोषं जगाम च सहोमया॥ १४
नीलकण्ठः परां प्रीतिं गत्वा चासुरमब्रवीत्।
वरं वरय भद्रं ते यत् ते मनसि वर्तते॥ १५
अथ बाणोऽब्रवीद् वाक्यं देवदेवं महेश्वरम्।
देव्याः पुत्रत्वमिच्छामि त्वया दत्तं त्रिलोचन॥ १६
शंकरस्तु तथेत्युक्त्वा रुद्राणीमिदमब्रवीत्।
कनीयान् कार्तिकेयस्य पुत्रोऽयं प्रतिगृह्यताम्॥ १७
यत्रोत्थितो महासेनः सोऽग्निजो रुधिरे पुरे।
तत्रोद्देशे पुरं चास्य भविष्यति न संशयः॥ १८

वह असंख्य विशालकाय तथा सैकड़ों महाबली असुरोंसे घिरा रहता था तो भी जब वह युद्धकी इच्छासे रोष और आवेशमें भरकर आया, तब भगवान् वासुदेवने युद्धमें उसे पराजित कैसे कर दिया? तथा किस प्रकार उन्होंने उसे जीवित छोड़ा था?॥ ६$\frac{1}{2}$॥

वैशम्पायनजी बोले—राजन्! मानवलोकमें अमित तेजस्वी भगवान् श्रीकृष्णका बाणासुरके साथ जिस तरह महान् संग्राम हुआ था, उसे ध्यान देकर सुनो। जहाँ रुद्र और स्कन्दकी सहायतासे सम्पन्न हुए युद्धश्लाघी बलिपुत्र बाणासुरको भगवान् श्रीकृष्णने जीतकर भी जीवित छोड़ दिया। महात्मा शङ्करने जिस प्रकार बाणासुरको सदा अपने समीप रहने और अक्षयभावसे गणपति-पदपर प्रतिष्ठित होनेका वरदान दिया था। जिस प्रकार बाणासुरका वह युद्ध हुआ, जिस प्रकार श्रीकृष्णने उसे जीवित छोड़ा, जिस तरह वह असुर देवाधिदेव महादेवजीके पुत्रभावको प्राप्त हुआ तथा जिस निमित्तसे उस महान् युद्धकी घटना घटित हुई, वह सारा वृत्तान्त सम्पूर्णरूपसे सुनो॥ ७—११॥ एक समय क्रीडामें लगे हुए महामनस्वी कुमार स्कन्दके सुन्दर शरीरको देखकर महापराक्रमी बलिपुत्र बाणासुरको बड़ा विस्मय हुआ॥ १२॥ उस समय उसके मनमें रुद्रदेवकी आराधनाके लिये अत्यन्त दुष्कर तपस्या करनेका विचार उत्पन्न हुआ। उस तपका उद्देश्य यही था कि मैं किसी प्रकार महादेवजीका पुत्र हो जाऊँ॥ १३॥ तदनन्तर उसने तपस्याके द्वारा अपने शरीरको गलाना आरम्भ किया। उसे अपनी तपस्यापर गर्व भी होता था अर्थात् वह यह समझता था कि मैं ही महान् तपस्वी हूँ तथा पार्वतीसहित महादेवजी उसपर बहुत संतुष्ट हुए॥ १४॥ परम प्रसन्नताको प्राप्त होकर भगवान् नीलकण्ठने उस असुरसे कहा—'बाण! तुम्हारा कल्याण हो। तुम्हारे मनमें जो इच्छा हो, उसके अनुसार वर माँगो'॥ १५॥ तब बाणने देवाधिदेव महेश्वरसे कहा—'त्रिलोचन! मैं आपका दिया हुआ देवी पार्वतीका पुत्रत्व चाहता हूँ'॥ १६॥ तब भगवान् शङ्करने 'तथास्तु' कहकर देवी रुद्राणीसे इस प्रकार कहा—'देवि! तुम इसे पुत्रके रूपमें स्वीकार करो। यह कार्तिकेयका छोटा भाई होगा॥ १७॥ जहाँ रुधिरपुरमें अग्निकुमार महासेनका प्रादुर्भाव हुआ था, उस स्थानपर इसकी राजधानी होगी। इसमें संशय नहीं है॥ १८॥

नाम्ना तच्छोणितपुरं भविष्यति पुरोत्तमम्।
मयाभिगुप्तं श्रीमन्तं न कश्चित् प्रसहिष्यति॥ १९

ततः स निवसन् बाणः पुरे शोणितसाह्वये।
राज्यं प्रशासते नित्यं क्षोभयन् सर्वदेवताः॥ २०

अथ वीर्यमदोत्सिक्तो बाणो बाहुसहस्रवान्।
अचिन्तयन् देवगणान् युद्धमाकाङ्क्षते सदा॥ २१

ध्वजं चास्य ददौ प्रीतः कुमारो ह्यग्नितेजसम्।
वाहनं चैव बाणस्य मयूरं दीप्ततेजसम्॥ २२

न देवा न च गन्धर्वा न यक्षा नापि पन्नगाः।
तस्य युद्धे व्यतिष्ठन्त देवदेवस्य तेजसा॥ २३

त्र्यम्बकेणाभिगुप्तश्च दर्पोत्सिक्तो महासुरः।
भूयो मृगयते युद्धं शूलिनं सोऽभ्यगच्छत॥ २४

स रुद्रमभिगम्याथ प्रणिपत्याभिवाद्य च।
बलिसूनुरिदं वाक्यं पप्रच्छ वृषभध्वजम्॥ २५

असकृन्निर्जिता देवाःससाध्याः समरुद्गणाः।
मया मदबलोत्सेकात् ससैन्येन तवाश्रयात्॥ २६

इमं देशं समागम्य वसन्ति स्म पुरे सुखम्।
ते पराजयसंत्रस्ता निराशा मत्पराजये॥ २७

नाकपृष्ठमुपागम्य निवसन्ति यथासुखम्।
सोऽहं निराशो युद्धस्य जीवितं नाद्य कामये॥ २८

अयुध्यतो वृथा तेषां बाहूनां धारणं मम।
तद् ब्रूहि मम युद्धस्य कच्चिदागमनं भवेत्।
न मे युद्धं विना देव रतिरस्ति प्रसीद मे॥ २९

ततः प्रहस्य भगवानब्रवीद् वृषभध्वजः।
भविता बाण युद्धं वै यथा तच्छृणु दानव॥ ३०

ध्वजस्यास्य यदा भङ्गस्तव तात भविष्यति।
स्वस्थाने स्थापितस्याथ तदा युद्धं भविष्यति॥ ३१

इत्येवमुक्तः प्रहसन् बाणस्तु बहुशो मुदा।
प्रसन्नवदनो भूत्वा पादयोः पतितोऽब्रवीत्॥ ३२

वह उत्तम नगर शोणितपुरके नामसे विख्यात होगा। मेरे द्वारा सुरक्षित हुए इस तेजस्वी बाणासुरका वेग कोई नहीं सह सकेगा॥ १९॥ तदनन्तर शोणितपुरमें निवास करता हुआ बाण सदा अपने राज्यका शासन करने लगा। वह सम्पूर्ण देवताओंको क्षोभमें डाले रहता था॥ २०॥ इसके बाद सहस्रबाहु बाणासुर अपने बल-पराक्रमके मदसे उन्मत्त होकर देवताओंको कुछ भी न समझकर सदा सबके साथ युद्धकी आकाङ्क्षा रखने लगा॥ २१॥ बाणासुरपर प्रसन्न हुए कुमार कार्तिकेयने उसे अग्निके तुल्य तेजस्वी ध्वज तथा तेजसे प्रकाशित मयूर वाहनरूपमें प्रदान किया॥ २२॥ देवाधिदेव महादेवजीके तेजसे सुरक्षित हुए बाणासुरके सामने युद्धमें न तो देवता ठहर पाते थे, न गन्धर्व, न यक्ष टिक पाते थे, न नाग॥ २३॥ त्रिनेत्रधारी शिवके द्वारा सुरक्षित हुआ वह महान् असुर बलके घमंडमें भर गया और बारम्बार युद्धका ही अवसर ढूँढ़ने लगा। एक दिन वह त्रिशूलधारी भगवान् शङ्करके पास गया॥ २४॥ वृषभध्वज रुद्रदेवके पास जाकर उन्हें प्रणाम और अभिवादन करनेके पश्चात् बलिपुत्र बाणने उनसे यह बात पूछी—॥ २५॥ 'प्रभो! आपका सहारा पाकर सेनासहित मैंने बलके मद और अभिमानपूर्वक साध्यों और मरुद्-गणोंसहित देवताओंको अनेक बार परास्त किया है॥ २६॥ वे मुझे पराजित करनेकी ओरसे तो निराश हैं; परंतु मेरे द्वारा पुनः पराजित होनेके भयसे डरे हुए हैं, अतः इस देशमें आकर इसी नगरमें सुखपूर्वक निवास करते हैं॥ २७॥ साथ ही मेरी आज्ञा ले स्वर्गमें भी जाकर वहाँ सुखपूर्वक रहते हैं, अतः मैं युद्धसे निराश हो गया हूँ। अब युद्ध न मिलनेसे मुझे जीवित रहनेकी इच्छा नहीं होती॥ २८॥ यदि युद्धका सुयोग न मिला तो मेरे लिये इन सहस्र भुजाओंका बोझ ढोना व्यर्थ है; अतः बताइये, क्या मुझे युद्धका अवसर प्राप्त हो सकता है? देव! युद्धके बिना मेरा मन कहीं नहीं लग रहा है। अतः इसके लिये मुझपर कृपा कीजिये'॥ २९॥ यह सुनकर भगवान् वृषभध्वज ठठाकर हँस पड़े और इस प्रकार बोले—'बाणासुर! जिस प्रकार तुम्हें युद्धका अवसर प्राप्त होगा, वह सुनो॥ ३०॥ तात! अपने स्थानपर स्थापित हुआ तुम्हारा यह ध्वज जब खण्डित होकर गिर जायगा, तब तुम्हें युद्ध प्राप्त होगा'॥ ३१॥ उनके ऐसा कहनेपर बाणासुरका मुख प्रसन्नतासे खिल उठा। वह आनन्दमें मग्न होकर बारम्बार जोर-जोरसे हँसने लगा और भगवान् शिवके चरणोंमें गिरकर इस प्रकार बोला—॥ ३२॥

दिष्ट्या बाहुसहस्रस्य न वृथा धारणं मम।
दिष्ट्या सहस्राक्षमहं विजेता पुनराहवे॥ ३३

आनन्देनाश्रुपूर्णाभ्यां नेत्राभ्यामरिमर्दनः।
पञ्चाञ्जलिशतैर्देवं पूजयन् पतितो भुवि॥ ३४

ईश्वर उवाच

उत्तिष्ठोत्तिष्ठ बाहूनामात्मनः स्वकुलस्य तु।
सदृशं प्राप्स्यसे वीर युद्धमप्रतिमं महत्॥ ३५

वैशम्पायन उवाच

एवमुक्तस्ततो बाणस्त्र्यम्बकेण महात्मना।
हर्षेणात्युच्छ्रितः शीघ्रं ननाम वृषभध्वजम्॥ ३६

शितिकण्ठविसृष्टस्तु बाणः परपुरंजयः।
ययौ स्वभवनं तत्र यत्र ध्वजगृहं महत्॥ ३७

तत्रोपविष्टः प्रहसन् कुम्भाण्डमिदमब्रवीत्।
प्रियमावेदयिष्यामि भवतो यन्मनोगतम्॥ ३८

इत्येवमुक्तः प्रहसन् बाणमप्रतिमं रणे।
प्रोवाच राजन् किं त्वेतद् वक्तुकामोऽसि मत्प्रियम्॥ ३९

विस्मयोत्फुल्लनयनः प्रहर्षादिव भाषसे।
त्वत्तः श्रोतुमिहेच्छामि वरं किं लब्धवानसि॥ ४०

देवदेवप्रसादेन स्कन्दस्य च महात्मनः।
ईप्सितं किं त्वया प्राप्तं तन्मे ब्रूहि महासुर॥ ४१

शितिकण्ठप्रसादेन स्कन्दगोपायनेन च।
कच्चित्त्रैलोक्यराज्यं ते व्यादिष्टं शूलपाणिना॥ ४२

कच्चिदिन्द्रस्तव भयात् पातालमुपयास्यति।
कच्चिद् विष्णुपरित्रासं विमोक्ष्यन्ति दितेः सुताः॥ ४३

पातालवासमुत्सृज्य कच्चित् तव बलाश्रयात्।
विबुधावासनिरता भविष्यन्ति महासुराः॥ ४४

बलिर्विष्णुपराक्रान्तो बद्धस्तव पिता नृप।
सलिलौघाद् विनिष्क्रम्य कच्चिद् राज्यमवाप्स्यति॥ ४५

'प्रभो! बड़े सौभाग्यकी बात है कि मेरे लिये इन सहस्र भुजाओंको धारण करना व्यर्थ नहीं होगा। सौभाग्यसे मैं पुनः युद्धमें सहस्रलोचन इन्द्रको परास्त करूँगा'॥ ३३॥ ऐसा कहकर शत्रुमर्दन बाण आनन्दाश्रुओंसे परिपूर्ण नेत्रों तथा पाँच सौ अञ्जलियोंद्वारा महादेवजीकी पूजा करता हुआ पुनः पृथ्वीपर उनके चरणोंमें पड़ गया॥ ३४॥

तब महादेवजी बोले—वीर! उठो, उठो! तुम अपनी इन भुजाओं तथा कुलके अनुरूप ऐसा महान् युद्ध प्राप्त करोगे, जिसकी कहीं तुलना नहीं है॥ ३५॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन्! महात्मा त्र्यम्बकके ऐसा कहनेपर हर्षसे उत्फुल्ल हुए बाणासुरने भगवान् वृषभध्वजको शीघ्र नमस्कार किया॥ ३६॥ तदनन्तर भगवान् नीलकण्ठसे विदा लेकर शत्रुनगरीपर विजय पानेवाला बाणासुर अपने घरको गया, जहाँ विशाल ध्वजगृह बना हुआ था॥ ३७॥ वहाँ बैठकर हँसते हुए बाणने अपने मन्त्री कुम्भाण्डसे इस प्रकार कहा—'मन्त्रिप्रवर! मैं तुम्हें प्रिय समाचार निवेदन करूँगा, जो तुम्हारे मनको अभीष्ट है'॥ ३८॥ उसका ऐसा कथन सुनकर हँसते हुए कुम्भाण्डने युद्धमें अनुपम वीरता प्रकट करनेवाले बाणासुरसे कहा—'राजन्! यह क्या बात है? आप मेरे किस प्रिय समाचारको बताना चाहते हैं?॥ ३९॥ आपके नेत्र आश्चर्यसे खिल उठे हैं। आप अत्यन्त हर्षसे प्रेरित होकर बोल रहे हैं। मैं यहाँ आपके मुखसे सुनना चाहता हूँ कि आपने देवाधिदेव महादेवजीकी कृपा और महात्मा स्कन्दके प्रसादसे कौन-सा वर प्राप्त किया है? महान् असुर! आपने भगवान् नीलकण्ठके कृपाप्रसाद और स्वामी स्कन्दके संरक्षणद्वारा कौन-सा अभीष्ट वर प्राप्त किया है, यह मुझे बताइये। क्या भगवान् शूलपाणिने आपको तीनों लोकोंका राज्य दे दिया? क्या देवराज इन्द्र आपके भयसे पाताललोकको चले जायँगे? क्या दितिके पुत्र अब भगवान् विष्णुका भय त्याग देंगे? क्या आपके बलका सहारा लेकर बड़े-बड़े असुर पातालका निवास छोड़कर स्वर्गलोकमें वास करेंगे॥ ४०—४४॥ राजन्! क्या आपके पिता राजा बलि, जो विष्णुके पराक्रमसे अभिभूत हो पातालमें बँधे हुए हैं, समुद्रकी जलराशिसे बाहर निकलकर पुनः त्रिलोकीका राज्य प्राप्त करेंगे?'॥ ४५॥

दिव्यमाल्याम्बरधरं दिव्यस्रग्गन्धलेपनम्।
कच्चिद् वैरोचनिं तात द्रक्ष्यामः पितरं तव॥ ४६

कच्चित् त्रिभिः क्रमैः पूर्वं हृताँल्लोकानिमान् प्रभो।
पुनः प्रत्यानयिष्यामो जित्वा सर्वान् दिवौकसः॥ ४७

स्निग्धगम्भीरनिर्घोषं शङ्खस्वनपुरोजवम्।
कच्चिन्नारायणं देवं जेष्यामः समितिंजयम्॥ ४८

कच्चिद् वृषध्वजस्तात प्रसादसुमुखस्तव।
यथा ते हृदयोत्कम्पः साश्रुबिन्दुः प्रवर्तते॥ ४९

कच्चिदीश्वरतोषेण कार्तिकेयमतेन च।
प्राप्तवानसि सर्वेषामस्माकं राज्यसम्पदम्॥ ५०

इति कुम्भाण्डवचनैश्चोदितः सोऽसुरोत्तमः।
बाणो वाणीमसंसक्तां प्रोवाच वदतां वरः॥ ५१

बाण उवाच

चिरात्प्रभृति कुम्भाण्ड न युद्धं प्राप्यते मया।
ततो मया मुदा पृष्टः शितिकण्ठः प्रतापवान्॥ ५२
युद्धाभिलाषः सुमहान् देव संजायते मम।
अभिप्राप्स्याम्यहं युद्धं मनसस्तुष्टिवर्धनम्॥ ५३
ततोऽहं देवदेवेन हरेणामित्रघातिना।
प्रहस्य सुचिरं कालमुक्तोऽस्मि वचनं प्रियम्।
प्राप्स्यसे सुमहद् युद्धं त्वं बाणाप्रतिमं महत्॥ ५४
मयूरध्वजभङ्गस्ते भविष्यति यदासुर।
तदा त्वं प्राप्स्यसे युद्धं सुमहद् दितिनन्दन॥ ५५
ततोऽहं परमप्रीतो भगवन्तं वृषध्वजम्।
प्रणम्य शिरसा देवं तवान्तिकमुपागतः॥ ५६
इत्येवमुक्तः कुम्भाण्डः प्रोवाच नृपतिं तदा।
अहो न शोभनं राजन् यदेवं भाषसे वचः॥ ५७
एवं कथयतोस्तत्र तयोरन्योन्यमुच्छ्रितः।
ध्वजः पपात वेगेन शक्राशनिसमाहतः॥ ५८
तं तथा पतितं दृष्ट्वा सोऽसुरो ध्वजमुत्तमम्।
प्रहर्षमतुलं लेभे मेने चाहवमागतम्॥ ५९

'तात! क्या हमलोग तुम्हारे पिता विरोचनकुमार बलिको पुनः दिव्य माला, दिव्य वस्त्र, दिव्य पुष्पोंके हार, दिव्य गन्ध तथा दिव्य अनुलेपन धारण किये देखेंगे?॥ ४६॥ प्रभो! पहले विष्णुके तीन पगोंद्वारा जो हर लिये गये थे, उन्हीं इन तीनों लोकोंको क्या हम पुनः समस्त देवताओंको पराजित करके लौटा लायँगे?॥ ४७॥ जिनकी वाणीका घोष मेघगर्जनाके समान स्निग्ध एवं गम्भीर है तथा जिनके आगे उनका शङ्खनाद वेगपूर्वक चलता है, उन युद्धविजयी नारायणदेवको क्या हमलोग जीत सकेंगे?॥ ४८॥ तात! क्या भगवान् वृषभध्वज आपके प्रति कृपा करनेके लिये प्रसन्नमुख हुए हैं? आपके हृदयमें जैसा कम्प हो रहा है और नेत्रोंसे जिस प्रकार आनन्दके आँसू झर रहे हैं, उनको देखते हुए पूर्वोक्त बातोंका ही अनुमान होता है॥ ४९॥ क्या भगवान् शिवके संतोष और कार्तिकेयकी सम्मतिसे आपने हम सब लोगोंके लिये राज्य-सम्पत्ति प्राप्त की है?'॥ ५०॥ तब कुम्भाण्डकी ऐसी बातोंसे प्रेरित होकर वक्ताओंमें श्रेष्ठ असुरप्रवर बाणने अस्खलित वाणीमें कहा॥ ५१॥

बाणासुर बोला—कुम्भाण्ड! चिरकालसे मुझे युद्ध नहीं प्राप्त हो रहा था, इसलिये मैंने प्रतापी भगवान् नीलकण्ठसे प्रसन्नतापूर्वक पूछा—॥ ५२॥ 'देव! मेरे मनमें युद्धकी बड़ी अभिलाषा हो रही है। क्या मैं कभी ऐसा युद्ध प्राप्त करूँगा, जो मेरे मानसिक संतोषको बढ़ानेवाला हो'॥ ५३॥ मेरी यह बात सुनकर शत्रुघाती देवाधिदेव महादेवने देरतक हँसकर मुझसे यह प्रिय वचन कहा—'बाणासुर! तुम्हें ऐसा महान् युद्ध प्राप्त होगा, जिसकी कहीं तुलना नहीं है॥ ५४॥ दितिनन्दन असुर! जब तुम्हारा मयूरध्वज टूटकर गिर जायगा, तब तुम्हें महान् युद्धका अवसर प्राप्त होगा'॥ ५५॥ तब मैं अत्यन्त प्रसन्न हो भगवान् वृषभध्वजदेवको सिर झुकाकर प्रणाम करके तुम्हारे पास आया हूँ॥ ५६॥ बाणासुरके ऐसा कहनेपर कुम्भाण्डने उस असुरराजसे कहा—'अहो राजन्! आप जो ऐसी बात कह रहे हैं, इसका परिणाम अच्छा नहीं है'॥ ५७॥ वे दोनों वहाँ आपसमें ऐसी बातें कर रहे थे कि इतनेमें ही बाणासुरका ऊँचा ध्वज इन्द्रके वज्रसे आहत हो बड़े वेगसे गिर पड़ा॥ ५८॥ अपने उस उत्तम ध्वजको टूटकर गिरा हुआ देख बाणासुरको अनुपम हर्ष प्राप्त हुआ और उसे यह विश्वास हो गया कि अब युद्धका अवसर आना ही चाहता है॥ ५९॥

ततश्चकम्पे वसुधा शक्राशनिसमाहता।
ननादान्तर्हितो भूमौ वृषदंशो जगर्ज च॥ ६०

देवानामपि यो देवः सोऽप्यवर्षत वासवः।
शोणितं शोणितपुरे सर्वतः परमं ततः॥ ६१

सूर्यं भित्त्वा महोल्का च पपात धरणीतले।
स्वपक्षे चोदितः सूर्यो भरणीं समपीडयत्॥ ६२

चैत्यवृक्षेषु सहसा धाराः शतसहस्रशः।
शोणितस्य स्रवन् घोरा निपेतुस्तारका भृशम्॥ ६३

राहुरग्रसदादित्यमपर्वणि विशाम्पते।
लोकक्षयकरे काले निर्घातश्चापतन्महान्॥ ६४

दक्षिणां दिशमास्थाय धूमकेतुः स्थितोऽभवत्।
अनिशं चाप्यविच्छिन्ना ववुर्वाताः सुदारुणाः॥ ६५

श्वेतलोहितपर्यन्तः कृष्णग्रीवस्तडिद्द्युतिः।
त्रिवर्णपरिघो भानुः संध्यारागमथावृणोत्॥ ६६

वक्रमङ्गारकश्चक्रे कृत्तिकासु भयंकरः।
बाणस्य जन्मनक्षत्रं भर्त्सयन्निव सर्वशः॥ ६७

अनेकशाखश्चैत्यश्च निपपात महीतले।
अर्चितः सर्वकन्याभिर्दानवानां महात्मनाम्॥ ६८

एवं विविधरूपाणि निमित्तानि निशामयन्।
बाणो बलमदोन्मत्तो निश्चयं नाधिगच्छति॥ ६९

विचेतास्त्वभवत् प्राज्ञः कुम्भाण्डस्तत्त्वदर्शिवान्।
बाणस्य सचिवस्तत्र कीर्तयन् बहु किल्बिषम्॥ ७०

उत्पाता ह्यत्र दृश्यन्ते कथयन्तो न शोभनम्।
तव राज्यविनाशाय भविष्यन्ति न संशयः॥ ७१

वयं चान्ये च सचिवा भृत्यास्ते च तवानुगाः।
क्षयं यास्यन्ति नचिरात् सर्वे पार्थिव दुर्नयात्॥ ७२

यथा शक्रध्वजतरोः स्वदर्पात् पतनं भवेत्।
बलमाकाङ्क्षतो मोहात् तथा बाणस्य नर्दतः॥ ७३

तदनन्तर इन्द्रके वज्रके आघातसे पीड़ित हो पृथ्वी काँपने लगी। भूमिमें छिपा हुआ बिलाव आर्तनाद एवं गर्जना करने लगा॥ ६०॥ जो देवताओंके भी देवता हैं, वे इन्द्र शोणितपुरमें सब ओर बहुत रक्तकी वर्षा करने लगे॥ ६१॥ आकाशसे सूर्यमण्डलका मर्दन करके बहुत बड़ी उल्का धरतीपर गिरी। अपने पक्षके देवताओंसे प्रेरित हुए सूर्यदेव भरणी नामक नक्षत्रको पीडा देने लगे॥ ६२॥ चैत्यवृक्षोंपर सहसा शोणितकी सैकड़ों-हजारों धाराएँ गिरने लगीं, जो बड़ी भयंकर प्रतीत होती थीं। आकाशसे बारम्बार तारे टूटकर गिरने लगे॥ ६३॥ प्रजानाथ! राहुने बिना पर्वके ही सूर्यको ग्रस लिया। वह लोकविनाशक समय प्राप्त होनेपर भारी गड़गड़ाहटके साथ वज्रपात होने लगा॥ ६४॥ धूमकेतु दक्षिण दिशामें आकर स्थित हो गया। निरन्तर अविच्छिन्नभावसे अत्यन्त दारुण वायु चलने लगी॥ ६५॥ सूर्यपर तीन रंगके घेरे पड़ गये। किनारे-किनारे तो सफेद और लाल रंगके घेरे थे; किंतु कण्ठभागमें काले रंगका घेरा था। उसमें सूर्यकी कान्ति विद्युत्के समान प्रतीत होती थी। उन्होंने अपनी उस दीप्तिसे संध्याकालकी लालीको ढक दिया॥ ६६॥ मङ्गल वक्रगतिसे कृत्तिकामें आकर स्थित हो गये, जो भयकी सूचना दे रहे थे। वे सब प्रकारसे बाणासुरके जन्मनक्षत्र रोहिणीकी भर्त्सना-सी कर रहे थे॥ ६७॥ बहुत-सी शाखाओंसे युक्त चैत्यवृक्ष, जो महामनस्वी दानवोंकी समस्त कन्याओंद्वारा पूजित होता था, सहसा पृथ्वीपर गिर पड़ा॥ ६८॥ इस प्रकार भाँति-भाँतिके उत्पातोंको देखता हुआ बलके मदसे उन्मत्त बाणासुर किसी निश्चयपर नहीं पहुँच पाता था॥ ६९॥ परंतु बाणासुरके विद्वान् मन्त्री तत्त्वदर्शी कुम्भाण्ड नाना प्रकारके दुष्परिणामोंका वर्णन करते हुए अचेत-से हो गये॥ ७०॥ वे बोले—'असुरराज! यहाँ बहुत-से उत्पात दिखायी देते हैं, जो शुभ परिणामके सूचक नहीं हैं। वे आपके राज्यका विनाश करनेमें सहायक होंगे, इसमें संदेह नहीं है॥ ७१॥ पृथ्वीनाथ! आपकी दुर्नीतिसे हम तथा दूसरे मन्त्री और आपके अनुगामी सेवक—ये सब-के-सब शीघ्र ही नष्ट हो जायँगे॥ ७२॥ आपके अपने ही दर्पसे जिस तरह पूर्वोक्त चैत्यवृक्षका जो अपनी ऊँचाईसे इन्द्रध्वजको छू लेता था, पतन हो गया, उसी प्रकार बलकी आकाङ्क्षा रखकर गर्जना करनेवाले आप बाणासुरका भी अपने ही मोहवश अभिमानसे पतन हो जायगा'॥ ७३॥

देवदेवप्रसादात् तु त्रैलोक्यविजयं गतः।
उत्सेकाद् दृश्यते नाशो युद्धाकाङ्क्षी ननर्द ह॥ ७४

बाणः प्रीतमनास्त्वेवं पपौ पानमनुत्तमम्।
दैत्यदानवनारीभिः सार्धमुत्तमविक्रमः॥ ७५

कुम्भाण्डश्चिन्तयाविष्टो राजवेश्माभ्ययात् तदा।
अचिन्तयच्च तत्त्वार्थं तैस्तैरुत्पातदर्शनैः॥ ७६

राजा प्रमादी दुर्बुद्धिर्जितकाशी महासुरः।
युद्धमेवाभिलषते न दोषान्मन्यते मदात्॥ ७७

महोत्पातभयं चैव न तन्मिथ्या भविष्यति।
अपीदानीं भवेन्मिथ्या सर्वमुत्पातदर्शनम्॥ ७८

इह त्वास्ते त्रिनयनः कार्तिकेयश्च वीर्यवान्।
तेनोत्पन्नोऽपि दोषो नः कच्चिद् गच्छेत् पराभवम्॥ ७९

उत्पन्नदोषप्रभवः क्षयोऽयं भविता महान्।
दोषाणां न भवेन्नाश इति मे धीयते मतिः॥ ८०

नियतो दोष एवायं भविष्यति न संशयः।
दौरात्म्यान्नृपतेरस्य दोषभूता हि दानवाः॥ ८१

देवदानवसंघानां यः कर्ता भुवनप्रभुः।
भगवान् कार्तिकेयश्च कृतवाँल्लोहिते पुरे॥ ८२

प्राणैः प्रियतरो नित्यं भविष्यति गुहः सदा।
तद्विशिष्टश्च बाणोऽपि शिवस्य सततं प्रियः॥ ८३

दर्पोत्सेकात् तु नाशाय वरं याचितवान् भवम्।
युद्धहेतोः स लुब्धस्तु सर्वथा च भविष्यति॥ ८४

यदि विष्णुपुरोगानामिन्द्रादीनां दिवौकसाम्।
भवित्री घनवत् प्राप्तिर्भवहस्तात् कृता भवेत्॥ ८५

'देवाधिदेव महादेवजीके प्रसादसे जिन्होंने तीनों लोकोंपर विजय प्राप्त कर ली, उन्हीं असुरराजका अब अभिमानवश विनाश दिखायी देता है, तभी तो आप युद्धकी अभिलाषा लेकर गर्जना करने लगे हैं'॥ ७४॥ परंतु बाणासुरको इसकी परवा नहीं थी, वह उत्तम पराक्रमी असुर प्रसन्नचित्त होकर दैत्यों और दानवोंकी स्त्रियोंके साथ उत्तम मधुपान करने लगा॥ ७५॥ मन्त्री कुम्भाण्ड उस समय चिन्तित होकर राजभवनको चले गये तथा भिन्न-भिन्न उत्पातोंको देखकर तात्त्विक अर्थका चिन्तन करने लगे॥ ७६॥ वे मन-ही-मन सोचने लगे, यह असुरोंका राजा महान् असुर बाण प्रमादी हो गया है। इसकी बुद्धि बिगड़ गयी है। यह विजयश्रीसे उल्लसित हो बारम्बार युद्धकी ही अभिलाषा रखने लगा है। बलके मदसे उन्मत्त होकर इसमें दोष नहीं मान रहा है॥ ७७॥ महान् उत्पातोंसे जिस भयकी सूचना मिल रही है, वह मिथ्या नहीं होगा। क्या कोई ऐसा उपाय है, जिससे इस समय यह सारा उत्पात-दर्शन मिथ्या हो जाय?॥ ७८॥ यहाँ साक्षात् त्रिनेत्रधारी भगवान् शिव रहते हैं। पराक्रमी कार्तिकेय भी यहीं विराजमान हैं, इससे हमारे लिये उत्पन्न हुआ यह दोष भी क्या शान्त हो जायगा?॥ ७९॥ इन उत्पन्न हुए उत्पातरूपी दोषोंसे यह सूचित होता है कि यहाँ महान् संहार होनेवाला है। मेरा तो यही निश्चय है कि अब इन दोषोंका नाश नहीं हो सकता॥ ८०॥ इस राजाका जो यह दुरात्मभाव है, यही हमारे लिये नियत दोष होगा, इसमें संशय नहीं है; क्योंकि समस्त दानव ही इस दोषसे युक्त हैं॥ ८१॥ जो देवताओं और दानवोंके समुदायोंकी सृष्टि करनेवाले तथा समस्त भुवनोंके प्रभु हैं, उन भगवान् शिव तथा कार्तिकेयने बाणासुरको शोणितपुरमें बसा दिया था॥ ८२॥ स्कन्द तो सदा भगवान् शिवके लिये प्राणोंसे भी अधिक प्रिय होंगे और उनके साथ रहकर बाणासुर भी निरन्तर उनका प्रिय बना रहेगा॥ ८३॥ परंतु इसने बलके घमंडमें आकर अपने ही विनाशके लिये भगवान् शङ्करसे युद्धके लिये वर माँग लिया। युद्धलोलुप होनेके कारण यह सर्वथा अपना अस्तित्व खो देगा॥ ८४॥ यदि भगवान् विष्णुको आगे करके इन्द्र आदि देवता मेघोंकी घटाके समान यहाँ छा जायँ तो भी भगवान् शङ्करके हाथसे उनके उस आक्रमणका प्रतीकार हो सकता है॥ ८५॥

एतयोश्च हि को युद्धं कुमारभवयोरिह।
शक्तो दातुं समागम्य बाणसाहाय्यकाङ्क्षिणोः ॥ ८६

न च देववचो मिथ्या भविष्यति कदाचन।
भविष्यति महद् युद्धं सर्वदैत्यविनाशनम् ॥ ८७

स एवं चिन्तयाविष्टः कुम्भाण्डस्तत्त्वदर्शिवान्।
स्वस्तिप्रणिहितां बुद्धिं चकार च महासुरः ॥ ८८

ये हि देवैर्विरुध्यन्ते पुण्यकर्मभिराहवे।
यथा बलिर्नियमितस्तथा ते यान्ति संक्षयम् ॥ ८९

बाणासुरकी सहायताकी इच्छा रखनेवाले इन भगवान् शङ्कर और कुमार कार्तिकेयके सामने आकर कौन इन्हें युद्धका अवसर दे सकता है?॥ ८६ ॥ परंतु महादेवजीका वचन कभी मिथ्या नहीं होगा। (जब उन्होंने महान् युद्ध होनेकी बात कही है, तब) समस्त दैत्योंका विनाश करनेवाला महायुद्ध होकर ही रहेगा॥ ८७ ॥ इस प्रकार चिन्तामग्न होकर महान् असुर तत्त्वदर्शी कुम्भाण्डने अपनी बुद्धिको कल्याणचिन्तनमें लगाया॥ ८८ ॥ जो युद्धमें पुण्यकर्मा देवताओंके साथ विरोध करते हैं अथवा वे देवता ही जिनके विरोधमें खड़े हो जाते हैं, वे जिस प्रकार राजा बलि बाँधे गये थे, उसी प्रकार बन्धनमें पड़कर नष्ट हो जाते हैं॥ ८९ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे विष्णुपर्वणि बाणयुद्धे षोडशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११६ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत विष्णुपर्वमें बाणासुरका युद्धविषयक एक सौ सोलहवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ११६ ॥

सप्तदशाधिकशततमोऽध्यायः

शिव-पार्वतीका क्रीडाविहार, पार्वतीका उषाको पतिसमागमके लिये वर देना तथा उषाकी विरह-व्यथाका वर्णन

वैशम्पायन उवाच

क्रीडाविहारोपगतः कदाचिदभवद् भवः।
देव्या सह नदीतीरे रम्ये श्रीमति स प्रभुः ॥ १

शतानि तत्राप्सरसां चिक्रीडुश्च समन्ततः।
सर्वर्तुकवने रम्ये गन्धर्वपतयस्तथा ॥ २

कुसुमैः पारिजातस्य पुष्पैः संतानकस्य च।
गन्धोद्दाममिवाकाशं नदीतीरं तु सर्वशः ॥ ३

वेणुवीणामृदङ्गैश्च पणवैश्च सहस्रशः।
वाद्यमानैः स शुश्राव गीतमप्सरसां तदा ॥ ४

सूतमागधकल्पैश्चास्तुवन्नप्सरसां गणाः।
देवदेवं सुवपुषं स्रग्विणं रक्तवाससम् ॥ ५

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! किसी समय प्रभावशाली भगवान् शङ्कर गङ्गा नदीके शोभासम्पन्न रमणीय तटपर देवी पार्वतीके साथ क्रीडा-विहारके लिये गये॥ १ ॥ वहाँ सब ऋतुओंकी शोभासे सुशोभित सर्वर्तुक वनमें सब ओरसे सैकड़ों अप्सराएँ तथा गन्धर्वराज क्रीडा कर रहे थे॥ २ ॥ पारिजात और संतानक नामक कल्पवृक्षके पुष्पोंद्वारा उस नदी-तटका सारा आकाश उद्दाम सुगन्धसे व्याप्त हो रहा था॥ ३ ॥ वेणु, वीणा, मृदङ्ग और पणव आदि सहस्रों वाद्योंकी मधुर ध्वनिके साथ अप्सराओंका मनोहर गीत उन्होंने सुना॥ ४ ॥ अप्सराओंके समुदाय सूत और मागधोंके-से वचनोंद्वारा भगवान् शिवकी स्तुति करते थे। सुन्दर शरीरधारी देवाधिदेव महादेव फूलोंके हार धारण किये लाल रङ्गके वस्त्रसे सुशोभित थे।

श्रीमहेशं देवदेवमर्चयन्ति मनोरमम्।
ततस्तु देव्या रूपेण चित्रलेखा वराप्सराः॥ ६

भवं प्रसादयामास देवी च प्राहसत् तदा।
प्रसादयन्तीमीशानं प्रहसन्त्यप्सरोगणाः॥ ७

भवस्य पार्षदा दिव्या नानारूपा महौजसः।
देव्या ह्यनुज्ञया सर्वे क्रीडन्ते तत्र तत्र ह॥ ८

अथ ते पार्षदास्तत्र रहस्ये सुविपश्चितः।
महादेवस्य रूपेण तच्चिह्नं रूपमास्थिताः॥ ९

ततो देव्याः सुरूपेण लीलया वदनेन च।
देवी प्रहासं मुमुचे ताश्चैवाप्सरसस्तदा।
ततः किलकिलाशब्दः प्रादुर्भूतः समन्ततः॥ १०

प्रहर्षमतुलं लेभे भवः प्रीतमनास्तदा।
बाणस्य दुहिता कन्या तत्रोषा नाम भामिनी॥ ११

देवं संक्रीडितं दृष्ट्वा देव्या सह नदीगतम्।
दीप्यमानं महादेवं द्वादशादित्यतेजसम्॥ १२

नानारूपं वपुः कृत्वा देव्याः प्रियचिकीर्षया।
उषा मनोरथं चक्रे पार्वत्याः संनिधौ तथा॥ १३

धन्या हि भर्तृसहिता रमत्येवं समागता।
मनसा त्वथ संकल्पमुषया भाषितं तथा॥ १४

विज्ञाय तमभिप्रायमुषायाः पर्वतात्मजा।
प्राह देवी ततो वाक्यमुषां हर्षयती शनैः॥ १५

उषे त्वं शीघ्रमप्येवं भर्त्रा सह रमिष्यसि।
यथा देवो मया सार्धं शङ्करः शत्रुनाशनः॥ १६

एवमुक्ते तदा देव्या वाक्ये चिन्ताविलेक्षणा।
उषा भावं तदा चक्रे भर्त्रा रंस्ये कदा सह॥ १७

तदा हैमवती वाक्यं सम्प्रहस्येदमब्रवीत्।
उषे शृणुष्व वाक्यं मे यदा संयोगमेष्यसि॥ १८

उन श्रीमहेश्वरका रूप बड़ा ही मनोरम था। सब अप्सराएँ वहाँ उन देवाधिदेवकी पूजा करती थीं। इसी समय चित्रलेखा नामवाली श्रेष्ठ अप्सरा देवी पार्वतीका रूप धारण करके महादेवजीको रिझाने लगी। यह देखकर देवी पार्वती उस समय जोर-जोरसे हँसने लगीं। महादेवजीको रिझानेमें लगी हुई उस चित्रलेखाको लक्ष्य करके दूसरी अप्सराएँ भी हँसने लगीं॥ ५—७॥ भगवान् शङ्करके जो नाना रूपधारी दिव्य एवं महाबली पार्षद थे, वे सब देवी पार्वतीकी आज्ञासे विभिन्न स्थानोंमें क्रीडा कर रहे थे॥ ८॥ तदनन्तर वे विद्वान् पार्षद एकान्तमें जाकर महादेवजीके रूपसे उन्हींके समान ध्वज आदि चिह्न तथा आकार धारण करके खड़े हो गये। फिर तो अप्सराएँ भी देवी पार्वतीके समान सुन्दर रूप, लीला और मुख एवं वार्तालापसे युक्त हो उनके साथ क्रीडा करने लगीं। यह देख उस समय देवी पार्वती तथा वे अप्सराएँ जोर-जोरसे ठहाका मारकर हँसने लगीं। इससे वहाँ चारों ओर किलकिलाहटका शब्द गूँज उठा॥ ९-१०॥ उस समय भगवान् शङ्करको अनुपम हर्ष प्राप्त हुआ। उनका मन प्रसन्न हो गया। उस अवसरपर बाणासुरकी पुत्री भामिनी उषा भी वहीं थी॥ ११॥ उसने देखा, बारह सूर्योंके समान तेजस्वी महादेवजी अपनी दीप्तिसे देदीप्यमान हैं और नदीके तटपर देवी पार्वतीके साथ मधुर क्रीडामें आसक्त हो रहे हैं॥ १२॥ वे देवीका प्रिय करनेकी इच्छासे नाना रूप धारण करके क्रीडा कर रहे हैं। यह देख उषाने देवी पार्वतीके समीप ही मनमें यह संकल्प किया॥ १३॥ 'वह नारी धन्य है, जो पतिके साथ इस प्रकार मिलकर रमण करती है।' अपने इस मानसिक संकल्पको उषाने मन-ही-मन दुहराया॥ १४॥ उषाके उस अभिप्रायको जानकर पार्वती देवी उसे हर्ष प्रदान करती हुई धीरेसे बोलीं—॥ १५॥ 'उषे! तुम भी शीघ्र ही पतिके साथ इसी तरह रमण करोगी, जैसे शत्रुनाशन भगवान् शङ्कर मेरे साथ रमण करते हैं'॥ १६॥ देवीके ऐसा कहनेपर उषाकी आँखें इस चिन्तासे मुँद गयीं कि पता नहीं, यह सौभाग्य कब प्राप्त होगा? उस समय उसने मन-ही-मन यह अभिलाषा की कि मैं पतिके साथ कब रमण करूँगी॥ १७॥ तब हिमवान्-कुमारीने हँसकर उससे यह बात कही—'उषे! मेरी बात सुनो, तुम्हें पतिका संयोग कब प्राप्त होगा, यह बताती हूँ'॥ १८॥

वैशाखे मासि हर्म्यस्थां द्वादश्यां त्वां दिनक्षये।
रमयिष्यति यः स्वप्ने स ते भर्ता भविष्यति॥ १९

एवमुक्ता दैत्यसुता कन्यागणसमावृता।
अपाक्रामत हर्षेण रममाणा यथासुखम्॥ २०

ततः सखीभिर्हास्यन्ती हर्षेणोत्फुल्ललोचना।
तालिकासंनिपातैश्च ह्यन्योन्यं जघ्नुरूर्जिताः॥ २१

किन्नर्यो यक्षकन्याश्च नानादैतेयकन्यकाः।
अप्सरोगणकन्याश्च उषायाः सखितां गताः॥ २२

उक्ता च तत्र ताभिश्च भर्ता तव वरानने।
भविष्यत्यचिरेणैव देव्या वचनकल्पितः॥ २३

न हि देव्या वचो मिथ्या भविष्यति कदाचन।
रूपाभिजनसम्पन्नः पतिस्ते कल्पितस्तया॥ २४

उषा सखीनां तद् वाक्यं प्रतिपूज्य यथाविधि।
दत्तं मनोरथं देव्या भावयन्ती व्यवस्थिता॥ २५

ततः क्रीडाविहारं तमनुभूय सहोमया।
गतेऽहनि ततः सर्वा नार्यस्ताः परमाद्भुताः॥ २६

ययुः स्वानालयान् सर्वा देवी चादर्शनं गता।
काश्चिदश्वैस्तथा यानैर्गजैरन्यास्तथा रथैः॥ २७

पुरं प्रविविशुर्हृष्टाः काश्चिदाकाशमास्थिताः।
ततः प्रभृति सा देवी काममोहं गता विभो॥ २८

देव्यास्तु वचनं स्मृत्वा संस्मरन्ती पतिं तदा।
निद्रां न भजते रात्रौ न दिवा भोजनं तथा॥ २९

स्मरन्ती पतिभावं सा विललाप नृपात्मजा।
निन्दन्ती शशिनं नाके सेवती न च चन्दनम्॥ ३०

सा बाला मोहिता राजन् कामेन परिपीडिता।
उपचर्यन्ति तां सख्यो विज्वरामपि सज्वराम्॥ ३१

'वैशाखमासकी द्वादशी तिथिको प्रदोषकालमें अट्टालिकापर सोयी हुई तुम्हारे साथ जो पुरुष स्वप्नमें आकर रमण करेगा, वही तुम्हारा पति होगा'॥१९॥ देवीने जब ऐसी बात कही, तब कन्याओंके समुदायसे घिरी हुई दैत्यराजकुमारी उषा बड़े हर्षमें भरकर वहाँसे हट गयी और सुखपूर्वक इधर-उधर विचरने लगी॥ २०॥ फिर तो सखियाँ उसके साथ परिहास करने लगीं। उषाके नेत्र हर्षसे खिल उठे। वे सब उत्साहमें भरकर एक-दूसरीके हाथपर तालियाँ देने लगीं॥ २१॥ किन्नरियाँ, यक्षकन्याएँ, अनेकानेक दैत्योंकी कुमारियाँ तथा अप्सराओंकी पुत्रियाँ भी उषाकी सखी हो गयी थीं॥ २२॥ उन सबने उषासे कहा—'सुमुखि! अब तो पार्वतीदेवीके कथनानुसार शीघ्र ही तुम्हें पतिकी प्राप्ति होगी॥ २३॥ देवीका वचन कभी मिथ्या नहीं होगा। उन्होंने तुम्हारे लिये मनोहर रूप और उत्तम कुलसे सम्पन्न पतिका निर्माण किया है'॥ २४॥ उषा सखियोंके उस कथनका विधिवत् आदर करके देवीके दिये हुए मनोरथका चिन्तन करती हुई खड़ी रही॥ २५॥ तत्पश्चात् पार्वतीजीके साथ उस क्रीडाविहारके सुखका अनुभव करके दिन व्यतीत होनेपर वे सब परम अद्भुत रूपवाली नारियाँ अपने-अपने घरोंको चली गयीं तथा देवी पार्वती भी अदृश्य हो गयीं। उनमेंसे कुछ तो घोड़ोंपर, कुछ पालकियोंपर, कुछ हाथियोंपर और कुछ नारियाँ रथोंपर आरूढ़ होकर बड़े हर्षके साथ नगरमें प्रविष्ट हुईं। कुछ अप्सरा-कोटिकी स्त्रियाँ आकाशमार्गसे अभीष्ट स्थानको चली गयीं। विभो! तभीसे वह देवी उषा कामजनित मोहके वशीभूत हो गयी। पार्वतीजीके वचनको याद करके पतिका चिन्तन करती हुई उषा उन दिनों न तो रातमें नींद लेती और न दिनमें भोजन करती थी॥ २६—२९॥ वह राजकुमारी पतिभावका स्मरण करती हुई एकान्तमें विलाप किया करती थी। आकाशमें उदित हुए चन्द्रमाकी निन्दा करती और चन्दनका भी सेवन नहीं करती थी (विरहाग्नि बढ़ जानेके कारण उसे चन्द्रमा और चन्दन भी तापदायक प्रतीत होते थे।)॥ ३०॥ राजन्! कामसे पीड़ित हुई वह बाला अपनी सुध-बुध खो चुकी थी। यद्यपि उसे ज्वर आदि रोग नहीं लगे थे तो भी उसे ज्वरग्रस्त मानकर सखियाँ उसके लिये तदनुरूप उपचार करती थीं॥ ३१॥

तप्यते हृदयं तस्या लेपितं चन्दनेन च।
कपोले पाण्डिमाचिह्नं नेत्रे जलसमन्विते॥ ३२

जृम्भणं च तथा स्वापो देहे तस्या व्यवर्धत।
पद्मिनीकन्दचूर्णानि शीतलानि मुहुर्मुहुः॥ ३३

क्षिपन्ति सख्यो हृदये पीडिते मन्मथाग्निना।
व्यजनानि प्रकुर्वन्ति पृच्छन्ति च पुनः पुनः॥ ३४

का व्यथा किं शरीरं ते किमिदं तव भामिनि।
किं तुभ्यं रोचते देवि तदाख्याहि वरानने॥ ३५

कस्मादिदं समुत्पन्नं दुःखसाध्यं मनोरमे।
त्वन्मनोऽनुगतं वाक्यं वदन्त्येतास्तु सारिकाः॥ ३६

शुका नीलतमाः सुभ्रु पठन्ति हि पुमानिव।
प्रह्लादजननं वाक्यं किमर्थं नाद्य भाषसे॥ ३७

तव तातो महावीरो देवानामपि दुर्जयः।
तस्याग्रे तिष्ठते कोऽपि न भूमौ वरवर्णिनि॥ ३८

बलेः पुत्रो महावीरो बाणो हि दुरतिक्रमः।
जितामरावतीकं च नगरं शोणिताह्वयम्।
यत्र संतिष्ठते देवः शूलहस्तो महेश्वरः॥ ३९

पुत्रोऽयमिति जानीहि गिरिजां योऽब्रवीद्धरः।
बाणं प्रति महादेवस्तव तातमुषे शृणु॥ ४०

का व्यथा ते मुखे स्वेदो नासाग्रे च विराजते।
नीहारबिन्दवः पद्मे राजन्ते शरदागमे॥ ४१

सम्पूर्णचन्द्रप्रतिमं मुखं चन्द्रो यथा घने।
न शोभते तु विच्छायं किमर्थं कारणं वद॥ ४२

श्वासान् मुञ्चसि बाले त्वं न रतिं यासि भावतः।
गृहाण भोजनं दिव्यं यत् ते मनसि वर्तते॥ ४३

ताम्बूलं रोचते पूर्वं तत् किमर्थं न गृह्यते।
मिष्टानि यानि वस्तूनि दुर्लभानीतरैर्जनैः॥ ४४

गृहाण देवि उत्तिष्ठ वद पीडां शरीरजाम्।
इति कोलाहलं श्रुत्वा उषावेश्मसमुद्भवम्॥ ४५

चन्दनसे लिप्त होनेपर भी उसका हृदय तप्त होता रहता था। उसके गुलाबी गालमें सफेदी और पीलेपनका चिह्न प्रकट होने लगा तथा दोनों नेत्र आँसुओंसे भरे रहते थे॥ ३२॥ उसके शरीरमें अँगड़ाई और तन्द्राकी वृद्धि होने लगी। सखियाँ कामाग्निसे पीड़ित हुए उसके वक्षःस्थलपर बारम्बार कमलिनीकन्दके शीतल चूर्ण बिखेरा करती थीं। वे बारम्बार व्यजन डुलातीं और इस प्रकार पूछती थीं—॥ ३३-३४॥ 'भामिनि! तुम्हें कौन-सी व्यथा है? तुम्हारा शरीर कैसा हो गया? यह तुम्हें क्या हुआ है? देवि! वरानने! तुम्हें क्या अच्छा लगता है? यह सब बताओ॥ ३५॥ मनोरमे! यह दुःसाध्य रोग तुम्हें कहाँसे उत्पन्न हुआ है? देखो! ये सारिकाएँ तुम्हारे मनके अनुकूल बोली बोलती हैं। सुभ्रु! ये अत्यन्त नीले तोते पुरुषके समान पढ़ रहे हैं। आज तुम इनके प्रति आह्लादजनक वचन क्यों नहीं बोल रही हो॥ ३६-३७॥ वरवर्णिनि! तुम्हारे पिता महान् वीर हैं, देवताओंके लिये भी दुर्जय हैं। इस पृथ्वीपर उनके सामने कोई ठहर नहीं सकता॥ ३८॥ बलिके पुत्र महावीर बाण सर्वथा दुर्जय हैं। यह शोणितपुर नगर अपने वैभवसे अमरावतीको भी पराजित कर चुका है, जहाँ साक्षात् भगवान् महेश्वर हाथमें त्रिशूल धारण किये नित्य निवास करते हैं॥ ३९॥ उषे! सुनो। तुम्हारे पिता बाणासुरके लिये महान् देवता भगवान् हरने पार्वती देवीसे कहा था कि 'तुम इसे अपना पुत्र जानो'॥ ४०॥ तुम्हें क्या पीड़ा है? तुम्हारे मुख और नासाग्रभागमें पसीनेकी बूँदें सुशोभित हो रही हैं, ठीक उसी तरह जैसे शरत्काल आनेपर कमलके ऊपर ओसके कण शोभा पाते हैं॥ ४१॥ पूर्ण चन्द्रमाके समान तुम्हारा मुख आज बादलमें छिपे हुए चन्द्रमाकी भाँति कान्तिहीन दिखायी देनेके कारण शोभा नहीं पा रहा है। ऐसा किसलिये हो रहा है, कारण बताओ?॥ ४२॥ बाले! तुम लम्बी साँस छोड़ रही हो, मनसे प्रसन्न नहीं हो रही हो, इसका क्या कारण है? तुम्हारे मनमें जैसी रुचि हो, उसके अनुकूल दिव्य भोजन ग्रहण करो॥ ४३॥ पहले तो तुम्हें पान बहुत अच्छा लगता था, अब उसे ग्रहण क्यों नहीं करती हो? देवि! उठो और जो दूसरे लोगोंके लिये दुर्लभ हैं ऐसी मीठी वस्तुएँ ग्रहण करो। बताओ, कैसी पीड़ा हो रही है'। उषाके महलमें होनेवाले इस कोलाहलको सुनकर

दासीभिः कीर्तितं तत्र मातुरग्रे पृथक् पृथक्।
राजपुत्री यदा देवि समायाता गृहे सती॥ ४६

जलक्रीडाविहाराच्च मूकेव परिलक्ष्यते।
अतो दासीजना देवि वदामस्त्वां वयं जनाः॥ ४७

को मोहः किमिदं मौनं कः स्वापो म्लानता कथम्।
विचार्य भिषजो देवि दिश्यन्तां कष्टशान्तये॥ ४८

शिरीषपुष्पसदृशं यच्छरीरं सुकोमलम्।
तत् कथं सहते देवि व्याधिभारं वरानने॥ ४९

इति श्रुत्वा तदा देवी सत्वरा हंसगामिनी।
प्राप्य देशमुषा यत्र किमिदं कष्टलक्षणम्॥ ५०

पल्लवाकृतिहस्तेन कोमलं तत्करं तदा।
स्पृष्ट्वाङ्गुलीरनायासं स्फोटयामास भाविनी॥ ५१

किमस्ति तव कल्याणि का व्यथा तव वर्तते।
एते वैद्याः समागत्य पृच्छन्ति भवतीं हि तत्॥ ५२

वैद्या ऊचुः

जलक्रीडां गता तत्र राजपुत्री सखीगणैः।
पार्वत्याः क्रीडितं तत्र जानीमः श्रमसम्भवम्॥ ५३

श्रमाद् ग्लानिः समुत्पन्ना जृम्भणं च पुनः पुनः।
स्वापश्च जायते तेन मा भयं कर्तुमर्हसि॥ ५४

देव्युवाच

हृदये निहितं वैद्याश्चन्दनं हिमसंयुतम्।
अमात्याः किमिदं शीघ्रं किमिदं बुद्बुदायते॥ ५५

अतिदाहो महान् स्वेदः पिपासा न बुभुक्षते।
प्रलाप एव किं तस्यां शास्त्रतो ब्रूत निश्चितम्॥ ५६

दासियोंने उसकी माताके आगे पृथक्-पृथक् इस प्रकार कहना आरम्भ किया—'देवि! सती-साध्वी राजकुमारी उषा जलक्रीडा और विहारसे जब घर लौटी हैं, तभीसे मौन-सी दिखायी देती हैं। अतः महारानी! हम दासियाँ आपको यह बात बता रही हैं—राजकुमारीपर यह कैसा मोह छा रहा है? उनका यह मौन किसलिये है? क्या कारण है कि वे निरन्तर सोयी पड़ी रहती हैं? उनमें मलिनता कैसे आ गयी है? देवि! इन सब बातोंपर विचार करके उनके इस कष्टकी शान्तिके लिये वैद्योंको नियुक्त कीजिये॥ ४४—४८॥ देवि! वरानने! जो शरीर शिरीषपुष्पके समान अत्यन्त कोमल है, वह रोगका भार कैसे सहन करता है'?॥ ४९॥ यह सुनकर वे हंसगामिनी देवी उस समय बड़ी उतावलीके साथ उठीं और जहाँ उषा सोयी थी, उस स्थानमें पहुँचकर पूछने लगीं कि 'यह कैसा कष्टदायक लक्षण प्रकट हुआ है'?॥ ५०॥ उस साध्वी महारानीने अपने पल्लवाकार हाथसे उषाके कोमल हाथका स्पर्श करके अनायास ही उसकी अङ्गुलियोंको चटकाया॥ ५१॥ फिर उन्होंने पूछा—'कल्याणि! तुम्हें कैसा कष्ट है? ये वैद्यलोग आकर तुमसे इस विषयमें जिज्ञासा करते हैं'॥ ५२॥

वैद्य बोले—महारानी हम जानते हैं, राजकुमारी अपनी सखियोंके साथ जलक्रीडाके लिये उस स्थानपर गयी थी, जहाँ पार्वतीदेवीका क्रीडा-विहार चल रहा था। वहाँ जो परिश्रम हुआ, उसीसे यह कष्ट बढ़ गया॥ ५३॥ श्रमसे ग्लानि उत्पन्न हुई है, उसीसे बारम्बार अँगड़ाई आ रही है तथा परिश्रमके ही कारण सारे अङ्गोंमें शिथिलता आ गयी है, जिससे यह सो रही है, अतः आपको इसके लिये भय नहीं करना चाहिये॥ ५४॥

महारानीने कहा—वैद्यो और मन्त्रियो! राजकुमारीके वक्षःस्थलपर बरफमिला चन्दन रखा गया है, किंतु शीघ्र ही इसमें इस प्रकार बुद-बुद होने लगा है, मानो यह खौल रहा हो, यह क्या बात है? ऐसा क्यों हुआ?॥ ५५॥ इसके शरीरमें अत्यन्त दाह हो रहा है, बहुत अधिक पसीने निकलने लगे हैं। इसे प्यास भी बहुत लगती है, परंतु कुछ खानेकी रुचि नहीं होती। यह अधिकाधिक प्रलाप ही कर रही है, ये सब लक्षण इसमें क्यों प्रकट हुए हैं? आपलोग शास्त्रके अनुसार निश्चित करके बताइये॥ ५६॥

वैद्या ऊचु:

क्रीडाविहारे मिलिताः स्त्रीजना देवसंनिधौ।
रूपेणाप्रतिमा देवी राजपुत्री च भाविनी॥ ५७
दृष्टिपातः कृतस्ताभिस्तेन पुत्र्यां व्यथाभवत्।
रक्षामन्त्रैस्तथा पीतैः सर्षपैस्तां कुमारिकाम्॥ ५८
पानीयैरभिषेकेण परा शान्तिर्भविष्यति।
इत्युक्त्वा भिषजः सर्वे निवृत्ता नृपवेश्मतः॥ ५९
सूचयन्तः पुनः सर्वे कामाभिप्रायजां व्यथाम्।
मातृपृष्टा वरारोहा चिरकालमुवाच सा॥ ६०
लज्जावती महाभागा मातरं रुदती भृशम्।
मातर्न रोचते नित्यं भाषणं न च भोजनम्॥ ६१
न चाप्युत्सवकं मातः सदाहं हृदयं शृणु।
इत्युक्त्वा विरराामाथ ह्युषा नारी वरानना॥ ६२
सर्वाभिः स्त्रीभिरारब्धमन्योन्यं मुखवीक्षणम्।
लज्जानुकारि नारीणां यौवनं हि भवेदिति॥ ६३
इयं च राजकन्या हि भर्तृयोग्या किमुच्यते।
पितुः प्रसादान्मातुश्च प्राप्नुयात् सदृशं वरम्॥ ६४

वैद्य बोले—क्रीडा-विहारमें महादेवजीके समीप बहुत-सी स्त्रियाँ एकत्र हुई थीं। हमारी सती-साध्वी राजकुमारी उषादेवी अनुपम रूपवती हैं। अतः उन सब स्त्रियोंने इनपर दृष्टिपात किया है, जिससे इन्हें नजर लग गयी है। इसीसे आपकी पुत्रीको यह पीड़ा हुई है। अतः रक्षासम्बन्धी मन्त्रों और पीले सरसोंसे राजकुमारीकी रक्षा की जाय (इन्हें झाड़ा-फूँका जाय), अभिमन्त्रित जलसे अभिषेक करनेपर इन्हें बड़ी शान्ति मिलेगी। ऐसा कहकर सभी वैद्यराज महलसे लौट गये। जाते-जाते उन सबने यह भी सूचना दे दी कि सम्भव है यह कामजनित वेदना हो। तदनन्तर माताने जब बारम्बार पूछा, तब सुन्दर अङ्गवाली उस लज्जाशीला महाभागा उषाने बहुत देरके बाद मातासे जोर-जोरसे रोते हुए कहा—'माँ! सुनो! न तो मुझे कभी बोलना अच्छा लगता है और न भोजन करना, कोई उत्सव भी नहीं सुहाता है। हृदयमें निरन्तर जलन होती रहती है।' ऐसा कहकर सुन्दरी नारी उषा चुप हो गयी॥ ५७—६२॥ उस समय सभी स्त्रियाँ एक-दूसरीका मुख देखने लगीं और आपसमें कहने लगीं कि 'युवावस्था नारियोंके लिये प्रायः लज्जा-जनक हुआ करती है॥ ६३॥ यह राजकन्या भी पतिसमागमके योग्य हो गयी है, अतः इसके लिये और क्या कहा जाय? यह माता और पिताके प्रसादसे अपने अनुरूप पति प्राप्त करे'॥ ६४॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे विष्णुपर्वणि बाणयुद्धे उषाविरहो नाम सप्तदशाधिकशततमोऽध्यायः॥ ११७॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत विष्णुपर्वमें बाणासुरके युद्धके प्रसङ्गमें उषाविरहविषयक एक सौ सत्रहवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ११७॥

अष्टादशाधिकशततमोऽध्यायः

उषाका स्वप्नमें प्रियतमके साथ समागम, इससे उषाकी चिन्ता, सखियोंका उसे समझाना, कुम्भाण्डकुमारीके कहनेसे उषाका चित्रलेखाको बुलाकर उसे अपना कष्ट बताना, चित्रलेखाके बनाये हुए चित्रोंसे उषाका अनिरुद्धको पहचानना और उन्हें लानेके लिये चित्रलेखाका द्वारकाको जाना

वैशम्पायन उवाच

तत्रस्थाः परमा नार्यश्चित्रेण परमाद्भुताः।
ततो हर्म्ये शयानां तु वैशाखे मासि भामिनीम्॥ १

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! शोणितपुरमें निवास करनेवाली परम सुन्दरी स्त्रियाँ चित्र-निर्माण-कलाकी दृष्टिसे बड़ी अद्भुत योग्यतावाली थीं। तदनन्तर

द्वादश्यां शुक्लपक्षस्य सखीगणवृतां तदा।
यथोक्तः पुरुषः स्वप्ने रमयामास तां शुभाम्॥ २

विचेष्टमाना रुदती देव्या वचनचोदिता।
सा स्वप्ने रमिता तेन स्त्रीभावं चापि लम्भिता॥ ३

शोणिताक्ता प्ररुदती सहसैवोत्थिता निशि।
तां तथा रुदतीं दृष्ट्वा सखी भयसमन्विता॥ ४

चित्रलेखा वचः स्निग्धमुवाच परमाद्भुतम्।
उषे मा भैः किमेवं त्वं रुदती परितप्यसे।
बलेः सुतसुता च त्वं प्रख्याता किं भयान्विता॥ ५

न भयं विद्यते लोके तव सुभ्रु विशेषतः।
अभयं तव वामोरु पिता देवान्तको रणे॥ ६

उत्तिष्ठोत्तिष्ठ भद्रं ते विषादं मा कृथाः शुभे।
नैवंविधेषु वासेषु भयमस्ति वरानने॥ ७

असकृद् देवसहितः शचीभर्ता सुरेश्वरः।
अप्राप्त एव नगरं पित्रा ते मृदितो रणे॥ ८

अयं देवसमूहस्य भयदश्च पिता तव।
महासुरवरः श्रीमान् बलेः पुत्रो महाबलः॥ ९

एवं साभिहिता सख्या बाणपुत्री यशस्विनी।
स्वप्ने रूपं यथा दृष्टं न्यवेदयदनिन्दिता॥ १०

उषोवाच

एवं संधर्षिता साध्वी कथं जीवितुमुत्सहे।
पितरं किं नु वक्ष्यामि देवशत्रुमरिंदमम्॥ ११

एवं संदूषणकरी वंशस्यास्य महौजसः।
श्रेयो हि मरणं मह्यं न मे श्रेयोऽद्य जीवितम्॥ १२

वैशाखमासके शुक्लपक्षकी द्वादशी तिथिको, जब सखियोंसे घिरी हुई मानिनी उषा अपनी अट्टालिकामें सो रही थीं, उसी समय स्वप्नावस्थामें पार्वतीके बताये अनुसार एक पुरुषने आकर उस शुभलक्षणा असुरराजकुमारीके साथ रमण किया॥ १-२॥ यद्यपि वह रो-रोकर उस पुरुषके स्पर्शसे बचनेकी विशेष चेष्टा करती रही, परंतु पार्वती देवीके वचनसे प्रेरित थी, इस कारण उसके साथ स्वप्नमें उस पुरुषने बलपूर्वक रमण किया और उसे अपनी स्त्री बना लिया॥ ३॥ उस समय उस राजकन्याकी योनि रक्तसे भीग गयी। वह रातमें सहसा रोती हुई उठ बैठी। उसे इस प्रकार रोती देख उसकी सखी चित्रलेखा भयभीत हो परम अद्भुत स्निग्ध वाणीमें बोली—॥ ४ ॥ 'उषे! भयभीत न होओ। तुम क्यों इस प्रकार रोती और संतप्त होती हो? तुम तो महाराज बलिके पुत्रकी पुत्री हो, अपनी निर्भीकताके लिये विख्यात हो, फिर भी क्यों भयभीत होती हो?॥ ५॥ सुभ्रु! हम सबके लिये विशेषतः तुम्हारे लिये तो संसारमें भय है ही नहीं। वामोरु! तुम्हें किसीसे भय नहीं है। तुम्हारे पिता बाण समराङ्गणमें देवताओंके भी काल हैं॥ ६॥ शुभे! उठो, उठो, तुम्हारा कल्याण हो, तुम विषाद न करो। वरानने! ऐसे निवासस्थानोंमें भय नहीं होता है॥ ७॥ देवताओंके स्वामी शचीपति इन्द्रने देवताओंकी सेना साथ लेकर अनेक बार आक्रमण किया, परंतु इस नगरतक वे पहुँचने भी नहीं पाये कि तुम्हारे पिताने रणभूमिमें उन्हें रौंद डाला॥ ८॥ तुम्हारे ये पिता देवसमुदायको भय देनेवाले हैं, महान् असुरोंमें श्रेष्ठ हैं तथा राजा बलिके महाबली एवं कान्तिमान् पुत्र हैं'॥ ९॥ सखीके ऐसा कहनेपर निन्दारहित यशस्विनी बाणपुत्री उषाने स्वप्नमें जैसा रूप देखा था, वह सब उससे निवेदन किया॥ १०॥

फिर उषा बोली—मैं सती-साध्वी कुमारी थी, जब इस प्रकार मेरा सतीत्व नष्ट कर दिया गया, तब मैं कैसे जीवित रह सकती हूँ। शत्रुओंका दमन करनेवाले अपने देववैरी पितासे क्या कहूँगी?॥ ११॥ इस महातेजस्वी कुलको मैं इस तरह कलङ्कित करनेवाली हूँ। मेरा मर जाना ही अच्छा है। अब जीवित रहना मेरे लिये श्रेयस्कर नहीं है॥ १२॥

ईप्सितो वा यथा कोऽपि पुरुषोऽधिगतो हि मे।
जाग्रतीव यथा चाहमवस्थैवं कृता मम॥ १३

निशायां जाग्रतीवाहं नीता केन दशामिमाम्।
कथमेवं कृता नाम कन्या जीवितुमुत्सहे॥ १४

कुलोपक्रोशनकरी कुलाङ्गारी निराश्रया।
जीवितुं न स्पृहेन्नारी साध्वीनामग्रतः स्थिता॥ १५

इत्येवं बाष्पपूर्णाक्षी सखीजनवृता तदा।
विललाप चिरं कालमुषा कमललोचना॥ १६

अनाथवत् तां रुदतीं सख्यः सर्वा विचेतसः।
ऊचुरश्रुपरीताक्षीमुषां सर्वाः समागताः॥ १७

दुष्टेन मनसा देवि शुभं वा यदि वाशुभम्।
क्रियते न च ते सुभ्रु किंचिद् दुष्टं मनः शुभे॥ १८

प्रसभं दैवसंयोगाद् यदि भुक्तासि भामिनि।
स्वप्नयोगेन कल्याणि व्रतलोपो न विद्यते॥ १९

व्यभिचारेण ते देवि नास्ति कश्चिद् व्यतिक्रमः।
न च स्वप्नकृतो दोषो मर्त्यलोकेऽस्ति सुन्दरि॥ २०

एवं विप्रर्षयो देवि धर्मज्ञाः कथयन्ति वै।
मनसा चैव वाचा च कर्मणा च विशेषतः।
दुष्टा या त्रिभिरेतैस्तु पापा सा प्रोच्यते बुधैः॥ २१

न च ते दृश्यते भीरु मनः प्रचलितं सदा।
कथं त्वं दोषसंदुष्टा नियता ब्रह्मचारिणी॥ २२

यदि सुप्ता सती साध्वी शुद्धभावा मनस्विनी।
इमामवस्थां प्राप्ता त्वं नैव धर्मो विलुप्यते॥ २३

यस्या दुष्टं मनः पूर्वं कर्मणा चोपपादितम्।
तामाहुरसती नाम सती त्वमसि भामिनि॥ २४

मुझे स्वप्नमें ऐसा कोई पुरुष प्राप्त हुआ था, जिसे मानो मैं बहुत चाहती थी—वह मुझे अभीष्ट था। उसने स्वप्नमें भी जाग्रत्-अवस्थाकी भाँति मेरी ऐसी दशा कर डाली है॥ १३॥ रातमें जागती हुई-सी मुझे किसने इस अवस्थाको पहुँचा दिया? जब कन्या होकर भी मेरी ऐसी दशा कर दी गयी, तब मैं कैसे जीवित रह सकती हूँ?॥ १४॥ जो नारी कभी सती-साध्वी स्त्रियोंमें आगे रही हो, वह यदि कुलकलङ्किनी, कुलाङ्गारी और निराश्रया हो जाय तो उसे जीवनकी इच्छा नहीं रखनी चाहिये॥ १५॥ इस प्रकार सखियोंसे घिरी हुई कमललोचना उषा उस समय नेत्रोंमें आँसू भरकर बहुत देरतक विलाप करती रही॥ १६॥ उसे अश्रुपूर्ण नेत्रोंसे अनाथकी भाँति रोती देख सारी सखियाँ घबरायी हुई-सी वहाँ आ गयीं और इस प्रकार कहने लगीं—॥ १७॥ 'देवि! दुष्ट हृदयसे यदि शुभ या अशुभ कर्म किया जाता है तो उसका कोई अनिष्टकारी फल होता है, परंतु सुभ्रु! शुभे! तुम्हारे मनमें तो कभी कोई दोष आया नहीं है॥ १८॥ भामिनि! कल्याणि! यदि दैव-संयोगसे स्वप्नमें किसी पुरुषने बलात् तुम्हारा उपभोग कर लिया है तो इससे तुम्हारे कौमार-व्रतका लोप नहीं हुआ है॥ १९॥ देवि! तुम्हारे इस व्यभिचारसे कोई अपराध नहीं बना है। सुन्दरि! मर्त्यलोकमें स्वप्नावस्थामें किये गये किसी अशुभ कर्मका दोष नहीं लगता है॥ २०॥ देवि! धर्मज्ञ ब्रह्मर्षि प्रायः ऐसा ही कहते हैं। जो नारी मन, वाणी तथा विशेषतः क्रिया—इन तीनोंसे दूषित है, उसीको विद्वान् पुरुष 'पापिनी' कहते हैं॥ २१॥ भीरु! तुम्हारा मन तो सदा ही स्थिर है, वह कभी चञ्चल होता नहीं देखा जाता है। तुम नियमपूर्वक ब्रह्मचर्यपालनमें तत्पर रहकर भी दोषोंसे दूषित कैसे हो सकती हो॥ २२॥ तुम्हारा भाव शुद्ध है, तुम मनको वशमें रखनेवाली हो, सती-साध्वी हो। फिर भी यदि सुप्तावस्थामें तुम इस दशाको पहुँच गयी तो इससे तुम्हारे धर्मका लोप नहीं होता है॥ २३॥ जिस स्त्रीका पहले मन दूषित होता है, फिर वह क्रियाद्वारा दोषका सम्पादन करती है, उसीको असती (कुलटा) कहते हैं; भामिनि! तुम तो सती हो॥ २४॥

कुलजा रूपसम्पन्ना नियता ब्रह्मचारिणी।
इमामवस्थां नीतासि कालो हि दुरतिक्रमः॥ २५

इत्येवमुक्तां रुदतीं बाष्पेणावृतलोचनाम्।
कुम्भाण्डदुहिता वाक्यं परमं त्विदमब्रवीत्॥ २६

त्यज शोकं विशालाक्षि अपापा त्वं वरानने।
श्रुतं मे यदिदं वाक्यं याथातथ्येन तच्छृणु॥ २७

उषे यदुक्ता देव्यासि भर्तारं ध्यायती तदा।
समीपे देवदेवस्य स्मर भामिनि तद् वचः॥ २८

द्वादश्यां शुक्लपक्षस्य वैशाखे मासि यो निशि।
हर्म्ये शयानां रुदतीं स्त्रीत्वं समुपनेष्यति॥ २९

भविता स हि ते भर्ता शूरः शत्रुनिबर्हणः।
इत्युवाच वचो हृष्टा देवी तव मनोगतम्॥ ३०

न हि तद् वचनं मिथ्या पार्वत्या यदुदाहृतम्।
सा त्वं किमिदमत्यर्थं रोदिषीन्दुनिभानने॥ ३१

एवमुक्ता तया बाला स्मृत्वा देवीवचस्ततः।
अभवन्नष्टशोका सा बाणपुत्री शुभेक्षणा॥ ३२

उषोवाच

स्मरामि भामिनि वचो देव्याः क्रीडागते भवे।
यथोक्तं सर्वमखिलं प्राप्तं हर्म्यतले मया॥ ३३

भर्ता तु मम यद्येष लोकनाथस्य भार्यया।
व्यादिष्टः स कथं ज्ञेयस्तत्र कार्यं विधीयताम्॥ ३४

इत्येवमुक्ते वचने कुम्भाण्डदुहिता पुनः।
व्याजहार यथान्यायमर्थतत्त्वविशारदा॥ ३५

न हि तस्य कुलं देवि न कीर्तिं नापि पौरुषम्।
कश्चिज्जानाति तत्त्वेन किमिदं त्वं विमुह्यसे॥ ३६

'तुम उत्तम कुलमें उत्पन्न, मनोहर रूपसे सम्पन्न, संतोष आदि नियमोंका पालन करनेवाली तथा ब्रह्मचारिणी होकर भी इस दशाको पहुँचा दी गयी; यह देखकर यही कहना पड़ता है कि काल दुर्लङ्घ्य है (वह जिसको जिस अवस्थामें चाहे डाल सकता है)'॥ २५॥ सखियोंके ऐसा कहनेपर भी उषा रोती ही रही। उसके नेत्र आँसुओंसे भरे ही रहे। तब कुम्भाण्डकी पुत्री चित्रलेखाने यह उत्तम बात कही—॥ २६॥ 'विशाललोचने! यह शोक छोड़ो। वरानने! तुम सर्वथा पापरहित हो। मैंने जो यह बात सुन रखी है, उसे यथार्थरूपसे बताती हूँ, सुनो॥ २७॥ उषे! भामिनि! देवाधिदेव महादेवजीके समीप उस दिन जब तुम पतिका चिन्तन कर रही थी, उस समय देवी पार्वतीने तुमसे जो बात कही थी, उसे याद करो॥ २८॥ वैशाखमासके शुक्ल पक्षकी द्वादशी तिथिको रात्रिके समय अट्टालिकापर सोयी हुई तुझे तेरे रोते रहनेपर भी जो पुरुष स्वप्नमें अपनी स्त्री बना लेगा, वह शत्रुसूदन शूरवीर पुरुष ही तेरा पति होगा। हर्षमें भरी हुई पार्वती देवीने यह तुम्हारे मनके अनुरूप बात कही थी। पार्वतीजीने जो कह दिया, वह वचन कभी मिथ्या नहीं हो सकता। अतः चन्द्रमुखि! तुम इस घटनाके लिये यह अत्यन्त रोदन क्यों कर रही हो'॥ २९—३१॥ चित्रलेखाके ऐसा कहनेपर पार्वती देवीके वचनका स्मरण करके वह असुरबाला शुभलोचना बाणपुत्री उषा शोकरहित हो गयी॥ ३२॥

उषा बोली—भामिनि! जब महादेवजी क्रीडामें तत्पर थे, उस समय देवी पार्वतीजीने जो बात कही थी, वह मुझे याद आ रही है। उन्होंने जो कुछ कहा था, वह सब पूर्णरूपसे इस अट्टालिकाके भीतर मैंने अनुभव किया है॥ ३३॥ यदि भगवान् विश्वनाथकी भार्या पार्वती देवीने इसी पुरुषको मुझे पतिरूपमें प्रदान किया है तो उसका पता कैसे लगेगा? इसके लिये कोई उपाय करो॥ ३४॥ उषाके ऐसा कहनेपर अर्थतत्त्वके ज्ञानमें कुशल कुम्भाण्डकुमारी चित्रलेखाने पुनः यह न्यायोचित बात कही—॥ ३५॥ 'देवि! उस पुरुषका न तो कोई कुल जानता है, न उसकी कीर्ति और पुरुषार्थका ही किसीको ठीक-ठीक पता है; फिर इस विषयको लेकर तुम क्यों मोहित हो रही हो'॥ ३६॥

अदृष्टश्चाश्रुतश्चैव दृष्टः स्वप्ने च यः शुभे।
कथं ज्ञेयो भवेद् भीरु सोऽस्माभी रतितस्करः॥ ३७

येन त्वमसितापाङ्गि मत्तकाशिनि विक्रमात्।
रुदती प्रसभं भुक्ता प्रविश्यान्तःपुरं सखि॥ ३८

न ह्यसौ प्राकृतः कश्चिद् यः प्रविष्टः प्रसह्य ते।
नगरं लोकविख्यातमेकः शत्रुनिबर्हणः॥ ३९

आदित्या वसवो रुद्रा अश्विनौ च महौजसौ।
न शक्ताः शोणितपुरं प्रवेष्टुं भीमविक्रमाः॥ ४०

सोऽयमेतैः शतगुणैर्विशिष्टश्चारिसूदनः।
प्रविष्टः शोणितपुरं बाणमाक्रम्य मूर्धनि॥ ४१

यस्या नैवंविधो भर्ता भवेद् युद्धविशारदः।
कस्तस्या जीवितेनार्थो भोगैर्वास्त्यम्बुजेक्षणे॥ ४२

धन्यास्यनुगृहीतासि यस्यास्ते पतिरीदृशः।
प्राप्तो देव्याः प्रसादेन कन्दर्पसमविक्रमः॥ ४३

इदं तु यत् कार्यतमं शृणु त्वं तन्मयेरितम्।
विज्ञेयो यस्य पुत्रो वै यन्नामा यत्कुलश्च सः॥ ४४

इत्येवमुक्ते वचने तत्रोषा काममोहिता।
उवाच कुम्भाण्डसुतां कथं ज्ञास्याम्यहं सखि॥ ४५

त्वमेव चिन्तय सखि नोत्तरं प्रतिभाति मे।
स्वकार्ये मुह्यते लोको यथा जीवं लभाम्यहम्॥ ४६

उषाया वचनं श्रुत्वा रामा वाक्यमिदं पुनः।
उवाच रुदतीं चोषां कुम्भाण्डदुहिता सखी॥ ४७

कुशला ते विशालाक्षि सर्वथा संधिविग्रहे।
अप्सरा चित्रलेखा वै क्षिप्रं विज्ञाप्यतां सखि॥ ४८

अस्याः सर्वमशेषेण त्रैलोक्यं विदितं सदा।
एवमुक्ता तदैवोषा हर्षेणागतविस्मया॥ ४९

'शुभे! भीरु! जिसको तुमने सपनेमें देखा है, उसे दूसरे किसीने न तो कभी देखा है और न उसके विषयमें कुछ सुना ही है, फिर हम तुम्हारे उस रति-तस्करका पता कैसे लगा सकती हैं?॥ ३७॥ मतवाली-सी प्रतीत होनेवाली और कजरारे नेत्रोंवाली सखि! जिसने अन्तःपुरमें घुसकर तुम्हारे रोते रहनेपर भी बलपूर्वक तुम्हारा उपभोग किया है, वह कोई साधारण मनुष्य नहीं है। जो तुम्हारे इस लोकविख्यात नगरमें बलपूर्वक अकेला ही घुस आया, वह कोई शत्रुमर्दन शूरवीर ही हो सकता है॥ ३८-३९॥ बारह आदित्य, आठ वसु, ग्यारह रुद्र और दोनों महाबली अश्विनीकुमार—ये भयानक पराक्रमी देवता भी शोणितपुरमें प्रवेश नहीं कर सकते॥ ४०॥ उपर्युक्त देवता यदि सौगुने होकर आ जायँ तो उनसे विशिष्ट यह शत्रुसूदन वीर होगा, जिसने बाणासुरके मस्तकपर पैर रखकर शोणितपुरमें प्रवेश किया है॥ ४१॥ कमललोचने! जिस नारीका पति ऐसा युद्धविशारद वीर न हो, उसके जीवन अथवा भोगोंसे क्या लाभ?॥ ४२॥ तुम धन्य हो, तुमपर देवीका महान् अनुग्रह है; क्योंकि तुम्हें पार्वती देवीके प्रसादसे ऐसा कामदेव-तुल्य पराक्रमी पति प्राप्त हुआ है॥ ४३॥ इस समय जो यह सबसे महान् कार्य है, वह मेरे मुखसे सुनो। पहले तुम्हें इस बातको जान लेना चाहिये कि वह किसका पुत्र है? उसका क्या नाम है? और वह किस कुलमें उत्पन्न हुआ है?'॥ ४४॥ उसके ऐसा कहनेपर वहाँ काममोहित उषा कुम्भाण्ड-कुमारीसे बोली—'सखि! यह सब मैं कैसे जानूँगी॥ ४५॥ सखि! तुम्हीं कोई उपाय सोचो, मुझे तो कोई उत्तर नहीं सूझता। अपने कार्यमें प्रायः सब लोग मोहित हो जाते हैं। अतः तुम्हीं कोई ऐसा उपाय करो, जिससे मुझे नूतन जीवन प्राप्त हो'॥ ४६॥ उषाकी यह बात सुनकर उसकी सखी कुम्भाण्डकुमारी रामा (जो चित्रलेखा अप्सराके अंशसे उत्पन्न होनेके कारण चित्रलेखा भी कही जाती थी) रोती हुई उषासे पुनः इस प्रकार बोली—॥ ४७॥ 'विशाल नेत्रोंवाली सखि! तुम यह बात शीघ्र ही चित्रलेखा अप्सराको सूचित कर दो, वह तुम्हारे संधि-विग्रह (मन्त्रणा देने)-के कार्यमें सर्वथा कुशल है॥ ४८॥ 'उसे समस्त त्रिलोकीकी सारी बातें सदा ज्ञात रहती हैं।' उसके ऐसा कहनेपर उषाको तत्काल बड़ा हर्ष और विस्मय हुआ॥ ४९॥

तामप्सरसमानाय्य चित्रलेखां सखीं प्रियाम्।
कृताञ्जलिपुटा दीना उषा वचनमब्रवीत्॥ ५०

सा तच्छ्रुत्वा तु वचनमुषायाः परिकीर्तितम्।
आश्वासयामास सखी बाणपुत्रीं यशस्विनीम्॥ ५१

ततः सा विस्मयाविष्टा वचनं प्राह दुर्वचम्।
चित्रलेखामप्सरसं प्रणयात् तां सखीमिदम्॥ ५२

परमं शृणु मे वाक्यं यत् त्वां वक्ष्यामि भामिनि।
भर्तारं यदि मेऽद्य त्वं नानयिष्यसि मत्प्रियम्॥ ५३

कान्तं पद्मपलाशाक्षं मत्तमातङ्गगामिनम्।
त्यक्ष्याम्यहं ततः प्राणानचिरात् तनुमध्यमे॥ ५४

चित्रलेखाब्रवीद् वाक्यमुषां हर्षयती शनैः।
नैषोऽर्थः शक्यतेऽस्माभिर्वेत्तुं भामिनि सुव्रते॥ ५५

न कुलेन न वर्णेन न शीलेन न रूपतः।
न देशतश्च विज्ञातः स हि चौरो मया सखि॥ ५६

किं तु कर्तुं यथा शक्यं बुद्धिपूर्वं मया सखि।
प्राप्तं च शृणु मे वाक्यं यथा काममवाप्स्यसि॥ ५७

देवदानवयक्षाणां गन्धर्वोरगरक्षसाम्।
ये विशिष्टाः प्रभावेण रूपेणाभिजनेन च॥ ५८

यथाप्रभावं तान् सर्वानालिखिष्याम्यहं सखि।
मनुष्यलोके ये चापि प्रवरा लोकविश्रुताः॥ ५९

सप्तरात्रेण ते भीरु दर्शयिष्यामि तानहम्।
ततो विज्ञाय पादस्थं भर्तारं प्रतिपत्स्यसे॥ ६०

सा चित्रलेखया प्रोक्ता उषा हितचिकीर्षया।
क्रियतामेवमित्याह चित्रलेखां सखीं प्रियाम्॥ ६१

ततः कुशलहस्तत्वाद् यथालेख्यं समन्ततः।
इत्युक्त्वा सप्तरात्रेण कृत्वा लेख्यगतांस्तु तान्॥ ६२

चित्रपट्टगतान् मुख्यानानयामास शोभना।
ततः प्रास्तीर्य पट्टं सा चित्रलेखा स्वयंकृतम्॥ ६३

उसने अपनी प्यारी सखी चित्रलेखा नामक अप्सराको बुलवाकर दोनों हाथ जोड़ दीनभावसे अपना हार्दिक दुःख निवेदन किया॥ ५० ॥ उषाकी कही हुई बात सुनकर सखी चित्रलेखाने उस यशस्विनी बाणपुत्रीको आश्वासन दिया॥ ५१ ॥ तब आश्चर्यचकित हुई उषाने अपनी सखी चित्रलेखा नामक अप्सराको सम्बोधित करके बड़े प्यारसे यह कठिनाईसे कहनेयोग्य बात कही—॥ ५२ ॥ 'भामिनि! मैं तुमसे जो उत्तम बात कहती हूँ, उसे सुनो। मेरे प्रियतम पति बड़े ही कमनीय हैं, उनके नेत्र प्रफुल्ल कमलदलके समान सुन्दर हैं, वे मतवाले हाथीके समान मन्दगतिसे चलते हैं, पतली कमरवाली सखि! यदि तुम आज मेरे उन प्राणनाथको यहाँ नहीं ले आओगी तो मैं शीघ्र ही अपने प्राणोंका परित्याग कर दूँगी'॥ ५३-५४ ॥ यह सुनकर चित्रलेखा उषाका हर्ष बढ़ाती हुई धीरे-धीरे यों बोली—'उत्तम व्रतका पालन करनेवाली भामिनि! तुम्हारे इस मनोरथको मैं किसी तरह जान नहीं सकती हूँ॥ ५५ ॥ सखि! तुम्हारे उस चित्तचोरका कुल, वर्ण, शील, रूप और देश कुछ भी तो मुझे ज्ञात नहीं है॥ ५६ ॥ सखि! फिर भी मैं बुद्धिपूर्वक जैसा जो कुछ कर सकती हूँ, करूँगी; इस समय जो कर्तव्य प्राप्त है, उसके विषयमें मेरी बात सुनो, जिससे तुम अपना मनोरथ पा लोगी॥ ५७ ॥ देवता, दानव, यक्ष, गन्धर्व, नाग और राक्षस—इनमें जो-जो प्रभाव, रूप और कुलकी दृष्टिसे बढ़े-चढ़े हैं, उन सबका उनके प्रभावके अनुसार ही मैं चित्र बनाऊँगी। सखि! मनुष्यलोकमें भी जो विश्वविख्यात श्रेष्ठ पुरुष हैं, उनका भी चित्र अङ्कित करूँगी॥ ५८-५९ ॥ भीरु! सात रातमें उन सबके चित्र बनाकर मैं तुम्हें उन सबका दर्शन कराऊँगी। तदनन्तर पहचान लेनेपर तुम मनोनीत पतिको अपने पैरोंपर पड़ा हुआ पाओगी'॥ ६० ॥ चित्रलेखाने हित-साधन करनेकी इच्छासे जब पूर्वोक्त बात कही, तब उषा अपनी प्यारी सखी चित्रलेखासे बोली, 'अच्छा, ऐसा ही करो'॥ ६१ ॥ तब 'तथास्तु' कहकर चित्रलेखाने सब ओरसे यथायोग्य चित्र तैयार किये; क्योंकि इस कलामें उसके हाथ सधे हुए थे। उसने सात रातोंमें सब प्रमुख पुरुषोंके चित्र अङ्कित कर लिये। फिर वह सुन्दरी चित्रपट्टमें स्थापित हुए उन सब लोगोंको वहाँ ले आयी। तदनन्तर चित्रलेखाने अपने बनाये हुए उस चित्रपट्टको

उषायै दर्शयामास सखीनां तु विशेषतः।
एते देवेषु ये मुख्यास्तथा दानववंशजाः॥ ६४

किन्नरोरगयक्षाणां राक्षसानां समन्ततः।
गन्धर्वासुरदैत्यानां ये चान्ये भोगिनः स्मृताः॥ ६५

मनुष्याणां च सर्वेषां ये विशिष्टतमा नराः।
तानेतान् पश्य सर्वांस्त्वं यथैव लिखितान् मया॥ ६६

यस्ते भर्ता यथारूपः स मया लिखितः सखि।
तं त्वं प्रत्यभिजानीहि स्वप्ने यं दृष्टवत्यसि॥ ६७

ततः क्रमेण सर्वांस्तान् दृष्ट्वा सा मत्तकाशिनी।
देवदानवगन्धर्वविद्याधरगणानथ ।
अतीत्य च यदून् सर्वान् ददर्श यदुनन्दनम्॥ ६८

तत्रानिरुद्धं दृष्ट्वा सा विस्मयोत्फुल्ललोचना।
उवाच चित्रलेखां तामयं चौरः स वै सखि॥ ६९

येनाहं दूषिता पूर्वं स्वप्ने हर्म्यगता सती।
सोऽयं विज्ञातरूपो मे कुतोऽयं रतितस्करः॥ ७०

चित्रलेखे वदस्वैनं तत्त्वतो मम शोभने।
कुलशीलाभिजनतो नाम किं चास्य भामिनि।
ततः पश्चाद् विधास्यामि कार्यस्यास्य विनिश्चयम्॥ ७१

चित्रलेखोवाच

अयं त्रैलोक्यनाथस्य नप्ता कृष्णस्य धीमतः।
भर्ता तव विशालाक्षि प्राद्युम्निर्भीमविक्रमः॥ ७२

न ह्यस्ति त्रिषु लोकेषु सदृशोऽस्य पराक्रमे।
उत्पाट्य पर्वतानेव पर्वतैरेष शातयेत्॥ ७३

धन्यास्यनुगृहीतासि यस्यास्ते यदुपुङ्गवः।
त्र्यक्षपत्न्या समादिष्टः सदृशः सज्जनः पतिः॥ ७४

उषोवाच

त्वमेवात्र विशालाक्षि योग्या भव वरानने।
न शक्या हि गतिश्चान्या अगत्या मे गतिर्भव॥ ७५

फैलाकर उषाको तथा विशेषतः उसकी सब सखियोंको भी दिखाया। वह बोली—'ये देवताओंमें जो मुख्य-मुख्य पुरुष हैं, उनके चित्र हैं तथा इस ओर दानववंशी वीर अङ्कित किये गये हैं। इनके चारों ओर किन्नर, नाग, यक्ष और राक्षसोंके चित्र हैं; गन्धर्व, असुर, दैत्य तथा अन्यान्य सर्पोंके भी चित्र हैं॥ ६२—६५॥ समस्त मनुष्योंमें जो विशिष्टतम पुरुष हैं, वे इधर हैं। इन सबको जैसा मैंने अङ्कित किया है, देखो॥ ६६॥ सखि! जो तुम्हारा पति है और उसका जैसा रूप है, वह सब मैंने अङ्कित किया है। तुमने स्वप्नमें जिसे देखा है, उसे इस चित्रपट्टमें पहचानो'॥ ६७॥ तब मतवाली-सी प्रतीत होनेवाली उषाने क्रमशः उन सबको देखकर देवता, दानव, गन्धर्व और विद्याधरगणोंको लाँघकर समस्त यदुवंशियों तथा यदुनन्दन श्रीकृष्णको देखा॥ ६८॥ वहीं अनिरुद्धका चित्र देखकर उसके नेत्र आश्चर्यसे खिल उठे और वह चित्रलेखासे बोली—'सखि! यही वह चोर है, जिसने अट्टालिकापर सोते समय पहले स्वप्नमें आकर मुझे दूषित किया था। इसके रूपको तो मैं खूब पहचानती हूँ, परंतु यह रतिचोर कहाँसे आया था, यह नहीं जान सकी॥ ६९-७०॥ शोभने! चित्रलेखे! मुझे इसका ठीक-ठीक परिचय दो। भामिनि! इन चोर महोदयका कुल, शील, अभिजन और नाम क्या है? यह सब जान लेनेके पश्चात् मैं अपने इस कर्तव्यका निश्चय करूँगी'॥ ७१॥

चित्रलेखा बोली—विशाललोचने! ये तुम्हारे पति साक्षात् त्रिलोकीनाथ बुद्धिमान् भगवान् श्रीकृष्णके पोते हैं और प्रद्युम्नके पुत्र हैं। इनका पराक्रम बड़ा भयङ्कर है॥ ७२॥ पराक्रममें इनकी समानता करनेवाला तीनों लोकोंमें कोई नहीं है। ये पर्वतोंको ही उखाड़कर उन पर्वतोंद्वारा ही शत्रुओंका संहार कर सकते हैं॥ ७३॥ तुम धन्य हो, तुमपर देवीका बड़ा अनुग्रह है, जिससे तुम्हारे लिये पार्वतीजीने परम योग्य यदुकुलतिलक अनिरुद्धको पतिरूपमें प्रदान किया है। इनके पूर्वज श्रेष्ठतम पुरुष हैं॥ ७४॥

उषा बोली—वरानने! विशाललोचने! तुम ही इस कार्यको करनेयोग्य हो। मुझे तुम्हारे सिवा दूसरा कोई सहारा नहीं मिल सकता। तुम मुझ अशरणको शरण देनेवाली बनो॥ ७५॥

अन्तरिक्षचरा च त्वं योगिनी कामरूपिणी।
उपायस्यास्य कुशला क्षिप्रमानय मे प्रियम्॥ ७६

उपायश्चिन्त्यतां भीरु सम्प्रतर्क्य प्रिये सुखम्।
सिद्धार्था संनिवर्तस्व येनोपायेन सुन्दरि॥ ७७

भवेदापत्सु यन्मित्रं तन्मित्रं शस्यते बुधैः।
कामार्ता चास्मि सुश्रोणि भव मे प्राणधारिणी॥ ७८

यद्येनं मे विशालाक्षि भर्तारममरोपमम्।
अद्य नानयसि क्षिप्रं प्राणांस्त्यक्ष्याम्यहं शुभे॥ ७९

उषाया वचनं श्रुत्वा चित्रलेखाब्रवीद् वचः।
श्रोतुमर्हसि कल्याणि वचनं मे शुचिस्मिते॥ ८०

यथा बाणस्य नगरी रक्ष्यते देवि सर्वशः।
द्वारकापि तथा भीरु दुराधर्षा सुरैरपि॥ ८१

अयस्मयप्रतिच्छन्ना गुप्तद्वारा च सा पुरी।
गुप्ता वृष्णिकुमारैश्च तथा द्वारकवासिभिः॥ ८२

प्रान्ते सलिलसंयुक्ता विहिता विश्वकर्मणा।
रक्ष्यते पुरुषैर्घोरैः पद्मनाभस्य शासनात्॥ ८३

शैलप्राकारपरिखादुर्गमार्गप्रवेशिनी।
सप्तप्राकाररचिता पर्वतैर्धातुमण्डितैः॥ ८४

न च शक्यमविज्ञातैः प्रवेष्टुं द्वारकां पुरीम्।
आत्मानं मां च रक्षस्व पितरं च विशेषतः॥ ८५

उषोवाच

तव योगप्रभावेण शक्यं तत्र प्रवेशनम्।
बहुना किं प्रलापेन प्रतिज्ञा श्रूयतां मम॥ ८६
अनिरुद्धस्य वदनं पूर्णचन्द्रसमप्रभम्।
यद्यहं तन्न पश्यामि यास्यामि यमसादनम्॥ ८७
दूतमासाद्य कार्याणां सिद्धिर्भवति भामिनि।
तस्माद् दौत्येन मे गच्छ जीवन्तीं मां यदीच्छसि॥ ८८

तुम आकाशमें विचरनेवाली और इच्छानुसार रूप धारण करनेवाली योगिनी हो, इस उपायके ज्ञानमें भी कुशल हो, अतः मेरे प्रियतमको शीघ्र ले आओ॥ ७६॥ भीरु! सुन्दरि! मुझे प्रियसमागमका सुख कैसे मिले, इसपर भलीभाँति तर्क-वितर्क करके कोई ऐसा उपाय सोचो, जिससे सफलमनोरथ होकर लौटो॥ ७७॥ जो आपत्तिकालमें मित्र हो, उसी मित्रकी विद्वान् पुरुष प्रशंसा करते हैं। सुश्रोणि! मैं कामसे पीड़ित हो रही हूँ, तुम मेरे प्राणोंकी रक्षा करनेवाली बनो॥ ७८॥ शुभे! विशाललोचने! यदि तुम मेरे इन देवोपम पतिको आज यहाँ नहीं ले आओगी तो मैं शीघ्र ही अपने प्राणोंका परित्याग कर दूँगी॥ ७९॥ उषाकी यह बात सुनकर चित्रलेखा बोली—'कल्याणि! पवित्र मुसकानवाली उषे! पहले मेरी बात सुनो!॥ ८०॥ देवि! जैसे बाणासुरकी नगरी सब ओरसे सुरक्षित है, भीरु! उसी प्रकार द्वारकापुरी भी है। देवता भी उसका पराभव नहीं कर सकते॥ ८१॥ वह लोहेके किवाड़ोंसे ढकी हुई है। उस पुरीका प्रवेशद्वार पूर्णतः गुप्त (सुरक्षित) है। वृष्णिवंशीकुमार तथा अन्य द्वारकावासी उस नगरकी रक्षा करते हैं॥ ८२॥ विश्वकर्माने उस पुरीका निर्माण किया है। उसके प्रान्तभागमें समुद्रकी जलराशि ही खाईके रूपमें विद्यमान है। पद्मनाभ श्रीकृष्णके आदेशसे बड़े भयंकर पुरुष उसकी रक्षा करते हैं॥ ८३॥ पर्वत ही उसके परकोटे हैं। समुद्र ही खाई है। दुर्गके मार्गसे ही उसमें प्रवेश होता है। धातुमण्डित पर्वतोंके बने हुए सात परकोटोंसे वह पुरी घिरी हुई है॥ ८४॥ अपरिचित व्यक्ति द्वारकापुरीमें कभी प्रवेश नहीं कर सकते, अतः अनिरुद्धको लानेका हठ छोड़कर तुम अपनी, मेरी और विशेषतः अपने पिताकी रक्षा करो'॥ ८५॥

उषा बोली—सखि! योगशक्तिके प्रभावसे तुम्हारा द्वारकापुरीमें प्रवेश हो सकता है। अधिक प्रलाप करनेसे क्या लाभ? मेरी प्रतिज्ञा सुन लो॥ ८६॥ यदि मैं अनिरुद्धका पूर्ण चन्द्रमाके समान कान्तिमान् वह मनोहर मुख नहीं देखूँगी तो यमलोकको चली जाऊँगी॥ ८७॥ भामिनि! अच्छे दूतको पाकर कार्योंकी सिद्धि हो जाती है; अतः यदि तुम मुझे जीवित रखना चाहती हो तो मेरी दूती बनकर द्वारकाको चली जाओ॥ ८८॥

यदि त्वं मे विजानासि सख्यं प्रेम्णा च भाषितम्।
क्षिप्रमानय मे कान्तं तवास्मि शरणं गता॥ ८९

यदि तुम मेरे सखित्वको जानती हो और प्रेमपूर्वक कही हुई मेरी बातपर विश्वास करती हो तो मेरे प्रियतमको शीघ्र यहाँ ले आओ। मैं तुम्हारी शरणमें आयी हूँ॥ ८९॥

जीवितस्य हि संदेहं क्षयं चैव कुलस्य च।
कामार्ता हि न पश्यन्ति कामिन्यो मदविक्लवाः॥ ९०

प्राणोंके लिये संशय उपस्थित हो और कुलका भी संहार हो जाय, किंतु कामपीडित मदमत्त कामिनियाँ इन बातोंकी ओर नहीं देखती हैं॥ ९०॥

प्रयत्नो युज्यते कार्येष्विति शास्त्रनिदर्शनम्।
त्वं च शक्ता विशालाक्षि द्वारकायां प्रवेशने॥ ९१
संस्तुतासि मया भीरु कुरु मे प्रियदर्शनम्।

सभी कार्योंके लिये प्रयत्न करना उचित है, यह शास्त्रकी आज्ञा है। विशाललोचने! तुम द्वारकापुरीमें प्रवेश करनेमें समर्थ हो। भीरु! मैंने तुम्हारी बड़ी स्तुति की है। तुम मुझे मेरे प्रियतमका दर्शन करा दो॥ ९१$\frac{1}{2}$॥

चित्रलेखोवाच

सर्वथा संस्तुता तेऽहं वाक्यैरमृतसोदरैः॥ ९२
कारिता च समुद्योगं प्रियैः कान्तैश्च भाषितैः।
एषा गच्छाम्यहं भीरु क्षिप्रं वै द्वारकां पुरीम्॥ ९३

चित्रलेखा बोली—सखि! तुम्हारे अमृतोपम वचनोंद्वारा मेरी सब प्रकारसे स्तुति ही की गयी है। तुम्हारे इन प्रिय एवं मनोरम वचनोंने मुझे इस कार्यके लिये उद्योग करनेको विवश कर दिया है। भीरु! यह देखो, अब मैं शीघ्र ही द्वारकापुरीको जाती हूँ॥ ९२-९३॥

भर्तारमानयाम्यद्य तव वृष्णिकुलोद्भवम्।
अनिरुद्धं महाबाहुं प्रविश्य द्वारकां पुरीम्॥ ९४

आज तुम्हारे पति वृष्णिवंशावतंस महाबाहु अनिरुद्धको मैं द्वारकापुरीमें प्रवेश करके ले आऊँगी॥ ९४॥

सा वचस्तथ्यमशिवं दानवानां भयावहम्।
उक्त्वा चान्तर्हिता क्षिप्रं चित्रलेखा मनोजवा॥ ९५

यह वचन यथार्थ होनेके साथ ही दानवोंके लिये अमङ्गलकारक और भयावह था। इसे कहकर मनके समान वेगशालिनी चित्रलेखा तत्काल अन्तर्धान हो गयी॥ ९५॥

सखीभिः सहिता ह्यूषा चिन्तयन्ती तु सा स्थिता।
तृतीये तु मुहूर्ते सा नष्टा बाणपुरात् तदा॥ ९६

उषा अपनी सखियोंके साथ अभीष्ट कार्यका चिन्तन करती हुई वहीं खड़ी रही; किंतु चित्रलेखा उस समय तृतीय मुहूर्तमें बाणपुरसे अदृश्य हुई थी॥ ९६॥

सखीप्रियं चिकीर्षन्ती पूजयन्ती तपोधनान्।
क्षणेन समनुप्राप्ता द्वारकां कृष्णपालिताम्॥ ९७

सखीका प्रिय करनेकी इच्छा लिये तपस्वी मुनियोंका पूजन करती हुई चित्रलेखा एक ही क्षणमें श्रीकृष्णद्वारा सुरक्षित द्वारकापुरीमें जा पहुँची॥ ९७॥

कैलासशिखराकारैः प्रासादैरुपशोभिताम्।
ददर्श द्वारकां रम्यां दिवि तारामिव स्थिताम्॥ ९८

कैलासशिखरके समान ऊँचे-ऊँचे महलोंसे सुशोभित रमणीय द्वारकापुरीको उसने आकाशमें प्रकाशित होती हुई ताराके समान देखा॥ ९८॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे विष्णुपर्वणि उषाहरणे चित्रलेखाया द्वारकागमने अष्टादशाधिकशततमोऽध्यायः॥ ११८॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत विष्णुपर्वमें उषाहरणके प्रसङ्गमें चित्रलेखाका द्वारकागमनविषयक एक सौ अठारहवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ११८॥

एकोनविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

चित्रलेखा और नारदजीका संवाद, चित्रलेखाका नारदजीसे तामसी विद्या ग्रहणकर अनिरुद्धको शोणितपुर ले जाना, उषा और अनिरुद्धका गान्धर्व-विवाह, अनिरुद्धका बाणासुरके सैनिकों तथा बाणासुरके साथ युद्ध, उनका नागपाशमें बँधकर बंदी होना तथा नारदजीका द्वारका जाना

वैशम्पायन उवाच

अथ द्वारवतीं प्राप्य स्थिता सा भवनान्तिके।
प्रवृत्तिहरणार्थाय चित्रलेखा व्यचिन्तयत्॥ १
अथ चिन्तयती सा तु बुद्धिबुद्ध्यर्थनिश्चयम्।
अपश्यन्नारदं तत्र ध्यायन्तमुदके मुनिम्॥ २
तं दृष्ट्वा चित्रलेखा तु हर्षेणोत्फुल्ललोचना।
उपसृत्याभिवाद्याथ तत्रैवाधोमुखी स्थिता॥ ३
नारदस्त्वाशिषं दत्त्वा चित्रलेखामथाब्रवीत्।
किमर्थमिह सम्प्राप्ता श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः॥ ४
देवर्षिमथ तं दिव्यं नारदं लोकपूजितम्।
कृताञ्जलिपुटा भूत्वा चित्रलेखा त्वथाब्रवीत्॥ ५
भगवञ्छ्रूयतां वाक्यं दौत्येनाहमिहागता।
अनिरुद्धं मुने नेतुं यदर्थं च शृणुष्व मे॥ ६
नगरे शोणितपुरे बाणो नाम महासुरः।
तस्य कन्या वरारोहा नाम्नोषेति च विश्रुता॥ ७
भगवन् सानुरक्ता च प्राद्युम्निं पुरुषोत्तमम्।
देव्या वरविसर्गेण तस्या भर्ता विनिर्मितः॥ ८
तं च नेतुं समायाता तत्र सिद्धिं विधत्स्व मे।
मया नीतेऽनिरुद्धे तु नगरं शोणिताह्वयम्॥ ९
प्रवृत्तिः पुण्डरीकाक्षे त्वयाऽऽख्येया महामुने।
अवश्यं भविता चैव कृष्णेन सह विग्रहः।
बाणस्य सुमहान् संख्ये दिव्यो हि स महासुरः॥ १०
न च शक्तोऽनिरुद्धस्तं युद्धे जेतुं महासुरम्।
सहस्रबाहुमायान्तं जयेत् कृष्णो महाभुजः॥ ११
भगवन् संनिकर्षं ते यदर्थमहमागता।
कथं हि पुण्डरीकाक्षो ज्ञापितस्तदिदं भवेत्॥ १२

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! तदनन्तर द्वारकापुरीके पास पहुँचकर चित्रलेखा एक घरके पास खड़ी हो गयी और अनिरुद्धके पास संदेश भेजनेके लिये कोई युक्ति सोचने लगी॥ १॥ बुद्धिसे बोद्धव्य विषयका जो निश्चय होता है, उसीका विचार करती हुई चित्रलेखाने वहाँ नारदमुनिको देखा, जो समुद्रके जलमें ध्यान लगाये बैठे थे॥ २॥ उन्हें देखकर चित्रलेखाके नेत्र हर्षसे खिल उठे। वह उनके पास गयी और उन्हें प्रणाम करके वहीं नीचे मुँह किये खड़ी हो गयी॥ ३॥ नारदजीने आशीर्वाद देकर चित्रलेखासे कहा—'यहाँ किसलिये आयी हो, यह मैं ठीक-ठीक सुनना चाहता हूँ'॥ ४॥ तब चित्रलेखा दोनों हाथ जोड़कर लोकपूजित दिव्य देवर्षि नारदसे इस प्रकार बोली—॥ ५॥ 'भगवन्! मेरी बात सुनिये। मैं दूती होकर यहाँ आयी हूँ। मुने! मैं अनिरुद्धको यहाँसे ले जाना चाहती हूँ, किसलिये, यह मुझसे सुनिये॥ ६॥ शोणितपुर नगरमें जो बाणनामसे प्रसिद्ध महान् असुर है, उसके एक सुन्दर अङ्गवाली कन्या है, जो उषाके नामसे विख्यात है॥ ७॥ भगवन्! वह प्रद्युम्नकुमार पुरुषोत्तम अनिरुद्धके प्रति अनुरक्त है। देवी पार्वतीके वरदानके अनुसार अनिरुद्ध ही उसके पति नियत हुए हैं॥ ८॥ मैं उन्हींको ले जानेके लिये आयी हूँ। मेरे उद्देश्यकी सिद्धिका कोई उपाय कीजिये। महामुने! जब मैं अनिरुद्धको शोणितपुर नगरमें पहुँचा दूँ, तब आप कमलनयन भगवान् श्रीकृष्णको यह समाचार बतायें। अवश्य ही भगवान् श्रीकृष्णके साथ बाणासुरका महान् युद्ध होगा। वह महान् असुर समराङ्गणमें दिव्य शक्तिसे सम्पन्न होता है॥ ९-१०॥ वह महान् असुर जब सहस्र भुजाओंसे युक्त होकर युद्धभूमिमें पदार्पण करेगा, उस समय अनिरुद्ध उसे नहीं जीत सकते; महाबाहु श्रीकृष्ण ही उसपर विजय पा सकते हैं॥ ११॥ भगवन्! मैं आपके निकट जिस अभिप्रायसे आयी हूँ, वह यह है कि कमलनयन भगवान् श्रीकृष्णको यह बात कैसे बतायी जाय?'॥ १२॥

त्वत्प्रसादाच्च भगवन् न मे कृष्णाद् भयं भवेत्।
स हि तत्त्वार्थदृष्टिस्तु अनिरुद्धः कथं ह्रियेत्॥ १३

क्रुद्धो हि स महाबाहुस्त्रैलोक्यमपि निर्दहेत्।
पौत्रशोकाभिसंतप्तः शापेन स दहेत माम्॥ १४

तत्रोपायं च भगवंश्चिन्तितुं वै त्वमर्हसि।
यथा ह्युषा लभेत् कान्तं मम चैवाभयं भवेत्॥ १५

इत्येवमुक्तो भगवांश्चित्रलेखां स नारदः।
उवाच स शुभं वाक्यं मा भैस्त्वमभयं शृणु॥ १६

त्वया नीतेऽनिरुद्धे तु कन्यावेश्मप्रवेशिते।
यदि युद्धं भवेत् तत्र स्मर्तव्योऽहं शुचिस्मिते॥ १७

ममैष परमः कामो युद्धं द्रष्टुं मनोरमे।
तद् दृष्ट्वा च महाप्रीतिः प्रवृत्तिश्च दृढा भवेत्॥ १८

गृह्यतां तामसी विद्या सर्वलोकप्रमोहिनी।
कृतकृत्यस्तु ते देवि एष विद्यां ददाम्यहम्॥ १९

एवमुक्ते तु वचने नारदेन महर्षिणा।
तथेति वचनं प्राह चित्रलेखा मनोजवा॥ २०

अभिवाद्य महात्मानमृषीणां नारदं वरम्।
सा जगामानिरुद्धस्य गृहं चैवान्तरिक्षगा॥ २१

ततो द्वारवतीमध्ये कामस्य भवनं शुभम्।
तत्समीपेऽनिरुद्धस्य भवनं सा विवेश ह॥ २२

सौवर्णवेदिकास्तम्भं रुक्मवैडूर्यतोरणम्।
माल्यदामावसक्तं च पूर्णकुम्भोपशोभितम्॥ २३

बर्हिकण्ठनिभग्रीवं प्रासादैरेकसंचयैः।
मणिप्रवालविस्तीर्णं देवगन्धर्वनादितम्॥ २४

'भगवन्! आपकी कृपासे मुझे भगवान् श्रीकृष्णसे कोई भय नहीं है; क्योंकि वे तत्त्वार्थदर्शी हैं। परंतु अनिरुद्धका अपहरण कैसे किया जाय?॥ १३॥ महाबाहु श्रीकृष्ण यदि क्रुद्ध हो जायँ तो समस्त त्रिलोकीको भी दग्ध कर सकते हैं। पौत्रशोकसे संतप्त होकर अपने शापसे मुझे जला सकते हैं॥ १४॥ अतः भगवन्! इस विषयमें आप ही कोई ऐसा उपाय सोचिये, जिससे उषा अपने प्रियतमको प्राप्त कर ले और मुझे भी कोई भय न हो'॥ १५॥ उसके ऐसा कहनेपर नारद मुनिने चित्रलेखासे यह शुभ वचन कहा—'चित्रलेखे! तुम डरो मत! मैं भयके निवारणका उपाय बताता हूँ, सुनो॥ १६॥ शुचिस्मिते! तुम जब अनिरुद्धको ले जाओ और उनका कन्याके महलमें प्रवेश हो जाय, तब यदि युद्ध होनेकी सम्भावना हो तो मुझे स्मरण करना॥ १७॥ मनोरमे! युद्ध देखनेके लिये मुझे बड़ी अभिलाषा रहती है और उसे देखकर बहुत प्रसन्नता होती है। साथ ही युद्ध करानेकी मेरी प्रवृत्ति और दृढ़ होती है॥ १८॥ तुम मुझसे तामसी विद्या ग्रहण कर लो, जो सब लोगोंको मोहमें डालनेवाली है। देवि! इस विद्याकी सिद्धिके लिये जो पुरश्चरण आदि कार्य करने पड़ते हैं, वे सब मैंने ही कर दिये हैं। इस प्रकार यह सिद्ध की हुई विद्या मैं तुम्हें दे रहा हूँ'॥ १९॥ महर्षि नारदके ऐसा कहनेपर मनके समान वेगवाली चित्रलेखाने 'तथास्तु' कहकर उनकी आज्ञा स्वीकार कर ली॥ २०॥ इसके बाद ऋषियोंमें श्रेष्ठ महात्मा नारदको प्रणाम करके वह आकाशमार्गसे अनिरुद्धके घरकी ओर चली॥ २१॥ द्वारकाके मध्यभागमें कामावतार प्रद्युम्नका सुन्दर भवन था और उसीके समीप अनिरुद्धका महल था, जिसमें चित्रलेखाने प्रवेश किया॥ २२॥ उस भवनमें सोनेकी वेदियाँ बनी थीं और सोनेके ही खम्भे लगे थे। उसके फाटक सोने और वैदूर्यमणिसे बनाये गये थे। वहाँ फूल-मालाओंकी बंदनवारें लगी थीं। भरे हुए कलश उसकी शोभा बढ़ा रहे थे। एक ही विशालकाष्ठ या पाषाणपर बिना खम्भेके बने हुए प्रासादोंके कारण वह भवन मोरके कण्ठभागकी भाँति शोभा पाता था। उस भवनमें मणि और मूँगे इस प्रकार जड़े गये थे, मानो उन्हींके बने हुए बिछौने बिछे हुए हों। वहाँ देवगन्धर्वोंके संगीतकी ध्वनि गूँज रही थी॥ २३-२४॥

दर्दर्श भवनं यत्र प्राद्युम्निरवसत् सुखम्।
ततः प्रविश्य सहसा भवनं तस्य तन्महत्॥ २५

तत्रानिरुद्धं सापश्यच्चित्रलेखा वराप्सराः।
मध्ये परमनारीणां तारापतिमिवोदितम्॥ २६

क्रीडाविहारे नारीभिः सेव्यमानमितस्ततः।
पिबन्तं मधु माध्वीकं श्रिया परमया युतम्॥ २७

वरासनगतं तत्र यथा चैडविलं तथा।
वाद्यते समतालं च गीयते मधुरं तथा॥ २८

न च तस्य मनस्तत्र तमेवार्थमचिन्तयत्।
स्त्रियः सर्वगुणोपेता नृत्यन्ते तत्र तत्र वै॥ २९

न चास्य मनसस्तुष्टिं चित्रलेखा प्रपश्यति।
न चाभिरमते भोगैर्न चापि मधु सेवते॥ ३०

व्यक्तमस्य हि तत्स्वप्नो हृदये परिवर्तते।
इति तत्रैव बुद्ध्या च निश्चिता गतसाध्वसा॥ ३१

सा दृष्ट्वा परमस्त्रीणां मध्ये शक्रध्वजोपमम्।
चिन्तयाविष्टहृदया चित्रलेखा मनस्विनी॥ ३२

कथं कार्यमिदं कार्यं कथं स्वस्ति भवेदिति।
सान्तर्हिता चिन्तयित्वा चित्रलेखा यशस्विनी॥ ३३

तामस्या च्छादयामास विद्यया शुभलोचना।
ततोऽन्तरिक्षादेवाशु प्रासादोपर्यधिष्ठिता॥ ३४

प्राद्युम्निं वचनं प्राह श्लक्ष्णं मधुरया गिरा।
चक्षुर्दत्त्वा तु सा तस्मै कृत्वा चात्मनिदर्शनम्॥ ३५

विविक्ते सा च वै देशे तं वाक्यमिदमब्रवीत्।
अपि ते कुशलं वीर सर्वत्र यदुनन्दन॥ ३६

अहस्तावत् प्रदोषो वा कच्चिद् गच्छति ते सुखम्।
शृणुष्व त्वं महाबाहो विज्ञप्तिं मे रतीसुत॥ ३७

उषाया मम सख्यास्तु वाक्यं वक्ष्यामि तत्त्वतः।
स्वप्ने तु या त्वया दृष्टा स्त्रीभावं चापि भाविता॥ ३८

चित्रलेखाने उस भवनको देखा, जहाँ प्रद्युम्नकुमार अनिरुद्ध सुखपूर्वक निवास करते थे। उनके उस विशाल भवनमें सहसा प्रवेश करके श्रेष्ठ अप्सरा चित्रलेखाने सुन्दरी नारियोंके मध्यभागमें अनिरुद्धको देखा, मानो ताराओंके बीच तारापति चन्द्रमा उदित हुए हों॥ २५-२६॥ क्रीडाविहारके स्थानमें इधर-उधर बहुत-सी सुन्दरियाँ उनकी सेवामें लगी थीं। वे मधुर मधुका पान करते हुए उत्कृष्ट शोभासे प्रकाशित हो रहे थे॥ २७॥ धनाध्यक्ष कुबेरके समान वे एक श्रेष्ठ सिंहासनपर विराजमान थे। उनके सामने समतालमें वाद्य बज रहा था और मधुर स्वरमें गान हो रहा था॥ २८॥ किंतु उस वाद्य और गानमें उनका मन नहीं लगता था। वे उसी विषय (उषाके समागम)-का चिन्तन कर रहे थे। सर्वगुणसम्पन्न सुन्दरी स्त्रियाँ जहाँ-तहाँ नृत्य कर रही थीं॥ २९॥ परंतु चित्रलेखाने देखा, अनिरुद्धके मनको कहीं भी संतोष नहीं प्राप्त होता है। ये न तो भोगोंके साथ रमते हैं और न मधुका ही सेवन करते हैं॥ ३०॥ निश्चय ही इनके हृदयमें भी वही स्वप्न चक्कर लगा रहा है। वह अपनी बुद्धिसे वहीं इस निश्चयपर पहुँच गयी और उसका भय दूर हो गया॥ ३१॥ श्रेष्ठ एवं सुन्दरी स्त्रियोंके बीचमें इन्द्रध्वजके समान शोभा पानेवाले अनिरुद्धको देखकर मनस्विनी चित्रलेखा मन-ही-मन इस प्रकार चिन्ता करने लगी॥ ३२॥ 'यह कार्य कैसे करना चाहिये, किस तरह करनेसे कल्याण प्राप्त होगा' इस तरह विचार करके सुन्दर नेत्रोंवाली यशस्विनी चित्रलेखाने अदृश्य होकर तामसी विद्याके द्वारा अनिरुद्धके सिवा अन्य सबको आच्छादित कर दिया। फिर आकाशसे ही शीघ्र आकर वह महलकी छतपर खड़ी हो गयी और प्रद्युम्नकुमार अनिरुद्धसे मधुर वाणीमें यह स्नेहयुक्त वचन बोली। पहले दिव्य दृष्टि देकर उसने उन्हें अपने स्वरूपका दर्शन कराया, फिर एकान्त प्रदेशमें उनसे इस प्रकार कहना आरम्भ किया—'वीर यदुनन्दन! आपके लिये सर्वत्र कुशल तो है न? आपका दिन और प्रदोषकाल सुखसे बीतता है न? महाबाहु रतिकुमार! मैं तुम्हारे लिये एक सूचना लायी हूँ, तुम इसे सुनो॥ ३३—३७॥ मैं अपनी सखी उषाकी बात ठीक-ठीक बताऊँगी, जिसको आपने सपनेमें देखा और अपनी पत्नी बना लिया'॥ ३८॥

बिभर्ति हृदये या त्वामुषया प्रेषिता त्वहम्।
रुदन्ती जृम्भती चैव निःश्वसन्ती मुहुर्मुहुः॥ ३९

त्वद्दर्शनपरा सौम्य कामिनी परितप्यते।
यदि त्वं यास्यसे वीर धारयिष्यति जीवितम्॥ ४०

अदर्शनेन मरणं तस्या नास्त्यत्र संशयः।
यदि नारीसहस्रं ते हृदिस्थं यदुनन्दन॥ ४१

स्त्रियाः कामयमानायाः कर्तव्या हस्तधारणा।
त्वं च तस्या वरोत्सर्गे दत्तो देव्या मनोरथः॥ ४२

चित्रपट्टं मया दत्तं त्वच्चिह्नं दृश्य जीवति।
सानुक्रोशो यदुश्रेष्ठ भव तस्या मनोरथे॥ ४३

उषा ते पतते मूर्ध्ना वयं च यदुनन्दन।
श्रूयतां चोद्भवस्तस्याः कुलशीलं च यादृशम्॥ ४४

संस्थानं प्रकृतिं चास्याः पितरं च ब्रवीमि ते।
वैरोचनिसुतो वीरो बाणो नाम महासुरः॥ ४५

स राजा शोणितपुरे तस्य त्वामिच्छते सुता।
त्वद्भावगतचित्ता सा त्वन्मयं चापि जीवितम्॥ ४६

मनोरथकृतो भर्ता देव्या दत्तो न संशयः।
त्वत्संगमात् सा सुश्रोणी प्राणान् धारयते शुभा॥ ४७

चित्रलेखावचः श्रुत्वा सोऽनिरुद्धोऽब्रवीदिदम्।
दृष्टा स्वप्ने मया सा हि तन्मत्तः शृणु शोभने॥ ४८

रूपं कान्तिं मतिं चैव संयोगं रुदितं तथा।
एवं सर्वमहोरात्रं मुह्यामि परिचिन्तयन्॥ ४९

यद्यहं समनुग्राह्यो यदि सख्यं त्वमिच्छसि।
नयस्व चित्रलेखे मां द्रष्टुमिच्छाम्यहं प्रियाम्॥ ५०

'वह आपको ही अपने हृदयमें धारण करती है। उषाके भेजनेपर ही मैं यहाँ आयी हूँ। वह बेचारी बार-बार रोती, अँगड़ाई लेती और लम्बी साँस खींचती है॥ ३९॥ सौम्य! वह आपके दर्शनकी बाट जोहती हुई कामके अधीन हो बड़ा कष्ट पा रही है। वीर! यदि आप उसके पास जायँ और मिलें, तभी वह जीवन धारण कर सकेगी॥ ४०॥ यदि आपका दर्शन उसे नहीं मिला तो उसकी मृत्यु निश्चित है, इसमें कोई संशय नहीं है। यदुनन्दन! यदि आपके हृदयमें सहस्रों नारियोंने स्थान बना लिया हो तो भी आपको चाहनेवाली एक अनुरक्त स्त्रीका हाथ आपको अवश्य पकड़ना चाहिये। देवी पार्वतीने वरदान देते समय आपहीको उसका मनोवाञ्छित पति प्रदान किया है; मैंने उसे आपका चित्रपट दिया है। उसीमें आपके चिह्नका अवलोकन करके वह जी रही है। यदुश्रेष्ठ! आप उसका मनोरथ पूर्ण करनेके लिये दयालु बनें। यदुनन्दन! उषा आपके चरणोंमें सिर रखकर प्रणाम करती है। हम सखियाँ भी आपको माथ नवाती हैं। आप उषाकी उत्पत्ति सुन लें। उसका कुल और शील जैसा है, उसे भी जान लें; उसकी आकृति, स्वभाव और पिताका भी परिचय आपको देती हूँ। विरोचनकुमार बलिका वीर पुत्र बाण नामक महान् असुर शोणितपुरका राजा है। उसकी पुत्री उषा आपको पति बनाना चाहती है। उसका चित्त सदा आपके ही चिन्तनमें लगा रहता है, उसका जीवन भी आप ही हैं॥ ४१—४६॥ देवी पार्वतीने आपको ही उसके लिये मनके अनुरूप पति दिया है, इसमें संशय नहीं। सुन्दर कटिप्रदेशवाली शुभलक्षणा उषा आपके समागमकी आशा लेकर ही प्राणोंको धारण करती है'॥ ४७॥ चित्रलेखाकी बात सुनकर अनिरुद्धने उससे इस प्रकार कहा—'शोभने! मैंने उसे सपनेमें देखा है। उसका परिणाम क्या हुआ? यह मुझसे सुनो। मैं दिन-रात उसके रूप, कान्ति, मति, संयोगसुख और रोदन आदि सभी बातोंका इसी तरह चिन्तन करता हुआ मोहमें पड़ा रहता हूँ॥ ४८-४९॥ चित्रलेखे! यदि मैं तुम्हारे अनुग्रहका पात्र हूँ और यदि तुम मुझसे मैत्री चाहती हो तो मुझे अपने साथ ले चलो। मैं प्राणप्यारी उषाको देखना चाहता हूँ'॥ ५०॥

कामसंतापसंतप्तः प्रियासङ्गमकामतः।
एषोऽञ्जलिर्मया बद्धः सत्यं स्वप्नं कुरुष्व मे॥ ५१

तस्यैतद् वचनं श्रुत्वा चित्रलेखा वराप्सराः।
सफलोऽद्य मम क्लेशः सख्या मे यत् प्रयाचितम्॥ ५२

वैशम्पायन उवाच

ईप्सितं तस्य विज्ञाय अनिरुद्धस्य भामिनी।
चित्रलेखा ततस्तुष्टा तथेति च तमब्रवीत्॥ ५३
हर्म्ये स्त्रीगणमध्यस्थं कृत्वा चान्तर्हितं तदा।
उत्पपात गृहीत्वा सा प्राद्युम्निं युद्धदुर्मदम्॥ ५४
सा तमध्वानमागम्य सिद्धचारणसेवितम्।
सहसा शोणितपुरं प्रविवेश मनोजवा॥ ५५
अदर्शनं तमानीय मायया कामरूपिणी।
अनिरुद्धं महाभागा यत्रोषा तत्र गच्छति॥ ५६
उषाया दर्शयच्चैनं चित्राभरणभूषितम्।
चित्राम्बरधरं वीरं रहस्यमररूपिणम्॥ ५७
तत्रोषा विस्मिता दृष्ट्वा हर्म्यस्था सखिसंनिधौ।
प्रवेशयामास च तं तदा सा स्वगृहं ततः॥ ५८
प्रहर्षोत्फुल्लनयना प्रियं दृष्ट्वार्थकोविदा।
सा हर्म्यस्था तमर्घ्येण यादवं समपूजयत्॥ ५९
चित्रलेखां परिष्वज्य प्रियाख्यानैरतोषयत्।
त्वरिता कामिनी प्राह चित्रलेखां भयातुरा॥ ६०
सखीदं वै कथं कार्यं गुह्यकार्यविशारदे।
गुह्ये कृते भवेत् स्वस्ति प्रकाशे जीवितक्षयः॥ ६१
चित्रलेखाब्रवीद् वाक्यं शृणु त्वं निश्चयं सखि।
कृतं पुरुषकारेण दैवं नाशयते क्षणात्॥ ६२
यदि देव्याः प्रसादस्ते ह्यनुकूलो भविष्यति।
अद्य मायाकृतं गुह्यं न कश्चिज्ज्ञास्यते नरः॥ ६३
सख्या वै एवमुक्ता सा पर्यवस्थितचेतना।
एवमेतदिति प्राह सानिरुद्धमिदं वचः॥ ६४

'मैं कामजनित तापसे संतप्त हूँ; अतः प्रियतमाके सङ्गमकी कामनासे मैंने तुम्हारे सामने यह अञ्जलि बाँध रखी है, मेरे स्वप्नको सत्य कर दिखाओ'॥ ५१॥ अनिरुद्धकी यह बात सुनकर श्रेष्ठ अप्सरा चित्रलेखा मन-ही-मन यह कहने लगी कि आज मेरा क्लेश उठाना सफल हो गया। मेरी सखीने जो वस्तु माँगी थी, वह मुझे मिल गयी॥ ५२॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! अनिरुद्धका मनोरथ जानकर भामिनी चित्रलेखा बहुत प्रसन्न हुई और बोली, 'अच्छा ऐसा ही करूँगी'॥ ५३॥ अट्टालिकामें स्त्रियोंके बीचमें बैठे हुए रणदुर्मद प्रद्युम्नकुमार अनिरुद्धको अदृश्य करके उन्हें साथ ले चित्रलेखा आकाशमें उड़ चली॥ ५४॥ वह मनके समान वेगशालिनी थी। उसने सिद्धों और चारणोंसे सेवित आकाशमार्गमें आकर सहसा शोणितपुरमें प्रवेश किया॥ ५५॥ वह कामरूपिणी अप्सरा अनिरुद्धको मायासे अदृश्य करके जहाँ महाभागा उषा थी, वहाँ गयी॥ ५६॥ वहाँ उसने उषाको एकान्तमें विचित्र आभूषणोंसे विभूषित तथा विचित्र वस्त्रधारी देवतुल्य रूपवाले वीर अनिरुद्धका दर्शन कराया॥ ५७॥ वहाँ अट्टालिकामें सखियोंके समीप बैठी हुई उषा अनिरुद्धको देखकर चकित हो उठी। उसने तत्काल उन्हें अपने महलके भीतर प्रवेश कराया॥ ५८॥ प्रियतमका दर्शन करके उषाके नेत्र हर्षसे खिल उठे। स्वार्थसाधनमें कुशल उषाने अट्टालिकामें ही स्थित हो अर्घ्य निवेदन करके यदुकुलनन्दन अनिरुद्धका पूजन किया॥ ५९॥ फिर चित्रलेखाको हृदयसे लगाकर प्रिय वचनोंके द्वारा उसे संतुष्ट किया। इसके बाद कामिनी उषा भयसे व्याकुल हो तुरंत ही चित्रलेखासे बोली—॥ ६०॥ 'कार्यसाधनमें कुशल सखि! इस कार्यको गुप्त कैसे रखा जाय? गुप्त रखनेपर ही कल्याण हो सकता है। इसे प्रकाशित कर देनेपर प्राणोंपर संकट आ सकता है'॥ ६१॥ तब चित्रलेखा बोली—'सखि! मेरा निश्चय सुनो! पुरुषार्थद्वारा किये गये कार्यको दैव क्षणभरमें नष्ट कर देता है॥ ६२॥ यदि पार्वतीदेवीका कृपाप्रसाद तुम्हारे अनुकूल होगा तो आज मायाद्वारा छिपाकर किये गये इस गुप्त कार्यको कोई नहीं जान सकेगा'॥ ६३॥ सखीके ऐसा कहनेपर उषाकी चित्तवृत्ति स्थिर हुई। वह बोली, 'तुम्हारा कहना ठीक है', फिर उसने अनिरुद्धसे कहा—॥ ६४॥

दिष्ट्या स्वप्नगतश्चौरो दृश्यते सुभगः पतिः।
यत्कृते तु वयं खिन्ना दुर्लभप्रियकाङ्क्षया॥ ६५

कच्चित् तव महाबाहो कुशलं सर्वतोगतम्।
हृदयं हि मृदु स्त्रीणां तेन पृच्छाम्यहं तव॥ ६६

तस्यास्तद् वचनं श्रुत्वा उषायाः श्लक्ष्णमर्थवत्।
सोऽप्याह यदुशार्दूलः शुभाक्षरतरं वचः॥ ६७

हर्षविप्लुतनेत्रायाः पाणिनाश्रु प्रमृज्य च।
प्रहस्य सस्मितं प्राह हृदयग्राहकं वचः॥ ६८

कुशलं मे वरारोहे सर्वत्र मितभाषिणि।
त्वत्प्रसादेन मे देवि प्रियमावेदयामि ते॥ ६९

अदृष्टपूर्वश्च मया देशोऽयं शुभदर्शने।
निशि स्वप्ने यथा दृष्टः सकृत्कन्यापुरे तथा॥ ७०

एवमेवमहं भीरु त्वत्प्रसादादिहागतः।
न च तद् रुद्रपत्न्या वै मिथ्या वाक्यं भविष्यति॥ ७१

देव्यास्ते प्रीतिमाज्ञाय त्वत्प्रियार्थं च भामिनि।
अनुप्राप्तोऽस्मि चाद्यैव प्रसीद शरणं गतः॥ ७२

इत्युक्ता त्वरमाणा सा गुह्यदेशे स्वलङ्कृता।
कान्तेन सह संयुक्ता स्थिता वै भीतभीतवत्॥ ७३

ततश्चोद्वाहधर्मेण गान्धर्वेण समीयतुः।
अन्योन्यं रमतुस्तौ तु चक्रवाकौ यथा दिवा॥ ७४

पतिना सानिरुद्धेन मुमुदे तु वराङ्गना।
कान्तेन सह संयुक्ता दिव्यवस्त्रानुलेपना॥ ७५

रममाणानिरुद्धेन अविज्ञाता सुता तदा।
तस्मिन्नेव क्षणे प्राप्ते यदूनामृषभो हि सः॥ ७६

दिव्यमाल्याम्बरधरो दिव्यस्त्रगनुलेपनः।
उषया सह संयुक्तो विज्ञातो बाणरक्षिभिः॥ ७७

'सौभाग्यकी बात है कि सपनेमें आया हुआ वह चोर आज सुन्दर पतिके रूपमें प्रत्यक्ष दिखायी देता है; जिसके लिये हम सब लोग खिन्न हो रही थीं, दुर्लभ प्रियतमकी आकाङ्क्षा रखनेके कारण भारी चिन्तामें पड़ गयी थीं॥ ६५॥ महाबाहो! आपके लिये सर्वत्र कुशल तो है न? स्त्रियोंका हृदय कोमल होता है, इसलिये मैं आपका कुशल-समाचार पूछ रही हूँ'॥ ६६॥ उषाका वह अर्थभरा स्नेहयुक्त वचन सुनकर यदुकुलसिंह अनिरुद्ध भी सुन्दर अक्षरोंसे युक्त बात बोले॥ ६७॥ पहले उन्होंने अपने हाथसे आनन्दके आँसुओंसे भरे हुए नेत्रवाली उषाके आँसू पोंछे, फिर हँसकर मुसकराते हुए वे ऐसी बात बोले, जो चित्तको चुराये लेती थी—॥ ६८॥ 'वरारोहे! तुम्हारे प्रसादसे मेरे लिये सर्वत्र कुशल है। बहुत कम बोलनेवाली देवि! मैं तुम्हें यह प्रिय संवाद निवेदन करता हूँ॥ ६९॥ शुभदर्शने! यह देश मेरे लिये पहलेका देखा हुआ नहीं था, केवल एक बार रातको सपनेमें कन्याओंके अन्त:पुरमें इसे जैसा देखा था, वैसा ही आज भी यह दिखायी देता है॥ ७०॥ भीरु! तुम्हारे प्रसादसे ही मेरा इस प्रकार यहाँ आगमन हुआ है। रुद्रपत्नी उमा देवीकी बात कभी मिथ्या नहीं होगी॥ ७१॥ भामिनि! पार्वती देवीका तुमपर बड़ा प्रेम है—यह जानकर तुम्हारा प्रिय करनेके लिये ही मैं आज यहाँ आया हूँ। मुझपर प्रसन्न होओ, मैं तुम्हारी शरणमें आया हूँ'॥ ७२॥ अनिरुद्धके ऐसा कहनेपर सुन्दर अलंकारोंसे अलंकृत हुई उषा अपने प्रियतमके साथ संयुक्त हो तुरंत ही गुप्त स्थानमें जा पहुँची। उस समय वह भयभीत-सी जान पड़ती थी॥ ७३॥ तदनन्तर वे दोनों गान्धर्व विवाहके नियमसे परस्पर दाम्पत्यभाव स्वीकार करके एक-दूसरेसे मिले, जैसे चकवे दिनमें समागम करते हैं, उसी प्रकार उन दोनोंने परस्पर रमण किया॥ ७४॥ दिव्य वस्त्र और अनुलेपन धारण करनेवाली श्रेष्ठ नारी उषा अपने प्रियतम पति अनिरुद्धसे मिलकर बहुत ही प्रसन्न हुई॥ ७५॥ अनिरुद्धके साथ रमण करती हुई अपनी पुत्रीके विषयमें उस समय बाणासुरको कोई समाचार ज्ञात नहीं हुआ। परंतु बाणासुरके द्वारा नियुक्त हुए जो गुप्त पहरेदार थे, उन्होंने उसी क्षण यह जान लिया कि दिव्य माल्य, दिव्य वस्त्र, दिव्य हार और दिव्य अनुलेपन धारण करनेवाले यदुकुलतिलक अनिरुद्धने उषाके साथ समागम किया है॥ ७६-७७॥

ततस्तैश्चारपुरुषैर्बाणस्यावेदितं द्रुतम्।
यथा दृष्टमशेषेण कन्यायास्तदतिक्रमम्॥ ७८

ततः किङ्करसैन्यं तु व्यादिष्टं भीमकर्मणा।
बलेः पुत्रेण वीरेण बाणेनामित्रघातिना॥ ७९

गच्छध्वं सहिताः सर्वे हन्यतामेव दुर्मतिः।
येन नः कुलचारित्रं दूषितं दूषितात्मना॥ ८०

उषायां धर्षितायां हि कुलं नो धर्षितं महत्।
असम्प्रदत्तां योऽस्माभिः स्वयंग्राहमधर्षयत्॥ ८१

अहो वीर्यमहो धैर्यमहो धार्ष्ट्यं च दुर्मतेः।
यः पुरं भवनं चेदं प्रविष्टो नः स बालिशः॥ ८२

एवमुक्त्वा पुनस्तांस्तु किङ्करांश्चोदयद् भृशम्।
ते तस्याज्ञामथो गृह्य सुसंनद्धा विनिर्ययुः॥ ८३
यत्रानिरुद्धो ह्यभवत् तत्रागच्छन् महाबलाः॥ ८४

नानाशस्त्रोद्यतकरा नानारूपा भयङ्कराः।
दानवाःसमभिक्रुद्धाःप्राद्युम्निवधकाङ्क्षिणः॥ ८५

रुरोद तद्बलं दृष्ट्वा बाष्पेणावृतलोचना।
प्राद्युम्निवधभीता सा बाणपुत्री यशस्विनी॥ ८६

ततस्तु रुदतीं दृष्ट्वा तामुषां मृगलोचनाम्।
हा हा कान्तेति वेपन्तीमनिरुद्धोऽभ्यभाषत॥ ८७

अभयं तेऽस्तु सुश्रोणि मा भैस्त्वं हि मयि स्थिते।
सम्प्राप्तो हर्षकालस्ते नेहास्ति भयकारणम्॥ ८८

कृत्स्नोऽयं यदि बाणस्य भृत्यवर्गो यशस्विनि।
आगच्छति न मे चिन्ता भीरु पश्याद्य विक्रमम्॥ ८९

तस्य सैन्यस्य निनदं श्रुत्वाभ्यागच्छतस्ततः।
सहसैवोत्थितः श्रीमान् प्राद्युम्निः किमिति ब्रुवन्॥ ९०

अथ सोऽपश्यत बलं नानाप्रहरणोद्यतम्।
स्थितं समन्ततस्तत्र परिवार्य गृहं महत्॥ ९१

तब उन गुप्तचरोंने कन्याका अपराध जिस तरह देखा था, वह सब शीघ्र ही बाणासुरको निवेदन कर दिया॥ ७८॥ तब भयानक कर्म करनेवाले शत्रुघाती बलिपुत्र वीर बाणासुरने किङ्करोंकी सेनाको आदेश दिया— ॥ ७९॥ 'सैनिको! तुम सब लोग एक साथ जाओ और उस दुर्बुद्धि मनुष्यको मार डालो, जिसने अपने हृदयको तो दूषित कर ही लिया था, हमारे कुलके सदाचारको भी कलङ्कित कर दिया॥ ८०॥ उषाके कलङ्कित हो जानेसे हमारा महान् कुल कलङ्कित हो गया। इस दुष्ट मनुष्यने हमारे दिये बिना ही स्वयं उषाको ग्रहण कर लिया और उसकी पवित्रता नष्ट कर दी॥ ८१॥ अहो! इस दुष्ट बुद्धिवाले पुरुषका पराक्रम अद्भुत है, धैर्य और धृष्टता भी अद्भुत है, जिससे यह नादान न केवल हमारे नगरमें, अपितु हमारे इस घरमें भी घुस आया'॥ ८२॥ ऐसा कहकर बाणासुरने पुनः किङ्करोंको विशेषरूपसे प्रेरित किया। उसकी आज्ञा पाकर वे कवच आदिसे सुसज्जित हो युद्धके लिये निकल पड़े। वे सब-के-सब बड़े बलवान् थे; अतः जहाँ अनिरुद्ध थे, वहाँ बेखटके जा पहुँचे॥ ८३-८४॥ उनके हाथोंमें नाना प्रकारके शस्त्र उठे हुए थे, उनके रूप अनेक प्रकारके थे, वे भय उत्पन्न करनेवाले दानव अनिरुद्धके वधकी इच्छासे अत्यन्त कुपित हो उठे॥ ८५॥ किङ्करोंकी उस सेनाको देखकर यशस्विनी बाणपुत्री उषाके नेत्रोंमें आँसू भर आये। वह अनिरुद्धके मारे जानेके भयसे भीत हो रोने लगी॥ ८६॥ वह 'हा प्रियतम! हा प्राणनाथ!' कहकर काँप रही थी। मृगनयनी उषाको रोती देख अनिरुद्धने उससे कहा— ॥ ८७॥ 'सुश्रोणि! तुम्हें भय नहीं होना चाहिये। मेरे रहते हुए तुम डरो मत। यह तो तुम्हारे लिये हर्षका समय आया है। इसमें भयका कोई कारण नहीं है॥ ८८॥ यशस्विनि! यदि बाणासुरका सारा सेवकसमुदाय आ जाय तो भी मेरे लिये चिन्ताकी बात नहीं है। भीरु! तुम आज मेरा पराक्रम देखो'॥ ८९॥ अपनी ओर आती हुई उस सेनाका कोलाहल सुनकर प्रद्युम्नकुमार श्रीमान् अनिरुद्ध 'यह क्या है?' ऐसा कहते हुए सहसा उठकर खड़े हो गये॥ ९०॥ तदनन्तर उन्होंने देखा कि उस विशाल गृहको चारों ओरसे घेरकर नाना प्रकारके आयुधोंसे सुसज्जित हुई सेना खड़ी है॥ ९१॥

ततोऽभ्यगच्छत् त्वरितो यत्र तद्वेष्टितं बलम्।
क्रुद्धः स्वबलमास्थाय अदशद् दशनच्छदम्॥ ९२

ततो योद्धुमपोढानां बाणेयानां निशम्य तु।
सा चित्रलेखास्मरत नारदं देवदर्शनम्॥ ९३

ततो निमेषमात्रेण सम्प्राप्तो मुनिपुङ्गवः।
स्मृतोऽथ चित्रलेखायाः पुरं शोणितसाह्वयम्॥ ९४

अन्तरिक्षे स्थितस्तत्र सोऽनिरुद्धमथाब्रवीत्।
मा भयं स्वस्ति ते वीर प्राप्तोऽस्म्यद्य पुरं तव॥ ९५

ततश्च नारदं दृष्ट्वा सोऽभिवाद्य महाबलः।
प्रहृष्टमानसो भूत्वा युद्धार्थमभिवर्तत॥ ९६

ततस्तेषां स्वनं श्रुत्वा सर्वेषामेव गर्जताम्।
सहसैवोत्थितः शूरस्तोत्रार्दित इव द्विपः॥ ९७

तमापतन्तं सम्प्रेक्ष्य संदष्टौष्ठं महाभुजम्।
प्रासादाच्चावरोहन्तं भयार्ता विप्रदुद्रुवुः॥ ९८

अन्तःपुरद्वारगतं परिघं गृह्य चातुलम्।
वधाय तेषां चिक्षेप नानायुद्धविशारदः॥ ९९

ते सर्वे बाणवर्षैश्च गदाभिर्मुसलैस्तथा।
असिभिः शक्तिभिः शूलैर्निजघ्नू रणगोचरे॥ १००

स हन्यमानो नाराचैः परिघैश्च समन्ततः।
दानवैः समभिक्रुद्धैः प्राद्युम्निः शस्त्रकोविदैः॥ १०१

नाक्षुभ्यत् सर्वभूतात्मा नदन् मेघ इवोष्णगे।
आविध्य परिघं घोरं तेषां मध्ये व्यतिष्ठत।
सूर्यो दिवि चरन् मध्ये मेघानामिव सर्वशः॥ १०२

दण्डकृष्णाजिनधरो नारदो हृष्टमानसः।
साधु साध्विति वै तत्र सोऽनिरुद्धमभाषत॥ १०३

ते हन्यमाना रौद्रेण परिघेणामितौजसा।
प्राद्रवन्त भयात् सर्वे मेघा वातेरिता यथा॥ १०४

विद्राव्य दानवान् वीरः परिघेण सुविक्रमः।
अनिरुद्धो रणे हृष्टः सिंहनादं ननाद च॥ १०५

तब वे तुरंत ही कुपित हो अपने बलका भरोसा करके उस स्थानकी ओर चल दिये, जहाँ वह सेना घेरा डालकर खड़ी थी। उस समय उन्होंने अपने ओठको दाँतों-तले दबा लिया था॥ ९२॥ इतनेमें ही बाणासुरके सैनिकोंको युद्धके लिये उपस्थित सुनकर चित्रलेखाने देवदर्शी नारदजीका स्मरण किया॥ ९३॥ फिर तो चित्रलेखाके स्मरण करनेपर मुनिवर नारदजी पलक मारते-मारते शोणितपुरमें आ पहुँचे॥ ९४॥ वहाँ आकाशमें स्थित होकर उन्होंने अनिरुद्धसे कहा—'वीर! तुम्हारा कल्याण हो। तुम डरना मत। मैं भी अब तुम्हारे नगरमें आ पहुँचा हूँ'॥ ९५॥ नारदजीको उपस्थित देख महाबली अनिरुद्धने उन्हें प्रणाम किया और प्रसन्नचित्त होकर वे युद्धके लिये तैयार हो गये॥ ९६॥ उस समय गर्जना करते हुए उन सभी सैनिकोंका कोलाहल सुनकर शूरवीर अनिरुद्ध अङ्कुशसे पीड़ित हुए हाथीकी भाँति सहसा उठकर चल दिये॥ ९७॥ ओठको दाँतोंसे दबाकर महलसे उतरते और अपनी ओर आते हुए महाबाहु अनिरुद्धको देखकर कितने ही सैनिक भयसे व्याकुल होकर भाग खड़े हुए॥ ९८॥ अन्तःपुरके द्वारपर रखे हुए अनुपम परिघको हाथमें लेकर नाना प्रकारके युद्धोंमें कुशल अनिरुद्धने उन सैनिकोंके वधके लिये उसे चलाया॥ ९९॥ तब वे समस्त सैनिक रणभूमिमें दिखायी देनेवाले अनिरुद्धपर बाण, गदा, मुसल, खड्ग, शक्ति और शूलोंद्वारा प्रहार करने लगे॥ १००॥ क्रोधमें भरे हुए शस्त्रकुशल दानवोंद्वारा चारों ओरसे नाराचों और परिघोंका प्रहार होनेपर भी प्रद्युम्नकुमार अनिरुद्ध क्षुब्ध नहीं हुए; क्योंकि वे सम्पूर्ण भूतोंके आत्मा हैं। वे वर्षाकालके मेघकी भाँति गर्जना करते और भयंकर परिघ घुमाते हुए उन शत्रुओंके बीचमें खड़े हो गये। मानो आकाशमें मेघमण्डलीके भीतर सब ओर विचरते हुए सूर्य शोभा पा रहे हों॥ १०१-१०२॥ उस समय दण्ड और काला मृगचर्म धारण करनेवाले नारदजी मनमें हर्ष भरकर अनिरुद्धसे बोले—'वीर! बहुत अच्छा! बहुत अच्छा!!'॥ १०३॥ उस अमित ओजवाले भयंकर परिघकी मार खाकर वे समस्त सैनिक भयसे भाग खड़े हुए। मानो हवाके वेगसे बादल छिन्न-भिन्न हो गये हों॥ १०४॥ उत्तम पराक्रमी वीर अनिरुद्ध अपने परिघकी मारसे दानवोंको भगाकर रणभूमिमें बड़े हर्षके साथ सिंहनाद करने लगे॥ १०५॥

घर्मान्ते तोयदो व्योम्नि नदन्निव महास्वनः।
तिष्ठध्वमिति चुक्रोश दानवान् युद्धदुर्मदान्॥ १०६

प्राद्युम्निर्व्यहनच्चापि सर्वाञ्छत्रुनिबर्हणः।
तेन ते समरे सर्वे हन्यमाना महात्मना॥ १०७

यतो बाणस्ततो भीता ययुर्युद्धपराङ्मुखाः।
ततो बाणसमीपस्थाः श्वसन्तो रुधिरोक्षिताः॥ १०८

न शर्म लेभिरे दैत्या भयविक्लवचेतसः।
मा भैष्ट मा भैष्ट इति राज्ञा ते तेन चोदिताः॥ १०९

त्रासमुत्सृज्य चैकस्था युध्यध्वं दानवर्षभाः।
तानुवाच पुनर्बाणो भयविक्लवलोचनान्॥ ११०

किमिदं लोकविख्यातं यश उत्सृज्य दूरतः।
भवन्तो यान्ति वैक्लव्यं क्लीबा इव विचेतसः॥ १११

कोऽयं यस्य भयत्रस्ता भवन्तो यान्त्यनेकशः।
कुलापदेशिनः सर्वे नानायुद्धविशारदाः॥ ११२

भवद्भिर्न हि मे कार्यं युद्धसाहाय्यमद्य वै।
अब्रवीद् ध्वंसतेत्येवं मत्समीपाच्च नश्यत॥ ११३

अथ तान् वाग्भिरुग्राभिस्त्रासयन् बहुधा बली।
व्यादिदेश रणे शूरानन्यानयुतशः पुनः॥ ११४

प्रमाथगणभूयिष्ठं व्यादिष्टं तस्य निग्रहे।
अनीकं सुमहारौद्रं नानाप्रहरणोद्यतम्॥ ११५

अथान्तरिक्षं बहुधा विद्युत्वद्भिरिवाम्बुदैः।
बाणानीकैः समभवद् व्याप्तं संदीप्तलोचनैः॥ ११६

केचित् क्षितिस्थाः प्राक्रोशन् गजा इव समन्ततः।
अन्तरिक्षे व्यराजन्त घर्मान्त इव तोयदाः॥ ११७

जैसे वर्षाकालमें आकाशके भीतर छाये हुए मेघ बड़े जोर-जोरसे गर्जना करते हैं, उसी प्रकार शत्रुसूदन प्रद्युम्नकुमार अनिरुद्धने गर्जना करके उन रणदुर्मद दानवोंसे चिल्लाकर कहा—'अरे! खड़े रहो।' साथ ही उन्होंने सबका संहार आरम्भ कर दिया। उस महामनस्वी वीरके द्वारा समराङ्गणमें मारे जाते हुए वे समस्त सैनिक युद्धसे विमुख हो गये और भयभीत होकर उस स्थानपर गये, जहाँ बाणासुर विद्यमान था। बाणासुरके समीप खड़े होकर वे सभी दानव लम्बी साँस खींचने लगे; उन सबके शरीर रक्तसे रँग गये थे; भयके कारण उनका चित्त व्याकुल हो गया था, अतः उन दैत्योंको चैन नहीं मिलता था। तब राजा बाणासुरने उन्हें आदेश देते हुए कहा—'दानवशिरोमणियो! डरो मत! डरो मत!! त्रास छोड़ एक साथ खड़े होकर युद्ध करो'। उसके इतना कहनेपर भी उनकी आँखें भयसे व्याकुल ही बनी रहीं। यह देख बाणासुरने पुनः उनसे कहा—'यह क्या बात है कि तुमलोग अपने विश्वविख्यात यशको दूरसे ही त्यागकर कायरोंके समान व्याकुल और अचेत हो रहे हो?॥ १०६—१११ ॥ यह कौन है, जिसके भयसे डरकर तुमलोग झुंड-के-झुंड भागे जा रहे हो। तुम सब लोगोंका कुल विख्यात है तथा तुम नाना प्रकारके युद्धोंकी कलामें निपुण हो (तो भी तुममें यह कायरता कैसे आयी?)॥ ११२॥ अच्छा, भाग जाओ! अब तुमलोगोंसे मुझे युद्धविषयक सहायता नहीं लेनी है, मेरे पाससे दूर हो जाओ'॥ ११३॥ इस प्रकार बलवान् बाणासुरने अपने कठोर वचनोंद्वारा उनको बारम्बार त्रास देते हुए दूसरे रणवीर योद्धाओंको, जिनकी संख्या दस हजारके लगभग थी, पुनः युद्धके लिये आज्ञा दी॥ ११४॥ तत्पश्चात् उसने अनिरुद्धको बंदी बनानेके लिये एक महाभयंकर सेनाको आदेश दिया, जिसमें अधिकांश प्रमथगण थे। वह सेना नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्रोंसे सुसज्जित थी॥ ११५॥ फिर तो बिजलीवाले मेघोंकी भाँति चमकीले नेत्रोंवाले बाणासुरके सैनिकोंसे आकाशका बहुत बड़ा भाग व्याप्त हो गया॥ ११६॥ कुछ सैनिक पृथ्वीपर ही खड़े हो सब ओर हाथियोंकी भाँति चिग्घाड़ रहे थे तथा कुछ लोग वर्षाकालके बादलोंकी भाँति आकाशमें ही शोभा पाते थे॥ ११७॥

ततस्तत् सुमहत् सैन्यं समेतमभवत् पुनः।
तिष्ठ तिष्ठेति च तदा वाचोऽश्रूयन्त सर्वशः॥ ११८

अनिरुद्धो रणे वीरः स च तानभ्यवर्तत।
तदाश्चर्यं समभवद् यदेकस्तु समागतः॥ ११९

अयुध्यत महावीर्यैर्दानवैः सह संयुगे।
तेषामेव च जग्राह परिघांस्तोमरानपि॥ १२०

तैरेव च तदा युद्धे ताञ्जघान महाबलः।
पुनः परिघमुत्सृज्य प्रगृह्य रणमूर्धनि॥ १२१

स तेन विचरन् मार्गानेकः शत्रुनिबर्हणः।
भ्रान्तमुद्भ्रान्तमाविद्धमाप्लुतं विप्लुतं प्लुतम्॥ १२२

इति प्रकाराद् द्वात्रिंशद् विचरन्नाभ्यदृश्यत।
एकं सहस्रशश्चात्र ददृशू रणमूर्धनि॥ १२३

क्रीडन्तं बहुधा युद्धे व्यादितास्यमिवान्तकम्।
ततस्तेनाभिसंतप्ता रुधिरौघपरिप्लुताः॥ १२४

पुनर्भग्नाः प्राद्रवन्त यत्र बाणो व्यवस्थितः।
गजवाजिरथौघैस्ते चोह्यमानाः समन्ततः॥ १२५

कृत्वा चार्तस्वरं घोरं दिशो जग्मुर्हतौजसः।
एकैकस्योपरि तदा तेऽन्योन्यं भयपीडिताः॥ १२६

वमन्तः शोणितं जग्मुर्विषादाद् विमुखा रणे।
न बभूव पुरा देवैर्युध्यतां तादृशं भयम्॥ १२७

तदनन्तर वह विशाल सेना फिर एकत्र हो गयी। उस समय उसमें सब ओर 'ठहरो, खड़े रहो' ये ही बातें सुनायी देती थीं॥ ११८॥ वीर अनिरुद्ध अकेले ही उन सबका सामना कर रहे थे। एकने ही जो उस विशाल सेनाका सामना किया, यह उस समय एक महान् आश्चर्यकी बात हुई॥ ११९॥ वे रणभूमिमें उन महापराक्रमी दानवोंके साथ युद्ध करने लगे। उन्होंने शत्रुओंके ही परिघों तथा तोमरोंको ले लिया॥ १२०॥ उन महाबली वीरने उन्हीं परिघोंद्वारा उस समय युद्धमें उन शत्रुओंका संहार किया। वे युद्धके मुहानेपर बारम्बार परिघको छोड़ते और ग्रहण करते थे॥ १२१॥ शत्रुसूदन अनिरुद्ध उस परिघसे अनेक पैंतरे दिखाते हुए युद्धमें अकेले ही विचरते थे। वे भ्रान्त[1], उद्भ्रान्त[2], आविद्ध[3], आप्लुत[4], विप्लुत[5] और प्लुत[6] आदि बत्तीस[7] प्रकारके पैंतरोंसे विचरते हुए दिखायी दिये। रणभूमिमें युद्धके मुहानेपर मुँह बाये हुए कालके समान अनेक प्रकारसे परिघ चलानेकी क्रीडा करते हुए एक ही अनिरुद्धको शत्रुओंने सहस्रोंकी संख्यामें देखा। उस समय उनसे संतप्त हो रक्तके प्रवाहमें डूबे हुए दानव फिर अपना व्यूह भङ्ग करके भाग खड़े हुए और जहाँ बाणासुर खड़ा था, वहाँ जा पहुँचे। हाथी, घोड़े तथा रथसमूह उन्हें चारों ओर लिये जा रहे थे। वे हतोत्साह दानव घोर आर्त्तनाद करके सम्पूर्ण दिशाओंमें भागे जा रहे थे। वे उस समय भयसे पीड़ित हो भागते समय परस्पर एक-एकके ऊपर चढ़ जाते थे तथा अधिक खेदके कारण युद्धसे विमुख हो रक्त वमन करते हुए पलायन कर रहे थे। पूर्वकालमें देवताओंके साथ युद्ध करते समय भी उन दानवोंको वैसा भय नहीं हुआ था,

१. तलवार या परिघको गोलाकार घुमाना भ्रान्त कहलाता है, इससे शत्रुके प्रहारको निष्फल किया जाता है। २. तलवार या परिघ चलानेका दूसरा पैंतरा—जिसमें हाथको ऊँचा करके उसे घुमाया जाता है। ३. तलवार या परिघ चलानेके बत्तीस हाथोंमेंसे एक, जिसमें तलवार या परिघको अपने चारों ओर घुमाकर दूसरेके चलाये हुए वारको व्यर्थ या खाली करते हैं। ४. सब ओर घूम-घूमकर उछलते हुए परिघ या तलवारको चलाना। ५. विशिष्टरूपसे परिघका सञ्चालन करके शत्रु-सेनामें विप्लव मचा देना। ६. सामान्यतः कूद-कूदकर शत्रुके सम्मुख परिघ या तलवारको चलाना। ७. तलवार या परिघ चलानेके बत्तीस हाथ गिनाये गये हैं, जिनके नाम ये हैं—भ्रान्त, उद्भ्रान्त, आविद्ध, आप्लुत, विप्लुत, प्लुत, सृत, संचान्त, समुदीर्ण, निग्रह, प्रग्रह, पदावकर्षण, संधान, मस्तकभ्रामण, भुजभ्रामण, पाश, पाद, विबन्ध, भूमि, उद्भ्रमण, गति, प्रत्यागति, आक्षेप, पातन, उत्थानकप्लुति, लघुता, सौष्ठव, शोभा, स्थैर्य, दृढमुष्टिता, तिर्यक्प्रचार और ऊर्ध्वप्रचार।

यादृशं युध्यमानानामनिरुद्धेन संयुगे।
केचिद् वमन्तो रुधिरं ह्यपतन् वसुधातले॥ १२८

दानवा गिरिशृङ्गाभा गदाशूलासिपाणयः।
ते बाणमुत्सृज्य रणे जग्मुर्भयसमाकुलाः॥ १२९

विशालमाकाशतलं दानवा निर्जितास्तदा।
निःशेषभग्नां महतीं दृष्ट्वा तां वाहिनीं तदा॥ १३०

बाणः क्रोधात् प्रजज्वाल समिद्धोऽग्निरिवाध्वरे।
अन्तरिक्षचरो भूत्वा साधुवादी समन्ततः॥ १३१

नारदो नृत्यति प्रीतो ह्यनिरुद्धस्य संयुगे।
एतस्मिन्नन्तरे चैव बाणः परमकोपनः॥ १३२

कुम्भाण्डसंगृहीतं तु रथमास्थाय वीर्यवान्।
ययौ यत्रानिरुद्धो वै उद्यतासी रथे स्थितः॥ १३३

पट्टिशासिगदाशूलमुद्यम्य च परश्वधान्।
बभौ बाहुसहस्रेण शक्रो ध्वजशतैरिव॥ १३४

बद्धगोधाङ्गुलित्रैश्च बाहुभिः स महाभुजः।
नानाप्रहरणोपेतः शुशुभे दानवोत्तमः॥ १३५

सिंहनादं नदन् क्रुद्धो विस्फारितमहाधनुः।
अब्रवीत् तिष्ठ तिष्ठेति क्रोधसंरक्तलोचनः॥ १३६

वचनं तस्य संश्रुत्य प्राद्युम्निरपराजितः।
बाणस्य वदनं संख्ये समुद्वीक्ष्य ततोऽहसत्॥ १३७

किङ्किणीशतनिर्घोषं रक्तध्वजपताकिनम्।
ऋष्यचर्मावनद्धाङ्गं दशनल्वं महारथम्॥ १३८

तस्य वाजिसहस्रं तु रथे युक्तं महात्मनः।
पुरा देवासुरे युद्धे हिरण्यकशिपोरिव॥ १३९

तमापतन्तं ददृशे दानवं यदुपुङ्गवः।
सम्प्रहृष्टस्ततो युद्धे तेजसा चाप्यपूर्यत॥ १४०

जैसा समराङ्गणमें अनिरुद्धके साथ युद्ध करते समय हुआ था। कितने ही पर्वत-शिखरके समान विशालकाय दानव हाथोंमें गदा, शूल और तलवार लिये रक्त वमन करते हुए पृथ्वीपर गिर पड़े। उस समय रणभूमिमें पराजित हुए दानव भयसे व्याकुल हो बाणासुरको वहीं छोड़कर विशाल आकाशमें भाग गये। जैसे यज्ञमें समिधा पाकर अग्नि प्रज्वलित हो उठती है, उसी प्रकार उस समय अपनी विशाल सेनाको पूर्णरूपसे भग्न हुई देख बाणासुर क्रोधसे जल उठा। इधर युद्धमें अनिरुद्धके पराक्रमसे प्रसन्न हुए नारदजी आकाशमें सब ओर विचरते और उन्हें साधुवाद देते हुए नृत्य करने लगे। इसी बीचमें अत्यन्त क्रोधी और बलवान् बाणासुर कुम्भाण्डद्वारा नियन्त्रित रथपर आरूढ़ हो उसी रथपर बैठा हुआ उस स्थानपर गया, जहाँ अनिरुद्ध तलवार हाथमें लिये खड़े थे॥ १२२—१३३॥ बाणासुर अपनी सहस्र भुजाओंसे पट्टिश, खड्ग, गदा, शूल और फरसे उठा सैकड़ों ध्वजोंसे युक्त देवराज इन्द्रके समान शोभा पाता था। जिनकी अँगुलियोंमें गोधाचर्मके दस्ताने बँधे हुए थे, उन भुजाओंसे नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्र लिये वह महाबाहु दानवराज बड़ी शोभा पा रहा था॥ १३४-१३५॥ उसके नेत्र क्रोधसे लाल हो रहे थे; वह क्रोधमें भरकर सिंहके समान दहाड़ता और अपने विशाल धनुषको खींचता हुआ बोला—'अरे खड़ा रह! खड़ा रह!!'॥ १३६॥ बाणासुरकी बात सुनकर और युद्धस्थलमें उसके मुखपर दृष्टि डालकर अपराजित वीर प्रद्युम्नकुमार अनिरुद्ध हँसने लगे॥ १३७॥ बाणासुरका विशाल रथ दस नल्व (चार हजार हाथ)-के बराबर था; उसमें सैकड़ों छोटी-छोटी घंटियाँ लगी थीं; जिनकी ध्वनि सब ओर गूँजती रहती थी; उस रथकी ध्वजा-पताकाएँ लाल रङ्गकी थीं तथा उस रथके प्रत्येक अवयवपर ऋष्यनामक मृगविशेषका चमड़ा मढ़ा हुआ था॥ १३८॥ उस महाकाय दानवके रथमें एक सहस्र घोड़े जुते हुए थे; ठीक उसी तरह जैसे पूर्वकालमें देवासुर-संग्रामके अवसरपर हिरण्यकशिपुके रथमें जोते गये थे॥ १३९॥ यदुकुलतिलक अनिरुद्धने जब उस दानवको आक्रमण करते देखा; तब वे युद्धके लिये हर्ष और उत्साहसे भर गये तथा महान् तेजसे सम्पन्न हो गये॥ १४०॥

असिचर्मधरो वीरः स्वस्थः संग्रामलालसः।
नरसिंहो यथा पूर्वमादिदैत्यवधोद्यतः॥ १४१

आपतन्तं ददर्शाथ खड्गचर्मधरं तदा।
खड्गचर्मधरं तं तु दृष्ट्वा बाणः पदातिनम्॥ १४२

प्रहर्षमतुलं लेभे प्राद्युम्निवधकाङ्क्षया।
तनुत्रेण विहीनश्च खड्गपाणिश्च यादवः॥ १४३

अजेय इति तं मत्वा युद्धायाभिमुखः स्थितः।
अनिरुद्धं रणे बाणो जितकाशी महाबलः॥ १४४

वाचं चोवाच संक्रुद्धो गृह्यतां हन्यतामिति।
वाचं च ब्रुवतस्तस्य श्रुत्वा प्राद्युम्निराहवे॥ १४५

बाणस्य ब्रुवतः क्रोधाद्धसमानोऽभ्युदैक्षत।
उषां भयपरित्रस्तां रुदतीं तत्र भामिनीम्॥ १४६

अनिरुद्धः प्रहस्याथ समाश्वास्य च तां स्थितः।
अथ बाणः शरौघाणां क्षुद्रकाणां समन्ततः॥ १४७

चिक्षेप समरे क्रुद्धो ह्यनिरुद्धवधेप्सया।
अनिरुद्धस्तु चिच्छेद काङ्क्षंस्तस्य पराजयम्॥ १४८

ववर्ष शरजालानि क्षुद्रकाणां समन्ततः।
बाणोऽनिरुद्धशिरसि काङ्क्षंस्तस्य रणे वधम्॥ १४९

ततो बाणसहस्राणि चर्मणा व्यवधूय सः।
बभौ प्रमुखतस्तस्य स्थितः सूर्य इवोदये॥ १५०

सोऽभिभूय रणे बाणमास्थितो यदुनन्दनः।
सिंहः प्रमुखतो दृष्ट्वा गजमेकं यथा वने॥ १५१

ततो बाणः स बाणौघैर्मर्मभेदिभिराशुगैः।
विव्याध निशितैस्तीक्ष्णैः प्राद्युम्निमपराजितम्॥ १५२

समाहतस्ततो बाणैः खड्गचर्मधरोऽपतत्।
तमापतन्तं निशितैरभ्यहन् सायकैस्तथा॥ १५३

सोऽतिविद्धो महाबाहुर्बाणैः संनतपर्वभिः।
क्रोधेनाभिप्रजज्वाल चिकीर्षुः कर्म दुष्करम्॥ १५४

जैसे पूर्वकालमें आदिदैत्य हिरण्यकशिपुका वध करनेके लिये उद्यत हुए भगवान् नरसिंह शोभा पाते थे, उसी प्रकार संग्रामकी लालसासे ढाल और तलवार धारण किये स्वस्थभावसे खड़े हुए वीर अनिरुद्ध सुशोभित होते थे॥ १४१॥ उस समय बाणासुरने अनिरुद्धको ढाल और तलवार लिये अपने सामने आते देखा। उन्हें केवल ढाल और तलवार धारण किये पैदल आते देख उन्हें मार डालनेकी इच्छासे बाणासुरको अनुपम हर्ष प्राप्त हुआ। कवचसे रहित तथा केवल खड्ग हाथमें लिये होनेपर भी यादववीर अनिरुद्ध बाणासुरको 'यह अजेय है' ऐसा मानते हुए भी निःशङ्क हो उसके सामने युद्धके लिये खड़े हुए। विजयसे सुशोभित होनेवाला महाबली बाणासुर कुपित हो रणभूमिमें अनिरुद्धसे बोला—'इसे पकड़ो, मारो'। उस समराङ्गणमें इस तरह बोलते हुए बाणासुरकी बात सुनकर हँसते हुए प्रद्युम्नकुमारने क्रोधपूर्वक उसकी ओर देखा। वहाँ भयसे संत्रस्त हो रोती हुई भामिनी उषाको सान्त्वना देकर अनिरुद्ध हँसते हुए युद्धके लिये खड़े हो गये। तदनन्तर समरभूमिमें कुपित हुए बाणासुरने अनिरुद्धके वधकी इच्छासे उनपर चारों ओरसे क्षुद्रक नामक बाणसमूहोंका प्रहार आरम्भ किया। किंतु अनिरुद्धने उसे पराजित करनेकी इच्छा रखकर उसके सारे बाणोंको तलवारसे ही काट डाला॥ १४२—१४८॥ तब बाणासुरने पुनः रणभूमिमें अनिरुद्धके वधकी अभिलाषासे उनके सिरपर सब ओरसे क्षुद्रक नामवाले बाणसमूहोंकी वर्षा आरम्भ कर दी॥ १४९॥ उस समय उसके हजारों बाणोंको ढालसे ही इधर-उधर करके अनिरुद्ध उसके सामने खड़े हो उदयकालके सूर्यकी भाँति शोभा पाने लगे॥ १५०॥ रणभूमिमें बाणासुरका तिरस्कार करके यदुनन्दन अनिरुद्ध उसी तरह निर्भय खड़े रहे, जैसे वनमें सिंह अपने सामने एक हाथीको देखकर निर्भय खड़ा रहता है॥ १५१॥ तदनन्तर बाणासुरने अपराजित वीर प्रद्युम्नकुमारको मर्मभेदी, शीघ्रगामी, तेज किये हुए पैने बाणसमूहोंद्वारा घायल कर दिया॥ १५२॥ उन बाणोंसे घायल होनेपर अनिरुद्ध ढाल और तलवार लिये बाणासुरपर टूट पड़े। उन्हें आक्रमण करते देख उस असुरने तीखे सायकोंसे उनपर और भी चोट की॥ १५३॥ झुकी हुई गाँठवाले बाणोंसे अत्यन्त घायल होनेपर महाबाहु अनिरुद्ध क्रोधसे जल उठे और दुष्कर कर्म करनेकी इच्छा करने लगे॥ १५४॥

रुधिरौघप्लुतैर्गात्रैर्बाणवर्षैः समाहितः।
अभिभूतः सुसंक्रुद्धो ययौ बाणरथं प्रति॥ १५५

असिभिर्मुसलैः शूलैः पट्टिशैस्तोमरैस्तथा।
सोऽतिविद्धः शरौघैश्च प्राद्युम्निर्न व्यकम्पत॥ १५६

आप्लुत्य सहसा क्रुद्धो रथेषां तस्य सोऽच्छिनत्।
जघान चाश्वान् खड्गेन बाणस्य रणमूर्धनि॥ १५७

तं पुनः शरवर्षेण पट्टिशैस्तोमरैरपि।
चकारान्तर्हितं बाणो युद्धमार्गविशारदः॥ १५८

हतोऽयमिति विज्ञाय प्रणदन् नैर्ऋता गणाः।
ततोऽवप्लुत्य सहसा रथपार्श्वे व्यवस्थितः॥ १५९

शक्तिं बाणस्ततः क्रुद्धो घोररूपां भयानकाम्।
जग्राह ज्वलितां घोरां घण्टामालाकुलां रणे॥ १६०

ज्वलनादित्यसंकाशां यमदण्डोग्रदर्शनाम्।
प्राहिणोत् तामसङ्गेन महोल्कां ज्वलितामिव॥ १६१

तामापतन्तीं सम्प्रेक्ष्य जीवितान्तकरीं तदा।
सोऽभिप्लुत्य तदा शक्तिं जग्राह पुरुषोत्तमः॥ १६२

निर्बिभेद ततो बाणं तया शक्त्या महाबलः।
सा भित्त्वा तस्य देहं वै प्राविशद् धरणीतलम्॥ १६३

स गाढविद्धो व्यथितो ध्वजयष्टिं समाश्रितः।
ततो मूर्च्छाभिभूतं तं कुम्भाण्डो वाक्यमब्रवीत्॥ १६४

उपेक्षसे दानवेन्द्र किमेवं शत्रुमुद्यतम्।
लब्धलक्षो ह्ययं वीरो निर्विकारोऽद्य दृश्यते॥ १६५

मायामाश्रित्य युध्यस्व नायं वध्योऽन्यथा भवेत्।
आत्मानं मां च रक्षस्व प्रमादात् किमुपेक्षसे॥ १६६

वध्यतामयमद्यैव न नः सर्वान् विनाशयेत्।
अन्यांश्च शतशो हत्वा उषां नीत्वा व्रजिष्यति॥ १६७

कुम्भाण्डवचनैरेवं दानवेन्द्रः प्रणोदितः।
वाचं रूक्षामभिक्रुद्धः प्रोवाच वदतां वरः॥ १६८

बाणोंकी वर्षासे आच्छादित हो अनिरुद्धके सारे अङ्ग खूनसे लथपथ हो गये, इस तरह पराभव प्राप्त होनेसे अनिरुद्धका क्रोध बहुत बढ़ गया और वे बाणासुरके रथकी ओर चल दिये। उस समय तलवारों, मुसलों, शूलों, पट्टिशों, तोमरों और बाणसमूहोंसे अत्यन्त घायल होनेपर भी प्रद्युम्नकुमार कम्पित नहीं हुए॥ १५५-१५६॥ सहसा क्रोधपूर्वक उछलकर उन्होंने बाणासुरके रथके हरसेको काट दिया और युद्धके मुहानेपर तलवारसे ही उसके घोड़ोंको मार डाला॥ १५७॥ तब युद्धमार्गके ज्ञानमें निपुण बाणासुरने पुनः पट्टिशों, तोमरों और बाणोंकी वर्षा करके अनिरुद्धको ढक दिया॥ १५८॥ अब यह मारा गया ऐसा जानकर वे दैत्य गर्जना करने लगे; इतनेमें ही अनिरुद्ध सहसा कूदकर रथके पार्श्वभागमें खड़े हो गये॥ १५९॥ तब कुपित हुए बाणासुरने रणभूमिमें एक घोर एवं भयानक शक्ति हाथमें ली, जो अग्निके समान प्रज्वलित हो रही थी; वह घोर शक्ति घंटाओंकी मालाओंसे व्याप्त थी। उसका तेज अग्नि और सूर्यके समान जान पड़ता था तथा वह यमदण्डके समान भयानक दिखायी देती थी; उस दैत्यने निर्भय होकर जलती हुई उल्काके समान वह शक्ति अनिरुद्धपर चला दी॥ १६०-१६१॥ उस समय जीवनका अन्त कर देनेवाली उस शक्तिको अपने ऊपर आती देख पुरुषप्रवर महाबली अनिरुद्धने उछलकर तत्काल उसे हाथसे पकड़ लिया और उसी शक्तिसे बाणासुरको विदीर्ण कर डाला; वह शक्ति उसके शरीरको विदीर्ण करती हुई पृथ्वीमें समा गयी॥ १६२-१६३॥ उस शक्तिकी गहरी चोटसे पीड़ित हो बाणासुरने ध्वजदण्डका सहारा ले लिया। उसे मूर्च्छित हुआ देख कुम्भाण्डने उससे कहा—॥ १६४॥ 'दानवराज! इस प्रकार उद्यत हुए शत्रुकी उपेक्षा किसलिये करते हो। इस वीरने अपना लक्ष्य पा लिया है, अतः आज निर्विकार दिखायी देता है॥ १६५॥ मायाका आश्रय लेकर युद्ध करो, अन्यथा यह मारा नहीं जा सकेगा। तुम अपनी और मेरी भी रक्षा करो। प्रमादवश उपेक्षा क्यों करते हो॥ १६६॥ इसको अभी मार डालो; कहीं ऐसा न हो यह हम सब लोगोंका नाश कर डाले; यदि तुम सावधान नहीं हुए तो यह अन्य सैकड़ों वीरोंको मारकर उषाको भी लेकर चला जायगा'॥ १६७॥ कुम्भाण्डके वचनोंसे इस प्रकार प्रेरित हुआ वक्ताओंमें श्रेष्ठ दानवराज बाण अत्यन्त कुपित हो यह रूखी बात बोला—॥ १६८॥

एषोऽहमस्य विदधे मृत्युं प्राणहरं रणे।
आदास्याम्यहमेतं वै गरुत्मानिव पन्नगम्॥ १६९

इत्येवमुक्त्वा सरथः सध्वजः साश्वसारथिः।
गन्धर्वनगराकारस्तत्रैवान्तरधीयत ॥ १७०

मुमोच निशितान् बाणांश्छन्नो मायाधरो बली।
विज्ञायान्तर्हितं बाणं प्राद्युम्निरपराजितः॥ १७१

पौरुषेण समायुक्तः सम्प्रैक्षत दिशो दश।
आस्थाय तामसीं विद्यां तदा क्रुद्धो बलेः सुतः॥ १७२

मुमोच विशिखांस्तीक्ष्णांश्छन्नो मायाधरो बली।
प्राद्युम्निर्विशिखैर्बद्धः सर्पभूतैः समन्ततः॥ १७३

वेष्टितो बहुधा तस्य देहः पन्नगराशिभिः।
स तु वेष्टितसर्वाङ्गो बद्धः प्राद्युम्निराहवे॥ १७४

निष्प्रयत्नः कृतस्तस्थौ मैनाक इव पर्वतः।
ज्वालावलीढवदनैः सर्पभोगैर्विचेष्टितः॥ १७५

अभितः पर्वताकारः प्राद्युम्निरभवद् रणे।
निष्प्रयत्नगतिश्चापि सर्पवक्त्रमयैः शरैः॥ १७६

न विव्यथे स भूतात्मा सर्वतः परिवेष्टितः।
ततस्तं वाग्भिरुग्राभिः संरब्धः समतर्जयत्॥ १७७

बाणो ध्वजं समाश्रित्य प्रोवाचामर्षितो वचः।
कुम्भाण्ड वध्यतां शीघ्रमयं वै कुलपांसनः॥ १७८

चारित्रं येन मे लोके दूषितं दूषितात्मना।
इत्येवमुक्ते वचने कुम्भाण्डो वाक्यमब्रवीत्॥ १७९

राजन् वक्ष्याम्यहं किंचित् तन्मे शृणु यदिच्छसि।
अयं विज्ञायतां कस्य कुतो वायमिहागतः॥ १८०

केन वायमिहानीतः शक्रतुल्यपराक्रमः।
मयायं बहुशो राजन् दृष्टो युध्यन् महारणे॥ १८१

क्रीडन्निव च युद्धेषु दृश्यते देवसूनुवत्।
बलवान् सत्त्वसम्पन्नः सर्वशस्त्रविशारदः॥ १८२

'यह लो! मैं अभी रणभूमिमें इसे मौतके हवाले कर देता हूँ, जो इसके प्राण हर लेगी। जैसे गरुड़ सर्पको दबोच लेता है, उसी प्रकार मैं भी इसे अपने काबूमें कर लूँगा'॥ १६९॥ ऐसा कहकर रथ, ध्वज, घोड़े और सारथिसहित बाणासुर गन्धर्वनगरके समान वहीं अन्तर्धान हो गया॥ १७०॥ वह मायाधारी बलवान् दानव स्वयं छिपकर अनिरुद्धपर पैने बाणोंकी वर्षा करने लगा। बाणासुरको अदृश्य हुआ जान अपराजित वीर अनिरुद्ध पुरुषार्थसे युक्त हो दसों दिशाओंकी ओर देखने लगे। तब क्रोधमें भरे हुए मायाधारी बलिपुत्र बलवान् बाणासुरने तामसी विद्याका आश्रय ले छिपे रहकर तीखे बाणोंका प्रहार आरम्भ किया। उस समय प्रद्युम्नकुमार अनिरुद्ध सर्पाकार बाणोंद्वारा चारों ओरसे बँध गये। उनका शरीर सर्पसमूहोंसे बारम्बार आवेष्टित हो गया। युद्धमें सारे अङ्ग सर्पोंसे वेष्टित एवं बद्ध हो जानेके कारण प्रद्युम्नकुमार अनिरुद्ध निश्चेष्ट कर दिये गये और वे मैनाक पर्वतकी भाँति अचलभावसे खड़े हो गये। मुखसे आग उगलनेवाले सर्पोंके शरीरोंद्वारा सब ओरसे आवेष्टित एवं चेष्टाहीन हुए अनिरुद्ध उस रणभूमिमें पर्वतके समान प्रतीत होते थे। सर्पमुख बाणोंद्वारा सब ओरसे परिवेष्टित हो अपना प्रयत्न और गति अवरुद्ध हो जानेपर भी सर्वभूतात्मा अनिरुद्ध मनमें व्यथित नहीं हुए। तब रोषमें भरे हुए बाणासुरने कठोर वचनोंद्वारा अनिरुद्धको फटकारा; फिर उसने ध्वजका सहारा लेकर अमर्षयुक्त हो यह बात कही— 'कुम्भाण्ड! इस कुलाङ्गारका शीघ्र वध कर डालो, जिस दूषित हृदयवाले दुष्टने संसारमें मेरे यशको कलङ्कित कर दिया'। बाणासुरके ऐसा कहनेपर मन्त्री कुम्भाण्डने कहा—'राजन्! इस विषयमें मैं कुछ कहना चाहता हूँ। यदि आपकी इच्छा हो तो मेरी बातको सुन लें। पहले इस बातको जान लीजिये, यह किसका पुत्र है और कहाँसे यहाँ आया है अथवा इस इन्द्रतुल्य पराक्रमी वीरको कौन यहाँ ले आया है? राजन्! मैंने इस महासमरमें युद्ध करते समय इसकी ओर बारम्बार देखा है। यह युद्धभूमिमें देवकुमारके समान क्रीड़ा करता-सा दिखायी देता था। दैत्यप्रवर! यह बलवान्, धैर्यसम्पन्न

नायं वधकृतं दोषमर्हते दैत्यसत्तम।
गान्धर्वेण विवाहेन कन्येयं तव संगता॥ १८३

अदेया ह्यप्रतिग्राह्या अतश्चिन्त्य वधं कुरु।
विज्ञाय च वधं वास्य पूजां वास्य करिष्यसि॥ १८४

वधे ह्यस्य महान् दोषो रक्षणे सुमहान् गुणः।
अयं हि पुरुषोत्कृष्टः सर्वथा मानमर्हति॥ १८५

सर्वतो वेष्टिततनुर्न व्यथत्येष भोगिभिः।
कुलशौण्डीर्यवीर्यैश्च सत्त्वेन च समन्वितः॥ १८६

पश्य राजन् महावीर्यैरन्वितः पुरुषोत्तमः।
न नो गणयते सर्वान् वधं प्राप्तोऽप्ययं बली॥ १८७

यदि मायाप्रभावेण नात्र बद्धो भवेदयम्।
सर्वान् सुरगणान् संख्ये योधयेन्नात्र संशयः॥ १८८

सर्वसंग्राममार्गज्ञो भवेद् वीर्याधिकस्तव।
शोणितौघप्लुतैर्गात्रैर्नागभोगैश्च वेष्टितः॥ १८९

त्रिशिखां भ्रुकुटिं कृत्वा न चिन्तयति नः स्थितान्।
इमामवस्थां नीतोऽपि स्वबाहुबलमाश्रितः॥ १९०

न चिन्तयति राजंस्त्वां वीर्यवान् कोऽप्यसौ युवा।
सहस्रबाहोः समरे द्विबाहुः समवस्थितः।
न चिन्तयति ते वीर्यमयं वीर्यमदान्वितः॥ १९१

उचितं यदि ते राजन् ज्ञेयो वीर्यबलान्वितः।
कन्या चेयं न चान्यस्य निर्यात्ये तेन संगता॥ १९२

यदि चेष्टतमः कश्चिदयं वंशे महात्मनाम्।
ततः पूजामयं वीरः प्राप्स्यते चासुरोत्तम॥ १९३

रक्ष्यतामिति चोक्त्वैव तथास्त्विति च तस्थिवान्।
एवमुक्ते तु वचने कुम्भाण्डेन महात्मना॥ १९४

तथेत्याह च कुम्भाण्डं बाणः शत्रुनिषूदनः।
संरक्षिणस्ततो दत्त्वा अनिरुद्धस्य धीमतः॥ १९५

तथा सम्पूर्ण शस्त्रविद्यामें प्रवीण है। अतः वधरूप दोषका पात्र नहीं है। आपकी कन्याने गान्धर्व विवाहके द्वारा इसके साथ समागम किया है। अतः न तो अब वह दूसरेको देनेयोग्य रह गयी है और न दूसरेके द्वारा ग्रहण करनेयोग्य ही; अतः खूब सोच-विचारकर इसका वध कीजिये। पहले इसका परिचय प्राप्त करके फिर वध अथवा पूजन कीजियेगा। इसका वध करनेमें महान् दोष है और रक्षा करनेमें महान् गुण। यह पुरुषोंमें श्रेष्ठ होनेके कारण सर्वथा सम्मानके योग्य है। देखिये! सर्पोंने सब ओरसे इसके शरीरको जकड़ लिया है तो भी यह व्यथित नहीं होता है। अपने कुलके अभिमान, बल-पराक्रम तथा धैर्यसे सम्पन्न है॥ १७१—१८६॥ राजन्! देखिये तो सही! महाबली सर्पोंसे बद्ध होकर वधावस्थाको प्राप्त होनेपर भी यह बलवान् पुरुषोत्तम वीर हम सब लोगोंको कुछ भी नहीं गिनता है॥ १८७॥ यदि यह मायाके प्रभावसे बाँधा न गया होता तो रणभूमिमें केवल असुरोंसे ही नहीं, समस्त देवताओंसे भी युद्ध कर सकता था, इसमें संशय नहीं है॥ १८८॥ यह युद्धके सभी मार्गोंका ज्ञाता तथा बल-पराक्रममें आपसे भी बढ़कर है। इसके सारे अङ्ग खूनसे लथपथ हो गये हैं। इसे सर्पके शरीरोंसे जकड़ दिया गया है तो भी यह भौहोंको तीन जगहसे टेढ़ी करके यहाँ खड़े हुए हमलोगोंको कुछ भी नहीं समझता है। राजन्! इस अवस्थाको पहुँच जानेपर भी यह अपने बाहुबलका भरोसा करके आपकी कोई परवा नहीं करता है। वास्तवमें यह युवक कोई अद्भुत पराक्रमी वीर है। सहस्रबाहुके साथ समरभूमिमें यह दो ही बाँहोंका वीर खड़ा है, किंतु अपने बल-पराक्रमके मदसे उन्मत्त हो आपके बल-वीर्यको कुछ नहीं समझता। असुरप्रवर! आपकी यह कन्या इसके साथ सम्बन्ध स्थापित कर चुकी है, अतः अब दूसरेको नहीं दी जा सकती। यदि यह किन्हीं महात्मा पुरुषोंके कुलमें उत्पन्न हो तो हमारे लिये परम अभीष्ट है। उस दशामें यह वीर हमसे पूजा प्राप्त करेगा॥ १८९—१९३॥ अतः आप इसकी रक्षा कीजिये।' इतना कहकर ही कुम्भाण्ड चुप हो गये। महात्मा कुम्भाण्डके ऐसी बात कहनेपर शत्रुसूदन बाणासुर भी उनसे 'तथास्तु' कहकर चुपचाप बैठा रहा। तदनन्तर बुद्धिमान् अनिरुद्धके लिये पहरेदार देकर

ययौ स्वमेव भवनं बलेः पुत्रो महायशाः।
संयतं मायया दृष्ट्वा अनिरुद्धं महाबलम्॥ १९६
ऋषीणां नारदः श्रेष्ठोऽव्रजद् द्वारवतीं प्रति।
ततो ह्याकाशमार्गेण मुनिर्द्वारवतीं गतः॥ १९७
गते ऋषीणां प्रवरे सोऽनिरुद्धो व्यचिन्तयत्।
नष्टोऽयं दानवः क्रूरो युद्धमेष्यत्यसंशयः॥ १९८
स गत्वा नारदस्तत्र शङ्खचक्रगदाधरम्।
ज्ञापयिष्यति तत्त्वेन इममर्थं न संशयः॥ १९९
नागैर्विचेष्टितं दृष्ट्वा उषा प्राद्युम्निमातुरा।
रुरोद बाष्परुद्धाक्षी तामाह रुदतीं पुनः॥ २००
किमिदं रुद्यते भीरु मा भैस्त्वं मृगलोचने।
पश्य सुश्रोणि सम्प्राप्तं मत्कृते मधुसूदनम्॥ २०१
यस्य शङ्खध्वनिं श्रुत्वा बाहुशब्दं बलस्य च।
दानवा नाशमेष्यन्ति गर्भाश्चासुरयोषिताम्॥ २०२

वैशम्पायन उवाच

एवमुक्तानिरुद्धेन उषा विश्रम्भमागता।
नृशंसं पितरं चैव शोचते सा सुमध्यमा॥ २०३

महायशस्वी बलिपुत्र बाणासुर अपने घरको ही चला गया। महाबली अनिरुद्धको मायाद्वारा बँधा हुआ देख मुनिश्रेष्ठ नारद आकाशमार्गसे द्वारकापुरीकी ओर चल दिये॥ १९४—१९७॥ मुनिप्रवर नारदजीके चले जानेपर अनिरुद्ध मन-ही-मन इस प्रकार विचार करने लगे—यह क्रूर दानव कहीं छिप गया है। पुनः युद्धके लिये आयेगा, इसमें संशय नहीं है॥ १९८॥ नारदजी वहाँ जाकर शङ्ख-चक्र-गदाधर भगवान् श्रीकृष्णसे यह सब समाचार ठीक-ठीक बतायेंगे, इसमें कोई संदेह नहीं है॥ १९९॥ साँपोंसे बँधकर अनिरुद्ध चेष्टाहीन हो गये हैं, यह देख व्याकुल हुई उषा फूट-फूटकर रोने लगी। उसके नेत्र आँसुओंसे भर गये, तब उस रोती हुई उषासे अनिरुद्धने कहा—॥ २००॥ 'भीरु! तुम इस तरह रोती क्यों हो? मृगलोचने! भयभीत न हो। सुश्रोणि! देखो, भगवान् मधुसूदन मेरे लिये यहाँ आना ही चाहते हैं। जिनके शङ्खनादको, भुजाओंके शब्दको और बलकी चर्चाको सुनकर दानव नष्ट हो जायँगे और असुरोंकी स्त्रियोंके गर्भ गिर जायँगे'॥ २०१-२०२॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! अनिरुद्धके ऐसा कहनेपर उषाको विश्वास हो गया। वह सुन्दर कटिप्रदेशवाली सुन्दरी अब अपने निर्दय पिताके लिये शोक करने लगी॥ २०३॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे विष्णुपर्वणि बाणानिरुद्धयुद्धे एकोनविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः॥ ११९॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत विष्णुपर्वमें बाणासुर और अनिरुद्धका युद्धविषयक एक सौ उन्नीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ११९॥

विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

अनिरुद्धके द्वारा आर्यादेवीकी स्तुति और देवीका प्रसन्न होकर उन्हें बन्धनके कष्टसे मुक्त करना

वैशम्पायन उवाच

यदा बाणपुरे वीरः सोऽनिरुद्धः सहोषया।
संनिरुद्धो नरेन्द्रेण बाणेन बलिसूनुना॥ १
तदा देवीं कोटवतीं रक्षार्थं शरणं गतः।
यद् गीतमनिरुद्धेन देव्याः स्तोत्रमिदं शृणु॥ २
अनन्तमक्षयं दिव्यमादिदेवं सनातनम्।
नारायणं नमस्कृत्य प्रवरं जगतां प्रभुम्॥ ३
चण्डीं कात्यायनीं देवीमार्यां लोकनमस्कृताम्।
वरदां कीर्तयिष्यामि नामभिर्हरिसंस्तुतैः॥ ४

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! जब उषाके साथ वीर अनिरुद्ध बलिकुमार राजा बाणासुरके द्वारा बाणनगरमें बंदी बना लिये गये, तब वे अपनी रक्षाके लिये कोटवती देवीकी शरणमें गये। उस समय अनिरुद्धने जिस स्तोत्रका गान किया था, वह इस प्रकार है; सुनो॥ १-२॥ जो अनन्त, अक्षय, दिव्य, आदिदेव और सनातन हैं, उन सर्वश्रेष्ठ जगदीश्वर नारायणदेवको नमस्कार करके विश्ववन्दित वरदायिनी चण्डी कात्यायनी आर्या देवीका मैं श्रीहरिके द्वारा प्रशंसित नामोंसे कीर्तन करूँगा॥ ३-४॥

ऋषिभिर्दैवतैश्चैव वाक्पुष्पैरर्चितां शुभाम्।
तां देवीं सर्वदेहस्थां सर्वदेवनमस्कृताम्॥ ५

अनिरुद्ध उवाच

महेन्द्रविष्णुभगिनीं नमस्यामि हिताय वै।
मनसा भावशुद्धेन शुचिः स्तोष्ये कृताञ्जलिः॥ ६

गौतमीं कंसभयदां यशोदानन्दवर्द्धिनीम्।
मेध्यां गोकुलसम्भूतां नन्दगोपस्य नन्दिनीम्॥ ७

प्राज्ञां दक्षां शिवां सौम्यां दनुपुत्रविमर्दिनीम्।
तां देवीं सर्वदेहस्थां सर्वभूतनमस्कृताम्॥ ८

दर्शनीं पूरणीं मायां वह्निसूर्यशशिप्रभाम्।
शान्तिं ध्रुवां च जननीं मोहिनीं शोषणीं तथा॥ ९

सेव्यां देवैः सर्षिगणैः सर्वदेवनमस्कृताम्।
कालीं कात्यायनीं देवीं भयदां भयनाशिनीम्॥ १०

कालरात्रिं कामगमां त्रिनेत्रां ब्रह्मचारिणीम्।
सौदामिनीं मेघरवां वेतालीं विपुलाननाम्॥ ११

यूथस्याद्यां महाभागां शकुनीं रेवतीं तथा।
तिथीनां पञ्चमीं षष्ठीं पूर्णमासीं चतुर्दशीम्॥ १२

सप्तविंशतिऋक्षाणि नद्यः सर्वा दिशो दश।
नगरोपवनोद्यानद्वाराट्टालकवासिनीम् ॥ १३

ह्रीं श्रीं गङ्गां च गन्धर्वां योगिनीं योगदां सताम्।
कीर्तिमाशां दिशं स्पर्शां नमस्यामि सरस्वतीम्॥ १४

वेदानां मातरं चैव सावित्रीं भक्तवत्सलाम्।
तपस्विनीं शान्तिकरीमेकानंशां सनातनीम्॥ १५

ऋषियों और देवताओंने वाणीरूपी पुष्पोंद्वारा जिन मङ्गलमयी देवीकी पूजा की है, जो सबके शरीरमें विराजमान हैं तथा सम्पूर्ण देवता जिन्हें नमस्कार करते हैं, उन आर्या देवीका मैं गुणगान करूँगा॥ ५॥

अनिरुद्धने कहा—जो देवराज इन्द्र और भगवान् विष्णुकी बहिन हैं, उन देवीको मैं अपने हितके लिये नमस्कार करता हूँ तथा हाथ जोड़कर पवित्र हो भावशुद्ध हृदयसे उनकी स्तुति करना चाहता हूँ॥ ६॥ जो गौतमी (गोदावरी)-स्वरूपा, कंसको भय देनेवाली, यशोदाका आनन्द बढ़ानेवाली, पवित्र, गोकुलमें आविर्भूत तथा नन्दगोपकी नन्दिनी हैं, उन आर्यादेवीको मैं नमस्कार करता हूँ॥ ७॥ जो प्राज्ञा (बुद्धिमती एवं विदुषी), दक्षा, कल्याणस्वरूपा, सौम्या, दानवमर्दिनी, सबके शरीरमें विद्यमान तथा सम्पूर्ण भूतोंद्वारा वन्दित हैं, उन आर्यादेवीको मेरा प्रणाम है॥ ८॥ जो दर्शनी (दृष्टिशक्ति), पूरणी (मनोरथोंकी पूर्ति करनेवाली), मायास्वरूपा, अग्नि, सूर्य और चन्द्रमाके समान कान्तिवाली, शान्तिमयी, ध्रुवा (अविनाशिनी), सबकी जननी, मोहिनी तथा शोषणी हैं, ऋषियोंसहित सम्पूर्ण देवता जिनकी सेवा करते हैं, समस्त देवता जिनके चरणोंमें शीश झुकाते हैं, जो काली, कात्यायनी देवी, भयदायिनी तथा भयनाशिनी हैं, उनको मैं नमस्कार करता हूँ॥ ९-१०॥ जो कालरात्रि, इच्छानुसार सर्वत्र जा सकनेवाली, त्रिनेत्रधारिणी और ब्रह्मचारिणी हैं, जो विद्युत्स्वरूपा, मेघके समान गर्जना करनेवाली, वेताली और विशाल मुखवाली हैं, उन देवीको मैं नमस्कार करता हूँ॥ ११॥ जो यूथकी प्रधान अध्यक्षा, महासौभाग्यशालिनी, शकुनी, रेवती आदि ग्रहस्वरूपा तथा तिथियोंमें पञ्चमी, षष्ठी, पूर्णमासी और चतुर्दशीस्वरूपा हैं, उन देवीको नमस्कार है॥ १२॥ सत्ताईस नक्षत्र, सम्पूर्ण नदियाँ और दसों दिशाएँ—ये जिनके स्वरूप हैं, जो नगरों, उपवनों, उद्यानों और अट्टालिकाओंमें उनकी अधिष्ठात्री देवीके रूपमें निवास करती हैं, उन आर्यादेवीको मैं नमस्कार करता हूँ॥ १३॥ जो ह्री (लज्जा), श्री (लक्ष्मी या सम्पत्ति), गङ्गा, गन्धर्वा (श्रीराधा), योगिनी तथा सत्पुरुषोंको योग प्रदान करनेवाली हैं, उन कीर्ति, आशा, दिशा, स्पर्शा एवं सरस्वती नामवाली देवीको मैं प्रणाम करता हूँ॥ १४॥ जो वेदोंकी माता, भक्तवत्सला सावित्री, तपस्विनी, शान्तिकरी, एकानंशा एवं सनातन-स्वरूपा हैं, उन आर्यादेवीको नमस्कार है॥ १५॥

कौटीर्यां मदिरां चण्डामिलां मलयवासिनीम्।
भूतधात्रीं भयकरीं कूष्माण्डीं कुसुमप्रियाम्॥ १६

दारुणीं मदिरावासां विन्ध्यकैलासवासिनीम्।
वराङ्गनां सिंहरथीं बहुरूपां वृषध्वजाम्॥ १७

दुर्लभां दुर्जयां दुर्गां निशुम्भभयदर्शिनीम्।
सुरप्रियां सुरां देवीं वज्रपाण्यनुजां शिवाम्॥ १८

किरातीं चीरवसनां चौरसेनानमस्कृताम्।
आज्यपां सोमपां सौम्यां सर्वपर्वतवासिनीम्॥ १९

निशुम्भशुम्भमथनीं गजकुम्भोपमस्तनीम्।
जननीं सिद्धसेनस्य सिद्धचारणसेविताम्॥ २०

चरां कुमारप्रभवां पार्वतीं पर्वतात्मजाम्।
पञ्चाशद्देवकन्यानां पत्न्यो देवगणस्य च॥ २१

कद्रुपुत्रसहस्रस्य पुत्रपौत्रवरस्त्रियः।
माता पिता जगन्मान्या दिवि देवाप्सरोगणैः॥ २२

ऋषिपत्नीगणानां च यक्षगन्धर्वयोषिताम्।
विद्याधराणां नारीषु साध्वीषु मनुजासु च॥ २३

एवमेतासु नारीषु सर्वभूताश्रया ह्यसि।
नमस्कृतासि त्रैलोक्ये किन्नरोद्गीतसेविते॥ २४

अचिन्त्या ह्यप्रमेयासि यासि सासि नमोऽस्तु ते।
एभिर्नामभिरन्यैश्च कीर्तिता ह्यसि गौतमि॥ २५

जो कुटीरवासिनी, मत्त बना देनेवाली, अत्यन्त कोपना, इला, मलयवासिनी, सम्पूर्ण भूतोंको धारण करनेवाली, भयङ्करी, कूष्माण्डी और कुसुमप्रिया हैं, उन देवीको मेरा नमस्कार है॥ १६॥ जिनका स्वभाव दारुण है, आवासस्थान भी मत्त बना देनेवाला है, जो विन्ध्य और कैलास पर्वतपर निवास करती हैं, श्रेष्ठ अङ्गना हैं, सिंह जिनका रथ या वाहन है, जो बहुत-से रूप धारण करनेवाली तथा वृषभचिह्नसे चिह्नित ध्वजवाली हैं, उन देवीको नमस्कार है॥ १७॥ जो दुर्लभ, दुर्जय, दुर्गम, निशुम्भासुरको भय दिखानेवाली, देवप्रिया, सुरस्वरूपा तथा वज्रपाणि इन्द्रकी अनुजा हैं, उन कल्याणमयी देवीको नमस्कार है॥ १८॥ जो किरात-वेष धारण करनेवाली, चीर-वस्त्रधारिणी और चोरोंकी सेनासे नमस्कृत हैं तथा जो घृत पीनेवाली, सोमरसका पान करनेवाली, सौम्यस्वरूपा एवं समस्त पर्वतोंमें निवास करनेवाली हैं, उन देवीको मैं नमस्कार करता हूँ॥ १९॥ जो निशुम्भ और शुम्भका संहार करनेवाली हैं, जिनके स्तन हाथीके कुम्भस्थलके समान जान पड़ते हैं तथा सिद्ध और चारण जिनकी सेवामें लगे रहते हैं, जो कार्तिकेयकी जननी हैं, जिनसे कुमारकी उत्पत्ति हुई है तथा जो पर्वतकी पुत्री होनेपर भी सर्वत्र विचरनेवाली हैं, उन पार्वती देवीको मैं प्रणाम करता हूँ। पचास देवकन्याओंमें[1], जो देवताओंकी पत्नियाँ हैं उनमें, कद्रूके जो हजारों पुत्र हैं—उनके पुत्रों और पौत्रोंकी जो सुन्दरी स्त्रियाँ हैं—उनमें, माता और पितामें, स्वर्गके देवताओं और अप्सराओंसहित ऋषिपत्नियोंमें, यक्षों और गन्धर्वोंकी स्त्रियोंमें, विद्याधरोंकी नारियोंमें और सती-साध्वी मानवी स्त्रियोंमें, इस प्रकार इन उपर्युक्त महिलाओंमें आप जगन्माता देवीका निवास है; क्योंकि आप सम्पूर्ण भूतोंका आश्रय हैं। तीनों लोकोंमें सर्वत्र आपके चरणोंमें मस्तक झुकाया जाता है। किन्नरलोग उच्च स्वरसे गीत गाकर आपकी सेवा करते हैं॥ २०—२४॥ आप अचिन्त्य और अप्रमेय हैं, जो हैं सो हैं, आपको नमस्कार है। गौतमनन्दिनि! इन पूर्वोक्त नामोंसे और दूसरे नामोंसे भी आपका ही कीर्तन होता है॥ २५॥

१. पचास देवकन्याएँ यहाँ दक्ष प्रजापतिकी पुत्रियाँ हैं। इनमेंसे २७ सोमको, १३ कश्यपको और १० धर्मको व्याही गयी थीं। इस प्रकार इनकी संख्या पचास है।

त्वत्प्रसादादविघ्नेन क्षिप्रं मुच्येय बन्धनात्।
अवेक्षस्व विशालाक्षि पादौ ते शरणं व्रजे॥ २६

सर्वेषामेव बन्धानां मोक्षणं कर्तुमर्हसि।
ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च चन्द्रसूर्याग्निमारुताः॥ २७

अश्विनौ वसवश्चैव विश्वेसाध्यास्तथैव च।
मरुता सह पर्जन्यो धाता भूमिर्दिशो दश॥ २८

गावो नक्षत्रवंशाश्च ग्रहा नद्यो ह्रदास्तथा।
सरितः सागराश्चैव नानाविद्याधरोरगाः॥ २९

तथा नागाः सुपर्वाणो गन्धर्वाप्सरसां गणाः।
कृत्स्नं जगदिदं प्रोक्तं देव्या नामानुकीर्तनात्॥ ३०

देव्याः स्तवमिमं पुण्यं यः पठेत् सुसमाहितः।
सा तस्मै सप्तमे मासि वरमग्र्यं प्रयच्छति॥ ३१

अष्टादशभुजा देवी दिव्याभरणभूषिता।
हारशोभितसर्वाङ्गी मुकुटोज्ज्वलभूषणा॥ ३२

कात्यायनि स्तूयसे त्वं वरमग्र्यं प्रयच्छसि।
अतः स्तवीमि त्वां देवीं वरदे वामलोचने॥ ३३

नमोऽस्तु ते महादेवि सुप्रीता मे सदा भव।
प्रयच्छ त्वं वरं ह्यायुः पुष्टिं चैव क्षमां धृतिम्॥ ३४

बन्धनस्थो विमुच्येयं सत्यमेतद् भवेदिति।

वैशम्पायन उवाच

एवं स्तुता महादेवी दुर्गा दुर्गपराक्रमा॥ ३५

सांनिध्यं कल्पयामास अनिरुद्धस्य बन्धने।
अनिरुद्धहितार्थाय देवी शरणवत्सला॥ ३६

बद्धं बाणपुरे वीरमनिरुद्धं व्यमोक्षयत्।
सान्त्वयामास तं वीरमनिरुद्धममर्षणम्॥ ३७

पूजयामास तां वीरः सोऽनिरुद्धः प्रतापवान्।
प्रसादं दर्शयामास अनिरुद्धस्य बन्धने॥ ३८

नागपाशेन बद्धस्य तस्योषाहृतचेतसः।
स्फोटयित्वा कराग्रेण पञ्जरं वज्रसंनिभम्॥ ३९

रुद्रं बाणपुरे वीरं सानिरुद्धमभाषत।
सान्त्वयन्ती वचो देवी प्रसादाभिमुखी तदा॥ ४०

विशाललोचने! मैं आपकी कृपासे बिना किसी विघ्न-बाधाके शीघ्र बन्धनमुक्त हो जाऊँ। आप मेरे ऊपर कृपादृष्टि करें; मैं आपके चरणोंकी शरण लेता हूँ। आप मुझे सभी बन्धनोंसे छुड़ानेयोग्य हैं। ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, चन्द्रमा, सूर्य, अग्नि, वायु, अश्विनीकुमार, वसु, विश्वेदेव, साध्यगण, मरुद्‌गण, पर्जन्य, धाता, भूमि, दसों दिशाएँ, गौ, नक्षत्रसमूह, ग्रहगण, नदियाँ, सरोवर, सरिताएँ, समुद्र, नाना विद्याधर, सर्प, नाग, गरुड़, गन्धर्व और अप्सराओंके समूह—इस प्रकार देवीके नामोंका बारम्बार कीर्तन करनेसे इस सम्पूर्ण जगत्‌का कीर्तन हो जाता है॥ २६—३०॥ जो एकाग्रचित्त होकर देवीके इस पवित्र स्तोत्रका पाठ करता है, देवी उसे सातवें महीनेमें उत्तम वर प्रदान करती हैं॥ ३१॥ देवीकी अठारह भुजाएँ हैं। वे दिव्य आभरणोंसे विभूषित हैं। हारसे उनके सारे अङ्ग सुशोभित हैं। मुकुटकी आभासे उनके आभूषण चमक उठे हैं॥ ३२॥ कात्यायनि! जब आपकी स्तुति की जाती है, तब आप उत्तम वर प्रदान करती हैं। अतः वरदायिनि वामलोचने! मैं आप देवीकी स्तुति करता हूँ॥ ३३॥ महादेवि! आपको नमस्कार है। आप सदा मुझपर सुप्रसन्न रहें और मुझे श्रेष्ठ आयु, पुष्टि, क्षमा तथा धैर्य प्रदान करें। मैं बन्धनमें पड़ा हुआ हूँ, किंतु इससे मुक्त हो जाऊँ—मेरा यह संकल्प सत्य हो॥ ३४½॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन्! इस प्रकार स्तुति की जानेपर दुर्गम पराक्रम प्रकट करनेवाली महादेवी दुर्गाने बन्धनागारमें अनिरुद्धके पास आकर उन्हें दर्शन दिया। उस शरणागतवत्सला देवीने बाणनगरमें बँधे हुए वीर अनिरुद्धको उनका हित-साधन करनेके लिये बन्धनसे मुक्त कर दिया। साथ ही उन अमर्षशील वीर अनिरुद्धको सान्त्वना प्रदान की॥ ३५—३७॥ उस समय प्रतापी वीर अनिरुद्धने देवीका पूजन किया। देवीने बन्धनागारमें अनिरुद्धको अपनी कृपाका प्रत्यक्ष दर्शन कराया॥ ३८॥ जो नागपाशमें बँधे हुए थे और उषाने जिनके चित्तको चुरा लिया था, उन अनिरुद्धके वज्रतुल्य पिंजरेको अपने हाथके अग्रभागसे तोड़-फोड़कर देवीने बाणपुरमें अवरुद्ध हुए वीर अनिरुद्धको मुक्त कर दिया और कृपा करनेके लिये उद्यत हो उन्हें सान्त्वना देते हुए इस प्रकार कहा—॥ ३९-४०॥

श्रीदेव्युवाच

चक्रायुधो मोक्षयितानिरुद्ध
त्वां बन्धनादाशु सहस्व कालम्।
छित्त्वा स बाणस्य सहस्रबाहुं
पुरीं निजां नेष्यति दैत्यसूदनः॥ ४१
ततोऽनिरुद्धः पुनरेव देवीं
तुष्टाव हृष्टः शशिकान्तवक्त्रः।

अनिरुद्ध उवाच

नमोऽस्तु ते देवि वरप्रदे शिवे
नमोऽस्तु ते देवि सुरारिनाशिनि॥ ४२
नमोऽस्तु ते कामचरे सदाशिवे
नमोऽस्तु ते सर्वहितैषिणि प्रिये।
नमोऽस्तु ते भीतिकरि द्विषां सदा
नमोऽस्तु ते बन्धनमोक्षकारिणि॥ ४३
ब्रह्माणीन्द्राणि रुद्राणि भूतभव्यभवे शिवे।
त्राहि मां सर्वभीतिभ्यो नारायणि नमोऽस्तु ते॥ ४४
नमोऽस्तु ते जगन्नाथे प्रिये दान्ते महाव्रते।
भक्तिप्रिये जगन्मातः शैलपुत्रि वसुन्धरे॥ ४५
त्राहि मां त्वं विशालाक्षि नारायणि नमोऽस्तु ते।
त्रायस्व सर्वदुःखेभ्यो दानवानां भयंकरि॥ ४६
रुद्रप्रिये महाभागे भक्तानामार्तिनाशिनि।
नमामि शिरसा देवीं बन्धनस्थो विमोक्षितः॥ ४७

वैशम्पायन उवाच

आर्यास्तवमिदं पुण्यं यः पठेत् सुसमाहितः।
सर्वपापविनिर्मुक्तो विष्णुलोकं स गच्छति।
बन्धनस्थो विमुच्येत सत्यं व्यासवचो यथा॥ ४८

श्रीदेवीने कहा—अनिरुद्ध! चक्रधारी भगवान् श्रीकृष्ण शीघ्र आकर तुम्हें पूर्णतः इस बन्धनसे छुड़ायेंगे, तबतक कुछ कालतक इस कष्टको सहन करो। वे दैत्यसूदन श्रीहरि बाणासुरकी सहस्र भुजाओंका छेदन करके तुम्हें अपनी पुरीको ले जायँगे। तदनन्तर चन्द्रमाके समान कमनीय मुखवाले अनिरुद्धने प्रसन्न होकर पुनः देवीका स्तवन किया॥ ४१$\frac{1}{2}$॥

अनिरुद्ध बोले—कल्याणस्वरूपे! वरदायिनि देवि! आपको नमस्कार है। देवशत्रुओंका नाश करनेवाली देवि! आपको प्रणाम है॥ ४२॥ इच्छानुसार विचरनेवाली सदाशिवे! आपको नमस्कार है। सबका हित चाहनेवाली सर्वप्रिये! आपको नमस्कार है। शत्रुओंको सदा भय देनेवाली देवि! आपको प्रणाम है तथा बन्धनसे छुड़ानेवाली देवि! आपको नमस्कार है॥ ४३॥ ब्रह्माणि! इन्द्राणि! रुद्राणि! भूत, वर्तमान और भविष्यस्वरूपे शिवे! सब प्रकारके भयोंसे मेरी रक्षा करें। नारायणि! आपको नमस्कार है॥ ४४॥ जगत्की रक्षा करनेवाली प्रिय देवि! आपको नमस्कार है। मन और इन्द्रियोंको वशमें रखनेवाली महाव्रतधारिणी भक्तप्रिये! जगन्मातः! गिरिराजनन्दिनि! वसुन्धरे! विशाल नेत्रोंवाली नारायणि! आप मेरी रक्षा कीजिये! आपको नमस्कार है। दानवोंको भय देनेवाली देवि! सब प्रकारके दुःखोंसे मेरा परित्राण कीजिये॥ ४५-४६॥ रुद्रप्रिये! भक्तोंकी पीड़ा दूर करनेवाली महाभागे! मैं चरणोंमें मस्तक झुकाकर आप देवीको नमस्कार करता हूँ। आपने मुझे बन्धनमें रहते हुए भी मुक्त कर दिया॥ ४७॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन्! जो एकाग्रचित्त होकर इस पवित्र आर्यास्तोत्रका पाठ करता है, वह सब पापोंसे मुक्त होकर विष्णुलोकमें जाता है और यदि बन्धनमें पड़ा हो तो उससे मुक्त हो जाता है। जैसा कि व्यासजीका सत्य वचन है॥ ४८॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे विष्णुपर्वणि अनिरुद्धकृत आर्यास्तवो नाम विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः॥ १२०॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत विष्णुपर्वमें आर्यास्तवविषयक एक सौ बीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १२०॥

एकविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

अनिरुद्धके अपहरणसे रनिवासमें शोक, श्रीकृष्ण और यादवोंकी चिन्ता, गुप्तचरोंकी नियुक्ति और उनकी विफलता, नारदजीका आगमन और अनिरुद्धका समाचार-निवेदन, श्रीकृष्णके द्वारा गरुड़का आवाहन, गरुड़द्वारा श्रीकृष्णकी स्तुति और श्रीकृष्णका शोणितपुरको प्रस्थान

वैशम्पायन उवाच

ततोऽनिरुद्धस्य गृहे रुरुदुः सर्वयोषितः।
प्रियं नाथमपश्यन्त्यः कुरर्य इव संघशः॥ १

अहो धिक्किमिदं नाथनाथे कृष्णे व्यवस्थिते।
अनाथा इव संत्रस्ता रुदिमो भयपीडिताः॥ २

यस्येन्द्रप्रमुखा देवाः सादित्याः समरुद्गणाः।
बाहुच्छायामुपाश्रित्य वसन्ति दिवि निर्वृताः॥ ३

तस्योत्पन्नमिदं लोके भयदस्य महाभयम्।
तस्यानिरुद्धः पौत्रस्तु वीरः केनापि नो हृतः॥ ४

अहो नास्ति भयं नूनं तस्य लोके सुदुर्मतेः।
वासुदेवस्य यः क्रोधमुत्पादयति दुःसहम्॥ ५

व्यादितास्यस्य यो मृत्योर्दंष्ट्राग्रे परिवर्तते।
स वासुदेवं समरे मोहादभ्युदियाद् रिपुः॥ ६

इदमेवंविधं कृत्वा विप्रियं यदुपुङ्गवे।
कथं जीवन् विमुच्येत साक्षादपि शचीपतिः॥ ७

हृतनाथाः स्म शोच्याः स्म वयं नाथं विना कृताः।
विप्रयोगेण नाथस्य कृतान्तवशगाः कृताः॥ ८

इत्येवं ता वदन्त्यश्च रुदन्त्यश्च पुनः पुनः।
नेत्रजं वारि मुमुचुरशिवं परमाङ्गनाः॥ ९

तासां बाष्पाम्बुपूर्णानि नयनानि चकाशिरे।
सलिलेनाप्लुतानीव पङ्कजानि जलागमे॥ १०

तासामरालपक्ष्माणि राजयन्ति शुभानि च।
रुधिरेणाप्लुतानीव नयनानि चकाशिरे॥ ११

तासां हर्म्यतलस्थानां पूर्ण आसीन्महास्वनः।
कुररीणामिवाकाशे रुदतीनां सहस्रशः॥ १२

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! तदनन्तर अनिरुद्धके महलमें रहनेवाली समस्त सुन्दरियाँ अपने प्रिय स्वामीको न देखकर झुंड-की-झुंड एकत्र हो कुररियोंकी भाँति विलाप करने लगीं—॥ १॥ 'अहो! धिक्कार है, यह क्या हुआ? नाथोंके भी नाथ श्रीकृष्णके रहते हुए हमलोग अनाथकी भाँति संत्रस्त और भयसे पीड़ित हो रोदन करती हैं॥ २॥ जिनकी भुजाओंकी छायाका आश्रय ले आदित्यों और मरुद्गणोंसहित इन्द्र आदि सभी देवता स्वर्गमें सुखपूर्वक निवास करते हैं। लोकमें भय देनेवाले (या दूसरोंके भयका निवारण करनेवाले) उन्हीं भगवान् श्रीकृष्णके समक्ष आज यह महान् भय उत्पन्न हो गया। उनके वीर पौत्र हमारे स्वामी अनिरुद्धको आज किसीने हर लिया॥ ३-४॥ अहो! उस दुर्बुद्धिको निश्चय ही संसारमें कोई भय नहीं है, जो भगवान् वासुदेवके हृदयमें दुःसह क्रोध उत्पन्न कर रहा है॥ ५॥ जो मुँह बाकर खड़ी हुई मौतकी दाढ़ोंके सामने चक्कर लगाता है, वही मोहवश समराङ्गणमें शत्रुभावसे भगवान् वासुदेवके सामने जा सकता है॥ ६॥ यदुकुलतिलक श्रीकृष्णके प्रति यह ऐसा अप्रिय बर्ताव करके साक्षात् शचीपति इन्द्र भी कैसे जीवित छूट सकता है?॥ ७॥ हाय! हमारे नाथका अपहरण हो जानेसे हम सब-की-सब अनाथ एवं शोचनीय हो गयीं। अपने स्वामीके वियोगसे हम कालके अधीन कर दी गयीं'॥ ८॥ वे सुन्दरी अङ्गनाएँ इस प्रकार बारम्बार विलाप करती और रोती हुई अपने नेत्रोंसे अमङ्गलसूचक आँसू बहाने लगीं॥ ९॥ उनके अश्रुजलसे भरे हुए नेत्र वर्षाकालमें जलसे भीगे हुए कमलोंके समान प्रकाशित हो रहे थे॥ १०॥ उनके कुटिल बरौनियोंसे युक्त सुन्दर एवं लाल नेत्र खूनमें डूबे हुए-से प्रतीत होते थे॥ ११॥ अट्टालिकाओंमें बैठकर रोती हुई उन सुन्दरियोंका सब ओर फैला हुआ वह आर्तनाद आकाशमें सहस्रों कुररियोंके करुण-क्रन्दनके समान जान पड़ता था॥ १२॥

ते श्रुत्वा निनदं घोरमपूर्वं भयमागतम्।
उत्पेतुः सहसा स्वेभ्यो गृहेभ्यः पुरुषर्षभाः ॥ १३

कस्मादेषोऽनिरुद्धस्य श्रूयते सुमहास्वनः।
गृहे कृष्णाभिगुप्तानां कुतो नो भयमागतम्॥ १४

इत्येवमूचुस्तेऽन्योन्यं स्नेहविक्लवगद्गदाः।
अधर्षिता यथा सिंहा गुहाभ्य इव निःसृताः ॥ १५

सन्नाहभेरी कृष्णस्य आहता महती तदा।
यस्याः शब्देन ते सर्वे समागम्य च धिष्ठिताः ॥ १६

किमेतदिति तेऽन्योन्यं समपृच्छन्त यादवाः।
अन्योन्यस्य हि ते सर्वे यथावृत्तमवेदयन्॥ १७

ततस्ते बाष्पपूर्णाक्षाः क्रोधसंरक्तलोचनाः।
निःश्वसन्तो व्यतिष्ठन्त यादवा युद्धदुर्मदाः ॥ १८

तूष्णींभूतेषु सर्वेषु विपृथुर्वाक्यमब्रवीत्।
कृष्णं प्रहरतां श्रेष्ठं निःश्वसन्तं मुहुर्मुहुः ॥ १९

किमिदं चिन्तयाविष्टः पुरुषेन्द्र भवानिह।
तव बाहुबलप्राणाः स्वास्थिताः सर्वयादवाः॥ २०

भवन्तमाश्रिताः कृष्ण संविभक्ताश्च सर्वशः।
तथैव बलवान् शक्रस्त्वय्यावेश्य जयाजयौ॥ २१

सुखं स्वपिति निःशङ्कः कथं त्वं चिन्तयान्वितः।
शोकसागरमक्षोभ्यं सर्वे ते ज्ञातयो गताः ॥ २२

तान् मज्जमानानेकस्त्वं समुद्धर महाभुज।
किमेवं चिन्तयाविष्टो न किंचिदपि भाषसे ॥ २३

चिन्तां कर्तुं वृथा देव न त्वमर्हसि माधव।
इत्येवमुक्तः कृष्णस्तु निःश्वस्य सुचिरं बहु॥ २४

प्राह वाक्यं स वाक्यज्ञो बृहस्पतिरिव स्वयम्।

उस भयंकर आर्तनादको सुनकर किसी अपूर्व भयके आगमनका अनुमान करके वे पुरुषप्रवर यादव अपने-अपने घरोंसे सहसा उछल पड़े॥ १३॥ वे सोचने लगे, 'अनिरुद्धके महलमें यह महान् कोलाहल क्यों सुनायी देता है? श्रीकृष्णके संरक्षणमें रहनेवाले हमलोगोंके घरमें यह भय कहाँसे आ गया?'॥ १४॥ इस प्रकार वे एक-दूसरेसे कहने लगे। उस समय उनकी वाणी स्नेहजनित विकलताके कारण गद्गद हो रही थी। जिन्हें कभी किसीका तिरस्कार नहीं सहना पड़ा हो ऐसे सिंह जैसे गुफासे निकले हों, उसी प्रकार वे यादव भी अपने घरोंसे निकल पड़े॥ १५॥ भगवान् श्रीकृष्णके यहाँ युद्धकी तैयारीके लिये सूचना देनेवाला विशाल डंका तत्काल बज उठा, जिसके शब्दसे समस्त यादव वहाँ एकत्र होकर खड़े हो गये॥ १६॥ वे यदुवंशी परस्पर पूछने लगे कि 'क्या बात है?' फिर जो जानकार थे, उन सबने एक-दूसरेको यथार्थ बात बता दी॥ १७॥ तब वे रणदुर्मद यादव नेत्रोंमें आँसू भरकर क्रोधसे लाल आँखें किये लम्बी साँस खींचते हुए खड़े हो गये॥ १८॥ समस्त यादव वहाँ आकर चुपचाप खड़े हो गये। तब विपृथुने बारम्बार दीर्घ निःश्वास लेते हुए योद्धाओंमें श्रेष्ठ श्रीकृष्णसे इस प्रकार कहा— ॥ १९॥ 'पुरुषोत्तम! आप यहाँ इस प्रकार चिन्तामग्न क्यों हैं? समस्त यादव आपके ही बाहुबलके भरोसे जीवन धारण करके यहाँ सुखपूर्वक रहते हैं॥ २०॥ श्रीकृष्ण! ये सब आपकी शरणमें हैं और आपने सबको पृथक्-पृथक् सुख-सुविधा प्रदान की है। इसी प्रकार बलवान् इन्द्र भी आपपर ही जय-पराजयका भार रखकर बिना किसी डर-भयके सुखपूर्वक सोते हैं। फिर आप कैसे चिन्तामें डूबे हुए हैं। आपके ये समस्त बन्धु-बान्धव आपकी यह दशा देखकर शोकके अक्षोभ्य समुद्रमें मग्न हो गये हैं॥ २१-२२॥ महाबाहो! आप अकेले ही इन डूबते हुए कुटुम्बीजनोंका उद्धार कीजिये। इस तरह चिन्तामग्न होकर आप क्यों कुछ भी नहीं बोल रहे हैं? देव! माधव! आपको व्यर्थ चिन्ता नहीं करनी चाहिये'। विपृथुके ऐसा कहनेपर बातचीतके मर्मको समझनेवाले श्रीकृष्णने बहुत देरतक लम्बी साँस खींचकर साक्षात् बृहस्पतिके समान यह बात कही॥ २३-२४ $\frac{1}{2}$॥

श्रीकृष्ण उवाच

विपृथो चिन्तयाविष्टो ह्येतत्कार्यमचिन्तयम्॥ २५
विचिन्तयंस्त्वहं चास्य कार्यस्य न लभे गतिम्।
तथाहं भवताप्युक्तो नोत्तरं विदधे क्वचित्॥ २६
दाशार्हगणमध्येऽहं वदाम्यर्थवतीं गिरम्।
शृणुध्वं यादवाः सर्वे यथा चिन्तान्वितो ह्यहम्॥ २७
अनिरुद्धे हृते वीरे पृथिव्यां सर्वपार्थिवाः।
अशक्ता इति मंस्यन्ते सर्वानस्मान् सबान्धवान्॥ २८
आहुकश्चैव नो राजा हृतः शाल्वेन वै पुरा।
प्रत्यानीतः स चास्माभिर्युद्धं कृत्वा सुदारुणम्॥ २९
प्रद्युम्नश्चापि नो बालः शम्बरेण हृतो ह्यभूत्।
स तं निहत्य समरे प्राप्तो रुक्मिणिनन्दनः॥ ३०
इदं तु सुमहत् कष्टं प्राद्युम्निः क्व प्रवासितः।
एवंविधमहं दोषं न स्मरे मनुजर्षभाः॥ ३१
भस्मना गुण्ठितः पादो येन मे मूर्ध्नि पातितः।
तस्याहं सानुबन्धस्य हरिष्ये जीवितं रणे॥ ३२
इत्येवमुक्ते कृष्णेन सात्यकिर्वाक्यमब्रवीत्।
चाराः कृष्ण प्रणीयन्तामनिरुद्धस्य मार्गणे।
सपर्वतवनोद्देशां मार्गन्तु वसुधामिमाम्॥ ३३
आहुकं प्राह कृष्णस्तु स्मितं कृत्वा वचस्तदा।
आभ्यन्तराश्च बाह्याश्च व्यादिश्यन्तां चरा नृप॥ ३४

वैशम्पायन उवाच

केशवस्य वचः श्रुत्वा आहुकस्त्वरितोऽभवत्।
अन्वेषणेऽनिरुद्धस्य स चारान् दिष्टवांस्तदा॥ ३५
ततश्चारास्तु व्यादिष्टाः पार्थिवेन यशस्विना।
हया रथाश्च व्यादिष्टाः पार्थिवेन महात्मना।
अभ्यन्तरं च मार्गध्वं बाह्यतश्च समन्ततः॥ ३६
वेणुमन्तं लताविष्टं तथा रैवतकं गिरिम्।
ऋक्षवन्तं गिरिं चैव मार्गध्वं त्वरिता हयैः॥ ३७

श्रीकृष्ण बोले—विपृथो! मैं चिन्तामग्न होकर इसी कार्यके विषयमें विचार कर रहा था; किंतु बहुत सोचनेपर भी मैं इस कार्यका कोई निश्चित आधार न पा सका। इसीलिये तुम्हारे पूछनेपर भी मैंने कोई उत्तर नहीं दिया। आज समस्त दाशार्हगणोंके बीच मैं यह अभिप्रायपूर्ण बात कह रहा हूँ। यादवो! तुम सब लोग सुन लो कि मैं क्यों चिन्तित हो उठा हूँ॥ २५—२७॥ वीर अनिरुद्धका इस तरह अपहरण हो जानेपर भूमण्डलके समस्त भूपाल बन्धु-बान्धवोंसहित हम सब लोगोंको शक्तिहीन समझेंगे॥ २८॥ पूर्वकालमें शाल्वने हमारे राजा उग्रसेनको हर लिया था; तब हमने अत्यन्त दारुण युद्ध करके उन्हें वापस लौटाया था॥ २९॥ हमारे प्रद्युम्नको भी बाल्यावस्थामें शम्बरासुरने चुरा लिया था, परंतु रुक्मिणीनन्दन प्रद्युम्न समराङ्गणमें उस असुरका वध करके स्वयं चले आये॥ ३०॥ किंतु यह तो सबसे बढ़कर महान् कष्टकी बात है कि प्रद्युम्नकुमार अनिरुद्ध कहीं परदेशमें पहुँचा दिये गये और हमें पतातक नहीं चला। नरश्रेष्ठ यादवो! ऐसा दोष कभी प्राप्त हुआ हो, इसका मुझे स्मरण नहीं है॥ ३१॥ जिसने मेरे मस्तकपर अपना राखसे लिपटा हुआ पैर रखा है, सगे-सम्बन्धियोंसहित उस दुरात्माके प्राणोंको मैं रणभूमिमें अवश्य हर लूँगा॥ ३२॥ श्रीकृष्णके ऐसा कहनेपर सात्यकि बोले—'श्रीकृष्ण! अनिरुद्धकी खोजके लिये गुप्तचर भेजे जायँ तथा वे पर्वत और वनस्थलीसहित इस सारी पृथ्वीमें उनका अनुसंधान करें'॥ ३३॥ तब श्रीकृष्णने मुसकराकर राजा उग्रसेनसे कहा—'नरेश्वर! आप बाह्य और आभ्यन्तर (प्रकट और गुप्त) चरोंको इस कार्यके लिये नियुक्त कीजिये'॥ ३४॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! भगवान् श्रीकृष्णका यह वचन सुनकर राजा उग्रसेन बड़ी उतावलीके साथ उठे। उन्होंने अनिरुद्धकी खोजके लिये तत्काल प्रकट एवं गुप्त चर नियुक्त कर दिये॥ ३५॥ यशस्वी भूपाल महामना उग्रसेनने चरोंको नियुक्त करके उनके लिये घोड़े और रथ भी दे दिये तथा यह आज्ञा दी—'तुमलोग भीतर-बाहर सब ओर अनिरुद्धको ढूँढ़ो॥ ३६॥ घोड़ोंपर सवार हो शीघ्रतापूर्वक जाकर वेणुमान्, लताविष्ट, रैवतक तथा ऋक्षवान् पर्वतपर उनकी खोज करो'॥ ३७॥

एकैकं तत्र चोद्यानं मार्गध्वं काननानि च।
यातव्यं चापि निःशङ्कमुद्यानानि समन्ततः॥ ३८

हयानां च सहस्राणि रथानां चाप्यनेकशः।
आरुह्य त्वरिताः सर्वे मार्गध्वं यदुनन्दनम्॥ ३९

सेनापतिरनाधृष्टिरिदं वचनमब्रवीत्।
कृष्णमक्लिष्टकर्माणमच्युतं भीतभीतवत्॥ ४०

शृणु कृष्ण वचो मह्यं रोचते यदि ते प्रभो।
चिरात् प्रभृति मे वक्तुं भवन्तं जायते मतिः॥ ४१

असिलोमा पुलोमा च निसुन्दनरकौ हतौ।
सौभः शाल्वश्च निहतौ मैन्दो द्विविद एव च॥ ४२

हयग्रीवश्च सुमहान् सानुबन्धस्त्वया हतः।
तादृशे विग्रहे वृत्ते देवहेतोः सुदारुणे॥ ४३

सर्वाण्येतानि कर्माणि निःशेषाणि रणे रणे।
कृतवानसि गोविन्द पार्ष्णिग्राहश्च नास्ति ते॥ ४४

इदं कर्म त्वया कृष्ण सानुबन्धं महत् कृतम्।
पारिजातस्य हरणे यत् कृतं कर्म दुष्करम्॥ ४५

तत्र शक्रस्त्वया कृष्ण ऐरावतशिरोगतः।
निर्जितो बाहुवीर्येण त्वया युद्धविशारदः॥ ४६

तेन वैरं त्वया सार्धं कर्तव्यं नात्र संशयः।
वैरानुबन्धश्च महांस्तेन कार्यस्त्वया सह॥ ४७

तत्रानिरुद्धहरणं कृतं मघवता स्वयम्।
न ह्यन्यस्य भवेच्छक्तिर्वैरनिर्यातनं प्रति॥ ४८

इत्येवमुक्ते वचने कृष्णो नाग इव श्वसन्।
उवाच वचनं धीमाननाधृष्टिं महाबलम्॥ ४९

सेनानीस्तात मा मैवं न देवाः क्षुद्रकर्मिणः।
नाकृतज्ञा न च क्लीबा नावलिप्ता न बालिशाः॥ ५०

देवतार्थं च मे यत्नो महान् दानवसंक्षये।
तेषां प्रियार्थं च रणे हन्मि दृप्तान् महाबलान्॥ ५१

'वहाँका एक-एक उद्यान और जंगल-झाड़ी छान डालो, उद्यानोंमें सब ओर बेखटके चले जाना, हजारों घोड़ों और बहुसंख्यक रथोंपर आरूढ़ हो तुम सब लोग बड़ी उतावलीके साथ यदुनन्दन अनिरुद्धका पता लगाओ'॥ ३८-३९॥ तदनन्तर सेनापति अनाधृष्टिने अनायास ही महान् कर्म करनेवाले अच्युत श्रीकृष्णसे डरते-डरते-से इस प्रकार कहा—॥ ४०॥ 'प्रभो! श्रीकृष्ण! यदि आपको जँचे तो मेरी बात भी सुनें। बड़ी देरसे मेरे मनमें यह बात आ रही थी कि मैं आपसे कुछ कहूँ॥ ४१॥ आपके द्वारा असिलोमा और पुलोमा मारे गये। निसुन्द और नरक कालके गालमें डाल दिये गये। सौभ विमान और उसके स्वामी राजा शाल्व भी नष्ट कर दिये गये। मैन्द और द्विविद भी मारे गये॥ ४२॥ महान् असुर हयग्रीव सगे-सम्बन्धियोंसहित आपके हाथसे मारा गया। देवताओंके लिये वैसे-वैसे अत्यन्त भयङ्कर युद्ध आपने किये हैं। गोविन्द! प्रत्येक रणक्षेत्रमें आपने ये सारे कर्म पूर्णरूपसे सम्पन्न किये हैं, किंतु आपका साथ देनेवाला कोई नहीं है॥ ४३-४४॥ श्रीकृष्ण! पारिजातका हरण करते समय आपने जो दुष्कर कर्म किया था, वह सबसे महान् था। आपके द्वारा किया गया यह पारिजात-हरणरूपी कर्म परिणामसहित सबसे उत्कृष्ट है॥ ४५॥ श्रीकृष्ण! उस समय आपने अपने बाहुबलसे ऐरावतकी पीठपर बैठे हुए युद्धविशारद इन्द्रको भी पराजित कर दिया॥ ४६॥ अतः इसमें कोई संशय नहीं कि देवराज इन्द्र आपके साथ वैर कर सकते हैं। उनका आपके साथ महान् वैर बाँधना अवश्य सम्भव है॥ ४७॥ अतः अनिरुद्धका अपहरण स्वतः इन्द्रने ही किया है। दूसरे किसीमें इस तरह वैरका बदला लेनेकी शक्ति नहीं हो सकती'॥ ४८॥ उनके ऐसी बात कहनेपर बुद्धिमान् भगवान् श्रीकृष्णने हाथीके समान उच्छ्वास लेकर महाबली अनाधृष्टिसे इस प्रकार कहा—॥ ४९॥ 'तात! सेनापते! ऐसी बात न कहो, न कहो, देवता ऐसा नीच कर्म करनेवाले नहीं होते। वे न तो अकृतज्ञ होते हैं, न कायर। न घमंडी होते हैं, न मूर्ख॥ ५०॥ देवताओंके लिये ही मेरा दानव-संहारके निमित्त महान् प्रयत्न होता रहता है। उन्हींका प्रिय करनेके लिये मैं रणमें अभिमानी और महाबली असुरोंका वध करता हूँ'॥ ५१॥

तत्परस्तन्मनाश्चास्मि तद्भक्तस्तत्प्रिये रतः।
कथं पापं करिष्यन्ति विज्ञायैवंविधं हि माम्॥ ५२

अक्षुद्राः सत्यवन्तश्च नित्यं भक्तानुकम्पिनः।
तेभ्यो न विद्यते पापं बालिशत्वात् प्रभाषसे॥ ५३

कदाचिदिह पुंश्चल्या अनिरुद्धो हृतो भवेत्।
देवेषु समहेन्द्रेषु नैतत् कर्म विधीयते॥ ५४

वैशम्पायन उवाच

एवं चिन्तयमानस्य कृष्णस्याद्भुतकर्मणः।
कृष्णस्य वचनं श्रुत्वा ततोऽक्रूरोऽब्रवीद् वचः॥ ५५

मधुरं श्लक्ष्णया वाचा अर्थवाक्यविशारदः।
यच्छक्रस्य प्रभो कार्यं तदस्माकं विनिश्चितम्॥ ५६

अस्माकं चापि यत् कार्यं तद्धि कार्यं शचीपतेः।
संरक्ष्याश्च वयं देवैरस्माभिश्चापि देवताः।
देवतार्थं वयं चापि मानुषत्वमुपागताः॥ ५७

एवमक्रूरवचनैश्चोदितो मधुसूदनः।
स्निग्धगम्भीरया वाचा पुनः कृष्णोऽभ्यभाषत॥ ५८

नायं देवैर्न गन्धर्वैर्न यक्षैर्न च राक्षसैः।
प्रद्युम्नपुत्रोऽपहृतः पुंश्चल्या नु महायशः॥ ५९

मायाविदग्धाः पुंश्चल्यो दैत्यदानवयोषितः।
ताभिर्हृतो न संदेहो नान्यतो विद्यते भयम्॥ ६०

वैशम्पायन उवाच

इत्येवमुक्ते वचने कृष्णेन तु महात्मना।
अथावगम्य तत्त्वेन यद् भूतं यदुमण्डले।
उदतिष्ठन्महानादस्तदा कृष्णं प्रशंसयन्॥ ६१

हर्षयन् स तु सर्वेषां सूतमागधवन्दिनाम्।
मधुरः श्रूयते घोषो यादवस्य निवेशने॥ ६२

ते चाराः सर्वतः सर्वे सभाद्वारमुपागताः।
शनैर्गद्गदया वाचा इदं वचनमब्रुवन्॥ ६३

'मैं शरीरसे उन देवताओंके हितमें तत्पर रहता हूँ, मनसे उन्हींका हित-चिन्तन करता हूँ, उनमें भक्तिभाव रखता हूँ और उन्हींका प्रिय करनेमें लगा रहता हूँ। मुझे ऐसा जानकर भी वे मेरे साथ दुर्व्यवहार क्यों करेंगे॥ ५२॥ देवता क्षुद्रतासे रहित, सत्यवादी तथा भक्तजनोंपर सदा कृपा करनेवाले होते हैं। उनसे पाप नहीं हो सकता। तुम विवेकशून्य होनेके कारण उनके सम्बन्धमें उपर्युक्त बात कह रहे हो॥ ५३॥ कदाचित् यह सम्भव हो सकता है कि किसी पुंश्चली स्त्रीने यहाँ आकर अनिरुद्धका अपहरण किया हो। इन्द्रसहित देवताओंमेंसे किसीके द्वारा ऐसा कर्म नहीं बन सकता'॥ ५४॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन्! ऐसा विचार करते हुए अद्भुतकर्मा श्रीकृष्णका यह वचन सुनकर अर्थयुक्त वचन बोलनेमें चतुर अक्रूरने स्नेहयुक्त वाणीमें मधुर स्वरसे कहा—'प्रभो! इन्द्रका जो कार्य है, वह निश्चय ही हमलोगोंका भी है। इसी प्रकार जो हमारा कार्य है, वह शचीपति इन्द्रका भी है। देवताओंको हमारी रक्षा करनी चाहिये और हमें देवताओंकी; क्योंकि हमलोग भी देवताओंके लिये ही मानव-शरीरमें आये हैं'। अक्रूरके इन वचनोंसे प्रेरित होकर मधुसूदन भगवान् श्रीकृष्णने पुनः स्निग्ध गम्भीर वाणीमें कहा— 'महायशस्वी अक्रूरजी! प्रद्युम्नपुत्र अनिरुद्धका अपहरण देवताओं, गन्धर्वों, यक्षों और राक्षसोंने नहीं किया है। निश्चय ही यह किसी पुंश्चली (व्यभिचारिणी) स्त्रीका काम है॥ ५५—५९॥ दैत्यों और दानवोंकी जो पुंश्चली स्त्रियाँ हैं, वे मायामें निपुण होती हैं। उन्हींके द्वारा अनिरुद्धका अपहरण हुआ है, इसमें संदेह नहीं है। दूसरे किसीसे यह भय नहीं प्राप्त हुआ है'॥ ६०॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन्! महात्मा श्रीकृष्णके ऐसी बात कहनेपर यदुमण्डलमें जो कुछ हुआ था, उसको ठीकसे जान लेनेपर वहाँ श्रीकृष्णकी प्रशंसासे भरा हुआ महान् शब्द प्रकट हुआ॥ ६१॥ यदुपति श्रीकृष्णके महलमें सबके हर्षको बढ़ाता हुआ सूतों, मागधों और वन्दियोंका वह मधुर घोष सबको सुनायी देने लगा॥ ६२॥ इतनेमें ही वे सब गुप्तचर सब ओरसे खोज करके सभाद्वारपर लौट आये और धीरे-धीरे गद्गद वाणीमें इस प्रकार बोले—॥ ६३॥

उद्यानानि गुहाः शैलाः सभा नद्यः सरांसि च।
एकैकं शतशो राजन् मार्गितं न च दृश्यते॥ ६४

अन्ये कृष्णं चरा राजन्नुपागम्य तदाब्रुवन्।
सर्वे नो विदिता देशाः प्राद्युम्निर्न च दृश्यते॥ ६५

यदन्यत् संविधातव्यं विधानं यदुनन्दन।
तदाज्ञापय नः क्षिप्रमनिरुद्धस्य मार्गणे॥ ६६

ततस्ते दीनमनसः सर्वे बाष्पाकुलेक्षणाः।
अन्योन्यमभ्यभाषन्त किमतः कार्यमुत्तमम्॥ ६७

संदष्टौष्ठपुटाः केचित् केचिद् बाष्पाकुलेक्षणाः।
केचिद् भ्रुकुटिमास्थाय चिन्तयन्त्यर्थसिद्धये॥ ६८

एवं चिन्तयतां तेषां बह्वर्थमभिभाषितम्।
अनिरुद्धः कुतश्चेति सम्भ्रमः सुमहानभूत्॥ ६९

अन्योन्यमभिवीक्षन्ते यादवा जातमन्यवः।
तां निशां विमनस्कास्ते गमयेयुः कथंचन।
अनिरुद्धो हृतश्चेति पुनः पुनररिंदम॥ ७०

एवं च ब्रुवतां तेषां प्रभाता रजनी तदा।
ततस्तूर्यनिनादैश्च शङ्खानां च महास्वनैः।
प्रबोधनं महाबाहोः कृष्णस्याक्रियतालये॥ ७१

ततः प्रभाते विमले प्रादुर्भूते दिवाकरे।
प्रविवेश सभामेको नारदः प्रहसन्निव॥ ७२

दृष्ट्वा तु यादवान् सर्वान् कृष्णेन सह संगतान्।
ततः स जयशब्देन माधवं प्रत्यपूजयत्॥ ७३

उग्रसेनादयस्ते च तमृषिं प्रत्यपूजयन्।
अथाभ्युत्थाय विमनाः कृष्णः समितिदुर्जयः।
मधुपर्कं च गां चैव नारदाय ददौ प्रभुः॥ ७४

सोपविश्यासने शुभ्रे सर्वास्तरणसंवृते।
सुखासीनो यथान्यायमुवाचेदं वचोऽर्थवत्॥ ७५

नारद उवाच

किमेवं चिन्तयाविष्टाः निःसङ्गा गतमानसाः।
उत्साहहीनाः सर्वे वै क्लीबा इव समासते॥ ७६

'राजन्! सारे उद्यान, गुफाएँ, पर्वत, धर्मशाले, नदियाँ और सरोवर छान डाले गये। एक-एक स्थानपर सौ-सौ बार खोज की गयी; परंतु कहीं अनिरुद्धका दर्शन नहीं हुआ॥ ६४॥ राजन्! दूसरे चर भी भगवान् श्रीकृष्णके पास आकर कहने लगे—'प्रभो! हमें सब देशोंका पता है, सर्वत्र खोज की गयी, किंतु कहीं भी प्रद्युम्नकुमारका पता नहीं लग रहा है॥ ६५॥ यदुनन्दन! अनिरुद्धके अन्वेषणके लिये अब और जो कुछ कार्य करना हो, उसके लिये हमें शीघ्र आज्ञा दीजिये'॥ ६६॥ चरोंकी ये बातें सुनकर सबका मन उदास हो गया। सबके नेत्रोंमें आँसू भर आये और सब एक-दूसरेसे कहने लगे—'इससे उत्तम कार्य अब और क्या करना चाहिये?'॥ ६७॥ किसीने क्रोधवश दाँतोंसे ओठ दबा लिये, किन्हींके नेत्रोंमें आँसू भर आये और कोई भौंहें टेढ़ी करके कार्यसिद्धिके उपायपर विचार करने लगे॥ ६८॥ इस प्रकार चिन्तन करते हुए उन यादवोंके मुखसे अनेक तरहकी बातें निकलीं। 'अनिरुद्ध कहाँ गये?' इस प्रश्नको लेकर सबके हृदयमें महान् सम्भ्रम हो गया॥ ६९॥ शत्रुदमन नरेश! उस समय कुपित और खिन्न हुए यादव एक-दूसरेका मुँह देखने लगे। अनिरुद्धके अपहरणकी बारम्बार चर्चा करते हुए उन्होंने उदास मनसे किसी तरह वह रात बितायी॥ ७०॥ इस तरह आपसमें बात करते हुए ही उनकी रात बीत गयी और प्रातःकाल आ गया। तदनन्तर महाबाहु श्रीकृष्णके भवनमें सबको जगानेके लिये बड़े जोर-जोरसे भाँति-भाँतिके बाजे बजने लगे और शङ्खोंकी भी गम्भीर ध्वनि होने लगी॥ ७१॥ तत्पश्चात् निर्मल प्रभातमें जब सूर्यदेवका उदय हुआ, उस समय अकेले नारदजीने हँसते हुए-से वहाँ यादवोंकी सभामें प्रवेश किया॥ ७२॥ श्रीकृष्णके साथ एकत्र हुए समस्त यादवोंकी ओर देखकर उन्होंने 'जय हो, जय हो' कहकर माधव (श्रीकृष्ण)-का समादर किया॥ ७३॥ फिर उग्रसेन आदिने नारदजीका पूजन किया। इसके बाद रणदुर्जय भगवान् श्रीकृष्णने उदास मनसे उठकर नारदजीको मधुपर्क तथा एक गौ समर्पित की॥ ७४॥ स्वागत-सत्कारके पश्चात् जब नारदजी सब प्रकारके बिछौनोंसे ढके हुए शुभ्र आसनपर सुखपूर्वक बैठ गये, तब वे यथोचित रीतिसे यह अर्थयुक्त वचन बोले॥ ७५॥

नारदजीने कहा—आज क्या बात है कि समस्त यादव इस तरह चिन्तामग्न, असंग, अनमने और उत्साहहीन होकर क्लीबों (कायरों)-के समान चुपचाप बैठे हैं?॥ ७६॥

इत्येवमुक्ते वचने नारदेन महात्मना।
वासुदेवोऽब्रवीद् वाक्यं श्रूयतां भगवन्निदम्॥ ७७

अनिरुद्धो हृतो ब्रह्मन् केनापि निशि सुव्रत।
यस्यार्थं सर्व एवास्म चिन्तयाविष्टचेतसः॥ ७८

एष ते यदि वृत्तान्तः श्रुतो दृष्टोऽपि वा मुने।
भगवन् कथ्यतां साधु प्रियमेतन्ममानघ॥ ७९

इत्येवमुक्ते वचने केशवेन महात्मना।
प्रहस्यैतद् वचः प्राह श्रूयतां मधुसूदन॥ ८०

निर्वृत्तं सुमहद् युद्धं देवासुरसमं महत्।
अनिरुद्धस्य चैकस्य बाणस्यापि महामृधे॥ ८१

उषा नाम सुता तस्य बाणस्याप्रतिमौजसः।
तस्यार्थे चित्रलेखा वै जहाराशु तमप्सराः॥ ८२

उभयोरपि तत्रासीन्महायुद्धं सुदारुणम्।
प्राद्युम्निबाणयोः संख्ये बलिवासवयोरिव॥ ८३

अस्माभिश्चापि तद् युद्धं दृष्टं सुमहदद्भुतम्।
अनिरुद्धो भयात् तेन संयुगेष्वनिवर्तिना॥ ८४

बाणेन मायामास्थाय बद्धो नागैर्महाबलः।
व्यादिष्टस्तु वधस्तस्य बाणेन गरुडध्वज॥ ८५

तं निवारितवान् मन्त्री कुम्भाण्डो नाम तस्य ह।
कुमारस्यानिरुद्धस्य तेनासक्तेन संयुगे॥ ८६

बाणेन मायामास्थाय सर्पैर्नियमनं कृतम्।
उत्तिष्ठतु भवाञ्छीघ्रं यशसे विजयाय च॥ ८७

नायं संरक्षितुं कालः प्राणांस्तात जयैषिणाम्।
प्राणैः किंचिद्गतैर्वीरो धैर्यमालम्ब्य तिष्ठति॥ ८८

वैशम्पायन उवाच

इत्येवमुक्ते वचने वासुदेवः प्रतापवान्।
प्रायात्रिकान् वै सम्भारानाज्ञापयत वीर्यवान्॥ ८९

ततश्चन्दनचूर्णैश्च लाजैश्चैव समन्ततः।
निर्ययौ स महाबाहुः कीर्यमाणो जनार्दनः॥ ९०

महात्मा नारदके इस तरह पूछनेपर भगवान् श्रीकृष्ण बोले—'भगवन्! इसका कारण सुनिये—॥ ७७॥ उत्तम व्रतका पालन करनेवाले ब्रह्मन्! यहाँ रात्रिके समय किसीने अनिरुद्धका अपहरण कर लिया है। उन्हींके लिये हम सब लोग यहाँ चिन्तित-चित्त होकर बैठे हैं॥ ७८॥ निष्पाप मुने! भगवन्! यदि यह वृत्तान्त आपने कहीं सुना या देखा हो तो अच्छी तरह बताइये, यह मेरा प्रिय विषय है'॥ ७९॥ महात्मा केशवके ऐसी बात कहनेपर नारदजी ठठाकर हँस पड़े और इस प्रकार बोले—मधुसूदन! सुनिये—॥ ८०॥ 'एक महासमरमें एक ओर अकेले अनिरुद्ध थे और दूसरी ओर सेनासहित बाणासुर था। इन दोनोंमें महान् देवासुर-संग्रामके समान बड़ा भारी युद्ध हुआ है॥ ८१॥ अप्रतिम बलशाली बाणासुरकी एक पुत्री है, जिसका नाम उषा है। उसीके लिये चित्रलेखा अप्सरा शीघ्रतापूर्वक अनिरुद्धको हर ले गयी॥ ८२॥ वहाँ अनिरुद्ध और बाणासुर दोनोंमें अत्यन्त भयंकर महान् युद्ध हुआ। ठीक उसी तरह, जैसे देवासुर-संग्राममें बलि और इन्द्रका युद्ध हुआ था॥ ८३॥ मैंने भी उस महान् एवं अद्भुत युद्धको अपनी आँखों देखा है। युद्धसे पीछे न हटनेवाले बाणासुरने भयभीत होकर मायाका सहारा लिया और नागपाशसे महाबली अनिरुद्धको बाँध लिया। गरुडध्वज! उस समय उसने अनिरुद्धके वधकी आज्ञा दे दी, परंतु उसके मन्त्री कुम्भाण्डने उसे वैसा करनेसे रोक दिया। युद्धमें आसक्त हुए बाणासुरने मायाका सहारा लेकर सर्पमय बाणोंद्वारा कुमार अनिरुद्धको बाँधा है; अतः अब आप यश और विजयके लिये शीघ्र उठिये॥ ८४—८७॥ तात! विजयकी अभिलाषा रखनेवाले वीरोंके लिये यह अपने प्राणोंको बचाकर बैठनेका समय नहीं है। वीर पुरुष प्राणोंके कुछ संकटमें पड़ जानेपर धैर्यका सहारा लेकर शत्रुके सामने डटा रहता है'॥ ८८॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन्! उनके ऐसा कहनेपर पराक्रमी एवं प्रतापी वीर वसुदेवनन्दन श्रीकृष्णने रणयात्राके लिये उपयुक्त सामग्री तैयार करनेकी आज्ञा दे दी॥ ८९॥ तदनन्तर महाबाहु जनार्दन यात्राके लिये घरसे बाहर निकले। उस समय उनके ऊपर चारों ओरसे चन्दनचूर्ण और लावा बिखेरे जा रहे थे॥ ९०॥

नारद उवाच

स्मरणं वैनतेयस्य कर्तुमर्हसि माधव।
न ह्यन्येन तदध्वानं शक्यं गन्तुं महाभुज॥ ९१
आकर्णय तमध्वानं गन्तव्यमतिदुर्जयम्।
एकादश सहस्राणि योजनानां जनार्दन॥ ९२
तदितः शोणितपुरं प्राद्युम्निर्यत्र साम्प्रतम्।
मनोजवो महावीर्यो वैनतेयः प्रतापवान्॥ ९३
समाह्वयस्व गोविन्द स हि त्वां तत्र नेष्यति।
एकेन सुमुहूर्तेन बाणं संदर्शयिष्यति॥ ९४

वैशम्पायन उवाच

तस्य तद् वचनं श्रुत्वा सस्मार गरुडं तदा।
स कृष्णपार्श्वमागम्य प्राञ्जलिर्गरुडः स्थितः॥ ९५
प्रणम्याथ वचः प्राह वैनतेयो महाबलः।
वासुदेवं महात्मानं श्लक्ष्णं मधुरया गिरा॥ ९६

गरुड उवाच

पद्मनाभ महाबाहो किमर्थं संस्मृतो ह्यहम्।
कृत्यं ते यदिहात्रास्ति श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः॥ ९७
कस्य पक्षपरिक्षेपैर्नाशयामि पुरीं प्रभो।
प्रभावात्तव गोविन्द को न विद्याद् बलं मम॥ ९८
गदावेगं च ते वीर चक्राग्निं च महाभुज।
नावबुध्यति मूढात्मा को दर्पान्नाशमेष्यति॥ ९९
हलं सिंहमुखं कस्य वनमाली नियोक्ष्यति।
कस्य देहस्तु निर्भिन्नो मेदिनीं यास्यति प्रभो॥ १००
कस्य शङ्खरवैः प्राणान् मोहयिष्यसि माधव।
कोऽयं सपरिवारोऽद्य यास्यते यमसादनम्॥ १०१
एवमुक्ते तु वचने वैनतेयेन धीमता।
वासुदेवो वचः प्राह शृणु त्वं वदतां वर॥ १०२
बलेः पुत्रेण बाणेन प्राद्युम्निरपराजितः।
उषायाः कारणे बद्धो नगरे शोणिताह्वये।
अनिरुद्धस्तु कामार्तो बद्धो नागैर्विषोल्बणैः॥ १०३

(इतनेमें ही) नारदजी बोले—माधव! विनतानन्दन गरुडका स्मरण कीजिये। महाबाहो! उनके सिवा दूसरा कोई उस मार्गपर नहीं जा सकता॥ ९१॥ जनार्दन! मेरी बात सुनिये। जिस मार्गपर आपको चलना है, वह अत्यन्त दुर्गम है। प्रद्युम्नकुमार अनिरुद्ध इस समय जहाँ विद्यमान हैं, वह शोणितपुर यहाँसे ग्यारह हजार योजनकी दूरीपर है। गोविन्द! महापराक्रमी और प्रतापी विनतानन्दन गरुड मनके समान वेगशाली हैं। आप उन्हींका आवाहन कीजिये। वे ही आपको वहाँ पहुँचायेंगे। वे एक ही मुहूर्तमें आपको बाणासुरके सामने उपस्थित कर देंगे॥ ९२—९४॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन्! नारदजीका वह वचन सुनकर भगवान् श्रीकृष्णने उस समय गरुडका स्मरण किया। स्मरण करते ही वे श्रीकृष्णके पास आकर हाथ जोड़कर खड़े हो गये॥ ९५॥ महात्मा वासुदेवको प्रणाम करके महाबली गरुड उनसे स्नेहयुक्त मधुर वाणीमें बोले॥ ९६॥

गरुडने कहा—पद्मनाभ! महाबाहो! आपने किस लिये मेरा स्मरण किया है। यहाँ आपको मुझसे जो काम है, उसे मैं ठीक-ठीक सुनना चाहता हूँ॥ ९७॥ प्रभो! आज्ञा दीजिये, मैं अपने पंखोंके प्रहारसे किसकी पुरीका नाश कर डालूँ? गोविन्द! आपके प्रभावसे मेरे बलको कौन नहीं जानता है?॥ ९८॥ वीर! महाबाहो! कौन मूढ़चित्त पुरुष आपकी गदाके वेग और सुदर्शन चक्रके तेजको नहीं जानता है? वह अपने घमंडके कारण नष्ट हो जायगा॥ ९९॥ प्रभो! वनमालाधारी बलरामजी सिंहके-से मुखवाले अपने हलका प्रहार आज किसपर करनेवाले हैं? किसका शरीर आज छिन्न-भिन्न होकर पृथ्वीपर गिरनेवाला है?॥ १००॥ माधव! आप अपनी शङ्खध्वनिसे किसके प्राणोंको मोहित करनेवाले हैं। यह कौन है, जो आज परिवारसहित यमलोकमें जाना चाहता है॥ १०१॥ बुद्धिमान् विनतानन्दन गरुडके ऐसा कहनेपर वसुदेवनन्दन भगवान् श्रीकृष्ण बोले—'वक्ताओंमें श्रेष्ठ गरुड! सुनो॥ १०२॥ बलिके पुत्र बाणासुरने अपराजित वीर प्रद्युम्नकुमार अनिरुद्धको उषाके साथ सम्बन्ध स्थापित करनेके कारण शोणितपुरमें बंदी बना लिया है। कामपीड़ित अनिरुद्धको उसने प्रचण्ड विषवाले सर्पोंके द्वारा बाँध रखा है'॥ १०३॥

तस्य मोक्षार्थमाहूतो मया त्वं पतगेश्वर।
तव वेगसमो नास्ति पक्षिणां प्रवरो भवान्।
अशक्यं च तदध्वानं गन्तुमन्येन काश्यप॥ १०४

तत्र प्रापय मां शीघ्रं यत्र प्राद्युम्निरावसत्।
वैदर्भी ते स्नुषा वीर रुदती पुत्रगृद्धिनी॥ १०५

त्वत्प्रसादाद् भवत्येषा पुत्रेण सह भामिनी।
अमृतं तु हृतं पूर्वं त्वया पन्नगनाशन॥ १०६

मया सह समागम्य तस्मिन् काले महाभुज।
अभवन्मे ध्वजश्चैव त्वद्भक्ताः सर्ववृष्णयः।
सखित्वं मानयस्वाद्य भक्तिं च पतगेश्वर॥ १०७

तव वेगसमो नास्ति पक्षिणो न च ते समाः।
सुपर्ण सुकृतेन त्वां शपे पन्नगनाशन॥ १०८

दासीभावं गता माता मोक्षितैकाकिना पुरा।
पक्षविक्षेपमात्रेण हता योधास्त्वया पुरा॥ १०९

भवान् सुरगणान् सर्वान् पृष्ठमारोप्य विक्रमात्।
गच्छ मे ह्यगमान् देशान् विजयश्च तवाश्रयात्॥ ११०

गुरुत्वान्मेरुतुल्यस्त्वं लघुत्वात् पवनोपमः।
भूते भव्ये भविष्ये च न ते तुल्योऽस्ति विक्रमे॥ १११

सत्यसंध महाभाग वैनतेय महाद्युते।
अनिरुद्धेक्षणेनाद्य साहाय्यमुपकल्प्यताम्॥ ११२

गरुड उवाच

अत्यद्भुतमिदं वाक्यं तव कृष्ण महाभुज।
त्वत्प्रसादाच्च विजयः सर्वत्रैव महाभुज॥ ११३

धन्योऽस्म्यनुगृहीतोऽस्मि संस्तवान्मधुसूदन।
स्तोतव्यस्त्वं मया कृष्ण स्तौषि मां त्वं महाभुज॥ ११४

'पक्षिराज! उन्हीं अनिरुद्धको बन्धनसे छुड़ानेके लिये मैंने तुम्हारा आवाहन किया है। वेगमें तुम्हारी समानता करनेवाला दूसरा कोई नहीं है। तुम पक्षियोंमें सबसे श्रेष्ठ हो। कश्यपनन्दन! तुम्हारे सिवा दूसरे किसीके लिये उस मार्गपर चलना असम्भव है॥ १०४॥ जहाँ प्रद्युम्नकुमार अनिरुद्ध निवास करते हैं, वहाँ शीघ्र मुझे पहुँचा दो। वीर! विदर्भराज रुक्मीकी पुत्री शुभाङ्गी, जो तुम्हारी पुत्रवधू लगती है, अपने पुत्रसे मिलनेकी इच्छा रखकर रो रही है। तुम्हारी कृपासे यह भामिनी अपने पुत्रसे मिल सके—ऐसा प्रयत्न करो। सर्पशत्रो! तुमने पूर्वकालमें (देवताओंको पराजित करके) अमृतका अपहरण किया था। महाबाहो! वह समय तुम्हें याद होगा जबकि तुम मेरे साथ मिलकर मेरे ध्वजरूप हुए थे। ये समस्त वृष्णिवंशी तुम्हारे भक्त हैं। पक्षिराज! आज तुम हमारी मैत्री तथा भक्तिका आदर करो॥ १०५—१०७॥ तुम्हारे वेगकी समानता करनेवाला दूसरा कोई नहीं है। दूसरे पक्षी भी तुम्हारे समान नहीं हैं। सर्पनाशन गरुड़! मैं पुण्यकी शपथ खाकर तुमसे यह बात कह रहा हूँ॥ १०८॥ पूर्वकालमें जब माता विनता दासीभावको प्राप्त हुई थीं, उस समय तुमने अकेले ही उनका उद्धार किया था। अपने पंखोंके प्रहारमात्रसे पहले तुमने बहुत-से योद्धाओंका संहार कर डाला है॥ १०९॥ तुम इन समस्त यादववीरोंको, जो देवगणोंके अंशसे उत्पन्न हैं, अपनी पीठपर बिठाकर पराक्रमपूर्वक मेरे साथ उन अगम्य देशोंमें चलो। तुम्हारे भरोसे ही आज हमारी विजय है॥ ११०॥ तुम गुरुतामें मेरुके समान और शीघ्रतापूर्वक चलनेमें वायुके तुल्य हो। भूत, भविष्य और वर्तमान तीनों कालोंमें तुम्हारे समान विक्रमशाली दूसरा कोई नहीं है॥ १११॥ महातेजस्वी, महाभाग, सत्यप्रतिज्ञ, विनतानन्दन! आज अनिरुद्धसे मिला देनेमें तुम हमारी सहायता करो'॥ ११२॥

गरुड बोले—महाबाहो! श्रीकृष्ण! आपकी यह बात तो बड़ी अद्‌भुत है। बड़ी बाँहवाले प्रभो! आपकी कृपासे ही सर्वत्र विजय होती है॥ ११३॥ मधुसूदन! आपने जो मेरी स्तुति-प्रशंसा की है, इससे मैं धन्य हो गया। यह आपने मुझपर महान् अनुग्रह किया। महाबाहु श्रीकृष्ण! मुझे आपकी स्तुति करनी चाहिये, किंतु आप उलटे मेरी ही स्तुति कर रहे हैं॥ ११४॥

वेदाध्यक्षः सुराध्यक्षः सर्वकामप्रदो भवान्।
अमोघदर्शनस्त्वं हि वरार्थिषु वरप्रदः॥ ११५

चतुर्भुजश्चतुर्मूर्तिश्चातुर्होत्रप्रवर्तकः।
चातुराश्रम्यहोता च चतुर्नेता महाकविः॥ ११६

धनुर्धरश्चक्रधरो भवाञ्छङ्खधरो महान्।
भवान् पूर्वेषु देहेषु ख्यातो भूमिधरः प्रभो॥ ११७

लाङ्गली मुसली चक्री देवकीतनयो भवान्।
चाणूरमथनश्चैव गोप्रियः कंसहा भवान्॥ ११८

गोवर्धनधरश्चैव मल्लारिर्मल्लभावनः।
मल्लप्रियो महामल्लो महापुरुष इत्यपि॥ ११९

विप्रप्रियो विप्रहितो विप्रज्ञो विप्रभावनः।
ब्रह्मण्यश्च वरेण्यश्च भवान् दामोदरः स्मृतः।
प्रलम्बमथनश्चैव केशिहा दानवान्तकः॥ १२०

असिलोघ्नश्च हन्ता च तथा रावणनाशनः।
विभीषणस्य भगवान् राज्यदो वालिनाशनः॥ १२१

सुग्रीवराज्यदाता त्वं बलिराज्यापहारकः।
रत्नहर्ता महारत्नं समुद्रोदरसम्भवम्॥ १२२

वरुणश्च भवान् ख्यातो भवांश्च सरिदुद्भवः।
भवान् खड्गधरो धन्वी धनुर्धरवरो महान्॥ १२३

दाशार्ह इति विख्यातो महाधन्वा धनुःप्रियः।
गोविन्द इति विख्यात उदधिस्त्वं च सुव्रत॥ १२४

आकाशश्च तपश्चैव समुद्रमथनो भवान्।
भवान् स्वर्गो बहुफलो भवान् स्वर्गचरो महान्॥ १२५

आप सम्पूर्ण वेदोंके अध्यक्ष (उनके द्वारा प्रतिपादित सर्वसाक्षी चेतन परमात्मा) हैं। देवताओंके भी स्वामी तथा सम्पूर्ण कामनाओंके दाता हैं। आपका दर्शन अमोघ है। आप वरार्थी पुरुषोंको वर देनेवाले हैं॥ ११५॥ आपकी चार भुजाएँ हैं। वासुदेव, सङ्कर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध—ये चार आपकी मूर्तियाँ हैं। आप चातुर्होत्र यज्ञके प्रवर्तक हैं। चारों आश्रमोंमें होता हैं। चारों पुरुषार्थोंकी प्राप्ति करानेवाले तथा महाज्ञानी हैं॥ ११६॥ आप शार्ङ्ग धनुष, सुदर्शन चक्र और पाञ्चजन्य शङ्ख धारण करनेवाले महान् विष्णु हैं। प्रभो! आप अपने पूर्व विग्रहों (कूर्म, वराह आदि अवतारों)-में धरणीधरके रूपमें विख्यात हैं॥ ११७॥ आप ही हलधर, मुसलधारी और चक्र धारण करनेवाले हैं। आप देवकीके पुत्र, चाणूरका संहार करनेवाले, गौओंके प्रिय तथा कंसका वध करनेवाले हैं॥ ११८॥ आप ही गोवर्धनधारी हैं। आप मल्लोंके शत्रु, मल्लोंके पोषक, मल्लोंके प्रेमी, महामल्लस्वरूप तथा महापुरुष हैं॥ ११९॥ आप ब्राह्मणोंके प्रिय, ब्राह्मणोंके हितैषी, ब्राह्मणोंके ज्ञाता, ब्राह्मणोंके पालक तथा ब्राह्मणभक्त हैं। आप ही सर्वश्रेष्ठ दामोदर कहे गये हैं। आपने ही बलभद्ररूपसे प्रलम्बासुरका संहार किया है। आप केशीके हन्ता तथा दानवोंके काल हैं॥ १२०॥ आपने ही असिलोमाका वध किया है। आप ही वाली तथा रावणका विनाश करनेवाले और विभीषणको राज्य देनेवाले भगवान् श्रीराम हैं॥ १२१॥ सुग्रीवको राज्य प्रदान करनेवाले भी आप ही हैं। आपने ही (वामनरूप धारण करके) बलिके राज्यका अपहरण किया है। आप कौस्तुभ और लक्ष्मी नामक रत्नोंको ग्रहण करनेवाले हैं। आप ही समुद्रके गर्भसे उत्पन्न धन्वन्तरि नामक महारत्न हैं॥ १२२॥ आप ही वरुण नामसे विख्यात हैं। आप ही सरिताओंकी उत्पत्तिके स्थान मेरु हैं। आप नन्दक नामक खड्ग धारण करनेवाले, धन्वी एवं धनुर्धरोंमें श्रेष्ठ महान् वीर हैं॥ १२३॥ आप दाशार्ह नामसे विख्यात हैं। आपका धनुष विशाल है। आप धनुषके प्रेमी हैं। उत्तमव्रतधारी श्रीकृष्ण! आप ही गोविन्द नामसे प्रसिद्ध तथा आप ही समुद्र हैं॥ १२४॥ आप आकाश और तप हैं। आप ही समुद्रका मन्थन करनेवाले हैं। अनेक फलोंसे युक्त स्वर्ग आपका ही स्वरूप है। आप ही स्वर्गमें विचरनेवाले महान् पुरुष हैं॥ १२५॥

त्वमेव च महामेघो बीजनिष्पत्तिरेव च।
त्रैलोक्यमथनस्त्वं च क्रोधलोभमनोरथः॥ १२६

भवान् कामप्रदश्चैव कामः सर्वधनुर्धरः।
संवर्तो वर्तनश्चैव प्रलयो निलयो महान्॥ १२७

हिरण्यगर्भो रूपज्ञो रूपवान् मधुसूदनः।
ईशस्त्वं च महादेव असंख्येयगुणान्वितः॥ १२८

स्तोतुमिच्छसि मां देव स्तोतव्यस्त्वं यदूत्तम।
चक्षुषा ये त्वया घोराः प्राणिनो हि निरीक्षिताः॥ १२९

हतास्ते यमदण्डेन तिर्यङ्निरयगामिनः।
ये त्वया परमप्रीत्या प्राणिनो वै निरीक्षिताः॥ १३०

इह च प्रेत्य ते सर्वे सर्वथा स्वर्गगामिनः।
एष तेऽहं महाबाहो वशगः शासने स्थितः॥ १३१

जयस्थानं ततः कृत्वा गरुडः प्राह केशवम्।
अयमस्मि स्थितो वीर आरुहस्व महाबल॥ १३२

ततः कण्ठे परिष्वज्य माधवो गरुडं ततः।
सखे शत्रुविनाशाय अर्घ्योऽयं प्रतिगृह्यताम्॥ १३३

दत्त्वार्घ्यं परया प्रीत्या शङ्खचक्रगदासिभृत्।
आरुरोह महाबाहुः सुपर्णं पुरुषोत्तमः॥ १३४

कृष्णस्य पार्श्वमागम्य हर्षादेवास्थितोऽभवत्।
कृष्णकेशः प्रवलयो विष्णुः कृष्णश्च वर्णतः॥ १३५

चतुर्दंष्ट्रश्चतुर्बाहुश्चतुर्वेदषडङ्गवित्।
श्रीवत्साङ्कोऽरविन्दाक्ष ऊर्ध्वरोमा मृदुत्वचः॥ १३६

आप ही महान् मेघ हैं। आपसे ही बीजोंकी सिद्धि होती है। आप ही क्रोध आदिके रूपसे तीनों लोकोंको मथते रहते हैं। आप क्रोध, लोभ और मनोरथरूप हैं॥ १२६॥ आप महान् परमेश्वर ही कामनाओंके दाता तथा समस्त धनुषोंको धारण करनेमें समर्थ कामदेव हैं। आप ही संहारक और उत्पादक हैं तथा आप ही प्रलय एवं रक्षाके स्थान हैं॥ १२७॥ महादेव! आप ही सब रूपोंके ज्ञाता हिरण्यगर्भ (ब्रह्मा) हैं। आप ही रूपवान् मधुसूदन (विष्णु) हैं तथा आप ही असंख्य गुणोंसे सम्पन्न ईश्वर (शिव) हैं। यदुवर! देव! आप स्वयं ही स्तुतिके योग्य हैं तो भी मेरी स्तुति करना चाहते हैं (यह कितने आश्चर्यकी बात है)। जिन घोर प्राणियोंको आपने रोषपूर्ण दृष्टिसे देखा है, वे यमदण्डसे मारे गये हैं तथा पशु-पक्षियोंकी योनियों एवं नरकमें गिरनेवाले हैं। परंतु जिन प्राणियोंको आपने बड़े प्यारसे देखा है, वे सब इहलोकमें हों या परलोकमें सर्वथा स्वर्गलोकमें ही जानेके अधिकारी हैं। महाबाहो! यह मैं आपकी आज्ञाके अधीन होकर सब प्रकारसे आपके शासनमें स्थित हूँ॥ १२८—१३१॥ तदनन्तर गरुडने जयस्थान (प्रस्थानकी मुद्रा) बनाकर भगवान् श्रीकृष्णसे कहा—'महाबली वीर! यह मैं आपकी सेवामें खड़ा हूँ। आप मेरी पीठपर आरूढ़ होइये'॥ १३२॥ यह सुनकर माधवने गरुडको कण्ठसे लगाकर कहा—'सखे! शत्रुओंके विनाशके लिये यह अर्घ्य ग्रहण करो'॥ १३३॥ इस प्रकार परम प्रसन्नतापूर्वक अर्घ्य देकर शङ्ख, चक्र, गदा और खड्ग धारण करनेवाले महाबाहु पुरुषोत्तम श्रीहरि गरुडपर आरूढ़ हुए॥ १३४॥ तत्पश्चात् काले केशोंवाले बलरामजी श्रीकृष्णके पास आकर हर्षपूर्वक बैठ गये; विष्णुस्वरूप श्रीकृष्ण वर्णसे भी कृष्ण ही थे। उन्होंने अपने हाथोंमें उत्तम वलय (कड़े) धारण कर रखे थे॥ १३५॥ उनके मुखमें चार दाढ़ें सुशोभित थीं। वे चार भुजाएँ धारण किये हुए थे, छहों अङ्गोंसहित चारों वेदोंके ज्ञाता थे। उनके वक्षःस्थलमें श्रीवत्सचिह्न शोभा पाता था। उनके नेत्र प्रफुल्ल कमलके समान सुशोभित थे। रोमावलियाँ ऊपरकी ओर उठी हुई थीं और त्वचा बहुत ही कोमल थी॥ १३६॥

समाङ्गुलिः समनखो रक्ताङ्गुलिनखान्तरः।
स्निग्धगम्भीरनिर्घोषो वृत्तबाहुर्महाभुजः॥ १३७

आजानुबाहुस्ताम्रास्यः सिंहविस्पष्टविक्रमः।
सहस्रमिव सूर्याणां दीप्यमानः प्रकाशते॥ १३८

यः प्रभुर्भाति विश्वात्मा भूतानां भावनो विभुः।
यस्याष्टगुणमैश्वर्यं ददौ प्रीतः प्रजापतिः॥ १३९

प्रजापतीनां साध्यानां त्रिदशानां च शाश्वतः।
स्तूयमानः स्तवैर्दिव्यैः सूतमागधबन्दिभिः।
ऋषिभिश्च महाभागैर्वेदवेदाङ्गपारगैः॥ १४०

संविधानमथाज्ञाप्य द्वारकायां महाबलः।
गमनाय मतिं चक्रे वासुदेवः प्रतापवान्॥ १४१

आस्थितो गरुडं देवस्तस्य चानु हलायुधः।
पृष्ठतोऽनु बलस्यापि प्रद्युम्नः शत्रुकर्षणः॥ १४२

जय बाणं महाबाहो ये चास्यानुगता रणे।
न हि ते प्रमुखे स्थातुं कश्चिच्छक्तो महामृधे॥ १४३

प्रसादे ते ध्रुवा लक्ष्मीर्विजयश्च पराक्रमे।
विजेष्यसि रणे शत्रुं दैत्येन्द्रं सहसैनिकम्॥ १४४

सिद्धचारणसंघानां महर्षीणां च सर्वशः।
शृण्वन् वाचोऽन्तरिक्षे वै प्रययौ केशवो रणे॥ १४५

उनकी सभी अङ्गुलियाँ समानरूपसे सुन्दर और सुडौल थीं। नख भी बराबर थे, अङ्गुलियों और नखोंके भीतरका भाग लाल था। उनकी वाणीका घोष स्निग्ध एवं गम्भीर था। भुजाएँ गोलाकार एवं विशाल थीं॥ १३७॥ उनकी भुजाएँ घुटनोंतक लम्बी थीं। मुखका रंग लाल था। उनका चलना-फिरना और पराक्रम सुस्पष्टतः सिंहके समान था। वे सहस्रों सूर्योंके समान देदीप्यमान होकर प्रकाशित होते थे॥ १३८॥ जो सर्वव्यापी भूतभावन प्रभु सम्पूर्ण विश्वके आत्मारूपसे प्रकाशित होते हैं। जिन्हें वामनावतारके समय प्रजापति कश्यपने प्रसन्न होकर अणिमा आदि आठ गुणोंसे युक्त ऐश्वर्य प्रदान किया है। जो प्रजापतियों, साध्यों और देवताओंमें सनातन पुरुष माने जाते हैं, उन महाबली एवं प्रतापी वासुदेव भगवान् श्रीकृष्णने द्वारकामें यात्राकी तैयारीके लिये आज्ञा देकर शोणितपुरको जानेका विचार किया। उस समय सूत, मागध, बन्दीजन तथा वेद-वेदाङ्गोंके पारंगत विद्वान् महाभाग महर्षिगण दिव्य स्तोत्रोंद्वारा उनकी स्तुति कर रहे थे॥ १३९—१४१॥ पहले भगवान् श्रीकृष्ण गरुडपर आरूढ़ हुए थे। उनके पीछे हलधर बलरामजी और बलरामजीके भी पीछे शत्रुसूदन प्रद्युम्न गरुडपर बैठे थे॥ १४२॥ (भगवान्‌की यात्राके समय अन्तरिक्षमें यह वाणी सुनायी दी—) 'महाबाहो! आप बाणासुरको तथा उसके जो अनुयायी हों, उनको भी रणभूमिमें पराजित कीजिये। महासमरमें कोई भी आपके सामने ठहर नहीं सकता॥ १४३॥ आपके प्रसादमें लक्ष्मीका अटल निवास है और पराक्रममें विजय प्रतिष्ठित है। आप रणभूमिमें अपने शत्रु दैत्यराज बाणको उसके सैनिकों-सहित परास्त कर देंगे'॥ १४४॥ इस प्रकार अन्तरिक्षमें सिद्धों और चारणोंके समुदायों तथा सम्पूर्ण महर्षियोंकी कही हुई बातें सुनते हुए भगवान् केशव युद्धके लिये प्रस्थित हुए॥ १४५॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे विष्णुपर्वणि कृष्णप्रयाणे एकविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः॥ १२१॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत विष्णुपर्वमें श्रीकृष्णका प्रस्थानविषयक एक सौ इक्कीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १२१॥

द्वाविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

श्रीकृष्ण, बलभद्र और प्रद्युम्नका शोणितपुरके लिये प्रस्थान, गरुड़का आहवनीय अग्निको शान्त करना, श्रीकृष्णद्वारा अग्निगणोंकी पराजय, बाणासुरके सैनिकोंके साथ श्रीकृष्ण आदिका युद्ध, त्रिशिरा ज्वरका आक्रमण और श्रीकृष्णके साथ उसका युद्ध

वैशम्पायन उवाच

ततस्तूर्यनिनादैश्च शङ्खानां च महास्वनैः।
बन्दिमागधसूतानां स्तवैश्चापि सहस्रशः॥ १

स तून्मुखैर्जयाशीर्भिः स्तूयमानो हि मानवैः।
बभार रूपं सोमार्कशुक्राणां प्रतिमं तदा॥ २

अतीव शुशुभे रूपं व्योम्नि तस्योत्पतिष्यतः।
वैनतेयस्य भद्रं ते बृंहितं हरितेजसा॥ ३

अथाष्टबाहुः कृष्णस्तु पर्वताकारसंनिभः।
विबभौ पुण्डरीकाक्षो विकाङ्क्षन् बाणसंक्षयम्॥ ४

असिचक्रगदाबाणा दक्षिणं पार्श्वमास्थिताः।
चर्म शार्ङ्गं तथा वज्रं शङ्खं चैवास्य वामतः॥ ५

शीर्षाणां वै सहस्रं तु विहितं शार्ङ्गधन्वना।
सहस्रं चैव कायानां वहन् संकर्षणस्तदा॥ ६

श्वेतप्रहरणोऽधृष्यः कैलास इव शृङ्गवान्।
प्रस्थितो गरुडेनाथ उद्यन्निव निशाकरः॥ ७

सनत्कुमारस्य वपुः प्रादुरासीन्महात्मनः।
प्रद्युम्नस्य महाबाहोः संग्रामे विक्रमिष्यतः॥ ८

स पक्षबलविक्षेपैर्विधुन्वन् पर्वतान् बहून्।
जगाम मार्गं बलवान् वातस्य प्रतिषेधयन्॥ ९

अथ वायोरतिगतिमास्थाय गरुडस्तदा।
सिद्धचारणसंघानां शुभं मार्गमवातरत्॥ १०

अथ रामोऽब्रवीद् वाक्यं कृष्णमप्रतिमं रणे।
स्वाभिः प्रभाभिर्हीनाः स्म कृष्ण कस्मादपूर्ववत्॥ ११

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! तदनन्तर नाना प्रकारके वाद्योंकी ध्वनियों तथा शङ्खोंके गम्भीर घोषोंके साथ सूत, मागध और बन्दीजन उत्तम स्तोत्रोंद्वारा भगवान्‌की स्तुति करने लगे। ऊपरको मुख किये खड़े हुए मनुष्य उन्हें विजयसूचक आशीर्वाद देने लगे। उस समय भगवान्‌ने सोम, सूर्य और शुक्रके समान तेजस्वी रूप धारण कर लिया था॥ १-२॥ राजन्! तुम्हारा भला हो! आकाशमें उड़ते हुए विनतानन्दन गरुडका रूप भगवान् श्रीहरिके तेजसे व्याप्त होकर अधिक शोभा पाने लगा॥ ३॥ तदनन्तर कमलनयन श्रीकृष्ण आठ भुजाएँ धारण करके बाणासुरका विनाश चाहते हुए पर्वतके समान विशालकाय हो अधिक शोभा पाने लगे॥ ४॥ खड्ग, चक्र, गदा और बाण—ये चार आयुध उनके दाहिने पार्श्वमें खड़े थे; ढाल, धनुष, वज्र और शङ्ख—ये वामपार्श्वमें स्थित थे॥ ५॥ उस समय शार्ङ्गधन्वा भगवान् श्रीकृष्णने अपने सहस्रों सिर बना लिये और संकर्षण सहस्रों शरीर धारण करने लगे॥ ६॥ श्वेत आयुधसे युक्त अजेय वीर बलराम शिखरयुक्त कैलासके समान शोभा पाते थे। वे गरुडके द्वारा यात्रा करते समय उदयकालके चन्द्रमाकी भाँति प्रकाशित हो रहे थे॥ ७॥ संग्राममें पराक्रम करनेको उद्यत हुए महाबाहु प्रद्युम्नके शरीरमें महात्मा सनत्कुमारका स्वरूप प्रकट हो गया॥ ८॥ बलवान् गरुड अपने पङ्खोंके बलपूर्वक संचालनसे बहुसंख्यक पर्वतोंको कम्पित करते और वायुका मार्ग रोकते हुए चले॥ ९॥ तत्पश्चात् वायुसे भी बढ़कर तीव्र गतिका आश्रय ले गरुड तत्काल ही सिद्धों और चारणसमूहोंके शुभ मार्गपर जा पहुँचे॥ १०॥ उस समय बलरामजीने रणभूमिमें अनुपम शक्तिशाली श्रीकृष्णसे इस प्रकार कहा—'कृष्ण! हमलोग अपनी स्वाभाविक कान्तिसे रहित हो अपूर्ववत् कैसे हो गये?'॥ ११॥

सर्वे कनकवर्णाभाः संवृत्ताः स्म न संशयः।
किमिदं ब्रूहि नस्तत्त्वं किं मेरोः पार्श्वगा वयम्॥ १२

श्रीभगवानुवाच

मन्ये बाणस्य नगरमभ्याशस्थमरिंदम।
रक्षार्थं तस्य निर्यातो वह्निरेष स्थितो ज्वलन्॥ १३
अग्नेराहवनीयस्य प्रभया स्म समाहताः।
तेन नो वर्णवैरूप्यमिदं जातं हलायुध॥ १४

श्रीराम उवाच

यदि स्म संनिकर्षस्था यदि निष्प्रभतां गताः।
तद् विधत्स्व स्वयं बुद्ध्या यदत्रानन्तरं हितम्॥ १५

श्रीभगवानुवाच

कुरुष्व वैनतेय त्वं यच्च कार्यमनन्तरम्।
त्वया विधाने विहिते करिष्याम्यहमुत्तमम्॥ १६

वैशम्पायन उवाच

एतच्छ्रुत्वा तु गरुडो वासुदेवस्य भाषितम्।
चक्रे मुखसहस्रं हि कामरूपी महाबलः॥ १७
गङ्गामुपागमत् तूर्णं वैनतेयो महाबलः।
आप्लुत्याकाशगङ्गायामापीय सलिलं बहु॥ १८
प्रववर्षोपरि गतो वैनतेयः प्रतापवान्।
तेनाग्निं शमयामास बुद्धिमान् विनतात्मजः॥ १९
अग्निराहवनीयस्तु ततः शान्तिमुपागमत्।
तं दृष्ट्वाहवनीयं तु शान्तमाकाशगङ्गया।
परमं विस्मयं गत्वा सुपर्णो वाक्यमब्रवीत्॥ २०
अहो वीर्यमथाग्नेस्तु यो दहेद् युगसंक्षये।
यथेह वर्णवैरूप्यं चक्रे कृष्णस्य धीमतः॥ २१
त्रयस्त्रयाणां लोकानां पर्याप्ता इति मे मतिः।
कृष्णः संकर्षणश्चैव प्रद्युम्नश्च महाबलः॥ २२
ततः प्रशान्ते दहने सम्प्रतस्थे स पक्षिराट्।
स्वपक्षबलविक्षेपं कुर्वन् घोरं महास्वनम्॥ २३

'हम सब लोगोंकी अङ्गकान्ति सुवर्णके समान हो गयी है, इसमें संशय नहीं है; ऐसा क्यों हुआ? यह हमें ठीक-ठीक बताओ, क्या हम मेरुपर्वतके आस-पास चल रहे हैं?'॥ १२॥

श्रीभगवान् बोले—शत्रुदमन! मैं समझता हूँ बाणासुरका नगर अब निकट ही है। उसकी रक्षाके लिये बाहर निकलकर यह अग्निदेव प्रज्वलित होते हुए खड़े हैं॥ १३॥ भैया हलायुध! हमलोग आहवनीय अग्निकी प्रभासे आहत हैं; इसीसे हमारी अङ्गकान्तिमें यह परिवर्तन आ गया है॥ १४॥

बलरामजीने पूछा—श्रीकृष्ण! यदि हमलोग शोणितपुरके निकट हैं और यदि इस अग्निकी प्रभासे आहत होकर हमलोग निष्प्रभ हो गये हैं तो अब तुम स्वयं ही बुद्धिसे सोचकर बताओ कि अब यहाँ क्या करनेसे हमारा हित होगा॥ १५॥

श्रीभगवान् बोले—विनतानन्दन! अब यहाँ जो आवश्यक कर्तव्य हो, वह तुम्हीं करो। तुम्हारे द्वारा इस अग्निके निवारणका उपाय कर लिये जानेपर मैं उत्तम पराक्रम प्रकट करूँगा॥ १६॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! वसुदेवनन्दन श्रीकृष्णका यह कथन सुनकर इच्छानुसार रूप धारण करनेवाले महाबली गरुडने अपने हजारों मुख बना लिये॥ १७॥ तत्पश्चात् वे महाबली विनतानन्दन तुरंत ही गङ्गाजीके तटपर गये। वहाँ आकाश-गङ्गामें उतरकर प्रतापी गरुड़ने बहुत-सा जल पी लिया और अग्निदेवके ऊपर जाकर वर्षा की। उस उपायसे बुद्धिमान् विनताकुमारने पूर्वोक्त अग्निको बुझा दिया॥ १८-१९॥ फिर तो आहवनीय अग्निदेव शान्त हो गये। आकाश-गङ्गाके जलसे आहवनीय अग्निको शान्त हुआ देख गरुड महान् आश्चर्यमें पड़कर बोले—॥ २०॥ 'अहो! अग्निका बल तो अद्भुत है, क्योंकि वे महाप्रलयके समय तीनों लोकोंको दग्ध कर सकते हैं; जैसे कि यहाँ इन्होंने बुद्धिमान् श्रीकृष्णके रूप-रंगमें परिवर्तन ला दिया था॥ २१॥ (तथापि श्रीकृष्णके प्रभावसे आकाश-गङ्गाद्वारा ये बुझ गये) मेरा तो यह विश्वास है कि श्रीकृष्ण, संकर्षण और महाबली प्रद्युम्न—ये तीन वीर तीनों लोकोंका सामना करनेके लिये पर्याप्त हैं'॥ २२॥ तदनन्तर आग बुझ जानेपर पक्षिराज गरुड अपने पंखोंके बलपूर्वक संचालनसे भयंकर एवं महान् कोलाहल करते हुए आगे बढ़े॥ २३॥

तं दृष्ट्वा विस्मयं तत्र रुद्रस्यानुचराग्नयः।
आस्थिता गरुडं ह्येते नानारूपा भयावहाः॥ २४

किमर्थमिह सम्प्राप्ताः के वापीमे जनास्त्रयः।
निश्चयं नाधिगच्छन्ति ते गिरिव्रजवह्नयः॥ २५

प्रावर्तयंश्च संग्रामं तैस्त्रिभिः सह यादवैः।
तेषां युद्धप्रसक्तानां संनादः सुमहानभूत्॥ २६

तं च श्रुत्वा महानादं सिंहानामिव गर्जताम्।
अथाङ्गिराः स्वपुरुषं प्रेषयामास बुद्धिमान्॥ २७

यत्र तद् वर्तते युद्धं तत्र गच्छस्व मा चिरम्।
दृष्ट्वा तत् सर्वमागच्छ इत्युक्तः प्रहितस्त्वरन्॥ २८

तथेत्युक्त्वा स तद् युद्धं वर्तमानमवैक्षत।
अग्नीनां वासुदेवेन संसक्तानां महामृधे॥ २९

ते जातवेदसः सर्वे कल्माषः कुसुमस्तथा।
दहनः शोषणश्चैव तपनश्च महाबलः॥ ३०

स्वाहाकारस्य विषये प्रख्याताः पञ्च वह्नयः।
अथापरे महाभागाः स्वैरनीकैर्व्यवस्थिताः॥ ३१

पिठरः पतगः स्वर्णः श्वागाधो भ्राज एव च।
स्वधाकाराश्रयाः पञ्च अयुध्यंस्तेऽपि चाग्नयः॥ ३२

ज्योतिष्टोमविभागौ च वषट्काराश्रयौ पुनः।
द्वावग्नी सम्प्रयुध्येते महात्मानौ महाद्युती॥ ३३

आग्नेयं रथमास्थाय शरमुद्यम्य भास्वरम्।
तयोर्मध्येऽङ्गिराश्चैव महर्षिर्विबभौ रणे॥ ३४

स्थितमङ्गिरसं दृष्ट्वा विमुञ्चन्तं शिताञ्छरान्।
कृष्णः प्रोवाच संक्रुद्धः स्मयन्निव पुनः पुनः॥ ३५

तिष्ठध्वमग्नयः सर्वे एष वो विदधे भयम्।
ममास्त्रतेजसा दग्धा दिशो यास्यथ विद्रुताः।
अथाङ्गिरास्त्रिशूलेन दीप्तेन समधावत॥ ३६

वहाँ उन्हें देखकर रुद्रके अनुचर अग्निगणोंको बड़ा विस्मय हुआ। वे सोचने लगे, 'ये नाना रूपधारी भयंकर वीर गरुडपर चढ़कर किसलिये यहाँ आये हैं तथा ये तीनों पुरुष कौन हैं?' इस प्रकार पर्वतोंपर विचरनेवाले वे अग्निगण किसी निश्चयपर नहीं पहुँच सके; अतः उन्होंने उन तीनों यादववीरोंके साथ युद्ध छेड़ दिया। युद्धमें आसक्त हुए उन अग्नियोंका महान् सिंहनाद प्रकट होने लगा। दहाड़ते हुए सिंहोंके समान उनके उस महानादको सुनकर बुद्धिमान् अङ्गिराने अपने एक पुरुषको वहाँ भेजा॥ २४—२७॥ उन्होंने उससे कहा—'जहाँ वह युद्ध हो रहा है वहाँ शीघ्र जाओ और वह सब कुछ देखकर शीघ्र लौट आओ।' ऐसा कहकर उन्होंने उसे बड़ी उतावलीके साथ भेजा॥ २८॥ तब 'बहुत अच्छा' कहकर उस पुरुषने महासमरमें भगवान् वासुदेवके साथ उलझे हुए अग्निगणोंके उस वर्तमान युद्धको देखा॥ २९॥ वे सब-के-सब जातवेदा अग्नि थे; उनके नाम इस प्रकार थे—कल्माष, कुसुम, दहन, शोषण और महाबली तपन। ये स्वाहाकारविषयक पाँच प्रख्यात अग्नि कहे गये हैं। इनके सिवा दूसरे महाभाग अग्नि भी अपने सैनिकोंके साथ खड़े थे, जिनके नाम थे—पिठर, पतग, स्वर्ण, श्वागाध और भ्राज। ये पाँच स्वधाकारका आश्रय लेकर रहनेवाले अग्नि कहे गये हैं; ये अग्नि भी वहाँ युद्ध कर रहे थे॥ ३०—३२॥ इनके सिवा वषट्कारके आश्रयमें रहनेवाले दो महातेजस्वी और महामनस्वी अग्नि, जिनका नाम ज्योतिष्टोम और विभाग था, वहाँ युद्ध कर रहे थे॥ ३३॥ इन दोनोंके बीचमें प्रमुख अग्नि महर्षि अङ्गिरा आग्नेय रथपर आरूढ़ हो एक तेजस्वी बाण हाथमें लिये रणभूमिमें प्रकाशित हो रहे थे॥ ३४॥ महर्षि अङ्गिराको पैने बाण छोड़ते हुए वहाँ स्थित देख क्रोधमें भरे हुए भगवान् श्रीकृष्ण बारम्बार मुसकराते हुए-से बोले—॥ ३५॥ 'अग्नियो! तुम सब लोग खड़े रहो! मैं अभी तुम्हारे लिये भयकी सृष्टि करता हूँ। मेरे अस्त्रके तेजसे दग्ध होकर तुम स्वयं ही सम्पूर्ण दिशाओंमें भाग जाओगे।' यह सुनकर अङ्गिराने उस महासमरमें क्रोधपूर्वक चमकता हुआ त्रिशूल हाथमें लेकर श्रीकृष्णपर धावा

आददान इव क्रोधात् कृष्णप्राणान् महामृधे।
त्रिशूलं तस्य दीप्तं तु चिच्छेद परमेषुभिः।
अर्धचन्द्रैस्तथा तीक्ष्णैर्यमान्तकनिभोपमैः॥ ३७

स्थूणाकर्णेन बाणेन दीप्तेन स महामनाः।
विव्याधान्तकतुल्येन वक्षस्यङ्गिरसं ततः॥ ३८

रुधिरौघप्लुतैर्गात्रैरङ्गिरा विह्वलन्निव।
विष्टब्धगात्रः सहसा पपात धरणीतले॥ ३९

शेषास्ततोऽग्नयः सर्वे चत्वारो ब्रह्मणः सुताः।
आवाहयंस्तदा शीघ्रं बाणस्य पुरमन्तिकात्॥ ४०

अथागमत् ततः कृष्णो यत्र बाणपुरं ततः।
अथ बाणपुरं दृष्ट्वा दूरात् प्रोवाच नारदः॥ ४१

एतत् तच्छोणितपुरं कृष्ण पश्य महाभुज।
अत्र रुद्रो महातेजा रुद्राण्या सहितोऽवसत्॥ ४२

गुहश्च बाणगुप्त्यर्थं सततं क्षेमकारणात्।
नारदस्य वचः श्रुत्वा कृष्णः सम्प्रहसन् ब्रवीत्॥ ४३

क्षणं चिन्तयतामत्र श्रूयतां च महामुने।
यदि वावतरेद् रुद्रो बाणसंरक्षणं प्रति॥ ४४

शक्तितो वयमप्यत्र सह योत्स्याम तेन वै।
एवं विवदतोस्तत्र कृष्णनारदयोस्तदा॥ ४५

प्राप्ता निमेषमात्रेण शीघ्रगा गरुडेन ते।
ततः शङ्खं समाधाय वदने पुष्करेक्षणः॥ ४६

वायुवेगसमुद्भूतो मेघश्चन्द्रमिवोद्गिरन्।
ततः प्रध्माप्य तं शङ्खं भयमुत्पाद्य वीर्यवान्॥ ४७

प्रविवेश पुरं कृष्णो बाणस्याद्भुतकर्मणः।
ततः शङ्खप्रणादैश्च भेरीणां च महास्वनैः॥ ४८

बाणानीकानि सहसा संनह्यन्त समन्ततः।
ततः किंकरसैन्यं तु व्यादिष्टं समरे भयात्॥ ४९

कोटिशश्चापि बहुशो दीप्तप्रहरणास्तदा।
तदसंख्येयमेकस्थं महाभ्रघनसंनिभम्॥ ५०

किया, मानो वे उनके प्राण ले लेनेको उद्यत हों। श्रीकृष्णने अपने तीखे अर्द्धचन्द्राकार उत्तम बाणोंसे, जो यमराजके समान क्रूर और अन्तकके समान प्राणहारी थे, उनके चमकते हुए त्रिशूलको काट डाला॥ ३६-३७॥ इसके बाद उन महामना श्रीहरिने स्थूणाकर्ण नामक कालसदृश तेजस्वी बाणोंद्वारा अङ्गिराकी छातीमें गहरी चोट पहुँचायी॥ ३८॥ अङ्गिराका सारा शरीर लहूलुहान हो गया। उनकी देह अकड़ गयी और वे विह्वल होकर सहसा पृथ्वीपर गिर पड़े॥ ३९॥ तत्पश्चात् शेष सब अग्नि जो ब्रह्माजीके चार पुत्र हैं, उस समय उन्हें शीघ्र ही बाणासुरके नगरके निकट उठा ले गये॥ ४०॥ तत्पश्चात् श्रीकृष्ण जहाँ बाणासुरका नगर निकट था, वहाँ गये। बाणपुरको दूरसे ही देखकर नारदजीने कहा— ॥ ४१॥ 'महाबाहु श्रीकृष्ण! देखिये, यही शोणितपुर है। यहाँ महातेजस्वी रुद्रने देवी रुद्राणीके साथ निवास किया है। बाणासुरकी रक्षा तथा उसके क्षेमके लिये कार्तिकेय भी यहाँ सदा निवास करते हैं'। नारदजीकी यह बात सुनकर श्रीकृष्ण हँसते हुए बोले—'महामुने! आप यहाँ मेरी बात सुनिये और क्षणभर उसपर विचार कीजिये। यदि बाणासुरकी रक्षाके लिये भगवान् रुद्र उतर आयेंगे तो हमलोग भी अपनी शक्तिके अनुसार उनके साथ युद्ध अवश्य करेंगे'। इस प्रकार वहाँ नारद और श्रीकृष्णमें बातचीत हो रही थी कि गरुडके द्वारा शीघ्र चलकर वे सब लोग निमेषमात्रमें जा पहुँचे। तब कमलनयन श्रीकृष्णने शङ्खको अपने मुँहसे लगाकर बजाया। उस समय ऐसा जान पड़ता था मानो कोई मेघ वायुके वेगसे प्रेरित होकर चन्द्रमाको उगल रहा हो। इस प्रकार उस शङ्खको बजाकर असुरोंके मनमें भय उत्पन्न करके पराक्रमी श्रीकृष्णने अद्भुत कर्म करनेवाले बाणासुरके पुरमें प्रवेश किया। तदनन्तर शङ्खोंके शब्दों और भेरियोंके गम्भीर घोषोंसे प्रेरित हो बाणासुरकी सारी सेनाएँ सहसा सब ओरसे कवच आदि पहनकर युद्धके लिये तैयार हो गयीं। तत्पश्चात् बाणासुरने भयके कारण युद्धके लिये अपने किङ्कर नामक सैनिकोंको आज्ञा दी। उनकी संख्या कई करोड़की थी। उन सबके पास चमकीले अस्त्र-शस्त्र थे। एक स्थानपर खड़ी हुई वह असंख्य सेना महान् मेघोंकी घटाके समान जान पड़ती थी।

नीलाञ्जनचयप्रख्यमप्रमेयमथाक्षयम् ।
दीप्तप्रहरणाः सर्वे दैत्यदानवराक्षसाः ॥ ५१

प्रमाथगणमुख्याश्च अयुध्यन् कृष्णमव्ययम्।
सर्वतस्तैःप्रदीप्तास्त्रैः सार्चिष्मद्भिरिवाग्निभिः ॥ ५२

अभ्युपेत्य तदात्युग्रैर्यक्षराक्षसकिन्नरैः ।
पीयते रुधिरं तेषां चतुर्णामपि संयुगे ॥ ५३

तद् बलं तु समासाद्य बलभद्रो महाबलः ।
प्रोवाच वचनं तत्र परस्य बलनाशनः ॥ ५४

कृष्ण कृष्ण महाबाहो विधत्स्वैषां महद् भयम्।
इति संचोदितः कृष्णो बलभद्रेण धीमता ॥ ५५

तेषां वधार्थमाग्नेयं जग्राह पुरुषोत्तमः ।
अस्त्रमस्त्रविदां श्रेष्ठो यमान्तकसमप्रभः ।
प्रविधूयासुरगणान् क्रव्यादानस्त्रतेजसा ॥ ५६

प्रययौ त्वरया युक्तो यत्र दृश्येत तद् बलम्।
शूलपट्टिशशक्त्यृष्टिपिनाकपरिघायुधम् ॥ ५७

प्रमाथगणभूयिष्ठं बलं तदभवत् क्षितौ।
शैलमेघप्रतीकाशैर्नानारूपैर्भयानकैः ।
वाहनैः संघशः सर्वे योधास्तत्रावतस्थिरे ॥ ५८

वातोद्भूतैरिव घनैर्विप्रकीर्णैरिवाचलैः ।
शुशुभे तत्र बहुलैरनीकैर्दृढधन्विभिः ॥ ५९

मुसलैरसिभिः शूलैर्गदाभिः परिघैस्तथा।
अबाधं तदसंख्येयं शुशुभे सर्वतो बलम् ॥ ६०

ततः संकर्षणो देवमुवाच मधुसूदनम्।
कृष्ण कृष्ण महाबाहो यदेतद् दृश्यते बलम्।
एतैः सह रणे योद्धुमिच्छामि पुरुषोत्तम ॥ ६१

श्रीकृष्ण उवाच

ममाप्येषैव संजाता बुद्धिरित्यब्रवीच्च तम्।
एभिः सह रणे योद्धुमिच्छेयं योधसत्तमैः ॥ ६२

उसकी कान्ति नीली अञ्जनराशिके समान दिखायी देती थी। वह अप्रमेय और अक्षय थी। उस सेनामें जो दैत्य, दानव और राक्षस थे, उन सबके हाथोंमें चमकीले अस्त्र-शस्त्र शोभा पा रहे थे। भगवान् शिवके प्रमथगणोंमें जो मुख्य-मुख्य वीर थे, वे भी वहाँ आकर अविनाशी भगवान् कृष्णके साथ युद्ध करने लगे। चमकीले अस्त्र-शस्त्र धारण करनेके कारण जो लपटोंसे युक्त अग्नियोंके समान प्रतीत होते थे, वे भयंकर यक्ष, राक्षस और किन्नर सब ओरसे निकट आकर युद्धस्थलमें श्रीकृष्ण, बलभद्र, प्रद्युम्न और गरुड़—इन चारोंका रक्त पीनेकी चेष्टा करने लगे ॥ ४२—५३ ॥ शत्रुओंकी सेनाका नाश करनेवाले महाबली बलभद्र बाणासुरकी उस सेनाको निकट पाकर श्रीकृष्णसे इस प्रकार बोले— ॥ ५४ ॥ 'कृष्ण! कृष्ण! महाबाहो! इनके लिये महान् भय उपस्थित करो।' बुद्धिमान् बलभद्रके द्वारा इस प्रकार प्रेरित हो अस्त्रवेत्ताओंमें श्रेष्ठ पुरुषोत्तम श्रीकृष्णने उन शत्रुओंके वधके लिये आग्नेयास्त्र हाथमें लिया। उस समय वे यम और अन्तकके समान भयंकर जान पड़ते थे। अपने अस्त्रके तेजसे उन मांसभक्षी असुरोंको नष्ट करके श्रीकृष्ण बड़ी उतावलीके साथ उस स्थानपर गये, जहाँ वह शत्रुसेना दिखायी दे रही थी। शूल, पट्टिश, शक्ति, ऋष्टि, पिनाक और परिघ आदि आयुधोंसे युक्त वह सेना, जिसमें प्रमथगणोंकी अधिकता थी, भूतलपर खड़ी थी। पर्वत और मेघोंके समान दिखायी देनेवाले नाना रूपधारी भयानक वाहनोंपर आरूढ़ हो वे समस्त योद्धा वहाँ संघबद्ध होकर खड़े थे ॥ ५५—५८ ॥ सुदृढ़ धनुष धारण करनेवाले बहुसंख्यक सैनिकोंसे, जो वायुद्वारा उड़ाये गये छिन्न-भिन्न बादलों तथा बिखरे हुए पर्वतोंके समान दूरतक फैले हुए थे, उस स्थानकी बड़ी शोभा हो रही थी ॥ ५९ ॥ वह असंख्य एवं अगाध सेना सब ओरसे मुसल, खड्ग, शूल, गदा और परिघ आदिके द्वारा सुशोभित हो रही थी ॥ ६० ॥ तब संकर्षणने भगवान् मधुसूदनसे कहा—'कृष्ण! कृष्ण! महाबाहो! पुरुषोत्तम! यह जो सेना दिखायी देती है, रणभूमिमें इसके सैनिकोंके साथ मैं युद्ध करना चाहता हूँ' ॥ ६१ ॥

श्रीकृष्ण बोले—'मेरे मनमें भी ऐसा विचार उत्पन्न हुआ है।' ऐसा कहकर वे पुनः उनसे बोले—भैया! रणभूमिमें इन श्रेष्ठ योद्धाओंके साथ मैं युद्ध करना चाहता हूँ ॥ ६२ ॥

युद्ध्यतः प्राङ्मुखस्यास्तु सुपर्णो वै ममाग्रतः।
सव्यपार्श्वे तु प्रद्युम्नस्तथा मे दक्षिणे भवान्।
रक्षितव्यमथान्योन्यमस्मिन् घोरे महामृधे॥ ६३

वैशम्पायन उवाच

एवं ब्रुवन्तस्तेऽन्योन्यमधिरूढाः खगोत्तमम्।
गिरिशृङ्गनिभैर्घोरैर्गदामुसललाङ्गलैः ॥ ६४

युध्यतो रौहिणेयस्य रौद्रं रूपमभूत् तदा।
युगान्ते सर्वभूतानां कालस्येव दिधक्षतः॥ ६५

आकृष्य लाङ्गलाग्रेण मुसलेनावपोथयत्।
चचारातिबलो रामो युद्धमार्गविशारदः॥ ६६

प्रद्युम्नः शरजालैस्तान् समन्तात् पर्यवारयत्।
दानवान् पुरुषव्याघ्रो युद्ध्यमानान् महाबलः॥ ६७

स्निग्धाञ्जनचयप्रख्यः शङ्खचक्रगदाधरः।
प्रध्माय बहुशः शङ्खमयुध्यत जनार्दनः॥ ६८

पक्षप्रहारनिहता नखतुण्डाग्रदारिताः।
नीता वैवस्वतपुरं वैनतेयेन धीमता॥ ६९

तैर्हन्यमानं दैत्यानामनीकं भीमविक्रमम्।
अभज्यत तदा संख्ये बाणवर्षसमाहतम्॥ ७०

भज्यमानेष्वनीकेषु त्रातुकामः समभ्ययात्।
ज्वरस्त्रिपादस्त्रिशिराः षड्भुजो नवलोचनः॥ ७१

भस्मप्रहरणो रौद्रः कालान्तकयमोपमः।
नदन् मेघसहस्रेण तुल्यो निर्घातनिःस्वनः॥ ७२

निःश्वसञ्जृम्भमाणश्च निद्रान्विततनुर्भृशम्।
नेत्राभ्यामाकुलं वक्त्रं मुहुः कुर्वन् भ्रमन् मुहुः॥ ७३

पूर्वाभिमुख होकर युद्ध करते समय मेरे आगे-आगे तो गरुड रहें, बायीं ओर प्रद्युम्न हों और दाहिनी ओर आप रहें। इस घोर महायुद्धमें हमें एक-दूसरेकी रक्षा करनी चाहिये॥ ६३॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! परस्पर ऐसी बातचीत करके पक्षिप्रवर गरुडपर चढ़े हुए वे तीनों वीर युद्ध करने लगे। पर्वतके शिखरोंकी भाँति भयंकर गदा, मुसल और हलसे युद्ध करते हुए रोहिणीकुमार बलभद्रका रूप उस समय वैसा ही भयंकर हो उठा, जैसा कि प्रलयकालमें सम्पूर्ण भूतोंको दग्ध कर देनेकी इच्छावाले कालका रूप होता है॥ ६४-६५॥ युद्धमार्गोंके विशेषज्ञ अत्यन्त बलशाली बलराम रणभूमिमें सब ओर विचरने लगे। वे हलके अग्रभागसे शत्रुओंको खींचकर उन्हें मुसलसे मार गिराते थे॥ ६६॥ पुरुषसिंह महाबली प्रद्युम्नने बाणोंका जाल-सा बिछाकर वहाँ जूझते हुए दानवोंको सब ओरसे ढक दिया॥ ६७॥ चिकनी अञ्जनराशिके समान कान्तिमान् जनार्दन अपने हाथोंमें शङ्ख, चक्र और गदा लिये हुए थे। वे बारम्बार शङ्ख बजाकर युद्ध करने लगे॥ ६८॥ बुद्धिमान् विनतानन्दन गरुडने बहुत-से दानवोंको पंजों और चोंचके अग्रभागसे विदीर्ण करके तथा कितनोंको पंखोंके प्रहारसे हताहत करके यमलोक पहुँचा दिया॥ ६९॥ उन चारोंके द्वारा मारी जाती हुई भयानक पराक्रमवाली दैत्य-सेनाके पाँव उखड़ गये। वह युद्धस्थलमें बाणोंकी वर्षासे क्षत-विक्षत हो गयी थी॥ ७०॥ जब इस प्रकार सारी सेनाएँ भागने लगीं, तब उनकी रक्षा करनेके लिये त्रिशिरा नामक ज्वर सामने आया। उसके तीन पैर, तीन सिर, छः बाँहें और नौ आँखें थीं। भस्म ही उसका आयुध था। वह काल, अन्तक और यमके समान भयंकर दिखायी देता था। वह जब सिंहनाद करता, तब गर्जते हुए हजारों मेघोंके समान प्रतीत होता था। उसकी आवाज वज्रकी गड़गड़ाहटके समान जान पड़ती थी॥ ७१-७२॥ वह बारम्बार लम्बी साँस खींचता और जँभाई लेता था। उसका शरीर निद्रासे अत्यन्त आकुल प्रतीत होता था। वह बारम्बार घूमता और अपने दोनों नेत्रोंसे युक्त मुखको व्यथासे व्याकुल बना लेता था॥ ७३॥

संहृष्टरोमा ग्लानाक्षो भग्नचित्त इव श्वसन्।
हलायुधमभिक्रुद्धः साक्षेपमिदमब्रवीत्॥ ७४

किमेवं बलमत्तोऽसि न मां पश्यसि संयुगे।
तिष्ठ तिष्ठ न मे जीवन् मोक्ष्यसे रणमूर्धनि॥ ७५

इत्येवमुक्त्वा प्रहसन् हलायुधमुपाद्रवत्।
युगान्ताग्निनिभैर्घोरैर्मुष्टिभिर्जनयन् भयम्॥ ७६

चरतस्तत्र संग्रामे मण्डलानि सहस्रशः।
रौहिणेयस्य शीघ्रेण नावस्थानमदृश्यत॥ ७७

तस्य भस्म तदा क्षिप्तं ज्वरेणाप्रतिमौजसा।
शैघ्र्याद् वक्षो निपतितं शरीरे पर्वतोपमे॥ ७८

तद् भस्म वक्षसस्तस्य मेरोः शिखरमागमत्।
प्रदीप्तं पतितं तत्र गिरिशृङ्गं व्यदारयत्॥ ७९

शेषेण चापि जज्वाल भस्मना कृष्णपूर्वजः।
निःश्वसञ्जृम्भमाणश्च निद्रान्विततनुर्भृशम्॥ ८०

नेत्रयोराकुलत्वं च मुहुः कुर्वन् भ्रमंस्तथा।
संहृष्टरोमा ग्लानाक्षः क्षिप्तचित्त इव श्वसन्॥ ८१

ततो हलधरो भग्नः कृष्णमाह विचेतनः।
कृष्ण कृष्ण महाबाहो प्रदीप्तोऽस्म्यभयं कुरु॥ ८२

दह्यामि सर्वतस्तात कथं शान्तिर्भवेन्मम।
इत्येवमुक्ते वचने बलेनामिततेजसा॥ ८३

प्रहस्य वचनं प्राह कृष्णः प्रहरतां वरः।
न भेतव्यमितीत्युक्त्वा परिष्वक्तो हलायुधः॥ ८४

कृष्णेन परमस्नेहात् ततो दाहात् प्रमुच्यत।
मोक्षयित्वा बलं तत्र दाहात् तु मधुसूदनः॥ ८५

प्रोवाच परमक्रुद्धो वासुदेवो ज्वरं तदा।

उसके रोंगटे खड़े हो रहे थे। नेत्र आदि इन्द्रियाँ गली जा रही थीं। वह भग्नचित्त (हतोत्साह)-सा होकर साँस लेता था। उसने क्रोधमें भरकर हलधरसे यह आक्षेपयुक्त बात कही—॥ ७४॥ 'तुम क्यों इस प्रकार बलसे उन्मत्त हो रहे हो? क्या इस युद्धस्थलमें तुम मुझे नहीं देखते हो? खड़े रहो, खड़े रहो! आज इस युद्धके मुहानेपर तुम मेरे हाथसे जीवित नहीं छूट सकोगे'॥ ७५॥ ऐसा कहकर जोर-जोरसे हँसते हुए त्रिशिराने हल नामक आयुध धारण करनेवाले बलरामजीपर आक्रमण किया। वह प्रलयाग्निके समान अपने भयानक मुक्कोंसे भय उत्पन्न कर रहा था॥ ७६॥ रोहिणीकुमार बलभद्र वहाँ संग्राममें सहस्रों पैंतरे बदलते हुए शीघ्रतापूर्वक विचर रहे थे। अतः कहीं उनका ठहरना उसे नहीं दिखायी दिया॥ ७७॥ तब उस अप्रतिम बलशाली ज्वरने बड़ी फुर्तीसे उनके ऊपर भस्म फेंका, जो उनके पर्वताकार शरीरमें छातीपर जाकर गिरा॥ ७८॥ वह भस्म उनकी छातीसे मेरुपर्वतके शिखरपर आ गिरा। वहाँ गिरते ही वह प्रज्वलित हो उठा और उसने उस पर्वतशिखरको विदीर्ण कर डाला॥ ७९॥ जो भस्म उनके वक्षःस्थलपर शेष रह गया, उतनेहीसे श्रीकृष्णके बड़े भैया जलने लगे। वे बारम्बार साँस और जँभाई लेने लगे। उनका शरीर निद्रासे अत्यन्त अभिभूत हो गया॥ ८०॥ वे बारम्बार नेत्रोंसे व्याकुलता प्रकट करने और चक्कर काटने लगे। उनके शरीरमें रोमाञ्च हो आया। उनकी नेत्र आदि इन्द्रियाँ गलने लगीं। वे विक्षिप्तचित्त-से होकर लम्बी साँस खींचने लगे॥ ८१॥ उस समय हलधरने हतोत्साह एवं अचेत होकर श्रीकृष्णसे कहा—'कृष्ण! कृष्ण! महाबाहो! मैं जल रहा हूँ। मेरा भय दूर करो। तात! मेरे शरीरमें सब ओरसे जलन हो रही है। मुझे किस तरह शान्ति प्राप्त हो'। अमिततेजस्वी बलदेवने जब ऐसी बात कही, तब प्रहार करनेवालोंमें श्रेष्ठ श्रीकृष्णने उनसे हँसकर कहा—'भैया! डरो मत।' ऐसा कहकर श्रीकृष्णने बड़े स्नेहके साथ हलधरको हृदयसे लगाया। फिर तो वे तत्काल ही उस दाहसे मुक्त हो गये। बलरामजीको वहाँ ज्वरजनित दाहसे मुक्त करके अत्यन्त कुपित हुए वसुदेवनन्दन मधुसूदनने उस समय उस ज्वरसे कहा॥ ८२—८५ $\frac{१}{२}$॥

श्रीभगवानुवाच

एह्येहि ज्वर युध्यस्व या ते शक्तिर्महामृधे॥ ८६

यच्च ते पौरुषं सर्वं तद् दर्शयतु नो भवान्।
सव्येतराभ्यां बाहुभ्यामेवमुक्तो ज्वरस्तदा॥ ८७

चिक्षेपैनं महद् भस्म ज्वालागर्भं महाबलः।
ततः प्रदीप्तगात्रस्तु मुहूर्तमभवत् प्रभुः॥ ८८

कृष्णः प्रहरतां श्रेष्ठः शमं चाग्निर्गतस्ततः।
ततस्तैर्भुजगाकारैर्बाहुभिस्तु त्रिभिस्तदा॥ ८९

जघान कृष्णं ग्रीवायां मुष्टिनैकेन चोरसि।
स सम्प्रहारस्तुमुलस्तयोः पुरुषसिंहयोः॥ ९०

ज्वरस्य तु महायुद्धे कृष्णस्य तु महौजसः।
पर्वतेषु पतन्तीनामशनीनामिव स्वनः॥ ९१

कृष्णज्वरभुजाघातैर्युद्धमासीत् सुदारुणम्।
नैवमेवं प्रहर्तव्यमिति तत्र महास्वनः।
मुहूर्तमभवद् युद्धमन्योन्यं तु महात्मनोः॥ ९२

ततो ज्वरं कनकविचित्रभूषणं
न्यपीडयद् भुजयुगलेन संयुगे।
जगत्क्षयं समुपनयञ्जगत्पतिः
शरीरधृग् गगनचरं महामृधे॥ ९३

श्रीभगवान् बोले—ज्वर! आओ, आओ, युद्ध करो। तुम्हारी जो शक्ति है और तुममें जो पुरुषार्थ है, वह सब हमें इस महासमरमें दिखाओ। उनके ऐसा कहनेपर उस महाबली ज्वरने अपनी दोनों दाहिनी भुजाओंसे उनके ऊपर वह महान् भस्म फेंका, जिसके भीतर ज्वाला छिपी हुई थी। उस भस्मसे दो घड़ीके लिये प्रहार करनेवालोंमें श्रेष्ठ भगवान् श्रीकृष्णका सारा शरीर जल उठा; परंतु फिर वह आग अपने-आप बुझ गयी। तब उस त्रिशिराने अपनी तीन सर्पाकार भुजाओंसे श्रीकृष्णके कण्ठमें प्रहार किया और एक मुक्केसे उनकी छातीपर चोट की। (फिर श्रीकृष्ण भी उस ज्वरको पीटने लगे।) उस महायुद्धमें ज्वर और महातेजस्वी श्रीकृष्ण दोनों पुरुषसिंहोंमें भयंकर मुष्टिका प्रहार होने लगा। उसका शब्द पर्वतोंपर गिरती हुई बिजलियोंकी गड़गड़ाहटके समान प्रतीत होता था॥ ८६—९१॥ श्रीकृष्ण और ज्वर दोनोंमें भुजाओंके आघातसे अत्यन्त भयंकर युद्ध हो रहा था। 'ऐसे नहीं, ऐसे प्रहार करना चाहिये' यह शब्द वहाँ बड़े जोर-जोरसे सुनायी देता था। इस प्रकार उन दोनों महात्माओंमें दो घड़ीतक परस्पर युद्ध चलता रहा॥ ९२॥ तदनन्तर मानवशरीर धारण करके प्रकट हुए जगदीश्वर श्रीहरिने उस महासमरमें सोनेके विचित्र आभूषणोंसे विभूषित उस आकाशचारी ज्वरको अपनी दोनों भुजाओंसे धर दबाया। उस समय ऐसा जान पड़ता था कि वे जगदीश्वर सारे संसारका संहार कर डालेंगे॥ ९३॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे विष्णुपर्वणि कृष्णज्वरयुद्धे द्वाविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः॥ १२२॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत विष्णुपर्वमें श्रीकृष्ण और ज्वरका युद्धविषयक एक सौ बाईसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १२२॥

त्रयोविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

श्रीकृष्णसे पराजित हुए ज्वरका उनकी शरणमें जाना, उनसे वर पाना और उनकी आज्ञा शिरोधार्य कर रणभूमिसे हट जाना

वैशम्पायन उवाच

मृतमित्यभिविज्ञाय ज्वरं शत्रुनिषूदनः।
कृष्णो भुजबलाभ्यां तु चिक्षेपाथ महीतले॥ १

मुक्तमात्रः स बाहुभ्यां कृष्णदेहं विवेश ह।
अमुक्त्वा विग्रहं तस्य कृष्णस्याप्रतिमौजसः॥ २

स ह्याविष्टस्तथा तेन ज्वरेणाप्रतिमौजसा।
कृष्णः स्खलन्निव मुहुः क्षितौ गाढं व्यवर्तत॥ ३

जृम्भते श्वसते चैव वल्गते च पुनः पुनः।
रोमाञ्चोत्थितगात्रश्च निद्रया चाभिभूयते॥ ४

ततः स्थैर्यं समालम्ब्य कृष्णः परपुरञ्जयः।
विकुर्वति महायोगी जृम्भमाणः पुनः पुनः॥ ५

ज्वराभिभूतमात्मानं विज्ञाय पुरुषोत्तमः।
सोऽसृजज्ज्वरमन्यं तु पूर्वज्वरविनाशनम्॥ ६

घोरं वैष्णवमत्युग्रं सर्वप्राणिभयंकरम्।
संसृष्टवान् स तेजस्वी तं ज्वरं भीमविक्रमम्॥ ७

ज्वरः कृष्णविसृष्टस्तु गृहीत्वा तं ज्वरं बलात्।
कृष्णाय हृष्टः प्रायच्छत् तं जग्राह ततो हरिः॥ ८

ततस्तं परमक्रुद्धो वासुदेवो महाबलः।
स्वगात्रात् स्वज्वरेणैव निष्कासयत वीर्यवान्॥ ९

आविध्य भूतले चैनं शतधा कर्तुमुद्यतः।
व्याघोषत ज्वरस्तत्र भोः परित्रातुमर्हसि॥ १०

आविध्यमाने तस्मिंस्तु कृष्णेनामिततेजसा।
अशरीरा ततो वाणी ह्यन्तरिक्षादभाषत॥ ११

कृष्ण कृष्ण महाबाहो यदूनां नन्दिवर्धन।
मा वधीर्ज्वरमेनं तु रक्षणीयस्त्वयानघ॥ १२

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! उस ज्वरको मरा हुआ जानकर शत्रुसूदन श्रीकृष्णने अपनी बलिष्ठ भुजाओंसे उठाकर उसे पृथ्वीपर फेंक दिया॥ १॥ श्रीकृष्णकी भुजाओंसे छूटते ही वह उनके शरीरके भीतर घुस गया; वह अमिततेजस्वी श्रीकृष्णके श्रीविग्रहको छोड़कर न जा सका॥ २॥ उस अप्रतिम बलशाली ज्वरसे आविष्ट होकर श्रीकृष्ण बारम्बार लड़खड़ाते हुए-से पृथ्वीपर बैठ गये और जोर-जोरसे लोटने लगे॥ ३॥ वे बारम्बार जँभाई लेते, लम्बी साँस खींचते और उछलते-कूदते थे; उनके सम्पूर्ण अङ्गोंमें रोमाञ्च हो आया और वे निद्रासे अभिभूत होने लगे॥ ४॥ तदनन्तर किसी तरह स्थिरता धारण करके शत्रुनगरीपर विजय पानेवाले महायोगी श्रीकृष्ण बारम्बार जँभाई लेते हुए विकारको प्राप्त होने लगे॥ ५॥ अपने-आपको ज्वरसे आक्रान्त हुआ जान पुरुषोत्तम श्रीहरिने दूसरे ज्वरकी सृष्टि की, जो पूर्व ज्वरका विनाश करनेवाला था॥ ६॥ तेजस्वी श्रीकृष्णने जिस भयानक पराक्रमी ज्वरकी सृष्टि की थी, वह घोर वैष्णव ज्वर अत्यन्त उग्र तथा समस्त प्राणियोंके लिये भयङ्कर था॥ ७॥ श्रीकृष्णद्वारा रचे गये उस ज्वरने पूर्वोक्त त्रिशिरा ज्वरको बलपूर्वक पकड़कर बड़े हर्षके साथ उसे श्रीकृष्णको समर्पित कर दिया। तब श्रीहरिने पुनः उस ज्वरको पकड़ लिया॥ ८॥ तब अत्यन्त क्रोधमें भरे हुए महाबली पराक्रमी भगवान् वासुदेवने अपने ज्वरके द्वारा ही त्रिशिरा ज्वरको अपने शरीरसे निकलवा दिया॥ ९॥ तत्पश्चात् वे उसे पृथ्वीपर घुमाकर उसके सौ टुकड़े कर देनेको उद्यत हो गये, तब वहाँ उस ज्वरने यह पुकार की, 'प्रभो! आप मेरी रक्षा करें'॥ १०॥ अमिततेजस्वी श्रीकृष्णके द्वारा उस ज्वरके घुमाये जाते समय आकाशसे शरीररहित वाणीने इस प्रकार कहा—॥ ११॥ 'कृष्ण! कृष्ण!! महाबाहो!!! यदुकुलका आनन्द बढ़ानेवाले निष्पाप श्रीकृष्ण! आप इस ज्वरका वध न कीजिये, यह आपके द्वारा रक्षणीय है'॥ १२॥

इत्येवमुक्ते वचने तं मुमोच हरिः स्वयम्।
भूतभव्यभविष्यस्य जगतः परमो गुरुः॥ १३

कृष्णस्य पादयोर्मूर्ध्ना शरणं सोऽगमज्ज्वरः।
एवं मुक्तो हृषीकेशं ज्वरो वाक्यमथाब्रवीत्॥ १४

शृणुष्व मम गोविन्द विज्ञाप्यं यदुनन्दन।
यो मे मनोरथो देव तं त्वं कुरु महाभुज॥ १५

अहमेको ज्वरस्तात नान्यो लोके ज्वरो भवेत्।
त्वत्प्रसादाद्धि देवेश वरमेनं वृणोम्यहम्॥ १६

वासुदेव उवाच

एवं भवतु भद्रं ते यथा त्वं ज्वर काङ्क्षसे।
वरार्थिनां वरो देयो भवांश्च शरणं गतः॥ १७

एक एव ज्वरो लोके भवानस्तु यथा पुरा।
योऽयं मया ज्वरः सृष्टो मय्येवैष प्रलीयताम्॥ १८

वैशम्पायन उवाच

एवमुक्ते तु वचने ज्वरं प्रति महायशाः।
कृष्णः प्रहरतां श्रेष्ठः पुनर्वाक्यमुवाच ह॥ १९

वासुदेव उवाच

शृणुष्व ज्वर संदेशं यथा लोके चरिष्यसि।
सर्वजातिषु विश्रब्धं यथा स्थावरजङ्गमे॥ २०

त्रिधा विभज्य चात्मानं मत्प्रियं यदि काङ्क्षसे।
चतुष्पादान् भजैकेन द्वितीयेन च स्थावरान्॥ २१

तृतीयो यश्च ते भागो मानुषेषूपपत्स्यते।
त्रिधाभूतं वपुः कृत्वा पक्षिषु त्वं भव ज्वर॥ २२

चतुर्थो यस्तृतीयस्य भविष्यति स ते ध्रुवम्।
एकान्तरस्तृतीयस्तु स वै चातुर्थिको ज्वरः॥ २३

मानुषेष्वभिभेदेन वस त्वं प्रविभज्य वै।
जातिष्वथावशेषासु निवस त्वं शृणुष्व मे॥ २४

आकाशवाणीके ऐसा कहनेपर भूत, भविष्य और वर्तमान जगत्के परम गुरु साक्षात् श्रीहरिने उसे छोड़ दिया॥ १३॥ उनके हाथसे इस प्रकार मुक्त होकर वह ज्वर श्रीकृष्णके दोनों चरणोंमें मस्तक रखकर उन्हींकी शरणमें गया और उन भगवान् हृषीकेशसे इस प्रकार बोला— ॥ १४॥ 'गोविन्द! यदुनन्दन! मेरा निवेदन सुनिये। देव! महाबाहो! मेरा जो मनोरथ है, उसे पूर्ण कीजिये॥ १५॥ तात! देवेश्वर! संसारमें मैं एक ज्वर हूँ, अब मेरे सिवा दूसरा कोई ज्वर न हो। आपकी कृपासे मैं इस वरको माँगता हूँ'॥ १६॥

श्रीभगवान्ने कहा—ज्वर! तुम्हारा भला हो, तुम जैसा चाहते हो, ऐसा ही हो। मेरे लिये सभी वरार्थियोंको वर देना उचित है, तुम तो वरार्थी होकर मेरी शरणमें आये हो (अतः तुम विशेष कृपाके पात्र हो)॥ १७॥ तुम पहलेकी ही भाँति संसारमें एक ही ज्वरके रूपमें रहो। मैंने जो इस ज्वरकी सृष्टि की है, यह फिर मुझमें ही लीन हो जाय॥ १८॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! उस ज्वरके प्रति ऐसी बात कहकर प्रहार करनेवालोंमें श्रेष्ठ महा-यशस्वी श्रीकृष्ण पुनः इस प्रकार बोले॥ १९॥

वासुदेवने कहा—ज्वर! मेरा संदेश सुनो, जिसके अनुसार तुम चराचर जगत्में सभी जातिके प्राणियोंके भीतर बेखटके विचरण करोगे॥ २०॥ यदि तुम मेरा प्रिय करना चाहते हो तो अपने-आपको तीन भागोंमें विभक्त करके एक भागसे चौपायोंका आश्रय लो, द्वितीय भागसे वृक्ष, पर्वत आदि स्थावर वस्तुओंका सेवन करो तथा तुम्हारा जो तीसरा भाग है, वह मनुष्योंमें रहने योग्य होगा। ज्वर! इस प्रकार तुम अपने स्वरूपको तीन भागोंमें बाँटकर उपर्युक्त स्थानोंमें रहो तथा तुम्हारे तीसरे भागका जो एक-चौथाई अंश है, वह पक्षियोंमें अटल भावसे स्थित होगा। यह तीसरी श्रेणीका जो ज्वर है, वह एक दिनका अन्तर देकर आनेपर एकान्तर या अँतरिया कहलायेगा, दो दिनका अन्तर देनेपर तिजरा और तीन दिनका अन्तर देकर आनेपर वही चातुर्थिक (चौथिया ज्वर) कहलायेगा॥ २१—२३॥ इन भेद-उपभेदोंके साथ अपने रूपका विभाजन करके तुम मनुष्योंमें निवास करो। साथ ही, जो शेष जातियाँ हैं, उनमें भी तुम वास करो। किस तरह? यह मुझसे सुनो— ॥ २४॥

वृक्षेषु कीटरूपेण तथा संकोचपत्रकः।
पाण्डुपत्रश्च विख्यातः फलेष्वातुर्यमेव च॥ २५

अपां तु नीलिकां विद्याच्छिखोद्भेदेन बर्हिणाम्।
पद्मिन्यादौ हिमो भूत्वा पृथिव्यामपि चोषरः॥ २६

गैरिकः पर्वतेष्वेव मत्प्रसादाद् भविष्यसि।
गोष्वपस्मारको भूत्वा खोरकश्च भविष्यसि॥ २७

एवं त्वं बहुरूपेण भविष्यसि महीतले।
दर्शनात् स्पर्शनाच्चापि प्राणिनां वधमेष्यसि॥ २८
ऋते देवमनुष्याणां नान्यस्त्वां विसहिष्यति।

वैशम्पायन उवाच

कृष्णस्य वचनं श्रुत्वा ज्वरो हृष्टमना ह्यभूत्॥ २९
प्रोवाच वचनं किंचित् प्रणमित्वा कृताञ्जलिः।

ज्वर उवाच

सर्वजातिप्रभुत्वेन कृतो धन्योऽस्मि माधव॥ ३०
भूयश्च ते वचः कर्तुमिच्छामि पुरुषर्षभ।
तदाज्ञापय गोविन्द किं करोमि महाभुज॥ ३१
अहमसुरकुलप्रमाथिना
त्रिपुरहरेण हरेण निर्मितः।
रणशिरसि विनिर्जितस्त्वया
प्रभुरसि देव तवास्मि किंकरः॥ ३२
धन्योऽस्म्यनुगृहीतोऽस्मि यत् त्वया मत्प्रियं कृतम्।
आज्ञापय प्रियं किं ते चक्रायुध करोम्यहम्॥ ३३

वैशम्पायन उवाच

ज्वरस्य वचनं श्रुत्वा वासुदेवोऽब्रवीद् वचः।
अभिसंधिं शृणुष्वाद्य यत् त्वां वक्ष्यामि निश्चयात्॥ ३४

वृक्षोंमें तुम कीटरूपसे निवास करो, इसके सिवा वहाँ तुम संकोचपत्रक और पाण्डुपत्रक नामसे विख्यात होगे (वृक्षोंके जो पत्ते सिकुड़ने लगते हैं, यह उनमें संकोचपत्रक नामक ज्वर है और जो उनके पत्ते पीले पड़ने लगते हैं, यह उनमें पाण्डुपत्रक नामक ज्वर है) तथा वृक्षोंके फलोंमें आतुर्यनामसे तुम्हारी ख्याति होगी (फलोंके एक देशमें जाली पड़ जानेसे जो वे फल सिकुड़ने या सूखने लगते हैं, यह उनमें आतुर्य नामक ज्वरका लक्षण है)॥ २५॥ जलोंमें नीलिकाको ज्वर समझना चाहिये। मोरोंके सिरपर जो शिखा फूट निकलती है, उसीके रूपमें उनके भीतर तुम्हारा वास होगा। तुम कमलिनी आदिपर हिम (पाला), पृथ्वीमें ऊषर तथा पर्वतोंपर गेरू होकर मेरी कृपासे वहाँ निवास करोगे। गौओंमें अपस्मारक (कम्पन) और खोरक (खुर-रोग) होकर रहोगे। इस प्रकार तुम पृथ्वीपर बहुत-से रूपोंमें प्रकट होओगे। तुम अपने दृष्टिपात और स्पर्शसे भी प्राणियोंका वध कर डालोगे। देवता और मनुष्योंके सिवा दूसरा कोई तुम्हारा वेग नहीं सह सकेगा॥ २६—२८ $\frac{1}{2}$॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! श्रीकृष्णकी यह बात सुनकर ज्वरका मन प्रसन्न हो गया। उसने हाथ जोड़कर प्रणाम करके कुछ बात कही॥ २९ $\frac{1}{2}$॥

ज्वर बोला—पुरुषप्रवर माधव! आपने सभी जातिके प्राणियोंपर मेरी प्रभुता स्थापित करके मुझे धन्य कर दिया। महाबाहु गोविन्द! अब मैं पुनः आपकी आज्ञाका पालन करना चाहता हूँ। अतः आज्ञा दीजिये, मैं आपकी क्या सेवा करूँ॥ ३०-३१॥ देव! असुरकुलनाशक और त्रिपुरसंहारक भगवान् हरने मेरी सृष्टि की है, आज युद्धके मुहानेपर आपने मुझे पराजित कर दिया। अतः आप मेरे प्रभु हैं और मैं आपका किङ्कर हूँ॥ ३२॥ चक्रधारी श्रीकृष्ण! आपने जो मेरा प्रिय किया, इससे मैं धन्य हो गया। आपके अनुग्रहका पात्र बन गया, अब आज्ञा दीजिये, मैं आपका कौन-सा प्रिय कार्य सम्पन्न करूँ?॥ ३३॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन्! ज्वरका यह वचन सुनकर वसुदेवनन्दन श्रीकृष्णने कहा—'ज्वर! मैं क्या चाहता हूँ; यह सुनो। मैं निश्चितरूपसे तुमसे जो कुछ कहता हूँ, उसपर ध्यान दो'॥ ३४॥

श्रीभगवानुवाच

महाहवे तव मम च द्वयोरिमं
पराक्रमं भुजबलकेवलास्त्रयोः।
प्रणम्य मामेकमनाः पठेत् तु यः
स वै भवेज्ज्वर विगतज्वरो नरः॥ ३५
त्रिपाद् भस्मप्रहरणस्त्रिशिरा नवलोचनः।
स मे प्रीतः सुखं दद्यात् सर्वामयपतिर्ज्वरः॥ ३६
आद्यन्तवन्तः कवयः पुराणाः
सूक्ष्मा बृहन्तोऽप्यनुशासितारः।
सर्वाञ्ज्वरान् घ्नन्तु ममानिरुद्ध-
प्रद्युम्नसंकर्षणवासुदेवाः ॥ ३७

वैशम्पायन उवाच

एवमुक्तस्तु कृष्णेन ज्वरः साक्षान्महात्मना।
प्रोवाच यदुशार्दूलमेवमेतद् भविष्यति॥ ३८
वरं लब्ध्वा ज्वरो हृष्टः कृष्णाच्च समयं पुनः।
प्रणम्य शिरसा कृष्णमपक्रान्तस्ततो रणात्॥ ३९

श्रीभगवान् बोले—ज्वर! इस महासमरमें केवल बाहुबल ही हमारा-तुम्हारा अस्त्र रहा है; जो मुझे प्रणाम करके एकचित्त होकर हम दोनोंके इस पराक्रमका पाठ करे, वह मनुष्य अवश्य ज्वररहित हो जाय॥ ३५॥ जिसके तीन पैर हैं, भस्म ही आयुध है, तीन सिर हैं और नौ नेत्र हैं, वह समस्त रोगोंका अधिपति ज्वर प्रसन्न होकर मुझे सुख प्रदान करे॥ ३६॥ जगत्के आदि और अन्त जिनके हाथोंमें हैं, जो ज्ञानी, पुराणपुरुष, सूक्ष्मस्वरूप, परम महान् और सबके अनुशासक हैं, वे अनिरुद्ध, प्रद्युम्न, संकर्षण और भगवान् वासुदेव सम्पूर्ण ज्वरोंका नाश करें (इस प्रकार प्रार्थना करनेवालोंका ज्वर दूर हो जाय)॥ ३७॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन्! साक्षात् महात्मा श्रीकृष्णके ऐसा कहनेपर ज्वरने उन यदुश्रेष्ठसे कहा—'यह ऐसा ही होगा'॥ ३८॥ श्रीकृष्णसे वर पाकर और उनकी शर्तको स्वीकार करके ज्वरको बड़ा हर्ष हुआ। वह मस्तक झुकाकर श्रीकृष्णको प्रणाम करनेके अनन्तर उस रणक्षेत्रसे दूर चला गया॥ ३९॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे विष्णुपर्वणि ज्वरकृष्णसंवादे त्रयोविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः॥ १२३॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत विष्णुपर्वमें ज्वर और श्रीकृष्णका संवादविषयक एक सौ तेईसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १२३॥

चतुर्विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

बाणासुरकी सेनाका पलायन, भगवान् शङ्करका अपने गणोंके साथ युद्धके लिये आगमन, भगवान् श्रीकृष्ण और रुद्रका युद्ध तथा बाणासुरका युद्धभूमिमें पदार्पण

वैशम्पायन उवाच

ततस्ते त्वरिताः सर्वे त्रयस्त्रय इवाग्नयः।
वैनतेयमथारुह्य युध्यमाना रणे स्थिताः॥ १

ततः सर्वाण्यनीकानि बाणवर्षैरवाकिरन्।
अर्दयन् वैनतेयस्था नदन्तोऽतिबलाद् रणे॥ २

चक्रलाङ्गलपातैश्च बाणवर्षैश्च पीडितम्।
संचुकोप महानीकं दानवानां दुरासदम्॥ ३

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! तदनन्तर तीन अग्नियोंके समान वे सब तीनों वीर बड़ी उतावलीके साथ गरुड़पर आरूढ़ हो शत्रुओंके साथ युद्ध करते हुए रणभूमिमें डटे रहे॥ १॥ गरुड़पर चढ़े हुए उन वीरोंने सिंहनाद करके बाणासुरकी समस्त सेनाओंको अपनी बाणवर्षासे ढक दिया और अत्यन्त बलपूर्वक उन्हें पीड़ा देना आरम्भ किया॥ २॥ चक्र और हलकी मारसे तथा बाणोंकी वर्षासे पीड़ित होकर दानवोंकी वह दुर्जय विशाल सेना अत्यन्त कुपित हो उठी॥ ३॥

कक्षेऽग्निरिव संवृद्धः शुष्केन्धनसमीरितः।
कृष्णबाणाग्निरुद्भूतो विवृद्धिं परमां गतः॥ ४

दानवानां सहस्राणि तस्मिन् समरमूर्धनि।
युगान्ताग्निरिवार्चिष्मान् दहमानो व्यराजत॥ ५

तां दीर्यमाणां महतीं नानाप्रहरणार्दिताम्।
सेनां बाणः समासाद्य वारयन् वाक्यमब्रवीत्॥ ६

लाघवं समुपागम्य किमर्थं भयविक्लवाः।
दैत्यवंशसमुत्पन्नाः पलायध्वं महाहवात्॥ ७

कवचासिगदाप्रासखड्गचर्मपरश्वधान्।
उत्सृज्योत्सृज्य गच्छन्ति किं भवन्तोऽन्तरिक्षगाः॥ ८

स्वजातिं चैव भावं च हरसंसर्गमेव च।
मानयद्भिर्न गन्तव्यमेषो ह्यहमवस्थितः॥ ९

एवमुच्चरितं वाक्यं शृण्वन्तस्तदचिन्तयन्।
अपाक्रामन्त ते सर्वे दानवा भयमोहिताः॥ १०

प्रमाथगणशेषं तु तदनीकमतिष्ठत।
भग्नावशेषं युद्धाय पुनश्चक्रे मनस्तदा॥ ११

कुम्भाण्डो नाम बाणस्य सखामात्यश्च वीर्यवान्।
भग्नं स्वबलमालोक्य इदं वचनमब्रवीत्॥ १२

एष बाणः स्थितो युद्धे शंकरोऽयं गुहस्तथा।
किमर्थं बलमुत्सृज्य भवन्तो यान्ति मोहिताः॥ १३

प्राणांस्त्यक्त्वा पलायन्ते सर्वे दानवपुङ्गवाः।
एवं कुम्भाण्डवाक्यं ते शृण्वन्तो भयविह्वलाः।
चक्राग्निभयवित्रस्ताः सर्वे यान्ति दिशो दश॥ १४

भग्नं बलं ततो दृष्ट्वा कृष्णेनामिततेजसा।
संरक्तनयनः स्थाणुर्युद्धाय पर्यवर्तत॥ १५

बाणसंरक्षणं कर्तुं रथमास्थाय सुप्रभम्।
देवः कुमारश्च तथा रथेनाग्निसमेन वै॥ १६

जैसे तिनकोंके बोझमें आग लग जाय और सूखे ईंधनका सहारा पाकर वह और भी बढ़ जाय उसी प्रकार श्रीकृष्णके बाणोंसे जो अग्नि प्रकट हुई, वह अत्यन्त वृद्धिको प्राप्त होने लगी॥ ४॥ वह उस युद्धके मुहानेपर सहस्रों दानवोंको दग्ध करती हुई ज्वाला-मालाओंसे मण्डित प्रलयाग्निके समान प्रकाशित हो रही थी॥ ५॥ नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्रोंसे पीड़ित हो भागती हुई उस विशाल सेनाके पास पहुँचकर बाणासुर उसे रोकता हुआ इस प्रकार बोला—॥ ६॥ 'वीरो! तुम दैत्यवंशमें उत्पन्न होकर भी किसलिये लघुता (कायरता)-का आश्रय ले भयसे व्याकुल हो इस महासमरसे पलायन कर रहे हो॥ ७॥ कवच, खड्ग, गदा, प्रास, ढाल, तलवार और फरसे फेंक-फेंककर तुम आकाश-मार्गसे क्यों भागे जा रहे हो॥ ८॥ अपनी जातिका, अपने वीरभावका तथा भगवान् शङ्करके साथ हमारा जो सम्पर्क है उसका सम्मान करते हुए तुमलोगोंको यहाँसे हटना नहीं चाहिये; देखो! यह मैं युद्धभूमिमें डटा हुआ हूँ'॥ ९॥ इस प्रकार कहे गये उत्साहवर्धक वाक्यको सुनते हुए भी उसकी परवा न करके वे समस्त दानव भयसे मोहित होकर भाग चले॥ १०॥ अब उस सेनामें केवल प्रमथगण शेष रह गये; उन्हींको लेकर वह सेना वहाँ खड़ी थी। उस समय भागनेसे बचे-खुचे सैनिकोंने पुनः युद्धमें मन लगाया॥ ११॥ बाणासुरके मन्त्री और सखा पराक्रमी कुम्भाण्डने अपनी सेनामें भगदड़ मची देख यह बात कही—॥ १२॥ 'वीरो! ये राजा बाणासुर युद्धमें स्थित हैं। ये भगवान् शङ्कर और कार्तिकेयजी भी यहाँ विराजमान हैं। फिर तुम लोग मोहग्रस्त हो अपनी सेनाको छोड़कर किसलिये भाग रहे हो'॥ १३॥ कुम्भाण्डका ऐसा वचन सुनते हुए भी वे समस्त दानवशिरोमणि भयसे व्याकुल हो प्राणोंका मोह छोड़कर पलायन करने लगे। वे सब-के-सब श्रीकृष्णकी चक्राग्निके भयसे थर्रा उठे थे; अतः दसों दिशाओंकी ओर भागे चले जा रहे थे॥ १४॥ तदनन्तर अमित तेजस्वी श्रीकृष्णके द्वारा दानवसेनामें भगदड़ पड़ी देख भगवान् शङ्कर क्रोधसे लाल आँखें किये स्वयं युद्धके लिये उपस्थित हुए॥ १५॥ वे बाणासुरकी रक्षा करनेके लिये उत्तम प्रभासे युक्त रथपर आरूढ़ होकर आये थे; साथ ही कुमार स्कन्ददेव भी अग्निके समान तेजस्वी रथके द्वारा वहाँ उपस्थित हुए थे॥ १६॥

नन्दीश्वरसमायुक्तं रथमास्थाय वीर्यवान्।
संदष्टौष्ठपुटो रुद्रः प्राधावत यतो हरिः॥ १७

पिबन्निव तदाकाशं सिंहयुक्तो महास्वनः।
रथो भाति घनोन्मुक्तः पौर्णमास्यां यथा शशी॥ १८

ततो गणसहस्त्रैस्तु नानारूपैर्भयावहैः।
नदद्भिर्विविधान् नादान् रथो देवस्य शोभयन्॥ १९

केचित् सिंहमुखास्तत्र तथा व्याघ्रमुखाः परे।
नागाश्वोष्ट्रमुखास्तत्र प्रवेपुरतिपीडिताः॥ २०

व्यालयज्ञोपवीताश्च केचित् तत्र महाबलाः।
खरोष्ट्रगजवक्त्राश्च अश्वग्रीवाश्च संस्थिताः॥ २१

छागमार्जारवक्त्राश्च मेषवक्त्रास्तथा परे।
चीरिणः शिखिनश्चान्ये जटिलोर्ध्वशिरोरुहाः॥ २२

भग्नाः परिपतन्ति स्म शङ्खदुन्दुभिनिःस्वनैः।
केचित् सौम्यमुखास्तत्र दिव्यैः शस्त्रैरलङ्कृताः॥ २३

नानापुष्पकृतापीडा नानाप्रहरणायुधाः।
वामना विकटाश्चैव सिंहव्याघ्रपरिच्छदाः॥ २४

रुधिरार्द्रैर्महावक्त्रैर्महादंष्ट्रा बलिप्रियाः।
देवं सम्परिवार्याथ महाशत्रुप्रमर्दनम्॥ २५

लीलायमानास्तिष्ठन्ति संग्रामाभिमुखोन्मुखाः।
ततो दिव्यं रथं दृष्ट्वा रुद्रस्याक्लिष्टकर्मणः॥ २६

नन्दीश्वरसे संयुक्त रथपर आरूढ़ हो पराक्रमी
भगवान् रुद्र अपने ओष्ठको दाँतोंसे दबाकर उसी ओर
दौड़े; जहाँ श्रीहरि विद्यमान थे॥ १७॥
सिंहोंसे जुता हुआ उनका रथ ऐसी तीव्रगतिसे दौड़ रहा था, मानो आकाशको पिये लेता हो। उससे बड़ी भारी घरघराहट हो रही थी। वह रथ ऐसा जान पड़ता था, मानो मेघोंके आवरणसे मुक्त हुआ पूर्णमासीका चन्द्रमा प्रकाशित हो
रहा हो॥ १८॥
तत्पश्चात् नाना प्रकारके सिंहनाद करते हुए नाना रूपधारी सहस्त्रों भयंकर गणोंके साथ महादेवजीका
रथ रणभूमिकी शोभा बढ़ाने लगा॥ १९॥
भगवान् शिवके गणोंमें कोई सिंहके समान मुखवाले थे तो कोई व्याघ्रके समान; कितनोंके मुख हाथी, घोड़े और ऊँटके समान थे; ये सब श्रीकृष्णके बाणोंसे अत्यन्त पीड़ित
होकर थर-थर काँपने लगे॥ २०॥
उनमेंसे कितने ही महाबली प्रमथगणोंने सर्पमय यज्ञोपवीत धारण कर रखे थे; कितनोंके मुख गधे, ऊँट और हाथियोंके समान
थे, कितने ही घोड़ोंकी-सी गर्दन लिये खड़े थे॥ २१॥
अन्य शिवगणोंके मुख भेड़, बकरे और बिलावोंके समान थे; कितने ही चीर वस्त्र धारण किये हुए थे, कितनोंके मस्तकपर शिखा सुशोभित हो रही थी; बहुतोंने जटाएँ बढ़ा रखी थीं और कितनोंके सिरके बाल ऊपरकी ओर उठे हुए थे। श्रीकृष्णके बाणोंसे घायल हो इन सबके पाँव उखड़ गये। ये शङ्ख एवं दुन्दुभियोंके शब्द सुनकर ही रणभूमिमें गिर पड़ते थे। कितने ही शिवगणोंके मुख सौम्य थे, वे वहाँ दिव्य अस्त्र-शस्त्रोंसे सुशोभित होते थे। उन्होंने भाँति-भाँतिके फूलोंके मुकुट धारण किये थे और उनके आयुध भी अनेक प्रकारके थे। कितने ही गण बौने और विकट आकारवाले थे; उन्होंने सिंहों और व्याघ्रोंकी खालोंसे अपने शरीरको ढक रखा था। कितनोंकी दाढ़ें बहुत बड़ी थीं और वे खूनसे भीगे हुए विशाल मुखोंसे युक्त थे। उन्हें बलि अधिक प्रिय थी। ये सब-के-सब बड़े-बड़े शत्रुओंका मर्दन करनेवाले महादेवजीको चारों ओरसे घेरकर लीलापूर्वक संग्रामके लिये उत्सुक हो मुँह ऊपर किये खड़े थे। तदनन्तर अनायास ही महान् कर्म करनेवाले रुद्रदेवके दिव्य रथको देखकर

कृष्णो गरुडमास्थाय ययौ रुद्राय संयुगे।
वैनतेयस्थमास्यन्तमायान्तमग्रणीं हरिम्॥ २७
विव्याध कुपितो बाणैर्नाराचानां शतेन सः।
स शरैरर्दितस्तेन हरेणाक्लिष्टकर्मणा॥ २८
हरिर्जग्राह कुपितो ह्यस्त्रं पार्जन्यमुत्तमम्।
प्रचचाल ततो भूमिर्विष्णुरुद्रप्रपीडिता॥ २९
नागाश्चोर्ध्वमुखास्तत्र विचेलुरभिपीडिताः।
पर्वताः पतितास्तत्र जलधाराभिराप्लुताः॥ ३०
केचिन्मुमुचिरे तत्र शिखराणि समन्ततः।
दिशश्च प्रदिशश्चैव भूमिराकाशमेव च॥ ३१
प्रदीप्तानीव दृश्यन्ते स्थाणुकृष्णसमागमे।
समन्ततश्च निर्घाताः पतन्ति धरणीतले॥ ३२
शिवाश्चैवाशिवान् नादान् नदन्ते भीमदर्शनाः।
वासवश्चानदन् घोरं रुधिरं चाप्यवर्षत॥ ३३
उल्का च बाणसैन्यस्य पुच्छेनावृत्य तिष्ठति।
प्रववौ मारुतश्चापि ज्योतींष्याकुलतां ययुः॥ ३४
प्रभाहीनास्तथौषध्यो न चरन्त्यन्तरिक्षगाः।
एतस्मिन्नन्तरे ब्रह्मा सर्वदेवगणैर्वृतः॥ ३५
त्रिपुरान्तकमुद्यन्तं ज्ञात्वा रुद्रमुपागमत्।
गन्धर्वाप्सरसश्चैव यक्षा विद्याधरास्तथा॥ ३६
सिद्धचारणसंघाश्च पश्यन्तोऽथ दिवि स्थिताः।
ततः पार्जन्यमस्त्रं तत् क्षिप्तं रुद्राय विष्णुना॥ ३७
ययौ ज्वलन्नथ तदा यतो रुद्रो रथस्थितः।
ततः शतसहस्राणि शराणां नतपर्वणाम्॥ ३८
निपेतुः सर्वतो दिग्भ्यो यतो हररथः स्थितः।
अथाग्नेयं महारौद्रमस्त्रमस्त्रविदां वरः॥ ३९
मुमोच रुषितो रुद्रस्तदद्भुतमिवाभवत्।
ततो विशीर्णदेहास्ते चत्वारोऽपि समन्ततः॥ ४०
नादृश्यन्त शरैश्छन्ना दह्यमानाश्च वह्निना।
सिंहनादं ततश्चक्रुः सर्व एवासुरोत्तमाः॥ ४१

गरुड़पर बैठे हुए श्रीकृष्ण भी भगवान् रुद्रके साथ युद्ध करनेके लिये गये। गरुड़की पीठपर बैठकर आते हुए यादवकुलके अग्रणी श्रीहरिको क्रोधमें भरे हुए भगवान् शिवने सौ नाराचोंसे घायल कर दिया। बिना क्लेशके ही बड़े-बड़े कर्म करनेवाले महादेवजीके द्वारा बाणोंसे पीड़ित किये जानेपर क्रोधमें भरे हुए श्रीहरिने उत्तम पार्जन्यास्त्र हाथमें लिया। उस समय भगवान् विष्णु और रुद्रके भारसे अत्यन्त पीड़ित हुई भूमि काँपने लगी। आठों दिग्गज ऊपर मुँह किये पीड़ा पाकर विचलित हो उठे। बहुत-से पर्वत जलकी धाराओंसे आप्लावित हो वहाँ धराशायी हो गये। कितने ही सब ओरसे अपने शिखरोंका परित्याग करने लगे। भगवान् शिव और कृष्णके संघर्षके समय दिशाएँ, विदिशाएँ, पृथ्वी और आकाश—ये सभी प्रज्वलित-से दिखायी देते थे। भूतलपर सब ओरसे वज्रपात होने लगा॥ २२—३२॥ भयानक दिखायी देनेवाली गीदड़ियाँ अमङ्गलसूचक बोली बोलने लगीं। इन्द्र घोर गर्जना करते हुए रक्तकी वर्षा करने लगे॥ ३३॥ उल्का बाणासुरकी सेनाके पुच्छभागको आवृत करके स्थित हुई थी। वायु प्रचण्ड गतिसे बह रही थी और तारे व्याकुलताको प्राप्त हो रहे थे। ओषधियाँ निस्तेज हो गयीं और आकाशचारी प्राणी आकाशमें विचरण नहीं करते थे। इसी बीचमें समस्त देवताओंसे घिरे हुए ब्रह्माजी त्रिपुरनाशक रुद्रको युद्धके लिये उद्यत जानकर वहाँ आये। गन्धर्व, अप्सरा, यक्ष, विद्याधर, सिद्ध और चारणोंके समुदाय भी वह युद्ध देखनेके लिये आकाशमें खड़े हो गये। इसी समय भगवान् श्रीकृष्णने रुद्रदेवपर पार्जन्यास्त्रका प्रहार किया। वह अस्त्र प्रज्वलित होकर उसी ओर चला, जहाँ रुद्रदेव रथपर विराजमान थे। फिर तो जहाँ भगवान् शङ्करका रथ खड़ा था, वहाँ सभी दिशाओंसे झुकी हुई गाँठवाले लाखों बाण गिरने लगे। तब रोषमें भरे हुए अस्त्रवेत्ताओंमें श्रेष्ठ रुद्रदेवने वहाँ महारौद्र आग्नेयास्त्रका प्रयोग किया। वह अद्भुत-सा प्रतीत हुआ। उससे उन चारोंके शरीर सब ओरसे क्षत-विक्षत हो गये। वे बाणोंसे आच्छादित हो आगसे जलते हुए अदृश्य हो गये। यह देख सभी असुरप्रवर वीर वहाँ सिंहनाद करने लगे॥ ३४—४१॥

हतोऽयमिति विज्ञाय आग्नेयास्त्रेण वै तदा।
ततस्तद् विसहित्वाऽऽजौ ह्यस्त्रमस्त्रविदां वरः॥ ४२
जग्राह वारुणं सोऽस्त्रं वासुदेवः प्रतापवान्।
प्रयुक्ते वासुदेवेन वारुणास्त्रेऽतितेजसि॥ ४३
आग्नेयं प्रशमं यातमस्त्रं वारुणतेजसा।
तस्मिन् प्रतिहते त्वस्त्रे वासुदेवेन संयुगे॥ ४४
पैशाचं राक्षसं रौद्रं तथैवाङ्गिरसं भवः।
मुमोचास्त्राणि चत्वारि युगान्ताग्निनिभानि वै॥ ४५
वायव्यमथ सावित्रं वासवं मोहनं तथा।
अस्त्राणां वारणार्थाय वासुदेवो व्यमुञ्चत॥ ४६
अस्त्रैश्चतुर्भिश्चत्वारि वारयित्वाशु माधवः।
मुमोच वैष्णवं सोऽस्त्रं व्यादितास्यान्तकोपमम्॥ ४७
वैष्णवास्त्रे प्रयुक्ते तु सर्व एवासुरोत्तमाः।
भूतयक्षगणाश्चैव बाणानीकं च सर्वशः॥ ४८
दिशः सर्वाः प्राद्रवन्त भयमोहेन विक्लवाः।
प्रमाथगणभूयिष्ठे दीर्णे सैन्ये महासुरः॥ ४९
निर्जगाम ततो बाणो युद्धायाभिमुखस्त्वरम्।
भीमप्रहरणैर्घोरैर्दैत्यैश्च सुमहाबलैः।
वृतो महारथैर्वीरैर्वज्रीव सुरसत्तमैः॥ ५०

वैशम्पायन उवाच

जपैश्च मन्त्रैश्च तथौषधीभि-
र्महात्मनः स्वस्त्ययनं प्रचक्रुः।
स तत्र वस्त्राणि शुभाश्च गावः
फलानि पुष्पाणि तथैव निष्कान्॥ ५१
बलेः सुतो ब्राह्मणेभ्यः प्रयच्छन्
विराजते तेन यथा धनेशः।
सहस्रसूर्यो बहुकिङ्किणीकः
परार्ध्यजाम्बूनदरत्नचित्रः॥ ५२
सहस्रचन्द्रायुततारकश्च
रथो महानग्निरिवावभाति।
तमास्थितो दानवसंगृहीतं
महाध्वजं कार्मुकधृक् स बाणः॥ ५३

उन्होंने यह समझ लिया था कि श्रीकृष्ण आग्नेयास्त्रसे मारे गये। तदनन्तर युद्धस्थानमें उस अस्त्रकी चोट सहकर अस्त्रवेत्ताओंमें श्रेष्ठ प्रतापी वासुदेवने वारुणास्त्र उठाया। वसुदेवनन्दन श्रीकृष्णद्वारा अत्यन्त तेजस्वी वारुणास्त्रका प्रयोग होनेपर उसके तेजसे भगवान् शङ्करका आग्नेयास्त्र शान्त हो गया। उस युद्धस्थलमें भगवान् वासुदेवद्वारा उस आग्नेयास्त्रके प्रतिहत हो जानेपर भगवान् शिवने पैशाच, राक्षस, रौद्र तथा आङ्गिरस नामक चार अस्त्र छोड़े, जो प्रलयाग्निके समान तेजस्वी थे॥ ४२—४५॥ तब भगवान् वासुदेवने उक्त चारों अस्त्रोंका निवारण करनेके लिये क्रमशः वायव्यास्त्र, सावित्रास्त्र, ऐन्द्रास्त्र तथा मोहनास्त्रका प्रयोग किया॥ ४६॥ उन चारों अस्त्रोंसे उनके चारों अस्त्रोंका तत्काल निवारण करके लक्ष्मीपति श्रीकृष्णने वैष्णवास्त्रका प्रयोग किया जो मुँह बाये हुए कालके समान प्रतीत होता था॥ ४७॥ वैष्णवास्त्रका प्रयोग होनेपर सभी असुरशिरोमणि वीर भूत, यक्षगण एवं बाणकी सारी सेना—ये सभी भय और मोहसे व्याकुल हो सम्पूर्ण दिशाओंकी ओर भाग गये। जिसमें प्रमथगणोंकी अधिकता थी, उस सेनाके भी पलायन कर जानेपर महान् असुर बाण युद्धके लिये उत्सुक हो बड़ी उतावलीके साथ निकला। जैसे वज्रधारी इन्द्र श्रेष्ठ देवताओंसे घिरे होते हैं, उसी प्रकार वह भयंकर अस्त्र-शस्त्रवाले महाबली एवं वीर महारथी घोर दैत्योंसे घिरा हुआ था॥ ४८—५०॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! उस समय ब्राह्मणलोग जप, मन्त्र और ओषधियोंद्वारा महामनस्वी बाणासुरके लिये स्वस्तिवाचन कर रहे थे और बलिकुमार बाण उन ब्राह्मणोंके लिये बहुत-से वस्त्र, शुभलक्षणा गौएँ, फल, फूल तथा स्वर्णमुद्राएँ देता हुआ धनाध्यक्ष कुबेरके समान शोभा पाता था। उसके विशाल रथमें सहस्रों सूर्योंके चिह्न बने थे, बहुत-सी छोटी-छोटी घंटियाँ लगी थीं। वह बहुमूल्य सुवर्ण तथा रत्नोंसे सुसज्जित होकर विचित्र शोभा धारण करता था। उसमें सहस्रों चन्द्रमा तथा दस हजार तारोंके चिह्न बने थे। वह महान् रथ अग्निके समान प्रकाशित हो रहा था। दानव कुम्भाण्डने उस रथकी रास अपने हाथमें ले रखी थी। उसपर विशाल ध्वजा फहरा रही थी और उसपर बैठे हुए बाणासुरने हाथमें धनुष ले रखा था॥ ५१—५३॥

उद्वर्तयिष्यन् यदुपुङ्गवाना-
मतीव रौद्रं स बिभर्ति रूपम्।
स मन्युमान् वीररथौघसंकुलो
विनिर्ययौ तान् प्रति दैत्यसागरः ॥ ५४
वातप्रवृद्धस्तु तरङ्गसंकुलो
यथार्णवो लोकविनाशनाय।
भीमानि संत्रासकरैर्वपुर्भि-
स्तान्यग्रतो भान्ति बलानि तस्य ॥ ५५
महारथान्युच्छ्रितकार्मुकाणि
सपर्वतानीव वनानि राजन्।
विनिःसृतः सागरतोयवासा-
दत्यद्भुतश्चाहवद्रष्टुकामः ॥ ५६

वह उन यदुपुङ्गव वीरोंका संहार कर डालनेके लिये उद्यत हो अत्यन्त भयंकर रूप धारण किये हुए था, क्रोधमें भरा था और वीर रथियोंके समुदायसे घिरा हुआ था। वह दैत्यसागर उन यादववीरोंकी ओर बढ़ चला ठीक उसी तरह, जैसे वायुके वेगसे बढ़ा हुआ उत्ताल तरंगोंसे व्याप्त महासागर समस्त लोकोंका विनाश करनेके लिये अग्रसर हो रहा हो। लोगोंके मनमें त्रास उत्पन्न करनेवाले शरीरोंके द्वारा भयंकर प्रतीत होनेवाली बहुत-सी सेनाएँ उसके आगे-आगे चल रही थीं। राजन्! विशाल रथों और उठे हुए धनुषोंसे युक्त वे सेनाएँ पर्वतसहित वनोंके समान प्रतीत होती थीं। अत्यन्त अद्भुत रूपवाला बाणासुर वह युद्ध देखनेके लिये समुद्रके निकटवर्ती वासस्थानसे निकलकर चला॥ ५४—५६॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे विष्णुपर्वणि रुद्रकृष्णयुद्धे चतुर्विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२४॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत विष्णुपर्वमें भगवान् रुद्र और श्रीकृष्णका युद्धविषयक एक सौ चौबीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १२४॥

पञ्चविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

श्रीकृष्णके जृम्भास्त्रसे भगवान् शङ्करका जँभाईके वशीभूत होना, ब्रह्माजीके द्वारा शिवजीको विष्णुके साथ उनकी एकताका स्मरण दिलाना तथा ब्रह्माजीके पूछनेपर मार्कण्डेयजीका हरिहरकी एकता स्थापित करते हुए माहात्म्यसहित हरिहरात्मक स्तोत्रका वर्णन करना

वैशम्पायन उवाच

अन्धकारीकृते लोके प्रदीप्ते त्र्यम्बके तथा।
न नन्दी नापि च रथो न रुद्रः प्रत्यदृश्यत॥ १

द्विगुणं दीप्तदेहस्तु रोषेण च बलेन च।
त्रिपुरान्तकरो बाणं जग्राह स चतुर्मुखम्॥ २

संदधत् कार्मुकं चैव क्षेप्तुकामस्त्रिलोचनः।
विज्ञातो वासुदेवेन चित्तज्ञेन महात्मना॥ ३

जृम्भणं नाम सोऽप्यस्त्रं जग्राह पुरुषोत्तमः।
हरं संजृम्भयामास क्षिप्रकारी महाबलः॥ ४

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! वैष्णवास्त्रका प्रयोग होनेपर जब सम्पूर्ण जगत्‌में अन्धकार छा गया और भगवान् शङ्कर उसके तेजसे जलने-से लगे, उस समय उस अस्त्रसे आच्छादित होनेके कारण न नन्दी, न रथ और न रुद्रदेव ही दिखायी देते थे॥ १॥ तब रोष और बलसे त्रिपुरान्तकारी भगवान् शिवका शरीर दुगुना दमक उठा। उन्होंने चार फलवाला बाण अपने हाथमें लिया॥ २॥ वे भगवान् त्रिलोचन उस बाणको धनुषपर रखकर छोड़ना ही चाहते थे कि सबके मनकी बात जाननेवाले महात्मा वासुदेवने उनके मनोभावको समझ लिया॥ ३॥ फिर तो शीघ्रकारी महाबली पुरुषोत्तम श्रीकृष्णने जृम्भणास्त्र उठाया और उसके द्वारा महादेवजीको जृम्भासे अभिभूत कर दिया॥ ४॥

सशरः सधनुश्चैव हरस्तेनाशु जृम्भितः।
संज्ञां न लेभे भगवान् विजेतासुररक्षसाम्॥ ५

सशरं सधनुष्कं च दृष्ट्वाऽऽत्मानं विजृम्भितम्।
बलोन्मत्तोऽथ बाणोऽसौ शर्वं चोदयतेऽसकृत्॥ ६

ततो ननाद भूतात्मा स्निग्धगम्भीरया गिरा।
प्रध्मापयामास तदा कृष्णः शङ्खं महाबलः॥ ७

पाञ्चजन्यस्य घोषेण शार्ङ्गविस्फूर्जितेन च।
देवं विजृम्भितं दृष्ट्वा सर्वभूतानि तत्रसुः॥ ८

एतस्मिन्नन्तरे तत्र रुद्रस्य पार्षदा रणे।
मायायुद्धं समाश्रित्य प्रद्युम्नं पर्यवारयन्॥ ९

सर्वांस्तु निद्रावशगान् कृत्वा मकरकेतुमान्।
दानवान् नाशयत् तत्र शरजालेन वीर्यवान्।
प्रमाथगणभूयिष्ठांस्तत्र तत्र महाबलान्॥ १०

ततस्तु जृम्भमाणस्य देवस्याक्लिष्टकर्मणः।
ज्वाला प्रादुरभूद् वक्त्राद् दहन्तीव दिशो दश॥ ११

ततस्तु धरणीदेवी पीड्यमाना महात्मभिः।
ब्रह्माणं विश्वधातारं वेपमानाभ्युपागमत्॥ १२

पृथिव्युवाच

देवदेव महाबाहो पीड्यामि परमौजसा।
कृष्णरुद्रभराक्रान्ता भविष्यैकार्णवा पुनः॥ १३

अविषह्यमिमं भारं चिन्तयस्व पितामह।
लघ्वीभूता यथा देव धारयेयं चराचरम्॥ १४

ततस्तु काश्यपीं देवीं प्रत्युवाच पितामहः।
मुहूर्तं धारयात्मानमाशु लघ्वी भविष्यसि॥ १५

वैशम्पायन उवाच

दृष्ट्वा तु भगवान् ब्रह्मा रुद्रं वचनमब्रवीत्।
सृष्टो महासुरवधः किं भूयः परिरक्ष्यते॥ १६

इससे भगवान् शिव शीघ्र ही धनुष और बाण लिये जँभाई लेने लगे; असुरों और राक्षसोंपर विजय पानेवाले भगवान् शिवको उस समय सुध-बुध न रही॥ ५॥ धनुष और बाणसहित आत्मस्वरूप शिवको जँभाईके वशीभूत हुआ देख बलोन्मत्त बाणासुर बारम्बार उन्हें युद्धके लिये प्रेरित करने लगा॥ ६॥ तब सम्पूर्ण भूतोंके आत्मा महाबली भगवान् श्रीकृष्णने स्निग्ध गम्भीर वाणीमें सिंहनाद किया और जोर-जोरसे शङ्ख बजाया॥ ७॥ पाञ्चजन्य शङ्खके गम्भीर घोषसे, शार्ङ्ग-धनुषकी टङ्कारसे तथा महादेवजीको जृम्भाके वशीभूत देखकर समस्त प्राणी थर्रा उठे॥ ८॥ इसी बीचमें रुद्रदेवके पार्षदोंने मायायुद्धका आश्रय ले रणभूमिमें प्रद्युम्नको घेर लिया॥ ९॥ परंतु पराक्रमी मकरध्वज प्रद्युम्नने उन सबको निद्राके वशीभूत करके वहाँ बाणसमूहोंद्वारा महाबली दानवोंका—जिनमें प्रमथगणोंकी संख्या अधिक थी—विनाश कर डाला॥ १०॥ तदनन्तर अनायास ही महान् कर्म करनेवाले तथा जृम्भाके वशीभूत हुए महादेवजीके मुखसे एक आगकी ज्वाला प्रकट हुई, जो सम्पूर्ण दिशाओंको दग्ध करती हुई-सी प्रतीत होती थी॥ ११॥ उस समय उन महात्माओंसे पीड़ित हुई पृथ्वीदेवी काँपती हुई विश्व-स्रष्टा ब्रह्माजीकी शरणमें गयी॥ १२॥

पृथ्वी बोली—देवाधिदेव! महाबाहो! मैं महान् ओज (बल-पराक्रम)-से पीड़ित हूँ। भगवान् श्रीकृष्ण और महादेवजीके भारसे आक्रान्त हो पुनः एकार्णवके जलमें निमग्न हो जाऊँगी—ऐसा जान पड़ता है॥ १३॥ पितामह! मैं इस भारको अपने लिये असह्य मानती हूँ, आप इसपर विचार कीजिये। देव! ऐसा कोई उपाय कीजिये, जिससे मैं हलकी होकर चराचर जगत्को धारण कर सकूँ॥ १४॥ तब पितामह ब्रह्माजीने काश्यपी-देवी (पृथ्वी)-से इस प्रकार कहा—'तू दो घड़ीतक किसी प्रकार अपने-आपको रोके रह; फिर शीघ्र ही हलकी हो जायगी'॥ १५॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! तब भगवान् ब्रह्माने रुद्रदेवसे मिलकर यह बात कही—'(आपकी सम्मतिसे ही तो) बड़े-बड़े असुरोंका वध आरम्भ किया गया है, फिर आप स्वयं ही असुरवृन्दकी रक्षा क्यों करते हैं?'॥ १६॥

न च युद्धं महाबाहो तव कृष्णेन रोचते।
न च बुध्यसि कृष्णं त्वमात्मानं तु द्विधा कृतम्॥ १७

ततः शरीरयोगाद्धि भगवानव्ययः प्रभुः।
प्रविश्य पश्यते कृत्स्नांस्त्रींल्लोकान् सचराचरान्॥ १८

प्रविश्य योगं योगात्मा वरांस्ताननुचिन्तयन्।
द्वारवत्यां यदुक्तं च तदनुस्मृत्य सर्वशः।
जगाद नोत्तरं किंचिन्निवृत्तो ह्यभवत् तदा॥ १९

आत्मानं कृष्णयोनिस्थं पश्यत ह्येकयोनिजम्।
ततो निःसृत्य रुद्रस्तु न्यस्तवादोऽभवन्मृधे॥ २०

ब्रह्माणं चाब्रवीद् रुद्रो न योत्स्ये भगवन्निति।
कृष्णेन सह संग्रामे लघ्वी भवतु मेदिनी॥ २१

ततः कृष्णोऽथ रुद्रश्च परिष्वज्य परस्परम्।
परां प्रीतिमुपागम्य संग्रामादपजग्मतुः॥ २२

न च तौ पश्यते कश्चिद् योगिनौ योगमागतौ।
एको ब्रह्मा तथा कृत्वा पश्यँल्लोकान् पितामहः॥ २३

उवाचैतत् समुद्दिश्य मार्कण्डेयं सनारदम्।
पार्श्वस्थं परिपप्रच्छ ज्ञात्वा वै दीर्घदर्शिनम्॥ २४

पितामह उवाच

मन्दरस्य गिरेः पार्श्वे नलिन्यां भवकेशवौ।
रात्रौ स्वप्नान्तरे ब्रह्मन् मया दृष्टौ हराच्युतौ॥ २५

हरं च हरिरूपेण हरिं च हररूपिणम्।
शङ्खचक्रगदापाणिं पीताम्बरधरं हरम्॥ २६

'महाबाहो! श्रीकृष्णके साथ आपका युद्ध मुझे अच्छा नहीं लगता। आप श्रीकृष्णको समझ नहीं रहे हैं, आपका आत्मा ही (श्रीकृष्ण बनकर) दो रूपोंमें विभक्त हो गया है'॥ १७॥ ब्रह्माजीके इस प्रकार कहनेपर अविनाशी प्रभु भगवान् शिव शरीरके भीतर अन्तःकरणमें ध्यान लगाकर हृदयस्थित ब्रह्ममें प्रविष्ट हो, तीनों लोकोंके समस्त चराचर प्राणियोंका साक्षात्कार करने लगे॥ १८॥ योगस्वरूप भगवान् शङ्कर योगमें प्रवेश करके (समाधि लगाकर) पहलेके दिये हुए उन वरोंका चिन्तन करने लगे तथा द्वारकामें जो कुछ कहा था, उन सब बातोंका बारम्बार स्मरण करके उन्होंने ब्रह्माजीको कोई उत्तर नहीं दिया; वे उस समय युद्धसे निवृत्त हो गये॥ १९॥ उन्होंने अपने-आपको सच्चिदानन्द-स्वरूप श्रीकृष्णमय योनि (परब्रह्म)-में स्थित देखा और अपनेको एक-अद्वितीय ब्रह्मस्वरूप योनिसे प्रकट हुआ जाना। तत्पश्चात् रुद्रदेव वहाँसे निकलकर युद्धसे अलग हो गये। उन्होंने उस रणक्षेत्रमें श्रीकृष्णके साथ वाद-विवाद या युद्धकी भावनाका परित्याग कर दिया॥ २०॥ तत्पश्चात् रुद्रने ब्रह्माजीसे कहा—'भगवन्! अब मैं संग्रामभूमिमें श्रीकृष्णके साथ युद्ध नहीं करूँगा, अब यह पृथ्वी हलकी हो जाय'॥ २१॥ इसके बाद श्रीकृष्ण और रुद्र एक-दूसरेसे मिलकर बहुत प्रसन्न हुए और आपसके संग्रामसे हट गये॥ २२॥ श्रीकृष्ण और रुद्र दोनों योगी हैं तथा दोनों एक-दूसरेसे अभेद-सम्बन्धको प्राप्त हैं, इस बातको वहाँ दूसरे किसीने नहीं समझा; एकमात्र पितामह ब्रह्माने उन दोनोंका अभेद-सम्बन्ध स्थापित करके उन्हें उसी भावसे देखा और सब लोगोंकी ओर देखते हुए इसी विषयको लेकर अपने बगलमें खड़े हुए नारद तथा मार्कण्डेयको दीर्घदर्शी जानकर इस प्रकार पूछा॥ २३-२४॥

पितामह बोले—ब्रह्मन्! मैंने मन्दराचल पर्वतके पार्श्वभागमें रातको सोते समय सपनेमें एक सरोवरके तटपर श्रीकृष्ण और भगवान् शङ्करको देखा, जो तत्काल ही एक-दूसरेके रूपमें बदल गये थे (अर्थात् श्रीकृष्णकी जगह शिव और शिवकी जगह श्रीकृष्ण हो गये थे)॥ २५॥ मैंने हरको हरिरूपमें देखा और हरिको हररूपमें; भगवान् हरने हाथोंमें शङ्ख, चक्र और गदा ले रखी थी और उनके अङ्गोंपर पीताम्बर शोभा पा रहा था॥ २६॥

त्रिशूलपट्टिशधरं व्याघ्रचर्मधरं हरिम्।
गरुडस्थं चापि हरं हरिं च वृषभध्वजम्॥ २७

विस्मयो मे महान् ब्रह्मन् दृष्ट्वा तत् परमाद्भुतम्।
एतदाचक्ष्व भगवन् याथातथ्येन सुव्रत॥ २८

मार्कण्डेय उवाच

शिवाय विष्णुरूपाय विष्णवे शिवरूपिणे।
यथान्तरं न पश्यामि तेन तौ दिशतः शिवम्॥ २९

अनादिमध्यनिधनमेतदक्षरमव्ययम्।
तदेव ते प्रवक्ष्यामि रूपं हरिहरात्मकम्॥ ३०

यो विष्णुः स तु वै रुद्रो यो रुद्रः स पितामहः।
एका मूर्तिस्त्रयो देवा रुद्रविष्णुपितामहाः॥ ३१

वरदा लोककर्तारो लोकनाथाः स्वयम्भुवः।
अर्धनारीश्वरास्ते तु व्रतं तीव्रं समास्थिताः॥ ३२

यथा जले जलं क्षिप्तं जलमेव तु तद् भवेत्।
रुद्रं विष्णुः प्रविष्टस्तु तथा रुद्रमयो भवेत्॥ ३३

अग्निमग्निः प्रविष्टस्तु अग्निरेव यथा भवेत्।
तथा विष्णुं प्रविष्टस्तु रुद्रो विष्णुमयो भवेत्॥ ३४

रुद्रमग्निमयं विद्याद् विष्णुः सोमात्मकः स्मृतः।
अग्नीषोमात्मकं चैव जगत् स्थावरजंगमम्॥ ३५

कर्तारौ चापहर्तारौ स्थावरस्य चरस्य तु।
जगतः शुभकर्तारौ प्रभविष्णू महेश्वरौ॥ ३६

कर्तृकारणकर्तारौ कर्तृकारणकारकौ।
भूतभव्यभवौ देवौ नारायणमहेश्वरौ॥ ३७

जगतः पालकावेतावेतौ सृष्टिकरौ स्मृतौ।
एते चैव प्रवर्षन्ति भान्ति वान्ति सृजन्ति च।
एतत् परतरं गुह्यं कथितं ते पितामह॥ ३८

यश्चैनं पठते नित्यं यश्चैनं शृणुयान्नरः।
प्राप्नोति परमं स्थानं विष्णुरुद्रप्रसादजम्॥ ३९

उधर श्रीहरि त्रिशूल और पट्टिश धारण किये बाघम्बर पहने हुए थे; भगवान् शङ्कर गरुड़पर बैठे थे और श्रीहरि वृषभवाहन होकर अपनी ध्वजामें वृषभका चिह्न धारण किये थे॥ २७॥ ब्रह्मन्! उत्तम व्रतका पालन करनेवाले महर्षे! वह अद्भुत दृश्य देखकर मुझे महान् विस्मय हुआ। भगवन्! आप इसके रहस्यका यथार्थरूपसे विवेचन करें॥ २८॥

मार्कण्डेयजी बोले—विष्णुरूपधारी शिव और शिवरूपधारी विष्णुको नमस्कार है। मैं इन दोनोंमें कोई अन्तर नहीं देखता, मेरे इस भावसे संतुष्ट होकर वे दोनों मुझे कल्याण प्रदान करें॥ २९॥ आदि, मध्य और अन्तसे रहित जो यह अविनाशी अक्षर ब्रह्म है, उसका स्वरूप हरिहरात्मक है, ब्रह्मन्! मैं आपके समक्ष उसी हरिहरात्मक ब्रह्मका वर्णन करूँगा॥ ३०॥ जो विष्णु हैं, वे ही रुद्र हैं और जो रुद्र हैं, वे ही ब्रह्मा हैं; इनका मूलस्वरूप तो एक ही है, परंतु ये कार्यभेदसे रुद्र, विष्णु और ब्रह्मा तीन देवता कहलाते हैं॥ ३१॥ ये सब-के-सब लोकस्रष्टा, वरदायक, जगन्नाथ, स्वयम्भू, अर्धनारीश्वर तथा तीव्र व्रतका आश्रय लेनेवाले हैं॥ ३२॥ जैसे जलमें डाला हुआ जल जलरूप ही हो जाता है, उसी प्रकार रुद्रदेवमें प्रविष्ट हुए भगवान् विष्णु रुद्रमय हो जाते हैं॥ ३३॥ जैसे अग्निमें प्रविष्ट हुई अग्नि अग्निरूप ही होती है, उसी प्रकार विष्णुमें प्रविष्ट हुए रुद्रदेव विष्णुरूप ही होते हैं॥ ३४॥ रुद्रको अग्निस्वरूप जाने और भगवान् विष्णु सोमस्वरूप माने गये हैं। इसीलिये यह समस्त चराचर जगत् अग्नीषोमात्मक कहलाता है॥ ३५॥ यह हरि और हर ही समस्त चराचर जगत्के कर्ता, संहारक, शुभकारक तथा प्रभावशाली महेश्वर हैं॥ ३६॥ ये नारायण और महेश्वरदेव कर्ता और कारणके भी आदि कर्ता हैं तथा कर्ता और कारणसे भी काम करानेवाले हैं। ये ही दोनों भूत, भविष्य और वर्तमानरूप हैं॥ ३७॥ ये ही जगत्के पालक और ये ही इसकी सृष्टि करनेवाले माने गये हैं। ये ब्रह्मा, विष्णु और शिव (मेघरूपसे जलकी) वर्षा करते हैं। (सूर्यरूपसे) प्रकाशित होते हैं और (वायुरूपसे) सर्वत्र गतिशील होते हैं। ये ही सृष्टि करते हैं। पितामह! यह मैंने आपसे परम गुह्य रहस्यका वर्णन किया है॥ ३८॥ जो प्रतिदिन इस स्तोत्रका पाठ करता और जो इसे सुनता है, वह मनुष्य भगवान् विष्णु और रुद्रकी कृपासे परम पदको प्राप्त कर लेता है॥ ३९॥

देवौ हरिहरौ स्तोष्ये ब्रह्मणा सह संगतौ।
एतौ च परमौ देवौ जगतः प्रभवाप्ययौ॥ ४०

रुद्रस्य परमो विष्णुर्विष्णोश्च परमः शिवः।
एक एव द्विधाभूतो लोके चरति नित्यशः॥ ४१

न विना शंकरं विष्णुर्न विना केशवं शिवः।
तस्मादेकत्वमायातौ रुद्रोपेन्द्रौ तु तौ पुरा।
नमो रुद्राय कृष्णाय नमः संहतचारिणे॥ ४२

नमः षडर्धनेत्राय सद्विनेत्राय वै नमः।
नमः पिङ्गलनेत्राय पद्मनेत्राय वै नमः॥ ४३

नमः कुमारगुरवे प्रद्युम्नगुरवे नमः।
नमो धरणीधराय गङ्गाधराय वै नमः॥ ४४

नमो मयूरपिच्छाय नमः केयूरधारिणे।
नमः कपालमालाय वनमालाय वै नमः॥ ४५

नमस्त्रिशूलहस्ताय चक्रहस्ताय वै नमः।
नमः कनकदण्डाय नमस्ते ब्रह्मदण्डिने॥ ४६

नमश्चर्मनिवासाय नमस्ते पीतवाससे।
नमोऽस्तु लक्ष्मीपतये उमायाः पतये नमः॥ ४७

नमः खट्वाङ्गधाराय नमो मुसलधारिणे।
नमो भस्माङ्गरागाय नमः कृष्णाङ्गधारिणे॥ ४८

नमः श्मशानवासाय नमः सागरवासिने।
नमो वृषभवाहाय नमो गरुडवाहिने॥ ४९

नमस्त्वनेकरूपाय बहुरूपाय वै नमः।
नमः प्रलयकर्त्रे च नमस्त्रैलोक्यधारिणे॥ ५०

नमोऽस्तु सौम्यरूपाय नमो भैरवरूपिणे।
विरूपाक्षाय देवाय नमः सौम्येक्षणाय च॥ ५१

मैं ब्रह्माजीके साथ मिले हुए हरि और हर दोनों देवताओंकी स्तुति करूँगा। ये ही दोनों परम देव हैं और ये ही जगत्की सृष्टि तथा संहारके कारण हैं॥ ४०॥ रुद्रके परमदेव विष्णु हैं और विष्णुके परमदेव शिव हैं। एक ही परमेश्वर दो रूपोंमें व्यक्त होकर सदा समस्त जगत्में विचरते रहते हैं॥ ४१॥ भगवान् शङ्करके बिना विष्णु नहीं हैं और विष्णुके बिना शिव नहीं हैं। अतः वे दोनों रुद्र और विष्णु पूर्वकालसे ही एकत्वको प्राप्त हैं। संयुक्त अथवा एकरूप होकर विचरनेवाले भगवान् रुद्र एवं श्रीकृष्णको नमस्कार है॥ ४२॥ त्रिनेत्रधारी शिवको नमस्कार है, साथ ही द्विनेत्रधारी श्रीकृष्णको नमस्कार है; पिङ्गलनेत्रवाले शिवको नमस्कार है और प्रफुल्ल कमलके समान नेत्रवाले श्रीकृष्णको नमस्कार है॥ ४३॥ कुमार कार्तिकेयके पिता भगवान् शिवको नमस्कार है, प्रद्युम्नके पिता भगवान् श्रीकृष्णको नमस्कार है; शेषरूपसे पृथ्वीको धारण करनेवाले श्रीहरिको प्रणाम है तथा सिरपर गङ्गाजीको धारण करनेवाले शिवको नमस्कार है॥ ४४॥ मस्तकपर मोरपङ्ख धारण करनेवाले श्रीकृष्णको नमस्कार है। सर्पोंका बाजूबंद धारण करनेवाले शिवको नमस्कार है। वनमालाधारी श्रीकृष्ण तथा कपालमाला-धारी शिवको प्रणाम है॥ ४५॥ हाथमें त्रिशूल धारण करनेवाले श्रीशिवको नमस्कार है; एक हाथमें सुदर्शन चक्र धारण करनेवाले श्रीहरिको नमस्कार है। सोनेका दण्ड धारण करनेवाले श्रीहरिको और ब्रह्मदण्डधारी शिवको नमस्कार है॥ ४६॥ वस्त्रकी जगह व्याघ्रचर्म धारण करनेवाले शिवको प्रणाम है। पीताम्बरधारी श्रीकृष्णको नमस्कार है, लक्ष्मीपति श्रीहरिको प्रणाम है और उमापति महादेवजीको नमस्कार है॥ ४७॥ खट्वाङ्ग-धारी शिवको प्रणाम है और मुसलधारी बलभद्रस्वरूप श्रीहरिको नमस्कार है, भस्ममय अङ्गराग धारण करनेवाले शिवको नमस्कार है तथा श्यामसुन्दर शरीरधारी श्रीहरिको प्रणाम है॥ ४८॥ श्मशानवासी हर और समुद्रनिवासी हरिको बारम्बार नमस्कार है। वृषभवाहन हर और गरुड़वाहन हरिको नमस्कार है॥ ४९॥ अनेक अवतार धारण करनेवाले हरि और बहुत-से रूप धारण करनेवाले हरको नमस्कार है। प्रलयंकर रुद्र और त्रैलोक्यरक्षक विष्णुको नमस्कार है॥ ५०॥ सौम्यरूपधारी श्रीहरि और भैरवरूपधारी रुद्र-देवको नमस्कार है। विरूप नेत्रवाले महादेवजी तथा सौम्य दृष्टिवाले श्रीहरिको प्रणाम है॥ ५१॥

दक्षयज्ञविनाशाय बलेर्नियमनाय च।
नमः पर्वतवासाय नमः सागरवासिने॥ ५२

नमः सुररिपुघ्नाय त्रिपुरघ्नाय वै नमः।
नमोऽस्तु नरकघ्नाय नमः कामाङ्गनाशिने॥ ५३

नमस्त्वन्धकनाशाय नमः कैटभनाशिने।
नमः सहस्रहस्ताय नमोऽसंख्येयबाहवे॥ ५४

नमः सहस्रशीर्षाय बहुशीर्षाय वै नमः।
दामोदराय देवाय मुञ्जमेखलिने नमः॥ ५५

नमस्ते भगवन् विष्णो नमस्ते भगवञ्छिव।
नमस्ते भगवन् देव नमस्ते देवपूजित॥ ५६

नमस्ते सामभिर्गीत नमस्ते यजुभिः सह।
नमस्ते सुरशत्रुघ्न नमस्ते सुरपूजित॥ ५७

नमस्ते कर्मिणां कर्म नमोऽमितपराक्रम।
हृषीकेश नमस्तेऽस्तु स्वर्णकेश नमोऽस्तु ते॥ ५८

इमं स्तवं यो रुद्रस्य विष्णोश्चैव महात्मनः।
समेत्य ऋषिभिः सर्वैः स्तुतौ स्तौति महर्षिभिः॥ ५९

व्यासेन वेदविदुषा नारदेन च धीमता।
भारद्वाजेन गर्गेण विश्वामित्रेण वै तथा॥ ६०

अगस्त्येन पुलस्त्येन धौम्येन तु महात्मना।
य इदं पठते नित्यं स्तोत्रं हरिहरात्मकम्॥ ६१

अरोगो बलवांश्चैव जायते नात्र संशयः।
श्रियं च लभते नित्यं न च स्वर्गान्निवर्तते॥ ६२

अपुत्रो लभते पुत्रं कन्या विन्दति सत्पतिम्।
गुर्विणी शृणुते या तु वरं पुत्रं प्रसूयते॥ ६३

दक्षयज्ञका ध्वंस करनेवाले रुद्र तथा बलिको बाँधनेवाले वामनरूपधारी श्रीहरिको नमस्कार है। पर्वत-निवासी शिव और समुद्रवासी विष्णुको नमस्कार है॥ ५२॥ देवद्रोहियोंका नाश करनेवाले श्रीहरिको प्रणाम है, त्रिपुरासुरके विनाशक रुद्रदेवको नमस्कार है; नरकासुरका विनाश करनेवाले विष्णुको नमस्कार है और कामदेवके शरीरको दग्ध कर डालनेवाले भगवान् शिवको नमस्कार है॥ ५३॥ अन्धकासुरका नाश करनेवाले रुद्रको नमस्कार है, कैटभका वध करनेवाले विष्णुको नमस्कार है। सहस्रों हाथोंवाले विष्णु और असंख्य भुजाओंवाले शिवको नमस्कार है॥ ५४॥ सहस्रों मस्तकवाले श्रीहरि और बहुत-से मस्तकवाले भगवान् शिवको नमस्कार है। जिनके उदरमें यशोदा माताके द्वारा रस्सी बाँधी गयी, उन दामोदरदेवको नमस्कार है तथा कटिप्रदेशमें मूँजकी मेखला धारण करनेवाले भगवान् शिवको प्रणाम है॥ ५५॥ भगवन्! विष्णो! आपको नमस्कार है। भगवन्! शिव! आपको प्रणाम है। भगवन्! महादेव! आपको नमस्कार है। देवपूजित परमेश्वर! आपको प्रणाम है॥ ५६॥ सामवेदके मन्त्रोंद्वारा गाये जानेवाले परमात्मन्! आपको नमस्कार है। यजुर्वेदके साथ सम्बन्ध रखनेवाले देवता! आपको प्रणाम है। आप ही कर्मपरायण पुरुषोंके कर्म हैं, आपको नमस्कार है। आपके पराक्रमकी कोई सीमा नहीं है—आपको नमस्कार है। देवद्रोहियोंका नाश करनेवाले श्रीकृष्ण! आपको नमस्कार है। देवपूजित महादेव! आपको प्रणाम है। हृषीकेश! आपको नमस्कार है। सुनहरे केशवाले शिव! आपको प्रणाम है॥ ५७-५८॥ वेदवेत्ता व्यास, बुद्धिमान् नारद, भारद्वाज, गर्ग, विश्वामित्र, अगस्त्य, पुलस्त्य और महात्मा धौम्य आदि समस्त ऋषि-महर्षियोंने एकत्र होकर जिनकी स्तुति की थी, उन्हीं भगवान् रुद्र और महात्मा विष्णुके इस स्तोत्रको पढ़कर जो उनकी स्तुति करता है तथा जो प्रतिदिन इस हरिहरात्मक स्तोत्रका पाठ करता है, वह इस जगत्में नीरोग और बलवान् होता है, इसमें संशय नहीं है। वह सदा लक्ष्मी (धन-सम्पत्ति) पाता है और स्वर्गसे कभी पीछे नहीं लौटता है॥ ५९—६२॥ पुत्रहीन पुरुष इसके पाठसे पुत्र पाता है, कुमारी कन्या श्रेष्ठ पति प्राप्त कर लेती है तथा जो गर्भवती स्त्री इसका श्रवण करती है, वह उत्तम पुत्रको जन्म देती है॥ ६३॥

राक्षसाश्च पिशाचाश्च विघ्नानि च विनायकः।
भयं तत्र न कुर्वन्ति यत्रायं पठ्यते स्तवः॥ ६४

जहाँ प्रतिदिन इस स्तोत्रका पाठ किया जाता है, वहाँ राक्षस, पिशाच, विघ्न और विनायक भय नहीं उपस्थित करते हैं॥ ६४॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे विष्णुपर्वणि हरिहरात्मकस्तवो नाम पञ्चविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः॥ १२५॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत विष्णुपर्वमें 'हरिहरात्मकस्तोत्र' विषयक एक सौ पचीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १२५॥

षड्विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

स्वामी कार्तिकेय और श्रीकृष्णके युद्धमें स्वामी कार्तिकेयकी पराजय, कोटवीदेवीका कार्तिकेयकी रक्षा करना, बाणासुर और श्रीकृष्णका युद्ध, श्रीकृष्णका बाणासुरकी हजार भुजाओंको काटना, महादेवजीका बाणासुरको महाकाल होनेका वरदान देना

जनमेजय उवाच

अपयाते ततो देवे कृष्णे चैव महात्मनि।
पुनश्चासीत् कथं युद्धं परेषां लोमहर्षणम्॥ १

वैशम्पायन उवाच

कुम्भाण्डसंगृहीते तु रथे तिष्ठन् गुहस्तदा।
अभिदुद्राव कृष्णं च बलं प्रद्युम्नमेव च॥ २

ततः शरशतैरुग्रैस्तान् विव्याध रणे गुहः।
अमर्षरोषसंक्रुद्धः कुमारः प्रवरो नदन्॥ ३

शरसंवृतगात्रास्ते त्रयस्त्रय इवाग्नयः।
शोणितौघप्लुतैर्गात्रैः प्रायुध्यन्त गुहं ततः॥ ४

ततस्ते युद्धमार्गज्ञास्त्रयस्त्रिभिरनुत्तमैः।
वायव्याग्नेयपार्जन्यैर्बिभिदुर्दीप्ततेजसः॥ ५

तानस्त्रांस्त्रिभिरेवास्त्रैर्विनिवार्य स पावकिः।
शैलवारुणसावित्रैस्तान् स विव्याध कोपवान्॥ ६

तस्य दीप्तशरौघस्य दीप्तचापधरस्य च।
शरौघानस्त्रमायाभिर्ग्रसन्ति स्म महात्मनः।
यदा तदा गुहः क्रुद्धः प्रज्वलन्निव तेजसा॥ ७

जनमेजयने पूछा—ब्रह्मन्! जब महादेवजी तथा महात्मा श्रीकृष्ण युद्धसे हट गये, तब पुनः शत्रुओंका रोमाञ्चकारी युद्ध किस प्रकार हुआ?॥ १॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन्! तब कुम्भाण्डद्वारा नियन्त्रित रथपर बैठे हुए कार्तिकेयजीने श्रीकृष्ण, बलराम तथा प्रद्युम्नपर एक साथ ही धावा किया॥ २॥ अमर्ष और रोषसे अत्यन्त कुपित हुए सर्वश्रेष्ठ देवता कुमार कार्तिकेयने उस समय सिंहनाद करके सैकड़ों उग्र बाणोंद्वारा उन सबको रणभूमिमें घायल कर दिया॥ ३॥ उन तीनोंके सारे अङ्ग बाणोंसे आवृत हो गये। वे तीनों त्रिविध अग्नियोंके समान रक्तरञ्जित अङ्गोंद्वारा ही कुमार कार्तिकेयके साथ युद्ध करने लगे॥ ४॥ युद्धके मार्गोंका ज्ञान रखनेवाले उन तीनों उद्दीप्त तेजस्वी वीरोंने क्रमशः वायव्य, आग्नेय और पार्जन्यास्त्रोंका प्रयोग करके कुमारको क्षत-विक्षत कर दिया॥ ५॥ परंतु क्रोधमें भरे हुए अग्निनन्दन कार्तिकेयने पार्वत, वारुण और सावित्र नामक तीन अस्त्रोंद्वारा उक्त तीनों अस्त्रोंका निवारण करके पुनः उन तीनों वीरोंको घायल कर दिया॥ ६॥ स्कन्दके बाणसमूह बड़े तेजस्वी थे। उन्होंने दीप्तिमान् धनुष धारण कर रखा था तो भी जब उन महात्माके चलाये हुए शर-समूहोंको वे तीनों वीर अपने अस्त्रोंकी मायासे नष्ट करने लगे, तब कार्तिकेयको बड़ा क्रोध हुआ। वे तेजसे प्रज्वलित-से हो उठे॥ ७॥

अस्त्रं ब्रह्मशिरो नाम कालकल्पं दुरासदम्।
संदष्टौष्ठपुटः संख्ये जगृहे पावकिः प्रभुः॥ ८

प्रयुक्ते ब्रह्मशिरसि सहस्रांशुसमप्रभे।
उग्रे परमदुर्धर्षे लोकक्षयकरे तथा॥ ९

हाहाभूतेषु सर्वेषु प्रधावत्सु समन्ततः।
अस्त्रतेजःप्रमूढे तु विषण्णे जगति प्रभुः।
केशवः केशिमथनश्चक्रं जग्राह वीर्यवान्॥ १०

सर्वेषामस्त्रवीर्याणां वारणं घातनं तथा।
चक्रमप्रतिचक्रस्य लोके ख्यातं महात्मनः॥ ११

अस्त्रं ब्रह्मशिरस्तेन निष्प्रभं कृतमोजसा।
घनैरिवातपापाये सवितुर्मण्डलं यथा॥ १२

ततो निष्प्रभतां याते नष्टवीर्ये महौजसि।
तस्मिन् ब्रह्मशिरस्यस्त्रे क्रोधसंरक्तलोचनः॥ १३

गुहः प्रजज्वाल रणे हविषेवाग्निरुल्बणः।
शत्रुघ्नीं ज्वलितां दिव्यां शक्तिं जग्राह काञ्चनीम्॥ १४

अमोघां दयितां घोरां सर्वलोकभयावहाम्।
तां प्रदीप्तां महोल्काभां युगान्ताग्निसमप्रभाम्।
घण्टामालाकुलां दिव्यां चिक्षेप रुषितो गुहः॥ १५

ननाद बलवच्चापि नादं शत्रुभयंकरम्।
सा च क्षिप्ता तदा तेन ब्रह्मण्येन महात्मना॥ १६

जृम्भमाणेव गगने सम्प्रदीप्तमुखी तदा।
आधावत महाशक्तिः कृष्णस्य वधकाङ्क्षिणी॥ १७

भृशं विषण्णः शक्रोऽपि सर्वामरगणैर्वृतः।
शक्तिं प्रज्वलितां दृष्ट्वा दग्धः कृष्णेति चाब्रवीत्॥ १८

तां समीपमनुप्राप्तां महाशक्तिं महामृधे।
हुङ्कारेणैव निर्भर्त्स्य पातयामास भूतले॥ १९

प्रभावशाली पावकनन्दन स्कन्दने युद्धस्थलमें अपने ओठको दाँतोंसे दबा लिया और ब्रह्मशिर नामक अस्त्र उठाया, जो कालके समान दुर्जय था॥८॥ सूर्यदेवके तुल्य तेजस्वी ब्रह्मशिर नामक परम दुर्जय लोकसंहारकारी उग्र अस्त्रका प्रयोग होनेपर सब ओर हाहाकार मच गया। सब लोग इधर-उधर भागने लगे और उस अस्त्रके तेजसे मोहित हुए सारे जगत्में विषाद छा गया। तब परम पराक्रमी केशिहन्ता भगवान् केशवने चक्र हाथमें लिया, जो सभी अस्त्रोंके बलका निवारण तथा नाश करनेवाला है, जिनके सामने विरोधियोंका मण्डल ठहर नहीं सकता है, उन महात्मा श्रीकृष्णका चक्र सारे संसारमें विख्यात है॥९—११॥ उस चक्रने अपने बलसे उस ब्रह्मशिर नामक अस्त्रको उसी प्रकार निस्तेज कर दिया, जैसे वर्षाकालमें मेघोंके छा जानेसे सूर्यमण्डल प्रभाहीन प्रतीत होता है॥१२॥ तदनन्तर उस महान् शक्तिशाली ब्रह्मशिर अस्त्रके निस्तेज और निर्बल हो जानेपर कार्तिकेयके नेत्र क्रोधसे लाल हो उठे। जैसे घीकी आहुति पाकर अग्नि प्रज्वलित हो उठती है, उसी प्रकार वे रणभूमिमें रोषसे जल उठे। फिर तो उन्होंने सम्पूर्ण लोकोंको भय देनेवाली अपनी प्रिय शक्ति हाथमें ली, जो दिव्य सुवर्णमयी, अमोघ, भयङ्कर, सब ओरसे प्रज्वलित तथा शत्रुओंका संहार करनेमें समर्थ थी, वह दिव्य शक्ति आकाशमें बड़ी भारी उल्काके समान प्रज्वलित हो उठती थी, प्रलयकालके संवर्तक अग्निकी भाँति प्रकाशित होती थी तथा वह घण्टाओंकी मालाओंसे अलंकृत थी, रोषमें भरे हुए कार्तिकेयने उस शक्तिको चला दिया और बड़े जोरसे सिंहनाद किया, जो शत्रुओंके मनमें भय उत्पन्न करनेवाला था। उन ब्राह्मणभक्त महात्मा कार्तिकेयके द्वारा चलायी गयी वह शक्ति आकाशमें बढ़ने-सी लगी, उसका मुखभाग प्रज्वलित हो उठा, वह महाशक्ति श्रीकृष्णका वध करनेकी इच्छासे उनकी ओर दौड़ी॥१३—१७॥ उस समय प्रज्वलित होती हुई उस शक्तिको देखकर समस्त देवगणोंसे घिरे हुए इन्द्र भी अत्यन्त खिन्न हो गये और बोले—'हाय! श्रीकृष्ण दग्ध हो गये'॥१८॥ परंतु श्रीकृष्णने उस महासमरमें अपने पास आयी हुई उस महाशक्तिको हुङ्कारसे ही तिरस्कृत करके पृथ्वीपर गिरा दिया॥१९॥

पतितायां महाशक्त्यां साधुसाध्विति सर्वशः।
सिंहनादं ततश्चक्रुः सर्वे देवाः सवासवाः॥ २०

ततो देवेषु नर्दत्सु वासुदेवः प्रतापवान्।
पुनश्चक्रं स जग्राह दैत्यान्तकरणं रणे॥ २१

व्याविध्यमाने चक्रे तु कृष्णेनाप्रतिमौजसा।
कुमाररक्षणार्थाय बिभ्रती सुतनुं तदा॥ २२

दिग्वासा देववचनात् प्रविष्टा तत्र कोटवी।
लम्बमाना महाभागा भागो देव्यास्तथाष्टमः।
चित्रा कनकशक्तिस्तु सा च नग्ना स्थितान्तरे॥ २३

अथान्तरात् कुमारस्य देवीं दृष्ट्वा महाभुजः।
पराङ्मुखस्ततो वाक्यमुवाच मधुसूदनः॥ २४

श्रीभगवानुवाच

अपगच्छापगच्छ त्वं धिक् त्वामिति वचोऽब्रवीत्।
किमेवं कुरुषे विघ्नं निश्चितस्य वधं प्रति॥ २५

वैशम्पायन उवाच

श्रुत्वैवं वचनं तस्य कोटवी तु तदा विभोः।
नैव वासः समाधत्ते कुमारपरिरक्षणात्॥ २६

श्रीभगवानुवाच

अपवाह्य गुहं शीघ्रमपयाहि रणाजिरात्।
स्वस्ति ह्येवं भवेदद्य योत्स्यतो योत्स्यता मया॥ २७
तां च दृष्ट्वा स्थितां देवो हरिः संग्राममूर्धनि।
संजहार ततश्चक्रं भगवान् वासवानुजः॥ २८
एवं कृते तु कृष्णेन देवदेवेन धीमता।
अपवाह्य गुहं देवी हरसांनिध्यमागता॥ २९
एतस्मिन्नन्तरे चैव वर्तमाने महाभये।
कुमारे रक्षिते देव्या बाणस्तं देशमाययौ॥ ३०
अपयान्तं गुहं दृष्ट्वा मुक्तं कृष्णेन संयुगात्।
बाणश्चिन्तयते तत्र स्वयं योत्स्यामि माधवम्॥ ३१

उस महाशक्तिके धराशायिनी हो जानेपर सब ओर साधु! साधु!! (वाह! वाह!!)-की ध्वनि होने लगी। उस समय इन्द्रसहित समस्त देवता सिंहनाद करने लगे॥ २०॥ तदनन्तर जब देवता सिंहनाद कर रहे थे, उसी समय प्रतापी वासुदेवने पुनः चक्र हाथमें लिया, जो रणभूमिमें दैत्योंका विनाश करनेवाला है॥ २१॥ परंतु अप्रतिम बलशाली श्रीकृष्ण ज्यों ही चक्र घुमाने लगे, त्यों ही कुमारकी रक्षाके लिये महादेवजीकी आज्ञासे महाभागा कोटवी, जो देवी पार्वतीका आठवाँ भाग थी, सुन्दर शरीर धारण किये श्रीकृष्ण और कुमारके बीचमें आकर नंगी खड़ी हो गयी। वह आकाशमें निराधार लटक रही थी। वह विचित्र सुवर्णमयी शक्ति तथा वह देवी कोटवी दोनों ही (श्रीकृष्ण और कुमारके) बीचमें विद्यमान थीं॥ २२-२३॥ अपने और कुमारके बीचमें देवीको खड़ी हुई देख महाबाहु मधुसूदनने अपना मुख दूसरी ओर फेर लिया और कहा॥ २४॥

श्रीभगवान् बोले—अरी! हटो! हटो!! तुम्हें धिक्कार है। शत्रुका वध करनेके लिये दृढ़ निश्चय किये हुए मेरे उद्देश्यकी सिद्धिमें तुम इस प्रकार विघ्न क्यों डाल रही हो॥ २५॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन्! भगवान्‌की यह बात सुनकर भी कोटवीने उस समय कुमारकी रक्षाके लिये अपने अङ्गोंपर वस्त्र नहीं धारण किया॥ २६॥

श्रीभगवान्‌ने कहा—अरी! तुम कार्तिकेयको शीघ्र हटाकर स्वयं भी समराङ्गणसे दूर चली जाओ, ऐसा करनेपर ही आज मेरे साथ युद्ध करते हुए कार्तिकेयका कल्याण होगा॥ २७॥ कोटवीको युद्धके मुहानेपर खड़ी देख इन्द्रके छोटे भाई भगवान् श्रीहरिने अपने चक्रको पीछे लौटा लिया॥ २८॥ देवाधिदेव बुद्धिमान् श्रीकृष्णके ऐसा करनेपर देवी कोटवी कार्तिकेयको वहाँसे हटाकर स्वयं भगवान् शङ्करके समीप चली गयी॥ २९॥ इसी बीचमें जब वह महान् भय उपस्थित हुआ और देवीने कुमारकी रक्षा कर ली, तब बाणासुर उस स्थानपर आया॥ ३०॥ श्रीकृष्णके हाथोंसे जीवित छूटकर कुमार कार्तिकेय युद्ध-स्थलसे दूर हटे जा रहे हैं, यह देखकर बाणासुरने वहाँ यह निश्चय किया कि मैं स्वयं ही माधवके साथ युद्ध करूँगा॥ ३१॥

वैशम्पायन उवाच

भूतयक्षगणाश्चैव बाणानीकं च सर्वशः।
दिशं प्रदुद्रुवुः सर्वे भयमोहितलोचनाः॥ ३२

प्रमाथगणभूयिष्ठे सैन्ये दीर्णे महासुरः।
निर्जगाम ततो बाणो युद्धायाभिमुखस्त्वरन्॥ ३३

भीमप्रहरणैर्घोरैर्दैत्येन्द्रैः सुमहारथैः।
महाबलैर्महावीरैर्वज्रीव सुरसत्तमैः॥ ३४

पुरोहिताः शत्रुवधं वदन्त-
स्तथैव चान्ये श्रुतशीलवृद्धाः।
जपैश्च मन्त्रैश्च तथौषधीभि-
र्महात्मनः स्वस्त्ययनं प्रचक्रुः॥ ३५

ततस्तूर्यप्रणादैश्च भेरीणां तु महास्वनैः।
सिंहनादैश्च दैत्यानां बाणः कृष्णमभिद्रवत्॥ ३६

दृष्ट्वा बाणं तु निर्यातं युद्धायैव व्यवस्थितम्।
आरुह्य गरुडं कृष्णो बाणायाभिमुखो ययौ॥ ३७

आयान्तमथ तं दृष्ट्वा यदूनामृषभं रणे।
वैनतेयमथारूढं कृष्णमप्रतिमौजसम्॥ ३८

अथ बाणस्तु तं दृष्ट्वा प्रमुखे प्रत्युपस्थितम्।
उवाच वचनं क्रुद्धो वासुदेवं तरस्विनम्॥ ३९

बाण उवाच

तिष्ठ तिष्ठ न मेऽद्य त्वं जीवन् प्रतिगमिष्यसि।
द्वारकां द्वारकास्थांश्च सुहृदो द्रक्ष्यसे न च॥ ४०

सुवर्णवर्णान् वृक्षाग्रानद्य द्रक्ष्यसि माधव।
मयाभिभूतः समरे मुमूर्षुः कालनोदितः॥ ४१

अद्य बाहुसहस्रेण कथमष्टभुजो रणे।
मया सह समागम्य योत्स्यसे गरुडध्वज॥ ४२

अद्य त्वं वै मया युद्धे निर्जितः सहबान्धवः।
द्वारकां शोणितपुरे निहतः संस्मरिष्यसि॥ ४३

नानाप्रहरणोपेतं नानाङ्गदविभूषितम्।
अद्य बाहुसहस्रं मे कोटिभूतं निशामय॥ ४४

गर्जतस्तस्य वाक्यौघा जलौघा इव सिन्धुतः।
निश्चरन्ति महाघोरा वातोद्धूता इवोर्मयः॥ ४५

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! उस समय भूतों और यक्षोंके समुदाय तथा बाणासुरके समस्त सैनिक भयसे कातर नेत्र होकर सम्पूर्ण दिशाओंकी ओर भागने लगे॥ ३२॥ जिसमें प्रमथगणोंकी अधिकता थी, उस सेनामें भी दरार पड़ जानेपर बाणासुर युद्धके लिये उत्सुक हो बड़ी उतावलीके साथ निकला॥ ३३॥ जैसे वज्रधारी इन्द्र श्रेष्ठ देवताओंसे घिरे होते हैं, उसी प्रकार वह भयंकर आयुध धारण करनेवाले, घोर, महाबली, महावीर एवं महारथी दैत्यपतियोंसे घिरा हुआ था॥ ३४॥ उस समय शास्त्रज्ञान और शीलमें बढ़े-चढ़े पुरोहित तथा दूसरे ब्राह्मणोंने उसके लिये शत्रुवधका आशीर्वाद देते हुए जप, मन्त्र और ओषधियोंद्वारा उस महामना दैत्यराजके लिये स्वस्तिवाचन किया॥ ३५॥ तदनन्तर वाद्योंकी ध्वनि, रणभेरियोंकी बड़ी भारी आवाज तथा दैत्योंके सिंहनादके साथ बाणासुरने श्रीकृष्णपर आक्रमण किया॥ ३६॥ बाणासुरको युद्धका ही निश्चय करके घरसे निकला देख गरुड़पर आरूढ़ हुए श्रीकृष्ण उसके सामने गये॥ ३७॥ उस रणभूमिमें अप्रतिम बलशाली यदुकुलतिलक श्रीकृष्णको गरुड़पर आरूढ़ होकर आते देख बाणासुरने अपने सामने उपस्थित हुए उन वेगशाली भगवान् वासुदेवसे कुपित होकर कहा॥ ३८-३९॥

बाणासुर बोला—अरे! खड़े रहो! खड़े रहो! आज तुम जीवित नहीं लौट सकोगे और न द्वारका तथा द्वारकावासी सुहृदोंको ही देख सकोगे॥ ४०॥ माधव! आज समरभूमिमें मेरे द्वारा पराजित हो तुम कालसे प्रेरित एवं मरणासन्न होकर वृक्षोंके अग्रभागको सुनहरे रंगका देखोगे॥ ४१॥ गरुड़ध्वज! तुम्हारे तो आठ ही भुजाएँ हैं, रणभूमिमें तुम मुझ सहस्रबाहुके साथ भिड़कर कैसे युद्ध करोगे॥ ४२॥ आज युद्धमें भाई-बन्धुओंसहित तुम मेरे द्वारा पराजित हो शोणितपुरमें मारे जाकर द्वारकाका स्मरण करोगे॥ ४३॥ देखना, भाँति-भाँतिके आयुधोंसे युक्त और नाना प्रकारके बाजूबंदोंसे विभूषित ये मेरी सहस्र भुजाएँ आज किस तरह करोड़ों भुजाओंके समान हो जाती हैं॥ ४४॥ गर्जना करते हुए उस दैत्यराजके मुखसे वे प्रवाहपूर्ण महाभयंकर वाक्यसमूह उसी तरह निकल रहे थे, जैसे प्रचण्ड पवनकी प्रेरणा पाकर समुद्रसे जलके प्रवाह और उत्ताल तरङ्गें उठती रहती हैं॥ ४५॥

रोषपर्याकुले चैव नेत्रे तस्य बभूवतुः।
जगद्दिधक्षन्निव खे महासूर्य इवोदितः॥ ४६

तच्छ्रुत्वा नारदस्तस्य बाणस्यात्यूर्जितं वचः।
जहास सुमहाहासं भिन्दन्निव नभस्तलम्॥ ४७

योगपट्टमुपाश्रित्य तस्थौ युद्धदिदृक्षया।
कौतूहलोत्फुल्लदृशः कुर्वन् पर्यटते मुनिः॥ ४८

श्रीकृष्ण उवाच

बाण किं गर्जसे मोहाच्छूराणां नास्ति गर्जितम्।
एह्येहि युध्यस्व रणे किं वृथा गर्जितेन ते॥ ४९

यदि युद्धानि वचनैः सिद्ध्येयुर्दितिनन्दन।
भवानेव जयेन्नित्यं बह्वबद्धं प्रजल्पति॥ ५०

एह्येहि जय मां बाण जितो वा वसुधातले।
चिरायावाङ्मुखो दीनः पतितः शेष्यसेऽसुरैः॥ ५१

इत्येवमुक्त्वा बाणं तु मर्मभेदिभिराशुगैः।
निर्बिभेद तदा कृष्णस्तममोघैर्महाशरैः॥ ५२

विनिर्भिन्नस्तु कृष्णेन मार्गणैर्मर्मभेदिभिः।
स्मयन् बाणस्ततः कृष्णं शरवर्षैरवाकिरत्॥ ५३

ज्वलद्भिरिव संयुक्तं तस्मिन् युद्धे सुदारुणे।
ततः परिघनिस्त्रिंशैर्गदातोमरशक्तिभिः॥ ५४

मुसलैः पट्टिशैश्चैव च्छादयामास केशवम्।
स तु बाहुसहस्रेण गर्वितो दैत्यसत्तमः॥ ५५

योधयामास समरे द्विबाहुमथ लीलया।
लाघवात् तस्य कृष्णस्य बलिसूनू रुषान्वितः॥ ५६

ततोऽस्त्रं परमं दिव्यं तपसा निर्मितं महत्।
यदप्रतिहतं युद्धे सर्वामित्रविनाशनम्॥ ५७

ब्रह्मणा विहितं दिव्यं तन्मुमोच दितेः सुतः।
तस्मिन् मुक्ते दिशः सर्वास्तमःपिहितमण्डलाः॥ ५८

उसके दोनों नेत्र रोषसे व्याप्त हो उठे। वह ऐसा जान पड़ता था, मानो आकाशमें सम्पूर्ण जगत्‌को दग्ध कर डालनेकी इच्छा लेकर महान् सूर्य उदित हुआ हो॥ ४६॥ बाणासुरका वह अत्यन्त ओजस्वी वचन सुनकर देवर्षि नारद आकाशको विदीर्ण करते हुए-से बड़े जोर-जोरसे अट्टहास करने लगे॥ ४७॥ वे मुनि योगपट्टका आश्रय लेकर युद्ध देखनेकी इच्छासे आकाशमें ठहरे हुए थे। वे अपने नेत्रोंको कौतूहलसे उत्फुल्ल (चकित) करते हुए वहाँ सब ओर घूमते थे॥ ४८॥

श्रीकृष्ण बोले—बाण! तू मोहवश क्यों गर्जना कर रहा है? शूरवीर इस तरह गर्जते नहीं हैं। आ! आ!! रणभूमिमें युद्ध कर। तेरी इस व्यर्थ गर्जनासे क्या लाभ है?॥ ४९॥ दितिनन्दन! यदि बातोंसे ही युद्धोंमें सफलता मिल जाय तो सदा तू ही विजयी हुआ करे; क्योंकि तू बहुत अंट-संट बातें बक रहा है॥ ५०॥ बाण! आ! आ!! मुझे युद्धमें जीत ले अथवा मेरे द्वारा पराजित हो तू ही पृथ्वीपर नीचे मुँह किये दीन-हीन हो चिरकालके लिये गिरकर असुरोंके साथ सो जायगा॥ ५१॥ ऐसा कहकर श्रीकृष्णने उस समय मर्मस्थानोंका भेदन करनेवाले शीघ्रगामी अमोघ महाबाणों-द्वारा बाणासुरको घायल कर दिया॥ ५२॥ श्रीकृष्णके मर्मभेदी बाणोंद्वारा क्षत-विक्षत हुए बाणासुरने मुसकराकर उन्हें भी बाणोंकी वर्षासे ढक दिया॥ ५३॥ उस अत्यन्त भयानक युद्धमें उन प्रज्वलित बाणोंसे बिंधे हुए श्रीकृष्णको बाणासुरने फिर परिघ, खड्ग, गदा, तोमर, शक्ति, मूसल और पट्टिशोंसे आच्छादित कर दिया। अपनी सहस्र भुजाओंसे घमंडमें भरा हुआ दैत्यप्रवर बाणासुर लीलापूर्वक द्विबाहु बने हुए श्रीकृष्णके साथ समराङ्गणमें युद्ध करने लगा। श्रीकृष्णकी फुर्तीसे बलिपुत्र बाणासुरको बड़ा रोष हुआ। उस दैत्यने तपस्याद्वारा निर्मित एक परम दिव्य एवं महान् अस्त्रको, जो ब्रह्माजीके द्वारा रचा गया था, युद्धमें कभी प्रतिहत नहीं होता था और समस्त शत्रुओंका विनाश करनेमें समर्थ था, श्रीकृष्णपर छोड़ दिया। उस अस्त्रके छूटते ही सम्पूर्ण दिशाओंका मण्डल अन्धकारसे आच्छन्न हो गया। सब ओर अत्यन्त भयंकर सहस्रों

प्रादुरासन् सहस्राणि सुघोराणि च सर्वशः।
तमसा संवृते लोके न प्राज्ञायत किंचन॥ ५९
साधु साध्विति बाणं तु पूजयन्ति स्म दानवाः।
हा हा धिगिति देवानां श्रूयते वागुदीरिता॥ ६०
ततोऽस्त्रबलवेगेन सार्चिष्मत्यः सुदारुणाः।
घोररूपा महावेगा निपेतुर्बाणवृष्टयः॥ ६१
नैव वाताः प्रवायन्ति न मेघाः संचरन्ति च।
अस्त्रे विसृष्टे बाणेन दह्यमाने च केशवे॥ ६२
ततोऽस्त्रं सुमहावेगं जग्राह मधुसूदनः।
पार्जन्यं नाम भगवान् कालान्तकनिभं रणे॥ ६३
ततो वितिमिरे लोके शराग्निः प्रशमं गतः।
दानवा मोघसंकल्पाः सर्वेऽभूवंस्तदा भृशम्॥ ६४
दानवास्त्रं प्रशान्तं तु पर्जन्यास्त्रेऽभिमन्त्रिते।
ततो देवगणाः सर्वे नदन्ति च हसन्ति च॥ ६५
हते शस्त्रे महाराज दैतेयः क्रोधमूर्च्छितः।
भूयः स छादयामास केशवं गरुडे स्थितम्॥ ६६
मुसलैः पट्टिशैश्चैव च्छादयामास केशवम्।
तस्य तां तरसा सर्वां बाणवृष्टिं समुद्यताम्॥ ६७
प्रहसन् वारयामास केशवः शत्रुसूदनः।
केशवस्य तु बाणेन वर्तमाने महाहवे॥ ६८
तस्य शार्ङ्गविनिर्मुक्तैः शरैरशनिसंनिभैः।
तिलशस्तद्रथं चक्रे सोऽश्वध्वजपताकिनम्॥ ६९
चिच्छेद कवचं कायान्मुकुटं च महाप्रभम्।
कार्मुकं च महातेजा हस्तावापं च केशवः॥ ७०
विव्याध चैनमुरसि नाराचेन स्मयन्निव।
स मर्माभिहतः संख्ये प्रमुमोहाल्पचेतनः॥ ७१
तं दृष्ट्वा मूर्च्छितं बाणं प्रहारपरिपीडितम्।
प्रासादवरशृंगस्थो नारदो मुनिपुङ्गवः॥ ७२
उत्थायापश्यत तदा कक्ष्यास्फोटनतत्परः।
वादयानो नखांश्चैव दिष्ट्या दिष्ट्येति चाब्रवीत्॥ ७३

(अपशकुन) प्रकट होने लगे। वहाँका सारा जगत् अन्धकारसे ढक जानेके कारण कुछ भी ज्ञात नहीं होता था। उस समय समस्त दानव 'साधु! साधु!!' कहकर बाणासुरकी प्रशंसा करने लगे और देवताओंके मुखसे निकली हुई वाणी—'हाय! हाय!! धिक्कार है।' इत्यादि रूपसे सुनायी देने लगी॥ ५४—६०॥ तत्पश्चात् उस अस्त्रके बल और वेगसे आगकी लपटोंसे युक्त परम दारुण बाणोंकी अत्यन्त वेगपूर्वक घोर वर्षा होने लगी॥ ६१॥ बाणासुरके उस अस्त्रके छूटते ही भगवान् केशव दग्ध-से होने लगे। उस समय आकाशमें न तो हवा चलती थी और न मेघोंका ही संचार होता था॥ ६२॥ तब भगवान् मधुसूदनने उस रणभूमिमें काल और अन्तकके समान भयंकर तथा महान् वेगशाली पार्जन्य नामक अस्त्र उठाया और चला दिया॥ ६३॥ फिर तो जगत्का अन्धकार दूर हो गया, बाणासुरके बाणोंकी आग बुझ गयी और समस्त दानवोंके मनसूबे उस समय व्यर्थ हो गये॥ ६४॥ पार्जन्यास्त्रके अभिमन्त्रित होनेपर उस दानवास्त्रको शान्त हुआ देख समस्त देवता सिंहनाद करने और हँसने लगे॥ ६५॥ महाराज! अपने अस्त्रके नष्ट हो जानेपर वह दैत्य क्रोधसे अचेत-सा हो गया। उसने गरुड़पर बैठे हुए श्रीकृष्णको पुनः मुसलों और पट्टिशोंकी वर्षासे ढक दिया। शत्रुसूदन केशवने उसके द्वारा वेगपूर्वक की हुई उस सारी बाण-वर्षाका हँसते-हँसते निवारण कर दिया। श्रीकृष्णका जब बाणासुरके साथ महान् युद्ध होने लगा, उस समय उन्होंने अपने शार्ङ्गधनुषसे छूटे हुए वज्रतुल्य बाणोंद्वारा उसके अश्व, ध्वज और पताकासहित रथको तिल-तिल करके काट डाला॥ ६६—६९॥ तत्पश्चात् महातेजस्वी केशवने उसके शरीरसे कवचको, मस्तकसे महातेजस्वी मुकुटको तथा हाथसे धनुष और दस्तानेको काट गिराया; साथ ही हँसते हुए-से उन्होंने एक नाराचद्वारा उसकी छातीमें गहरी चोट पहुँचायी। युद्धस्थलमें वह मर्मभेदी आघात लगनेपर उसकी चेतना क्षीण हो चली और वह मूर्च्छित होकर गिर पड़ा। बाणासुरको श्रीकृष्णके प्रहारसे अत्यन्त पीड़ित एवं मूर्च्छित हुआ देख उसके महलके ऊँचे शिखरपर खड़े हुए मुनिवर नारद बार-बार उठकर उसकी ओर देखने लगे। उस समय वे अपनी भुजाओंपर ताल ठोंकते और नख बजाते हुए इस प्रकार कहने लगे—'अहोभाग्य! अहोभाग्य!!'॥ ७०—७३॥

अहो मे सफलं जन्म जीवितं च सुजीवितम्।
दृष्टं मे यदिदं चित्रं दामोदरपराक्रमम्॥ ७४

जय बाणं महाबाहो दैतेयं देवकिल्बिषम्।
यदर्थमवतीर्णोऽसि तत् कर्म सफलीकुरु॥ ७५

एवं स्तुत्वा तदा देवं बाणैः खं द्योतयञ्छितैः।
इतस्ततः सम्पतद्भिर्नारदो व्यचरद् रणे॥ ७६

केशवस्य तु बाणेन वर्तमाने महाभये।
प्रयुध्येतां ध्वजौ तत्र तावन्योन्यमभिद्रुतौ।
युद्धं त्वभूद् वाहनयोरुभयोर्देवदैत्ययोः॥ ७७

गरुडस्य च संग्रामो मयूरस्य च धीमतः।
पक्षतुण्डप्रहारैस्तु चरणास्यनखैस्तथा॥ ७८

अन्योन्यं जघ्नतुः क्रुद्धौ मयूरगरुडावुभौ।
वैनतेयस्ततः क्रुद्धो मयूरं दीप्ततेजसम्॥ ७९

जग्राह शिरसि क्षिप्रं तुण्डेनाभिपतंस्तदा।
उत्क्षिप्य चैव पक्षाभ्यां निजघान महाबलः॥ ८०

पद्भ्यां पार्श्वाभिघाताभ्यां कृत्वा घातान्यनेकशः।
आकृष्य चैनं तरसा विकृष्य च महाबलः॥ ८१

निःसंज्ञं पातयामास गगनादिव भास्करम्।
मयूरे पतिते तस्मिन् पपाततिबलो भुवि॥ ८२

बाणः समरसंविग्नश्चिन्तयन् कार्यमात्मनः।
मयातिबलमत्तेन न कृतं सुहृदां वचः॥ ८३

पश्यतां देवदैत्यानां प्राप्तोऽस्म्यापदमुत्तमाम्।
तं दीनमनसं ज्ञात्वा रणे बाणं सुविक्लवम्॥ ८४

चिन्तयद् भगवान् रुद्रो बाणरक्षणमातुरः।
ततो नन्दीं महादेवः प्राह गम्भीरया गिरा॥ ८५

नन्दिकेश्वर याहि त्वं यतो बाणो रणे स्थितः।
रथेनानेन दिव्येन सिंहयुक्तेन भास्वता॥ ८६

'अहो! आज मेरा जन्म सफल है! यह जीवन उत्तम जीवन है; क्योंकि मैंने श्रीकृष्णका यह अद्भुत पराक्रम अपनी आँखों देख लिया॥ ७४॥ महाबाहो! आप इस देवद्रोही दैत्य बाणासुरको पराजित कीजिये और जिसके लिये आपका अवतार हुआ है, उस कर्मको सफल बनाइये'॥ ७५॥ इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्णकी स्तुति करके उस समय आकाशको प्रकाशित करते हुए नारदजी इधर-उधर पड़ते हुए तीखे बाणोंके साथ रणक्षेत्रमें विचरने लगे॥ ७६॥ जब श्रीकृष्णका बाणासुरके साथ वह महाभयंकर संग्राम चल रहा था, उस समय वहाँ उन दोनोंके ध्वजचिह्न-वाहन एक-दूसरेपर टूट पड़े और युद्ध करने लगे। भगवान् तथा दैत्य दोनोंके उन वाहनोंमें गहरी भिड़न्त हुई॥ ७७॥ बुद्धिमान् गरुड़ और मयूरमें पंख, चोंच, पंजे, मुख और नखोंके प्रहारद्वारा युद्ध होने लगा॥ ७८॥ मयूर और गरुड़ दोनों एक-दूसरेपर क्रोधपूर्वक आघात करने लगे। तदनन्तर कुपित हुए महाबली गरुड़ने उड़कर अपनी चोंचसे उद्दीप्त तेजवाले मोरका मस्तक शीघ्रतापूर्वक पकड़ लिया और उसे उछाल-उछालकर दोनों पाँखोंसे मारना आरम्भ किया॥ ७९-८०॥ दोनों पैरोंसे अगल-बगलमें आघात करके महाबली गरुड़ने उसपर बारम्बार प्रहार किये। वे उसे कभी वेगपूर्वक अपनी ओर खींचते और कभी पीछे ढकेलते थे, इस तरह उसे मूर्च्छित करके उन्होंने नीचे गिरा दिया, मानो आकाशसे सूर्यको धराशायी कर दिया गया हो। मोरके गिर जानेपर अत्यन्त बलशाली बाणासुर भी उस युद्धसे घबराकर अपने कर्तव्यका विचार करता हुआ पृथ्वीपर गिर पड़ा। (वह सोचने लगा—) 'अहो! मैंने अत्यन्त बलके घमंडमें आकर अपने हितैषी सुहृदोंकी बात नहीं मानी, इसलिये आज देवताओं और दैत्योंके देखते-देखते मैं इस भारी विपत्तिमें फँस गया हूँ'। रणभूमिमें बाणासुरको अत्यन्त व्याकुल और दीन-चित्त हुआ जान भगवान् रुद्र आतुर हो उसकी रक्षाका उपाय सोचने लगे। तत्पश्चात् महादेवजीने गम्भीर वाणीद्वारा नन्दीसे कहा—'नन्दिकेश्वर! जहाँ बाणासुर रणभूमिमें स्थित है, वहाँ जाओ और उसे सिंहों-द्वारा जुते हुए इस तेजस्वी दिव्य रथसे शीघ्र संयुक्त करो।

बाणं संयोजयाशु त्वमलं युद्धाय वानघ।
प्रमाथगणमध्येऽहं स्थास्यामि न हि मे मनः॥ ८७

योद्धुं प्रभवते ह्यद्य बाणं संरक्ष गम्यताम्।
तथेत्युक्त्वा ततो नन्दी रथेन रथिनां वरः॥ ८८

यतो बाणस्ततो गत्वा बाणमाह शनैरिदम्।
दैत्यामुं रथमातिष्ठ शीघ्रमेहि महाबल॥ ८९

ततो युध्यस्व कृष्णं वै दानवान्तकरं रणे।
आरुरोह रथं बाणो महादेवस्य धीमतः॥ ९०

आरूढः स तु बाणश्च तं रथं ब्रह्मनिर्मितम्।
तं स्यन्दनमधिष्ठाय भवस्यामिततेजसः॥ ९१

प्रादुश्चक्रे महारौद्रमस्त्रं सर्वास्त्रघातनम्।
दीप्तं ब्रह्मशिरो नाम बाणः क्रुद्धोऽतिवीर्यवान्॥ ९२

प्रदीप्ते ब्रह्मशिरसि लोकः क्षोभमुपागमत्।
लोकसंरक्षणार्थे वै तत् सृष्टं ब्रह्मयोनिना॥ ९३

तच्चक्रेण निहत्यास्त्रं प्राह कृष्णस्तरस्विनम्।
लोके प्रख्यातयशसं बाणमप्रतिमं रणे॥ ९४

कत्थितानि क्व ते तात बाण किं न विकत्थसे।
अयमस्मि स्थितो युद्धे युद्ध्यस्व पुरुषो भव॥ ९५

कार्तवीर्यार्जुनो नाम पूर्वं बाहुसहस्त्रवान्।
महाबलः स रामेण द्विबाहुः समरे कृतः॥ ९६

तथा तवापि दर्पोऽयं बाहूनां वीर्यसम्भवः।
एष ते दर्पशमनं करोमि रणमूर्द्धनि॥ ९७

यावत् ते दर्पशमनं करोम्यद्य स्वबाहुना।
तिष्ठेदानीं न मेऽद्य त्वं मोक्ष्यसे रणमूर्द्धनि॥ ९८

अथ तद् दुर्लभं दृष्ट्वा युद्धं परमदारुणम्।
तत्र देवासुरसमे युद्धे नृत्यति नारदः॥ ९९

निर्जिताश्च गणाः सर्वे प्रद्युम्नेन महात्मना।
निक्षिप्तवादा युद्धस्य देवदेवं गताः पुनः॥ १००

निष्पाप नन्दिकेश्वर! यह रथ युद्धके लिये पर्याप्त है। मैं यहाँ प्रमथगणोंके बीचमें रहूँगा। अब मेरा मन युद्ध करनेके लिये उत्साहित नहीं हो रहा है। तुम जाओ, बाणासुरकी रक्षा करो'। तब 'बहुत अच्छा' कहकर रथियोंमें श्रेष्ठ नन्दी रथके द्वारा उस स्थानपर गये जहाँ बाणासुर विद्यमान था। वहाँ पहुँचकर उन्होंने बाणासुरसे धीरे-धीरे इस प्रकार कहा, 'महाबली दैत्य! तुम शीघ्र आओ और इस रथपर आरूढ़ हो जाओ। तदनन्तर दानवोंका विनाश करनेवाले श्रीकृष्णके साथ समराङ्गणमें युद्ध करो'। नन्दीकी यह बात सुनकर बाणासुर बुद्धिमान् महादेवजीके रथपर आरूढ़ हुआ। उन तेजस्वी महादेवजीके उस रथका निर्माण साक्षात् ब्रह्माजीने किया था, उसपर बैठे हुए अत्यन्त पराक्रमी बाणासुरने कुपित हो ब्रह्मशिर नामक महाभयंकर प्रज्वलित अस्त्रका प्रयोग किया, जो सम्पूर्ण अस्त्रोंका विनाश करनेवाला था॥ ८१—९२॥ उस ब्रह्मशिर अस्त्रके प्रज्वलित होते ही यह सम्पूर्ण जगत् क्षुब्ध हो उठा। ब्रह्मयोनि ब्रह्माने जगत्‌की रक्षाके लिये ही उस अस्त्रकी सृष्टि की थी। श्रीकृष्णने अपने चक्रद्वारा उस अस्त्रका विनाश करके वेगशाली, विश्वविख्यात यशस्वी तथा रणक्षेत्रमें अनुपम शक्तिशाली बाणासुरसे इस प्रकार कहा— ॥ ९३-९४॥ 'तात! तुम्हारी वे बहकी-बहकी बातें कहाँ गयीं? बाणासुर! अब तुम बढ़-चढ़कर बातें क्यों नहीं बनाते हो? देखो, यह मैं युद्धके लिये खड़ा हूँ, तुम मेरे साथ युद्ध करो और मर्द बनो॥ ९५॥ पूर्वकालमें कृतवीर्यका पुत्र अर्जुन सहस्र भुजाओंसे सम्पन्न था, किंतु परशुरामजीने समराङ्गणमें उस महाबली वीरको दो बाँहवाला बना दिया था॥ ९६॥ उसी प्रकार तुम्हारा भी जो यह घमंड है, यह तुम्हारी सहस्र भुजाओंके बल-पराक्रमसे ही उत्पन्न हुआ है, अतः यह मैं युद्धके मुहानेपर तुम्हारा सारा घमंड चूर किये देता हूँ॥ ९७॥ आज मैं अपनी एक बाँहसे जबतक तुम्हारा घमंड दूर न कर दूँ, तबतक इस समय तुम यहीं ठहरे रहो। आज युद्धके मुहानेपर तुम मेरे हाथसे जीवित नहीं छूट सकोगे'॥ ९८॥ तदनन्तर देवासुर-संग्रामके समान उस समराङ्गणमें वह अत्यन्त भयंकर और दुर्लभ युद्ध देखकर देवर्षि नारदजी नृत्य करने लगे॥ ९९॥ महात्मा प्रद्युम्नने वहाँ समस्त रुद्रगणोंको पराजित कर दिया, वे युद्धकी बातचीत करना छोड़कर पुनः देवाधिदेव महादेवजीके पास चले गये॥ १००॥

स तच्चक्रं सहस्रारं नदन् मेघ इवोष्णगे।
जग्राह कृष्णस्त्वरितो बाणान्तकरणं रणे॥ १०१

तेजो यज्ज्योतिषां चैव तेजो वज्राशनेस्तथा।
सुरेशस्य च यत् तेजस्तच्चक्रे पर्यवस्थितम्॥ १०२

त्रेताग्नेश्चैव यत् तेजो यच्च वै ब्रह्मचारिणाम्।
ऋषीणां च ततो ज्ञानं तच्चक्रे समवस्थितम्॥ १०३

पतिव्रतानां यत् तेजः प्राणाश्च मृगपक्षिणाम्।
यच्च चक्रधरेष्वस्ति तच्चक्रे संनिवेशितम्॥ १०४

नागराक्षसयक्षाणां गन्धर्वाप्सरसामपि।
त्रैलोक्यस्य च यत् प्राणं सर्वं चक्रे व्यवस्थितम्॥ १०५

तेजसा तेन संयुक्तं ज्वलन्निव च भास्करः।
वपुषा तेज आदत्ते बाणस्य प्रमुखे स्थितम्॥ १०६

ज्ञात्वातितेजसा चक्रं कृष्णेनाभ्युदितं रणे।
अप्रमेयं ह्यविहतं रुद्राणी चाब्रवीच्छिवम्॥ १०७

अजेयमेतत् त्रैलोक्ये चक्रं कृष्णेन धार्यते।
बाणं त्रायस्व देव त्वं यावच्चक्रं न मुञ्चति॥ १०८

ततस्त्र्यक्षो वचः श्रुत्वा देवीं लम्बामथाब्रवीत्।
गच्छैहि लम्बे शीघ्रं त्वं बाणसंरक्षणं प्रति॥ १०९

ततो योगं समाधाय अदृश्या हिमवत्सुता।
कृष्णस्यैकस्य तद्रूपं दर्शन्ती पार्श्वमागता॥ ११०

चक्रोद्यतकरं दृष्ट्वा भगवन्तं रणाजिरे।
अन्तर्धानमुपागम्य त्यज्य सा वाससी पुनः॥ १११

परित्राणाय बाणस्य विजयाधिष्ठिता ततः।
प्रमुखे वासुदेवस्य दिग्वासाः कोटवी स्थिता॥ ११२

तां दृष्ट्वाथ पुनः प्राप्तां देवीं रुद्रस्य सम्मताम्।
लम्बाद्वितीयां तिष्ठन्तीं कृष्णो वचनमब्रवीत्॥ ११३

भूयः सामर्षताम्राक्षी दिग्वस्त्रावस्थिता रणे।
बाणसंरक्षणपरा हन्मि बाणं न संशयः॥ ११४

तत्पश्चात् श्रीकृष्णने तुरंत ही वर्षाकालके मेघकी भाँति गर्जना करके अपना वह सहस्रार चक्र हाथमें ले लिया, जो रणभूमिमें बाणासुरका अन्त करनेमें समर्थ था॥ १०१॥ उस समय जो ग्रहों और नक्षत्रोंका तेज था, जो वज्र और अशनिका प्रभाव था तथा जो देवेश्वर इन्द्रका तेज था, वह सब उस चक्रमें स्थापित हो गया॥ १०२॥ तीनों अग्नियों और ब्रह्मचारियोंका जो तेज है तथा ऋषियोंका जो ज्ञान है, वह सब उस चक्रमें स्थित हो गया॥ १०३॥ पतिव्रताओंका जो तेज है, पशुओं और पक्षियोंके जो प्राण हैं तथा चक्रधारियोंमें जो बल है, वह सब उस चक्रमें समाविष्ट हो गया॥ १०४॥ नाग, राक्षस, यक्ष, गन्धर्व और अप्सराओंकी तथा त्रिलोकीकी जो प्राणशक्ति है, वह सब उस चक्रमें प्रतिष्ठित हुई॥ १०५॥ उस तेजसे संयुक्त होकर वह चक्र जाज्वल्यमान सूर्यके समान उद्दीप्त हो उठा और सामने स्थित होकर अपने शरीरसे बाणासुरके तेजको ग्रहण करने लगा॥ १०६॥ रणक्षेत्रमें अति तेजस्वी श्रीकृष्णने अप्रमेय एवं अमोघ चक्र उठा लिया है, यह जानकर रुद्राणीने शिवजीसे कहा— ॥ १०७॥ 'देव! श्रीकृष्ण जिस चक्रको धारण करते हैं, वह तीनों लोकोंमें अजेय है, अतः जबतक वे उस चक्रको छोड़ नहीं देते हैं, तबतक ही यत्न करके बाणासुरकी रक्षा कीजिये'॥ १०८॥ पार्वतीजीका यह वचन सुनकर भगवान् त्रिलोचनने देवी लम्बासे कहा—'लम्बे! तुम बाणासुरकी रक्षाके लिये शीघ्र जाओ'॥ १०९॥ तब हिमवान्की पुत्री उमा योगका आश्रय ले अदृश्य हो श्रीकृष्णके पास गयीं, वे अपने उस स्वरूपका दर्शन एकमात्र श्रीकृष्णको ही करा रही थीं॥ ११०॥ समराङ्गणमें भगवान् श्रीकृष्णको हाथमें चक्र उठाये देख वे पुनः अदृश्य हो अपने वस्त्रका परित्याग करके बाणासुरकी रक्षाके लिये विजयाधिष्ठित हो कोटवी या लम्बाके रूपमें वसुदेवनन्दन श्रीकृष्णके समक्ष नंगी खड़ी हो गयीं॥ १११-११२॥ रुद्रप्रिया पार्वतीदेवीको पुनः लम्बाके साथ आकर सामने खड़ी हुई देख श्रीकृष्णने इस प्रकार कहा—'फिर तुम अमर्षसे लाल आँखें किये रणभूमिमें आकर नंगी खड़ी हो गयीं और बाणासुरकी रक्षाके प्रयत्नमें लग गयीं, परंतु मैं बाणासुरको मारूँगा, इसमें संशय नहीं है'॥ ११३-११४॥

एवमुक्ता तु कृष्णेन भूयो देव्यब्रवीदिदम्।
जाने त्वां सर्वभूतानां स्त्रष्टारं पुरुषोत्तमम्।
महाभागं महादेवमनन्तं नीलमव्ययम्॥ ११५

पद्मनाभं हृषीकेशं लोकानामादिसम्भवम्।
नार्हसे देव हन्तुं वै बाणमप्रतिमं रणे॥ ११६

प्रयच्छ ह्यभयं बाणे जीवपुत्रीत्वमेव च।
मया दत्तवरो ह्येष भूयश्च परिरक्ष्यते॥ ११७

न मे मिथ्या समुद्योगं कर्तुमर्हसि माधव।
एवमुक्ते तु वचने देव्या परपुरञ्जयः॥ ११८

कृष्णः प्रभाषते वाक्यं शृणु सत्यं तु भामिनि।
बाणो बाहुसहस्त्रेण नर्दते दर्पमाश्रितः॥ ११९

एतेषां छेदनं त्वद्य कर्तव्यं नात्र संशयः।
द्विबाहुना च बाणेन जीवपुत्री भविष्यसि॥ १२०

आसुरं दर्पमाश्रित्य न च मां संश्रयिष्यति।
एवमुक्ते तु वचने कृष्णेनाक्लिष्टकर्मणा॥ १२१

प्रोवाच देवी बाणोऽयं देवदत्तो भवेदिति।
अथ तां कार्तिकेयस्य मातरं सोऽभिभाष्य वै।
ततः क्रुद्धो महाबाहुः कृष्णः प्रवदतां वरः॥ १२२

प्रोवाच बाणं समरे वदतां प्रवरः प्रभुः।
युध्यतां युध्यतां संख्ये भवतां कोटवी स्थिता॥ १२३

अशक्तानामिव रणे धिग् बाण तव पौरुषम्।
एवमुक्त्वा ततः कृष्णस्तच्चक्रं परमात्मवान्॥ १२४

निमीलिताक्षो व्यसृजद् बाणं प्रति महाबलः।
क्षेपणाद् यस्य मुह्यन्ति लोकाः सस्थाणुजङ्गमाः॥ १२५

श्रीकृष्णके ऐसा कहनेपर देवीने फिर इस प्रकार कहा—'प्रभो! मैं आपको जानती हूँ, आप समस्त प्राणियोंके स्त्रष्टा, पुरुषोत्तम, महान् सौभाग्यशाली, महादेव, अनन्त, श्यामवर्णवाले तथा अविनाशी पुरुष हैं, आपकी नाभिसे कमल प्रकट हुआ है, आप समस्त इन्द्रियोंके नियन्ता हैं तथा सम्पूर्ण जगत्के आदि कारण हैं। देव! यह बाणासुर रणभूमिमें अप्रतिम वीरता दिखानेवाला है, अतः आपको इसका वध नहीं करना चाहिये॥ ११५-११६॥ भगवन्! बाणासुरको अभयदान दीजिये और मुझे जीवित पुत्रकी जननी बनाइये। मैंने इसे वर दे रखा है, इसीलिये पुनः मेरे द्वारा इसकी रक्षा की जा रही है। माधव! आप मेरे उद्योगको मिथ्या न कीजिये'। देवीके ऐसी बात कहनेपर शत्रुनगरीपर विजय पानेवाले श्रीकृष्ण इस प्रकार बोले—'भामिनि! तुम मेरी सच्ची बात सुनो। बाणासुर अपनी सहस्त्र भुजाओंके कारण घमंडमें भरकर गर्जता रहता है, अतः आज इन भुजाओंका छेदन करना कर्तव्य है, इसमें संशय नहीं है। देवि! तुम दो बाँहवाले बाणासुरके द्वारा ही जीवित पुत्रवाली बनोगी। यह बाणासुर आसुर अभिमानका आश्रय लेनेके कारण कभी मेरी शरणमें नहीं आयेगा'। अनायास ही महान् कर्म करनेवाले श्रीकृष्णके इस तरह कहनेपर देवी बोली—'प्रभो! यह बाणासुर महादेवजीका दिया हुआ मेरा दत्तक पुत्र हो'। कार्तिकेयकी मातासे इस प्रकार बातचीत करके वक्ताओंमें श्रेष्ठ महाबाहु भगवान् श्रीकृष्ण समराङ्गणमें कुपित हो बाणासुरसे यों बोले—'बाण! संग्रामभूमिमें युद्ध करो! युद्ध करो!! असमर्थ पुरुषोंकी भाँति तुम्हारी रक्षाके लिये माता कोटवी इस रणक्षेत्रमें खड़ी हैं, तुम्हारे पुरुषार्थको धिक्कार है'। ऐसा कहकर अपने मनको वशमें रखनेवाले महाबली श्रीकृष्णने बाणासुरपर वह उत्तम चक्र छोड़ दिया; उस समय (नग्न खड़ी हुई देवीपर दृष्टि न पड़े, इसके लिये) उन्होंने अपने दोनों नेत्र बंद कर लिये थे। महासमरमें जिसके प्रयोगसे चराचर प्राणियोंसहित समस्त लोक मोहित हो जाते हैं

क्रव्यादानि च भूतानि तृप्तिं यान्ति महामृधे।
तमप्रतिमकर्माणं समानं सूर्यवर्चसा॥ १२६

चक्रमुद्यम्य समरे कोपदीप्तो गदाधरः।
स मुष्णन् दानवं तेजः समरे स्वेन तेजसा॥ १२७

चिच्छेद बाहूंश्चक्रेण श्रीधरः परमौजसा।
अलातचक्रवत् तूर्णं भ्राम्यमाणं रणाजिरे॥ १२८

क्षिप्तं तु वासुदेवेन बाणस्य रणमूर्द्धनि।
विष्णुचक्रं भ्रमत्याशु शैघ्र्याद् रूपं न दृश्यते॥ १२९

तस्य बाहुसहस्रस्य पर्यायेण पुनः पुनः।
बाणस्य च्छेदनं चक्रे तच्चक्रं रणमूर्द्धनि॥ १३०

कृत्वा द्विबाहुं तं बाणं छिन्नशाखमिव द्रुमम्।
पुनः कराग्रे कृष्णस्य चक्रं प्राप्तं सुदर्शनम्॥ १३१

वैशम्पायन उवाच

कृतकृत्ये तु सम्प्राप्ते चक्रे दैत्यनिपातने।
स्रवता तेन कायेन शोणितौघपरिप्लुतः॥ १३२

अभवत् पर्वताकारश्छिन्नबाहुर्महासुरः।
असृङ्मत्तश्च विविधान् नादान् मुञ्चन् घनो यथा॥ १३३

तस्य नादेन महता केशवो रिपुसूदनः।
चक्रं भूयः क्षेप्तुकामो बाणनाशार्थमुद्यतः।
तमुपेत्य महादेवः कुमारसहितोऽब्रवीत्॥ १३४

ईश्वर उवाच

कृष्ण कृष्ण महाबाहो जाने त्वां पुरुषोत्तमम्।
मधुकैटभहन्तारं देवदेवं सनातनम्॥ १३५

लोकानां त्वं गतिर्देव त्वत्प्रसूतमिदं जगत्।
अजेयस्त्वं त्रिभिर्लोकैः ससुरासुरपन्नगैः॥ १३६

तस्मात् संहर दिव्यं त्वमिदं चक्रं समुद्यतम्।
अनिवार्यमसंहार्यं रणे शत्रुभयंकरम्॥ १३७

बाणस्यास्याभयं दत्तं मया केशिनिषूदन।
तन्मे न स्याद् वृथा वाक्यमतस्त्वां क्षामयाम्यहम्॥ १३८

और मांसभक्षी प्राणियोंको तृप्ति प्राप्त होती है, उस अनुपम कर्म करनेवाले सूर्यतुल्य तेजस्वी चक्रको उठाकर क्रोधसे बढ़े हुए तेजवाले गदाधारी भगवान् श्रीधरने समराङ्गणमें अपने उत्कृष्ट तेज और बलसे दानव बाणासुरके तेजका अपहरण करते हुए उसकी भुजाओंको चक्रसे काट डाला। रणक्षेत्रमें युद्धके मुहानेपर बाणासुरको लक्ष्य करके भगवान् वासुदेवके द्वारा चलाया गया वह चक्र वहाँ तुरंत ही अलातचक्रके समान घूमने लगा। वह इतनी शीघ्रतासे घूम रहा था कि उसका रूप दिखायी नहीं देता था॥ ११७—१२९॥ संग्रामके शिरोभागमें उस चक्रने बारी-बारीसे बाणासुरकी सहस्र भुजाओंको काटना आरम्भ किया॥ १३०॥ कटी हुई शाखावाले वृक्षकी भाँति बाणासुरको दो ही बाँहोंसे युक्त बनाकर वह सुदर्शन चक्र पुनः श्रीकृष्णके कराग्रभागमें आ पहुँचा॥ १३१॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! दैत्योंको मार गिरानेवाला वह चक्र जब अपना काम पूरा करके श्रीकृष्णके हाथमें आ गया, तब बाणासुरके उस शरीरसे रक्तकी धारा बहने लगी, कटी हुई बाँहवाला वह महान् असुर खूनसे लथपथ होकर पर्वताकार हो गया और रक्तसे मतवाला हो मेघके समान नाना प्रकारसे गर्जना करने लगा॥ १३२-१३३॥ उसके उस महान् सिंहनादसे कुपित हुए शत्रुसूदन केशव बाणासुरका विनाश कर डालनेके लिये उद्यत हो गये। वे पुनः अपना चक्र छोड़ना ही चाहते थे कि कुमार कार्तिकेयसहित महादेवजी उनके पास आ गये और इस प्रकार बोले॥ १३४॥

महादेवजी बोले—कृष्ण! कृष्ण!! महाबाहो! मैं आपको जानता हूँ, आप मधु और कैटभका वध करनेवाले सनातन देवाधिदेव पुरुषोत्तम श्रीहरि हैं॥ १३५॥ देव! आप सम्पूर्ण लोकोंकी गति हैं; आपसे ही इस जगत्की उत्पत्ति हुई है; देवता, असुर तथा नागोंसहित तीनों लोकोंके लिये आप अजेय हैं॥ १३६॥ अतः आप ऊपर उठे हुए अपने इस दिव्य चक्रको पुनः समेट लीजिये। रणभूमिमें इसका निवारण अथवा संहार करनेवाला दूसरा कोई नहीं है, यह शत्रुओंके लिये अत्यन्त भयंकर है॥ १३७॥ केशिनिषूदन! मैंने इस बाणासुरको अभयदान दे रखा है; मेरा वह वचन व्यर्थ न हो जाय इसके लिये मैं आपसे क्षमा करनेकी प्रार्थना करता हूँ॥ १३८॥

श्रीकृष्ण उवाच

जीवतां देव बाणोऽयमेतच्चक्रं निवर्तितम्।
मान्यस्त्वं देवदेवानामसुराणां च सर्वशः॥ १३९

नमस्तेऽस्तु गमिष्यामि यत्कार्यं तन्महेश्वर।
न तावत् क्रियते तस्मान्मामनुज्ञातुमर्हसि॥ १४०

एवमुक्त्वा महादेवं कृष्णस्तूर्णं महामनाः।
जगाम तत्र यत्रास्ते प्राद्युम्निः सायकैश्चितः॥ १४१

गते कृष्णे ततो नन्दी बाणमाह वचः शुभम्।
गच्छ बाण प्रसन्नस्य देवदेवस्य चाग्रतः॥ १४२

तच्छ्रुत्वा नन्दिवाक्यं तु बाणोऽगच्छत शीघ्रगः।
छिन्नबाहुं ततो बाणं दृष्ट्वा नन्दी प्रतापवान्॥ १४३

अपवाह्य रथेनैनं यतो देवस्ततो ययौ।
ततो नन्दी पुनर्बाणं प्रागुवाचोत्तरं वचः॥ १४४

बाण बाण प्रनृत्यस्व श्रेयस्तव भविष्यति।
एष देवो महादेवः प्रसादसुमुखस्तव॥ १४५

शोणितौघप्लुतैर्गात्रैर्नन्दिवाक्यप्रचोदितः।
जीवितार्थी ततो बाणः प्रमुखे शंकरस्य वै॥ १४६

अनृत्यद् भयसंविग्नो दानवः स विचेतनः।
तं दृष्ट्वा च प्रनृत्यन्तं भयोद्विग्नं पुनः पुनः॥ १४७

नन्दिवाक्यप्रजवितं भक्तानुग्रहकृद् भवः।
करुणावशमापन्नो महादेवोऽब्रवीद् वचः॥ १४८

ईश्वर उवाच

वरं वृणीष्व बाण त्वं मनसा यदभीप्ससि।
प्रसादसुमुखस्तेऽहं प्रियोऽसि मम दानव॥ १४९

बाण उवाच

अजरश्चामरश्चैव भवेयं सततं विभो।
एष मे प्रथमो देव वरोऽस्तु यदि मन्यसे॥ १५०

महादेव उवाच

तुल्योऽसि दैवतैर्बाण न मृत्युस्तव विद्यते।
अथापरं वृणीष्वाद्य अनुग्राह्योऽसि मे सदा॥ १५१

श्रीकृष्ण बोले—देव! यह चक्र मैंने लौटा लिया, अब यह बाणासुर चिरजीवी हो; आप देवताओंके भी देवता तथा सम्पूर्ण असुरोंके लिये माननीय हैं॥ १३९॥ महेश्वर! आपको नमस्कार है। अब मैं लौट जाऊँगा; बाणासुरका वधरूपी जो कार्य मुझे करना था, वह आपके अनुरोधसे अब मेरे द्वारा नहीं किया जा रहा है; इसलिये आप मुझे लौटनेकी आज्ञा प्रदान करें॥ १४०॥ महादेवजीसे ऐसा कहकर महामनस्वी भगवान् श्रीकृष्ण तुरंत उस स्थानपर गये, जहाँ प्रद्युम्नकुमार अनिरुद्ध सायकोंसे बँधे हुए थे॥ १४१॥ श्रीकृष्णके चले जानेपर नन्दीने बाणासुरसे यह मङ्गलमय बात कही—'बाण! तुम प्रसन्न हुए देवाधिदेव महादेवजीके सामने चलो'॥ १४२॥ नन्दीका वह वचन सुनकर बाणासुर शीघ्रतापूर्वक चल पड़ा। उसकी भुजाएँ कटी हुई देख प्रतापी नन्दी उसे रथपर बिठाकर जहाँ महादेवजी थे, वहाँ ले गये। तत्पश्चात् नन्दीने पुनः बाणासुरसे पहले ही यह उत्कृष्ट बात कही—'बाण! बाण!! तुम भगवान् शङ्करके सामने नृत्य करो, इससे तुम्हारा कल्याण होगा; यह भगवान् महादेवजी तुम्हारे ऊपर कृपा करनेके लिये प्रसन्नमुख हो रहे हैं'॥ १४३—१४५॥ नन्दीके वाक्यसे प्रेरित हो जीवनकी इच्छा रखनेवाला बाणासुर भयसे व्याकुल और अचेत होकर रक्तसे लथपथ हुए शरीरसे भगवान् शङ्करके सम्मुख नृत्य करने लगा। नन्दीके कहनेसे भयके कारण उद्विग्न होकर वेगपूर्वक बारम्बार नृत्य करते हुए उस दानवकी ओर देखकर भक्तवत्सल भगवान् शिव करुणाके वशीभूत हो इस प्रकार बोले॥ १४६—१४८॥

श्रीमहादेवजीने कहा—बाण! तुम अपने मनसे जो चाहते हो, वह वर मुझसे माँगो। मैं तुमपर कृपा करनेके लिये प्रसन्न हुआ हूँ। दानव! तुम मेरे प्रिय हो॥ १४९॥

बाणासुर बोला—सर्वव्यापी देव! मैं सदा अजर और अमर रहूँ, यदि आप स्वीकार करें तो मेरे लिये यही प्रथम वर हो॥ १५०॥

श्रीमहादेवजीने कहा—बाणासुर! तुम देवताओंके तुल्य हो, तुम्हारे लिये मृत्यु नहीं है। अब कोई दूसरा वर माँगो; क्योंकि तुम सदा मेरे कृपापात्र हो॥ १५१॥

बाण उवाच

यथाहं शोणितैर्दिग्धो भृशार्तो व्रणपीडितः।
भक्तानां नृत्यतां देव पुत्रजन्म भवेद् भव॥ १५२

श्रीहर उवाच

निराहाराः क्षमावन्तः सत्यार्जवसमाहिताः।
मद्भक्ता येऽपि नृत्यन्ति तेषामेवं भविष्यति॥ १५३
तृतीयं त्वमथो बाण वरं वर मनोगतम्।
तद् विधास्यामि ते पुत्र सफलोऽस्तु भवानिह॥ १५४

बाण उवाच

चक्रताडनजा घोरा रुजा तीव्रा हि मेऽनघ।
वरेणासौ तृतीयेन शान्तिं गच्छतु मे भव॥ १५५

श्रीरुद्र उवाच

एवं भवतु भद्रं ते न रुजा प्रभविष्यति।
अक्षतं तव गात्रं तु स्वस्थावस्थं भविष्यति॥ १५६
चतुर्थं ते वरं दद्मि वृणीष्व यदि काङ्क्षसि।
न तेऽहं विमुखस्तात प्रसादसुमुखो ह्यहम्॥ १५७

बाण उवाच

प्रमाथगणवंश्यस्य प्रथमः स्यामहं विभो।
महाकाल इति ख्यातिं गच्छेयं शाश्वतीः समाः॥ १५८

वैशम्पायन उवाच

एवं भविष्यतीत्याह बाणं देवो महेश्वरः।
दिव्यरूपोऽक्षतो गात्रैर्नीरुजस्तु ममाश्रयात्॥ १५९
ममातिसर्गाद् बाण त्वं भव चैवाकुतोभयः।
भूयस्ते पञ्चमं दद्मि प्रख्यातबलपौरुष।
पुनर्वरय भद्रं ते यत् ते मनसि वर्तते॥ १६०

बाण उवाच

वैरूप्यमङ्गजं यन्मे मा भूद् देव कदाचन।
द्विबाहुरपि मे देहो न विरूपो भवेद् भव॥ १६१

श्रीहर उवाच

भविता सर्वमेतत् ते यथेच्छसि महासुर।
भवत्येवं न चादेयं भक्तानां विद्यते मम॥ १६२

बाणासुर बोला—भगवन्! मैं अत्यन्त आर्त, घावसे पीड़ित और खूनसे लथपथ हूँ। तथापि जिस प्रकार नृत्य कर रहा हूँ, इस तरह नृत्य करनेवाले भक्तोंके यहाँ पुत्रजन्मका उत्सव हो॥ १५२॥

श्रीमहादेवजीने कहा—जो मेरे भक्तजन निराहार, क्षमाशील तथा सत्य और सरलतासे संयुक्त रहकर एकाग्रचित्त हो मेरी प्रसन्नताके लिये नृत्य करेंगे, उन्हें ऐसा ही फल प्राप्त होगा॥ १५३॥ बेटा बाणासुर! अब तुम कोई तीसरा मनोवाञ्छित वर माँगो, मैं उसे पूर्ण करूँगा; मेरी कृपासे तुम यहाँ सफलमनोरथ होओ॥ १५४॥

बाणासुर बोला—निष्पाप महादेव! चक्रके आघातसे मुझे बड़ी भयंकर एवं तीव्र वेदना हो रही है, आपके दिये हुए तीसरे वरसे मेरी वह पीड़ा शान्त हो जाय॥ १५५॥

श्रीमहादेवजी बोले—वत्स! ऐसा ही हो। तुम्हारा कल्याण हो। अब तुम्हें पीड़ा नहीं होगी। तुम्हारा शरीर घावसे रहित और स्वस्थ हो जायगा॥ १५६॥ तात! अब मैं तुम्हें चौथा वर देता हूँ; यदि चाहो तो माँग लो। मैं तुमसे विमुख नहीं हूँ। तुमपर कृपा करनेके लिये सदा ही प्रसन्नमुख हूँ॥ १५७॥

बाणासुर बोला—प्रभो! मैं आपके प्रमथगणोंके समुदायका प्रमुख व्यक्ति होऊँ और महाकालके नामसे मेरी नित्य निरन्तर ख्याति बनी रहे॥ १५८॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन्! तब महेश्वरदेवने बाणासुरसे कहा—'बाण! ऐसा ही होगा, तुम मेरा आश्रय ग्रहण करनेके कारण शरीरसे अक्षत और नीरोग रहोगे। तुम्हारा रूप दिव्य हो जायगा॥ १५९॥ 'विख्यात बल और पौरुषसे युक्त बाणासुर! तुम मेरे दिये हुए वरके प्रभावसे निर्भय हो जाओ; तुम्हें कहींसे कोई भय न रहे। अब मैं तुम्हें पुनः पाँचवाँ वर देता हूँ, तुम्हारा कल्याण हो, तुम्हारे मनमें जैसी इच्छा हो, उसके अनुसार फिर कोई वर माँगो'॥ १६०॥

बाणासुर बोला—देव! शङ्कर! मेरे शरीरमें कभी कुरूपता न रहे; दो बाँहोंसे युक्त होनेपर भी मेरी देह कुरूप न प्रतीत हो॥ १६१॥

श्रीमहादेवजी बोले—महासुर! तुम जैसा चाहते हो, यह सब तुम्हारे लिये सुलभ होगा। मेरे पास भक्तोंके लिये कुछ भी अदेय नहीं है॥ १६२॥

वैशम्पायन उवाच

ततोऽब्रवीन्महादेवो बाणं स्थितमथान्तिके।
एवं भविष्यते सर्वं यत् त्वया समुदाहृतम्॥ १६३

एतावदुक्त्वा भगवांस्त्रिनेत्रो गणसंवृतः।
पश्यतां सर्वभूतानां तत्रैवान्तरधीयत॥ १६४

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! तब महादेवजीने अपने पास खड़े हुए बाणासुरसे कहा—'वत्स! तुमने जो कुछ कहा या माँगा है, वह सब इसी रूपमें पूर्ण होगा'॥ १६३॥ ऐसा कहकर अपने गणोंसे घिरे हुए त्रिनेत्रधारी भगवान् शिव समस्त प्राणियोंके देखते-देखते वहीं अन्तर्धान हो गये॥ १६४॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे विष्णुपर्वणि उषाहरणे बाणासुरवरप्रदाने षड्विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः॥ १२६॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत विष्णुपर्वमें उषाहरणके प्रसंगमें बाणासुरको भगवान् शिवका वरदानविषयक एक सौ छब्बीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १२६॥

सप्तविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

अनिरुद्धका नागपाशसे छुटकारा और उनके द्वारा श्रीकृष्ण आदिकी वन्दना, नारदजीके कहनेसे उनका वीर्य-विवाह, उषाकी विदाई, सबका द्वारकाको प्रस्थान, मार्गमें श्रीकृष्णद्वारा वरुण देवतापर विजय, वरुणद्वारा श्रीकृष्णकी स्तुति और पूजा, श्रीकृष्णके आगमनसे द्वारकावासियोंका हर्ष, भगवान्‌के आदेशसे पुरवासियोंद्वारा देवताओंकी वन्दना, इन्द्रद्वारा श्रीकृष्णकी प्रशंसा और सब देवताओं तथा ऋषियों आदिका अपने-अपने स्थानको जाना

वैशम्पायन उवाच

एवं वरान् बहून् प्राप्य बाणः प्रीतमनाऽभवत्।
जगाम सह रुद्रेण महाकालत्वमागतः॥ १

वासुदेवोऽपि बहुधा नारदं पर्यपृच्छत।
क्वानिरुद्धोऽस्ति भगवन् संयतो नागबन्धनैः॥ २

श्रोतुमिच्छामि तत्त्वेन स्नेहक्लिन्नं हि मे मनः।
अनिरुद्धे हृते वीरे क्षुभिता द्वारका पुरी॥ ३

शीघ्रं तं मोक्षयिष्यामो यदर्थं वयमागताः।
अद्य तं नष्टशत्रुं वै द्रष्टुमिच्छामहे वयम्॥ ४

स प्रदेशस्तु भगवन् विदितस्तव सुव्रत।
एवमुक्तस्तु कृष्णेन नारदः प्रत्यभाषत॥ ५

कन्यापुरे कुमारोऽसौ बद्धो नागैश्च माधव।
एतस्मिन्नन्तरे शीघ्रं चित्रलेखा ह्युपस्थिता॥ ६

बाणस्योत्तमशर्वस्य दैत्येन्द्रस्य महात्मनः।
इदमन्तःपुरं देव प्रविशस्व यथासुखम्॥ ७

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! इस प्रकार बहुत-से वर पाकर बाणासुरका मन प्रसन्न हो गया। वह महाकालत्वको प्राप्त होकर भगवान् शिवके साथ चला गया॥ १॥ इधर भगवान् श्रीकृष्णने नारदजीसे बारम्बार पूछा—'भगवन्! अनिरुद्ध कहाँ नागपाशमें बँधे हुए हैं, मैं इसे ठीक-ठीक सुनना चाहता हूँ। मेरा हृदय स्नेहसे आकुल हो रहा है। वीर अनिरुद्धका अपहरण होनेसे सारी द्वारकापुरी क्षुब्ध हो उठी है॥ २-३॥ अतः हमलोग शीघ्र उन्हें बन्धनसे छुड़ायेंगे, जिसके लिये कि हमारा यहाँ आगमन हुआ है। अनिरुद्धका शत्रु नष्ट हो गया, अब हम उन्हें देखना और उनसे मिलना चाहते हैं। उत्तम व्रतका पालन करनेवाले भगवान् नारद! जहाँ अनिरुद्ध हैं, वह स्थान आपको विदित है'। श्रीकृष्णके इस प्रकार पूछनेपर नारदजीने उत्तर दिया—'माधव! कुमार अनिरुद्ध कन्याके अन्तःपुरमें नागपाशसे बँधे हुए हैं'। इसी बीचमें चित्रलेखा शीघ्रतापूर्वक वहाँ उपस्थित हुई और बोली—'देव! जिसने भगवान् शङ्करको ही सर्वोपरि मानकर उनकी आराधना की है, उस दैत्यराज महात्मा बाणासुरका अन्तःपुर यही है। आप इसमें सुखपूर्वक प्रवेश कीजिये'॥ ४—७॥

ततः प्रविष्टास्ते सर्वे ह्यनिरुद्धस्य मोक्षणे।
बलः सुपर्णः कृष्णस्तु प्रद्युम्नो नारदस्तथा॥ ८
ततो दृष्ट्वैव गरुडं येऽनिरुद्धशरीरगाः।
शररूपा महासर्पा वेष्टयित्वा तनुं स्थिताः॥ ९
ते सर्वे सहसा देहात् तस्य निःसृत्य भोगिनः।
क्षितिं समभिवर्तित्वा प्रकृत्यावस्थिताः शराः॥ १०
दृष्टः स्पृष्टश्च कृष्णेन सोऽनिरुद्धो महायशाः।
स्थितः प्रीतमना भूत्वा प्राञ्जलिर्वाक्यमब्रवीत्॥ ११

अनिरुद्ध उवाच

देवदेव सदा युद्धे जेता त्वमसि केशव।
न शक्तः प्रमुखे स्थातुं साक्षादपि शतक्रतुः॥ १२
ततो महाबलं देवं बलभद्रं यशस्विनम्।
अभिवादयते हृष्टः सोऽनिरुद्धो महामनाः॥ १३
माधवं च महात्मानमभिवाद्य कृताञ्जलिः।
खगोत्तमं महावीर्यं सुपर्णमभिवाद्य च॥ १४
ततो मकरकेतुं च चित्रबाणधरं प्रभुम्।
पितरं सोऽभ्युपागम्य प्रद्युम्नमभिवादयत्॥ १५
सखीगणवृता चैव सा चोषा भवने स्थिता।
बलं चातिबलं चैव वासुदेवं सुदुर्जयम्॥ १६
असंख्यातगतिं चैव सुपर्णमभिवाद्य च।
पुष्पबाणधरं चैव लज्जमानाभ्यवादयत्॥ १७
ततः शक्रस्य वचनान्नारदः परमद्युतिः।
वासुदेवसमीपं स प्रहसन् पुनरागतः॥ १८
वर्द्धापयति तं देवं गोविन्दं शत्रुसूदनम्।
दिष्ट्या वर्द्धसि गोविन्द अनिरुद्धसमागमात्॥ १९
ततोऽनिरुद्धसहिता नारदं प्रणताः स्थिताः।
आशीर्भिर्वर्द्धयित्वा च देवर्षिः कृष्णमब्रवीत्॥ २०
अनिरुद्धस्य वीर्याख्यो विवाहः क्रियतां विभो।
जम्बूलमालिकां द्रष्टुं श्रद्धा हि मम जायते॥ २१

तब बलराम, गरुड, श्रीकृष्ण, प्रद्युम्न और नारद—ये सब लोग अनिरुद्धको बन्धनसे मुक्त करनेके लिये बाणासुरके अन्तःपुरमें प्रविष्ट हुए॥ ८॥ फिर तो गरुडको देखते ही अनिरुद्धके शरीरमें जो बाणरूपी महासर्प उनके सारे अङ्गोंको आवेष्टित करके स्थित थे, वे सब सहसा उनकी देहसे निकलकर पृथ्वीपर गिर पड़े और साधारण बाणोंके रूपमें परिणत हो गये॥ ९-१०॥ श्रीकृष्णका दर्शन और स्पर्श पाकर महायशस्वी अनिरुद्ध मन-ही-मन बड़े प्रसन्न हुए और खड़े हो हाथ जोड़कर इस प्रकार बोले॥ ११॥

अनिरुद्धने कहा—देवाधिदेव केशव! आप सदा ही युद्धमें विजयी हैं। प्रभो! आपके सामने साक्षात् इन्द्र भी ठहर नहीं सकते॥ १२॥ तदनन्तर महामनस्वी अनिरुद्धने बड़े हर्षके साथ महान् बलशाली यशस्वी बलभद्रदेवको प्रणाम किया॥ १३॥ फिर हाथ जोड़कर महात्मा माधव तथा महापराक्रमी पक्षिप्रवर गरुड़का पृथक्-पृथक् अभिवादन करके उन्होंने अपने पिता विचित्र बाणधारी सर्वसमर्थ मकरध्वज प्रद्युम्नके पास जाकर उन्हें भी प्रणाम किया॥ १४-१५॥ तत्पश्चात् उस भवनमें रहनेवाली सखियोंसहित उषाने आकर अत्यन्त बलशाली बलराम, परम दुर्जय वासुदेव और अप्रमेय गतिशाली गरुड़को प्रणाम करके पुष्पबाणधारी प्रद्युम्नको भी लज्जापूर्वक नमस्कार किया॥ १६-१७॥ तब इन्द्रके कहनेसे परमतेजस्वी नारदजी पुनः भगवान् श्रीकृष्णके समीप हँसते हुए आये॥ १८॥ वे शत्रुसूदन गोविन्ददेवको बधाई देते हुए बोले—'गोविन्द! बड़े सौभाग्यकी बात है कि आज आप अनिरुद्धसे मिलकर अभ्युदयको प्राप्त हुए हैं'॥ १९॥ तब अनिरुद्धसहित वे सब लोग नारदजीके चरणोंमें प्रणाम करके खड़े हो गये; तब देवर्षिने आशीर्वादसे उन सबके अभ्युदयकी कामना करके श्रीकृष्णसे कहा—॥ २०॥ 'प्रभो! आप यहाँ अनिरुद्धका 'वीर्य[१]' नामक विवाह कीजिये; मुझे जम्बूलमालिका[२] देखने और सुननेके लिये बड़ी श्रद्धा (इच्छा) हो रही है'॥ २१॥

१. बल-पराक्रमद्वारा जीती गयी कन्याका विवाह 'वीर्य-विवाह' कहलाता है।

२. वर-वधूके विवाहके समय कन्यापक्षकी स्त्रियोंद्वारा वरपक्षकी स्त्रियोंको जो प्रेमपूर्ण परिहासके रूपमें गाली दी जाती है, उसका नाम जम्बूल है। उसकी परम्पराको जम्बूलमालिका कहा गया है। (नीलकण्ठ)

ततः प्रहसिताः सर्वे नारदस्य वचःश्रवात्।
कृष्णः प्रोवाच भगवन् क्रियतामाशु मा चिरम्॥ २२

एतस्मिन्नन्तरे तात कुम्भाण्डः समुपस्थितः।
वैवाहिकांस्तु सम्भारान् गृह्य कृष्णं नमस्य तु॥ २३

कुम्भाण्ड उवाच

कृष्ण कृष्ण महाबाहो भव त्वमभयप्रदः।
शरणागतोऽस्मि देवेश प्रसीदैषोऽञ्जलिस्तव॥ २४

नारदस्य वचः श्रुत्वा सर्वं प्रागेव चाच्युतः।
अभयं यच्छते तस्मै कुम्भाण्डाय महात्मने॥ २५

कुम्भाण्ड मन्त्रिणां श्रेष्ठ प्रीतोऽस्मि तव सुव्रत।
सुकृतं ते विजानामि राष्ट्रिकोऽस्तु भवानिह॥ २६

सज्ञातिपक्षः सुसुखी निर्वृतोऽस्तु भवानिह।
राज्यं च ते मया दत्तं चिरं जीव ममाश्रयात्॥ २७

एवं दत्त्वा राज्यमस्मै कुम्भाण्डाय महात्मने।
विवाहमकरोत् तस्यानिरुद्धस्य जनार्दनः।
ततस्तु भगवान् वह्निस्तत्र स्वयमुपस्थितः॥ २८

स विवाहोऽनिरुद्धस्य नक्षत्रे च शुभेऽभवत्।
ततोऽप्सरोगणश्चैव कौतुकं कर्तुमुद्यतः॥ २९

स्नातस्त्वलङ्कृतस्तत्र सोऽनिरुद्धः स्वभार्यया।
ततः स्निग्धैः शुभैर्वाक्यैर्गन्धर्वाश्च जगुस्तदा॥ ३०

नृत्यन्त्यप्सरसश्चैव विवाहमुपशोभयन्।
ततो निर्वर्तयित्वा तु विवाहं शत्रुसूदनः॥ ३१

अनिरुद्धस्य सुप्रज्ञः सर्वैर्देवगणैर्वृतः।
आमन्त्र्य वरदं तत्र रुद्रं देवनमस्कृतम्॥ ३२

चकार गमने बुद्धिं कृष्णः परपुरञ्जयः।
द्वारकाभिमुखं कृष्णं ज्ञात्वा शत्रुनिषूदनम्॥ ३३

कुम्भाण्डो वचनं प्राह प्राञ्जलिर्मधुसूदनम्।
बाणस्य गावस्तिष्ठन्ति हस्ते तु वरुणस्य वै॥ ३४

यासाममृतकल्पं वै क्षीरं क्षरति माधव।
तत् पीत्वातिबलश्चैव नरो भवति दुर्जयः॥ ३५

नारदजीकी यह बात सुनकर सब लोग हँस पड़े। फिर श्रीकृष्णने कहा—'भगवन्! शीघ्र ही अनिरुद्ध और उषाका विवाह कीजिये; विलम्ब न हो'॥ २२॥ तात! इसी बीचमें वैवाहिक सामग्रीका संग्रह करके मन्त्री कुम्भाण्ड उपस्थित हुए और श्रीकृष्णको नमस्कार करके बोले॥ २३॥

कुम्भाण्डने कहा—कृष्ण! कृष्ण! महाबाहो! आप मुझे अभय प्रदान करें। देवेश्वर! मैं आपकी शरणमें आया हूँ, प्रसन्न होइये! आपके सामने ये मेरे दोनों हाथ जुड़े हुए हैं॥ २४॥ भगवान् श्रीकृष्ण नारदजीसे कुम्भाण्डके विषयमें सब कुछ सुन चुके थे; उनकी उस बातका स्मरण करके वे महात्मा कुम्भाण्डको अभय देते हुए बोले—'उत्तम व्रतका पालन करनेवाले मन्त्रिप्रवर कुम्भाण्ड! तुमने जो सत्कर्म किया है, उसे मैं जानता हूँ। अब तुम्हीं यहाँके राष्ट्रपति बनो और अपने बन्धु-बान्धवोंसहित यहाँ परम सुखी तथा संतुष्ट रहो। मैंने तुम्हें यह राज्य अर्पित कर दिया, अब तुम मेरा आश्रय लेकर चिरजीवी बने रहो'॥ २५—२७॥ इस प्रकार महात्मा कुम्भाण्डको राज्य देकर श्रीकृष्णने वहाँ अनिरुद्धका विवाहसंस्कार सम्पन्न किया। उस समय भगवान् अग्निदेव वहाँ स्वयं उपस्थित हुए थे॥ २८॥ अनिरुद्धका वह विवाह शुभ नक्षत्रमें सम्पन्न हुआ। उसमें माङ्गलिक कृत्य करनेके लिये अप्सराएँ उपस्थित हुई थीं॥ २९॥ वहाँ अपनी पत्नीके साथ अनिरुद्धने स्नान करके अलङ्कार धारण किया। तत्पश्चात् मङ्गलसूचक स्निग्ध वचनोंद्वारा गन्धर्वगण गान करने लगे और अप्सराएँ उस विवाहकी शोभा बढ़ाती हुई नाचने लगीं। तदनन्तर अनिरुद्धका विवाहसंस्कार सम्पन्न कराकर समस्त देवताओंसे घिरे हुए परम बुद्धिमान् शत्रुसूदन एवं परपुरञ्जय भगवान् श्रीकृष्णने देववन्दित वरदायक रुद्रदेवकी आज्ञा ले वहाँसे द्वारका जानेका विचार किया। शत्रुसूदन श्रीकृष्णको द्वारका जानेके लिये उद्यत जान कुम्भाण्डने हाथ जोड़कर उन मधुसूदनसे कहा—'माधव! बाणासुरकी गौएँ वरुणके हाथमें हैं। जिनके थनोंसे अमृतके समान गुणकारक दूध बहता रहता है। उस दूधको पीकर मनुष्य अत्यन्त बलशाली और दुर्जय हो जाता है'॥ ३०—३५॥

कुम्भाण्डेनैवमाख्याते हरिः प्रीतमनास्तदा।
गमनाय मतिं चक्रे गन्तव्यमिति निश्चयम्॥ ३६

ततस्तु भगवान् ब्रह्मा वर्धाप्य स तु केशवम्।
जगाम ब्रह्मलोकं स वृतः स्वभवनालयैः॥ ३७

इन्द्रो मरुद्गणयुतो द्वारकाभिमुखो ययौ।
यतः कृष्णस्ततः सर्वे गच्छन्ति जयकाङ्क्षिणः॥ ३८

वाहनेन मयूरेण सखीभिः परिवारिता।
द्वारकाभिमुखी ह्यूषा देव्या प्रस्थापिता ययौ॥ ३९

ततो बलश्च कृष्णश्च प्रद्युम्नश्च महाबलः।
आरूढवन्तो गरुडमनिरुद्धश्च वीर्यवान्॥ ४०

प्रस्थितश्च स तेजस्वी गरुडः पततां वरः।
उन्मूलयंस्तरुगणान् कम्पयंश्चापि मेदिनीम्॥ ४१

आकुलाश्च दिशः सर्वा रेणुध्वस्तमिवाम्बरम्।
गरुडे सम्प्रयातेऽभून्मन्दरश्मिर्दिवाकरः॥ ४२

ततस्ते दीर्घमध्वानं प्रययुः पुरुषर्षभाः।
आरुह्य गरुडं सर्वे जित्वा बाणं महौजसम्॥ ४३

ततोऽम्बरतलस्थास्ते वारुणीं दिशमास्थिताः।
अपश्यन्त महात्मानो गावो दिव्यपयःप्रदाः।
वेलावनविचारिण्यो नानावर्णाः सहस्रशः॥ ४४

अवज्ञाय तदा रूपं कुम्भाण्डवचनाश्रयात्।
कृष्णः प्रहरतां श्रेष्ठस्तत्त्वतोऽर्थविशारदः॥ ४५

निशम्य बाणगावस्तु तासु चक्रे मनस्तदा।
आस्थितो गरुडं प्राह स तु लोकादिरव्ययः॥ ४६

श्रीकृष्ण उवाच

वैनतेय प्रयाहि त्वं यत्र बाणस्य गोधनम्।
यासां पीत्वा किल क्षीरममृतत्वमवाप्नुयात्॥ ४७

आह मां सत्यभामा च बाणगावो ममानय।
यासां पीत्वा किल क्षीरं न जीर्यन्ति महासुराः॥ ४८

विजराश्च जरां त्यक्त्वा भवन्ति किल जन्तवः।
ता आनयस्व भद्रं ते यदि धर्मो न लुप्यते॥ ४९

कुम्भाण्डके ऐसा कहनेपर भगवान् श्रीहरिको उस समय बड़ी प्रसन्नता हुई। उन्होंने जानेका विचार एवं दृढ़ निश्चय कर लिया॥ ३६॥ तदनन्तर श्रीकृष्णको बधाई देकर ब्रह्मलोकवासियोंसे घिरे हुए भगवान् ब्रह्मा ब्रह्मलोकको चले गये॥ ३७॥ मरुद्गणोंके साथ इन्द्र द्वारकापुरीकी ओर चल दिये। जिस ओर श्रीकृष्ण जा रहे थे, उधर ही वे सब लोग उनकी विजय चाहते हुए यात्रा करने लगे॥ ३८॥ साक्षात् पार्वतीदेवीने उषाको विदा किया। सखियोंसे घिरी हुई उषा मयूर जुते हुए रथसे द्वारकाकी ओर चली॥ ३९॥ तत्पश्चात् बलभद्र, श्रीकृष्ण, महाबली प्रद्युम्न और पराक्रमी अनिरुद्ध—ये चारों गरुड़पर आरूढ़ हुए॥ ४०॥ पक्षियोंमें श्रेष्ठ तेजस्वी गरुड़ वृक्षगणोंको उखाड़ते और पृथ्वीको कम्पित करते हुए वहाँसे प्रस्थित हुए॥ ४१॥ गरुड़के प्रस्थान करनेपर सम्पूर्ण दिशाएँ व्याकुल हो गयीं, आकाश धूलसे आच्छन्न-सा हो गया और सूर्यदेवकी किरणें मन्द पड़ गयीं॥ ४२॥ तत्पश्चात् वे सभी पुरुषप्रवर वीर अपने विशाल मार्गपर बढ़ने लगे। वे सब महाबली बाणासुरको परास्त करके गरुड़पर आरूढ़ हो द्वारकाकी ओर जा रहे थे॥ ४३॥ आकाशमें पहुँचकर वे सब लोग पश्चिम दिशाकी ओर बढ़ने लगे। उस समय उन महात्माओंने अनेक प्रकारके रूप-रंगवाली सहस्रों दिव्य गौओंको देखा, जो दिव्य दुग्ध प्रदान करनेवाली थीं। वे सब-की-सब समुद्रतटवर्ती वनमें विचर रही थीं॥ ४४॥ कुम्भाण्डके वचनोंका स्मरण करके तत्काल उन गौओंके स्वरूपको पहचानकर प्रहार करनेवालोंमें श्रेष्ठ तथा तात्त्विक अर्थनीतिमें विशारद भगवान् श्रीकृष्णने बाणासुरकी उन गौओंको देखा और मन-ही-मन उन्हें ले लेनेका विचार किया। फिर सम्पूर्ण जगत्के आदिकारण वे अविनाशी प्रभु गरुड़पर बैठे-बैठे ही बोले॥ ४५-४६॥

श्रीकृष्णने कहा—विनतानन्दन! जहाँ बाणासुरकी गौएँ हैं, वहीं चलो। कहते हैं, उन गौओंका दूध पीकर मनुष्य अमरत्वको प्राप्त कर लेता है॥ ४७॥ सत्यभामाने मुझसे कहा था कि 'मेरे लिये बाणासुरकी गौएँ ले आइयेगा, जिनका दूध पीकर वे महान् असुर कभी बूढ़े नहीं होते हैं॥ ४८॥ तथा बूढ़े प्राणी भी वृद्धावस्थाको त्यागकर अजर हो जाते हैं। नाथ! आपका कल्याण हो, यदि धर्मका लोप न होता हो तो उन गौओंको ले आइयेगा'॥ ४९॥

अथवा कार्यलोपो वै मैव तासु मनः कृथाः।
इति मामब्रवीत् सत्या ताश्चैता विदिता मम॥ ५०

गरुड उवाच

दृश्यन्ते गाव एतास्ता दृष्ट्वा मां वरुणालयम्।
विशन्ति सहसा सर्वाः कार्यमत्र विधीयताम्॥ ५१

इत्युक्त्वा चैव गरुडः पक्षवातेन सागरम्।
सहसा क्षोभयित्वा च विवेश वरुणालयम्॥ ५२

दृष्ट्वा जवेन गरुडं प्राप्तं वै वरुणालयम्।
वारुणाश्च गणाः सर्वे विभ्रान्ताः प्राचलंस्तदा॥ ५३

ततस्तु वारुणं सैन्यमभियातं सुदुर्जयम्।
प्रमुखे वासुदेवस्य नानाप्रहरणोद्यतम्।
तद् युद्धमभवद् घोरं वारुणैः पन्नगारिणा॥ ५४

तेषामापततां संख्ये वारुणानां सहस्रशः।
भग्नं बलमनाधृष्यं केशवेन महात्मना॥ ५५

ततस्ते प्रद्रुता यान्ति तमेव वरुणालयम्।
षष्टिं रथसहस्राणि षष्टिं रथशतानि च॥ ५६

वारुणानि च युद्धानि दीप्तशस्त्राणि संयुगे।
तद् बलं बलिभिः शूरैर्बलदेवजनार्दनैः॥ ५७
प्रद्युम्नेनानिरुद्धेन गरुडेन च सर्वशः।
शरौघैर्विविधैस्तीक्ष्णैर्वध्यमानं समन्ततः॥ ५८

ततो भग्नं बलं दृष्ट्वा कृष्णेनाक्लिष्टकर्मणा।
वरुणस्त्वथ संक्रुद्धो निर्ययौ यत्र केशवः॥ ५९

ऋषिभिर्देवगन्धर्वैस्तथैवाप्सरसां गणैः।
संस्तूयमानो बहुधा वरुणः प्रत्यदृश्यत॥ ६०

छत्रेण ध्रियमाणेन पाण्डुरेण वपुष्मता।
सलिलस्राविणा श्रेष्ठं चापमुद्यम्य धिष्ठितः॥ ६१

अपां पतिरतिक्रुद्धः पुत्रपौत्रबलान्वितः।
आह्वयन्निव युद्धाय विस्फारितमहाधनुः॥ ६२

'अथवा यदि कार्यमें बाधा पड़ती हो तो उन गौओंकी ओर ध्यान न दीजियेगा' इस प्रकार सत्यभामाने मुझसे कहा था। वे बाणासुरकी गौएँ ये ही हैं, इन्हें मैंने पहचान लिया॥ ५०॥

गरुड़ बोले—प्रभो! ये ही तो वे गौएँ दिखायी दे रही हैं, परंतु मुझे देखकर सहसा सब-की-सब समुद्रमें समायी जा रही हैं; अतः यहाँ जो कार्य करना उचित हो, वह कीजिये॥ ५१॥ ऐसा कहकर गरुड़ने अपने पंखोंकी हवासे सहसा समुद्रको विक्षुब्ध करते हुए वरुणके निवासस्थानमें प्रवेश किया॥ ५२॥ गरुड़को वेगपूर्वक वरुणालयमें आया हुआ देख वरुणके समस्त सैनिकगण तत्काल विभ्रान्त एवं विचलित हो उठे॥ ५३॥ तत्पश्चात् वरुणकी अत्यन्त दुर्जय सेना नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्रोंसे सुसज्जित हो भगवान् श्रीकृष्णके सामने चढ़ आयी। उस समय वरुणके उन सैनिकोंके साथ गरुड़का बड़ा भयंकर युद्ध हुआ॥ ५४॥ युद्धमें आक्रमण करनेवाले उन सहस्रों वरुणसैनिकोंकी उस अजेय सेनाको महात्मा केशवने मार भगाया॥ ५५॥ तब वे भागे हुए सैनिक उस वरुणालयमें ही जा घुसे, इसके बाद वरुणके छाछठ हजार रथी सैनिक चमकीले अस्त्र-शस्त्रोंसे सम्पन्न हो रणक्षेत्रमें आकर युद्ध करने लगे। बलदेव, श्रीकृष्ण, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध और गरुड़—इन सभी बलवान् शूरवीरोंने नाना प्रकारके तीखे बाणसमूहोंद्वारा वरुणकी उस रथसेनाको सब ओरसे मार भगाया॥ ५६—५८॥ अनायास ही महान् कर्म करनेवाले श्रीकृष्णके द्वारा अपनी सेनाको भगायी गयी देख वरुण देवता अत्यन्त कुपित हो उठे और घरसे निकलकर उस स्थानपर आये जहाँ श्रीकृष्ण विराजमान थे॥ ५९॥ उस समय बहुत-से ऋषि, देवता, गन्धर्व तथा अप्सराओंके समुदाय अनेक प्रकारसे उनकी स्तुति कर रहे थे। इस रूपमें वरुणदेवका वहाँ दर्शन हुआ॥ ६०॥ उनके मस्तकपर सुन्दर श्वेत छत्र तना हुआ था, जिससे जलकी बूँदें झर रही थीं। वे एक श्रेष्ठ धनुष हाथमें लेकर खड़े थे॥ ६१॥ जलके स्वामी वरुण अत्यन्त क्रोधमें भरकर अपने पुत्रों-पौत्रों तथा सैनिकोंके साथ आकर अपने विशाल धनुषको फैलाये हुए इस तरह खड़े थे, मानो युद्धके लिये ललकार रहे हों॥ ६२॥

स तु प्राध्मापयच्छङ्खं वरुणः समधावत।
हरिं हर इव क्रुद्धो बाणजालैः समावृणोत्॥ ६३

ततः प्रध्माय जलजं पाञ्चजन्यं जनार्दनः।
बाणजालैर्दिशः सर्वास्ततश्चक्रे महाबलः॥ ६४

ततः शरौघैर्विमलैर्वरुणः पीडितो रणे।
स्मयन्निव ततः कृष्णं वरुणः प्रत्ययुध्यत॥ ६५

ततोऽस्त्रं वैष्णवं घोरमभिमन्त्र्याहवे स्थितः।
वासुदेवोऽब्रवीद् वाक्यं प्रमुखे तस्य धीमतः॥ ६६

इदमस्त्रं महाघोरं वैष्णवं शत्रुसूदनम्।
मयोद्यतं वधार्थं ते तिष्ठेदानीं स्थिरो भव॥ ६७

ततोऽस्त्रं वरुणो देवो ह्यस्त्रं वैष्णवमुद्यतः।
वारुणास्त्रेण संयोज्य विननाद महाबलः॥ ६८

तस्यास्त्रे वितता ह्यापो वरुणस्य विनिःसृताः।
वैष्णवास्त्रस्य शमने वर्तते समितिञ्जयः॥ ६९

आपस्तु वारुणास्तत्र क्षिप्ताः क्षिप्ता ज्वलन्ति वै।
दह्यन्ते वारुणास्तत्र ततोऽस्त्रे ज्वलिते पुनः॥ ७०

वैष्णवे तु महावीर्ये दिशो भीता विदुद्रुवुः।
तद् बलं ज्वलितं दृष्ट्वा वरुणः कृष्णमब्रवीत्॥ ७१

स्मर स्वप्रकृतिं पूर्वामव्यक्तां व्यक्तलक्षणाम्।
तमो जहि महाभाग तमसा मुह्यसे कथम्॥ ७२

सत्त्वस्थो नित्यमासीस्त्वं योगीश्वर महामते।
पञ्चभूताश्रयान् दोषानहंकारं च वर्जय॥ ७३

या या ते वैष्णवी मूर्तिस्तस्या ज्येष्ठो ह्यहं तव।
ज्येष्ठभावेन मान्यं तु किं मां त्वं दग्धुमिच्छसि॥ ७४

वरुणने पहले तो शङ्ख बजाया, फिर क्रोधमें भरकर श्रीकृष्णपर उसी तरह धावा किया, जैसे रुद्रदेवने भगवान् विष्णुपर आक्रमण किया हो। उन्होंने कुपित हो अपने बाणोंके जालसे श्रीकृष्णको ढक दिया॥ ६३॥ तब महाबली जनार्दनने पाञ्चजन्य शङ्ख बजाकर अपने बाणसमूहोंसे सम्पूर्ण दिशाओंको आच्छादित कर दिया॥ ६४॥ रणभूमिमें उन निर्मल बाणसमूहोंसे पीड़ित होनेपर भी मुसकराते हुए-से वरुण श्रीकृष्णके साथ युद्ध करने लगे॥ ६५॥ तब घोर वैष्णवास्त्रको अभिमन्त्रित करके युद्धस्थलमें बुद्धिमान् वरुणके सामने खड़े हुए भगवान् वासुदेव उनसे इस प्रकार बोले—॥ ६६॥ 'वरुणदेव! मैंने तुम्हारे वधके लिये शत्रुओंका संहार करनेवाले इस महाघोर वैष्णवास्त्रको उठा रखा है, अब तुम स्थिरतापूर्वक खड़े रहो'॥ ६७॥ यह सुनकर महाबली वरुणदेव वैष्णवास्त्रका सामना करनेके लिये उद्यत हो उसे वारुणास्त्रसे संयुक्त करके जोर-जोरसे गर्जना करने लगे॥ ६८॥ वरुणके अस्त्रमें राशि-राशि जल व्याप्त था, जो तत्काल प्रकट होने लगा। युद्धविजयी वरुण उसीसे वैष्णवास्त्रको बुझा देनेके लिये उद्यत थे॥ ६९॥ परंतु वारुणास्त्रके द्वारा फेंकी गयी जलधाराएँ जब-जब वैष्णवास्त्रपर पड़ती थीं, तब-तब अग्निके समान प्रज्वलित हो उठती थीं और उनके द्वारा वहाँ वरुणके सैनिक ही दग्ध होने लगते थे। इस प्रकार महान् शक्तिशाली वैष्णवास्त्रके प्रज्वलित होनेपर वरुणके सैनिक पुनः भयभीत हो सम्पूर्ण दिशाओंमें भागने लगे। अपनी उस सेनाको जलती हुई देख वरुणने श्रीकृष्णसे कहा—'महाभाग! आप अपनी उस पूर्व प्रकृतिका स्मरण कीजिये, जो व्यक्ताव्यक्त स्वरूप है। तमोगुणका नाश कीजिये, आप स्वयं तमोगुणसे क्यों मोहित हो रहे हैं?॥ ७०—७२॥ योगीश्वर! महामते! आप सदा ही सत्त्वगुणमें स्थित रहे हैं, अतः पञ्चभूतोंके आश्रित रहनेवाले अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष और अभिनिवेश—इन पाँच दोषों तथा अहंकारको त्याग दीजिये॥ ७३॥ आपकी जो-जो वैष्णवी मूर्ति है, उससे मैं ज्येष्ठ हूँ।* ज्येष्ठ होनेके नाते आपके आदरका पात्र हूँ तो भी आप क्यों मुझे दग्ध करना चाहते हैं?'॥ ७४॥

* भगवान् विष्णुके जितने अवतार हैं, उन सबमें मत्स्यावतार प्रथम माना गया है। यह अवतार जलमें हुआ था और जलके अधिष्ठाता वरुणदेव इसके पहलेसे विद्यमान थे, अतः ये सभी अवतारोंसे ज्येष्ठ सिद्ध होते हैं। वामन-अवतारके समय भगवान् इन्द्र-वरुण आदि देवताओंके छोटे भाई बने, इसलिये भी वरुणकी ज्येष्ठता सिद्ध होती है।

नाग्निर्विक्रमते ह्यग्नौ त्यज कोपं युधां वर।
त्वयि न प्रभविष्यामि जगतः प्रभवो ह्यसि॥ ७५

पूर्वं हि या त्वया सृष्टा प्रकृतिर्विकृतात्मिका।
धर्मिणी बीजभावेन पूर्वधर्मं समाश्रिता॥ ७६

आग्नेयं वैष्णवं सौम्यं प्रकृत्यैवेदमादितः।
त्वया सृष्टं जगदिदं स कथं मयि वर्तसे॥ ७७

अजेयः शाश्वतो देवः स्वयम्भूर्भूतभावनः।
अक्षरं च क्षरं चैव भावाभावौ महाद्युते॥ ७८

रक्ष मां रक्षणीयोऽहं त्वयानघ नमोऽस्तु ते।
आदिकर्तासि लोकानां त्वयैतद् बहुलीकृतम्॥ ७९

विक्रीडसि महादेव बालः क्रीडनकैरिव।
न ह्यहं प्रकृतिद्वेषी नाहं प्रकृतिदूषकः॥ ८०

प्रकृतिर्या विकारेषु वर्तते पुरुषर्षभ।
तस्या विकारशमने वर्तसे त्वं महाद्युते॥ ८१

विकारो वा विकाराणां विकाराय न तेऽनघ।
तानधर्मविदो मन्दान् भवान् विकुरुते सदा॥ ८२

इदं प्रकृतिजैर्दोषैस्तमसा मुह्यते यदा।
रजसा वापि संस्पृष्टं तदा मोहः प्रवर्तते॥ ८३

'योद्धाओंमें श्रेष्ठ श्रीकृष्ण! आग आगपर अपना पराक्रम प्रकट नहीं करती है, अतः क्रोधको त्याग दीजिये। आपपर मेरी प्रभुता नहीं चल सकेगी, क्योंकि आप जगत्के आदि कारण हैं॥ ७५॥ पूर्वकालमें आपने जिस प्रकृति (माया)-की सृष्टि की थी, वह महत्तत्त्व आदि विकारोंके रूपमें परिणत होनेवाली है, इसलिये परिणामधर्मिणी है। वह आपसे पूर्वधर्म (जन्मभाव)* का आश्रय लेकर अर्थात् आपसे ही उत्पन्न होकर जगत्के कारणरूपसे विद्यमान है॥ ७६॥ उक्त प्रकृतिके द्वारा आपने ही पहले इस आग्नेय, वैष्णव एवं सौम्य अस्त्रकी सृष्टि की है और आपसे ही इस सम्पूर्ण जगत्की रचना हुई है, वे जगत्स्रष्टा परमात्मा होकर आप मेरे प्रति कैसा बर्ताव करते हैं॥ ७७॥ महाद्युते! आप अजेय, सनातन देवता, स्वयम्भू और भूतभावन हैं, अक्षर और क्षर तथा भाव और अभाव आपहीके स्वरूप हैं॥ ७८॥ निष्पाप श्रीकृष्ण! आप मेरी रक्षा कीजिये! मैं आपके द्वारा संरक्षण पानेके योग्य हूँ, आपको नमस्कार है। आप समस्त लोकोंके आदिकर्ता हैं। आपने ही इस दृश्य जगत्का विस्तार किया है॥ ७९॥ महादेव! जैसे बालक खिलौनोंसे खेलता है, उसी प्रकार आप इस जगत्के द्वारा क्रीड़ा करते हैं, आप ही इस जगत्की प्रकृति अर्थात् कारण हैं, न तो मैं आपसे द्वेष रखता हूँ और न आपपर दोषारोपण ही करता हूँ॥ ८०॥ महातेजस्वी पुरुषोत्तम! अहंकार आदि विकारोंमें जो प्रकृति (लोभ, द्वेषादि रूप पूर्ववासना) है, उसके विकारों (चोरी, हिंसा आदि दोषों)-की शान्तिके लिये आप दुष्टोंका दमन आदि कार्य करते हैं॥ ८१॥ अनघ! अथवा वे क्रोध आदि विकार विकारों (दुष्टों)-के विकार (विनाश)-के लिये ही होते हैं, आपको विकृत करनेके लिये नहीं। आप सदा उन अधर्मवेत्ता मूढ पुरुषोंका ही विनाश किया करते हैं (सत्पुरुषोंका नहीं)॥ ८२॥ यह जगत् जब प्राकृत दोषों तथा तमोगुणसे ग्रस्त होकर अपना विवेक खो बैठता है अथवा रजोगुणसे संयुक्त होकर संग्रह-परिग्रहमें व्यग्र हो जाता है, तब उसपर मोह छा जाता है'॥ ८३॥

* जन्म, सत्ता, परिणाम, वृद्धि, क्षय और नाश—ये छः भावविकार प्राकृत शरीरके धर्म हैं। इनमें पहला भाव या धर्म 'जन्म' है, इसलिये यहाँ 'पूर्वधर्म' का अर्थ 'जन्म' किया गया है। नीलकण्ठने ऐसा ही माना है।

परावरज्ञः सर्वज्ञ ऐश्वर्यविधिमास्थितः।
किं मोहयसि नः सर्वान् प्रजापतिरिव स्वयम्॥ ८४

'आप स्वयं प्रजापतिके समान कार्य और कारणके ज्ञाता, सर्वज्ञ तथा ऐश्वर्यविधिका आश्रय लेकर स्थित हैं, फिर भी हम सब लोगोंको मोहमें क्यों डाल रहे हैं?'॥ ८४॥

वरुणेनैवमुक्तस्तु कृष्णो लोकपरायणः।
भावज्ञः सर्वकृद् धीरस्ततः प्रीतमना ह्यभूत्॥ ८५
इत्येवमुक्तः कृष्णस्तु प्रहसन् वाक्यमब्रवीत्।

वरुणदेवके ऐसा कहनेपर सम्पूर्ण जगत्के आश्रय, हार्दिक भावके ज्ञाता, सर्वस्रष्टा एवं धीर स्वभाववाले भगवान् श्रीकृष्ण मन-ही-मन उनपर बहुत प्रसन्न हुए, उनकी पूर्वोक्त बात सुनकर वे हँसते हुए उनसे इस प्रकार बोले॥ ८५$\frac{1}{2}$॥

श्रीकृष्ण उवाच

गावः प्रयच्छ मे वीर शान्त्यर्थं भीमविक्रम॥ ८६
इत्येवमुक्ते कृष्णेन वाक्यं वाक्यविशारदः।
वरुणो ह्यब्रवीद् भूयः शृणु मे मधुसूदन॥ ८७

श्रीकृष्णने कहा—भयानक पराक्रमी वीर! तुम इस विवादकी शान्तिके लिये ये गौएँ मुझे दे दो। श्रीकृष्णके ऐसी बात कहनेपर बातचीत करनेमें कुशल वरुणदेव पुनः इस प्रकार बोले—'मधुसूदन! पहले मेरी बात सुन लीजिये'॥ ८६-८७॥

वरुण उवाच

बाणेन सार्धं समयो मया देव कृतः पुरा।
कथं च समयं कृत्वा कुर्यां विफलमन्यथा॥ ८८
त्वमेव वेद सर्वस्य यथा समयभेदकः।
चारित्रं दुष्यते तेन न च सद्भिः प्रशस्यते॥ ८९
धर्मभाग्भिर्नरो नित्यं वर्ज्यते मधुसूदन।
न च लोकानवाप्नोति पापः समयभेदकः॥ ९०
प्रसीद धर्मलोपश्च मा भून्मे मधुसूदन।
न मां समयभेदेन योक्तुमर्हसि माधव॥ ९१
जीवन्नाहं प्रदास्यामि गावो वै वृषभेक्षण।
हत्वा नयस्व मां गाव एष मे समयः पुरा॥ ९२
एतच्च मे समाख्यातं समयं मधुसूदन।
सत्यमेव महाबाहो न मिथ्या तु सुरेश्वर॥ ९३
यद्येवाहमनुग्राह्यो रक्ष मां मधुसूदन।
अथवा गोषु निर्बन्धो हत्वा नय महाभुज॥ ९४

वरुणने कहा—देव! मैंने पूर्वकालमें बाणासुरके साथ एक प्रतिज्ञा की है, वह प्रतिज्ञा करके उसके विपरीत आचरणद्वारा मैं उसे निष्फल कैसे कर सकता हूँ॥ ८८॥ प्रतिज्ञा तोड़नेवाला कैसा होता है, इन सब बातोंको आप ही सबसे अधिक जानते हैं। प्रतिज्ञा तोड़नेसे चरित्र कलङ्कित होता है और साधु पुरुष उसकी प्रशंसा नहीं करते॥ ८९॥ मधुसूदन! धर्मात्मा पुरुष प्रतिज्ञा भङ्ग करनेवाले मनुष्यको सदाके लिये त्याग देते हैं, वह पापी उत्तम लोकोंको नहीं पाता है॥ ९०॥ मधुसूदन! प्रसन्न होइये! मेरे धर्मका लोप न हो! माधव! मुझे प्रतिज्ञा-भङ्गके पापसे संयुक्त न कीजिये॥ ९१॥ वृषभके समान विशाल नेत्रोंवाले गोविन्द! मैं जीते-जी इन गौओंको नहीं दूँगा। आप मेरा वध करके इन्हें ले जाइये। पूर्वकालमें मैंने यही प्रतिज्ञा की है॥ ९२॥ मधुसूदन! महाबाहो! यह मैंने अपनी प्रतिज्ञा कह सुनायी। सुरेश्वर! यह सर्वथा सत्य ही है, मिथ्या नहीं है॥ ९३॥ महाबाहु मधुसूदन! यदि मैं आपके अनुग्रहका पात्र हूँ तो आप मेरी रक्षा कीजिये अथवा गौओंके लिये ही आग्रह हो तो मुझे मारकर इन्हें ले जाइये॥ ९४॥

वैशम्पायन उवाच

वरुणेनैवमुक्तस्तु यदूनां वंशवर्धनः।
अभेद्यं समयं मत्वा न्यस्तवादो गवां प्रति॥ ९५
स प्रहस्य ततो वाक्यं व्याजहारार्थकोविदः।
तस्मान्मुक्तोऽसि यद्येवं बाणेन समयः कृतः॥ ९६

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! वरुणदेवके ऐसा कहनेपर यदुवंशकी वृद्धि करनेवाले भगवान् श्रीकृष्णने उनकी प्रतिज्ञाको अभेद्य मानकर गौओंके लिये विवाद त्याग दिया॥ ९५॥ व्यवहारकुशल श्रीकृष्ण उस समय हँसकर बोले—'यदि आपने बाणासुरके साथ ऐसी प्रतिज्ञा कर ली है तो अब आप इस कलहसे मुक्त हैं'॥ ९६॥

प्रश्रितैर्मधुरैर्वाक्यैस्तत्त्वार्थमधुभाषितैः।
कथं पापं करिष्यामि वरुण त्वय्यहं प्रभो॥ ९७

गच्छ मुक्तोऽसि वरुण सत्यसंधोऽसि नो भवान्।
त्वत्प्रियार्थं मया मुक्ता बाणगावो न संशयः॥ ९८

ततस्तूर्यनिनादैश्च भेरीणां च महास्वनैः।
अर्घ्यमादाय वरुणः केशवं प्रत्यपूजयत्।
केशवोऽर्घ्यं तदा गृह्य वरुणाद् यदुनन्दनः॥ ९९

बलं चापूजयद् देवः कुशलीव समाहितः।
वरुणायाभयं दत्त्वा वासुदेवः प्रतापवान्॥ १००

द्वारकां प्रस्थितः शौरिः शचीपतिसहायवान्।
तत्र देवाः समरुतः ससाध्याः सिद्धचारणाः॥ १०१

गन्धर्वाप्सरसश्चैव किंनराश्चान्तरिक्षगाः।
अनुगच्छन्ति भूतेशं सर्वभूतादिमव्ययम्॥ १०२

आदित्या वसवो रुद्रा अश्विनौ यक्षराक्षसाः।
विद्याधरगणाश्चैव ये चान्ये सिद्धचारणाः।
गच्छन्तमनुगच्छन्ति यशसा विजयेन च॥ १०३

नारदश्च महाभागः प्रस्थितो द्वारकां प्रति।
तुष्टो बाणजयं दृष्ट्वा वरुणं च कृतप्रियम्॥ १०४

कैलासशिखरप्रख्यैः प्रासादैः कन्दरैः शुभैः।
दूरान्निशम्य मधुहा द्वारकां द्वारमालिनीम्॥ १०५

पाञ्चजन्यस्य निर्घोषं चक्रे चक्रगदाधरः।
संज्ञां प्रयच्छते देवो द्वारकापुरवासिनाम्॥ १०६

देवानुयाननिर्घोषं पाञ्चजन्यस्य निःस्वनम्।
श्रुत्वा द्वारवती सर्वा प्रहर्षमतुलं गता॥ १०७

पूर्णकुम्भैश्च लाजैश्च बहुविन्यस्तविस्तरैः।
द्वारोपशोभितां कृत्वा सर्वां द्वारवतीं पुरीम्॥ १०८

फिर वे विनययुक्त मधुर वचनों तथा तात्त्विक अर्थसे युक्त मीठी बातोंद्वारा उन्हें प्रसन्न करते हुए बोले—'प्रभो! वरुणदेव! मैं आपके प्रति दुर्व्यवहार कैसे करूँगा॥ ९७॥ वरुणदेव! जाइये, अब आप मुक्त हैं। सत्यप्रतिज्ञ होनेके साथ ही हमारे सम्बन्धी हैं, आपका प्रिय करनेके लिये मैंने बाणासुरकी गौओंको छोड़ दिया, इसमें संशय नहीं है'॥ ९८॥ तदनन्तर वाद्योंकी ध्वनि और डंकोंकी बड़ी भारी आवाजके साथ वरुणदेवने अर्घ्य लेकर श्रीकृष्णका पूजन किया। यदुनन्दन श्रीकृष्णने वरुणसे वह अर्घ्य लेकर उनकी पूजा स्वीकार की॥ ९९॥ तत्पश्चात् वरुणदेवने सकुशल पुरुषकी भाँति एकाग्रचित्त हो बलभद्रजीका भी पूजन किया। फिर प्रतापी शूरनन्दन श्रीकृष्ण वरुणदेवको अभयदान देकर शचीपति इन्द्रके साथ द्वारकाको प्रस्थित हुए। वहाँ सम्पूर्ण भूतोंके आदिकारण, अविनाशी, भूतनाथ श्रीकृष्णके पीछे-पीछे देवता, मरुद्गण, साध्यगण, सिद्ध, चारण, गन्धर्व, अप्सरा तथा किन्नर भी आकाशमार्गसे चल रहे थे॥ १००—१०२॥ आदित्य, वसु, रुद्र, अश्विनीकुमार, यक्ष, राक्षस, विद्याधर तथा जो अन्य सिद्ध-चारण थे, वे सब यश और विजयके साथ यात्रा करते हुए श्रीकृष्णका अनुसरण कर रहे थे॥ १०३॥ महाभाग नारद भी द्वारकाको ही प्रस्थान कर रहे थे। वे श्रीकृष्णके द्वारा बाणासुरपर विजय और वरुणके प्रिय कार्यका सम्पादन देखकर बहुत संतुष्ट थे॥ १०४॥ तदनन्तर चक्र और गदा धारण करनेवाले मधुसूदनने द्वारमालाओंसे अलंकृत तथा कैलासशिखरके समान कान्तिमान् प्रासादों और सुन्दर कन्दराओंसे सुशोभित द्वारकापुरीको दूरसे ही देखकर पाञ्चजन्य शङ्खका गम्भीर घोष किया। इस प्रकार भगवान् वासुदेवने द्वारकावासियोंको अपने आगमनकी सूचना प्रदान की॥ १०५-१०६॥ पीछे-पीछे आनेवाले देवताओंके विमानोंका गम्भीर घोष और पाञ्चजन्य शङ्खकी ध्वनि सुनकर सारी द्वारकापुरी अनुपम प्रसन्नतासे फूल उठी॥ १०७॥ नगरनिवासियोंने द्वारकापुरीके सभी द्वारोंपर जलसे भरे हुए कलश रखे, खील बिखेरे तथा बड़े विस्तारके साथ अनेक प्रकारकी सजावटें कीं। यह सब करके उन्होंने सम्पूर्ण नगरीको अभिनव शोभासे सम्पन्न कर दिया॥ १०८॥

सुश्लिष्टरथ्यां सश्रीकां बहुरत्नोपशोभिताम्।
विप्राश्चार्घ्यं समादाय तथैव कुलनैगमाः॥ १०९

जयशब्दैश्च विविधैः पूजयन्ति स्म माधवम्।
वैनतेये तमासीनं नीलाञ्जनचयोपमम्॥ ११०

ववन्दिरे तदा कृष्णं श्रिया परमया युतम्।
तमानुपूर्व्या वर्णाश्च पूजयन्ति महाबलम्॥ १११

अनन्तं केशिहन्तारं श्रेष्ठिपूर्वाश्च श्रेणयः।
ऋषिभिर्देवगन्धर्वैश्चारणैश्च समन्ततः॥ ११२

स्तूयते पुण्डरीकाक्षो द्वारकोपवने स्थितः।
तदाश्चर्यमपश्यन्त दाशार्हगणसत्तमाः॥ ११३

प्रहर्षमतुलं प्राप्ता दृष्ट्वा कृष्णं महाभुजम्।
बाणं जित्वा महादेवमायान्तं पुरुषोत्तमम्॥ ११४

द्वारकावासिनां वाचश्चरन्ति बहुधा तदा।
प्राप्ते कृष्णे महाभागे यादवानां महारथे॥ ११५

गत्वा च दूरमध्वानं सुपर्णो द्रुतमागतः।
धन्याःस्मोऽनुगृहीताःस्मो येषां वै जगतः पिता॥ ११६

रक्षिता चैव गोप्ता च दीर्घबाहुर्महाभुजः।
वैनतेयं समारुह्य जित्वा बाणं सुदुर्जयम्॥ ११७

प्राप्तोऽयं पुण्डरीकाक्षो मनांस्याह्लादयन्निव।
एवं कथयतामेव द्वारकावासिनां तदा॥ ११८

वासुदेवगृहं देवा विविशुस्ते महारथाः।
अवतीर्य सुपर्णात् तु वासुदेवो बलस्तदा॥ ११९

प्रद्युम्नश्चानिरुद्धश्च गृहान् प्रविविशुस्तदा।
ततो देवविमानानि संचरन्ति तदा दिवम्॥ १२०

अवस्थितानि दृश्यन्ते नानारूपाणि सर्वशः।
हंसर्षभमृगैर्नागैर्वाजिसारसबर्हिणैः॥ १२१

भास्वन्ति तानि दृश्यन्ते विमानानि सहस्रशः।
अथ कृष्णोऽब्रवीद् वाक्यं कुमारांस्तान् सहस्रशः।
प्रद्युम्नादीन् समस्तांस्तु श्लक्ष्णं मधुरया गिरा॥ १२२

गलियाँ और सड़कें खूब झाड़-बुहारकर स्वच्छ एवं सुसज्जित कर दी गयीं, सारी पुरीकी शोभा बढ़ा दी गयी तथा उसे अनेक प्रकारके रत्नोंसे सजा दिया गया, ब्राह्मण तथा कुलाचारके ज्ञाता पुरोहित आदि अर्घ्य लेकर नाना प्रकारसे जय-जयकार करते हुए नीली अञ्जनराशिके समान श्यामसुन्दर माधवकी, जो गरुड़पर विराजमान थे, पूजा करने लगे॥ १०९-११०॥ उस समय सबने उत्कृष्ट शोभासे सम्पन्न भगवान् श्रीकृष्णकी वन्दना की। सभी वर्णोंके लोग, महाबली अनन्त (बलराम) एवं केशिहन्ता श्रीकृष्णकी क्रमशः पूजा करने लगे, सेठ आदि व्यापारियोंने भी उनका पूजन किया। उस अवसरपर द्वारकाके उपवनमें ठहरे हुए कमलनयन श्रीकृष्णकी ऋषि, देवता, गन्धर्व और चारण आदि सब ओरसे स्तुति कर रहे थे। यदुकुलके श्रेष्ठ पुरुषोंने उस आश्चर्यको अपनी आँखों देखा था। बाणासुरको जीतकर लौटे हुए महान् देवता महाबाहु पुरुषोत्तम श्रीकृष्णको देखकर उन्हें अनुपम हर्ष प्राप्त हुआ था॥ १११—११४॥ यादव-महारथी महाभाग श्रीकृष्णके लौट आनेपर द्वारकावासियोंके मुखसे उस समय नाना प्रकारकी बातें निकलने लगीं—॥ ११५॥ 'ये गरुड़ बहुत दूरके मार्गपर जाकर शीघ्र ही लौट आये। हम धन्य हैं और भगवान्‌के द्वारा अनुगृहीत हैं, जिनके रक्षक और पालक लम्बी भुजावाले जगत्पिता महाबाहु श्रीकृष्ण हैं। गरुड़पर आरूढ़ हो अत्यन्त दुर्जय बाणासुरको जीतकर ये कमलनयन श्रीकृष्ण हमारे मनको आह्लादित करते हुए-से यहाँ आ पहुँचे हैं'। जब द्वारकावासी इस प्रकारकी बातें कह रहे थे, उस समय वे महारथी देवगण भगवान् श्रीकृष्णके भवनमें प्रविष्ट हुए। वहाँ पहुँचनेपर बलराम, श्रीकृष्ण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध भी तत्काल गरुड़से उतरकर अपने-अपने घरोंमें गये। तदनन्तर देवताओंके विमान, जो आकाशमें विचरते थे, उस समय वहाँ स्थिर दिखायी देने लगे, उन सबके स्वरूप नाना प्रकारके थे। हंस, वृषभ, मृग, हाथी, घोड़े, सारस और मोर आदिसे युक्त वे सहस्रों तेजस्वी विमान वहाँ दृष्टिगोचर हो रहे थे। तदनन्तर भगवान् श्रीकृष्णने सहस्रोंकी संख्यामें उपस्थित हुए प्रद्युम्न आदि समस्त यादवकुमारोंसे स्निग्ध एवं मधुर वाणीमें कहा—॥ ११६—१२२॥

एते रुद्रास्तथाऽऽदित्या वसवोऽथाश्विनावपि।
साध्या देवास्तथान्ये च वन्दध्वं च यथाक्रमम्॥ १२३

सहस्राक्षं महाभागं दानवानां भयंकरम्।
वन्दध्वं सहिताः शक्रं सगणं नागवाहनम्॥ १२४

सप्तर्षयो महाभागा भृग्वाङ्गिरसमाश्रिताः।
ऋषयश्च महात्मानो वन्दध्वं च यथाक्रमम्॥ १२५

एते चक्रधराश्चैव तान् वन्दध्वं च सर्वशः।
सागराश्च ह्रदाश्चैव मत्प्रियार्थमिहागताः॥ १२६

दिशश्च विदिशश्चैव वन्दध्वं च यथाक्रमम्।
वासुकिप्रमुखाश्चैव नागा वै सुमहाबलाः॥ १२७

गावश्च मत्प्रियार्थं वै वन्दध्वं च यथाक्रमम्।
ज्योतींषि सह नक्षत्रैर्यक्षराक्षसकिंनरैः॥ १२८

आगता मत्प्रियार्थं वै वन्दध्वं च यथाक्रमम्।
वासुदेववचः श्रुत्वा कुमाराः प्रणताः स्थिताः॥ १२९

यथाक्रमेण सर्वेषां देवतानां महात्मनाम्।
सर्वान् दिवौकसो दृष्ट्वा पौरा विस्मयमागताः॥ १३०

पूजार्थमथ संभारान् प्रगृह्य द्रुतमागताः।
अहो सुमहदाश्चर्यं वासुदेवस्य संश्रयात्॥ १३१

प्राप्यते यदिहास्माभिरिति वाचश्चरन्त्युत।
ततश्चन्दनचूर्णैश्च गन्धपुष्पैश्च सर्वशः॥ १३२

किरन्ति पौराःसर्वांस्तान् पूजयन्तो दिवौकसः।
लाजैः प्रणामैर्धूपैश्च वाद्यध्वनियमैस्तथा॥ १३३

द्वारकावासिनः सर्वे पूजयन्ति दिवौकसः।
आहुकं वासुदेवं च साम्बं च यदुनन्दनम्॥ १३४

सात्यकिं चोल्मुकं चैव विपृथुं च महाबलम्।
अक्रूरं च महाभागं तथा निशठमेव च॥ १३५

एतान् परिष्वज्य तदा मूर्ध्नि चाघ्राय वासवः।
अथ शक्रो महाभागः समक्षं यदुमण्डले॥ १३६

'बच्चो! ये रुद्र, आदित्य, वसु, अश्विनीकुमार, साध्यगण तथा अन्य देवता यहाँ पधारे हैं, तुमलोग क्रमशः इन सबकी वन्दना करो॥ १२३॥ दानवोंको भय देनेवाले सहस्र नेत्रधारी महाभाग इन्द्र ऐरावत हाथीपर आरूढ़ हो अपने सेवकगणोंके साथ पधारे हैं, तुम एक साथ होकर इनकी भी वन्दना करो॥ १२४॥ ये महाभाग सप्तर्षि भृगु और बृहस्पतिके पास खड़े हैं, अन्यान्य महात्मा ऋषि भी पधारे हैं, तुमलोग क्रमशः इन सबकी वन्दना करो॥ १२५॥ ये समस्त चक्रधारी (लोकपाल) खड़े हैं, इन सबको प्रणाम करो। सागर, सरोवर, दिशा और विदिशाएँ—ये सब मेरा प्रिय करनेके लिये यहाँ पधारे हैं, तुमलोग क्रमशः इनकी वन्दना करो। वासुकि आदि महाबली नाग तथा गौएँ मेरा प्रिय करनेके लिये आयी हैं, तुमलोग क्रमशः इन्हें प्रणाम करो। नक्षत्रोंसहित ग्रह और तारे, यक्ष, राक्षस और किन्नर—ये सभी मेरा प्रिय करनेके लिये यहाँ आये हैं, तुम लोग क्रमशः इनकी वन्दना करो'। भगवान् वासुदेवका यह वचन सुनकर वे समस्त यादवकुमार क्रमशः सभी देवताओं और महात्माओंको प्रणाम करके खड़े हो गये। समस्त देवताओंको वहाँ उपस्थित देख पुरवासियोंको बड़ा विस्मय हुआ। वे पूजाकी सामग्री लेकर शीघ्रतापूर्वक वहाँ आये। उस समय उनके मुखसे निम्नाङ्कित बातें निकल रही थीं—'अहो! भगवान् वासुदेवका आश्रय लेनेसे हमें महान् आश्चर्यकी वस्तु देखनेको मिल रही है। तदनन्तर समस्त देवताओंकी पूजा करते हुए पुरवासी वहाँ सब ओर चन्दनके चूर्ण और सुगन्धित पुष्प बिखेरने लगे। उन्होंने खील चढ़ाये, बारम्बार प्रणाम किये, धूप-दीप आदि निवेदन किये, भाँति-भाँतिके वाद्योंकी ध्वनि की और अहिंसा आदि यमोंका पालन किया, इस प्रकार समस्त द्वारकावासियोंने देवताओंकी पूजा की। इसके बाद देवराज इन्द्रने राजा उग्रसेन, भगवान् वासुदेव, यदुनन्दन साम्ब, सात्यकि, उल्मुक, महाबली विपृथु, महाभाग अक्रूर तथा निशठ—इन सबको हृदयसे लगाकर मस्तक सूँघा, फिर उन महाभाग इन्द्रने सारी यदुमण्डलीके समक्ष अपनी (इन्द्रकी)

स्तुवन्तं केशिहन्तारं तत्रोवाचोत्तरं वचः।
सात्वतः सात्वतामेष सर्वेषां यदुनन्दनम्॥ १३७

मोक्षयित्वा रणे चैव यशसा पौरुषेण च।
महादेवस्य मिषतो गुहस्य च महात्मनः॥ १३८

एष बाणं रणे जित्वा द्वारकां पुनरागतः।
सहस्रबाहोर्बाहूनां कृत्वा द्वयमनुत्तमम्॥ १३९

स्थापयित्वा द्विबाहुत्वे प्राप्तोऽयं स्वपुरं हरिः।
यदर्थं जन्म कृष्णस्य मानुषेषु महात्मनः॥ १४०

तदप्यवसितं कार्यं नष्टशोका वयं कृताः।
पिबतां मधुमाध्वीकं भवतां प्रीतिपूर्वकम्॥ १४१

कालो यास्यत्यविरतं विषयेष्वेव सज्जताम्।
बाहूनां संश्रयात् सर्वे वयमस्य महात्मनः॥ १४२

प्रणष्टशोका रंस्यामः सर्वे एव यथासुखम्।
एवं स्तुत्वा सहस्राक्षः केशवं दानवान्तकम्॥ १४३

आपृच्छ्य तं महाभागः सर्वदेवगणैर्वृतः।
ततः पुनः परिष्वज्य कृष्णं लोकनमस्कृतम्।
पुरंदरो दिवं यातः सह देवमरुद्गणैः॥ १४४

ऋषयश्च महात्मानो जयाशीर्भिर्महौजसम्।
यथागतं पुनर्याता यक्षराक्षसकिंनराः॥ १४५

पुरंदरे दिवं याते पद्मनाभो महाबलः।
अपृच्छत महाभागः सर्वान् कुशलमव्ययम्॥ १४६

ततः किलकिलाशब्दं निर्वमन्तः सहस्रशः।
गच्छन्ति कौमुदीं द्रष्टुं सोऽनघः प्रीयते सदा॥ १४७

द्वारकां प्राप्य कृष्णस्तु रेमे यदुगणैः सह।
विविधान् सर्वकामार्थाञ्छ्रिया परमया युतः॥ १४८

स्तुति करते हुए केशिहन्ता भगवान् श्रीकृष्णको उत्तर देते हुए उनके विषयमें वहाँ इस प्रकार उत्कृष्ट बात कही—'ये श्रीकृष्ण समस्त सात्वतवंशी यादवोंमें सर्वश्रेष्ठ सात्वत हैं। इन्होंने रणभूमिमें अपने यश और पुरुषार्थके द्वारा यदुनन्दन अनिरुद्धको बन्धनमुक्त कराकर महादेवजी तथा महामना कार्तिकेयके देखते-देखते संग्राममें बाणासुरको परास्त करके पुनः द्वारकामें पदार्पण किया है। सहस्र भुजाओंसे युक्त बाणासुरके लिये इन्होंने दो ही परम उत्तम भुजाएँ शेष छोड़ दीं और उसे द्विबाहुके पदपर प्रतिष्ठित करके ये श्रीहरि अपनी पुरीमें पधारे हैं। जिसके लिये मनुष्योंमें महात्मा श्रीकृष्णका अवतार हुआ था, वह कार्य भी अब पूरा हो गया; इन्होंने हम देवताओंके सारे शोक नष्ट कर दिये। यादवो! अब मधुर मधुपान करते और निरन्तर मनोवाञ्छित विषयोंका ही सुख भोगते हुए तुमलोगोंका समय बड़ी प्रसन्नताके साथ बीतेगा। हम सब देवता इन महात्मा श्रीकृष्णकी भुजाओंका आश्रय लेनेसे सर्वथा शोकहीन हो गये। अब हम सभी सुखपूर्वक स्वर्गलोकमें रमण करेंगे'। इस प्रकार दानवविनाशक भगवान् श्रीकृष्णकी स्तुति करके सम्पूर्ण देवताओंसे घिरे हुए महाभाग इन्द्रने उनसे जानेके लिये आज्ञा माँगी, तत्पश्चात् विश्ववन्दित श्रीकृष्णको पुनः हृदयसे लगाकर इन्द्र देवताओं और मरुद्गणोंके साथ स्वर्गलोकको चले गये॥ १२६—
१४४॥ महात्मा ऋषि भी विजयसूचक आशीर्वादोंसे महाबली श्रीकृष्णका अभिनन्दन करके जैसे आये थे, वैसे फिर चले गये। इसी तरह यक्ष, राक्षस और किन्नर भी अपने-अपने स्थानको लौट गये॥ १४५॥ देवराज इन्द्रके स्वर्गलोकको चले जानेपर महाबली, महाभाग, पद्मनाभ श्रीकृष्णने समस्त यादवोंका कुशल-मङ्गल पूछा॥ १४६॥ तदनन्तर सहस्रों पुरवासी किलकारियाँ भरते और आश्चर्य प्रकट करते हुए श्रीकृष्णके मुखचन्द्रकी चन्द्रिकाका दर्शन करनेके लिये आने-जाने लगे। निष्पाप श्रीकृष्ण उनकी उस प्रेमभक्तिसे सदा प्रसन्न रहते थे॥ १४७॥ द्वारकामें आकर उत्तम लक्ष्मीसे संयुक्त हुए भगवान् श्रीकृष्ण नाना प्रकारके सम्पूर्ण मनोवाञ्छित वस्तुओंका सदुपयोग करते हुए यादवोंके साथ आनन्दपूर्वक रहने लगे॥ १४८॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे विष्णुपर्वणि द्वारकाप्रत्यागमने सप्तविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः॥ १२७॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत विष्णुपर्वमें श्रीकृष्णका द्वारकामें पुनरागमनविषयक एक सौ सत्ताईसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १२७॥

अष्टाविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

द्वारकामें उत्सव, उषाका अन्तःपुरमें प्रवेश और सत्कार, श्रीकृष्ण और विष्णुपर्वकी महिमा तथा पर्वका उपसंहार

वैशम्पायन उवाच

अथाहुको महाबाहुः कृष्णं प्राह महाद्युतिः।
हर्षादुत्फुल्लनयनः श्रूयतां यदुनन्दन॥ १

एवं गतेऽनिरुद्धस्य क्रियतां महदुत्सवः।
क्षेमात् प्रत्यागतं दृष्ट्वा सेव्यमाना महामते॥ २

उषापि च महाभागा सखीभिः परिवारिता।
रमते परया प्रीत्या चानिरुद्धेन संगता॥ ३

कुम्भाण्डदुहिता रामा उषायाः सखिमण्डले।
प्रवेश्यतां महाभागा वैदर्भी वर्द्धयेत् पुनः॥ ४

साम्बाय दीयतां रामा कुम्भाण्डदुहिता शुभा।
शेषाश्च कन्या न्यस्यन्तां कुमाराणां यथाक्रमम्॥ ५

वर्तते सोत्सवस्तत्र अनिरुद्धस्य वेश्मनि।
गृहे श्रीधन्वनश्चैव शुभस्तत्र प्रवर्तते॥ ६

वादयन्ति पुरे तत्र नार्यो मदवशं गताः।
नृत्यन्ते चाप्सरास्तत्र गायन्ति च तथापराः॥ ७

काश्चित् प्रमुदितास्तत्र काश्चिदन्योन्यमब्रुवन्।
नानावर्णाम्बरधराः क्रीडमानास्ततस्ततः॥ ८

अभियान्ति ततोऽन्योन्यं काश्चिन्मदवशात् स्वयम्।
क्रीडन्ति काश्चिदक्षैस्तु हर्षादुत्फुल्लोचनाः॥ ९

मायूरं रथमारुह्य सखीभिः परिवारिता।
उषा सम्प्रेषिता देव्या रुद्राण्या प्रतिगृह्यताम्॥ १०

इयं चैव कुलश्लाघ्या नाम्नोषा सुन्दरी वरा।
बाणपुत्री तव वधूः प्रतिगृह्णीष्व भामिनीम्॥ ११

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! तदनन्तर महाबाहु महातेजस्वी उग्रसेनने, जिनके नेत्र हर्षसे खिल उठे थे, भगवान् श्रीकृष्णसे कहा—'यदुनन्दन! सुनिये॥ १॥ 'महामते! जब अनिरुद्ध कुशलपूर्वक द्वारका लौट आये और उन्हें देख लिया गया, ऐसी दशामें उनके लिये कोई महान् उत्सव रचाया जाय—ऐसा मेरा विचार है। महाभागा उषा भी सखियोंसे सेवित हो उनसे घिरी रहती है और अनिरुद्धसे मिलकर बड़ी प्रसन्नताके साथ आनन्दपूर्वक समय बिताती है॥ २-३॥ उषाकी सखियोंके समुदायमें जो कुम्भाण्डकी पुत्री रामा है, उसको अन्तःपुरमें प्रवेश कराया जाय और महाभागा विदर्भनन्दिनी रुक्मिणी पुनः अपनी पुत्रवधूके रूपमें उसका अभिनन्दन करें॥ ४॥ कुम्भाण्डकी शुभलक्षणा कन्या रामा साम्बको विवाह दी जाय और शेष कन्याएँ भी क्रमशः अन्यान्य कुमारोंको सौंप दी जायँ'॥ ५॥ (उग्रसेनके ऐसा कहनेपर) अनिरुद्ध और श्रीधन्वाके भवनमें उस शुभ उत्सवका आरम्भ हुआ॥ ६॥ वहाँ नगरकी नारियाँ मदमत्त होकर बाजे बजाने लगीं, कुछ अप्सराएँ नृत्य करने लगीं और दूसरी गीत गाने लगीं॥ ७॥ कुछ स्त्रियाँ वहाँ आनन्द-विनोदमें मग्न थीं, कुछ आपसमें बातें कर रही थीं तथा बहुत-सी स्त्रियाँ नाना प्रकारके वस्त्र धारण किये इधर-उधर भाँति-भाँतिकी क्रीड़ाएँ करती थीं॥ ८॥ कितनी ही स्त्रियाँ यौवनमदके वशीभूत हो स्वयं ही परस्पर आलिङ्गन करती थीं और कितनी द्यूतक्रीड़ामें लगी हुई थीं, उन सबके नेत्र हर्षसे खिल उठे थे॥ ९॥ (जब पहले-पहल उषाका रथ द्वारपर आया। उस समय भगवान् श्रीकृष्णने रुक्मिणीसे कहा—) 'देवि! रुद्र-पत्नी पार्वतीदेवीने सखियोंसे घिरी हुई उषाको मयूरयुक्त रथपर चढ़ाकर यहाँ भेजा है। तुम इसे ग्रहण करो। उत्तम कुलकी दृष्टिसे यह हमारे लिये स्पृहणीय है। इस श्रेष्ठ एवं सुन्दरी कन्याका नाम उषा है। यह बाणासुरकी पुत्री और तुम्हारी बहू है, तुम इस भामिनीको सादर ग्रहण करो'॥ १०-११॥

ततः प्रतिगृहीता सा स्त्रीभिराचारमङ्गलैः।
प्रवेशिता च सा वेश्म अनिरुद्धस्य शोभना॥ १२

देवकी रोहिणी चैव रुक्मिण्यथ विदर्भजा।
दृष्ट्वानिरुद्धं रोदन्त्यः स्नेहहर्षसमन्विताः॥ १३

रेवती रुक्मिणी चैव गृहमुख्यं प्रवेशयत्।
वधूर्वर्धसि दिष्ट्या त्वमनिरुद्धस्य दर्शनात्॥ १४

ततस्तूर्यप्रणादैस्ता वरनार्यः शुभाननाः।
क्रियामारेभिरे कर्तुमुषा च गृहसंस्थिता॥ १५

ततो हर्म्यतलस्था सा वृष्णिपुङ्गवसंस्थिता।
रमते सर्वसदृशैरुपभोगैर्वरानना॥ १६

चित्रलेखा च सुश्रोणी अप्सरारूपधारिणी।
आपृच्छ्य च सखीवर्गमुषां च त्रिदिवं गता॥ १७

गतासु तासु सर्वासु सखीष्वसुरसुन्दरी।
मायावत्या गृहं नीता प्रथमं सा निमन्त्रिता॥ १८

सा तु प्रद्युम्नगृहिणी स्नुषां दृष्ट्वा सुमध्यमा।
वासोभिरन्नपानैश्च पूजयामास सुन्दरीम्॥ १९

ततः क्रमेण सर्वास्ता वधूमूषां यदुस्त्रियः।
आचारमनुपश्यन्त्यः स्वधर्ममुपचक्रिरे॥ २०

वैशम्पायन उवाच

एतत् ते सर्वमाख्यातं मया कुरुकुलोद्वह।
यथा बाणो जितः संख्ये जीवन्मुक्तश्च विष्णुना॥ २१

द्वारकायां ततः कृष्णो रेमे यदुगणैर्वृतः।
अन्वशासन्महीं कृत्स्नां परया संयुतो मुदा॥ २२

एवमेषोऽवतीर्णो वै पृथिवीं पृथिवीपते।
विष्णुर्यदुकुलश्रेष्ठो वासुदेवेति विश्रुतः॥ २३

एतैश्च कारणैः श्रीमान् वसुदेवकुले प्रभुः।
जातो वृष्णिषु देवक्यां यन्मां त्वं परिपृच्छसि॥ २४

तब अन्तःपुरकी स्त्रियोंने मङ्गलाचारपूर्वक उस सुन्दरी बहूको ग्रहण किया और उसे अनिरुद्धके महलमें पहुँचाया॥ १२॥ देवकी, रोहिणी, रुक्मिणी और शुभाङ्गी आदि स्त्रियाँ अनिरुद्धको देखकर स्नेह और हर्षसे विह्वल हो रोने लगीं॥ १३॥ रेवती और रुक्मिणीने अनिरुद्धको उनके श्रेष्ठ भवनमें पहुँचाया और प्रद्युम्नपत्नी शुभाङ्गीसे कहा—'बहू! आज तुम अपने पुत्र अनिरुद्धको देखकर अभ्युदयशालिनी हुई हो। यह बड़े सौभाग्यकी बात है'॥ १४॥ तदनन्तर सुन्दर मुखवाली वे सुन्दरी स्त्रियाँ नाना प्रकारके वाद्योंकी ध्वनिके साथ कुलाचारका सम्पादन करने लगीं और उषा घरके भीतर विराजमान हुई॥ १५॥ सुमुखी उषा अट्टालिकामें वृष्णिपुङ्गव अनिरुद्धके साथ रहकर अपने योग्य समस्त उपभोगोंके द्वारा आनन्दपूर्वक समय बिताने लगी॥ १६॥ सुन्दर कटिप्रदेशवाली अप्सरारूपधारिणी चित्रलेखा उषा तथा अन्य सखियोंसे विदा ले स्वर्गलोकको चली गयी॥ १७॥ उन सब सखियोंके चले जानेपर असुरसुन्दरी उषाको सबसे पहले मायावतीने निमन्त्रित किया और वह उसे अपने घरमें ले गयी॥ १८॥ प्रद्युम्नपत्नी सुमध्यमा मायावतीने उस सुन्दरी पुत्रवधूको देखकर अन्न, पान और वस्त्र आदिके द्वारा उसका सत्कार किया॥ १९॥ तदनन्तर यदुकुलकी सभी स्त्रियोंने अपने कुलाचारपर दृष्टि रखकर क्रमशः बहू उषाको बुलाया और स्वधर्मका पालन किया॥ २०॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—कुरुकुलधुरन्धर जनमेजय! भगवान् श्रीकृष्णने युद्धमें जिस प्रकार बाणासुरको जीता और जीवित छोड़ दिया, यह सब प्रसंग मैंने तुमसे कह सुनाया॥ २१॥ तदनन्तर यादवोंसे घिरे हुए भगवान् श्रीकृष्ण द्वारकामें सुखपूर्वक रहने लगे। वे परमानन्दसे सम्पन्न होकर समस्त भूमण्डलका अनुशासन करते थे॥ २२॥ पृथ्वीनाथ! इस प्रकार ये भगवान् विष्णु पृथ्वीपर अवतीर्ण होकर यदुकुलशिरोमणि वासुदेवके नामसे विख्यात हुए थे॥ २३॥ इन्हीं सब कारणोंसे श्रीमान् भगवान् विष्णु वृष्णिवंशके अन्तर्गत वसुदेवकुलमें देवकीदेवीके गर्भसे प्रकट हुए। जिसके विषयमें तुमने मुझसे प्रश्न किया था॥ २४॥

निवृत्ते नारदप्रश्ने यन्मयोक्तं समासतः।
श्रुतास्ते विस्तराः सर्वे ये पूर्वं जनमेजय॥ २५

विष्णोस्तु माथुरे कल्पे यत्र ते संशयो महान्।
वासुदेवगतिश्चैव सा मया समुदाहृता॥ २६

आश्चर्यं चैव नान्यद् वै कृष्णश्चाश्चर्यसंनिधिः।
सर्वेष्वाश्चर्यकल्पेषु नास्त्याश्चर्यमवैष्णवम्॥ २७

एष धन्यो हि धन्यानां धन्यकृद् धन्यभावनः।
देवेषु तु सदैत्येषु नास्ति धन्यतरोऽच्युतात्॥ २८

आदित्या वसवो रुद्रा अश्विनौ मरुतस्तथा।
गगनं भूर्दिशश्चैव सलिलं ज्योतिरेव च॥ २९

एष धाता विधाता च संहर्ता चैव नित्यशः।
सत्यं धर्मस्तपश्चैव ब्रह्मा चैव पितामहः॥ ३०

अनन्तश्चैव नागानां रुद्राणां शंकरः स्मृतः।
जङ्गमाजङ्गमं चैव जगन्नारायणोद्भवम्॥ ३१

एतस्माच्च जगत् सर्वं प्रसूयेत जनार्दनात्।
जगच्च सर्वं देवेशे तं नमस्कुरु भारत॥ ३२

पूज्यश्च सततं सर्वैर्देवैरेष सनातनः।
इत्युक्तं बाणयुद्धं ते माहात्म्यं केशवस्य तु॥ ३३

वंशप्रतिष्ठामतुलां श्रवणादेव लप्स्यसे।
ये चेदं धारयिष्यन्ति बाणयुद्धमनुत्तमम्॥ ३४

केशवस्य च माहात्म्यं नाधर्मस्तान् भजिष्यति।
एषा तु वैष्णवी चर्या मया कार्त्स्न्येन कीर्तिता॥ ३५

पृच्छतस्तात यज्ञेऽस्मिन् निवृत्ते जनमेजय।
आश्चर्यपर्व निखिलं यो हीदं धारयेन्नृप॥ ३६

जनमेजय! नारदजीके प्रश्नका उत्तर मिल जानेसे जब वह प्रश्न निवृत्त हो गया, उस समय मैंने उसके विषयमें संक्षेपसे जो कुछ कहा था, वे सारी बातें तुम पहले विस्तारपूर्वक सुन चुके हो*॥ २५॥ भगवान् विष्णुके मथुरामें होनेवाले अवतारके विषयमें तुम्हें महान् संदेह था, उसके समाधानके लिये मैंने वासुदेवके स्वरूपका एवं वासुदेव ही सबकी परम गति (आश्रय) हैं, इस सिद्धान्तका भलीभाँति प्रतिपादन कर दिया॥ २६॥ श्रीकृष्णके सिवा दूसरी कोई आश्चर्यकी वस्तु नहीं है। श्रीकृष्ण ही आश्चर्यके अधिष्ठान या समुद्र हैं। समस्त आश्चर्यमय वस्तुओंमें ऐसा कोई आश्चर्य नहीं है, जो भगवान् विष्णुके अंशसे शून्य हो॥ २७॥ ये श्रीकृष्ण धन्य हैं, ये ही धन्योंको धन्य बनानेवाले और धन्यभावन हैं, देवताओं तथा दैत्योंमें इन भगवान् अच्युतसे बढ़कर धन्य दूसरा कोई नहीं है॥ २८॥ ये ही आदित्य, वसु, रुद्र, अश्विनीकुमार, मरुद्गण, आकाश, भूमि, दिशा, जल और तेज हैं॥ २९॥ ये ही धाता, विधाता और नित्यसंहर्ता हैं। सत्य, धर्म, तपस्या तथा पितामह ब्रह्मा भी ये ही हैं॥ ३०॥ ये नागोंमें अनन्त और रुद्रोंमें शङ्कर माने गये हैं। यह समस्त चराचर जगत् इन नारायणदेवसे ही प्रकट हुआ है॥ ३१॥ इन जनार्दनसे ही सम्पूर्ण जगत्की उत्पत्ति होती है। भारत! देवेश्वर श्रीकृष्णमें ही सम्पूर्ण जगत् विद्यमान है। तुम उन्हें नमस्कार करो॥ ३२॥ ये सनातन पुरुष श्रीकृष्ण ही सदा सम्पूर्ण देवताओंके लिये पूजनीय हैं। इस प्रकार मैंने तुमसे बाणासुरके युद्ध और केशवके माहात्म्यका वर्णन किया॥ ३३॥ तुम इसके श्रवणमात्रसे अनुपम वंशप्रतिष्ठा प्राप्त करोगे। जो लोग बाणासुरके इस परम उत्तम युद्धप्रसंग और केशवके माहात्म्यको अपने मनमें धारण करेंगे, उनके पास अधर्मका प्रवेश नहीं होगा। तात जनमेजय! इस यज्ञकी समाप्तिपर तुम्हारे प्रश्नके अनुसार मैंने भगवान् विष्णुकी इस सम्पूर्ण लीलाका वर्णन किया है। नरेश्वर! जो इस सम्पूर्ण आश्चर्यमय पर्वको धारण करता है,

* विष्णुपर्वके एक सौ दसवें अध्यायमें धन्योपाख्यान आया है, उसमें सबसे बढ़कर धन्य कौन है? यह नारदजीकी जिज्ञासा निवृत्त हुई है, उसीकी ओर यहाँ संकेत किया गया है।

सर्वपापविनिर्मुक्तो विष्णुलोकं स गच्छति।
कल्य उत्थाय यो नित्यं कीर्तयेत् सुसमाहितः॥ ३७

न तस्य दुर्लभं किंचिदिह लोके परत्र च।
ब्राह्मणः सर्ववेदी स्यात् क्षत्रियो विजयी भवेत्॥ ३८

वैश्यो धनसमृद्धः स्याच्छूद्रः कामानवाप्नुयात्।
नाशुभं प्राप्नुयात् किंचिद् दीर्घमायुर्लभेत सः॥ ३९

वह समस्त पापोंसे मुक्त होकर भगवान् विष्णुके लोकमें जाता है। जो प्रतिदिन सबेरे उठकर एकाग्रचित्त हो इसका कीर्तन करता है, उसके लिये इहलोक और परलोकमें कुछ भी दुर्लभ नहीं है। इस प्रसंगका अपने अधिकारके अनुसार पाठ या श्रवण करनेसे ब्राह्मण सम्पूर्ण वेदोंका ज्ञाता होता है, क्षत्रियको युद्धमें विजय प्राप्त होती है, वैश्य धनसे सम्पन्न होता है और शूद्र अपनी सम्पूर्ण कामनाएँ प्राप्त कर लेता है। उसे किसी भी अशुभ या अमङ्गलकी प्राप्ति नहीं होती तथा वह दीर्घायु होता है॥ ३४—३९॥

सौतिरुवाच

इति पारीक्षितो राजा वैशम्पायनभाषितम्।
श्रुतवानचलो भूत्वा हरिवंशं द्विजोत्तमाः॥ ४०
एवं शौनक संक्षेपाद् विस्तरेण तथैव च।
प्रोक्ता वै सर्ववंशास्ते किं भूयः श्रोतुमिच्छसि॥ ४१

सौतिजी कहते हैं—विप्रवरो! इस प्रकार परीक्षित्के पुत्र राजा जनमेजयने स्थिरचित्त होकर वैशम्पायनके द्वारा कहे गये हरिवंशका श्रवण किया॥ ४०॥ शौनक! इस प्रकार मैंने संक्षेप और विस्तारके साथ सभी वंशोंका वर्णन किया है, अब तुम और क्या सुनना चाहते हो?॥ ४१॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे विष्णुपर्वणि उषाहरणसमाप्तौ अष्टाविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः॥ १२८॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत विष्णुपर्वमें उषाहरणके प्रसंगकी समाप्तिविषयक एक सौ अट्ठाईसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १२८॥

॥ विष्णुपर्व सम्पूर्ण ॥

